ओड़िआ

वैदेहीश-विळास

रचयिता

श्री उपेन्द्रभञ्ज

लिप्यन्तरण एवं अनुवाद

श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम० ए०

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

वर्तमान पता:—मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥'

प्रथम संस्करण— १९८० ई०

पृष्ठसंख्या—१८×२२÷८=१०००

मूल्य— ७०'०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

'प्रभाकर निलयम्', ६०५/१२८, चौपटियां रोड, लखनऊ–२२६००३

श्रीराम-पञ्चायतन

विषय-सूची

प्रकाशकीय प्रस्तावना

श्री

अमरभारती सलिल-मञ्जु की 'ओड़िआ' पावन धारा।
पहन नागरी-पट उसने अब भूतल-भ्रमण विचारा ॥

वाणी, भाषा और लिपि

परा, पश्यंती, मध्यमा सहज मानव के वश की बात नहीं। चतुर्थावस्था 'वैखरी'— मन के भावों और उद्‌गारो को मुख से प्रकट करना, यही सहज-स्वाभाविक वाणी है। पशु, पक्षी अथवा मनुष्यों में जब कोई वर्ग एक प्रकार की वाणी बोलता है, उस बोली से परस्पर भावो को कहता, सुनता और समझता है, तब वाणी के उस प्रकार को उस विशिष्ट-वर्ग की भाषा की संज्ञा दी जाती है। और उसी भाषा को जब चिह्नों-आकृतियों में लिखकर प्रकट किया जाता है, तब उन्ही चिह्नों और आकृतियों को उस भाषा-विशेष की लिपि कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के मत से धरातल पर पृथक्-पृथक् भूखण्डों में विभिन्न समयों पर मानवों की सृष्टि और विकास होता रहा है; वे सब एक ही स्थान पर एक ही मानव से सम्बद्ध नहीं है। फलत: उन सबकी भाषाएँ भी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् और स्वतंत्र है। इन पृथक् कुलों को ये विद्वान् आर्य, मंगोल, सेमेटिक, हेमेटिक, द्रविड़ आदि की सज्ञा देते है।

किन्तु भारतीय मत की घोषणा इसके विपरीत है, और इस्लामी मान्यता भी उसका अनुमोदन करती है। इस मत के अनुसार सारी मानव जाति एक ही मूल पुरुष मनु अथवा आदम की सन्तान होकर मानव अथवा आदमी कहलायी। कालान्तर में विभिन्न भूखण्डों में फैलने, एक दूसरे से अलग-थलग होने और वहाँ की विशिष्ट जलवायु और संस्कारों से प्रभावित होने के फल-स्वरूप वह मानव जाति अनेक रूप, रंग, आकार और बोलियों में विभक्त होती गई। यह परिवर्तन लाखो वर्षों से चलते आ रहे है और इसलिए उन मानव-समूहों के रूप, रंग, आकार और बोलियों के अन्तर भी इतने सघन हो गये है कि ज्ञान की उपेक्षा करनेवाले और केवल तर्क, अनुमान, प्रयोग, अनुसंधान आदि भौतिक साधनों को ही ज्ञान मानकर उन पर निर्भर रहनेवाले पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुवर्ती भारतीयों का भ्रमित हो जाना अस्वाभाविक नही। यह बात इनसे ओझल हो जाती है कि कितना भी बड़ा वैषम्य इन जातियों के लक्षणों में दिखाई देता हो, उनकी आकृतियों और भाषाओं में कुछ ऐसे

तथ्य लाखों वर्ष वाद भी झलकते है जो सारी मानव जाति को किसी पुरातन काल मे एक मूल मानव मे पितृत्व प्रदान करते है।

भारतीय वाङ्मय के सृष्टिक्रम-सम्वन्धी विशाल ज्ञानकोश को विस्तार-भय से किनारे भी रख दे, तो भी जन-साधारण की समक्ष मे आनेवाली कुछ वातें तो हमारे मत की पुष्टि करती ही है। उदाहरण के लिए— (१) द्रविड़कुल की भाषाएँ आर्यकुल की भाषाओ से पाश्चात्य मत मे मूलतः पृथक् मानी गई है। किन्तु सस्कृत की वर्णाक्षरी, उनका वर्गीकरण तथा लिपि का वाये से दाहिने लिखना उनके समान ही है। इसके विपरीत आर्यकुल की कुछ भाषाओ का खरोष्टी लिपि मे (दायें से वाये) लिखा जाना और वर्णो की सख्या, क्रम, वर्गीकरण आदि मे वड़ा अन्तर है। (२) अरवी और संस्कृत की शव्दावली और लिपि मे नाममात्र को भी मेल नही है, किन्तु उनकी व्याकरण मे कई समानताएँ है, जवकि सस्कृत का अपने आर्यकुल ही की अन्य भाषाओ के व्याकरण से साम्य नगण्य सा है, या नही है। (३) उत्तर-पश्चिम में सुदूरस्थ ईरान की अवेस्ता और गाथाओं की भाषा मे असुर का अहुर उच्चारण है। वीच के पूरे आर्यावर्त मे इसका अभाव होने के वाद उत्तर-पूर्व मे असम प्रदेश में फिर दस को दह और गोसाईं को गोहाईं वोलते है। (४) नेपाल के आदिम निवासी आर्यकुल के रूप, आकृति से सर्वथा भिन्न है। किन्तु वहाँ कुछ ही समय से आवाद आर्यकुल के राज-परिवार तथा राना-परिवार की आकृतियो पर नेपाली प्रभाव प्रत्यक्ष है। (५) व्राह्मी लिपि से ही उत्पन्न होते हुए, उत्तर भारत की भाषाएँ भोजपत्न पर लिखी जाने के फलस्वरूप रेखाकार, और दक्षिण भारत की भाषाएँ ताळपत्न पर लिखी जाने के कारण गोलाकार हो गईं। आदि, आदि।

भारतीय भाषाएँ

अस्तु, जव मानव मात्न एक मनु (आदम) की सन्तान है और आज पृथ्वी पर उपलब्ध विविध भाषाओ और वोलियों का आदि-स्रोत एक है, तव भारत के निवासियो और भारतीय भाषाओ को मूलतः पृथक् मानना, उनका वुनियादी वर्गीकरण करना कहाँ तक समुचित है? जहाँ तक हिन्दी, गुरमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, ओड़िआ, वंगला, असमिया, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, सिंहली आदि भाषाओ, लिपियों अथवा वोलियो का सम्वन्ध है, इन सवकी वर्णमाला, शव्दावली, व्याकरण आदि में इतना अधिक साम्य है कि उनको एक परिवार से वाहर समझने की रत्ती भर गुंजाइश नही। ये सभी प्राचीन संस्कृत की पौत्ती और भारतीय जनपदो मे शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत अथवा उनके अपभ्रंशों की पुत्रियाँ हैं।

उर्दू को तो हिन्दी से पृथक् मानना ही भूल है। उसका तो हिन्दी से वही सम्बन्ध है जो एक रूह का दो कालिब से—एक प्राण का दो शरीर से। अरबी लिपि में लिखी जाने अथवा अरबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों के अधिक समाविष्ट हो जाने से वह पृथक् भाषा नहीं हो सकती। कदाचित् लोगों को कम पता है कि नगरों में नहीं, ग्रामों तक में नित्य बोली जानेवाली और हिन्दी कही जानेवाली भाषा में एक तिहाई से अधिक शब्द अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि के बार-बार बोले जाते हैं। उनमें ऐसे भी अरबी शब्दों की भरमार है जो अब ठेठ हिन्दी की सम्पत्ति बन गये हैं, उनके अरबी-फ़ारसी होने की कल्पना भी नहीं की जाती। जैसे हलुवा, साइत (मुहूर्त्त), मेहरिया, हमेल, तरह, अन्दर, अगर, अचार, अजगर, अतलस, अबीर, अमीर, गरीब, अरक, मेवा, मल्लाह, मसखरा, मक्कर, लाला, लहास, स्याही, संदूक, रुमाल आदि।

अलबत्ता भारत की दक्षिणी भाषाओं—मलयाळम, तेलुगु, कन्नड और तमिळ—का शेष भारतीय भाषाओं और लिपियों से भेद अधिक दूर का है। किन्तु उनके अक्षरों का वर्गीकरण देवनागरी वर्णमाला के समान है। इसके अलावा संस्कृत के शब्द तत्सम और तद्भव रूप में इतने अधिक दक्षिणी भाषाओं में घुलमिल गये हैं कि उनका अन्य भारतीय भाषाओं से तादात्म्य प्रत्यक्ष है, भले ही कलेवर पृथक् दिखाई दे।

उद्देश्य

उपर्युक्त भाषाई पहलुवों के अलावा, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी सारा देश परस्पर ऐसा गुथ गया है कि उसमें एकात्म-भाव के सर्वत्र दर्शन होते है। उसके प्रभाव की छाप सभी भाषाओं के साहित्य पर मौजूद है। इसलिए अपने-अपने क्षेत्र में विभिन्न लिपियों के फलते-फूलते रहने के बावजूद, यह जरूरी है कि राष्ट्र में सबसे अधिक सुपरिचित और व्याप्त देवनागरी लिपि के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा के सत्साहित्य को भारत के कोने-कोने तक पहुँचाया जाय। भारतभूमि के हर कोने में प्रस्फुटित वाङ्मय को हर भारतवासी तक पहुँचाया जाय। लिपि और भाषा के सेतुकरण द्वारा सारे राष्ट्र का एकीकरण—यही 'भुवन वाणी ट्रस्ट का' उद्देश्य है। आगे बढ़कर यही उद्देश्य अब विश्व-स्तर पर आरम्भ है।

उद्देश्य-पूर्ति का साधन 'देवनागरी लिपि'

आसेतु हिमालय, सारे देश के साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार और सन्तों की वाणी को, किसी एक क्षेत्र अथवा समुदाय तक सीमित न रहने देकर, सारे भारतीयों की सामूहिक सम्पत्ति बनाना ही राष्ट्रीय एकीकरण

की उपलब्धि है। नरसी मेहता के भजन, टैगोर की गीताञ्जलि, तिरुवल्लुवर का तिरुक्कुरळ् और सन्त नानक की अमरवाणी, क्रमशः गुजरात, बंगाल, तमिळनाडु और पंजाब को ही नही, अपितु सारे देश को प्राण प्रदान करें, यह उनके अनुवाद मात्र के द्वारा सभव नहीं। जिस भाषारूपी सुधाभाण्ड से यह अमृत प्रवाहित हुए है उन भाषाओं के बोध के बिना वह प्राण सुलभ नहीं। किन्तु यह भी सत्य है कि एक व्यक्ति के लिए इतनी लिपियों को सीखकर उन भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना संभव नहीं।

प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड)

अस्तु, एक ही मार्ग है। देवनागरी लिपि, जो सारे देश में अपेक्षाकृत सर्वाधिक व्याप्त है, भारतीय प्राचीन वाङ्मय की भाषा—देवभाषा संस्कृत की अपनी लिपि है; उसके माध्यम से हम आरंभिक ज्ञान प्राप्त करे। देवनागरी लिपि में क्षेत्रीय भाषाओं की वर्णमाला, उनके विशेष अक्षर, उच्चारण, मात्राएँ, सामान्य व्याकरण, वाक्य-रचना, देशज शब्द एवं संस्कृत से प्राप्त तत्सम और तद्भव शब्दों के उदाहरण आदि का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषा के किसी मान्य लोकप्रिय ग्रथ को चुनकर उसके अध्ययन द्वारा अपने अर्जित उपर्युक्त ज्ञान का अभ्यास किया जाय। धीरे-धीरे, अभ्यास के द्वारा उस भाषा में अभीष्ट ज्ञान सुलभ होगा। ग्रंथ के चयन में यह ध्यान रखना जरूरी है कि उसका कथानक देश के दूसरे क्षेत्रों में पूर्वपरिचित हो। रामायण, महाभारत, इस्लामी हदीस, पारसी गाथा, सिख गुरुओं की वाणी—यह ऐसे विषय हैं जिनमें वर्णित कथानक और उपदेश सारे देश की जनता को कमोबेश मालूम है। अक्षर-बोध, सामान्य शब्द-परिचय और व्याकरण-बोध के साथ-साथ, कथा का विषय जाना-समझा होने पर शिक्षार्थी को—लिपि, भाषा और साहित्य के माध्यम से अपने को सारे राष्ट्र का व्यावहारिक दृष्टि से सच्चा नागरिक बनने के अभिलाषी को—उस भाषा अथवा ग्रंथ को समझने में सरलता होगी। प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड) का यह मार्ग ही सुगम है। इस मार्ग से एक क्षेत्र का निवासी, सब अथवा अधिक से अधिक क्षेत्रों की भापाओ और वहाँ के लोक-साहित्य को आत्मसात् कर सकता है। अलवत्ता यदि किसी भाषा-विशेष में अधिक पारंगत होने की अभिलाषा है, तो उस भाषा के विशेष अध्ययन का मार्ग अपनाना जरूरी होगा।

क्षेत्रान्तरित निवासी

यह तो हुई भावात्मक एकता की बात। देवनागरी लिपि के माध्यम से 'अन्य भारतीय भाषाओं को पढ़ने-समझने की एक जरूरत भी

पैदा हो गई है। बहुत बड़ी संख्या में एक क्षेत्र या राज्य के निवासी दूसरे क्षेत्र अथवा राज्य में स्थायी तौर पर बस गये और बसते जा रहे है। वह अपने परिवार और सक्षेत्रीयों के साथ परस्पर तमिळ, बंगला, सिन्धी आदि अपनी मातृभाषाएँ बोलते है, और परम्परा के अभ्यास से सदैव बोलते भी रहेंगे, किन्तु मौजूदा क्षेत्र-विशेष में शिक्षा-दीक्षा पाने के कारण बच्चे अपनी लिपि के ज्ञान से अपरिचित रह जाते है। फलत: नित्य की बोलचाल को छोड़कर, अपनी मातृभाषा के सम्पन्न और बहुमूल्य वाङ्मय से वे अपरिचित होते जा रहे हैं, और इस प्रकार अपनी क्षेत्रीय संस्कृति से दिन प्रति दिन दूर होते जायँगे। अन्य क्षेत्रों में आवासित उन परिवारों, जिनकी संख्या आज के आज़ाद भारत में अपरिमित है, के लिए तो अनिवार्यत: आवश्यक है कि देवनागरी लिपि में अपनी मातृभाषा के अमूल्य साहित्य को पढ़कर अपनी क्षेत्रीय साहित्यिक निधि को अपने बीच संजोये रखें।

अन्य लिपियों का विरोध नहीं

उपर्युक्त प्रयास से यह किसी प्रकार अभीष्ट नही कि भारत में प्रयुक्त अन्य लिपियों के शिक्षण अथवा प्रचार में ज़रा भी कमी हो। वह वैसे ही, वरन् अधिक फलती-फूलती रहें। किन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि अन्य भाषाओं और लिपियों से सम्बन्धित जन, अथवा आपकी लिपि और भाषा के ही लोग, जो परिस्थितिवश दूसरे क्षेत्रों में स्थायी तौर पर बस गये हैं, उनको आपके प्रचुर साहित्य से वञ्चित होने की परिस्थिति पैदा न होने पाये। दो हज़ार वर्ष पूर्व तमिळनाडु के अमर सन्त तिरुवल्लुवर का 'पञ्चम वेद' समझा जाने वाला नीति-ग्रंथ 'तिरुक्कुऱळ्' अपनी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि के कलेवर में राष्ट्र के कोने-कोने में लोकप्रिय होने की स्थिति में आ जाय, यह संकल्प भी कम पुनीत नहीं। जय भारत!

ओड़िआ प्रदेश (ओड़ीसा)

ओड़िआ प्रदेश भारत का पूर्वी-समुद्रतटीय राज्य है। इस प्रदेश का प्राचीन नाम 'उत्कल' है। जगत्प्रसिद्ध 'जगन्नाथ-धाम' के कारण यह प्रदेश सारे भारत के लिए पर्यटन-भूमि और सारे राष्ट्र को जोड़ने की एक प्रमुख कड़ी रही है। ओडीसा प्रदेश एक कृषिप्रधान राज्य है। यह अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, तीर्थ, प्राचीन कला आदि में अति सम्पन्न है। श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर और उसकी मूर्ति-कला तथा भुवनेश्वर जैसे तीर्थ है, जहाँ रथयात्रा के अवसर पर राष्ट्र के कोने-कोने से लाखों व्यक्ति हर साल आते और परस्पर सम्पर्क करते हैं। लगभग चार हजार वर्ष पुरानी खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाएँ, महानदी जैसी विशाल सलिला, आरम्भिक सदियों के सैकड़ों प्राचीन मंदिर, धौलिगिरि पर अशोक का शिलालेख,

विश्वविख्यात कोणार्क मन्दिर, चिलका झील, विश्व का सबसे बड़ा बाँध हीराकुड, समुद्र का मनोहर दृश्य तथा स्नान, राउरकेला का कारखाना—इस छोटे से राज्य में बहुत कुछ दर्शनीय है।

संस्कृत साहित्य के मुकुट-ग्रथ 'साहित्यदर्पण' के प्रणेता श्री विश्वनाथ महापात्र महामहोपाध्याय और ओड़िआ प्रदेश को राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक—सब प्रकार से समृद्धि की ओर लानेवाले श्री मधुसूदनदास प्रख्यात 'मधु बाबू' जैसी विभूतियो से यह प्रदेश गौरवान्वित रहा है। लोकसेवी श्री गोपबन्धु; उनका कीर्तिमान् गोपबन्धु ट्रस्ट, समाज कार्यालय, और इस यशस्वी ट्रस्ट के वर्तमान अध्यक्ष, दृढता, विद्वत्ता की मूर्ति 'श्री राधानाथ रथ' ओड़ीसा के मूर्धन्य मान्य व्यक्ति हैं।

लोहा, कोयला, वन की सम्पत्ति के साथ-साथ आधुनिक कल-कारखानों की भी अब कमी नही है। कपड़ा, लोहा, अल्मूनियम, कागज, सीमेण्ट आदि के उत्पादन-स्थान है। यह है उत्कल का समृद्धिशाली प्रदेश !

ओड़िआ वर्णाक्षरी, उच्चारण तथा भाषा

ओड़िआ की वर्णमाला 'देवनागरी वर्णमाला' के समान है। मराठी 'ळ' मात्र अधिक है। ओड़िआ-देवनागरी वर्णमाला का चार्ट पृष्ठ १६ पर अवलोकनीय है। केवल 'ज' दो प्रकार का है। एक वर्ग्य 'ज' जो जल, जन्तु आदि मे प्रयुक्त होता है। दूसरा अवर्ग्य 'ज' जो शब्द के आदि में 'य' होने पर 'ज' पढा जाता है, जैसे यदि-जदि, याहाँकर-जाहाँकर, यज्ञ-जज्ञ। किन्तु मध्य या अन्त मे आने पर 'नियम' 'समय' के अनुसार 'य' ही बोला जाता है। 'रेफ' के साथ 'य' अन्त मे होने पर भी 'ज' पढ़ा जायगा, जैसे 'सूर्य्य' का 'सूर्ज्ज'। देवनागरी-लिप्यन्तरण मे अवर्ग्य 'ज' य अथवा ज दोनों प्रकार से लिखा गया है। पढने में ओड़िआ-पद्धति पर दोनों सूरतों में 'ज' ही पढ़ना उचित होगा; किन्तु हिन्दी-पद्धति पर 'य' अथवा 'ज' इच्छानुसार पढ़ सकते है। उसी प्रकार 'व' को प्राय: 'ब' पढते है।

संस्कृत के तो सभी तत्सम शब्द हिन्दी के समान ही ओड़िआ में प्रयुक्त होते है। अंग्रेजी तथा अरबी से आये शब्द भी ओड़िआ में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के समान ही सामान्य हेर-फेर से बोले जाते है। जैसे सन्दुक, रुमाल, दुवात, कलम, साबुन, आलमारा, क्लास आदि। और भी शब्द हिन्दी तथा ओड़िआ मे जैसे के तैसे बोले जाते हैं—जैसे कुदाल, खुरपी, दर्जी, माला, साहुकार, महाजन, रूमाल, काम, घडी, जुआर, बाजरा, चादर, थाली, वहुत, दूर, पहरा, आन (दूसरा), जलेबी, पेडा आदि। कुछ हेर-फेर के साथ वोले जानेवाले शब्द—जैसे दुध-दूध, किछु-कुछ, फुल-फूल, सांडुआसी-सँड़सी, दोकान-दुकान, मसला-मसाला, उपरे-ऊपर, दोयात-दावात,

रुटि-रोटी, बाहुड़ि-बहुरि, ताउआ-तवा, उजुड़ि-उजड़, बेलेणा-बेलन, लुहा-लोहा, पथर-पत्थर, पाहाड़-पहाड़, खट-खाट, बाधाई-बधाई, बीचि-बीच, ढांकुणी-ढक्कन, गाळि-गली, करचुली-करछुली, चामुचा-चिमचा, नळ-नाला, पाणि-पानी, गछ-गाछ (पेड़), चाउळ-चावल, कालि-कल, पेटपूरा-भरपेट, ठिकणा-ठिकाना, निद-नींद, बदळि गलाणि-बदल गया है, खुब-खूब, हात-हाथ, पहँचिले-पहुँचे, माटि-मिट्टी, धोबा-धोबी, मोचि-मोची, डालबुंट-दालमोठ, डालि-दाल, मसुर-मसूर, मुग-मूँग आदि ।

ओड़िआ अक्षरो की लिखावट देखने में बड़ी विकृत और कठिन प्रतीत होती है । किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो अधिकांश अक्षर—जैसे क, ख, ग, घ, ज, त, थ, ध आदि ऐसे हैं जिनमें उनके मुख एक ओर से दूसरी ओर घुमा देने से देवनागरी के समान बन जाते हैं । ओड़िआ में अक्षर भी उतने ही हैं, जितने देवनागरी लिपि में । केवल मराठी लिपि का 'ळ' का विशेष प्रयोग होता है । तमिळ आदि दक्षिणी भाषाओं के समान ही ओड़िआ में भी अकारान्त शब्द सस्वर बोला जाता है, न कि जैसा हिन्दी में 'जल' सस्वर लिखकर 'जल्' हलन्त बोलते हैं । "यह अच्छा बकस है" में हिन्दी में 'है' लगाया जाता है । ओडिआ में संस्कृत की पद्धति पर 'एहा भल सिन्दुक' पर्याप्त है । 'है' के लिए 'अटे' कहने की जरूरत नहीं ।

हिन्दी—राष्ट्रभाषा के सन्दर्भ में

विधान निर्मात्री परिषद में 'हिन्दी' को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया । हिन्दी भाषा के साथ नागरी लिपि का जुड़ा होना स्वाभाविक है । यह निर्णय सर्वसम्मति से लिया गया । हिन्दी से इतर अनेक भाषा वालो ने अपनी-अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तावित करने में न केवल हिन्दी वरन् अन्य सभी भाषाओं की ओर से सम्भावित विरोध की आशंका देखी; अतः शतरज मे किश्त से बचने के लिए हिन्दी के सामने अंग्रेजी को अर्दब के रूप में रखकर उसका प्रबल समर्थन किया । इस पर, उनको अंग्रेजी का भक्त कहना हम हिन्दी वालों की जियादती है; हमको उनके स्थान पर बैठकर सोचना चाहिए ।

हम अहिन्दीवादी बन्धुओं को साधुवाद देते है कि युक्ति से, तर्क से, अनुनय-विनय से उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया । उसके बाद से, सही तो यह है कि हिन्दी के पक्षधरों का व्यवहार ठीक नहीं रहा ।

एक बार 'हिन्दी' राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने के बाद 'हिन्दी' का राष्ट्र-भाषा पर से वर्चस्व उठ गया । किसी बहुमत वाले दल के द्वारा अध्यक्ष,

यहाँ तक कि बहुमत से राष्ट्रपति तक चुन लिये जाने के बाद, वह सभी दलो का निष्पक्ष अध्यक्ष और राष्ट्रपति होता है। अपनी निजी अथवा दलीय मान्यताओं को किनारे कर देना पड़ता है।

इसी प्रकार सर्वसम्मति से स्वीकृत राष्ट्रभाषा पर, हिन्दी को अपना वर्चस्व, विशेष ममत्व अथवा निर्णय लादना उचित नही। राष्ट्र-भाषा पर सारे राष्ट्र का दायित्व है। उसके स्वरूप और सुविधा मे सभी क्षेत्रों की रुचि का स्वागत करना चाहिए। अञ्चलीय हिन्दी में हिन्दी वाले अपनी मनमानी मे स्वतन्त्र है। किन्तु राष्ट्रभाषा पर विशेष दायित्व लेने से अन्य भाषाभाषियों पर विपरीत प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। हिन्दी राष्ट्रभाषा केवल इसलिए स्वीकृत हुई है कि राष्ट्र के अधिक से अधिक भाग में वह अधिक व्याप्त है। अन्यथा, अन्य भाषाओ का साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है और उनकी लिपि भी नागरी लिपि के समान ही वैज्ञानिक है।

राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने के फलस्वरूप हिन्दी 'माला' का सुमेरु नहीं बन गयी। अन्य भारतीयभाषा-रूपी गुरियों के समान ही सुमेरु भी 'धागा' पर अवलम्बित है। अत: हिन्दी सुमेरु नही धागा-स्वरूप है, जिसमे गुथकर हिन्दी सहित भारत की सभी भाषाओं की गुरियाँ गुंथित और एकत्रित होकर राष्ट्र के समग्र वाङ्मय और साहित्य को राष्ट्र में मालाकार प्रस्तुत करती है। अत: अन्य सभी भाषाओं के समान ही हिन्दी भी उस राष्ट्रभाषा-रूपी धागे पर अवलम्बित है। उसको सुमेरु-रूपी प्रदर्शन के लोभ को त्याग कर धागा-रूपी अलक्ष्य संगठक का गौरव अधिक शोभन है।

एक बात यह भी ध्यान मे रखने की है कि कितनी भी शक्ति लगा दी जाय, भारत की सभी भाषाओं मे प्राप्त विपुल सदाचार साहित्य, संत-वाणी और अपार ज्ञानराशि का समग्र लिप्यन्तरण नागरी मे हो पाना सम्भव नही। अत: यह राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के लिए नितांत आवश्यक है कि सभी भाषाएँ और उनकी लिपियाँ सुरक्षित, और उनका साहित्य उत्तरोत्तर फूलता फलता रहे। सभी भाषाओ का मूल्यवान् साहित्य परस्पर में भी लिप्यन्तरित और अनूदित होता रहे; और यथासाध्य उस समग्र को राष्ट्रभाषा और जोड़लिपि नागरी लिपि में भी प्रस्तुत किया जाय।

इसकी दूसरी मंजिल में हमको यही सम्बन्ध विश्व की अन्य भाषाओं के साथ जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। विश्वबन्धुत्व के पुनीत लक्ष्य की ओर बढते रहने का यही सर्वोपरि उपाय है। सारा भौतिक जगत् हम बाँट सकते है, किन्तु विश्व का वाङ्मय, धरातल का ज्ञानकोश मानव-मात्र

की सम्पत्ति है। उस पर किसी का एकाधिकार नहीं है। कटुता-स्पर्द्धा की गुंजाइश नहीं। राष्ट्रीय एकीकरण और विश्वबन्धुत्व के लिए हमें वाणी भगवति का सहारा लेने में ही त्राण है।

ओड़िआ लिपि का नागरी लिप्यन्तरण

पृष्ठ १५ पर, ओड़िआ लिपि का एक नमूना अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। इनको देखकर छोटे से प्रदेश ओड़ीसा के अतिरिक्त अन्य कहीं किसी के पल्ले कुछ नही पड़ेगा। इसके विपरीत, बैदेहीश-बिळास के प्रस्तुत नागरी लिप्यन्तरित ग्रन्थ को पढ़िये। केवल लिपि का आवरण हटते ही ओड़िआ भाषा में अधिकांश शब्द संस्कृत, यहाँ तक कि ग्राम्य हिन्दी के समान होते हैं। भगवान राम पर, 'बैदेहीश-बिळास' जैसा अलंकारिक ग्रन्थ शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा में हो; फिर भी वह अपने प्रदेश में ही सीमित है। नागरी लिपि में आते ही सारे राष्ट्र में वह बोधगम्य-स्वरूप प्राप्त करता है। 'बैदेहीश-बिळास' सारे राष्ट्र की सम्पत्ति बन जाता है।

नागरी रूपान्तरकार श्री नन्द

श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम० ए०, क्राइस्ट चर्च कालेज, कटक के हिन्दी विभागाध्यक्ष है। यह ओड़ीसा प्रदेश के सर्वप्रथम एम० ए० उत्तीर्ण स्नातक है। भुवन वाणी ट्रस्ट की विद्वत्परिषद् के माननीय सदस्य और ओड़िआ भाषा के सलाहकार अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार है। 'बैदेहीश-बिळास' जैसा अद्भुत अलङ्कारमय ग्रन्थ, उनके श्रम और लगन के फल-स्वरूप ही नागरी-जगत् में अवतीर्ण हो सका है। श्री नन्द ने इसी प्रकार नागरी के ग्रन्थ-शिरोमणि श्रीरामचरितमानस के ओड़िआ में सानुवाद लिप्यन्तरण के प्रकाशन का भी अवसर ट्रस्ट को दिया है। तरुण कर्मठ विद्वान् श्री नन्द ने इस प्रकार ओड़िआ भाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी, दोनों पर उपकार किया है।

श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम० ए०

प्रस्तुत 'बैदेहीश-बिळास' के राष्ट्रभाषा संस्करण में श्री नन्द ने ओड़िआ काव्य को नागरी अक्षरों में लिप्यन्तरित करने के अलावा कठिन

शब्दों का हिन्दी अर्थ, और श्लेष, यमक आदि अलंकारों को अंकित किया है। उसके बाद प्रत्येक पद का सरल हिन्दी भावार्थ दिया है। ग्रन्थकार श्रीउपेन्द्रभञ्ज नरेश का यह महाकाव्य, ओड़ीसा के जन-सामान्य से लेकर मूर्धन्य विद्वानों तक में सर्वाधिक सुपरिचित और लोकप्रिय है। एक हज़ार पृष्ठ के 'बैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति 'ब' अक्षर से आरम्भ है और प्रत्येक पद में श्लेष-यमक की भरमार है। उपमा-सादृश्य विचित्र है। एक ही स्तुति को मूर्यपरक मान ले तो सारा शब्दार्थ सूर्यपरक हो जायगा; और यदि विष्णुपरक मान ले तो सारा शब्दार्थ विष्णु की स्तुति में वदल जायगा। पाठकों को परिचित कराने के निमित्त हम श्री नन्द महोदय का चित्र प्रस्तुत कर रहे है। ग्रन्थ के अन्त में 'भञ्जीय काव्य वैभव' नाम से ओड़ीसा के महान् कवि श्री उपेन्द्रभञ्ज देव पर एक विस्तृत शोध-निबन्ध देकर श्री नन्द ने ग्रन्थ की अलौकिकता में और श्रीवृद्धि कर दी है।

आभार प्रदर्शन

'बैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण कई वर्षों से मुद्रित हो रहा है। उदार श्रीमानों और उत्तर प्रदेश शासन की सहायता से, अन्य भापाई ग्रन्थो के साथ इसका भी प्रकाशन चल रहा था। सम्प्रति वर्ष में केन्द्रीय शासन के शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय एवं केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की विशेष सहायता प्राप्त होने के फलस्वरूप यह विलक्षण और अद्वितीय अलङ्कारमय ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। हम उनके अत्यन्त आभारी है।

प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सन्त की वानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥

[signature]

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

ଗୋସ୍ୱାମୀ ତୁଳସୀଦାସକୃତ

ଶ୍ରୀରାମଚରିତ ମାନସ

(ଓଡ଼ିଆ ଲିପିରେ ମୂଳପାଠ ଏବଂ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ପଦ୍ୟଗଦ୍ୟାନୁବାଦ)

ପ୍ରଥମ ସୋପାନ

ବାଳକାଣ୍ଡ

ବର୍ଣ୍ଣାନାମର୍ଥସଂଘାନାଂ ରସାନାଂ ଛନ୍ଦସାମପି ।
ମଙ୍ଗଳାନାଂ ଚ କର୍ତ୍ତାରୌ ବନ୍ଦେ ବାଣୀବିନାୟକୌ ॥୧॥
ଭବାନୀଶଙ୍କରୌ ବନ୍ଦେ ଶ୍ରଦ୍ଧାବିଶ୍ୱାସରୂପିଣୌ ।
ଯାଭ୍ୟାଂ ବିନା ନ ପଶ୍ୟନ୍ତି ସିଦ୍ଧାଃ ସ୍ୱାନ୍ତଃସ୍ଥମୀଶ୍ୱରମ୍ ॥୨॥
ବନ୍ଦେ ବୋଧମୟଂ ନିତ୍ୟଂ ଗୁରୁଂ ଶଙ୍କରରୂପିଣମ୍ ।
ଯମାଶ୍ରିତୋ ହି ବକ୍ରୋଽପି ଚନ୍ଦ୍ରଃ ସର୍ବତ୍ର ବନ୍ଦ୍ୟତେ ॥୩॥

ବିବିଧ ପ୍ରକାର ବର୍ଣ୍ଣ ଅର୍ଥ ରସ ଛନ୍ଦ ଆଦର ।
ମଙ୍ଗଳଙ୍କ କର୍ତ୍ତା ବାଣୀ ବିନାୟକେ ବନ୍ଦେ ସାଦର ॥ ୧ ॥
ବନ୍ଦେ ପୁଣି ଶ୍ରଦ୍ଧା ବିଶ୍ୱାସ ମୂରତି ଉମା ମହେଶେ ।
ଯା ବିହୁନେ ସିଦ୍ଧେ ଦେଖି ନ ପାରନ୍ତି ସ୍ୱ ହୃଦଈଶେ ॥ ୨ ॥
ବନ୍ଦେ ଜ୍ଞାନମୟ ନିତ୍ୟ ଶିବ ପ୍ରାୟ ଶ୍ରୀଗୁରୁ ପଦ ।
ଯାହାଙ୍କୁ ଆଶ୍ରିତ ବକ୍ର ଚନ୍ଦ୍ର ମଧ୍ୟ ସର୍ବତ୍ର ବନ୍ଦ୍ୟ ॥ ୩ ॥

ବର୍ଣ୍ଣ, ଅର୍ଥ, ରସ, ଛନ୍ଦ ଓ ମଙ୍ଗଳସମୂହର ସୃଷ୍ଟିକାରଣୀ ବାଣୀ ଓ ସୃଷ୍ଟିକାରୀ ଶ୍ରୀ ଗଣେଶଙ୍କୁ ମୁଁ ବନ୍ଦନା କରୁଅଛି ॥ ୧ ॥ ଯାହାଙ୍କ ବ୍ୟତିରେକେ ସିଦ୍ଧ ପୁରୁଷଗଣ ମଧ୍ୟ ନିଜ ହୃଦୟସ୍ଥିତ ଈଶ୍ୱରଙ୍କୁ ଦେଖି ପାରନ୍ତି ନାହିଁ, ଶ୍ରଦ୍ଧା ଓ ବିଶ୍ୱାସର ମୂର୍ତ୍ତି ସେହି ଦେବୀ ଶ୍ରୀ ପାର୍ବତୀ ଓ ମହାପ୍ରଭୁ ଶ୍ରୀ ଶଙ୍କରଙ୍କୁ ମୁଁ ବନ୍ଦନା କରୁଅଛି ॥ ୨ ॥ ଯାହାଙ୍କ ଆଶ୍ରୟ ବଳରେ ଚନ୍ଦ୍ର ବକ୍ର ହୋଇ ସୁଦ୍ଧା ଜଗତରେ ସର୍ବତ୍ର ବନ୍ଦିତ, ସେହି ଜ୍ଞାନମୟ, ନିତ୍ୟ, ଶଙ୍କରରୂପୀ ଗୁରୁଙ୍କୁ ମୁଁ ବନ୍ଦନା କରୁଅଛି ॥ ୩ ॥

☞ भुवन वाणी ट्रस्ट ने 'रामचरितमानस' का यह ओड़िआ रूपान्तर, समाज कार्यालय (सत्यवादी प्रेस) कटक में मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया है। इसमें ओड़िआ लिपि मे मानस का मूल पाठ तथा ओड़िआ भाषा में गद्य-पद्य अनुवाद ओड़िआ-जगत् के हेतु प्रस्तुत किया गया है। 'बैदेहीश-बिळास' के विद्वान् अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार श्री सुरेशचन्द्र नन्द ने ही इस मानस का ओड़िआ लिप्यन्तरण तथा गद्यानुवाद किया है। पद्यानुवादक हैं श्री स्वामी बलरामदासजी।

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त
(ओड़िआ) वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

ओड़िया - देवनागरी वर्णमाला
ଅअ ଆआ ଇइ ଈई ଉउ
ଊऊ ଋऋ ୠॠ ଏए ଐऐ
ଓओ ଔऔ ଅଂअं ଅଃअः
କक ଖख ଗग ଘघ ଙङ
ଚच ଛछ ଜज ଝझ ଞञ
ଟट ଠठ ଡड ଢढ ଣण
ତत ଥथ ଦद ଧध ନन
ପप ଫफ ବब ଭभ ମम
ଯय ୟय़ ରर ଳळ ଲल
ଵव ଶश ଷष ସस ହह
କ୍ଷक्ष ଡ଼ड़ ଢ଼ढ़

वस्तुत: इस संस्करण में कुछ भ्रम रहा। भविष्य में, य को य़ और अवर्ग्य ज को य के रूप में प्रस्तुत किया जायगा।

नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट

[ॐ]

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज प्रणीत

वैदेहीश-विळास

लिप्यन्तरणकार एव अनुवादक—

श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., हिन्दी-ओडिआ, रा० भा० रत्न,

अध्यापक—हिन्दी विभाग, क्राइस्ट कालेज, कटक

कवि की संक्षिप्त जीवनी

[भञ्ज-साहित्य के श्रेष्ठ व्याख्याता तथा समालोचक, 'कलिग भारती' अनुष्ठान के सस्थापक स्व० विच्छन्दचरण पट्टनायक द्वारा सपादित 'भञ्ज प्रभा' समालोचना-ग्रन्थ मे दिये गये विवरणो के आधार पर—]

वश-परिचय

ओडिशा के गञ्जाम जिलान्तर्गत वन-पर्वत-निर्झर-सुशोभित 'घुमुसर' राज्य के कुलाड दुर्ग मे महाप्रतापी राजा धनञ्जय भञ्ज के पौत्र तथा नीलकण्ठ भञ्ज के पुत्र, कलिग-मुकुटमणि कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने सन् १६८५ ई० मे जन्म ग्रहण कर सन् १७२५ ई० मे चालीस वर्ष की आयु मे शरीर त्याग किया। कविसम्राट् ने अपने 'रसलेखा' काव्य मे ग्रन्थ समाप्ति की सूचना इस प्रकार दी है—

"दिव्यसिंह गजपति अंक सपत विंशति शेष दिने शेष एहु गीत"।

इससे सिद्ध होता है कि उपेन्द्र भञ्ज ओडिशा (पुरी) के गजपति राजा दिव्यसिह देव के राज्यकाल मे (अर्थात् सन् १६९२-१७२० मे) वर्त्तमान थे।

उपेन्द्र के पितामह धनञ्जय भञ्ज, पण्डित, कवि तथा काव्यरसिक थे। बचपन से ही उनकी अलौकिक प्रतिभा ने पितामह धनञ्जय भञ्ज को आकर्षित किया था। थोड़ी ही उम्र मे उपेन्द्र ने वाल्मीकि, कालिदास, श्रीहर्ष, माघ, भोजराज, हनुमान आदि कवियो की कृतियो, एव विश्वनाथ कविराज, आचार्य दण्डी, मम्मट भट्ट, आनन्दवर्द्धन इत्यादि के अलकार तथा ध्वनिग्रन्थो का अध्ययन करके सस्कृत साहित्य मे अगाध पाण्डित्य अर्जन किया था। आपके पिता नीलकण्ठ जी भी कवि थे। कवि-प्रतिभा बचपन से ही उपेन्द्र के रक्त-मास मे घुल-मिल गई थी। स्व-रचित 'वैदेहीश-विळास' ग्रन्थ के अन्त मे आपने अपने वश का परिचय यो दिया है—

"बरहिवंशे उद्भव नृप धनञ्जय,
त्रिशिष्टे घुमुसर-अधिप गुणालय।
बेनि अर्थे (दो अर्थों मे) से (वे) गणेश बोलि जाण (जानो)।
बन्दन तद्वत ताँक (उनके) नन्दन प्रमाण।
वसुधापति से (वे) नीलकण्ठ नामे ख्यात,
विधानरे (विधान मे) मुहि (मै ही) ताहाँकर (उनका) ज्येष्ठसुत।
वीरवर पद उपइन्द्र मोर (मेरा) नाम,
बारे-बारे (बार-बार) सेबारे (सेवा से) मनाईं (मनाकर) सीताराम,
विचित्र कवित्व मार्गे प्रसरिला बुद्धि, (बुद्धि का प्रसार हुआ)
बिरचिलि (रचना की) रामायण ए मो (मेरी) बड़ सिद्धि।

राजपरिवारो मे सहज व्याप्त अशान्त वातावरण से घुमुसर का राजपरिवार भी मुक्त न था, किन्तु उपेन्द्र पर उस वातावरण का प्रभाव लेशमात्र न था। उनमे जरा भी भोगलिप्सा नही थी। वेशभूषा के प्रति उनकी विशेष दृष्टि नही थी। केवल सीताराम के चरणो मे अपना तन-मन सौपकर काव्य-रचना करना उनका एक मात्र ध्येय रहा। छोटे से घुमुसर राज्य मे बँधे न रहकर एक अखण्ड प्रतिपत्तिशाली सारस्वत साम्राज्य के सम्राट् बनने की अभिलाषा ने उनके मन पर अधिकार कर लिया था। वे चाहते थे कि उनकी काव्य-सरिता देश-विदेशो तक प्रवाहित हो।

देशे-देशे हेउ ख्यात, (ख्यात हो),
मोहु (मुग्ध करे) ए रसिक चित्त,
हर हरि करन्तु (करें) एमन्त (ऐसा) हे। [रसलेखा]

विवाह

उपेन्द्र ने नयागढ की राजकन्या से विवाह किया था। किन्तु उनकी अकाल मृत्यु होने पर आपने वाणपुर की राजकन्या से पुनः विवाह किया। वाणपुर-राजकन्या रूपसी, विदुषी तथा अत्यन्त पतिप्राणा थी। वे उपेन्द्र की उपयुक्त सहधर्मिणी होकर उनके कवि-जीवन को सफल बनाने मे सहायक रही।

रचित पुस्तकें

कवि ने कुल ७२ काव्य-पुस्तकों की रचना की। उनमें से प्रकाशित पुस्तकों की संख्या नीचे लिखे अनुसार केवल २० है:—

लावण्यवती, वैदेहीशविळास, कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी, प्रेमसुधानिधि, रसिक-हारावली, रसलेखा, रसपञ्चक, रामलीलामृत, छान्दभूषण, चौपदीचन्द्र, चौपदीभूषण, चित्रकाव्यबन्धोदय, कलाकउतुक, सुभद्रापरिणय, सुवर्णरेखा, अवनारसतरंग, बजारबोलि, यमकराज-चउतिशा, गीताभिधान और दशपोइ।

अप्रकाशित पुस्तको की सूची —त्रैलोक्यमोहिनी, हास्यार्णव, कटपाया, मुक्तावती, ब्रजलीला, चन्द्रकला, सगीतकौमुदी, शोभावती, कलावती, रसमञ्जरी, वारमासी, इच्छावती, दुर्गास्तुति, नीलाद्रीश चउतिशा, श्रीकृष्णविहार, गजनिस्तारण, गरुड़गीत, पुरुषोत्तममाहात्म्य इत्यादि।

कवित्व तथा पाण्डित्य

उपेन्द्र भञ्ज ने प्रसिद्ध संस्कृत कवियो का अनुसरण करते हुए उनसे व्यवहृत विभिन्न अलकारो का कृतित्व के साथ ओडिआ साहित्य मे प्रयोग किया है। सख्यातीत अन्य दुर्लभ साहित्यिक सविधानो को भी अपने विशाल-काव्य-कलेवर के गर्भ मे निविष्ट करके आपने विचक्षण पाठको के चित्त आकर्षित किये है। सस्कृत षट्काव्य, पुराणशास्त्र, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, तन्त्र, अभिधान, छान्द, अलकार, व्याकरण, कलाविद्या, कामसूत्र, दण्डनीति, राजनीति, स्मृति, दर्शन, भूगोल आदि विषयो मे आप प्रवीण थे। यह उनसे रचित ग्रन्थावली से स्पष्ट प्रतिपादित होता है। विविध रसो का सुन्दर परिपाक, चमत्कार शब्द-योजना तथा विचित्र अलकारो का समावेश उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। उनकी रचानाएँ एव काव्य देवभक्ति, दार्शनिक चिन्ता, नम्रता, नैतिकता, सतीत्त्व-निष्ठा, आदर्श गृहस्थी, आदर्श दाम्पत्य प्रेम, देश-प्रेम, प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिकता के चित्रों तथा वर्णना-वैचित्र्यो से भरपूर है।

कवि के सरस और श्रेष्ठ काव्यो—वैदेहीशविळास, लावण्यवती और कोटि-ब्रह्माण्डसुन्दरी मे कवि-प्रतिभा का अद्वितीय वैशिष्ट्य प्रतिपादित हुआ है ।

भक्त उपेन्द्र

हनुमान, तुलसीदास और कृपासिद्धा बलरामदास की तरह उपेन्द्र ने 'राम तारक मन्त्र' मे सिद्धि प्राप्त की थी । यद्यपि आप शिव, दुर्गा, गणपति और सूर्य—इन सबकी पूजा किया करते थे, फिर भी अवतारी रघुनाथ आपके इष्टदेव थे । इसलिए आपने अपने अधिकाश काव्यो मे रघुनाथ श्रीरामचन्द्र की वन्दना की है ।

"तरणिकुळर सार। आश्रयरु निरन्तर।
कहे उपइन्द्र भञ्ज मुँ लभिछि शबद-समुद्र पार।"
[कोटि ब्रह्माण्डसुन्दरी—छान्द-१४]

अनु०—"सूर्यवश के श्रेष्ठ देव प्रभु रामचन्द्रजी की शरण के फलस्वरूप"—उपेन्द्र भञ्ज कहते है—"मैंने शब्द-समुद्र को पार किया है ।"

जनश्रुति है आप द्वादशावधानी थे । आप ई० १७२५ मे अप्रकट (ओझल) हो साकेतवासी हुए ।

वैदेहीश-विळास

ऐसा प्रतीत होता है कि उपेन्द्र भञ्ज ने अपनी बीसवें वर्ष की अवस्था में 'वैदेहीश-विळास' महाकाव्य की रचना की थी । इतनी थोडी उम्र मे 'वैदेहीशविळास' जैसे महाकाव्य की रचना वास्तव में विस्मयकर है । इसके सम्बन्ध में एक जनश्रुति है । धनञ्जय भञ्ज ने रामचरित्र सम्बन्धी काव्य 'रघुनाथ विळास' की रचना करके उसे अपने पौत्र उपेन्द्र को दिखाया था । उसे पढ़ कर उपेन्द्र ने उत्तर दिया कि इसी विषय-वस्तु को ग्रहण करके इससे उच्चकोटि का काव्य लिखा जा सकता है । यह उक्ति धनञ्जय के प्रति उपहासास्पद होने पर भी उन्होने उपेन्द्र से पूछा, "क्या तुम यह कर सकोगे ?" पितामह के सन्देह तथा अविश्वास का उपयुक्त उत्तर देने के लिए कृत-सकल्प होकर उपेन्द्र घोडे पर सवार हो आराध्य देव नूआगड़ (नयागढ) के रघुनाथ जी की शरण लेने गये । नूआगड से लौटते समय उन्होने देखा कि एक साधक श्मशान मे शव की पीठ पर बैठा काली का आवाहन कर रहा है । एकाएक काली का आविर्भाव होने पर उनकी दिव्य प्रभा से साधक मूर्च्छित हो गया । यह देख उपेन्द्र तुरन्त घोडे की

पीठ से नीचे कूद पडे, स्वयं शव पर बैठ गये और बलि दी। काली ने उनसे वर माँगने को कहा तो उपेन्द्र ने 'अलौकिक कवित्वशक्ति' चाही। देवी 'तथास्तु' कहकर ओझल हो गयी।

घुमुसर वापस आकर 'ब' ('व' भी इसमे सम्मिलित है) वर्ण को प्रत्येक चरण के आद्य मे रखकर उपेन्द्र ने 'वैदेहीशविळास' महाकाव्य की रचना की। इस काम मे उन्हे एक वर्ष भी नही लगा।

कुछ लोगो का मत है कि नयागढ़ के श्री रघुनाथ जी की कृपा से उपेन्द्र ने 'राम-तारक मन्त्र' मे सिद्धि प्राप्त की थी। कवि को इस मन्त्र पर इतना विश्वास हो गया था कि इसी मन्त्र के प्रसाद से वे 'वैदेहीशविळास' जैसे महाकाव्य की रचना थोडे ही समय मे कर सके। इस महाकाव्य के प्रथम छान्द (सर्ग) के तीसरे पद मे उन्होने 'तारक मन्त्र' के बारे मे सूचना भी दी है। अपने 'लावण्यवती' काव्य मे भी आपने कहा है कि—

"तारक मन्त्र परसादे, मोहर कविपण उदे।"—

(अर्थात् तारक मन्त्र के प्रसाद से मेरे कवित्व का उदय हुआ है।)

'वैदेहीशविळास' महाकाव्य 'ब' (व) आद्य नियम से तो रचित किया गया है। साथ ही, उसमे 'बावन' छान्द (सर्ग) है और प्रत्येक छान्द 'बाईस', 'बयालीस' आदि सख्यक पदो मे रचित है। एक वर्ष (बावन सप्ताहो) मे महाकाव्य की रचना समाप्त करके कवि-मार्त्तण्ड उपेन्द्र ने अपने पितामह धनञ्जय को यह महाकाव्य दिखाया। धनञ्जय इसे देखकर फूले न समाये और उपेन्द्र को गले लगा लिया। उन्होने आशा की थी कि उपेन्द्र के घुमुसर नरेश होने पर अपना राज्य रामराज्य में परिणत होगा। परन्तु उनकी यह आशा आशा ही मे रह गई, क्योकि उपेन्द्र को राजपद से विराग था।

'वैदेहीशविळास' मे कवि ने श्रीरामचन्द्र जी के जन्म से राज्याभिषेक तक रामायण के चित्ताकर्षक प्रसग बडी चारुता से चित्रित किये हैं। अन्यान्य प्रसग यथा वाल्मीकि के आश्रम मे लवकुश का जन्म, वैदेही का पातालगमन, रामचन्द्र जी का वैकुण्ठगमन इत्यादि प्रसग—"विभग रस बोलिण न वर्णिलि", [इन प्रसगो मे रसो का विभग (विशेष भंग) है, इसीलिए इनका वर्णन मैंने नही किया;] कहकर कवि ने महाकाव्य का उपसंहार किया है।

महाकाव्य 'वैदेहीशविळास' अमर कवि उपेन्द्र भञ्ज की उत्कल-साहित्य को एक बड़ी देन है। भावों के गाम्भीर्य, रसो के परिपाक, भाषा का माधुर्य, छान्दों के

लालित्य, अद्‌भुत शब्दो के विन्यास तथा आलंकारिक शैलियो की दृष्टि मे यह प्राचीन (माध्ययुगीन) उत्कल-साहित्य का एक अनमोल रत्न है। ओडिआ शिल्पकला के क्षेत्र मे जो गौरव 'कोणार्क मन्दिर' को प्राप्त हुआ है, काव्यकला के क्षेत्र मे वही गौरव 'वैदेहीश-विळास' को प्राप्त है। केवल उत्कल-साहित्य मे ही क्या, समूचे विश्वसाहित्य मे इसका स्थान अत्युच्च है—यह सभी कोई मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेगे। महान् कवि का जन्म उत्कल प्रान्त मे न होकर किसी अन्य समुन्नत देश मे हुआ होता तो उनकी कीर्ति विश्वव्यापिनी होती। वे जगद्‌वन्द्य होते।

इस काव्य के छान्द (सर्ग) वहुधा क्लिष्ट हैं। फिर भी इन्होने देहातो के अर्द्धशिक्षितो तथा अशिक्षितो के मनोराज्य को यहाँ तक अधिकृत कर लिया है कि ग्वालवाल के मुख से भी "विवलकु आलिगन" (नवम छान्द) का सहज गान सुनाई पड़ता है।

वैदेहीश-विळास

राग (छन्द)—पाहाडिआ केदार

बन्दइ दी(दि)न-बान्धव हरि[1] ये तम-चक्रखण्डनकारी
सदा कमळानन्दविस्तारी स्वभावे ईन, ये ।
बिभु अनन्त - अंकबिहारी कर प्रताप यार संचरि
निशाचरङ्क उल्लास हरि पूजे सुमन, ये ।
बइनतेय याहा अग्रते स्थित, ये ।
बइकुण्ठ - पक्षक - लोक तोषित, ये ।
बिकाश अखण्डित - मण्डळे सिंह भावरे क्रीडित काळे
भवे तरणि होइ मञ्जुळे गिरि उदित, ये । १ ।

सरलार्थ—(विष्णु के पक्ष में)—गरीबों के बन्धु जिन भगवान् विष्णु ने चक्र से राहु का शिर छेदन किया था (जो शोक-समूह का अथवा अज्ञता का नाश करते है), जो सदा लक्ष्मी के आनन्द-वर्द्धनकारी, जो लक्ष्मीपति याने शोभा के आधार तथा अखिल विश्व के प्रभु है, जो अनन्त नाग पर विहार करते है, अपने भुजवल से जिन्होंने असुरों के आनन्द का

श्लेष व्या०—दीनबान्धव हरि—गरीबों के बन्धु विष्णु भगवान्, दिनबान्धव हरि—दिवस के बन्धु सूर्य; तमचक्र-खण्डनकारी—राहु का जिन्होंने चक्र से छेदन किया था (अज्ञता या शोक के नाशकारी), अन्धकारों के समूह के नाशकारी; कमळानन्द-विस्तारी—लक्ष्मी अथवा कमल के आनन्द-वर्द्धनकारी; स्वभावे ईन—(ईन-लक्ष्मीपति, शोभा के आधार)—प्रकृततः प्रभु तथा सूर्य; अनन्तअंकविहारी—शेषदेव (अनन्त नाग) के क्रोड़ में विहार करनेवाले, गगन में विहार करने वाले; कर-प्रताप-भुज-पराक्रम, किरणों का पराक्रम; निशाचरंक—(निशाचरों का)—राक्षसों का, उल्लुओं

---

१ किसी ग्रन्थ का आरम्भ करने के पहले महाकवि, विना बाधा-विघ्नों के उसकी समाप्ति के लिए मगलाचरण (आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा) करते हैं। उसी परम्परा के अनुसार कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने 'वैदेहीशविळास' नामक महाकाव्य

हरण किया था, जिनकी पूजा देवता करते है, जिनके सम्मुख गरुड सदा प्रस्तुत रहते है, जो विष्णुभक्त लोगों को तृप्ति देते है, जो समग्र ब्रह्माण्ड मे विराजित है, नृसिहावतार मे जिन्होने क्रीडा की थी, ससाररूपी सागर मे जो नौका के समान है, जो नीलगिरि (श्रीक्षेत्र) मे प्रकाशित हुए है, उन्ही विष्णु भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। (१)

(सूर्य के पक्ष मे)—दिवस के बन्धु सूर्य जो अन्धकार समूह का नाश करते है, जो सदा कमल का आनन्द बढ़ाते है, जो 'ईन' (सूर्य) अपनी किरणों से चारो दिशाओ को उज्वल करते है, जिनकी तेज-प्रभा से उल्लुओं का आनन्द दूर होता है, जिनकी पूजा पण्डित करते है, जिनके सम्मुख अरुण सदा विद्यमान हैं, इन्द्र जिनके सहायक है, जिनके दर्शन से लोग सन्तोष लाभ करते है, जो पूर्ण गोलाकार रूप मे विद्यमान है, सिंह राशि में जो एकदा क्रीड़ा करते है, जो प्रत्यह उदयाचल पर प्रकाशित होते है, उन्ही दिनमणि सूर्यदेव की मै वन्दना करता हूँ। (१)

का; सुमन—देवता, पण्डित; वइनतेय—(वैनतेय)—गरुड़, अरुण; याहा अग्रते—जिनके सम्मुख; वइकुण्ठ-पक्षक लोक—विष्णुभक्त लोक, इन्द्र जिनके सहायक; तोषित—आनन्ददायक। अखण्डित मण्डले—समूचे विश्व मे, पूर्ण गोलाकार रूप मे; सिंहभावरे—नृसिह अवतार मे, सिंह राशि मे; तरणी—नौका, तरणि—सूर्य; गिरि उदित—नीलगिरि (पुरुषोत्तमधाम पुरी) में प्रकाशित, उदयगिरि पर प्रकाशित। (१)

वहित येहु रोहितमूर्ति श्रु(सृ)ति-रञ्जनकारक अति,
हस होइण याहा प्रशस्ति अछि प्रवर्ति ये।

सरलार्थ—(विष्णु के पक्ष मे)—जिन विष्णु ने रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था, वेदो मे परमात्मा के नाम से जिन्होने ख्याति प्राप्त की है, जो विराट् रूपवान हैं, जिनके दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण चिन्तन करते है, जो ब्रह्मा से श्रेष्ठ (अथवा कन्दर्प से अधिक रूपवान्)

श्लेष व्या०—रोहित मूर्त्ति—रोहित मत्स्य का स्वरूप, रक्तवर्ण; श्रुतिरंजन-कारक—वेदों के मण्डनकारी, सृतिरंजनकारक—मार्ग के शोभा-वर्द्धक; हस—परमात्मा,

का श्रीगणेश करने के पूर्व श्लेप मे विष्णु तथा सूर्य का नमस्कारात्मक मगलाचरण किया है। प्रथम तथा द्वितीय पद्य मे विष्णु और सूर्य दोनो ही की वन्दना उपलब्ध है। दोनो की वन्दना मे वे ही शब्द विष्णु तथा सूर्य के प्रति भिन्न-भिन्न अर्थ देने लगते हैं। विद्वान् पाठको के मनोरञ्जनार्थ श्लेष पदो एव अन्य देशज तथा संस्कृत शब्दो की व्याख्या आवश्यकतानुसार पद्य के नीचे दी जारही है।

बिराज रूप य़ाहार पुणि द्विजचक्र या दर्शन गुणि,
आत्मभूपर संसारे भणि कि शुभ्रकीर्त्ति य़े।
बुधजनक - शिरभूषण य़ेहि, य़े।
विनयरु ये आन वाणी न कहि, य़े।
बळि याहाकु सर्वदा नाहिं, द्वी (द्वि)प प्रसन्न करता सेहि,
पुनत धर्मस्वरूपग्राही कि स्तुति तहि, य़े । २ ।

है, जिनकी कीर्त्तियाँ शुभ्र है, महादेव शकर जी जिनसे विना विनय के शब्द नहीं वोलते, ब्रह्माण्ड में जिनसे बढ़कर दूसरा कोई बलवान् नही है, जिन्होंने (ग्राह के मुख से रक्षा करके) गज को आनन्द दिया, जो धर्म पर स्थित जन के रक्षक है–ऐसे विष्णु भगवान् की स्तुति किन शब्दों मे करूँ ? (२)

(सूर्य के पक्ष में)–जो सूर्य रक्तवर्ण मूर्ति धारण करते है, जो मार्ग की शोभा बढ़ाते है, जिनका नाम हस है, जिनके विराजमान (प्रकाशमान) रूप के दर्शन के लिए चक्रवाक सर्वदा उत्कण्ठित रहते हैं, जो श्रेष्ठ ब्रह्म के नाम से ख्यात है, जिनकी किरणे बडी शुभ्र हैं, पण्डित लोग जिनसे सदा विनय करते है, जिनसे वढकर तेजस्वी और कोई नही है, जो सप्तद्वीपों के प्रकाशक (उज्वलकर्त्ता) है, फिर जो 'धर्म' नाम से अभिहित है, ऐसे सूर्यदेव की स्तुति किस प्रकार करूँ ? (२)

सूर्य; विराज रूप—विराट रूप, विराजमान रूप; द्विजचक्र—ब्राह्मणसमूह, पक्षी चक्रवाक; आत्मभू—ब्रह्मा, कन्दर्प; पर—श्रेष्ठ; बुधजनक (चन्द्र)—शिरभूषण—चन्द्र जिनके शिर पर भूषित अर्थात् महादेव, बुधजन—पण्डित व्यक्ति, शिरभूषण—शिरोमणि; द्विप—हाथी, द्वीप—सप्तद्वीप; धर्मस्वरूपग्राही—धार्मिक के रक्षक, जो धर्म नाम से अभिहित । (२)

बिष्टरश्रवा ब्रह्माण्डेश्वर परम पद भजिला नर,
लभे, ए घेनि ग्रन्थ आद्यर भावित तांकु, य़े ।

सरलार्थ–जगत्कर्ता विष्णु को भजने वाला व्यक्ति बैकुण्ठ लाभ करता है। और सूर्य देवता से सूर्यवंश का उद्भव हुआ है। इसलिए विष्णु तथा सूर्यदेव की स्तुतियाँ करके ग्रन्थ का श्रीगणेश करूँगा–इसी विचार से दोनों देवों की स्तुतियाँ की है। हे बुद्धिमान् पण्डितो ! मेरा

विष्टरश्रवा—विष्णु; परमपद—वैकुण्ठ, भजिला—भजने वाला; लभे—प्राप्त करता है; ए घेनि—यह लेकर (इस लिए); आद्यर—आरम्भ में; भावित तांकु—

वश याहारठारु उत्पत्ति कवि विचारे से देवे स्तुति,
विधान करि अति सुमति आण मनकु, ये ।
वर्ण अभंग-सभगरे ए श्लेष, ये ।
बुझ स्थान-स्थानके करि प्रकाश, ये ।
वळाइ चित्त अनवरत भाग्ये ग्रहण तारक मन्त्र,
सीता-श्रीराम-चरित-गीत कृते लाळस, ये । ३ ।

अभिप्राय मन मे लाओ । वर्णो के, अभग तथा सभग, दो–अर्थबोधक श्लेप अलकारो मे मैने ये स्तुतियॉ प्रकाश की । हमेशा कविता लिखने की ओर मैने रुचि वढाई थी । सौभाग्य से 'राम तारक मन्त्र' ग्रहण किया । उसी मन्त्र के प्रसाद से मुझ मे कवित्व की स्फूर्ति हुई । इसलिए सीता-श्रीराम-चरित-सबन्धी गीत लिखने की मन मे अभिलाषा हुई । (३)

उनकी स्तुति करता हूँ; याहारु ठारु—जिनसे; से देवे—उन देव को; सुमति—बुद्धिमान; आण—लाओ; ए-यह; बुझ-समझो; वलाइ चित्त—मन में अभिलाषा करना; (३)

वाल्मीकि, व्यास कवि यहिरे महाकाव्य के पुराण करे,
महानाटक बातसुतरे हेले रचिता, ये ।
बिहिले काव्य ये कालिदासे चम्पू-रचना भोज नरेशे
कृपासिद्धा ए गीत प्रकाशे छाड़िलि चिन्ता ये ।
बिवेकहि उदय एमन्त ध्यायि, ये ।
व्योमे तारका येबे झलकुथाइ, ये ।
बिभावरीरे ज्योतिरिगण— गण ज्योतिकि देखान्ति पुण
सुजने सावधानरे शुण छान्द रचइ ये । ४ ।

सरलार्थ–जिन राम-सीता के वृत्तान्त पर वाल्मीक 'रामायण', व्यासदेव 'अध्यात्म रामायण', हनुमान् 'महानाटक', कालिदास 'रघुवश' भोजराज 'चम्पू', सिद्धकवि वलराम 'दाण्डि रामायण' आदि ग्रन्थो की रचना कर चुके है, मै उनके वारे मे और क्या अधिक लिखूँ, यह सोचकर मै सकुचा रहा था । परन्तु यह ध्यान मे लाकर कि रात मे आकाश पर तारो के चमकने पर भी जुगनू सब अपनी-अपनी ज्योति दिखाते है, मुझमे विवेक का

यहिँरे—जिससे; के—कोई; करे—करते है; हेले—हुए, विहिले-विधान किया;

उदय हुआ। मैंने संकोच त्याग कर यह ग्रन्थ रचना करने की ओर ध्यान दिया। हे सुजनो ! सावधानी से सुनो। (४)

घेवे—जब; झलकुथाइ—झलकते है; पुण—फिर शुण—सुनो; बावसुत—हनुमान (कवि); (४)

बिद्युतकेश वंशरे जात, सुमाळी माळी ये माल्यवन्त,
स्वर्ग लुण्ठने अहि-अहित[1] धिआन करि, ये।
बिधु-समरे[1] ज्योति ज्वळित विधु-समरे[2] हेले आगत
से आरोहित अहि-अहित[2] गदाब्ज धरि, ये।
बजाइण शंखारि[1] करेण घात, ये।
बध कले शंखारि[2] द्वितीय भ्रात, ये।
बड़भी लभि पाताळे लुचि लंका[1] बड़भिपुरकु मुञ्चि
लंका[2] ये दण्डपाणिरे रचि भय येमन्त, ये। ५।

सरलार्थ—विद्युत्केश नामक राक्षसवश में सुमाली, माली और माल्यवन्त के नामों से तीन पुत्र पैदा हुए थे। उनके स्वर्ग लूटने पर इन्द्र ने विष्णु का ध्यान किया। ज्योत्स्नासम प्रभामय विष्णु इससे क्रुद्ध हो अपने आयुध गदा-पद्म धारण किये गरुड पर आसीन होकर देवासुर-समर मे आविर्भूत हुए। उन्होने चक्राघात से माली और माल्यवन्त—दो राक्षसो का निधन करके शंखनाद किया। यह देखकर सुमाली डर के मारे लकागढ का त्याग कर पाताल मे जा छिपा, जैसे विटपी स्त्री राजभय से छिपती है। (५)

हेले—हुए; से—वे (उन्होने); धरि—धारण करके; वजाइण—बजाकर; कले—किया; लुचि—लुक (छिप) कर; मुञ्चि—छोड़ कर; येमन्त—जैसा; अहि-अहित[1]—वृत्रासुर का अहित करने वाले इन्द्र; विधु समरे[1]—चन्द्र के समान; विधु समरे[2]—देव-युद्ध मे; अहि-अहित[2]—(अहि नाम सर्प उसका अहित करने वाला) गरुड; गदाब्ज—गदा-पद्म; शंखारि[1]—शंख—चक्र; शंखारि[2]—शंख राक्षस के शत्रु (विष्णु); वड़भी—वड़ा भय; वड़भिपुर—चन्द्रशाला गृह; लंका[1]—लंकापुरी; लंका[2]—विटपी स्त्री; (५)

वाहार पुण्यजने[1] होइले विहार पुण्यजने[2] विहिले
रञ्जन पुण्यजन[3] कुबेरे से दीप्तिमान, ये।

सरलार्थ—राक्षस लोग लंकापुर से निकल गये, उत्तम लोगो ने वहाँ आकर विहार किया। यक्षो के साथ कुवेर के वहाँ रहने पर लंकानगर

वास नगर पाश नगर नगरतळे करि सत्वर
जगत - तात - सुत कुमर कले से स्थान, ये।
वहु समय अन्ते एहि प्रकारे, ये।
वार्त्ता पाइ सुमाळी एमान चारे, ये।
विश्रवा ऋषिर सन्निधिकि नेला दूहिता रसनिधिकि
शोभारे करे से धिकि धिकि नारीमातरे, ये। ६।

ने अशेष शोभा धारण की। नगर के पास सुवल पर्वत के नीचे एक वृक्ष के मूल को अच्छा स्थान समझ कर विश्रवा ऋषि ने वहाँ अपना आश्रम वनाया। कुछ दिनो के वाद सुमाली, दूतो से इन समाचारों का पता लगा कर शृगार रस की निधि अपनी दुहिता (निकषा) को लिये विश्रवा ऋषि के यहाँ पहुँचा। वह कन्या अपनी शोभा से नारी मात्र को धिक्कारती थी। (६)

वाहार होइले—निकल गये; पुण्य जने[1]—राक्षस लोग; पुण्यजने[2]—उत्तम जन; पुण्यजन[3]—यक्षगण; वासनगर—लंकापुर; पाशनगर—पास के नग (पर्वत) के (लोग); नगर तले—वृक्ष के मूल में; जगत-तात-सुत-कुमर—जगत्पिता ब्रह्मा के सुवन पुलस्त्य के सुत विश्रवा (रावण के पिता); नेला—लिया; (६)

वांके अनाइँ अंके पकाइ से पंकेरुह शरकु नेइ
शंके मदन आतंके तहिं मुनि उत्तम। ये।
वोले सुन्दरी, कोळे मो बस तुले मज्जि तो होइवि तोष
भुले तो रूपे मोर मानस प्रकाश प्रेम, रे।
वामा ओळगि सनमन कराइ, ये।
वह्नि साक्षिरे विभा भाव वढाइ, ये।

सरलार्थ—उस कन्या (निकषा) ने टेढ़ी नजर से ऋषि की ओर देखा और कन्दर्प के शरतुल्य अपने पद्म-नेत्रों से उनकी ओर कटाक्षपात किया। मुनिश्रेष्ठ विश्रवा कामदेव के भय से भीत हो वोले, "हे सुन्दरि! मेरी गोद मे वैठो। तुम्हारे रूप से मेरा मन विभोर हो गया है। प्रेम प्रकाश करो।" वामा ने प्रणामपूर्वक अपनी सम्मति प्रकट की। अग्नि देवता की साक्षी में दोनों का विवाह सपन्न हुआ। सन्ध्या के समय दोनों सुरति-रस मे मग्न हुए। निकषा तो राक्षसी ही थी। फलस्वरूप, उसके

बेगे सुरत रत सन्ध्यारे सन्ध्यामट्टी से तार गर्भरे
'जात होइले रक्ष शरीरे सुततनयी, ये । ७ ।

गर्भ से ठीक समय पर राक्षस-शरीरों में पुत्रों और कन्या का जन्म हुआ। (७)

बाँके अनाईं—कटाक्ष किया; पकाइ—डाल कर; नेइ—लेकर; कोले—गोद में; ओलगि—प्रणाम करके; सन्ध्यामट्टी—राक्षसी; (७)

बिशतिभुज दशाननरे कि दशा देब देव किन्नरे,
नर नागरे धरणी थरे हेउँ पतन, ये ।
बिकट रूप प्रकट अति रकत परा व्यकत कान्ति
घटण घट-सदृश श्रुति भैरव स्वन, ये ।
बधिरता निकट शुणिला जन, ये ।
बिगत ये भीषणे तिनि नन्दन, ये ।
बोलाइले से दशवदन कुम्भ-श्रवण ये विभीषण
नन्दिनी सूर्पणखार नख सूर्प समान ये । ८ ।

सरलार्थ—निकषा के गर्भ से सर्वप्रथम बीस भुजा तथा दशमुख वाला एक पुत्र भूमिष्ठ होते ही, 'वह देव, किन्नर, नर तथा नाग लोगो की क्या गति करेगा' ऐसा सोचकर धरणी कॉप उठी। उसके बाद अति भयकर रूप, रक्तवर्ण-कान्ति तथा घट सदृश कान धारण किये द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके गर्जन से निकट के लोग बहरे हो गये। एक तृतीय पुत्र, जो भय-रहित (सुन्दर) था, पैदा हुआ। वे क्रमश. दशानन, कुम्भकर्ण तथा विभीषण के नाम से विख्यात हुए। जो कन्या उत्पन्न हुई, उसके नाखून सूप जैसे थे, इसलिए उसका नाम सूर्पनखा पड़ा। (८)

देव—देगा; थरे—कॉपने लगी; शुणिला जन—सुननेवाले लोग; (८)

बृद्धि यतन दिनकु दिनु, गिरिसमरे दिशिला तनु,
गिरीषमरे ए अनुमानु नुहइ आन, ये ।
बिशाळ महाशाळ कि कर, सानु समाने उन्नत शिर,
कृशानुपरि तेजनिकर ज्वळित घेन, ये ।

सरलार्थ—लड़के यत्न से दिनो दिन बढ़ने लगे। उनके शरीर ग्रीष्म ऋतु के पर्वतों की तरह दीखने लगे। यह अनुमान से भिन्न नही। उनके हाथ महाशालवृक्षो की तरह विशाल हुए, शिरो ने पर्वतो की चोटियो

विद्यमान　क्रोटर　तथा　लोचन,　ये ।
बर्द्धमान　करता　जीव　शोचन,　ये ।
बुलिले　पुरे　पुरे　स्वच्छरे　　मातिले नाना　द्रव्य भक्ष रे
गला　द्वादश　सम्बत्सररे ये कुम्भकर्ण,　ये । ९ ।

तथा नेत्रो ने गुफाओ का आकार धारण किया और शरीरो का तेज आग के समान चमक उठा। उन्होने सव प्राणियो का शोक वढ़ाया। मन-माने ढग से चारो ओर घूमकर नाना द्रव्य भक्षण किये। इसी तरह बारह वर्ष बीत गये, उसके बाद कुम्भकर्ण ने-(९)

दिशिला—दीखे; नुहइ—नही है; आन—दूसरा; सानु—सीग; घेन-ग्रहण करो; कोटर—गुहा; बुलिके—घूमे; मातिले—मदमाते; गला—बीत गया; (९)

बहुत　जनजीवन　नेइ　　उत्तरकुरु - प्रदेशे　याइ
उत्तर क्रूरतर न सहि इन्द्रे न मानि,　ये ।
बज्रघातकु　मणि　इतर　　उत्पाटि दन्त ऐरावतर
प्रहारे　मोह　सुरईश्वर　पळाइ　घेनि,　ये ।
विभीषण　पक्षरे　द्वन्द्व　रचित,　ये ।
बप्ताश्वशुर - स्थाने　दशास्य　गत,　ये ।
विरोजामण्डल　रे　तपस्या　　जगज्जय रे करि मनीपा
अशनहीने दिवस निशा काळ बञ्चित, ये । १० ।

सरलार्थ—[इसके अनन्तर कुम्भकर्ण ने] मार्ग पर वहुत जनो तथा प्राणियो का विनाश करके स्वर्ग मे जाकर नाना उपद्रव मचाये। इन्द्र को न मानकर उनसे कटु शब्द कहे। इन्द्र के वज्र-प्रहार को तुच्छ समझा और ऐरावत हाथी के दाँतो को उखाडकर उनसे इन्द्र को पीटा, जिससे इन्द्र मूर्च्छित हो गये। ऐरावत उन्हे ले भागा। विभीपण ने यक्षलोक मे युद्ध छेड दिया। रावण पातालपुर की विजय के लिए गया। इस प्रकार तीनो भाई तीन पुरो मे युद्ध समाप्त करके जगज्जय करने की इच्छा से विरजादेवी के पीठ-स्थान में निराहार दिन-रात तपस्या करने लगे। (१०)

नेइ—लेकर; उत्तर कुरु—स्वर्ग; याइ—(जाइ) जाकर; मणि—समझ कर; सुरईश्वर—इन्द्र; पलाइ घेनि—ग्रहण करके (लेकर) भाग गया; बप्ताश्वशुर—पिता विश्रवा की ससुराल, सुमाली का वासस्थान (पाताल); दशास्य—रावण; मनीषा—इच्छा; (१०)

विखन भाल लेखनवर्ण मुण्ड प्रचण्डानळे दहन
करिण कला ज्येष्ठ पठन कष्ट अत्यन्त, ये ।
बल्लकी रचि भुज मूर्द्धारे से दण्ड तुम्वी भावे श्रद्धारे
धमनी गुण करि वेधारे विनयी गीत, ये ।
वाउँ गाउँ होइले आसि प्रसन्न, ये ।
वर कामना पूर्णे कले प्रदान, ये ।
वर्त्तिबु युग छपन गण्डा बरणी हेव ब्रह्माण्डे खण्डा
सीताहरण निश्चें मरण कारण जाण । रे । ११ ।

सरलार्थ–ज्येष्ठ रावण ने अपने शिरो को प्रचण्ड अनल मे आहुति देते समय अपने ललाट-पट पर विधि-अकित अक्षरो को बड़े कष्ट के साथ पढ़ा । [अपने भाग्य मे अच्छाई नही–यह जान कर] उसने अपनी एक भुजा को वीणा का डंडा, मुण्ड को तुम्बी तथा शिराओ (नाडियों) को तार बनाकर उसी वीणा से विनय के साथ ब्रह्मा जी का स्तव-गान किया । प्रसन्न हो ब्रह्मा ने आकर कहा, "तू ५६ (छप्पन) गण्डा (अर्थात् ४×५६) युगो तक जीवित रहेगा । तेरी तलवार सारे जगत मे पूजा पायेगी । (अर्थात् तू जगज्जयी होगा ।) परन्तु सीता का हरण तेरी मौत का कारण होगा–यह याद रख ।" (११)

विखन—विधाता; बल्लकी—वीणा; वेधारे-ब्रह्मा के प्रति; बाउँ गाउँ—बजाने तथा गाने से; बर्त्तिबु—(तू) जीवित रहेगा; गण्डा—चार सख्या का समूह; बरणी हेब—वरणीय (पूजनीय); खण्डा—खड्ग; (११)

वेभारे सीता बहु योषिता ये होइथिव जनकसुता
बहुत राम परकाशिता ये दाशरथि, ये ।
वाग्देवी आसि वसिले गले कुम्भकर्णर वरद काले
निद्रा मुँ शिवि वोलि चपळे मागिला तथि, ये ।

सरलार्थ–ससार मे सीता नाम की बहुत स्त्रियाँ हो सकती है तथा राम नाम के वहुत व्यक्ति भी हो सकते है । इसलिए रावण का सन्देह दूर करने के लिए ब्रह्मा जी ने वताया, "जो सीता जनक की कन्या होंगी, उन्ही का हरण करने से दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र तेरा वध करेंगे । कुम्भकर्ण को वर देते समय सरस्वती आकर उसके कण्ठ मे वैठी । अत: उसने शीघ्रता से "मै सो रहूँगा" यह वर माँग लिया । यह सुनकर ब्रह्मा

वत्सरक न पूरु उठिवु येवे, रे ।
वध अवश्य हेव तोहर तेवे, रे ।
विष्णु - भकत होइ अमर जगत मध्ये कर विहार
गत पद्मज देइ ए वर सानुजे जवे, ये । १२ ।

ने वरदान दिया, "एक वर्ष के पूर्ण होने के पूर्व यदि तू जगेगा, तो तेरा विनाश अवश्य होगा ।" "विष्णुभक्त व अमर हो, जगत में तू विहार कर"—यह वरदान छोटे भाई विभीषण को देकर ब्रह्मा जी जल्दी वहाँ से चले गये । (१२)

बेभारे—जगत मे; योषिता—स्त्रियाँ; निद्रा मुं यिवि—मैं सोने को जाऊँगा; वत्सरक······· तोहर तेवे—एक वर्ष पूर्ण होने से पूर्व (निद्रा से) यदि तू उठेगा तो तेरा वध अवश्य होगा; पद्मज—ब्रह्मा; सानुजे—विभीषण को; (१२)

बाहुड़ि तहुँ पाताळे राजि निकषात्मज पुञ्जकु साजि
वेढ़िले लंका कुवेर तेजि गला से पुर, ये ।
विमाने[1] नेला सर्व सम्पत्ति वि-माने[2] यथा गगने गति
से मनोरथ रथ प्रापति इच्छि समर, ये ।
विश्वे उत्कट प्रभा प्रकट करि, ये ।
विधुन्तुद विधुकु ग्रासिला परि, ये ।
विश्वकेतुरे होइ अदम्भा शोभा-आरम्भा रम्भा सुरम्भा-
उरुकु हरि होइला विभा मयकुमारी, ये । १३ ।

सरलार्थ—वे तीन भाई ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के बाद वहाँ से लौट पातालपुर मे प्रविष्ट हुए । असुरों को इकट्ठा करके लंका नगरी पर चढाई की । कुवेर पुष्पक यान पर बैठ सारी संपत्ति साथ लिये लंकापुरी छोड गये, जैसे चिड़ियाँ आसमान पर उड जाती है । रावण मनचाही गति करने वाले पुष्पक विमान को प्राप्त करने के उद्देश्य से कुवेर से लडने के लिए गया और बलात् उनसे विमान छीन लाया । भयंकर तेज प्रकाश करके सारे संसार को उसने ग्रस डाला (जीत लिया) जैसे राहु चन्द्रमा को ग्रसता है । कन्दर्प-पीडा से कातर हो उसने परमासुन्दरी

वाहुडि (बहुरि)—लौट कर; तहुँ—वहाँ से; निकषात्मज पुञ्जकु—असुर गण को; वेढिले—घेर लिया; विमाने[1]—पुष्पक विमान मे; वि-माने[2]—पक्षी के समान; विधुन्तुद—राहु; विश्वकेतु—कन्दर्प; अदम्भा—दम्भहीन, कातर, शोभा आरम्भा—

रम्भोरुविशिष्टा रम्भा अप्सरा को हरण किया। फिर रावण ने मयदैत्य-कन्या मन्दोदरी से विवाह किया। (१३)

सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी; सुरम्भा उरुकु—उत्तम कदली वृक्ष के समान जंघा वाली; मयकुमारी—मय दानव की कन्या मन्दोदरी; विभा—विवाह; (१३)

वृषसदृश सुरभिआळी गोष्ठ कोष्ठिरे कला से केळि
प्रजापतिक समाने झळि अनेक सुत, ये।
वर्णिबा किस ज्येष्ठकुमार जात रड़िकि शुणि कुमार
छाडि से मेघनाद उपर पड़ि अचेत, ये।
बळे मेघनादरु ताहार स्वन, ये।
वहे से मेघनाद नाम प्रधान, ये।
वन-वेष्टित स्थानरे रहि सिह-शार्दूळ बळिष्ठे होइ,
वइरि-मृग-पिशित ध्यायि आउ नन्दन, ये। १४।

सरलार्थ—रावण ने गृह में सुन्दरी स्त्रियों से केलि (रति) की, जैसे सॉड गायो के गोठ मे केलि करता है। उसी हेतु प्रजापति (ब्रह्मा) के समान दीप्तिमान् पुत्र सब पैदा हुए। उन पुत्रो की कथा का क्या वर्णन करे! ज्येष्ठ पुत्र के जन्म-समय के गर्जन को सुनकर कुमार (कार्त्तिकेय) मोर की पीठ पर से नीचे गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उसका गर्जन मेघ की ध्वनि से बढ जाने से उसका प्रधान नाम मेघनाद हुआ। अन्य पुत्र सब सिह-व्याघ्रो की तरह बलवान् हुए और शत्रु-रूपी मृगों के रक्त-मांस का ध्यान करके जल से घिरी लकापुरी में रहे। (सिह-व्याघ्र, मृग-मांस खाने की आशा से वन अर्थात् जगल मे रहते है—यह स्वाभाविक है।) (१४)

कला से केलि—उसने केलि की; गोष्ठरे—समूह में; कोष्ठिरे—गृह में; झळि—दीप्तिमान; रड़िकि—गर्जन को; वनवेष्टित—जल (या जंगल) से घिरी हुई; आउ—और; (१४)

बाम कररे होइण बाम वामदेवर गिरि कुसुम,
परि उत्पाटि धरणे क्षम हेबाकाळर, ये।

सरलार्थ—रावण प्रतिकूल होकर जब अपने बाये हाथ से शिवजी के पर्वत कैलास को फूल के समान उखाड कर पकडने को उद्यत हुआ, तब भय से महादेव ने रावण से अपनी तुलना करके कहा, "मै ईश्वर हूँ, यह

वाहार दरवशे ए स्वर ईश्वरठारु रावणेश्वर,
देखिले पञ्चद्विगुण शिर से वहिबार, ये ।
विशेपत देखिले ईक्षण कर, ये ।
विळासकु दैत्यर स्वर्णनगर, ये ।
बिलोकि रौप्यनगरे स्थिति उपुजि याइ ए ऊणा भीति
भोगत वेनिजने विभूति आन प्रकार, ये । १५ ।

रावणेश्वर है, मेरे पाँच वदन (मुख) है, इसके दस वदन है, मेरे पन्द्रह आँखे है, इसके बीस, मेरे दस हाथ है, पर इसके बीस, मेरा वासस्थान रौप्य-पर्वत (कैलास) है, पर इसका सुवर्णमय लकापुर । हम दोनो विभूति का भोग करते है, परन्तु भिन्न प्रकार याने अर्थो मे—मेरा भोग विभूति अर्थात् भस्म है, उसका भोग विभूति अर्थात् विशेप ऐश्वर्य है । अतएव मै उससे सब गुणो मे हीन हूँ ।" (उनके मन मे यह भय उत्पन्न हुआ ।) (१५)

कुसुम परि—फूल के समान; दरवशे—भय के कारण; ईश्वरठारु—महादेव से; वेनि जने—दोनो जनो को; विभूति—भस्म तथा विशेप ऐश्वर्य; (१५)

वारिराशि ए तरळ-तर अधीर थिला अति मातर,
याहा प्रतापे होइ कातर से तरतर, ये ।
व्याकुळ जात पाञ्च-पाञ्चर आम्भे स्वभावे एहा आहार,
वेनि घेनिले हृदभितर एहि विचार, ये ।
वाहि न पुण याइ मीनकु खाइ, ये ।
वड विशतिभुज वहिबा चाहि, ये ।
वन्धुभावरे से शान्ति कान्ति नामे समर्पि दिव्य युवती,
स्वनाम कले कोपे ता स्थिति रत्नकु देइ, ये । १६ ।

सरलार्थ—समुद्र सब अतिशय तरल है, इसलिए पहले उनकी लहरे कुछ चञ्चल थी । परन्तु अव रावण के प्रताप से अत्यन्त भीत होने के कारण वे सब चञ्चलतर हुई है । उनमे से पाँच समुद्रो (इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि और दुग्ध) ने सोचा, "हम स्वभावत इसके भक्ष्य पदार्थ है, वह (रावण) हम सवको कही खा न जाय ?" यह सोचकर उनको भय हुआ । दोनो समुद्रो (लवण व जल) ने मन मे विचार किया, "यह (रावण) मछलियो को खाने की आशा से हमारे जल को उछालकर कही हमको सुखा न दे ।" ऐसा विचार करके सवने शान्ति व कान्ति नाम की

दो परमासुन्दरी कन्याओ को उसे समर्पण किया और बहुत रत्न दान करके उसके भण्डार को अपने नामानुरूप अभिहित किया। (अर्थात् उसके भण्डार को 'रत्नाकर' नाम दिया।) (१६)

वारिराशि—समुद्र; थिला—था (थे); तरतर—चंचलतर; आम्भे—हम; एहा—इसके; चाहिं—देखकर; (१६)

वहु कृपाण साधन करे छेदन शका जम्बु प्लक्षरे,
आरम्भ होमकर्म कुशरे वहन भीति, ये।
बाटुळि धरु क्रौञ्च चमके भोजनकाळे भयद शाके
शयने तूळीकरणे शंके शाल्मळी निति, ये।
बिहुँ देवपूजन पुष्करे भय, ये।
बळे उपाडि नेब होए उदय, ये।
बिभोग कर प्रतापे कर करइ हेळे प्रजा आकार
पृथ्वीमण्डळ राजानिकर महादुर्ज्जय, ये। १७।

सरलार्थ-अस्त्रसाधना के लिए (रावण के) तलवार पकड़ते ही जम्बुद्वीप तथा प्लक्ष द्वीपो ने शका की कि कही यह हमको जामुन व पीपल के पेड समझकर काट न दे। उसके होम अनुष्ठानारम्भ को देखकर कुश द्वीप को भय हुआ–कही मुझे कुश समझकर यह होम कार्य मे लगा न दे। लक्ष्यभेद सीखते समय गोला पकड़ने से क्रौञ्च द्वीप ने भय से चौंककर सोचा–कही मुझे वगुला समझकर यह मार न दे। उसके भोजन के समय शाकद्वीप को भय हुआ–कही रावण मुझे साग समझकर खा न जाय। शयन के समय शाल्मली द्वीप ने सशक सोचा–कही मुझे रावण सेमल की रुई समझ कर सेज न वना ले। देवपूजा के समय पुष्कर द्वीप को भय हुआ कही मुझे वह कमल समझकर न उखाड़ ले। भूमण्डल मे जितने भी राजा थे, उन सबको प्रजा वनाकर अपने भुजबल से रावण ने उनसे राजस्व वसूल किया और इस प्रकार विशेष भोग किया। वह सब से अजेय हो कर सुख भोगने लगा। (१७)

बहुँ—वहन करते ही; बाटुळि—(वर्त्तुल शब्दज) धनुष पर रख कर मारा जाने वाला लोहे का गोला; चमके—चौंक उठा;

श्लेष—जम्बु, प्लक्ष, कुश, क्रौञ्च, शाक, शाल्मली, पुष्कर आदि, द्वीपो के नाम है। इनके श्लेष-अर्थ क्रमशः जामुन, पीपल, कुशा, बगुला, शाक (साग), सेम्हर (की रुई) तथा कमल है। सरलार्थ देखिए। (१७)

वन्दी वळीर फेड़ने य़ार भरसाकृत रसातळर
कोटिए सिंह वळ वाळिर धरणे इच्छि, ये ।
विकळभाव नोहिला लव पाइ निविड़ भिड़ प्राभव,
केमन्त मल्ल कोविदे भाव तुल कि अछि, ये ।
वाहुँ, सहस्रभुजे होइला वादी, ये ।
वहिवारु पालटि नर्मदा नदी, य़े ।
वन्धने पड़ि खड्गे न छिड़ि, अनळयोगे न गला पोड़ि,
जळे न वुड़ि संशय छाड़ि वरे प्रमोदि, ये । १८ ।

सरलार्थ—उसके वाद रावण ने साहसपूर्वक पाताल मे जाकर वामन द्वारा वदी वनाये हुए वलि को मुक्त कराने के लिए वहुत चेष्टा की । फिर करोड सिंहो के वलवाले महावीर वालि को पकड़ने को गया । उससे वहुत पराभव पाने पर भी उसे तनिक भी कष्ट का अनुभव नही हुआ । इस प्रकार वह पृथिवी मे कैसा अद्वितीय वीर था, हे पण्डितो! मन मे विचार करो तो । सहस्रार्जुन के अपनी पत्नियो के साथ नर्मदा नदी मे जलक्रीड़ा करते समय, नदी की गति रुद्ध होने पर, रावण ने उससे भी दुश्मनी की । सहस्रार्जुन ने इससे क्रुद्ध होकर उसे कैद किया, उसके प्राण-नाश के लिए उसपर तलवार से आघात किया, उसे आग मे फेका और जल मे डुवाया । तिस पर भी रावण की मृत्यु नही हुई । यह देखकर सहस्रार्जुन के मन से इस वात का सन्देह दूर हुआ कि यह व्रह्मा जी के वरदान से कभी मरेगा नही । (१८)

भरसाकृत—साहसपूर्वक; विकलभाव नोहिला लव—जरा भी कष्ट नहीं हुआ; प्राभव—पराभव; केमन्त मल्ल !—कैसा वीर !; तुल कि आछि ?—कौन उसके बरावर है ? (१८)

वेदमतीरे मति वळाइ देला से कन्या तनु जळाइ
मो हेतु मृत्यु ए शाप पाइ तहुँ चपळे, ये ।
वोलि मर्कट निन्दि नन्दीरे आनन्द हरि तळप्रहारे
वोले से हेउ प्राभव तोरे वानरे नरे, ये ।

सरलार्थ—वेदमती नाम्नी एक कन्या (जिसने लक्ष्मी के अंश से गन्धर्ववंश में जन्म ग्रहण किया था) विष्णु भगवान् को स्वामी के रूप मे पाने की अभिलाषा से तपस्या कर रही थी । उसके रूप-लावण्य से मुग्ध

बधिला अनरण्ये अयोध्यापुरे, ये।
वराहवरे अति माया युद्धरे, ये।
वंशे मो नाश यिबु अवश्य नर अवज्ञा कलु राक्षस,
कहिला तहि सेहि महीश हतकाळरे, ये। १९।

हो रावण ने नाना अत्याचार पूर्वक उसके सतीत्व का नाश किया। उस कन्या ने शाप दिया, "मेरी ही वजह से तेरी मृत्यु हो।" यह शाप दे आग मे कूदकर उसने प्राण छोड़े। शाप-प्राप्त रावण चचलता से वहाँ से कैलास की ओर गया और शकर जी के द्वारपाल नन्दी को 'बन्दर' कहकर उन्हे एक तमाचा मारा। इस हेतु नन्दी ने उसे शाप दिया, "बानर-सेना के ही द्वारा तेरी पराजय हो।" फिर अयोध्या के राजा अनरण्य का माया-समर के द्वारा वध करने पर, मरते समय राजा ने कहा—"रे राक्षस! तूने मुझे मनुष्य समझकर मेरा अपमान किया है। सुतरां मेरे ही वश में कोई जन्म लेकर तेरा वध करेगा।" (१९)

मति बलाइ—मन लुभा कर; नाश यिबु (जिबु)—(तू) मारा जाय गा; तळप्रहारे—तमाचे से; बराहवरे—प्रधान युद्ध में; (१९)

बिबुधाळय आभीरग्राम परि सुरभी लुण्ठने क्षम
सुमनब्राजे से दण्ड क्रम क्रमशे देइ, ये।
बान्धिला अधिकारीकि सुत याहा आज्ञारे से इन्द्रजित
शाढ़ी पाइला जगततात विधिरे तहिं, ये।
बलिसद्म पक्वण प्रायक कला, ये।
बाजुँ टमक ताकु चमक देला, ये।

सरलार्थ—रावण ने स्वर्ग को ग्वालों का ग्राम समझकर कामधेनुओं को लूटा और देवताओ को ग्वाल समझकर बहुत दण्ड दिया। उसके पुत्र मेघनाद ने पिता की आज्ञा से अमराधिप इन्द्र को बाँध लिया। इसलिए ब्रह्माजी से उसे 'इन्द्रजित्' की पदवी मिली। दुष्ट रावण ने पातालपुर को शवरपल्ली[1] के समान नष्ट कर दिया। उसके नगाड़े की आवाज सुनकर सब नाग, शवरो[1] की तरह चौक उठे। उस स्थान के गर्वी श्रेष्ठ नागों ने गुप्त स्थानों पर छिप कर प्राण-रक्षा करने की कोशिश की।

१ शवर नाम की एक प्राचीन जगली जाति। राम की भक्त शबरी इसी जाति की थी।

वञ्चिले लुचि से मदभर नागेशवर गोप्य स्थानर
मणि - दिहुडि देखाइवार सम्मति हेला, ये । २० ।

परन्तु उनके फनो पर की मणियो ने मशालो की तरह जलकर उन्हे पहचनवा दिया । इसलिए अनन्योपाय (लाचार) होकर नागो ने रावण का लोहा माना । शर्त यह रही कि वे रावण को अन्धकार मे मणियो-रूपी मशाल दिखाकर उसकी सेवा करेगे । (२०)

विवुधाळय—स्वर्ग; आभीरग्राम—अहीरो का गाँव; सुरभी—कामधेनु; सुमनव्राज—देवसमूह; शाढी पाइला—साड़ी, (यहाँ पद्वी) पाई, प्रायक कला—की तरह किया; वळिसद्म—पाताल, पववण—शवरो की नगरी; वाजुं—वजते ही; वञ्चिने लुचि—छिप कर प्राण बचाने का यत्न किया; मदभर नागेशवर—गर्वित नागसमूह; दिहुड़ि—मशाल; (२०)

वइजयन्ती[१] याहा जगति वइजयन्त[२] चञ्चळे भीति
मोते ए वान्धि नेवाकु गति करे नभरे, ये ।
विकर्त्तनर रथ हावोडि भगने मध्यगगन छाड़ि
वेनि अयन चळने जडि चित्त निर्भरे, ये ।
वृथा ए कथा नोहे वुझ विचारि, ये ।
वोलाइछि से मेघदण्ड पाचेरी, ये ।
बइरिपूग दुर्गम दुर्ग यहिँ परिखा सागर आग
एपरि होइ पाताळ स्वर्ग से धिक करि, ये । २१ ।

सरलार्थ—रावण के प्रासाद की पताका इतनी ऊँचाई पर चंचलता से फहर रही थी कि इन्द्र के प्रासाद को भय हुआ—'क्या मुझे बाँध लेने के लिए यह आकाश पर गमन कर रही है ? सूर्य भी आकाश मार्ग मे जाते समय यह भय करके कि कही अपना रथ रावण के प्रासाद से टकराकर टूट न जाय, मध्य गगन-मार्ग को छोड उत्तरायण और दक्षिणायण करके निश्चिन्त हुए । (हे पण्डितो !) विचार करके समझो, यह झूठ नही । रावण के प्रासाद के प्राचीर (परकोटे) इतने ऊँचे है कि मेघ-आकाश पर चलते समय उनसे टकराकर नष्ट हो जाते है । इसी हेतु वे प्राचीर 'मेघदण्ड प्राचीर' कहलाते है । गढ की परिखा के रूप मे सागर चारो ओर घेरे है । इस प्रकार शत्रुओं से दुर्भेद्य लंका प्रथम स्थान प्राप्त करके स्वर्ग तथा पाताल को धिक्कारती है । (२१)

बइजयन्ती[1] (वैजयन्ती)—पताका; जगति—अट्टालिका, प्रासाद; बैजयन्त[2]—इन्द्र का प्रासाद; मोते—मुझे; बान्धि नेबाकु—बाँध लेने के लिए; विकर्त्तन—सूर्य; हाबोड़ि—टक्कर खा कर; बेनि अयन—दोनो (उत्तरायण व दक्षिणायण) मार्गो पर; बइरिपूग—शत्रु-समूह; एपरि होइ—ऐसा होकर; । (२१)

वळि एकरे से त रुचिर बहुत वळी छन्ति एथिर,
से चारु शेषरंगे ए चिर, अशेष रंगे, ये ।
वसइ सुनासीरेक[1] तहिँ ए केते सुनासीररे[2] शोहि
एपरि होइ चित्ररथहिँ केवळ वर्ग, ये ।
बड बड़ दानव पूर्वरे थिले, ये ।
बडाइकि एरुपे करि न थिले, ये ।
विरचि वीरवर उपेन्द्र— भञ्ज स्वच्छन्दे विचित्र छान्द
चित्त निश्चिन्त नीळाद्रि-चन्द्र ध्यान सफळे, ये । २२ ।

सरलार्थ—पातालपुर एक ही वलिराजा से शोभित हो रहा है, परन्तु इस लंकापुर मे वहुत वली (वलवान् वीर) विद्यमान है। पाताल शेषदेव के रग से (तेज से) सुन्दर है, किन्तु यह लकापुर अशेष रगो से (वहुत वर्णो से) सुन्दर है। स्वर्ग मे एक ही सुनासीर (इन्द्र) वास करता है, लका मे असख्य सुनासीर (सेनापति) शोभित हो रहे है। स्वर्ग एक ही चित्ररथ से शोभित है, किन्तु यहाँ बहुत चित्रित रथ है। यहाँ पहले बडे-बडे राक्षस सव थे तो सही, किन्तु रावण के समान किसी ने इतनी वड़ाई नही प्राप्त की थी। वीरवर उपेन्द्र भञ्ज ने स्वच्छन्द व निश्चिन्त चित्त से श्री जगन्नाथ जी के ध्यान में सफलता लाभ करके इस विचित छान्द (अध्याय या सर्ग) की रचना की। (२२)

वळि—वलिराजा (पाताल का राजा); वली—बलवान्; छन्ति एथिर—यहाँ है; शेष—वासुकी; अशेष—वहुत; सुनासीर[1]—इन्द्र, सुनासीर[2]—सेनापति; चित्ररथ—स्वर्ग का गन्धर्व, चित्ररथ—चित्रित रथ; थिले—थे, करि न थिले-नहीं की थी; नीलाद्रिचन्द्र—जगन्नाथ महाप्रभु। (२२)

॥ प्रथम छान्द ॥

द्वितीय छान्द

राग-मंगळगुज्जरी

विदुष ! दूषण-विवर्ज्जित गीते रस,
विष्णु-चरित त्वरित करिव हरप ये । १ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! आप लोग दोपशून्य इस गीत से अनुरक्त होवे, क्योकि यह विष्णु-चरित आप लोगो को शीघ्र हर्प-दान करेगा । (१)

विदुप—हे पण्डितो ! ; दूपण-विवर्जित—दोपशून्य; करिव-करेगा । (१)

बामदेव देवराज गुरु सगतिरे,
विमने सुमने गले क्षीरसिन्धु तीरे ये । २ ।

ब्रह्माण्ड क्षोभिते भीते ब्रह्मा प्रमुखरे,
विश्वम्भर भरसारे स्तुति कले खरे ये । ३ ।

सरलार्थ—रावण के उपद्रव के कारण, भय से ब्रह्माण्ड के अस्थिर होने पर महादेव, इन्द्र, बृहस्पति आदि देवगण ब्रह्मा के साथ विपण्ण मन से क्षीरसिन्धु के किनारे पर गये और विश्वम्भर (विश्व के पालनकर्त्ता) के उद्देश्य से शीघ्र स्तुति की । (२-३)

वामदेव—शिव; देवराव—इन्द्र, गुरु—बृहस्पति; विमने—विपण्ण मन से; सुमने—देवगण; गले—गये । (२)

क्षोभिते—क्षुब्ध होने से, ब्रह्मा प्रमुखरे—ब्रह्मा जी के नेतृत्व मे; विश्वम्भर—विष्णु; कले—की; खरे—शीघ्र । (३)

वहित लीळा रोहित[1] रोहित[2] मूरति,
वेगे दरदैत्य[1] दरदाने[2] हेल रति हे । ४ ।

सरलार्थ—हे विष्णु ! आप लालवर्णी विशिष्ट रोहू मत्स्य का रूप धारण करके शखासुर को भय-दान करने में रत हुए, अर्थात् आप उसके प्राणो के विनाश मे लग गये । (४)

रोहित[1]—लालवर्ण; रोहित[2]—रोहू मछली (यमकालंकार); दरदैत्य[1]—शंखासुर; दरदाने[2]—डर (भय) देने मे ('दर' शब्द में यमक) । (४)

बहि अमन्दमन्दर कूर्म नमोनम,
बारिधि-अमृत मन्थु अमृत जनम ये। ५।

बिपक्षे देबारि बारि परशिल सुधा,
विश्वमोहित मोहिनी रूपरे विशुद्धा ये। ६।

सरलार्थ–नारायण ! आपने कूर्मावतार में वृहत् मन्दर-पर्वत-धारण पूर्वक सागर का जल-मन्थन कराके उससे अमृत उत्पन्न किया। फिर विश्वमोहनी मोहनी का रूप धारण करके देवताओं के शत्रुओ (असुरो) को अलग कर हम लोगो (देवताओं) को ही अमृत परोसा। हे कूर्मावतारी प्रभो ! आपको हम नमस्कार कर रहे है। (५-६)

अमन्द मन्दर—बृहत् मन्दर पर्वत; बारिधिअमृत—सागर का जल। (५)

देवारि—राक्षस; वारि—निषेध करके; परषिल—परोसा; विशुद्धा—निष्कलंक। (६)

बराहबर[1] बराहबर[2] - सुपण्डित,
बल्लभमहीर हिरण्याक्षकु खण्डित ये। ७।

सरलार्थ–हे बराहश्रेष्ठ ! आपने श्रेष्ठ-समर-विशारद पृथिवीपति हिरण्याक्ष दैत्य का विनाश किया। (७)

वराइवर[1]—वराहश्रेष्ठ; वराइवर[2]—भयंकर युद्ध (यमकालंकार); वल्लभ-महीर—चक्रवर्त्ती। (७)

बपुवन्त हरि, हरि प्रह्लाद-पुण्यकु,
बिदारिल करीपरि करि हिरण्यकु ये। ८।

सरलार्थ–हे हरि ! प्रह्लाद के पुण्य के फलस्वरूप आपने नरसिह का रूप धारण किया और हिरण्य राक्षस को हाथी की तरह करके विदारण किया। (८)

बपुवन्त हरि—नृसिहमूर्त्तिधारी नारायण; हरि प्रह्लाद पुण्यकु—प्रह्लाद के पुण्य से आकर्षित हो, ('हरि' शब्द में यमक)। (८)

बामन मनमोहन होइ भूदानरे,
बळिष्ठ बळिकि चापि अधोभुवनरे ये। ९।

सरलार्थ–हे नारायण ! अपने पञ्चम अवतार मे मनमोहन वामन-मूर्त्ति धारण-पूर्वक भूमिदान-ग्रहण के बहाने आपने बलिष्ठ बलि को पाताल मे पराभूत किया। (९)

अधोभुवनरे—पाताल मे। (९)

विभु भृगुवश - पर परशुधारण,
बाहुज बाहुसहस्त्र दारण कारण हे। १०।

सरलार्थ–हे प्रभो ! आप भृगुकुल-श्रेष्ठ परशुराम के रूप मे परशु (कुठार, कुल्हाड़ी) धारण-पूर्वक क्षत्रियवीर सहस्त्रार्जुन के वध के कारण बने। (१०)

भृगुवशपर—भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम; बाहुज—क्षत्रिय; बाहुसहस्त्र—सहस्त्रार्जुन। (१०)

विशकर करणीकि नाहि सरि रक्ष[1],
विनति उन्नतिहीने आम्भे, प्रभु ! रक्ष[2] हे। ११।

सरलार्थ–विशबाहु रावण के प्रताप का मुकाबला कर सकने वाला दूसरा कोई राक्षस नही। उसके प्रताप से हम लोगो के निस्तेज हो जाने से हम लोग आपकी वन्दना कर रहे है। हे प्रभो ! हम लोगो की रक्षा कीजिएगा। (११)

विशकर—रावण; करणी—प्रताप; सरि—समान; रक्ष[1]—राक्षस; रक्ष[2]—रक्षा करो (प्रान्तयमक)। (११)

बुध बिबुधक स्तुति घेनि कम्बुधर,
बशीभूत हेले वसि गरुड कन्धर ये। १२।

बोइले, प्रबरवर दिअ काहिँ-पाइँ ?
बेभारे त्रिपुर-भार दैत्ये जाण नाहिँ हे। १३।

सरलार्थ–ब्रह्मादि प्रमुख देवताओ की स्तुति से कम्बुधर (नारायण) प्रसन्न हुए और गरुड के कन्धे पर बैठ उनके सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होने ब्रह्माजी से पूछा, "तुम ऐसा उत्कृष्ट वरदान (राक्षसो को) क्यो

देते हो ? स्वभाव से दैत्य लोग तीन पुरों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के शत्रु है, क्या तुम यह नही जानते ?" (१२-१३)

बुध बिबुधंक—विज्ञ देवताओं की; स्तुति घेनि—स्तुति ग्रहण करके। (१२)

बोइले—बोले; प्रवरवर—उत्कृष्टवर; दिअ काहिंपाइँ—क्यों देते ?; वेभारे—स्वभाव से; त्रिपुर-भार—तीन पुरो के शत्रु; जाण नाहिं—क्या यह नहीं जानते ? (१३)

बोइल ये पूर्व पूर्वदेवे बळे सार,
बिनाशनरे कीनाश प्रकार संसार ये। १४।

सरलार्थ—तुम लोग कहते हो कि रावण पूर्व के पूर्वदेवों से (अर्थात् राक्षसों से) अधिक बलवान् है और सृष्टि का विनाश करने मे यम के सदृश है। [तब] यह जानते हुए भी उसे ऐसा वरदान क्यो दिया ? (१४)

पूर्व पूर्वदेवे—पूर्व के राक्षसो से; कीनाश—यम। (१४)

बिहि बिहिले शुणि ता कि भक्तिवचन,
वर करुँ उचिते ए चित्ते बिरचन ये। १५।

बिलोकन हेब नब नब अवतार,
बिधुर मधुर लीळा होइब विस्तार ये। १६।

सरलार्थ—विष्णु भगवान् के वचन सुनकर ब्रह्माजी ने भक्तिपूर्वक कहा, "आपके नये-नये अवतारो के दर्शन होंगे तथा (विधु यान विष्णु की) मधुर क्रीड़ाओ का भी विस्तार होगा। हृदय में इसी लक्ष्य का ध्यान करके हम उचित ही राक्षसो को ऐसा वरदान दिया करते है।" (१५-१६)

बृषभासने[१] वृषभाषणे[२] अतितर,
बिभो तार येउँ नाम तारक मन्तर ये। १७।

बहि सेहि मूरति रतीश-कोटि—जित,
बाञ्छा पूरु हे पुरुषोत्तम मुँ भाबित ये। १८।

सरलार्थ—इसके अनन्तर महादेव जी अति शीघ्र उच्च स्वर मे बोल उठे, हे विभो !, हे पुरुषोत्तम ! आपके जिस नाम पर तारक-मन्त्त आधारित है, करोड-कन्दर्प-विजयी वही राम की मूर्त्ति आप

धारण करे। उसी मूर्त्ति के दर्शन के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ। मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण हो। (१७-१८)

वृषभासने[1]—शिव; वृषभाषणे[2]—उच्च स्वर मे; अतितर—अतिशीघ्र; तार—त्राण करो; रतीश-कोटि-जित—करोड़-कन्दर्प-विजयी; वाञ्छा पूर—कामना पूर्ण हो; मुँ भावित—मै चिन्तित (उत्कण्ठित) हूँ। (१७-१८)

विरूपाक्ष बोलिवारे वार कि शोचन,
वीक्षण लोभे ईक्षण तिनि मुँ रचन हे। १९।
वक्त्र पाञ्च[1] पाञ्च[2] एहि वहि स्तुति कृते,
वहन वह से रूप मोहरि स्वकृते हे। २०।

सरलार्थ—आगे शिव जी ने कहा, "मुझे विरूपाक्ष (तीन आँखो के कारण) कहते है। इसका मुझे तनिक भी सोच नही। खास करके उसी राम-रूप के दर्शन-निमित्त मैने तीन आँखे रखी है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर कि मैं वहुत मुखो से राम जी की स्तुति कर सकूँ, मैंने पाँचमुख धारण किये है। अतएव हे प्रभो! मेरे पुण्य-वल से आप रामरूप धारण करके मेरी मनस्कामना पूर्ण करे। (१९-२०)

वीक्षण—देखना; ईक्षण—चक्षु। (१९)

ववत्रपाञ्च[1]—पञ्चमुख; पाञ्च[2]—अभिलाषा, कल्पना; 'पाञ्च' शब्द में 'यमक'; मोहरि सुकृते—मेरे ही पुण्यवल से। (२०)

वास्तोष्पति पतित अछन्ति केते भाषि[1],
वह से रूप स्वरूपे न यान्तु से भासि[2] हे। २१।

सरलार्थ—वास्तोष्पति (इन्द्र) ने कहा, "ससार मे वहुतेरे पापी है, वे लोग अपने [पापमय] रूप के कारण वह न जायँ। आप राम-रूप धारण करे। (आपके दर्शन से उन लोगो का पाप भी दूर होगा और साथ ही वे मुक्ति लाभ करेगे।" (२१)

वास्तोष्पति—इन्द्र; पतित—पापी; अछन्ति—है; केते—कई, कितने; भाषि—कहा; न यान्तु से भासि—वे वह न जावें (भाषि—भासि, प्रान्त यमक अलंकार)। (२१)

विश्वकसेन सेनेह करि ए उत्तरे,
विधु-काश-जित हास प्रकाशि सत्वरे ये। २२।

वहिबि नाहिँ मुँ अरि[1] अरिमारणरे[2],
बिराजमान[1] बि—राज[2] न चढ़ि रणरे ये । २३ ।

बनौका प्रबळ बळ संग हेबे हेळे,
बोलिण अन्तर ये अन्तरय़्यामी हेले ये । २४ ।

सरलार्थ—देवताओ के उत्तर सुनकर विष्णु जी ने चन्द्रमा तथा काश (कांस) फूल को निष्प्रभ करनेवाले स्नेहमिश्रित हास्य प्रकाश करते हुए कहा, "शत्रुओं का विनाश करने के लिए मै चक्र धारण नही करूँगा, और न समर-क्षेत्र मे गरुड़ पर बैठकर विराजूँगा। [इस बार] असख्य वानर-सैन्यो को साथ लेकर आसानी से शत्रु-नाश करूँगा।" यह कह कर अन्तर्यामी अन्तर्हित हो गये। (२२-२३-२४)

विश्वकसेन—विष्णु; विधु-काश-जित हास—चन्द्र तथा काश फूल को जीतने वाला हास्य; अरि[1]—चक्र; अरिमारणरे[2]—शत्रुओं को मारने में ('अरि' में यमक); विराजमान[1]—शोभित; वि-राज[2]—गरुड़ (यमक); बनौका—वानर (बन्दर); बोलिण—बोलकर; अन्तर य़े अन्तरय़ामी हेले—अन्तर्यामी दूर हुए ('अन्तर' में यमक)। (२२-२३-२४)

बैधात्र कथित स्थित एमान प्रसंगे,
बिधिरे सधीरे गंगाकूळे ऋषि सगे ये । २५ ।

सरलार्थ—गंगा नदी के किनारे पर सनत्कुमार ने कथाप्रसग मे और ऋषियो से विष्णु भगवान् के भावी अवतार आदि विषय कहे। (२५)

वैधात्र—सनत्कुमार; एमान—ये सब विषय। (२५)

बिबेक सुमन्त्र सुमन्तर थिला याइ,
बिचारिला पचारिला भाब उपुजाइ ये । २६ ।

सरलार्थ—विवेकवन्त और उत्तम विचारक (दशरथ के मन्त्री) सुमन्त्र संयोग से वहाँ गये हुए थे। उन्होने इन सब विषयों का विचार किया और मुनि से भक्तिभाव-पूर्वक निम्नलिखित प्रश्न पूछे। (२६)

थिला याइ—गया था; विचारिला—विचार किया; पचारिला—पूछा, प्रश्न किया; भाव उपुजाइ-भक्ति उपजाकर, भक्ति के साथ। (२६)

बैजयन्तीमाळाधर धरणीकरता,
बर्ष्म धरि केउँ धरित्रीश कुळेरता ये । २७ ।

सरलार्थ—"वैजयन्तीमाला-धारी जगत्कर्त्ता (नारायण) किस राजा के वश मे शरीर धारण कर जन्म लेगे ? (२७)

वैजयन्तीमाळाधर—(विष्णु जी की स्वनाम-प्रसिद्ध माला को धारण करने वाले) विष्णु; बर्ष्म धरि—शरीर धारण करके; केउँ—किन । (२७)

विभ्राजित भवनरे बनरे होइवे,
वात्सल्यरसवत्सळ होइण दइबे ये ? । २८ ।

सरलार्थ—भगवान् दैवयोग से वात्सल्यरसानुरागी होकर गृह मे प्रकाशित होगे या वन मे उत्पन्न होगे ? (२८)

होइण—होकर । (२८)

बिकशित शीतकर धवळ पक्ष्यरे,
बिहायसे यथा विहार से ए लक्ष्यरे ये । २९ ।

बन्धुबर्ग - जीवञ्जीब नयन तोषिवे,
व्यक्ते भक्तसरब-कैरव उल्लासिबे ? ये । ३० ।

सरलार्थ—शुक्ल पक्ष मे चन्द्र विकसित होते है और आकाश मे विहार करते है । चकोरो तथा कुमुदो को आनन्द प्रदान करना चन्द्र का लक्ष्य होता है । उसी तरह विष्णु भगवान् प्रकाशित होकर बन्धुवर्ग-रूपी चकोरो तथा भक्तो-रूपी कुमुदो को सन्तुष्ट तथा उल्लसित करेंगे क्या ? (२९-३०)

शीतकर—चन्द्र; धवलपक्षरे—शुक्ल पक्ष मे । (२९)

जीवञ्जीव—चकोर; कैरव—कुमुद । (३०)

बैरी-पद्मङ्कर कर हेब अमोदित,
बिधु नामहिँ एणु कि महीरे उदित ? ये । ३१ ।

सरलार्थ—चन्द्र के उदित होने पर पद्म का हर्ष, विषाद मे परिणत

होता है। वही विष्णु शत्रुओ-रूपी पद्मो के हर्ष को विषाद मे परिणत करके अपने 'विधु' नाम की यथार्थता प्रतिपादन करेगे क्या ? (३१)

एणु—इसलिए। (३१)

बोले प्रसन्ने सनतकुमार पेशळे,
बर्त्तिवे ये उत्तर कोशळे से कुशळे ये। ३२।

सरलार्थ—सुमन्त्र के प्रश्नों से सनत्कुमार ने प्रसन्न होकर कहा, "भगवान् नारायण उत्तरकोशल (याने अयोध्या) मे कुशलता से जन्म ग्रहण करेंगे। (३२)

बर्त्तिबे—जन्म ग्रहण करेंगे। (३२)

बोलाइबे दाशरथि रथिश्रेष्ठ हरि[1],
वर्णिवे कबित्वे कवि नेबे चित्त हरि[2] ये। ३३।

सरलार्थ—रथिश्रेष्ठ हरि दाशरथि (दशरथ के पुत्र) कहलाएँगे, जिनके चरित का काव्य मे वर्णन करके कवि लोग पाठको के मन बहलाएँगे। (३३)

हरि[1]—विष्णु; हरि[2] नेबे—हरण करलेंगे। 'हरि' मे प्रान्तयमक। (३३)

बाहुड़ि सचिब शचीबरभूति लभे,
वन्दन अजनन्दन कौशल्या-वल्लभे ये। ३४।

बृत्तान्त तातपर्य्यरे सबु जणाइला,
बृद्धकाळे सुभाग्यता प्रबृद्ध होइला ये। ३५।

सरलार्थ—मन्त्री सुमन्त्र सनत्कुमार की बातों को सुनकर सहर्ष अयोध्या लौट गये, मानो उन्हें इन्द्र-संपत्ति मिल गयी हो। आपने अज-पुत्र, कौशल्या-पति दशरथ का वन्दन किया और "हरि आपके पुत्र के रूप मे पैदा होगे" आदि सारे समाचार महाराज को संक्षेप मे कह सुनाये। फिर आगे कहा, "बुढापे में आपके सौभाग्य को वृद्धि प्राप्त हुई। (३४-३५)

बाहुड़ि—लौटकर, बहुरि (अवधी में)। (३४)

जणाइला—जताया; होइला—हुआ। (३५)

विकळ कळना होइ करुथिला रंग,
वनदनिनद किबा शुणिला सारंग ये । ३६ ।

सरलार्थ—पुत्र न होने के कारण राजा दशरथ के हृदय में बड़ी व्याकुलता थी, जैसे प्यास के हेतु पपीहा तडपता है। अब सुमन्त्र की बाते सुनकर फूले न समाये; मानो प्यासे पपीहे ने घनगर्जन सुना हो। (३६)

करुथिला—करता था; रंग—दशा; वनदनिनद—मेघ का गर्जन; शुणिला—सुना, सारग-पपीहा, चातक। (३६)

वामदेव, जावाळि[1], या-बाळी[2] अरुन्धती,
वेगे मिळित लळित जटावर-धृति ये । ३७ ।

सरलार्थ—वामदेव, जावालि और (जिनकी पत्नी अरुन्धती है, वह) वशिष्ठ आदि ऋषि वहाँ पर उपस्थित हुए। वे सब मस्तकों पर मनोहर जटाएँ धारण किये हुए थे। (३७)

जावाळि[1]—एक ऋषि· यावाळी[2] अरुन्धती—जिनकी पत्नी अरुन्धती हैं, अर्थात् वशिष्ठ, (यमक)। (३७)

विमळ नळिन-लीन लपने मनाइ,
बसुमतीश अति सहरप, अनाइ ये । ३८ ।
बोलुअछन्ति छतिश-कुळीन यमर,
बध शुणिल जाणिलुँ परशुरामर ये । ३९ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ को अत्यन्त प्रसन्न होते देखकर उन ऋषियो ने अपने-अपने मुख पर प्रस्फुटित कमल का-सा आनन्द प्रकाश करके कहा, "महाराज, आपके हर्ष से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आपने यम के सदृश भयकर ब्राह्मण परशुराम की निधन-वार्त्ता सुनी हो। (३८-३९)

अनाइ—देखकर। (३८)

छतिशकुळीन—ब्राह्मण; शुणिल—तुमने सुना; जाणि लुं—हमने जाना (हमको ऐसा प्रतीत हुआ)। (३९)

बारिधि - मन्द - मन्दर - नृपगणेश्वर,
बिरचन वचन आनन्दमय स्वर ये । ४० ।

बृहद्भानु भानुरु मुँ शीतळ पाइबि,
बिन्ध्य परबत हस्त उपरे थोइबि ये । ४१ ।

बिकुषकु मने करे करे धरिबाकु,
बायकु पाशे पकाइ पाशे[२] रखिबाकु ये । ४२ ।

सरलार्थ—शनिरूपी सागर के मन्थनकारी मन्दर-पर्वत सदृश नृप-श्रेष्ठ राजा दशरथ ने आनन्दमय स्वर में कहा, "अग्निदेव तथा सूर्यदेव से मै शीतलता प्राप्त करूँगा और बिन्ध्य पर्वत को अपने हाथ पर रखूँगा । और भी, चन्द्रमा को हाथ मे रखने तथा वायुको फँदे से बाँधने की इच्छा करता हूँ । (अर्थात् ऐसी अभिलाषाएँ मुझे असम्भव सी प्रतीत होती है । (४०-४१-४२)

बारिधि-मन्द-मन्दर—शनिरूपी सागर के मन्दर पर्वतके सदृश मन्थनकारी; नृपगणेश्वर—नृपश्रेष्ठ दशरथ; बृहद्भानु—अग्नि; भानु—सूर्य (यमक); पाइबि—पाऊँगा; थोइबि—रखूँगा । (४०-४१)

बिकुषकु—चन्द्र को, मने करे—मन करता हूँ; करे—हाथों में (यमक); पाशे[१]—फंद में; पाशे[२]—पास (यमक) । (४२)

बशिष्ठ शिष्ट उक्ति कि तहिँ प्रकाशिले,
बिषय कि? संशय कि ? सुमन्त्र भाषिले ये । ४३ ।

सरलार्थ—दशरथ की ये वाते सुनकर वशिष्ठ कुछ समझ नही सके और संशय-चित्त होकर शिष्टता से उन्होने पूछा, "विषय क्या है ?" सुमन्त्र ने प्रभु का दशरथ-पुत्र के रूप मे जन्मग्रहण आदि सारी बाते सुनाकर अन्त मे कहा, "इसमे संशय क्या है ?" अर्थात् "इसमे सशय बिलकुल है ही नही ।" (४३)

बुझि मुनि हसि हसि सम्मतिकु इच्छि,
बाल्मीकि भबिष्य पुराणकु पुरा इच्छि ये । ४४ ।

सरलार्थ—अब वशिष्ठ जी सुमन्त्र की बातो को समझ गये । हँसते हुए अपनी सम्मति प्रदान करके आपने फिर कहा, "वाल्मीकि मुनि ने भविष्य पुराण में पहले से यह लिख रखा है । (४४)

बैकुण्ठ बैकुण्ठपुर शून्य पूर्ण मूर्त्ति,
बिशेषत श्रुति[१] अछि श्रुति[२] ये सुमृति ये । ४५ ।

सरलार्थ–वेद तथा मनु प्रभृति धर्मशास्त्रो में यह विशेष रूप से श्रुत (सुना हुआ) है कि विष्णु जी वैकुण्ठ को शून्य करके पूर्ण मूर्त्ति धारण-पूर्वक मर्त्यलोक मे जन्म ग्रहण करेंगे । (४५)

वैकुण्ठ—विष्णु; वैकुण्ठपुर—विष्णु का वासस्थान (स्वर्गपुर) (यमक); श्रुति[1] अछि—सुना है, श्रुति[2]—वेद (यमक) । (४५)

बाञ्छा से अनुसरण शरण बिहित,
बैबस्वतकुळे स्वत. आम्भे पुरोहित ये । ४६ ।

सरलार्थ–उन्ही मानवावतारी विष्णु भगवान् की शरण का अनुसरण करने की कामना से हम स्वेच्छा से वैवस्वत मनु के वश मे (सूर्यवश मे) पुरोहित हुए है ।" (४६)

आम्भे—हम । (४६)

बेळुँ बेळ नृपति - चित्तकु द्रबाइला,
बिधुशिळ परि बिधु से बाणी होइला ये । ४७ ।

सरलार्थ–चन्द्र जिस तरह चन्द्रकान्तमणि को पिघला देता है, उसी तरह, मुनि के चन्द्र के समान शीतल वाक्यो ने राजा के चित्त-रूपी चन्द्र-कान्तमणि को पिघला दिया । (४७)

विधुशिळ—चन्द्रकान्तमणि; विधु—चन्द्र । (४७)

बित्त बितरण सेहि दिनु से कामरे,
ब्रत सजित पूजित अपूज्य अमरे ये । ४८ ।

सरलार्थ–विष्णु भगवान् को पुत्र के रूप मे प्राप्त करने की कामना से राजा दशरथ उसी दिन से दीनो मे धन-रत्न का वितरण तथा विविध ब्रतो का आचरण करने लगे और उन्होने अपूज्य रहे हुए देवताओ की पूजा की । (४८)

बैष्णबे भूसुरे सुरे कराइ मोदकु,
ब्रह्मचर्य्ये कर्म कृत कर्मशुभदकु ये । ४९ ।

सरलार्थ–राजा ने वैष्णवो, ब्राह्मणो तथा देवताओ की पूजा करके उनका आनन्द बढ़ाया । स्वयं वे ब्रह्मचर्य व्रत मे ब्रती होकर कार्य करने लगे ताकि ये सब कर्म शुभकारी हों । (४९)

विवेचनामान मानसरे करे नित्य,
व्यवस्थिते रजनीरे सुस्वप्न जनित ये। ५०।

वितपन तपनवंशी से नृपोत्तम,
विनाशइ दिनकु दिन से चिन्तातम ये। ५१।

सरलार्थ—सूर्य सदृश तेजस्वी सूर्य-वंशीय नृपश्रेष्ठ दशरथ नित्य अपने मन में पुत्रोत्पत्ति-विषय पर आलोचना-विवेचना करने लगे, और इसी हेतु रात में उसी प्रसंग में शुभ स्वप्न देखते रहे। इसके फलस्वरूप, उनके हृदय से चिन्ता-रूपी अन्धकार का नाश हुआ; अर्थात् धीरे-धीरे हृदय से चिन्ता हटती गयी। (५०-५१)

बोले उपइन्द्र भञ्ज भञ्जने दुरित,
बान-पदरे आदरे रचित चरित ये। ५२।

सरलार्थ—अपने पापों के विनाश के लिए इसी चरित का वर्णन करते हुए उपेन्द्र भञ्ज ने आनन्द के साथ बावन पदों में इस छान्द की रचना की। (५२)

॥ इति द्वितीय छान्द ॥

तृतीय छान्द

राग-रामकेरी

आद्ययमक

विदुष हे ! गुण रञ्जनरस मनकु देइ ।
विदूषण राजसमाजे धर्मस्वरूपी सेहि । १ ।

विदित मिथिळा नृपति नाम जनक तार ।
विदिग दिगरे होइछि ख्यात यश याहार । २ ।

विदगध[1] यज्ञ कर्मरे सर्वदारे से अति ।
विदगध[2]-चित्त प्रापत नोहिबारे दुहिती । ३ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! अनुराग-वर्द्धक इस रस को मन देकर सुनो। राजाओ मे निष्पाप तथा परमधार्मिक, मिथिला राज्य के अधिपति जनक ऋषि है, जिनका यश चारो ओर प्रख्यात है। आप यज्ञ-कर्म मे हमेशा निपुण हैं, परन्तु एक कन्या के अभाव-हेतु आपका हृदय व्याकुल रहता था। (१-२-३)

विदुष हे !—हे पण्डितो! ; रञ्जन—अनुराग-वर्द्धक; विदूषण—पापरहित; से हि—वही; तार—उनका; विदिग दिगरे—चारों दिशाओ में; विदगध[1]—पण्डित, निपुण; विदगध[2]—व्याकुल। (१-२-३)

वृषाळ मखशाळ कृते दिने चषुँ अबनी ।
वृषाशापुँ मुक्ति पाइण मेना नामे कामिनी । ४ ।

वसि विमानरे गगने करुअछि गमन ।
वशीभूत शोभाप्रभारे हरे जननयन । ५ ।

बुधजनक[1] कि कळङ्क हीने पूर्ण सम्पदे ।
बुधजन[2] करे परते नभे दिबसे उदे । ६ ।

सरलार्थ—राजर्षि जनक एक विस्तीर्ण यज्ञशाला बनाने के लिए एक दिन भूमि जोत रहे थे। उस समय उन्होंने इन्द्र-शाप-विमुक्ता सुन्दरी शिरोमणि मेनका अप्सरा को आकाश मार्ग पर विमान में जाते हुए देखा। उसकी शोभा की प्रभा से जन-नयन मुग्ध हो जाता है। जनक जी भी उसकी शोभा से मुग्ध हो उठे। मेनका को देखकर पण्डितों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो कलंकहीन पूर्णचन्द्र समस्त कलाओं के साथ दिन मे आकाश पर उदित हुए हों। (४-५-६)

वृषाळ—विस्तीर्ण; मखशाळ—यज्ञशाला; चषु—जोतते; वृषाशापुं—इन्द्र के शाप से; मेना—मेनका नाम्नी अप्सरा; बुधजनक[1]—चन्द्र; बुधजन[2]—पण्डित लोग।(४-५-६)

बृषभास्या[1] से मण्डिबारे चित्त अति उद्‌बेग ।
बृपभाषा[2] एहि तरंगे ढाळिबारे अपाङ्ग । ७ ।
बिहरित[1] पुनः पुन कि सुधा पिइ चकोर ।
बिहरितरे[2] से बहिछि निश्चे ए मनोहर । ८ ।

सरलार्थ—मेनका के चचल कटाक्षपात से यह अनुमान किया जाता है कि वह स्वर्गपुरी जाने को उतावली हो रही है। उसे देखकर यह मनोहर उक्ति जँचती है कि मानो उसके नेत्र-चकोर उसके मुख-चन्द्र की चन्द्रिका-सुधा पान करते हुए बारबार बिहार कर रहे हों और उसके कटाक्ष-पात ने इस प्रकार चारों दिशाओ को विशेष रूप से मनोहर बना दिया है। (७-८)

वृषभास्या[1]—इन्द्रपुरी; वृषभाषा[2]—मनोहर उक्ति; बिहरित[1]—विहार करता हुआ; बिहरितरे[2]—चारो ओर। (७-८)

बळारातिपुरमण्डना शोभा जनक चाहिँ ।
बळाइले चित्त मो सुता पुण हुअन्ता एहि । ९ ।

सरलार्थ—इन्द्रपुर (स्वर्गपुर)-मण्डनकारिणी मेनका की शोभा को देखकर जनक ऋषि ने सोचा—"अहा ! यह कन्या मुझे प्राप्त होती!" (९)

बळारातिपुरमण्डना—स्वर्गपुरमण्डना (मेनका); चाहिँ—देखकर; बळाइले चित्त—मन किया; मो सुता—मेरी कन्या; हुअन्ता—होती; एहि—यही। (९)

वाळारुणाधरी कहिला जाणि ताहाङ्क चित्त ।
बाळाए एक्षणि अद्‌भुते होए सिना प्रापत । १० ।

सरलार्थ—बाल रवि की किरणों के सदृश लाल होंठों वाली मेनका ने ऋषि के मनोभाव को समझ कर कहा, "इसी मुहूर्त्त आपको अकस्मात् एक कन्या प्राप्त होगी।" (१०)

वाळारुणाधरी—बाल रवि की किरणों के सदृश लाल होंठों वाली; ताहाक—उनका; वाळाए—एक कन्या। (१०)

वळाहकुँ[1] जन्म होइला परा ईश्वर-भीरु ।
वळाहके[2] विद्युत् प्रकाश प्राये गन्धवतीरु । ११ ।

सरलार्थ—मेनका ने आगे कहा, "जैसे पार्वती ने पर्वत से जन्मग्रहण किया था तथा जिस प्रकार मेघ मे बिजली का प्रकाश पैदा होता है, वैसे पृथिवी से वह कन्या उत्पन्न होगी।" (११)

वळाहकुं[1]—पर्वत से; वळाहके[2] मेघ मे; ईश्वर भीरु—पार्वती; गन्धवतीरु—पृथिवी से। (११)

बाणी ग्र्ये एपरि लाङ्गळ अग्रे जात मञ्जूषे[1] ।
वाणिज्ये रत्नसंपुटक लभ्य परा मञ्जु से[2] । १२ ।

सरलार्थ—ऐसी वाणी सुनते ही लांगल के अग्र मे जनक को एक सुन्दर पिटारी प्राप्त हुई, मानो वणिक (सौदागर) को एक रत्न का सपुटक मिल गया हो। (१२)

एपरि—ऐसी; मञ्जूषे[1]—एक पिटारी; मञ्जु से[2]—मनोहर, सुन्दर (प्रान्तयमक); परा—तरह, सदृश। (१२)

बिश्वमोहिनीए ता मध्ये देखि महाहरष ।
बिश्वकर्माकृत कृत्रिमपुत्री कि कळवश । १३ ।

सरलार्थ—उस पिटारी मे विश्वमोहिनी एक कन्या को देखकर जनक जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने सोचा, "विश्वकर्मा ने शायद कल से यह पुतली बनाई है। (कल-निर्मित पुतली हस्तनिर्मित पुतली से अधिक सुन्दर हुआ करती है।) (१३)

कृत्रिमपुत्री—पुतली, गुड़िया; कळवश—कल के द्वारा। (१३)

वसुन्धराभवा जनक कोळ करि स्वभाव ।
बसु धराइला कृपणे कि कृपाळु दइब । १४ ।

सरलार्थ—जनक ऋषि ने सहर्ष पृथिवी-जात उस कन्या को अपनी गोद मे बैठाया, जैसे पिता अपनी कन्या को गोद मे लेता है; मानो कृपालु विधाता ने कञ्जूस को रत्न धराया हो । (१४)

वसुन्धरराभवा—पृथिवीसंभूता; बसु—रत्न । (१४)

विश्वसृक एक करिछि धरि शोभाचयकु ।
विश्वकेतु केतु बान्धिला जाणि जगज्जयकु । १५ ।

सरलार्थ—ससार की सारी शोभाओ को इक्ट्ठा करके ब्रह्मा ने इस कन्या को निर्मित किया है । "इसके द्वारा जगत्-जय करूँगा"—इस आशा से कन्दर्प (कामदेव) ने पताका फहरायी । (१५)

विश्वसृक्—ब्रह्मा; विश्वकेतु—कामदेव; केतु—पताका । (१५)

बहु ऋषि ताङ्क संगते मेळ होइ थिले ।
बहु सीता नाम ए सीता ग़ोगे जात बोइले । १६ ।

सरलार्थ—जनक के साथ वहाँ पर और अनेक ऋषि एकत्र हुए थे । उन्होने कहा, "यह सीता (लांगल अर्थात् हल से जोतते समय भूमि-रेखा) से प्राप्त हुई है, इसलिए इसे 'सीता' नाम दिया जाय ।" (१६)

सीता—लांगल (हल) का अग्रभाग । (१६)

बिधि सनमत पृथिबी-भबा पार्थिबी एहि ।
विधिरे मिथिला-उत्सबकारी मैथिळी कहि । १७ ।

सरलार्थ—ऋषियो ने आगे कहा, "यह कन्या पृथिवी से पैदा हुई है, इसलिए विधान मे इसका नाम 'पार्थिवी' हुआ । फिर दैवयोग से मिथिलापुर की उत्सवकारिणी होने से यह 'मैथिली' नाम पायेगी ।" (१७)

विधिसनमत—विधानानुसार; बिधिरे—दैवयोग से । (१७)

बिदेहजाया[१] कोटिएक हेले सम कि आउ ?
बिदेहदेशरे[२] उद्‌भबि बइदेही बोलाउ । १८ ।

सरलार्थ—"करोडो रतियाँ इकट्ठी होकर भी क्या इसके बराबर (सुन्दर) हो सकती है ? (अर्थात् कदापि नही।) विदेह देश मे इसने जन्म ग्रहण किया है, इसलिए यह कन्या वैदेही कहलावे।" (१८)

विदेह[1] जाया—कन्दर्पपत्नी (रति); विदेह[2] देशरे—विदेह देश में; (१८)

बिदुष जनक-पाळने बोलाइब जानकी।
बिदूषण शोभा जेमार आउ सम आन कि ? १९।

सरलार्थ—"पण्डित जनक ऋषि के पालन से यह 'जानकी' कहलाएगी। निष्कलक इस कन्या की शोभा की तुलना के लिए और कोई चीज है क्या ?" (अर्थात् नही।) (१९)

विदुष—पण्डित; विदूषण—दोषरहित, निष्कलंक। (१९)

बासरे उत्पळ कि लक्ष पारिजातक तुच्छ।
बासरे चहटे योजनगन्धा नामहिँ स्वच्छ। २०।

सरलार्थ—"उस कन्या के सौरभ से कमल के सौरभ की क्या बराबरी हम करे ? ऐसे पारिजात का सौरभ भी तुच्छ हो जायेगा। शरीर का सौरभ एक योजन तक फैल जाता है, इसलिए इसका 'योजनगन्धा' नाम सार्थक होगा।" (२०)

बासरे—सौरभ मे; उत्पळ—पद्म, कमल; चहटे—फैल जाता है; स्वच्छ—सार्थक। (व्यतिरेक अलंकार)। (२०)

वड़भि[1] उपरे दोळिरे रखि धात्री पाळित।
बड़-भी[2] उपमामानङ्कु असमानरु जात। २१।

सरलार्थ—पालनेवाली धात्रियाँ चन्द्रशाला पर झूले मे सीता को जिस समय झुलाती, उस समय अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि हुई। सीता की उस समय की शोभा के बराबर न हो सकने के हेतु और उपमाओ मे बड़ा भय उत्पन्न हुआ। (२१)

वड़यि[1]—चन्द्रशाला; वड—भी[2]—बडा भय; उपमामानंक—उपमाओं का; असमानरु—असमानता से (के कारण)। (२१)

बिनिद्र कि हेम शयने दुर्गा रूपा-पलंके ।
बिनिर्गत आन उपमा सेहि काळे पलके । २२ ।

सरलार्थ—झूले पर सोयी हुई सीता को देखने से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सुवर्ण-कान्तिविशिष्टा दुर्गा चाँदी के पलग पर सोयी हुई हों। उस समय कन्या के पलक लगाने से और सब उपमाएँ निकल आई । (२२)

हेम—सोना; रूपा—चाँदी । 'पलंके'—'पलके' में (प्रान्तयमक अलंकार।) (२२)

बाळकी[1] लीळा कउतुके अन्त.पुरस्था मोहि ।
बाळ कि[2] शैबाळ कमळ कोष उपरे शोहि । २३ ।

सरलार्थ—अपनी बाल्यावस्था की क्रीड़ा-कौतुक से उन कन्या ने अन्त.पुर की रमणियों को मुग्ध किया। उनके मस्तक पर बाल ऐसे शोभित होने लगे, मानो कमल-कली पर शैवाल (सेवार) शोभित हो रहे हो। (२३)

वाळकी[1] क्रीड़ा—बाल्यावस्था की क्रीड़ा; बाळ कि[2]—बाल क्या ('क्या' उत्प्रेक्षवाचक शब्द), शैवाळ—सेवार; कमळकोष—कमल की कली। (उत्प्रेक्षालंकार) (२३)

बाड़बर[1] चित्रप्रतिमा परि धरि ता उभा ।
बाड़बर[2] मध्ये पकाअ आन समान शोभा । २४ ।

सरलार्थ—जब वह कन्या दीवाल के सहारे खडी हुई, तो वह दीवाल पर अकित चित्र-प्रतिमा की तरह शोभा पाने लगी। उसी शोभा से तुलना करने के लिए अन्य जितनी उपमाएँ उपलब्ध है [उन्हे] वाड़वाग्नि में फेक दो। (२४)

वाडवर[1]—उत्तम दीवाल; उभा—खड़ी होना; वाडवर[2] मध्ये—वाड़वाग्नि में; पकाअ—फेंक डालो। (२४)

बिड़म्ब[1] नूतन मञ्जरी ढळित कि पबने ।
बिडम्बण[2] अन्य दृष्टि ये टळ-टळ गमने । २५ ।

सरलार्थ--डगमगा कर चलते समय सीता पवन से हिलती-डुलती लम्बी नयी लता-सी दिखाई पड़ती थी। उनकी चाल के समय दूसरी ओर

निगाह डालना व्यर्थ है। (अर्थात् उनकी चाल के सौन्दर्य के सामने दूसरी सब दिशाओ के सौन्दर्य निष्प्रभ हो जाते थे।) (२५)

विड़म्ब[1]—विलम्ब, लम्बी; नूतन मञ्जरी—नयी लता; ढळित—हिली-डोली; विड़म्बग[2]—वृथा; टळ-टळ—डगमगाकर (उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार।) (२५)

वचकु[1] बाचके न कहुँ पुणि शुणि उत्साही।
वचकु[2] पिइला पढ़िला शुक मूकरे रहि। २६।

सरलार्थ--सीता की तोतली बोली बडी मधुर थी। उनकी कथा को वचन मे प्रकाश करते ही सुननेवालो ने फिर सुनाने को उन्हे उत्साहित किया। (उनके स्वर के साथ समान होने के लिए) तोते ने कण्ठ शोधने की एक जडीबूटी 'बच' खाकर पढा। तिस पर भी समान न हो सकने की वजह से मूक रहा। (२६)

वचकु[1]—कथा को; बाचके—वचन में; वचकु[2]—वच औषधि। (२६)

बाळी से[1] खेळिला शिशुङ्क सङ्गे क्रम क्रमरे।
बाळिशे[2] लक्षिवे से काळे रम्भा रमा समरे। २७।

सरलार्थ--उन बाला (सीता) ने क्रमशः शिशुओं के साथ खेलना आरम्भ किया। उस समय की शोभा को देखकर केवल मूर्ख लोग ही कहेगे कि ये सीता रम्भा व लक्ष्मी के समान सुन्दर है। (अर्थात् रम्भा तथा लक्ष्मी की शोभा भी सीता की उस समय की शोभा से तुलनीय नही हो सकती।) (२७)

बाळी से[1]—वह बाला (सीता); बाळिशे[2]—मूर्ख लोग। (२७)

बेणी चारुशिरे शुकळ रग फुले यतन।
बेणी त्रिपूर्व कि नभरु हेउछन्ति पतन। २८।

सरलार्थ--सीता के सुन्दर शिर पर सुशोभित वेणी मे सफेद तथा लाल रग के फूल सुन्दरता से गुँथे हुये है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश से त्रिवेणी (गगा, यमुना तथा सरस्वती की सम्मिलित धारा) गिर रही हो। (नीले बाल, सफेद फूल तथा लाल रग के फूल क्रमशः यमुना, गगा और सरस्वती से तुलनीय है।) (२८)

यत्न-मण्डित—सुन्दर; वेणी त्रिपूर्व—वेणी के पूर्व में 'त्रि' अर्थात् त्रिवेणी। (सीता की वेणी में त्रिवेणी की कल्पना सराहनीय है।) (२८)

विलम्बित कर्णे कुण्डळ कि से शांकुळी बळा ?
बिळम्बित दम्भ चितरे देब चाहुँ नोहिला । २९ ।

सरलार्थ--कानो मे कुण्डल झूल रहे है। कुण्डलो को देखते ही वे जंजीरों की तरह आँखों को बाँध रखते है। कितना ही धैर्यशाली व्यक्ति क्यो न हो, उस शोभा को देखने पर अपनी आँखे वहाँ से लौटा नही सकता। (२९)

बय कला काहिँ ए रीतिमान सुन्दरीमणि ।
बयसंगति कि प्रकाशि आन प्रकारे आणि । ३० ।

सरलार्थ--सुन्दरी-शिरोमणि सीता ने धीरे-धीरे अपनी बाल्यावस्था के ढग त्यागकर प्रथम यौवनावस्था के हावभाव प्रकाश किये। (३०)

वय कला—त्याग किया; वयसंगति—यौवनारम्भ की अवस्था। (३०)

बिभाकाळे नारी ग्रेमन्ते कन्याळंकार मुञ्चि ।
बिभावना हेला तहिँरे नब-बिळास रञ्चि । ३१ ।

सरलार्थ--विवाह के समय जिस प्रकार नारी बचपन के आभूषणों को त्यागकर नये आभूषणों को चाहती है, उसी प्रकार सीता ने बाल्य-क्रीड़ाओं को त्याग नयी क्रीड़ाएँ करने को मन किया। (३१)

विभाकाळे—विवाह के समय; येमन्ते—जिस प्रकार; मुञ्चि—त्यागकर; विभावना—विशेष इच्छा; तहिँरे—उसमें; रञ्चि—रचना करने को। (३१)

वसन्तदूत[1] ध्वनि कलावेळे केते इंगित ।
वसन्त[2] रागरे आळाप तहिँ करइ गीत । ३२ ।

सरलार्थ--वसन्तदूत कोयल जब बोलती थी, तब सीता उसकी बोली का उपहास करती हुई वसन्त राग में गीत गाती थी। (सीता का स्वर कोयल की ध्वनि से अधिक मधुर तथा उत्कृष्ट था) (व्यतिरेकालंकार) (३२)

वसन्त[1]-दूत—कोयल; इंगित—उपहास; वसन्त[2]—राग विशेष। (३२)

वसन्त वसने[१] गण्ठिकि देइ कन्धे पकाइ ।
वसन्तवसन मोहिवि एहि गुमान वहि । ३३ ।

सरलार्थ—पीला वस्त्र पहने, उसके आँचल मे गाँठ दिये, सीता उसको अपने कन्धे पर डालती थी । उससे प्रतीत होता था मानो सीता इसी अभिमान से कि मै किसी न किसी दिन विष्णु (रामचन्द्र जी) को मुग्ध करूँगी, आँचल मे गाँठ लगाये रख रही हो । (३३)

वसन्तवसने[१]—पीले वस्त्र में; वसन्तवसन[२]—पीताम्वर; विष्णु—रामचन्द्र ।(३३)

वन्धन करे नाना छन्दे नीवी से पुनः पुनः ।
वन्धचित्रपट एकान्ते चाहिँवारे सुमन । ३४ ।

सरलार्थ—सीता नाना छन्दो मे नीवी (कटिवंध) वारवार वाँधने लगी । फिर चौसठ वन्ध-चित्रित चित्रपट को एकान्त में देखने के लिए मन किया । (३४)

नीवी—कटिवन्ध; चाहिं वारे—देखने के लिए । (३४)

वन्दि[१] याहाकु वड़ बोलि सउन्दर्य्ये धरारे ।
वन्दी[२] परि होइ रहिला अवराधे धरारे । ३५ ।

सरलार्थ—जिन सीता को ससार मे सौन्दर्य मे श्रेष्ठत्व देकर हम वन्दना करते हैं, ऐसी सीता यौवनकाल मे पदार्पण करने पर अन्त पुर मे वन्दी हो कर रहने लगी । (३५)

वन्दि[१]—वन्दना करते हैं; वन्दी[२]—कैदी; अवरोधे—अन्त पुर मे । (३५)

वत्सर नवरु दिनकु दिन प्रभा बढ़ाइ ।
वत्सरे कुच अंकुरित एहि उत्प्रेक्षा होइ । ३६ ।

वर्णमाळी परा रोमाळि कि से सरघापन्ति ।
वर्णनीय एहि, करन्ति कि से ऊर्द्ध्व वकु गति? । ३७ ।

सरलार्थ—नौ वर्ष की अवस्था होने पर दिन-दिन सीता की प्रभा वढने लगी । वक्ष पर कुचो ने अकुरित होकर यह उत्प्रेक्षा धारण की—

वर्णमाला-सी सीता की रोमावली मानो मधुमक्खियाँ है जो ऊपर की ओर गति कर रही है। यह वर्णना के योग्य है। (३६-३७)

वत्सरनवरु—नौ वर्ष से; वत्सरे—वक्ष में, वर्णमाळी—अक्षरमाला, सरघापन्ति—मधुमक्खियाँ। (३६-३७)

बिकळना करि सञ्चन्ति मधुकल्पद्रुमरे।
बिकळप, फळ अंकुरु भजे बृद्धिक्रमरे। ३८।

बिजय होइला क्रमुकठारु ताळसरिकि।
विजय हृदरे स्वयम्भू रूपे कले शम्भु कि ? । ३९।

सरलार्थ—स्तन रूपी कल्पद्रुम पर रोमावली रूपी मधुमक्खियाँ मानो मधु-सचय कर रही हो—यह विशेष रूप से अनुमान करना उचित है। अथवा उस कल्पद्रुम पर फल फले क्रमशः सुपारी से ताड़ के सदृश वृद्धि को प्राप्त हुआ है क्या ? अथवा क्या स्वयंभू (जो स्वय वर्द्धित होते है) शिव-लिग हृदय पर विराजमान हुआ है ? (३८-३९)

विकळप—कल्पना; क्रमुक—सुपारी (३८-३९)

बळिश्रेष्ठ काम ताहाङ्क बाम कला प्रहार।
बळि बाटुळि कि स्तनाग्र रूपे से मनोहर। ४०।

सरलार्थ—सीता जी के श्यामवर्ण कुचाग्र को देखकर कवि उत्प्रेक्षा करते है कि बलवान् कन्दर्प ने जो शिव जी का शत्रु है, मानो गीली मिट्टी से गोले बनाकर स्तन-रूपी शिवजी को लक्ष्य कर के मारे। वे गोले स्तनो से टकरा कर नीचे गिर पड़ते। परन्तु वे अभी-अभी बनाये गये थे, इसलिए गीले तथा काले थे, वे काले तथा गीले गोले महादेव जी के शिर पर टकराकर जैसे वहाँ पर अटक गये हो। (४०)

बासरे यतने घोड़ाइ चोळ कबच देइ।
वास अंगी स्मर भयरु रति सेवने स्नेही। ४१।

सरलार्थ—कन्दर्प के भय से स्तन-शम्भु की रक्षा करने के लिए सौरभागी सीता ने उसे चोली रूपी कवच के द्वारा आच्छादित करके उस पर फिर वस्त्र ओढा। और भी रति की सेवा में मनोयोग दरसाया।

(रति की सेवा से उनके पति कामदेव सन्तुष्ट होंगे; अर्थात् रति-रस में सीता का मन मज्जित होने लगा।) (४१)

वासरे—वस्त्र से; घोड़ाइ—ओढ़कर; वामअंगी—वामाङ्गी (सीता)। (४१)

वनधवकु ये जिणिला कटी कृशता होइ।
वनधरकेशी किङ्किणी जयवाद्य बजाइ। ४२।

सरलार्थ—सीता की कटि ने क्षीणता में सिंह पर विजय प्राप्त की। इसलिए जलधर-केशी सीता ने किंकिणी रूपी जय वाद्य बजाया। (४२)

वनधव—जंगल का स्वामी सिंह; वनधर—जलधर, मेघ; वनधरकेशी—मेघ सा वर्ण है जिनके केशों का (सीता)। (व्यतिरेक) (४२)

वळाहसक नादे गति बड़ाइकि शुणाइ।
वळात्कारे मन्द सरणे गज हंस जिणाइ। ४३।

सरलार्थ—सीता का गमन सुन्दरता में गज और हंस की गति से बढ़ गया। जब वे मन्दगति करतीं, तो पैरों की पायजेब तथा नूपुरों की ध्वनि सुनाई पड़ती। मानो उस ध्वनि के जरिए सीता की गति की बड़ाई प्रगट हो रही हो। (अर्थात् उनकी गति हंस तथा गज की गति से धीरतर हुई।) (४३)

वळा—पैर की पायजेब (एक गहना); (?) हंसक—नूपुर; मन्दसरणे—धीर गति में; जिणाई—जीतती है। (व्यतिरेक) (४३)

वारणवृपा-गर्व खर्व करि ऊरु दीपित।
वारण दन्त-कुन्दा स्तम्भ कि कुंकुमलेपित। ४४।

सरलार्थ—उनकी दोनों जंघाओं ने केला वृक्ष के गर्व को खर्व करके दीप्ति प्रकाश की। (जंघाओं को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ) मानो चिकनाये हुए हाथी-दाँत के खम्भों पर कुंकुम-लेप हुआ हो। (४४)

वारणवृपा—केले का वृक्ष, वारणदन्त—हाथीदांत। (व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा) (४४)

वाहु-शोभा चाहिँ मृणाळ कण्टककु वहिला।
वाहुटि ताडरे जाणिलि मे पूजाकु पाइला। ४५।

सरलार्थ—बाहुओं की शोभा को देखकर मृणाल ने (असमान होने की वजह से) काँटे धारण किये। उन पर सीता ने बाजूबन्द तथा ताड़ आदि गहने पहने है। मानो वे गहने बाहुओ की पूजा कर रहे हों। (अथवा बाहुओ के सस्पर्श मे आने की वजह से वे गहने स्वयं पूज्य तथा आदरणीय हुए।) (४५)

मृणाळ—पद्मनाल; वाहुटि—बाजूबन्द; ताड़रे—ताड़ों से; जाणिलि—मैने (कवि ने) जाना; पाइला—पाया। (व्यतिरेक) (४५)

ब्रह्माण्डरे नाहिँ से हस्ततुळ कहिबा तर्के।
ब्रह्मा तेणु देला अतुळ करि नाम कटके। ४६।

सरलार्थ—सीता की हस्त-शोभा से तुलना करने के लिए ससार भर मे कोई उपमा नही मिली। इसलिए ब्रह्मा ने उनके हस्त के स्वर्ण-कंकण को 'अतुल' नाम दे रक्खा है। कंकण के इस नाम से हस्तों की शोभा की अतुलनीयता प्रकट हो रही है। (४६)

से हस्ततुळ—उन हाथों की उपमा; कहिबा—(हम) कहेगे; तेणु—इसलिए; देला—दिया; अतुल—हस्तालंकार (कंकण) का नाम, कटके—स्वर्णकंकण। (४६)

बिभूषण भूषानिचय सर्व सुन्दरीङ्करे।
बिभु से जानकी अतुल ताकु आम्भे एठारे। ४७।

सरलार्थ—पृथिवी की समस्त सुन्दरियाँ नाना अलकारो से भूषित होकर भी सीता के समान नही हो सकती। इसलिए उन्होने (अलंकारों ने) सोचा—"सीता हम लोगो की प्रभु है। हम उनकी बराबरी नही कर सकते।" (अलकार समस्त स्त्रियो के भूषण है, इसलिए अधिक सुन्दर है। परन्तु उन अलकारो ने सीता की सुन्दरता को देख कर सोचा—सीता हम लोगो की प्रभु है, हम लोगों के उनके भूषण होने की बात तो दूर रही, उनकी समानता तक नही कर सकते।) (४७)

भूषानिचय—अलंकार समूह; आम्भे—हम लोग; तांकु—उनको; एठारे—यहाँ पर। (४७)

वन्दिआमण्डने श्रबणे ताळपत्र घडड़ि।
वन्दिआ[२] नोहि कि से यिब, येउँ नयन पडि। ४८।

सरलार्थ—उन्होने तडका (तरकी) नामक कर्णाभूपणो को निकाल-कर 'वँदिआ' नामक कर्णाभूपण अपने कानो में पहने। उन पर जो आँखे गड़ जायँगी, वह वन्दिनी बने विना कहाँ जायँगी ? (उन कर्णा-भूपणो पर आँखे अटक जायँगी।) (४८)

वँदिआ—(देशज) कर्णाभूषण विशेष; ताळपत्र (देशज)—तड़का (तरकी) ('तार्टक' शब्दज) नामक कर्णालंकार; घउडि—निकालकर; बँदिआ—बन्दी, फँदी; नोहि—न होकर; ये उँ नयन—जो आँखें। (४८)

वाळी झलकादि सुफुल मल्लीकढ़ी विशेषे।
वाळी झलकाइ येमन्त कहि नोहिब शेषे। ४९।

सरलार्थ—सीता ने वाली, झलका, करनफूल तथा मल्लीकढी आदि कर्णाभूपणो के द्वारा भूपित हो जिस अनिर्वचनीय शोभा को धारण किया, उसका शेषदेव अपने सहस्र मुखो से भी वर्णन नही कर सकते। (४९)

वाळी—कन्या (सीता); येमन्त—जिस प्रकार; कहि नोहिब शेषे—शेषदेव से कहा नहीं जा सकता। (४९)

वन्धा सुमनरे जूडा ये धैर्य-उजुड़ा सेहि।
वन्धा सुमनकु पकाइ नेव के मुकुळाइ ? ५०।

सरलार्थ—नाना प्रकार के फूलो से मण्डित उनकी जूडा दर्शकों का धैर्य नाश करती थी। इसलिए एक ही वार उसे देखने पर उसमे बँध गये। मन को उस शोभा-दर्शन से लौटा लाना कठिन होता था। (५०)

सुमनरे—फूलों से; जूडा—बालो का बँधा हुआ समूह; वन्धा सुमनकु—बन्धे हुए अच्छे मन को। (५०)

विशेषे चञ्चळ ईक्षण वाण से गतागत।
विपे से युक्त कि अञ्जने येणु अति ज्वळित। ५१।

वाजिवार[1] भये कुरङ्ग मीन वने पळाइ।
वाजीवार[2] गतागत से गति शिखिवा पाइँ। ५२।

सरलार्थ—उनके उज्ज्वल कज्जल-रंजित नेत्रों की चंचल गति को विषदग्ध शर समझ कर इस भय से कि कही हमारे शरीरो में यह शर

चुभ न जाय, हिरनों ने जंगल में तथा मछलियो ने जल में प्रवेश किया। उनकी नेत्र-गति से समानता लाने के लिए घोड़े तथा पक्षी शीघ्रगति का अभ्यास करने लगे। (अर्थात् सीता जी के नेत्रो की गति हिरनों, मछलियों, घोडो तथा पक्षियो की गति से चंचलतर थी। (५१-५२)

येणु—चूंकि; वाजिवार[1] भये—वजने के भय से; कुरंग—हिरन; मीन—मछली; पळाई—भाग गये; वाजी वार[2]—घोटक समूह, पक्षिसमूह (यमक)। (५१-५२)

वर्त्तुळ मुकुता चळित नासा-पुड़ा य़े फुले।
वर्त्तु के ता चाहिँ आजन्म ब्रह्मचारी होइले। ५३।

सरलार्थ—साँस लेते समय सीता के नथुने फूल रहे है। फूलने वाले नथुनो के पास [नकवेसर का] गोल मोती हिल रहा है, उसको देखकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो वचपन से ब्रह्मचारी होते हुए भी कन्दर्प के शराघात से वच पाएगा ? (५३)

वर्त्तुळ—गोल; नासापुड़ा—नथुने; वर्त्तु—बचे तो कोई ! (५३)

बन्धु करिवार इच्छिला य़ेणु अधर तुले।
बन्धुक नामहिँ रहिला तेणु रक्तक फुले। ५४।

सरलार्थ—सीता के अधरो से वन्धुत्व स्थापित करने के लिए दुपहरिया फूल ने इच्छा की। इसीलिए उसका नाम शायद 'वन्धुक' पड़ा हो ! (अर्थात् सीता के अधरों का वर्ण वन्धुक का सा लाल है।) (५४)

बन्धु करिबार—वन्धुता करने की; इच्छिला—इच्छा की; अधरतुले—अधरों के सहित; रहिला—रहा; तेणु—सो, इसलिए; रक्तक फुले—दुपहरिया का फूल। (५४)

बधुली-अधर वोलिवा य़ुक्त अर्थरे आन।
वधू करे तहिँ उपरे हास प्रकाशमान। ५५।

सरलार्थ—सीता के अधर बन्धुक फूलों के समान है। इसलिए उनको वन्धुकाधरा कहना युक्तियुक्त है तो सही, परन्तु वह अर्थ ठीक नही जँचता। क्योंकि वे अपने वन्धुक के सदृश अधरो पर जव हास्य प्रकाश करती है, तो उससे मालूम पड़ता है कि वे वन्धुक फूलों का उपहास करती हैं। इससे पुष्ट होता है कि वन्धुक (रक्तक, दुपहरिया का फूल) उनके अधरों (होंठों) से निम्न कोटि का है। (५५)

वधुली-अधर—वन्धूको के समान लाल होठों वाली; वोलिवा—बोलना; अर्थरे आन—दूसरा अर्थ; वधू—सीता; तहिं उपरे—उस पर। (५५)

विभर्त्ति मोतिपन्ति दन्त ओष्ठ-माणिक्यपात्रे ।
बिभव शोभार के कहु ये विचित्र वि चित्रे । ५६ ।

सरलार्थ--माणिक्य-निर्मित पात्र में मोती-पक्ति रखने से जो शोभा प्रगट होती है, सीता जी के ओष्ठो के भीतर उनके दन्तो की वैसी शोभा दीखती है। ओष्ठ माणिक्य-पात्र तथा दन्त मोती-पक्ति है। इसलिए प्रतीत होता है कि जिस सौंदर्य का उत्कर्ष चित्र मे भी दिखाया नही जा सकता, उसका वर्णन भला कौन कर सकता है ? (५६)

विभर्त्ति—भरती करना, रखना; विभव—सम्पत्ति—(यहां उत्कर्ष); के कहु—कहे तो कोई !; ये विचित्र वि चित्रे—जिसे चित्र मे भी दिखाना विचित्र (असम्भव) है। (५६)

विभूषण नाना प्रकारे येते करन्ति निति ।
विभूषण परा तहिंकि दिशे सुन्दरी-ज्योति । ५७ ।

सरलार्थ--सीता हर रोज जिन सब आभूषणो से भूषित होती है, उनकी शरीर-कान्ति उन सब आभूषणो का आभूषण सी दिखाई पडती है। (अर्थात् सीता आभूषणो का आभूषण है।) (५७)

वदनरे चन्द्र दर्पण पद्म निउञ्छाइवा ।
वदनरे एहि उक्तिकि आन कि लक्ष्य देवा ? ५८ ।

सरलार्थ--सीता जी के मुख के सौन्दर्य, कान्ति तथा सौरभ के सामने क्रमश चन्द्र, दर्पण तथा पद्म तुच्छ है। इसलिए उनकी मुख-शोभा इन उपमानों की वन्दना योग्य है, अतएव अन्य किसी वस्तु (उपमान) का नाम कह कर उनके मुख से उपमा देना उचित नही होगा। (५८)

निउञ्छाइवा—वन्दना कराएँगे। (५८)

वरवर्णिनी रसलता नव पुष्पवती से ।
वरण करिवा जनकं कंहे यतिङ्क पाशे । ५९ ।

सरलार्थ--कुंकुमवर्णा श्रृंगाररस-स्वरूपा लता सीता ने यौवन मे

पदार्पण किया। तो "उनके स्वयम्वर के लिए हम राजाओं को निमन्त्रित करेंगे"—यह बात जनक जी ने ऋषियो से कही। (५९)

वरवर्णिनी—कुंकुमवर्णा; रसलता—श्रृंगाररस-स्वरूपा लता; पुष्पवती—युवती। (५९)

बाचिले बाल्मीकि टेकिब येहु शिबचापकु।
बारिजगन्धाकु प्रदान निश्चे करिबा ताकु। ६०।

सरलार्थ–यह सुन कर वाल्मीकि मुनि ने कहा, "जो व्यक्ति शिवधनु उठाने मे समर्थ होगा, हम उसे ही पद्मिनी सीता को प्रदान करेंगे। (६०)

बाचिले—कहा; टेकिब—उठाएगा; येहु—जो; बारिजगन्धा—पद्मगन्धा; ताकु—उसीको। (६०)

बोध जनक हरधनु स्वयम्बर रचित।
बोधकर मुखे विख्यात, नृपगणे आगत। ६१।

सरलार्थ–हरधनु-सम्बन्धी प्रण से जनक जी सम्मत हुए और स्वयम्वर की व्यवस्था करने लगे। उन्होने ख्यातनामा भाटो (चारणों) के द्वारा राजाओ को निमन्त्रण भेजा। (६१)

बोधकर—भाट, चारण। (६१)

वास करन्तु सेहि सीता-लीळा सदा मो हृद।
बाषठी पदे उपइन्द्र भञ्ज कहे ए छान्द। ६२।

सरलार्थ--उन्ही स्वयंवरा सीता देवी की लीला हमेशा मेरे हृदय मे जागृत रहे। यही प्रार्थना करते हुए बासठ पदो में उपेन्द्र भञ्ज ने इस छान्द को समाप्त किया। (६२)

॥ इति तृतीय छान्द ॥

चतुर्थ छान्द

राग-माळवगउड़ा

बुद्धि उत्तम याहार काव्य-अभिधाने,
बृजिन-नाश चरित शुण सावधाने । हे । १ ।

सरलार्थ–जिनका काव्य व अभिधान मे उत्तम-प्रवेश है, वे पाप-क्षय कर इस चरित को मन देकर सुने । (१)

बृजिननाश—पापक्षयकर । (१)

बृष्टिहीन द्वादश बरष चम्पावती,
बड चिन्ता लभि लोमपाद नरपति । ये । २ ।

सरलार्थ–चम्पावती नगरी मे बारह वर्षो तक वर्षा न होने के कारण वहाँ के राजा लोमपाद को बडी चिन्ता हुई । (२)

बरषा करिब ऋष्यश्रृग आगमने,
ब्रह्मज्ञान परि घेनि योगीन्द्र समाने । ये । ३ ।

सरलार्थ–जिस तरह श्रेष्ठ योगिगण ब्रह्मज्ञान को ही सत्य मानते है, उसी प्रकार राजा लोमपाद ने इस कथा को सत्य मान लिया था कि ऋष्य-श्रृग के आने पर ही वहाँ बारिश होगी । (३)

परि—तरह; योगीन्द्र—श्रेष्ठ योगी । (३)

बुलाइ निज नबरे पञ्चरत्नस्थाळी,
वज्र धरि शतमन्यु पराये से भळि । ये । ४ ।

सरलार्थ–ऋष्यश्रृग को बुला लाने के लिए राजा ने पुरस्कार की घोषणा के स्वरूप अपने नगर मे पञ्चरत्न-युक्त थाली घुमायी । इन्द्र अपने बज्रास्त्र के कारण जिस तरह दीप्तिमान दीखते है, उसी तरह 'बज्र' (हीरों) के द्वारा यह थाली दीप्तिमान दिखाई देती है । (४)

वज्र—इन्द्र का वज्रास्त्र, हीरा (श्लेष); शतमन्यु—इन्द्र । (४)

विकाशरे पद्मराग सविता प्रतिभा,
बहिछि से मारकती होइ रति शोभा। ये। ५।

सरलार्थ—वह थाली पद्मराग मणियों के तेज से तेजीयान दीखती है। मानो वह सूर्य हो। सूर्य, पद्म के प्रति अनुराग-प्रकाश-पूर्वक अपने तेज को उस पर निक्षेप करके उसे विकसित करते है। इस थाली मे पद्मराग मणियों के जडित होने से यह 'पद्म-राग' अर्थात् पद्म के प्रति अनुराग रखनेवाले सूर्य की तरह तेजीयान हुई है। साथ ही, इसमें मरकत मणियाँ जड़ित हुई है। सुतरा मारकती अर्थात् मरकत-सम्बन्धी शोभा को धारण करने की वजह से इसने 'मार-कती' अर्थात् मार (कन्दर्प) के निकट में हमेशा रहने वाली रति की शोभा प्राप्त की है। (५)

पद्मराग—माणिक, पद्मप्रति स्नेह रखने वाले (सूर्य)—(श्लेष); सविता—सूर्य; मारकती—मरकत-सम्बन्धी, कन्दर्प की निकटवर्त्तिनी (रति)—(श्लेष)। (५)

बिद्रुमे महा उज्ज्वळ अटवी सदृश,
वहि गर्भे मोति शुक्ति, ए त्रिविध श्ळेष। ये। ६।

सरलार्थ—उस थाली मे अतिशय उज्जवल प्रवालों के रहने की वजह से वह ऐसे एक अरण्य की तरह दिखाई देती है जो कि नव पल्लव धारण करके अत्यन्त सुन्दर दीखता है। और भी, इसमें मोती रहने के कारण यह मोती-गर्भ सीप की तरह दीखती है। इस प्रकार इन तीन पदों मे श्लेपार्थ है। (६)

विद्रुमे—प्रवालों से, नये पत्तों से (श्लेष); अटवी—अरण्य; शुक्ति—सीप। (६)

बेश्यासार जरता ता रता होइ नेला,
वनुँ आजन्मतपस्वी आणिबि बोइला। ये। ७।

सरलार्थ—वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने बड़े आग्रह से वह थाली ली और कहा, "मै जगल से आजन्म-ब्रह्मचारी उन्ही ऋष्यश्रृग को ले आऊँगी।" (७)

वेश्या-सार—वेश्याश्रेष्ठा; रता—आग्रहान्विता; नेला—ली; आणिबि—लाऊँगी; बोइला—बोली। (७)

वृषभ गोड़ाइ धेनु पछरे येमन्त,
वेदाध्ययन छड़ाइ आणिवि तेमन्त। ये। ८।

सरलार्थ—"जिस प्रकार सॉड गाय के पीछे-पीछे दौड़ आता है, उसी प्रकार मै उनका वेदाध्ययन छुडाकर उन्हें अपने पीछे दौडा ले आऊँगी।" (८)

ग्रेमन्त—जिस तरह; तेमन्त—उस तरह। (८)

बर्द्धकी डकाइ सजडाइ दिअ नाव,
बेश्म परि महामनोरम होइथिव। ये। ९।

सरलार्थ—बढई को बुलाकर उससे अत्यन्त सुन्दर घर जैसी एक नौका बनवा दो। (९)

बर्द्धकी—बढई; उकाइ—बुलाकर; बेशमपरि—घर के माफिक। (९)

बिबिध पदार्थ भर्त्ति करिदिअ तहिँ,
बन रचनाहिँ होइथिव, भूपे कहि। ये। १०।

सरलार्थ—"उसमे विविध पदार्थ भरकर ठीक एक जंगल के समान करा दो"—ये बाते जरता ने राजा से कही। (१०)

बचस्कर नृपति सामन्ते भृत्यपरि,
वार बारनारी गले अनुकूळ करि। ग्ये। ११।

सरलार्थ—लोमपाद राजा ने उस वेश्या की आज्ञा का पालन वैसे किया था जैसे कि नौकर अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करता है। जरता ने बारह वेश्याओ के सहित अपनी यात्रा अनुकूल कर दी। (११)

बचस्कर—आज्ञावह; सामन्त—प्रभु, मालिक; भृत्य—नौकर; वार बारनारी—बारह वेश्याएँ। (११)

बसिले तरणी-अङ्के छाया परा होइ,
बिराजिवा पुष्कर गमने से योगाइ। ग्ये। १२।

सरलार्थ—वे वेश्याएँ नौका मे वैसे बैठीं मानो छायादेवी सूर्य की गोद में वैठी हो और नौका पर जाते समय चलते हुए पद्मो की तरह दिखाई दी। (१२)

तरणी—नौका, सूर्य (तरणि) (श्लेष); अंके—गोद में; पुष्कर—कमल, पद्म; (१२)

विख्यात उडुप नाम युक्त ताराळिरे,
व्यग्रवन्त गति करे निशि दिवसरे। ये। १३।

सरलार्थ—चन्द्र तारागण से वेष्टित होकर उडुप के नाम से विख्यात हैं। नौका का एक नाम उडुप भी है। और भी, वह तारालि अर्थात् सुन्दरी वेश्याओं से वेष्टित होकर चन्द्र के समान शोभा धारण करती है। परन्तु पार्थक्य यही है कि चन्द्र केवल रात मे गति करते है और यह नौका दिन तथा रात, हमेशा अति शीघ्र गति करती है। (१३)

उडुप—चन्द्र, नौका; ताराळि—तारों का समूह, सखीगण (वेश्यासमूह); (श्लेष); व्यग्रवन्त—अति शीघ्र। (१३)

बेनि कूळे महारण्य सत्यवाके[1] हीन,
विघन पशुसमूहे सत्यवाके[2] पूर्ण। ये। १४।

सरलार्थ—जिस नदी में वह नौका चल रही है, उस नदी के दोनों किनारो मे काकशून्य, पशुओ से भरपूर और ऋषियो से पूर्ण महारण्य है। (१४)

बेनिकूळे—दोनो किनारो में; सत्यवाके[1]—कौवों से; सत्यवाके[2]—ऋषियों से (यमक और विरोधाभास अलंकार)। (१४)

वाजीगम्य स्थान नोहे सर्व समयरे,
वाजीराजि क्रीड़ा करे विगत भयरे। ये। १५।

सरलार्थ—वह अरण्य इतना घन है कि उसमें अश्वारोही शिकारी का प्रवेश तो दूर रहा, यहाँ तक शर (वाण) भी घुस नही सकता। इसलिए चिड़ियाँ वहाँ निडर होकर क्रीड़ा करती है। (१५)

वाजीगम्य—अश्वारोही या शिकारी के प्रवेशयोग्य; वाजीराजि—पक्षियों का समूह। (१५)

विश्राम आश्रम केते दूरे नाव करि,
बामाक्षी काममोहिनी घेनि बारनारी। ये। १६।
बाहारे रखि जरता चामरकेशीकि,
विलोकि एमन्त बन, एमन्त ऋषिपङ्क्ति। ये। १७।

विपर्य़य पलाशीरे[1] पलाशीरे[2] घन,
विनातप प्रभातप प्रभारे प्रधान। य़े। १८।

विभूति-वाञ्छक[1] नोहि, विभूति-वाञ्छक[2],
वर्जित काम उदय, काम उदयक। ये। १९।

वल्लरी अन्तरे याइँ आरम्भिले गीत,
वल्लकी वजाइ कले सप्तस्वर जात। य़े। २०।

विचारि राग सराग मुनिर जन्माउँ,
वृद्धि पञ्चशरकु पञ्चम स्वर देउँ। ये। २१।

सरलार्थ—वामाक्षी, काममोहिनी आदि वेश्याओ ने चामरकेशी जरता के साथ नौका को आश्रम की थोडी दूरी पर रख कर तपोवन मे प्रवेश-पूर्वक देखा कि वह वन सिहो, वाघो आदि हिंस्र पशुओ से शून्य है। वृक्षसंकुल होने के कारण उसमे सूर्य की किरणे नही पडती। ऋषियो के तप. के प्रभाव से वह वन पवित्र है। वहाँ के निवासी मुनि लोग ऐश्वर्य के प्रति अनिच्छुक तथा भस्माभिलापी है। समस्त इन्द्रिय-जनित सुखो का परित्याग-पूर्वक वे मुक्ति की कामना कर रहे है। ऐसी हालत मे ऋष्यशृग को अपनी-अपनी ओर आकर्पित करने के लिए उन वेश्याओ ने लताओ की ओट मे रहे हुए सप्तस्वरो मे वीणा वजाकर गीत गाये। उन्होने सोच-विचार करके यह निर्णय किया था कि गीतों का राग मुनि के हृदय मे हम लोगो के प्रति अनुराग उत्पन्न करेगा और पञ्चम स्वर कामशक्ति को वढ़ाएगा। (१६ से २१)

विपर्य्यय—शून्य; पलाशी[1]—मासभोजी प्राणी; पलाशी[2]—वृक्ष; (यमक) विनातप—सूर्यकिरणशून्य; प्रभातप—तपस्या का तेज; विभूति-वाञ्छक[1]—धनकामी; विभूति-वाञ्छक[2]—भस्माभिलापी; वर्जित काम—इन्द्रियसुख-परित्यागपूर्वक; काम-उदयक—मुमुक्षु, मुक्तिकामी; (यमक और विरोधाभास); बल्लरी—लता; वल्लकी—वीणा; पञ्चशर—कन्दर्प, काम। (१६ से २१)

बिटपीकि[1] मुनिमणि[1] आउजि य़े थिले,
बिटपीङ्कि[2] मुनि मणि[2] सम्भावना कले। य़े। २२।

वसाइ आसने पुच्छे काहिँ तपिगण,
वस मठ[1] करि, कह मठ[2] न करिण। हे! २३।

बखाण कि कि मन्त्रकु जप करि जाण,
विष्णु, शिव सेवा काहा भावरे निपुण । हे ? २४ ।

सरलार्थ—मुनिश्रेष्ठ ऋष्यश्रृग उस तपोवन मे किसी वृक्ष को पीठ लगाकर बैठे हुए थे । इन वेश्याओ को उन्होने मुनि समझा और आदर-पूर्वक उन्हें बुलाया और आसनों पर बैठाया । तब उन्होने पूछा, "विलम्ब किये बिना शीघ्र बताइए कि आप लोगों का मठ कहाँ है ? कौन सा मन्त्र आप लोग जप करते है ? विष्णु अथवा शिव—किनकी उपासना किया करते है ?" (२२-२४)

विटपीकि[१]—वृक्ष को; आउजि—पीठ लगाकर; मुनिमणि[१]—मुनिश्रेष्ठ; विटपीङ्कि[२]—वेश्याओ को (यमक); मुनि मणि[२]—मुनि समझकर (यमक); बसाइ—बैठाकर; काहिँ—कहाँ; वस—वास करते हो; मठ[१] करि—मठ बनाकर; मठ[२] न करिण—विलम्ब न करके ('मठ' में यमक); बखाण—वर्णन करो; काहा भावरे—किनके भक्तिवाव में। (२२-२४)

बिकाशि हासकटाक्ष ढाळिण रसिका,
बोइले गेलाइ होइ फुलाइ नासिका । ये । २५ ।
बने तुम्भे भ्रम, आम्भे बनीरे बिळसुँ,
बनौका तुम्भे, बनिता आम्भेटि ए बशु । ये । २६ ।
वोलिबार राममन्त्र आद्यवर्ण भिन्न,
बिसर्ग चतुर्थ वर्ण एक करि घेन । ये । २७ ।

सरलार्थ—ऋषि की यह वात सुनकर वेश्याओं ने हास्य प्रकाश करते हुए, कटाक्ष डाल तथा नाक फुलाकर दुलार के साथ कहा, वन मे वास करने के कारण तुम 'वनौका' (ऋषि) कहलाते हो। उसी तरह वनी (उपवन) मै वास करने के कारण हम लोग वनिता कहलाती है। तुम राममन्त्र (रामाय नम.) जप करते हो । हम लोग भी वही मन्त्र जपती है । परन्तु अन्तर इतना ही है कि हम लोगों के मन्त्र मे 'रा' के स्थान पर 'का' होता है। (अर्थात् हमलोग 'कामाय नम' यही मन्त्र जपती है।) आद्य वर्ण के इसी परिवर्त्तन को छोडकर दोनो के विसर्ग सहित अन्य चार वर्ण परस्पर समान है। (२५ से २७)

रसिका—वेश्याओं ने; गेलाइ—दुलार कर; वनी—उपवन; वनौका—वनवासी (ऋषि)। (२५ से २७)

बसन्ति आम्भ देवता शम्भु हृदस्थळ,
बक्षोरुह उरे योडि शीघ्रे कला कोळ। य़े। २८।

सरलार्थ—इसके अनन्तर काममोहिनी नामक वेश्या ने यह कहते हुए कि हम लोगो के आराध्य देवता शिव जी हम लोगों के वक्षों पर विराजमान है, अपने स्तनो को ऋषि के वक्ष पर लगाकर उनको आलिंगन किया। (२८)

शम्भु—शिव; वक्षोरुह—स्तन; उर—छाती, वक्षस्थल। (२८)

बिभूति आम्भ देशर बोलि ततपर,
बोळि देला चूरि काममोहिनी कर्पूर। य़े। २९।

सरलार्थ—काममोहिनी ने फिर कर्पूरचूर—यह कहकर कि "यह हमारे देश का भस्म है", उसे ऋषि की देह मे लगा दिया। (२९)

वासान्तर करि ऋषि देखुँ पयोधर,
बोइले हे हर हर ! मोते कृपा कर। हे। ३०।

सरलार्थ—वस्त्र खोलकर स्तन देखते ही ऋषि बोल उठे, "हे महादेव ! मुझ पर दया करो।" (३०)

वासान्तर करि—वस्त्र खोलकर; देखुं—देखते ही; हर—महादेव। (३०)

विलीन वेनि अर्थकु विहुँ से वचने,
विधान कला मुखरे चुम्बने चुम्बने। ये। ३१।

सरलार्थ—परन्तु उसमे "हे हर-हर !" अर्थात् "हे हर-धैर्यलोपकारी कन्दर्प ! मेरी रक्षा करो"—ऐसा एक द्वितीय अर्थ भी प्रच्छन्न रूप मे था। काममोहिनी ने इसी द्वितीय अर्थ को उचित अर्थ समझकर, ऋषि के मुख पर वार-वार चुम्बन दिया। (३१)

विलीन—अति गुप्त; वेनि अर्थ को—द्वितीय अर्थ को। (३१)

वनीफळ कहि पक्व कदळी भुञ्जाइ,
वाण पयःपेटी पयः पान से कराइ। य़े। ३२।
बोधि चित्त ए आम्भ निर्झर नीर कहि,
बृष्यकारी कामराज अधाम पूराइ। ये। ३३।

बाढ़िले य़े घृतपक्व आमिक्षा अग्रते,
बर्ण पुच्छे कि, भोजन कर से बोलन्ते । ये । ३४ ।

सरलार्थ—अनन्तर वेश्याओं ने "ये उपवन के फल है" यह कहकर ऋषि को खाने के लिए पके हुए केले दिये और "यह हमारे देश का झरना (पानी) है"—यह कहकर नारियल का पानी पीने के लिए दिया। कुछ समय के वाद बलबर्द्धक तथा कामोद्दीपक मलाई, छेना आदि सामने परिवेषण करके ऋषि से खाने के लिए अनुरोध करने पर ऋपि ने उनसे उनकी जाति पूछी । (३२ से ३४)

वाणपयःपेटी—वॉका (छोटा) नारियल; पयः—जल; बृष्यकारी—वलकारक; आमिक्षा—छेना । (३२ से ३४)

बिप्र तुम्भे, आम्भे य़ाहा बोलाउँ ता शुण,
बिप्रलब्धा घेनि अष्ट जातिरे निपुण । ये । ३५ ।

सरलार्थ—वेश्याओ ने कहा, तुम 'विप्र' (ब्राह्मण) हो, हम लोग विप्रलब्धा आदि आठ प्रकार की नायिकाओ के लक्षणो मे निपुण है । (३५)

बाळिकाए बोलुँ मुनि भुञ्जि स्वाद पाइ,
बटु ! तुम्भ तप धन्य बोलि प्रशंसइ । ये । ३६ ।

सरलार्थ—वेश्याओ के इस प्रकार कहते हुए मुनि सारी चीजे भोजन करने लगे और उनका स्वाद पाकर प्रशंसा की, "हे बटुओ (ब्राह्मणो) ! तुम लोगो की तपस्या धन्य है।" (३६)

वटु—ब्राह्मण । (३६)

बटु याहा बोइल प्रमाण अनुस्वारे,
बात्स्यायन शास्त्र-पढ़ा गुरु छन्ति दूरे । ये । ३७ ।

सरलार्थ—ऋषि की यह वात सुनकर वेश्याओ ने कहा, "हम लोगो को आपने जो 'बटु' सम्वोधन किया, वह अनुस्वार (ˉ) के योग से प्रमाणित होगा । (अर्थात् हम लोग पुरुषो को 'बटु' अर्थात् ठगती है ।) कामशास्त्र मे निपुण हम लोगों की गुरु इस स्थान से थोडी दूरी पर है ।" (३७)

वात्स्यायन-शास्त्र—कामशास्त्र; छन्ति (अछन्ति)—है । (३७)

बेळास्त हेबार जाणि, मेलाणि हेलुटि,
बार मुखे भाषि उठुँ, गले से पाछोटि। ये। ३८।
बाटे रहि रहि कहि गले बाराङ्गना,
बाहुड़िबा हेउ, आम्भे कालि आसुँ सिना। ये। ३९।
विह्वळिते आसिबारे कराइ नियम,
बाहुडिले ऋष्यश्रृग आपणा आश्रम। ये। ४०।

सरलार्थ—इस समय सूर्य को अस्तगामी होते देखकर बारह वेश्याओं ने ऋषि से विदा लेने की बात कही। तब ऋषि उन्हे विदा देने के लिए कुछ दूर तक गये। उन्होने रास्ते मे ऋषि से कहा, "आप लौट जाइए, हम लोग कल फिर आएँगी।" ऋष्यश्रृग ने विह्वल होकर उनसे निश्चय आने का शपथ कराया और आश्रम को वापस आये। (३८ से ४०)

मेलाणि—विदा; गले से पाछोटि—वे विदा देने गये; बाहुड़िबा हेउ—आप लौटिए; आसुँ—आएगी; सिना—निश्चयबोधक अव्यय; बाहुडिले—लौटे। (३८ से ४०)

बहित्र-प्रतिम नावे प्रवेश नागरी,
ब्यवसाय-चय कहि व्यवस्थित करि। ये। ४१।

सरलार्थ—वहित्र अर्थात् जहाज-सदृश सुन्दर उसी नौका मे वेश्याओं ने प्रवेश किया एव 'व्यवसाय-चय' अर्थात् ऋषि के साथ अपनी-अपनी जो घटनाएँ घटी थी, जरता से सब बताई। (४१)

विभाण्डक आसि पुच्छे जानुरे बसाइ,
बिषाण-ऋष्य अंगरु सुबासकु पाइ। ये। ४२।

सरलार्थ—विभाण्डक ऋषि ने तपस्या-स्थल से लौट कर ऋष्यश्रृग को अपनी गोद मे बैठाया और उनके शरीर से सुगन्ध का अनुभव करके उनसे उसका कारण पूछा। (४२)

विषाणऋष्य—ऋष्यश्रृंग। (४२)

बकता सकळ कथा, कितबे भाषित,
बिभावरी-चरी से भक्षन्ति तपिसुत। ये। ४३।

व्यवहार कले निश्चें ताहाङ्क सङ्गरे,
वाबु, हैवु अग्नि प्रीति पतंग प्रकारे। ये। ४४।

सरलार्थ—ऋष्यश्रृग ने पिता को सारी बाते कह सुनाई। तब विभाण्डक ने पुत्र से कपट (श्लेष) से कहा, "वे सब निशाचरियाँ (राक्षसियाँ) हैं। ऋपिपुत्रो को भक्षण करती है। अरे वस्त ! उनके साथ अगर तुम व्यवहार करोगे, तो अग्नि मे पतगों के समान जल मरोगे। (४३-४४)

वक्ता—वोले; कितवे—कपट से, श्लेष से; विभावरी-चरी—राक्षसी। (४३-४४)

विरोधोक्ति जनकर न घेनिले लव,
वुजिले नेत्र स्वपने देखे सेहि भाव। ये। ४५।
विभावरी अन्त तात तपस्थाने गत,
वश करिथिले रामा छन्न मुनिसुत। ये। ४६।

सरलार्थ—ऋष्यश्रृग ने पिता के निषेध-वाक्यो का लेशमात्र ग्रहण नही किया। सोते समय स्वप्नो मे केवल उन्ही वेश्याओ के भावों को देखते रहे। प्रभात होने पर विभाण्डक जगकर तपस्थल चले गये। वेश्याओ ने मुनिसुत ऋष्यश्रृग के मनोराज्य को यहाँ तक अधिकृत कर लिया था कि उनका मन चचल होने लगा। (४५-४६)

विरोधोक्ति—निषेध-वाक्य; न घेनिले—ग्रहण नही किया; लव—लेशमात्र; वुजिले नेत्र—आँखें मूँदने पर (सोने पर)। (४५-४६)

विप्रलम्भ श्रृंगार ये उदय मानस,
वाञ्छे पुनः पुनः रामा चुम्बन आश्ळेष। ये। ४७।

सरलार्थ—वेश्याओं के वियोग से ऋष्यश्रृग के मन मे 'विप्रलम्भ श्रृगार' भाव का उदय हुआ। सुतरां उन्होने उनके चुम्वन तथा आलिगन की पुन· पुनः इच्छा की। (४७)

वाञ्छे—इच्छा की; रामा—वेश्याओं की; आश्ळेष—आलिंगन। (४७)

बारवार आश्ळेषरे न आसे चुंकार,
बनप्रिय डाकुँ कर्ण्ण टेकइ सत्वर। ये। ४८।

सरलार्थ—ऋषि के मन मे वार-वार आलिगन का भाव बढ उठने से चुम्बन देने का शब्द उच्चारित नही हुआ। कोयल की वोली सुनकर ऋषि उस तरफ कान दे रहे थे। कही वेश्याएँ न पुकार रही हों। (४८)

वर्नप्रिय—कोयल; डाकुं—बोलने पर। (४८)

वाह प्राय गति करि पुणि लेउटइ,
वळीवर्द्द यथा ऋतु धेनुकु इच्छइ। ये। ४९।

सरलार्थ—उनके गये हुए मार्ग मे ऋषि घोड़े की तरह कुछ दूर दौडते और फिर लौट आते थे एव ऋतुमती गाय को प्राप्त करने की आशा से वैल (साँड) जिस प्रकार इधर-उधर दौडता है, ऋषि भी इधर-उधर होने लगे। (४९)

वाह—घोड़ा; धेनु—गाय। (४९)

वळाध्वनि करि घेनि झिंकारि झंकार,
वातायु डाळिघण्टिरे वश परकार। ये। ५०।

सरलार्थ—ऋषि झीगुरो की ध्वनि को वेश्याओ की पाजेवो की ध्वनि समझकर उसे वैसे ही आग्रह के साथ सुन रहे थे, जैसे हिरन काष्ठघण्टी की ध्वनि को मन दे कर सुनता है। (५०)

वातायु—मृग, हिरन; डालघण्टी—लकड़ी की घण्टी। (ओड़िआ मे इसे 'टिपा' कहते है) (५०)

विन्धिवा आरम्भि आणु मनोज-पुळिन्द,
बाचाळ प्राय जनम हेउछि उन्माद। ये। ५१।

सरलार्थ—कन्दर्प रूपी शवर के ऋषि की ओर पुष्पशर मारने से पागल की तरह ऋषि का चित्त-विभ्रम सघटित हुआ। (५१)

विन्धिवा—विंधना; मनोज-पुळिन्द—कन्दर्परूपी शवर; (शवर—शिकारी के अर्थ में); वाचाळ—पागल। (५१)

वढिबारु वेळुंवेळ प्रेमनदी तहिँ,
बुड़ नाहिँ चेता तृण पराय भासइ। ये। ५२।

सरलार्थ—ऋषि के मन मे उतके प्रति जो प्रेम पैदा हुआ था, वह

नदी का रूप धारण करके धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उस प्रेम-नदी में ऋषि की चेतना डूबने के बजाय घास की तरह उतरा उठी। (अर्थात् वे कन्दर्प की पीड़ा से अचेत होने के बजाय सचेत थे।) (५२)

तृण पराय—घास की तरह; भासइ—उतरा उठी। (५२)

विळम्ब काहिँकि बेगे आस बेगे आस,
बेळ बळि गले मिथ्या हेउछिटि भाष। ग्रे। ५३।
बोलि बोलि आश्रम प्रान्तकु से ये गले,
बृक्षारूढ़े आसिवार पथ निरीक्षिले। ग्रे। ५४।

सरलार्थ—ऋषि, कन्दर्प के शराघात से पागल हो उठे थे। इसलिए कभी बोल उठते, "देर क्यो कर रही हो? शीघ्र आओ। नियत समय बीत जाने पर तुम लोग मिथ्यावादी जो होगी।" यह बोलते हुए आश्रम के प्रान्त को चले गये और पेड़ पर चढ कर उनके आने की राह को जोहने लगे। (५३-५४)

व्यथित हेबार तपोधन पुण्यु आसि,
वरचतुरी देखन्ति कुञ्जोदरे पशि। ग्रे। ५५।

सरलार्थ—इस समय ऋषि के पुण्यबल से चतुरी वेश्याएँ वहाँ आ पहुँची और लता-कुञ्ज की ओट मे ठहरकर ऋषि के दुख देखने लगी। (५५)

वरचतुरी—वेश्याएँ; कुञ्जोदरे—लताभ्यन्तर में। (५५)

बिस्मय चित्तु तेजिले चाहिँ वश हेबा,
बारण परि रे तरी-टोपे पकाइबा। ग्रे। ५६।
बोधिद्रुम-दळ तुल्य तनुभोग देइ,
बिक्रय करिबा नृपतिरे धन पाइ। ग्रे। ५७।

सरलार्थ—ऋष्यश्रृंग को ऐसी हालत मे देख वेश्याओ ने अपने-अपने हृदय से विस्मय (सन्देह) परित्याग-पूर्वक यह निश्चय किया कि ऋषि हम लोगो के वशीभूत हो पड़े है, और यह तय किया कि हाथी के समान इन मुनि को नौका रूपी गड्ढे में डालकर अश्वत्थ-पत्र के समान हम लोगों के

शरीरो को भोग निमित्त दान करके लोमपाद राजा को वेच देगी और धन पाएँगी। (५६-५७)

विस्मय—आश्चर्य, सन्देह; वारण परि—हाथी की तरह; तरी-टोपे—नौका रूपी गड्ढे मे; पकाइवा—डालेंगी; वोधिद्रुमदल—अश्वत्थ-पत्र। (५६-५७)

वाहारिले पाञ्चि तरुणीए लता मध्युँ,
विलोकि पाशे मिळिले से आजन्मसाधु। ये। ५८।

वाहु छन्दाछन्दि काममोहिनी सङ्गर,
विकार अधिके चुम्वे पुलक सञ्चार। ये। ५९।

सरलार्थ—यह सोचकर युवतियाँ लताकुन्ज से निकली। आजन्म-ब्रह्मचारी ऋष्यश्रृग उन्हे देखकर उनके निकट आ पहुँचे और वाहुवन्धन से काममोहिनी को आलिंगन करने से उनका कामविकार वढ गया और चुम्वन देने से शरीर में पुलक उत्पन्न हुआ। (५८-५९)

बोइले जरता गुरु लोभित दर्शने,
विजे कर थरे उटजकु कृपामने। ये। ६०।

सरलार्थ—वेश्याओं ने ऋषि से कहा, "हम लोगों की गुरु 'जरता' आपके दर्शन के लिए आग्रह प्रकाश कर रही हैं। दयापूर्वक आप एक ही वार हम लोगो के नौकारूपी पर्णकुटीर पर विराजिए।" (६०)

उटज—पर्णकुटीर, झोपडी। (६०)

ब्रह्मवश रतिशास्त्र ताठारु जाणिव,
विह्वळे सम्मत करि चळिले से जव। ये। ६१।

सरलार्थ—"हम लोगों की गुरु से आप महानन्ददायक रतिशास्त्र-शिक्षा प्राप्त करेंगे।" ऋषि उनकी इस वात से सम्मत होकर विह्वलता से उनके साथ शीघ्र चले। (६१)

ब्रह्मवश रतिशास्त्र—महानन्ददायक रतिशास्त्र; जव—शीघ्र। (६१)

विक्रमि नउकारे प्रवेश हेवा चाहिँ,
वारि भरि झरी पाद धोइ तुम्वी कहि। ये। ६२।

सरलार्थ—ऋषि को नौका मे प्रविष्ट होते देख, जलपूर्ण झारी लाकर वेश्याओ ने ऋषि के पैर धो दिये और वह झारी दिखाकर कहा कि यह हम लोगों की तुम्वी है। (६२)

विक्रमि—जाकर; वारि—जल। (६२)

बळ्कळ बोलि पिन्धाइ कौशेय वसन,
व्याघ्रचर्म भ्रमरे सिन्धुआ शय्यामान। ये। ६३।

बिबिध स्वादु पदार्थ कराइ अशन,
बसाइ चूळ कुसुमे चन्दन लेपन। ये। ६४।

बसिला ओळगि पाशे जरता सुमुही,
बेष्टिता लता पादपे परा कोळ बिहि। ये। ६५।

सरलार्थ—जरता ने ऋषि को प्रणामपूर्वक वल्कल कहकर एक रेशम वस्त्र पहना दिया और व्याघ्रचर्म कहकर कोमल पट्टवस्त्रों की शय्या पर उन्हें बैठाया, उन्हे विविध स्वादु पदार्थ खाने को दिये। उनकी जूडा को फूलो की माला से बाँध शरीर पर चन्दन लगा दिया। अनन्तर जरता ने ऋषि को अपनी भुजाओं से आलिंगन किया, जिस प्रकार लता वृक्ष को वेष्टित करती है। (६३ से ६५)

वल्कल—पेड़ की छाले; कौशेय वसन—रेशम-वस्त्र; सिन्धुआ—एक प्रकार का पट्ट वस्त्र; अशन—भोजन; पादप—वृक्ष। (६३ से ६५)

बिज्ञा से प्रथम रसे चन्द्र चाळि देला,
विज्ञाने ऋषिकुमार उत्ताने शोइला। ये। ६६।

सरलार्थ—शृंगाररसपण्डिता जरता के चन्द्रचालन करने से ऋषि मोहित हो पीठ के वल सोये। (६६)

विज्ञा—पण्डिता; प्रथमरस—आदिरस; विज्ञाने—अचेतन होकर; उत्ताने—उद्ध्वमुख, पीठ के वल। (६६)

बिधुनन आरम्भिला पुरुषायितरे,
बनपति उपरे हरिणी लीळा करे। ये। ६७।

बैश्वानर परे नृत्य करे शुभ्रापाङ्गी,
बिषम समस्याहिं पूरण श्ळेषभङ्गी। ये। ६८।

सरलार्थ—जरता ने अब विपरीत रति शुरू कर दी। ऋषि पर उसके क्रीडा करते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो सिह पर मृगी, अग्नि पर स्वाहा देवी अथवा विष्णु पर लक्ष्मी नृत्य कर रही हो। इन दो पदो मे कवि ने श्लेष छटा से विषम समस्याएँ पूरी की। (६७-६८)

विधुनन—रति; पुरुषायित—विपरीत रति; वनपति—सिंह, ऋषि; हरिणी—मृगी, हिरनी, हरिणाक्षी (श्लेष); वैश्वानर—अग्नि (अग्नि तुल्य ऋषि), परमात्मा, विष्णु; शुभ्रापांगी—स्वाहादेवी, लक्ष्मी; (श्लेष) (६७-६८)

बसुँ चेता, भावे अनअनुभवी युबा,
बिबुधाळय सुख ये सेहि एहि अबा । ये । ६९ ।
बाजिणी किंकिणी बाद्य ताळिताळि स्वन,
ब्याख्यान ध्वनि श्ळेष से करइ प्रधान । ये । ७० ।

सरलार्थ—रति-सुख मे एकान्त अनभिज्ञ युवक ऋष्यशृंग ने सुधि मे आकर इसको स्वर्गसुख समझा और किंकिणी-नाद को बाद्य-ध्वनि, करताडन शब्द को करताली शब्द और जरता से प्रकाशित शब्द को संगीत के आरम्भ-कालीन तान समझा । (६९-७०)

बिबृद्ध हुअइ सेहि स्मरनामा हृदे,
बादे बेणी हार नाचे निश्चय से बाद्ये । ये । ७१ ।

सरलार्थ—ऋषि के हृदय मे कन्दर्प-विकार धीरे-धीरे बढ़ने लगा और किंकिणियो के बजने से जरता की वेणी तथा हार दोनो आपस मे विवाद करके नाचने लगे । (अर्थात् जरता के गाढ़ रति मे निमज्जित होने से वेणी तथा हार बड़े जोर से हिलने लगे । (७१)

स्मरनामा—कन्दर्प । (७१)

बाहिले सलिळरथ कैवर्त्ते सेकाळे,
बाहुक प्राये से दण्ड धारणे दिशिले । ये । ७२ ।

सरलार्थ—उस समय केवट लोग नौकारूपी रथ खेने लगे । जब उन लोगो ने अपने-अपने हाथो से बल्ले पकडे, तो वे सारथियो के समान दिखाई दिये । (यहाँ पर नौका की जगन्नाथ महाप्रभु के रथ सहित तुलना की गयी है और केवटो की सारथियो सहित तुलना की गयी है । महाप्रभु की रथ-यात्रा का दृश्य उपमा तथा रूपक अलकारो मे प्रदत्त है ।) (७२)

कैवर्त्ते—केवट लोग; सलिळ-रथ—जलगामी रथ, नौका; बाहुक—सारथि; दण्ड—खेने के बल्ले । (७२)

बीचि रज्जु, मीन-कूर्म झिङ्काजन योखे,
बेनिरोधे मृगमृगी, नरनारी देखे । ये । ७३ ।
बस्त्रकुच्चा चिराळ चामरे से मण्डन,
बिस्तृति रूपक रथयात्रार समान । ये । ७४ ।

बासर निशा हेबार जणा नोहे तहिँ,
बामा द्वादशे खटन्ति रतिरसे मोहि। ये। ७५।

सरलार्थ—जगन्नाथ जी के रथ में रस्सियाँ लगी रहती है। इस जलगामी रथ मे उसी तरह लहरे रस्सियों के समान लगी हुई हैं। उनके रथ को बहुत लोग खीचते है। इस रथ को मछलियाँ तथा कछुए खींच रहे है। उनके रथ को अनेक नर-नारियाँ देखते है। इस रथ को नदी के दोनों किनारों पर मृग-मृगियाँ तथा नर-नारियाँ देख रहे है। उनका रथ पताकाओं तथा चामरो आदि से मण्डित है। यह रथ भी कुञ्चित वस्त्रों से मण्डित हुआ है। रथयात्रा के समय महोत्सव के कारण दिन-रात मे भेद नहीं रहता। इस रथ-यात्रा मे भी दिन-रात का भेद मालूम नहीं हो सका, चूँकि ऋषि और जरता आदि रति-रस मे निमज्जित हुए थे। सुतरां यह नौका-यात्रा जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा से सर्वतोरूपेण समान थी। (७३ से ७५)

वीचि—लहरें; रज्जु—रस्सियाँ; वेनिरोधे—दोनों किनारों पर; वस्त्रकुञ्चा—कुञ्चित वस्त्र; चिराळ—पताकाएँ। (७३ से ७५)

बेळारे लागिला नाव चम्पावतीपुरे,
बरषिला ऋषि झरनीर लोड़िबारे। ये। ७६।

बहिला प्रवाह, पूर्ण केदार होइले,
बिभाण्डक-पुत्र पाशे लोमपाद मिळे। ये। ७७।

सरलार्थ—चम्पावतीपुर के घाट पर नौका पहुंची। ऋषि के चाहते ही नीर झरने लगा। चारों ओर जल-स्रोत छूटने लगे। धान-क्यारियों मे पानी भर गया। यह सब देखकर विभाण्डक-पुत्र ऋष्यशृंग के पास राजा लोमपाद आकर मिले। (७६-७७)

बेळा—किनारा; प्रवाह—स्रोत; केदार—क्यारियाँ। (७६-७७)

बिरचिले लक्ष्य गिरि संगे ऋष्यशृंग,
बिघात-वज्र-सुहास योगे दम्भ भंग। ये। ७८।

सरलार्थ—राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को देखकर पर्वत सहित उनकी तुलना की। क्योकि पर्वत पर जैसे शृग (चोटियाँ) है, वैसे इनके मस्तक पर शृंग (सीग) है। वज्राघात से पर्वतो का दम्भ भग्न हुआ था। वेश्याओं के मन्द-हास-वज्र से ऋषि का दम्भ भी चूर्ण हो गया है। (७८)

विषय बुझाउँ ग्रोषा महातपोबन्ते,
वाञ्छि कल्याण बसाइ राजा दण्डबते। ये। ७९।

विमळ चित्ते मण्डिले याइ तार पुरी,
बरदाता पुत्रदाने होमारम्भ करि। ये। ८०।

सरलार्थ—वेश्याओ के सारी बाते समझा-वुझा कर राजा से कहते समय, राजा ने महातपोवन्त ऋष्यश्रृंग को प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हे कल्याणपूर्वक अपने पास वैठाया। उसके वाद राजभवन मे ऋषि ने प्रवेश किया और "तुम्हे पुत्र की प्राप्ति हो" यह वरदान देकर पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया। (७९-८०)

वाककल्याणिए शुणि दशरथे कहि,
वेश्या जरता-प्रमुख्या जाङ्गळिका होइ। ये। ८१।
बिवर पर्णकुटीरे थिले मुनि-नाग,
बजाइ सप्तकी नागेश्वर बाद्य बेग। ये। ८२।
विभेदित-कृतचित्त रसगीत गाइ,
विधुचूर्ण मन्त्र-धूळि पकाइ पकाइ। ये। ८३।
वाहारकु आणि नाब-पेड़ारे मुदिला,
विळासवश करिण पुणि खेळाइला। ये। ८४।
वारबामा वार भोगिनीरे सेहि योगी,
विगरित एणिकि से बोलाइबे भोगी। ये। ८५।

सरलार्थ—एक व्राह्मण यह वात सुन आकर दशरथ से वोले, "वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने विपवैद्या (अर्थात् सँपेरिन) के रूप मे पर्णकुटीर-रूपी गर्त्त-स्थित मुनिरूपी नाग के चित्त को वीणारूपी नागेश्वर वाजा बजा के आदिरसपूर्ण सगीतरूपी पद्मतोला गान से द्रवीभूत किया, और वार-वार उनके शरीर पर कर्पूर-चूर्णरूपी मन्त्ररज डालकर उन्हे वाहर ले आयी, नौकारूपी पिटारी मे वन्द कर रखा तथा नानाविध रस-क्रीडाओ से उन्हे वशीभूत कर खेलाया। वही 'योगी' मुनि-नाग सहवास-योग्या बारह वेश्याओ के द्वारा विगरित (अर्थात् विषशून्य अथवा क्रोध-शून्य) हुए। अव वे भोगी (अर्थात् भोगशाली अथवा रसिक) कहलाएगे।" (८१ से ८५)

वाक-कल्याणि—व्राह्मण; प्रमुख्या—श्रेष्ठा; जाङ्गळिका—विषवैद्या, सँपेरिन; विवर—गर्त्त; सप्तकी—वीणा; नागेश्वर—साँप खेलाने का वाजा (वीन, तुम्वी); विभेदित-कृत-चित्त—हृदय को पिघलाकर; रसगीत—आदिरसपूर्ण संगीत, पद्मतोला—(साँप को वशीभूत करने के लिए सँपेरा जो गान गाता है, मउहर) विधुचूर्ण—कर्पूर-चूर्ण; वारवामा—वेश्या; भोगिनी—साँपिन, सहवास योग्या; विगरित—विषशून्य, क्रोधशून्य; भोगी—भोगशाली, साँप (रूपक तथा श्लेषालंकार)। (८१ से ८५)

बहि नागरे ईश्वरपरि चम्पापुरे,
बसन्ति कृपाळु होइ कुमार दानरे । ये । ८६ ।

सरलार्थ–आगे ब्राह्मण ने कहा, "रसिक और शिवजी जिस तरह चंपा फ़ूल का आदर करते है, उसी प्रकार ऋषि चम्पावतीपुर का आदर कर, वहाँ वास करते है। उन्होने उस पुरी के राजा (लोमपाद) को पुत्रदान देने के लिए दया दिखायी है, मानो शकरजी ने कार्त्तिकेय पर दया प्रकाश की हो । (८६)

नागरे—रसिक लोग; ईश्वर—शिवजी; चम्पापुरे—चम्पा फूल में, चम्पावतीपुर में; कुमार—कार्त्तिकेय, पुत्र (श्लेष) । (८६)

बार्त्ता शुणि तोष त्वरा होइ सूर्य्यवंशी,
बळ सज करि चम्पापुरे मिळे आसि । ये । ८७ ।

सरलार्थ–यह समाचार सुनकर सूर्यवंशीय राजा दशरथ सन्तुष्ट हुए और शीघ्र ससैन्य चम्पावतीपुर मे प्रविष्ट हुए । (८७)

बाटुँ लोमपाद नेइ ऋषिङ्कि भेटाइ,
बिकशितहास करि कल्याणे बसाइ । ये । ८८ ।

सरलार्थ–लोमपाद ने दशरथ को मार्ग से स्वागतपूर्वक ग्रहण किया और ऋषि से मिला दिया । ऋषि ने मन्दहास-प्रकाश-पूर्वक राजा को आशीर्वाद किया और पास वैठाया । (८८)

विप्रोत्तम पुच्छे तब सर्वमंगळ कि ?
बोले विकल्पे पुच्छिल सर्वज्ञतरकि । ये । ८९ ।

सरलार्थ–ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋष्यश्रृग ने दशरथ से पूछा, "क्या आपका सव कुशल है तो ?" यह प्रश्न सुनकर दशरथ ने तर्क करके कहा, "आप तो सर्वज्ञश्रेष्ठ है, ऐसा क्यो पूछ रहे है ? (८९)

विप्रोत्तम—ब्राह्मणश्रेष्ठ (ऋष्यश्रृंग); विकल्पे—तर्क करके; सर्वज्ञतर—सर्वज्ञश्रेष्ठ । (८९)

व्यथा जनमुँ विनति होइण तदर्थी,
वररूपाजीवा अछि कहिदेला एथि । ये । ९० ।
वराङ्गना सुन्दरीरतन तव सुता,
बिवाह कर यतीन्द्रे हेबे सुतदाता । ये । ९१ ।

बीरवर उपइन्द्र भञ्ज कहे रस,
बयाणोइ पदरे ए छान्द हेला शेष । ये । ९२ ।

सरलार्थ—'पुत्रकामी होकर राजा दशरथ आये हैं'—यह जानकर ऋषि को बड़ा दुःख हुआ । इस समय वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने दशरथ से कहा, "आप अपनी सुन्दरी-शिरोमणि नारी-श्रेष्ठा कन्या शान्ता को इन्हीं मुनि-श्रेष्ठ के विवाह-सूत्र मे अर्पण कीजिए । वे आपको पुत्रलाभ के लिए वरदान करेगे । वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने बयानवे पदो मे इस रसपूर्ण छान्द को समाप्त किया । (९० से ९२)

तदर्थी—पुत्रकामी; वररूपाजीवा—वेश्या-श्रेष्ठा; वराङ्गना—नारीश्रेष्ठा; यतीन्द्र-मुनिश्रेष्ठ; सुतदाता—पुत्रदाता । (९०-९२)

॥ इति चतुर्थ छान्द ॥

पञ्चम छान्द

राग—मङ्गळगुज्जरी

विभाकरवंशी शुणि पुलक बहि ।
विभा कर लग्न बुझि बशिष्ठे कहि । १ ।

सरलार्थ—सूर्यवंशीय राजा दशरथ ने जरता की यह बात सुनकर वशिष्ठ से कहा, "शुभ लग्न निर्णय करके विवाह कराओ" । (१)

विन्यास कले से बाणी सन्ध्यावसाने ।
बसाइवा मण्डपरे कन्या सुमने । २ ।

सरलार्थ—यह सुन वशिष्ठ ने कहा, "सन्ध्या के बाद स्थिर मन से विचार करके कन्या शान्ता को विवाह-मण्डप में बैठाएँगे" । (२)

बिजन स्थानरे बसि बेनि नृपति ।
विविध सम्भार करि नग्र मण्डान्ति । ३ ।

बासङ्गरस नबानुभबी भ्रमर ।
बारिजबास लभि कि नोहे आतुर ? ४ ।

वारस्त्रीकि पुच्छि एकान्तरे ता कान्त ।
बर्द्धन अर्थे क्रमे से शोभा कथित । ५ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ और लोमपाद, दोनों ने एकान्त में बैठकर वड़ी सज-धज से नगर का मण्डन करवाया । जिस भ्रमर ने पहली बार बासक फूल का रस आस्वादन किया है, वह कमल की सुगन्ध पा कर उसके रसास्वादन के लिए क्या आतुर नही होता है ? वेश्यारत ऋषि राजकन्या की रति की आशा से उसी तरह आतुर हो उठे और जरता से राजकन्या की कान्ति अर्थात् सुन्दरता के वारे मे पूछा । जरता ऋषि का स्नेह बढ़ाने के लिए शान्ता के सौन्दर्य का वढ़-चढाकर वर्णन करने लगी । (३-४-५)

बासंगरस—बासक फूल का रस; बारिज-बास—कमल की सुगन्ध; (ऋषि की भ्रमर से, वेश्या की बासक फूल से तथा शान्ता की कमल से तुलना है); बारस्त्री—वेश्या;

पुच्छि—पूछा; एकान्तरे—एकान्त मे; ता कान्त—उसकी अर्थात् राजकन्या की कान्ति ("कान्त" मे यमक अलकार)। (३-४-५)

विलक्ष्य पाश पाटळी सारस पाळि।
वाहु श्रवण उदर गण्डरे दळि। ६।

सरलार्थ—"पाश, पाटली फूल, कमल तथा तलवार की मूठ से क्रमश. स्वभावसुन्दर वाहुओ, कानो, उदर तथ कपोल की तुलना साधारणतया की जाती है। परन्तु शान्ता के उक्त अवयवो की यदि उपर्युक्त वस्तुओ से तुलना की जाय, तो ऊपर-लिखित वस्तुओ की शोभा नीचे लिखी वस्तुओं की शोभा से दलित हो जायगी। (६)

पाश—अस्त्रविशेष—(बांधने वाला जाल); पाटली फूल—पाढ़र का फूल (संस्कृत-पाटल); खड्गपाळि—तलवार की मूठ; गण्ड—गाल (कनपटी) (व्यतिरेक अलकार)। (६)

वक्षोज नितम्व चक्रे पकाइ डका।
विभ्रम भ्रमरे लक्ष्य नाभि अळका। ७।

सरलार्थ—उसके स्तनो से चक्रवाक पक्षी तथा नितम्व से रथ के चक्के सुन्दरता मे समान न हो सकने के कारण गमन के समय ध्वनि के मिस (के के करके) करुण पुकार कर रहे है। उसकी नाभि से जल के भँवर तथा घुघराले वालो से भौंरो की तुलना करना एक भ्रम ही मात्र है। (७)

वक्षोज—स्तन; नितम्व—कमर के पीछे का भाग; चक्रे—चक्रवाक, रथ चक्र (श्लेष); विभ्रम—जल के भँवर; भ्रमरे—भौंरे, भ्रान्ति (श्लेष); (व्यतिरेक अलंकार)। (७)

विस्तीर्ण्णरे शोभा रम्भा प्रभाकु गञ्जि।
वृशाळ ऊरुयुगळ चरम राजि। ८।

सरलार्थ—उसकी दोनो वड़ी जाघो के प्रान्त भाग विशेष रूप से केले के वृक्ष की शोभा की निन्दा कर रहे है। (८)

विस्तीर्णरे—विशेष रूप से; रम्भा—केले का वृक्ष; प्रभा—कान्ति, गञ्जि—धिक्कारना, निन्दा करना; वृशाळ—उन्नत, वडे; ऊरुयुगळ—दोनो जांघें; चरमराजि—प्रान्त भाग समूह। (८)

विघटित हरि ओष्ठे प्रातोदयरे।
विशीर्ण्ण कटि नासिका मधुर गिरे। ९।

सरलार्थ—उसके होठो से उदयकालीन सूर्य की, क्षीण कटि से सिह की कटि की, नाक से तोते की चोच की, और मधुर वाणी से कोयल की वोली की तुलना नही हो सकती। (९)

हरि—सूर्य, सिंह, शुक (तोता), कोयल (श्लेष); विशीर्ण—क्षीण (व्यतिरेक अलंकार)। (९)

विलक्षित चन्द्रहासे तनु शीतळे।
वर्ण्ण सुलपन रोमावळीर तुले। १०।

सरलार्थ—उसकी हँसी से चाँदनी की, शरीर की शीतलता से कर्पूर, जल या चन्दन की, वर्ण से सुवर्ण की, मुख से चन्द्र की, और रोमावली से एला-लता (इलायची की लता) की शोभा की तुलना नही हो सकती। (१०)

चन्द्र—चन्द्रिका, कर्पूर, जल, चन्दन, सुवर्ण, चन्द्र व इलायची, (श्लेष); सुलपन—सुन्दर वदन; (व्यतिरेक अलंकार)। (१०)

बाळभ्रूलता लोचन गमन गळा,
बपु सुगन्धे सारंगे नोहिवे तुळा। ११।

सरलार्थ—उसके केशगुच्छ से मेघ, भौहों से धनुष, चक्षुओ से चकोर, गति (चाल) से हंस या हाथी, कण्ठ से शख और शरीर की सुगन्ध से कमल तुलना के योग्य नही है। (११)

सारङ्ग—मेघ, धनुप, चकोर, हंस या हाथी, शंख तथा कमल, (श्लेष)। (११)

विधाता शोभा विधाने शान्त से शान्ता।
बोलि मउन होइला बार-बनिता। १२।

सरलार्थ—"इसकी शोभा का निर्माण समाप्त करके विधाता शान्त हुए; अर्थात् विधाता की सुन्दरी-निर्माण-इच्छा ने यही से शान्ति प्राप्ति की; इसीलिए इसका नाम शाप्ता पड़ा है।"—इतना कहकर वेश्या जरता चुप हो गई। (१२)

मउन—चुप; वारवनिता—वेश्या। (१२)

विधुन्तुद प्राय होइ सन्ध्या आसिला।
बिबस्वान-ग्रासी रङ्गभाव दिशिला। १३।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सन्ध्याकाल ने राहु की तरह उमड़ कर सूर्य को ढक लिया। पश्चिम-आकाश लाल रग का दिखाई दिया। (१३)

विधुन्तुदप्राय—राहु की [illegible] वानग्रासी—सूर्य का ग्रासकारी। (१३

सरलार्थ—एकाएक अन्धकार के उमड़ आने से ऐसा प्रतीत हुआ मानो कृष्णवर्णा सन्ध्या-रमणी ने लाल साड़ी पहनी हो, अथवा सरस्वती नदी कालिन्दी (यमुना) नदी से मिलकर प्रवाहित हो रही हो ! (सरस्वती का जल लाल और यमुना का जल काला है। इसलिए कवि की यह उत्प्रेक्षा यथार्थ है।) (१४)

वाळी से काळी—वह कृष्णवर्णा सन्ध्या-रमणी; पिधानि—पहनकर। (१४)

वनजारिकर किछि आसिला दिशि।
वारुणी त्रिवेणी घाटे पड़िला घोपि। १५।

सरलार्थ—इस समय चन्द्र के उदित होने पर उनकी उदयकालीन शुक्ल किरण सन्ध्याकालीन लाल तथा कृष्ण वर्णो से मिल गयी। तो शुक्ल, कृष्ण तथा रक्त—तीन रगो का समावेश हो गया। उसे देखकर ऐसा मालूम हुआ मानो गगा, जमुना और सरस्वती के सगम-स्थल मे वारुणी स्नान का योग पड़ा है ! (१५)

वनजारि—पद्म का अरि (शत्रु) अर्थात् चन्द्र। (१५)

विस्तृत पक्षे दिवान्ध प्रमुख द्विजे।
विकाशि श्लोक वाणोकि विहारे मज्जे। १६।

सरलार्थ—जैसे ब्राह्मण लोग त्रिवेणी घाट पर गगा जी का स्तोत्र-पाठ करते हुए जल मे गोता लगाने लगते है, उसी तरह दिन मे अन्धे हुए उल्लू आदि निशाचर पक्षी [अव रात्रि आने पर] अपने-अपने पख फैलाये चारो ओर घूमकर क्रीड़ामग्न (खेल मे डूबे हुए) हैं। (१६)

द्विजे—पक्षी; दूसरे पक्ष मे ब्राह्मण, (श्लेप) (१६)

विजिघोप आदि वाद्य वाजे एकाळे।
वरकन्या ऋष्यशृग शान्ताकु कले। १७।
वारि तोळि देले शङ्खे शङ्खे रतन।
वत्सासह धेनु कउशेय वसन। १८।

सरलार्थ—इसी समय विजिघोप (ढॉक) आदि वाजे वजने लगे। ऋष्यश्रृग व शान्ता को क्रमश वर तथा वधू के वेश मे सुसज्जित करके विवाह-मण्डप मे वैठाया गया। हस्तग्रन्थि पडने के वाद दशरथ ने शंख मे जल लेकर दामाद को एक शख सख्यक रत्न, सवत्सा (वछडे के सहित) धेनु तथा पट्टवस्त्र आदि दहेज मे दिये। (१७-१८)

विजिघोष—ढॉक-की तरह एक वाजा; कौशेय वसन—पट्ट वस्त्र; 'शंखे' मे यमक अलंकार। (१७-१८)

बनजासन सावित्री प्राय दिशिले ।
बिनोदे शर्वरीरे एकान्ते रसिले । १९ ।

सरलार्थ—शृंगीऋषि व शान्ता क्रमशः ब्रह्मा तथा सावित्री की तरह दिखाई दिये। इसके बाद रात में दोनों एकान्त मे शृंगार रस में डूब गए। (१९)

बनजासन—ब्रह्मा। (१९)

बाहुळेय प्राये हेला प्रात उत्पत्ति ।
बिभ्राजि तारकासुर प्रमोद अति । २० ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर जैसे कार्त्तिकेय ने पैदा होकर तारकासुर का वध करके देवताओं को आनन्द प्रदान किया था, वैसे ही प्रभातकाल उपस्थित होने पर, तारो को लुप्त तथा सूर्य को प्रकट करने से जगत् के प्राणियों में आनन्द फैल गया। (२०)

बाहुळेय—कार्त्तिकेय; तारका—तारकासुर, तारे, (श्लेष); सुर—देवता, (सूर-सूर्य), (श्लेष) (२०)

बिभ्राजि उज्ज्वळ शक्ति मन्तरे सेहि ।
बिहारी होइ क्रमशे षष्ठीरे स्नेही । २१ ।

सरलार्थ—कार्त्तिकेय ने अत्युज्ज्वल 'शक्ति' नामक अस्त्र धारण किये हुए देदीप्यमान हो स्वच्छन्दता से विहार किया था। वे पार्वती के प्रति अत्यन्त अनुरक्त अर्थात् मातृवत्सल हुए थे। वैसे ही प्रभात ने उज्ज्वल सूर्य की किरणों का विस्तार करते हुए समग्र संसार को धीरे-धीरे आलोकित किया और साठ घड़ी वाले दिन को भोग करने के लिए, आग्रह प्रकट किया। (२१)

शक्तिमन्तर—पराक्रमशाली, शक्तिधारी; षष्टी—दुर्गा अथवा पार्वती, साठ दण्ड वाला (दिवस), (श्लेष) (२१)

बारकरे ख्यात शिबपुरे उत्सबे ।
बादन ये शङ्खमाळि-गणहिँ भाबे । २२ ।

सरलार्थ—द्वादशभुजाविशिष्ट होकर कार्त्तिकेय ने जब जन्म ग्रहण किया, तब शिव के गणो ने कैलास पर शख बजाये थे। उसी प्रकार प्रभात रवि, सोम आदि वारों मे से किसी एक नाम से ख्यात हुआ और उस समय पूजको ने देव-मन्दिरो मे शखध्वनि की। (२२)

बारकरे—बारह हाथों से, किसी एक बार मे, (श्लेष); शिवपुर—कैलास; शंखमा[illegible]—शंखसमूह; गण—शिवगण; माळीगण—पूजक लोग। (२२)

विगत निद्रा एकाळे दशरथर ।
वसाइ जामाता घेनिगले रथर । २३ ।

सरलार्थ—इसी समय दशरथ की निद्रा-भग हुई और वे अपने जामाता को रथ मे वैठा कर ले चले । (२३)

वप्र जिणि परवेश अयोध्या दुर्गे ।
व्रत आचरइ तहिँ महिषी वर्गे । २४ ।
वीतिहोत्र स्थापि यज्ञकुण्डे सत्वरे ।
व्रह्मवेत्ता होम कले पुत्र अर्थरे । २५ ।
व्यापि तहुँ धूमावळि ऊर्द्ध्वे चपळे ।
वियतिरे जळधर प्राय दिशिले । २६ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर गढ के परकोटे को पार कर उन्होने अयोध्या दुर्ग मे प्रवेश किया । व्रह्मज्ञानी ऋषि ऋष्यश्रृग ने रानियो का व्रत-आचरण करा के पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए कुण्ड मे अग्नि स्थापित की और होमारम्भ किया । एकाएक यज्ञ-कुण्ड से धुआँ ऊपर उठकर आकाश मे फैल जाने से, वह मेघ सा दिखाई दिया । (२४-२५-२६)

वप्र—परकोटा; वीतिहोत्र—अग्नि; वियतिरे—आकाश में; जळधर—मेघ । (२४, २५, २६)

बिजुळि लक्ष्य बड़भि रंगकेतन ।
बरह टेकि अनाइ केकी नर्त्तन । २७ ।

सरलार्थ—राजप्रासाद पर उड़ती हुई लाल पताका को उसी धूम-मेघ की विजली समझ कर मयूर गण पुच्छ उठाए आनन्द से नाचने लगे । (२७)

वडभी—प्रासाद; रंगकेतन—लाल पताका; वरह—पुच्छ; केकी—मयूर । (२७)

विथिरचित्त तृषार्त्ती येते सारंग ।
वीथी वीथी होइ कले निकटे रंग । २८ ।

सरलार्थ—प्यासे, अधीर चातकवृन्द उसी धूम को मेघ समझ कर समूहो मे आ-आकर आनन्द से क्रीड़ा करने लगे । (२८)

विथिरचित्त—अस्थिर हृदय; सारंग—चातक, पपीहा; वीथी-वीथी होइ—दल-दल होकर । (२८)

वायुनाए दुन्दुभि दिआउ हरषे ।
विजनित स्तनित कि प्रते मानसे । २९ ।

सरलार्थ—वाजा वजाने वाले लोगो ने इस समय सानन्द दुन्दुभियाँ वजाई। वह ध्वनि वादलों के गर्जन के समान प्रतीत हुई। (२९)

बायुनाए—वादक लोग; स्तनित—वादलों का गर्जन (२९)

विबेक मधुरी भेरी दात्यूह कङ्क।
वर्षाभू टमक य़हिँ उच्चनादक। ३०।

सरलार्थ—मधुरियो और भेरियो का स्वर दात्यूहो (पपीहो), तथा कंक पक्षियो के स्वर और टमकों (डुगडुगी) की उच्च ध्वनि मेढको के गर्जन-सी प्रतीत हुई। (३०)

कंक—सफेद चील; वर्षाभू—मेंढक (३०)

बळाका प्रकार निश्चे चिराळमान।
बंशे उडुछन्ति होइ अति रञ्जन। ३१।

सरलार्थ—वाँस के अग्र भाग में फहरती हुई धवल पताकाएँ उड़ते हुए वगुलों की पंक्तियों की तरह प्रतीत हुई। (३१)

वळाका प्रकार—वगुलों की श्रेणी की तरह; चिराळ—पताकाएँ। (३१)

वरषिवे कृपाजळ उदये हरि।
बह्निकुण्ड नभ अबलम्वन करि। ३२।

सरलार्थ—मेघ के उदय होने पर उनके आधार पर इन्द्र वर्षा करते हैं, वैसे ही विष्णु जी अग्निकुण्ड-रूपी मेघ के आधार पर कृपा-जल वरसायेगे। (३२)

हरि—इन्द्र, विष्णु (श्लेष)। (३२)

वशिष्ठादि ऋष्यशृंग सेठारे थिले।
विहीन निमिष ये सेमाने नमिले। ३३।

सरलार्थ—होमकुण्ड के निकट वशिष्ठ, ऋष्यश्रृग आदि ऋषि वैठे हुए थे। उन्होने उसी होमकुण्ड में आविर्भूत विष्णु जी को अपलक नेत्रो से देखा और नमस्कार किया। (३३)

वरुणाळय करुणाकर वोइले।
बिराज कम्वु चक्र गदाब्जे मञ्जुळे। ३४।

सरलार्थ—ऋषियो ने कहा, "हे करुणा-वरुणालय! समुद्र जिस प्रकार शखो, चक्रवाक पक्षिसमूह, भवँरो और चन्द्रमा को धारण किये शोभित होता है, उसी प्रकार आप पाञ्चजन्य शख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी

गदा एव पद्म के योग से मनोहर होकर विराजमान है। आप हम लोगो के प्रति दया प्रकट कीजिए। (३४)

वरुणाळय—समुद्र; कम्बु—शंख; चक्र—चक्रवाक पक्षी, जल का भँवर या अस्त्रविशेष; गदा—समूह, अस्त्रविशेष; अब्ज—चन्द्र, पद्म (श्लेष)। (३४)

त्रिधृत कर मकर लक्षणमान।
वुड़न्ति महतीयोगे नयन-मीन। ३५।

सरलार्थ—समुद्र ने जिस प्रकार मीन, मकरादि जलचर जीवों को अपने शरीर मे धारण किया है, आपने उसी तरह अपने शरीर मे मीन, मकरादि चिन्ह-समूह धारण किये है। लोग महती नामक योग मे समुद्र मे निमग्न होते है। उसी तरह आपके दर्शनाभिलाषी वडे-वड़े भक्तवृन्द के नयन-मीन आपके हृदय-सागर मे निमज्जित हो रहे है। अर्थात् भक्त-जन आपको निर्निमेष (अपलक) नयनो से ताक रहे है। (३५)

महती—वड़े, महती नामक योग (श्लेष)। (३५)

बोइतिआळ ये दशरथ नृपति।
वञ्छिबारे कर तारे रत्न प्रापति। ३६।

सरलार्थ—हे प्रभो! जिस प्रकार समुद्र नाविको की मनोवाञ्छा पूर्ण करके उन्हे रत्नदान करता है, हे दयासागर! उसी प्रकार आप दशरथ रूपी नाविक को पुत्र-रत्न प्राप्त कराइये। (३६)

बोइतिआळ—नाविक। (३६)

बडबानळे पकाअ राक्षसगण।
व्यत्नके एथिरु नाहिँ आन मागिण। ३७।

सरलार्थ—समुद्र राक्षसो को वाडवाग्नि में निक्षेप करता है। उसी प्रकार आप वाड़वानल तुल्य अपने क्रोधाग्नि मे राक्षसो को निक्षेप कीजिए अर्थात् विनाश कीजिए। इसके अतिरिक्त हमारी दूसरी याचना नही है। (३७)

पकाअ—डालो, निक्षेप करो; व्यत्नके एथिरु—इसके अतिरिक्त; आन—दूसरी, मार्गण—मांग, भिक्षा, याचना। (३७)

ब्याकोष कुसुम-हास मुखे धइले।
बोलि अस्तु चारि चरुरूपे दिशिले। ३८।

सरलार्थ—यह सुनकर भगवान ने प्रस्फुटित पुष्प के सदृश मनोरम हास्य प्रकाश करते हुए कहा, "तथास्तु", और वह चार चरुओ के रूप में दिखाई दिये। (३८)

ब्याकोष कुसुम—फूले हुए पुष्प। (३८)

ब्यञ्जळि करन्ते कर से ऋष्यशृंग।
ब्रह्मरूपी परबेश होइले बेग। ३९।

सरलार्थ—यह देख ऋष्यश्रृंग ने अपने हाथ की अञ्जलि प्रस्तुत की और ब्रह्मरूपी भगवान् उनके हाथ मे (चरुओ के रूप मे) उपस्थित हुए। (३९)

ब्राह्मणश्रेष्ठ ता राजा हस्तरे देले।
बाण्टि सर्व महिषीरे दिअ बोइले। ४०।

सरलार्थ—ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंग ने वह यज्ञान्न राजा दशरथ को देते हुए कहा, "यह रानियों में बाँट दे"। (४०)

बात मळयाद्रिरु ये बहइ घेन।
बंशकर्मे नाहिँ यथा हेबा चन्दन। ४१।

ब्रती नोहि सातशत सतचाळिशि।
वामा अछन्ति कौशल्या कैकेयी भाषि। ४२।

बिरक्ते नृपति दुइभाग ता कले।
बिह्वळे से दुहिङ्कर पाणिरे देले। ४३।

सरलार्थ—कौशल्या और कैकेयी ने राजा से कहा, "आपके और भी सात सौ सैंतालिस रानियाँ है। उन सभी ने तो व्रतो का पालन नही किया है। मलयाचल से मलय पवन के प्रवाहित होने पर भी बाँस के वृक्ष के भाग्य मे चन्दनत्व-प्राप्ति नही है। वैसे ही व्रत न करने के कारण इन सभी रानियों को यज्ञान्न प्राप्त नही हो सकता। यह सुनकर दशरथ जी को उनसे विरक्ति हुई। उन्होने विह्वल होकर चरु के दो भाग करके उन दो रानियों को दिये"। (४१-४२-४३)

विमळहृदया भाषि कल अहेजा।
वेनि बेनि भाग देले सन्तोष राजा। ४४।

सरलार्थ—निर्मलहृदया दोनों रानियो ने कहा, "आपने अविचार किया। आपकी सात सौ पचास रानियो मे से केवल हम तीन रानियों ने व्रत का पालन किया है। परन्तु आपने हम दोनो ही को चरुदान किया है। एक (सुमित्रा) को छोड़ दिया है। यह कहकर उन दो रानियो ने अपने-अपने चरु का एक-एक भाग—ऐसे दो भाग सुमित्रा को दिये। यह देखकर राजा दशरथ को सन्तोप हुआ। (४४)

अहेजा—अविचार; वेनि—दो। (४४)

विश्वगर्भ से अशने गर्भरे रहि ।
वरपे ये स्वातीजळ भक्षण विहि । ४५ ।
वहइ उदरे मोति शुक्ति ग्रेमन्त ।
बिघ्न नोहि ए कथाहिँ हेला तेमन्त । ४६ ।

सरलार्थ—स्वाती नक्षत्र मे मेघ की वृष्टि होने पर यदि वह वृष्टि-जल सीप के पेट में पड़े, तो वह मोती वन जाता है । उसी प्रकार चरु-भक्षण करके व्रह्माण्ड को गर्भ मे धारण करने वाले विष्णु जी को रानियो ने गर्भ मे धारण किया । (४५-४६)

विश्वगर्भ—संसार को गर्भ मे धारण करने वाले विष्णु जी; य्रेमन्त—जिस प्रकार; तेमन्त—उसी प्रकार। (४५-४६)

वैभाण्डक कान्ता घेनि स्ववने गत ।
वासरकु वासर राणीए अशक्त । ४७ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर ऋष्यश्रृग अपनी प्रियतमा शान्ता को लेकर अपने तपोवन को चले गये । इधर रानियाँ गर्भ-भार से दिनो-दिन अत्यन्त दुर्वल होने लगी । (४७)

वैभाण्उक—विभाण्डक ऋषिका पुत्र, ऋष्यश्रृंग; वासरकु वासर—दिनो-दिन; अशक्त—कमजोर । (४७)

विधुत लतिका मेरु एथि उत्तारु ।
बिचित्र नोहिला अशकत हेवारु । ४८ ।

सरलार्थ—लतातुल्या मुकुमारी रानियो ने मेरुपर्वत के सदृश उन्नत गर्भ धारण किया । परिणामस्वरूप उनका अशक्त होना आश्चर्य नही, प्रत्युत स्वाभाविक है । (४८)

वर्ण्ण सुवर्ण्ण दोहद रूप्यरे किणि ।
बक्षोज दन्तसम्पूटे रक्षण सणि । ४९ ।

सरलार्थ—गर्भ के लक्षण प्रकाशित होने से गर्भवती रानियो के शरीरो की कान्ति ने पाण्डु वर्ण धारण किया । स्तनो ने अधिक शोभा धारण की । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो गर्भावस्था ने रानियो के सुवर्णतुल्य शरीरो की कान्ति को चाँदी के मूल्य से खरीद कर स्तन-रूपी हस्तीदन्तनिर्मित सपुटक (पिटारी) मे रखा हो । (४९)

दोइद—गर्भावस्था; वक्षोज—स्तन; दन्तसपूट—हस्तीदन्तनिर्मित संपुटक (उत्प्रेक्षालंकार) । (४९)

बृद्धि हेबा कटि पृथु अधिक नोहि ।
बिधिपूर्वे सिंह लक्ष्य ग्रासिछि ग्रेहि । ५० ।

सरलार्थ—गर्भावस्था के कारण उनके कटिप्रदेश अधिक उन्नत हुए । यह स्वाभाविक ही है । इसके पूर्व इन्ही कटियों ने पतलेपन में सिह की कमर को ग्रास किया था, अर्थात् जीता था । रानियों की क्षीण कटियाँ अब भारी हो गयी । (५०)

बिकीर्ण्ण मधुरसरे उदरपथ ।
बमन हेबा चित्र कि आन पदार्थ । ५१ ।

सरलार्थ—जिसका उदर मधुर रस से पूर्ण रहता है, उसके लिए यह कोई आश्चर्य नही कि कोई दूसरी चीज खाने से उसका वमन हो जाय । यहाँ रानियों के उदरो के, नारायण के मधुर रस से पूर्ण होने के कारण, दूसरे पदार्थ भक्षण करने से, उनकी उलटी हो गई । तात्पर्य यह है कि गर्भोदय की प्रथमावस्था में अरुचि के कारण स्त्रियो को उलटी होती है । (५१)

विकीर्ण—पूर्ण; चित्र कि—विचित्र है क्या ? (अर्थात् नही); आन पदार्थ—दूसरे पदार्थ । (५१)

बसन्त मधुमासरे नवमी ख्याति ।
विपतिध्वज बहिले चतुर्द्धामूर्त्ति । ५२ ।

सरलार्थ—वसन्त ऋतु के चैत्र महीने मे शुल्कपक्ष की नवमी तिथि प्रसिद्ध है । उस तिथि मे विष्णु भगवान् ने चार प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण की । (५२)

मधुमास—चैत का महीना; विपतिध्वज—गरुड़ध्वज, विष्णु; बहिले—वहन या धारण कीं; चतुर्द्धामूर्ति—चार प्रकार की मूर्त्तियाँ । (५२)

व्युत्पत्ति ए कौशल्या कैकेयी सुमित्रा ।
बासबदिगद्रि - तिनिश्रृंग - शोभिता । ५३ ।

सरलार्थ—इस समय कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा—तीन रानियाँ उदयाचल पर सुशोभित तीन श्रृगों की तरह दिखाई दी । (५३)

वासवदिगद्रि—इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा का पर्वत, उदयाचल । (५३)

विधु गुरु भार्गव अङ्गिरा उदित ।
विनश्यति धात्री-रात्रि निविड़ ध्वान्त । ५४ ।

सरलार्थ--चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र और अगिरस उदित होकर रात्रि के घने अन्धकार का नाश करते है । उसी तरह रानियो के उदरों से चार

पुत्रो ने जन्म लेकर पृथिवी-रात्रि के घने अन्धकार अर्थात् पृथिवी के प्राणियो के चिन्तारूपी अन्धकार का नाश कर दिया। (५४)

विधु—चन्द्र; गुरु—वृहस्पति; भार्गव—शुक्र; अंगिरा—ब्रह्मा के एक मानस पुत्र; धात्री-रात्रि—पृथिवी-रात्रि; ध्वान्त—अन्धकार, चिन्ता-तामस। (५४)

बधाइ लभिले नृपे नारीए कहि।
बार्त्ताबहे राज्यान्तरे गमिले तहिँ। ५५।

सरलार्थ—अन्त:पुर की स्त्रियो ने राजा से यह शुभ संवाद कहकर पुरस्कार प्राप्त किया और दूत लोग यह सुसवाद लेकर अन्यान्य राज्यो को गये। (५५)

वधाई—अभिनन्दन, (यहाँ पुरस्कार); गमिले—गये। (५५)

बारता कहि सामन्त पात्रे त्वरित।
बेत्रके कटक कुण्डळरे मण्डित। ५६।

सरलार्थ—द्वारपालो ने शीघ्रता से सामन्तो तथा मन्त्रियों को यह सुसवाद जताकर सोने के कगन तथा कुण्डल आदि आभूषण प्राप्त करके पहने। (५६)

वेत्रके—द्वारपालो ने; कटक—सोने के कंगन। (५६)

बाट हाट जूर तूर बाजे असख्य।
बिदूषक कात्यायनी हृष्ट अलेख। ५७।

सरलार्थ—इस उत्सव मे हाट-बाट लूटे गये। अनगिनत तुरहियाँ बजी। भाटो तथा प्रौढा विधवाओ का आनन्द अवर्णनीय था। घर-घर यह सुभ सवाद पहुँचाकर उन्होने पुरस्कार प्राप्त किये। (५७)

विदूषक—मनोरञ्जन कराने वाले, भाट; कात्यायनी—प्रौढ़ा विधवा स्त्रियाँ। (५७)

बृन्दबृन्द होइ तहिँ जननीमाने।
बसुधापति देखिले सूनु सुमने। ५८।

सरलार्थ—समूहो मे, दूसरी माताएँ (विमाताएँ) सूतिका-गृह में इकट्ठी हुई। उस समय राजा ने पुत्रो को सहर्ष देखा। (५८)

सूनु—पुत्र। (५८)

बनजनाभ पदकु सार्थ करइ।
बिलम्बित नाड नाभिमडळे शोहि। ५९।

सरलार्थ—पुत्र के नाभि-पद्म से विलंवित नाल को देखकर दशरथ जी ने विष्णु जी के 'पद्मनाभ' नामको सार्थक समझा। अर्थात् रामचन्द्रजी की नाड़ीयुक्त नाभि मृणालयुक्त पद्म की तरह शोभा पाती थी। (५९)

बनजनाभ—पद्मनाभ, विष्णु। (५९)

बिच्छेदन कले नाभि उदय हृदे।
बिग्रह सुबास य़ेणु कस्तूरी बन्दे। ६०।

सरलार्थ—इसके अनन्तर दासियो ने पुत्रो की नाभियों का छेदन किया। तब उनके शरीरों से कस्तूरी की-सी सुगन्ध सुरभित हुई। ऐसा मालूम हुआ मानो उनका अग-सौरभ कस्तूरी का वन्दनीय (कस्तूरी से श्रेष्ठ) होने के कारण दासियो ने उससे श्रेष्ठतर मृगनाभि के भ्रम से उनका छेदन कर दिया! (६०)

विग्रहसुवास—शरीर के अंगों का सौरभ। (६०)

ब्यकत सूतिकागृह कारुण्यपय।
विस्तीर्ण्ण अनन्त शोभा शय़्या निश्चय। ६१।

सरलर्थ—सूतिकागृह क्षीरसागर की तरह तथा उसमे बिछाई हुई शय्या विष्णु जी की अनन्तशय्या के समान दीखती थी। (६१)

कारुण्यपय—क्षीरसमुद्र; अनन्त—शेषदेव। (६१)

वीचि चन्द्रातप कुञ्चाबास रचइ।
बिबेकी शुआइ सदा निद्रा चितोइ। ६२।

सरलार्थ—उसी सूतिकागार में वँधे चन्द्रातप में लगे कुञ्चित वस्त्र (झालर) क्षीरसमुद्र की लहरो की तरह दिखाई पडते थे। फिर क्षीर-समुद्र मे जैसे सरस्वती विष्णु जी की निद्रा भंग करती हुई उन्हें जगाती है, वैसे ही सूतिकागृह में चतुर रमणियाँ पुत्रों की निद्रा भंग करती हुई, उन्हें सचेत कर रही है। (६२)

वीचि—लहरें; विवेकी—सरस्वती, चतुरा। (६२)

ब्रीहि आदि पञ्चबीज पञ्चुआती ये।
ब्यान सह पञ्चवायु तोषक से य़े। ६३।

सरलार्थ—पुत्रों के जन्म के पाँचवें दिन लोगो ने उड़द आदि पंच-धान्य-मिश्रित चावल खा कर प्राण, अपानादि पाँच वायुओ को सन्तुष्ट किया। (६३)

ब्रीहि—उड़द; पंचुआती—जन्म के पंचम दिन का उत्सव; व्यान सह पंचवायु—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये पंचवायु। (६३)

बनजिनी - लक्ष्य - नारी - षष्ठीघरकु ।
बराटके मण्डि कले मनोहरकु । ६४ ।

सरलार्थ—छठे दिन पद्मिनीजातीया स्त्रियो द्वारा पष्ठीगृह को कौड़ियों से मण्डित करने पर वह मनोहर दिखाई दिया । (६४)

बनजिनी—पद्मिनी-जातीया स्त्रियाँ; बराटके—कौडियो से । (६४)

बियोग निद्रारे काम मधुरे वाद ।
बिरचि ए पाञ्च उठिआरी सम्पाद । ६५ ।

सरलार्थ—भगवान् विष्णु जी जब योगनिद्रा मे अभिभूत थे, उस समय मधु दैत्य के साथ विवाद करने की इच्छा करके जग उठे थे । उसी तरह, इसी उद्देश्य से कि ये पुत्र सौन्दर्य मे कामदेव और वसन्त ऋतु के साथ होड़ लगायेगे, स्त्रियो ने सप्तम दिवस पर उनका 'उठियारी' कार्य सम्पादन किया । (६५)

काम—इच्छा, कन्दर्प; मधु—मधु नामक राक्षस, वसन्तकाल (श्लेष); उठिआरी—जन्म के सातवें दिन का उत्सव । (६५)

बिश एकदिने दोळिशयन करि ।
बट-पत्र पुटे बाळ मुकुन्द परि । ६६ ।

सरलार्थ—इक्कीसवे दिन पुत्र झूले पर शयन करके ऐसे दिखायी दिये मानो बालमुकुन्द ने वट-पत्र पर शयन किया हो । (६६)

बढ़ान्ते ये दशरथ चाळने कर ।
बाहुऊर्ध्वे मार्कण्डेय थिबा प्रकार । ६७ ।

सरलार्थ—उसी झूले को हिलाने के लिए जब दशरथ जी ने हाथ बढाया, तो वे ऊर्ध्वबाहु मार्कण्डेय की तरह दिखाई दिये । (६७)

ब्रह्मऋषि नाम बिहि श्रीराम राम ।
बोले चन्द्र भद्र हेउ ए पछे रम्य । ६८ ।

बशे रघु राघब ए से नाथ भणि ।
बोलाइबे रावणारि राजेन्द्र पुणि । ६९ ।

सरलार्थ—ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने ज्येष्ठ पुत्र का 'श्रीराम' अथवा 'राम' नामकरण करके कहा, "इन नामो के पीछे 'चन्द्र' व 'भद्र' शब्द युक्त होकर ये नाम रमणीय हो, अर्थात् इनके नाम 'श्रीरामचन्द्र', 'श्रीरामभद्र', 'रामचन्द्र' तथा 'रामभद्र' हो । और भी, रघुवश मे जन्म ग्रहण करने

के कारण इनके नाम 'राघव' तथा 'रघुनाथ' होगे। बाद मे रावण का वध करने से 'रावणारि' तथा राजा होकर 'राजेन्द्र' नाम धारण करेगे"।(६८-६९)

बप्ता दशरथ राजा ग्रेणु स्वभावे।
ब्रहन्तु ए दाशरथि नामकु एबे। ७०।

सरलार्थ—"फिर दाशरथ के पुत्र होने के कारण ये 'दाशरथि' नाम धारण करे"। (७०)

बिहिले भरत नाम कैकेयी सुते।
बोइले सदा बञ्चिब ए शुभरते। ७१।

सरलार्थ—कैकेयी-पुत्र को देख वशिष्ठ जी ने कहा, "ये हमेशा शुभ कार्य मे रत होकर जीवन यापन करेगे, इसीलिए इनका नाम 'भरत' हो"। (७१)

बेनि सुत सुमित्रार देखि हरष।
बिचक्षण लक्षण - मानङ्कु प्रकाश। ७२।
बहु लक्ष्मण नामकु अग्रज सुत।
बोलिबार कुमार एहाकु उचित। ७३।
बड़ शक्तिमन्त न गणिब आनरे।
बृद्धिहेब मेघनाद तोष दानरे। ७४।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सुमित्रा के दोनों पुत्रो को देख कर वशिष्ठ जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा, "इन दोनो मे से ज्येष्ठ में अच्छे लक्षण सब स्पष्ट है। इसलिए ये 'लक्ष्मण' नाम से अभिहित हो। और भी इनका नाम 'कुमार' होना चाहिए। क्योकि जिस प्रकार कुमार (कार्त्तिकेय) शक्ति-अस्त्रधारण पूर्वक अपने प्रभाव से तारकादि दूसरे वीरों की गणना नही करते और मेघनाद (मयूर) का सन्तोष विधान करते है, उसी प्रकार ये शक्ति-मान् दूसरे वीरों की गणना नही करेगे और मेघनाद (इन्द्रजित्) का आनन्द छेदन करेगे। सुतरा, इनके 'लक्ष्मण' और 'कुमार' ही नाम होने चाहिए"। (७२-७३-७४)

मेघनाद—मयूर, इन्द्रजित्; दान—देना, छेदन (श्लेष) (७२-७३-७४)

बिशिष्टे ग्रेणु शत्रुघ्न हेव सहजे।
बिदित एणु शत्रुघ्न नाम अनुजे। ७५।

सरलार्थ—लक्ष्मण के छोटे भाई अति सहज उपायों से अनेक शत्रुओं का नाश करेगे, यह जानकर वशिष्ठ जी ने उन्हे 'शत्रुघ्न' नाम प्रदान किया। (७५)

बिधान सुमित्रासुत दुहेँ सौमित्रि ।
बोलान्तु बोलि बिगत तहुँ से यति । ७६ ।

सरलार्थ—"ये दोनो सुमित्रा से उत्पन्न है। इसीलिए 'सौमित्रि' नाम धारण करे"—यह कहकर ऋषि ने वहाँ से प्रस्थान किया। (७६)

बढ़ि सुते दिनु दिनु प्रभा उदये ।
बळक्षपक्षरे कळाकर पराये । ७७ ।

सरलार्थ—वे चारो पुत्र शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह दिनो-दिन दीप्तिमान् होकर वढने लगे । (७७)

बळक्षपक्ष—शुक्लपक्ष; कळाकर—चन्द्र । (७७)

बाड़ धरि उभा शोभा केबा कहिब ।
बड़ कवि यहिँ जड होइ रहिब । ७८ ।

सरलार्थ—दीवारो के सहारे खडे होने पर उन पुत्रो की शोभा कौन वर्णन कर सकेगा ? वडे-वडे कवि (अथवा ब्रह्मा तक) भी उस छवि का वर्णन करने मे अपने को असमर्थ पाकर मूक रह जायँगे । (७८)

बड़कवि—ब्रह्मा । (७८)

बिहार रचिले क्रमे क्रमे चत्वरे ।
ब्यग्रगति शिशु सङ्गे रङ्गे सत्वरे । ७९ ।

सरलार्थ—उन चारो पुत्रो ने क्रमश दूसरे शिशुओं के सहित आँगन मे नाना रगो मे शीघ्र-गतियाँ करते हुए विहार किया । (७९)

चत्वरे—आँगन में। (७९)

बाल्ये जगती-रचना नोहे विसोर ।
बालुकारे सर्जना ये सेहि प्रकार । ८० ।

सरलार्थ—भगवान् ने विष्णु-रूप में सृष्टि की रचना की थी, अब राम-रूप धारण करके वालक होते हुए भी, वह इसको नही भूले थे; इसीलिए वे अब बालू से नाना प्रकार की रचनाएँ करने लगे । (८०)

जगतीरचना—सृष्टिरचना ।(८०)

ब्रतविधान समय तहिँ होइला ।
बद्रिकारे नरनारायण ये लीळा । ८१ ।

सरलार्थ—बदरिकाश्रम मे नर-नारायण की जो लीला हुई थी, रामचन्द्र जी का व्रतोपनयन-समय उपस्थित होने पर वही लीला अयोध्या में सम्पन्न हुई। (८१)

बरही स्वत सृष्टिरे शिखण्ड धरे।
बाहारिले नगर भ्रमण इच्छारे। ८२।

सरलार्थ—मयूर जिस तरह चूल धारण कर पर्वत या वृक्ष पर अपने इच्छानुसार विहार करता है, उसी तरह जगत्पूज्य रामचन्द्रजी उपनयन के उपरान्त काकपक्ष शिखा धारण करके नगर मे स्वेच्छानुसार विहार करने लगे। (उपनयन के बाद क्षत्रिय लोग ऐसी शिखा धारण करते है।) (८२)

बरही—मयूर, श्रेष्ठ; शिखण्ड—चूल, चोटी, काकपक्ष शिखा; नगर—पर्वत या वृक्ष का, शहर (श्लेष)। (८२)

बाळकिशोर भावकु प्रकाश तहिँ।
बाहग्रीव होइथिले पूर्वरे येहि। ८३।

सरलार्थ—पहले जिन विष्णु ने हयग्रीवरूप को धारण किया था, उन्ही विष्णु भगवान् ने रामरूप मे अब बाल्य तथा कैशोर अवस्थाओं की लीलाएँ प्रगट कीं। (८३)

बाहग्रीव—हयग्रीव। (८३)

बृष-धनु-युक्त रामचन्द्र सहजे।
बन्दारु से श्रुतिरूप विद्याधर ये। ८४।

सरलार्थ—मनोहर चन्द्र जैसे सहज ही वृषराशि या धनुराशि से सयुक्त होते है, उसी प्रकार सर्वजनवन्दनीय राम ने, अनायास ही अति श्रेष्ठ धनुष से संपर्क-स्थापन करने के उपरान्त (अर्थात् धनुर्विद्या-प्रप्ति के वाद,) वेदाध्ययन आरम्भ किया। (८४)

वृष—वृषराशि, श्रेष्ठ; धनुयुक्त—धनुराशियुक्त, धनुर्द्धारी; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, प्रभु रामचन्द्र; श्रुति—वेद; वन्दारु—वन्दनीय; विद्याधर—देवताविशेष, विद्याभ्यासी (श्लेष, उपमा-अलंकार)। (८४)

बिनयी दासी प्रकारे शारदा यार।
बणा केउँ विद्या आदि सुमृतिसार। ८५।

सरलार्थ—स्वयं वाग्देवी जिन रामचन्द्रजी की दासीवत् सर्वदा अनुगता हैं, वे मनु आदि स्मृति-विद्याओ में क्यो प्रवीण न होगे? (८५)

शारदा—सरस्वती, वाग्देवी; सुमृतिसार—स्मृतिश्रेष्ठ। (८५)

बिभ्राणरु दुकूळ मनकु आणिलि।
बड़ स्नेह पीताम्बर नामे जाणिलि। ८६।

सरलार्थ—रामचन्द्र को पीत-वस्त्र धारण किये हुए देख मालूम होता है, मानों उनका 'पीताम्वर' नाम के प्रति अधिक स्नेह है, क्योकि वे अपने किसी भी अवतार मे उसका त्याग नही करते। (८६)

विसोर नोहि कृपण धनर भाव ।
वप्ता-माता-मानङ्कर मानसुँ लव । ८७ ।

सरलार्थ—कजूस जैसे धन-सचय करने को नही भूलता, वैसे पितामाता उन्हे एक क्षण के लिए भी अपने मन से नही भुलाते । (८७)

विसोर—विसारना; कृपण—कंजूस; वप्ता-मातामानंकर—पिता-माताओं का; लव—एक क्षण के लिए भी । (८७)

वड़ किए नगर जनङ्क ए भाव ।
वखाणि होइले एका सेहि प्रस्ताव । ८८ ।

सरलार्थ—अयोध्या के लोग, 'इस जगत् मे सवसे वड़े कौन है ?' यह प्रश्न आपस मे उठाकर राम के नाम का प्रस्ताव करने लगे । (अर्थात् यह निर्णय किया कि रामचन्द्र सवसे वड़े है ।) (८८)

वर्द्धित से वाणिज्य धनर प्रकार ।
विदेशे होइला दिनुँ दिनुँ प्रचार । ८९ ।

सरलार्थ—व्यापार के द्वारा जैसे धन का देश-विदेशो मे प्रचार तथा वृद्धि होती है, उसी प्रकार धीरे-धीरे रामचन्द्र आदि पुत्रों का यश-गौरव देश-विदेशो मे प्रचारित होने लगा । (८९)

वळीवर्द यहिँ जनमुख होइले ।
विक्रय स्थान स्थानके वहि से कले । ९० ।

सरलार्थ—व्यापारी वैल पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर वेचता है । वैसे ही लोगो के मुखरूपी वैलो ने पुत्रो का यश विभिन्न स्थानो मे विक्रय किया । (अर्थात् विभिन्न स्थानो मे पुत्रों का यशोगान किया । (९०)

वळीवर्द्द—वैल । (९०)

वात्सल्य - रस - वर्ण्णने रामभद्रर ।
वचन मन पवित्र होइला मोर । ९१ ।
वीरवर उपइन्द्र भञ्ज मो नाम ।
वयाणोइ पदे कलि ए छान्द रम्य । ९२ ।

सरलार्थ—रामभद्र का वात्सल्यरस वर्णन करके मेरा मन तथा वचन पवित्र हुआ । मेरा नाम वीरवर उपेन्द्रभञ्ज है । वयानवे पदों मे मैने इस छान्द को समाप्त किया । (९१-९२)

॥ इति पञ्चम छान्द ॥

षष्ठ छान्द

राग—माळव रोढ़ावाणी

बुधे सावधाने एहु गीतर । बाक चातुरीकि विचार कर ।
विशुद्ध सिद्धबने मुनियाग । बिसिद्ध करणे राक्षसवर्ग । १ ।

बिदित होइ सुबाहु मारीचे । बचन शून्यरु शुभिला उच्चे ।
विकुक्षिवंशे जात राम आण । बैवस्वत ए गणे ता मार्गण । २ ।

सरलार्थ—हे पण्डितगण ! सावधान होकर इस गीत की कवित्व-चातुरी पर विचार कीजिए । सुबाहु तथा मारीच प्रमुख राक्षस लोग पवित्र सिद्धवन में ऋषियो के यज्ञकर्म में रोड़े अटकाने लगे । उसी समय आकाश से दैवीवाणी सुन पड़ी कि सूर्यवश मे उत्पन्न रामचन्द्र को यहाँ ले आइए । इन विघ्नकारी राक्षसों के प्रति उनका शर यम के सदृश काम करेगा । अर्थात् उन्ही के शर से वे मृत्यु को प्राप्त होगे । (१-२)

बिसिद्ध करणे—विघ्न डालना, रोड़े अटकाना; शुभिला—सुन पड़ी; विकुक्षि-वशे—सूर्यवंश में; आण—लाओ; बैवस्वत—यम; मार्गण—शर । (१-२)

बिश्वामित्र शुणि उठि गमिले । बेगे कोशळदेश से देखिले ।
बारस्वती छवि अयोध्यापुरी । ब्रह्म आकारबन्त येणु धरि । ३ ।

सरलार्थ—वह वाणी सुनते ही विश्वामित्र उठ कर तीव्र गति से कोशल की ओर चल पड़े । कोशल की राजधानी अयोध्या में पहुँच कर उन्होने देखा कि उस पुरी ने अनिर्वचनीय ब्रह्मलोक की शोभा धारण की है । परब्रह्म रामचन्द्र वहाँ शरीर धारण करके निवास करते हैं । इसी लिए अयोध्यानगरी ने वैकुण्ठतुल्य सुन्दर तथा पवित्र होकर अपूर्व शोभा धारण की है । (३)

वारस्वती—ब्रह्मलोक; येणु—चूँकि (ब्रह्म ने वहाँ शरीर धारण किया है) । (३)

बरणे शोभा दिव्य कन्या परि । बर खोजुअछि समान करि ।
बहिअछि पुणि सुमनमाळा । विपञ्चिवादिनी आळीरे मेळा । ४ ।

बिरळ मुखर-डिण्डिम शुभे । बिमोहित करे जगत शुभ्रे ।
बहुमूल्य वास अंगीकारी से । बिहे नूपर मोदकु बिशेषे । ५ ।

सरलार्थ—अयोध्यानगरी को देखकर विश्वामित्र ने मन मे सोचा कि यह नगरी शायद दिव्यवेशधारिणी एक स्वयंवरा कन्या है। स्वयंवरा कन्या जिस तरह अपने हाथ में पुष्पमाला धारण किये वीणा-वादिनी सखियो से परिवेष्टित होकर अपने अनुरूप पति खोजती है, उस समय शुभ वाद्य-नाद या गौनहारियो का गारी-गान स्वयम्वर-सभा मे सुनाई पड़ता है, शुभ्र सभामण्डप मूल्यवान् वस्त्रो (चन्द्रातप आदि) से आच्छादित होकर दर्शको तथा निमन्त्रित राजाओ के मन प्रसन्न करता है, उसी तरह यह नगरी प्राचीरो से परिवेष्टित हो, पण्डितो को अपने वक्ष पर स्थान दिये तथा वीणा-वाद्यनिपुणा स्त्रियो से मिलकर अपने अनुरूप (योग्य) वर रामचन्द्र की खोज कर रही है; अर्थात् उनके राज्य के समय की प्रतीक्षा कर रही है। साथ ही इसका मध्य भाग अविरत मगल-वाद्यो के नाद से मुखरित होकर ससार के लोगो को विमोहित कर रहा है। वहुमूल्य प्रासादो तथ पट्ट-वस्त्रो से परिपूर्ण अर्थात् समृद्धिशालिनी होकर यह नगरी राजा दशरथजी का आनन्द वढा रही हे। (४-५)

वरण—वरण करना, प्राचीर; दिव्य—अपूर्व; सुमनमाळा—फूलों की माला, पण्डित-समूह; विपंचिवादिनी—वीणा-वादिनी, वीणाजित-कण्ठी; आळीरे—सखियों से; मुखर डिण्डिम—उलूलु, गारी-गान वाद्य से मुखरित; जगति—सभामण्डप, संसार। (उपमा तथा श्लेषालकार) (४-५)

बिष्णु पराये लक्ष्मी आलिगन। विहार चतुर-करे रञ्जन।
बिनायकरे सदा युक्त सेहि। वहुळ भक्तभाव ख्यात यहिँ। ६।

सरलार्थ—"यह अयोध्यानगरी विष्णु है।"—ऐसी कल्पना विश्वामित्रजी ने की। क्योकि विष्णु लक्ष्मी को आलिगन करते है, चतुर्भुज धारण किये गरुड़ पर विहार करते है और भक्त लोग उनके पास अपने मनोभाव प्रकट करते है। उसी प्रकार यह नगरी ऐश्वर्यो से परिपूर्ण है। अनेक चतुर लोग यहाँ विहार कर रहे है। वहुत विशिष्ट वीर-पुरुषों से यह नगरी पूर्ण है और प्रचुर अन्नदान के लिए यह स्थान प्रख्यात है। (६)

लक्ष्मी—लक्ष्मीदेवी, संपत्ति; चतुर-चार, चालाक; कर—हाथ, पुरुष; विनायक—गरुड़, विशिष्ट वीर पुरुष; भक्त—भक्त जन, अन्न (भात)। (श्लेषालकार) (६)

बास्तव्य आपण परा के अछि। बइले पदार्थ न तुटे किछि।
बणिजार हस्त स्वर्ग प्रतीति। बिश्वावसु छन्ति सबु जाणन्ति। ७।

सरलार्थ—वास्तव मे अयोध्या की दुकानो के समान दूसरी दुकाने अन्यत्र दुर्लभ है। उन दुकानो से कितने ही पदार्थ क्यो न व्यय किये जावे, वह समाप्त नही होते। और भी दुकानदारो के हाथ स्वर्गतुल्य प्रतीत हो रहे है क्योकि स्वर्ग मे जिस तरह विश्वावसु आदि गन्धर्व

लोग हैं, उसी तरह इन दुकानदारों के हाथो में विश्वा (धन-द्रव्य के वजन के लिए व्यवहृत वाट) आदि हैं। (७)

आपण—दुकानें; वणिजार—वणिक, दुकानदार; विश्वावसु—एक गन्धर्व, विश्वा आदि परिमापक चिह्न, वाट—वटखरे (तौलनेका भार) । (श्लेष) (७)

बन्धुकुमुदर कि तन्तुवाय। विशद नीळ अम्वर उदय।
वज्रनिकर जाह्नवी लक्षणे। विशुद्ध पय उदय कारणे। ८।

सरलार्थ—अयोध्या के जुलाहो के विषय मे विश्वामित्र ने सोचा कि शायद वे चन्द्र हों, क्योकि शुक्ल पक्ष का चन्द्र विस्तीर्ण नीलाकाश में उदित होता है। उसी तरह जुलाहे सफेद तथा नीले वस्त्र बुन रहे हैं। गोपालों को उन्होने गगा नदी समझा, क्योकि गगा नदी से विशुद्ध जल मिलने की तरह इनसे विशुद्ध दूध मिलता है। (८)

कुमुदर वन्धु—चन्द्र; तन्तुवाय—जुलाहे; विशद—विस्तीर्ण,शुक्ल; नीलाम्वर—नीला आकाश तथा नीले वस्त्र; व्रज्रनिकर—गोपालसमूह; जाह्नवी—गंगा नदी; पय—दूध, जल। (रूपक, उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (८)

वणिक-पसरा कि कइळास। विराजे शिवा कपर्द्दी आश्ळेष।
वळिसद्म परा नागरे चारु। व्योमा कि चन्द्र ताराळि संगरु। ९।

सरलार्थ—व्यापारियों की खैंचियों को देखकर उन्होने उनको कैलास पर्वत समझा। क्योकि कैलास पर्वत पर शिवजी पार्वती को आलिगन किये विराजमान रहते है। यहाँ पर भी वैसी कौडियाँ तथा हरितकियाँ इकट्ठी हो रही है। और भी, उनको पाताल समझा, क्योकि पाताल में वहुत नाग-साँप रहते है। इन पसरो (खैंचियो) मे वहुत सी शुण्ठियाँ अथवा सीसे है। फिर ये पसरे (खैंचियाँ) नभोमण्डल के समान प्रतीत होते है, क्योकि आकाश चन्द्र तथा तारावलियो से मण्डित है और ये पसरे (खैंचियाँ) वहुत से सुवर्ण (अथवा कर्पूर) तथा मोतियो से मण्डित हैं। (९)

शिवा—उमा, हलदी, हरीतकी (हड़); कपर्द्दी—महादेव, कौड़ी; वळिसद्म—पाताल; नागरे—साँपों से, सूखे अदरको से, सीसो से; चन्द्र—कर्पूर, सुवर्ण; ताराळि—तारासमूह, शुद्ध मुक्तासमूह। (उत्प्रेक्षा, उपमा तथा श्लेषालकार) (९)

वारिधिकुमारी परि माळिनी। विस्तारि सुमना-भद्र श्रीदानी।
वेष्टने पात्रगण सावधाने। वसे कंसारि राजन येसने। १०।

फूल, चन्दन तथा कर्पूर आदि देनेवाली अयोध्या की मालिने देवश्रेष्ठ विष्णुजी की शोभावृद्धिकारिणी मनस्विनी लक्ष्मी, तथा वर्त्तन-लोटे आदि से परिवेष्टित ठठेरे मन्त्रिगण-परिवेष्टित राजाओ के समान शोभित होते हैं। (१०)

वारिधिकुमारी—लक्ष्मी; सुमना—मनस्विनी, मालती पुष्प; भद्र—चन्दन; सुमना-भद्र—देवश्रेष्ठ; श्रीदानी—सौन्दर्यदात्री; पात्रगण—वर्तन, लोटा आदि, मन्त्री-समूह। (उत्प्रेक्षा तथा श्लेष) (१०)

बिलोकि-विलोकि मुनि ये गले । वारण रिपुद्वारे याइँ हेले ।
वेत्रहस्त प्रतिहारी जणाइ । विराट श्रेष्ठकु भेटाइ नेइ । ११ ।

सरलार्थ—इस प्रकार अयोध्या की नगरी को देखते हुए विश्वामित्र जी राजा के सिहद्वार मे प्रविष्ट हुए । दण्डधारी प्रतिहारी ने राजा को मुनि के आगमन की सूचना दी और उनसे मुनि की भेट कराई । (११)

बारणरिपु (सिंह-) द्वार—सिहद्वार; विराटश्रेष्ठ—क्षत्रियश्रेष्ठ । (११)

ब्रह्माकु इन्द्र स्तुति कलापरि । बिनयी दशरथ दण्डधारी ।
वेदान्तकारी सावित्री सेवन । बिशेष-नेत्र-सुखद विजन । १२ ।

सरलार्थ—सहस्रलोचनधारी, सवके सुखदाता इन्द्र जिस प्रकार एकान्त-विनयी होकर वेदो के उद्भवकर्त्ता तथा सावित्री देवी से सेवित ब्रह्मा जी की स्तुति करते है, उसी प्रकार सर्वजनो के नयनाभिराम (सर्वजन-दर्शनीय) शासनकर्त्ता दशरथ ने एकान्त विनय से वेदान्तशास्त्रकर्त्ता, सावित्री मन्त्रोपासक विश्वामित्र की स्तुति की । (१२)

विशेषनेत्र—बहुनेत्र (इन्द्र), सुखद—सुखदाता; विशेषनेत्र-सुखद—नयनाभिराम (सर्वजनदर्शनीय); विजन—एकान्त । (श्लेष) (१२)

बनवासी बरसभा लोकित । बराहमूर्त्ति कि ज्याबाळी युक्त ।
बामदेव घेनि कैळास स्थान । बेद कि सुमन्त्रे विद्यमान । १३ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ जी की विराट सभा को देखकर विश्वामित्र जी ने समझा यह सभा वराहमूर्त्ति, कैलास पर्वत या वेद है । क्योकि वराहमूर्त्ति के भूदेवीयुक्त, कैलास मे शिवजी तथा वेद मे उत्तम मन्त्रो के होने की तरह इस सभा मे जावालि, वामदेव तथा सुमन्त्र आदि मन्त्रि-वृन्द उपस्थित हुए है । (१३)

वनवासी—ऋषि (विश्वामित्र); ज्यावाळि—पृथ्वीदेवी, दशरथ के मन्त्री; वामदेव—शिवजी, अन्य एक मन्त्री; सुमन्त्र—उत्तम मन्त्र, अन्यतम मन्त्री । (उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (१३)

बशिष्ठ पुच्छे किमर्थे आगत । ब्यकत कले गाधिराज सुत ।
बृत्त राक्षसे होइ क्रतुक्षते । बिध्वसि सुन्द उपसुन्द सुते । १४ ।
बिहायसुँ रामवाणी श्रवण । बधि रक्षगण हेब रक्षण ।
वदान्य ए राजा धर्मे उद्‌वेगी । बिषे ए आसिछुँ रामकु मागि । १५ ।

सरलार्थ–वशिष्ठ जी के विश्वामित्र से उनके आगमन का कारण पूछने पर उन्होंने कहा, "सुन्द और उपसुन्द–इन दो राक्षसों के पुत्र सुबाहु तथा मारीच दूसरे राक्षसो से परिवेष्टित होकर (दूसरे राक्षसो सहित) मेरा यज्ञ ध्वंस करते थे। उसी समय आकाश से दैवी वाणी सुनाई पड़ी कि राम को ले आओ। वे इन राक्षसो का वध करके यज्ञरक्षा करेंगे। ये राजा अत्यन्त धार्मिक तथा दानशील है, इसलिए राम की याचना करने के लिए हम यहाँ पर आये है"। (१४-१५)

ऋतु—यज्ञ; विहायसुं—आकाश से, रक्षगण—राक्षससमूह; आसिछुं—(हम) आये है। (१४-१५)

वज्री हेउछ मुनि! राजा कहि। वसुधाभृत त स्वभावे मुहिँ।
वच-दम्भोळि मारि दम्भ-शृग। विना अपराधे करुछ भङ्ग। १६।

सरलार्थ–यह सुनकर राजा दशरथ ने कहा, "हे मुने! मै स्वभाव से वसुधाभृत (राजा) ही हूँ। आप इन्द्रवत् मुझे वसुधाभृत (पर्वत) समझकर मेरे किसी अपराध के विना ही वचन रूपी वज्र मारके मेरे दम्भ (धैर्य) रूपी शिखर को चूर्ण कर रहे है!" (इन्द्र ने वज्र से पर्वतो का पंखछेदन किया था) (१६)

वज्री—इन्द्र; वसुधामृत—राजा, पर्वत; दम्भोळि—वज्र। (श्लेपालंकार) (१६)

वाटी-क्रीड़ाकु छाड़ि नाहिँ ये़हि। वाण धनु ये़ कांशिकारे वहि।
वेश्मे रहिवाकु एका डरइ। वाण्ट मने दैत्य नाशिव केहि। १७।

सरलार्थ–आगे चलकर राजा ने कहा, "जिसने अभी तक गोली का खेल भी नही छोड़ा, जो कांशिका (काँसका)-धनुप लिये घूम रहा है और जो अकेले घर पर रहने मे डर रहा है, वह राक्षसो का वध कैसे करेगा? ज़रा मन मे विचार तो कीजिए!" (१७)

वाटी-क्रीड़ा—गोली का खेल; कांशिका—काश, काँसा; वेश्म—घर; वाण्ट—विचार करो। (१७)

वोल मुँ सैन्य सज करि यिवि। वाद रचि तुम्भ याग रखिवि।
वुझिछि ये़ाद्धापण मुनि भणि। वामा कवच कि करिवु पुणि। १८।

वामाकवच—स्त्री-रक्षित (दशरथ परशुराम के भय से रानियों के बीच में छिपे थे।) (१८)

वाळक न वोल रामङ्कु तुहि। वह्नि क्षुद्र भस्म आच्छन्ने थाइ।
वढ़ाए प्रभा से पाइ इन्धन। वधिवे दैत्य शलभ येसन। १९।

सरलार्थ—"हे राजा! आप राम को वालक मत समझे। राख मे आग की चिनगारी छिपी रहती है, परन्तु लकड़ी पाने पर अपना तेज वढा कर पतगो का नाश कर देती है। वैसे ही रामचन्द्र भी राक्षसों का वध आसानी से कर सकेगे। (१९)

वह्निक्षुद्र—चिनगारी; भस्म—राख; ईंधन—जलाने की लकड़ी; शलभ—पतंग। (१९)

वामन केड़े वळि अधोगति। विचारि छन्ति विचार तो मति।
विष्णु से वोइले अजनन्दन। वोले ऋषि एक मनरे घेन। २०।

सरलार्थ—"हे राजा! आप विचार करे। वामन कितने छोटे थे! फिर भी तो उन्होंने वलि को पाताल मे दवाया था"। यह सुनकर दशरथ ने कहा, "वे विष्णु हैं"। ऋषि ने कहा, "उन्हे तथा इन्हें एक समझो। अर्थात् ये वही विष्णु भगवान है। (२०)

अजनन्दन—दशरथ; घेन—ग्रहण करो, समझो। (२०)

व्युत्पत्ति कर ये उत्पत्ति होइ। वनपति शिशु गज मारइ।
वार वरपर क्षत्रिय सुत। व्याज न करि दे राम तुरित। २१।

सरलार्थ—"सिंह का वच्चा पैदा होते ही हाथी को मारता है। यह वात मन में विचार कीजिए। अतएव वारह साल के क्षत्रिय-पुत्र राम को साधारण वालक न समझे। कपट छोडकर राम को शीघ्र दे"।(२१)

व्युत्पत्ति कर—विचार करो; उत्पत्ति होइ—पैदा होते ही; वनपति-शिशु—सिंहशावक; व्याज—कपट। (२१)

वोलुँ कउशिक राघव आसि। वेहरण-सिन्धुरे याए दिशि।
वीचिर लीळारे महारञ्जन। व्यथित तिमिरे ग्रस्त राजन। २२।

सरलार्थ—विश्वामित्र के ऐसे वोलते समय समुद्र के समान विस्तीर्ण सभामण्डप मे रामचन्द्र दिखाई दिये, मानो राघवमत्स्य समुद्र में दिखाई दिया हो। राघव के लहरों मे खेलते हुए डूव जाने पर उसका खाद्य तिमि नामक मत्स्य भय से आकुल होता है। वैसे ही अनित्य संसार में कुछ ही समय के लिए लीलाकारी, अत्यन्त मनोहर रामचन्द्र जी को

सभा-मण्डप मे खेलते हुए देखकर 'तिमिरग्रस्त' (अन्धकार-निपतित) मनुष्य की तरह दशरथजी का हृदय भी व्याकुल हो उठा। (२२)

कउशिक—विश्वामित्र; राघव—रामचन्द्र, राघव मत्स्य; वेहरण—सभामण्डप; वीचिर—लहरो की, अनित्य; तिमिर—तिमिमत्स्य, अन्धकार। (श्लेष) (२२)

बिबेक स्वयम्भू आत्मभूचित्ते। बिधान मुनि रामर उचिते।
बसे मान्य करि आशिष पाइ। बोल राम याउ कौशिक कहि। २३।

सरलार्थ—विश्वामित्र के ब्रह्मतेज को देखकर रामचन्द्र ने उन्हें ब्रह्मा समझा और उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शित कर उनसे आशीर्वाद पाकर बैठे। रामचन्द्र का सौन्दर्य देखकर विश्वामित्र ने उन्हें कन्दर्प (कामदेव) समझा। इसके अनन्तर, "रामचन्द्र मेरे साथ चले", इसके लिए दशरथजी की अनुमति की याचना की। (२३)

विवेक—विचार किया, समझा; स्वयंभू—ब्रह्मा; आत्मभू—कन्दर्प। (२३)

वाचंयमभूति नृप पाइले। बाहुळ प्राये तपस्वी जळिले।
बिरोचन ए बशिष्ठ मनकु। बोइले ए ऋषि नेउ रामकु। २४।

सरलार्थ—विश्वामित्र की बात सुनकर राजा चुप रहे जिसके कारण ऋषि विश्वामित्र क्रोध से अग्निवत् जलने लगे। राजा का ऐसा आचरण वशिष्ठजी को अच्छा नही लगा। इसलिए उन्होंने राजा से कहा, "विश्वामित्र राम को ले जायँ"। (२४)

वाचंयमभूति—चुप्पी, मौन; वाहुळ—अग्नि; विरोचन—अरुचिकर। (२४)

वक्त्रविकाररु नृपर घेनि। बाहारिले राम लक्ष्मण वेनि।
विळम्ब न करि सरयू पारि। विगम्य अरण्य मध्ये बिहरि। २५।

सरलार्थ—वशिष्ठ की बातो से राजा ने स्वीकार कर लिया। यह उनके मुख्यमत्री से जानकर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण दोनों को अपने साथ लेकर चल पडे। थोडे ही समय मे उन्होने सरयू नदी को पार करके अगम्य जंगल मे प्रवेश किया। (२५)

वक्त्रविकार—मुखभंगी; विगम्य-अगम्य। (२५)

बोलाइ तामसी ये से वाहार। वढ़ाइ देइ सन्ध्याछळे कर।
वारुणी-कुण्डे बुडाइ ईनकु। विनाश करिवा इच्छि दिनकु। २६।

सरलार्थ—इस समय रात्रि ने सन्ध्या के वहाने से अपना हस्त-प्रसारण (हाथ फैला) कर सूर्य को पश्चिमदिशा रूपी कुण्ड मे डुबाकर दिन को

नाश करने की इच्छा की। अर्थात् सूर्यास्त होने से सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ। (२६)

तामसी—रात्रि; बारुणीकुण्ड—पश्चिमदिशा-रूपी कुण्ड; ईनकु—सूर्य को। (२६)

बाळ धरि किबा नेइ आकर्षि। बायसचय थिबा तथा दिशि।
बोबिदेला पक्षिनाद छळर। बदने काळि पड़िला दिगर। २७।

सरलार्थ—कौए रव (शब्द) करते हुए उड-उड़कर अपने-अपने घोसले को जाने लगे। उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानों रात्रि ने दिवस के वायस (कौआ) रूपी केशो को खींचकर उसे निकाल दिया हो, जिसके फलस्वरूप वह (दिवस) पक्षियो के कलरव के मिस रो रहा हो। अनन्तर अन्धकार चारो ओर छा गया। मानो दिवस के इस तरह निकाल दिये जाने पर दिशाओ के मुख काले पड़ गये हो। (२७)

वायसचय—काकसमूह; बोविदेला—रो उठा। (उत्प्रेक्षा) (२७)

बिकट काळकु यहुँ दर्शन। बुड़िला पद्मिनी पद्म-नयन।
बसा तेजि निशाचर प्रकट। वर्जि तर्जि कले हुँ हुँ हुँ रट। २८।

सरलार्थ—इस प्रकार के भयकर काल को देखकर पद्मिनी ने अपने पद्म रूपी नेत्रो को मूँद लिया (अर्थात् सभी पद्म के फूल मुँद गये) और उल्लू आदि निशाचर प्राणी अपने-अपने स्थानो को छोड़कर निकल पड़े तथा हुँ-हुँ शब्द प्रकट करने लगे। (२८)

विकट—भयंकर; पद्मिनी—पद्मलता। (२८)

बिरस तेजि बाहार भुजङ्गे। बिकृत भयकर हेला तुङ्गे।
वेनिभ्राता मुनि सेकाळ रहि। बञ्चिले प्रभात प्रवेश होइ। २९।

सरलार्थ—इस समय साँप तथा जार पुरुष सानन्द बाहर निकले। वनस्थली विकृताकार धारण करके बडी भयकर लगने लगी। विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण दोनो भाइयो ने उसी जगल मे रात विताई। अनन्तर प्रभात हुआ। (२९)

विरस तजि—विषाद छोड़कर (आनन्दमन से); भुजंगे—साँप, जारपुरुष; तुंग—अतिशय। (२९)

बासवदिग-अभ्रमु करिणी। बिजन्य कला रक्तपिण्ड जाणि।
बिम्ब सवितार दिशि आसिला। बिञ्चे कर्ण शीत बात से हेला।३०।

सरलार्थ—क्रमशः लोहित पिण्डवत् (लाल गोले के समान)

सूर्यमण्डल दिखाई दिया अर्थात् सूर्य उदित होने लगे, ठडी हवा चलने लगी। यह देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है—मानो पूर्वदिशा की अभ्रमु नामक हस्तिनी एक रक्तपिण्ड को पैदा करके उसे मूर्तिमन्त करने के लिए प्रभातकालीन वायु के मिस (वहाने) से कर्ण-सचालन रूपी व्यजन (पंखा) कर रही हो। (हस्तिनी पहले रक्तपिण्ड को जन्म देने के बाद उसे अपने कानो से व्यजन (पखा) करके उस पिण्ड से बच्चा निकालती है। (३०)

वासवदिग अभ्रमुकरिणी—पूर्वदिशा की अभ्रमु नामक हथनी (ऐरावत की पत्नी); सविता—सूर्य; विम्ब—मण्डल। (उत्प्रेक्षालंकार) (३०)

विच्छेदन करि तमकु कि से। बिलेपित चक्र रकत बशे।
बञ्चिले भये लुचि रात्रिचर। बिनाशकाळ आरम्भ आम्भर।३१।

सरलार्थ—लोहित वर्ण (लाल रग) के सूर्य ने अन्धकार का नाश किया। मानो सूर्य रूपी सुदर्शन चक्र द्वारा राहु का छेदन करने से रविमण्डल रक्तरञ्जित दिखाई देता है। यह देखकर "हम लोगों का मृत्युकाल उपस्थित हुआ" यह सोचकर निशाचर प्राणियों तथा राक्षस लोगो ने भय से छिपकर अपनी-अपनी प्राण-रक्षा की। (३१)

तम—अन्धकार, राहु; चक्र—मण्डल, सुदर्शनचक्र; रात्रिचर—उल्लू आदि निशाचर प्राणी, राक्षस। (श्लेष तथा उत्प्रेक्षा) (३१)

बर्ण्णना सिद्धिकि आणिला सेहि। विश्वामित्र रामचन्द्रङ्कु कहि।
बाबु ए बने ताड़का निबास। बाट भांगियिबा बिहिब त्रास। ३२।

सरलार्थ—इस तरह कवि ने प्रभात-वर्णन समाप्त किया। अनन्तर विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा, "श्रीमन्, इस वन मे ताड़का राक्षसी वास करती है। वह हम लोगों को भय दिखाएगी। चलो, इस मार्ग को छोड़ दूसरे मार्ग पर चले"। (३२)

बोले राम एक राक्षसी डरे। बाट भांगिगले बहुत वीरे।
बादी हेबा केहि मखरक्षणे। बोलिण आग होइले आपणे। ३३।

सरलार्थ—यह सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा, "अनेक वीर इसी एक ही राक्षसी के डर के मारे रास्ता छोड़ कर चले गये। अगर हम लोग उनकी तरह रास्ता छोड कर चले जावें तो बहुत से राक्षसो से युद्ध करके याग-रक्षा कैसे करेंगे?"—यह कहकर आप स्वय अग्रगामी हुए। (३३)

बाट भांगिगले—रास्ता मुड़कर चले गये; वादी—विवादी; हेबा—होगे; केहि—कैसे; मख—याग; बोलिण—बोलकर; आपणे—आप। (३३)

विश्वामित्र मध्ये पछे लक्ष्मण । विपिन देखन्ति अति भीषण ।
विरोचन कर पशइ नाहिँ । बिभावरी स्थान सर्वदा सेहि । ३४ ।

सरलार्थ—विश्वामित्र बीच मे तथा लक्ष्मण पीछे-पीछे चले । वह जंगल अति भयकर दीखता था । उस जंगल मे कभी सूर्य की किरणें नही पड़ी थी, इसलिए वहाँ हमेशा रात ही रात वास करती थी (अर्थात् वृक्षो की निविड़ता के करण वहाँ हमेशा अन्धकार छाया रहता था । (३४)

विरोचनकर—सूर्यकिरण; विभावरी—रात्रि । (३४)

वाचक ए घेनि पेचक पन्ति । विलोकन नोहे मेचक कान्ति ।
विनोद स्वच्छे करन्ति गण्डक । वल्मीक विदारु छन्ति भल्लुक ।३५।

सरलार्थ—यह जगल सर्वदा अन्धकाराच्छन्न होने से यहाँ दिन-रात उल्लू चिल्लाते रहते हैं । घने अन्धकार के कारण ऐसे दिन मे भी काली चीजें नजर नही आ सकती । गैंडे स्वच्छन्दता से वहाँ क्रीड़ा कर रहे हैं, तथा भल्लूकगण (भालू) वल्मीक (बाँबी) का विदारण कर रहे हैं । (३५)

वाचक—कथक, चिल्लानेवाले; ए घेनि—इसी वजह से; पेचकपन्ति—उल्लुओं का समूह; मेचक-कान्ति-श्यामल या काले पदार्थ; वल्मीक—दीमको का मिट्टी से बना ढूह (बाँबी) । (३५)

वराह प्रतीति स्वनरु जाणि । विड़ाळ आदि दीप्ताक्षरु आणि ।
वारि होए गज दशन घेनि । वढ़ान्ते पाद न दिशे अवनी । ३६ ।
वृक्ष वल्ली पत्र घञ्चरु करि । वायु ये मशक मशारि सरि ।
विचारि राघव राक्षसी आसु । विधान गुण टङ्कार ए वशुँ । ३७ ।

सरलार्थ—उस वन मे चीत्कार से वराह, चक्षुओ के तेज से विडाल आदि हिंस्र जन्तु, तथा दन्तों की विमल ज्योति से हाथी पहचाने जा रहे हैं । पैर रखने के लिए भूमि भी नही दिखाई पड़ती । वृक्ष-लताओ के पत्तों से वह वन ऐसा आच्छादित है कि, वायु उसके भीतर नही घुस सकती, जैसे मच्छर मच्छरदानी मे नही घुस सकता । राम इस आशय से कि 'ताड़की आवे', धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाकर टकार करने लगे । (३६-३७)

वराह—सुअर; स्वन—शब्द, चीत्कार; दीप्ताक्ष—उज्ज्वल चक्षु; वारि होए—पहचाना जाता है; वृक्षवल्ली—वृक्षलता; घञ्च—घनता, निविड़ता, मशारि—मसहरी, मच्छरदानी; सरि—समान । (३६-३७)

बज्र उपरे कि बज्र पड़िला । विश्रामस्थान ताड़का छाडिला ।
बिक्रमि आसिला मनरु बेगे । बड़ मेघखण्ड कि बायु य़ोगे । ३८ ।

सरलार्थ–रामचन्द्र जी के धनुष्टंकार को सुनकर "शायद बज्र पर बज्र पड़ा हो" यह समझकर, (कृष्णवर्णा विशालकाया) ताड़का मन से भी अधिक वेग से अपने विश्रामस्थल से दौड़ कर आयी, मानो एक बड़ा मेघखण्ड वायु-वेग से उड़ता चला आ रहा हो । (३८)

बिकमि आसिला—दौड़ आयी । (उत्प्रेक्षा) (३८)

बिळ परा नासा सर्प फुत्कार । बातहिँ बहुछि निःश्वास तार ।
बसुन्धराधर शृंग कि हनु । बहे कि झर झाळ तथा तनु । ३९ ।

सरलार्थ–उसकी नासिका गर्त्त (गड्ढे) के सदृश है, जिससे सर्पफुफकार के सदृश निःश्वास-वायु निकल रही है । उसके दोनों गाल पर्वत की चोटियों के समान दिखाई पड़ते थे तथा देह से झरने के समान पसीना छूट रहा था । (३९)

विंळ—गर्त्त, गड्ढे; परा—सदृश; फुत्कार—फुफकार; वात—पवन; तार—उसका; बसुन्धराधर—पर्वत; हनु—गाल; झाळ—पसीना; तनु—शरीर । (३९)

बिस्तृत मुख गह्वर सदृश । ब्याघ्र कला प्राये से मध्ये घोष ।
बिस्तारे रे रे कार शुभुअछि । बह्नियोग प्राये जिह्वा जळुछि ।४०।

सरलार्थ–उसका मुख एक बड़ी पर्वत-गुफा के समान विस्तृत हुआ है और गुफा मे व्याघ्र के गर्जन के सदृश उसके मुख से दीर्घ 'रे' 'रे' की [विकट] ध्वनि सुनाई पड़ रही है । उसकी जीभ पर आग जलती हुई सी दिखाई पड रही है । (४०)

गह्वर—गुफा; घोष—गर्जन; विस्तारे—दीर्घ; शुभुअछि—सुनाई पड़ रही है; बह्नियोग परि—आग जलती हुई-सी । (४०)

बीभत्सरूपा आसि परबेश । वृक्ष प्रहारे बहि महारोष ।
बोइला मो दान्त लांगल-ईश । बप्र तुम्भे हेब करिबि चाष । ४१ ।

सरलार्थ–उसी विकट रूप वाली ताड़का ने राम के सम्मुख उपस्थित होकर अत्यन्त क्रोध से एक वृक्ष का प्रहार करके कहा, "मेरे दाँत [नुकीले] फाल से युक्त हल के समान है । उनसे मै तुम्हारे शरीर-रूपी क्षेत्र (खेत) को जोतूँगी । अर्थात् मै तुम्हे चबाऊँगी" । (४१)

बीभतसरूपा—भयंकर शरीर वाली, वप्र—क्षेत्र; करिबि चाष—खेती करूँगी, जोतूँगी । (४१)

ब्यानसह प्राण कर्कट बत्त । बाहारि होइवे मन्द आयत्त ।
बोलि से तळ उच्चाइबा बेळे । विधु-अर्द्धशर प्रयोग कले । ४२ ।

सरलार्थ—फिर वोली, "केकड़े जैसे कौओ के कावू मे आते है (कौए उन्हे जैसे मारते है) व्यान वायु के अधीन तुम्हारे पचप्राण मेरे अधीन होगे । अर्थात् तुम्हारे पचप्राण मैं लूँगी" । यह कह कर उसके एक थप्पड़ उठाते ही रामचन्द्र ने उस पर अर्द्धचन्द्र वाण का प्रयोग किया । (४२)

बिशाळ तुग शाळ महीरूह । विच्छेदिला प्राये पड़िला देह ।
बाहार तहुँ दिव्य रूप हेला । विमान आरोहि स्वर्गकु गला ।४३।

सरलार्थ—उसी वाण के आघात से ताडका का शरीर दो खंड हो कर नीचे गिरा, मानो एक विशाल, उच्च शालवृक्ष कटकर नीचे गिर पड़ा हो । उस शरीर से एक अलौकिक रूप निकलकर विमान पर वैठकर स्वर्ग सिधारा । (४३)

बृष्टि कले पुष्प वाद्य बजाइ । विबुध निकर आकाशे रहि ।
वन ये काळिका देवी आकार । वाहुरु ताड कि भांगिला तार ।४४।

सरलार्थ—ताडका का वध देखकर देवताओ ने आकाश में एकत्र होकर वाद्य बजाकर पुष्पवृष्टि की । वन मानो कालिका देवी हो और ताड़का के निधन पर मानो उसके वाहु से वाजूबन्द टूट गया हो । (४४)

ताड़—वाजूवन्द । (उत्प्रेक्षा) (४४)

बेदवंशर बिनाश उद्‌वेग । बिध्वसि दैत्य रखिब मो याग ।
बिगळित ताप होइलि आग । बृजिनी गला बरि स्वर्गभोग । ४५ ।

सरलार्थ—ताडका के निधन पर विश्वामित्र के मन से उद्‌वेग घट गया । उनका विश्वास दृढ हुआ कि ये राम ही असुरों का वध करके मेरी याग-रक्षा करेगे । इन्हें देखकर मै आज पापमुक्त हुआ और इनके हाथो से निहत होकर पापिनी ताड़का स्वर्ग-भोग करने को गयी । (४५)

वेदवंशर—विश्वामित्र का; वृजिनी—पापिनी । (४५)

बिपक्षपक्ष नाहिँ मोक्षदायी । बिष्णु ए स्वयं अवतीर्ण मही ।
वपुरे लीन अवतार मान । वसन्ति पुरुषलक्षणे मीन । ४६ ।

सरलार्थ—ये स्वय विष्णुजी है जो पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए है । शत्रु-मित्र को एक समान समझकर ये सव को मोक्ष प्रदान करते है । दश

अवतार इनके शरीर मे लीन होकर रहे है। महापुरुषों के लक्षण मीन इनके शरीर पर दिखाई दे रहे है। (४६)

विपक्षपक्ष—शत्रु-मित्र; वपु—शरीर। (४६)

बिख्यात हेले मन्दर ताड़ने। बराहबरे ए निपुण गुणे।
बसन हिरण्य-प्रथा गञ्जन। बळिशिरे पाद देइ गमन। ४७।

सरलार्थ–पहले विष्णुजी ने कूर्मावतार में मन्दर पर्वत उखाड़ कर ख्याति प्राप्त की थी, अब रामावतार में दुष्टा ताड़की का विनाश करके ख्याति प्राप्त की। पहले इन्होने वराहरूप धारण करके असीम पराक्रम प्रदर्शित किया था, अब अपने वीरोचित गुणों से प्रधान-प्रधान युद्धों में निपुणता प्राप्त की है। नृसिहावतार मे हिरण्यकश्यपु का गर्व गंजन किया था, अब पीतवसन धारण करके सुवर्ण की प्रभा को परास्त कर रहे है। फिर वामनावतार मे बलि के मस्तक पर पाद स्थापन करके उन्हें पाताल मे पहुँचाया था, वैसे ही अब बलवान् वीरो के मस्तको पर पैर रख कर गमन कर रहे है, अर्थात् वीरश्रेष्ठ हुए है। (४७)

मन्दर—पर्वत विशेष, दुष्टों का; वराहवरे—श्रेष्ठ वराह के रूप में, प्रधान युद्ध (वर+आहवरे) में; हिरण्य-प्रभा—हिरण्यकश्यपु का गर्व, सुवर्ण का तेज; बळि—बलिराजा, बलवान् (बळी); (श्लेषालंकार) (४७)

विजित तेजरे सहस्रकर। बर्ण्णरे कृष्ण करि अङ्गीकार।
बळ संग होइअछि सहजे। बुद्धत्व बुद्धिरे पुण उपुजे। ४८।

सरलार्थ–पहले परशुराम के रूप में अपने असाधारण विक्रम से इन्होंने सहस्रार्जुन को जीता था, अब रामावतार में अपने तेज से सूर्य को परास्त कर रहे है। अपनी शरीर-कान्ति मे कृष्णवर्ण को धारण करने के कारण (अर्थात् नव-दूर्वादल-श्यामल शरीर धारण करने के कारण) अब नन्दनन्दन कृष्णावतार को भी अंगीकार कर रहे है। कृष्णावतार में बलराम, भाई के रूप मे इनके संग थे। अब रामावतार मे बल (पराक्रम) सहज इनके संग है। (अर्थात् ये महापरक्रमी है।) बुद्ध के रूप मे इन्होने बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त किया था, अब भी बुद्धि की तीव्रता के हेतु इन्होने पाण्डित्य प्राप्त किया है। (४८)

सहस्रकर—सहस्रार्जुन, सूर्य; कृष्ण—नन्दनन्दन, काला; बल—बलराम, पराक्रम; सहजे—भाई के रूप मे, सहजही; बुद्धत्व—बुद्धावतार-भाव, पाण्डित्य; (श्लेषालंकार) (४८)

बिभ्राजमान सायकरे अति । बिदित करुछि गन्धर्व गति ।
वर्त्तमान भूत भविष्य घेनि । बिक्षणे अवतारी एहि चिह्नि । ४९ ।

सरलार्थ–पहले कल्कि अवतार मे ये अपने हाथों मे तीक्ष्ण खड्ग-धारण करके द्रुतगामी अश्व के पृष्ठपर शोभायमान हुए थे। अव उसी तरह अत्यन्त तीक्ष्ण शर तथा धनुष धारण करके (वध्य के पीछे) गन्धर्व की तरह शीघ्र दौडने मे कुशल है। (अर्थात् श्रेष्ठ धनुर्धर वीर है। इस तरह रामचन्द्र मे वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत के सव लक्षण देखकर ऋषि ने उन्हे निस्सन्देह अवतारी नारायण समझा। (४९)

सायक—खड्ग, शर; गन्धर्व—अश्व, देवयोनि-विशेष; (श्लेष) (४९)

बप्ता भाग्यॅु दशरथ नृपति । विद्यागुरु होइ रहु मो कीर्त्ति ।
बिबेकी ऋषि स्नानविधि सारि। बिजया जया मन्त्र दान करि । ५० ।

सरलार्थ–अनन्तर ऋषि ने विवेचन किया कि राजा दशरथ ने अपने सौभाग्य से जैसे पिता होकर पृथिवी मे कीर्त्ति स्थापित की है, वैसे ही रामचन्द्रजी का विद्यागुरु हो कर मै भी पृथिवी मे अक्षय कीर्त्ति स्थापित करूँगा। यह निश्चय करके स्नानविधि आदि समाप्त करके विवेकी ऋषि ने राम को 'जया', 'विजया' नामक दो मन्त्र प्रदान किये। (५०)

बप्ता—पिता। (५०)

बिशाळ कटक सीमारे स्थित। बिचारु अस्त्र शस्त्र उपगत ।
बीरेश्वर राम पचारुॅ सत । बदन्ति मुनि से देश चरित । ५१ ।

सरलार्थ–उसके बाद राम 'विशालकटक' नगरी की सीमा पर उपस्थित हुए। ऋषिदत्त मन्त्रो को स्मरण करते ही सभी अस्त्र-शस्त्र उनके पास आकर उपस्थित हुए। वीरश्रेष्ठ राम के ऋषि से 'विशाल-कटक'-चरित पूछने पर ऋषि ने सारे चरित उनसे कह सुनाये। (५१)

बासर निशिए तहिँ रे रहि । बहिले प्रभात हरष होइ ।
बान पदे ए छान्द मनोहर । विरचे उपइन्द्र बीरवर । ५२ ।

सरलार्थ–उसी नगरी मे एक अहोरात्र (दिनरात) यापन (बिता कर) किये, सुवह वे सहर्ष अन्यत्र गये। वीरवर उपेन्द्र ने बावन पदो मे इस छान्द की मनोहर रूप से रचना की। (५२)

॥ इति षष्ठ छान्द ॥

सप्तम छान्द

राग—पट्टमञ्जरी

विड़ोजा सुधांशु गुरु सगति समान।
वेनि भ्राता मुनि संगे देखे सिद्धवन। १।

वृक्षतति तपिपन्ति तहिँ एकाकृति।
वळकळ पिधान करि जटा धरिछन्ति। २।

सरलार्थ—इन्द्र से युक्त चन्द्र तथा वृहस्पति के समान, राम-लक्ष्मण दोनों भाई विश्वामित्र से युक्त होकर 'सिद्धवन' नामक तपोवन देखने लगे। उन्होने देखा कि उस वन मे वृक्ष तथा मुनिगण एक ही प्रकार के दीख रहे है। जिस प्रकार वृक्षों ने वल्कलावृत होकर वरोह धारण किये है, उसी प्रकार ऋषियों ने भी वल्कल वस्त्र धारण करके जटाएँ धारण की हैं। (१-२)

बिड़ोजा—इन्द्र; सुधांशु—चन्द्र; गुरु—वृहस्पति; वृक्षतति—वृक्षसमूह; तपिपन्ति—मुनियों का समूह; तहिँ—वहाँ; वल्कल—पेड़ की छालें; पिधान करि—पहनकर; जटा—वरोह (वरगद की जटा), मुनि की जटा; धरिछन्ति—धारण की हैं। (१-२)

वेदि सार मूळ सदा सुमना फळद।
वास वृत पूर्णचय अति स्थिर हृद्य। ३।

सरलार्थ—उन सब वृक्षों के मूलों (जडो) मे उत्कृष्ट वेदियाँ विद्यमान है। वे वृक्ष हमेशा वनवासी ऋषियो को फूल तथा फल दान करते है और पत्ररूपी वस्त्रो को धारण करके स्थिर रूप से अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर वनभूमि की शोभा वढ़ा रहे है। उसी तरह मुनि लोग, जो वेदवान् (वेदो को जानने वाले) तथा शान्तचेता है, तप, यज्ञ, ध्यान आदि वेदो की सार वस्तुओं को मूल मान कर (इन विषयों के प्रति सर्वप्रथम ध्यान देकर) पर्णकुटीरों मे वास कर रहे है। वे निर्मलमना तथा वाञ्छित फलो के दाता है। (३)

वेदीसार—श्रेष्ठ (उत्कृष्ट) वेदियाँ, वेदवान्; सुमना—फूल, निर्मलमना; फलद—फलदाता, वाञ्छित फलो के देनेवाले; वास—रहने का स्थान, वस्त्र; पर्णचय—पत्र-समूह, पत्रकुटीर; स्थिरहृद्य—शान्तचेना। (श्लेषालंकार) (३)

वनाधार प्राये लतातळ मनोहर ।
विश्रामिछन्ति कमळ हंसताप दूर । ४ ।

सरलार्थ–उस तपोवन मे लताओ के निम्नदेश अर्थात् जलपूर्ण आलवाल (गड्ढे) तालावो के समान सुन्दर है । तालावो मे कमल खिलते हैं और उनमे हस तैरकर अपना-अपना कष्ट दूर करते हैं । उसी तरह लताओ के निम्न प्रदेशो मे (थालो मे) मृगों ने विश्राम किया है और छाया तथा जलयुक्त होने के कारण सूर्य का ताप वहाँ से दूर रहता है । (४)

वनाधार–जलाधार, तालाब, पुष्करिणी; प्राये–सदृश; लतातल–लताओ के निम्नदेश, आलवाल, थाले, कमळ–पद्म, मृग; हंस–हंस पक्षी, सूर्य । (श्लेष तथा उपमा) (४)

विघटित घन पुष्प भ्रमरे सहित ।
विनोदी जनमानङ्क हरुअछि चित्त । ५ ।

सरलार्थ–गम्भीर जलाशय मे भँवर पैदा होकर सौन्दर्य से किनारे पर विहार करने वाले लोगो के मन वहलाता है । उसी प्रकार यह तपोवन वृक्षो तथा लताओ की भ्रमर-चुम्बित घनी पुष्पराशि से विमण्डित होकर उस वन मे विहार करने वाले लोगों के मन वहला रहा है । (५)

घनपुष्प–जल, पुष्पाच्छादित; भ्रमरे–भँवर मे, भौंरो से । विनोदी जनमानङ्क–विहार करनेवाले लोगो के; हरुअछि चित्त–दिल वहला रहा है । (श्लेष) (५)

वनर केउँ प्रदेश अदिति प्रकार ।
बत्सक अनुभावरे शिखी शोभाकर । ६ ।

सरलार्थ–उस तपोवन का कोई अश देवमाता अदिति की तरह दिखाई पड रहा है । क्योकि देवमाता जिस प्रकार अपने पुत्र अग्नि के तेज से तेजस्विनी दीखती है, उसी प्रकार यह वन गिरिमल्लिकाओं (कुटजवृक्षो) के सौन्दर्य से विमण्डित वृक्षो से सुशोभित है । (६)

केउँ प्रदेश–कोई अंश; अदिति–देवमाता; वत्सक–पुत्र, गिरि-मल्लिका (कुटज); अनुभावरे–तेज से; शिखी–वृक्ष, मयूर, अग्नि । (श्लेष तथा उपमा) (६)

वरुण देववल्लभ उदय करिछि ।
वहु सुमना सन्तोषकर होइअछि । ७ ।

सरलार्थ–और भी, देवमाता ने जैसे वरुण और इन्द्रदेवता को उत्पन्न करके देवताओ के हृदय मे असीम सन्तोष प्रदान किया है, वैसे ही इस

वन के किसी-किसी अंश में वरुणा तथा पुन्नाग आदि पेडों से पैदा होकर अनेक फूलों से मण्डित होने से वनस्थली दर्शको को सतोष प्रदान कर रहीं है। (७)

वरुण—जलदेवता, वरुणा का पेड़; देववल्लभ—इन्द्र, पुन्नाग वृक्ष(सुल्ताना चम्पा जिसमें लाल फूलों के गुच्छे लगते हैं); सुमना—देवता, पुष्प। (७)

बनर केउँ प्रदेश दिति छबि धरि।
विजनित दैत्यगण-रूप अछि धरि। ८।
बिस्तारिछि पवन लीळाकु निरन्तर।
विशेषत मुनि नगरे से मनोहर। ९।

सरलार्थ—वन के कुछ अशों ने दैत्यमाता दिति की छवि धारण की है, क्योकि दैत्यमाता ने जैसे दैत्यों (राक्षसों) को जन्म दिया है, वैसे ही इस वन ने राक्षसों के समान अत्यन्त भीषण रूपवाले मुरामांसी (एकांगी) आदि कण्टक-वृक्षो को जन्म दिया है, और दिति जैसे मनोहर कश्यप ऋषि के नगर मे सर्वदा अपने पुत्र पवन को खेला रही थी, वैसे ही पवन इस वन के अगस्तिवृक्ष-पूर्ण किसी अंश मे दूसरे प्रदेशो की अपेक्षा अधिकतर क्रीड़ाएँ कर रहा है। अर्थात् अगस्ति वृक्ष से अतिशय ऊँचे होने के कारण अति मन्द पवन से भी झूम रहे है।

विशेष:—दिति कश्यप की ज्येष्ठा पत्नी थी। उनके पुत्र असुर लोग कनिष्ठा अदिति के पुत्रों—देवताओ से भय पाकर वचपन से घर छोड़ चले गये थे। इसलिए दिति पुत्रो को खेला नही सकी थी। पवन दिति से जन्म लेने पर भी देवता थे और इसलिए देवताओं से न डर कर बचपन में घर पर रहे थे और दिति के द्वारा अत्यन्त आदर के साथ पाले-पोसे गये थे। (८-९)

दिति—राक्षस-माता; दैत्य—राक्षस, मुरामांसी नामक एक कंटीला पौधा, एकांगी; मुनिनगरे—कश्यप के नगर में, अगस्ति वृक्षो पर। (श्लेष तथा उपमा) (८-९)

वनर केउँ प्रदेश रञ्जने रञ्जन।
विनता प्राये अरुण सुपर्ण सुमन। १०।

सरलार्थ—वन का कोई भाग रक्तचन्दन-वृक्षों से सुशोभित होने के कारण गरुड़ माता विनता की तरह दीखता है। क्योकि विनता अरुण तथा गरुड़—इन दो पुत्रों से सुशोभित होती है। उसी प्रकार इस वन के रक्तचन्दन-वृक्ष-सकुल प्रदेश ने भी किञ्चित्-रक्तवर्ण-विशिष्ट कोमल पत्रों को धारण किया है तथा फूलो से सुशोभित हुआ है (१०)

रञ्जने—रक्तचन्दन वृक्षों से, रञ्जन—अनुरागजनक अर्थात् शोभित; विनता—गरुड़ की माता; अरुण—सूर्यसारथि, कुछ लाल वर्ण; सुपर्ण—गरुड़, कोमल पत्र; सुमन—आनन्दमन, फूल। (श्लेष तथा उपमालंकार) (१०)

बनर केउँ प्रदेश कद्रु छबि बहि।
बिहृष्टहर होइछि नागईश्वरहिँ। ११।

सरलार्थ—दूसरे किसी प्रदेश ने नागमाता कद्रु की शोभा धारण की है। नागमाता श्रेष्ठ नागो से सुशोभित होती है। वैसे ही यह प्रदेश भी नागेश्वर वृक्षों से सुशोभित होता है। (११)

कद्रु—नागमाता; नागेश्वर—नागश्रेष्ठ, नागेश्वर वृक्ष (श्लेष तथा उपमा) (११)

बनर केउँ प्रदेश संगीतर शाळा।
व्योम लासिका नर्त्तने होइअछि मेळा। १२।
विरळ गन्धर्वगाने ख्यात सातस्वर।
बिताळ होइण राग जात मनोहर। १३।
बसन्त बास करिछि केदारहिँ मेळ।
विचळित यहिँरे सदा सुमरदळ। १४।

सरलार्थ—वन का कोई प्रदेश सगीतशाला के समान शोभित है। सगीतशाला स्वर्गनर्त्तकी के नृत्य से शोभित है। वैसे यह प्रदेश भरत पक्षी के नृत्य से सुशोभित है। गन्धर्वो जैसे सुगायकों के सुन्दर राग तथा तालविशिष्ट सप्तस्वर गान से संगीतशाला गूँज उठती है। उसी तरह वन का और कोई भाग कोयल के अनुरागपूर्ण सप्तस्वरो से (सूक्ष्म स्वरों से) गूँज उठता है। सगीतशाला मे ताललयविशिष्ट सगीत गाये जाते हैं। वन मे भी ताळ (ताड़) के पेड बहुत विद्यमान है। संगीतशाला मे वसन्तराग वास करता है। उसके साथ केदार राग भी मिलित होकर रहता है तथा उसमे उत्तम मर्द्दल (मृदग) भी बजते है। उसी तरह वन-प्रदेश में भी वसन्त पक्षी (हलदी—वसन्त पक्षी) तथा वृक्षो के मूलो मे आलवाल (या क्यारियाँ) सुशोभित है, तथा फूलो की पखुडियाँ हवा से विचलित हो रही है। (१२-१३-१४)

व्योमलासिका—स्वर्गनर्त्तकी, भरत पक्षी; गन्धर्व—गायक, कोयल; राग—गीत का राग, स्नेह (अनुराग); वसन्त-वसन्त राग, हलदीवसन्त पक्षी; केदार—रागविशेष, क्यारियाँ, आलबाल; सुमरदळ—उत्तम मर्द्दल (मृदंग), फूल की पंखुड़ियाँ। (श्लेष) (१२-१३-१४)

वर्णुथिले सरिबार नुहे ए चरित ।
बिश्राम कले कौशिक मठे रघुसुत । १५ ।

सरलार्थ—उस सिद्धवन की कथा वर्णन करते रहने पर भी समाप्त नही होती । वहाँ विश्वामित्र के आश्रम मे रामलक्ष्मण ने विश्राम किया । (१५)

बानप्रस्थ गृहिमाने त्वरिते मिळिले ।
ब्रह्मचारी दण्डी आसि आशिष बिहिले । १६ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र के आगमन का समाचार पाकर वानप्रस्थाश्रमी तथा गृही तुरन्त आ मिले । ब्रह्मचारियों तथा सन्यासियो ने आकर आशीर्वाद दिया । (१६)

दण्डी—संन्यासी (१६)

बोधि विविध आशने मन ताहाङ्कर ।
बसिले रात्रे चन्द्रकरे अंगणर । १७ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर विश्वामित्र ने नाना प्रकार के भोजन से उन लोगों के मन को सन्तुष्ट किया और रात को चाँदनी मे आँगन में उनके साथ बैठे । (१७)

अशन—भोजन; ताहाङ्कर—उनके; अंगणर—आँगन में । (१७)

बिगतभय होइण राक्षसङ्क हेतु ।
बोइले रघुनन्दन आरम्भ हे क्रतु । १८ ।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्र ने कहा, "हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप राक्षसों से निडर होकर याग आरम्भ कीजिए । (१८)

बिगतभय—निडर; क्रतु—यज्ञ । (१८)

बच प्रकाशरु ऋषि आनन्द होइले ।
बिबिध विधि समिधे यज्ञ आरम्भिले । १९ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र के ये वचन सुनकर विश्वामित्र आनन्दित हुए और नाना प्रकार की यज्ञ-सामग्रियो तथा होम-काष्ठों से यज्ञ आरम्भ किया । (१९)

समिध—होमकाष्ठ । (१९)

बीतिहोत्र-प्रिया-नाद श्रवणे अत्रपे ।
व्यग्रवन्ते परवेश होइले समीपे । २० ।

सरलार्थ—राक्षस लोग अग्नि की प्रियतमा 'स्वाहा' का शब्द सुनकर शीघ्र ही यज्ञ के पास प्रविष्ट हुए (२०)

वीतिहोत्र-प्रिया—अग्नि की प्रियतमा स्वाहादेवी; अस्रपे—राक्षस लोग। (२०)

वरायुध धृत क्रोधे प्रज्वळित मूर्त्ति।
विश्वकेतु नाम पुनः पुनः बोलुछन्ति। २१।

सरलार्थ—वे राक्षस लोग श्रेष्ठ अस्त्र धारण किये है। वे क्रोध से प्रज्वलित होकर बार-बार विश्वकेतु का नाम 'मार', 'मार' ('मारो', 'मारो') बोल रहे है। (२१)

वरायुध—श्रेष्ठ अस्त्र; विश्वकेतु—कन्दर्प, मार। (२१)

व्याघ्रगन्ध आघ्राणे गोपरि पळायित।
बोलि बेनि अर्थे रक्ष रक्ष ऋषिव्रात। २२।

सरलार्थ—मुनि लोग 'रक्ष' कहते हुए ऐसे भागने लगे, जैसे गायें बाघ की गध पाकर भागती है। (रक्ष के अर्थ राक्षस तथा रक्षा करो—दोनों है।) (२२)

बेनि अर्थे—'रक्ष' के दोनो अर्थो मे; रक्ष—राक्षस, रक्ष—रक्षा करो, (यमक); ऋषिव्रात—मुनिसमूह। (२२)

बाणधनु दृढे धरि श्रीराम लक्ष्मण।
बीरुँ अन्तरु बाहार ए रव श्रवण। २३।

सरलार्थ—मुनियों के ये ('रक्ष' 'रक्ष') शब्द सुनकर राम तथा लक्ष्मण दोनो धनुष-बाण दृढता से पकड़े लताओं की ओट से निकले। (२३)

बीरुँ—लताओ के मध्य से। (२३)

बोलि एकान्त स्थळर नाम पुनः पुनः।
बाहिनी दुहिङ्कि घेनि तृणर समान। २४।
बातास्त्रे मारीच लक्षे योजने पकाइ।
विभावसु अस्त्रे देले सुबाहु जळाइ। २५।

सरलार्थ—राम-लक्ष्मण दोनो बारबार 'रह'-'रह' (ठहरो-ठहरो) कहते हुए आये और मारीच तथा सुबाहु इन दोनो के सैन्यो को तिनके के समान समझकर पवनास्त्र से मारीच राक्षस को लाख योजन तक उड़ा दिया तथा आग्नेयास्त्र से सुबाहु राक्षस को जला दिया। (२४-२५)

एकान्त स्थळर नाम—एकान्त स्थल का नाम—'रह' (ठहरो); बाहिनी—सेना; बातास्त्रे—पवनास्त्र से; विभावसु अस्त्र—आग्नेयास्त्र। (२४-२५)

बिच्छेदिले लक्ष्मण समस्त सैन्य-करी ।
वंश भाबु ताकु से कुठारपाणि परि । २६ ।

सरलार्थ—राक्षस-सेनाओं को बाँस के पेड़ समझकर लक्ष्मण ने उन्हें यों विनाश कर दिया जैसे कि [वनजातीय] शवर कुल्हाड़ी से बाँस-वन को निर्मूल करता है, अथवा राक्षस-सेनाओ को गयासुर के वंशधर समझकर लक्ष्मण ने महादेव की तरह उन सबका विनाश किया । (२६)

'कुल' का एक प्रतिशब्द 'वंश' जिसका अर्थ 'बाँस' भी होता है । अतएव 'वंशभाबु' का अर्थ है राक्षसो के वंश (कुल) को बाँस समझ कर; करी बंश भाबु—गजासुर-वंशधर समझ कर; कुठारपाणि—शवर, महादेव । (२६)

बहुत काळुँ अपूजा पृथ्वीदेवी थिले ।
बिहि रंगशोणिते कि मन्दार पूजिले । २७ ।

सरलार्थ—पृथिवी देवी चिरकाल से अपूजित थी । (क्योंकि राक्षस लोग मुनियो का यज्ञ नष्ट कर देते थे ।) राम-लक्ष्मण दोनों ने पृथिवी को राक्षसों के रक्त से रञ्जित कर दिया । यह देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होने अड़हुल (गहरे लालरंग का जवा-पुष्प) के फूलो से पृथिवी देवी की पूजा की । (२७)

शोणिते—रक्त से; मन्दार—अड़हुल, जवा । (उत्प्रेक्षालंकार) (२७)

बाष्प खषा खसाइला नेत्रुँ चिन्ताकुळे ।
बिष्टि हेला आजुँ मो पुत्रङ्क अनुकूळे । २८ ।

सरलार्थ—राक्षसमाता दिति ने चिन्ताकुल होकर आँखों से आँसू वहाए । (उसने सोचा) आज से मेरे पुत्रों के शुभ मे अशुभ का प्रवेश हुआ । (२८)

बाष्प—आँसू; खषा[1]—राक्षसमाता दिति; खसाइला[2]—वहाए; बिष्टि—अशुभ, अमंगल; अनुकूळे—शुभ मे । (२८)

बसाइले अधः स्वर्ग हटरे त्रिशङ्कु ।
बाहुड़ि से आरम्भिले यज्ञकु निःशङ्कु । २९ ।

सरलार्थ—जिन विश्वामित्र ने कौतुक से राजा त्रिशकु को अर्द्धस्वर्ग पर चढा दिया था, उन्होने लौटकर निर्भय मन से फिर यज्ञ आरम्भ किया । (२९)

वासवादि देवे हवि भुञ्जि तोष हेले ।
बाहुड़ पुरकु रामभद्र पचारिले । ३०

सरलार्थ–इन्द्रादि देवता हविर्भाग (यज्ञ का भाग) पाकर सन्तुष्ट हुए। (अर्थात् यज्ञ समाप्त हुआ।) अनन्तर रामभद्र ने "हम अब अयोध्या को लौटें" इसके लिए ऋषि की आज्ञा माँगी। (३०)

विपुळ काम्यक वने थरे भ्रमिग्निवा।
बोलि बाहारिले मुनि घेनि वेनि युवा। ३१।

सरलार्थ–यह सुनकर विश्वामित्र ने कहा, "चलो, हम लोग एक वार बड़े काम्यक वन में (गौतम मुनि के तपोवन में) थोड़ा घूम आवें"। यह कहकर राम-लक्ष्मण को साथ लिये ऋषि चल पड़े (३१)

बाटे से वनरे पड़िथिला दिव्यशिळा।
विशोउँ रामचरण लागि से अवळा। ३२।

सरलार्थ–काम्यक वन को जाने के मार्ग पर एक सुन्दर पत्थर पड़ा हुआ था। विश्राम के उद्देश्य से रामचन्द्र द्वारा उसके ऊपर पदार्पण करते ही वह पत्थर एक स्त्री वन गया। (३२)

विशोउँ–विश्राम करने के अभिप्राय से। (३२)

विस्मय होइ अनाइँ भावि रघुपति।
वनीतार[1] वनितार[2] प्रभा एकाकृति। ३३।

सरलार्थ–रामचन्द्र ने आश्चर्य से उस पत्थर की ओर देखकर सोचा, "इस काम्यक वन की शोभा तथा इस वनिता (स्त्री) की शोभा, दोनों एक-सी है। (३३)

अनाइँ–देखकर; वनीतार[1]–उपवन की, काम्यक वन की; वनितार[2]–स्त्री की (यमकालंकार) (३३)

वनप्रिय[1]-तोपदानी रमणी ए[1] लोके[1]।
वनप्रिय[2]-तोपदानी रमणीए[2] लोके[2]। ३४।

सरलार्थ–यह रमणी मुनि गौतम की आनन्ददायिनी तथा संसार में कमनीय है। यह काम्यक वन भी उसी तरह कोयलो का आनन्ददायक तथा देखने में मनोरम है। (३४)

वनप्रिय[1]–गौतम महर्षि (वन है प्रिय जिनका); तोषदानी–आनन्ददायक; रमणी ए[1]–यह स्त्री; 'लोके[1]–संसार मे; वनप्रिय[2]–कोयल; रमणीए[2]–रमणीय, सुन्दर; लोके[2]-अवलोकनार्थ; (सर्वयमक) (३४)

बिराजि[1] वर-कनक[1] कदम्ब रुचिरे।
बि-राजि[2] वर कनक[2] कदम्ब रुचिरे। ३५।

सरलार्थ—यह श्रेष्ठ रमणी अपने शरीर की कान्ति से शुद्ध सुवर्ण की तरह देदीप्यमान है। यह वन भी विविधि पक्षियों के द्वारा सुशोभित है तथा बरगद, पलास और कदम्ब आदि पेड़ों से विमण्डित है। (३५)

विराजि[1]—देदीप्यमान; वर-कनक-कदम्ब[1]—श्रेष्ठ या शुद्ध सुवर्णसमूह; वि-राजि[2]—पक्षि-समूह; वर[2]—बरगद, कनक[2]—पलास, कदम्ब—कदम्ब का पेड़। (सर्वयमक) (३५)

बासरे[1] आच्छन्न शोभा तुंग[1] पयोधरे[1]।
बासरे[2] आच्छन्न शोभा तुङ्ग[2] पयोधरे[2]। ३६।

सरलार्थ—यह रमणी अपने दोनो उन्नत स्तनों को वस्त्र द्वारा आच्छादित करके शोभा पा रही है। उसी तरह यह कास्यक बन भी पुष्पसौरभ से परिपूर्ण होकर अत्युच्च नारियल के वृक्षों से आच्छादित है। (३६)

वासरे[1]—वस्त्र से; तुंग[1]—उन्नत; पयोधरे[1]—स्तनो को; वासरे[2]—सौरभ से; तुंग[2]—अत्युच्च; पयोघरे[2]—नारियल के पेड़ो से। (सर्वयमक) (३६)

बेणी[1] केशरे[1] रञ्जन[1] सिन्दूर चितारे[1]।
बेणी[2] केशरे[2] रञ्जन[2] सिन्दूर चितारे[2]। ३७।

सरलार्थ—यह रमणी अपनी केश-निर्मित वेणी तथा सिन्दूर की बिदी से सुशोभित है। उसी तरह यह वन भी देवताड़, नागकेशर, रक्तचन्दन तथा सिन्दूरचिता आदि वृक्षो से मनोहर दिखाई देता है। (३७)

वेणी[1]—केशो की गूँथी हुई चोटी; केशरे[1]—बालो से; रञ्जन[1]—सुन्दर; सिन्दूर-चितारे[1]—सिन्दूर की बिंदी से; वेणी[2]—देवताड़ वृक्षों से; केशरे[2]—नागकेशरों से; रञ्जन[2]—रक्तचन्दन वृक्ष; सिन्दूरचिता[2]—रक्तवर्ण का वृक्षविशेष। (सर्वयमक) (३७)

बळा[1], मल्लिकढ़ि[1] फुल[1] मण्डन अतुल[1]।
बळा[2], मल्लिकढ़ि[2] फुल[2] मण्डन अतुल[2]। ३८।

सरलार्थ—यह स्त्री पाजेव, मल्लिकढी, करनफूल तथा अतुल (हस्ता-भूषण विशेष) आदि गहनो से सुशोभित है। यह वन भी बाड़ी आँवला और अतुलनीय कलियो तथा फूलो से सुशोभित मल्लिका के पौधों से विमण्डित है। (३८)

बळा[१]—पैर का भूषणविशेष, पाजेब; मल्लिकढि[१]—अलंकार विशेष; फुल[१]—करनफूल, अतुल[१]—हाँथ का अलंकार विशेष; बळा[२]—बाड़ी आँवला; मल्लिकढ़ि फुल[२]—वेले की कलियों तथा फूलों से; अतुल[२]—अतुलनीय, अनुपम। (सर्वयमक) (३८)

बिलोकि बिलोकि पुच्छा कले दाशरथि।
बराङ्गना हेला शिळा कि विषय एथि ? ३९।

सरलार्थ—उस वनिता (रमणी) की ओर बार-बार देखकर रामचन्द्र ने विश्वामित्र से पूछा, "पत्थर दिव्य स्त्री बना; इसका विषय (रहस्य) क्या है, जरा बताइए"। (३९)

विश्वामित्र बोले आहे मित्रवंशी शुण।
बिधाता भग्ने ऊर्वशी सुन्दरिमा टाण। ४०।

बिधाता सर्वलावण्य धाम करि करूँ।
बृत्रारि भानु मागिले देखि एहा चारुँ। ४१।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने कहा, "हे सूर्यवंशी रामचन्द्र, सुनो। विधाता ने उर्वशी के सौन्दर्य-गर्व को भग्न करने के अभिप्राय से सर्वलावण्याधार इस स्त्री (अहल्या) का निर्माण किया। इसकी शोभा देखकर इन्द्र तथा सूर्य दोनों ने विधाता से उसे माँगा"। (४०-४१)

मित्रवंशी—सूर्यवंशी रामचन्द्र; सुन्दरिमा टाण—सौन्दर्य का गर्व; वृत्रारि—वृत्र राक्षस के शत्रु इन्द्र; भानु—सूर्य। (४०-४१)

बुलि धरणी ये आगे आसिब चपळे।
बामलोचना ताहाकु प्रापति बोइले। ४२।

सरलार्थ—विधाता ने कहा, "जो पृथ्वी की शीघ्र परिक्रमा करके पहले लौट आये, उसे ही यह वामलोचना प्राप्त होगी"। (४२)

बच स्फुरुँ भ्रमिगले दुइ देवोत्तम।
ब्यजन चाळन करुथिले गउतम। ४३।

सरलार्थ—ब्रह्मा के मुख से यह वाणी निकलने पर दोनो श्रेष्ठ देवता (सूर्य और इन्द्र) पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए चल पड़े; उस समय वहाँ गौतम ऋषि विधाता के पास बैठे पंखा डुला रहे थे। (४३)

व्यजन—पंखा। (४३)

बोइले तुम्भे न गल किम्पा ए निमित्ते।
ब्रह्म प्रदक्षिण करि से कर योड़न्ते। ४४।

बिभा करुछन्ति ताङ्कु होइ पुरोहित ।
बड़ अभिमान पाइ रवि पुरुहूत । ४५ ।

सरलार्थ—ब्रह्मा ने मुनि से पूछा, "इस कन्या के लिए आप क्यों नहीं गये ?" यह सुनकर गौतम ब्रह्मा के चारों ओर घूम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये । (इससे गौतमजी का ब्रह्मगर्भ-स्थित भूमण्डल-पर्यटन सूचित हुआ ।) अनन्तर जब ब्रह्मा स्वयं पुरोहित बनकर गौतम तथा उस कन्या अहल्या का विवाह-कार्य संपादन कराने लगे कि उसी समय इन्द्र तथा सूर्य पृथिवी की परिक्रमा करके लौट आये । यह विवाहकार्य देखकर उन्हें अपना बड़ा अपमान प्रतीत हुआ । (४४-४५)

किम्पा—क्यों, किसलिए; रवि—सूर्य; पुरुहूत—इन्द्र । (४४-४५)

ब्राह्मण जाया हेबारु तपन निर्वर्ति ।
बिरहि सेहि विषये महेन्द्र प्रवर्त्ति । ४६ ।
बशीकरण मन्त्रकु से दिनु जपिले ।
बाञ्छावट तळे रामासंग मनासिले । ४७ ।

सरलार्थ—उस रमणी के एक ब्राह्मण की पत्नी हो जाने से सूर्य अपनी नीच अभिलाषा से निवृत्त रहे । परन्तु इन्द्र कामविकार-वश अहल्या के विरह से विकल हो गये । उसकी सम्भोग-आशा हृदय में धारण करके वे प्रयागस्थ वाञ्छावट के नीचे 'वशीकरण' मन्त्र जपने लगे । (४६-४७)

बसन्त कोकिळ, अनङ्गकु उच्चाटने ।
बरगिले अति यत्न करि एहि बने । ४८ ।

सरलार्थ—अहल्या की उत्कण्ठा बढाने के लिए इन्द्र ने वसन्त ऋतु, कोयल तथा कन्दर्प को बड़े यत्न के साथ इस काम्यक वन मे भेजा । (४८)

उच्चाटने—उत्कण्ठा के लिए; बरगिले—भेजा । (४८)

बाड़बेयठारु पालटाइ मनोहर ।
बक्त्रविकारकु मात्र करिण अन्तर । ४९ ।

सरलार्थ—इन्द्र ने अश्विनकुमारो से उनके समूचे अंग-प्रत्यंगो की शोभा लाकर अपने शरीर में धारण की । (उनका मुख घोड़े का सा होने के कारण) केवल मुख की विकृति का इन्द्र ने परित्याग किया था । (४९)

बाड़बेय—अश्विनकुमार; वक्त्रविकार—मुखविकृति । (४९)

बिनति एकान्ते देखि येते भावे हेले ।
विसम्मति सम्मतिकि किछि न जाणिले । ५० ।

सरलार्थ—अहल्या को एकान्त मे देखकर इन्द्र ने कितने ही प्रकार से, उसकी विनती की । परन्तु उसकी सम्मति या असम्मति, कुछ भी नही जान सके । (५०)

बरवेश बहि रसे मानस उल्लासुँ ।
वृषदंश रूपे पळायित ऋषि आसुँ । ५१ ।

सरलार्थ—अन्त मे इन्द्र अहल्या के पति (गौतम) का वेश धारण करके शृगाररस मे उसका मन उल्लसित करने लगे । इसी समय गौतम मुनि तपस्या से लौटे । उन्हे देखकर इन्द्र विड़ाल रूप धरकर भाग गये । (५१)

वृषदंश—विड़ाल, विल्ला । (५१)

बळपर विनयी गौतम पचारन्ते ।
विग्रहे सहस्रभग वह लिग हते । ५२ ।

सरलार्थ—ध्यानबल से गौतम ने यह घटना जान ली और इन्द्र से इसके वारे मे पूछा, तो इन्द्र ने वडी विनय प्रकाश की । तव मुनि ने सक्रोध शाप दिया, "तुम्हारा लिग भग्न हो और तुम अपने शरीर पर सहस्र योनियाँ धारण करो" । (५२)

बळपर—इन्द्र; विग्रह—देह, शरीर । (५२)

बोलि रसाण हेमाङ्गी पापाण कराइ ।
विश्वम्भरा-धर-राजे वास कले याइ । ५३ ।

सरलार्थ—इन्द्र को ऐसा शाप देकर ऋषि विशुद्ध स्वर्णवर्णा अहल्या को पत्थर वना कर चले गये और जाकर हिमालय पर्वत मे वास करने लगे । (५३)

रसाण—शाणित, कसे हुए, विशुद्ध; हेमांगी—स्वर्ण के समान गोरे शरीर वाली; विश्वम्भरा-धर-राजे—(विश्वम्भरा—पृथिवी, भू; भूधर—पर्वत; पर्वतो में राजा)—हिमालय पर्वत मे । (५३)

वाजि तव पद-गति लभिला सुगति ।
वन्दिला श्रीरामे शुणि से मुनि भारती । ५४ ।

सरलार्थ—तुम्हारे चरण की रज के स्पर्श से उसी अहल्या ने अभी

परमगति (अर्थात् पाषाणत्व से मुक्ति) पाप्त की।" विश्वामित्र की यह वात सुनकर अहल्या ने श्रीराम को साक्षात् विष्णु समझकर उन की वन्दना की। (५४)

भारती—कथा, वात। (५४)

वन्दित पतिरे होइ उदित सेनेही।
विश्वामित्र पुणि हस हस होइ कहि। ५५।
विश्वमोही कन्या ए देखिले य़ेड़े रम्य।
विदेह देशे धरारु सुन्दरी ए जन्म। ५६।
विज्ञ बिहि थिला शिळा एहाकु कराइ।
बितर्कि ए सीतार चरणघषा एहि। ५७।

सरलार्थ—अनन्तर अपने वन्दनीय पति गौतम के प्रति अहल्या के मन मे स्नेह का उदय हुआ। अर्थात् अहल्या गौतम के पास जाने को उत्सुक हुई और वहाँ गई। इसके वाद विश्वामित्र ने हँसते हुए फ़िर राम से कहा, "इस जगत्मोहिनी कन्या को तुमने जितनी सुन्दर देखा, उससे कही अधिक सुन्दर एक कन्या ने मिथिला मे जन्म लिया है। विशेषकर ज्ञानी विधाता ने यह अनुभव करके कि सीताजी को एक पैर साफ करने वाला पत्थर चाहिए, अहल्या को पत्थर वनवाया था। अर्थात् यह अहल्या सीताजी के पैर साफ करने वाले पत्थर वनने के योग्य है। (५५-५६-५७)

पुणि—फिर; य़ेड़े—जितनी; रम्य—सुन्दर; बितर्कि—यह तर्क या अनुभव करके; चरणघषा—एक पत्थर जिस पर नहाते समय पैर घिसते है। (५५-५६-५७)

बर समे सुषमे जगते नाहिँ येणु।
व्योमकेश-धनुभग्न स्वयम्बर तेणु। ५८।

सरलार्थ—चूँकि उस कन्या की शोभा के अनुरूप वर जगत् मे नही मिलता, इसलिए शिवधनुर्भग-प्रण मे उसका स्वयवर स्थिर किया गया है। अर्थात् जो शिवधनु तोड़ेगा, वही सीताजी से विवाह करेगा। (५८)

सुषमें—शोभा में; य़ेणु—चूँकि; व्योमकेश—शिवजी; तेणु—इसलिए। (५८)

वीरधू प्रकाश तव हेउ अतिशये।
बल्लभ हुअ ता याग रक्षा फळोदये। ५९।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने रामचन्द्र को आशीर्वाद देते हुए कहा,

"तुम्हारी वीरता भली-भाँति प्रकाशित हो (सुवाहु, मारीच आदि राक्षसों का वध करने से जो वीरता जानी गई है, धनुर्भंग से वह अधिकतर प्रकाशित होगी।) हम लोगो की याग-रक्षा करने के फलस्वरूप तुम सीताजी के पति बनो"। (५९)

वीरधू—वीरता। (५९)

विभाकरवंशी बोले अछि परम्परा।
ब्रह्माण्ड-सार-सुन्दरी रम्भा अपसरा। ६०।

सरलार्थ—विश्वामित्र की बात सुनकर रामचन्द्र ने कहा, "पहले से तो यह प्रसिद्ध है कि रम्भा अप्सरा ब्रह्माण्ड मे [सर्व-] श्रेष्ठ सुन्दरी है। [सीता क्या उससे वढकर सुन्दरी है?] (६०)

विभाकरवंशी—सूर्यवंशीय रामचन्द्र। (६०)

बिभाति ज्योतिरिगण रात्रे देखाइ।
बिलुप्त प्रभात प्रभा येमन्त करइ। ६१।

बैदेही जातरु रम्भा तथा कहे ऋषि।
बाषठि पदे ए छान्द उपइन्द्र भाषि। ६२।

सरलार्थ—ऋषि ने कहा "जुगनू रात में अपना-अपना तेज दिखाते है। परन्तु प्रभात आकर उनकी प्रभा का विलोप कर देता है। सीता के आविर्भूत होने पर रम्भा की प्रभा वैसे ही विलुप्त हो गई है। उपेन्द्रभञ्ज ने वासठ पदो मे इस छान्द की रचना की। (६१-६२)

विभाति—प्रभा; ज्योतिरिंगण—जुगनू। (६१-६२)

॥ इति सप्तम छान्द ॥

अष्टम छान्द

राग—काळी

विजयी-वीर ! विजय कर ग्रिबा मिथिळापुर ।
बाहार होइ विहार तहिँ करन्ति मुनिवर ।
बइदेही ग्रे सुन्दरीब्रजे अमूल्य चूड़ामणि ।
बर्त्तमान से भूत भविष्ये नाहिँ नोहिब पुणि । १ ।

सरलार्थ–"हे विजयी वीर रामचन्द्र ! चले, मिथिलापुर के लिए प्रस्थान करे", यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने आगे निकल पथ पर पदार्पण किया । (विश्वामित्र आगे-आगे बढ़ने लगे और श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण पीछे चले) । रास्ते पर विश्वामित्र ने कहा, "सीता ससार भर की सुन्दरियों में अमूल्य शिरोमणि है । उनके सदृश सुन्दरी वर्त्तमान काल में वे ही है, किन्तु अतीत मे कोई नही थी और न भविष्य में होगी ही" । (१)

विजय कर—रवाना करो; सुन्दरी-ब्रजे—सुन्दरी-समूह में; चूड़ामणि—शिरोमणि; नोहिब—नहीं होगी । (१)

बशीकरण मूर्त्तिधारण उच्चाटन ता चारु ।
विधिसुन्दरी से पुरन्दरी ताहाकु बोलिबारु ।
विहिला विहि प्रभा ए काहिँ शोभासंग्रह पाइ ।
बणा विवेक पण्डित लोकमानङ्कु करि देइ । २ ।

सरलार्थ–उन सीता ने वशीकरण मन्त्र की मूर्त्ति का रूप धारण किया है । (अर्थात् उन्हे देखते ही कोई भी मनुष्य उनके वशीभूत हो जाएगा ।) फिर उनका मनोहर रूप देखकर सब कोई मुग्ध होते है । विधाता द्वारा निर्मित सुन्दरियो मे वे सर्वश्रेष्ठ है । विधाता ने किन-किन शोभाओं से उपादान (सामग्री) का संग्रह करके ऐसे एक मनोहर रूप का निर्माण किया ? यह पण्डित लोग निर्णय नही कर पाते । यह प्रश्न उनके विवेक को चक्कर में डाल रहा है । (२)

वशीकरण मन्त्र—जिस मन्त्र के जप से सब वशीभूत होते हैं; उच्चाटन—मुग्ध होना; ता चारु—उनका मनोहर रूप; सुन्दरी-पुरन्दरी—सुन्दरी-श्रेष्ठा; बणा—पथ-भ्रष्ट । (२)

बिग्रहकान्ति कि झटकन्ति कनक अनाइला ।
वान वढ़ाइ अग्निरे दहि शिळे कपाइ हेला ।
वणिक श्रेणी असम जाणि हेले प्रहारदानी ।
वसाइ तुले रतिए बोले तेतिकि लक्ष्य घेनि । ३ ।

सरलार्थ—उनके शरीर की अनिर्वचनीय चमकीली शोभा को देखकर सुवर्ण ने (मै ऐसा होऊँगा—यह अभिलापा करके) अपनी कान्ति वढ़ाने के उद्देश्य से अग्नि मे अपने शरीर को जलाया, फिर कसौटी के पत्थर पर अपने को कसाया। तिस पर भी सुवर्ण को सीता के शरीर की कान्ति से असमान देखकर सोनारो ने उसे पीटा। तराजू पर सोने को रखकर उन्होने वजन किया और यह निर्णय (लक्ष्य) किया कि सोना रत्ती भर है। (सीता की कान्ति की तुलना मे सुवर्ण की कान्ति रत्ती भर अर्थात् रंचमात्र है)। (३)

विग्रहकान्ति—शरीर की शोभा; कि झटकन्ति—क्या ही चमकीली है ?; कनक—सोना; अनाइला—देखा; वान—कान्ति; वणिक श्रेणी—सोनार सब; वसाइ—वैठाकर, रखकर; तुले—तराजू पर। (३)

बिचिरज्योति लभि से भीति विद्यु लक्षण एते ।
बुजि ईक्षण होए तक्षण याहा दर्शन मात्ने ।
बड़ाइ हीन कण्टकपर्ण्ण मध्यरे दरे लुचि ।
बाससमेळ केतकी फुल केते मनकु रुचि । ४ ।

सरलार्थ—विजली की ज्योति क्षणिक है और उसकी ओर देखने से आँखे मुँद जाती है। ये विजली के स्वाभाविक लक्षण है। परन्तु सीता की देह-कान्ति चिरस्थायी है और उसकी ओर विना कठिनाई के हम देख सकते है। सुतरां कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है कि विजली की कान्ति सीता की देह-कान्ति के समान न हो सकने के कारण मानो केवल एक झलक दिखलाकर भय से एकाएक ओझल हो जाती है। और केतकी की कान्ति तथा सुगन्ध ने सीता की देहकान्ति तथा सौरभ से असमान होने के कारण भय से कटीले पत्तो मे अपने को छुपाया है। (केतकी के फूल कांटो मे खिलते है)। (४)

विचिरज्योति—क्षणिक प्रभा है जिसकी, विजली; ईक्षण—चक्षु; दरे—भय से; लुचि—छिपा। (४)

बाह्लीक चूर्ण करि सेवन मनकु मनाइला ।
बरवर्ण्णना जगद्वन्दना एणु कि बोलाइला ?
बरवर्ण्णना कविरोचना बोलाइ तर्क होए ।
बिलक्ष स्मरप्रियाटि स्मर रति नामकु पाए । ५ ।

सरलार्थ—वरवर्णिनी सीता अपने शरीर को कुंकुम-चूर्ण से विलेपित करती थी । यह देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है मानो कुकुम-चूर्ण ने सीता की कान्ति के समान होने के उद्देश्य से विलेपन के मिस उनकी सेवा करके उन्हे सन्तुष्ट किया । और इसी हेतु जगद्-वन्दनीया सीता मानो वरवर्णना (श्रेष्ठवर्णा, कुकुम-वर्णा) कहलाने लगी । उन्हे वरवर्णा कहकर भी कवि को सन्तोष नही होता है । वे फिर मन मे तर्क कर रहे है, "जिनके सौन्दर्य के तुल्य न होकर कन्दर्प की पत्नी ने 'रति' (रत्ती-थोड़ा) आख्या (नाम) प्राप्त की है—ऐसा प्रतीत होता है—उन सीता को वरवर्णना कहने में कौन सी बड़ाई है ?" अर्थात् 'वरवर्णना'—इस विशेषण के प्रयोग से सीता के सौन्दर्य की अधिकता सूचित नही होती । (५)

बाह्लीकचूर्ण—कुंकुम (रोली) का चना; एणु कि—इसीलिए क्या ?; बोलाइला—कहलाई; स्मर (१) प्रिया—कन्दर्प की पत्नी; रति—कन्दर्प की पत्नी का नाम, जरा-सा (रत्ती) (श्लेष); स्मर (२) स्मरण करो (यमक) । (५)

बिहुँ समुद्र-मन्थनु चन्द्र जनम येउँ काळे ।
बिहीन क्षीण कळङ्के जाण निर्मळ होइथिले ।
बदने जानकीर समान मन जाणिटि बिहि ।
बिम्ब-वेष्टन नोहिला बर्ण्ण भाबेटि काटि देइ । ६ ।

सरलार्थ—देवासुरों के समुद्र-मन्थन के समय उससे चन्द्र का जन्म हुआ था । उस समय चन्द्र क्षीणता-विहीन (पूर्ण), कलकहीन (निष्कलंक) तथा निर्मल था । तव चन्द्र ने सोचा, "मै जानकी के मुखमण्डल के समान हूँ" । विधाता ने चन्द्र के इस अभिमान-भरे मनोभाव को समझ कर उसे मण्डलस्थ वना दिया मानो किसी ने भूल से लिखे हुए अक्षर को वृत्ताकित करके काट दिया हो और यह जता दिया हो कि तुम गलत हो । अर्थात् सीता का मुखमण्डल निष्कलक पूर्णचन्द्र की शोभा को धिक्कारता है । (आखिर सकलक और दिनोदिन क्षीण होने वाले चन्द्रमा की उनके मुखमण्डल से बरावरी करना तो मूर्खता ही होगी ।) (६)

विहीन क्षीण कलके—क्षीणता तथा कलंकविहीन, पूर्ण तथा निष्कलंक; विम्बवेष्टन—मण्डलावृत; नोहिला वर्ण—अशुद्ध या गलत अक्षर, (व्यतिरेक अलंकार) । (६)

बनज आदरश कि बाद रचि हुअन्ते योख ।
बिस्तारि आहा कि झळि आहालाद सुबास मुख ।
बिलोळ चळ सुधा-कल्लोळ लावण्य-सरितरे ।
बिकाश हास करइ दास हीराकु निरन्तरे । ७ ।

सरलार्थ—पद्म तथा दर्पण दोनो (परस्पर) वाद (होड़) करके सीता के मुख के समान होते तो भला ! (अर्थात् समान नही हो सके) । उनके वदनपर सौरभ तथा आह्लाद दो गुण झलकते है । फ़िर लावण्य-सरित में चचल व लहराती हुई अमृतमय तरगो की तरह मुखमण्डल का हास्य जो कि हीरे को दास बनाता है, शोभा मे अनुपम है । (पद्म में केवल सौरभ और दर्पण मे केवल आह्लाद गुण है । परन्तु सीता के मुख पर इन दोनो का एकत्र समावेश है । इसलिए वे दोनो सीता के मुख के तुल्य नही है) । (७)

वनज—पद्म; आदरश—दर्पण, आइना; विलोल—चञ्चल (व्यतिरेक) । (७)

बिधु बिधुर गर्भरु चूर पवित्र द्रव्य दर्भ ।
बिकशितरे से ईषतरे न लभिला सन्दर्भ ।
बिकशित ये कुमुदपुञ्जे दिने संकोच बहि ।
बुड़णानीरे पड़ि लाजरे दृढ़ आयुषुँ जीइ । ८ ।

सरलार्थ—सीता के हास्य के समान न होकर अपनी श्वेतता का गर्व त्याग कर कर्पूर कातरता से चूर-चूर हो गया । पवित्र द्रव्य कुश अपने प्रस्फुटित फूलों सहित सीता की हास्य-परिपाटी के साथ लेशमात्र भी समानता न कर सका । कुमुदसमूह सीता की हास्य-छटा से एक दिन भी समान न हो सकने से लज्जित होकर मरने की इच्छा से पानी में डूवा । परन्तु आयुबल होने से न मरके वच गया । (सीतादेवी की हास्य-छटा कर्पूर, कुश-कुसुम और कुमुद की शोभा से भी वढ़ी-चढ़ी थी) । (८)

विधु—कर्पूर; विधुर—कातर; दर्भ—कुश; सन्दर्भ—श्रेष्ठता (यहाँ-पूर्णता); बुड़णा—डूबना (व्यतिरेक) । (८)

बिष्फारित ता लोचन गतागत करइ डोळा ।
बिलज्जभृंग सरोजे सङ्ग होइ शिखे से लीळा ।
बाते चळइ नीळोत्पळहिँ से छवि लक्ष्य हेजि ।
बाळककरे सरणी करे खेळा तरुण तेजि । ९ ।

सरलार्थ–सीता के विस्फारित नयनों में पुतलियाँ चचल गति कर रही है। निर्लज्ज भ्रमर पद्म का साथी होकर (पद्म पर बैठकर) उन्ही पुतलियों की क्रीडा को सीख रहा है। (भौरे को निर्लज्ज इसलिए कहा गया है कि वह स्वय अपने को मन्थर तथा पद्म को श्रीहीन जानते हुए भी सीता के नयनो तथा पुतलियो की लीला के लिए ललचाता है)। उसी छवि की समानता के लिए नीलोत्पल पवन से हिल रहा है। परन्तु वह समान नही हो सकता। यह जानकर कि सीता के नेत्रो की चंचलता के साथ लट्टू समान नही होगा, युवकों ने उसे त्याग दिया। फिर भी, वह लट्टू बालको के हाथों मे, क्रीड़ा के मिस चचलता सीख रहा है। (९)

विष्फारित—खोले हुए; बिलज्ज भृंग—निर्लज्ज भ्रमर; सरोज—कमल; सारणी—लट्टू या लट्ट जातीय खिलौना (व्यतिरेक अलंकार)। (९)

बक्र भ्रूलता निकटे स्थिता चाहि कमाणे रहि।
बिशिख गति करुअछन्ति पक्ष्मपक्षकु बहि।
बर्ण्ण त्रिविधुं शाळित साध, हिङ्गुळ कळा शङ्खे।
वहुरूप ए आन पराये यथा आपण सुखे। १०।

सरलार्थ–सीता जी के नेत्र पक्ष्मो (वरौनियों) को धारण करके वक्र (टेढी) भ्रूलताओ के निकट स्थित है। विशिख (बाण) पक्षों (पंखो, परो) को धारण करके कमानो (धनुषो) पर चढ़कर सीता जी के नेत्रो को देखते हुए उनसे चचल गति की शिक्षा ले रहे है। नेत्रो में रक्त, कृष्ण तथा शुक्ल–ये तीन रंग है। उसी तरह शर (बाण, विशिख) ईंगुर (लाल), काले तथा सफेद—इन तीनो वर्णो मे साधु (उत्तम, सुन्दर) है और वहुरूपियो के अपनी इच्छा के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करने की तरह चित्रित हुए है। इतनी चेष्टाओ के बाद भी शर नेत्रों के साथ समान नही हो सका, क्योकि वह पर के (दूसरे के) द्वारा चालित होता है। जब कि नेत्र अपनी इच्छा से ही चलता है। (१०)

शाळित—चित्रित; हिंगुळ—ईंगुर; कळा—काला; शंख—शुक्ल रंग; (व्यतिरेक)। (१०)

विपिन घने पशि ब्रहने अञ्चळे हरि मृग।
बंशरे केहि से सम ध्यायी मरि इन्दुरे योग।
बाञ्छित कर्महीनर श्रम कले प्रापत काहिँ ?
विमळ पदार्थकु सर्वदा समळ कला यहिँ। ११।

सरलार्थ–सीता के नेत्रो की चंचलता से मृग (हिरन) की गति पराजित हो गयी। इसलिए लज्जा के मारे हिरन घने जगल में घुसकर जा छिपा। उस मृग-वश मे कोई सीता के नेत्रों की चचलता का ध्यान (चिन्ता) करते हुए मर गया और उसने जाकर चन्द्रमा मे अवस्थान किया। स्वय तो समान नही हो सका, उल्टे परिणाम यही हुआ कि उसने निर्मल चन्द्र को भी कलंकित कर दिया। कर्महीन (भाग्यहीन) मनुष्य चाहे कितना भी परिश्रम क्यों न करे, अपने मनोरथ को कभी नही प्राप्त कर सकता है। (११)

पशि—घुसकर; ध्यायी—ध्यान करने वाला; इन्दु—चन्दु; वाञ्छित—मनोरथ; कर्महीन—हतभाग्य, भाग्यहीन; विमल—निर्मल, स्वच्छ; समल—मलयुक्त, कलंकयुक्त (व्यनिरेक)। (११)

बसिले तुळे दइववळे गुञ्जा कि रत्न प्राये?
विनिमिषे से मीन-समाजे, खञ्जन कम्पे भये।
बुडाइ रागकुण्डरे वेग वेग अपाङ्ग ढाळि।
बड़िश परि निए ओटारि मन-मीनकु वाळि। १२।

सरलार्थ–दैवविधान से गुँजा (घुँघुची) अगर तराजू पर बैठे तो वह क्या कभी सुवर्ण के साथ समान होती है? उसी तरह मृग (हिरन) चन्द्रमा मे जा बैठने पर भी सीता के नेत्रों की चचलता को प्राप्त नही कर सका। मीनावली नेत्रो के समान न होकर निर्निमेष हुई। खजन पक्षी भय से कॉपने लगे। सीता के अनुराग-रञ्जित चचल कटाक्षपात (मछली फँसाने वाली) कटिया के सदृश पुरुष के मन रूपी मीन को खीच लेते है। (१२)

गुंजा—घुंघची; विनिमेष—निर्निमेष, पलकशून्य; बाळी—सीतादेवी। (१२)

विलोक करि अळक फरी एथिकि सम नोहि।
वेताळ भइरबकु ध्यायि खड्ग-प्रहार वहि।
वास ललाट पछरे पट आउ ता कि लक्षिवा?
बिगळिताङ्क अर्द्धशशांक योखिबा न योखिबा। १३।

सरलार्थ–सीता के ललाट को देखकर फरी ने इनके साथ समान न होकर वेताल भैरव, दोनो का ध्यान करके खड्ग-प्रहार सहन किया। जो वस्त्र ललाट के पीछे है, उससे भला हम ललाट की बराबरी कैसे कर सकते है? निष्कलक अर्द्धचन्द्र को ललाट के समान क्यो माने? (वह समान होने के लिए अनुपयुक्त है)। (१३)

अळक—लट, घुंघराले बाल (यहाँ) ललाट; फरी—चमड़े की छोटी ढाल; एथिकि सम नोहि—इसके साथ समान नहीं; वेताळ—शिवजी का अनुचर; भइरव (भैरव)—महादेवजी की भयानक अष्टमूर्त्ति; (तान्त्रिक साधक वेताल-भैरव के द्वारा असाध्य का साधन कर सकते हैं।); योखिवा न योखिबा—समान करे या न करें—दोनो एक ही बात। (क्योंकि इसमें कुछ लाभ है ही नही) (व्यतिरेक)। (१३)

बिफळ हेब तोषिबा शिव तपस्या गंगाकूळ।
वचने नाहिँ सर्वाङ्गे यहिँ देबा उपमा तुल।
बिसोरिथिले उरज भळि नोहे से शम्भु अगे।
बिष्णुपदी त होइ लज्जित हारिछि हारसंगे। १४।

सरलार्थ—सीता के सब अंगो के साथ चन्द्र की उपमा न देने से चन्द्र का गंगा नदी के किनारे पर तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न करने का श्रम विफल हो जाएगा। (यह कहकर कवि फिर कहते है—) "मैने बिसराया था कि शम्भु तो स्वय उच्चता तथा पृथुलता में सीता के स्तन-युगल के समान नहीं है। फिर गगा देवी तो उनके हार के सामने हार मानकर लज्जित है। सुतरां जहाँ स्वय शिवजी या गंगा जी समान नही वहाँ शिवजी का अनुगत चन्द्र सीता जी के किसी अंग के समान कैसे हो सकता है ? (१४)

विसोरिथिले—विसराया था, भूला था; उरज—स्तन; भळि—तरह; विष्णुपदी—गंगा; हारिछि—पराजित हुई है (व्यतिरेक)। (१४)

बड़िमातति शोभार श्रुति विश्राम खट दोळि।
बोलि पाटळि पा बोलुँ टळिलार उपमा झळि।
बर्जित गार दीर्घ लृकार ह्रस्व त सान हेला।
बुद्धिकि पाश करन्ते पाश गर्भरे बुड़िगला। १५।

सरलार्थ—सीता जी का कर्णयुगल शोभा-महत्ताओं (श्रेष्ठताओ) के समूह का विश्राम-मञ्च है, अर्थात् कर्णयुगल श्रेष्ठ शोभाओं का आधार है। ऐसे कर्णो से पाटली पुष्प की उपमा कैसे दे ? उपमा को 'पा'—यह कहते-कहते वह 'टल' (टळि) पड़ा, अर्थात् भय से खिसक पड़ा। दीर्घ ॡ (लृकार) की लकीर कट जाने से वह (ऌ) ह्रस्व हुआ; अतएव न्यूनता-सूचक नाम धारण किया। वह (ऌ—ह्रस्व लृकार) कर्णो के समान कैसे होता ? फिर पाश को कर्णो का उपमान करने के लिए विचार करने पर वह समुद्र के गर्भ मे जा डूबा। अतएव पाश भी उपमायोग्य नही हुआ। (१५)

वड़िमातति शोभार—श्रेष्ठ शोभाओं का आधार; पाटळि—पाढर का फल; कभी-कभी कान की तुलना 'ॡ' (ह्रस्व लृकार) से की जाती है। ओड़िया वर्णमाला में ह्रस्व 'लृ' और दीर्घ 'ॡ' क्रमशः 'ॡ' और 'ॡ'—इस प्रकार 'कान' की आकृति के लिखे जाते है। कवि उपेन्द्र भञ्ज के अनुसार 'ॡ' (दीर्घ लृकार) वर्जितगार (वर्जितरेखा, रेखामुक्त) होने से 'ॡ' (ह्रस्व लृकार) बन जाता है। 'ॡ' (दीर्घ लृकार) से महत्ता मे न्यूनतर हुआ। वह 'ॡ' (ह्रस्व लृकार) सीता के कर्णों का उपमान कैसे हो सकता? (अर्थात् नही।) पाश—अस्त्र विशेष (व्यतिरेक)। (१५)

व्यतिरिक्त ए दृष्टित नुहे खण्डि उपमा रुण्ड।
बिम्ब निर्मळ कृतमण्डळ-खण्ड मण्डळ गण्ड।
बोलाउअछि दर्पण छि छि कर-कळङ्के सेहि।
बन्ध कि खड्गपाळि पदग करे कळङ्क वहि। १६।

सरलार्थ—सीता के निर्मल गण्डमण्डल उपमा-समूह को खण्डन कर रहे है। यह अतिशयोक्ति नही। उन गण्डमण्डलों को देखकर चन्द्रमण्डल भी पराजित होता है। क्योंकि चन्द्रमण्डल मे कलक वर्त्तमान है, जब कि सीता के गण्डमण्डल निष्कलक है। दर्पण भी उनके गण्डमण्डलों के तुल्य नही होगा, क्योकि हाथ के मैल के स्पर्श से दर्पण कलकित होता है। इसलिए सीता के गण्डमण्डल दर्पण की हँसी उडाते है। खड्ग की मुठिया भी उन गण्डमण्डलो के समान नही हो सकती, चूँकि पाइक (पदातिक-पैदल सिपाही) के हाथ मे रहकर वह भी कलकित है। सीता के निष्कलक गण्डमण्डल चन्द्रमण्डल, दर्पण तथा तलवार की मुठिया से बढकर सुन्दर है। (१६)

खड्गपाळि—तलवार की मुठिया; पदग—पदातिक, पाइक (व्यतिरेक अलंकार)। (१६)

बरारोहार नासाडम्बर इच्छा कलाकु शुक।
बिना दोपरे शिकुळि छळे शाङ्कोळि दिए लोक।
बिहग सिना होइ तन्मना पारिला नाहिँ पाञ्चि।
बिनतासुत सिद्धि उन्नत-चाहिँ खगेन्द्र रचि। १७।

सरलार्थ—तोते ने परमसुन्दरी सीता जी की नाक की शोभा के समान होने की इच्छा की। इस हेतु लोग उसे बिना दोष के पिंजड़े मे बंदी बना रहे है। नादान पक्षी होने के कारण तन्मय होकर वह अपनी भलाई सोच नही सका। (फलस्वरूप दण्ड पा रहा है।) परन्तु गरुड ने ऊँची नाक की ओर निहार कर प्रार्थना की। इसलिए वह पक्षिराज हुआ। (भावार्थ यही है कि सीता जी की नाक तोते की नाक से सुन्दरतर तथा गरुड़ की नाक से उन्नततर हुई है।) (१७)

वरारोहा—परमासुन्दरी; उन्मना—उद्‌विग्ना, उत्कण्ठिता; विनतासुत—गरुड़; खगेन्द्र—पक्षिराज (व्यतिरेक अलंकार)। (१७)

वुझाइ तिळ असमे तिळसुमन बिहि नामे।
बिधिकि तूण उपमा पुण निर्माण पशु चर्मे।
बेणु वरुण घेनिण जाण समुद्र मध्ये पशे।
व्याळ ग्रासित मळय बात तुळा हेलारु श्वासे। १८।

सरलार्थ—तिल का फूल सौन्दर्य मे सीता की नाक के समान नही हो सका। इसलिए विधाता ने उसे 'तिल' कुसुम का नाम दिया है। 'तिल' नाम से उसकी सौन्दर्य-न्यूनता सूचित हो रही है। तरकस पशुचर्म से निर्मित है, सुतरा सीता जी की नाक के साथ उसकी तुलना विधि-सगत है क्या? (अर्थात् नहीं।) वंशी भी नाक के समान न हो सकी, इसलिए वरुण ने उसे लेकर समुद्र में प्रवेश किया। जब तुलना द्वारा यह सिद्ध हुआ कि सौरभ मे मलय पवन सीता जी की साँस के समान नही है, तो साँपों नें उसे पान कर लिया। (१८)

तूण—तरकस; व्याळ—साँप (व्यतिरेक)। (१८)

बाळा अधर अरुण सार छवि बहिबा स्मरि।
वाळ अरुण घेनि अरुण पद्मानुरागे पूरि।
बिरञ्ज सेहि दण्डके होइ सन्ताप विभूषण।
बहे सन्ध्यारे माणिक्य धारे, ज्योतिकि करि ऋण। १९।
बितुळ तेबे मज्जि अर्णबे पुणिहिँ से व्यवस्था।
वाळ वृद्धर यथा पासोर दिन दिनक कथा।
बोलिबा काहुँ मन्दार आउ धरिछि मन्द काळि।
बैरागी हेब बिचारि बिम्ब भस्म हेला कि बोळि? २०।

सरलार्थ—वाला (सीता) के लाल रग वाले अधरो के साथ समान होने के उद्देश्य से वालरवि रक्तवर्ण होकर सारथि अरुण को साथ लिये पद्म के अनुरागभाजन हुए। फिर भी समान न हो सकने के कारण एक क्षण मे विवर्ण होकर सन्तप्त हुए। (अर्थात् अग्निमय तेज में भस्मीभूत हुए।) फिर सन्ध्या के समय माणिक्य से ज्योति को ऋण लेकर अपने शरीर मे धारण किया। परन्तु तथापि समान न हो सकने के कारण लज्जावश अस्त-समुद्र मे डूब गये। बालको तथा बूढों को आज की बात कल तक याद नही रहती। उसी तरह यह बात याद न रहने से

सूर्य हररोज वही व्यवस्था करने लगे। (हररोज लज्जित होते हुए भी सूर्य को यह वात याद नही रहती और वे फिर प्रतिदिन उदित तथा अस्त होते है।) वाल रवि भी जिन अधरो के समान नही हो सका, उनकी मन्दार (अडहूल) फूलो से क्या तुलना करे? मन्दार (अड़हूल) शब्द ने 'मन्द' (खराव)—इस कालिमा को धारण किया है। (इस हेतु मन्दार कभी अधरो का उपमान नही हो सकता।) वाला के अधरों के समान न हो सकने के कारण विम्वफल ने रूठकर 'वैरागी हो जाऊँगा'—ऐसा विचार करके मानो शरीर पर राख मली हो। (१९-२०)

अरुण—रक्तवर्ण; अरुण—सूर्य, अरुण—सूर्य-सारथि; (यमक); विरंग—विवर्ण; दण्डके—क्षण ही में; अर्णव—समुद्र; विम्व—कुन्दरू फल (व्यतिरेक)। (१९, २०)

विद्रुम ये़हिँ छुञ्चि मराइ सूचिका व्याजे हृद।
वन्धुजीव ये़ अळपके भजे मळिन न संवाद।
वैभव शुभे ललाटे शोभे नारीर ये सिन्दूर।
विहाइ से त परे दळित गुपत सम्पूटर। २१।

सरलार्थ—अपनी रक्तिमा (लाली) मे सीता जी के अधरों से समान न होकर प्रवाल ने 'अपमान की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर है'—यह सोचकर सुई से अपने हृदय को विधा लिया। वन्धुक या दुपहरिया का फूल थोड़े ही समय मे मुरझा जाता है। सुतरां उसके लिए सीता जी के अधरों के लिए उपमान करना धृष्टता ही है। जो सिन्दूर माङ्गलिक कार्यो में नारियों के ललाटों पर शोभित होता है, वह भी अधरो की लाली के तुल्य न होकर दूसरो से कुचला जाकर सपुट मे जा छिपा। (२१)

विद्रुम—प्रवाल, मूँगा; छुञ्चि—सुई; वन्धुजीव—वन्धुक, दुपहरिया का फूल; (व्यतिरेक अलंकार) (२१)

वज्र दशन किछि प्रसन्न हरणे करुँ चिन्ता।
वसाइ शाणे कर्त्तप्रमाणे दण्ड दिअइ धाता।
बोधाइ शुक्तिभव उत्पत्ति नोहु मुँ दन्तदास।
विमुक्त होइ मुक्ता वोलाइ तार कि हेला नाश? २२।

सरलार्थ—जव विधाता ने यह वात जान ली कि हीरा उनके दाँतो की प्रसन्नता (ज्योति) का हरण करने की वात सोच रहा है, तव उन्होने करांत (आरी के दाँत) तुल्य सान पर उसे दण्ड दिया। फिर मुक्ता (हीरे की दुर्दशा देखकर) 'जन्म के पहले मै दाँत का दास हूँ' ऐसा कहने से (सीप के वन्धन

से) विमुक्त (मुक्त) हुई। इसलिए लोग उसे 'मुक्ता' कहने लगे। क्या इससे मुक्ता की कुछ हानि हुई? (अर्थात् नही।) हीरे ने अभिमान करके दण्ड पाया; परन्तु दासत्व (वन्धन, अधीनता) स्वीकार करके भी मोती ने 'मुक्त' नाम प्राप्त किया। इसलिए वह (मोती) गौरवान्वित हुआ। (२२)

बज्र—हीरा; प्रसन्न—निर्मल कान्ति; शुक्तिभव—मुक्ता, मोती; (व्यतिरेक अलंकार)। (२२)

बाळिकारद खेदद कुन्दकळिका हृद फुटि।
बीज देखाइ समान नोहि दाडिम्वफळ फाटि।
बृक्षरे लम्बे लपन नम्रे एतिकि लभि लाभ।
बिअर्थ हेला तण्डुळमाळा नाहिँ झलकप्रभ। २३।

सरलार्थ—सीता की दन्तपक्ति कुन्दकलियों को दुःखद हुई। (अर्थात् दन्तपक्ति को देखकर कुन्दकलियो को दुख हुआ।) इसलिए उनके हृदय फूट गये। फिर दन्तो के समान होने के लिए अनार ने फट कर वीजों को बाहर दिखाया। तिस पर भी समान न होने से लज्जा के मारे अधोमुख हो झूलने लगा। उसे इतना ही लाभ हुआ कि अधोमुख दशा मे दोलायमान हो तपस्या करने पर शायद कभी दन्तो की समता को प्राप्त कर ले। तण्डुलश्रेणी दन्तो के तुल्य नही क्योंकि उसमे दन्तो की-सी उज्ज्वल प्रभा नही। इस प्रकार उपमायोग्य न हो सकने के हेतु तण्डुल का जीवन व्यर्थ हुआ। (२३)

रद—दन्त; खेदद—दुःखदायक; दाडिम्ब फल—अनार; तण्डुळ—चावल (व्यतिरेक)। (२३)

बन्दाइ मित शारदा नत होइ बचन तुले।
बाणी भारती से सरस्वती दुहिङ्कि लोके बोले।
बल्लकी तार तुल कि स्वर परवशे से जात।
बनप्रियहिँ कुहु या कहि अन्धार दिशि सत। २४।

सरलार्थ—विनय-प्रकाशपूर्वक सरस्वती ने सीता के वचन के साथ मित्रता की। इसलिए 'वचन' तथा 'सरस्वती' दोनों को लोगो ने 'वाणी' का नाम दिया है। वीणा का स्वर सीता के स्वर से समान नही हो सकता। क्योकि वीणा का स्वर किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा प्रकट होता है। (परन्तु सीता का स्वर स्वतः प्रकट होता है)—सीता का स्वर

सुनकर कोयल को चारो ओर अन्धकार ही दीख रहा है। इसलिए अपनी बोली ('कुहू' 'कुहू') के मिस वह जो 'अन्धकार' 'अन्धकार' कह रहा है वह सच है। (२४)

शारदा—सरस्वती; वल्लकी—वीणा; वनप्रिय—कोयल; कुहू-कुहू—कोयल की बोली, अन्धकार (व्यतिरेक तथा श्लेष)। (२४)

वड़ मधुर द्राक्षारु गिर सेहि चातुरी स्थान।
वर्ण्णुथिले ता तुण्डकु पिता आन चरितमान।
विबुधाशन अमृत पान होए केवळ मुखे।
विवेकि ! घेन श्रवणे पान याहा करन्ति सुखे। २५।

सरलार्थ—सीता का वचन द्राक्षारस से बढ़कर मधुर तथा चातुरीपूर्ण है। यदि उसकी वर्णना करने बैठे, तो सभी दूसरे चरित जीभ को कटु लगते है। (द्राक्षारस खाने पर अन्य कोई स्वाद रुचिकर नहीं होता। उसी प्रकार उनका वचन सुनने पर किसी अन्य का वचन सुखकर नहीं होता।) जो अमृत देवताओं का भोजन है उसे केवल मुख से ही पिया जाता है। परन्तु लोग मुख से सीता के वचनामृत को कर्णों से ही पान करते है। हे विवेकियो ! यह विचार करो कि सीता का वचन अमृत से श्रेष्ठ है। (२५)

पिता—कटु, कड़ुवा; विबुधाशन—देवताओं का भोजन (अमृत); (व्यतिरेक)। (२५)

विभर्त्ति रससार विशेष चिबुक दिव्यपात्र।
विधाताङ्गुळि चिह्नरे झळि नारङ्ग केते मात्र।
बहि त्रिरेखा त्रिपुरे देखा कण्ठकु नाहिँ लक्षे।
व्रत वाञ्छित कपोत व्रात खळु शिळाकु भक्षे। २६।

सरलार्थ—सीता जी के चिबुक (ठोढी) को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो चिबुक-रूपी दिव्य पात्रो मे विधाता द्वारा श्रेष्ठ रस (शृगारादि) भरते समय उनके अगुलिचिह्न उस पर टिक गये। इसमे चिबुको की कोमलता सूचित हो रही है। ऐसे चिबुक की नारगी से उपमा देने की क्या बिसात ? (अर्थात् नारगी किसी भी प्रकार उसके उपमा-योग्य नही हो सकती।) उनके कण्ठ के समान होने के लिए स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल तीन भुवनो मे कोई पदार्थ नही; जिसके प्रमाण-स्वरूप कण्ठने त्रिरेखा (तीन रेखाएँ) धारण की है।

इससे कम्बुग्रीवा की सूचना मिलती है। उनके कण्ठ के समान होने की कामना से कपोत-समूह व्रत-पालनपूर्वक निश्चय ही पत्थर की कंकड़ियाँ खा रहे हैं। (कठोर तपस्याकारी कंकड़ियाँ भक्षण करके तपस्या किया करते।) (२६)

विर्भत्ति—भरती करके; खळु—निश्चय; (व्यतिरेक)। (२६)

व्यक्त लक्षणामानङ्क ऊणा मुखमण्डळे करुँ।
बिळापि शिखी चमरु देखि कहन्ति केश चारु।
बरही एणी पुच्छकु आणि उत्पाटि छेदि जने।
बिकि एतिकि मूल्य बोलि कि देखान्ति ए भुवने। २७।

सरलार्थ—सीता जी के मुखमडण्ल की शोभा के सामने सभी व्यक्त (अर्थात् प्रकाशित) उपमाओं ने अपनी-अपनी न्यूनता स्वीकार की। सुतरां मयूर तथा चमरी-मृग पूँछ उठाये रोते-रोते सीता जी के केशों की श्रेष्ठता (तथा अपनी-अपनी पूँछ की न्यूनता) प्रकट कर रहे है क्या? अर्थात् सीता जी के केश-गुच्छ सहित मयूर तथा चमरी-मृग की पूँछ तुलनीय नहीं। इसी हेतु लोग उनकी पूँछ उखाड़ व काट कर बाजार में वेच रहे है और इसका मूल्य "इतना ही" कहकर संसार को दिखा रहे है। (अर्थात् मयूर की पूँछ तथा चमरी-मृग की पूँछ का मूल्य है; परन्तु सीता जी के केश अमूल्य है।) (२७)

बिळापि—रोकर; शिखी—मयूर; चमरु—चमरी-मृग; बरही—मयूर (व्यतिरेक)। (२७)

विवेकी येहि से निउँछाइ ढाळिबा ब्याजे केशे।
व्योमधूमकु ताहा समकु लक्षिबा कि मानसे?
बिराव करि नोहे मुँ सरि बोलि उदय काळे।
बिष्णु ये राहु उपमा यहुँ चक्ररे छेदिदेले। २८।

सरलार्थ—विवेकी लोग मयूर-पूँछ तथा चमरी-मृग की पूँछ—दोनों को चँवर के रूप में डुला कर सीता जी के केशों की वन्दना कर रहे है। भला मेघ को किस मन से सीता जी के केशो के समान माने? वह मेघ उदय के समय 'मै समान नही हूँ' कहता हुआ घोर गर्जन कर रहा है। राहु कालिमा में सीता जी के केशो के तुल्य नही हो सका। इसलिए शायद विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका छेदन कर डाला। (२८)

निउँछाइ—वन्दना करना; व्योमधम—मेघ; विराव—घोर गर्जन (व्यतिरेक)। (२८)

बिकर्त्तनजा से समे मज्जा बीचि कुञ्चिते स्नेही ।
विष ये कळा सगमे मेळा काळे काळीय बहि ।
बिनाशे आशा प्रबेश आषाढ़ ये आविळप्रदा ।
विश्वलोचन-रोचन घेन तमस नोहे कदा । २९ ।

सरलार्थ—सीता जी के घने, कुञ्चित केशों के समान होने की इच्छा से यमुना नदी ने अपने हृदय में कुञ्चित लहरें प्रकट की । फिर कालिमा मे सीता जी के केशों के समान होने के उद्देश्य से कालीयसर्प को अपने काले शरीर मे धारण किया और उसकी विष-कालिमा से युक्त हुई । (यमुना का पानी तो सहज ही काला है, कृष्ण वर्ण के कालीय सर्प का विष भी काला है ।) परन्तु आषाढ़ महीने का प्रवेश होने पर (वर्षा होने से) उसका पानी पंकिल हो गया । फलस्वरूप उसकी आशा का विनाश हुआ । अन्धकार तो सहज ही जगत् के लोगों के चक्षुओं के प्रति अप्रीतिकर है । उससे केशों की तुलना कदापि नही की जा सकती । (२९)

विकर्त्तनाजा—सूर्य की कन्या यमुना; वीचि—लहरें; विष—जल, जहर; आविलप्रदा—पंकिल, कीचड़दार; तमस—अन्धकार (व्यतिरेक) । (२९)

बिवर्ण्ण तुल तमाळदळ बोलि कि पुरस्कार ।
बेभारे परिणत से धरि झड़इ बारम्बार ।
बिष्णुपदहिँ नीळता वहि चिकुर तुळ स्नेहे ।
बिहे ता धूळिधूसर करि बात कि गर्जे नोहे । ३० ।

सरलार्थ—मलिन तमाल पत्रों की सीता के केशों से उपमा देने से क्या लाभ है ? यह उपमा व्यर्थ है । क्योकि तमाल-पत्रों का स्वभाव यह है कि वे पक कर पीले पड़ जाते है और बार-बार झड़ पड़ते है । सीता के केश हमेशा मस्तक पर शोभित रहते है, कभी नही झड़ते । इसलिए क्षणस्थायी तमाल-पत्रो से वे उत्कृष्टतर है । सीता के केशों के तुल्य होने की इच्छा से आकाश ने नीलिमा धारण की । परन्तु उसके समान न होने से पवन ने धूलि-राशि से उसे पाण्डुर (पीला) बना दिया और गर्जन सहित कहा, "यह आकाश केशों के समान नही है" । (३०)

विवर्ण—मलिन; तमाळ-दळ—तमाल के पत्र; कि पुरस्कार—क्या लाभ या फायदा है ?; परिणत—पक्व; विष्णुपद—आकाश; चिकुर—केश (व्यतिरेक) । (३०)

बहिले नीळ गळे से तुळ बाञ्छारे महादेबे ।
विचारि उमा नोहे से समा बेढ़ाइ बाहु भावे ।

बिजित से ये सीता सौन्दर्य्ये एमन्त घेनि चित्त ।
बन्दे गउरीपदरे करि सुन्दरीमणि मित । ३१ ।

सरलार्थ–उक्त केशों के तुल्य होने की इच्छा से महादेव ने अपने कण्ठ में नील वर्ण धारण किया। परन्तु उनके कण्ठ की नीलिमा सीता के केशों की नीलिमा के समान न होने से पार्वती ने अपनी दोनों भुजाओं को महादेव के गले में लिपटा दिया, ताकि असमान कण्ठ छिप जाय। "सौन्दर्य में मै सीता से पराजित हूँगी"—मन में यह सोचकर 'गौरी' नाम धारण करके पार्वती सुन्दरी-शिरोमणि सीता को मित्र बना उनकी वन्दना कर रही है। (सीता बचपन में गौरी—अष्टवर्षा भवेद्गौरी—थीं। इसलिए पार्वती 'गौरी' नाम धारण करके उनकी मित्र बनी।) (३१)

बारित सीमा बाड़ उपमा अळका मुख केशे ।
बेळारे व्यापि गंगार तपी मूक तरिबा आशे ।
बोध राघवे ए देखिथिबे एतिकि बातायने ।
बतिश पदे ए छान्द छन्दे उपेन्द्र तोषमने । ३२ ।

सरलार्थ–मुख और केशों के बीच अलका सीमा-रेखा के सदृश है। इस तरह सीता जी के वदन का सौन्दर्य वर्णन करते-करते विश्वामित्र गंगा नदी के किनारे पर आ पहुँचे और गंगा को पार करने की आशा से मौन रहे। (उन्होने अन्यान्य अंगों की वर्णना नही की।) रामचन्द्र ने सोचा, मुनि ने केवल इतना ही (मस्तक-भाग मात्र) खिड़की मे देखा होगा। सर्वांग नही देखा है। उपेन्द्र ने सन्तुष्ट मन से इस छान्द को बत्तीस पदों में छान्दोबद्ध किया। (३२)

अळका—घुंघराले बाल, लट; **बेळारे**—किनारे पर; **बातायन**—झरोखा, खिड़की। (३२)

॥ इति अष्टम छान्द ॥

नवम छान्द

राग—चोखि

वितळकु आलिगन करि जाह्नवी शोभन
हरे सुरवर-ताप चारुधारा से।
वहे मकर-केतन उच्छन्न रति समान
पूरित होइछि पुणि अशेष रसे।
विद्य हैमवती पदरे।
विपकण्ठ-तोपदानी वेनि मतरे। १।

सरलार्थ—अनन्तर विश्वामित्र, राम तथा लक्ष्मण गंगा नदी के किनारे पर उपस्थित हुए। उन्होने देखा कि अतल तथा सुतल—दोनों को लाँघकर वितल को आलिगन करती हुई गंगानदी शोभित हो रही है। (वितल अर्थात् तृतीय पाताल को वेध करने से गगा नदी की गभीरता सूचित हो रही है।) शची सुरवर अर्थात् इन्द्र का स्मरताप (कन्दर्पजनित पीड़ा) हरण (दूर) करती है। गंगा अपने मनोहर प्रवाह से सूर (सूर्य) सम्बन्धी वर ताप (महाताप) को स्नानादि द्वारा हरण करती है। फिर गंगा स्मरप्रिया रति के समान है। रति मकर-केतन अर्थात् कन्दर्प के कामोद्वेग को शान्त करती है तथा वे शृगाररस से पूर्ण है। उसी तरह गंगा मकरादि जलचर प्राणियो का केतन (गृह) होकर उनके उद्वेग को शान्त करती है तथा वह अपरिमित जल से पूर्ण है। गगा हिमालय से उत्पन्न होने के कारण (पार्वती के समान) हेमवती के नाम से ख्यात है और पार्वती की तरह महादेव जी के काम-ताप, और विप-ताप का हरण करके दोनो पक्षो मे शकर जी की सन्तोपविधायिनी हुई है। (१)

वितळ—सप्त पातालो मे से तृतीय पाताल; चारुधारा—शची (इन्द्रपत्नी), मनोहर प्रवाह (श्लेष); हैमवती—पार्वती, गंगा (श्लेष); विपकण्ठ—महादेव। (१)

विष्णुपदी विष्णुपद ईकार भेद शब्द
तरणी-(णि-)र गतागत तहिँ उचित ।
विशारद से सामन्त मत्तरे दास-सेवित
ड़ाकू न शुणन्ते रघुनाथ कथित ।
विषधर प्राये कि तुहि ।
वेळे नेत्र ढाळि शुण उदार नोहि । २ ।

सरलार्थ—विष्णुपदी व विष्णुपद—इन दो शब्दो मे 'ई'कार मात्र प्रभेद है। और शेष सभी अक्षर समान है। विष्णुपदी (गंगा) में तरणी (नौका) तथा विष्णुपद में तरणि (सूर्य) का गमनागमन उचित है। ('तरणी' तथा 'तरणि', इन दो शब्दों मे भी 'ई'कार मात्र प्रभेद है।) गगा को पार करने के लिए तरणी (नौका) चाहिए, इसलिए विश्वामित्र ने केवट को पुकारा। वह केवट नौका-चालन मे निपुण होने के कारण दूसरे केवटों मे सामन्त (सरदार) हुआ है और दासो (नौकरों) से सेवित हो रहा है। इस हेतु मारे गर्व के ऋषि की पुकार उसने नही सुनी। तो रामचन्द्र ने कहा, "क्या तू विषधर (साँप) है? (अर्थात् तू क्या कर्णहीन है?) यदि तेरे कान नही है, तो तू गम्भीर न होकर साँप (चक्षुश्रवा) की तरह आँखो से हमारी बात जरा सुन तो सही"। (२)

विष्णुपदी—गंगा; विष्णुपद—आकाश; तरणी—नौका, तरणि—सूर्य (श्लेष); विशारद—निपुण, दक्ष; मत्तरे—गर्वसे; दास—भृत्य, नौकर; विषधर—साँप। (२)

बधिर नुहइ वीर बोइला तहिँ धीवर
शुणिलिणि पथरे पथर अवळा ।
बालि पड़िलो चरणु आशंका उपुजे एणु
नउका नायिका हेले बुड़िब भेळा ।
बृत्ति ए मो पोषे कुटुम्ब ।
वसाइ न देबि पाद न धोइ नाब । ३ ।

सरलार्थ—यह सुनकर केवट ने कहा, "हे वीर! मैं बहरा नही हूँ। मैंने सुना, तुम्हारे चरणो की धूल पड़ने से मार्ग पर पत्थर एक अबला (स्त्री) वन गया, इस हेतु मुझे आशका हो रही है, कही मेरी नौका आपकी पद-रज के स्पर्श से स्त्री न वन जावे। यह नौका मेरे निर्वाह का साधन है, इससे मैं अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहा हूँ। सुतरां, तुम्हारे पैरो को विना धोये मैं तुम्हे नाव पर वैठने नही दूँगा। (क्योकि काठ तो पत्थर से भी नरम है। जब पत्थर स्त्री बना है, तब लकड़ी से बनी नौका का स्त्री वनना असंभव नही।)" (३)

बधिर—वहरा; धीवर—केवट; नउका—नौका; नायिका—स्त्री; बुड़िब—डूब जाएगा; भेळा—लकड़ियो या वाँसों का एकत्र वन्धन जो नदी पर खेने से उतराता हुआ चलता है, बुड़िव भेळा—अवलम्व नष्ट हो जाएगा; वृत्ति—जीविका। (३)

तुलनीय—क्षालयामि तव पाद-पंकजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरं—अध्यात्म-रामायण। अथवा रामचरितमानस का केवट-प्रसंगः—
"मांगी नाव न केवट आना"'तव लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं ॥"

वढ़ाइ देले पयर भावग्राही रघुवीर
पयरे क्षाळित करि वसने पोछि।
ब्रह्मारे धौत ये पद नोहिछि शिव विषाद
न पाइ चरणामृत पानकु इच्छि।
विज्ञानी कैवर्त्त धोइला।
विश्वे पतित-पावन नाम रहिला। ४।

सरलार्थ—केवट के ऐसे भावगर्भित वचन सुनकर भावग्राही वीर रामचन्द्र ने केवट के धोने के लिए अपने पैर वढ़ा दिये। केवट ने प्रभु रामचन्द्रजी के पैरों को धोकर अपने वस्त्र से पोछ दिया। चरणामृत-पान की इच्छा करने वाले ब्रह्मा जिन पैरो को नही धो पाये है, शिवजी जिन पैरो को न धो सकने के हेतु विषादग्रस्त (दुःखित) हुए है, विष्णुजी के ऐसे पैरो को अज्ञानी केवट ने धोया। इसलिए संसार में रामजी का 'पतितपावन' नाम ख्यात हुआ। (४)

विज्ञानी—अज्ञानी, नीच। (४)

बिञ्चि पल्लव नावरे पद बिकळ्पि मनरे
प्रतिहारी परिरे मणाइ वसाइ।
विश्वामित्रङ्कु श्रीराम पचारिले गंगा नाम
भागीरथी किपाँ हेला कह गोसाइँ।
विष्णु नखकोणे ए थिला।
वामनावतारे भगीरथ आणिला। ५।

सरलार्थ—पादों से धूलि धुल जाने पर भी केवल पद-न्यास से नौका कही स्त्री न वन जाय, यह सन्देह करके केवट ने नाव पर कोपले विछा दी, और एक प्रतिहारी की तरह उन तीनों को मनाकर उस पर वैठाया। अनन्तर रामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी से पूछा, "हे गोसाइँ! 'गंगा' का नाम 'भागीरथी' कैसे पड़ा, जरा वताइए"। विश्वामित्र ने कहा, वामनावतार में विष्णुजी के नाखूनों के कोने मे (से) यह नदी निकली थी।

तुम्हारे पूर्वज भगीरथ इसे ले आये थे। इसलिए इसका नाम भागीरथी पड़ा है। (५)

विञ्चि—बिछाकर; पल्लव—किशलय, कोंपले, बिकल्पि—सन्देह करके; प्रतिहारी—द्वारपाल; मणाइ—मनाकर; आणिला—ले आये, लाये। (५)

विधिपूर्व करि ऋषि समस्त चरित भाषि
तरी त त्वरित ग्राइ लागे कूळरे।
बिहारी हेले मार्गर मार्गण[1] कमाणधर
मार्गण[2] शोभा लेशकु कन्दर्प ग्रार।
विदेहमण्डळे प्रवेश।
बारबेनि-पुर-सार मोहन पुंस। ६।

सरलार्थ—ऋषि ने गगाजी के मर्त्यलोक में आने के सारे चरित विधिपूर्वक कह सुनाये। इस अवधि में नौका शीघ्र आकर दूसरे किनारे पर लगी। जिनकी शोभा से कन्दर्प भी रचमात्र मॉग रहा है ऐसे धनुशरधारी रामचन्द्र ने नौका से उतर कर मार्ग पर पदार्पण किया। अनन्तर चौदह भुवनों में श्रेष्ठ मोहन पुरुष रामचन्द्र ने विदेहमण्डल में प्रवेश किया। (६)

तरी—नौका; मार्गण[1]—शर; कमाणधर—धनुर्द्धारी; मार्गण[2]—माँगने वाला; (यमक) शोभा लेशकु—रंचमात्र शोभा को; यार—जिनकी; बारबेनि—बारह और दो, चौदह; सार—श्रेष्ठ; पुंस—पुरुष। (६)

बिपणिरे थिला जने भावना कले दर्शने
आगत कि धाता हर मध्यरे हरि।
विभञ्जन शिवधनु करि मरकत तनु
बिभा हेबे सीता निश्चे जन्मिछि शिरी।
वश ए रम्यरे मानस।
विजे रास अद्भुते शुभे ए घोष। ७।

सरलार्थ—(विदेह के) बाजारों मे ठहरे लोगों ने विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण के दर्शन करके मन में विचार किया, "आगे विधाता, पीछे शिवजी और दोनों के बीच में विष्णु भगवान् इस प्रकार तीन मूर्त्तियो ने आगमन किया क्या? जिनका मर्कतकान्ति के समान शरीर है ऐसे राम शिवधनु का विभञ्जन (भग) करके लक्ष्मी-स्वरूपा सीता को विवाहेंगे।" राम के सौन्दर्य से लोगो के मानस वशीभूत हुए। इस समय अद्भुत रूप से 'रामचन्द्र जी ने आगमन किया है' यह ध्वनि चारो ओर सुनाई पड़ी। (७)

विपणि—श्रेणीवद्ध दुकाने; धाता—ब्रह्मा, हर—शिव, हरि—विष्णु; जन्मिछि शिरी—लक्ष्मी-स्वरूपा सीता; वश—वशीभूत; ए रम्यरे—इस (रामचन्द्रजी की) मनोरमता से, उनके सौन्दर्य से। (७)

विभ्रमुँ ए शब्द चित्ते 'रा' 'का' होइगला श्रुते
नारीए भाळिले केहि से रूपवन्त।
बळइ कवि मानस नाम पछे त प्रकाश
अखण्डचन्द्र ए होइवार उचित।
वोधिवे नयन-चकोरी।
बिशेपे शोभा-पीयूप-पान विस्तारि। ८।

सरलार्थ—'राम ने आगमन किया'—यह आवाज सुनाई पडते ही भ्रमवशत: सवके मनो मे 'रा' का 'का' हो गया। (अर्थात् 'राम' की जगह पर 'काम' सुनाई पडा।) 'काम ने आगमन किया'—ऐसा सुनकर नारियों ने सोचा, "काम तो अरूप है। वह रूपवन्त कैसे हुआ?" कवि ने मन में विचार किया, 'राम' नाम के पश्चात् तो 'चन्द्र' प्रकाशित है। इसलिए 'रा' 'का' अर्थात् राका हो गयी। अर्थात् इससे पूर्णिमा का अखण्ड चन्द्र सूचित हुआ जो राम के लिए उचित ही धर्म हुआ। वही पूर्णचन्द्र शोभारूपी पीयूष-राशि का विस्तार करके लोगो के नयनोरूपी चकोरियो को सन्तुष्ट करेंगे। (चकोरी पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना पीकर सन्तुप्ट होती है। उसी तरह लोगो के नयन रामचन्द्र की शोभा को देखकर प्रसन्न होंगे।) (८)

राका—पूर्णिमा; अखण्डचन्द्र—पूर्णचन्द्र; पीयूष—अमृत (८)

विषय करि अन्तर से प्रान्त हत प्रकार
मणि रमणी वाहार छन्न द्विगुण।
बिनाशि गुरु गौरव ताहाङ्करि सेहि भाव
उदितरु करि न पारिले वारण।
वेशे थिले येतेक नारी।
बिहे के नेत्रे कज्जल छळे कस्तूरी। ९।

सरलार्थ—रमणियो ने विषय (काम-धन्धे) को त्याग दिया। मानों उन्होने विपय को ('विपय' शब्द का प्रान्त अक्षर हत, अर्थात् लुप्त होने पर केवल 'विष' ही रहता है।) विप की तरह समझा और दुगुने आवेग के सहित निकल पड़ी। पहले काम के आगमन की वार्ता पाकर वे उद्विग्न हुई थी। अव राम के आगमन का संवाद सुनकर वे दुगुनी उद्विग्न हुईं।

फिर गुरु-गौरव का विनाश करके (अर्थात् गुरुजनो के प्रति असम्मान-प्रदर्शनपूर्वक) खुले आम गमन किया। गुरुजनों ने भी राम के आगमन का सवाद पाया था तथा वे स्वय भी उद्विग्न हुए थे। इसलिए स्त्रियो को वे वारण (मना) नही कर सके। और जितनी स्त्रियाँ अपने वेश-विन्यास मे लगी थी, उनमे से किसी-किसी ने कस्तूरी को कज्जल के मिस आखो में लगाया। (९)

बक्षस्थळे केउँ बाळा किकिणीकि लम्बाइला
चापसरिकि खञ्जिला मध्यदेशरे।
बेशकारी के काहार सिन्दूर देला पयर
चिता ललाटरे लेखे लाक्षारसरे।
बिबन्ध करि के चिकुर।
बेगे कंकतिकारे शामळे चामर। १०।

सरलार्थ—किसी वाला ने भ्रमवशतः करधनी को वक्षस्थल पर धारण किया। चापसरी (कण्ठाभरणविशेष) को कमर पर पहना। किसी स्त्री की वेशकारिणी ने अलता के भ्रम मे सिन्दूर को पैर मे लगाया और अलता को लेकर ललाट पर बिन्दी लगाई। कोई स्त्री केशों को खोले शीघ्रता से चँवर को बाल समझकर कघी से उसे (चँवर को) सँवार रही है। (१०)

किंकिणी—करधनी; चापसरी—कण्ठाभरण विशेष, चीलमीलिका; लाक्षारस—लाख का रस, अलता; विबन्ध करि—मुक्त, मुकुलित, खोलकर; चिकुर—केश, बाल; कंकतिका—कंघी; शामळे—सँवारती है; चामर—चँवर। (१०)

बसिथिला पतिकोळ के घेनि पतित मेळ
गति करि[1] युबा देखा गति से करि[2]।
विपरीत काहा साई मागुँ देखिबा आशायी
रीति दुइ पुंसे भाषे पुष्पे संचरि।
बळा खञ्जु के मानी भाषि।
बल्लभे भुलाइ केबे नुहइ दोषी। ११।

सरलार्थ—कोई रमणी अपने पति की गोद मे बैठी हुई थी। उस मिलन को तुच्छ समझकर—युवक रामचन्द्र जी के दर्शन से गति (मुक्ति) मिलेगी—यह सोचती हुई पति को त्यागकर रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए जाने लगी। किसी का पति पत्नी से विपरीत रति माँग रहा था। उधर पत्नी रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए आशायी हो रही थी। इन दोनों में से किसके प्रति वह पहले ध्यान दे? अन्त में रामचन्द्रजी का दर्शन-लोभ

प्रवल पड़ा। इसलिए अपने पुरुष से उसने वहाना किया कि मै रजोवती हुई हूँ। किसी का पति रमणी के पैर मे पायजेव पहना रहा था। उस समय रमणी ने रूठकर अपने पति से कहा, "मैं दोपी तो नही हूँ, मुझे क्यो वेडी लगा रहे हो ?" (स्त्रियाँ साधारणतया अलकार-प्रिय है। परन्तु उस स्त्री की रामदर्शन के लिए आशा इतनी प्रवल हो उठी थी कि उसने पायजेव को एक वेडी की तरह समझा और इस तरह अपने पति को भुलाकर रामदर्शन के लिए) वह स्त्री भागने को उतावली हुई। (११)

पतित—तुच्छ; मेळ—मिलन, गति करि[१]—गमन किया, गति करि[२]—मुक्ति समझकर (श्लेष); भाषि—कहा, वोली; वल्लभे—पति को (से) (११)।

बयसी ए गीत गाइ के रामा वीणा वजाइ
थोइअछि भावि चाहिँ कुच रोमाळी।
बाजित किकिणी स्वर मणित धाउँ प्रचार
आम्भठारे देला भाळि गमिला आळी।
बिसोर से रागरे राग।
बोलुथिले रामकेरी 'र' 'ळ' संयोग। १२।

सरलार्थ—कोई तरुणी युवती गीत गा रही थी। उसकी सखी उस गीत का अनुसरण करती हुई वीणा वजा रही थी। राम-लक्ष्मण आये है—यह सवाद सुनकर वीणा फेककर वह युवती दौड़ पडी। उसके दौड़ने से उसकी कमर की करधनी वज उठी। तो युवती वास्तव परिस्थिति के प्रति सजग हो उठी। उसने अपने कुच को वीणा तथा रोमावली को वीणा के तार तथा अपनी करधनी की ध्वनि को वीणा का स्वर समझकर सोचा, "सखी मेरे शरीर मे वीणा रखकर भाग गई क्या ?" यह सोचती हुई वह जाने लगी। रामदर्शन के लिए जो अनुराग उत्पन्न हुआ, उस अनुराग से गायिका अपने गीत का राग भूल गई। वह 'रामकेरी' राग गा रही थी। चित्त-विभ्रम के कारण 'रामकेरी' राग रामकेळि हो गया; अर्थात् अन्तिम 'र' अक्षर 'ळ' हो गया। (१२)

बान्धव बान्धवी रञ्जि परस्परे भुञ्जाभुञ्जि
पान तुच्छा कर दिआदेइ होइले।
वाहु बाहु आलिगन लतिका तरु समान
तरुण तरुणी थिले तेजि धाइँले।
बामा केहि हरिद्रा घेने।
बिच्छित्ति देखाइ गला न पोछि स्नाने। १३।

सरलार्थ--कोई नायक-नायिका अनुराग सहित एक दूसरे को पान खिला रहे थे। वे राम-दर्शन की आशा से उद्विग्न होकर एक दूसरे के प्रति खाली हाथ पसारने लगे। कोई तरुण-तरुणी वृक्ष-लता के समान एक दूसरे को बाहुओ से आलिगन कर रहे थे। वे उसे त्याग कर राम के दर्शन के लिए दौड़े। कोई स्त्री अपने शरीर पर हलदी लगा रही थी। स्नान समाप्त करके, परन्तु शरीर को विना पोछे, अग-छटा दिखाती राम के दर्शन के लिए वह दौड़ने लगी। (१३)

विच्छित्ति—रूप-लावण्य, अंगछटा। (१३)

बधू पात्र सामन्तङ्क श्रवणे अति उत्सुक
जगती[1] गतिकि देखि सखीए भाषे।
बड़भी[1] लभिल नाहिँ बड़-भी[2] लभिब चाहिँ
जगती[2]-गति-दाताङ्कु अनङ्ग वशे।
बाटि श्रमी हेबुँ उशीर।
वाधिब सरिब वेनि शिशिर कर। १४।

सरलार्थ—राज-मन्त्रियो और सामन्तो की स्त्रियाँ राम के आगमन की वार्त्ता सुनकर उन्हें देखने के लिए उत्सुक हो प्रासाद पर चढ़ी। यह देखकर किसी सखी ने कहा, "तुम लोगो ने 'वड़ भी' (चन्द्रशाला, प्रसाद) तो प्राप्त नही की, वल्कि जगत के गति-मुक्तिदायक राम को देखकर कन्दर्प के वश से बड़-भी (वडा भय) प्राप्त करने को ऊपर गयी। हम लोग उशीर (खस) बाटकर थक जाएगी। दोनो अर्थो मे शिशिरकर (चन्द्रकिरण तथा कर्पूर) मे से चन्द्रकिरण तुम लोगो के लिए कष्टकर होगी और कर्पूर जगत से समाप्त हो जाएगा। (अर्थात् राम को देखकर तुम लोग विरह-ज्वाला से सन्तापित होगी। तुम लोगो को ठंडी करने के लिए हम उशीर वाटते-बाटते थक जाएँगी, तुम लोगो पर प्रयोग से कर्पूर का चूरा जगत् से समाप्त हो जाएगा और चन्द्र की किरणे विष तुल्य कष्टदायक होगी।) (१४)

पात्र—राजमन्त्री, सामन्त—अधीन के राजा; जगती[1]—प्रासाद; बड़भी[1]—चन्द्रशाला, बड़-भी[2]—बड़ा भय (यमक); जगती[2]—जगत (यमक); श्रमी हेबुँ—थक जाएँगी; उशीर—गाँडर, खस; वेनि—दोनो अर्थो मे; शिशिरकर—चन्द्रकिरण, कर्पूर (श्लेष)। (१४)

बिग्रह त्वरा आरम्भे सुन्दर दर्शन लोभे
प्रभञ्जन-पथ प्रभञ्जन होइब ।
विश्वस्ते जात एतेक लाभ हृद-संपुटक
मध्यरे से मनोरम-मणि थोइब ।
बोले से तुम्भर नोहिब ।
वञ्चना कलाणि केते काळुँ दइब । १५ ।

सरलार्थ—एक सखी ने झरोखे के पास दौड़ती हुई दूसरी स्त्रियो से कहा, "रामचन्द्रजी का सुन्दर रूप देखने के लिए तुम लोग उतावली हो झरोखे के पास जा रही हो । उन रामचन्द्र रूपी मनोरम मणि को तुम लोग अपने हृदय-सपुटक मे रखोगी--इतना ही विश्वास तुम लोगों को प्राप्त होगा, (अर्थात् इसमे कोई सन्देह नही कि उनके सौन्दर्य को तुम लोग देखकर मुग्ध होगी और उनकी भावना हमेशा करती रहोगी । परन्तु वास्तव मे उनको प्राप्त नही कर सकती ।) उनकी विरह-चिन्ता मे अधीर होते समय पवन तुम लोगो के लिए असह्य होगा । इसलिए ये झरोखे (जिनके पास रामदर्शन के लिए तुम लोग अभी दौड़ी जा रही हो) अपमान से टूट जाएगे । वे राम तुम लोगो के कभी नही हो सकते । विधाता ने तुम लोगो को ऐसे लाभ की आशा से वञ्चित किया है क्योकि तुम लोग विवाहिता हो" । (१५)

विग्रह—रूप, शरीर; प्रभञ्जनपथ—गवाक्ष, झरोखा; प्रभञ्जन—विशेष रूप से भग्न; हृद-संपुटक—हृदयरूपी संपुटक, डिब्बा । (१५)

बिबुधाळय जगती स्थिति नारी सुरी-भ्रान्ति
सुमना मनमोहन छबि याहार ।
बिळुँ बाहारिला परि नाग-नागरी चातुरी
मणि-भूषणी मध्यरु येते बाहार ।
बेभारे त मानवी सर्वे ।
विशुद्ध त्रिपुर लीळा तहिँ सम्भवे । १६ ।

सरलार्थ—मेरु सदृश ऊँचे प्रासादो पर खडी नारियाँ स्वर्गपुरस्थिता देवांगनाओ की भ्रान्ति उपजा रही है । देवागनाओ की छबियाँ जैसे देवताओ के मन मुग्ध करती है उसी प्रकार प्रासादो पर स्थित नारियों की छवियाँ पण्डितो के मन मुग्ध कर रही है । (इससे मिथिलापुर पर स्वर्ग-लोक का आरोप हो गया ।) पुरो से निकलती हुई मणिभूषित स्त्रियाँ नागकन्याओ की भाँति (क्योकि नागकन्याएँ बिलो से निकलती है और उनके सिरो पर मणियाँ होती है) प्रतीत हुई । (इससे मिथिलापुर

पर पाताल का आरोप हुआ।) परन्तु वास्तव मे सभी मानवियाँ (मर्त्य की नारियाँ) है। (इससे मिथिलापुर का मर्त्यलोक होना सूचित हुआ।) इस प्रकार उस मिथिलापुर मे स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल—इन तीन लोकों की लीला सम्भव हुई। (१६)

विबुधाळय—मेरुपर्वत, स्वर्गपुर; जगती—प्रासाद; सुरी—देवांगनाएँ; सुमना—देवता, पण्डित; बेभारे—वास्तव मे; तहिँ—वहाँ (मिथिला मे); (श्लेष तथा उपमा अलंकार) (१६)

बामा काळे भानुवामा प्रसव सूनु सुषमा
लक्षित हुअन्ता आन आनन प्रभा।
बरन वसन धरे नीळ पीत परस्परे
स्मर मधु आलिगन बिहिला शोभा।
बिह्वळित दम्भ अनाइ।
वास कला चित्त राम लक्ष्मणे ग्राइ। १७।

सरलार्थ--सूर्यपत्नी सज्ञा ने घोड़ी के रूप मे जिन दो पुत्रों को (अश्विनकुमार द्वय को) उत्पन्न किया था, उन्ही दोनो अश्विनीकुमारो की शोभा राम-लक्ष्मण की शोभा के साथ तुलनीय हो सकती, यदि उनके मुख घोड़ो के समान न होकर दूसरे प्रकार के होते। ये दोनो (राम और लक्ष्मण) क्रमशः पीला तथा नीला वस्त्र पहने हुए है, इसलिए कन्दर्प तथा वसन्त के आलिगन से जो शोभा होती है वही शोभा इन दोनों ने धारण की है। उस शोभा का निरीक्षण करने से धैर्य विचलित हो गया और चित्त जाकर राम-लक्ष्मण मे बस गया। (१७)

वामाकाळे—घोटकी का रूप धारण करते समय; भानुवामा—सूर्यपत्नी, संज्ञा (और उनकी तुल्याकृति-विशिष्टा रमणी छाया); सूनु—पुत्र; सुषमा—शोभा; आन—दूसरा; आनन—मुख; स्मर—कन्दर्प, मधु—वसन्त। (१७)

बाड़े ग्ने आउजि रहि चित्र प्रतिमा कि सेहि
निरवलम्बिनी कि इन्धन पितुळा।
बन्धकी स्वभाव लुटि पतिव्रता कले हटि
स्तम्भटि महत सृष्टि तांक रखिला।
बोलन्ति कि काहा शुणन्ति।
विज्ञात नोहे मादकी चेता आकृति। १८।

सरलार्थ--रामचन्द्र के दर्शन से काम-विकार उत्पन्न हो जाने पर भीत पर पीठ लगाई हुई स्त्रियाँ चित्र-पुतलियो तथा बिना किसी अवलम्बन के खड़ी स्त्रियाँ लकड़ी से बनी गुड़ियों की तरह दीख पड़ी। पतिव्रता स्त्रियों

ने विटपी स्त्रियो के स्वभाव को छीन कर ग्रहण कर लिया, अर्थात् लज्जाहीना असती स्त्रियो की भाँति नाना हाव-भाव दिखाये। परन्तु जड़ता ने उनकी लज्जा बचाई। जड़वत् खडी होने के कारण वे कुछ नही कर सकी। (अन्यथा वे दौड़कर रामलक्ष्मण को गले लगा लेती।) शराबियों की भाँति पतिव्रता नारियाँ काम-विकार के कारण विह्वल हो उठी और वे क्या बोल रही है या क्या कर रही है, यह कुछ भी न जान सकी। (१८)

वन्धकी—असती, विटपी; मादकी—मद्यप, शराबी। (१८)

वैदेही विमळदेही कमळ केशरे नाहिँ
सही सहितरे थिले मण्डि अट्टाळी।
बिहि लोकने प्रशंसा कळागे कले लाळसा
गउरे गउरवता नेत्र न ढाळि।
बर देवरे[1] ये मनासे।
वरदेवर[2] हेवाकु मानसे घोषे। १९।

सरलार्थ—कमल के केशरो से अधिक सुन्दरी निर्मल-शरीरवाली विदेह-नन्दिनी सीता अपनी सखियो के सहित प्रासाद को मण्डित किए बैठी हुई थी। (अर्थात् उनके बैठने से प्रासाद सुन्दर दिखाई दे रहा था।) उन्होने राम तथा लक्ष्मण को देखकर उनकी प्रशसा की। श्याम शरीर वाले रामचन्द्र के प्रति उन्होने अभिलाषा की और गोरे अग वाले लक्ष्मण में गौरव का अनुभव करके उनके प्रति कटाक्षपात नही किया। (सीता स्वय गौरवर्णा होने की वजह से गौरवर्णवाले लक्ष्मण के प्रति आकृष्ट न होकर श्यामल वर्ण वाले रामचन्द्र के प्रति आकृष्ट हुई। क्योकि भिन्न-भिन्न वर्णो के समन्वय से शोभा की वृद्धि होती है।) राम तथा लक्ष्मण को क्रमश वर और देवर के रूप मे पाने के लिए वे महादेवजी की मनुहार (खुशामद) करने लगी। (१९)

कळागे—काले अंगवाले श्रीरामचन्द्रजी की; लालसा—अभिलाषा; वरदेवरे[1]—श्रेष्ठ देव (महादेव) को; मनासे—मनाती हैं, वरदेवर[2]—स्वामी तथा देवर (यमक); मानसे—मनमे; घोषे—रटती हैं। (१९)

बामलोचन[1] स्फुरिता वाममोचन[2] विधाता
पाञ्चु पुलक पुलक कपोळे दिशि।
बृद्धबय: सगीवार भागिव ए धनुवर
मनरे एमन्त कर ता जाणि भापि।
व्यकत एमन्त वचन।
विश्वास नि.श्वास हास नासा आनन। २०।

सरलार्थ—(ऐसा विचार करते समय) सीताजी की बायी आँख फड़कने लगी। तो उन्होने सोचा कि विधाता ने मेरी प्रतिकूलता को दूर किया। (अर्थात् सारी बाधाओं को हटा दिया।) उस समय उनके गण्डस्थलो (कपोलो) पर पुलक (रोमाञ्च) प्रकट हुआ। वयोज्येष्ठा (बड़ी आयुवाली) सखियो ने उनके नयनों तथा गण्डस्थलो के विकार को देखकर कहा, "हे सीते! यह पुरुष निश्चय ही धनुश्रेष्ठ शिवधनुष को तोड़ेगा। यह ठीक ही जानो।" सखियो द्वारा यह कथा प्रकाशित हो जाने से सीता की नासिका से नि.श्वास और मुख से हास्य (अत्यधिक आनन्द के कारण) प्रकाशित हुआ। यह शुभसूचक है, इसलिए सीता ने सखियो की बात पर विश्वास किया। (२०)

वामलोचन[१]—बायीं आँखे; वाममोचन[२]—बाधाओं का दूरीकरण; (यमक); बृद्धवयः सङ्गीवार—बड़ी सखियों का समूह। (२०)

विप्रळाप थाइ भाषे मनमाया ग्रे रभसे
ए योग तोर कर्मरे अछि घेन रे।
व्यलीक ए कि जनक नारीकेळ सदृशक
धनुस्वयम्वर कृत तोषदानरे।
विदग्धाता चित्ते घेनिले।
बयसीगण प्रमाण प्रमाण बोले। २१।

सरलार्थ—सीताजी की ऐसी उत्कण्ठा समझकर मनमाया नाम की सखी व्यग्रता से विरोधोक्ति बोली, "री सखि! इन पुरुष को विवाह करने का योग तुम्हारे कर्म मे है, यह मिथ्या नही। अर्थात् सम्पूर्ण सत्य है। तुम्हारे पिताजी जनक ऋषि ने तुम्हारे सन्तोष-विधानार्थ तुम्हें उपयुक्त वरपात्र प्रदान करने के लिए यह धनु-स्वयम्बर रचा है। इससे उनका हृदय नारियल के समान (बाहर कठिन, भीतर कोमल) प्रतीत हो रहा है।" चतुर सीता ने यह अपने मनमे ग्रहण किया और सखियाँ यह सुनकर 'सत्य-सत्य' बोलने लगी। (२१)

विप्रळाप—विरोधोक्ति; रभसे—व्यग्रता से; व्यलीक—असत्य; विदग्धा—चतुरी सीता; ता—उसकी; घेनिले—ग्रहण किया; वयसीगण—सखियाँ; प्रमाण—सत्य। (२१)

बृकोदर वासवर दिगदन्ती मनोहर
बिहरि मखशाळारे प्रवेशवेळे।
बंशिक-राजा मानस मध्यरु धैर्य सारस
अस्परशे दरशने उत्पाटि नेले।
विच्छिलकर्माक आलोके।
बिदेहराज कौशिके पुच्छिले ए के?। २२।

सरलार्थ—यम तथा इन्द्र के वासस्थलो—दक्षिण तथा पूर्व—दो दिशाओं के हाथी अञ्जन व ऐरावत के सदृश मनोहर राम-लक्ष्मण ने यज्ञशाला में प्रवेश करके कुलीन राजाओ के मानस-सरोवरो से धैर्य-पद्म को विना स्पर्श के, केवल दर्शन मात्र से उखाड़ डाला। (अञ्जन तथा ऐरावत द्वारा मानसरोवर मे खिले कमलो की नाले उखाड़ी जाती है। उसी तरह राम-लक्ष्मण के केवल दर्शन मात्र से कुलीन राजाओ का धैर्य-लोप हो गया।) अद्भुतकर्मा रामलक्ष्मण को देखकर विदेहराज जनकजी ने विश्वामित्र से पूछा, "ये कौन है ?" (२२)

वृकोदर—यम; वासवर—इन्द्र के; दिगदन्ती—दिशाओ के हाथी; मखशाळा—यज्ञशाला; वशिक—कुलीन; धैर्य-सारस—धैर्यरूपी पद्म; विचित्रकर्मा—अद्भुतकर्मा; आलोके—दर्शन से। (२२)

बल्गिले मुनि त्वरित दशरथ बेनिसुत
बने ताड़का विनाशि रखि मो याग।
बिन्यस्त करि चरण गौतम नारी तारण
शिव चाप देखिबाकु एबे उद्बेग।
बोइले देखिले देखन्तु।
बाळकुमरे कि हेब एहाङ्क हेतु ? । २३ ।

सरलार्थ—(जनक जी का प्रश्न सुनकर) विश्वामित्र ने कहा, "राजा दशरथ के इन दो पुत्रो ने वन में ताडका राक्षसी का वध करके मेरे यज्ञ की रक्षा की है। फिर काम्यक वन मे अपने चरणो का विन्यास करके गौतम-पत्नी अहल्या को पाषाण-रूप से उद्धार किया है और अब शिवधनु देखने के लिए उद्विग्न होकर आये हुए है।" विश्वामित्र की वाते सुनकर जनकजी बोले, "देखेंगे तो देखने दो, परन्तु ये बालक कुमार मात्र ही है। इनसे क्या हो सकेगा?" (अर्थात् ये धनुष को कैसे तोड सकेंगे?) (२३)

वल्गिले—बोले। (२३)

बाळि वळिष्ठरे सार बळ कोटिए सिहर
भाञ्जिबा थाउ भाजिला शुणि छळित।
बिष्किरे गण्डभेरण्डे गजकु घेनिण उड़े
डाळे बसे, भारतीरे भग्न विहित।
बोले पर्शुराम पूजिले।
व्यभिचार क्षत्रिधर्म विप्र बोइले। २४।

सरलार्थ—आगे जनक जी बोले, "करोड़ सिंहों का बलवाला, बलिष्ठों मे श्रेष्ठ वालि उस धनुष को देखकर हार गया, उसे तोड़ने की बात तो दूर रही। और ये दोनों सुकुमार वालक इतने बड़े धनुष का क्या कर सकेंगे ?" (जनक की बातें सुनकर) विश्वामित्र छल से बोले "पक्षियों में श्रेष्ठ गण्डभैरव पक्षी अपनी चोंच से हाथी को पकड कर उड़ता है, फिर डाल पर बैठता है। लेकिन डाल नही टूटती। परन्तु भरत पक्षी के डाल पर बैठने से वह टूट जाती है।" (अर्थात् दैवयोग से असम्भव सम्भव हो जाता है। बालि भले ही हार गया हो, परन्तु ये धनुष को अवश्य ही तोड़ सकेंगे।) जनक जी बोले, "क्षत्रिय-वीर परशुराम ने उठाने में असमर्थ होकर जिस धनुष की पूजा की, ये दोनो वालक उसे कैसे तोड सकेंगे ?" विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "वास्तव में परशुराम ब्राह्मण है। स्वधर्म का लंघन करके वे क्षत्रिय वने है। इसलिए इस धनुष को न तोड़कर उन्होने ब्राह्मणोचित गुण से उसकी पूजा की।" (२४)

विष्किरे—पक्षियों में; गण्डभेरण्ड—गण्डभैरव नामक ओड़िआ कहानी में वर्णित एक वृहत् काल्पनिक पक्षी; इसके दो चोंचें और चार पैर (मतान्तर में दो) होते हैं। हर, पैर और चोच से यह एक-एक हाथी जमीन से उठाकर आकाश पर लिये उड़ सकता है। भारती—भरत पक्षी, भरद्वाज पक्षी; व्यभिचार—स्वधर्मलंघन, अतिचार; विप्र—ब्राह्मण। (२४)

बाणासुर कार्त्तवीर्य्य सहस्रभुजरे हेज
टेकि न पारिले तहुँ कले उत्तर।
बृश्चिक कर्कट परि सिना ताहाङ्क माधुरी
नाग ब्यतके के आन धरणीधर।
विंशकर कहिबा नोहु।
बाळि अर्ज्जुनरे धरायाइछि य़ेहु। २५।

सरलार्थ—इसके वाद जनक जी ने कहा, "वलिपुत्र वाणासुर तथा सहस्रार्जुन अपने हजार हाथो से धनुष को उठा नही सके। यह जरा मन में सोचो तो सही।" विश्वामित्र ने कहा, "बिच्छुओ व केकडों की तरह उनके हाथो की सख्या भले ही वहुत बडी हो, परन्तु उनमे बल कितना है ? नाग के बिना और कोई क्या धरणी का धारण कर सकता है ?" जनक जी ने फिर कहा, "रावण भी धनुष को देखकर हार गया है।" विश्वामित्र ने कहा, "उसकी बात मत वोलिए। वालि तथा सहस्रार्जुन से पराजित होने के बाद उसके बल का पता लग चुका है।" (२५)

बृश्चिक—बिच्छू; कर्कट—केकड़ा, ब्यत्रके—बिना; विंशकर—रावण; अर्जुन—सहस्रार्जुन। (२५)

विघ्नराज महासेन लवण आदि राजन
प्रभा देखाइ मळिन भाव भाषिले ।
वञ्चक पराये तेबे मुखरे अनळे जवे
देखाई नाश भीरुक हेले दूषिले ।
बिबोध नुह हे जनक !
विभीते देखिवे ए अणाअ पिनाक । २६ ।

सरलार्थ—जनक जी ने फिर कहा, "गणेश, कार्त्तिकेय, लवण दैत्य आदि राजा लोग पहले तेज दिखाकर वाद मे मलिन हो पड़े है ।" (अर्थात् पहले गर्व से आये और धनुप देखकर भय से भाग गये ।) इसके उत्तर मे विश्वामित्र ने कहा, "स्यार पहले अपने मुख मे अनल दिखाता है और बाद मे भय पाने से उस अनल को बुझा देता है । (उसी प्रकार इन वीरों ने पहले तेज दिखाकर वाद मे इस धनुष के दर्शन से कायरता से अपने-अपने तेज को हराया है ।) हे जनक ! तुम अवोध न वनो । हरधनु यहाँ पर मँगाओ, ये (राम-लक्ष्मण) निर्भयता से उसे देखेगे ।" (२६)

विघ्नराज—गणेश; महासेन—कार्त्तिकेय; वञ्चक—स्यार; विभीते—निडर होकर; अणाअ—लिवा लाओ; पिनाक—धनुष । (२६)

वितपन कले नेइ तपनवंशिक तहिँ
सभारे लोभा अनाइ नृप सकळ ।
विदर्भ, कर्णाट, भोट, सउराष्ट्र मरहट्ट,
कुन्तळ, केरळ, चोळ, सिन्धु, उत्कळ ।
वाह्लिक, तुरुष्क, निषेध ।
वङ्ग, अङ्ग, कळिङ्ग, चोड़ङ्ग, मगध । २७ ।

वेदि, चेदि, मघ, मत्स्य, द्राविड़, गउड, म्लेच्छ,
आरब, माळव, कच्छ, कुरु, पञ्चाळ ।
बनाउज, कनाउज, काश्मीर, कामेरी, कुञ्ज-
गळ, डाहाळ, लोमश, पुण्ड्र, कोशळ ।
वेलाउळ आदि ए ठिक ।
विशेषि कहिबा केते कहे जनक । २८ ।

सरलार्थ—विश्वामित्र की वाते सुनकर जनकजी ने सूर्यवशीय राम-लक्ष्मण को लेकर सभा मे प्रवेश किया । राम-लक्ष्मण की शोभा को देखकर राजसभा मे वैठे नृपति लोग विमोहित हुए और बार-बार उन्हे

देखने को ललचाने लगे। अनन्तर जनक ने कहा, "यहाँ विदर्भ, कर्णाट, भोट, सौराष्ट्र, मरहट्टा, कुन्तल, केरल, चोल, सिन्धु, उत्कल, बाह्लिक, तुरुष्क, निषध, वंग, कलिग, चोड़ंग, मगध, बेदि, चेदि, मघ, मत्स्य, द्रविड़, गौड़, म्लेच्छ, अरव, मालव, कच्छ, कुरु, पाञ्चाल, बनाउज, कन्नौज, काश्मीर, कामेरी, कुरुजांगल, डाहाल, लोमश, पुण्ड्रक, कोशल, बेलाउल आदि सभी देशों के राजा इकट्ठे हुए है। उनके बारे में हम विशेष करके कितना फिर बतावे ? (२७,२८)

वितपन—दीप्त, शोभायुक्त, (यहाँ उपस्थित); तपन वंशिक—सूर्यवशीय राम-लक्ष्मण; लोभा—लोभित, विमोहित; अनाइ—देखकर। (२७-२८)

बिनिन्द्य भूपतिमाने बहुदिनु अभिमाने
बस कि कारणे धनु आण न कह।
ब्याज दम्भ परा प्रते एबे दशरथ - सुते
आसिछन्ति देखिबाकु वळाइ स्नेह।
बोइले आणिबा से चाप।
बदन्ते अणाअ कहे नृपकळाप। २९।

सरलार्थ—जनकजी ने आगे कहा, "हे ख्यातनामा नरपतियो ! तुम लोग बहुत दिनो से धनुष को तोड़ने के उद्देश्य से दर्प के साथ बैठे हुए हो, फिर भी किसलिए 'धनुष लाओ' ऐसा नही बोल रहे हो ? इससे तुम लोगो का दम्भ तथा दर्प केवल वहाने के समान प्रतीत हो रहा है। (अर्थात् तुम लोगो में वास्तव मे दम्भ तथा अभिमान है, ऐसा मालूम नही पड़ता।) अब राजा दशरथ के दो लड़के आग्रह-पूर्वक धनुष देखने को आये हुए है। तुम लोग कहोगे तो शिवधनु हम मँगायेंगे।" जनकजी की बात सुनकर राजाओ ने कहा, "धनुष मँगाओ।" (२९)

विनिन्द्य—अनिन्द्य, प्रशंस्य, ख्यातनामा; व्याज—वहाना; नृपकळाप—राजाओ का समूह। (२९)

बळवन्त एकुँ एक आज्ञाकु मल्ल अनेक
यन्त्रे ओटारि आणिले मञ्जूष गोटि।
ब्रह्माण्डय़ाक धइले चळन्ता नाहिँ ये तिळे
चक्र हुँकार नभे प्रकटि।
री मइथिळर।
। बिळम्ब न कर।

सरलार्थ--राजा जनक का आदेश पाकर एक से बढ़कर एक बलिष्ठ पहलवान धनुपाधार मञ्जूषा (पिटारी) को चक्रयुक्त यन्त्र से खींच लाये। अन्यथा समूचे ब्रह्माण्ड के लोगो के पकड़ने से भी वह पिटारी एक तिल भी नही सरकती। उस मजूषा के चक्को की 'कट् कट्' आवाज तथा पहलवानो की हुँकार से गगन का पवन गूँज उठा। इस समय मिथिलाधिपति जनक ने वचन-चातुरी प्रकाश करते हुए कहा, "धनुष आया। अब विलम्ब न करके शीघ्र आओ।" (३०)

मल्ल—पहलवान; ओटारि आणिले—खीच लाये; मञ्जूषा—पिटारी, सन्दूक; वाणासन—धनुष। (३०)

बळवाने अधिक के जाणु कपटी कार्मुके
समूळे होइले सिना सुवर्ण्ण सर्वे।
बइदेहिक ये आम्भे भूपण कर्म आरम्भे
कन्या-रत्न सङ्गे योग करिबुं तेवे।
वच-श्रोते गले समस्त।
व्याघ्र-पतन यन्ताकु चाहिँला मत। ३१।

सरलार्थ--जनकजी आगे बोले, "तुम लोग सब सुवर्ण (सु-वर्ण), अर्थात् उत्तम जाति के (क्षत्रिय) हो। इसलिए सुवर्ण (सोने) की तरह उत्तम-कान्ति-युक्त तुम लोगो के बल-तेज का अलकार-कर्म आरम्भ करने मे हम विदेहराज वणिक (सोनार) है। धनुष-रूपी कसौटी पत्थर पर तुम लोगो के बल-तेज को कसकर हम तुम लोगो की विशुद्धता की परीक्षा करेगे। जिसका बल-तेज सबसे अधिक विशुद्ध सिद्ध होगा, उस वीर से हम अपनी कन्या-रत्न का योग करेगे। अर्थात् शिवधनुभंग से जो वीर सबसे अधिक बलवान सिद्ध होगा, उसी के साथ सीता-रूपी रत्न का योग करके उसकी मर्यादा को बढाएँगे।" जनक की ये बाते सुनकर सब राजा धनुष के समीप गये और पिटारी को यो देखने लगे मानो बाघ-पकड़नेवाले पिंजडेको निहार रहे हो। (३१)

बल-वाने—बलरूपी तेज मे; के—कौन; कपटी-कार्मुके—धनुपरूपी कसौटी पत्थर; सुवर्ण—उत्तम जाति, सोना (श्लेष); बइदेहिक—वणिक, (सोनार), विदेह का राजा; यन्ता—पिंजड़ा (३१)

विभावसु[1] विभावसु[2] एकस्थाने ए कि वर्शुँ
भावि नेत्र बुजि मुख पछकु कले।
बिळे[1] निद्रा हरि[1] वृष[1] बिळे[2] निद्रा हरि[2] वृष[2]
देखि यथा पळायित तथा होइले।
बासे याइ केतकी पाशे।
बसे पलाशे भृंगाळि कि स्वभावुँ से। ३२।

सरलार्थ--(राम-लक्ष्मण को देखकर) सूर्य और अग्नि किस कारण से एकत्र अवस्थित हुए है ? ऐसा मन मे विचार करके राजाओं ने आँखे मूँदकर पीछे मुँह फेर लिए। जैसे गुफा मे सोये हुए सिंह को देखकर सॉड और बिल में सोये हुए सॉप को देखकर चूहे भाग जाते है, उसी प्रकार राजा लोग धनुष को देखकर भाग गये। भौरे सुगन्ध के हेतु केवड़े के पास जाते है। परन्तु इस भय से कि उसके कॉटो से कही उनके पंख न टूट जायँ, वे वहाँ से भागकर पलाशो पर जा बैठते है। (केवड़े में सुगन्ध होती है और साथ ही कांटे भी। भौरे कॉटो से डर कर सुगन्ध का उपभोग नही कर पाते। वे जाकर कण्टक-शून्य तथा सुगन्धहीन पलाशो पर बैठते है।) कायर राजाओं की वही हालत हुई। (३२)

विभावसु[१]—सूर्य; विभावसु[२]—अग्नि (यमक); कि वशुं—किस हेतु; भावि—सोचकर, विचार करके; बुजि—मूँदकर; बिले[१]—गुफा में; हरि[१]—सिंह; वृष[१]—सांड; बिले[२]—मॉद में, विवर मे (यमक); हरि[२]—सॉप (यमक); वृष[२]—चूहा (यमक); बासे—सुगन्ध के हेतु; बसे—बैठता है; भृंगाळि—भ्रमरों का समूह; से—वह। (३२)

बैराग्य आकुळ कूळे भासिले भूमिपकुळे
भाषिले जनक गम श्रीराम बेगे।
बताइ सुमित्ना-वत्स नाहिँ सुमित्नारि स्वच्छ
नम्रे धइले बाछिबे चापे ओळगे।
विश्वामित्न नेत्नरु जाणि।
बाहारिले शस्त्न देइ लक्ष्मण-पाणि। ३३।

सरलार्थ--विरक्ति-जनित आकुलता-रूपी तालाव मे राजा लोग उतराने लगे। (सीता को प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा होने पर भी धनुष के हेतु अपनी अभिलाषा की सिद्धि में विफल हो रहे है। इसलिए उनके मन मे विरक्ति आ गयी है। अनन्तर) जनक जी ने कहा, "हे श्रीराम ! तुम शीघ्र जाओ। धनुष उठाने के लिए प्रयत्न करो।" यह सुनकर लक्ष्मण ने राम से कहा, "यहाँ हमलोगो का कोई अच्छा मित्न नहीं। सब स्पष्ट शत्नु दीखते है। आप सिर नवा कर धनुष को पकडेगे तो, सब कहेगे--आप धनुष को प्रणाम कर रहे है। (अतएव सिर नवाकर धनुष को मत पकड़िएगा।)" इसी समय विश्वामित्न की ऑखो के संकेत से, लक्ष्मण के हाथ मे अपना धनुष देकर, रामचन्द्रजी आगे बढ़े। (३३)

वैराग्य—विरक्ति; भूमिपकुळे—राजासमूह, सुमित्रावत्स—लक्ष्मण; सुमित्रारि—(सुमित्र+अरि), सुमित्र—अच्छा मित्र; अरि—शत्रु; स्वच्छ—स्पष्ट; चापे—धनुष को, ओळगे—प्रणाम कर रहा है; पाणि—हाथ मे। (३३)

विक्रम गतिकि बिहि शरधा चापकु चाहिँ
केशरी गिरि मध्यरु सेहि स्वभावे ।
विराट मूर्त्ति ये धृत मन्जु मन्जूषरु सत
धनु आकर्षि आणिले पन्नग भावे ।
बकपुष्प-माळा माळिक ।
विक्रयकु चाङ्गुड़ारु टेकिला दृक । ३४ ।

सरलार्थ—जैसे सिह पर्वत की गुफा से साहस-पूर्वक गमन करता है, वैसे रामचन्द्रजी राजसभा के मध्य मे विक्रम गति करके धनुष के समीप आये और उसे श्रद्धा के साथ देखने लगे। जिन रामचन्द्रजी ने विराट मूर्ति (क्षत्रिय मूर्ति) धारण की है, वे वि-राट मूर्त्ति (गरुड़मूर्ति) हुए। जैसे गरुड विल से साँप को खीच लाता है, वैसे रामचन्द्र रूपी गरुड़ सुन्दर पिटारी (मजूषा) रूपी विल से धनुप-खीच लाये। फिर प्रभु ने धनुष को ऐसी आसानी से उठाया मानो माली ने डलिया से वेचनेवाली शिवमल्ली पुष्पों की माला को उठाकर पकड़ा हो। (३४)

विक्रमगति—साहसपूर्वक गमन; केशरी—सिह; विराट-मूर्ति—क्षत्रियमूर्ति, गरुड़मूर्त्ति (वि-पक्षी, राट—राजा; पक्षियो का राजा-गरुड़) (श्लेष); मञ्जु—सुन्दर, मञ्जूप—पिटारी; पन्नग—साँप; वकपुष्पमाला—शिवमल्ली या गूमा फूलों की माला। (३४)

वक्त्रे[1] गळि राजन्यङ्क बक्त्रे[2] जनन जनक
एहि गिरि शरभेद हृदय करे।
विजयी ए त्रिपुरर[1] विजयी ए त्रिपुरर[2]
धइला धइला धनु अनायासरे।
विद्रावकु लज्जारे भाळि।
विपलके अनाइले न पारि चळि। ३५।

सरलार्थ—"त्रिपुरासुर-विजयी शिवजी के धनुष को इन्होने आसानी से पकड़ा इसलिए ये त्रिपुर (स्वर्ग, मर्त्त्य और पाताल) के विजयी है।" ऐसा वचन जनकजी के मुख से निकला। यह वचन-वाण राजाओ के कवचो को वेधकर उनके हृदयो मे चुभ गया। लज्जा के मारे उन लोगों ने भागने को सोचा। परन्तु लज्जा तथा अपमान से इतने जड़ीभूत हो गये थे कि वहाँ से भाग नही सके और पलक-विहीन नेत्रो से राम की ओर निहारने लगे। (३५)

वक्त्रे[1]—कवच में; वक्त्रे[2]—मुख मे (यमक); जनन—जात; विजयी ए त्रिपुरर[1]—तीन पुरो (स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल) के विजयी ये रामचन्द्र है; विजयी ए त्रिपुरर[2]—

त्रिपुर राक्षस के विजयी महादेव (यमक); विद्राव—पलायन, भागना; विपलके—पलक-विहीन नेत्रों से; अनाइले—निहारने लगे। (३५)

बराका[१]-बराङ्गी सीता बराक[२] करइ चिन्ता
जीवन ग्नाउ नोहिले हेले ए वर।
विमिळित नेत्र फिटे मुद्रित कञ्ज कि फुटे
प्रमोद - दायक परभृतङ्क स्वर।
व्यलीकता के बोलुथिला।
विधुर से दि-(दी-)नबन्धु दर्शने हेला। ३६।

सरलार्थ--बेचारी उत्कृष्टवर्णा सीता ने महादेवजी का ध्यान करते हुए कहा, "ये रामचन्द्र मेरे वर(पति)न होवे तो मेरा जीवन जावे, (पति) होवे तो मेरा जीव न जावे।" इसी समय, 'रामचन्द्र जी ने धनुष पकड़ा'—श्रेष्ठ भृत्यो का यह स्वर सीता के लिए आनन्ददायक हुआ। उनकी चिन्ता-रात्रि वीत गयी और नेत्र-कमल विकसित हुआ। (रात के बीतने पर परभृतों [कोयलो] का स्वर प्रभात की सूचना देता है। यह स्वर सुनकर लोग अपनी-अपनी आँखे खोलकर जगते है। उस समय रातभर का मुद्रित कमल विकसित होता है।) सव लोग आपस मे बातचीत करने लगे, "कौन वोलता था कि यह धनुर्भंग-प्रण सीता के लिए दुखदायक हुआ है? रामचन्द्ररूपी सूर्य के दर्शन से सीता का हर्ष रूपी कमल विकसित हुआ। (अन्यार्थ पद्म का मुद्रित दोष कैसे दूर हुआ?) पद्म को वोध हुआ था 'राम चन्द्र है'। इसलिए वह मूँद गया था। अब दीनबन्धु (गरीबो के वन्धु) रामचन्द्र रूपी दिनबन्धु (दिवस के वन्धु, अर्थात् सूर्य) के दर्शन हुए। अर्थात् कमल को जब यह ज्ञात हुआ कि राम सूर्य है, तो वह विकसित हो उठा। (३६)

वराका[१]—वेचारी, दीना; वरांगी—उत्कृष्टवर्णा; वराक[२]—शिव(यमक); कंज—पद्म; परभृत—श्रेष्ठ नौकर, कोयल; (श्लेष); व्यळीकता—अप्रीतिकर कार्य, दुःख का कारण; विधुर—चन्द्र का (रामचन्द्र का); दिनवन्धु—दिवस के बन्धु अर्थात् सूर्य, दीनबन्धु—गरीवो के वन्धु। (३६)

वृन्दारक[१] - बृन्दारके[२] से ग्ने पुच्छिले जनके
देवा शिञ्जिनी उत्तम बोलि से कहि।
वीर्य्य दम्भ बेनि योगे अष्टनागे[१] अष्टनागे[२]
धर धरणीकि वोले लक्ष्मण तहिँ।
विकळिते पृथिवी भाळे।
वसु हुळ पादअन्ते पड़िबि तळे। ३७।

सरलार्थ—धनुप को पिटारी से लाने के बाद देवश्रेष्ठ रामचन्द्र ने राजा जनक से पूछा, "क्या धनुष मे प्रत्यचा चढाऊँ ?" जनक ने कहा, "अच्छी वात है, (प्रत्यचा चढाओ।)" उस समय लक्ष्मण ने कहा, "हे अष्टदिग्गजो! हे अष्टकुल नागो! बल तथा धीरज से धरणी को धारण करो।" पृथिवी ने विकल होकर सोचा, "रामचन्द्र के पैर के प्रान्त भाग में मुझ पर धनुप की नोक रखते ही मै पाताल मे धँस जाऊँगी।" (३७)

वृन्दारक[1]—देवताओ मे; वृन्दारके[2]—श्रेष्ठ (अर्थात् देवताओ में श्रेष्ठ रामचन्द्र) (यमक); शिञ्जिनी—प्रत्यंचा; अष्टनाग[1]—आठ दिग्गज, आठ दिशाओ के हाथी; (ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदेञ्जनः। पुषदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीक्ष्च दिग्गजाः ॥ इत्यमरः।) अष्टनाग[2]—अष्टकुलनाग; (अनन्तो, वासुकि पद्मो महापद्मोऽपि तक्षकः। कर्कोटकः कुलिकः शंखः इत्यष्टौ नागनायकाः ॥ इति त्रिकाण्डशेष।) (यमक); हुळ—धनुष की नोक। (३७)

बृद्धांगुळि परे पदे राम रखिले समदे
जाणिले ता अत्यन्त अधैर्य्य हेबार।
बासुकि कि बहे कूर्म वहिला से मनोरम
गुणवन्त गुण दत्त कले सत्वर।
वैनाशिक नाड़ी मो हेला।
बामे रहि अजगव विचार कला। ३८।

सरलार्थ—यह जानकर कि पृथिवी वडी अधीर हो रही है, रामचन्द्र जी ने अपने पैर के अँगूठे पर गर्व के सहित धनुष की नोक को रक्खा। कूर्म के सर्पराज वासुकि को वहन करने की तरह वह दृश्य मनोहर दिखाई दिया। गुणवन्त राम ने शीघ्र धनुप पर प्रत्यचा चढाई। उस समय रामचन्द्र जी के वाये हाथ मे रहकर शिवधनु ने विचार किया, "मेरी विनाश की घडी उपस्थित हुई है, (इसी क्षण मेरा विनाश होगा। अजगव कृत्तिका नक्षत्र और दाशरथि पूर्व-भाद्रपद हुए, इन दोनो के मेल से विनाश करने वाली नाडी उपस्थित होती है।) (३८)

समदे—गर्व के सहित; वैनाशिक नाड़ी—विनाश की दुर्दशा; अजगव—शिवधनु। (३८)

विगूढ़वशे ओटारे प्रचण्ड मल्ल हस्तरे
एरण्ड दण्ड पडिला परि भाजिला।
ब्रह्माण्ड-भाण्ड पूरित प्रळयकाळे एकत्व
चारिमेघ गर्जिला शबद गञ्जिला।
विबुधे मूर्च्छित चेतारे।
वेळे प्राण अमृत रखिला त्रिचारे। ३९।

सरलार्थ—रामचन्द्र के उस धनुष की प्रत्यंचा को बलपूर्वक खींचने से वह ऐसे टूट गया जैसे किसी मल्ल के हाथ में पडकर एरण्ड वृक्ष का काण्ड टूट जाता है। धनुष के भग का प्रचड शब्द ब्रह्माण्ड मे पूर्ण हो गया और जिस प्रकार प्रलय के समय चार मेघ इकट्ठे होकर गर्जन करते है, उससे भी वह शब्द बढ़ गया। स्वर्ग मे देवता लोग मूर्च्छित हो गये। फिर सचेत होकर उन्होने सोचा, "इस समय अमृत ने ही हमलोगो के प्राण बचाये। (अमृत भोजन के कारण ही हम लोग जीवित रह गये। नही तो इस शब्द के कारण अभी जान से हाथ धो बैठते।)" (३९)

विगूढवशे—बलपूर्वक; एरण्डदण्ड—रेड वृक्ष का काण्ड; चार मेघ—आवर्त्तक, संवर्तक, द्रोण और पुष्कर; ताकु गञ्जिला—उससे (चार मेघों के गर्जन से) बढ़ गया; विबुधे—देवता लोग; वेळे—इस समय। (३९)

वसुधाभृते[1] टळिले वसुधाभृते[2] चळिले
सेहि तरळित धातु धारा हेलाटि।
बळि-वर-वळी वर आन कि होइब मोर
भावे शतकोटि[1] शतकोटि[2] त वृष्टि।
विचित्र कि नरे-किन्नरे।
विचेतन हेले यहिँ नारकि-नरे। ४०।

सरलार्थ—धनुष-भंग के शब्द को सुनकर उपस्थित नृपमण्डली (भय से मूर्च्छित होकर) ढलपड़ी और सब पर्वत काँपने लगे। उन पर्वतो से तरल गैरिक धातु धारा के मिस (बहाने से) बहने लगी। वीरश्रेष्ठ राजा बलि ने वह शब्द सुनकर सोचा, "क्या एक साथ ही सौ करोड़ बज्रों की वृष्टि हुई है ? मेरा चिरंजीवी होने का वर क्या विफल हो जायगा ? (वलिराजा को अपने विनाश की आशंका हुई। इससे शब्द के पाताल मे फैलने की सूचना मिली।) जिस शब्द से नरक मे यन्त्रणा भोगने वाले पापी लोग भी अपनी यन्त्रणा को भूलकर स्तम्भित हो गये, उससे नर-किन्नरो के स्तम्भित होने मे क्या आश्चर्य ? (४०)

वसुधाभृते[1]—नृपति लोग; वसुधाभृते[2]—पर्वत सब (यमक); बळीवर—वीरों या बलवानों में श्रेष्ठ; आन—दूसरा; शतकोटि[1]—सौ करोड़; शतकोटि[2]—बज्र (यमक); विचेतन—स्तब्ध, स्तम्भित; नारकि नरे—नरक में पतित लोग। (४०)

विभ्रष्ट ये ब्रह्मचारी ध्यान तहिँकि विचारि
विभ्रष्ट ये ब्रह्मा चारिमुखुँ वेदहिँ ।
विखण्डन चण्डी[1]-मान ईशरे[1] स्नेही न घेन
विखण्डन चण्डी[2]-मान ईशरे[2] स्नेही ।
बाहारन्ते ब्रह्माण्ड फुटि ।
विरब समस्तङ्कर ज्ञान प्रकटि । ४१ ।

सरलार्थ—उस शब्द से जो ब्रह्मचारियो का ध्यान भग्न हुआ, उस पर हम क्या विचार करे ? ब्रह्मा के चार मुखो से वेद भी विभ्रष्ट हुआ । (ब्रह्मा वेदपाठ नही कर सके ।) कोपिनी स्त्री का मान विशेष रूप से खण्डित होने पर वह अपने नायक के प्रति स्नेह-युक्त हुई । इसमे कौन सी बड़ी बात है ? यहाँ तक कि डर के मारे पार्वती ने मान-परित्याग करके स्नेह से शिव को गले लगाया । वह विशेष शब्द ब्रह्माण्ड को बेधकर निकलते ही अचेत प्राणियो को चेतना-लाभ हुआ । (४१)

चण्डी[1]—कुपिता रमणी; ईश[1]—पति, नायक; चण्डी[2]—पार्वती (यमक); ईश[2]—शिव (यमक); विरव—विशेष शब्द । (४१)

वीरेश्वर करि पूजा कला से मिथिला राजा
बसाइ रघूत्तमङ्कु सिहासनरे ।
विहायसे देवे आसे रामदर्शन लाळसे
शब्द शुणि रावण मिळिला सेठारे ।
वीर से[1] बाहुड़े विरसे[2] ।
बयाळिश पदे छान्द उपेन्द्र भाषे । ४२ ।

सरलार्थ—धनुर्भग करने से रामचन्द्र जी को मिथिला-राजा जनक ने सिहासन पर बैठाया और वीर-श्रेष्ठ के रूप में उनकी पूजा की । उस समय रामचन्द्र जी के दर्शन की अभिलाषा से देवता लोग आकाश-मार्ग मे आये । धनुभग का शब्द सुनकर रावण भी वहाँ आ मिला । परन्तु यह सुनकर कि रामचन्द्र ने धनुष भग किया है वह वीर उदास मन से लौट गया । उपेन्द्र भञ्ज ने बयालिस पदो मे यह छान्द कहा । (४२)

वीरेश्वर—वीरश्रेष्ठ; रघूत्तम—रामचन्द्र; विहायसे—आकाश मार्ग में; वीर से[1]—वह वीर (रावण); विरसे[2]—विषाद से (यमक); (४२)

॥ इति नवम छान्द ॥

दशम छान्द

राग—रसकुल्या

विभूषण[1]-पुष्पे य़ा कान्ति जाण। विभूषण[2] करि कन्याकु आण।
बारणशिरे पद देइ आसु। बरण करि राम मन तोषु से।
बोलि देले कउशिक य़े।
बोळि देला प्राये गोळि चन्दनकु होइले रघुवंशिक य़े। १।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने जनक से कहा, "हे विभु (विभो)! सनफूल की जैसी कान्तिवाली सीता को, जो अभी तक कन्या (अविवाहिता) है, उसे विशेष रूप से मण्डित करके (अथवा स्वभाव-सुन्दरी सीतादेवी का और भूषण-विधान न करके) यहाँ ले आओ। विघ्नो के विनाश के लिए प्रत्येक शुभ कर्म मे पहले गणेशजी की पूजा की जाती है। सीता भी विघ्नराज गणेश के निमित्त पदार्थ (पूजोपहार) अर्पण करके यहाँ आवे (अथवा विघ्नो के मस्तकों पर पदाघात करके यहाँ आवे) और रामचन्द्रजी को वरण करके उनके मन को सन्तोष-प्रदान करें।" विश्वामित्र के इन वचनों ने रामचन्द्रजी के हृदय को शीतल तथा आनन्दित किया, मानो किसी ने उन के शरीर पर तरल चन्दन का लेपन कर दिया हो। अर्थात् विश्वामित्र के वचन सुनकर रामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। (१)

विभु—हे विभो!; षण-पुष्पे[1] या कान्ति—सन फूलों की जैसी कान्तिवाली (सीता); विभूषण[2]—विशेष रूप से मण्डन (अथवा स्वभाव-सुन्दरी होने से विवर्जित-भूषण) (यमक); वारणशिरे—वारण (हाथी) के जैसे शिर वाले अर्थात् विघ्नेश गणेश (वारण अर्थात् विघ्नों के सिरों पर); कउशिक—विश्वामित्र; (१)

विधान होइछि य़ा नाम सीता। वर्ण्णने शोभा अति मधुरता।
बुड़ि नेत्र आज हेब पवित्र। विशेषे कर्षि देइ हृद-क्षेत्र से।
बुणिलाणि स्नेह-बीज ये।
विचारु एमन्त जनक सम्मत शुणिले सखी-समाज ये। २।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने अपने मन में सोचा, उस कन्या का नाम विधानानुसार जो 'सीता' हुआ है, वह वास्तव मे सत्य है। क्योकि उसके शोभा वर्णन के समय सुनने वाले मधुर रसका आस्वादन करते है, मानो

खाँड (या शक्कर) भक्षण कर रहे हों। फिर जो स्वर्गगा मे स्नान करता है, उसका शरीर पवित्र होता है। सीता-रूपणी गगा के लावण्य-रूपी जल में गोता लगा कर मेरे नेत्र आज पवित्र होगे। विशेपतः लांगल की नोक से खेत जोतने की तरह उसने मेरे हृदय-रूपी क्षेत्र को जोतकर उस पर स्नेह के वीज वोये है। इस प्रकार वह 'सीता' नाम-धारण-पूर्वक अपने नाम की सार्थकताएँ प्रतिपादन कर रही है।" रामचन्द्र के इस प्रकार विचार करते समय सखियो ने सुना कि जनकजी ने विश्वामित्र की वात को स्वीकार कर लिया है। (२)

या नाम—जिसका नाम; सीता—सीतादेवी, शक्कर या खाँड, स्वर्गङ्गा, लांगल की नोक या रेखा (श्लेष); बुणिलाणि—वोये हैं; एमन्त—इस प्रकार, ऐसा; शुणिले—सुना। (२)

वेशकारी डाकि पीठे बसाइ। वेश विरचिले चित्त रसाइ।
विम्व देखाइले छामुरे केहि। विम्वाधरी आड़म्वरकु वहि से।
विवन्ध कले कुन्तळ ये।
विचित्र मणि नीळमणि प्रतिभा ऊर्ध्व, प्रकाशित तळ ये। ३।

सरलार्थ—सखी-समूह ने वेशविन्यासनिपुण स्त्रियों को वुला कर सीताजी को आसन पर वैठाया और रामचन्द्रजी का मनोरंजन करने के योग्य वेश की रचना की। वेश-रचना-कारिणियो मे से किसी ने सीता के सम्मुख आईना दिखाया। आईने ने प्रतिविम्व के मिस विम्वाधरी सीताजी के सौन्दर्य को अपने शरीर मे धारण किया। इसके वाद किसी ने जूडा वाँधने के लिए केशो को विमुक्त किया तो उनके पृष्ठदेश पर केश विलम्वित हुए। कवि विस्मित होकर उत्प्रेक्षा कर रहे है, केश रूपी नीलकान्त मणियो की यह प्रभा क्या ऊपर से नीचे की ओर प्रकाशित हो रही है! (नीलकान्तमणि की प्रभा नीचे से ऊपर की ओर उठती है। परन्तु यहाँ उसका वैपरीत्य सूचित होने पर कवि विस्मित हो कर यह उत्प्रेक्षा कर रहा है।) (३)

पीठ—आसन; विम्व—आईना, आरसी; छामुरे—सम्मुख, आगे; केहि—किसी ने; विम्वाधरी—विम्वोष्ठी, विंवाफल के समान होठोवाली; कुन्तळ—केश, वाल; विचित्र मणि—आश्चर्य समझते है। (३)

विलेपि अळ्प तइळ शामळि। वारणदन्त प्रसाधनी चाळि।
विभावसुजा कल्लेळरे भासे। विकशि आसिला कुमुद कि से से।
वान्धिले जूड़ा यतने ये।
वन्दी होइला मर्कत कुवेणीरे वन्दी हेवे मन-मीने ये। ४।

सरलार्थ—वेश-रचना-कारिणियों ने केशो मे थोड़ा-सा तेल लगाकर उनको संवार दिया। इसके बाद उन पर हस्ती-दन्त-निर्मित कंघी चलाते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो यमुना की लहरो में विकासोन्मुख कुमुद उतरा रहा हो। (केश यमुना के गाढ़े कृष्ण वर्ण के जल के समान अतिशय काले तथा उसकी लहरो के समान कुंचित है। जल में कुमुद की तरह केशों पर सफेद तथा सुन्दर कघी चल रही थी।) अनन्तर यत्नपूर्वक उन्होने जूडा बाँधी। जूडा-रूपी मरकत-मणियों की बधनोपयोगी मत्स्यधानी मे दर्शको के मन-रूपी मीन बन्दी होगे। (४)

तइळ—तैल, तेल; शामळि—संवार करके; वारणदन्त—हस्तीदन्त, हाथी का दाँत; प्रसाधनी—कंघी; विभावसुजा—सूर्यसुता, यमुना; कल्लोळरे—तरंगों में, लहरों में; भासे—उतराता है; बन्दी होइला—बन्धनोपयोगी; मरकतकुवेणी—मर्कत से बनी मत्स्यधानी, मछली रखने का झाबा। (उत्प्रेक्षा) (४)

बितुळ मथामणि माणिक्यर। विभाग सीमन्त सिन्दूरगार।
बन्दवस्ते भिड़ि पाट सूत्ररे। विधुन्तुद गळ मित्र हस्तरे से।
विधिवशे किवा पड़ि थ्रे।
बकुळ-गर्भक सुधा उद्‌गारुछि भयरु न देइ छाड़ि ये। ५।

सरलार्थ—अनन्तर उन्होंने सीताजी के केशों का विभाग करते हुए माँग में सिन्दूर की रेखा खीची। कपाल पर अतुलनीय चूड़ामणि (बेंदा) पहना कर जूड़ा की जड़ को पट्ट-सूत्रो से दृढ़ता से बाँध दिया। उन रक्तवर्ण के पट्ट-सूत्रों के बीच काले रग के जूडे को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सूर्य के कवल (ग्रास) में राहु का गला दैववश पड़ गया हो! सूर्य इस भय के हेतु उसे नही छोड़ते कि कही छोड़ देने पर यह राहु मुझे फिर न निगल ले। इस प्रकार राहु का कण्ठ रुद्ध हो जाने से ऐसा प्रतीत होता था मानो वह जूडा-मध्यस्थित वकुल पुष्पो की माला के मिस अमृत उगल रहा है! (राहु काला, केशजूडा काला; सूर्य लाल तथा रेशम की डोरी लाल; पट्ट-डोरी-रूपी सूर्य जूड़ा-रूपी राहु को निगलने से वह जूडारूपी राहु मौलसिरी फूलो-रूपी अमृत उगल रहा है।) (५)

वितुल—अतुल्य; सीमन्त—मस्तक की मध्यरेखा, माँग; बन्दवस्ते—दृढ़ता से; भिड़ि—बान्धकर; विधुन्तुद—राहु; मित्र—सूर्य; वकुलगर्भक—केशमध्यस्थित मौलसिरी फूलों की माला; सुधा-अमृत; उद्‌गारुछि—उगल रहा है (उत्प्रेक्षा)। (५)

विधुर कि हुअन्ता से मूर्त्ति दीप्ते ।
व्याज ए मणि रूपे प्रवेश गुप्ते । ५४ ।

सरलार्थ—दशरथ के सीता को वह चूडामणि प्रदान करने से कवि कल्पना करते है कि मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ 'राम' नाम का क़ीर्त्तन करके कालक्रमेण विष्णु-भगवान् के वक्षस्थल में विराजित हो रहा था। विष्णु भगवान् ने अब रामावतार ग्रहण किया है। उनसे न विछुड़ने के उद्देश्य से वह कौस्तुभमणि मानो आज इस मस्तकमणि के मिस गुप्त रूप से यहाँ आकर सीता के माथे पर सुशोभित हुई है। (५३-५४)

विधुर—वियुक्त, बिछुड़ा हुआ; व्याज—बहाने, मिस। (५३-५४)

वक्षे विहरिब पुणि काळान्तरे ।
वळे एवे सीताराम भावनारे । ५५ ।

सरलार्थ—फ़िर समयान्तर मे वह मणि रामचन्द्र के वक्षस्थल मे विहार करेगी। (अर्थात् सीता जब लका से हनुमान क़े द्वारा सकेत क़े रूप मे वह मणि रामचन्द्र को भेजेगी, तब रामचन्द्रजी उसे अपने वक्ष में धारण करके सीता-जनित विरह-यन्त्रणा को भूल जायेगे)। परन्तु अब उस मणि ने रामभावना-रता सीता के प्रति अधिक आसक्त होकर उनके मस्तक पर अवस्थान किया। (५५)

विराजित उपइन्द्र भञ्ज मने ।
विरचना विचारिब साधुजने । ५६ ।

सरलार्थ—उस मस्तक-मणि के सम्बन्ध मे उपेन्द्रभञ्ज के मन मे जिन भावो का उदय हुआ, कवि ने उनके अनुसार अपनी कविता की रचना की। हे सज्जनो! आप लोग विचार कीजिएगा कि यह वर्णना कहाँ तक युक्ति-युक्त हुई है। (५६)

विभूषित करूँ शिरे शिळ्पकारी ।
विविधरे उत्प्रेक्षाकु जात करि । ५७ ।

सरलार्थ—श्रृंगार सजाने वाली दासी के द्वारा सीता के मस्तक पर उस मणि को विभूपित करते समय उसकी शोभा से (कवि के हृदय में) नाना प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ उत्पन्न हुई। (५७)

शिल्पकारी—वेशकारिणी। (५७)

विमळिन नीळोत्पळदळे जळ ।
विपृश कि पड़िबारे ढळढळ । ५८ ।

सरलार्थ—सीता के नीले वर्ण के केशों पर शुक्लवर्ण की वह मणि हिलती हुई इस प्रकार शोभित हुई मानो निर्मल नील पद्म की पखुड़ियों पर स्वच्छ जल की बूँदे लुढक रही हो । (५८)

विमळिन—स्वच्छ; जळ-विपृष—जळ-बिन्दु; ढळढळ—लुढ़कना । (५८)

वृषा-नीळमणि-वृन्द-प्रभा चोरि ।
वज्रठारु करि किवा कोळे धरि । ५९ ।

सरलार्थ—फिर ऐसा प्रतीत हुआ मानो इन्दुनीलमणियों के समूह ने हीरे की ज्योति चुराके अपनी गोद मे धारण की हो । (५९)

वृषानीळमणि-वृन्द—इन्द्रनीलमणि (नीलकान्तमणि)-समूह; वज्र—हीरा । (५९)

विज्वळित काळीमणि काळिन्दीरे ।
वीचि कुञ्चिते किवा चाञ्चल्य धरे । ६० ।

सरलार्थ—यमुना की कुञ्चित (टेढ़ी-मेढ़ी) लहरों पर विशेष रूप से जलती हुई कालीय सर्पकी मस्तकमणि मानो चचलता के साथ उतरा रही हो । (६०)

विज्वळित—विशेष चमकती हुई, विशेष रूप से जलती हुई । (६०)

विदित ये सन्ध्याकाळे हेला परा ।
विहायसे एक काव्य दिव्य तारा । ६१ ।

सरलार्थ—और भी दिव्य काव्यतारा (शुक्रतारा) सायकालीन आकाश मे उदित हुआ सा दिखाई दिया । (६१)

विहायस—आकाश; काव्यतारा—शुक्रतारा । (६१)

बारिवाह भेदि इन्दु उदे तर्कि ।
वाहारिछि ज्योतिच्छळे किरण कि ? । ६२ ।

सरलार्थ—अथवा केशरूपी मेघ को वेधकर मानो मणिरूपी चन्द्र उदित हुआ हो । सुतरा मणि की ज्योति के मिस मानो ज्योत्स्ना विखर रही हो । (६२)

बारिवाह—मेघ, बादल; इन्दु—चन्द्र । (६२)

वाळी अशेष शोभा कहिवा पाइँ ।
वार्त्तावह होइ प्रभायश याइ । ६३ ।

सरलार्थ--अथवा सीता की अनिर्वचनीय शोभा के यश का प्रचार करने के लिए वह मणि मानो अपनी बहुत दूर तक फैलने वाली प्रभा को दूत के रूप मे भेज रही हो । (६३)

वार्त्तावह—दूत । (६३)

वधू तिनिङ्कि ये स्तिरी-रत्न घेनि ।
विळोहिले अमूल्य रतन तिनि । ६४ ।

सरलार्थ--इसके बाद तीनों वधुओ को स्त्री-रत्न समझकर दशरथ ने उन तीनो को तीन अमूल्य रत्न पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये । (६४)

विळोहिले—मुँहदेखके स्वरूप दिये । (६४)

विलम्वाइले वामा काहार हृदे ।
विन्ध्यगिरि पाशे कि अगस्त्य उदे । ६५ ।

सरलार्थ--किसी सखी ने एक वधू के वक्ष पर एक रत्न लटका दिया । स्तनो के पास उस रत्न ने परम शोभा धारण की । उस शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो अगस्त्य नक्षत्र विन्ध्यपर्वत के पास उदित हुआ हो । (अगस्त्य नक्षत्र का वर्ण लाल है । मणि की तुलना उसके साथ की जाने के कारण इसके पद्मराग मणि होने की सूचना मिल रही है) । (६५)

बान्धि मणिबन्धरे काहार आळी ।
वनरुहनाळ-मूळे किवा अळि । ६६ ।

सरलार्थ--फिर किसी सखी ने दूसरी एक कन्या की कलाई पर एक रत्न बाँध दिया । इस रत्न ने पद्म-नाल की जड़ मे बैठे भौरे की शोभा धारण की । (भ्रमर का रंग नीला है । इससे रत्न की तुलना की जाने से सूचना मिलती है कि यह रत्न नीलकान्त मणि है) । (६६)

विभूषणे कले काहा कण्ठ शोभा ।
वोळ पानर फुटि दिशिला प्रभा । ६७ ।

सरलार्थ—तीसरी कन्या के कंठ की शोभा को किसी सखी ने एक रत्न द्वारा विभूषित किया। उसकी शोभा इस प्रकार प्रस्फुटित हुई मानो पान की पीक कण्ठ पर फूटी दिखाई दे रही हो। (पान की पीक से उपमित तथा कंठ का भूषण होने के कारण अनुमान किया जाता है कि यह रत्न प्रवाल (मूंगा) है)। (६७)

वाहुड़ाइले कन्या सैरिन्ध्री-वृन्द।
वोधिगला चकोर द्वितीया चान्द। ६८।

सरलार्थ—कन्याओं को रत्नों से विभूषित करने के उपरान्त शृंगार सजानेवाली दासियाँ उन्हें अन्तःपुर में लौटा ले गईं। जैसे दूज का चाँद थोड़े ही समय के लिए चकोर पक्षी को सान्त्वना देकर अस्त हो जाता है, उसी तरह ये कन्याएँ भी थोड़े ही समय के लिए देखनेवालों के नेत्र-चकोरों को आनन्द-प्रदान करके चली गयीं। (६८)

सैरिन्ध्रीवृन्द—वेशकारिणियां। (६८)

विलक्षित एहि क्षण दरशने।
विद्यु झटकिवा कान्ति परसन्ने। ६९।

सरलार्थ—क्षण भर के लिए उन कन्याओं के दर्शन से बिजली की यह तुलना विशेष रूप से जँची। जिस प्रकार बिजली बहुत थोड़े ही समय के लिए आकाश में अपनी ज्योति फैलाकर अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार ये कन्याएं भी क्षण भर के लिए अपनी-अपनी प्रभा का प्रदर्शन करके गायब हो गईं। (जिस प्रकार विद्युत् क्षणप्रभा है, वैसे ही इन कन्याओं की उजली कान्ति भी क्षणिक थी)। (६९)

विलक्षित—विशेष रूप से उपमित; विद्यु—बिजली; झटकिवा—झलकना, चमकना। (६९)

विहि इकार निज नामरे कहि।
वशिष्ठ ये सर्व कन्यागणे एहि। ७०।

सरलार्थ—उस समय वशिष्ठ ने (इनकी शोभा के दर्शन से विमुग्ध होकर) अपने नाम के साथ 'इकार' का योग करके ('विशिष्ट' शब्द बनाके) कहा कि सब कन्याओं में ये ही कन्याएँ विशिष्ट (प्रसिद्ध) हैं। (७०)

वामदेव ये सफळ हेला बोले ।
वामदेव या त्रिनेत्र बहिथिले । ७१ ।

सरलार्थ--वामदेव ऋषि ने कहा, "महादेव ने जो तीन नेत्र धारण किये है, उनका यह तीन नेत्र धारण करना सफल ही है । (क्योकि अपनी तीन आँखों से वे इनकी शोभाओ को सबसे अधिक देख सकेंगे । (७१)

विचक्षणङ्क मन होइला तोष ।
बार अधिक त्रिविंश पदे शेष । ७२ ।

सरलार्थ--उन कन्याओ की शोभा के दर्शन से पण्डितों के मन सन्तुष्ट हुए । बहत्तर पदो मे यह छान्द समाप्त हुआ । (७२)

विचक्षणङ्क--पण्डितो के; बार अधिक त्रिविंश--तीन बीस (= साठ) से बारह अधिक = बहत्तर (७२) ।

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

॥ इति त्रयोदश छान्द ॥

वैदेहीश-विळास

द्वितीय खण्ड

चतुर्दश छान्द

राग—मङ्गळगुज्जरी

बेहरण भाङ्गि विभादिन मूळ करि ।
बिशुद्ध तार लग्नकु ज्योतिषे विचारि ग्ये । १ ।

सरलार्थ—कन्या-दर्शन के वाद सभा-भग करके जनकजी ने ज्योतिषियों को बुलवाया और उनसे आलोचना-चर्चा आदि करके बिवाह के लिए शुभ लग्न, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिवस आदि का निर्णय किया । (१)

वेहरण—सभा (कन्या दर्शन सम्बन्धी); विशुद्ध—शुभ; तारा—तारा, नक्षत्र । (१)

बर्द्धकीचय कि मय विश्वकर्मा गुरु ।
बेदिका मण्डप कले अतिशय चारु ग्ये । २ ।

सरलार्थ—वढ़इयो ने वेदी तथा विवाह-मण्डप ऐसे मनोहर ढग से बनाया कि उन्हे देख ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे बढ़ई मय दैत्य तथा विश्वकर्मा, दोनों के गुरु है । (वे दोनो प्रसिद्ध शिल्पी होते हुए भी मण्डप-निर्माता कारीगरो से न्यून तथा कम योग्यतावाले है ।) (२)

वर्द्धकीचय—बढई समूह, कारीगर या शिल्पी समूह; मय—दैत्य-शिल्पी; विश्वकर्मा—देवशिल्पी । (२)

बइकुण्ठपुरु रथ पड़िला कि खसि ।
बइकुण्ठ-पुर सभा शोभनकु हसि ये । ३ ।

सरलार्थ—उस वेदी तथा मण्डप की शोभा को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वैकुण्ठ भवन से विष्णु-रथ मर्त्य लोक मे खिसक पड़ा हो । उस मण्डप ने इन्द्र की सुधर्मा सभा की शोभा की भी हँसी उड़ाई । (३)

बइकुण्ठपुर—स्वर्गपुर, विष्णुपुर; रथ—विष्णु-रथ; बइकुण्ठपुर-सभा—इन्द्र-सभा, सुधर्मा सभा। (३)

बिहरित हरितवसने होइछन्ति।
बिलगन तळरे उपरे रम्भा स्थिति ये। ४।

सरलार्थ—उस रथ में (विष्णु-रथ मे) नारायण विहार करते है। उसी तरह इस वेदी मे कुञ्चित पीतवस्त्र बँधे हुए है। सुधर्मा-सभा में स्वर्गवेश्या रम्भा नृत्य करने के लिए कभी ऊपर, कभी नीचे खड़ी होती है। उसी प्रकार इस मण्डप पर कही ऊपर, कही नीचे रम्भा (केले) के वृक्ष सस्थापित किये गये है। (४)

हरितवसन—पीला वस्त्र, विष्णु; रम्भा—रम्भानाम्नी स्वर्गवेश्या, केले का वृक्ष। (४)

बिभ्रमिला चित्त छायामण्डपकु चाहिँ।
बेढ़ि रहिला कि सुरसभा आसि तहिँ ये। ५।

सरलार्थ—छायामण्डप को देखकर चित्त मे ऐसा भ्रम पैदा हुआ मानो देव-सभा आकर यहाँ घिर गई हो। (५)

बिनय त सुमनमाळारे अविरत।
बाञ्छा—कळ्पद्रुम परि फळरे पूरित ये। ६।

सरलार्थ—देव-सभा मे सुमन (देवता लोग) हमेशा विनयी (विनम्र) होकर रहते है। उसी तरह इस छायामण्डप में सुमन (पुष्प) की मालाएँ सर्वदा विनम्र होकर (झुककर) झूल रही है। फिर वह छायामण्डप कल्पद्रुम के सदृश प्रतीत हुआ। कल्पवृक्ष इच्छित फलो से भरपूर रहता है। उसी प्रकार यह मण्डप सुपारियो तथा नारियल आदि फलों से परिपूर्ण है। (६)

विनय—विनम्र, झुका हुआ; सुमनमाळारे—देवता समूह से, फूल की मालाओ से; अविरत—हमेशा, सर्वदा; वाञ्छा-कल्पद्रुम—कामनानुसार फल देनेवाला कल्पतरु। (श्लेष) (६)

बरण वरुणाळय प्राय वेष्टनारे।
विचित्र चित्र मकर गङ्गा यमुनारे ये। ७।

सरलार्थ—यह सभामण्डप एक परकोटे से घिरा हुआ है जैसा कि

पृथिवी समुद्र से घिरी हो। समुद्र में गंगा तथा यमुना आदि नदियाँ मिली हुई है तथा वह मत्स्य तथा मगर आदि जलचर प्राणियों के निवास के कारण विचित्र दीखता है। उसी तरह यह प्राचीर गंगा, यमुना आदि नदियों तथा मत्स्य, मगर आदि जलचर प्राणियो के चित्रों से चित्रित है। (७)

वरण—प्राचीर, परकोटा; वरुणाळय—समुद्र। (७)

बेनि नरेश्वरङ्कर मण्डित नवरे।
बिहाइले गन्धषण महाउत्सवरे ये। ८।

सरलार्थ—परिचारिकाओ ने दशरथ एव जनक—इन दोनों राजाओं के मण्डनपुरों का गन्धाधिवास विधान महोत्सव के सहित सपन्न किया। अर्थात् परिचारिकाओं ने दोनो राजाओ के मण्डनपुरो को अत्यन्त आनन्द से चन्दन, कर्पूर आदि सुगन्ध-द्रव्यों से सुगन्धित किया। (८)

मण्डितनवर—मण्डनपुर, सजावट के घर; गन्धषण—चन्दन, कर्पूर आदि सुगन्ध द्रव्य। (८)

ब्राह्मणी सात सअळंकार करि तहिँ।
वस्त्र पाटे ललाटे सिन्दूर चिता देइ ये। ९।
वियोगिले चन्द्र दीप्तिमान कुम्भराशि।
बन्धुरतारे धनिष्ठा होइ परशंसि ये। १०।

सरलार्थ—अनन्तर जल-उत्तोलन के लिए सात ब्राह्मण-कन्याओं को नाना प्रकार के आभूषणो से भूषित किया गया। फिर उन्हें रेशमी वस्त्र पहनाकर, उनके ललाटों पर सिन्दूर की टीकाएँ दी गयी। फिर उनके कधो पर दीप्तिमान सुवर्ण के घट रखे गये। जिस प्रकार चन्द्र कुम्भराशि से युक्त होकर धनिष्ठा नक्षत्र सहित बन्धुता स्थापनपूर्वक अपने को प्रशस्य समझता है, उसी तरह सुवर्ण-घट-संयुक्त इन कन्याओ ने अपने-अपने को धन्य समझा क्योकि वे भाग्यवन्तो (धनी आदमियो) की बन्धु है। (९-१०)

सअलंकार—अलंकार-भूषित; चिता—टीका, बिन्दी; चन्द्र—सुवर्ण, चन्द्रमा; कुम्भराशि—कुम्भनामक राशि, स्वर्णघट समूह; धनिष्ठा—धनिष्ठा नक्षत्र, धनी लोग। (श्लेष) (९-१०)

विषमेषु सूर्पयुक्त नारीकेळ तीरे।
विरहिणी प्राय दिवाकीर्त्ति-नारी धरे ये। ११।

सरलार्थ—सूप कन्दर्प की तरह है। कन्दर्प अपनी नारी 'केलति' (रति) से युक्त है, अर्थात् रति को अपनी गोद मे धारण किये रहता है। सूप भी नारिकेल (नारियल) के तीरों (काण्डो) से युक्त हुआ है। उसी सूप को एक नापितिन ने इस प्रकार धारण किया है मानो विरहिणी नारी ने काम विकार को धारण किया हो। (११)

विषमेषु—कन्दर्प; सूर्प—सूप, छाजनी; नारीकेळतिरे—कन्दर्प की नारी रति को, नारीकेळतीरे—नारियल के काण्डो से; (श्लेष); दिवाकीर्त्तिनारी—नापितिन, नाइन। (११)

विज्ज्वळित दीपे ये सरितईश सरि।
वेश्यावार सङ्गीतमन्दिर शोभा धरि ये। १२।

सरलार्थ—फिर वह सूप समुद्र के सदृश शोभित हो रहा है। क्योंकि समुद्र जम्बु, प्लक्षादि सात द्वीपो से शोभित होता है। वैसे यह सूप जलते हुए सात दीपो से सुशोभित हो रहा है। वेश्याओ ने सगीत-मन्दिर की शोभा धारण की है। (१२)

सरित-ईश—नदियो के पति, समुद्र; सरि—सदृश; वेश्यावार—वेश्या-समूह। (१२)

वीणाकण्ठ पयोधर मर्द्दळ राजित।
विस्तारि नृत्य नर्त्तकी नेत्र ख्यात गीत ये। १३।

सरलार्थ—वेश्याओ की सगीत-मन्दिर से तुलना की गयी है। सगीत-मन्दिर वीणाओ तथा मर्द्दलो से सुशोभित होता है। उसी तरह ये वेश्याएँ वीणा के से कण्ठस्वर तथा मर्द्दलो के सदृश स्तनों से सुशोभित हो रही है। फिर सगीत-मन्दिर मे नर्त्तकियाँ नृत्य करती है। उसी प्रकार वेश्याओ के नेत्र भ्रूभगी के मिस यहाँ नृत्य कर रहे है। वेश्याएँ सगीत भी गा रही है। (१३)

पयोधर—स्तन; मर्द्दळ—मृदंग से मिलता-जुलता एक प्राचीन बाजा। (१३)

बाहारु ये मुखर-रसना स्वन कले।
विस्तरे अन्त:पुरस्था द्विविध मङ्गळे, ये। १४।

सरलार्थ—संगीतशाला से निकलते वक्त नर्तकियों की शब्दायमान करधनियों की आवाज सुनाई पडती है। उसी प्रकार पुर से निकलते वक्त इन वेश्याओ के मुखो से उलुध्वनि (ळुळू ध्वनि) सुनाई पड़ी। इस समय अन्त पुरस्था रमणियाँ नाना प्रकार से मागलिक क्रियाएँ सम्पादन करने लगी। (१४)

मुखर रसना—शब्दायमान किंकिणियाँ, मुख-निःसृत ध्वनि, उलुध्वनि (ळू ळ ध्वनि); (श्लेष)। (१४)

वारासन नळ प्राय निषेध अधिप।
बाजिवारे राजि बाद्य सादिङ्क स्वरूप ये। १५।

सरलार्थ—उस समय द्वारपाल लोग आगन्तुकों को अन्दर जाने से निषेध करने के कारण 'निषेध' के अधिपति नल राजा के सदृश खड़े हुए है। नल राजा निषेध (निषध) देश के अधिपति है। ये द्वारपाल निषेध अर्थात् वारण या मना करने के अधिपति है, फिर वाद्य-समूह के वजने से वे अश्वों से सुशोभित अश्वारोहियों की भाँति सुशोभित हो रहे है। अश्वारोही वाजी (घोड़ों) वारे (समूह) से सुशोभित होते है। ये वाद्य वाजि वारे (वजने से) सुशोभित हो रहे है। (१५)

वारासन—द्वारपाल; बाजिबारे—घोड़ों से, वजने से; राजि—समूह, शोभा पाकर; सादि—अश्वारोही, घुड़सवार। (श्लेष) (१५)

वन्धुराए चाहुँछन्ति घण्टिमृग परि।
विशिष्ट-भवन-जन्य शम्बरकु धरि ये। १६।

सरलार्थ—शिकारी के द्वारा वजी घटी की आवाज सुनकर हिरन जिस प्रकार ताकता रहता है, उसी प्रकार वन्धु राजा इन कन्याओं की 'ळूळू, ध्वनि सुनकर इनकी ओर ताक रहे है। वन में शिकारी अतिशय शोभायुक्त वनजात शम्बरों, हिरनो आदि को पकड़ते है। उसी प्रकार यहाँ ब्राह्मण कन्याओ ने प्रधान-प्रधान कुलीन व्यक्तियो के घरों से संवर (जल) का सग्रह करके उसे धारण किया। (विवाह-जल गाँव के कुछ सभ्रान्त व्यक्तियो के घरो से संगृहीत किया जाता है। इसे जलोत्तलन कर्म कहा जाता है।) (१६)

वन्धुराए—वन्धु राजा; चाहुँछन्ति—ताक रहे है; विशिष्ट-भवन-जन्य शंवर—वनजात विशिष्ट (उत्कृष्ट) सांभर; प्रधान—प्रधान कुलीन भद्र व्यक्तियों के घरों से संगृहीत जल। (श्लेष) (१६)

वन्दिले देवी देवङ्कु परस्परे य़ाइ।
वरकन्या गन्धपिले गन्धपुष्प देइ ये। १७।

सरलार्थ—जलोत्तलन क्रिया के उपरान्त कन्याओं ने जाकर देव-देवियों की वन्दना की। तिस पर वरकन्या को गन्ध पुष्प आदि देकर मंगलाचार का विधान किया। (१७)

वियोग निद्रारे भृत्ये निशा थाउँ यामे ।
बुड़ विहि परभृत पराकृत नामे ये । १८ ।

सरलार्थ—भृत्य लोगों ने निशावसान के एक प्रहर के पहले जगकर कोकिल के प्राकृत नाम से युक्त 'बुड' अर्थात् 'कोइलि बुड' का विधान किया । (नौकरोंने पां फटने के समय वरकन्या का 'कोइलि बुड़' स्नान-विधान किया ।) (१८)

यामे—एक प्रहर; बुड—डूब; परभृत—कोकिल (कोइलि—प्राकृत नाम); कोइलिबुड—वरकन्या का विवाह पूर्व प्रत्युष-स्नान-विधान । (१८)

विजन स्थाने पूजार लवण चामरी ।
व्रताचारी परि करि चारि सुकुमारी ये । १९ ।

सरलार्थ—तदुपरान्त सीता आदि चार कुमारियो के प्रति व्रता-चारिणियो के सदृश—एकान्त मे लवणचामरी आदि पूजा-विधान किया गया । (१९)

लवण चामरी—लावा-परछन, वर कन्या के परस्पर एक वस्त्र की ओट मे प्रथम दर्शन का विधान । (१९)

वेगे याउ दिवस ए वश वरकन्या ।
विरक्त हेउँ ए रक्तवन्ते भानु धन्या ये । २० ।

सरलार्थ—'शीघ्र ही दिवस का अवसान हो'—इस कामना से वशीभूत होकर जब वरकन्या ने विरक्ति प्रकट की तो यह बात सूर्यदेव ने जान ली और रक्तवर्ण विशिष्ट हो अस्ताचल मे जा डूबे । सुतरा वे वरकन्या धन्य है जिनकी विरक्ति से (विशेष रक्तिमा से) सूर्य भी रक्तवर्ण विशिष्ट हो जाते है । (२०)

व्यासक्त अनुरागरे सविता ए काळे ।
बळिपुष्ट बोलि निज निवासकु चळे ये । २१ ।

सरलार्थ—इस समय सूर्य को रक्तवर्ण के प्रति विशेष आसक्त होते देखकर 'स्नेह के प्रति विशेष आसक्त हो' यह सबसे बोलकर, कौए अपने-अपने घोसलो को उड गये । (२१)

अनुरागरे—रक्त वर्ण से, स्नेह से; सविता—सूर्य; बळिपुष्ट—कौआ । (२१)

बुड़ाइ कि सिन्धुजळे ताम्रपात्र रवि ।
विभा सीता रामर निकट धाता भावि ये । २२ ।

सरलार्थ—सूर्य को डूबते देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह सोचकर कि सीताराम का विवाह निकट आ गया है, विधाता ने रविरूपी ताम्बे के पात्र को समुद्र-जल मे डुबो दिया हो । (२२)

उत्प्रेक्षालंकार । (२२)

बारिधिज उदे अङ्क दूर्वादळ भरि ।
बन्दाइब रूपास्थाळी प्राचीनारी धरि ग्रे । २३ ।

सरलार्थ—उस समय चन्द्रोदय हुआ । चन्द्र को देख ऐसा प्रतीत हुआ मानो पूर्व दिशारूपिणी नारी कलक रूपी दूब (घास) को चन्द्ररूपी चान्दी की थाली मे रखकर उस थाली से रामसीता की वन्दना करेगी । (चन्द्र चान्दी की थाली और तन्मध्यस्थ कलक दूर्वादल से उपमित है ।) (२३)

वारिधिज—चन्द्र; अंक-दूर्वादल—कलंकरूपी दूबघास । (उत्प्रेक्षा) (२३)

विभवे उत्सव हेला वेनि राजा द्वारे ।
वर्षाऋतु मूर्त्तिमन्ते किवा अनुसरे ये । २४ ।

सरलार्थ—दशरथ और जनक दोनो राजाओं के द्वारो पर बड़े ठाठ-वाट से उत्सव मनाया गया । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वर्षा ऋतु मूर्त्तिमती होकर वहाँ उपस्थित हुई । (२४)

वृन्द-वृन्द दिशिले जळद करीवर ।
व्योमपूर्ण स्तनित पट्टह नाद तार ग्रे । २५ ।

सरलार्थ—दल-दल होकर जाते हुए श्रेष्ठ हस्ती-समूह का दृश्य मेघ-माला के समान दिखाई पड़ा । मेघ-गर्जनतुल्य पट्टह (नगाड़ो) आदि के निनाद से गगन पूर्ण हो उठा । (२५)

जळद—मेघ; करीवर—हस्त्री श्रेष्ठ; स्तनित—मेघगर्जन; पट्टहनाद—नगाड़ो आदि का शब्द । (२५)

विगळित जळधारा ग्रहिँ दानजळ ।
वज्रनिर्घोप नागरा वादन चहळ ये । २६ ।

सरलार्थ--हस्तियो की कनपटी से झरता हुआ मदजल (अथवा विवाह के उपलक्ष मे ब्राह्मणो के हाथ उठा दिया जाने वाला दान जल) वर्षाधाराओ के सदृश प्रतीत हुआ और वजते हुए नगाडो का निनाद वज्र-निर्घोष के सदृश प्रतीत हुआ। (२६)

व्यूह भयाळुहिँ अश्व चञ्चळ हुअन्ति।
वैशम्पायनङ्क चिन्ता मागधङ्क स्तुति ये। २७।

सरलार्थ--नगाड़ो के अत्युच्च निनाद से घोडे इस प्रकार चचल हो उठे, जैसे बज्र के निर्घोष से भयातुर जनसमूह चंचल होते है। बज्रभय से रक्षा पाने के लिए लोग वैशपायन मुनि की चिन्ता करके उनका नामोच्चारण करते है। उसी प्रकार यहाँ वाद्य-भय से रक्षा के निमित्त चारणों के स्तुति-पाठ का विधान किया गया। (२७)

व्यूह—समूह; मागध—स्तुति पाठ करनेवाले, चारण, भाट। (२७)

वल्मीक नळीज इन्द्रकोदण्ड हावेळि।
वह्निकणा जात कि खद्योत दिशे झळि ये। २८।

सरलार्थ--इस समय नलियो से उत्पन्न हवाई बान (आतिशबाजियाँ) वॉबी से निकलनेवाले इन्द्रधनुप के सदृश प्रतीत हुए। हवाई वानो से नि.सृत चिनगारियो ने जुगनुओ के समान दिशाओ को उज्ज्वल किया। (अर्थात् हवाई आतिशबाजियो के लगने से दिशाएँ उजाली हो गयी।) (२८)

वल्मीक—वॉबी, विभोर; नळीज—नली से उत्पन्न; इन्द्रकोदण्ड—इन्द्र-धनुष; हावेळि—हवाई आतिशबाजी; खद्योत—जुगनू। (२८)

विद्युत चञ्चळ पीत चीराळ प्रचळ।
विभ्रमे चातकपन्ति चूत तोणामाळ ये। २९।

सरलार्थ--पवन से उडती हुई पीली पताकाओ का समूह वर्पाकालीन बिजलियो की झलक के समान दिखाई दिया। आमपत्रों की तोरण-मालाएँ पपीहो के इधर-उधर भटकने की तरह दिखाई दी। (२९)

पीत चीराळ—पीली पताकाएँ; चूत—आम। (२९)

वक शंख दात्यूह मधुरी कंक भेरी।
वर्षाभू टमक नादे दशदिश पूरि ये। ३०।

सरलार्थ—वर्षा के समय बगुलो, पपीहो, कंक पक्षियों तथा मेंढको आदि की बोलियो से दस दिशाएँ भर जाती है। वहाँ बजते हुए शंख बगुलो के स्वर, महुवरियाँ पपीहो के स्वर, भेरियाँ कक-पक्षियो के स्वर एवं डुगडुगियो की आवाज मेढ़कों के गर्जन के समान प्रतीत हुई। (३०)

दात्यूह—पपीहा; वर्षाभू—मेढ़क; टमक—टमकियाँ, डुग्गियाँ। (३०)

व्याख्यान शामुक नाद दासी हुळहुळि।
विळसिता इन्द्रगोप वेश्या पाटचोळी ये। ३१।

सरलार्थ—दासियों की उलुध्वनि सीपों के निनाद की तरह सुनाई पड़ी। नृत्यकारिणी वेश्याओं के लाल रग के रेशमी चोले इन्द्र-वधुओं के सदृश प्रतीत हुए। (३१)

व्याख्यान—कथित, अभिहित; शामुक—सीप; हुळहुळि—शुभकार्य के अवसर पर स्त्रियो के होठो के प्रान्त-भागो में जीभ के संचालन-जनित ध्वनि, (उलूलु शब्दज); इन्द्रगोप—इन्द्रवधू, वीरवहूटी। (३१)

विशद शिळीन्द्र छत्र सहजे दिशिले।
वाणादि जाई युई त सत फुटिगले ये। ३२।

सरलार्थ—वहाँ के सफेद छत्र वरसात मे जमीन पर उगनेवाले कुकुरमुत्तो की तरह दिखाई दिये और आतिशबाजियो पर आग लगाते समय उनकी चिनगारियाँ वरसात मे खिलने वाले जूही तथा चमेली के फूलो की तरह दिखाई दी। (३२)

शिळीन्द्र—कुकुरमुत्ता; जाई—चमेलियाँ; जुई—जूही। (३२)

वरहिण नर्त्तक नर्त्तन प्रकाशित।
व्यापे दुर्द्दिन कुहुक जालिकरे सत ये। ३३।

सरलार्थ—वरसात मे मोरो के नृत्य की तरह यहाँ पर नर्त्तकगण नृत्य कर रहे है। ऐन्द्रजालिको के इन्द्रजाल से मेघाच्छन्न दिवस के समान चारो ओर अन्धकार फैल गया। (३३)

वरहिण (र्वाहण)—मयूर-समूह; दुर्दिन—मेघाच्छन्न दिवस, कुहुक—जादू; जालिक—ऐन्द्रजालिक, जादूगर। (३३)

वर्षोपळ पात दाता रजत प्रदान।
बाहार पुर-गिरिरु हेले झरसैन्य ये। ३४।

सरलार्थ—वरसात मे करका पात होता है अर्थात् ओले वरसते है। यहाँ दाताओ का (खास करके दशरथ तथा जनक—दोनो राजाओ का) चाँदी-मुद्राओ का दान करकापात के समान प्रतीत हुआ। नगर रूपी पर्वत से झरने के सदृश सैन्य निकले। (३४)

वर्षोपळ—करका, ओले; रजत—चाँदी की मुद्राएँ। (३४)

विबर्द्धन राजमार्ग नदी हेला तहिँ।
विभरण उष्णीष हिण्डीरमान यहिँ ये। ३५।

सरलार्थ—सैन्यों रूपी झरनो के द्वारा राजपथरूपी नदी की बृद्धि हुई। सैनिको के मस्तको की पगडियाँ वाढ के समय पानी पर उतरानेवाले फेनो के समान पूर्णाकार में दिखाई पड़ी। (३५)

उष्णीष—पगड़ियाँ; हिण्डीरमान—फेनोका समूह। (३५)

वीरतरु पुष्पवन्त होइ समधुप।
बेनिकूळ वेनि पाशे स्थित वृक्ष-दीप ये। ३६।

सरलार्थ—बरसात मे नदी के दोनो किनारो पर भ्रमर-चुम्बित तथा पुष्प-समन्वित अर्जुनवृक्ष शोभित होते है। यहाँ पर राजमार्ग के दोनो ओर दीवट दीपो रूपी पुष्पो से शोभित है। वे दीवट धुएँ के सहित जलते हुए से दिखाई देते है। (३६)

वीरतरु—अर्जुन-वृक्ष; वृक्षदीप—दीपाधार, दीवट, फतीलसोज। (३६)

वीचिवेगरे गमन लभिला से शान्ति।
बन्ध सिहद्वाररे एमन्त व्युतपत्ति ये। ३७।

सरलार्थ—जिस प्रकार लहरो से युक्त नदी वेग से दौड़ती-दौड़ती बाँध आने पर रुक जाती है, उसी प्रकार लहरो की सी गति से जाते-जाते सैनिकगण भी जनकजी के सिहद्वार रूपी वाँध पर अटक गये। (३७)

वीचि—लहरे। (३७)

विदेशी पान्थ प्रधान जनतरी जान।
वहन तेजिकले से सदन गमन ये। ३८।

सरलार्थ—जिस प्रकार विदेशी पथिक नदी को पार करने के वाद नौका छोड़कर अपने-अपने घर या लक्ष्य की ओर चल पड़ते है। उसी प्रकार

वरात मे आये हुए विशिष्ट व्यक्ति डोलियो आदि यानों का परित्याग करके शीघ्र जनकजी के घर मे गये । (३८)

पान्थ—पथिक, राहगीर; तरी—नौका । (३८)

वेशमस्था मुदुसुलीए निउञ्छाइ अन्न ।
वरिले वर शाळके दिशिले तेसन ये । ३९ ।

सरलार्थ—अनन्तर दासियो ने पुरस्त्रियों की भाँति वरों की अन्न से वन्दना की । वरों को वरण करते वक्त शालकों द्वारा ऐसा प्रतीत हुआ मानो कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियो का स्वागत किया जा रहा हो । (३९)

वेशमस्था—घर में स्थिता; मुदुसुली—('मृदुशीला' शब्दज)—दासियाँ, दाइयाँ, आयाएँ, निउञ्छाइ—वन्दना की; शाळके—शालक, साले; दिशिले—दीखे; तेसन—उसी प्रकार । (३९)

विवाह स्थानरे वरवेशे बसाइले ।
ब्रह्मा आचार्य्य वेदिके युगयुग हेले ये । ४० ।

सरलार्थ—उसके बाद वरों को वरवेशों मे विवाह-स्थानो पर बैठाया गया । हर वेदी पर ब्रह्मा तथा आचार्य—इस तरह दो-दो व्यक्ति पुरोधा बन बैठे । (४०)

वेदिके—हर वेदी पर । (४०)

वशिष्ठ शतानन्द, काश्यप कउशिक ।
वामदेव गउतम, जावाळि वाल्मीक ये । ४१ ।

सरलार्थ—वशिष्ठ-शतानन्द, काश्यप-कौशिक, वामदेव-गौतम एवं जावालि-वाल्मीकि—इस प्रकार चार वेदियो मे से प्रत्येक पर दो-दो पुरोहित ब्रह्मा तथा आचार्य बन के बैठे । (४१)

विहि रचित शाळके धुआइले पद ।
विहि अनिळ गमने चमरी विनोद ये । ४२ ।

सरलार्थ—पुरोहितो ने विधि-विधानानुसार सालों के द्वारा वरो के पैर धुलाये । तदनन्तर जैसे चमरीमृग पवनगति से क्रीड़ारत होकर आनन्द उपभोग करते है, वैसे वर-कन्याओं ने लवण-चामरी (लावा परछन) विधान में परमानन्द भोग किया । (४२)

विदृष्टि अन्तर पाट कुज्झटि वशरे ।
विभावसु पद्मिनीर होए परस्परे ये । ४३ ।

सरलार्थ—वर-कन्याओ की देखा-देखी न होने के लिए पट्टवस्त्र का व्यवधान (परदा) दिया गया था। कुहरे के कारण सूर्य तथा पद्मिनी लताकी देखा-देखी नही हो सकती। उसी तरह सूर्यवशी रामचन्द्र तथा पद्मिनी-जातीया स्त्री सीता की देखादेखी पट्टवस्त्र-व्यवधान के कारण नही हो सकी। (४३)

कुज्झटी—कुहरा; विभावसु—सूर्य। (४३)

बरगिले सुयज्ञोपवीत दूती तहिँ।
विप्रलब्धा होइथिले आणिले बोधाइ ये। ४४।

सरलार्थ—पुरोहितो के द्वारा वरो से मन्त्र-संस्कृत, उत्तम यज्ञोपवीत भेजने के वाद कन्याएँ वेदी पर आयी। यह देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो विप्रलब्धा नायिकाओ को समझा-बुझाकर, (उनका क्रोध-उपशमपूर्वक) यज्ञोपवीत रूपिणी दूती यहाँ ले आई हो। (४४)

बरगिले—भेजा; विप्रलब्धा—विरहिणी नायिका (नायिकाओ के आठ भेदो में से एक भेद)। (४४)

वाञ्छा-कळ्पद्रुम पाशे कामधेनु मिळे।
वामनेत्रा दक्षिण कराइ बसाइले ये। ४५।

सरलार्थ—कामना-पूरणकारी कल्पद्रुम के पास कामधेनु की उपस्थिति की तरह वरो के पास कन्याएँ आकर उपस्थित हुई। पुरोहितो ने उन वामलोचना कन्याओ को वरो के दाहिनी ओर बैठाया। (४५)

वसुन्धरा प्राये से अङ्गण नवखण्डे।
विभावरी कि अम्बरे तारापन्ति रुण्डे ये। ४६।

सरलार्थ—जनकजी के भवन का आँगन पृथिवी सदृश है। पृथिवी के नवखण्डो (नौ टुकडों) की तरह वह आँगन भी चारवेदियो तथा पाँच अन्तरस्थानों मे विभक्त हुआ है। उस आँगन पर नाना मणिमुक्ता-खचित चन्द्रातप (चँदोवा) मनोहर तारका-खचित नभोमण्डल से सुशोभित यामिनी की तरह दिखाई दिया। (४६)

वसुन्धरा—पृथिवी; अंगण—आँगन; नवखण्ड—पौराणिक भूगोल के अनुसार पृथिवी के नौ भाग; यथा—भरतखण्ड, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश; अम्बर—आकाश, वस्त्र; तारापन्ति—नक्षत्र-समूह, मुक्तापंक्ति। (४६)

वृक्षस्तम्भे राजे फळवन्त होइ सेहि ।
बान्धव कुमुदर कि प्रभा-सुधा बहि ये । ४७ ।

सरलार्थ--उस आँगन पर जो छायामण्डप बना था, उसके खंभों में सुपारियों, नारियलों आदि नाना प्रकार के फल सुसज्जित किये गये थे। इस हेतु वे खम्भे फलवन्त वृक्षो की तरह शोभा पा रहे थे। फिर उन खम्भों पर चूना पोता (लेपा) गया है। इसलिए वे खम्भे चन्द्र की अमृत-प्रभा-धारा के समान प्रतीत हो रहे है। (४७)

बान्धव-कुमुदर—कुमुदबन्धु चन्द्रमा की; सुधा—चूना, अमृत। (४७)

ब्रह्मा आननकु ये होइला अनुरूप ।
वेदवाक्य पूर्ण होइ चतुर मण्डप ये । ४८ ।

सरलार्थ--वहाँ चार मण्डप ब्रह्मा के चार मुखो के समान प्रतीत हुए। चतुरानन ब्रह्मा वेदों से परिपूर्ण है। उसी प्रकार ये चार मण्डप ब्राह्मण-मुखो से निःसृत वेदवाक्यों से पूर्ण है। (४८)

आनन—मुख। (४८)

विप्रे लक्षित होइले ताङ्क कर सङ्गे ।
विष्टर ताम्र सुपात्री श्रुव श्रुच योगे ये । ४९ ।

सरलार्थ--उन्ही ब्रह्माओ तथा आचार्यो के हस्तों सहित कर्मकारी ब्राह्मण समान दिखाई पड़े। ब्राह्मण कुशासन, ताम्बी पात्री, स्रुव, स्रुच आदि धारण किये रहते है। उसी तरह इन्ही पुरोहितो के हाथो मे कुशासन, ताम्बे पात्र, स्रुव, स्रुच आदि सुशोभित हो रहे है। (४९)

विष्टर—कुशासन; ताम्र सुपात्री—ताम्बे से बनी अच्छी पात्री; स्रुव—स्रुवा, घी की आहुति डालने की करछी; स्रुच—लकड़ी की बनी उंगलियोंवाली स्रुवा। (४९)

वरकन्याङ्कु बोलन्ति ईश्वर पार्वती ।
वान्धिले से मुकुट करि कि एहि मति ये । ५० ।

सरलार्थ--लोग वरकन्या को शंकर-पार्वती बोलते हैं। शंकर पार्वती के सिरो पर रत्न-मुकुट शोभित होते है। मानो इसी दृष्टि से पुरोहितो ने वरकन्या के मस्तकों पर मुकुट बाँधे। इस तरह वरकन्या शकर-पार्वती की तरह दिखाई दिये। (५०)

वर्द्धित पुण ए गोत्रवंशवर ख्यात ।
विशीर्ण्ण भीतिह्निँ होए कामर उदित ये । ५१ ।

सरलार्थ—पर्वतवश श्रेष्ठ हिमालय के कैलास शृंग मे वर्द्धित महादेव जी को देखकर काम के मन मे अपने क्षीण हो जाने का भय उत्पन्न होता है। उसी प्रकार राम-लक्ष्मणादि वर सर्वकुल-श्रेष्ठ विख्यात सूर्यवंश मे पाले पोसे गये है। उन्हें तथा उनके साथ कन्याओ को शकर-पार्वती के सदृश देखकर कन्दर्प के मन में भय हुआ कि कही इनके सयोग से मै क्षीण न हो जाऊँ। (५१)

गोत्रवंशवर—पर्वतसमूह मे श्रेष्ठ, हिमालय (कैलास पर्वत), प्रधान सूर्यवंश (श्लेष); विशीर्ण—विशेष रूप से क्षीण; भीति—भय। (५१)

वैशाले शूळ भरम उपुजि ता थिव।
वळा-डम्बर-नादकु शुणि पळाइव ये। ५२।

सरलार्थ—विवाह वेदी के पास गाड़े वैशाल (बाँस के दण्ड) को देखकर काम के मन मे त्रिशूल का भ्रम उत्पन्न होगा और पाजेवो की आवाज को डमरू का शव्द समझकर काम दूर भाग जाएगा। (५२)

वीतिहोत्रे लाजा-होम करु लज्जावळि।
वळिरे विचार काहिँ होइव सम्भाळि ये। ५३।

सरलार्थ—पुरोहितो द्वारा अग्नि मे लाजा (खील) होम करने पर लज्जाओ ने विचार किया, जव इनका मन रतिरस के प्रति चलेगा, तो हम लोग कहाँ सम्हाल कर रह सकते है? अर्थात् अभी लाजा-होम के मिस लज्जा को जला दिया जा रहा है, ताकि मिलन के समय लज्जा के रहने की गुँजाइश न रहे। (५३)

वीतिहोत्रे—अग्नि में; लाजा—खील, लावा। (५३)

वन्धाइले दुहिङ्कर कर से कोविदे।
वामा पुंस एक करि से दम्पति-पदे ये। ५४।

सरलार्थ—विज्ञ ब्रह्माओ तथा आचार्यो ने वर-कन्याओ के हस्तो को इकट्ठा किया एवं स्त्री तथा पुरुप का 'दम्पती' पद मे एकीकरणपूर्वक दोनो के हाथ वँधाये। (५४)

विप्र दुहिताए तहिँ परवेश हेले।
विपद-पाश फिटिला पाञ्चि फिटाइले ये। ५५।

सरलार्थ—तदनन्तर ब्राह्मण कन्याओं ने वहाँ उपस्थित होकर वर-कन्याओ का कर-वन्धन खोला। यह देखकर ऐसा प्रतीत हुआ उन्होने यह समझकर कि काम की विपत्ति रूपी फॉस खुल गई (वर-कन्याओ की हस्तग्रन्थि खोल दी)। (५५)

बाहारिले गण्ठिआळ अळंकृत होइ ।
विश्वकेतु रणारम्भे कि से शाढ़ी पाइ ये । ५६ ।

सरलार्थ--अनन्तर वरकन्याएँ विवाह-उत्तरीयो से सुशोभित होकर निकले । उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो वरकन्याओ ने कन्दर्प से युद्ध छेड़ने के पहले से ही पुरस्कार-स्वरूप साड़ियाँ पाई है । (५६)

गइंठाळ—विवाह के अवसर पर वरकन्या दोनों के कन्धों का योग करनेवाला उत्तरीय । (५६)

वराटके अन्तःपुरे द्यूत खेळाइले ।
वळवन्त अवळा धरषि न पारिले ये । ५७ ।

सरलार्थ--सखियो ने वरकन्याओ को अन्त पुर मे कौड़ियो से जुआ खेलाया । इसमे वलवान् रामचन्द्रादि वरसमूह सीतादि अवला कन्याओं को हरा नही सके । अर्थात् उनके सुकोमल हस्तो को कही पीड़ा न पहुँचे, इस कारण वे वलात् उनसे कौड़ियाँ नही छीन सके । अतएव हार जाने का वहाना किया । (५७)

वराटक—कौड़ियाँ; द्यूत—जुआ, कौड़ी; धरषि न पारिले—हरा नही सके । (५७)

वृद्धिनदी तटतरु उत्पाटि भसाइ ।
वेतस मध्यरे किछि करि न पारइ ये । ५८ ।

सरलार्थ--वढ़ी हुई नदी कूलस्थित बड़े-बड़े वृक्षो को उखाड़ कर वहा ले जाती है । परन्तु गर्भस्थित वेंत के पौधो का कुछ भी बिगाड़ नही सकती । उसी प्रकार इस जुआ (विवाहकालीन कौड़ियो का खेल) की भी घटना हुई । (५८)

बिहुँ पञ्चग्रासी हस्त स्थाळीरु न चाळि ।
वळये राममूरति दिशन्ते मैथिळी ये । ५९ ।

सरलार्थ--पंचग्रासी करते समय मैथिली (सीता) को अपने कगन मे राम की मूर्ति दीखने से, उन्होने अपने हाथ को थाली से नही सरकाया, क्योंकि सरकाने से रामचन्द्र की मूर्त्ति फिर दिखाई नही पड़ेगी । (५९)

पंचग्रासी—विवाह के वाद वरकन्या का एक थाली से एकत्र पाँच कौरों का अन्न-भोजन; स्थाळीरु—थाली से; वळये—कंगन में । (५९)

वारि-विधु-विम्बे यथा चकोर सुस्नेही ।
बसि पत्राच्छन्न वृक्षे टेकि न अनाई ये । ६० ।

सरलार्थ--चकोर पक्षी पत्राच्छन्न वृक्ष पर बैठे जलमध्यस्थित चन्द्रविम्ब का दर्शन करके उसके प्रति अत्यन्त स्नेह प्रकट करते हुए उसकी ओर टकटकी लगाये देखा करता है और दूसरी ओर मुँह उठाकर नही देखता । उसी प्रकार सीता वस्त्रो से आच्छादित अपने कगन मे रामचन्द्र का प्रतिविम्ब निर्निमेप निहारने लगी । (६०)

वढ़िला ए विधान शाशुए वन्दाइले ।
वितरण अमूल्य रतनमान कले ये । ६१ ।

सरलार्थ--ऐसे विधानानुसार पचग्रासी के समाप्त होने पर सासो ने वरकन्याओ की वन्दना की और अमूल्य रत्नो का वितरण किया । (६१)

वीरवर भञ्ज सीता-रामकु ध्याइला ।
वापठि पदे ए छान्द शेषकु बिहिला ये । ६२ ।

सरलार्थ--वीरवर उपेन्द्र भज ने उन्ही सीताराम का अपने मन मे ध्यान करके वासठ पदो मे इस छान्द को समाप्त किया । (६२)

॥ इति चतुर्द्दश छान्द ॥

पञ्चदश छान्द

राग—केदार। चक्रकेळि वाणी

विचित्रित चित्ररे होइथिले, वामा मधुशय्याकु मण्डाइले,
बपुवन्तरे होइछि रञ्जन, व्यक्त सुनेत्र रोहित खञ्जन। १।

सरलार्थ—मधुशय्या गृह (केलिमन्दिर सब) सुन्दरी वामाओ (रमणियो) के सदृश बने हुए थे। वामाएँ तिलकादि चित्रो से चित्रित होती है। ये केलिमन्दिर भी नाना प्रकार के चित्रो से चित्रित किये गये है। मधुशय्या के उद्देश्य से वामाओ का वस्त्रों तथा आभूपणो आदि से मण्डन किया जाता है। इन गृहों का भी मधुशय्या के योग्य मण्डन किया गया है। वामाएँ अपने-अपने सुन्दर शरीरो से शोभित होती है। ये गृह भी प्रशस्त आकृति द्वारा सुशोभित है। वामाओ के मनोहर नेत्र रोहितों (लाल वर्ण के मत्स्यो) तथा खञ्जन पक्षियो के सदृश प्रकाशमान होते है। ये गृह भी लाल रंग के मनोहर वस्त्रादि (चन्द्रातप आदि) से प्रकाशमान हो रहे है। (१)

वपवन्त—शरीरवन्त, लावण्यमय, शरीरवाली (रमणी के पक्ष मे) प्रशस्त आकृति वाले (केलिपुर के पक्ष में); सुनेत्र—अच्छे चक्षु (रमणी के पक्ष में), अच्छे वस्त्र (केलिपुर); रोहित—मत्स्य विशेप (वामा), लाल रंग (केलिपुर); खञ्जन—पक्षी विशेष, सज्जित; (श्लेष)। (१)

विपतन ये पलङ्क पलक, बेणी रत्नप्रदीपरे अधिक,
बेणी शोभा अगुरु धूम धार, वहिअछि अळका मनोहर। २।

सरलार्थ—वामाओ के नेत्रो मे पलक-पतन की क्रिया होती है। इन गृहो मे पलग पड़े हुए हैं। वामाओं के भूपण रत्न जड़े रहने की वजह से वे अधिक दीप्ति प्राप्त करती है। इन गृहों में अनेक रत्नप्रदीप खचित हुए है। इसलिए ये अधिक उज्ज्वल दीखते है। वामाएँ धुआँधारो-सदृश वेणियो से सुशोभित होती है। ये गृह अगुरुकाष्ठ की धुआँ-धाराओ से सुशोभित हो रहे है। वामाएँ मनोहर अलके (चूर्ण-कुन्तल) धारण करती है। उसी तरह इन गृहो ने अलकापुर (कुबेरपुरो) की शोभा धारण की है। (२)

अगुरु—कृष्णचन्दन,; धमधार—धुआँधार; अळका—चूर्णकुन्तल, कुवेरपुर (श्लेष)।

वक्त्र दर्पण चन्द्रातपे शोहि, विनोदकु प्रकाशिवारे स्नेही,
विहि पुरे रूपक श्लेष छन्दि, वाहे दम्पति हेवे वन्धावन्धि । ३ ।

सरलार्थ—वामाओ के मुख दर्पणो की सी चमक से शोभित होते है। ये गृह दर्पण-खचित चन्द्रातपो (चँदोवों) से शोभा पा रहे है। वामाएँ रतिक्रीड़ा प्रकाश करने की अभिलाषिणी होती है। ये गृह भी उसी तरह आनन्द को प्रकट कर रहे हैं। कवि ने श्लेषरूपको से बाँधकर केलिगृहो की वर्णना इस अभिप्राय से की कि इन गृहो मे पत्नी-पति पारस्परिक वाहुवन्धन से एक दूसरे को गले लगावे। (३)

वक्त्र—मुख; छन्दाछन्दि—बाँधकर, उलझ-पुलझकर। (३)

वगु तहिँ रामा हेले राघव, विधिरे त वासकसज्जा भाव,
विलोकित कान्ता स्मरे आगते, वळि चित्तद्वारे चाहिँ आरते। ४ ।
विरहरे उत्कण्ठिता प्रकाशि, विहिवाकु सुरस मान घोषि,
विम्बाधरे होइवाकु खण्डिता, वेग-वेग होइअछि ममता। ५ ।

सरलार्थ—अपने केलिगृह मे रामचन्द्र बैठे 'रामा' की तरह हुए। रामा (स्त्री) अष्टलक्षण धारण करती है। विधि मे तो रामचन्द्र ने वासकसज्जा नायिका का भाव धारण किया है। वह नायिका सुवेश से मण्डित होकर मण्डनगृह मे बैठी रहती है। वैसे रामचन्द्र सुवेश- सुशोभित होकर केलिगृह मे बैठे हुए हैं। प्रोषित-भर्त्तृका नायिका अपने कान्त का स्मरण करके उसके आगमन की प्रतीक्षा मे रहती है। राम सीता के के कमनीय रूप का स्मरण करके उनके आगमन की प्रतीक्षा में मार्ग जोह रहे हैं। पति के नियमित समय पर न आने से विप्रलब्धा नायिका चित्त की उद्विग्नता से द्वार पर जाकर पति के आगमन-मार्ग को ताकती है। सीता के आगमन मे विलम्ब होते देखकर रामचन्द्र भी उसी प्रकार ताक रहे है। फिर विरहोत्कण्ठिता नायिका के सदृश राम सीता-विरह-जनित उत्कण्ठा प्रगट कर रहे है। स्वाधीन-भर्त्तृका पति सहित नाना प्रकार की सुरतियो का विधान करने का विचार करती है। कलहान्तरिता 'मान'-भरी कथाओं को रटती रहती है। रामचन्द्रजी सुरसो का विधान करने के लिए उसी प्रकार रट रहे है। खण्डिता पक्व विम्बफल की-सी रक्तिमा अपने होठो तथा नेत्रो मे धारण करके क्रोध के द्वारा अपना खण्डिता-भाव अभिव्यक्त करती है और अभिसारिका सम्भोग पाने के आवेग से शीघ्र शीघ्र गमन करती है। रामचन्द्रजी के मन मे भी अपने विम्बफल के सदृश अधरो के सीताजी के दन्ताघात से खण्डित होने की इच्छा उदित हो रही है। (४-५)

वहुवचने एणु सिद्धि-तर्कि, व्याकरणे राम रामा करि कि ?
बिहि एणु गीते योषा सुषमा, वोले पश्चाते वस राम रामा । ६ ।

विलक्षित होइव किपाँ कले, विरोचन मोहने रामा हेले,
बयसीए एकाळे सुलक्षिणी, बिजे कराइले बाजुँ किंकिणी । ७ ।

वड़ 'तृषार्त्त' चातक येमन्त, बारिवाह ध्वनि शुणि तेमन्त,
विद्यु विद्युत कान्ति दिशिगला, वर्द्धमान तोष अति होइ्या । ८ ।

सरलार्थ—फिर कवि ने तर्क करके कहा, "शायद इन्ही सब कारणो से संस्कृत व्याकरण मे 'राम' शब्द वहुवचन में (राम, रामौ, रामाः) 'रामा' सिद्ध हुआ है ?" और भी कवि बोले, "गीत मे रामचन्द्र को सर्वतो रूपेण नायिका के समान वर्णित करके उन्हे 'रामा' कहने से असगत क्यों होगा ?" यदि पूछो कि 'राम' शब्द के पीछे 'रामा' शब्द कैसे वैठा, तो यह वात भी अप्रासगिक नही होगी, क्योकि पहले इन्ही रामचन्द्र-विष्णु ने मालती-कन्या के रूप मे विरोचन राक्षस को मोहित किया था और उसके पीछे वैठ उसके केशो का उत्पाटन किया था। इसी समय सखियो ने सुलक्षणी सीता को केलिमन्दिर मे पधराया। चलते वक्त सीता की कटि-किंकिणियो के वजने से उनकी आवाज सुनकर रामचन्द्रजी वैसे ही आनन्दित हुए जैसे मेघका गर्जन सुनकर अत्यन्त तृषार्त्त चातक आनन्दित होता है। यदि मेघ-गर्जन के समय बिजली की चमक दिखाई पडे, तो उसका आनन्द वहुगुना वढ़ जाता है। उसी प्रकार सीता की शरीर-कान्ति की चमक के दीखने से रामचन्द्र का आनन्द और भी अधिक बढ गया। (६-७-८)

वाळा तहुँ केळिपुर सन्निधि, बयसिकाए छळभावे बोधि,
विकर्त्तन तेजे मोद पद्मिनी, विकर्त्तनवंशी से तु पद्मिनी । ९ ।

सरलार्थ—लज्जा तथा भय के हेतु केलिगृह के समीप सीता रुक गई। तो एक सखी ने व्यञ्जना से उन्हे समझाते हुए कहा—तेजस्वी सूर्य अपने प्रखर तेज से अत्यन्त कोमल पद्मिनी को भी प्रफुल्ल करते है। उसी प्रकार तेजोमय सूर्यवंशी वीर रामचन्द्र सूर्यसम तुझे आनन्द प्रदान करेगे, क्योकि तू ही स्वभावत. पद्मिनी (पद्मिनी-जातीया स्त्री) है। इसलिए भय तथा लज्जा मत करना। (९)

वाकचातुरी केमन्त रहिला, वल्लभरे समर्पिबा होइला,
वळाइण वळे द्वार देहळी, वाहुड़िले कवाट किळि आळी । १० ।

सरलार्थ—इसमे वचन की चातुरी कैसी रह गई ? (अर्थात् सखियों की यह वचन चातुरी अनूठी ही थी।) अनन्तर सीता को अपने कान्त के समीप समर्पित किया गया। ऐसा बोलकर सखियो ने सीता को केलि-मन्दिर के द्वार की देहली तक ठेलकर पहुँचा दिया और किवाड़ वन्द करके वापस आई। (१०)

केमन्त—कैसी; बळाइण—ठेलकर पहुँचा देना; कपाट—किवाड़; किळि—बन्द करके; आली—सखियाँ। (१०)

बळे बसाउँ तळेकोळे कान्त, बिराजित प्रभारे दुर्गामत,
ब्रीडावती चञ्चळ न छाडिले, बोधुँ विनये धीरा धीर हेले। ११।

सरलार्थ—रामचन्द्र के बलात् सीता को अपनी गोद मे वैठाते यह दृश्य ऐसा दिखाई पड़ा मानो नीलमणि-प्रभा के बीच में कनक-दुर्गा विराजमान हो रही हो। लज्जावशत: सीता चचलता नही छोड़ सकी। परन्तु थी तो वे पण्डिता। इसलिए रामचन्द्र के विनय-पूर्ण वाक्यो से वे धीर-स्थिर हुई। (११)

ब्रीडावती—लज्जावती; धीरा—पण्डिता; धीर—स्थिर। (११)

बिदगध श्रीरामचन्द्र कहे, बन्धु जीवन थिवारे ए देहे,
बिळासिनी न करिबि आनकु, बोलि छुई दीप हुताशनकु। १२।

सरलार्थ—लीलाप्रिय कला-विलासचतुर रामचन्द्र ने कहा—"प्रिये ! जब तक मेरे शरीर मे प्राण है, तब तक मै अन्य रमणी को प्रिया नही करूँगा।" यह बोलकर उन्होने दीपाग्नि को छूकर शपथ ली। (१२)

बिदगध—लीलाप्रिय कलाविलास चतुर; बिलासिनी—प्रिया; दीप हुताशनकु—दीपाग्नि को। (१२)

बइदेही केशुँ काढ़ि केतकी, वर्ण्णलिखित पोछि कस्तूरीकि,
बळि नाहिँ आने आजियाए त, वळाइबि जन्मे-जन्मे मो चित्त। १३।

सरलार्थ—राम की सौगन्ध के उपरान्त सीता ने अपने केशो से केवड़ की एक पँखुडी निकाली और अपने चिबुक से कस्तूरी पोंछ लाई। पँखुडी पर कस्तूरी से अक्षर लिखे, "आज तक मेरा मन दूसरे पुरुष के प्रति नही ललचाया है, न तो भविष्य मे ललचाएगा ही। जन्म-जन्म मे मेरा मन आपके प्रति ही आकर्षित होता रहेगा। (१३)

वर मण्डपरु यिब बाहुड़ि, बार्त्तविहे तुम्भङ्कु नेबि लोड़ि,
वीरमुकुटे पत्र करि दत्त, विन्यस्त ये प्रदीपे कले हस्त । १४ ।

सरलार्थ—इस जन्म में तुम मेरे कान्त हो। दूसरे जन्म मे फिर कोई दूसरा वर अगर नियत हो, तो उसे विवाह-मण्डप से लौट जाना पड़ेगा। दूत से मै आपकी खोज करा लूँगी।" इतना ही लिखकर उन्होंने वीर-मुकुट रामचन्द्र जी को वह पत्र दिया और प्रदीप पर हाथ रख कर अग्नि की सौगन्ध खाई। (१४)

वइदर्भी चातुरी प्रकाशित, वक्षे संयोगि पड़ि रघुसुत,
वत्स-पादचिह्न परि हृदरे, बाह्ये न दिशि रखिले भितरे । १५ ।

सरलार्थ—माधुर्य-व्यंजक रीति के प्रकाशक पत्र को पढकर रामचन्द्र ने उसे अपने वक्ष पर लगा लिया। श्रीवत्स के पदचिह्न को हृदय पर धारण करने के समान उन्होने हृदय के भीतर उस पद के भाव को रख लिया। वह भाव बाहर नही दिखाई पड़ा। (१५)

वइदर्भी—(वैदर्भी)—माधुर्य-व्यंजक रीति; वत्सपादचिह्न—श्रीवत्स (भृगु मुनि) का पद-चिह्न। (१५)

विशदता चित्त-नभे उदय, बिनिर्गत हेला घन संशय,
विमळता रस ख्यात होइला, विकाशकु काशहास पाइला । १६ ।

सरलार्थ—संशय-रूपी मेघ के दूर होने पर दोनों के चित्तरूपी आकाश मे निर्मल भाव का उदय हुआ। शरत्काल के उपस्थित होने पर मेघ-समूह आकाश से हट जाता है, आकाश निर्मल होता है, जल की निर्मलता ख्यात होती है और काशफूल खिलते है। वैसे दोनो के मन निर्मल होने पर यहाँ शृगार रस ने ख्याति प्राप्त की और काशकुसुमो के सदृश दोनों का सुन्दर हास्य प्रस्फुटित हुआ। (१६)

विशदता—निर्मल भाव; विमलतारस—जल की निर्मलता, शृंगार रस की प्रसिद्धि। (१६)

बनजिनी शेय परे राजिता, बहे पुलकराजि प्रफुल्लता,
बन्ध सर्वतोभावे गला दिशि, बिचळित निर्मळे हेला शशी । १७ ।

सरलार्थ—शरत्काल में सरोवर मे पद्मों के प्रस्फुटित होने की तरह शय्या-सरोवर पर सीतारूपिणी पद्मिनी पुलक के मिस प्रस्फुटित हुई। अर्थात् इस समय सीता जी का शरीर पुलकित हुआ। फिर जैसे जल के सूख जाने से सभी बाँध सर्वतोरूपेण दिखाई पड़ते है, उसी प्रकार यहाँ

विविध रति-बन्ध सपूर्ण रूप से प्रकटित हुए। शरत्काल में मेघावरण-मुक्त चन्द्र के निर्मल होने के समान यहाँ भी चन्द्र-चालना यथारीति समाहित हुई। (१७)

वनजिनी—पद्मिनी; सर—सरोवर; बन्ध—बाँध, रतिबन्ध; (श्लेष); शशी—चंन्द्र, चन्द्र-चालना (श्लेष)। (१७)

विस्तृत ये हंसकर निःस्वन, वितपन नक्षत्रमाळा पुन,
व्युत्पत्तिरे युवती ऋतुमती, विधुनने शरद हेला ख्याति। १८।

सरलार्थ—शरत्काल मे सरोवरो मे हसों का शब्द सुनाई पड़ता है। यहाँ रतिक्रीड़ा के कारण भी नूपुरो का स्वन सुनाई पड़ा। निर्मल आकाश के कारण नक्षत्रमाला स्पष्ट दिखाई पडती है। उसी तरह सीता की कण्ठस्थित मुक्तामाला शोभित हुई। स्त्रियाँ ऋतुमती (पुष्पवती) होती है। इसलिए सीता को ऋतुमती (षट्ऋतुस्थानीया) समझकर खासकर रतिक्रीडा मे उन्हे 'शरतऋतु' के नाम पर आख्यात किया गया। (१८)

हंसक—हंस पक्षी, नूपुर; वितपन—प्रतिभात, प्रकाशमान; नक्षत्रमाला—तारका-समूह, मुक्तामाला; (श्लेष); व्युत्पत्तिरे—ज्ञान मे; विधुनने—रतिक्रीड़ा मे। (१८)

वीरे विख्यात तु सारसदृशा, वदनरे जड़कर प्रशंसा,
बिम्बाधरे त सदन मधुर, वक्षोरुहे गिरिसम विचार। १९।

सरलार्थ—वीर रामचन्द्र ने कहा, "अयि पद्मलोचने! तुम तुषार-सदृशा हो। अर्थात् तुम्हारी देह तुषारवत् शीतल है। इसलिए तुम तुषारकाल (हिमकाल) तुल्या हो। पुनः तुम्हारे जिस वदन से तुलनीय होकर चन्द्र प्रशस्य हो रहा है, शीतल होने के कारण वह वदन शीतकाल सदृश है। तुम्हारे विम्बाधरो के मधु (अमृत) के गृह होने की वजह से वह मधु (वसन्तऋतु) का स्थान वना हुआ है। तुम्हारे दोनो स्तन गिरि सम (पर्वत समान) होने की वजह से उनसे गिरीषम (ग्रीष्म ऋतु) की सूचना मिल रही है। (इस प्रकार तुम्हारे शरीर में हेमन्त, शीत, वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुएँ निवास कर रही है।) (१९)

वीरे विख्यात—वीर रामचन्द्र से कथित; तु सारसदृशा—तू (तुम) पद्मलोचना, तुषार सदृशा—तुषारवत् (शीतल, ठंडी); जड़कर—चन्द्र; मधुर—मधु (अमृत) का, वसन्त का; वक्षोरुहे—स्तनों को; गिरिसम—पर्वत समान, ग्रीष्म (गिरीषम) ऋतु के समान; (श्लेष)। (१९)

विधि घनजघना बोलिबार, व्यवहार ख्यात सर्व सेठार,
विनाशन हेला निशा एकाळे, वेशी प्राये गगन बिराजिले। २०।

सरलार्थ—अयि सीते ! तुम्हे घनजघना (निविड़जघना) बोलना उचित है।" यहाँ 'घन' शब्द का व्यवहार होने से वर्षा ऋतु की सूचना मिलती है। इस तरह व्यवहार मे सीता में शरदादि समस्त ऋतुएँ प्रतिभात हो रही है। इस समय निशा का अवसान हुआ। वेशवान् मनुष्य की तरह आकाश सुशोभित दिखाई पड़ा। (२०)

घनजघना—घनी जंघावाली, या घन के समान जंघावाली, वेशी-वेशवान्। (२०)

विधुकोळ दिग-वेश्या तेजिला, वेगे सविता भावरे मज्जिला,
वनजिनी ये कुळटा स्वभावे विकर्त्तन उल्लासे भृंग चुम्बे। २१।

सरलार्थ—प्रभात होते ही पूर्व दिशा रूपिणी वेश्या विधु (चन्द्र) की गोद का परित्याग करके सूर्य के भाव (अनुराग) मे निमज्जित हुई (डूब गई), अर्थात् सूर्य का उदय हुआ। पद्मिनी तो सहज ही विटपी (जार लोगो के द्वारा चुम्बित) है। क्योकि सूर्य उसे विकसित करते है और भ्रमर जार पुरुष के रूप मे उसे चुम्बन करता है। अर्थात् सूर्योदय होने से पद्मसमूह प्रस्फुटित हुए और उसके ऊपर वैठे भ्रमरगण मधुपान मे मस्त हुए। (२१)

विधु—चन्द्र; सविता—सूर्य; वनजिनी—पद्मिनी; कुळटा—विटपी, व्यभिचारिणी; विकर्त्तन—सूर्य; भृंग—भ्रमर, भौंरा। (२१)

बळिभुक सत्यबाक रचना, बिबुधे ये से वेश्यावश सिना,
बायस साहु डाककु पेचक, वृक्षकोड़े लुचे हीन खातक। २२।

सरलार्थ—उस समय कौवे सत्य वचन बोले, "देवता लोग भी वेश्यासक्त है", नही तो दिशा रूपिणी वेश्या से चन्द्र तथा सूर्य दोनो कैसे आसक्त होते ? फिर साहूकार की पुकार से जैसे दीनहीन देनदार छुप जाते है वैसे ही कौवो के रव सुनकर उल्लू भी हीनता प्रकाशपूर्वक जा कही वृक्ष-कोटर मे भय से छिप गये। अर्थात् सूर्योदय होने पर कौवो ने रव किया और उल्लू छिप गये। (२२)

बळिभुक—कौवे; सत्यवाक—सत्य वचन; विबुधे—देवता लोग; वायस—कौवा। (२२)

विचक्षणा कुमुदिनी देखइ, विष्फारित मुद्रिते सती मुहिँ,
वसि न पारि न रसि भ्रमर, व्यर्थ वाद देइ करे झंकार। २३।

सरलार्थ—एक कौवे ने कहा, "वास्तव मे कुमुदिनी ही को मैं एक पण्डिता के रूप में देखता हूँ। अपने कान्त चन्द्र की आकाश पर उपस्थिति में वह प्रफुल्लित होती है और कान्त के अभाव मे वह मुद्रित हो जाती है।

अतएव कुमुदिनी ही वास्तव में सती है। भ्रमर कामुक पुरुष की तरह उसके पास गया। परन्तु कुमुदिनी की उसके प्रति आसक्ति न होने से (आकृष्ट या रसमग्न न होने से) वह उस पर बैठ नही सका। इसी हेतु व्यर्थ ही उसकी निन्दा करके वह गुजन कर रहा है"। (२३)

विचक्षणा—बुद्धिमती, पण्डिता; कुमुदिनी—कुईलता। (२३)

वायु मन्द गुणकु आश्रे करि, बास पुष्पवतीर नेला हरि,
विश्वे समीर होइला रजक, विचारुछि अनुस्वारे अधिक। २४।

सरलार्थ—इसी समय वायु मन्द गुण का आश्रय लेकर धीमी गति से चलने लगा। उसने पुष्पिता लताओ के वास (सुगन्ध रूपी वस्त्र) का वैसे हरण किया जैसे 'मन्द' (विट) पुरुष पुष्पवती रमणी का वास (वस्त्र) हरण करता है। इसलिए वह समीर (पवन) इस संसार में रजक (धोबी) हुआ। फिर कवि ने विचार किया, "वायु पुष्पो की सुगन्ध का हरण करके जनो के चित्तो का रजन करने से 'रजक' नाम के सहित अनुस्वार लिये कुछ विशेषत्व को प्राप्त हुआ। अर्थात् वायु ने 'रंजक' (रजन करनेवाला) नाम को धारण किया। (२४)

मन्द—धीमा, नीच (विट); वास—वस्त्र, सुगन्ध; (श्लेष)। (२४)

बल्लीठारु कामुकी बळि नाहिँ, विनोदकु कुसुमे येणु देइ,
बिहइ ये सम्भोगकु मधुप, बेनि सबु काळरे अनुरूप। २५।

सरलार्थ—लता से बढ़कर कामुकी (व्यभिचारिणी) और कोई नही, चूँकि पुष्पिता होते समय वह भ्रमर को सम्भोग देकर उसका आनन्द बढाती है। फिर लता से सम्भोगकारी भ्रमर की तरह कामुक और कोई है ही नही। अतएव हमेशा कामुक-कामुकी का आचरण परस्पर के अनुरूप है। (२५)

बल्ली—लता; कुसुमे—पुष्पिता होते समय; विनोद—आनन्द। (२५)

बेश्मे दीप मळिन हेबा चाहिँ, बाहारिले कान्तपाशुँ वैदेही,
बामदेवारि ये रणे हारिला, बिजय ता रथ कि लेउटिला। २६।

सरलार्थ—केलिगृह मे जलते दीपक की ज्योति को मलिन होते देख कर (अर्थात् रात्रि का अन्त होना समझ कर) सीता अपने पति के समीप से जाने को उद्यत हुई। उनकी उस समय की मन्थरगति देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो रति-युद्ध में कन्दर्प की हार हो जाने पर उसका विजित रथ लौट रहा हो। (२६)

वेश्मे—केलिगृह में; वामदेवारि—(शिव जी का शत्रु) कन्दर्प। (२६)

बिळम्बित गति आन्दु विहिते, बारण कि ग्रोचिथिला ए प्रते,
बन्धहीने पृष्ठे लोटे चिकुर, वैजयन्ती अधोगति प्रकार । २७ ।

सरलार्थ—सीता की तत्कालीन मन्थर गति देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कन्दर्प ने उस रथ में पादभूषण रूपी वेड़ियों से हस्तियों को जोता था। फिर केशबंधन खुलकर पीठ पर लटक रहा है, जिसे देख यह प्रतीत हो रहा है, मानो पराजय के कारण कन्दर्प की रथ-पताका की अधोगति हुई हो। (२७)

आन्दु—सीकड़, बेड़ी, पादभूषण; बन्ध—बन्धन; चिकुर—केश; (उत्प्रेक्षा)। (२७)

बळा अळ्प झुमुझुमु स्वनित, बाजे पराजय-तूर ग्रेमन्त,
बिन्धे नयनछळे नीळोत्पळ, बाम दक्षिणे शर कि चचळ । २८ ।

सरलार्थ—पराजय-समय की तुरही धीमी बजती है। उसी तरह सीता के चरणों के पाजेव अब थोड़ा 'झुनझुन' बज रहे है। गमन के समय मन की चचलता के कारण सीता ने जब बायी और दाहिनी ओर चंचल दृष्टि डाली, तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो कन्दर्प सीता के नयनों की गति के बहाने उस-उस दिशा में अपने नीलकमल रूपी वाणों को बरसा रहा हो। (२८)

तूर—तुरही; बळा—पाद भूषण विशेष, पाजेब; उपमा तथा उत्प्रेक्षा। (२८)

बेढ़िगले सजनी चारिपाशे, विधानी से नोहिले परिहासे,
बिचारिले जाणिवे गुरुजन, बेश कले नीति सारि बहन । २९ ।

सरलार्थ—उस समय सखी-समूह ने चारो ओर से सीता को घेर लिया। परन्तु सीता के शरीर पर क्षतादि के चिह्न देखकर उनकी हँसी नही उड़ाई। विलम्ब होने पर गुरुजन वे चिह्न कही देख न ले, इस उद्देश्य से उन्होने सीता का नीति-अनुमोदित नित्यकर्म शीघ्र ही समाप्त करके उनका वेश-विन्यास किया। (२९)

बसिथिला ग्रे ओष्ठे रदपद, विद्रुमरे ग्रेमन्त कीटभेद,
विशेषरे ताम्बुळ भुञ्जाइले, विलोपकु ग्रे तार विचारिले। ३० ।

सरलार्थ—प्रवाल (मूँगे) पर कीट-दंशन-जनित क्षत-चिह्न दीखने की तरह सीता के रक्तिम अधरों पर दन्तों के आघात-चिह्न दिखाई दे रहे थे। उन्ही चिह्नों का लोप करने के लिए सखियों ने सीता को विशेष रूप से पान खिलाया। (३०)

रदपद—दन्त-चिह्न; विद्रुम—प्रवाल, मूँगा। (३०)

विध्वंसिले से चिह्न गण्डदेशुं, विहि मकरी चित्रक सन्तोषुं,
वक्षोजरे राजित नखक्षत, विधु-अर्द्ध शम्भुशिरे येमन्त । ३१ ।

वेढ़ाइण चोळ ता गुप्त करि, विजे वाहारे पुंसवर चारि,
वोले उपइन्द्र भञ्ज ए रस, बुझ बुधमाने पद वतिश । ३२ ।

सरलार्थ—फिर उन्ही सखियों ने सीता के सन्तोप-वर्द्धन के लिए सीता के गण्डस्थलो पर मकरी-चित्र-अंकन-पूर्वक वहाँ पर हुए क्षत-चिह्न का लोप किया । महादेव के शिर पर दीखने वाले अर्द्धचन्द्र की तरह उनके स्तनयुगल पर जो नखाघात के चिह्न दीख रहे थे, उन्हें चोली से छिपा दिया । अनन्तर राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न, ये चार पुरुप-श्रेप्ठ वाहर जाकर विराजे । उपेन्द्रभञ्ज ने इस रस का वत्तीस पदो मे वर्णन किया । हे पण्डितो ! उसे समझो । (३१-३२)

वक्षोज—स्तन; विधुअर्द्ध—अर्द्धचन्द्र; चोळ—चोली; बुधमाने—हे पण्डितो। (३१-३२)

॥ इति पंचमदस छान्द ॥

षोड़श छान्द

राग—नळिनी गौड़ा

बिदेह राजन भोजि सम्भार भिआइ।
बिळोहिले दशरथ बन्धु वर्ग नेइ ये। १।

सरलार्थ—विदेह-नरपति जनक ने पूर्ण भोजन-सामग्रियों का आयोजन करके राजा दशरथ के बन्धुओं का सत्कार किया। (१)

भिआइ—आयोजन करके; बिळोहिले—सत्कार किया। (१)

बसन रत्न भूषण कुसुम चन्दने।
बन्दिले चरणे अति आनन्दित मने ये। २।

सरलार्थ—तदनन्तर प्रसन्न मन से वन्धुओं को बस्त्र, आभूषण, फूल, चन्दन आदि उपहार प्रदान करके सत्कार किया। (२)

बसापुरे वरकन्या घेनि गला बेळे।
बसाइ कोळे जननी माने तिआरिले ये। ३।

सरलार्थ—ससुराल को वरो तथा कन्याओ के जाते समय कन्याओं की माताओं ने कन्याओं को गोदो मे बैठाकर बहुत सुदुपदेश दिये अर्थात् कुल-वधुओं के आचार-व्यवहार की शिक्षा उन्हें दी। (३)

बसापुर—बसेरों को; तिआरिले—बहुत सदुपदेश दिये। (३)

बीरसू[1] सन्निधे हेउँ बधू आलोकरे।
बिरसु[2] उद्धरि हेले थिले ए लोकरे ये। ४।

बरङ्क सुषमा समा कन्या थिबे काहिँ।
बिचारु थिलाइँ विहि[1] भल थिला बिहि[2] ये। ५।

सरलार्थ—जब कन्याएँ कौशल्यादि वीरप्रसू जननियों के पास पहुँची, तो बधुओं के दर्शन से उन्होंने विरस भाव का त्याग किया अर्थात् परमानन्द का भोग किया। कन्याओं की शोभा का निरीक्षण करके उन्होने आपस मे कहा कि (जैसा) हम लोगों ने सोचा था कि हमारे पुत्रों

को परम सौन्दर्यमयी रूपसी कन्याएँ यदि मिल जावें तो सही, (अहोभाग्य!) परन्तु विधाता को धन्यवाद कि जिन्होंने ऐसी कन्याओं का निर्माण किया था; परिणामस्वरूप ससार में ऐसी कन्याएँ उपलब्ध हो गयी। (४-५)

वीरसू[१]—वीरप्रसविनी; आलोकरे– दर्शन से; विरसुं[२]—विरसता से; विहि[१]—विधाता; विहि[२]—विधान (निर्माण) किया था। (यमक) (४-५)

वर्त्तमान भूत भविष्यरे शोभासार।
बोलिबार सम्भबिला एहाङ्क ठावर ये। ६।

सरलार्थ—इन्ही के बारे में यह बोलना सम्भव हुआ कि वर्त्तमान, भूत, तथा भविष्यत्—इन तीनों कालो की सुन्दरी कन्याओं में ये श्रेष्ठा हैं। (६)

वसुमती गर्भु ग्रह दैत्य जात होइ।
विभृत ता गर्भे सीता होइथिला केहि ये। ७।

सरलार्थ—जिस पृथिवी के गर्भ से कदाकार (कुबड़ा) मंगलग्रह तथा नरकासुर पैदा हुए थे, उसमे ऐसी परम सुन्दरी सीता कैसे पाली-पोसी गयी थी, यह वास्तव मे अचरज की बात है। (७)

वसुमती—पृथिवी; ग्रह—मंगलग्रह; दैत्य—नरकासुर; विभृत—पालित, पोषित; केहि—कैसे, किस रूप में। (७)

बारुणी बिष अमृत यथा सिन्धु जात।
बिश्वम्भराकु जानकी जनित तेमन्त ये। ८।

सरलार्थ—एक ही गर्भ मे अच्छा और बुरा दोनों होते है। समुद्र से शराब व जहर के उत्पन्न होने के उपरान्त अमृत जिस प्रकार उत्पन्न हुआ था, उसी तरह पृथिवी से कुबड़ा ग्रह तथा नरकासुर के जन्म के बाद सीता (जैसी सुलक्षणा) उत्पन्न हुई। (८)

वारुणी—मद्य, शराब; विश्वम्भरा से—पृथिवी से। (८)

बिधि उभा बिधि भला ए जात हेबाकु।
बोळिथिला गन्धवती रत्नगर्भा ताकु ये। ९।

सरलार्थ—विधाता उत्तम है तथा उनका विधान भी उत्तम है; क्योंकि इसके पहले कि पृथिवी से सौरभवती स्त्री-रत्न सीता जन्म ग्रहण करे, उन्होंने उसे 'गन्धवती' तथा 'रत्नगर्भा' आख्याएँ प्रदान की हैं। (९)

बरर्वाणिनी[1] वरङ्क चउठी उत्सव ।
बरर्वाणिनी[2] क्रीड़ाकु रचिले बान्धव ये । १० ।

सरलार्थ--सीतादि गौरांगी कन्याओं तथा रामादि वरों का चतुर्थी उत्सव सम्पन्न हुआ । उस दिन दशरथ के बन्धुओं ने हल्दी-पानी क्रीड़ा का उत्सव मनाया । (१०)

वरर्वाणिनी[1]—गौरांगी कन्या; वरर्वाणिनी[2]—हल्दी अर्थात् हल्दी-पानी; (यमक) । (१०)

बनक हरिताळे कि प्रळय होइला ।
बर्णाञ्जन जन हेले सुवर्ण पितुळा ये । ११ ।

सरलार्थ--हल्दी-पानी से सबके लथपथ हो जाने से कवि ने उत्प्रेक्षा की कि हल्दी वर्ण के जल से मानों पृथिवी में प्रलय उमड़ आया हो । इसी पानी के द्वारा लथपथ होकर श्यामलवर्ण के लोग सोने की प्रतिमाओं के समान दिखायी पड़े । (११)

वनक—वर्ण, रंग-विशेष; हरिताळे—हल्दी; वर्णाञ्जन—अंजन (श्यामल) वर्ण के; पितुळा—प्रतिमाएँ, पुतलियाँ । (उत्प्रेक्षा) (११)

बिभार बिधि येतेक पाइले पूर्णकु ।
बोलाइले अजसुत पुर गमनकु ये । १२ ।

सरलार्थ--सारे विवाह-विधानों के समाप्त होने के उपरान्त दशरथ ने अपने पुर में जाने के लिए किसी अन्य जन द्वारा कहला भेजा । (१२)

अजसुत—दशरथ । (१२)

बिभरण करि आणि बुहाइ जनक ।
बचनीय नोहे येते देले य़उतुक ये । १३ ।

सरलार्थ--यह सुनकर जनक राजा ने पिटारियों आदि में भर कर तथा लदवाकर जितने द्रव्य दहेज के रूप में दिये, वे सब अनिर्वचनीय है अर्थात् उन्हें वचनों में नही कहा जा सकता । (१३)

यौतुक—दहेज । (१३)

बातायु लोमज कउशेय जरिबस्त्र ।
ब्रह्मास्त्र समान करि सर्मर्पिले अस्त्र ये । १४ ।

सरलार्थ--और भी मृगलोम से बने रेशमी वस्त्र, जरी वस्त्र और ब्रह्मास्त्र के समान अस्त्र सब दहेज के रूप मे प्रदान किये । (१४)

वातायुलोमज—मृगलोम से बने; कउशेय—(कौशेय)—रेशमी वस्त्र। (१४)

बृषाहय परि हयचय, करी तहिँ।
बासव-गज-तनय नय उपुजइ ग़े। १५।
वारांनिधि शून्य कला परि रत्न दिए।
बेळ-बुझा पारावत ज्योतिर्विद प्राये ग़े। १६।
बिहङ्गे शुक सारिका श्ळोक पढ़ा होइ।
बिद्याधरी-विजिता दासी त थिले देइ ग़े। १७।

सरलार्थ—इनके अलावा इन्द्र के उच्चैःश्रवा घोड़े के समान घोड़े, ऐरावत के पुत्र के समान हाथी, समुद्र (रत्नाकर) के समान राजकोष को शून्य करनेवाले (अर्थात् असंख्य) रत्न, ज्योतिर्विदो के समान पारावत (कबूतर) और पक्षियों मे श्लोक पढनेवाले तोते तथा मैनाएँ यौतुक(दहेज) स्वरूप प्रदान किये। इन्हे देने के पहले विद्याधरियो से अधिक सुन्दरी दासियाँ भी दी थीं। (१५-१६-१७)

वृषाहय—इन्द्र का उच्चैःश्रवा घोड़ा; हयपय—अश्वसमूह; बासव-गज-तनय—इन्द्र के ऐरावत हस्ती का पुत्र; नय—सदृश; वारानिधि—समुद्र; वेळबुझा—कालों को जानने वाला (ज्योतिर्विदो की तरह); विद्याधरीविजिता—अप्सराओ से अधिक सुन्दर। (१५, १६, १७)

बाहारिले छाड़ि से मिथिळा नरेश्वर।
विजये सुखासनरे चारि कन्या बर ग़े। १८।

सरलार्थ—मिथिलाधिपति जनक जी ने जब देखा कि दशरथ जीससैन्य अयोध्या लौटने को प्रस्थान कर रहे है, तो उन्हें विदाई देने के लिए वे चले। चार कन्याएँ तथा चार वर पालकियों में विराजमान हुए। (१८)

सुखासन—पालकियाँ। (१८)

बळ साजि गमन बाजन्ते बाद्यमान।
बळपर आदि देवे करन्ति लोकन ग़े। १९।

सरलार्थ—राजा दशरथ सैन्यो के सहित रवाना हुए। सकल वाद्य बज रहे है। इन्द्रादि देवता लोग आकाश से दशरथ जी को अपने पुत्रों, वधुओ तथा सैन्यो के सहित प्रस्थान करते देख रहे है। (१९)

वळपर—इन्द्र। (१९)

बिशाळ भूपाळ मेळ होइले पथर।
वंशे मित्तर ग़े जात के होइब पर ग़े। २०।

सरलार्थ—बड़े-बड़े राजा लोग आकर मार्ग में दशरथ जी से मिले। मित्र (सूर्य) वंश में जो उत्पन्न हुए हैं, उनका भला कौन शत्रु हो सकता है ? अर्थात् सब राजाओं ने मित्रभाव प्रकट किया। (२०)

मित्रवंश—सूर्यवंश; पर—शत्रु। (२०)

बीरबाहु भृगुपति त्रास देबा पाइँ।
बास कला गिरि भृगु चमकन्ते तहिँ ये। २१।

सरलार्थ—वीर-रूपी चन्द्रों के लिए राहु के समान ग्रासकर्त्ता वीरश्रेष्ठ परशुराम को भय प्रदान करने के लिए उन लोगों ने उस पर्वत की अधित्यका को, जहाँ परशुराम जी वास करते थे, वीर वाद्यों से चौंका दिया। (२१)

भृगुपति—परशुराम; गिरिभृगु—पर्वत की अधित्यका। (२१)

बीतिहोत्र पराये स्वभावे तेजोवन्त।
बीरतूर घृताहुति लागि प्रज्वळित ये। २२।

सरलार्थ—वे परशुराम स्वभावतः अग्नि के सदृश तेजस्वी हैं। वीर-तुरही रूपी घृताहुति के योग से वे क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। (२२)

वीतिहोत्र—अग्नि। (२२)

बिदित काष्ठाबळिरे लागि पाँशु बर्ष्मे।
व्याकुळित दशरथ हेले सेहि त्रासे ये। २३।
बोइले प्रचण्डानळ आसुअछि जळि।
बुद्धि न दिशे कुमरे हेले तृणावळि ये। २४।

सरलार्थ—अग्नि (काष्ठावळि) लकड़ियों में प्रकाशित होती है। परशुराम रामचन्द्र जी की सामनेवाली दिशा (काष्ठावळि) में प्रकट हुए। अग्नि के शरीर में राख लगी रहती है। उसी प्रकार परशुरामजी ने अपने शरीर में राख मली है। उनके भय से दशरथजी ने व्याकुल होकर कहा, 'वह देखो, प्रचण्ड अग्नि जलती हुई आ रही है। मेरे लड़के निश्चय ही तृणों के समान जल मरेंगे। रक्षा की कोई युक्ति मुझे दिखायी नहीं पड़ती।' (२३-२४)

काष्ठावळिरे—लकड़ियो में, दिशाओं में (श्लेष); पाँशु—राख, भस्म; वर्ष्मे—शरीर में। (२३, २४)

बिश्बामित्र श्रवणरे कले प्रतिभाष।
बिनाश तहिँ उत्पत्ति यहिँरु न घोष ये। २५।

सरलार्थ—दशरथ के ये वचन सुनकर विश्वामित्रजी बोले, 'अग्नि जल से उत्पन्न होकर उसी जल से विनष्ट होती है। ये परशुराम जिन विष्णु भगवान् से उत्पन्न (अवतरित) हुए है, उन्ही में लीन हो जायेगे। ऐसा क्यों नही बोल रहे हो ? (२५)

प्रतिभाष—प्रत्युत्तर; न घोष—न रटते हो, नहीं बोलते हो क्यों ? (२५)

ब्योम अयोध्यारे उदे मुदिर सुन्दर।
बह्नि तपन केमन्ते रहिब ताहार ये। २६।

सरलार्थ—अयोध्या के आकाश मे मेघ के सदृश श्यामसुन्दर रामचन्द्र का उदय हुआ है। उनके सम्मुख परशुरामजी का अग्नि-तेज कैसे रह सकता है ? प्रकाशतः विष्णु भगवान् के अश मे परशुरामजी का जन्म हुआ था। अब सपूर्ण कलाओं को लेकर रामचन्द्र अवतरित हुए है। अतएव रामचन्द्र के सामने उनका आंशिक विष्णु-तेज लुप्त हो जायेगा। (२६)

ब्योम—आकाश; मुदिर—मेघ; बह्नितपन—अग्नि के समान तेज। (२६)

बामदेब बोइले करिछि तोते रक्षा।
बाञ्छि पुत्रङ्क कल्याणे आसुअछि दक्षा ये। २७।

सरलार्थ—अनन्तर वामदेव ऋषि ने दशरथ से कहा, 'क्षत्रियकुल का विनाश-साधन करते समय प्रवीण परशुराम ने तुम्हारी रक्षा की है। सुतरा तुम्हारे सहित युद्ध-करने नही आ रहे होगे। शायद तुम्हारे पुत्रों की कल्याण-कामना करके वह आ रहे है। तुम डरो मत।' (२७)

बाञ्छि—कामना करके; दक्षा—प्रवीण परशुराम। (२७)

बशिष्ठ बोइले ग्रह मङ्गळ बोलाइ।
बिना दाने शान्ति नोहे अमङ्गळदायी ये। २८।

सरलार्थ—यह बात सुनकर वशिष्ठजी ने कहा, 'मंगलग्रह केवल नाम से मगल कहलाता है, परन्तु वास्तव मे अमगल फल देता है। उसे दान दिये बिना वह शान्त नही होता। उसी तरह परशुराम के विष्णु-तेज का दान (छेदन, हरण) न करने से वह कदापि शान्त नही होगे, बल्कि अमगल घटायेगे।' (२८)

दाने—ग्रहशान्ति के लिए दिये जाने वाले दान, छेदन (हरण); (श्लेष)। (२८)

वीर शाद्‌दूळ लोकने भाजे सैन्यमृग।
विनयी हेले नृपति अत्यन्त उद्‌वेग ये। २९।

सरलार्थ--बाघ को देखकर जैसे हिरन भाग जाते है, उसी तरह शार्दूल (बाघ) के समान वीर परशुराम के दर्शन से सैन्यरूपी हिरन नौ दो ग्यारह हो गये। अत्यन्त भय तथा उद्वेग से दशरथजी परशुरामजी के प्रति विनयी हुए। (२९)

वीरशार्द्दूळ—व्याघ्र के सदृश वीर, वीरश्रेष्ठ। (२९)

बृद्धकाळे पुत्रदान कले ऋष्यशृंग।
बिबाह उत्सव करि बाहुडुछि नग्र ये। ३०।
बिजे कल कृपारे एठाकु भृगुराज।
बृद्धि हेब आयु ताङ्कु दिअ पादरज हे। ३१।

सरलार्थ--भय से दशरथजी ने कहा, 'बुढ़ापे में ऋष्यशृंग मुनि ने कृपा करके मुझे पुत्रदान दिया है। अभी-अभी उन पुत्रों का विवाहोत्सव सम्पन्न करके हम लोग नगर को लौट रहे है। हे भृगुवंशश्रेष्ठ! आप कृपापूर्वक यहाँ पधारे है। अतएव मेरे लड़को की आयुवृद्धि के लिए उन्हे कल्याण-प्रदान के मिस अपनी पद-रज दीजिए।' (३०-३१)

बिष्णुर आबेश अबतार होइ तब।
विज्वळित कोपे भक्त भक्ति न घेनिब हे। ३२।

सरलार्थ—फिर बोले, 'आप विष्णु भगवान् के आवेश अर्थात् कला-संचार में एकांश कला लिये पृथिवी में अवतीर्ण हुए है। अतएव क्रोधाग्नि में प्रज्वलित होकर भक्त की भक्ति का ग्रहण न करना क्या आपको उचित है?' (३२)

आवेश—कला-संचार; विज्वळित—विशेष रूप से जले हुए, प्रज्वलित; न घेनिव—ग्रहण नहीं करोगे? (३२)

वोलुँ बोले येउँ राम बड़ाइ प्रकटे।
बीर बाद्य बजाइ याउछि मो निकटे ये। ३३।
बिश्वे न जाणे क्षत्रियबिमर्द्दन—वाना।
बसुधारे तार शिर लोटाइबि सिना ये। ३४।

सरलार्थ—दशरथ जी के ये विनय-भरे वचन कहने पर परशुरामजी ने उत्तर दिया, 'जिस राम की वड़ाई प्रकट करने के लिए मेरे निकट भी वीर-वाद्य बजाये जा रहे है, उसका सिर काटकर मै पृथिवी पर आज ही अवश्य लुढकाऊँगा। तुम क्या नही जानते कि संसार मे मेरी क्षत्रिय-विमर्द्दन-पताका फहरा रही है?' (३३-३४)

लोटाइबि—लुढ़काऊँगा। (३३, ३४)

बोले नृप क्षीरकण्ठ मारि केउँ यश ।
बिक्रमिण गला से न शुणि राजा भाप ये । ३५ ।

सरलार्थ—दशरथजी ने कहा, 'आप इन क्षीरकण्ठ वालकों का वध करके कौन-सा यश लाभ करेंगे ?' परशुराम राजा की वातों को सुने विना उत्तरोत्तर विक्रम प्रदर्शित करते हुए राम के पास गये । (३५)

क्षीरकण्ठ—दूध पीने वाले; केउँ यश—कौन-सा यश ? (३५)

बक्ता लक्ष्मण काहाकु पचारिले प्राये ।
बाचाळे काहुँ प्रवेश आम्भ सैन्ये हुए ये । ३६ ।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने यह देखकर कहा—मानों किसी दूसरे को सुनाकर पूछ रहे हो, 'हमारे सैन्यो के बीच एक पागल कहाँ से आकर घुस गया है ?' (३६)

बाचाळे—एक पागल । (३६)

व्याळे लोष्ट्र प्रहारिला प्राये रहि कहि ।
बिषकण्ठे क्षीरकण्ठ बोलुथिला केहि ये । ३७ ।

सरलार्थ—साँप पर ढेला मारने से वह जैसे रह-रहकर फुकारता है, वैसे लक्ष्मण के वचन सुनकर परशुराम ने गरजकर कहा, 'यह तो एक विपकण्ठ सर्प है। ऐसे बालको को दशरथ अभी क्षीरकण्ठ कैसे कह रहा था ?' (३७)

व्याळे—साँप पर; लोष्ट्र—ढेला; विषकण्ठे—सर्प को; केहि—कैसे । (३७)

बिषकण्ठ येबे तब गुरु हेबा, स्तब ।
बिरचि कि आसिअछ कहुँ कहे जब ये । ३८ ।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने कहा, 'हम लोग यदि विषकण्ठ अर्थात् महादेव है, तो तुम्हारे गुरु सिद्ध हुए । अतः हम लोगो की स्तुति करने के लिए तुम आये हो क्या ?' उनके ऐसा कहने पर परशुराम ने शीघ्र कहा— (३८)

विषकण्ठ—महादेव (श्लेष वक्रोक्ति में लक्ष्मण जी ने उत्तर दिया।) (३८)

बंशधनु कीटभेद थोउँ थिला होइ ।
बिभञ्जने ताहा महावीर ये बोलाइ ये । ३९ ।
बध आग ताकु बिचारिबा पछे तुहि ।
बोले अन्धमते चन्द्रसूर्य्य यथा नाहिँ ये । ४० ।

सरलार्थ—परशुराम ने कहा, 'कीटदष्ट बाँस के धनुष को तोड़कर जो

महावीर कहला रहा है, उसी का पहले वध करके उसके बाद तेरा हम वध करेंगे।' लक्ष्मण ने यह सुनकर कहा, 'अन्धा जैसे अपने मन में सोचता है कि इस पृथिवी में चन्द्र-सूर्य नही है, वैसे तुम भी सोच रहे हो क्या कि इस पृथिवी पर और कोई वीर नही है।' (३९-४०)

कीटभेद—कीड़ों से काटे (बाँस के धनुष को); विभंजने—विशेष रूप से तोड़-कर। (३९, ४०)

बिभ्राजि परशुराम श्रीराम भेटिला।
बिवादी ताहाङ्क सेहि सेकाळे घोटिला ये। ४१।

सरलार्थ—अनन्तर परशुराम ने विक्रम-प्रदर्शन के साथ जाकर श्रीराम चन्द्र जी से मुकाविला किया। इस समय स्वयं विष्णु भगवान् के उन्ही विष्णु जी के अंश के साथ विवादी होने की घटना संघटित हुई। (४१)

विषम समस्या हेला पूरण एठारे।
बिदित खण्डेन्दु किवा पूर्णेन्दु आगरे ये। ४२।

सरलार्थ—यहाँ एक विषम समस्या पूर्ण हुई। रामचन्द्रजी के सामने परशुरामजी को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पूर्णचन्द्र के सामने खण्ड चन्द्र उदित हुआ हो। (रामचन्द्र विष्णु के पूर्णावतार और परशुराम विष्णु के अशावतार या कलावतार है।) (४२)

बिधु अवतार दुहिङ्कर सेहिपरि।
बिन्यस्त द्वितीया आगे पछे राका करि ये। ४३।

सरलार्थ—चन्द्र और विष्णु—दोनों के अवतार परस्पर समान है। पहले द्वितीया चन्द्र और वाद मे पूर्ण चन्द्र का प्रकाश होता है। उसी प्रकार पहले विष्णु भगवान् का परशुरामावतार और उसके वाद रामावतार हुआ है। (४३)

विधु—चन्द्र, विष्णु; (श्लेष); राका—पूर्णिमा तिथि। (४३)

बोइले आहे रघुनन्दन आहे विप्रबर।
बाहुज बृत्तिरे किपाँ मिळिल एठार ये। ४४।

सरलार्थ—परशुराम को सामने देखकर रामचन्द्रजी ने कहा, 'हे विप्रवर! आप क्षत्रिय-वृत्ति लिये यहाँ कैसे आ मिले?' (४४)

ब्याज ए शबर प्राये कुठारे त वह।
बृत्ति करिछ समिध विक्रय कि कह हे? ४५।

सरलार्थ—यह क्या आपका बनावटी पेशा है ? ब्राह्मण होकर शबर या लकडहारे के समान कुल्हाड़ी हाथ में पकड़े हुए है। क्या लकड़ी वेचने का पेशा अपनाया है आपने ? यह तो ब्राह्मण की उचित वृत्ति नही है। (४५)

ब्याज—छल, धोखा, कपट; समिध—काठ, लकड़ी। (४५)

बिष्टर करक पात्री बहिबाकु देबा।
ब्राह्मण्य ! आम्भे तुम्भङ्कु पूजन करिबाहे। ४६।

सरलार्थ—हे ब्रह्मण्य ! अगर आप हमसे कहें, तो हम आपको कुशासन, कमण्डलु तथा ताम्रपात्री देकर आपकी पूजा करेंगे। (४६)

बिष्टर—कुशासन; करक—कमण्डलु। (४६)

बाल्मीकि खण्ट वृत्तिकि आश्रे करिथिले।
बन्द्य जगते से साधु दर्शने होइले य़े। ४७।
बिचारि एमन्त आसिथिले भल कथा।
ब्यथा लभि रेणुकेय बोइले ए बृथा ये। ४८।

सरलार्थ—बाल्मीकि ऋषि ने पहले डाकू के पेशे को अपनाया था। परन्तु साधु नारदजी के दर्शन से वे ससार-बन्द्य हुए। उसी तरह आप हम लोगो के दर्शन से जगद्बन्द्य होंगे। ऐसा मन में विचार करके अगर आये हो, तो अच्छी बात है।' यह सुनकर परशुरामजी ने मन मे व्यथा पाकर कहा, 'यह सब तेरी व्यर्थ बकवास है।' (४७-४८)

खण्टवृत्ति—डकैती; बन्द्य—पूज्य; रेणुकेय—परशुराम। (४७, ४८)

बने पशि स्तिरीए ताड़की नामे हाणि।
बहुत काळरु थुआ धनु भाङ्गि पुणि य़े। ४९।
बीरधू प्रकाशिअछु मोर धनु धर।
बिग्रह कि आरम्भिबा दाशरथिठार य़े। ५०।

सरलार्थ—इसके अनन्तर परशुराम ने कहा, "तूने जगल में घुसकर ताड़का नाम की एक मामूली स्त्री का वध किया एव फिर अभी बहुत दिनों से रक्खे कीड़ो से खाये हुए पुराने धनुष को तोड़कर वीरत्व का प्रकाश कर रहा है। मेरा धनुष पकड़ तो सही ! तू तो दशरथ का लड़का है। तेरे साथ हम झगड़ा कैसे करें ? (हम दशरथ की वीरों में गिनती नही करते। तू उसी का तो लड़का है ! तुझे कैसे एक वीर के रूप में हम गिने ?') (४९-५०)

हाणि—हनकर, वध करके; वीरधू—वीरता, बहादुरी। (४९, ५०)

बामकर बढ़ाइले राम शुणि करि ।
बढ़ाइ देउँ से धनु विष्णु तेज हरि ये । ५१ ।

सरलार्थ--यह सुनकर रामचन्द्रजी ने धनुष को धारण करने के लिए बायाँ हाथ पसारा । परशुराम ने धनुष वढ़ा दिया । उस धनुष के द्वारा रामचन्द्रजी ने उनके विष्णु-तेज को हर लिया । (५१)

बिमना जानकी ये सपत्नी भय गुणि ।
बिभञ्जाइ ऋषि एत पुणि चापे आणि ये । ५२ ।

सरलार्थ—यह देख सीताजी के मन में सपत्नी (सौत) होने की आशका उत्पन्न हुई जिससे वे बहुत दुखी हुई । उन्होने सोचा कि मेरे पिता जनकजी ने धनुर्भग के प्रण मे मुझे रामचन्द्रजी को ब्याह दिया । उसी तरह यह ऋषि भी शायद अपनी कन्या को उनसे ब्याह देने के मतलब से यह धनुष बढ़ा रहा है । (५२)

बिमना—दुःखिता; विभञ्जाइ—तोड़ने के लिए । (५२)

वोधिले बल्लभी कान्त कर्णपाशे कहि ।
बळ कषे बिबाह कार्य्य ए नोहे सहि गो । ५३ ।

सरलार्थ—सीता का मनोभाव जानकर और उन्हें दुखी होते देखकर रामचन्द्रजी ने अपनी प्रिया के कानों से लगकर धीरे-धीरे बात कही, 'अरी सखि ! यह धनुष-भग विवाह के उद्देश्य से नहीं, इससे परशुराम हमारा बल परख रहे है ।' इस प्रकार प्रभु ने अपनी पत्नी को सान्त्वना दी । (५३)

बसिबा ठाबरे गुण देइ सन्धि शर ।
बिन्धिबा काहिँकि बोलि पचारिले वीर ये । ५४ ।

सरलार्थ--अपने बैठने के स्थान पर वीर रामचन्द्र ने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ायी और उस पर शर चढ़ाकर परशुराम से पूछा, 'हम आपको क्या (किस लक्ष्य पर) तीर मारे ?' (इससे परशुराम के गर्व-नाश तथा रामचन्द्रजी के शौर्यातिशय्य की सूचना मिली ।) (५४)

बसिबा ठावरे—बैठने की जगह में; गुण—प्रत्यंचा; विन्धिवा काहिकि—क्यों तीर मारे ?; पचारिले वीर—वीर रामचन्द्र ने पूछा । (५४)

बोले परशुराम मो पाप भार छेद ।
बिच्छेदिले रामचन्द्र से हेले प्रमोद ये । ५५ ।

सरलार्थ--रामचन्द्रजी के यह प्रश्न करने पर परशुराम ने कहा, 'मेरे

कृत पाप-भार का छेदन करो।' यह सुनकर रामचन्द्र ने तीर मारकर परशुराम के पाप-भार का छेदन किया। इससे परशुराम को वड़ा हर्ष हुआ। (५५)

बाहुड़न्ते प्रदक्षिण करि देव-बुद्धि।
बाजिला बिबिध बाद्य बिजे कृपानिधि ये। ५६।

सरलार्थ—परशुराम रामचन्द्रजी को स्वयं नारायण का अवतार समझकर उनको प्रदक्षिणा करके वहाँ से लौट गये। अनन्तर विविध वाद्य बजने लगे और कृपानिधि रामचन्द्रजी वहाँ विराजमान हुए। (५६)

बाहुड़न्ते—लौटते; करि देवबुद्धि—नारायण का अवतार समझकर; बिजे—विराज मान होना; कृपानिधि रामचन्द्र। (५६)

बळगण्डिठारे रहि यथा जगन्नाथ।
बिजे पुणि जनक सन्तोषे चाळि रथ ये। ५७।

सरलार्थ—जैसे जगन्नाथ महाप्रभु लोगो के सन्तोष-विधानार्थ वळगण्डि मे कुछ समय ठहरते है और फिर रथ पर यात्रा कर पधारते है उसी तरह रामचन्द्रजी ने परशुरामजी की पराजय के उपरान्त वहाँ कुछ समय तक ठहर कर फिर पिता दशरथजी को सन्तोष देने के निमित्त वहाँ से रथ बढ़ाकर प्रस्थान किया। (५७)

बळगण्डि—वड़दाण्ड (रथयात्रा के अवसर पर महाप्रभु श्री जगन्नाथ जी, श्री बलभद्र, तथा देवी सुभद्रा के रथ जिस मुख्य मार्ग या सड़क पर खींचे जाते हैं) पर रथों के अटकने का प्रथम स्थान। (५७)

बिस्तारित जय शब्द हेला दशदिश।
बड़ देउळ साकेते हेले परबेश ये। ५८।

सरलार्थ—जगन्नाथधाम पुरी में जगन्नाथजी की जयध्वनि से दसो दिशाएँ गूँज उठती है। यहाँ परशुराम पर रामचन्द्रजी की विजय-जनित ध्वनि दसो दिशाओ में फैल गयी। तदनन्तर 'वड़देउळ' (श्रीमन्दिर) के सदृश अयोध्या के राजप्रासाद मे प्रभु श्रीरामचन्द्र ने प्रवेश किया। (५८)

वड़देउळ—श्री मंदिर, पुरी-स्थित जगन्नाथ जी का मन्दिर; साकेत—अयोध्या नगरी। (५८)

बिधिरे त बेनि महोत्सव अबलोक।
बृन्दारके एहा मित्रकरणे बिबेक ये। ५९।

सरलार्थ—जगन्नाथ महाप्रभु के गुण्डिचा महोत्सव (रथयात्रा महोत्सव)

तथा रामचन्द्र के विवाहोत्सव—दोनों को तो देवताओं ने देखा है। अतएव वे ही विचार करे कि ये दोनों महोत्सव शोभा में परस्पर समान है या नही। (५९)

बेनि महोत्सव—दोनों महोत्सव—(१) राजा इन्द्रद्युम्न की रानी श्रीमती गुण्डिचा देवी के नामानुसार पुरी मे अनुष्ठित गुण्डिचा महोत्सव या रथयात्रा महोत्सव जो प्रति-वर्ष आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वितीया तिथि में मनाया जाता है। (२) रामचन्द्र का विवाह महोत्सव; वृन्दारके—देवता लोग; मित्र करणे—समान करने में; विवेक-विचार करे। (५९)

बचन नाहिँ यहिँकि उपमा ताकु से।
बइकुण्ठ मर्त्त्ये सेहि ये पुरे बिळसे ये। ६०।

सरलार्थ– जिस पुर की तुलना करने के लिए जगत् में कोई उपमान नही है, उसकी हम क्या उपमा दे ? अतएव वही पुर अकेला ही उसी से तुलनीय है। स्वयं रामचन्द्रजी जिस पुर मे विलास कर रहे है, वही पुर मर्त्त्य में वैकुण्ठ है। (६०)

बळे छड़ाइ चन्द्रुँ से सुधाकर पद।
विशद हासे उड़ाइ रखे बिष्णुपद ये। ६१।

सरलार्थ---यह पुर चन्द्र से 'सुधाकर' पदवी छीन लाया है; क्योंकि चन्द्र अमृत-किरण को धारण करते है। इस पुर ने चूने की शुक्ल प्रभा को धारण किया है। फिर इस पुर ने अपने शुक्ल हास्य मे चन्द्र को उड़ाकर आकाश पर टिकाया है, अर्थात् सफ़ेदी में यह पुर चन्द्र से भी बढ़ गया है। (६१)

सुधाकर—चन्द्र; विशद—शुक्ल; (व्यतिरेक अलंकार)। (६१)

विष्णुपद सम्पद लुटिरु रत्नमये।
चढ़ाइ पताका कर आणिलार प्राये ये। ६२।

सरलार्थ---रत्नपूर्ण उस पुर को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों यह पताका-रूपी हाथ को वढ़ाकर वैकुण्ठपुर की सारी सपत्ति लूट लाया हो। (६२)

विष्णुपद संपत्ति—क्षीरोद समुद्र मध्यस्थ वैकुण्ठपुर की संपत्ति। (६२)

बाटिका यहिँर करे नन्दन निन्दन।
बल्लिका कुसुम पारिजातक बन्दन ये। ६३।

सरलार्थ---उस अयोध्यापुरी की पुष्पवाटिकाएँ सौन्दर्य में इन्द्र के

नन्दन-कानन को धिक्कारती है और उनके मध्य में स्थित लताओं पर खिले फूल-सौरभ में पारिजात-कुसुमों के वन्दनीय हुए हैं। (६३)

वाटिका—फुलवारियाँ; यहिँर—जिसकी; वल्लिका कुसुम—लताओ पर खिले फूल। (६३)

वादे जिणे कळ्पद्रुम यहिँ वृक्षपन्ति।
विदृश्य फळ से दृश्य फळे ए राजन्ति ये। ६४।
विपुळ क्ळेशे लभ्य से ए लभ्य अक्ळेशे।
विद्याधरु चळि पिक सप्तस्वर घोषे ये। ६५।

सरलार्थ--उन पुष्पोद्यानों के सब वृक्ष होड़ मे कल्पद्रुम को भी नीचा दिखाते है। सो कैसे? कल्पद्रुम के फल अदृश्य होते है और वड़ी कठिनाई से प्राप्त होते है; परन्तु यहाँ के वृक्ष दृश्य फलों से सुशोभित होते है और ये फल आसानी से मिलते है। फिर उपवनों मे कूकनेवाली कोयलो की सप्तस्वर-समन्वित ध्वनि स्वर्ग के गन्धर्व-किन्नरो आदि के सगीतों को भी परास्त कर रही है। (६४-६५)

वादे—प्रतियोगिता मे, होड; जिणे—पराजित करते हैं; वृक्षपन्ति—पेड़-समूह; विद्याधरु—गन्धर्व-किन्नरो से; वळि—वढ़कर। (६४, ६५)

बीणा तेजिवे नारद शुक पढ़ा शुणि।
बिहरन्ति तहिँ सीता घेनि रघुमणि ये। ६६।

सरलार्थ--जिस उपवन के तोतो की वोली सुनकर उस पर स्वय नारद अपनी वीणा को भी न्योछावर कर देंगे, उसी में प्रभु रामचन्द्रजी सीता के सहित विहार करते है। (६६)

शुकपढ़ा—तोते का पाठ, तोते की बोली। (६६)

विष्णु आणिकि आणन्ति जानुरे बसाइ।
वार्द्धिगङ्गा छवि लभे कोळाकोळि होइ ये। ६७।

सरलार्थ--विष्णु लक्ष्मी को अपनी गोद में धारण करते समय जिस शोभा को वहन करते है, श्रीरामचन्द्र ने सीता को अपनी जाँघो पर वैठाकर उसी शोभा का गौरव धारण किया। वारिधि (समुद्र) गगा को अपनी गोद मे लेते समय जो शोभा धारण करता है, रामचन्द्र सीता को गले लगाते समय वही शोभा धारण कर रहे है। (६७)

आणि—गौरव; वार्द्धि—वारिधि—समुद्र (उत्प्रेक्षा) (६७)

बक्षे उत्सुक भावरे कराउँ शयन ।
बिद्युत केळि उज्ज्वळ जळद लुण्ठन ये । ६८ ।

सरलार्थ--उत्सुक मन से रामचन्द्र सीता को अपने वक्ष पर सुलाते समय ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानों वे उज्ज्वल विद्युत-क्रीड़ा को धारण करते हुए मेघ की शोभा को लूट रहे हों। (६८)

बन्धुक भृङ्ग बन्धुता ओष्ठपान बेळे ।
बृषध्वज पूजन उरजे करदेले ये । ६९ ।

सरलार्थ--भौरा गुलदुपहरिया फूल से मधुपान करते समय जैसा सुन्दर दिखायी देता है रामचन्द्र सीता के गुलदुपहरिया फूल के समान लाल होठों पर चुम्बन देते समय वैसे ही सुन्दर दिखायी दिये, और स्तनों पर हाथ लगाते समय ऐसे दिखायी दिये, मानों पद्म-फूलो से महादेव की पूजा कर रहे हों। (६९)

वृषध्वज—महादेव; उरजे—स्तनों पर। (६९)

बनजे नीळ-उत्पळ पबने कि ढळे ।
बिमळ गण्डचुम्बने से रीति बहिले ये । ७० ।

सरलार्थ—पवन द्वारा नीलोत्पल, प्रफुल्ल पद्म पर लुढ़ककर जिस प्रकार सुन्दर दीखता है, सीता के निर्मल गण्डस्थल पर चुम्वन करते समय रामचन्द्र उसी प्रकार सुन्दर दिखायी दिये। (७०)

बाहु करे धरि हेउँ आराम प्रबेशी ।
बारिदे पशिला प्राये एक तार शशी ये । ७१ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र सीता की एक बाहु को अपने हाथ में पकड़े उपवन में प्रवेश करते समय ऐसे मालूम पड़े, मानों एक तारे के सहित चन्द्र मेघ में प्रवेश करते रहे हों। (७१)

आराम—उपवन; बारिदे—मेघ में। (७१)

बाग्देवी गणेश कवित्वरे बादकृत ।
बर्त्तन्ति से उक्ति—प्रति-उक्तिरे तेमन्त ये । ७२ ।

सरलार्थ—सीता और राम, दोनों परस्पर वार्तालाप में ऐसे प्रवृत्त है, जैसे सरस्वती तथा गणेश अपने-अपने कवित्व मे विवाद कर रहे हों। (७२)

बिधाता बशरे पितृदिवस प्रबेश ।
बने मृगया गमन जनक आदेश ये । ७३ ।

सरलार्थ--इस तरह कई दिन वीत गये। दैव-योग से दशरथजी का पितृदिवस आ पहुँचा। पिता की आज्ञानुसार रामचन्द्रजी शिकार खेलने वन गये। (७३)

बणा से खड्गीन[1] होइ खड्गीन[2] संगत।
बन्धाइले गुह शबरेश संगे मित ये। ७४।

सरलार्थ—खड्गधारी रामचन्द्र गण्डक का अनुधावन करते-करते पथभ्रष्ट हुए और गुह नामक शवर राजा से मिलकर उससे मित्रता-सूत्र में आवद्ध हुए। (७४)

खड्गीन[1]—खड्गधारी रामचन्द्र; खड्गीन[2]—गण्डक, गेंडा (यमक)। (७४)

बाहुड़ि नगरे जीवे जीवेश होइ से।
विदेह गमन कले जनक ए शेषे ये। ७५।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने मृगादि जीवो के लिए यम के सदृश होकर उनका वध किया। शिकार के उपरान्त वे नगर में लौटे। श्राद्ध-कार्य संपन्न होने के वाद जनक राजा विदा माँगकर अपने विदेह देश वापस चले गये। (७५)

जीवेश—यम। (७५)

बिलोकन अर्थरे भरत शत्रुघन।
वप्ता कैकेयीर निआइले तोपमन ये। ७६।

सरलार्थ--भरत तथा शत्रुघ्न को देखने के लिए कैकेयी के पिता सन्तुष्ट मन से उन्हें दूत भेजकर बुला ले गये। (७६)

वप्ता—पिता। (७६)

बासिता सीताङ्कु घेनि त्रिकाळ बञ्चन।
विभरति दिगन्तरे कळकण्ठ स्वन ये। ७७।
बिरोचन सुख दान दरशन करे।
बने केळिकुल चित्त आदर निशारे। ७८।

सरलार्थ--जिन लोगों के पास उत्तम वस्त्र, सुगन्धित चन्दन तथा कर्पूर और उत्तम वासगृह होते है, वे क्रमश: शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा—इन तीन ऋतुओं मे स्वय सुखी होकर दूसरो को भी सुखी करते है। उसी प्रकार रामचन्द्र ने वस्त्रावृता सौरभवती गृहिणी सीता के सहित ये तीन ऋतुएँ व्यतीत की। वे तीन ऋतुएँ कैसी है? शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में क्रमश. कबूतरों,

कोयलों और हंसों की ध्वनि क्षितिज में भर जाती है, एवं अग्नि, चन्द्र व सूर्य—इनका दर्शन सुख प्रदान करता है। प्राणी इन तीन ऋतुओं में क्रमशः उपवन, जल तथा गृह में क्रीड़ा करते है एवं रजाई, रात्रि तथा हल्दी के प्रति चित्त में आदर बढ़ता है। (७७-७८)

वासिता—वस्त्रावृता, सौरभवती, गृहिणी; कळकण्ठ—कबूतर, कोयल, मयूर या हंस; विरोचन—अग्नि, चन्द्र, सूर्य; वन—उपवन, जल, गृह; निशा—रजाई, रात्रि तथा हल्दी। (श्लेष) (७७, ७८)

बिग्रहु सीतार जात हिम जड़े उष्म।
बसन्त ग्रीषमे अति शीतळ त बर्ष्म ये। ७९।

बरषा शरदे दुइ मत थाइ बहि।
बिदग्ध हेमाङ्गी गन्धसारवासी सेहि ये। ८०।

सरलार्थ—सीता के शरीर से हिम व शिशिर मे उष्णता पैदा होती है। वसन्त तथा ग्रीष्म में उनका शरीर अत्यन्त शीतल रहता है और वर्षा व शरत ऋतुओं में उष्ण तथा शीतल दोनों प्रकार रहता है; क्योकि सीता तप्तसुवर्णांगी होने के कारण उनका शरीर उष्ण, एवं चन्दन-सुगन्धा होने के कारण शीतल होता है। इन दोनों गुणो को मिलाकर उनका शरीर उष्ण-शीतल होता है। (७९-८०)

विग्रह—देह; जड़—शीतकाल; बर्ष्म—देह, शरीर। (७९, ८०)

ब्यापार ऋतुमानङ्कै लोड़ा न कराइ।
बिमोहित ऋतुरे केबळ ताङ्कु देइ ये। ८१।

सरलार्थ—इन्ही सब कारणों से सीता, राम को जिस ऋतु में जो व्यापार आवश्यक है, उसकी पूर्त्ति स्वयं कर देती है और उन्हे किसी दूसरे पदार्थ पर निर्भर नहीं रखती। केवल अपने रजोवती होने के समय विरह दुःख से उन्हें विमोहित करा देती है। (८१)

बीरबर उपइन्द्र भञ्ज कहे रस।
बयाशी पदे पण्डिते ए स्वादुरे रस हे। ८२।

सरलार्थ—कवि उपेन्द्र भञ्ज ने वयासी पदों में रामसीता के शृंगारादि भाव का वर्णन किया। हे पण्डितो ! आप लोग इससे मधुर रस का आस्वादन करे। (८२)

लोड़ा—आवश्यक। (८१)

॥ इति षोडश छान्द ॥

सप्तदश छान्द

राग—धनाश्री

बसि वशिष्ठ जाबाळि वामदेव कश्यप सुमन्त्र घेनि ।
बोले दशरथ मोर मनोरथ मण्डाइबि राजधानी ।
बीरवृन्दरे इन्द्र । बसु नृपपदे रामचन्द्र । १ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ एक दिन वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, सुमन्त्र आदि मुनियो के सहित सभा मे वैठे (इस भाँति) बोले, 'मेरी उत्कट अभिलाषा यही है कि वीर-समूह मे इन्द्र के सदृश रामचन्द्र नरपति पद पर अभिषिक्त हो। अगर आप लोगों की सम्मति हो, तो मैं उन्ही के द्वारा इस राजधानी (अयोध्या) को सुशोभित कराऊँ। (१)

ब्रह्मा सर्जनारे ब्रह्माण्डे काहिँछि आउ मो तनय सरि ।
बामे[1] बामदेव धनुकु भाङ्गिला बामे[2] भृगुपति हारि ।
बसुपति समस्त । बसुँ सेबिबे सेवक मत । २ ।

सरलार्थ—'विधाता के सृजन में मेरे पुत्र के समान वीर और कहाँ है ? उसने अपने बाये हाथ से शिवधनु को तोड़ दिया। उसके प्रतिकूल होकर परशुराम भी पराजित हो गये। अतएव रामचन्द्र के नृपति-पद पर अभिषिक्त होने से पृथिवीस्थ सारे राजा सेवको की नाई उनकी सेवा करेंगे। (२)

वामे[1]—वायें हाथ से; वामदेव—महादेव, शिव; वामे[2]—शत्रुता या प्रतिकूलता करके। (यमक) (२)

बोइले सुमन्त्र से पुणि एमन्त शुझिबेटि पितृऋण ।
बधकारक अनरण्य राजार बधरे हेबे निपुण ।
बेधाविधान पुणि। बैबस्वतवंशी तोष शुणि । ३ ।

सरलार्थ—यह सुनकर सुमन्त्र ने कहा, 'वे रामचन्द्र पितृ-ऋण चुकायेंगे।

आपके पूर्वज अनरण्य राजा के वधकर्त्ता रावण का विनाश करने में वे समर्थ होंगे। ऐसा विधाता ने विधान किया है।' यह सुनकर वैवस्वत मनुवंशी दशरथ को बड़ा सन्तोष हुआ। (३)

एमन्त—इस प्रकार; बेधाविधान—विधाता (ब्रह्मा) का सृजन या नियम। (३)

बुझिले लग्न मग्न होइ शुझिले मङ्गळ दानरे तहिँ।
बृहस्पति राशि अष्टमे बिलासी नृपति होइबे केहि।
बामदेव उत्तर। बक्ता वशिष्ठ हेबे ईश्वर। ४।

सरलार्थ—अनन्तर सुमन्त्रादि ध्यान-मग्न होकर लग्न का निरूपण करने लगे। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि मंगल ग्रह रामचन्द्र के 'दान' मे अर्थात् 'व्यय' (के घर) मे है। फिर बृहस्पति अपने गृह (धनु) में न रहकर, अष्टम अर्थात् कर्कट राशि में बैठे हैं। रामचन्द्र की जन्मराशि कर्कट है, अतएव रामचन्द्र का जन्मग्रह बृहस्पति पड़ा है। (जन्मराशौ सुराचार्यो रामोराजा वनं गतः) अस्तु, राम कैसे राजा होंगे?—वामदेव की यह उक्ति सुनकर वशिष्ठ ने श्लेष में उत्तर दिया, 'वे ईश्वर है। सुतरां राजा न होकर ईश्वर (महादेव) की तरह योगी बनेंगे और विभूति-भूषित होकर जटा धारण करेंगे। (४)

ईश्वर—परमब्रह्म, शिव (श्लेष) (४)

विषे कि पुछुँ राजा दीर्घे कहिले हेबे दिव्यभूति भोगी।
बइश्रवणकु जिणिबे पुष्पक मण्डने होइ सरागी।
बोलुअछु एमन्त। बोध नरदेव देवचित्त। ५।

सरलार्थ—वशिष्ठ तथा वामदेव की बातचीत से दशरथजी कुछ नही समझ सके। उन्होंने पूछा, 'विषय क्या है?' वशिष्ठ ने श्लेष में उत्तर दिया, 'रामचन्द्र दिव्य ऐश्वर्य-भोगी होकर वैभव में कुबेर को भी जीतेंगे एवं रत्नकंगन-मण्डन के प्रति अनुरागी बनेंगे।' दूसरे पक्ष में:— 'रामचन्द्रजी वनवासी होकर दिव्य-भस्म-योगी होगे, रावण को जीतेंगे और स्वयं बैठकर पुष्पक विमान को मण्डित करने में अनुरागी होंगे। हम ऐसा बोल रहे है।' प्रथम पक्षवाले आशय से राजा दशरथ तथा द्वितीय पक्ष के अर्थ से देवलोगों को सन्तोष हुआ। (५)

भूति—ऐश्वर्य, भस्म; बइश्रवणकु—कुबेर को, विश्रवानन्दन रावणको; पुष्पक—रत्न-कंगन, पुष्पक विमान। (श्लेषालंकार) (५)

बार्त्ता पाइ मातामाने हरषिता सीता तोष नुहे कहि।
बिधु दर्शने यथा सिन्धु कल्लोळ अधिकरे लोळ बहि।
वेश अभिषेकर। बेळ देखि हेबा से प्रकार। ६।

सरलार्थ--रामचचन्द्र की अभिषेक-वार्त्ता का समाचार पाकर कौशल्यादि माताएँ विशेष आनन्दिता हुईं। सीता का सन्तोप कहते नही वनता। चन्द्र के दर्शन से समुद्र की लहरे चचलतर होती है। उसी तरह उनका आनन्द-समुद्र उछलने लगा। और समस्त लोग अभिषेक के दर्शन की आशा के वशीभूत हुए। और कुछ लोग इस आशा में रहने लगे कि रामचन्द्रजी का अभिषेकोत्सव देखकर हम लोग भी उसी प्रकार अर्थात् राज-सम्पत्तियुत के सदृश हर्पित होंगे। (६)

विचारन्ति तहिँ राउत माहुन्त रथी पदातिए मिशि।
वसिले राम सिहासने द्विगुणे आम्भ गुणे यिबे दिशि।
विबेक ए प्रकार। बड़ सुख जन्मिछि आम्भर। ७।

सरलार्थ--अश्वारोही, गजारोही, रथारोही तथा पदातिक सिपाहियों ने विचार किया, 'अगर रामचन्द्रजी सिंहासन पर वैठे, तो चूँकि वे बड़े गुणग्राही है, इसलिए हम लोगो के गुण उन्हें दुगुने दीखेगे; अर्थात् वे विशेष रूप से हम लोगो के गुणो का आदर करेगे।' और प्रजावर्ग ने सोचा, 'हम लोगो का वडा सुख उपस्थित हुआ, क्योंकि रामचन्द्र राजा होकर हम लोगों का भली-भाँति पालन किया करेगे।' (७)

बन्दी केरळ इत्यादि भिक्षुमेळ भाबि मागि न जाणिबा।
ब्राह्मणकुळर आकुळ तुटिला इषिते याज्ञिक हेबा।
बिना पूजा देवता। बिचारिले होइवा पूजिता। ८।

सरलार्थ--चारण तथा वाजीगरादि भिक्षुकों ने सोचा, 'हम लोग और धन माँगने के अभिलाषी न रहेगे, अर्थात् वे विना माँगे हम लोगो को मनमाना धन देगे।' इस आशा से कि वहुत धन पाकर हम लोग यज्ञकर्म सपादन करके आसानी से याज्ञिक बन जायेगे, ब्राह्मणो की याज्ञिक बनने की उत्कण्ठा पूरी हो गयी। अपूजित देवताओ ने सोचा कि अब हम लोग पूजा पायेगे। रामचन्द्र हम लोगो की (यज्ञादि द्वारा) पूजा करायेगे।' इस प्रकार रामचन्द्र की देव-प्रीति, विप्र-प्रीति तथा दीन-प्रीति सूचित हुई। (८)

बन्दी—चारण, भाट; केरळ—वाजीगर; इषिते—सहज ही, आसानी से; याज्ञिक—यज्ञकर्त्ता। (८)

वल्लवे पाञ्चिले सुलभे धेनु ए हेबे आम्भ क्षीरवती ।
बासवादि देबे आम्भ वादी एबे नाश नोहिला ए मति ।
ब्रह्मा समीपे गले । विभ्रम से कैकेयीङ्कि कले । ९ ।

सरलार्थ--अयोध्या के ग्वालों ने सोचा, 'अब हम लोगों की गाये आसानी से दुग्धवती होंगी अर्थात् गाये बहुत दूध देगी ।' परन्तु इन्द्रादि देवताओं ने सोचा, 'हम लोगों के शत्रु रावण का वध करने के लिए रामचन्द्रजी का अवतार हुआ है। उस शत्रु का निधन कैसे होगा ? रामचन्द्रजी के राजा होने से तो हम लोगो का हित के बजाय अहित होगा। ऐसा सोचकर देवगण ब्रह्मा के समीप गये और उनको सारी घटनाएँ कह सुनायीं । ब्रह्मा ने यह सुनकर कैकेयी की मति को विभ्रमित कराया। (९)

वल्लवे—ग्वालों ने; क्षीरवती—दूध वाली; पाञ्चिले—सोचा; विभ्रम—मति-भ्रान्त । (९)

बिपणीरे शुणि रामराजा वाणी बाहुड़े मन्थरा त्वरा ।
बारि भरिअछि नयनयुगळे गळे प्राण थिला परा ।
बृक्ष काटिला प्राये । विपतित ता अग्रते हुए । १० ।

सरलार्थ—कैकेयी की मन्थरा-नाम्नी दासी ने बाजार में जब यह ख़बर सुनी कि कल रामचन्द्र राजा होंगे, तो वह शीघ्र ही घर की तरफ़ लौट पड़ी, और आँखों मे आँसू भरकर कण्ठागतप्राणा-सी कैकेयी के समक्ष गिर पड़ी; मानो कोई कटा पेड़ सामने आ गिरा हो । (१०)

विपणी—बाजार । (१०)

बोले टेकि ए कि भरतजननी कहुअछि तहुँ जब ।
बड़ सुभागी बोलाउरे शोभांगि भांगिगला तो गरब ।
बेर हुए कि तोर । विष प्राये घारे मो शरीर । ११ ।

सरलार्थ—मन्थरा को सामने ऐसे पड़े देखकर भरतजननी कैकेयी ने उसे उठा लिया और पूछा, 'यह क्या है ?' मन्थरा ने शीघ्र ही कहा, 'अरी शोभांगि ! तुम राजा की बड़ी सुहागिन कहलाती हो। इसके लिए तुम्हारे मन मे बड़ा अभिमान था। वह अभिमान आज टूट गया। तुम्हारा शरीर कैसा हो रहा है, यह तुम्हे ही मालूम है। परन्तु मेरा शरीर तो चक्कर खा रहा है, मानो मैने जहर खा लिया हो ।' (११)

जब—शीघ्र; बेर—शरीर, देह; घारे—चक्कर खा रहा है । (११)

बिबेकी धार्मिक शोभा प्रशंसारे संसारे जणे न गण।
बाटुळि याहार बज्ररु अधिक कि वर्णिबा तार बाण।
बिदित से नन्दन। बोलिबु ता वयसरे सान। १२।

सरलार्थ--"तुम्हारा पुत्र विचारवन्त और धर्मपरायण है। यह मत गिनो कि शोभा की प्रशंसा मे अर्थात् सुन्दरता मे उसके समान दूसरा और भी कोई है। उसका गोला (-प्रहार) बज्र से भी अधिक सख्त है। उसके शर-सचालन का वर्णन कहाँ तक करे? तुम्हारा वह नन्दन इन सबमे प्रसिद्ध है। तुम यों कह सकती हो कि वह वयस में राम से छोटा है, इसलिए कैसे राजा होगा? यह तो विधिसगत नही है। परन्तु ऐसा एक दृष्टान्त मै दे रही हूँ, सुनो। (१२)

बाटुळि—गोला; विदित—प्रसिद्ध; सान—छोटा। (१२)

बळिष्ठ दानवे पूर्वदेव कहि अनुज देवता इन्द्र।
बोलाइ सपत्नी ये याहार प्रीति केहि होइ नाहिँ सान्द्र।
वश करि नृपति। बुद्धि थिले बोधि क्षितिपति। १३।

सरलार्थ—बलवान् असुर लोग देवताओं के पूर्व पैदा हुए थे। इसलिए वे पूर्वदेव कहलाते है और इसी वजह से वे देवताओ के बड़े भाई है। बड़े भाइयों के होते हुए भी छोटे भाई देव इन्द्र स्वर्ग में राजा बने। उसी तरह तुम्हारा पुत्र छोटा होते हुए भी राजा बन सकता है। सपत्नियाँ कभी प्रीति के निविड़ बन्धन मे एक नही हो सकती। सभी की प्रीति भिन्न-भिन्न है। इसी विचार से, अगर तुममे बुद्धि हो, तो राजा को सन्तुष्ट करने का यत्न करके अपने पुत्र को राजा बनाओ। (१३)

पूर्वदेव—देवताओं के पूर्व उत्पन्न असुर लोग; सान्द्र—निविड़, घना; क्षितिपति—राजा। (१३)

बिह्वळित मति कितबे अहल्या दूषण लभिला परि।
बदन माड़ि शयन सदनरे नयनरे पूरि बारि।
बिजे नृप एकाळे। बन्धु बन्धु बोलिण डाकिले। १४।

सरलार्थ—गौतम-पत्नी अहल्या ने कपट-गौतम-वेशधारी इन्द्र के प्रेम में विह्वल होकर निन्दा पायी थी, उस अपमान से उन्होंने जैसे शयन किया था, उसी तरह कैकेयी रूठकर कमरे में मुँह दबाये सो गयी। उसकी आँखे आँसुओ से पूर्ण थी। इसी समय राजा दशरथजी वहाँ पधारे और प्रिये-प्रिये, कहकर उसे पुकारा। (१४)

कितबे—कपट से, कपटवेशी इन्द्र से; दूषण—निन्दा; बदन माड़ि—मुँह दबाये (मौन साधे हुए); बिजे—विराजमान हुए, पधारे। (१४)

बिषवैद्य पद न मानिला प्राये स्वभावे भोगिनी सेहि।
बह्नि सेनेहरे पतङ्ग प्रकारे पाशे परवेश तहिं।
बोधे चिबुक धरि। बिना दोषे प्रणयिनि गोरि। १५।

सरलार्थ—जैसे साँपिन सँपेरे का मन्त्रपद नही मानती, उसी प्रकार स्वभावतः भोगिनी (साँपिन अथवा पट्टमहिषी को छोड़ राजा की अन्य पत्नी) कैकेयी ने राजा दशरथ की विनती नही सुनी। जैसे पतिंगा अपने विनाश की आशंका किये बिना अग्नि के समीप जा पहुँचता है, उसी तरह राजा अपना विनाश न जानकर कैकेयी के पास पहुँचे और उसके होठ पकड़कर सान्त्वना-भरे वचन बोले, 'हे प्रणयिनि ! हे गौरांगि ! बिना दोष मेरे प्रति तुम इस प्रकार क्यो रूठी हो ?' (१५)

विषवैद्य—सँपेरा; भोगिनी—साँपिन, पट्टमहिषी को छोड़ राजा की दूसरी पत्नी (यहाँ 'कैकेयी' से मतलब है); चिबुक—ठुड्डी, होठ। (१५)

बिप्रे इन्धन-देवी मन्त्रे पूजिले से य़था न कहे कथा।
बरद होइला प्राये स्वपनरे बसि न टेकिला मथा।
बारे मोते तु चाहाँ। बन्धु देबि मुँ मागिबु य़ाहा। १६।

सरलार्थ—ब्राह्मण लोग काष्ठ से बनी देवी की मूर्ति की पूजा करते है। फिर भी वह मूर्ति बात नही बोलती। उसी तरह कैकेयी ने राजा की विनयोक्ति का कुछ भी जवाब नही दिया। वह बिना मस्तक उठाये बैठी रही, मानों देवी स्वप्न में वरदायिनी हुई हो। तदनन्तर दशरथ ने कहा, 'तुम मेरी ओर एक बार निहारो तो ! अरी भामिनि ! तुम मुझसे जो माँगोगी, मैं वही दूँगा।' (१६)

विप्रे—ब्राह्मण लोग; इन्धनदेवी—लकड़ी की देवीमूर्ति। (१६)

बोलुँ नरपति बोइला युवती तिनि बार सत्य कले।
बृकासुर ताहा कर निज शिरे य़था देला हरि बोले।
बिधि कले नृपति। विश्वमोहिनी नारीङ्क प्रीति। १७।

सरलार्थ—दशरथ के ये वचन सुनकर कैकेयी ने उनसे कहा, 'आप तीन बार 'सत्य' करे, तब मै माँगूँगी।' दशरथ ने 'सत्य' किया। जैसे वृकासुर हरि की बात से अपने मस्तक पर हाथ रखकर स्वतः विनष्ट हो गया, वैसे ही विधान दशरथ ने किया; अर्थात् कैकेयी का अभिप्राय बिना समझे उसकी प्राणनाशक वार्ता में सम्मति प्रकट कर दी। सचमुच स्त्रियों की प्रीति विश्वमोहिनी होती है। (१७)

बाहिलि रथ स्तिरी होइ शम्बर समरे नाहिँ कि मन ।
बिहिलि सत्य सूत होइ तोषिलु तो सुत हेव राजन ।
बाळबालुका खेळ । विधिरे त आन तुम्भ बोल । १८ ।

सरलार्थ—दशरथ के 'सत्य' करने पर कैकेयी ने कहा, 'मैने नारी होकर भी शम्वर-युद्ध के समय आपका रथ चलाया था। वह वात क्या आपको याद नही ? उस समय आपने वादा किया था कि तुमने सारथि बन मुझे सन्तुष्ट किया है। सुतरा तुम्हारा पुत्र राजा होगा। वालको के धूल के खेल के वरावर आपका वह वादा असिद्ध हुआ। अव (उस वादे को भूलकर) किस विचार से आप राम को राजा वनाने जा रहे है ?' (१८)

सूत—सारथि। (१८)

बसुधापतिपद रामे उचित नोहे से जामाता तार ।
बने हरु दिन चउद बरष पुत्र राजा हेउ मोर ।
बामावचन शुणि । विज्ञान से ज्ञाने कहे वाणी । १९ ।

सरलार्थ—फिर धर्माधर्म की व्याख्या करते हुए कैकेयी ने कहा, 'महीपति की पदवी राम के प्रति उचित नहीं होती, क्योकि वह मही का दामाद है। सास के लिए दामाद का पति होना अन्यायसंगत है। सुतरा मेरा पुत्र भरत राजा बने एव राम चौदह साल के लिए वन जावे।' कैकेयी की ऐसी बात सुनते ही राजा दशरथ ज्ञानशून्य (चेतनाहीन) हो गये। कुछ समय के बाद फिर चेतना पाकर बोले— (१९)

वसुधापतिपद—भूपति, महीपति अर्थात् राज पद; जामाता—दामाद। (१९)

बिरोचन नारी छद्मे होइ हरि ता जीव ग्रेमन्त हरि ।
बध सध करि मोर सेहिरूपे तुहि थिलु अवतरि ।
बोलि एते मउन । विभोजने हरिले से दिन । २० ।

सरलार्थ—'जैसे विष्णु ने कपट मे मालती-कन्या के रूप में विरोचन राक्षस की पत्नी होकर उसके प्राणो का नाश किया था, उसी तरह तुम मेरे वध के लिए कामना करके अवतीर्ण हुई हो।' इतना ही बोलकर दशरथ मौन हो रहे और वह दिन निराहार बिताया। (२०)

छद्मे—कपट मे; सध—श्रद्धा, इच्छा, कामना; विभोजने—बिना भोजन के। (२०)

बेळाकु न लङ्घे सत्ये पारावार यथा ताकु न लंघिला।
विष-भक्षणे विरूपाक्ष पराये मूके सम्मत दिशिला।
बड़ सन्तोष राणी। विज्ञ श्रीराम उकाइ आणि।२१।

सरलार्थ—जैसे समुद्र कूल (किनारे) का लंघन नही करता (अपनी मर्यादा पर स्थिर रहता है), उसी प्रकार दशरथ ने 'सत्य' का लंघन नही किया। महादेव के मौन रहने पर पता चला कि वे विषभोजन के लिए सहमत है। उसी तरह दशरथ के मौन रहने पर कैकेयी को मालूम हुआ कि राजा को मेरी माँग स्वीकार हो गयी है। इसलिए उसे अतीव सन्तोष हुआ। उसने विज्ञ रामचन्द्र को वुलवाया। (२१)

पारावार—समुद्र; वेळा—कूल, तटभूमि; विरूपाक्ष—महादेव, शिवजी। (२१)

बदिला प्रथमे पितार सत्यकु रखिब कि नाहिँ साधु।
बंशे य़ाहार भगीरथ सम्भव उद्धरिले पितृ दग्धुं।
बोले रामब हन। विषय कि कर अबधान। २२।

सरलार्थ--कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा, 'हे सदाशय! तुम पितृसत्य की रक्षा करोगे या नही? जिसके वश मे राजा भगीरथ पैदा होकर गंगा जी को लाये, कपिल मुनि के कोपानल से दग्ध पितरो का उद्धार किया था, उसी वंश में तुम्हारा उद्भव हुआ है।' राम ने यह सुनकर शीघ्र ही पूछा, 'विषय क्या है? आज्ञा करे।' (२२)

बने तुम्भे य़िब भरत होइब कोशळपति कुशळे।
बेशकु इंगुदी रुद्राक्ष विभूति थोइ देला आणि तळे।
बाळिशा य़े मन्थरी। बेगे श्रीराम सम्मति करि।२३।

सरलार्थ--रामचन्द्र के ऐसा कहने पर कैकेयी ने कहा, 'तुम वन जाओगे। भरत सकुशल अयोध्या मे राजा वनेगा।' ऐसा वोलते समय मूर्खा मन्थरा ने हिंगोट, रुद्राक्षमाला और विभूति आदि वनवास-वेशोपकरण लाकर रख दिये। शीघ्र ही रामचन्द्र ने इसके लिए अपनी सम्मति प्रकट की और वनवासी का वेश ग्रहण कर लिया। (२३)

कोशलाधिपति—अयोध्या के राजा; इंगुदी—हिंगोट वृक्ष का पत्र। (२३)

बैदेही लक्ष्मण प्रवेश तक्षण संगे य़िवाकु आतुरे।
बशिष्ठादि पात्रे प्रवेश होइण दशरथङ्कु पचारे।
बिभावरी प्रान्तरे। बिभु हुअन्ते परा राज्यरे। २४।

सरलार्थ--यह समाचार पाकर कि रामचन्द्र वनगमन करेंगे, सीता तथा लक्ष्मण अतिशय आतुर होकर उनके साथ वन जाने के लिए वहाँ आ पहुँचे। वशिष्ठादि पात्रो ने वहाँ प्रवेश करके दशरथ से पूछा, 'रात्रि के अन्त मे अर्थात् प्रभात मे रामचन्द्र राज्य मे राजा वनने वाले थे, तो उनका यह वेश कैसा ?' (२४)

विभावरी प्रान्त मे—रात के अन्त में; विभु—प्रभु अर्थात् राजा। (२४)

विभाकरकुळे नासत्य होइलि सत्य करिवारे मुहिँ।
बिबेक मोर कैकेयी पूर्वजन्मे पिशाची थिला कि होइ।
बाक्य ग्रेते मुखरे। बैश्वानरहिँ जळे तहिँरे। २५।

सरलार्थ--वशिष्ठादि के द्वारा इसका कारण पूछने पर दशरथ ने कहा, 'मैने पूर्व 'सत्य' किया था। इसलिए सूर्य वश मे अश्विनीकुमार की तरह अश्वमुखा का (घोडामुहाँ यानी कुलांगार) पुत्र वनकर पैदा हुआ हूँ। और भी कहावत है कि कुलक्षय के समय (मुझ-जैसा) घोड़ामुहाँ लड़का पैदा होता है। मेरे विचार मे कैकेयी पूर्व जन्म मे शायद पिशाची थी; क्योकि पिशाची के मुख से जिस तरह अग्नि निकलती है, उसी तरह कैकेयी के मुख से जितने वाक्य निकल रहे है, वे सव अग्नि के सदृश दहक रहे है।' (२५)

नासत्य—अश्विन कुमार, स्वर्गवैद्य, अश्वमुखाकृति नक्षत्र-विशेष; दशरथ का अपने लिए 'अश्विनकुमार' का उपमान वैठाने का अभिप्राय यह है कि दशरथ अश्विन कुमार के समान अश्वमुखाकार है, जिसका ओड़िया मुहावरेदार अर्थ "घोड़ामुँहाँ" है। घोड़ामुँहाँ का व्यंग्यार्थ कुलांगार पुत्र है, जो अपने कुल के लिए अंगार(कोयले) के समान अहितकर होता है। वैश्वानर—अग्नि। (२५)

बिदुषे धीरे राजागिरे कहिले ए कथा प्रयाण हेव।
बाहुळब्रत फळद धर्मदत्त देवदरशने थिब।
बइकुण्ठ प्रतिम। बसतिरे देवी हेला क्षम। २६।

सरलार्थ—राजा की बात पर वशिष्ठादि पण्डितो ने धीरता से कहा, 'आपकी बात बिलकुल सही है, अर्थात् यह बात कि कैकेयी एक पिशाची है, यथार्थ प्रतीत होती है। पूर्व काल मे कलहा नाम्नी पिशाची को धर्मदत्त नामक ब्राह्मण ने विष्णु दर्शनार्थ जाते समय कार्तिक व्रत फल प्रदान किया था। वही पिशाची कैकेयी केवल आप-जैसे धर्मदत्त ब्राह्मण के व्रतफल-प्रदान के फलस्वरूप (आपके पुण्य से) अयोध्या-जैसी स्वर्गोपम पवित्र नगरी मे निवास करने मे समर्थ हुई है।' (२६)

विदुषे—पण्डित लोगो ने; राजागिरे—राजा की बात पर; बाहुळ व्रतफळद—कार्त्तिक व्रत—फलदानकारी। (२६)

बधिरा प्राये यहिँ लय आवेश तहिँ से काहिँ न रसे ।
बहन गहनगामी हेउ राम शिशु पाठ परा घोषे ।
बळिभुक ग्रेसन । बनप्रिय मध्ये करे स्वन । २७ ।

सरलार्थ—एक बहरी स्त्री किसी एक ही विषय मे लगन लगाये रहती है, उसके सिवा किसी दूसरे विषय पर उसका मन नहीं जाता । उसी प्रकार शिशु बालकों के पाठ रटने की तरह कैकेयी अपनी सपत्नियों में यह बात रटती हुई गयी कि राम शीघ्र ही घोर वन में जावे । (उसका कथन ऐसा था) मानों कोयलो के बीच कौवा (कर्कशा) ध्वनि कर रहा हो । (२७)

बहन-शीघ्र; गहनगामी—वनगामी; बळिभुक—बलि खाने वाला, कौवा; वनप्रिय—कोयल । (२७)

बंशनळीरे रखि लेखि वसन देले सीता पाई आणि ।
बहिले से पात्र लक्ष्मण इक्ष्वाकु कुळर ये चूड़ामणि ।
बाहारिले से तिनि । वधू बोधन्ति रामजननी । २८ ।

सरलार्थ—चौदह वर्ष के लिए सीता के जितने वस्त्र आवश्यक होंगे, उतने ही सूक्ष्म वस्त्र कैकेयी ने एक पात्र में ला दिये । इक्ष्वाकु वंश के शिरोमणि लक्ष्मण ने वह पात्र ग्रहण किया । राम, लक्ष्मण तथा सीता, उन तीन को वन निकलते देखकर रामजननी कौशल्या ने वधू सीता को सीख के रूप में कुछ उपदेश दिये । (२८)

वंशनळीरे रखि लेखि—बाँस की नली में रखने लायक, अतिशय सूक्ष्म; पुराने जमाने में व्यवहृत उत्कलीय सूक्ष्म वस्त्रों से उसके वयन-शिल्प की पराकाष्ठा का नमूना मिलता है । (२८)

बिपिनरे पीनउरजा अपूर्व द्रव्य देखि न मागिबु ।
वेनि सहोदर मध्यरे आदर विपथरे करिथिबु ।
बाष्पे तिन्तिला उर । बाणी न स्फुरे कण्ठु तांकर ।२९।

सरलार्थ—'अरी पृथिवी-सम्भूता सीते ! वन मे अपूर्व द्रव्य देखकर राम से वह माँगना मत; क्योंकि उससे विपत्ति की सम्भावना है । दुर्गम मार्ग पर राम-लक्ष्मण, दोनों भाइयों के बीच के स्थान मे आदरपूर्वक रहना, अर्थात् आगे या पीछे न चलना ।' ऐसा बोलते-बोलते शोकाधिक्य के कारण अश्रुजल से उनका वक्ष भीग गया और कण्ठ से वाणी नहीं निकली । इसलिए वे अधिक बोल न सकीं । (२९)

बिपिनरे—वन में; पीनउरजा—पृथिवीसम्भूता; बेनि—दोनों; विपथरे—दुर्गम

मार्ग पर; वाष्पे—शोकजनित आँसुओं से; तिन्तिला—भीग गया; उर—वक्षदेश; ताङ्कर—उनका। (२९)

बोइले सुमित्रे पुत्रे सेबिथिब श्रीराममानस जाणि।
बिनिद्रे सर्व शर्वरीकि हरिबु होइ धनु-शरपाणि।
बधू याउछि संगे। बड़ मायावी राक्षसपुञ्जे। ३०।

सरलार्थ—लक्ष्मण की माता सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा, 'श्रीराम का मन समझकर सेवा करते रहना। सदैव धनु-शर धारण करके सारी रात बिना नींद के (जागते) बिताना, क्योंकि वधू सीता साथ जा रही है। वन मे अति कपटी राक्षस-समूह है। सचेत रहना कि वे सीता को किसी तरह का अनिष्ट न पहुँचा पावे।' (३०)

विनिद्रे—विना नींद के, जागकर; शर्वरी—रात; मायावी—कपटी; राक्षसपुंगे—राक्षस-समूह। (३०)

बिमाने बसाइ नेबारे सुमन्त्र यिवारे देखिले जने।
बिस्मय होइले पछे गोड़ाइले निन्दा विहिले राजने।
बृद्ध समये किपाँ। वामाठारे एड़े अनुकम्पा। ३१।

सरलार्थ—अनन्तर लोगो ने जव देखा कि सुमन्त्र, राम, लक्ष्मण तथा सीता को विमान मे बैठाकर वन को लिये जा रहे है, तो वे वड़े विस्मित हुए और रथ का अनुसरण करने लगे। उन्होंने दशरथ की निन्दा की कि बुढापे मे उनका स्त्री के प्रति इतना अनुराग किसलिए? (३१)

अनुकम्पा—स्नेह। (३१)

बैशाख होइला मन्थरा अयोध्या भाण्डे थिला क्षीर पूरि।
बल्लवी कैकेयी मन्थनरु नवनीत विशेष बाहारि।
बनबासीङ्कि देइ। वहुलोचन अशन पाई। ३२।

सरलार्थ—दशरथ की निन्दा करने के वाद कैकेयी को आक्षेप करके उन्होंने कहा कि अयोध्या एक दुग्ध-भाण्ड (दूध का वरतन) है, जिसमें वहाँ के निवासी लोग क्षीर तथा मन्थरा मन्थनदण्ड है। कैकेयी एक ग्वालिन है। उसने मन्थरारूपी मन्थनदण्ड (मथानी) द्वारा अयोध्यारूपी दुग्ध-भाण्ड मे अवस्थित जन-समूह-रूपी क्षीर को मथकर उससे उत्पन्न राम, लक्ष्मण तथा सीतारूपी मक्खन को वन मे भेज दिया, जहाँ वनवासी ऋषि गण अपने-अपने नेत्रों से उनके मनोहर रूपों का दर्शन पाकर (उस मक्खन का) आस्वादन कर सके। (३२)

वैशाख—मन्थन-दण्ड (मथानी), बल्लवी-ग्वालिन; नवनीत—मक्खन; अशन—भोजन, आस्वादन। (३२)

बाकि मन्दपण तक्र चक्र थोइ हृदपिञ्जरे आसक्ते।
ब्यक्त लोकरे श्रवणे पान करि छि छि त करिबे तिक्ते।
बोलाबोलि एमन्त। बिरकते समस्ते शोकित। ३३।

सरलार्थ—बच रहे तुच्छ वस्तु मट्ठा को लोगों ने अपने-अपने हृदयरूपी पीतल के पात्र में बन्दकर रक्खा है। फलतः वह मट्ठा बिगड़कर तिक्त (तीता) हो गया है। आपस में बातचीत करने लगे कि अगर उस बात की चर्चा वे दूसरे लोगो के सम्मुख करे, तो सुननें वाले अपने-अपने श्रवणों में उस तिक्त मट्ठा का पानकर (उसे सुनकर) छिः-छिः करेंगे। विरक्ति से ऐसा बोलते हुए सब कोई शोकाकुल हुए। (३३)

तक्र—मट्ठा; चक्र—समूह; हृदय पिञ्जरे—हृदयरूपी पीतल पात्र में; आसक्ते—ढककर; एमन्त—ऐसा; शोकित—शोकाकुल। (३३)

बृक्षराज परि साकेत नगरी करि अलक्ष्मी आश्रित।
बार रबिर कैकेयी आयतरु अस्परश हेला मत।
बळ दळ चळन। बश मन्थरा—करिणी मन। ३४।

सरलार्थ—साकेत (अयोध्या) नगरी मानो वृक्षराज की तरह है; क्योंकि अश्वत्थ वृक्ष पर अलक्ष्मी (लक्ष्मी की बड़ी बहन) वास करती है और यहाँ अयोध्या मे अलक्ष्मी (अशोभा) आकर रही है। अश्वत्थ वृक्ष रविवार के दिन अस्पृश्य रहता है। कैकेयी के कारण अयोध्या नगरी भी अस्पृश्य हो गयी है अर्थात् कैकेयी का कोई वश अब उस नगरी पर और नही चलता। उसके बल (सैन्य) दलों (अश्वत्थ-पत्रों) के सदृश हुए। अश्वत्थ पत्रों का हिलना देखकर हथिनी का मन आनन्दित होता है। उसी प्रकार अयोध्यारूपी अश्वत्थ वृक्ष के सैन्योंरूपी पत्रों का राम के साथ चलना देखकर मन्थरारूपिणी हथिनी का मन वशीभूत हो गया (कि अब राम के वनगमन में कोई संशय नही है)। (३४)

वृक्षराज—अश्वत्थ; अलक्ष्मी—वरुण-कन्या, लक्ष्मी की बड़ी बहन, दुर्दशा, अशोभा; बळदळ—सैन्योंरूपी पत्र; करिणी—हथिनी। (३४)

बळि तामसी नदीकि बने पशि से दिन तहुँ रहिले।
बार्त्ता पाइ श्रृंगबेरपति मिळे पुच्छुँ सुमन्त्र कहिले।
बोले शबर ईश। बाण्टि न देले किपाइँ देश। ३५।

सरलार्थ—तमसा नदी को पारकर उन्होंने वन मे प्रवेश किया और

वही वन मे उस रात ठहरे। रामचन्द्र के वनगमन की वार्त्ता सुनकर शवराधिप वहाँ आ पहुँचा। उसके द्वारा इसका कारण पूछने पर सुमन्त्र ने सारी बाते कह सुनायी। वह सब सुनकर शबरश्रेष्ठ ने कहा, 'दशरथ ने अपने लड़कों मे देश को बाँट क्यो नही दिया ?' (यह भी तो उपाय था !)' (३५)

बळि—पारकर, आगे बढ़कर; पुच्छुँ—पूछते; किपाईं—क्यों। (३५)

बाण्टिले ये छळे ए बन नगरे भवन नगरे सेहि।
ब्यक्ति ब्यक्त होइ सानुजयुगळ अनुसरणकु बिहि।
बञ्चिले से शर्वरी। बेढ़ि सैन्य राजधानी परि।३६।

सरलार्थ—यह सुनकर सुमन्त्र ने छलोक्ति मे कहा, 'दशरथ ने बाँट दिया तो जरूर। वह इस प्रकार है कि ये (राम) वन तथा नगर में (नगरे-पर्वत मे) रहेगे और भरत भवन तथा नगर मे (नगरे-नगर मे) रहेगे, अर्थात् राम को वन तथा पर्वत एव भरत को घर तथा नगर मिले है। एक ज्येष्ठ के साथ एक कनिष्ठ भाई, क्रमशः दोनो भाइयो के (लक्ष्मण-राम का तथा शत्रुघ्न-भरत) दोनो का अनुसरण करने के लिए, राजा ने नियुक्त किया है।' इस प्रकार उन्होंने वहाँ रात बितायी। सैन्यों से वह स्थान आच्छादित हो गया, इससे वह स्थान (वन की) राजधानी की तरह मालूम होने लगा। (३६)

नगरे—पर्वत मे, नगरे—नगर में; (यमक); बञ्चिले—बितायी; शर्बरी—रात। (३६)

बतिश अबतारे एक कपिळ पुणि से छवि लम्पट।
बटक्षीरे जट करि परकट पिन्धिले बकळपट।
बाहे इंगुदीमाळ। बहे कर्णे रुद्राक्ष कुण्डळ। ३७।

सरलार्थ—विष्णु भगवान् के बत्तीस अवतारों मे कपिल एक अवतार है। रामचन्द्र को उनकी छवि के प्रति लोभ हुआ, इसलिए उनका-सा वेश धारण किया। बरगद के क्षीर से जटा को बाँधकर बल्कल वस्त्र पहना, वाहुओ मे इगुदी मालाएँ तथा कानो में रुद्राक्ष कुण्डल धारण किये। (३७)

लम्पट—लोभी, लालची; बकळपट—छाल के कपड़े; बाहे—वाहुओ मे। (३७)

बोळि हेले भस्म नर नारायण प्राय बेनि भाइ दिशे।
बदरिका वन भावकु ये बन सेवन कला रभसे।
बिकळित[1] रञ्जन। विकळित[2] देखि हेले जन।३८।

सरलार्थ—तदनन्तर दोनों भाइयों ने अपने-अपने शरीर मे भस्म का विलेपन

किया; सुतरां नर-नारायण के समान दिखायी पड़े। इस हेतु उस वन ने बदरिका वन (बदरिकाश्रम)-जैसी शोभा को तत्काल प्राप्त किया। दोनों भाइयों की शोभा भी कल्पनातीत थी। ऐसा वेश देखकर लोग (करुणा से) व्याकुल हो उठे। (३८)

रभसे—शीघ्र ही; विकळित[1]—कल्पनातीत; रञ्जन—शोभा; विकळित[2]—व्याकुल; (यमक)। (३८)

बाहुड़ नग्रकु बोलुँ ये घेनिले बेढ़ि गति अति त्वरा।
बसन्तगुण्डिचा एकाम्रवने कि यात्री अनुगत परा।
विधुचूड़ गउरी। विभातिकि राम सीता धरि।३९।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने प्रजाजनों से कहा, 'तुम लोग नगर (अयोध्या) को लौट जाओ।' परन्तु उन लोगो ने राम का कहना नही माना। वे लोग रथ को घेरकर इतने वेग से गमन करने लगे, मानों भुवनेश्वर क्षेत्र मे चैत्र गुण्डिचा यात्रा के उपलक्ष्य में अशोकाष्टमी के दिन असख्य यात्री लोग हर-पार्वती के रथ के पीछे चल रहे हों। जब रथ पर राम-सीता बैठे, उस समय वे क्रमशः चन्द्रशेखर महादेव और गौरी पार्वती की तरह शोभित हुए। (३९)

वसन्त गुण्डिचा—चैत्र गुण्डिचा; (पुरी में अनुष्ठित जगन्नाथ महाप्रभु की गुण्डिचा रथ-यात्रा की तरह भुवनेश्वर में हर साल चैत्र शुक्लपक्ष अष्टमी की तिथि पर लिंगराज महाप्रभु की प्रसिद्ध रथयात्रा-उत्सव अनुष्ठित होता है। इस उत्सव को अशोकाष्टमी उत्सव भी कहा जाता है।); एकाम्रवने—भुवनेश्वर में (भुवनेश्वर का एक नाम एकाम्र-वन है, जिसका उल्लेख 'कपिल संहिता' मे मिलता है। यहाँ पहले एक ही आम का पेड़ था, जिसके अनुसार इसका ऐसा नाम पड़ा है।) अनुगत—पश्चाद्गामी; विधूचूड़—चन्द्र-शेखर महादेव; गौरी—पार्वती; विभाति—शोभा पायी क्या! (उत्प्रेक्षा)। (३९)

बिलेपन भूति एणु शुभ्रकान्ति चन्द्रार्द्ध छवि मुकुट।
वरवर्णिनी नाना रत्नभूषण पारुशरे झट झट।
बाहक ये सुमन्त्र। ब्रह्मचारी लक्ष्मण विनत। ४०।

सरलार्थ—महादेव अपने सर्वांगों में विभूति-भूषित रहते है, इसलिए शुभ्रकान्तिविशिष्ट है। उन्होने अर्द्ध चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण किया है। रामचन्द्र उसी तरह अपने समूचे शरीर पर भस्म-विलेपित है। उनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्राकृत मुकुट सुशोभित हो रहा है। शिवजी के समीप उत्तमवर्णा नाना अलंकारो से विभूषिता पार्वती शोभायमान होती है, उसी प्रकार रामचन्द्रजी के पास कुंकुमवर्णा सीतादेवी विविध रत्नखचित आभूषणों से भूषित होकर झलक रही है। शिवजी के समीप उत्तम मन्त्र तथा लक्षण-युक्त ब्रह्मचारियों का समूह होता है, उसी प्रकार राम के

निकट रथवाहक (सारथि) सुमन्त्र और ब्रह्मचारी लक्ष्मण मौजूद हैं। इन लक्षणो से सीतारामजी के शिवपार्वती-रूप की सूचना मिलती है।(४०)

भूति—भस्म, राख; वरवर्णिनी—श्रेष्ठ वर्णवाली कुंकुमवर्णी; सुमन्त्र—उत्तम मन्त्र जानने वाले, दशरथ के मन्त्री; ब्रह्मचारी—शिव के पास के ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी लक्ष्मण; (श्लेष)। (४०)

बिश्रामन्ते किछि दूरे कहे नरे वनरे रचिवा पुर।
बप्ता देइछन्ति दण्डकरे पूर्वे न थिला कि दण्डधर।
बोल ताङ्कर मान। बर्त्तु आम्भे होइ प्रजाजन।४१।

सरलार्थ--कुछ दूर जाने के वाद श्रीरामचन्द्र ने विश्राम किया तो प्रजावर्ग ने उनसे कहा, 'आपके पिताजी ने इसलिए आपको दण्डकारण्य प्रदान किया है कि हम लोग यहाँ पर एक नगर वनाकर निवास करे। पहले यहाँ क्या कोई राजा नही था? अवश्य होगा? अतएव हम लोगो का अनुरोध है कि आप यही राजा वनें और हम सव भी आपकी प्रजा होकर यही वास करे, ऐसा करने से पिताजी का आदेश भी प्रतिपालित होगा (उसकी उपेक्षा न होगी)।' (४१)

बप्ता—बाप, पिता; दण्डकरे—दण्डकारण्य; दण्डधर—राजा; वोल—आदेश; बर्त्तु—बचें, जीवित रहे, वास करे। (४१)

बक्तव्य राघव एथि अनुरूप प्रजा चतुरंग छन्ति।
बत्सकसह सुरभि पयोधर ब्रजब्रज झटकन्ति।
बृत सुनारीचय। बिहरन्ति केते तन्तुवाय।४२।

सरलार्थ--प्रजाजन की वात सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा, 'यहाँ वन-राज्य मे अयोध्या के अनुरूप प्रजाजन तथा चतुरग सैन्य है। इस वन में गिरिमल्लिकाओ-सहित चम्पावृक्ष वछड़ो-सहित गायो और नारियल के पेड़ क्षीरधारी गोपालो के सदृश झलक रहे है। फिर सुनारियो (अमलतासो) के पेड़ सोनारो के सदृश है और मकड़े जुलाहो के सदृश यहाँ वास कर रहे है। इस प्रकार यहाँ इस वन-राज्य मे सवत्सा धेनुएँ, क्षीरधारी गोपाल-समूह, सोनार तथा जुलाहे आदि सभी प्रकार के प्रजाजन विहार कर रहे है। यहाँ आप लोगो-जैसे प्रजाजनों की आवश्यकता नही है।' (४२)

वक्तव्य राघव—राम ने कहा; एथि-यहाँ; चतुरग—सेना के चार (हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल) विभाग; वत्सक सह—बछड़ो के सहित, गिरिमल्लियों के साथ; सुरभि—गायें, चम्पक वृक्ष; पयोधर—नारियल, क्षीरधारी; ब्रज-ब्रज—गोपाल-समूह सुनारीचय—अमलतास के पेड़ों का समूह, सोनारजन; तन्तुवाय—मकड़े, जुलाहे; ...ेष)। (४२)

ब्युतपन रथ गन्धर्व उटजे करिबार विहारकु ।
बिधिरे शाखी फळकधारी शोभा आम्भ प्रतिपाळनकु ।
बोलि मउन हेले । बञ्चाइ से पथ रात्रु गले । ४३ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने फिर कहा, 'अयोध्या मे मै रथों, घोड़ों, हाथियो तथा ऊँटो पर विहार करता । यहाँ भी मेरे विहार के लिए वेतस लताएँ, निकुञ्ज आदि उपलब्ध है । वहाँ विधानानुसार हम लोगों की प्रतिरक्षा के लिए खड्गधारी पदातिसमूह शोभित रहते, उसी तरह यहाँ फलयुक्त विटप शोभित हो रहे है । इससे चतुरंग बलो (सेनाओ) की सूचना मिलती है ।' इतना कहकर रामचन्द्र नीरव (चुप) रहे और रात्रि के शेष होने से पूर्व ही उस मार्ग को त्यागकर दूसरे मार्ग पर चल दिये । (४३)

रथ—यान-विशेष, वेतस लताएँ; गन्धर्व—घोड़े, मृग; उटज—ऊँट, पर्णशालाएँ (झोंपड़ियाँ); करिबार—हाथियो का समूह; शाखी—पदाति (पैदल सिपाही), वृक्ष; फळधारी—तलवार धारण करने वाले, फलवन्त; (श्लेष) । (४३)

बाहि सुमन्त्र विमान राम आज्ञावशे अयोध्या गमन ।
बाहुड़िले जने से चक्र चिह्नकु गोड़ाइ हरष मन ।
बश मृगतृष्णारे । बारि बुद्धि यथा मृग करे । ४४ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र के रथचालक सुमन्त्र उनके आदेशानुसार रथ लिये अयोध्या को लौट गये । पथिक लोग जिस तरह भ्रमवश मरीचिका को जल समझ अत्यन्त आनन्द से उसके पीछे दौड़ते है, उसी तरह प्रजाजन उस लौटते रथ के चक्र-चिह्नो को देखकर यह समझे कि रामचन्द्र शायद अयोध्या लौट गये, और इसी आशा से आनन्द-विह्वल होकर वे सभी अयोध्या (की ओर सवेग) वापस चले । (४४)

गोड़ाइ—अनुसरण करके, पीछे चलकर; मृगतृष्णा—मरीचिका । (४४)

बेगी उदवेगी होइ परवेश भरद्वाज आश्रमरे ।
वीक्षण करि सीता राम लक्ष्मण तक्षण सबु पचारे ।
बोधि कहिले भाष । वीर सिंह अरण्ये विळस । ४५ ।

सरलार्थ—इस भय से कि प्रजाजन फिर कही उनके पीछे न चले आवें, रामचन्द्र ने अत्यन्त उद्विग्न होकर शीघ्र ही भरद्वाज ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया । सीता, राम तथा लक्ष्मण को ऐसी दशा मे अप्रत्याशित रूप मे वहाँ पहुँचते देखकर ऋषि ने सारी बाते पूछी । तब राम ने अपनी कथा उन्हे सुनायी । उनकी बाते सुनकर भरद्वाज ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा,

'आप सिह-सदृश वीर है। अतएव सिंह-सदृश ही इस अरण्य मे विहार करे।' (४५)

बेगी—वेगवन्त; उद्बेगी—उद्विग्न; वीरसिंह—वीरश्रेष्ठ। (४५)

बिदर तीक्ष्ण नाराच करजरे मदान्धकरी असुर।
बिमोहित हेब चित्रकूट गिरि क्रोटे करिबारु पुर।
बहे पयस्वी नदी, बिशेषित होइ तहिँ स्वाद्वी।४६।

सरलार्थ—भरद्वाज ने फिर कहा, 'पशुराज सिह जैसे मदमत्त हस्तियों को अपने नाखूनों से विदीर्ण कर डालता है, उसी प्रकार अपने कुशाग्र शरों से आप मदान्ध असुरो का विनाश करे। सिह पर्वत की गुहा में रहकर आनन्दित होता है, वैसे ही आप भी चित्रकूट पर्वत मे आनन्द से निवास करे। और भी, वहाँ जो पयस्वी नामक नदी वहती है, उसका जल विशेष रूप से सुस्वादु है, आप उसका जलपान करके परितृप्त होगे।'—(४६)

तीक्ष्ण—नुकीले; नाराच—शर, वाण; करज—नाखून; मदान्धकारी—मदान्ध, घमण्ड से अन्धा; स्वाद्वी—स्वादिष्ट, जायकेदार। (४६)

बञ्चि से दिनक जनक गउरी गउर मर्कतगात्र।
बर्त्मरे गमन बन्यनारी चाहिँ चकित स्थकित नेत्र।
बर कागजचकी। बिलोकन्ति येमन्त कुतुकी।४७।

सरलार्थ—कनक गौरी सीता, गौर वर्ण लक्ष्मण और मर्कतगात्र रामचन्द्र ने वही एक दिन भरद्वाज मुनि के आश्रम मे बिताया। दूसरे दिन सुबह वे तीनों आगे मार्ग पर वढे। बन की नारियाँ अचरज भरे नयनों से उनके मनोहर रूपों के दर्शन करके थकी हुई-सी ऐसी चित्रित रह गयी, मानो कागज की उत्कृष्ट गुड़िया को विनोदी लोग कुतूहल से देख रहे हो। (४७)

बञ्चि—ठहर कर, विता कर; कनक गउरी (कनकगौरी)—सोने के सदृश गौर वर्णवाली (सीता); गउर (गौर)—लक्ष्मण से तात्पर्य; मर्कत गात्र—मर्कतमणि के सदृश नीले रंग के शरीर वाले (रामचन्द्र); वर्त्मरे—मार्ग पर; चकित नेत्र—अचरज-भरे नयन; स्थकित—थकी हुई-सी; वर—श्रेष्ठ, उत्कृष्ट; कागज चकी—कागज की गुड्डी; विलोकन्ति—देखते है; कुतुकी—विनोदी लोग। (४७)

बोलाबोलि हेले परमसुन्दर बर ए पथिक दुइ।
वल्लभी पुणि रमणीशिरोमणि काहार थिबटि होइ।
बोलि निकटे गले। बइदेहीङ्कि से पचारिले।४८।

बरारोहा ए पुरुषरार दुहेँ सोदर किंवा तुम्भर।
बुलन्ति जगते घेनि संगतरे सुसमे न मिळे बर।
बोलुँ शिर कम्पाइ। बर देवर के ग्राअ कहि। ४९।

सरलार्थ--वे नारियाँ आपस में वातचीत करने लगी, 'ये दोनों पथिक तो परम सुन्दर है। यह सुन्दरीशिरोमणि निश्चय ही उन दोनो में से किसी एक की प्रियतमा (पत्नी) होगी।' परन्तु ठीक तरह से विना समझे ऐसा संदिग्ध प्रश्न पूछना भारतीय लज्जाशीला नारी के लिए शिष्टाचार के विपरीत है। इसलिए वे सीता जी के निकट गयीं और उनसे यह स्वाभाविक प्रश्न किया, 'हे नितम्बिनि ! ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ तुम्हारे सोदर (सगे भाई) है क्या ? शायद तुम्हारे लायक वर के न मिलने के कारण अपने साथ तुम्हें लिये लोक में घूम रहे है।' उनकी यह वात सुनकर सीता ने सिर हिलाया, जिससे सूचना मिली कि ये दोनों इनके सोदर नहीं। तो असली बात जानने के लिए उन्होने सीता से फिर पूछा, 'इन दोनों में से तुम्हारे पति कौन हैं और देवर कौन ? जरा हम लोगों को बताओ न।' (४८-४९)

वल्लभी—प्रिया, पत्नी; वरारोहा—नितम्बिनी; दुहेँ—दोनों; शिर कम्पाइ—सिर हिलाकर (निषेधसूचक); के—कौन। (४८, ४९)

विळम्ब करन्ते प्रळम्ब-कुन्तळा डाके लक्ष्मणकुमार।
वामाङ्कु वोधिले ए देवर वोलि मन्थर गति सत्वर।
बृद्धि करन्ते नोहि। वरटा कि गर्भाळसी होइ। ५०।

सरलार्थ--वन्य नारियों से वातचीत करने के कारण दीर्घकेशी सीता को कुछ विलम्ब लगते देख, लक्ष्मण ने उन्हें पुकारा। तो सीता ने उन नारियो को यह समझाया कि ये जो बुला रहे हैं, वे मेरे देवर है। सीता की इस उक्ति से यह स्वतः स्पष्ट हो गया कि दूसरे व्यक्ति उनके पति हैं। अनन्तर, सीता दोनों के साथ होने के लिए अपनी धीर-मंथर गति की वृद्धि करने को उद्यत हुईं तो उसमें वृद्धि नहीं हो सकी, वल्कि वे ऐसी प्रतीत हुई, मानों हंसिनी ने गर्भ के भार से आलस्य-युक्त हो मन्द गति धारण कर ली हो। (५०)

प्रळम्व-कुन्तळा—दीर्घकेशी, लम्बे वालोंवाली; वरटा—हंसिनी; गर्भालसी—गर्भ के कारण आलस्य-युक्त। (५०)

वनरुहदळे [illegible] रराये परते ए [illegible] प।
विन्यास च [illegible] ळे ग्रहिँ उत्कुटि [illegible] न।
वसुछा [illegible] ।ला।च ल्तकु।द८

सरलार्थ--उस समय चलती हुई सीता ऐसी प्रतीत हुई, मानो गर्भवती हसिनी पद्म-पत्र पर धीमी-मन्थर गति से पद-विन्यास करती चल रही हो। यह झूठ नही है, सच है । उन स्थानो पर जहाँ-जहाँ सीता पद-निक्षेप कर रही है, उनके चरण-चिह्नो से कमल पैदा होते जा रहे है, और भ्रमर उन्ही स्थानों मे पैदा होनेवाले रेतीले पद-चिह्नो को कमल समझकर और उनसे आ रही कमल-सुगन्ध से विमुग्ध होकर, बैठकर उन्हे चुम्बन दे रहे है। (५१)

छद्म—झूठ; उत्कुटि याउछि—पैदा होते जा रहे है; वसुछन्ति—बैठ रहे है; रोलम्ब—भ्रमर, भौंरे । (५१) तुलनीय:—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ। आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्। (पार्वतीरूपवर्णना, कुमार-सम्भव, प्रथम सर्ग)

व्यक्त होइबा याए चाहुँथिले पक्वणवासी गमिले।
विहि भेळा बाळा सहोदर मेळा गंगा पार होइगले।
बिजे चित्रकूटर। बानपदे कहे वीरवर। ५२।

सरलार्थ--कुटीरवासिनी शबरियाँ इनको तब तक निहारती रही, जब तक वे दीखते रहे। अदृश्य होने पर वे लौट गयी। इस समय रामचन्द्र ने पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ मिलकर एक बेड़ा बाँधा और उससे गगा को पार किया । तदनन्तर वे सब चित्रकूट पर्वत पर उपस्थित हुए। भज कवि ने इस छान्द की बावन पदो मे रचना की। (५२)

पक्वणवासी—कुटीरवासिनी; भेळा—बेड़ा; बिजे—विराजमान। (५२)

॥ इति सप्तदश छान्द ॥

अष्टादश छान्द

राग—बिभासगुज्जरी

बन्या शिखरीर तहिँ बिप्रलब्धा प्राय होइ ऋषि बार प्रबर्त्ताइ
अछि ये । बिटप प्रकम्पनर सङ्गति सहचरीर पुर अभिमुखर
होइछि ये । १ ।

सरलार्थ—चित्रकूट पर्वत का वनसमूह विप्रलब्ध नायिका की तरह हुआ है। विप्रलब्धा नायिका 'ऋषिबारे' (रूठने में) प्रवृत्त होती है, विटप (जार) पुरुष के प्रति हाथ हिलाकर 'नहीं' 'नहीं' करती है और दूती के साथ अपनी गृहाभिमुखिनी होती है। उसी तरह वनसमूह ने 'ऋषिबारे' (ऋषिसमूह को) प्रवृत्त (आश्रयीभूत) किया है अर्थात् ऋषि-लोग यहाँ आश्रम बनाकर वनवास कर रहे है। धीर पवन बहकर विटपों (पत्नों) को प्रकम्पित कर रहा है और सम्मुख मे 'सहचरी' (झिण्टी वृक्ष) तथा 'गुग्गुल' वृक्ष खड़े है। (१)

बन्या—वनसमूह; शिखरी—पर्वत; ऋषिबारे—रूठने में, ऋषिसमूह को; बिटप—जार पुरुष, पत्र; सहचरी—दूती, झिंटी (कटसरैया) वृक्ष; पुर—गृह, गुग्गुल। (श्लेष) (१)

बिरस खण्डिता सेहि पिक वाणीरे छळइ प्रवृद्धि करइ मदनकु ये ।
विस्परश कर संग पयोधर फळ तुङ्ग पुरुष प्रकाशि रञ्जनकु
ये । २ ।

सरलार्थ—पुनश्च वह वन एक विरस खण्डिता नायिका के सदृश है। अपने खण्डित वचनों को वह कोयल की बोली के मिस प्रकाश करके काम-विकार की वृद्धि कर रही है। ऊँचे नारियलो के पेड़ो के फलों-रूपी स्तनों को वह पुरुषों के करों से अछूता रखकर उनके मन मे केवल अनुराग ही पैदा कर रही है। तात्पर्य यह है कि उस खण्डिता नायिका के सदृश वनसमूह में कोयलों की कूक से काम-विकार बढ़ रहा है और वहाँ अत्युच्च वृक्षो पर नारियलों के फल लगने से वे फल हाथो की पहुँच के वाहर है। और भी उस वनसमूह मे पुन्नाग, रक्तचन्दन आदि अत्युच्च वृक्ष उगे है। (२)

पयोधर—नारियल, स्तन; तुंग—ऊँचे; पुरुष—मर्द, पुन्नाग वृक्ष; रञ्जन—अनुराग, रक्त चन्दन। (श्लेष) (२)

बिदूर लक्ष्मण घन पवन भग्न चन्दन-दारु आणि चारु बास बिहि
ये। बिद्रुमे ताहार छाइ बाड़ नळदरे देइ कस्तूरी गैरिके
चित्र लिहि ये। ३।

सरलार्थ—तदनन्तर लक्ष्मण घने जगल मे थोड़ी दूर चलकर
पवन से टूटे एक चन्दन वृक्ष की लकड़ियाँ ले आये और उनसे एक मनोहर
कुटीर का निर्माण किया। उस कुटीर पर पत्र छा दिये एवं खसखस
के बाड़े दिये। बाड़ो पर कस्तूरी तथा गेरू से चित्राकन किये। (३)

**बिदूर—थोड़ा दूर; वास—वासगृह, कुटीर, झोंपड़ी; बिद्रुमे—पत्रों से; बाड़—बाड़ा;
नळद—खसखस। (३)**

बारण बारण रण-बशे येउँ रद चूर्ण क्षोद करि अजिरे पकाइ ये।
वैदेही राघव मिळि इच्छन्ति एकान्त केळि हरषे दिवस निशि
नेइ ये। ४।

सरलार्थ—फिर लक्ष्मण ने, हाथी से हाथी के युद्ध के समय दाँतों से
दाँतों के घसीटने पर जो चूर्ण नीचे पड़ा रहता है, उसे लाकर धूल की
तरह आँगन में बिखेर दिया। उस गृह में रामचन्द्र सीता के सहित
एकान्त मे क्रीडा करने की इच्छा करते है और यों क्रीड़ा करते हुए
दिन-रात बिताते है। (४)

**वारण—हाथी; रण—युद्ध; रदचूर्ण—दन्त का चूना; क्षोद—चूना या धूल;
अजिरे—आँगन में। (४)**

वृक धूपरे धूपित से ओक कले निरत द्राक्षा अशनरे होइ तोष ये।
बिस्मरि स्वपुर नर्म शय्या कृष्णसार चर्म एबे शुण साधु आन
रस हे। ५।

सरलार्थ—उन्होने पर्णकुटी-गृह को हमेशा सुगन्ध-द्रव्य-धूप से सुगन्धित
किया। द्राक्षा-भोजन से वे सब सन्तुष्ट रहे और हिरन के चमड़े पर सो
कर अपने अयोध्यापुर के विनोद-परिहास भूल गये। हे साधु जनो! अब
दूसरे रस को सुनो। (५)

**वृकधूप—अनेक सुगन्धित द्रव्यों का धूप; धूपित—सुगन्धित; ओक—गृह,
(यहाँ) पर्णकुटी; अशन—भोजन; नर्म—विनोद-परिहास; कृष्णसार—मृग, हिरन;
आन—दूसरे। (५)**

बाहुड़ि सुमन्त्र गला नृप पचारुँ कहिला राणीगोत्रे पात्रे तहिँ थिले
ये । बहि मुनिछवि बेनि, जानकी संगते घेनि न कहि विपथे
रात्रुँ गले ये । ६ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र, सीता व लक्ष्मण को तमसा के किनारे पर छोड़ सुमन्त्र रथ-सहित अयोध्या लौट गये। दशरथजी के पूछने पर उन्होने कहा, "राम-लक्ष्मण, दोनो ने मुनि-वेश धारण किया और सीता के सहित रात के शेष होते मुझसे कहे बिना अमार्ग पर निकल गये। सुमन्त्र जब यह बोल रहे थे, वहाँ दशरथजी के समीप रानियाँ तथा दूसरे पात्र उपस्थित थे। (६)

राणीगोत्रे—राणीसमूह; विपथे—अपथ पर, अव्यवहृत मार्ग पर; रात्रुं—रात्रि के शेष होते; गले—गये। (६)

बन-वास रीति शुणि बनवास नेत्रे आणि हृदमध्ये राम बिहरित
ये । वि-कळध्वनिरे लोळ सुमन भ्रमरे मेळ दशरथ
एमन्त कथित ये । ७ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र की वनवास-रीति सुनकर दशरथ ने उस 'वनवास' को अपने नेत्रों तथा हृदय मे स्थान दिया अर्थात् नेत्रो में 'वनवास' अर्थात् जल (आँसू) का निवास हुआ एवं हृदय में वनवास अर्थात् अरण्य का निवास हुआ। अरण्य में 'राम' (मृग) के विहार की तरह दशरथ के हृदयारण्य मे राम विहार करने लगे। वनभूमि विकळध्वनि (पक्षियों की मधुर ध्वनि) से चचल हो उठती है और भ्रमर (भौरे) सुमनों (फूलों) पर इकट्ठे होते है। उसी तरह दशरथ का हृदय व्याकुल ध्वनि से चचल हो उठा और उनके 'सुमन' (उत्तम मन) मे विभ्रम उत्पन्न हुआ। तदनन्तर दशरथजी ने कहा—(७)

वनवास—जल (आँसू) का वास, अरण्यवास; वि-कळध्वनि—पक्षियो की मधुर ध्वनि, व्याकुल ध्वनि; लोळ—चंचल; सुमन—फूल, उत्तम मन; भ्रमरे—भौरे, विभ्रम; (श्लेष)। (७)

व्याध प्राय होइ मुहिँ जळघाट जगिथाइ अन्ध तपिसुत नेउँ नीर
ये । बुड़ाउँ कुम्भ से कुम्भी शवद भ्रमे आरम्भि ताकु नाशिलि
प्रहारि शर ये । ८ ।

व्यथित कहन्ते माता पिता यथा पतिव्रता चिता कराइ मोहर करे
ये । बायुसखारे पशिले से काळे ए शाप देले सुत मुख न
देख नाशरेये । ९ ।

सरलार्थ—"एक रात एक शिकारी के नाते मैं पनघट पर जगा था। उस समय अन्धे तपस्वी के बालक पुत्र ने पानी लेने के लिए अपना घट पानी में डुबाया। घड़े के डूबने से जो शब्द हुआ, उसको मैंने भ्रमवश यह समझा कि शायद कोई हाथी पानी पी रहा रहा हो और तीर छोड़कर मुनि-पुत्र का विनाश किया। यह बात जब मैंने जाकर उनके पिता-माता से कही, तो वे बड़े व्यथित हुए और मेरे हाथों से चिताग्नि बनवायी और पतिव्रता रमणी के समान उसमें घुस गये। उस समय उन्होंने मुझे यह शाप दिया कि मृत्यु के समय तुम अपने पुत्र का वदन देखे बिना मरोगे। (८-९)

व्याध—शिकारी, कुम्भ—घड़ा, कलसा; कुम्भी—हाथी; चिताश्मशानाग्नि; वायुसखा—अग्नि। (८-९)

विश्रामटि सेहि काळ जीवन यिबार मूळ हेला अशुभ-स्वप्न महिपी ये। वीर गणेश श्रीराम मूपिक करणे क्षम यमकु से होइ नाहिं पाशी ये। १०।

सरलार्थ—उस अभिशाप के भोग का वक्त आ पहुँचा। सुतरां मेरी मृत्यु सुनिश्चित है। स्वप्न में महिषी (भैंस) देखना अशुभदायक है। उसी प्रकार पट्टमहिषी (पटरानी) कैकेयी मेरे लिए अशुभदायिनी बनी है। पाश-अस्त्रधारी वीर गणेश ने यम को एक चूहे की तरह फाँस से बन्धन किया था। उसी तरह वीरगणों में श्रेष्ठ रामचन्द्र तो मेरे समीप नहीं है। कौन यम के काबू से अब मेरी रक्षा करेगा ?" (१०)

विश्राम—उपस्थित; महिषी—भैंस, पटरानी; वीर गणेश—वीर विनायक, वीरगणों में ईश (श्रेष्ठ) रामचन्द्र; पाशी—पाशअस्त्रधारी गणेश, पार्श्ववर्त्ती (पास में राम का होना); (श्लेष) (१०)

वदुँ प्रतिपदुँ तहिँ पक्षवार योग होइ पूर्ण राका (जा) क्षयातिथि हेला ये। विदित एणु से क्षण मास सदृश प्रमाण करण राशि सञ्चार थिला ये। ११।

सरलार्थ—इस समय दशरथ की बातों के प्रत्येक पद में स्वेद, स्तम्भ, स्वरभंग, रोमांच, कम्पन, वैवर्ण्य, अश्रु, मूर्च्छा आदि सात्त्विक लक्षण सब प्रकट हुए एवं उनका इन्द्रियसमूह शिथिल हो गया। बात बोलते-बोलते वे बेहोश हो गये। अतएव उनकी आखिरी घड़ी आ पहुँची थी। वे विनाश काल के अतिथि बने। इसी वजह से उनका यह समय चान्द्र मास के सदृश विदित हुआ-सा सिद्ध हुआ; क्योंकि चान्द्रमास में प्रतिपदादि तिथियों, पक्षों, योगों, वारों, करणों, नक्षत्रों तथा राशियों आदि का

सचार होता है। इन्ही की सहायता से चन्द्र क्रमशः प्रतिपदा से अपनी कलाओं से वृद्धि प्राप्त करके राका में पूर्ण-चन्द्र का रूप धारण करता है। राजा ने उसी तरह अपने सखा-सहायकों और इन्द्रियादि व्यापारों के संयोग से क्रमशः पूर्ण रूप धारण करके स्वेद, स्तम्भ, स्वरभंगादि के द्वारा विनाश प्राप्त किया। (११)

बदुँ प्रतिपदुँ—बात का प्रत्येक पद बोलते, प्रतिपदा की तिथि से वलेकर; पक्ष बार—सहायक समूह, मासार्द्ध और रवि-सोम आदि बार; राका—राजा, पूर्णचन्द्र; करण—इन्द्रिय, फलित ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्यारह करण; राशि—समूह, मेषादि राशियाँ; (श्लेष) (११)

बड़िमा-हर मन्दरे से नृप ग्रेणु विचारे तैळ पात्रे तेणु कले दान से। बहतु भरत पाशे प्रेषण कले रभसे नट विद्या प्राय रचि आन से। १२।

सरलार्थ—चूँकि राजा दशरथ ने शनि महाग्रह का गर्व हरण किया था, पात्र-मन्त्रियों ने जीवनानन्तर उनके लिए तैल-भाण्ड का दान-विधान किया। अर्थात् राजा की मृत्यु के समय उनके पुत्रों की अनुपस्थिति की वजह से राजा के शव-संस्कार का विधान नहीं किया जा सकता। सुतरां पात्र-मन्त्रियों ने उनके शव को तैल-द्रोणी में रक्खा। तदनन्तर शीघ्र ही भरत के समीप दूत भेजा। उस दूत ने इन्द्रजालिक की तरह छल से पिता का मृत्यु-सवाद बचाकर, दूसरे ढग से कहा कि पिताजी के आदेशानुसार तुम शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या में पधारो। (१२)

बड़िमाहर—गर्वहर; मन्द—शनि महाग्रह; बहतु—दूत; रभसे—शीघ्र ही; नट—जादूगर, इन्द्रजालिक; आन—दूसरे ढंग से। (१२)

बतासे मेघ गमन प्राये चळाइ विमान प्रवेश होइले अयोध्यार से। विधवा नारी समान दिशे से लक्ष्मणहीन रामरंग होइबारु दूर ये। १३।

सरलार्थ—पिताजी का आदेश सुनकर भरत ने तत्क्षणात् तूफान से मेघ के चलने के समान रथ चलाते हुए अयोध्या मे प्रवेश किया और देखा कि अयोध्या नगरी राम-लक्ष्मणजी के अभाव से केलि-रहित तथा सिन्दूरहीना विधवा नारी के समान हतश्री दिखायी दे रही है अर्थात् भरतजी, राम-लक्ष्मण को नही देख पाये। (१३)

बतासे—तूफ़ान से; लक्ष्मणहीन—(लक्ष्मणजी के अभाव से) विधवा नारी के समान लक्षणहीना; रामरंग होइबारु दूर—(रामचन्द्रजी का विहार दूर होने पर) केलि या रतिहीना विधवा नारी के समान हतश्री। (श्लेष) (१३)

विमनरे नरपन्ति कुररी परि झुरन्ति निशबदे य़था मुनिगण य़े । वरषा ऋतु प्रकार अन्त.पुरस्थानिकर उरभूमि पंकिळ करिण ये । १४ ।

सरलार्थ—और भी भरतजी ने देखा कि अयोध्यावासी नर-नारी कुररियो के सदृश दु ख से दशरथजी को क्षीण कर रहे हैं । वे सब मुनियो की तरह नीरव है । बरसात मे जिस तरह अविराम बारिश के कारण पृथिवी पकिल हो जाती है, उसी तरह अन्तःपुरस्थ रमणीकुल ने अविरत आँसू बहाकर अपने-अपने वक्षरूपी भूमि को पकिल बना दिया है । (१४)

विमनरे—विरस मन से; नरपन्ति—नरनारीवृन्द; कुररी—कपोती, कबूतरी; अन्तःपुरस्था—अन्तःपुर में रहनेवाली रमणियाँ; उरभूमि—वक्ष-रूपी क्षेत्र । (१४)

बणा गणएणी प्राये एणे तेणे चाहिँदिए चितापरि हृदे जळे चिन्ता ये । विनति माताङ्कु चण्डी अग्रे य़था सिंह मण्डि पुराण पुच्छिला प्राये श्रोता य़े । १५ ।

सरलार्थ—भरत अयोध्या में अमगल के सब लक्षण देखकर यूथभ्रष्ट मृग की तरह इधर-उधर निरखने लगे । उनके हृदय मे चिताग्नि के समान चिन्ताग्नि जलने लगी । ऐसी हालत में वे माता के पास गये और उन्हे प्रणाम करके उनके सामने बैठे ऐसे शोभित हुए, मानो दुर्गा के सम्मुख सिंह आ बैठा हो । अनन्तर भरत ने माता से सारी बाते पूछी, मानो एक श्रोता किसी पौराणिक से पुराण-प्रसग पूछ रहा हो । (१५)

बक्ता होइले जननी प्रथम युग न मानि जळावर्त्त बहि तव तात ये । बिहुथिले अभिषेक श्रीरामे होइ उत्सुक उपाये मुँ ताहा कलि हत य़े । १६ ।

सरलार्थ—माता कैकेयी ने कहा, "तुम्हारे पिताजी सत्य की सीमा लाँघकर भ्रम-वश उत्सुक मन से रामचन्द्र का राजपद पर तिलक कराने जा रहे थे । मैने उपायों द्वारा उसे भग किया । (१६)

वक्ता होइले जननी—माता (कैकेयी) ने कहा; प्रथम युग—सत्य; जळावर्त्त वहि—भ्रम में पड़कर । (१६)

विश्वम्भरा-पति होइ सीतावल्लभ उत्साही पशुबुद्धि देखि पेषि वन य़े । विनाश तामसी मते रामलक्ष्मणङ्क अस्ते नरपति होइले वहन ये । १७ ।

सरलार्थ—चूँकि सीतापति रामचन्द्र ने राजा या भूपति के मिस अपनी सास भू (पृथिवी) के पति होने की लालसा की, इसलिए उनका ऐसा अन्यायाचारण या पशुबुद्धि देखकर मैंने उन्हें वन मे भेज दिया, ताकि वे वहाँ पशु की तरह जीवन व्यतीत करे। राम-लक्ष्मण अर्थात् चन्द्र के अस्त हो जाने पर रात विनष्ट हो जाती है। उसी तरह राम-लक्ष्मण के वन जाने पर राजा दशरथ ने शोकातुर होकर शीघ्र ही विनाश को प्राप्त किया। (१७)

विश्वम्भरा-पति—भूपति, राजा; सीतावल्लभ—राम; तामसी—रात्रि; राम-लक्ष्मण—रमणीय (अथवा मृग) लक्षण (चिह्न) है जिसका, अर्थात् चन्द्र, रामचन्द्र और लक्ष्मण दोनों भाई; (श्लेष) (१७)

बिळस तु ईन होइ करि दीप्त कर मही श्रवणरे से भरत भाषे ये। बोलिबा कि माता तुम्भे राहु हेल ए आरम्भे पूर्वकाळे बेनिकुळ ग्रासे से। १८।

सरलार्थ—चन्द्र के अस्त अर्थात् प्रभात होने के उपरान्त सूर्य उदित होकर अपनी किरणों से पृथिवी को उज्ज्वल करते है। हे तात! उसी तरह तू राम-लक्ष्मण के स्थान पर इसी पृथिवी पर सूर्य के समान उदित हो, यहाँ बाहुओ का प्रताप फैला तथा राजा होकर षष्ठाश कर लेकर विलास कर। यह सब सुन, भरत ने क्रोध से कहा, "तुम तो माता हो, तुमसे और क्या कहूँ? मुझे राजा बनाने जाकर आरम्भ में तुम राहु बनी। राहु पर्व काल (प्रतिपदायुक्त अमावास्या तथा पूर्णिमा) में दोनो कुलो (चन्द्र तथा सूर्य—दोनो) को ग्रसता है। उसी तरह तुमने जो पहले राम को चन्द्र तथा मुझे सूर्य कहा, वह बिल्कुल ठीक है, क्योकि पर्व (उत्सव) के समय तुमने हम दोनों को ग्रस लिया। (१८)

ईन—सूर्य, राजा (प्रभु); कर—किरण, महसूल। (श्लेष) (१८)

बन्ध पकाइ मध्यर बेनिभाग कल नीर ए बुद्धि शिखिल काहुँ एबे ये। बोइले धात्री मन्थरा सुरभि से परम्परा गोपाळ-पुत्रे धाइँले जबे ये। १९।

सरलार्थ—हम चारों भाई जल के समान एकात्मा हुए थे। तुमने बाँध बनाकर हम लोगों के दो भाग किये। तुमने यह बुद्धि कहाँ से सीखी?" यह सुनकर कैकेयी ने कहा, "धात्री मन्थरा ने मुझे यह सिखाया।" विधानानुसार धात्री मन्थरा सुरभि (गाय) हुई। राजपुत्र भरत कैकेयी के मुख से यह सुनकर धात्री मन्थरा के पास शीघ्र ही दौड़ते हुए गये, मानो ग्वाला गाय के पास दौड़ा जा रहा हो। (१९)

धात्री—धाय; सुरभि—गाय; परम्परा—विधान; गोपाळ पुत्रे—राजपुत्र भरत, ग्वाले का लड़का; (रूपक तथा श्लेष) जबे—शीघ्र ही। (१९)

विषाणकेश धइले लगुड़ प्रहार कले चरणकु बान्धिले रज्जुरे ये।
बेनि हस्त ग्रोड़ि ग्राइ कौशल्या पाशे विनयी बोधिले से वचन मञ्जुरे ये। २०।

सरलार्थ—मन्थरा-रूपिणी सुरभि के पास उपस्थित होकर भरत ने उसके केश-शृग को पकड लाठी से पीटा और टॉगों को रस्सी से बॉध दिया। फिर वहॉ से जाकर वे कौशल्या के पास पहुँचे और दोनों हाथ जोड़, उनसे सविनय मधुर वचन बोलकर, उन्हे आश्वासना दी। (२०)

विषाणकेश—केश-रूपी शृंग; लगुड़—लाठी। (२०)

बशिष्ठादि शुणि आसि महीपति हुअ भाषि बोइले से क्रि बोल कोविदे ये। बज्र संगरे स्फटिक समतुल अविवेक एते विवेक न कल हृदे ये। २१।

सरलार्थ—भरत के आगमन का समाचार सुनकर, वशिष्ठादि गुरुओं तथा पात्र-मन्त्रियों ने उपस्थित होकर उनसे कहा, "तुम राजपद पर अभिषिक्त होओ।" यह सुनकर, भरत ने कहा, "आप लोग तो पण्डित है, ऐसा क्यो बोल रहे है ? जो व्यक्ति हीरक के साथ स्फटिक पत्थर का समान मूल्य करते है, वे अविवेकी है। आप लोग यह विचार नही कर पाये कि मै रामचन्द्रजी के समान नही हूँ। आप लोगों की गिनती अविवेकियों मे होगी। भला, मै क्या राजा बनने के योग्य हूँ ? (२१)

बज्र—हीरा; स्फटिक—बिल्लौर। (२१)

विधिपूर्वे तहुँ गले प्रेतक्रियाकु सारिले आस्थाने बसिले प्रान्त दिन ये। वेष्टन जनसमस्त सुमन्त्रे पुच्छे भरत केउँ दिगे श्रीराम गमन हे। २२।

सरलार्थ—तदनन्तर भरत ने यथाविधि प्रेतकर्म का सपादन किया। अन्त्येष्टि क्रिया के अन्तिम दिन वे सभा मे आसन पर वैठे हुए है। पात्र-मन्त्री उन्हें घेरे हुए है। इस समय भरत ने सुमन्त्र से पूछा, "श्रीराम किस दिशा में गये ? —मुझे बताओ। (२२)

आस्थाने—सभा में आसन पर। (२२)

बिनायक लम्बोदर हेले हेले गणेश्वर तात बोले तात तोते देले ये।
बाळचर्य्य ये अछन्ति राम हेले सेहि मति हुअ नृप वशिष्ठे
बोइले ये। २३।

सरलार्थ—उस समय वशिष्ठ ने दृष्टान्त देते हुए कहा, "विघ्नविनाशक गणेशजी विनायक अर्थात् नायक पद के अयोग्य है, उनका उदर लम्बा होने के कारण वे लम्बोदर कहलाते है। इन्ही कारणो से वे राजपद के अयोग्य थे। फिर भी अपने तात शिवजी के आदेशानुसार वे गणेश्वर अर्थात् गणो के राजा बने। उनके बड़े भाई कार्त्तिकेय के होते हुए भी वे राजा बने। उसी तरह तुम्हारे बड़े भाई श्रीरामचन्द्र राजा न होवें, कोई हर्ज नही; तुम अपने पिता के आदेशानुसार राजगद्दी पर बैठो।" (२३)

तात बोले—तात के वचन (आदेश) से; तोते—तुझे; वाळचर्य्य—कार्त्तिकेय। (२३)

वाणीरे भरत मोहि गजमूर्ख नुहें मुहिँ गिराङ्कुश घात किपाँ
कर हें। बिधिर अज्ञात दोष कळङ्क यथा प्रकाश धाता माता
रखिला मोठार ये। २४।

सरलार्थ—भरत ने ऋषि का वचन सुनकर अपनी वाणी से सबको विमोहित करते हुए कहा, "मै गणेश की तरह गजमूर्ख नही। आप क्यों इस तरह वचनांकुश से मुझे घायल कर रहे है? विधाता ने चन्द्र मे, उसकी अनजान मे, कलंक रख दिया। उसी तरह मेरी माता ने मेरी अनजान में, मुझ पर अपवाद या निन्दा-रूपी कलक प्रकट करके रक्खा। फिर राजा होने पर यह निन्दा और कहाँ तक फैलेगी, क्या जानें? (२४)

गिरांकुश—वचनांकुश। (२४)

बाहारिले राम आणि नग्रशून्य सेहि क्षणि बृथा बोलि मन्त्री करुँ
विघ्न ये। बिशुद्ध स्वर्ण पित्तळ मिशिछि येबे ता जाळ प्रति
उत्तर कले शत्रुघ्न ये। २५।

सरलार्थ—यह कहकर भरत रामचन्द्रजी को लौटा लाने के उद्देश्य से निकले तो अयोध्यावासी लोग उनके साथ जाने को उद्यत हुए। सुतरां नगरी सूनी पड़ गयी। मन्त्री सुमन्त्र ने कहा, "रामचन्द्र जी नही लौटेंगे, तुम्हारा जाना बेकार होगा और ऐसा कहते हुए उन्होने उनके मार्ग पर रोड़े अटकाये। तब शत्रुघ्न ने प्रत्युत्तर दिया, "विशुद्ध सोना तथा विशुद्ध पीतल—ये दोनों वर्ण में एक-से दीखते है। दोनों को जला

देने से पीतल अलग हो जायगा तथा सोना पहचाना जायगा। यह बात कि भरत के चरित्र-रूपी शुद्ध सुवर्ण के साथ अपनी माता की कुमन्त्रणा-रूपी पीतल मिला है या नहीं, भरत के वन-गमन तथा राम को वापस लाने के प्रयत्न-रूपी अग्नि-परीक्षा से साबित हो जायगी। इसलिए भरत वन जावे, उनके वन-गमन के मार्ग पर बाधाविघ्न मत डालो।" (२५)

बाटरे हेला एमन्त शृंगबेर आतयात कर महाधनीरे बिबादी ये।
बिधृत एक पदिका से नाना रत्ने शोभिका निर्मळ हृदे हेला प्रमोदी ये। २६।

सरलार्थ—भरत के चलते-चलते मार्ग पर एक घटना घटी। शृंगवेर-पुर के निवासी गुह नामक शबर ने अपने थोड़े ही लोगों-सहित एक लट्ठे की नाप के बराबर मार्ग पर जागकर भरत के सामने विघ्न डाला, मानो अदरख का एक व्यापारी चार 'पण' अर्थात् ३२० कौड़ियाँ साथ लिये विविध रत्न-परिशोभित एक महाधनवन्त मनुष्य के साथ विवाद करने के लिए आ पहुँच गया हो। फिर आपस मे बातचीत करने पर शबर-श्रेष्ठ गुह ने भरत को रामचन्द्रजी का छोटा भाई समझा और निर्मल (स्वच्छ) हृदय मे प्रसन्नता प्राप्त की। (२६)

शृंगवेर—गुह का पुर, अदरख; आतयातकर—जाने-आनेवाला, बास करनेवाला, आयव्यय करनेवाला व्यापारी; विधृत—बाधा देना; एकपदिका—चार पण कौड़ियाँ, एक नाप की [एक पण = बीस गण्डा = ४ × २० = ८०, सुतरां चार पण = ८० × ४ = ३२०, भारत की प्राचीन मुद्रा कौड़ियो का हिसाब 'काहाण,' 'पण' गण्डा तथा कड़ा मे लगाया जाता था। एक काहाण = १६ पण, १ पण = २० गण्डा, १ गण्डा = ४ कड़ा = ४ (संख्या मे)], एक लट्ठे की नाप के बराबर जमीन; से—वह; नानारत्ने—नाना रत्नों से, सेना नारत्ने (सेना नारत्ने—सभंग श्लेष)—सेना तथा नरश्रेष्ठो से; (श्लेष)। (२६)

विपिने भरद्वाजर सबळे प्रवेश वीर तपोबळे समस्त चर्चिले से।
विधु प्राये सुधातुल्य भोजन देले तत्काळ सुरप्राय सन्तोषे भुञ्जिले से। २७।

सरलार्थ—वीर भरत ससैन्य वहाँ से चलकर भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ने तपस्या के प्रभाव से उन लोगो का सत्कार किया। ऋषि ने उन लोगो को तत्काल ही अमृत-सम भोजन दिया, मानो चन्द्र ने देवताओ को अमृत परोसा हो। देवताओ की तरह उन लोगों ने ससन्तोष भोजन किया। (२७)

सबळे—सैन्यों-सहित; चर्चिले—आदर-सत्कार किया; सुरप्राय—देवताओ की तरह; भुञ्जिले—भोजन किया। (२७)

ब्युतपत्ति उत्तररु भोगप्राय दिव्यभीरु सेबिले फुलचन्दने शोहि ये। बितान तळे शेय्यरे बिहरि महासुखरे किछि नाहिँ रात्र गला पाहि ये । २८ ।

सरलार्थ—ज्ञानवर अर्थात् ऋषि ने उनको स्वर्ग-भोग दिया। रात में वे लोग वितान के तले सेज पर बड़े आराम से सोये। दिव्य नारियों ने फूलों तथा चन्दन से उन लोगो की सेवा की। रात्रि के अन्त मे उन लोगों ने देखा कि दिव्य नारियाँ अथवा वितान आदि कुछ नही। ऋषि के तप के प्रभाव से यह सब सम्भव हुआ था। (२८)

ब्युतपत्ति—(व्युत्पत्ति)—ज्ञान; उत्तर—श्रेष्ठ; भोगप्राय—स्वर्ग-भोग; दिव्य भीरु—स्वर्गीया स्त्रियाँ; वितान—चँदोवा। (२८)

बचस्कर मुनि येहु सुबाहु बळे सुबाहु नाशि भूति बिना भूति भूषा ये। बिहीन लक्ष्मणे येहि सहित लक्ष्मणे सेहि यानकी नोहि जानकी आशा ये। २९।

सरलार्थ—मुनिवर भरद्वाज ने वचन रचनापूर्वक विरोधाभास में कहा, "रामचन्द्र ने सुबाहुओं (उत्तम बाहुओ) से सुबाहु राक्षस का नाश किया। वे अब भूति (सपत्ति) से रहित और अपने शरीर पर भूति (भस्म) से भूषित है। वे अब लक्षणों (छत्र, दण्ड, चामरादि राज-चिह्नो) से विहीन होकर भाई लक्ष्मण के सहित वन में निवास कर रहे है। उन्हे यानकी (रथी) होने की आशा जंगल में नही, इसलिए जानकी (सीता) ही उनकी एकमात्र आशा-भरोसा है।" (२९)

वचस्कार—वचन-रचनाकार विरोधाभास अलंकार। (२९)

विचित्र चित्रकूटरे विहरे चित्रकूटरे कटकक़ु तेजि कटकरे से। विरोधभाष शुणि से गमन कले रभसे परवेश होइ निकटरे से। ३०।

सरलार्थ—आगे ऋषि ने कहा, "रामचन्द्रजी चित्रकूट से (आश्चर्य-जनक कपटनीति से) 'कटक' (राजधानी) का परित्याग करके अब विविध-रूप-वर्ण-सुशोभित चित्रकूट (पर्वत) के 'कटक' (मध्य भाग) में विहार कर रहे है।" ऋषि से ऐसी विरोधात्मक भाषा सुनकर भरत शीघ्र ही ससैन्य चित्रकूट गिरि-समीप पहुँचे तो वन के जीवजन्तु इधर-उधर दौड़ने लगे। (३०)

व्याळसमूहकु त्रासि सिंह कि घउड़ि आसि घोषुँ दन्ते उठि सौमित्रेय ये। बिलोकिले प्रजापत्ति वाजी हस्ते धरिछन्ति हरि चढ़ि आसे चय चय ये। ३१।

बाहन करि सुदन्ती केते बिहे रथे गति कन्दळी चळुअछन्ति शून्ये ये। विष्णुपद दिए गिळि रजनिकरहिं मिळि लक्ष्मण चिह्नि कहे वहन ये। ३२।

सरलार्थ--यह देखकर रामचन्द्र ने कहा, "क्या सिंह बाघों, गण्डारों, दुष्ट हाथियों आदि हिंस्र जन्तुओ को त्रास देते हुए भगा ला रहा है ? जब उन्होने बार-बार ऐसा कहा, तो लक्ष्मण पर्वत की चोटी पर उठ गये और देखा कि अपना प्रजा-वर्ग आ रहा है। उन लोगो मे से कुछ हाथों मे धनु-शर पकड़े पदाति है। उन्होंने घुड़सवारों को श्रेणियो मे आते हुए भी देखा। कुछ लोग अच्छे हाथियों पर चढे भी आ रहे थे और कई लोग रथों में श्रेणीवद्ध होकर आते हुए दिखायी दिये। पताकाएँ शून्य नभ मे फहर रही है। सैनिको की पदविक्षेप-जनित धूलि-राशि गगन में छा रही है।" लक्ष्मण ने उन्हे पहचान कर श्रीरामजी से अति शीघ्र कहा— (३१-३२)

व्याळ—हिंस जन्तु; घोषुं—रटते, बार-बार कहते; दन्ते—पर्वत की चोटी पर, सौमित्रेय—लक्ष्मण; पत्ति—कतार, श्रेणी, पंक्ति; बाजी—शर, बाण; हरि—घोड़े, अश्व; चय चय—श्रेणीबद्ध होकर; सुदन्ती—उत्तम हाथी; कन्दळी—पताकाएँ; विष्णु पद—आकाश; रज-निकर—धूलि-समूह; वहन—शीघ्र ही। (३१-३२)

बैमात्रेय गुण भाळि गरुड़े य़ेमन्ते काळी विभोग खण्डने साजि रणे ये। विवाद रचि तेमन्त ससैन्य होइ भरत गमन करिबा प्राय मणे य़े। ३३।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने राम से कहा, "कद्रुपुत्र कालीय सर्प अपने सौतेले भाई गरुड़ का गुण सोचकर उनका बलि-भोग नष्ट करने की इच्छा से उनके विरुद्ध रण-सज्जा की थी। उसी तरह ऐसा लग रहा है, मानो भरत भी अपने सौतेले भाई का गुण सोचकर हम लोगों से विवाद (लड़ाई) करने के उद्देश्य से ससैन्य यहाँ आ रहे हो।" (३३)

वैमात्रेय—विमाताजात पुत्र; भाळि—सोचकर; गरुड़—विनता-गर्भ से उत्पन्न कश्यप का पुत्र; काळी—कालीय सर्प, सर्पमाता कद्रु के गर्भ से जात कश्यप का पुत्र; विभोग—बलि-भोग; खण्डन—नाश; मणे—मुझे ऐसा अनुमान हो रहा है। (३३)

बोधे राम नदी सर तड़ाग कूप आबर मूर्त्ति भिन्न से एक जीवन ये। बरषा करे आविळ ता निज गुण निर्मळ शीतळकु न छाडन्ति घेन ये। ३४।

सरलार्थ—लक्ष्मण से ऐसी बाते सुनकर श्रीराम ने उन्हें समझाते

हुए कहा, "नदियाँ, सरोवर, तालाब व कुएँ आदि केवल मूर्त्तियों या आकारों मे अलग-अलग होते हुए भी जहाँ तक उनके साधारण धर्म जल का सम्बन्ध है, सब एक-से है। उसी तरह हम लोग चार भाई केवल रूपों अथवा आकारों मे भिन्न होते हुए भी हम सब एक ही प्राण के है। बरसात मे नदियों आदि में (का) जल गन्दा हो जाता है। अन्यथा जल के स्वाभाविक गुण निर्मलता तथा शीतलता है। वैसे भरत के सहज स्वभाव को चाहे कैकेयी ने कलुषित कर दिया होगा, परन्तु यों ही वे अपने सहज-स्वाभाविक निर्मल स्वभाव को त्याग नही सकेंगे। इस सत्य को स्वीकार करो। (३४)

बोधे—(राम) समझाकर कहते है; तड़ाग—तालाव; आबर—और, व; जीवन—जल, प्राण; (श्लेष); आविल—गन्दा; घेन—ग्रहण करो, स्वीकार करो। (३४)

विनति य़ोड़िण कर विनता सुत प्रकार दण्डप्राय दण्डे मही भजि य़े। बेगे सरागे तोळिले शिष्ये गुरु प्राये हेले बेनि भ्रात मन रञ्जारञ्जि य़े। ३५।

सरलार्थ—विनता-सुत गरुड़ के समान अपने हाथों को जोड़े भरत रामचन्द्रजी के सम्मुख विनयी हुए एव दण्ड के समान एक दण्ड (घड़ी) तक सीधे लम्बे भूतल पर लेटकर साष्टाग प्रणाम किया। तत्काल रामचन्द्रजी ने अत्यन्त स्नेह-सहित उन्हे उठा लिया, मानो गुरु शिष्य को उठा रहे हों। अनन्तर दोनों भाइयो ने आपस मे विनोद तथा मनोरञ्जन किया। (३५)

विनतासुत—गरुड़; दण्ड प्राय—डंडे की तरह; दण्ड—एक घड़ी; बेनि—दोनों; रञ्जारञ्जि—मनोरंजन किया। (३५)

बेढ़िले जन जननी गुरु चतुरंग घेनि दरिद्र धन लभिला परि से। बशिष्ठ सर्ब कहिले, भरत पद धइले गमन करिबा पाइँ पुरी य़े। ३६।

सरलार्थ—जन, जननी, वशिष्ठादि गुरु तथा चतुरंग सैन्य—सबके सहित भरत वहाँ उपस्थित हुए एवं रामचन्द्रजी के दर्शन करके ऐसे आनन्दित हुए, मानो दरिद्र ने धन पाया हो। वशिष्ठ ने सारी बाते श्रीराम को बतायी। भरत ने श्रीराम के पैर पकड़े और उनसे अयोध्या लौट चलने की विनती की। (३६)

पुरी—अयोध्या नगरी। (३६)

बोले राम सत्यवादी पदे अन्यार्थ सम्पादि समस्ते पण्डित-गुणे आसि हे। वच येहु जनकर न पाळे से कि कुमर पर्शुधर रेणुकाकु नाशि हे। ३७।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने उनसे कहा, "आप लोग सब पण्डित तथा सद्‌विचारवन्त व्यक्ति है। फिर भी यहाँ आकर पितृसत्य-पालन के पथ पर प्रतिकूलाचरण कर रहे है! जो पुत्र पिता का वचन-पालन नही करता है, क्या वह पुत्र है! सत्पुत्र परशुराम ने पिता की आज्ञानुसार अपनी माता रेणुका का तो वध किया था।" (३७)

अन्यार्थ—विपरीत अर्थ, प्रतिकूलाचरण, मुझे वचन-भंगकारी प्रमाणित करने के लिए प्रचेष्टा। (३७)

बोइले कैकेयीसुत दैत्यमाताठारु जात हेउ बात इन्द्र घात करि हे। विश्वासी तांकर हेला देव होइ न धइला मन्द गुण, मुहिँ सेहिपरि हे। ३८।

सरलार्थ—भरत ने राम से कहा, "जब दैत्यमाता दिति से पवन उत्पन्न हुआ, तब इन्द्र ने यह आशका करके कि कही यह अपनी माता की बुराइयों के हेतु असुन्दर बन कर मेरा विपक्ष न हो, बज्रप्रहारों से उसके उनचास खण्ड किये। पवन ने देवता होकर अपनी माता की बुराइयाँ ग्रहण नही की और इन्द्र ने उस पर विश्वास कर लिया। उसी प्रकार माता के कारण मुझे दोपी मत ठहराइए और इन्द्र के समान मुझे निर्दोष समझकर अपना लीजिएगा। (३८)

दैत्यमाता—दिति; बात—पवन; सेहिपरि—उसी प्रकार। (३८)

बिहरिबा मानसर मध्ये हंसकु सुन्दर आन पक्षीरे कि से वाञ्छित ये। बिषम बुद्धि प्रकाश केबे नोहिब नहुष प्राय नाश यिबाकु मो चित्त ये। ३९।

सरलार्थ—भरत ने आगे कहा, "मानसरोवर मे हंस का विहार सुहावना लगता है। दूसरे पक्षी का वहाँ विहार करना वैसा सुन्दर नही दीखता। उसी प्रकार अयोध्या मे आपका राजा होना जैसा सुहायेगा, वैसा मेरा नही सुहायेगा। मुझे वह लालसा नही। नहुप स्वर्ग में इन्द्र बन राजा हुए थे और उनका नाश हुआ था। वैसे मेरे मन में उस दुर्बुद्धि का प्रकाश न हो कि मैं अयोध्या मे आपके स्थान पर राजा बन उनके समान नष्ट होऊँ। (३९)

बिहरिबा—विहार करना; मानसर—मानसरोवर में; नोहिब—नही होगा, न हो; मो—मेरा। (३९)

वाहुड़िबाकु सम्मति न करुँ जानकीपति कुशेशय हेले सभ्रमरे ये। विहायसुँ देववाणी तो प्रसू पृथ्वी रक्षिणी निशा दोषा होइला प्रकार ये। ४० ।

सरलार्थ—जब रामचन्द्र अयोध्या जाने को असहमत हुए, तो भरत ने सभ्रम कुश-शय्या पर शयन किया, मानों सभ्रम कुशशेय (भ्रम-सहित कुश-शय्या पर सोये) भरत भ्रमर-युक्त पद्म बन गये हों। इस समय आकाश से दैवी वाणी सुनायी पड़ी, "हे भरत ! तुम्हारी माता पृथिवी-रक्षिणी है। उनका जरा भी दोष नही। रात्रि के कुछ दोष न होते हुए भी लोग 'दोषा' (दोष-युक्ता) बोलते है। उसी प्रकार तुम्हारी माता का कोई दोष नही, फिर भी उनका व्यर्थ ही अपवाद हुआ।" (४०)

सभ्रमरे—भ्रम के सहित (भरत के पक्ष में), भौंरे के सहित (पद्म के पक्ष में); कुशेशय—कुश-शायी (भरत के पक्ष में), पद्म; (शतपत्रं कुशेशयमित्यमरः)। (श्लेष); विहायसुँ—आकाश से; तो प्रसू—तेरी (तुम्हारी) माता; पृथ्वी—रक्षिणी—पृथिवी की रखवाली करनेवाली (रानी के रूप में); निशा—रात; दोषा—रात्रि का एक अन्य नाम। (४०)

बाहुड़ाइले राघव सूर्य्यवंश बुड़ियिब शुणि उठि य़तिबेश बहि ये। बन्दिले पादुक राजा सम्पदे करिण पूजा नन्दिग्रामे पुरी करि रहि से। ४१ ।

सरलार्थ—"हे भरत ! यदि तुम रामचन्द्रजी को लौटा लोगे, तो सूर्यवंश का गौरव डूब जायेगा।" ऐसी दैवीवाणी सुनकर भरत कुश-शय्या से उठे और उन्होंने यतिवेश धारणकर, श्रीराम की पादुकाओं को ले जाकर अयोध्या के राजसिहासन पर राजा के समान उन्हे रक्खा और उनकी 'पूजा-वन्दना' नित्य करने लगे। स्वयं नन्दीग्राम में गृह निर्माणकर निवास करने लगे। फिर अयोध्या कभी गये नही। (४१)

बहुड़ाइले—अगर वापस ले लोगे; पादुका खड़ाऊँ; राजसंपदे—राजयोग्य संपद से। (४१)

विशेष कारुणि होइ करुणासागर तहिँ तातवार्त्ता वशुँ क्रिया सारि ये। बयाळिश पदे छान्द कहे भन्ज उपइन्द्र सीताराम काननविहारी ये। ४२ ।

सरलार्थ—भरत आदि के वापस चले जाने के बाद करुणासागर श्रीरामचन्द्र वहीं पर पिताजी की मृत्यु-वार्ता से शोकातुर होकर करुण विलाप करने लगे। फिर प्रेतादि कर्म संपादनकर सीताराम काननविहारी हुए। वयालिस पदों मे उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द की रचना की। (४२)

॥ इति अष्टादश छान्द ॥

ऊनविंश छान्द

राग—पञ्चमबराड़ि

विचारइ माळयमकरे कवि मने ।
वुले राम राम रामनेत्री घेनि वने ये ।
वृहद्भानु भानु भानु प्रभा ताप नाहिँ ।
वृत तमाळ माळ माळती लता यहिँ ये । १ ।

सरलार्थ—कवि उपेन्द्रभञ्ज ने अपने मन में माल यमक में कविता करना विचार करके कहा, "सुन्दर रामचन्द्र मृगनेत्री सीता को अपने साथ लिये वन मे विहार कर रहे है। उस वन में घनी मालती लताएँ तमाल वृक्षो के समूह को छाये फैली हुई थी। इस हेतु वहाँ अग्नि तथा सूर्य का उत्ताप विलकुल अनुभूत नही हो रहा था। (१)

माळ यमक—शब्दालंकार विशेष; इस यमक मे एक शब्द की पर्याय क्रम से कई वार पुनरावृत्ति होती है।

राम—रमणीय, सुन्दर; राम—श्रीरामचन्द; रामनेत्री—मृगनेत्री; वृहद्भानु—अग्नि; भानु—सूर्य; भानु—उत्ताप, किरण; तमाळ माळ—तमाल वृक्षों का समूह; यहिँ—जहां, जिस वन मे। (१)

वहइ निर्झर झरझर अविरत ।
विशेष तरङ्ग रंग रंगणी शोभित ये ।
वहि चन्द्र चन्द्र चन्द्र शीतळकु वात ।
वहे मन्द मन्द मन्दसुत करे रुत ये । २ ।

सरलार्थ—फिर उस वन मे विशेप रूप से तरंगायित गिरि-निर्झरिणियाँ 'झर-झर' शब्द करके प्रवाहित हो रही है। रंग-विरंगे रंगिणी फूल खिलकर सुशोभित हो रहे है। समीरण, चन्दन, कपूर तथा जल की शीतलता को वहन करता हुआ धीरे-धीरे वह रहा है। कोयले मधुर स्वर से ध्वनि कर रही है। (२)

निर्झर—झरने; चन्द्र—चन्दन; चन्द्र—कपूर; चन्द्र—जल; मन्द मन्द—धीरे-धीरे; मन्दसुत—कोयलें, रुत—ध्वनि। (२)

विञ्चे घन घन घन कुशकण यथा ।
वृष्टि मधुर मधुर मधुरजे तथा ये ।

बिभ्राजित भृंग भृंग भृंग करे केळि ।
बनी बनी बनिता कि पुष्प हासे झळि ये। ३ ।

सरलार्थ—इस वन में महुओं के पेड़ मनोहर मधु तथा पुष्प-रेणु बरसा रहे है, जैसे मेघ घन-घन (सघन, बार-बार) जलकण सींचता है। गुड़-त्वक् (दारचीनी) व भृंगराज वृक्षो पर भ्रमरों की श्रेणियाँ क्रीड़ा कर रही है। फिर वह वनी (वन) सुन्दरी रमणी की तरह पुष्प-विकास के मिस अपना हास्य प्रकाश कर रही है अर्थात् उस वन ने विविध पुष्पों से विमण्डित होकर अपूर्व शोभा धारण की है। (३)

घन—मेघ; घनघन—बारबार; कुशकण—जल-कण; मधुर—महुए; मधुर—मनोहर; मधुरज—पुष्प-रेणु; भृंग—गुड़त्वक्, दारचीनी के पेड़; भृंग—भृंगराज वृक्ष; भृंग—भ्रमर, भौंरे; बनी—वन; बनी—सुन्दर; बनिता—रमणी। (३)

वोधे भृंखळारे रघुनाथ सीता मति ।
बिचित्र चित्रकूट ये कुटजे ब्रतति ये ।
ब्रतती तति जयन्ती अतिभा वासन्ती ।
वासन्ती सतिरे फुल्ल फुलरे प्रवर्त्ति ये। ४ ।

सरलार्थ—माल यमक के उपरान्त रामचन्द्रजी सीता के मन को शृखला यमक मे बोध कर रहे है। वे वोलते है, "अयि सीते ! यह सुशोभित चित्रकूट पर्वत गिरि-मल्लिकाओं से भरपूर होकर फैला है। लता-समूह तथा जयन्ती वृक्ष सव यहाँ विशेष रूप से दीप (चमक) रहे है। अयि सति ! (हे साध्वि !) माधवी तथा जूही लताएँ प्रफुल्ल पुष्पों से भूषित हो फैली हुई हैं। (४)

शृंखला यमक—इस यमक मे शब्दों की स्थिति विशृंखलित न होकर शृंखलाबद्ध रीति में हुआ करती है। एक शब्द की स्थिति के बाद अन्य शब्द की स्थिति होती है और अन्य शब्द के अक्षर पूर्व शब्द के शेष दो या तीन अक्षरो के समान होते है। जैसे 'विचित्र चित्रकूट ये, कुटजे व्रतति' आदि।

कुटजे—गिरि-मल्लिकाओ से; ब्रतति—विस्तृत, फैला हुआ; ब्रततीतति—लता-समूह; जयन्ती—वृक्षविशेष; अतिभा—अतिशय दीपना या चमकना; वासन्ती—माधवी लता; वासन्ती—जूही लता; फुल्ल—प्रफुल्ल, प्रसन्न; प्रवर्त्ति—फैली हुई है। (४)

बर्त्तिक तिक आळि आळि ये विहरित ।
विहरित मान मान शुक सुकवित ये ।
बितर तरळ नेत्र नेत्र सुवासिनी ।
बासिनी सुजाति जाती स्वभाव भाविनी ये। ५ ।

सरलार्थ—इस वन में बटेर तथा वये श्रेणियो में विहार कर रहे है।

व्यास-पुत्र शुकदेव के समान शुक पक्षियो का उत्तम कवित्वपूर्ण गान मन का अभिमान दूर कर रहा है अर्थात् मन मे आनन्द दे रहा है। अयि नेत्रवासिनि! (हे मृगमदगन्धे!) हे भाववति! तुम तो सहज ही सुगन्ध-युक्ता हो। जरा अपने भाव अर्थात् सुगन्ध से सम्पन्न (चमेली) फूलों में चञ्चल नेत्र वितरण करो अर्थात् जरा चमेली फूलों की ओर निहारो।(५)

वर्त्तिक—वटेर; तिक—वया; आळि आळि—श्रेणियाँ; नेत्रसुवासिनी—कस्तूरी-गन्धा सीता; वासिनी—सुगन्धयुक्ता; सुजाति—अच्छी जाति की; जाती—जाई, चमेली; भाविनि—हे भाववति! (५)

विनिस्वत स्वत शोभित भीत वैभ्राज।
वैभ्राज सुरसा रसा करकर वीज ये।
विजनमित मित हरष रस वार।
वारण वृषा वृपाळ साळ पुर पुर ये। ६।

सरलार्थ—अयि सति सीते! यह वन देवोद्यान की तरह स्वतः शोभा पा रहा है। सुतरा यहा कोई भय नही। हे सुरसा! पृथिवी अनारों के वीजों से चमक रही है। अरी सखि! सम्मुख में केलों तथा वड़े शालों के वृक्ष एव गुग्गुल के पौधे हर्षो तथा अनुरागो के समूह को उपजा रहे है। (६)

विनिस्वत—उपवन, वन; वैभ्राज—देवोद्यान; वैभ्राज—देदीप्यमान होना, चमकना; रसा—पृथिवी; करक—दाड़िम, अनार; विजनमित—विशेष रूप से पैदा करना; रसवार—रसों या अनुरागों का समूह; वारण वृषा—केले के पेड़; वृषाळ—वड़े; साळ—शाल के पेड़; पुर—गुग्गुल के पौधे; पुर—सामने, सम्मुख मे। (६)

वोधन्ति राम सिंहावलोकने अवळा।
वळकापन्ति करिछि ध्रुवकु धवळा ये।
वळाइ मानस मान अना प्राणवन्धु।
वन्धुक रञ्जन अति रंग निरवन्धु ये। ७।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्रजी सिंहावलोकन छन्द में अवला सीताजी को समझा रहे है—"हे प्राणवन्धु! मेरा कहना मानकर जरा एक ही वार मनोयोग-सहित निहार लो। ठूँठो पर वैठे वगुलो के समूह ने उन्हे कैसे सफ़ेद वना दिया है। गुलदुपहरिये गाढा लाल रंग धारणकर विशेष अनुराग पैदा कर रहे है। (७)

सिंहावलोकन—चलते समय सिंह जैसे कभी-कभी अपना मुँह मुड़कर पीछे की ओर देखता है, उसी प्रकार एक पंक्ति के प्रान्त मे या मध्य भाग मे उक्त शब्द या अक्षर परवर्त्ती पंक्ति के पहले या वीच में लिखा जाता है।

वळाकापन्ति—वगुलो की पंक्ति, वगुलों का समूह; ध्रुव—स्थाणु वृक्ष, ठूँठ;

अना—निहारो; बन्धुक—गुलदुपहरिये; रञ्जन—अनुराग; निरबन्धु—संयोग से, योग के कारण, धारणपूर्वक। (७)

बन्धुर पथटि हेजि हेजि पद बळा।
बळा ध्वनि प्राये झिल्ली शबद प्रवळा ये।
बळापन्ति फळवती प्रफुल्ल सेवती।
बतिश लक्षण देख बिहरे पार्वती ये। ८।

सरलार्थ—अयि सीते! इस ऊँचे मार्ग पर अत्यन्त सावधानी से निरख कर कदम डालो। यहाँ झीगुरों का प्रबल स्वर तुम्हारे पायजेबों की ध्वनि के समान सुनायी पड़ रहा है। बरियारे वृक्ष फलों से विमण्डित हुए है और सेवती फूल खिले है। अयि बत्तीस लक्षण-युक्ते सीते! देखो, यहाँ पार्वती नामक पतिगा कैसे क्रीड़ा कर रहा है? (८)

बन्धुर पथ—ऊँचा-नीचा मार्ग; हेजि-हेजि—सावधानी या ध्यान से देखकर, लिहाज करके; पद बळा—कदम बढ़ाओ; बळाध्वनि—पाजेबो की आवाज; झिल्ली—झीगुर; शब्द—आवाज, प्रबळा—तेज; बळापन्ति—बरियारों की पंक्ति; पार्वती—एक पतिगा। (८)

बतीर्ण अपूर्ण होइ केते नागबल्ली।
बल्लिकातळे शयन चामरी आबळी ये।
बळिब चइत्र रथु एमन्त भावना।
बनाळी प्रभु करि करिब सम्भावना ये। ९।

सरलार्थ—अयि सीते! इस वन में पान-लताएँ वतीर्ण-'अ'-पूर्वक अर्थात् अवतीर्ण हुई है। लताओं के नीचे चामरीमृग सब सोये हुए है। मन में ऐसा लगता है कि इस वन की शोभा कुबेर के उद्यान की शोभा से बढ़ गयी है। इस वन की शोभा को देखकर यह सम्भावना कर लो कि यह वन-समूह का प्रभु है। (९)

वतीर्ण-'अ'पूर्व—'अ' पूर्व वतीर्ण—पूर्व में 'अ' अक्षर अर्थात् अवतीर्ण; नागवल्ली—पान लता; बल्लिका—लता; चैत्ररथ—कुबेर का उद्यान; एमन्त—ऐसी (भावना), ऐसा जी में आता है; बनाळी—वनसमूह। (९)

ब्याघ्रगतिरे* सधीरे कहन्ति वीर से।
बीर तरु ये तरुणी कुसुम बरषे ये।
बर उन्नत उन्नत उपमा विहीन।
बिहित करिछि विहि ककुभ वचन ये। १०।

* व्याघ्रगति—चित्र-रचना विशेष; जिस रचना मे प्रत्येक पाद के उपान्त में आये दो अक्षरो से आगे का पाद या पद आरम्भ किया जाता है,

वह व्याघ्रगति छन्द कहलाता है। ऊनविश छान्द, पद १०-११ और १२।

सरलार्थ—अनन्तर वीर रामचन्द्र ने धीरता से व्याघ्रगति छन्द मे सीता से कहा, "अरी तरुणि! इस वन मे अर्जुन वृक्ष सव फूल वरसा रहे है। ये वृक्ष सब ऊँचाई में बेजोड है अर्थात् ये सव अत्युच्च होने के कारण वीरतरु (वृक्षो मे वीर) कहलाते है। और भी इनकी शाखाएँ दिगन्तो (क्षितिजों) तक फैली हुई है। इसलिए विधाता ने इनको 'ककुभ' नाम दिया है।(१०)

वीरतरु—अर्जुनवृक्ष; बिहि—विधाता; ककुभ—दिगन्तव्यापी अजुनवृक्ष। (१०)

बच सहितरे सहि प्रकाशे विभूति।
बिभूषण चम्पा षणपुष्प अविरति ये।
बिरळ भारती करि भारती विहारे।
बिहायसे लास्य उल्लासकु न बिसरे ये। ११।

सरलार्थ—अरी सखि! अर्जुन वृक्ष वचो (शुक पक्षियों) के सहित वि-भूति (पक्षी-रूपी ऐश्वर्य) को प्रकाश कर रहे है अर्थात् उन पर पक्षी बैठे हुए है। फिर वे वृक्ष सब सदा-सर्वदा चम्पा तथा घटापाटली फूलों से विभूषित हुए है अर्थात् उनके चारो ओर चम्पा तथा घंटापाटली फूल खिले है। भारती पक्षी उन पर विहार करते हुए विरल शब्द कर रहे है। वे बार-वार आकाश मे उड़कर नृत्य करते है और फिर इन वृक्षों पर आ बैठ जाते है। इस प्रकार वे अपना आनन्द नही बिसराते है। (११)

वच—शुक, तोता; विभूति-(वि-भूति)—पक्षीरूपी ऐश्वर्य; षणपुष्प—घंटापाटली फूल; विरल—दुर्लभ; भारती—बोली, शब्द; भारती—भारती पक्षी; विहायसे—आकाश मे; लास्य—नृत्य; विसरे—नही बिसराता, नही भूलता। (११)

विशद मल्लिकाकुळ बकुळ बसति।
बशरे बसन्ति मधुकरे बिळसन्ति ये।
बिळशय्या गन्धसार गन्धरे बिदित।
बिदिग दिग जबने पवने बासित ये। १२।

सरलार्थ—यह वन शुक्ल मल्लिकाओ तथा वकुल वृक्षो का वासस्थान होने के कारण उनके फूलों से सफेद दीख रहा है। उनके फूलो की सुगन्ध से वशीभूत होकर भौरे उनपर वैठे हुए है। चन्दन वृक्ष सुगन्ध से प्रकाशित हो रहे है। उनपर सॉप विहार कर रहे है। सव दिशाएँ शीघ्र ही सुगन्धित पवन के कारण महक रही है। (१२)

विशद—शुक्ल, सफेद; मल्लिकाकुळ—मल्लियो का समूह; बकुळ—मौलसिरी, मधुकरे—भौंरे; बिळशय्या—विवरो में जो सोते है, सॉप; गन्धसार—चन्दन; विदित—प्रकाशित; विदिग-दिग—सारी दिशाएँ; जवने—शीघ्र ही। (१२)

बसन्त-वसन बश महा य़मकरे ।
बसन्त बसन्त पक्षी बसन्तद्रुमरे ये ।
बीथी बीथी शोभा दिशे कुमुद कुमुद ।
बिलोक हास प्रकाशि कुमुदकु मुद य़े । १३ ।

सरलार्थ—तदनन्तर पीताम्बर रामचन्द्र ने महा यमक के वश होकर सीता से कहा, "इस वन मे हलदी-वसन्त या कोयलें आम के पेड़ों पर बैठी हुई है । अयि सीते ! देखो, जलाशयों में रक्त-कमल तथा कुई फूलो की श्रेणियाँ सुहावनी दीख रही है । तुम हास्य-प्रकाश के साथ उनके बृथा आनन्द को बन्द कर दो अर्थात् तुम्हारे अधरों की रक्तिमा देख रक्त-कमल तथा हास्य की शुक्लता (उज्ज्वलता) देख कुई फूल सब लज्जित हो मूँद जावे । (१३)

महा यमक—जिस यमक में श्लोक या पद की प्रत्येक पंक्ति के भिन्नार्थ-सूचक एकाधिक बार आनेवाले एक ही प्रकार के शब्द के अक्षरों में बहुबार समानता होती है और उन्ही अक्षरो के कारण अर्थो मे भी परिवर्त्तन होता चलता है, उसे महा यमक कहते है ।

वसन्त-वसन—पीताम्बर (रामचन्द्र); बसन्त—बैठे है, आसीन; वसन्त पक्षी—हलदी-वसन्त पक्षी या कोयले; वसन्त द्रुमरे—आम के पेड़ों पर; वीथी-वीथी—श्रेणियाँ; कुमुद—रक्त-कमल; कुमुद—कुई का फूल; कुमुदकु—वृथा आनन्द को; मुद—मूँदो, बन्द करो । (महायमक तथा व्यतिरेक अलंकार) (१३)

बिकशित होइछन्ति केशरी केशरी ।
बिळसे शाखारे देख केशरी के सरि य़े ।
बिदारि य़ाइछि करि केशरी केशरी य़े ।
बिहीन होइछि मात्र केशरी केशरी य़े । १४ ।

सरलार्थ—यहाँ नागकेसर तथा पुन्नाग वृक्ष विकसित हुए है। शाखाओं पर एक प्रकार के वानर निडर होकर क्रीड़ा करते है । उनकी क्रीड़ा की समानता कौन कर सकता है? देखो, यहाँ सिह, हस्तीश्रेष्ठ को विदीर्ण करके गया है । केवल घोटकश्रेष्ठ अथवा उत्तम घोड़े इस वन मे नही हैं । (१४)

केशरी—नागकेसर वृक्ष; केशरी—पुन्नाग वृक्ष; केशरी एक जाति के बन्दर; के सरि—कौन समान है ? करि-केशरी—हस्तीश्रेष्ठ; केशरी—सिंह; केशरी—घोटक श्रेष्ठ । (१४)

बाळाकु हस्त देखाइ पुणि रघुवर ।
बाक्य सम्बोधन भाषि सर्व यमकर य़े ।
बइदेहि सुमना सुमना ए सुरभि ।
बइदेही सुमना सुमना ए सुरभि ये । १५ ।

सरलार्थ—रघुवर रामचन्द्रजी ने सीता को सम्बोधन के साथ हाथ से इशारा करते हुए सर्वयमक में कहा, "अयि वैदेहि ! अयि उदारमने ! इस वन मे ये सव मालती के फूल है। ये सव चम्पक वृक्ष है। ये पिप्पली के वृक्ष है। ये देव-कुसुमो और लौगो के वृक्ष है। इनसे यह वन कितना मनोहर हुआ है, देखो। (अथवा ये सव जायफल के वृक्ष है।) (१५)

वैदेहि—(सीता के प्रति सम्वोधन)—हे सीते !; सुमना—अयि उदारमने !; सुमना—मालती के फूल; सुरभि—चम्पक वृक्ष; वइदेही—पिप्पली के पेड़; सुमना—देव-कुसुम; सुमना—लौंग; सुरभि—मनोहर (अथवा जायफल)। (१५)

विद्य लोकरे प्रियक माधवी संघात।
बिद्य लोकरे प्रियक माधवी संघात ये।
वाळिका कनककान्ति कनक कनक।
वाळिका कनककान्ति कनक कनक ये। १६।

सरलार्थ—हे वन्धु ! हे मित्र ! इस संसार में ये तुलसी के पौधे प्रशस्ति के योग्य तथा हृद्य है। पीले शाल तथा कदम्ब वृक्षों और माधवी लताओं का समूह कैसे प्रकाशमान हुआ है, तुम देखो। अयि सुवर्ण कान्ति-वाली बाले (सीते) ! जरा देखो तो सही, यहाँ नागकेसर तथा अमलतास, किंशुक और धतूरे एव चम्पक वृक्ष कैसे शोभायमान हो रहे है। (१६)

विद्य—स्तुत्य, प्रशस्ति के योग्य; लोकरे—संसार में; प्रियक—हृद्य, प्रिय; माधवी—तुलसी; संघात—मित्र, वन्धु (सीता के प्रति सम्वोधन); विद्य—प्रकाशमान लोक—देख; रे—री; प्रियक—पीले शाल के पेड़; माधवी—लता-विशेष; संघात—समूह; वाळिका—अयि वाले ! (सीता के प्रति सम्बोधन); कनककान्ति—सुवर्ण की-सी कान्ति है जिसकी (सीता); कनक—नागकेसर, कनक—अमलतास; वाळिका (सिकता, वालू)-कनक—किंशुक, टेसू, पलाश, कान्ति—शोभायमान होना; कनक—धतूरे, कनक—चम्पक। (१६)

विळासिनि ए सारंग सार सचक्ररे।
विळासिनि ए सारंग सारस चक्ररे ये।
बराह बरे प्रकाश मान ये दन्तरे।
बराहबरे प्रकाशमान ये दन्तरे ये। १७।

सरलार्थ—अयि विलासवति! यह सारंग (जल) स-चक्ररे (चक्रवाको-सहित) सार (श्रेष्ठ) हुआ है। यह सारग (भ्रमर) सारस चक्र से (पद्म-समूह से) निश्चय ही विलासी हुआ है। हे बरे ! (हे स्त्रीकुलश्रेष्ठ !) श्रेष्ठ युद्ध में व्यापृत तथा अपने-अपने दाँतो से स्व-स्व अभिमान प्रकट करते हुए सूअर कुञ्जो में प्रकाशमान या विद्यमान हुए है, देखो। (१७)

नि—निश्चय; वराह—सूअर; बरे—हे बरे ! (सीता के प्रति सम्बोधन); बराह बरे—श्रेष्ठ युद्ध में (वर आहव में)। (१७)

बोलन्ति गोमूत्रछन्दे हसहस होइ।
वीणा प्रतिभारे अना डोळाकु खेळाइ ये।
बार बार तारतर मणिगण ज्योति।
बिरतर सुरतर एणी एण प्रीति ये। १८।

सरलार्थ—गोमूत्र छन्द में प्रभु श्रीराम ने मुस्कराते हुए सीता से कहा, "अरी वीणा-प्रतिभा ! (अयि विद्युत्‌गोरि !) मणियों के समान समुज्ज्वल अपने नेत्रों की पुतलियो को फिराकर बार-बार निहारो—इस वन मे हिरन और हिरनी एक-दूसरे के प्रति परस्पर प्रीति-प्रकाश करते हुए सुरति में कैसे अनुरक्त हुए है। (१८)

गोमूत्र छन्द—गोरुओं के पेशाब करते हुए, चलते-चलते उनकी मूत्र-धाराओं की रेखा, भूमि पर सीधी अंकित न होकर टेढ़ी-मेढ़ी होकर पड़ती है, वैसे कौशल के साथ की गयी रचना को गोमूत्र छन्द कहते हैं। इसमें प्रथम पंक्ति के प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम आदि अक्षरों के सहित द्वितीय पंक्ति के क्रमशः द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम आदि अक्षरों का ऐसा मेल होता है कि उक्त अक्षरों को जोड़ने से जो पाद होता है, वही प्रथम पंक्ति है। फिर द्वितीय पंक्ति के प्रथम, तृतीय आदि अक्षरों के सहित प्रथम पंक्ति के क्रमशः द्वितीय, चतुर्थ आदि अक्षरों को जोड़ने से जो पाद होता है, वही द्वितीय पंक्ति है।

तारतर—समुज्ज्वल; विरतर—विशेष अनुरक्त; सुरतर—सुरति में, शृंगार रस में; एणी—हिरनी; एण—हिरन। (१८)

बश रत्ननिधि गुञ्ज सग असनरे।
बस यत्न बिधि कुञ्ज भृंग प्रसन्नरे ये।
बादीबात बेणु थाइ थाइ प्रेमशीळा।
बेदीबत मणुथाइ पाइ रामशिळा ये। १९।

सरलार्थ—अयि सीते ! असन वृक्ष पर छायी घुँघची-लताओं की गुञ्जाएँ रत्न-समूह की भाँति सुन्दर दिखायी पड़ती है एवं उनकी ओर निहारते ही वे हमारे मन को लुभा लेती हैं (अथवा घुँघची-लताओ से आच्छादित असन वृक्ष पर खंजन पक्षी बैठे हमारे मन को वहला रहा है।) फिर विधाता द्वारा यत्नपूर्वक निर्मित कुञ्जों में भौरे वैठे हुए है, देखो। अयि अक्षय प्रेमशीले ! देखो, बाँसों के छेदों मे पवन घुसकर उन्हें कैसे वादनशील बना रहा है।" अनन्तर रामचन्द्र ने एक रमणीय पत्थर-खण्ड देखकर उसे वेदी के समान समझा। (१९)

रत्ननिधि—रत्न-समूह, खञ्जन पक्षी; गुञ्ज—घुँघची; असन—वृक्षविशेष, पीत-

शाल; विधि—विधाता; भृंग—भौंरे; वादी—वादनशील; वात—पवन; वेणु—बाँस; थाइ—(बना) रहा है; थाइप्रेमशीळा—स्थायी (अक्षय) प्रेमशीले (सीता के प्रति सम्बोधन); बेदीवत—वेदी की तरह; मणुथाइ—समझा; शिळा—पत्थर। (१९)

ब्यथा करिबनि पाद प्रकाशि वसिले।
बसाइ जानुरे अन्तर्लिपिए* भाषिले ये।
बिहारस्थान के मीनमानङ्क अटइ। —वन
बायसरे केहु प्रतिपाळित हुअइ ये। २०। —पिक

बिभावरी प्रकाशे कि करे पक्षी आळी। —रुत
विरूपाक्ष नेत्रानळे केहु गला जळि ये। —मार
बिष्णुकोळे सर्वकाळे केहु मनोहर। —रमा
बिश्वरे करुछि केहु पर उपकार ये। २१। —तरु

बानरङ्कर प्रसिद्ध नाम के जगते। —कपि
बिचार ग्रहगणना संख्या पुनः केते ये। —नब
बयसी स्वयम्वरे कन्याकु किस कहि। —वर
बोलाइ जीवमध्यरे सारस्वत केहि ये। २२। —नर

बोलन्ति यवने इष्टदेवरे कि भाष। —पिर
बसुधापति प्रजाङ्कठारु घेने किस ये। —कर
बामनमूर्त्ति नन्दन बोलान्ति काहार। —रुर
वाञ्छा संसार कि होए गुरु शिष्यठार ये। २३। —तर

बिधिरे युद्धरे केहु बचन चहळ। —मार
वसन्त होइले किस करइ कोकिळ ये। —रब
बिप्रलब्धा प्रभाते कि करे उपकान्ते। —मान
ब्रह्माण्डे जीवनमुक्त अटइ के सते ये। २४। —तपी

वेदे के आउ अथर्व यजुः साम तेजि। —ऋक
बसन्ते के के बियोगी शत्रु कह हेजि ये।
बन पिक रुत मार बोले बइदेही।
विशेष तोष चुम्बन आलिङ्गन बिहि ये। २५।

* अन्तर्लिपि—शब्दालंकार विशेष; ऐसी रचना में प्रत्येक पंक्ति मे आये प्रश्न के उत्तर मे या प्रश्न के समाधान के रूप मे जो पद (शब्द) सब निकलते है, उन्ही पदो के आद्य, मध्य या अन्त अक्षरो को पंक्ति-

बद्ध करके बैठाने से रचक का मनोभाव अन्तर्निहित (Latent) व्यक्त होता है। (ऊनविंश छान्द; पद २० से २५ तक)।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्र ने कहा, "अयि सीते ! तुम्हारे पैर थक गये होंगे।" यह कहते हुए वे खुद उस पत्थर पर बैठ गये और अपनी जाँघों पर सीता को बैठाये अन्तर्लिपियों मे बचन बोलने लगे।

राम ने पूछा—मीनों का विहार-स्थल कौन है ?
सीता का उत्तर—वन अर्थात् जल;
राम—कौवे से कौन प्रतिपालित होता है ?
सीता—पिक अर्थात् कोयल।
राम—रात्रि के उपस्थित होने पर पक्षियों का समूह क्या करता है ?
सीता—रुत (अर्थात् कल ध्वनि)।
राम—विरूपाक्ष (शिव जी) के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से कौन जल गया?
सीता—मार (कन्दर्प)।
राम—विष्णु की गोद मे कौन शोभायमान होती है ?
सीता—रमा (लक्ष्मी)।
राम—संसार में कौन परोपकार करता है ?
सीता—तरु (पेड़)।
राम—जगत में बन्दरों का कौन-सा नाम प्रसिद्ध है ?
सीता—कपि।
राम—ग्रहों की गणना-संख्या कितनी है ? फिर विचार करो।
सीता—नव (नौ)।
राम—वयसी (सखी) स्वयम्वर में कन्या को क्या बोलती है ?
सीता—वर।
राम—जीवों में कौन सारस्वत (श्रेष्ठ) कहलाता है ?
सीता—नर।
राम—यवन लोग अपने इष्टदेव को क्या बोलते है ?
सीता—पिर (पीर)।
राम—वसुधापति (राजा) प्रजाजनों से क्या ग्रहण करता है ?
सीता—कर (महसूल)।
राम—वामनमूर्त्ति (विष्णु) किसके नन्दन कहलाते है ?
सीता—रुर (के)।
राम—इस संसार में गुरु शिष्य से क्या वाञ्छा करते है ?
सीता—तर।

राम—युद्ध में विधि से (ऊँची आवाज से) कौन-सा कोलाहल सुनायी पड़ताहै ?

सीता—मार।
राम—वसन्त के उपस्थित होने पर कोयल क्या करती है ?
सीता—रव (कलध्वनि)।
राम—प्रभात मे विप्रलब्धा नायिका उपपति के पास क्या करती है ?
सीता—मान।
राम—ब्रह्माण्ड में सचमुच कौन जीवन्मुक्त होता है ?
सीता—तपी (मुनि, ऋषि)।
राम—वेदों मे अथर्व, यजुः व साम को छोड़कर और क्या रह गया ?
सीता—'ऋक्'।

राम—अयि सीते ! तुमने ये सब बाते कही। (अर्थात् रामचन्द्रजी के इन सारे प्रश्नो के उत्तर सीताजी ने व्यस्तास्त करके दिये, तो 'वन, पिक, रुत, मार,' 'रमा, तरु, कपि, नव,' 'वर, नर, पिर, कर,' 'रुर, तर, मार, रव' तथा 'मान, तपी, ऋक्' आदि शब्द आये। इसके अनन्तर रामचन्द्र ने फिर पूछा—) अब विचार करके बताओ तो सही, वसन्त ऋतु में विरही जन के शत्रु कौन-कौन है ?

सीताजी ने उत्तर दिया, "वन, पिक (कोयल), रुत (कलध्वनि) और मार (कन्दर्प)।"

सीताजी के यह बोलते ही रामचन्द्र ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें गले लगा लिया और उन्हे चुम्बन दिया। (२०-२५)

बहिर्लिपि* कहिबेनि बेनि वर्ण देखि।
वाम नाशि दक्षिणवर्णकु भज सखि गो।
बन्द्य के जगते, केहु तिळकर स्थान।
बसि राजा कि करि, वेश्यार कि रञ्जन य़े। २६।

ब्योमकेशमोहिनी के, शिशु के पाळइ।
बड़ खेळरे के घेन, घन कि मुञ्चइ ये।
बिरचे केहु प्रबन्ध, ऋषि कि करन्ति।
वहे उत्तुङ्ग शृंग के, विप्र कि हुअन्ति ये। २७।

विष्णु आयुध के चक्र बिना, के अगम्य।
ब्रह्मा कि पाळन्ति, केहु रचन्ति संग्राम य़े।
बुझि मैथिळी भाषित गुरु करि नाहिँ।
वोले राघव अगुरु विद्या सिना सेहि ये। २८।

* बहिर्लिपि—शब्दालकार विशेष; ऐसी रचना मे प्रत्येक पक्ति मे

आये प्रश्न के उत्तर मे जो सब पद आते है (शब्द) आते है, उन्ही पदों या शब्दों के आद्य या अन्तिम अक्षरो को क्रमशः पंक्तिबद्ध रूप में बैठने से जो वाक्य बनता है, उसी वाक्य से रचक का मनोभाव बहिर्निहित (Apparent) अभिव्यक्त होता है। छान्द १९; पद २६ से २८ तक)।

तदनन्तर रामचन्द्रजी बहिर्लिपियो मे सीता से कथोपकथन करने लगे। उन्होने कहा, "अरी सखि ! दो-दो अक्षरवाले शब्द लिखकर प्रत्येक शब्द के वाम (बाये) वर्ण का नाश करो और दक्षिण (दायें) वर्ण को भजो।" ("अर्थात् मैं अभी जो सब प्रश्न पूछ रहा हूँ, उनमे से प्रत्येक प्रश्न के उत्तर मे आनेवाले दो-वर्ण-विशिष्ट शब्द में से प्रथम का लोप कर दो और द्वितीय का ग्रहण करती चलो। इस तरह द्वितीय अक्षरों के मेल से जो वाक्य बनेगा, उससे मेरा मलतब समझो और मेरा मतलब समझकर मुझे अनुगृहीत करो।"]

रामचन्द्र—जगत में वन्द्य (पूज्य) कौन है ?

सीता—शिव।

रामचन्द्र—शरीर मे तिलक ग्रहण करने का स्थान कौन-सा है ?

सीता—भाल।

रामचन्द्र—राजा बैठ क्या करते हैं ?

सीता—सभा।

राम—वेश्या का रञ्जन क्या है ?

सीता—रूप।

राम—महादेवजी की मोहिनी पत्नी कौन है ?

सीता—चण्डी।

राम—शिशु का पालन कौन करता है ?

सीता—माता।

राम—खेलों में कौन-सा खेल बड़ा है ?

सीता—पासा।

राम—मेघ क्या त्याग करता है ?

सीता—नीर।

राम—कौन प्रबन्ध-रचना करता है ?

सीता—कवि।

राम—ऋषि क्या करता है ?

सीता—तप।

राम—अत्युच्च शृंग कौन वहन करता है ?

सीता—गिरि।

राम—विप्र लोग क्या करते है ?

सीता—व्रत ।
राम—चक्र के अलावे विष्णु का आयुध और क्या है ?
सीता—गदा ।
राम—अगम्य कौन है ?
सीता—वन ।
राम—ब्रह्मा क्या,पालन करते है ?
सीता—लोक (संसार) ।
राम—कौन युद्ध करते है ?
सीता—वीर ।

रामचन्द्र से वर्हिलिपि छन्दो में पूछे प्रश्नों के उत्तरों में सीता ने सोलह शब्द कहे तथा लिखे । तदनन्तर उन्होने प्रत्येक शब्द के वायें अक्षर को पोंछ दिया और सिर्फ दायें अक्षर को जोड़कर पढ़ा; तो यह वाक्य हुआ—"वल्लभा पण्डित सार, विपरीत दान कर ।" इसे सीता ने समझकर कहा कि मैंने इसके लिए कभी किसी को तो गुरु नही वनाया है । (याने मुझसे ऐसा नही वनता ।) तो रामचन्द्र ने कहा कि वह तो अगुरु विद्या है । (अर्थात् ऐसी विद्या सीखने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नही पड़ती ।) (२६-२७-२८)

विकाशि मुग्धा प्रकाशि चन्दन विशेप ।
विलेपिते धूपिते कि वळिछि मानस ये ।
बोलि नुछियाइ तोर उदारपणकु ।
विहिले ललाटे गइरिकरे चिवकु ये । २९ ।

सरलार्थ—पतिदेव की ऐसी वातें सुनकर चतुरीरत्न सीता ने मुग्धा नायिका की तरह उनका अभिप्राय समझते हुए भी अर्थान्तरन्यास अलंकार मे प्रकाश मे कहा, "मानों विल्कुल नासमझ हो, अगुरु तो चन्दन विशेष है । उसका विलेपन तथा धूप ग्रहण करने के लिए आपका जी ललचाया है क्या ?" सीता की उक्ति सुनकर रामचन्द्र ने कहा, "अयि सीते! तुम्हारी उदारता पर मै न्योछावर होता हूँ ।" ऐसा वोलते हुए श्रीराम सीता के ललाट-पट पर गेरू से चित्राकन करने लगे । (२९)

मुग्धा—नायिका; नुछियाइ—मेरी निछावर है । गइरिकरे—गेरू से । (२९)

वळिमुख मुखर नादरे याउँ पाशे ।
वेगे करे करे कोळ भीरुमणि त्रासे ये ।
वत्मे से विचित्र चित्र लागि शोभा पाइ ।
वारिदे कि अरुण अरुण गला उइँ ये । ३० ।

सरलार्थ—उस समय एक बन्दर को अपने मुख की ध्वनि (खि-खि) करते हुए पास आते देखकर भीरुश्रेष्ठा सीता ने अति शीघ्रता से रामचन्द्र को अपने दोनों हाथो से गले लगा लिया। सुतरां रामचन्द्र के वक्ष देश में सीता के ललाट पर अंकित वह गेरू का चिह्न लग गया जो ऐसा प्रतीत हुआ, मानों मेघ पर लोहित-वर्ण वालरवि का उदय हो गया हो। (३०)

बळिमुख—बन्दर; करे—हाथों से; वत्से—वक्ष में। (३०)

बिचक्षण कान्त कान्त बचन प्रकाशि।
बाळा पुंस रीति राग राग छळे दिशि ये।
बारे बसि मउन उन्नतस्तनी बाळा।
बिस्तीर्ण मध्ययमक ए भागे होइला ये। ३१।

सरलार्थ—उससे विचक्षण कान्त राम मनोहर वचन प्रकट रूप से बोल, "अयि प्रिये! बाला का पुरुष-रीति अनुराग (पुरुषायित) राग (लाल रंग) के मिस दिखायी दिया।" यह सुन, उन्नतस्तना सीता एक बार हँस दी और फिर मौन रही। इस भाग मे मध्य यमक विस्तृत हुआ। अर्थात् पद २९ से ३१ तक मध्य यमक समझो। (३१)

विचक्षणकान्त—पण्डित पति (राम); कान्त—मनोहर; राग—अनुराग; राग—लाल रंग। (३१)

बारणकेशर पुष्प तोळुँ पड़ि रज।
वारि जन्माउँ अद्भुते नेत्र सरसिज ये।
बिचारिण प्रियामान प्रिय चञ्चळित।
बिलोम लोम मेषयुद्धरे चाटुकृत ये। ३२।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी के नागकेसर के फूल चुनते समय फूलों से पराग-रेणु सीता के नेत्र-पद्मो में पड़कर जल उत्पन्न करने लगे। यह अद्‌भुत हुआ। (क्योंकि जल से पद्म उत्पन्न होते है। परन्तु यहाँ पद्मो से जल उत्पन्न हुआ।) सीता के नेत्र-पद्मों से जल चूता देखकर प्रिय रामचन्द्रजी का मन यह शंका करके कि प्रिया ने कही मान न किया हो, चंचल हो उठा। इसलिए उन्होंने लोम-विलोम मेष-युद्ध छन्द में सीता के प्रति चाटूक्ति का प्रयोग किया। (३२)

वारणकेशर—नागकेसर; तोळुँ—चुनते; सरसिज—पद्म; चाटुकृत—चाटूक्ति की। (३२)

बरद विरसानन सार बिदरब।
बध मान जरत तरजन माधब ये।

विद्ध मारत हेव वहे तर माधवि।
विहे सदा तरस सरत दास हेवि ये। ३३।

लोम-विलोम मेपयुद्ध—शब्दालंकार विशेप—इसमे जो पाद रचित होता है, उसी पाद को उलटाकर पढने से ठीक वही पढा जाता है।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी ने कहा, "अयि प्रिये! तुम वरद (वरदायिनी, प्रसन्न) होओ। विरस आनन (आनन अर्थात् मुख की विरसता याने विषाद) को समाप्त करो। विशेप रूप से द्रवीभूत होओ। मान का विनाश करो। माधव (वसन्त ऋतु) जराओं (वूढ़ों) को भी तर्जन कर रहा है। मै तो युवक हूँ। मुझे वह क्यो न सतायेगा? मार (कन्दर्प) मुझे अपने पुष्प-शरो से विद्ध करेगा। वह माधवी लताओं में सदा तर (उद्वेग, चञ्चलता) का विधान करता है (अर्थात् माधवी लताओं को चंचल करता है।) और तरस (अभिलाप-पूर्त्ति की आशा) भी वहन करता है। मै तुम से यही शर्त्त करता हूँ कि मै आज से तुम्हारा सानुरक्त दास होऊँगा। तुम मान परित्याग करके द्रवीभूत हो जाओ (पिघल जाओ।) (३३)

वक्रोक्ति प्रकाश करि चतुरीरतन।
विस्तारिछि नृत्य शेप केकि कह मान ये।
वल्लभ तहिँ मधुर ध्वनिकि रचना।
वेणी नाचिले नाचन्ता उत्फुल्ल सुमना ये। ३४।

सरलार्थ—यह बात सुनकर चतुरीरत्न सीता ने वक्रोक्ति में कहा, "नृत्य के शेप (समाप्ति) को 'मान' कहते है। यहाँ के (कौन) कि (क्या) नृत्य करता था, जिससे तुम 'मान' शब्द का प्रयोग कर रहे हो?" सीता की वक्रोक्ति समझकर पति रामचन्द्र ने मधुर स्वर में कहा, "तुमने जो 'केकी' (शब्द) कहा, वह (अर्थात् मयूर) सुमनाओं (मालती फूलो) के खिलते समय (अर्थात् वरसात मे) नृत्य करता है। तुम तो सुमना अर्थात् उदारमना हो। अतः अयि सुमने! तुम यदि उत्फुल्ल (उल्लसित) होती, तो तुम्हारा वेणी-मयूर नृत्य करता। (३४)

वदनकु नुआइँ कहिले रसवती।
विसरिव नाहिँ परा से सुरसपति ये।
विळसि विळसि वने पर्णवासे याइँ।
विद्य आद्ययमक पिशित शुष्के तहिँ ये। ३५।

सरलार्थ—रामचन्द्र की उक्ति से रसवती सीता ने पति के विपरीत

रति की लालसा समझकर सिर झुकाये उनसे पूछा, "जैसा मालूम पड़ता है, आप उस सुरस-पति (उत्तम रसश्रेष्ठ) को अपने मन से बिसरायेंगे नही।" वन में ऐसी कौतुक-क्रीड़ाओं मे बिलसते हुए दोनों जाकर कुटीर में पहुँचे। वहाँ मांस सुखाने के काम मे नियुक्त रहे तो कवि की वर्णना आद्ययमक में प्रकट हुई। (३५)

पर्णवास—कुटीर; विद्य—प्रकटित, अभिव्यक्त; पिशित—मांस; शुष्के—सुखाने में। (३५)

बळी बळिपुष्ट झाम्पे आहार लोभिते।
बळि वळिशोभिनी ताहार निबारिते ये।
बास बासरङ्गीर खसिला दीप्त स्तन।
बिम्ब ब्रिम्ब अरुणर ये ओष्ठ निन्दन ये। ३६।
बिपद बि—पद चञ्चु घातरे बिहन्ते।
बिरस वीरसत्तम काशशर कृते ये।
बृन्द बृन्द मन्दर टाळिला नेत्र दिबे।
बिधिरे बिधिरे मज्जि एकदोष सर्वे ये। ३७।

सरलार्थ—बलवान् कौवा आहार के लोभ से जब मांस पर झपट पड़ा, तो त्रिबली-शोभिनी सीता उसका निवारण करने के लिए आगे बढने लगी। इस समय सौरभांगी सीता का वस्त्र वक्ष पर से खिसक पड़ा और स्तन-मण्डल दिखायी दिया। एक कौवे ने उनके स्तन पर और बिम्ब तथा बालसूर्य को निन्दा करनेवाले होठ पर अपने पैरो तथा चोच से आघात करके बिपदा सघटित की। यह देख वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र ने विरस मन से कॉस-शर का प्रयोग किया तो उस शर ने आकाश मे असंख्य कौवों की आँखें अलग कर दी। फलतः एक ही दोप के हेतु सभी यथाविधि विपदा मे पड़े। (३६-३७)

बळी—बलवान्; बळिपुष्ट—कौवा; बळिशोभिनी—त्रिबली-शोभिनी; वास—वस्त्र; बासअंगी—सौरभांगी; बिम्ब—कुन्दुरू फल; बिम्ब अरुणर—बालसूर्य का मण्डल; विपद—आपदा; बि-पद—पक्षी का पैर; चञ्च—चोंच; विरस—दुःखित; वीरसत्तम—वीरश्रेष्ठ (रामचन्द्र); काशशर—काँस से बना शर; बृन्द-बृन्द—असंख्य; मन्दर—कौवों के; टाळिला—उखाड़ीं; दिबे—आकाश में; विधिरे—फलतः; विधिरे—विधानानुसार, यथाविधि। (३६, ३७)

बि नय विनय रखि लोटन्ते से आगे।
बिहङ्गमे बिह गमे त्राहि सीता मागे ये।
बारे बारे खेद देब वाणी ए तेमन्त।
बिष बिषम येमन्त सन्निपाते हित ये। ३८।

सरलार्थ—इस दुर्दशा से मुक्त होने के लिए कौवे यथायोग्य विनम्रता के सहित सीता के सामने लेटने लगे। सीता ने द्रवित हो कर रामचन्द्रजी से अनुमति माँगी कि आप चक्षुदान के साथ ही उनका परित्राण करे और पक्षियो का गमन-विधान करे। (अर्थात् उन्हे जाने दे।) यह सुनकर रामचन्द्र ने कहा, "तुम्हारे होंठ तथा स्तन का आघात-चिह्न मुझे खेद पहुँचायेगा। अतः मै इनका परित्राण नही करूँगा।" तो सीता ने कहा, "विप विपम होने पर भी सन्निपात के समय हित करता है। उसी तरह यह क्षत-चिह्न एक-न-एक दिन हितकारी सिद्ध होगा।" (३८)

वि—पक्षी; नय—यथायोग्य; विनय—विनम्रता; विहंगमे—पक्षियों को; बिह गमे—गमन का विधान करें; तेमन्त—उसी प्रकार। (३८)

विद्य प्रान्त यमके कहिबा नेत्र दान।
वक्र चिह्न रखि मात्र कले नेत्र दान ये।
वढ़िला तोष अशेष लभि खरे गति।
बृषा—सुत—खगवर्ग कले ख—रे गति ये। ३९।

सरलार्थ—कौवो का नेत्र-दान प्रसग हम विद्यमान प्रान्त-यमकों मे कहेगे। रामचन्द्र ने उनकी चितवन में टेढापन रखकर उन्हे नेत्रो का दान दिया। काक पक्षियो का आनन्द अशेष रूप से वढ़ता गया। वे शीघ्र पुरुपोत्तम रामचन्द्र से परित्राण-लाभ करके आकाश मे गमन करने। (३९)

विद्य—विद्यमान; वक्र—टेढ़ापन; लभि—लाभ करके; खरे—पुरुषोत्तम राम से अथवा शीघ्रता से; गति—परित्राण; वृषासुत—कौवे; खगवर्ग—पक्षीवृन्द; ख—रे—आकाश में; गति—गमन। (३९)

विशिष्टरे अनुकूळ पुंस दीनवन्धु।
बिनोदरे सङ्गे घेनि हरे दिनबन्धु ये।
बश ध्यान मानसे वीरसे सती पदे।
बोले भञ्ज उपइन्द्र बेनिविंश पदे ये। ४०।

सरलार्थ—विशेष रूप से अनुकूल नायक, दीन-दुःखियो के वन्धु श्रीरामचन्द्र वन्धु (प्रियतमा) सीता को अपने साथ लिये हुए नानाविधि क्रीडा-कौतुको मे अपने दिन व्यतीत करते है। उन्ही वीर श्रीरामचन्द्र और सती सीता के पदो मे ध्यानमना होकर उपेन्द्रभञ्ज ने चालीस पदों मे यह छान्द वर्णित किया। (४०)

अनुकूळ पुंस—अनुकूल नायक; घेनि—लेकर; वेनि विंश—दो बार बीस = चालीस। (४०)

॥ इति ऊनविंश छान्द ॥

बिंश छान्द

राग—चङ्कळाश्री

बोइले सीता शीतांशुमुखी एकदिने अति दीन होइ,
बिहि बिहिला बनबास बासरे नृपति हेबार याइ।
बिळसाइ यथा अळका तेजाइ ईश्वरङ्कु शमशाने।
बिष्णुङ्कु रतनपलंक छड़ाइ जड़ाइ सर्पशयने। १।

सरलार्थ—एक दिन चन्द्रवदना सीता ने रामचन्द्रजी से अत्यन्त दीनता से कहा, "विधाता की विधि कैसी विचित्र है ! वे शिवजी को अलका भुवन तजवाकर श्मशान मे विलसाते है (विहार कराते है) तथा विष्णुजी से रत्न-पलंग छुड़वाकर उन्हें क्षीरसागर मे सर्प पर जड़ित करके सुलाते है। उसी तरह उन्होने अभिषेक के दिन हम लोगो से राज-सपदा छुड़वाकर हम लोगो का वनवास-विधान किया। (१)

सीता—जानकी; शीतांशुमुखी—(शीत अर्थात् ठंडी है अंशु अर्थात किरण जिसकी, चन्द्र; चन्द्र के समान सुन्दर वदन है जिनका)—चन्द्रवदना; एक दिने—एक दिन; अति दीने—अत्यन्त दीन भाव अर्थात् दीनता से; वासरे—दिन में अर्थात् अभिषेक के दिन में; अळका—अलका भुवन; तेजाइ—छुड़वा कर; इश्वरङ्कु—शिवजी को। (१)

विसोरि न पारि अबिधि विधिकि किपाइँ बोलाइ बिधि।
बसाइ कोळे श्रीराम कहे भोळे रसाइ लावण्यनिधि।
बिरञ्चि एकान्त केळिकि बिरचि गउरी कमळा संगे।
बिजन स्थान बोलिटि तोते मोते बने बिहराइ रंगे। २।

सरलार्थ—आगे फिर सीताजी ने कहा, "जो विधाता ऐसी 'अविधि' (अनुचित कार्य) को नही भूल सकते, उन्हें सभी लोग 'विधि' कैसे कह रहे है ?" यह सुनकर श्रीरामजी ने लावण्यनिधि सीता को अपनी गोद में वैठाया और स्वय प्रेम-विभोर हो उन्हें रसाकर कहा, अयि प्रिये ! तुमने जो कहा कि वे विधि होकर अविधि का आचरण कैसे करते हैं, वह ठीक नही। वास्तव में वे अविधि नही करते, वल्कि विधि ही करते है। इसी हेतु कि वे विहित या विधि-संगत आचरण करते है, उनका नाम विरञ्चि है। विरञ्चि ने इसी अभिप्राय से कि महादेवजी और विष्णु क्रमश: पार्वती और लक्ष्मी के सहित एकान्त में केलि करे, महादेवजी को श्मशानवासी तथा विष्णुजी को क्षीरार्णवशायी कराया। उसी विधाना-

नुसार, हम दोनों एकान्त में क्रीडा करे, इसी अभिप्राय से हम दोनों के निर्जन वन में सामोद विहार की व्यवस्था की है। (२)

विसोरि न पारि—भूलने में असमर्थ होकर; किपाईं—क्यों, कैसे ?; बसाइ—बैठा कर; कोळे—गोद में; भोळे—विभोर होकर; रसाइ—रसाकर; तोते—तुझे; मोते—मुझे; रंगे—रंग से, आमोद-प्रमोद के सहित। (२)

बिबेक कर रसिक रसिकार एथु अछि कि उत्सव,
बृषभास्या तेजि मळयपबने बसन्ते आसे बासव।
ब्रह्मलोक छाड़ि सेहि पुणि लोड़ि गन्धमादन शिखरी।
बिभबुं आम्भर सुरसप्रबीणा कि ऊणा अछि कि करि। ३।

सरलार्थ—फिर रामचन्द्रजी ने कहा, "अयि प्रिये ! रसिक पुरुष तथा रसिका स्त्री के लिए एकान्त क्रीडा से वढकर और उत्सव क्या है, जरा विचार करो, तो सही। इन्द्रजी वसन्त ऋतु मे स्वर्गपुर को छोड़कर एकान्त मे केलि करने के लिए मलय पर्वत पर चले आते है। फिर वही विधाता तो (स्वय भी) वसन्त मे ब्रह्मलोक का त्याग करके गन्धमादन पर्वत पर निवास करते है। अयि रतिपण्डिते! उन्होंने हमारे विभव (संपद) से कुछ न्यून किया है क्या ?" (३)

विवेक कर—विचार करो; एथुँ—इससे; अछि—है; वृषाभास्या—स्वर्गपुरी; वासव—इन्द्र; लोड़ि—आवश्यक करते है, चाहते हैं; आम्भर—हमारे; सुरसप्रवीणा—रति-पण्डिते; कि ऊणा—क्या कम ? (३)

बिहरि सउध सदने बिहरि सउद्धसदने धन।
बेढ़ि डाकुथान्ति कञ्चुकिन बेढ़ि डाकुछन्ति कञ्चुकिन।
बसिथाइ चन्द्रातप तळे वसिथाइ चन्द्रातप तळे
बेष्टित ये सहचरीकुळे बेष्टित ये सहचरीकुळे। ४।

सरलार्थ—हे धन ! वहाँ (अयोध्या में) हम लोग सौध-सदन (राजमहल) मे विहार कर रहे थे। अधुना यहाँ हम लोग शौद्ध सदनो (ऋषियो के सदनो) मे विहार कर रहे है। वहाँ कञ्चुकी (प्रतिहारी) लोग हम लोगो को घेरे पुकार रहे थे। यहाँ कंचुकी (साँप) (हमको) घेरे पुकार रहे है। वहाँ हम लोग चन्द्रातप (चन्दवे) के नीचे बैठते थे। परन्तु यहाँ चन्द्रातप (चन्द्रकिरण) के नीचे वैठते है। वहाँ सहचरी-कुल (सखी-समूह) से हम लोग परिवेष्टित हो रहे थे तो यहाँ सहचरीकुल (झिटी वृक्ष-समूह) से परिवेटिष्त हो रहे है। (४)

सौध-सदन—राजमहल; शउद्ध (शुद्ध) सदन अर्थात् पवित्र (ऋषियों के) गृह; कंचुकिन—प्रतिहारी लोग; कंचुकिन—साँप; (यमक)। (४)

ब्रुलिबा थिला जगतीरे ब्रुलिबा जगतीरे हेला घेन
बिलोकु थाइँ चित्रलेखा बिलोकु थाइँ चित्रलेखा पुन ।
बिक्षिप्त शेये रजनीकर शेये बिक्षिप्त रजनिकर
बोधक सुकवि गिर हेउथिला बोधक शुक-बि गिर । ५ ।

सरलार्थ—वहाँ जगती (प्रासाद) पर हम लोगों को घूमना था । अब यहाँ जगती (पृथिवी) पर हमे घूमना पड़ रहा है । यह लो, वहाँ हम दीवालों पर अंकित चित्रो को देख रहे तो यहाँ तुम्हारे भाल पट पर अंकित गैरिक कस्तूरी चित्र देख रहे है । (अथवा यहाँ शारिकाओं को अर्थात् मैनाओं को देख रहे है ।) वहाँ शय्या पर रजनीकर (कपूर) विखरती है तो यहाँ सेज पर रज-निकर (धूलिका-समूह) विखरता रहता है । वहाँ सुकवियो (अच्छे कवियो) की वाणियाँ हमारे चित्त को वहला रही थी । यहाँ शुक-वियों (शुक पक्षियों) का कलगान मन वहला रहा है ।(५)

सुकवि—अच्छे कवि, चारण, भाट; शुकवि—शुकपक्षी, तोता; (यमक) (५)

बारे बारे देखि भद्रउत्सबकु भद्रउत्सबकु देखि
बिशेष खदीर चळित बिशेष खदिर चळित सखि ।
बिघ्न नोहे तथि अक्षलीळा एथि बिघ्न नोहे अक्षलीळा
बसिथान्ति साक्षी सुशीळा अछन्ति एबे त शाखी सुशिळा । ६ ।

सरलार्थ—अयि प्रिये ! अयोध्या मे हम लोग बार-वार भद्र (मगल) उत्सवों को देखते रहे । परन्तु यहाँ बार-बार भद्र (भरद्वाज) पक्षियों का उत्सव देख रहे है । वहाँ खद्दी के चँवर सब डोल रहे थे । यहाँ खदिर (कत्थे, खैर) के वृक्ष हवा से हिल रहे है । वहाँ अक्षलीला (पासा खेल) विना विघ्न के संपादित हो रही थी । यहाँ अक्षलीला (आँखों के विलास) की परितृप्ति मे विघ्न सघटित नही होता, अर्थात् विना विघ्न के नयनों की तृप्ति सपन्न हो रही है । वहाँ सुशीला (सदाचारिणी) साक्षी (सखियाँ) वैठी रहती थी तो यहाँ शाखी (वृक्ष) तथा सुशिला (उत्तम पत्थर) है । (६)

तथि—वहाँ; एथि; (यमक) (६)

वश करुथिला चित्त क्षीरपान बश करे क्षीरपान
बाळा शुणुथाए आनक स्वनकु शुणिमा आनकस्वन ।
बिधिरे गन्धर्बे गायन करन्ति बोधन्ति सुमनावासे
बिधिरे गन्धर्बे गायन करन्ति बोधन्ति सुमना वासे । ७ ।

सरलार्थ—वहाँ क्षीर-पान (दूध का पान) मन को तृप्त कर रहा था। यहाँ क्षीर-पान (जल-पान) मन को तृप्त कर रहा है। हे बाले ! वहाँ आनक (पटह, अथवा नगाड़े) का स्वर (आवाज) हम सुन रहे थे। यहाँ आनक (मेघ) की ध्वनि सुनेगे। अयोध्या मे विधानानुसार गन्धर्वों सदृश गायक अपने-अपने संगीत-गान से चित्त को प्रसन्न कर रहे थे और सुमना (पण्डित लोग) वासों (घरों) में शास्त्रार्थों से मन को शान्त कर रहे थे। उसी तरह यहाँ गन्धर्वो (कोयलों) के कलरव तथा सुमनों (फूलो) की वास (सुगन्ध) से मन प्रसन्न हो रहा है। (७)

यमक अलंकार। (७)

बान्धबि एथिरे देखाय़ाउ नाहिँ नाचिबार नृत्यकारी
बेणी नासामणि रमणीमणिरे नचा अनुग्रह करि।
बिहन्ति नर्त्तन नर्त्तकबरहिँ अछि नर्त्तकबरही
बोलि चतुरी नासा पुड़ा फुलाइ शिरश्चाळि देइ रहि। ८ ।

सरलार्थ—अयि बान्धवि ! वहाँ नृत्यकारी थे, परन्तु यहा कोई नृत्यकारी नाचते दिखायी नही पड़ते। अरी रमणीमणि ! कृपया, अपनी वेणी तथा नासामणि (नथ) को नचाओ। "श्रीराम का ऐसा विपरीत-सूचक वाक्य सुनकर सीता ने उत्तर दिया", वहां नर्त्तकवरहिँ (नर्त्तक-श्रेष्ठ ही) अर्थात् श्रेष्ठ नर्त्तक निश्चय ही नृत्य-विधान करते है। यहाँ उनके समान नर्त्तक वरही (नाचनेवाले वर्हीं अर्थात् मयूर) अवश्य है।" ऐसा वोलकर चतुरी सीता ने यह जताने के लिए कि मुझे वेणी तथा नासामणि नचाने की जरूरत नहीं पडेगी, अपनी नथनी फुलाते हुए हिला दिया, जिससे परोक्ष रूप से उनके द्वारा रामचन्द्रजी के आदेश का पालन सूचित हुआ। (८)

नासामणि—नथ; नासापुड़ा—नथनी; शिर—शिरश्चाळि—सिर हिलाकर। यमकालंकार। (८)

ब्याज पाळना एतिकि बोलुँ ईश मुग्धा भावे भापे किस
बिहु याहा ताहा सुदेहा सुस्नेहा जाणि त थिबु अवश्य।
बिमळ आदरश परा तो हृद मो बाञ्छिबा बिम्ब थिब
बरुण दिग तरुलता तरणी अनाइँ मनाइँ धब। ९ ।

सरलार्थ—सीताजी का छल समझकर पति श्रीराम ने कहा, "अयि सीते ! केवल छल के ही द्वारा तुमने मेरे आदेश का उत्तम रूप से पालन किया।" सीता ने मुग्धाभाव (सब जानते हुए भी अनजान-सी) के वश

होकर कहा, "क्या है ?" तो प्रभु ने कहा, "अयि सुन्दरि ! अयि स्नेहवति! मैने जिस अभिप्राय से वेणी तथा नासामणि नचाने के लिए तुमसे कहा, वह तुम अवश्य समझ गयी होगी। तुमने उसका अवश्य छल से पालन कर लिया। परन्तु असल मे तुम्हारा हृदय दर्पण के सदृश स्वच्छ या निर्मल है। उनमे मेरा हृदय प्रतिविम्बित हुआ होगा अर्थात् तुमने मेरे मन की बात जरूर अच्छी तरह समझी होगी।" रामचन्द्र के ऐसा कहने पर सीता ने सूर्य तथा पश्चिम दिशा की ओर पहले निगाह डाली और फिर लताओं से परिवेष्टित वृक्षों की ओर निहारा एवं स्वामी को मनाया। उनका मतलब यह था कि सूर्यास्त के अनन्तर आपका मनस्काम पूर्ण होगा। (९)

व्याज—छल; ईश—पति; किस—क्या है ?; सुदेहा—(अयि) सुन्दरि ! ; सुस्नेहा—(अयि) स्नेहवति ! ; आदरश—दर्पण, आईना; वरुण दिग—पश्चिम दिशा; तरणि—सूर्य; अनाई—निहारकर; मनाई—मनाकर; धव—पति (राम को)। (९)

बाञ्छिला सम्पत्ति दरिद्ररे परापति परा पति भणि
बळी उदरे शरण दानीपणे हुड़िथिलि सुलक्षणि।
वीणाकळकण्ठ-जिणा-कण्ठि ! गण्ठिरत्न मन-कृपणर
बिदेह-नरराण-जेमा तु मोर पराण ये पराणर। १०।

सरलार्थ—सीता की स्वीकृति के बारे मे अवगत हो श्रीरामचन्द्र फूले नही समाये, मानों दरिद्र अपनी चाही हुई संपत्ति पा गया हो और कहा, "अयि सुलक्षणि ! मै भूल गया था कि बलि राजा तुम्हारी दानशीलता के सामने हारकर तुम्हारे उदर मे त्रिवली के मिस शरण गया है। अयि वीणा-कोकिल-विजितकण्ठि ! तुम मेरे मन-कृपण के गुदडी के लाल के समान प्रधान रत्न हो। अयि विदेह-नरेन्द्र-नन्दिनि ! (अयि विदेहराज-कन्या !) तुम मेरे जीवन के जीवन हो। (१०)

परापति—प्राप्ति; परा—सदृश; पति—स्वामी; भणि—कहा; हुड़िथिलि—भूल गया था; गण्ठिरत्न—गुदड़ी के लाल। (यमक) (१०)

बन्धुक-अधरकारि-अधरिरे बन्धु तु मो रक्षणरे
वर्त्तुळ ऊरु तुळा कोटिवादिनि पितुळा मो ईक्षणरे।
बिदेह प्रेत झाड़िवाकु अन्तरगतु तो बाणी मन्तर
बैद्य होइ बिहु रसदान हत-करणे बिरह ज्वर। ११।

सरलार्थ—अरी बन्धुकविजिताधरि ! कन्दर्प के भय से रक्षा करने के लिए तुम मेरी एकमात्र ही बन्धु हो। अरी वर्त्तुलजघने ! अयि नूपुर-वादिनि ! तुम मेरी आँखो के तारे हो। तुम्हारी वाणी मेरे अन्तर

हृदय से कन्दर्प-रूपी भूत को झाड़ने के लिए एकमात्र मन्त्र है, जैसे वैद्य रसायन वटिकाओं का प्रयोग करके ज्वर का विनाश करता है, वैसे ही तुम मेरे विरह-ज्वर का विनाश करने के लिए शृंगार रस का प्रयोग करो अर्थात् रस का दान करो। (११)

वन्धुक अधरकारि अधरिरे—गुलदुपहरिये के फूल को (रक्तिमा मे) नीचा करनेवाले होठोवाली (सीते !), (व्यतिरेक); वर्त्तुळ जघने—गोल जाँघोंवाली; तुळाकोटि-वादिनि—अयि पैरो के नूपुर भूषणो से शब्द प्रकट करनेवाली !; ईक्षण—आँखे; विदेह-प्रेत—काम-रूपी भूत। (११)

वाहुवल्ली गळामाळा करि पुष्पहासरे मण्डन बिहु
बड़ घेनाघेनि घेना मनोरम चरम देखाइ नाहुँ।
बक्षोज स्वयम्भू शम्भु कर-पद्मे पूजि काम भय नाहिँ
बिभु तु मुँ दास एहिरूपे एका होइथिबु अनुग्रही। १२।

सरलार्थ—अयि प्रियतमे ! तुम अपनी भुजाओ-रूपी लताओ को मेरी गलमाला करके हास्यरूपी पुष्पो से मेरा मण्डन करती हो। चूँकि तुम मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह रखती हो, इसलिए मान करके तुमने अपनी सुन्दर पीठ किसी भी दिन मेरी ओर नही दिखायी है। तुम्हारे दोनों स्तनों-रूपी स्वयम्भू शम्भु की मै अपने हाथों से पूजा करता हूँ। इस हेतु मुझे काम से कोई भय नही है। सुतरां तुम मेरी विभु अर्थात् प्रभु (मालिक) हो और मै तुम्हारा दास (सेवक) हूँ। तुम हमेशा मेरे प्रति ऐसा ही अनुग्रह बनाये रखना। (१२)

वाहुवल्ली—वाहु-रूपी लता; बड़ घेनाघेनि घेना—अत्यधिक स्नेह के कारण; मनोरम चरम—सुन्दर पीठ; वक्षोज—स्तन; स्वयंभू—स्वयंजात; शम्भु—शिव जी; अनुग्रही—अनुग्रह या कृपा करनेवाली। (१२)

बोइले सुमति ए सर्ब सम्मति पुंस प्रभु नारी दासी
बोलाइ के ईश बिचार मानस न घेनिम हेले दोषी।
बेगे ओळगि सरागे एते कहि उपुजाइ केते भाब
बिबाह निर्बाहि के चरण छुएँ उत्तर कले राघब। १३।

सरलार्थ—सुबुद्धिमती सीता ने कहा, "यह कथा सभी प्रकार से सम्मत है कि पुरुष प्रभु है, नारी दासी है। अपने मन मे जरा विचार करो तो सही कि कौन ईश (प्रभु) कहलाते है। पुरुष प्रभु है। अतएव आप प्रभु है और मैं आपकी दासी हूँ। इसलिए अगर मैं दोप करूँ तो आप उसे ग्रहण न कीजिएगा।" यह कहकर सीता ने नाना भावो तथा रहस्यों का प्रकाश करके अति शीघ्र रामचन्द्रजी को प्रणाम किया।

अनन्तर रामचन्द्रजी ने कहा, "विवाह के उपरान्त कौन किसके पैर छूता है ? (उत्तर—"पुरुष नारी के") अतएव मैं तुम्हारा दास हूँ।" (१३)

सुमति—सुबुद्धिमती सीता; न घेनिम—ग्रहण न करोगे; ओळगि—प्रणाम करके, केते भाव—कई अनुराग और रहस्य; विवाहनिर्वाहे—विवाह की समाप्ति के बाद; के—कौन; राघव—श्रीराम ने। (१३)

बरर्बाणिनि अनुपमा सुषमा सकळ गुणरे झळि
वाळ अधर हास बास कोमळ पकाइले गर्ब दळि।
विशुद्ध अञ्जन सिन्दूर कर्पूर कस्तूरी लवणी आसि
बोधन्ति तो चित्त चित्नक लेपन होइके काहिँरे मिशि। १४।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी ने फिर प्रशसातिशय्य से कहा, "अयि वरवर्णिनि ! तुम्हारे अंगो की सुषमा सौन्दर्य के सारे गुणो से झलकती हुई अनुपमा हुई है। तुम्हारे केश कालिमा ने विशुद्ध अञ्जन, अधर रक्तिमा मे सिन्दूर, हास्य शुक्लिमा मे कर्पूर, देह का सौरभ सुगन्ध में कस्तूरी तथा शरीर की कोमलता नवनीत के गर्व को दलित करती है। सुतरां ये सारी चीजे आकर कोई किसी से मिलकर तिलक (जैसे अञ्जन, सिन्दूर व मक्खन से मिलकर) तथा लेपन (जैसे कर्पूर व कस्तूरी—ये दोनो मिलकर) के रूप मे क्रमश: ललाट तथा शरीर पर लेपित होकर सेवा के मिस तुम्हारे चित्त को प्रबोधना देती है। (१४)

वरर्वाणिनि—अयि श्रेष्ठ वर्णवाली; झळि—झलककर; अधर—होंठ; बास—सुगन्ध; चित्रक--तिलक; लेपन—पोतना; (व्यतिरेक) (१४)

बारिज लक्ष्मी निळय तु लाबण्यलक्ष्मी बोलाउछु स्नेणु
बदन सुषमा सम नोहि पदतळरे शरण तेणु।
बन्दन-बाणी आन नारीमानङ्क रम्भा रति परा कहि
बल्लभी नखकोणे कणशोभाकु लभिबा भावन्ति सेहि। १५।

सरलार्थ—अयि प्रियतमे ! बारिज (पद्म) लक्ष्मी का निवासस्थल अर्थात् गृह है; परन्तु चूँकि तुम लावण्य-लक्ष्मी का गृह हो, अत: पद्म तुम्हारी वदन-शोभा के समकक्ष न होकर पैरों के नीचे शरण गया है अर्थात् पद्म शोभा मे तुम्हारे चरणों-मात्र के समकक्ष हो सकता है। हम दूसरी नारियों की, रम्भा-रति आदि के सहित, सौन्दर्य में तुलना करके उनकी प्रशंसा, वाणी द्वारा अक्सर प्रकट करते है। परन्तु अयि वल्लभि ! (अयि प्रियतमे !) रम्भा तथा रति—(जो अपनी-अपनी श्रेष्ठता के कारण उपमान मानी जाती है)—दोनों इसके लिए सोचती है कि हम कैसे सीता (तुम्हारे) के नाखून के कोने से रंच-मात्र शोभा पावे। (१५)

निळय—निवास-स्थल; य़ेणु—चूँकि; तेणु—इसलिए; वन्दन-वाणी—प्रशंसा-वाणी; भावन्ति—सोचती है; सेहि—वे ही (रम्भा तथा रति); (व्यतिरेक) (१५)

बाराणसीरे शम्भु सेबि लभिछि बोलन्ति तुहइ किछि
विपुळस्तन स्वयम्भू शम्भु प्रभु से शोभा परे होइछि।
वोलन्ति तो संग मनासि विनाशि थिलि अंग गंगानीरे
बत्सरे स्वच्छरे बिळसिवा हारे सकळ रूपे से हारे। १६।

सरलार्थ—लोग कहते है कि वाराणसी मे काशीश्वर महादेव की सेवा-आराधना करके मैने तुम्हे लाभ किया है; परन्तु वह वात कुछ नही, अर्थात् ठीक नही, क्योकि तुम्हारे विपुल स्तन स्वयम्भू शम्भु की शोभा पर प्रभु वने हे अर्थात् तुम्हारे स्तन स्वयम्भू शिव की शोभा से बढ़ गये है। निकृष्ट की सेवा करके कोई उत्कृष्ट वर प्राप्त नही कर सकता। और भी लोग कहते है कि तुम्हारे अग-सग की कामना करके गगा-जल में कूद कर अपने शरीर को मैने नष्ट कर दिया। इसलिए आज मैने तुम्हारा अग-सग लाभ किया है; परन्तु वह वात भी मेरे मत मे ठीक नही जँचती, क्योकि वह गगा-जल तुम्हारे वक्ष पर शोभित मुक्ताहार की शीतलता, स्वच्छता तथा शुक्लता इत्यादि सारे गुणो से हार मानता है अर्थात् तुम्हारी मुक्तामाला के ऊपर वताये गये गुणो से गगा-जल किसी भी तरह तुलनीय न होने के कारण निकृष्ट है। (१६)

वत्सरे—वक्ष पर; सकळ रूपे—सब प्रकार से; से—वह; हारे—हारता है। (व्यतिरेक) (१६)

बज्रसिंहकु जिणिछि अछि नाहिँ दुर्बळकटि बादीरे
बहुत प्रशंसाकु मन्द उदरे पाए याहा प्रसादरे।
बहि कृपा तथा अजगव गर्ब भांगिथिलु भ्रूभङ्गीरे।
बामे टेकि तेणु से धनु भाङ्गिलि मुँ धन्य तोर सङ्गरे। १७।

सरलार्थ—अयि प्रिये! तुम्हारी 'है' या 'नही' मालूम न पड़नेवाली कृश कटि ने विवाद (होड़) मे वज्र तथा सिंह, दोनों को जीत लिया है अर्थात् तुम्हारी कटि ने सख्ती में वज्र तथा कृशता मे सिह की कमर को जीत लिया है। तुम्हारी कटि के प्रसाद से उदर के साथ 'मन्द' शब्द को भी बड़ी प्रशसा मिलती है, (अर्थात् उदर की मन्दता या क्षीणता के होते हुए भी तुम मन्दोदरी या क्षीणोदरी कहलाकर प्रशस्य होती हो), तो तुममे सब विद्यमान उत्तम गुण कौन-सी प्रशसा नही पायेगे? मेरे प्रति कृपा करके तुमने पहले ही भ्रू-लता-भगी से हर-धनु का गर्व हरण किया था और बाद

मे मैने अपने वाये हाथ से उस धनुप को उठाकर तोड़ डाला। इसलिए तुम्हारे-सहित मै भी धन्य (प्रशस्य) हूँ। (१७)

कटि—कमर; वादीरे—विवाद में, होड़ में; मन्द—खराब, क्षीण; याहा—जिसके; अजगव—शिवधनु; तेणु—इसलिए; मुंह—मैने; तोर संगरे—तुम्हारे-सहित। (१७)

बिनतिगर्भ भारती शुणि भणि प्रीतिमती मनोहारी
बृन्दा असुरी तुळसी करि हरि शिरे घेनिलार परि।
बिधु महेशरु बड़ त नुहइ से मुकुट कला प्राये।
बसुधापरे जन्य धन्य से रूपे मोठारे प्रभु सदये। १८।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्रजी के विनयपूर्ण वचन सुनकर प्रीतिमती (प्रियतमा) तथा मनोहारिणी सीता ने कहा, "विष्णु भगवान् जलन्धर राक्षस की पत्नी वृन्दा असुरी को तुलसी के रूप मे मस्तक पर धारण करते है। चन्द्र महादेव शकरजी से कदापि बड़ा तो नही है—फिर भी वे चन्द्र को मुकुट के रूप मे धारण करते है। उसी प्रकार मै पृथिवी से उत्पन्न हुई हूँ, तिस पर भी प्रभु (आप) ने सदय होकर मुझे ग्रहण किया है। अतएव मैं भी धन्य हूँ। (१८)

विनति गर्भ भारती—विनय-भरे वचन; भणि—कहा (सीता ने); बिधु—चन्द्रमा, महेशरु—शिवजी से; सेरूपे—उसी प्रकार; मोठारे—मुझ मे, मेरे प्रति। (१८)

बोलाबोलि हेउँ स्नेहवचन से विचित्र रजनी मिळि।
बिरचाइला से रमणीरतने यतने पुरुषकेळि।
बाजिला रसना बाद्य मरदळ मध्ये ब्रह्मशिरी देइ
बीणा नाद हुँ हुँ कृत जात वशे कण्ठ नारद कराइ। १९।

सरलार्थ—श्रीराम-सीताजी के इस तरह स्नेह-सम्भाषण करते-करते वह वैचित्र्यमयी रात्रि आ पहुँची, जिसने रमणी-रत्न (नारी-श्रेष्ठा) सीता को 'पुरुष केलि' (विपरीत रति) के संपादन के लिए यत्नपूर्वक प्रस्तुत किया। उस काल ने दम्पति को ब्रह्म-श्री (ब्रह्म-सपद या स्वर्ग-सुख) का उपभोग दान किया। जहाँ ब्रह्म श्री अथवा स्वर्ग-सुख उपभोग की स्थिति आती है, वहाँ देव लोग मधुर संगीत-गान करते हुए वाद्य, मर्द्दल आदि बजाते है और नारद मुनि वीणा-वादन करते है। यहाँ पर सीता की करधनी वाद्य तथा मर्द्दल के रूप से वजने लगी तथा कण्ठ-रूपी नारद 'हुँ हुँ' शब्द के मिस वीणा-नाद करने लगा। (१९)

रसना—करधनी; मरदळ—मर्द्दल—मृदंग-जैसा एक वाद्य। (१९)

बिचळित रम्भा उर्बशी रामा ये चञ्चळ शेष अंशुक
बृत्र अन्तकपरे तहिँ सन्तक काटिले भोळे रसिक।
बिभावरी अन्त कले नित्यकृत्य चित्रकूट केळि शेष
बिशपदे छान्द उपइन्द्र वीरवर रचिवारे तोप।२०।

सरलार्थ—वहाँ स्वर्ग मे रम्भा, उर्वशी आदि स्त्रियाँ नृत्य के कारण विचलित हो उठती है, जिसके फलस्वरूप उनके वस्त्रांचल चचल होते दिखायी देते है। इस पुरुपायित क्रीड़ा मे वैठे विचलित होने से रम्भोरु सीता का आँचल हिल उठा। उस समय रसिक रामचन्द्र ने भाव विह्वल होकर वृत्र-अन्तक (वृत्र नामक राक्षस के नाशकारी अर्थात् इन्द्र) पर चिह्न अकित कर दिये अर्थात् यह सावित कर दिया कि रति-सुख इन्द्र-पद से भी श्रेप्ठतर है। [पाठान्तर—वृत्त अन्तक। अर्थ—रसिक राम वर्त्तुल शम्भु की आकृति-जैसे सीता के स्तनो पर नख-क्षत द्वारा चिह्न लगा दिये।] रात्रि के अन्त मे फिर प्रभु ने अपने नित्यकर्म किये। इस तरह चित्रकूट-केलि-प्रसग समाप्त हुआ। वीरवर उपेन्द्र भञ्ज को वीस पदो मे इस छान्द की रचना किये से सन्तोप प्राप्त हुआ। (२०)

रम्भा उरवशी—रम्भा, उर्वशी आदि स्वर्गांगनाएँ; रम्भोरु—कदली वृक्षों-सी जाँघो-वाली (सीता), वशी—(वसि) वैठकर (श्लेप); रामा—स्त्रियाँ; शेष अंशुक—वस्त्र का शेष भाग, आँचल; वृत्र-अन्तक—इन्द्र, वृत्त-अन्तक—गोल शम्भु की आकृति (-जैसे स्तन); सन्तक—निशान; चिह्न। (२०)

विशेष—यहाँ कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने सीता-राम के केलि-प्रसंग के द्वारा प्रकृति के पुरुषायित रूप तथा ब्रह्म की मायाधीनता की ओर इगित किया है।

॥ इति बिश छान्द ॥

एकविंश छान्द

राग—देशाख

बिदूषण गीत सुजने शुण । बिज्ञानी चित्रकूट ऋषिगण ।
बिष्णु करि श्रीरामङ्कु न चिह्नि । बिचारि ए भय राक्षस घेनि ।
बिनाशे, आम्भ धन्वी पोषित । बोलाबोलि होइ छाडुँ पर्वत । १ ।

बिबेकिवर शुणि थाअ भाषि । बाळी भ्राता घेनि दण्डके पशि ।
बरषारे रसा तेजि मानस । बरटा सखा सङ्गे घेनि हंस ।
बनज, नाळ सम्बळ करि । बाण शरासन तेसन परि । २ ।

सरलार्थ—हे साधुजनो ! मनोयोगपूर्वक इस दोषशून्य गीत को सुनो । चित्रकूट-निवासी अज्ञानी ऋषि लोग पहचान नही पाये कि रामचन्द्रजी विष्णु हैं । उन्होंने भयभीत होकर मन में विचार किया, "राक्षस लोग इन्हें देखकर शायद यह समझे कि ऋषियो ने हम लोगों को मारने के लिए इन धनुर्द्धर पुरुषो को प्रेषित किया । (अतएव वे हम लोगों को सताएँगे)।" आपस मे ऐसी बाते करते हुए मुनि लोग चित्रकूट पर्वत छोड़ चलने को तैयार हुए । विवेकी रामचन्द्र ने यह सुनकर कहा कि आप लोग यही रहें, हमी चले जा रहे है । यह कहकर वे अपनी प्रियतमा पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के सहित धनुशर को सम्बल के रूप में धारणपूर्वक चित्रकूट छोड़ दण्डकारण्य मे पहुँचे, मानो बरसात के आगमन में हंस पृथिवी छोड़कर पत्नी हंसिनी तथा अपने साथियों को संग लिये कमलनाल को सम्बल के रूप में धारणपूर्वक मानसरोवर मे जाकर पहुँचा । (१-२)

धन्वी—धनुर्द्धर; रसा—पृथिवी; बरटा—हंसी; बनजनाळ—पद्मनाल; सम्बल—मार्ग-व्यय, पाथेय; शरासन—धनुष । (१-२)

बीराधिबीर केते दूर चळे । बिराध आसुछि धरिण शूळे ।
बराह हरिण गुन्थिछि तहिँ । वहिबा रकत देउछि लेहि ।
बिस्तारुँ, तुण्ड एमन्त दिशि । बिळे कि भानु-कर ग्राए पशि । ३ ।

सरलार्थ—वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र वहाँ से कुछ दूर आगे बढ़े और देखा कि विराध नामक एक राक्षस हाथ में शूल लिये आ रहा है । उसने उस शूल में सुअरों, हिरनों आदि पशुओ को गूथा (पिरोया) है और उनसे टपकते हुए रक्त को चाट रहा है । इसलिए जब वह मुँह फैला रहा है, उसका मुँह ऐसा दीख रहा है मानो विवर में सूरज की किरणे घुस रही हों । (३)

वीराधिवर—वीरश्रेष्ठ; लेहि—चाटना; विस्तारेँ—फैलाने से; तुण्ड—मुख; एमन्त—इस तरह; दिशि—दीख रहा है; विळे—विवर में; भानुकर—सूरज की किरणें; पशि—घुस रही हों (३)

विधिरे पलाश रुधिर सञ्चा । विकशिला पुष्प पराये पञ्चा ।
वाहु शाखारे होइछि दीपित । विगळित झाळ मधु संजात ।
वुलाई, डोळा देउछि चाहिँ । विशेप भृंग चक्रगति विहि । ४ ।

सरलार्थ—वह राक्षस वास्तव मे एक पलाश वृक्ष की तरह दीख रहा है । उसके शरीर पर लगे रक्त-चिह्न सव पलाश वृक्ष पर खिले हुए फूलों के समान दिखाई दे रहे हैं । उसकी दोनों वाहुएँ वृक्ष की दो शाखाओं के समान शोभा पा रही हैं और शरीर से वहती हुई पसीने की धारा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो शहद की धारा हो । वह राक्षस जव पुतलियाँ घुमाकर ताक रहा है, तो प्रतीत हो रहा है मानो भौंरे राक्षस-रूपी पलाश वृक्ष पर खिले रक्त-चिह्नों रूपी फूलो से पसीने की वूंदो रूपी मकरन्द-विन्दुओं को पान करने के लिए चक्राकार मे मंडरा रहे है । (४)

सञ्चा—चिह्न, दाग; पराये—सदृश; पंचा—प्रतीत हो रहे हैं; झाळ—पसीना; संजात—तुल्य, सदृश; डोळा—पुतलियाँ; भृंग—भौंरे । (४)

विलोकिला सेहि तिनि जणङ्कु । विचारमान आणिला मनकु ।
वेनि तीरे चम्पा तमाळ तरु । विकच पुष्पे के पत्रे के चारु ।
वहुछि, मध्ये लावण्य सर । वारिज कुमुद कह्लारे सार । ५ ।

सरलार्थ—जव उस विराध राक्षस ने राम, लक्ष्मण तथा दोनो के वीच सीता को दूर से देखा, उसने विचार किया कि विकसित फूलो से सुशोभित चम्पक वृक्ष तथा मनोहर पत्रभूपित तमालवृक्ष नदी के दोनो किनारे पर सुशोभित हैं और वीच में लावण्य-सरिता वह रही हैं । वह लावण्य-सरिता कमलो, कुमुदों तथा कह्लारों से श्रेष्ठ हुई है । (यहाँ रामचन्द्रजी की पत्र-मंजुल तमालवृक्ष के रूप मे, पुष्पित चम्पकतरु के रूप मे लक्ष्मणजी की तथा लावण्य-सरिता के रूप मे सीताजी की कल्पना की गयी है । सीता-रूपिणी लावण्य-सरिता मे उनका वदन पद्म, हास्य कुमुद, तथा नख कह्लार है । (५)

विकच—विकसित; सर—सरिता; वारिज—कमल; कह्लार—श्वेत पद्म (रूपक) । (५)

वाते चळुअछि नीळ उत्पळ । वीचि भृंगाळिरे कि महोज्ज्वळ ।
विहार करुछि मत्त मराळी । वृत शइवाळे कमळ कळि ।
विलोळ, घन रस पूरित । वितर्क सर्वश्लेप एते मात्र । ६ ।

सरलार्थ—सीता के नेत्रोत्पल उस लावण्य-सरिता में चल रहे है मानो हवा के द्वारा नीलोत्पल नदी मे लुढ़क रहे हों। उनकी दोनों बाहुएँ लहरों के सदृश आन्दोलित हो रही है। उनके मुख पर घुँघराले बाल अत्यन्त उज्ज्वल दीख रहे है मानो कमल पर भौरे बैठे सुशोभित हो रहे हों। मत्त मराली की-सी सीता की गति से भान हो रहा है मानो मत्त मराली विहार कर रही हो। वस्त्र से ढका सीता का स्तनयुगल इस प्रकार शोभित हो रहा है मानो सेवार के संयोग से कमल की कली शोभित हो रही हो। सीताजी घने श्रृंगार रस से भरपूर है, जैसे नदी चंचल जल से पूर्ण रहती है। कवि ने बहुत बडे कष्ट-स्वीकारपूर्वक विवेचन करके विशेष तर्कणा तथा श्लेष के द्वारा इस कविता की रचना की। (६)

वीचि—लहरे; भृंगाळि—भौरों का समूह; मराळी—हंसी; विलोळ—विशेष रूप से चंचल; घनरस—बहुत जल, श्रृंगार रस; (उत्प्रेक्षा तथा श्लेष)। (६)

बिक्रमि करुँ निकटकु गति। बिग्रहवन्त दरशने चिन्ति।
बराक नेत्रे काम जळिगला। बृष्टि सुधा इन्द्र अस्थिरे कला।
बसन्त, सङ्गी बहि स्वरूप। बंश लोह पुष्प कमाणे रोप। ७।

सरलार्थ—तदनन्तर विराध कदम बढाते हुए उनके निकट गया और सुन्दरदेहवन्त उन तीनो के दर्शन किये। श्रीरामजी को देखकर उसने अपने मन मे विचार किया कि शंकरजी के अग्नि-नेत्र से काम जल गया था। उसकी अस्थियो पर इन्द्र ने अमृत बरसाया। फलस्वरूप कन्दर्प ने फिर अपना रूप धारण किया और अभी पुष्पधनु के बदले बाँस का धनुष तथा लोहे का शर धारणपूर्वक पत्नी रति तथा सखा वसन्त के सहित आया है। (७)

बिक्रमि—कदम बढ़ाते हुए; विग्रहवन्त—देहवन्त; बराक—शंकर, महादेव; वंश—बाँस; लोह—लोहा; कमाण—धनुष; रोप—शर। (७)

ब्रह्माण्डे एक सुन्दरी ए रति। बिना एड़े शोभा केउँ युवती।
बळे नेइथिला शम्बरपुरी। बिबादे जिणि कि करिछि चोरी।
बिबेक, एहि चोरी प्रमाण। बने पशे घेनि जटाधारण। ८।

सरलार्थ—उस (विराध) राक्षस ने सीता का अनुपम रूप देखकर मन मे विचार किया कि वह युवती ब्रह्माण्ड मे अनुपम-शोभाधारिणी रतिदेवी ही है। उसके बिना दूसरी कौन स्त्री इतनी सुन्दरी होगी? (अर्थात् कोई नही होगी।) शम्बरासुर ने इसे जबरदस्ती से अपने पुर मे ले लिया था। यह (रामरूपी) कन्दर्प समर मे या तो जीतकर इसे ले आया है अथवा

इसे चुरा लाया है। परन्तु मेरी समझ में यह निश्चय ही चुरा लाया है, अन्यथा वह जटा धारणपूर्वक जंगल मे क्यो घूमता ? इस जटा-धारण के मिस यह आत्मगोपनपूर्वक जगल मे शायद छिपा है। (८)

विवेक—विचार करता हूँ, निश्चय ही; पशे—घुसा है; घेनि—लेकर। (८)

वेनि पुरुप अस्थि सह करि। वधि भक्षिवि अगस्ति सुमरि।
विजीर्ण हेले जीर्ण करि देवि। वृष्टि सुधा पिइ अमर हेवि।
वनिता, मणि स्थिर यौवनी। विपिने विहरिवि एहा घेनि। ९।

सरलार्थ—अनन्तर विराध ने मन मे विचार किया, कि "मै इन दो पुरुपों का निधन करके हड्डियो समेत इनका भोजन करूँगा। अगर हजम न हो तो अगस्ति मुनि का स्मरण करके हजम कर लूँगा। इन्द्र ने पहले भस्मीभूत कन्दर्प की हड्डियो पर जो अमृत वरसाया था, इस कन्दर्प की हड्डियो मे वह अमृत जरूर रहा होगा और इसका भोजन करके मै अवश्य वह अमृत पीऊँगा। फलस्वरूप मै अमर होऊँगा और इस चिरयौवना रमणी को साथ लेकर वन मे विहार करूँगा। (९)

विजीर्ण—वदहजमी; जीर्ण करि देवि—हजम कर दूँगा; स्थिरयौवनी—चिरयौवना। (९)

वासाङ्गे जिणे पारिजातकु। बोलिव ग्रोजनगन्धा एहाकु।
विलोप करिदेवि रतिनाम। वादे जिणिवाकु के मोते क्षम।
विचारि, राम लक्ष्मण धरि। वहि वेनि स्कन्धे गमन करि। १०।

सरलार्थ—"यह रमणी अपने अग-सौरभ से पारिजात पुष्प को जीत रही है। इसलिए मैं इसका 'रति' नाम लोप कर दूँगा और इसे योजनगन्धा नाम से अभिहित करूँगा। विवाद मे मुझ पर विजय करने के लिए कोई भी समर्थ नही होगा।" ऐसा विचार करते हुए वह रामलक्ष्मण दोनो को अपने कन्धों पर वैठाकर ले चलने लगा। (१०)

वासांगे—देह की सुगन्ध से; गमन करि—चलने लगा। (१०)

वतास वृक्ष उत्पाटि उड़ाइ। बल्लरीकि ग्रथा प्रकम्प देइ।
वर्द्धमान एहि लक्ष्य से ठारे। वारि पुण सीता नयनु झरे।
वमन, मोतिपन्ति कि करे। विनिमिषुँ झष उपमा धरे। ११।

सरलार्थ—यहाँ यह उपमा वर्द्धमान हुई। जिस प्रकार वतास (वायु) वृक्ष को उखाड़कर उड़ा लेती है तथा वृक्षाश्रित लता को प्रकम्पित कर देती

है, उसी प्रकार विराध रामलक्ष्मण दोनों को अपने कन्धो पर बैठाकर ले गया तथा सीता को प्रकम्पित करने लगा। (अर्थात् सीता यह देखकर काँपने लगी।) उनके निर्निमेष नयनों से अश्रुजल टपकने लगा। नयनों के निर्निमेष होने के कारण हम मीनों की उपमा ग्रहण करते है और नेत्रों से टपकते हुए अश्रुबिन्दु ऐसे प्रतीत हो रहे है मानो मीन मोती उगल रहे हों। (११)

बतास—प्रबल पवन; उत्पाटि—उखाड़कर; बल्लरी—लता; लक्ष्य—उपमा; बमन—उगलना, उलटी; बिनिमिषुँ—निर्निमेष होने के कारण; झष—मीन, मछली; (उपमा तथा उत्प्रेक्षा)। (११)

बिचित्र हेला बिचित्र हेबारू। बहिला तृणाङ्कुर य़ेणु मेरु।
बार पछे य़था हंसी गोड़ाइ। बधिरे य़था मागध बन्दइ।
बिकळ, शुणि सोदर दुइ। बाळ धरि डेइँ लोटाइ मही। १२।

सरलार्थ—चूँकि तृणांकुर-सदृश विराध राक्षस ने मेरुपर्वत के समान रामलक्ष्मण को वहन करके विचित्र घटना संघटित की, मीन के मोती उगलने का अनूठा दृश्य दिखाई दिया। अनन्तर सीता ने राक्षस का अनुसरण किया, मानो हंसी घोड़े का अनुसरण कर रही हो। उन्होंने राक्षस से बहुत अनुनय-विनय की मानो किसी बहरे के सामने एक भाट स्तुति-पाठ कर रहा हो। परन्तु बहरे के समान राक्षस ने सीता की एक भी न सुनी। सीता की राक्षस के प्रति व्याकुल विनती सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई राक्षस के बाल पकड़कर नीचे कूद पड़े, उन्होंने उसे भूमि पर लिटा दिया। (१२)

बार—घोड़ा; गोड़ाइ—पीछा करना, अनुसरण करना; बधिरे—बहरे को; मागध—भाट, चारण। (१२)

बिलोम लोम गतागत वशे। बिराध बध ख्यात खात क्रोशे।
बिमाने स्वर्ग स्तुति दिव्यरूपे। बन्दना कले बिबुधकळापे।
वैदेही, महासन्तोष हेले। बृक्षेक मूळे से दिन रहिले। १३।

सरलार्थ—दोनो भाई विराध को इधर-उधर घसीटने लगे तो वह निहत हुआ। वहाँ एक कोस तक एक गड्ढा बन पड़ा। वह गड्ढा 'विराधगर्त्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राक्षस ने दिव्य रूप धारण किया एवं विमान मे बैठकर रामलक्ष्मण की स्तुति करके स्वर्गधाम सिधारा। अनन्तर देवताओं ने रामलक्ष्मण की वन्दना की। विराध के निधन पर वैदेही को बड़ा सन्तोष हुआ। उस दिन तीनों एक पेड़ के नीचे ठहरे। (१३)

बिलोम लोम—इधर-उधर; बिबुधकळापे—देवता समूह (ने)। (१३)

विधिरे पूर्वरु हरि हरिणी । बिभीते सेहि लक्षणकु आणि ।
वने[1] सबुदिने सिना शयन । बने[2] हरिले दिन नोहि दीन ।
विश्वरे, ख्यात सुवर्ण रूपे । वन्दे गति बशे द्विजे त पुष्पे । १४ ।

सरलार्थ—विधानानुसार पूर्वजन्म मे रामचन्द्र तथा सीता ने हरि-हरिणी (नारायण-लक्ष्मी) के रूप मे क्षीरसमुद्र के जल पर शयन किया था । उसी तरह इस जन्म में भी हरिहरिणी (सिंहसिंहनी) के रूप में दोनों निर्भय वन मे विहार कर रहे है । यह लक्ष्यार्थ यहाँ पर ठीक जँचता है । पूर्वजन्म मे हमेशा वे जल मे शयन करते थे । परन्तु आज-कल वन मे दीन न होकर वे दिन विताते है । इस ससार मे स्वर्णमयी प्रतिमा को 'हरिणी' वोलते है । ब्राह्मण लोग मुक्तिलाभ के उद्देश्य से उस प्रतिमा की फूलो से पूजा करते है । उसी प्रकार सीता की धीर-मन्थर गति (चाल) से हसपक्षी अपनी-अपनी गति की हीनता समझकर उनकी वन्दना कर रहे है । (१४)

हरि—नारायण, सिंह; हरिणी—लक्ष्मी, सिंहनी (श्लेष); वने[1]—जल में; वने[2]—जंगल में; (यमक); गति वशे—मुक्ति के हेतु, गमन (चाल) के हेतु; द्विजे—ब्राह्मण-लोग, हंसपक्षि-समूह (श्लेष) । (१४)

विभा त सहजे अति रञ्जन । बाहुसखारे हुअइ पूजन ।
बाजइ सीतार नूपुर घण्टि । बशे मृगवर्ग पाशे प्रकटि ।
बिगत, भय देखि स्थकित । बर्द्धकी इन्धने गढ़िला बत । १५ ।

सरलार्थ—रामलक्ष्मण की विभा (प्रकाश) सहज ही अत्यन्त आनन्द-दायक है । उनकी दिव्य ज्योति अग्नि के तेज को धिक्कारती है । इसलिए अग्निदेव उनकी पूजा करते है । सीता के नूपुरो की घंटी बज रही है । रामलक्ष्मण के दिव्य तेज तथा सीता के नूपुरो की आवाज सुनकर हिरन विमुग्ध होकर उनके समीप निडर होकर स्थिर रूप से खड़े हुए है, मानो कारीगर द्वारा वनाये पुतले मृगो (हिरनो) के लिए 'पुतले' की उत्पेक्षा (या उपमा) हो । (१५)

वायुसखा—अग्नि; स्थकित—स्थिर; बर्द्धकी—बढ़ई, कारीगर; इन्धने—लकड़ी से; गढ़िलावत—वनाये-से (उपमा) । (१५)

बकुळ अशोक कदम्ब झिण्टि । बिकशि कुसुम गन्ध चहटि ।
वामा वाम पाद लागि गमने । बिटिकाशेष पानर पतने ।
विषोउँ, पथे कोळ रचने । बहु सखी नाम स्नेह चुम्बने । १६ ।

सरलार्थ—जव सीता चलती थी, उनका वायाँ पैर लगने से अशोक-वृक्ष, चर्वणावशिष्ट पान अर्थात् पान की सीठी पड़ने से वकुलवृक्ष, मार्ग पर

चलते-चलते विश्राम के लिए गले लगाने से कदम्बवृक्ष आदि फूलों से विकसित होने लगे। चूँकि सहचरी (झिटी) वृक्ष 'सखी' का नाम वहन करता है, सीता ने उसे स्नेह-चुम्बन दिया तो वह भी बिकसने लगा। ये सब वृक्ष विकसित होकर अपनी-अपनी सुगन्ध प्रकाशित करने लगे। (१६)

बकुळ—मौलसिरी; झिटी—सहचरी वृक्ष; वहटि—प्रकाशित करने लगे; विटिका शेष—पान की सीठी; बिषोउँ—विश्राम के अभिप्राय से। (१६)

बिळसे अळि-आबळी कानने। बोध त्रिकाळफुल मधुपाने।
बाञ्छा-कळ्पतरु बान्धवी निश्चे। बिबिध फळगर्भ दान सञ्चे।
बेभारे, मधुसूदन सेहि। बञ्चन्ति काळकु विनोद बिहि। १७।

सरलार्थ—जब वकुलादि वृक्ष असमय पर विकसित हुए, तो उस वन में भ्रमरों की पंक्तियाँ विलास करने लगी। असमय पर तीन कालों (वसन्त, वर्षा तथा हेमन्त ऋतुओ) के फूलों से मकरन्द-पान के द्वारा वे प्रबोधित हुए। बान्धवी सीता निश्चय ही वाञ्छा-कल्पतरु है। वाञ्छा-कल्पतरु वाञ्छा या कामना करते ही फल दान करता है। उसी प्रकार ये सीताजी गर्भ में विविध फल (नाना लाभ) रूपक दान सञ्चय करती है। विधानानुसार मधुनामक राक्षस का निधन करके प्रभु रामचन्द्रजी का 'मधु-सूदन' नाम बन पड़ा है। वे ही रामचन्द्रजी आज मधुसूदन (भ्रमर) बने हुए है और सीता-रूपिणी वाञ्छाकल्पलता के सहित विनोद करते हुए अपने दिन बिताते है। (१७)

बान्धवी—प्रियतमा सीता; बेभारे—विधानानुसार; मधुसूदन—मधुराक्षस के हन्ता, भ्रमर (श्लेष); काळ वञ्चन्ति—समय बिताते है। (१७)

बिख्यात अनन्त कीरतिमान। बिनाशनरे अनुज सुमन।
विनिद्र विय़ोगी दीक्षारु करि। बासर निशा निति निति हरि।
बसुधा, कले पिशाचीहीन। बोलान्ति श्रेणु पतितपावन। १८।

सरलार्थ—विख्यात तथा अनन्त (असीम)-कीर्त्तिमन्त लक्ष्मण ने संन्यासी-दीक्षा-अवलम्बनपूर्वक विना आहार तथा भोजन के, आनन्दित मन से प्रत्येक दिन तथा रात बिताई। उन्होने पतित पिशाचियों तथा पिशाचों का निधन करके धरती को पिशाच-शून्य बना दिया और स्वर्गगति देकर उनका उद्धार कर दिया। फलस्वरूप वे पतितपावन कहलाते है। (१८)

बिनाशनरे—विना भोजन के; अनुज—छोटा भाई; सुमन—अच्छा (आनन्दित या स्वच्छ) मन है जिनका (लक्ष्मण से तात्पर्य); बसुधा—पृथिवी। (१८)

वासतीर्थराज तीररे येणु । बुलिले तीर्थमानङ्करे तेणु ।
वाळा स्नेह सरस्वतीकि[1] पाळि । वहन सरस्वती[2] रे से मिळि ।
बाशिष्ठी, वासीसुवासी सङ्गे । विधौतकबरी कावेरी भङ्गे । १९ ।

सरलार्थ--सम्प्रति जो रामचन्द्र (दारुब्रह्म जगन्नाथजी के अवतार मे) समुद्र के किनारे पर निवास कर रहे है, उन्ही रामचन्द्रजी ने उस समय नाना तीर्थस्थलों में विहार किया। पत्नी सीताजी की स्नेह-सिक्त वाणी से अर्थात् तीर्थाटन करने के लिए अनुरोध-रक्षापूर्वक रामचन्द्रजी सरस्वती नदी के किनारे पर पहुँचे। तदनन्तर सौरभमयी सीता के सहित गोमती नदी के किनारे पर कुछ दिनो तक ठहरे। इसके उपरान्त वहाँ से सीता स्वामी के साथ रवाना हुई और कावेरी नदी की तरगो में अपना जूड़ा धोया, अर्थात् उन्होने कावेरी नदी मे स्नान किया। (१९)

तीर्थराज—समुद्र; सरस्वती[1]—वाणी, वचन; सरस्वती[2]—नदी विशेष (यमक); वाशिष्ठी—गोमती नदी; वासीसुवास—सौरभमयी; कवरी—जूड़ा; कावेरी भगे—कावेरी नदी की तरंगो मे। (१९)

विहरि नर्मदा[1] घेनि नर्मदा[2] । वाहुदा[1] प्लवने कान्त वाहुदा[2] ।
बुड़ि हंसपरि हंसज-नीरे । वारे गमन प्रचारि रेवारे ।
बिकाशी, काशी-सरिते स्नायी । विन्ध्यकन्यारे कन्या घेनियाइ । २० ।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्रजी ने विनोददायिनी सीता को अपने साथ लिये नर्मदा नदी मे विहार किया। वहाँ से जाकर वे लोग वाहुदा नदी के तट पर पहुँचे। उस नदी को तैरकर पार होते समय सीता ने राम की तरफ़ सहारे के लिए अपनी एक वाहु वढा दी। राम ने सीता की वाहु पकड़कर उन्हे तैरा लिया और सव नदी पार हो गये। अनन्तर वे लोग यमुना नदी मे हस-हसी की तरह डुवकी लगाये उससे पार हो गये (पवित्र तीर्थ होने के कारण उसका पैरो से स्पर्श नही किया)। फिर रेवा तट पर स्नानार्थ आ पहुँचे। अनन्तर उन लोगो ने काशी नगरी के समीप वहती हुई गंगा मे स्नान किया और फिर कन्या (वधू) सीता-सहित विन्ध्यकन्या महानदी के तट पर आये। (२०)

नर्मदा[1]—विनोद देनेवाली; नर्मदा[2]—नर्मदा नदी (यमक); बाहुदा[1]—नदी विशेष; प्लवने—पार होने के लिए; कान्त—स्वामी (रामचन्द्र) को; वाहुदा[2]—वाहु-दायिनी; हंसजा—यमुना; विकाशी—विशेष रूप से प्रकाशित; काशी-सरिते—काशी के समीप वहनेवाली नदी (गंगा); स्नायी—स्नान किया; विन्ध्य-कन्या—महानदी; कन्या—वधू (सीता); घेनि याइ—साथ लिये गये। (२०)

वेत्रवती गति युवती तोषि ।ब्राह्मी कल्लोळ-कल्लोळरे पशि ।
वेणीशोभा नेइ कृष्णवेणीकि । बिक्षेपि पाणिरे[1] शिरे पाणिकि[2]।
वेगरे, गया प्रयाण करि । विकशिता पुष्पे सीता मञ्जरी। २१ ।

सरलार्थ—तदुपरान्त प्रभु ने वेलवती§ नदी तट पर जाकर युवती सीता को आनन्द दान किया। वहाँ से चंचल तरंग-युक्त ब्राह्मीनदी† के जल में प्रवेश किया। फिर वेणीशोभिनी सीता-सहित कृष्णवेणी नदी के किनारे पर प्रभु ने उसके जल को हाथ में लेकर अपने शिर पर सींचा। अनन्तर तीनों वेग से गयातीर्थ को रवाना हुए। वहाँ सीतारूपिणी लता पुष्पों से विकशिता हुई। (अर्थात् वहाँ सीता पुष्पवती हुई।) (२१)

ब्राह्मी—नदी विशेष; कलोळ कल्लोळ में—क (जल), लोल-चंचल, अर्थात् चंचल जल से तरंगायित (ब्राह्मी नदी में); विक्षेपि—सींचा; पाणिरे[१]—हाथ से; पाणिकि[२]—पानी को (यमक); प्रयाण करि—रवाना हुए, प्रस्थान किया; विकशिता—पुष्पवती, ऋतुमती; मञ्जरी—लता। (२१)

§ महानदी—उत्कल की दीर्घतम नदी। † ब्राह्मी नदी—उत्कल में प्रवाहित राज्य की द्वितीय वृहत्तम नदी।

बसिण फल्गुरे[१] फल्गुकामरे[२]। वालिगोत्र पिण्डे गोत्र उच्चारे।
बिस्तारि कर दशरथ तरि। विदारि शापरे बारि ता[१] बारि[२]।
बाहार, हारशोभिनी घेनि। बिप्रे करन्ति बिप्रळाप ध्वनि। २२।

सरलार्थ—अनन्तर सीताजी ने फल्गु नदी मे बैठकर कौतुक से बालुका-समूह के कुछ पिण्ड बनाये और अपने पूर्वजो के नाम-उच्चारणपूर्वक जब वे पिण्ड दिये, तब दशरथजी ने हाथ पसारकर उन्हें स्वीकार कर लिया। इस तरह दशरथजी मुक्त हो गये। फिर रामचन्द्रजी ने जब पिण्ड दिये, तो दशरथजी ने उनको स्वीकार नही किया। रामचन्द्रजी ने फल्गु से इसका कारण पूछा तो फल्गु ने नही बताया, क्योंकि सीता ने उसे कारण बताने के लिए मना किया था। तब श्रीराम ने नदी को शाप दिया, "तू निर्जला हो"। नदी ने बड़ी विनय से इसके प्रतिविधान की याचना की। कृपालु प्रभु ने प्रसन्न होकर उसे यह स्वीकृति दी कि तुझे खोदने से तेरी वालू जल होगी। यह कहकर श्रीराम-लक्ष्मण वहाँ से हारशोभिनी सीता को साथ लिए चल पड़े तो तीर्थवासी ब्राह्मणों ने इनको देखकर विप्रलाप (विरोधोक्ति) प्रकाश किये। (२२)

फल्गुरे[१]—फल्गुनदी में; फल्गुकामरे[२]—असार कामना से, कौतुक से (यमक); वालिगोत्र—बालूराशि; विदारि—विदीर्ण करके, खोदने से; वारि[१]—जल; वारि[२]—वालू-राशि (यमक); हारशोभिनी—माला-सुशोभिता (सीता); घेनि—लेकर; विप्रे—ब्राह्मण लोगो ने; विप्रळाप—विरोधोक्ति। (२२)

बर बेनि एक बरबरनी। बिट ए बिटपी पळान्ति घेनि।
वज्र[१] पड़ि ग्राउ मस्तक फाटि। वज्र[२] आदिरत्न करिबा लुटि।
बामाक्षी, वाम वसनाञ्चळ। वळे धरुँ धरित्रीजा आकुळ। २३।

सरलार्थ—गया के ब्राह्मणों ने मन में विचार किया, "ये दोनों विट पुरुष इस वरवर्णिनी विटपी स्त्री को अपने साथ लिये भाग रहे हैं। वज्रपात होकर अगर इनके मस्तक फट जावे, तो हम लोग इस स्त्री से हीरकादि रत्न लूट लेंगे।" ऐसा विचार करके जब उन्होंने वामलोचना सीता का वसनाञ्चल पकड़ने की जबरदस्ती की, तो वे बड़ी व्याकुल हुईं। (२३)

वरवेनि—पुरुष दोनों; विट—लंपट या जार पुरुष; विटपी—दुश्चरित्रा स्त्री; बज्र[१]—अशनि; बज्र[२]—हीरा (यमक); वामाक्षी—वामलोचना; वामा—स्त्री (सीता); बळे—बलात्, जबरदस्ती से; धरित्रीजा—पृथिवी-कन्या सीता। (२३)

बोलन्ति कहि दण्डधर पाशे। विहाइ दण्ड बन्धाइबा पाशे।
बिच्छेदि राम रामा वस्त्र खड्गे। वेग वेग याउँ गोड़ाइ सङ्गे।
बसाउँ, चापे तीक्ष्णमार्गणे[१]। वीर लक्ष्मण पळान्ति मार्गणे[२]। २४।

सरलार्थ—आगे उन ब्राह्मणों ने फिर कहा, "चलें, हम लोग राजा के सामने यह शिकायत करेंगे कि ये दोनों विट पुरुष एक विटपी स्त्री को अपने साथ लिये भागे जा रहे हैं और इनका दण्ड-विधान करवाकर इन्हें पाश से बन्धाएँगे।" यह सुनकर रामचन्द्र ने तलवार से सीता का आँचल काट दिया और उनके शीघ्रता से जाते समय ब्राह्मणों ने उनका पीछा किया। यह देख वीर लक्ष्मण ने अपने धनुष पर शर सन्धाना, तो याचक ब्राह्मण लोग मौत के डर से भागने लगे। (२४)

दण्डधर—राजा; गोड़ाइ—पीछा करके; चापे—धनुष पर; तीक्ष्ण मार्गणे[१]—नुकीले शर को; पळान्ति—भागने लगे; मार्गणे[२]—माँगनेवाले (याचक) ब्राह्मणलोग (यमक)। (२४)

ब्याकुळ विनाशे नवीनामणि। बिभ्राज चन्द्रभागाळिका पुणि।
विपथे चन्द्रभागारे सञ्चरि। वालुकारे शिव शिवद करि।
विहीन, ऋषिजा रुषिबारे[१]। विनोद ऋषिवार[२] कुल्यातीरे। २५।

सरलार्थ—उन दुष्ट ब्राह्मणों को भागते देखकर कामिनीश्रेष्ठा सीता ने अपने हृदय से व्याकुलता दूर की। अनन्तर रामचन्द्र अर्द्धचन्द्र-ललाट-शोभिता सीता के साथ अबाट पर आगे बढ़ते हुए चन्द्रभागा के तट पर उपस्थित हुए और वहाँ प्राणियों की मंगल-कामना से एक शिवलिंग की स्थापना की। फिर रोष-विहीना ऋषिकन्या सीता के साथ रामचन्द्र ने ऋषिसमूह की नदी ऋषिकुल्या नदी के किनारे पर विनोद (क्रीड़ा) किया। (२५)

टिप्पणी—[चन्द्रभागा—पुरी जिले में समुद्र-तट पर अवस्थित कोणार्क-मन्दिर के समीपप्रवाहित पवित्र नदी विशेष, हर साल माघ मास शुक्लपक्ष सप्तमी तिथि में इस नदी में तीर्थयात्रिवृन्द डुबकियाँ लगाकर अपने-अपने पापों का प्रक्षालन करते हैं। ऐसा लोगों का विश्वास है।]

नवीनामणि—कामिनीश्रेष्ठा सीता; विभ्राज—शोभायमान; विपथे—अवाट पर; चन्द्रभागाळिका—अर्द्धचन्द्र-सुशोभित; शिवद—मंगलप्रद; ऋषिजा—ऋषिकन्या सीता; विहीन ऋषिवारे[1]—रोषहीना, जो रूठना नही जानती है; ऋषिवार[2] कुल्या—ऋषिसमूह की नदी, (यमक)। ऋषिकुल्या—गञ्जाम जिले मे प्रवाहित पवित्र नदी विशेष, पुराकाल में इस नदी के तट पर ऋषिलोग तपस्या किया करते थे। (२५)

विहि ईश्वरपद इक्ष्वाकुरे[1]। बिभु अटन्ति सदा इक्ष्वाकुरे[2]।
वहन्ते पथ अत्रिमठे मिळे। बिधु हेला ग्राहा लोकनमूळे।
वाञ्छिले, सुकल्याण सुदया। वन्दिले सीता देखि अनुसूया। २६।

सरलार्थ—वे रामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंश के विभु हैं। इसलिए उन्होंने इक्ष्वाकु (कड़ुवी लौकी की तुम्बी) से ईश्वर (शिव) जी की मूर्त्ति बनाकर उनकी पूजा की। अनन्तर पथ पर आगे बढ़ते-बढ़ते वे अत्रि मुनि, जिनके नेत्रों के मूल से चन्द्र की उत्पत्ति हुई थी, के आश्रम पर पहुँचे। प्रभु ने मुनि को प्रणाम किया तो मुनि ने उन्हें कृपापूर्वक आशीर्वाद दिया। सीता ने ऋषि-पत्नी अनुसूया की पद वन्दना की। (२६)

इक्ष्वाकु[1]—राम के वंश का नाम; इक्ष्वाकु[2]—कड़वी लौकी की तुम्बी (यमक)। (२६)

बिळोहि अम्लानशाढ़ी कि शोभा। बिद्युतप्रभा दूर करे प्रभा।
बोइले बने त रजक नाहिँ। बह्निरे धौत ग्रेवे म्लान होइ।
बैदेही, चित्त हरषे सान्द्र। बड़ आनन्द शुणि रामचन्द्र। २७।

सरलार्थ—अनुसूया सीता को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई एव उन्हें विद्युत्-विनिन्दित एक दीप्तिमान् अम्लान शाढ़ी (सारी) भेट की और कहा, "वन मे तो धोबी नही है। यदि यह वस्त्र व्यवहार के कारण मैला हो जाय, तो इसे अग्नि मे धो लेना, फलस्वरूप यह साफ़ हो जायगा।" यह सुनकर सीता का मन आनन्दपूर्ण हो गया और रामचन्द्रजी भी आनन्दित हुए। (२७)

बिळोहि—भेंट की; सान्द्र—परिपूर्ण। (२७)

बिहरु बिहरु दण्डकारण्ये। बृन्द बृन्द ऋषि देखि सुपुण्ये।
बिदेह कोटि एक देह बहि। बोलन्ताइ ए लक्ष्य किछि नोहि।
बनद,—श्याम काहिँ ए थिला। वरिला ए रामा कि तप कला। २८।

सरलार्थ—जब राम, लक्ष्मण तथा सीता दण्डकारण्य में विहार करते थे, तो वहाँ के मुनियो के समूहो ने अपने-अपने उत्तम पुण्य के प्रभाव से उनके, विशेषकर रामचन्द्रजी के दर्शन करके मन मे विचार किया, "कोई अगर यह बोले कि करोड़ो कन्दर्पो के सम्मिलित सौन्दर्य से यह एक ही मनोहर मूर्त्ति बनी हुई है, तो भी यह लक्ष्य (उपमान) कुछ नही के बराबर

है; क्योंकि यह रूप करोड़ो कन्दर्पो के रूपो की भी निन्दा कर रहे हैं। विट ऐसी घनश्याम मूर्त्ति कहाँ थी ? कौन-सा तप करके इस रमणी (सीता) ने इस रूपवान् पुरुष को पति के रूप मे वरण (प्राप्त) किया है ? (२८)

विदेह—विगत है देह जिसकी, कन्दर्प; वनद—मेघ, घन; वनदश्याम—घनश्याम; रामा—रमणी, सीता (व्यतिरेक अलंकार)। (२८)

बिधाता आम्भङ्कु करन्ता नारी। वर हुअन्ते ए कोदण्डधारी।
ब्रह्मपदवी फळ हेब किस। वहिबा कि करि कामिनी वेश।
बिचारु, पुलकित शरीरे। बेपथु जन्मि आउजि बृक्षरे। २९।

सरलार्थ—"यदि विधाता हम लोगो को नारियाँ वनाते, तो ये कोदण्ड-धारी हमारे पति वनते। तव ब्रह्मपदवी के लाभ से कौन-सा प्रयोजन ? अर्थात् ऐसे पति के लाभ के सामने ब्रह्म-पदवी का कुछ भी महत्त्व नही है।" अव यह चिन्ता, कि हम लोग कैसे नारियो के रूप धारण करेंगे, करते-करते उनके शरीर प्रेम-वश पुलकित हो गये और शरीरो मे कम्पन आदि सात्त्विक विकार पैदा हुए, और वे लोग स्वतः वृक्षों का सहारा लिए खड़े हुए। (२९)

किस—कौन-सा; बेपथु—कम्पन। (२९)

बिभ्रम उपुजिगला मानस। बोइले सखाङ्कु सखि गो आस।
बहिबा तुम्बीकि उररे रखि। वक्षोरुह हेला भावरे सुखी।
बेणी ए, भावि जटा लम्बाइ। विबिध कुसुम मण्डिले नेइ। ३०।

सरलार्थ—जब ऋषियों के मन मे ऐसा कामविकार उत्पन्न हुआ, तो वे लोग तज्जनित चित्त-भ्रम के कारण अपने सखाओ को 'अरी सखियो, आओ' ऐसा सम्वोधन करने लगे। उन्होंने अपने-अपने हाथों मे जो लौकी की तुम्बियाँ धारण की थी, उनको वक्षो पर रक्खे अपने-अपने स्तन समझकर आनन्दित हुए। फिर शिरो पर से बढ़ी जटाओ को वेणियाँ समझकर उनमें विविध फूल सजाने लगे। (३०)

तुम्वी—लौकी की तुम्बियाँ; उररे—वक्षों पर; वक्षोरुह—स्तन; कुसुम—फूल।(३०)

बिहुथिले ये आहुति अग्निर। बिसोरिले स्वाहा आद्य अक्षर।
बक्रे चाहिँ ता पुनः पुनः कहि। बिचेष्टा ताङ्कर राघब चाहिँ।
बैदेही, लक्ष्मणरु अन्तर। बाञ्छा बरदाने रचन गिर। ३१।

सरलार्थ—जो ऋषि लोग अग्नि में आहुति दे रहे थे, वे 'स्वाहा' शब्द का आद्य (प्रथम) अक्षर भूल गये और केवल 'हा' शब्द का बार-बार

उच्चारण करते हुए श्रीराम की ओर वक्रदृष्टि से निहारने लगे। उन लोगों की ऐसी विरह-चेष्टा देखकर प्रभु राघवेन्द्र ने सीता तथा लक्ष्मण से कुछ अलग होकर (एकान्त में) उन्हे अभिलषित वरदान देने के लिए वचन दिया। (३१)

बिसोरिले—भूल गये; स्वाहा—अग्नि-पत्नी, आहुति देते वक्त अग्नि-पत्नी का सम्बोधन; बिचेष्टा—विरह-चेष्टा या भाव; रचन गिर—वचन दिया, वादा किया।(३१)

वल्लवी[1] तुम्भे होइब द्वापरे। ब्रजे रहिबुं आम्भे कंस डरे।
बृन्दाबनरे हेब रासकेळि। बल्लभी[2] एका ए देहें मैथिळी।
वहिबुं, गोपीनाथ नामकु। बोले उपेन्द्र बोधिगले ताङ्कु। ३२।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने ऋषियो से कहा, "हे मुनिवर्ग! तुम लोग द्वापरयुग मे ग्वालिनो के रूप में गोपपुर मे जन्म लोगे। हम कृष्णावतार लेकर कंस के भय से व्रजपुर मे जा निवास करेगे। वृन्दावन में तुम लोगो के साथ हमारी रासकेलि होगी। इस अवतार मे सीता ही हमारी एकमात्र पत्नी है। (इससे हमारे एक-पत्नीव्रत की सूचना मिलती है।) कृष्णावतार में हम गोपीनाथ का नाम धारण करेगे।" ऋषियो को ऐसी प्रबोधना देकर प्रभु श्रीरामचन्द्र पत्नी तथा सीता सहित वहाँ से रवाना हुए। कविवर उपेन्द्र भञ्ज ने इस ढंग से इस छान्द की रचना की।(३२)

वल्लवी[1]—ग्वालिने; वल्लभी[2]—प्रियतमा, पत्नी; ताङ्कु—उनको। (३२)

॥ इति एकविंश छान्द ॥

द्वाविंश छान्द

भागवत वृत्ते

बातापिसूदन आश्रम । बिपिने प्रवेश श्रीराम । १ ।
बइरी हिंसा तहिँ हत । बइरी सन्निधि कपोत । २ ।
बायस कउशिक मेळ । वसि अछन्ति एक डाळ । ३ ।
ब्याळ फणाकु टेकि खेळि । बरही पाशे नृत्यशाळी । ४ ।
बारणसिंह एक स्थान । बिरचि अछन्ति शयन । ५ ।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीराम ने वातापि-सूदन (वातापि नामक राक्षस को जिन्होंने हजम करके नाश किया था) अगस्त्य ऋषि के आश्रम-वन (तपोवन) मे प्रवेश किया। उस वन मे परस्पर के प्रति हिंसा करनेवाले प्राणियो में कोई हिंसा-भाव नही। यहाँ तक कि कबूतर भी शत्रु श्येन के समीप वास कर रहा है। कौवा और उल्लू पेड़ की एक ही शाखा पर एक साथ बैठे हुए है। साँप अपना फन उठाये खेल रहा है और मोर उसके समीप नृत्य-रत होकर शोभा पा रहा है। हाथी तथा सिह एक ही स्थान पर सोये हुए है। (१-५)

बायस—कौवा; कउशिक—उल्लू; ब्याळ—साँप; बरही—(बर्ही)-मयूर; बारण—हाथी। (१-५)

ब्याघ्र कुरंग रग वहि । बृकाळी मिळुछन्ति तहिँ । ६ ।
वत्सा धेनुङ्क महिषिर । बिभीते पान करे क्षीर । ७ ।
बक पाशरे जळघाटे । बिशारकुळहिँ चहटे । ८ ।
ब्राह्मण तपे बाळ साथ । विचार कले रघुनाथ । ९ ।

सरलार्थ—बाघ तथा हिरन मिलकर क्रीड़ा करते समय, जंगली कुत्तो का झुंड आकर उनसे मिल रहा है। गायों के बछड़े निर्भय मन से भैंसो का दूध पी रहे है। पनघट पर बगुले के पास मछलियाँ क्रीड़ापूर्वक शोभित हो रही है। यह सब देख श्रीराम ने मन में विचार किया कि अगस्त्य मुनि का तपोबल सार्थक है। (६-९)

कुरंग—हिरन; रंग—क्रीड़ा; बृकाळी—जंगली कुत्तों (अथवा भेड़ियों) का समूह; विशारकुळ—मीन-समूह; चहटे—चमक (चटक) रही है। (६-९)

विलोकि सीता ऋषि-शिष्ये । वितर्कि एमन्त मानसे । १० ।
बृद्धश्रबारे कोपी परा । बने आसिला चारुधरा । ११ ।

बोधुछन्ति गोड़ाइ सगे । बिद्याधर युगळ रङ्गे । १२ ।
बोध न घेनु कि अदम्भा । बळे जानुरे ग्रेउँ रम्भा । १३ ।

सरलार्थ—अगस्त्य के शिष्यो ने सीता को देखकर मन में विचार किया, "इन्द्र के प्रति कोप करके शची इस वन में आ गयी है क्या !" राम-लक्ष्मण, दोनो को देखकर उन्होंने सोचा, "शायद ये दोनो विद्याधर शची का पीछा करते हुए उन्हे नाना प्रकार से मना रहे है ।" फिर सीता की कदलीवृक्ष के सदृश दोनो जाँघों को देखकर उन्होंने तर्कणा की, "शची इन दोनो विद्याधरो की प्रबोधना न मानकर अधीरा हो रूठती चली जा रही है और स्वर्गवेश्या रम्भा कदली-वृक्षो के रूप-धारणपूर्वक बलात् इनके जानुओं के सहित जड़ित हुई है, मानो उन्हे न रूठने के लिए पैरों की ओर शरण आकर विनती कर रही हो। (१०-१३)

वृद्धश्रवा—इन्द्र; चारुधारा—शची; अदम्भा—अधीरा; जानुरे—जांघो से; ये.उँ—जो; रम्भा—कदळी वृक्ष, रम्भा नामक स्वर्गवेश्या; (श्लेष, उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक) । (१०-१३)

बनज पादे देइ देखा । बिनति धरि चित्ररेखा । १४ ।
बिमळ चिबुककु छुई । विनयी चन्द्रकळा होइ । १५ ।
बासअङ्गीरे आलिंगन । बिचित्र कळावती घेन । १६ ।

सरलार्थ—"सीता के पद्मपादों को चित्ररेखा (अलता की रेखाओं) से रञ्जित देखकर प्रतीत होता है, मानो चित्ररेखा-नाम्नी स्वर्ग-वेश्या शची के दोनों पैरों को पकड़ती हुई विनती कर रही हो । चन्द्रकला-नाम्नी अप्सरा चन्द्र के सोलहवें अंश के रूप मे उनके निर्मल ओठ को पकड़कर विनय कर रही है । (इस से यह स्पष्ट हुआ कि सीता का ओठ चन्द्र-कला के सदृश है ।)" सीता को विचित्र नीली साढ़ी पहने देखकर उन शिष्यों ने सोचा, "कलावती-नाम्नी अप्सरा उस विचित्र नीली साढ़ी के मिस शची को मनाने के लिए उन्हे गले लगायी हुई सी दिखाई पड़ रही है ।" (१४-१६)

वनज-पादे—पद्म-पादो में; चित्ररेखा—अलता, स्वर्गवेश्या; चन्द्रकला—ओठ की आकृति, स्वर्ग की अप्सरा; कळावती—नीली साढ़ी, स्वर्गवेश्या; घेन—ग्रहण करो; (श्लेष तथा उत्प्रेक्षा) । (१४-१६)

बिशिष्ट ग्ने सुन्दरीबृन्द । वहे ए पुरन्दरी पद । १७ ।
बादी तहिँरे केहि होइ । बिरोधी कान्ते काहिँपाई । १८ ।
बोले से गौतम अबळा । बृषा संगमु शापे शिळा । १९ ।

बिकुक्षिवंशी रामपद । बाजि ता पूरुब सम्पद । २० ।
बज्रीर रसे वड़ प्रीति । बळाउथिव पुणि मति । २१ ।

सरलार्थ—आगे फिर एक शिष्य ने कहा, "यह नारी परमासुन्दरी नारियो मे इद्राणी (सर्वश्रेष्ठा) है। उसकी यह वाणी सुनकर दूसरे ने उसका विरोध करते हुए कहा, "तो शची अपने पतिदेव से किस कारण से यो विगड़ी ? वताओ तो सही।" यह सुनकर प्रथम शिष्य ने कहा, "गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या इन्द्र से प्रीति करने के कारण पति के शाप से पत्थर बनी हुई थी। उस शिला पर सूर्यवशीय रामचन्द्रजी का पैर लगने से उन्होने अपने पूर्व रूप-विभव को प्राप्त किया। इन्द्र तो पहले ही से उनके प्रति आसक्त थे ही, सुतरा अव भी उनका अहल्या के प्रति जी ललचाया होगा। यह अवगत होकर शायद शची रूठकर यहाँ चली आयी है।" (१७-२१)

पुरन्दरी—इद्राणी (सर्वश्रेष्ठा); वृषा—इन्द्र; शिळा—पत्थर; विकुक्षिवंशी—सूर्यवशी; बज्रीर—इन्द्र की; बळाउथिव पुणि मति—उन्होने इच्छा की होगी, उनका जी ललचाया होगा। (१७-२१)

बिज्ञ सर्वज्ञ सुदक्षिण । वोइले शुणि ततक्षण । २२ ।
बिद्याधर नोहे ए वेनि । विजे रामलक्ष्मण घेनि । २३ ।
बिश्व मोहन रूप दुइ । विधु मदन न घटइ । २४ ।
बहे कळङ्क एक अङ्के । विदेह एक शोभा अङ्के । २५ ।

सरलार्थ—शिष्यो का ऐसा वाद-प्रतिवाद सुनकर परम-पण्डित सर्वज्ञ सुदक्षिण (अगस्त्य मुनि के पुत्र) ने उसी क्षण कहा, "ये दोनो विद्याधर नही है। लक्ष्मण-सहित श्रीरामचन्द्रजी पधारे है। इन दोनो के रूप जगन्मोहन है। इनके रूपो की शोभा मे चन्द्र तथा कन्दर्प इनके सहित तुलनीय नही है। चूंकि वे दोनो रामलक्ष्मण के रूपो से समान नही, इसलिए चन्द्र ने अपने अक में अपमान से कलक धारण किया है और कन्दर्प अदेह हुआ है। (२२-२५)

विधु—चन्द्र; मदन—कन्दर्प; विदेह—देहहीन। (२२-२५)

बिदेह राजसुता सगे । बिहिल कि लक्ष्यकु रंगे । २६ ।
बपु ए हेले लक्ष्य शची । बहन्ता काहुँ एते रुचि । २७ ।

सरलार्थ—सुदक्षिण ने फिर कहा, "विदेहराज कन्या सीता के साथ तुम लोगो ने कौतुक से कौन-सा उपमान विधान किया ? शची का उपमान! वे कहाँ से इतनी शोभा पा सकती कि सीता के सौन्दर्य के वरावर होती ?

लाख संख्यक शचियाँ एक-शरीर होकर (इकट्ठी होकर) कहाँ सीता की सी सुन्दरता पा सकती है ? (२६-२७)

लक्ष्य—उपमान; रगे—कौतुक से; वपुए—एक-शरीर होकर; लक्ष—एक लाख; काहुँ—कहाँ से ? (२६-२७)

वर्णना कविमानङ्कर । बिहिबा सीताठारे सार । २८ ।
ब्यर्थ अन्य स्तिरीङ्क ठाब । बोलिबा न थिला नोहिब । २९ ।
वर्त्तमानरे अछि एहि । बिश्वे खोजिले आउ नाहिँ । ३० ।
बनजासनी ग्रहिँ येते । बार बार जन्मिब मर्त्त्ये । ३१ ।
बहि न थिब न बहिब । बिग्रहे एपरि स्वभाव । ३२ ।

सरलार्थ—कवियो की सौन्दर्य-वर्णना केवल सीता के पक्ष में ही सार्थक हुई है। दूसरी स्त्रियों के पक्ष में वर्णनाएँ व्यर्थ ही है। सीता के समान सुन्दरी रमणी पहले पैदा नहीं हुई थी, एव वाद मे (भविष्य में) भी पैदा नही होगी। वर्त्तमान वे ही अनुपमा सुन्दरी है। इस समूचे विश्व मे ढूँढ़ने पर इनके समान सुन्दरी और एक भी नही मिलेगी। वनजासनी (पद्म पर आसीना) लक्ष्मी मर्त्त्य में कही पर भी कितनी ही बार क्यों जन्म-ग्रहण न करती या करे, इनके समान उन्होने शोभा का धारण नहीं किया होगा, न धारण करेगी ही। (२८-३२)

ठाब—जगह, यहाँ सप्तमी विभक्ति के अर्थ में (अन्य स्त्रियो मे); विग्रहे—शरीर को। (२८-३२)

बोलि से आश्रमे प्रकटि । बारिधि-चळुकङ्कु भेटि । ३३ ।

सरलार्थ—सुदक्षिण मुनि के ऐसे बोलते समय रामलक्ष्मण तथा सीता ने समुद्र-शोषक मुनि अगस्त्य के आश्रम मे प्रवेश किया और अगस्त्य मुनि से मिले। (३३)

बारिधि-चळुक—समुद्र को चुल्लू में सोखनेवाले, अगस्त्य मुनि। (३३)

बसाइ प्रणिपत्य क्षणे । बिधिसम से सबु जाणे । ३४ ।
बिरचि मानसिक पूजा । बैदर्भी पाशे जनकजा । ३५ ।
बिराजि कह्लार पाशरे । बिकच पद्म ग्रे प्रकारे । ३६ ।

सरलार्थ—जब उन लोगो ने ऋषि को प्रणाम किया, तो विधाता के समान सर्वज्ञ अगस्त्य मुनि ने सारी बाते जान ली। अर्थात् उन्होने जान लिया कि श्रीराम के वनागमन का उद्देश्य रावण का निधन करना है; और रामलक्ष्मण को आसन पर बैठाकर उन्होने उनकी मानसिक पूजा की।

अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा के समीप सीता इस तरह सुशोभित हुई मानो कुमुद के पास प्रस्फुटित पद्म सुशोभित हो रहा हो। (३४-३६)

वैदर्भी—विदर्भ की राज-कन्या, अगस्ति मुनि की पत्नी लोपामुद्रा; जनकजा—सीता; कह्लार—कुमुद; विकच—प्रस्फुटित। (व्यतिरेक) (३४-३६)

विदुषे प्रशसित सदा। बड़ सुन्दरी लोपामुद्रा। ३७।
बैदेही ता लोप कराए। बाछि अमुद्रा द्रव्य प्राये। ३८।

सरलार्थ—ऋषिप्रिया लोपामुद्रा बड़ी सुन्दरी होने के कारण हमेशा पण्डित जनो से प्रशंसित होती थी। अब सीता ने उनकी उस सुन्दरता का लोप किया। जिस मुद्रा पर छाप अंकित नही रहती है, लोग उसे छाँट-कर अच्छी मुद्रा का ग्रहण करते है। उसी तरह पण्डितो ने लोपामुद्रा की शोभा को त्यागकर सीता का सौन्दर्य स्वीकार किया। (३७-३८)

विदुषे—पण्डित जनो से; (उपमालंकार) (३७-३८)

बिधाता हृदसंपुटकु। वोलिवा लोपामुद्रा ताकु। ३९।

सरलार्थ—विधाता के हृदय-संपुट मे जो सब सुन्दर सामग्रियाँ थीं, उन सबका सीता के शरीर के निर्माण मे लोप हो गया, अर्थात् वे सारी सामग्रियाँ सीता के शरीर-निर्माण मे समाप्त हो गयी। इसलिए यह विधेय है कि सीता को ही 'लोपामुद्रा' नाम से अभिहित किया जाय। (३९)

बपुकु चाहें आपणार। विलोके सीता मनोहर। ४०।
बिनाशन रूपगर्विता। वड़ाइ चित्तुं होइला ता। ४१।

सरलार्थ—ऋषि-पत्नी लोपामुद्रा बार-वार अपने शरीर की ओर निहारती रही, फिर सीता के मनोहर शरीर की ओर भी। इस तरह निहारकर उन्होने अनुभव किया कि उनका अपना शरीर सुन्दरता में सीता के शरीर से न्यून है। फलतः उनके मन से अपने रूप-गर्व का नाश हो गया और सौन्दर्य की वडाई हट गयी। (४०-४१)

बार बार से डोळा अळि। विचित्र वल्ली परे ढळि। ४२।
विमळ जळ स्थळ फुल। विदित चारि षटमेळ। ४३।
बिचारे एहारे रञ्जिता। वाणी पद्मिनी रसलता। ४४।

सरलार्थ—उन लोपामुद्रा ने सीता-रूपिणी विचित्र बल्ली पर अपनी पुतलियो-रूपिणी भ्रमरियो को निक्षेप करके देखा कि एक ही स्थान पर चार स्वच्छ जलज पुष्प (सीता का मुख श्वेतपद्म, नेत्र नीलोत्पल, करतल

रक्तपद्म, और नख कुमुद) एवं छः स्थलज पुष्प (कर्ण पाटलियाँ, अधर बन्धूक अर्थात् गुलदुपहरिये, नासा तिलपुष्प, अगुलियाँ चम्पक, कान्ति केतकी और दन्त कुन्दपुष्प) इकट्ठे हो गये है। सीता की अंग-लता को इस तरह अद्भुत रूप से अर्थात् जल व स्थल पुष्पों से विमण्डित देखकर उन्होंने सोचा कि इन पद्मिनी जातीया नायिका को रस-लता बोलना यथार्थ ही है। (४२-४४)

डोळा-अळि—पुतलियो रूपिणी भ्रमरियाँ; बल्ली—लता; चारि—चार; षट—छः; एहारे—इन्हें। (४२-४४)

बिन्ध्यभूलोक रामे तहिँ। ब्रह्मास्त्र चाप तूण देइ। ४५।
बोले ए शरे रावणर। बध बिचार रघुवीर। ४६।

सरलार्थ—वहाँ अगस्त्य ने श्रीरामचन्द्र को ब्रह्मास्त्र धनुष, तथा तरकस देते हुए कहा, हे रघुवीर! इस शर से रावण का विनाश कीजिएगा। (४५-४६)

बिन्ध्य-भूलोक—अगस्त्य; चाप—धनुष; तूण—तूणीर, तरकस। (४५-४६)

बड़बानळु वळि तेजे। बड़ ए नाराचसमाजे। ४७।
बिन्धिबा त्रिपुरे कळ्पिला। बृषांक धनु जळिथिला। ४८।

सरलार्थ—अगस्त्य ने शर-प्रदानानन्तर आगे कहा, "इस शर का तेज वड़वाग्नि से अधिक है और शर-समाज में यह सवसे वड़ा या सर्वोत्कृष्ट है। त्रिपुरासुर-वध के उद्देश्य से जव शिवजी ने अपने धनुष पर यह शर सन्धाना, तो उनका धनुप इसके तेज से एकाएक जल उठा। इसलिए इस शर को मार नही सके और अपने पास रख लिया। वाद में उन्होने ब्रह्मा को यह शर दान दे दिया। ब्रह्मा ने मुझे दिया और मै अभी आपको यह समर्पण करता हूँ। (४७-४८)

बड़बानळु—वड़वाग्नि से; वळि—बढ़कर; नाराच-समाजे—शर-समूह में; बिन्धिबा—सन्धानना, मारना; कळ्पिला—विचार किया; त्रिपुरे—त्रिपुर राक्षस को; बृषाङ्क—शिवजी का। (४७-४८)

बाणासनकु तथा घेन। वज्राग्नि दहइ कि घन। ४९।
बिजय तूण झर परि। बाण बिन्धुथिले न सरि। ५०।

सरलार्थ—आप अगर आशका करते है कि आपके इस धनुप की वही हालत कही न हो जाय, तो मै आपको वता रहा हूँ कि यह शर आपके धनुप को जला नहीं सकेगा, जैसे वज्राग्नि मेघ को जला नही सकती। फिर क्या ? यह जो विजय-तूणीर मै आपको दे रहा हूँ, इसकी महिमा ज़रा सुनिए। इससे आप कितने ही शर निकालकर क्यों मारते न चले

जैसे झरने का जल समाप्त न होकर वार-वार झरता रहता है वैसे इसके शर समाप्त नही होगे। (४९-५०)

वाणासनकु—धनुष को; तथा—उसी प्रकार (शिवजी के धनुष के समान कहीं न जल जाय); घेन—सोचते है, आशंका करते हैं; तूण—तूणीर, तरकस। (उपमा) (४९-५०)

बनरे पञ्चवटी सार। वेश्म तहिँरे य़ाइ कर। ५१।
बाट-देखाकु शिष्ये देले। बिजय से स्थानरे कले। ५२।

सरलार्थ--फिर ऋषि ने कहा, "वनो में पंचवटी श्रेष्ठ है। वहाँ आप लोग जाकर गृह वनाइए और उसमे निवास कीजिए।" यह कहकर उन्होने मार्ग दिखाने के लिए अपने शिष्यो मे से एक को उन लोगो के साथ भेजा। अनन्तर वे लोग जाकर पचवटी मे उपस्थित हुए। (५१-५२)

वेश्म—गृह। (५१-५२)

बिलोकि नदी गोदावरी। वामा कि शुक्ळ अभिसारी। ५३।

सरलार्थ--वहाँ गोदावरी नदी को देखकर उन्होने सोचा, "यह नदी शुक्लाभिसारिका नायिका है क्या!" तात्पर्य यह है कि गोदावरी नदी का जल शुक्ल एव स्वच्छ है। (५३)

बिलोकि—देखकर; वामा—स्त्री, नायिका। (५३)

बिशद फेन पाट शाढी। बान्धि होइछि फुल पड़ि। ५४।

सरलार्थ—शुक्लाभिसारिका नायिका फूलपाड़युक्त शुक्ल रेशमी साढ़ी पहनती है। उसी तरह नदी के दोनो किनारो पर स्थित वृक्षों से झड़कर उसमें उतराती जाती हुई फूलराशि शुक्लाभिसारिका नदी-नायिका की शुक्लफेनरूपी रेशमी साढी के फूलपाड की तरह प्रतीयमान हो रही है। (५४)

विशद—शुक्ल, सफेद; पाटशाढ़ी—रेशमी साढी। (५४)

बिशुद्ध दशा स्थित होइ। बीचि करकु टेकि देइ। ५५।

सरलार्थ—अभिसारिणी नायिका विशुद्ध दशा* मे स्थित होकर (निर्मलावस्था) अपने हाथ ऊपर उठाती है। उसी तरह गोदावरी नदी विशुद्ध दशा मे स्थित है, क्यों कि वह निर्मल जल से पूर्ण है। फिर वह * भँवरो के मिस खेल मे मस्त होकर अपने लहर-करों को ऊपर बढ़ा रही है। (५५)

विशुद्ध दशा—निर्मलावस्था; बीचि—लहर; कर—हाथ; टेकि देइ—ऊपर उठा रही है। (५५)

बिशेष कुमुद छटक। बिराजे रजत कटक। ५६।

सरलार्थ—नदी मे खिले विशेष रूप से सुशोभित कुमुद अभिसारिणी नारी के चाँदी के कगनो के सदृश प्रतीत हो रहे है। (५६)

रजत—चाँदी; कटक—कंगन। (५६)

बुड़ि उठइ चक्र बसि। बास खसि कि स्तन दिशि। ५७।

सरलार्थ—अभिसारार्थ चलते समय अभिसारिका का वस्त्र खिसक पड़ता है तथा उसके स्तन दिखाई पड़ते है। उसी तरह नदी के मध्य चक्रवाक पक्षी डुबकी लगाकर उठते-बैठते समय नदीरूपिणी अभिसारिका के स्तनों के सदृश दिखाई पड़ते हैं। (५७)

चक्र—चक्रवाक, चकवा; वास—वस्त्र। (उत्प्रेक्षा) (५७)

बिथिर पवने पुळीन। बिपुळ ऊरु दरशन। ५८।

सरलार्थ—चंचल पवन के द्वारा लोल लहरों से नदी मध्यस्थ बालुका-प्रदेश कभी डूब जा रहे है या तो कभी ऊपर दिखाई पड़ रहे है। यह चंचलगमना अभिसारिका रमणी के पीन ऊरुओं के सदृश दीख रहे है।(५८)

बिथिर—अस्थिर, चंचल; पुळीन—बालुकाप्रदेश, रूपकालंकार। (५८)

बिस्वरे क्रीड़े हंसश्रेणी। बान्धिछि निःस्वन किंकिणी। ५९।

सरलार्थ—नदी मे हंसों की श्रेणियाँ निःशब्द में (चुपचाप) क्रीड़ा कर रही है, मानो अभिसारिका ने कमर में शब्दहीन करधनी बान्धी हो।(५९)

बिस्वरे—निःशब्द से; निःस्वन—स्वनहीन; किंकिणी—करधनी (उत्प्रेक्षा)। (५९)

बारिजनेत्रे भृंग खेळा। बिळसे कि चञ्चळ डोळ। ६०।

सरलार्थ—नदी मे विकसित कमल के फूलों पर भौरे मंडरा रहे हैं, मानो अभिसारिका के नेत्र-पद्मों में चचल पुतलियाँ-रूपी भौरे विहार कर रहे है। (६०)

बारिज-नेत्रे—कमल-नेत्रों में; भृंग—भौंरे; डोळा—पुतलियाँ; (उत्प्रेक्षा)।(६०)

बश घनरसरे अति। बुड़ाइ कूळ सदा गति। ६१।

सरलार्थ—यह नदी बहुत जल से भरपूर होकर दोनों कूलों (किनारो) को लांघती हुई सदा गति कर रही है, मानो अभिसारिका नायिका घने शृंगाररस से अतिशय वशीभूत होने के कारण कुल-मर्यादा को लांघकर विट-पुरुप (प्रेमी) के निकट गमन कर रही हो। (६१)

घनरस—घना शृंगाररस, बहुत जल; कूल—किनारे, (कुल)-वंश; (श्लेष) (६१)

बिटपीमाने वेनिपाशे। बिरोध किपाँ करिबे से। ६२।

सरलार्थ—जब अभिसारिका संकेतस्थल को चलती है, उसके दोनों ओर स्थित विटपी (कामुक) रमणियाँ उसे मना नही करती है। उसी

तरह नदी के दोनों किनारों पर स्थित विपटी-समूह नदी की गति का प्रतिरोध नही करते। वे किसलिए ऐसा विरोध करते ? (६२)

विटपीमाने—दुश्चरित्रा रमणियाँ, वृक्षसमूह; किपाँ—क्यों,किसलिए; (श्लेष) (६२)

विविध गोत्र द्विजे कहि। बोलाउ गउतमी तुहि। ६३।
वहुत रस-पूर्ण भुलु। बार्द्धि लवणीया न भाळु। ६४।

सरलार्थ—उस नदी-तीरस्थ वृक्षसमूहो पर बैठे नानाजातियों के पक्षियों ने विविध-गोत्र-धारी ब्राह्मणों के रूप मे भावावेश मे कहा, "अयि गौतमि नदि ! तुम गौतम ऋषि की कन्या हो। सुतरा ब्राह्मण-कन्या हो। तुम वहुजलरूपी शृंगाररस से उन्मत्ता होकर सागररूपी विटपुरुष से मिलती हो। उसका जल नमकीन है, इसका जरा भी विचार नही करती हो ! (अपना मधुर जल समुद्र के लवणाक्त जल से क्यों मिला रही हो ?) (६३-६४)

विविध गोत्र—नाना जातियों के (पक्षियों के पक्ष में), नाना गोत्रो के (ब्राह्मणों के पक्ष मे); द्विज—पक्षी, ब्राह्मण (श्लेष); वार्द्धि—वारिधि, समुद्र। (६३-६४)

विहिला क्षणि तारे प्रीति। विध्वंस हेब स्वादु जाति। ६५।

सरलार्थ—उसके सहित प्रीति करते ही, तुम्हारे स्वादु गुण का ध्वंस (लोप) हो जाएगा। अर्थात् तुम्हारे कुल के सम्मान का लोप हो जाएगा। (६५)

स्वादु-जाति—अपनी जाति का गुण, स्वादुता, मधुरता। (६५)

वर्ज्जना कि घेनिब तार। बिभेद्य काम शराळिर। ६६।

सरलार्थ—अभिसारिका का हृदय काम-शरों से बिद्ध हुआ रहता है। इसलिए वह किसी का निषेध-वाक्य नही मानती। यहाँ पर गोदावरी नदी-रूपिणी अभिसारिका के हृदय मे हससमूह तैर रहे है, मानो मदनशरों के रूप मे वे नदी का हृदय विद्ध कर रहे है और यह नदी पक्षियों-रूपी ब्रह्मणों का निषेध न मानकर अवाध गति से वहती जा रही है। (६६)

वर्जना—निषेध; कामशराळिर—कामशर-समूह, हंसपक्षी। (६६)

बुधे रूपकश्ळेष मिशा। बुझ कविरचना भाषा। ६७।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! रूपक और श्लेष—इन दोनों अलंकारो से युक्त इस कवि-रचना (कवित्व) की भाषा को समझो। (६७)

बुधे—हे पण्डितो !; बुझ—समझो। (६७)

वढ़ाइ तोप बन पुणि। बिभर्त्ति तरु कि तरुणी। ६८।
वन्ध्या नुहेंन्ति फळवन्ती। वोधि समये कान्तप्रीति। ६९।

सरलार्थ—पञ्चवटी वन नाना प्रकार के वृक्षों से भरपूर होकर दर्शकों का मन बहला रहा है। उन्हें देखने से प्रतीत हो रहा है मानो वे प्रत्येक एक-एक तरुणी रमणी है। क्योंकि तरुणियाँ ऋतु के समय स्व-स्व पतियों को रतिदानपूर्वक उनका सन्तोष-विधान करती है और इस प्रकार वन्ध्या नहीं होतीं अर्थात् फलवती होती है। उसी तरह ये तरु-रूपिणी तरुणी-समूह पुष्पिता होकर पति-वसन्त को प्रीतिदानपूर्वक वन्ध्या नहीं हुई हैं, अर्थात् फलवती हुई हैं। तात्पर्य यही है कि वसन्त ऋतु के समागम में तत्रस्थ वृक्षसमूह फूले-फले है। (६८-६९)

विभर्त्ति—विशेष रूप से पूर्ण; तरु—वृक्ष; तरुणी—युवती; वन्ध्या—बाँझ; बोधि—प्रबोधना या सन्तोष देकर; समये—ऋतु के समय; कान्त—पति। (६८-६९)

व्यभिचारी पराय शोहि। वल्ली धव समीपे रहि। ७०।

सरलार्थ—लताएँ जारपतियों के रूप में स्थित वृक्षों के समीप व्यभि-चारिणी स्त्रियों की तरह सुशोभित हो रही है। (७०)

पराय—तरह; वल्ली—लताएँ; धव—पति (यहाँ जार पति)। (७०)

बञ्चाइ कुसुम विकाशे। बिळापे से मधुरे रसे। ७१।

सरलार्थ—व्यभिचारिणी स्त्री रजस्वला होने के मिस अपने पति को प्रतारित करती है और विशेष आलाप करनेवाले दूसरे मद्यप जार पुरुष में रस लेती है। उसी तरह लता अपने पुष्पिता होने के समय अपने पति वसन्त को प्रतारित करती है और गुंजन करते हुए भौरे से रसकर उससे प्रीति करती है। (७१)

बञ्चाइ—ठगकर, प्रतारित करके; कुसुम विकाशे—पुष्पवती या रजस्वला होने के मिस (व्यभिचारिणी के पक्ष मे), पुष्पिता होने के समय (लता के पक्ष में); बिळापे—विशेष आलाप करनेवाले (मद्यप जार पुरुष के पक्ष में), गुंजन करते हुए (भौंरे के पक्ष में); मधुपे—मद्यप जार पुरुष में, भौंरे में। (७१)

बास पवन दण्डपाशी। बळे हरइ बोलि दोषी। ७२।

सरलार्थ—यदि व्यभिचारिणी नारी की व्यभिचारिता राजा को मालूम हो जाय, तो राजा वलात् उसके दोष के दण्ड-स्वरूप उसका बास (गृह आदि सपत्ति) लूट लेता है; उसी प्रकार पवनराजा लता की व्यभिचारिता जानकर उसके फूलों से वास (सुगन्ध) जबर्दस्ती से हरण कर रहा है। (७२)

बास—गृह ... फूलों की सुगन्ध; दण्डपाशी—राजा ... प्रयोगपूर्वक। (७२)

बिद्य चन्दन नष्ट दूती। बिहे से भुजंगरे प्रीति। ७३।

सरलार्थ—नष्टदूती अपनी सखी के कार्य के बहाने जाकर भुजंग (विटपुरुष) के साथ स्वय रति करती है। उसी तरह चन्दन वृक्ष भुजंग (सर्प) के सहित प्रीति करता है। (७३)

नष्टदूती—जो दूती सखी के कार्य के बहाने जाकर जार पुरुष के सहित प्रीति-साधनपूर्वक अपना स्वार्थ सिद्ध करती है; भुजंग—विटपुरुष, साँप। (७३)

बिदेशी प्राय पशुपन्ति। बिगत आगत हुअन्ति। ७४।

सरलार्थ—उस वन मे वास करते हुए पशुसमूह विदेशियों की तरह जाया-आया करते है। (७४)

पशुपन्ति—पशु-समूह। (७४)

बिदित गुळ्म स्वयंदूती। बिश्राम एठारे करन्ति। ७५।
बसि ग्रा कपोत सस्वन। वचन करि ताहा घेन। ७६।

सरलार्थ—क्षुद्र वृक्षसमूह स्वयदूतियो का काम करते है। अर्थात् स्वयं-दूती जैसे विदेशी पुरुषो से कहती है कि 'यहॉ पर विश्राम करो', उसी प्रकार क्षुद्र वृक्ष सब कबूतरो की बोली के मिस विदेशी राहगीरो से यहाँ तरुओ के तले विश्राम करने के लिए बोल रहे है। यह ग्रहण करो अर्थात् समझो। (७५-७६)

गुळ्म—छोटे पेड़; स्वयंदूती—अपने स्वार्थ-साधन के निमित्त जो नायिका स्वयं दूती का काम करती है; सस्वन—बोली के साथ; घेन—ग्रहण करो। (७५-७६)

बिहंग स्तन तरु झळि। बिघञ्च सञ्च पत्नाबळी। ७७।

सरलार्थ—उन्ही छोटे पेड़ों पर बैठी हुई चिड़ियॉ स्वय-दूती नायिका के स्तनो तथा उनके घने पत्तो के समूह कस्तूरी-गैरिकादि के चित्रो के सदृश शोभा पा रहे है। (७७)

घञ्च—निविड़, सान्द्र, घने; पत्रावळी—कस्तूरी, गैरिकादि के चित्र। (७७)

बिनिन्द्य दृढ़ क्रोड़ास्पद। बिकाशे सुमना प्रमोद। ७८।

सरलार्थ—उक्त प्रत्येक वृक्ष के मध्य मे स्थित प्रशस्य दृढ क्रोड़स्थल अर्थात् पत्राच्छादित वृक्षकुञ्ज स्वय-दूती की गोद की तरह प्रतीत हो रहा है। वे वृक्ष पुष्प प्रकाश कर रहे है मानो स्वयदूती आनन्द प्रगट कर रही हो। अर्थात् क्षुद्र वृक्ष सब फूले है। (७८)

विनिन्द्य—विगत निन्दा जिसकी, प्रशंसनीय; सुमना—फूल, आनन्द। (७८)

विधान करिण आश्रम । वञ्चे लक्ष्मण सीता राम । ७९ ।
बासवरे ये प्रशंसिता । बिख्यात जटायु नाम ता । ८० ।
बिवस्वानवंशीरे प्रीति । वैदेही रक्षणे सम्मति । ८१ ।
बयाशी पदे छान्त प्रान्त । वीरवर भञ्जर कृत । ८२ ।

सरलार्थ—इस तरह विविध शोभाओं के आधार पचवटी-वन में राम, लक्ष्मण तथा सीता तीनों ने आश्रम-निर्माणपूर्वक निवास किया। उक्त वन में रहे और इन्द्र के द्वारा प्रशसित जटायु नामक पक्षी ने सूर्यवंशी रामचन्द्रजी से वन्धुता स्थापित की और सीताजी की रखवाली करने के लिए सम्मति दी। वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द की वयासी पदों में रचना की। (७९-८२)

विधान-करिण—निर्माण करके; वञ्चे—वास करने लगे; बासवरे—इन्द्र के द्वारा; ये—जो; विवस्वानवंशी—सूर्यवंशी अर्थात रामचन्द्र; वैदेही—सीता; रक्षणे—रखवाली करने के लिए। (७९-८२)

॥ इति द्वाविंश छान्द ॥

त्रयोविंश छान्द

राग—चिन्तादेशाख

वैदेही श्रीराम किसे करिणी करी ।
विनोद नदीरे कुञ्जकुटीरे करि । १ ।

सरलार्थ—श्रीराम तथा सीता कभी गोदावरी नदी मे, तो कभी वन के कुञ्ज मे क्रीड़ा-कौतुक करते रहे; मानो हाथी और हथनी दोनों नदी तथा कुञ्ज मे क्रीड़ा कर रहे हो । (१)

करीकरिणी—हाथी और हथनी; विनोद—क्रीड़ाकौतुक; उत्प्रेक्षालंकार । (१)

विह्वळ मानस प्रेममद आळसा ।
विराजित पद्म करे पराग भूपा । २ ।

सरलार्थ—हाथी और हथनी दोनों प्रेममद से मस्त तथा आलसी होकर नदी में क्रीड़ा करते समय अपनी-अपनी सूड-रूपी कर से पद्मफूल धारण किये शोभा पाते है और कुञ्ज मे क्रीड़ा करते समय पुष्परज से भूपित होते है । उसी तरह रामसीता दोनो प्रेममद से उन्मत होकर आलस्ययुक्त हुए है, पद्म-तुल्य करो से सुशोभित हो रहे है; कुञ्ज के मध्य क्रीड़ा करते समय पुष्परेणुओ से भूपित हुए है । (२)

विह्वळ—मस्त, उन्मत्त; आळसा—आलसी; पद्मकर—पद्मतुल्य हाथ; पराग—पुष्परेणु; भूपा—भूपित; उपमालंकार । (२)

विभीते वनविहार लका - भञ्जने ।
वसति शिळामानरे अति रञ्जने । ३ ।

सरलार्थ—हाथी व हथनी भोजन के निमित्त वृक्षशाखाओं को तोड़ जंगल मे निर्भय विहार करते है; उसी तरह ये दोनों लकापुर के ध्वसार्थ भय-शून्य हृदय से वन मे विहार कर रहे है । हाथी और हथनी दोनो अत्यन्त सुख से पत्थरो पर वास करते है । ये दोनो भी अति अनुराग-सहित पत्थरो पर वैठते है । (३)

लंका—वृक्षशाखा, लंकापुर; रञ्जने—अनुराग के सहित; (श्लेष) । (३)

वुलि आसि सूर्पणखा नामे राक्षसी ।
वृक्षान्तरे रहि चाहिँ होइला तोपि । ४ ।

सरलार्थ—एक दिन सूर्पणखा नाम्नी राक्षसी घूमने के लिए उस वन में आयी थी। वह वृक्ष के अन्तराल मे खड़ी सीता-राम को देखकर सन्तुष्ट (प्रसन्न) हुई। (४)

वृक्षान्तरे—पेड़ की ओट मे, वृक्ष के अन्तराल मे। (४)

वणा धइर्य्य होइ से राम वशरे।
विचारइ पुनरुक्ति - वदा - भासरे। ५।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र के दर्शन से उनकी प्रीति-कामना करके सूर्पणखा का धैर्य-लोप हो गया। उसने पुनरुक्तिवदाभास अलंकार में मन में विचार किया— (५)

पुनरुक्तिवदाभास—शब्दालंकार-विशेष, जिसमें शब्द सुनने से तो पुनरुक्ति-सी जान पड़े, वास्तव में पुनरुक्ति न हो और पुनरुक्त शब्द का स्वतन्त्र अर्थ में प्रयोग हुआ हो। (५)

विहि बिधि मदन कन्दर्प करिण।
वर कान्त पति मोर हुअन्ते पुण। ६।
वासर दिवस निशि लव करन्ति।
बिधूनन रति करि मति तोषन्ति। ७।

सरलार्थ—उसने सोचा, "विधाता ने शायद कन्दर्प से (उसके मद-लोप,—'मद न'—के निमित्त अर्थात् उसके सौन्दर्य-गर्व के लोप के लिए) मदन का विधान अर्थात् निर्माण किया है, जो इस सुन्दर रूप मे प्रगट हुआ है। ये परम सुन्दर पुरुष अगर मेरे पति होते, तो विपरीत रति के द्वारा अपने मन को सन्तुष्ट करती और गृह में वासपूर्वक दिनरात को एक मुहूर्त्त के समान बिता देती।" (६-७)

विहि—विधान करके; वर कान्त—परम सुन्दर पुरुष; वासर—गृह में वास करके; दिवस-निशि—दिन-रात; लव—एक मुहूर्त्त, एकक्षण; विधूनन—कंपन, विपरीत। (६-७)

वाळीकि नाहिँ भुवने लोकरे बळि।
वर्णे काञ्चन कनक सुवर्ण दळि। ८।

सरलार्थ—सीता का रूप देखकर उसने सोचा, "शायद इस रमणी से बढ़कर सुन्दरी त्रिभुवन मे नहीं है। क्योंकि इसकी देहकान्ति कनक-चम्पा तथा सुवर्ण को कुचल डालती है अर्थात् इसका गौरवर्ण कनक-चम्पा तथा सुवर्ण के वर्ण को धिक्कारती है। (८)

वाळीकि—रमणी सीता से; बळि—बढ़कर, अधिक; कनक कांचन—कनक चम्पा-फूल; दळि—कुचल देती है। (व्यतिरेक) (८)

विधु अब्ज चन्द्र आदरश निन्दन ।
बदन आन न लक्ष्य शोभासदन । ९ ।

सरलार्थ—"इसका वदन समस्त प्रकारों की शोभाओं का गृह है जो चन्द्र, पद्म तथा सुनिर्मल दर्पण की निन्दा करता है। उसके सहित तुलना के योग्य और कोई वस्तु है ही नहीं ।" (९)

विधु—चन्द्र; अब्ज—पद्म; चन्द्र आदरश—निर्मल दर्पण; वदन—मुख; आन न लक्ष्य—दूसरी वस्तु तुलनीय नही है; शोभासदन—शोभाओ का गृह; व्यतिरेक । (९)

बड़ शोभा रति अछि शम्बरपुरे ।
व्यय करिदेबा एहा ऊणा ता शिरे । १० ।

सरलार्थ—"यह सच है कि सुन्दरीशिरोमणि रति शम्बरपुर मे है। किन्तु सौन्दर्य मे इस स्त्री के न्यून भाग (अर्थात् पद आदि निकृष्ट अंगो) के सामने उसके मुख आदि उत्तमांगो को हम व्यय (न्योछावर) कर देंगे। अर्थात् रति के मुखादि उत्तमांग इस रमणी के पादादि निकृष्ट अंगों के साथ कदाचित् ही समान हो सकते है ।" (१०)

ऊणा—न्यून, छोटा । (१०)

बिभोगी एहार येउँ दिव्य पुरुष ।
विह्वळिब नाहिँ परा मोरे मानस । ११ ।

सरलार्थ—सूर्पणखा ने सोचा, "ये जो परमपुरुष इस सुन्दरी रमणी का उपभोग कर रहे है, वे मुझ जैसी असुन्दरी रमणी को भोग करने के लिए क्या अपना जी ललचाएँगे ?" (अर्थात् नही) (११)

विभोगी—विशेष भोग करनेवाले; दिव्य पुरुष—परम (अलौकिक) पुरुष; विह्वळिब नाहिँ—मस्त नही होगे, जी ललचाएँगे नही; (११)

बिचारिला भृंग पुणि माळती-स्नेही ।
बासंगे संग हुअइ सराग वहि । १२ ।

सरलार्थ—सूर्पणखा ने फिर विचार किया, "जैसे भौरा सुगन्धयुक्त मालतीपुष्प को प्यार करने पर भी गन्धहीन बासा पुष्प को अत्यन्त अनुराग से चुम्बन करता है, उसी तरह ये पुरुष इस स्त्री को भोग करते हुए भी मेरे प्रति अवश्य अनुरक्त होगे ।" (१२)

भृंग—भौरा; माळती—सुगन्धित फूलोंवाली लता विशेष; वासंगे—बासा (अड़ूसा) फूल के साथ; सराग—अनुराग । (१२)

बिधाताकु स्तुति कला कर सुदशा ।
वसाइला प्राये चन्द्रकोळरे शशा । १३ ।

सरलार्थ—सूर्पणखा ने विधाता की स्तुति करते हुए कहा, "हे विधाता! मुझे उत्तम दशा हो, ताकि चन्द्र के शशा (खरगोश) को अपनी गोद में बैठाने की तरह ये पुरुष मुझे अपनी गोद में धारण करे । (१३)

वसाइला प्राये—बैठाने की तरह; शशा—खरगोश । (१३)

बन्ध संयोग एहार मोर होइले ।
वश होइ गोड़ाइब मोहर तुले । १४ ।

सरलार्थ—अगर इनसे मेरा रतिवन्ध से संयोग हो, तो ये मेरे संग वशीभूत होकर अवश्य मेरा पीछा करते रहेंगे । (१४)

गोड़ाइब—पीछा करेंगे; मोहरि तुले—मेरे संग । (१४)

वेश्या संगति होइले रसिक पुंस ।
बळाइ कि स्वकीयारे से अभिळाष । १५ ।
बश करि प्रेमे चित्त नाशिबि भीरु ।
बिरोधोक्ति न भाषिबे अनुरोधरु । १६ ।

सरलार्थ—यदि रसिक पुरुष को वेश्या की संगति मिल जाय, तो वह स्वकीया (अपनी विवाहिता पत्नी) के प्रति क्या कामाभिलाष पोषण करता है ? (अर्थात् नही ।) उसी तरह मेरे साथ प्रीति करने पर ये (राम) अपनी पत्नी को फिर नही चाहेंगे । प्रीतिदान से अगर मैं इनके चित्त को अपने वश कर लूँ और फिर इनकी पत्नी का विनाश कर दूँ, तो उपरोधवशतः (मुलाहजावश) वे मुझसे कटु कथा नही बोलेंगे । (मेरे प्रति इनका प्रेम प्रगाढ हो जाने पर इनकी पत्नी को मै मार दूँ, तो वे जरा भी इसका विरोध नहीं करेंगे ।) (१५-१६)

पुंस—पुरुष; भीरु—स्त्री को; विरोधोक्ति—कटु-कथा; अनुरोधरु—मुलाहजा-वशतः; (१५-१६)

बिहिला सुन्दर रूप एमन्त भाळि ।
बिनाशिब योगीयोग चाहिँले ढाळि । १७ ।

सरलार्थ—यह विचार करके उस सूर्पणखा ने सुन्दर रूप धारण किया । वह नेत्र ढालकर कटाक्षपात कर दे, तो योगीजनों का योग नष्ट हो जायगा । अर्थात् उसकी तिरछी चितवन से योगियों का ध्यान टूट जाएगा । (१७)

वैरवुद्धि लोक जननीरे उद्भव ।
विष्टि अनुकूळे युक्त अशुभ हेव । १८ ।

सरलार्थ—जो मनुष्य अपनी माता से शत्रुता का आचरण करता है, उसके अनुकूल मे विघ्न (अमगल) युक्त होता है, इसलिए उसको अशुभ फल मिलता है । उसी रूप मे इस सूर्पणखा ने जगन्माता सीता से शत्रुता की और इस तरह अनुकूल मे अशुभ घटना का सूत्रपात किया । अतएव उसका अमगल सुनिश्चित है । (१८)

विष्टि—विघ्न, । (१८)

वाहार तरु अन्तरुँ गेलाइ होइ ।
बाड़े नासिकार देउअछि फुलाइ । १९ ।

सरलार्थ—सूर्पणखा वृक्ष के अन्तराल से दुलार पूर्वक निकलकर नाक की एक नथ फुला रही है । (१९)

तरुअन्तरु—पेड की ओट से; गेलाइ होइ—लाड़ली होकर; वाड़े—एक नथने को । (१९)

बसणी[1] टेकि देवार कि मनोरम ।
वसणि[2] करिव युवा चित्तरे प्रेम । २० ।

सरलार्थ—जब वह नथ फुला देती है, उसकी नकवेसर ऊपर उठ-कर क्या ही सुन्दर दीखती है ! वह देखकर युवको के चित्तो मे प्रेम अवश्य वास करेगा । (२०)

वसणी[1]—नकवेसर; टेकि हेवार—उठकर, उचककर; वसणि[2]—वसति पर-स्त्री-वास । (२०)

(विशेष सूचना—यही से २० वे पद तक आद्ययमक अलंकार है ।)

वाहि खडु झाड़ि मन-मीनकु नेइ ।
वाहि कुच-कुवेणीरे थोइ लोड़इ । २१ ।

सरलार्थ—जिस तरह मछुआ जाल की वाहु (छोर) को झाड़कर उसमे से मीनो (मछलियो)को लेकर झावे मे रखता है, उसी तरह सूर्पणखा कगनो तथा वाजूवन्दो से भूषित वाहुओं को उठाये(झाड़ देने से) युवा पुरुषो के मन-मीनो को लेकर कुच-रूपी झावे मे रखना चाहती है । (२१)

वाहि—वाँही; खड़ु—कंगन; कुच—स्तन; कुवेणी—मत्स्यधानी, झावा; थोइ—रखना; लोड़इ—चाहती है । (२१)

बान्धवी जंघरु चेळ चाळिवा रंग ।
बन्धन से स्तम्भे इच्छे मन-मातंग । २२ ।

सरलार्थ—असती सूर्पणखा अपनी जाँघोंसे कभी-कभी वस्त्र हिला देती है। इस रंग से प्रतीत हो रहा है, मानो वह अपनी जाँघों-रूपी स्तंभों से युवकों के मनों-रूपी हाथियों को बान्धना चाहती है। (२२)

बन्धकी—असती; चेळ—वस्त्र; मन-मातंग—मनरूपी हाथी। (२२)

बिशिष्टे भुरु कंपाइ डोळा खेळाइ।
बिशिखकमाणे सन्धि बिन्धि न देइ। २३।

सरलार्थ—वह सूर्पणखा जब विशेप रूप से अपनी भ्रूलताओं को हिलाकर अपनी पुतलियों को नचा रही है, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो उसने पुतलियों-रूपी बाणों को भ्रूलताओं-रूपी धनुषों पर सन्धान ही करके, मानो बिना मारे रखा है। (२३)

बिशिष्टे—विशेष रूप से; डोळा—पुतलियाँ; बिशिख—बाण; कमाणे—धनुष पर। (२३)

बदाउछि मदन-समरे मुँ एक।
बदाउभाले टेकिछि खड्गतिळक। २४।

सरलार्थ—उसके भाल-पट पर तिलक-रूपी तलवार सुशोभित है। उस तिलक-रूपी तलवार की भंगी से मानो वह जता रही है कि मदन-समर (कामयुद्ध) मे मैं ही एक मात्र रतिप्रवीणा नायिका हूँ, इसलिए भालपट-रूपी फलक पर तिलकरूपी तलवार टिका रखी है। (२४)

बदाउछि—कहा रही है; बदाउ भाले—भालपट रूपी फलक पर; टेकिछि—उठँगा या टिका रखी है। (२४)

वळा डेंगुरा देइ कि अपसरसा।
बळात्कारे शोभागुणे छड़ाइ रसा। २५।

सरलार्थ—यह जनाने के लिए कि मैंने अपनी शोभा के गुणों से अप्सराओं को जीतकर जबरदस्ती उन्हे पृथिवी से भगाकर स्वर्ग मे रख दिया है, मानो वह पाजेवों के रूप में ढिंढोरावाद्य दे रही है। (२५)

वळा—पाजेव; डेगुरा—ढिंढोरा; रसा—पृथिवी। (२५)

बोलइ अरण्यवासि किपाॅ सुन्दर।
बोळ भस्म अंगे शिरे जटा त धर। २७।

सरलार्थ—राम के समीप उपस्थित होकर सूर्पणखा ने कहा, "हे सुन्दर! किसलिए तुम यो वनवासी हुए हो? अपने शरीर पर क्यों राख मले हुए और शिर पर जटा धारण किये हुए हो?" (२७)

किपाॅ—क्यों, किसलिए?; बोळ—मले हुए हो; भस्म—राख। (२७)

बह काण्ड कोदण्ड क्षत्रिय पराय।
बहन कथन करि छेद सशय। २८।

सरलार्थ—फिर उसने पूछा, "इस वेश मे तुम किस अभिप्राय से क्षत्रिय के समान धनुशर धारण किये हुए हो? मेरे इन प्रश्नों के उत्तर-स्वरूप कारण सब शीघ्र ही बताकर मेरे सन्देहों का नाश करो। (२८)

बहन—शीघ्र ही। (२८)

बधूए सगे घेनिछ रसिकपणे।
बधुछ मृग गण्डक पितृ तोषणे। २९।

सरलार्थ—"फिर क्या? रसिकपन से अपने साथ एक स्त्री को रक्खे हुए हो! और भी पितृपुरुषो के सन्तोष-विधानार्थ हिरनों, गडको आदि पशुओ का वध कर रहे हो!" (२९)

बीर सकळ प्रकाशि वने आसिबा।
बिरसभावे भाषिस शुण हे युवा। ३०।

सरलार्थ—उस रमणी के ऐसे प्रश्नो के उत्तर मे वीर श्रीराम ने अपने वन में आने के सारे कारण और विवरण उसे कह सुनाये। वस सब सुनकर सूर्पणखा खिन्न होकर बोली, "हे युवक, मेरी बात सुनो। (३०)

बशीभूत होइ तव शोभाकु चाहिँ।
बसिबाकु तुम्भ कोळे आसिछि मुहिँ। ३१।

सरलार्थ—सूर्पणखा ने कहा, "मै तुम्हारे सौन्दर्य से वशीभूत होकर तुम्हारी गोद मे बैठने के अभिप्राय से आयी हूँ। (३१)

बसिबाकु—बैठने के लिए; तुम्भ कोळे—तुम्हारी गोद में; आसिछि—आयी हूँ। (३१)

वन्धन करि भुजरे जाणइ स्वतः।
बन्धरे ये सुखचक्र पुरुपायित। ३२।

सरलार्थ—"भुजबन्ध-प्रमुख आठ प्रकारों के आलिंगन तथा चौसठ बन्धों में श्रेष्ठ-सुखप्रद चक्रबन्ध तथा विपरीत रतिबन्ध मुझे भली-भाँति मालूम है। (३२)

पुरुषायित—विपरीत रति। (३२)

बिश्रवा - नन्दिनी मुँ ये कुळरे साधु।
बिस्रबाइ ओष्ठु पिअ मधुर मधु। ३३।

सरलार्थ—"इस कारणवश कि मै नीच जाति हूँ, मुझपर सन्देह मत करना। मै सद्‌वशजात विश्रवा ऋषि की पुत्री हूँ। अतएव मेरे अधरों से सुमिष्ठ मधु चूसकर पान करो। (३३)

बिस्रबाइ—झराकर। (३३)

बत्सजात हरे देले कमळकर।
बत्सळे से फळे हेब राजा स्वर्गर। ३४।

सरलार्थ—"मेरे वक्षजात स्तनोरूपी शम्भुओं पर तुम यदि सस्नेह अपने कर-कमल अर्पण करोगे, तो उसके फलस्वरूप तुम स्वर्ग में राजा बनोगे। अर्थात् मेरे स्तनो पर हाथ डालने से तुम स्वर्ग का सुख अनुभव करोगे।(३४)

बत्सजात—वक्ष से उत्पन्न; हरे—शम्भु (ओं) पर; बत्सळे—सस्नेह। (३४)

बार बेनिपुरे राजा मोर सोदर।
बारता पाइ होइवे हरषभर। ३५।

सरलार्थ—"मेरे सहोदर भाई (रावण) चौदह भुवनो के राजा है। जब वे यह समाचार पाएँगे, वे बड़े ही हर्षित होंगे। सुतरा तुम्हारा अधिक मंगल होगा। (३५)

बारबेनिपुरे—बारह+दो (बेनि) = चौदह भुवनो में। (३५)

बिरञ्चि लेखिछि भालपटे तुम्भर।
बिरचिब नन्दनवनरे विहार। ३६।

सरलार्थ—"तुम यह वन त्यागकर इन्द्र के नन्दनकानन में विहार करोगे। विधाता ने तुम्हारे भाग्य मे यह लिखा है। (३६)

बिरञ्चि—विधाता ने (३६)

विनोद येउँ रामारे करिब मति।
बिनोयी नोहुँ धरिबि मुँ सेहि मूर्त्ति। ३७।

सरलार्थ—जब भी तुम जैसी रमणी से क्रीड़ा करना चाहोगे, तब ही मै तुम्हारी विनती के बिना, वैसी मूर्त्ति धारण करूँगी ।" (३७)

विनोयी नोहुँ—तुम्हारी विनती के विना । (३७)

बोइले रघुनन्दन रे रामावर ।
व्रत आचरण एकपत्नी मोहर । ३८ ।

सरलार्थ—यह सुनकर श्रीराम ने कहा, "अरी रमणीश्रेष्ठ ! मैंने एक-पत्नीव्रत का ग्रहण किया है । मुझे दूसरी पत्नी की आवश्यकता नही । (३८)

रे रामावर—अरी रमणीश्रेष्ठ ! (३८)

बड़कुळे जात भूप-भगिनी तुहि ।
वृषस्यन्ति आचरण भल त नोहि । ३९ ।

सरलार्थ—"तुमने ऊँचे कुल मे जन्म ग्रहण किया, फिर राजा की बहन हो । तुम्हारा यह कामुकी का-सा आचरण तो अच्छा नही । (३९)

वृषस्यन्ती—कामुकी, व्यभिचारिणी । (३९)

वास्तोष्पति अधिकारे कि कार्य्य मोर ? ।
बहि न पारे अनेक नेत्र शरीर । ४० ।

सरलार्थ—"इन्द्र के अधिकार मे मुझे कोई प्रयोजन नही । परायी स्त्री (अहल्या) के प्रति आसक्त होकर उन्होने अपने शरीर मे सहस्र नेत्र धारण किये है । किन्तु मेरा शरीर ऐसे अनेक नेत्र धारण नही कर सकता । (४०)

वास्तोष्पति—इन्द्र । (४०)

बिटभाव लम्पटरे तेमन्त सेहि ।
विअर्थे शिळास्वरूप न बह तुहि । ४१ ।

सरलार्थ—"इन्द्र विट भाव से वैसे लम्पट होकर परायी नारी अहल्या के प्रति आसक्त होने की वजह से ऐसे सहस्रनेत्र बने और अहल्या भी शिला बनी । तुम व्यर्थ ही अहल्या के समान शिलारूप मत बनो ।" (४१)

तेमन्त—वैसे, उसी प्रकार । (४१)

विनाशन मो वल्लभ भाषे चपळ ।
विनाशनरे अमृत करुँ त ढाळ । ४२ ।

सरलार्थ—राम की बात सुनकर सूर्पणखा ने चंचलता से कहा, "अहल्या के पति थे ही। इसलिए उन्होने शाप देकर पत्थर बना दिया। मेरे पति का तो विनाश (देहान्त) हो गया है। तो फिर मुझे अभिशाप देकर कौन पत्थर बनावे ? तुम अपने हाथ मे आये हुए अमृत का पान किये बिना हाथ से इस तरह क्यों फेके दे रहे हो ? अर्थात् अमृत-तुल्य मुझे भोग किये विना इस तरह क्यों त्याग रहे हो ? (४२)

विनाशन—विनष्ट, मृत; बल्लभ—स्वामी, पति; चपळ—चञ्चलता से; विनाशनरे—बिना भोजन के, खाये बिना; (आद्यमक)। (४२)

बड़ मानवीरु घेन दानवी वाळी।
बसाइ हृदय तुळपात्ररे तुळि। ४३।
बिशेषे रतिरेके होइब बिचार।
वणिक भावरे तहिँ बणिज कर। ४४।

सरलार्थ—"तुम अपने मन में समझो कि मानवी से दानवी स्त्री अधिक है। जिस तरह सोनार तराजू पर दो किस्मों के सोने को वजन करके अधिक रतीविशिष्ट (अर्थात् अधिक वजन के) सोने को अधिक मूल्य से बेचकर वाणिज्य करता है, उसी तरह तुम एक वनिये के नाते अपने हृदय-रूपी तराजू पर मुझे और अपनी मानवी पत्नी को वज़न करो, ताकि यह अवगत हो सकते हो कि हम दोनो मे से कौन अधिक रतिविशिष्टा अर्थात् रतिनिपुणा है।" (४३-४४)

बाळी—स्त्री; तुळपात्ररे—तराजू पर; तुळि—वजन करके; रति रे—वजन में, रतिशास्त्र में (श्लेष); बणिक भावरे—वनिये के नाते। (४३-४४)

बिष्णुपदी जळ केड़े निर्मळ य़ोषा।
बारिद आविळ जळे चातक आशा। ४५।

सरलार्थ—यह सुनकर प्रभु ने उत्तर दिया, "अरी रमणि ! गंगाजल कितना सुनिर्मल है ! फिर भी चातक पक्षी उसकी ओर ताकता नही और मेघ का आविल (गदा) जल पीने की आशा करता है। उसी प्रकार मै तुम जसी रतिनिपुणा को त्यागकर इसी मानवी स्त्री को उपभोग करना चाहता हूँ।" (४५)

विष्णुपदी—गंगा; य़ोषा—अरी रमणि !; बारिद—मेघ; आविळ—पंकिल। (४५)

बह्निकणा गिळा चकोर हे नागर।
विधुकर स्वादु घेनि लोभी तहिँर। ४६।

सरलार्थ—श्रीराम की निराशा-भरी वाणियाँ सुनकर सूर्पणखा ने कहा, "हे नागरवर ! चिनगारियो को निगलनेवाला चकोरपक्षी ज्योत्स्ना

का स्वाद पाकर उसके प्रति अत्यन्त आसक्त होता है। उसी तरह तुम यदि मुझ से रतिसुख का अनुभव करोगे, तो मेरे प्रति अवश्य ही आसक्त होगे।" (४६)

बह्निकणा—स्फुलिंग, चिनगारी; विधुकर—ज्योत्स्ना, चन्द्रकिरण। (४६)

बिभोगी　असुरी　ए　विज्ञान　न　कर।
विष्णु　वश　जळन्धर　मनोहारीर। ४७।

सरलार्थ—उसने आगे कहा, "यह समझकर कि मैं एक असुरी हूँ, सुतरां उपभोग्या नही, मेरे प्रति तुच्छ ज्ञान मत करना। देखो तो सही। जलन्धर राक्षस की पत्नी वृन्दावती के प्रति विष्णु आसक्त हुए थे। अतएव तुम मेरे साथ प्रीति करो।" (४७)

विभोगी—विवर्जित भोग है जिसका, भोग की अनुपयुक्तता; विज्ञान—तुच्छ ज्ञान; जलन्धर-मनोहारी—जलन्धर का मन हरण करनेवाली उसकी पत्नी वृन्दावती के।(४७)

बिजे　कर　उठि　कुञ्जे　करिबा　केळि।
वक्ता　हेले　राम　अळघञ्चाळ　बाळी। ४८।

सरलार्थ—फिर उसने कहा, "तुम शीघ्र उठ आओ और कुञ्ज में विराजो। वहाँ हम दोनो केलि करेंगे।" सूर्पणखा का हठ सुनकर प्रभु बोले, "अयि बाले! हठ मत करो।" प्रभु आगे बोलने लगे— (४८)

अळघञ्चाळ—हठ (४८)

बक्राक्षि,　मनुजे　नाहिँ　अनुजे　चाहाँ।
बुध　से　मो　आज्ञा　कह　होइब　नाहा। ४९।

सरलार्थ—"अयि वक्रनयने! मेरे छोटे भाई की ओर देखो। उसके समान सुन्दर मनुष्य इस जगत् में नही। वह पण्डित है और तुम यदि उससे मेरी यह आज्ञा कहोगी, तो वह निश्चय ही तुम्हारा नाथ (पति) होगा।" (४९)

वक्राक्षि—अयि वक्रनयने!; मनुजे—मनुष्यो में; अनुज—छोटा भाई; बुध—पण्डित; नाहा—नाथ, पति। (४९)

बामलोचना　संगति　नाहिँ　ताहार।
बाम　नोहि　तत्काळ　करिब　स्वीकार। ५०।

सरलार्थ—प्रभु ने आगे कहा, "उसके साथ स्त्री नही। अतएव वह तुम्हारे प्रति प्रतिकूल नही होगा, वल्कि तुम्हारी बात सुनते ही तुमको स्वीकार कर लेगा।" (५०)

वामलोचना—स्त्री; वाम—प्रतिकूल; तत्काळ—उस समय ही, तुम्हारी बात सुनते ही। (५०)

बिलोकि से अलोकित सुन्दर रूप।
बेगे य़ाइ कामुकी लक्ष्मण समीप। ५१।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी के ऐसा कहने से कामुकी सूर्पणखा (लक्ष्मणजी का) अदृष्टपूर्व सुन्दर रूप देखती हुई शीघ्र ही लक्ष्मण के समीप गयी। (५१)

अलोकित—अदृष्टपूर्व, पहले न देखा गया। (५१)

विनयी होइ निकषातनयी कहि।
वक्तव्य तरुण रामसेवक मुहिँ। ५२।

सरलार्थ—निकषा की पुत्री सूर्पणखा ने लक्ष्मण से सारी बाते विनय से कहीं, तो युवक लक्ष्मण ने कहा, "मै श्रीराम का सेवक हूँ।" (५२)

तरुण—युवक। (५२)

ब्रह्माण्डे एक राजन भग्नी हेब कि।
बिहुँ भूमि-चाष-जात-कन्या सेवकी। ५३।
बसे रात्र य़ोगी प्राय निद्राकु तेजि।
बाहुड़ रे बरांगना मोते न भजि। ५४।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने आगे कहा, "अयि सुन्दरि! तुम समूचे संसार मे एक मात्र सर्वश्रेष्ठ राजा रावण की बहन हो। तुम यदि मेरी पत्नी बनो, तो भूमिकर्षण से उत्पन्न सीता की दासी होगी; क्योंकि मैं रामचन्द्रजी का दास हूँ और मेरी पत्नी होने पर तुम उनकी पत्नी सीता की दासी बनोगी। यह तुम-जैसी राजनन्दिनी के लिए अशोभनीय है। विशेषत: मै रात में निद्रा त्यागकर योगी के समान जग बैठता हूँ। अयि वरांगने! ऐसी स्थिति में मुझे भजे बिना तुम लौट जाओ।" (५३-५४)

मोते न भजि—मुझे भजे बिना, पति के रूप में मूझे पाने की प्रचेष्टा किये बिना। (५३-५४)

बाहुड़िला रोषे कामवशे भाषिता।
बिळोहु मोते य़ेमन्त नटय़ोषिता। ५५।

सरलार्थ—सूर्पणखा लक्ष्मण की बातों से क्रुद्ध होकर लौट गयी और कामातुर होकर श्रीराम से कहा, "तुम मुझे ऐसे भेज देते हो जैसे मैं एक वेश्या हूँ।— (५५)

बिळोहु—भेज देते हो; ये,मन्त—जैसे; नटयोषिता—वेश्या। (५५)

वीभत्सरसरे तव स्वाधीन-भर्त्ता ।
बियोग करिवि रखि न पारे धाता । ५६ ।

सरलार्थ—मै तुम्हारी इस प्रियतमा पत्नी को वीभत्स रस मे अर्थात् रक्त-मांसादि सहित भक्षणपूर्वक तुमसे उसका विछोह कराऊँगी । यहाँ तक स्वयं विधाता भी मेरे हाथो से उसकी रक्षा नही कर सकता ।" (५६)

वीभत्सरस—विकृत रस, नव रसो में से एक रस जिसे पढ़कर मन मे घृणादि भाव उत्पन्न होते है; तव—तुम्हारी; स्वाधीनभर्त्ता—प्रियतमा पत्नी, नायिका का एक भेद; जिस नायिका का नायक नायिका-वश होकर हमेशा नायिका के पास रहकर उसकी आज्ञानुसार काम करता है । (५६)

बढ़ाउँ हस्त सीतार नाश आशरे ।
बिहिलेखा देले ताकु भाषाश्ळेषरे । ५७ ।

सरलार्थ—यह कहकर सीता के विनाश के लिए अपने हाथ फैलाते समय रामचन्द्रजी ने श्लेषोक्ति मे एक पत्र लिखकर उसी के हाथ से वह लक्ष्मण के समीप भेज दिया । (५७)

श्लेष—एक शब्दालकार जिसमें एक शब्द का एक ही बार प्रयोग होता है और उसके भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते है । (५७)

बाबु नाक शिरी दान योग्य य़ोषाकु ।
बिहर कानन कर आलिंगनकु । ५८ ।

सरलार्थ—(सूर्पणखा ने जैसा समझा,) "हे आत्मीय[1] लक्ष्मण, स्वर्गसम्पद-दानयोग्या इस रमणी को आलिगन करके वन में विहार करो।" (अभगश्लेष) निगूढार्थ—हे आत्मीय[1] लक्ष्मण ! इस रमणी को नासिका-सौन्दर्य-छेदन-दण्ड मिलना उचित है । (अभगश्लेष) इस स्त्री को आलिंगन किये बिना इसके कानो तथा नाक की शोभा का विशेष रूप से हरण करो । अर्थात् इसकी नाक तथा कान काट दो । (सभंगश्लेष) (५८)

नाकशिरी—स्वर्गसुख, स्वर्गसपद; नासिका सौन्दर्य; दान—देना, छेदन । (अभंग श्लेष) । बिहर कानन कर आलिगनकु—आलिगन करो और कानन मे विहार करो । (अभंग श्लेष) बिहर कान न कर आलिगनकु—विशेष रूप से कानो को हरण करो और आलिगन न करना । (सभंग श्लेष) (५८)

बइदेही दासी ए कि घेनि होइब ।
बिधिरे इन्द्र-प्रशंसा तुम्भे पाइब । ५९ ।

सरलार्थ—(सूर्पणखा ने जैसा समझा,) यह रमणी सर्वप्रधान राजा की बहन है । किस लिए यह वैदेही (सीता) की दासी होगी ? तुम यदि

[1] मूल प्रति मे 'बाबू' शब्द है । बगला-ओड़िया मे प्रयुक्त अर्थ हिन्दी मे भ्रमोत्पादक होने से 'आत्मीय' शब्द प्रयुक्त किया गया है ।

इसको अपनी पत्नी बना लोगे, तो दैवबल से तुम इसी के ही हेतु स्वर्ग में इन्द्र बनकर प्रशंसा प्राप्त करोगे। (अभगश्लेष) निगूढार्थ—यह राक्षसी किस गुण से सीता की दासी होगी ? (अर्थात् यह दासी होने के भी योग्य नही।) तुम इसके साथ यदि प्रीति करोगे, तो मूर्खों में इन्द्र प्रशसा प्राप्त करोगे। अर्थात् मूर्खश्रेष्ठ कहलाओगे। (अभग श्लेष) (५९)

किघेनि—किस हेतु; विधिरे—दैव-बल से; विधीरे—मूर्खों मे। (५९)

बोध मति कामान्धे न बुझि हसिला।
वाहुड़ाइबे नाहिँ ये आउ भाषिला। ६०।

सरलार्थ—सूर्पणखा कामान्ध (कामातुरा) हो पड़ी थी। इस हेतु निगूढ़ार्थ समझ नही सकी। बाह्यार्थ से वह अपने मन को प्रबोधना देकर हँसी और बोली, "इस बार वे फिर मुझे लौटाएँगे नही। (६०)

बाहुड़ाइबे नही—नही लौटाएँगे। (६०)

बोले दाशरथि नाहिँ नाहिँ तक्षण।
बेनि उत्तर देबार पढ़ि लक्ष्मण। ६१।

सरलार्थ—दाशरथि रामचन्द्रजी ने उसी क्षण सूर्पणखा से कहा, "नही, नही।" अर्थात् सूर्पणखा की समझ मे राम ने इसके बारे मे उसे भली-भाँति अपनी सम्मति दी कि लक्ष्मण मुझे अब फिर नही लौटाएँगे, विल्कुल नही लौटाएँगे। परन्तु प्रभु का गूढ़ अभिप्राय यह था कि सूर्पणखा ने जो कहा कि 'नही लौटाएँगे', उसमे 'नही' शब्द नही है अर्थात् लौटाएँगे ही। प्रभु के दो अर्थोवाले पत्र में से लक्ष्मण ने प्रकृत निगूढार्थ समझकर तदनुरूप कार्य किया। (६१)

दाशरथि—दशरथ के पुत्र श्रीराम; बेनि—दो। (६१)

बाहु टेकि उठु तर्कि कार्य्य सफळ।
बाहे यति एहिक्षणि करिबे कोळ। ६२।

सरलार्थ—लक्ष्मण के दोनों बाहुओ को ऊपर उठाते देखकर सूर्पणखा ने उससे अनुमान लगाया कि इस घड़ी मेरा कार्य सफल हुआ। ये यति भले ही हो, मुझे अभी अपनी बाहुओ से गले लगाएँगे। (६२)

बाहे—बाहुओ से। (६२)

बाळ धरुँ विचारिला कर्णाट नारी।
बन्ध संयोग नायक-कुन्तळ धरि। ६३।
बिभोगी एहाङ्क देशे ए रूपे पुंसे।
बसुधारे पातु भाळे रति प्रकाशे। ६४।

सरलार्थ—जब लक्ष्मण ने सूर्पणखा के केश पकड़े, उसने समझा कि कर्णाट-देशीया नारियाँ बन्ध-संयोग के समय नायकों का कुन्तल पकड़ती हैं। इस रीति के विपरीत शायद इनके (लक्ष्मण के) देश मे पुरुप लोग स्त्रियों के केश पकड़ते है। अनन्तर जब लक्ष्मण ने उसे भूमि पर लिटा दिया, उसने सोचा कि शायद ये पुरुप (लक्ष्मण) अभी मेरे-सहित रति करेंगे। (६३-६४)

पातुँ—लेटाते, गेरते; भाळे—सोचा। (६३-६४)

बिच्छेदुँ नासा श्रवण दीर्घे रटिला।
विघातुँ सिह हस्तिनी लक्ष्य घटिला। ६५।

सरलार्थ—जब लक्ष्मण ने उसकी नाक तथा कान काट दिये, तो सूर्पणखा ने भयंकर चीत्कार की। जब लक्ष्मण ने उसे धड़-पकड़कर उसके नाक-कान काटे तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो सिह ने हथनी पर वार करके उसे विदीर्ण कर दिया। (६५)

दीर्घे—ऊँची आवाज से; रटिला—चीत्कार किया। (६५)

बिदारि मृगी शार्दूळ फिङ्गिला भाव।
बिरूप करि पकाइ देले से ययव। ६६।

सरलार्थ—जैसे बाघ हिरनी को विदीर्ण करके फेंक देता है, उसी तरह लक्ष्मण ने सुर्पणखा को शीघ्र ही विरूप (अर्थात् कुरूप) कर दिया। (६६)

शार्दूळ—व्याघ्र (६६)

विद्राव त्रिधार रक्त वसन बुड़ि।
बाते पुष्पित मन्दार वृक्ष कि उड़ि। ६७।
वायुवेगे जनपदे मिळित योषा।
बोले खर देईङ्कि के देला ए दशा। ६८।

सरलार्थ—सूर्पणखा की नाक तथा कानो का छेदन होते ही, उसके मुख से बहती हुई तीन धाराओ के रक्त से उसका वस्त्र भीग गया। पवनवेग से राक्षसी दण्डकारण्य के जनस्थान नामक राक्षसों के गाँव मे जाकर पहुँची मानो पुष्पित अड़हुल (जवाकुसुम) का वृक्ष पवन से उड़ आया हो। उसे देखकर खर राक्षस ने पूछा, "राजभगिनी की यह दशा किसने की"? (६७-६८)

विद्राव—बहती हुई; पुष्पित—फूला हुआ; मन्दार—अड़हुल; जनपदे—दण्डकारण्य के जनस्थान नामक राक्षस-ग्राम मे; योषा—राक्षसी; देईङ्कि—(देवीशब्दज) राजभगिनी को (६७-६८)

बिकाळरे काळ हेवा शंका न करि।
ब्याळ मुखे देला केहु करकु भरि। ६९।

सरलार्थ—खर राक्षस ने फिर कहा, "अकाल मृत्यु से विना डरे किसने साँप के मुँह मे हाथ डाल दिया" ? (६९)

बिकाळरे—असमय में; काळ—मृत्यु; ब्याळ—साँप। (६९)

ब्याळ बोलि आन कि वासुकिबदन।
बाइ से एमन्त प्रते काहिँ ता स्थान। ७०।

सरलार्थ—ब्याल अर्थात् साँप कहने से क्या कोई मामूली साँप ! नही, यह तो कोई साधारण साँप नही। उसने तो सर्पराज वासुकि के मुँह में हाथ दिया है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह पागल है। उसका ठौर कहाँ है ? (अर्थात् वह कहाँ रहता है ?)" (७०)

बाइ—बावरा, पागल; एमन्त—ऐसा। (७०)

बिंशाक्ष-भगिनी कहे पञ्चवटीरे।
बसा करिछन्ति दशरथ कुमरे। ७१।

सरलार्थ—खर राक्षस की यह बात सुनकर रावण की बहन सूर्पणखा ने कहा, "पञ्चवटी वन मे राजा दशरथ के दो पुत्र वसेरा करके ठहरे है। (७१)

विंशाक्षभगिनी—वीस आँखोंवाले रावण की बहन, सूर्पणखा; वसा—वसेरा (७१)

बामा घेनि बाम हेले मुहिँ ग्रासन्ते।
बिहि दण्ड दण्डकरे दण्डके मोते। ७२।

सरलार्थ—वे अपने सहित एक स्त्री लिये हुए है। मै उक्त स्त्री को ग्रास करने के लिए जा रही थी कि वे मेरे प्रतिकूल हुए। दण्डकारण्य में एक ही दण्ड में उन्होने मुझे यह दण्ड दिया। (७२)

वामा—स्त्री; वाम—प्रतिकूल; दण्ड—सजा; दण्डकरे—दण्डकारण्य में; दण्डके—एक ही दण्ड में। (यमक) (७२)

बळ साजिण दूषण त्रिशिर खर।
बाहार वीर डाकरे उच्छन्न स्वर। ७३।

सरलार्थ—यह सुनकर दूषण, खर और त्रिशिर—ये तीन राक्षस सैन्य सजाकर निकले। उनकी वीरोचित पुकार से देवलोग भीत हुए। (७३)

ब्याकुळे भये त्रिदिव लुटिबे परा।
बेपथुवश होइला सत्वरे धरा। ७४।

सरलार्थ—यह सोचकर कि वे लोग स्वर्ग लूट लेंगे, देवगण भय से व्याकुल होने लगे। उनके पदभार से पृथिवीदेवी कम्पमाना हुई। (७४)

त्रिदिव—देवता लोग; वेपथु वश—कंपमाना; धरा—पृथिवी। (७४)

बिसर्जने नळी गुळि सूर भावन्ति।
बशे मो बादी मोते कि लाख करन्ति। ७५।

सरलार्थ--खरदूषणादि सैन्यो के बन्दूको से गोलियाँ छोड़ते वक्त सूर्य सोच रहे है कि मेरे वश मे जात श्रीराम के शत्रु होने के कारण शायद ये लोग मुझे गोलियाँ लक्ष्य कर रहे है। अर्थात् इनकी गोलियाँ वहुत ऊँचाई पर उठ रही थी। (७५)

विसर्जने—छोड़ते; नळी—बन्दूक; सूर—सूर्य; लाख—लक्ष्य। (७५)

बन गिरि पूरि आसुँ धूळि उड़िला।
बिम्ब आच्छादने शंका चित्तुँ छाड़िला। ७६।

सरलार्थ--सैन्यो के वनों तथा पर्वतो मे समाकर आने से धूल उड़ने लगी जिससे सूर्यमण्डल आच्छादित हो गया। सुतरा सूर्य के मन से गोलियो के लगने का भय हट गया। (७६)

बिम्ब—सूर्यमण्डल। (७६)

बसुधासुताङ्कु सौमित्रेय रक्षित।
बिराधवध-पण्डित युद्धकु गत। ७७।

सरलार्थ—राक्षस सैन्यो को आते हुए देखकर लक्ष्मण ने सीता की रक्षा की और विराध-वध-पण्डित श्रीरामचन्द्र युद्ध करने के लिए चले। (७७)

वसुधा-सुता—पृथिवी कन्या सीता; सौमित्रेय—लक्ष्मण। (७७)

बर्षुक घन पराय रक्षे घोटिले।
बाणगण जळधारा पतन कले। ७८।

सरलार्थ—राक्षस लोगो ने वरसनेवाले मेघो की तरह श्रीरामचन्द्रजी को घेर लिया और जलधाराओ के समान वाणों की बौछार की। (७८)

वर्षुक घन—वरसनेवाले मेघ। (७८)

विजुळि सेनानी खड्ग झलकप्रदा।
बज्रघात भयंकर त्रिशूळ गदा। ७९।
बिज्ज्वळित तहिँरु हुअइ पावक।
विजय दुर्ग पराय रघुनायक। ८०।

सरलार्थ—सैनिकों की तलवारे चमकती हुई बिजलियों की तरह दिखाई पड़ी, एवं भयकर गदाओ तथा त्रिशूलो आदि के प्रहार का शब्द वज्रनाद की तरह सुनाई पडा। उनमे से आग जलती हुई-सी निकल पड़ती है। प्रभु श्रीराम वहाँ पर अजेय दुर्ग की तरह अडिग खड़े रहे। अर्थात् ये सारे अस्त्रशस्त्र उनकी कुछ भी हानि नही कर सके। (७९-८०)

पावक—आग; विजय—अजेय। (७९-८०)

बरण तनु कबाटपुट हृदय।
बाहु स्तम्भ अरु अर्गळिरे उदय। ८१।
बेष्टनीरे रहि सहि बहुत घात।
बिधायक शस्त्र कोपनरे पूरित। ८२।

सरलार्थ—जिन रामचन्द्रजी की देह दुर्ग के परकोटे के समान, वक्ष किवाड़ के समान, दोनों बाहुएँ स्तम्भो और दो जांवें दो अगड़ियों(जजीरो) के समान दीखती थी, असख्य सैनिको से घिरकर उन्होने शत्रुओ के बहुत आघात सहन किये और क्रुद्ध हृदय से वाणो का प्रयोग किया। (८१-८२)

बरण—परकोटा, प्राचीर; कवाटपुर—किवाड़ो की जोड़ी; अर्गळि—अगड़ी, ब्यौंड़ा, अर्गल। (८१-८२)

बळ-सिन्धु कबलकु अगस्त्य शर।
बतास त्रिशिर शिर ताळफळर। ८३।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र के शर ने अगस्त्य मुनि के सदृश सैनिक-समूह रूपी समुद्र को ग्रस लिया। फिर प्रभु के शर ने बतास की तरह त्रिशिर राक्षस के मस्तक-रूपी ताड़फल को उडा दिया। (८३)

बळसिन्धु—सैनिक-समूह-समुद्र। (८३)

बिशुद्ध कवि होइ से वन-काव्यरु।
बिशोधिले दूषणकु गुण प्रचारुँ। ८४।

सरलार्थ—प्रभु श्रीराम ने एक विशुद्ध कवि के रूप में दण्डकारण्य-रूपी काव्य मे अपना शौर्यगुण प्रकाशपूर्वक दूषण नामक राक्षस रूपी दोष को विनाश किया और इस तरह वन-रूपी काव्य को विशुद्ध (अर्थात् निर्दोष) बना दिया। (८४)

वनकाव्य—दण्डकारण्य रूपी काव्य; बिशोधिले—विशुद्ध बना दिया; दूषण—राक्षस-विशेष, दोष। (परंपरित रूपक) (८४)

श्रीरामजी का श्रेष्ठ शर निश्चय ही बाघ है, क्योंकि उसने चलकर आसानी से खर राक्षस रूपी गदहे को विदीर्ण करके नीचे गिरा दिया। (८५)

ईषिते—आसानी से; खर—राक्षस विशेष, गदहा। (परंपरित रूपक) (८५)

वेभारे यन्त्रे युक्त गुणिआ घेनि।
बिदूर होइला सूर्पणखा डाकिनी। ८६।

सरलार्थ—वास्तव मे श्रीरामचन्द्रजी शस्त्र-प्रयोग-मन्त्र से युक्त हुए थे अर्थात् उन्होने -शस्त्र-प्रयोग का मन्त्र भली-भाँति जाना था। इसलिए उन्हें ओझा समझकर डाकिनी सूर्पणखा भय से दूर भाग गयी। (८६)

वेभारे—वास्तव में; गुणिआ—ओझा, झाड़फूंक करनेवाला; बिदूर—विशेष दूर; डाकिनी—पिशाची। (८६)

बाहुड़ाबिजे राघव पत्रसदने।
बिन्दु बिन्दु झाळ रहिअछि बदने। ८७।
वनरुहरु जनम होइ तुषार।
बिरोधी नाहिँ अधिके दिशिरुचिर। ८८।

सरलार्थ—जब श्रीराम पर्णकुटीर मे लौटकर विराजमान हुए, युद्ध-जनित परिश्रम के कारण उनके मुख-कमल पर पसीने की बूंदें लगकर बड़ी सुहावनी दीखती है। उन बून्दो को देखकर मन मे विस्मय हो रहा है। क्योंकि साधारणतया कमल से ओस की बूँदे पैदा होकर उसके साथ शत्रुता करती है। परन्तु यहाँ ये पसीने की बूँदे श्रीराम के मुख-कमल के प्रति शत्रुता करने के बजाय उसका सौन्दर्य-वर्द्धन करती है। (८७-८८)

वाहुड़ाविजे—लौटकर विराजमान होना; पत्रसदने—झोंपड़ी में; झाळ—पसीना; ववरुहरु—पद्म से; तुषार—हिम, ओस; विरोधी—शत्रु। (८७-८८)

बर्ष्म स्वेदे रक्तपाते पवनवळे।
बिद्रुम अङ्कुर देइ मर्कतशिळे। ८९।

सरलार्थ—श्रीराम का शरीर स्वेदयुक्त हुआ है। फिर उस पर पवन से रक्त के विन्दु लग गये हैं। उसे देखकर प्रतीत हो रहा है मानो मर्कत-मणियो की शिला पर मूँगे उगे है। (८९)

वर्ष्म—देह; स्वेद—पसीना; विद्रुम—मूँगे। (उत्प्रेक्षा) (८९)

बिचित्र कर्म कृतरु अद्भुत होइ।
बाहारि गह्वरु रामा अनुज दुइ। ९०।

बिख्यात ओळगि बिहि महासन्तोष ।
बिधौत अंगसरिते जानकी - ईश । ९१ ।

सरलार्थ—असंख्य राक्षस-सैन्यों का वध करके प्रभु ने अद्‌भुत कर्म साधा। इसलिए ये सारे आश्चर्य संघटित हुए। (अर्थात् कमल से हिम की बूंदें उगकर उसकी सौन्दर्यवर्द्धक हुईं और मर्कत-मणियों पर मूंगे उगे। —आदि।) पर्वत की गुफा से पत्नी सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मण दोनों ने निकलकर प्रभु को प्रणाम किया और महासन्तोष लाभ किया। अनन्तर जानकी-वल्लभ प्रभु श्रीराम ने नदी में अपना शरीर अच्छी तरह धौत किया। (९०-९१)

गह्वरु—गुफा से; रामा—पत्नी सीता; अनुज—छोटे भाई लक्ष्मण; ओळगि—प्रणाम; सरिते—नदी में। (९०-९१)

बयाणोइ पदे छान्द अति माधुरी ।
बीरवर उपइन्द्र भञ्ज बिचारि । ९२ ।

सरलार्थ—इसी तरह भञ्ज कवि ने बयानबे पदों में इस मनोहर छान्द की रचना की। (९२)

॥ इति त्रयोविंश छान्द ॥

चतुर्विंश छान्द

राग—कुम्भकामोदी

बिनाशुँ नासा श्रवण सूर्पणखा प्रवेश लंकार।
बृक्ष पाटळीरु फुल झाड़ि उड़ि याउछि कि कीर।
बहे नेत्रु अश्रु पत्रु कि पड़ुछि पड़िला तुषार।
बार-वायुरे धैर्य्यमूळ उपुड़ि पड़िला प्रकार। १।

सरलार्थ—नासाकर्ण-विहीना होकर सूर्पणखा ने लंका में जा प्रवेश किया। उस समय उसकी आकृति देखकर प्रतीत होता है, मानो शुकपक्षी (तोता) पाटली वृक्ष से फूल झाड़ता हुआ उड़ जा रहा हो। (यहाँ उसके शरीर की तोते से एव नाक-कानों से टपकते हुए रक्तविन्दुओं की पाड़र-फूलों से तुलना की गयी है।) रात में वृक्ष के पत्रों से जिस तरह ओस की बूँदें टपक पड़ती है, उसी तरह सूर्पणखा के नेत्रो से आँसुओं की धारा बह रही है। प्रचण्ड पवन या बतास से वृक्ष के मूल के उखड़ पड़ने की तरह सूर्पणखा का धैर्य-मूल उखड़ पडा था। (१)

पाटळी—पाड़र; कीर—शुकपक्षी, तोता; तुषार—ओस, हिम; बारवायु—बतास, प्रचण्ड पवन; उपुड़ि पड़िला प्रकार—उखड़ पड़ने की तरह। (उत्प्रेक्षालंकार) (१)

बिंशपाणि आगे पड़ुँ पुच्छि बेगे ए दण्ड के इच्छि।
बहिणी तु मारे न जाणि संसार मध्यरे के अछि?
बृषा बृषासन वासुकी विधान नुहेँ ए उचिते।
बन्धा सुते कइळास उयाड़न्ते जाणन्ति से मोते। २।

सरलार्थ—ऐसी हालत में जब सूर्पणखा विंशपाणि रावण के सामने गिर पड़ी, तो रावण ने शीघ्र ही उससे पूछा, "तुझे यह दण्ड किसकी इच्छा से मिला? तू मेरी बहन है—यह बात संसार में बिना जाने ऐसा कौन है? (अर्थात् ससार मे सव कोई जानते है कि तू मेरी बहन है।) स्वर्ग के इन्द्र, मर्त्य के महादेव तथा पाताल के वासुकि—इनमे से किसी के द्वारा यह घटना संघटित होना सम्भव नही। क्योकि इन्द्रजी मेरे पुत्र मेघनाद के द्वारा जब बाँधे गये, महादेव जी का कैलाश पर्वत जब मै उखाड लाया एव पाताल मे जब मैंने दिग्विजय की थी, उसी दिन से वे लोग क्रमश: मुझे भलीभाँति जानते है। (२)

विंशपाणि—वीस हाथो वाला, रावण; पुच्छि—पूछा; के—कौन?; के इच्छि—

किसने इच्छा की ?; बहिणी—बहन; वृषा—इन्द्र; वृषासन—महादेव; वासुकि—पाताल का सर्पराज; से—वे लोग; मोते—मुझे। (२)

बाजीदइबत शिरी आजि हत करिबि अबधि।
बढ़ि कि रोग ए दशा हेला भोग न देले औषधि।
बोइला अनुजा नागजाति राजा जगत बइरी।
बहि कि हेब नेत्र मदे मुद्रित प्रतिचक्षु परि। ३।

सरलार्थ—मै आज से स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमार की सम्पत्ति का नाश करूँगा। शायद तेरे शरीर में कोई रोग पैदा होकर क्रमशः वह बढ़ गया है। फलस्वरूप तेरी हालत यहाँ तक बिगड़ गयी कि तेरे नाक-कानों के गायब होने की स्थिति आ पहुँची है। फिर भी उन्होने कोई दवा नही दी !" यह सुनकर छोटी बहन सूर्पणखाने कहा, "घमडी राजालोग नागसर्पो के समान जगत के शत्रु है। तुम्हारे नेत्र होने पर भी क्या लाभ है ? वे गर्व से मूँद गये है। सुतरां तुम्हे चश्मे की जरूरत पड़ रही है। (३)

बाजीदइबत—स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमार; अनुजा—छोटी बहन; मदे—गर्व से; प्रतिचक्षु—चश्मा, ऐनक। (३)

बार्त्ताबह-हीन विश्व-पाठमान गोचर हेबाकु।
बधि त्रिशिर दूषण खर मोते ए दण्ड देबाकु।
बनौका बेशे राम नाम लक्ष्मण अयोध्या नरेश।
बेनि कुमर बामा ताङ्क सङ्गरे दण्डके निवास। ४।

सरलार्थ—मनुष्य को बुढ़ापे में चश्मे का प्रयोग करना पड़ता है। राजालोग दूतो-रूपी चश्मो के द्वारा ससार की खबरे जान पाते है। चूँकि तुम्हारे दूतों-रूपी चश्मे नही है, इसलिए तुम संसार की खबरे कुछ नही जान पाते। तो सुनो भैया ! अयोध्यानरेश दशरथ के दो पुत्र राम तथा लक्ष्मण वनवासी ऋषियों के सदृश दण्डकारण्य में निवास कर रहे है। उनके साथ एक परमासुन्दरी नारी है। उन्होने त्रिशिर, खर, दूषण, आदि राक्षसों का वध किया और मुझे यह दण्ड दिया। दूतहीन होनेके कारण तुम यह सिब कुछ जान नही पाये। (४)

वार्त्तावहहीन—दूत-हीन; वनौका—वनवासी, संन्यासी; वामा—स्त्री। (४)

ब्रह्मा कोटिए कन्या परि गोटिए गढ़िबे कि करि।
ब्रह्माण्ड लक्षरे खोजिले लक्ष्यरे न थिबे सुन्दरी।
बिहे नृत्य आसि रम्भा उरुवशी तो आगे देखिछि।
बनितामणि दासीपणे न गणि मो मने रखिछि। ५

सरलार्थ—करोड़ों ब्रह्मा एक साथ मिलकर भी उस स्त्री के समान अन्य एक रमणी का सृजन या निर्माण नहीं कर सकते। एक लाख-संख्यक ब्रह्माण्डो में ढूँढने पर भी उस स्त्री के सदृश और एक सुन्दरी फिर नहीं मिलेगी। मैने तुम्हारे सामने रम्भा, उर्वशी आदि देवांगनाओं को नृत्य करते देखा है। परन्तु उस रमणीमणि की दासियों मे भी इन सबकी गिनती नही हो सकती। अर्थात् ये नारियाँ उस रमणीश्रेष्ठा के दासत्व के लिए भी योग्य नही है। इस हेतु मैने उसको याद रक्खा है। (५)

लक्ष—एक लाख की संख्या ; लक्ष्यरे—तुलना के लिए, सदृश। (यमक) (५)

बदन ओष्ठ सुषमा करि पुष्ट पूर्णमी प्राचीकि।
बिधु बाळर्क ब्याजे रौप्य माणिक्य स्थाळीकि रचि कि ?
बन्दाण मास के रचे के उत्सुके के निति बन्दाइ।
बिहंग-आळी द्विकाळे हुळहुळि तहिँकि कि देइ। ६।

सरलार्थ—उस रमणी के वदन तथा ओष्ठों की परम सुषमा देखने से प्रतीत होता है मानो पूर्णिमा-रूपिणी नारी पूर्णचन्द्र-रूपी चाँदी की थाली से मास में एक बार एव प्राची-दिशा-रूपिणी अंगना हर रोज़ प्रातः बाल-सूर्यरूपी माणिक्य की थाली से उत्सुकता सहित क्रमशः उनके मुख तथा ओष्ठों की आरती करती है। अर्थात् उस रमणीका बदन पूर्णचन्द्र से बढ़कर भी सुन्दर है एव ओठ बालरवि से भी अधिक रक्तिम है। उस आरती के समय पक्षी रूपिणी सखियाँ मानो सुबहशाम अपने-अपने कलरव के मिस उलुध्वनि (हुली–हुली) करती है। (६)

सुषमा करि पुष्ट—अति परम शोभा; विधु—चन्द्र; बाळार्क—बाल सूर्य; बिहंग-आळी—पक्षी रूपिणी सखियाँ; द्विकाळे—दोनों समय, शाम तथा सुबह; हुळहुळी—उलु ध्वनि, हुलि हुली। (व्यतिरेक अलंकार)। (६)

बदइ शँख नोहिबा हेबा य़ोख ए काळ सुरुचि।
बासर मुखे सन्ध्यारे भ्रमि दुःखे देखन्ति से लुचि।
बिभूषा सुवर्ण य़े सहस्रे बान पिञ्जर परि रे।
बर्णकु निऊन दिशे एड़ेबान थाइ ता शरीरे। ७।

सरलार्थ—पूर्णचन्द्र और बालसूर्य क्रमशः शाम और सुबह को अत्यधिक सुन्दर दिखाई देते है। इसलिए उनके लिए यह विचारना कि हम दोनों उस रमणी के मुख से समान हैं, बिल्कुल स्वाभाविक है। परन्तु सुबह और शाम देवालयों में बजनेवाले शंख उनसे यह बोल देते है, नही, "तुम दोनों की शोभा उनके मुख की शोभा के साथ समान या तुलनीय नही हो सकती"। शंखों की ध्वनि समझकर सूर्य और चन्द्र क्रमशः दिन तथा रात भर आकाश

में घूमते है और फिर शाम तथा सुबह होने पर दुःख से छिपकर उनकी मुखश्री देखते है। उस रमणी की शरीर-प्रभा इतनी अधिक है कि उसपर विभूषित सहस्रगुण-तेजयुक्त सुवर्ण-निर्मित अलंकार-समूह उसकी शरीर-ज्योति के सामने पीतल के समान न्यून (हतप्रभ) दीखते है। (७)

बदइ—बोलते; ग्रोख—तुलना, समान; बासरमुखे—सुबह; सन्ध्यारे—शामको; सहस्रेवान—सहस्रगुण तेजयुक्त; पिञ्जर-पीतल; वान—तेज। (व्यतिरेक)। (७)

बल्लभी ग्रे तोर संसारर सार तहिँर मध्यरे।
बड़ सुन्दरी बोलाइ मन्दोदरी काहिँकि विचारेँ।
बिध्वंसि हेला से संशय रभसे ताहार दर्शने।
बिधाता छन्द रखिछि नामे मन्द एहार ग्रतने। ८।

सरलार्थ—तुम्हारी स्त्रियाँ संसार भर में सुन्दरी है ही। फिर उनमें मन्दोदरी सबसे अधिक सुन्दरी कहलाती है। फिर भी मुझे इसके बारे में बड़ा सशय था कि उसका नाम क्यो 'मन्दोदरी' पड़ा। आज उस रमणी को देखते ही मेरा वह संशय अचानक दूर हुआ। और यह सिद्ध हुआ कि वास्तव में उस स्त्री की अपेक्षा मन्दोदरी 'मन्द' या हीन है। इसी हेतु विधाता ने इसके नाम के पूर्व कपट से यत्नपूर्वक 'मन्द' शब्द का योग किया है। (८)

वल्लभी—स्त्रियाँ; रभसे—शीघ्र ही। (व्यतिरेक)। (८)

बरदेवरङ्कु मारि मुँ ताहाकु आणन्ति तो पाइँ।
बिकृत रूपे ग्राउँ ताङ्क समीपे ए दण्ड से देइ।
बिक्रमि लोकने त्रिशिर दूषणे सबळे खरहिँ।
बिरचि समर गले ग्रमपुर अइलि मुँ कहि। ९।

सरलार्थ—उसके पति तथा देवर को मारकर उसे तुम्हारे लिए लाने के अभिप्राय से जब मैं मायाविनी के रूप में उनके पास गयी, तो उन्होंने मुझे ऐसा दण्ड दिया। मेरी यह हालत देखकर खर, दूषण तथा त्रिशिरादि राक्षसों ने ससैन्य वहाँ जाकर उनके साथ समर किया, परन्तु वे हारकर यमपुर सिधारे एवं खबर देने के लिए मैं यहाँ आई"। (९)

विकृतरूपे—मायावी रूप में; लोकने—देख कर; अइलि—आई; मुं—मै; कहि—कहने के लिए, खबर देने के लिए। (९)

बळिष्ठ—श्रेष्ठ गरिष्ठमान ग्रेबे उद्धरि पारिब।
बारिधि जीवने जीवन तेजिबा तेबे मो नोहिब।
बइश्रबण श्रवण करि कहे हेब से जानकी।
बिश्व प्रपञ्चरे एड़े सुसञ्चरे सौन्दर्य्य आन कि ?। १०।

सरलार्थ—हे वीरश्रेष्ठ रावण ! अगर तुम इस गुरुतर अपमान से मेरा उद्धार कर सकोगे, तो समुद्रजल मे मुझे जीवन-त्याग करना नहीं होगा। (अन्यथा समुद्र के जल मे डूबकर मै आत्महत्या करूँगी।) यह सुनकर रावण ने कहा, निश्चय ही वह रमणी जनक की कन्या सीता होगी। अन्यथा इस विस्तृत संसार मे ऐसी सुगठन के सहित दूसरा सौन्दर्य कही भी सम्भव नही। (१०)

वळिष्ठ श्रेष्ठ—महापराक्रमी; गरिष्ठपान—नाक-कान काटने का गुरुवर अपमान; बारिधि—समुद्र; जीवने—जल में; जीवन—प्राण; वइश्रवण—विश्रवा-पुत्र रावण; विश्व प्रपञ्चरे—फैले हुए संसार में, समूचे संसार मे; एड़े सुसञ्चरे—इतनी सुगठन के सहित; आन कि—क्या दूसरा सम्भव है ? (१०)

ब्रह्मर कर कर्ण नासा चरण नाहिँ कि अवज्ञा ?
बिगतशोचना हुअ सुलोचना देख मो प्रतिज्ञा।
बळे बा कितबे ता अबळा एवे आणिबि मुँ हरि।
बने बेनि भ्रात झुरि हेबे हत भक्ष्य तु विहरि। ११।

सरलार्थ—रावण ने आगे सूर्पणखा को प्रबोधना देते हुए कहा, "अरी बहन ! ब्रह्म के नाक, कान और हाथ पैर आदि कुछ भी नही हैं। तथापि वह क्या ससार मे अनादर पाता है ? (अर्थात् नहीं।) उसी तरह तेरे नाक और कान न होने पर भी ससार मे कोई तेरा अनादर नही करेगा। क्योंकि तू मेरी बहन है। अयि सुलोचने ! (तेरे नेत्रों की शोभा तो ज्यों की त्यों बनी रही है।) तू शोक परित्याग करना। अब मेरी प्रतिज्ञा देख ले। मैं उसकी स्त्री को बल से ही, नही तो कपट से जरूर अब हरण कर ले आऊँगा। वे दोनो भाई वन मे उसे ढूंढते हुए मर जाएँगे। अब तू जा, इधर-उधर भटकती हुई भोजन करती चल। (११)

अवज्ञा—अनादर; विगतशोचना हुआ—शोक त्याग कर; कितवे—कपट से; बेनि भ्रात—दोनो भाई; झुरि—झुर कर, रट-रट कर। (११)

बिरस शुणि सकळ राणी-श्रेणी दुर्भाग्य शङ्कारे।
बिधवा हेबारे दरी मन्दोदरी बचन उच्चारे।
बाड़े स्वलेखन श्ळोके अवधान नोहुछि काहिँकि ?
बारि कि बारिजाक्षि! अनुकूळरे ? बोइला तहिँकि। १२।

सरलार्थ—रावण की रानियो ने जब उसके ये वचन कि मै उस स्त्री को बल या कपट से हरण कर ले आऊँगा, सुने तो वे बड़ी दुःखित हुई। क्योंकि उन्होंने दुर्भाग्य की आशंका की कि रावण यदि सीता को ले आवे, तो फिर हम लोगों की ओर आँख उठाकर भी नही देखेगा। परन्तु बुद्धिमती मन्दोदरी विधवा होने की आशका करती हुई बोली, "हे जीवितेश ! दीवाल

पर अपने हाथ से लिखे 'सीताहरणं, रावणमरणं' श्लोक के प्रति क्यों दृष्टिपात नहीं करते ?" यह सुनकर रावणने कहा, "अयि पद्मलोचने ! कोई कार्य अनुकूल करते समय निषेध करना क्या उचित है ? (अर्थात् नही।) अतएव जो कार्य करने के लिए मैंने ठान लिया है, उससे मुझे वारण मत करना"। (१२)

दरी मन्दोदरी—भयभीता मन्दोदरी; बाड़े—दीवाल पर; बारि कि—वारण करना क्या उचित है ? बारिजाक्षि—अयि पद्मलोचने ! (१२)

बिमाने आरोहि अभिमाने याइ विचारुँ मानसे।
बुद्धि स्फुरिला मारीच पाशे गला विनोयी चाहिँ से।
बोइला चातक प्राय मुँ याचक आसिछि तृषार्त्ते।
बारिद तुहि आशारे उदे होइ बारि दे त्वरिते। १३।

सरलार्थ—अनन्तर रावण विमान में चढ़ा और अभिमान-भरे हृदय मे यह विचार करता हुआ कि किस प्रकार सीता को हस्तगत किया जाये, आगे चलने लगा। उसको एक उपाय सूझा। यह निर्णय करके कि मायावी मारीच के पास जाने से कार्य में सिद्धि जरूर मिलेगी, वह उसके पास गया। मारीच रावण को देखकर बड़ा विनयी हुआ। रावण ने कहा, "मैं एक तृषार्त्त चातक की तरह तेरे पास प्रार्थी बनकर आया हुआ हूँ। तू मेघ के समान मेरी आशारूपिणी दिशा में उदित होकर शीघ्र ही अनुरागरूपी जल बरस। (अर्थात् मेरी मनस्कामना की पूर्ति करने में तत्पर हो।) (१३)

बुद्धि स्फुरिला—उपाय सूझा; याचक—प्रार्थी, माँगनेवाला; बारिद—मेघ; आशा—अभिलाषा, दिशा (श्लेष); बारि—अनुराग, जल; (श्लेष)। (१३)

बोले सुन्दात्मज तु राजाधिराज कि देबि तोते मुँ।
बध जननी भ्राता मो सैन्य घेनि जीइछि कि धर्मुँ।
बिंशभुज मणि बइरी के पुणि कह मोरे ताकु।
बार्त्ता बन्धु होइ न देलु किपाईं शउच हेबाकु। १४।

सरलार्थ—रावण की बात सुनकर सुन्द के पुत्र मारीच ने कहा, "तुम राजाधिराज हो। फिर मै तुम्हें क्या दूँ ?" यह सुनकर विंशभुजा रावण ने कहा, "मुझे यह बता कि फिर तेरा शत्रु कौन है ? तूने मेरा बन्धु होकर मुझे अन्त्येष्टिक्रिया सपादनपूर्वक शुद्ध होने के लिए संवाद क्यों नही दिया ? (१४)

सुन्दात्मज—सुन्द नामक राक्षस का पुत्र, मारीच; राजाधिराज-सम्राट्। (१४)

बुड़ि पारावार बारिरे सोदर भावकु देखाइ।
बीरकेश धरि मारिबाकु अरि बाहारि डाकइ।
बोइला ताड़की-नन्दन तहिँकि बस हे भूपति।
बह्निरे चालिबा विष जीर्ण हेवा उपाये अछन्ति। १५।

बिना उपाय राघव शरचय ग्रमर से ग्रम।
बिष्णु हेले हेब आउ त न थिब ताहाकु के सम।
बड़ कहिलु त बोले लंकनाथ न डर तु किछि।
बाजि बिष्णुचक्र मो हृदे पदक पराय लागिछि। १६।

सरलार्थ—उसके अनन्तर रावण ने भ्रातृत्व दिखाते हुए समुद्र में डुबकी लगाकर स्नान किया और इसी प्रकार अपना शौच-विधान किया। फिर उसने अपनी मूँछ पर हाथ फिराते हुए कहा, "चल, हम देखें, कौन तेरा शत्रु है। उसका हम निधन करेंगे"। यों कहते हुए उसने मारीच को बुलाया तो मारीच ने कहा, "हे राजा, यहाँ पर बैठिए, हम आप से कहें। आग में आसानी से चलने तथा खाये हुए जहर को हजम करने के उपाय हैं ही, परन्तु श्रीराम के शरसमूह से उद्धार पाने के लिए उपाय नही हैं। वे यम के भी यम हैं। केवल एक विष्णु भगवान् ही उनके बराबर हो सकते हैं, दूसरा कोई नहीं हो सकता"। लकानाथ रावण ने कहा, "तूने एक भारी बड़ी बात कह दी ! कुछ भी भय मत करना। मेरे वक्ष पर विष्णुजी का सुदर्शन चक्र बजकर पदक की तरह लगा रहा, लेकिन आघात कर नही सका; अर्थात् मैं विष्णुभगवान् से बहुत अधिक वीर हूँ"। (१५, १६)

पारावार—समुद्र; वीरकेश—मूंछ; ताड़कीनन्दन—मारीच। (१५, १६)

बोलु ग्रे राघव ताहार पूरुब पुरुष मारिछि।
बिधाताघटन तोर मोर पुणि बइरी होइछि।
बधि तो जननी छेदिछि मो भग्नी नासिका श्रवण।
बळ भ्राता हत हेला एकमत पाञ्चिबा मारण। १७।

सरलार्थ—जिस राघवेश को तू इतना वीर बोल रहा है, मैंने उसके पूर्वज अनरण्य राजा का वध किया है। विधाता के विधानानुसार संयोग से वह फिर तेरा और मेरा—दोनों का शत्रु बन पड़ा है; तेरी माता को वध किया और मेरी बहन की नाक और कान कटवा दिये है; फिर तेरे भाई सुबाहु तथा मेरे खरदूषणादि भाइयों को ससैन्य वध किया है। अतएव वह हम दोनों का समानरूपेण शत्रु हुआ। इसलिए चले, हम उसके विनाश पर उपाय सोचे। (१७)

बळ—ससैन्य; पाञ्चिबा—हम उपाय सोचे; मारण—विनाश। (१७)

बक्त्रमाळीकि मारीच छळिकि तो सामर्थ्य बड़ाइ ।
बान्धिला अर्जुन तोते ता छेदन दर्प ये छड़ाइ ।
वंश न मरा दात्यूह परा होइ विरोध कर ना ।
बिम्ब करि थय कूपे सिंह प्राय बुड़ि तु मरना । १८ ।

सरलार्थ—मस्तकमाला रावण की बात सुनकर मारीच ने छलपूर्वक कहा, "तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है, जिससे तुम इतनी अपनी बड़ाई कर रहे हो ? जिस सहस्रार्जुन ने तुम को बाँधा था, उसी का परशुराम ने विनाश किया और जिन रामचन्द्र ने उन्ही परशुराम का गर्व चूर्ण किया है, ये वही रामचन्द्र जी है । (अर्थात् ये श्रीरामजी तुमसे कही अधिक बलवान् है ।) अतएव तुम उनसे शत्रुता मत करना, और जैसे एक पपीहे के दोष के कारण सारे पपीहों के वंश को जान से हाथ धोना पड़े, उसी प्रकार तुम अपने वंश को मरवाना मत । (एक पपीहा जाल में पड़ जाय तो वह प्रलोभन दिखाकर दूसरे पपीहों को बुलाता है और जाल मे फँसवाता है ।) कुएँ के जल में अपनी परछाई देखकर जिस तरह सिह दूसरे सिह के भ्रम से उसमें कूद कर मरा था, उसी प्रकार तुम डूब न मरो । (१८)

वक्त्रमाळी—मुखमाला रावण; दात्यूह—पपीहा । (१८)

बोलु रामामणि रामाङ्क के भणि बधूकु विधुकु ।
बेगे आगे दृष्टि राम मणि कष्टी हुअइ बधकु ।
बिराम आराम कहु होइ भ्रम पछकु अनाइ ।
बिन्धिबा ठाणि पूर्वरु दिशि पुणि कम्पि मुँ पळाइ । १९ ।

सरलार्थ—कोई यदि अपनी पत्नी को 'रामामणि' या चन्द्र को 'रामांक' कहकर पुकारे, तो वह सुनकर मै शीघ्र ही आद्य दोनों अक्षरों (राम) को ध्यान में लाता और सामने दृष्टि फिराकर इस भय से कि राम शायद मेरे विनाश के लिए आ गये हो, कष्ट का अनुभव करता हूँ । (अर्थात् किसी भी प्रकार 'राम' शब्द कही भी सुन लूँ, तो मेरे प्राण काँप उठते है ।) कोई अगर 'विराम' अथवा 'आराम' शब्द कह दे, तो भ्रमवश होकर मै पीछे की ओर ताकता हूँ । तब राम के तीर मारने की पूर्व स्मृति मेरे मन में आ जाती है और भय से काँपकर भाग जाता हूँ । ('विराम' तथा 'आराम', दोनों शब्दों के पीछे 'राम' शब्द है, इसलिए मुझे भय होता है कि राम ने कही पीछे से आकर तीर मार न दिया हो ।) (१९)

रामामणि—रमणीश्रेष्ठ; रामांक—मृगांक, चन्द्र; वधूकु—पत्नी को; विधुकु-चन्द्र को; राम मणि—राम समझकर; विराम-विश्राम; आराम—उपवन; बिन्धिबा ठाणि—तीर मारने की भंगी । (१९)

बिजने वास देइटि पुणि त्रास देखिलि स्वपने ।
बिनिद्र होइ तपस्वी वेश बहि रहिछि ए स्थाने ।
बक्ता दशमूर्द्धा न भाङ्ग मो श्रद्धा मारिबा कपटे ।
बिहर चित्र चमरी रूप धरि तु ताङ्क निकटे । २० ।

सरलार्थ—इसी वजह से मै गाँव छोड़कर निर्जन स्थल में आ निवास करने लगा । फिर भी स्वप्न मे मै राम को देखकर भयभीत होता रहा । इसीलिए उनीद रहकर तपस्वी का यह वेश धारणपूर्वक इस स्थान में रहता हूँ । राम से मुझे इतना डर है! मै फिर उन्हे मारने का उपाय सोचूं ?" यह सुनकर रावण ने कहा, "तू मेरी श्रद्धा (उत्साह) भंग न करना, उसे कपट से हम मार दे, तू विचित्र हिरन का रूप धारण करके उसके समीप क्रीड़ा करना । (२०)

बिजन—निर्जन स्थान; त्रास—भय; विनिद्र—जाग्रत, उनीद; दशमूर्द्धा—रावण; चित्रचमरी—विचित्र मृग । (२०)

बिदूरे नेइ राम त्राहि लक्ष्मण कहि हो अन्तर ।
बटुबेशे भिक्षा मागि पक्ष्मळाक्षी हरइ मुँ तार ।
बोले मारीच राजा ए लोभ मुञ्च तु मधु सदृश ।
बंश-पद्मवन करिछु वर्द्धन सुमन प्रकाश । २१ ।

सरलार्थ—तेरे विचित्र रूप से आकर्षित होकर जब वह तुझे पकड़ने के लिए तेरा पीछा करे, तू उसे बहुत दूर तक ले चलना और 'त्राहि लक्ष्मण' कहकर ओझल हो जाना । तेरी पुकार सुनकर लक्ष्मण सीता के निकट से दूर चला जाएगा । इसी अवसर मे मैं एक ब्रह्मचारी के वेश में भिक्षा माँगने के लिए कुटीर के सामने जाऊँगा और उसकी पद्मनयना सीता को हरण कर ले आऊँगा" । यह सुनकर मारीचने कहा, "हे राजन् ! लोभ का त्याग करो । तुमने वसन्त ऋतु के सदृश अपने वंश-पद्मवन की वृद्धि की है । अब उसमें फूल बिगसाओ । (अर्थात् अपने वंश की ओर अच्छी तरह दृष्टि डालकर उसे पनपने दो, नष्ट करने का मार्ग मत ढूँढो ।) (२१)

बिदूरे—बहुत दूर तक; बटु--ब्रह्मचारी; पक्ष्मळाक्षी-पद्मलोचना सीता; मुञ्च--त्याग करो; मधु—वसन्त ऋतु; सुमन-फूल; प्रकाश—बिगसाओ । (२१)

बेभारे सीता शीत हेले मिळिता से रामलक्ष्मण ।
बरषि करु तुषार-शरकु नाशिबे तत्क्षण ।
बैद्य सुबुद्धि वाणी तार औषधि न रुचि भक्षणे ।
व्याधि-नाशकारी ग्रेबे ता न करि प्रवर्त्ते मरणे । २२ ।

सरलार्थ—विधानानुसार सीता 'शीत' काल के समान लंका में जा पहुँचेगी। तब रामलक्ष्मण-रूपी चन्द्र अपने करों-रूपी किरणो से तुषार के समान शर बरसाकर तुम्हारे वंशरूपी पद्मवन का विनाश करेंगे। यदि मारीचरूपी वैद्य की सुबुद्धियुक्त कथा तथा रोगविनाशकारी औषधि तुझे रुचिकर न हुई, तो तुम निश्चय ही मृत्यु के मुख में पड़ोगे। (अतएव मेरी कथा हितकर समझकर उसकी अवहेलना मत करना"।) (२२)

बेभारे—विधानानुसार; सीता-शीत—सीता रूपी शीतकाल; रामलक्ष्मण—दोनों भाई, चन्द्र; कररु—हाथों से, किरणों से, (श्लेष); तुषार-शर—हिम-रूपी शर; ये'बे-यदि।(२२)

बोलिछि मधु षकार भेदे पुणि महीश आपण।
बार्द्धिजा दुर्गा लोभे याहा होइले ताहा कि न जाण।
बळे ये याहारे ऊणा से ताहारे आरम्भे कि द्वन्द्व।
बहि अहबुद्धि मान कर सिद्धि उपुजे ये मन्द।२३।

सरलार्थ—पहले तुमको मैंने 'मधु' (वसन्त) कहा है। फिर आप महीश (राजा) है। 'महीश' शब्द 'ष' कार भेद से 'महिष'(भैसा) हुआ। अब 'मधु' को मधुराक्षस तथा 'महिप' को महिषासुर के अर्थ में समझो। उन दोनो ने क्रमश: लक्ष्मी तथा दुर्गा के लालच मे पड़कर जो गति प्राप्त की, तुम क्या वह नही जानते ? उसी प्रकार तुम अगर सीता के प्रति जो ललचाओगे, तो जरूर उन्हींके समान विनष्ट होगे। जो जिससे बल में न्यून है, वह उससे क्या झगड़ा करने को ठानता है ? (अर्थात् नही) तुम अहंकार-बुद्धि वहन करके गर्व मे सिद्धि लाभ कर रहे हो। इसका नतीजा अच्छा नही होगा। ध्यान रक्खो। (२३)

बार्द्धिजा—सागर-सम्भूता लक्ष्मी; द्वन्द्व—झगड़ा, कलह। (२३)

बिश्रबासुत कोपरे प्रज्वळित शुणि ता बचन।
बिकोष करिण करबाळ[1] करवाळरे[2] ता मन।
बोइला अवज्ञा करु मोर आज्ञा मानव-भयाळु।
बाळक मुँ सते तु बुझाउ मोते के तोते सम्भाळु।२४।

सरलार्थ—मारीच की बात सुनकर विश्रवासुत रावण मारे क्रोध के जल उठा और म्यान से तलवार निकाल कर वाये हाथ से उसके बाल पकड़ना चाहा। फिर कहा, "अरे मानव-भयालु ! सामान्य मानव से डरकर मेरी आज्ञा की अवमानना कर रहा है ! मै क्या एक बालक हूँ जिसे तू समझा कर उपदेश दे रहा है ? अच्छा देखूँ अब तेरी रक्षा कौन करे !" (२४)

बिकोष करिण—कोष या म्यान से मुक्त करके; करबाळ[1]—तलवार; करबाळरे[2]—हाथ से बाल पकड़ना; (यमक) अवज्ञा—अवमानना; के तोते सम्भाळु—कौन तुझे सम्भाले (रक्षा करे) ! (२४)

बिचारिला ताड़केय ए माइले होइबि अमोक्ष ।
बैकुण्ठ गमन्ति राम करुँ हत देखिछि प्रत्यक्ष ।
बळिआई कहि आग मुहिँ तुहि मरिबु पछरे ।
बारि ताति झष शुखि ग्राहवश ग्रेमन्त कासारे । २५ ।

सरलार्थ—रावण का क्रोध देख मारीच ने विचार किया, "अगर यह (रावण) मुझे मारे, तो मेरा अमोक्ष (मोक्ष नहीं) होगा । मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि श्रीराम के हाथ से निहत होने से प्राणी बैकुण्ठ प्राप्त करते हैं। अतएव राम के हाथ से मरना कही कल्याणकर होगा" । ऐसा विचार करके मारीच ने आगे बढ़कर कहा, "जिस तरह तालाब का पानी सूर्य की किरणों से उत्तप्त हो जाने पर पहले मीन-समूह मर जाते हैं और फिर पानी विलकुल सूख जाने पर घड़ियाल सवंश मर जाते है, उसी तरह पहले मैं मरूँगा और बाद तुम सवंश मृत्यु के मुख में पड़ोगे । (२५)

ताड़केय—ताड़का-पुत्र मारीच; वळि आइ—आगे बढ़कर; वारि ताति—जल उत्तप्त होकर; झष—मीन, मछलियाँ; ग्राहवंश—घड़ियाल का समूह; कासारे—तालाब में । (२५)

बिषाण तीक्षण क्षुर सुघटन माणिक्ये निर्मित ।
बिराजे स्वर्ण अजिने लोमपन्ति मुकुता मर्कत ।
बिमळ क्षुद्र नीळेन्द्र मणिवृन्द पुच्छ कि चामर ।
बिचित्र मृग होइ बेगे विहरे रावण आगर । २६ ।

सरलार्थ—ऐसा बोलकर मारीच ने मायारूप धारण किया । उसके माणिक्य-निर्मित तीक्षण शृंग तथा खुर सुन्दर दीख रहे है । सुवर्ण-निर्मित चमड़े पर मोती तथा मरकत के रोये विराजित है । निर्मल तथा इन्द्रनील-मणियों से निर्मित छोटी पूँछ चामर की तरह शोभा पा रही है । इस रूप मे एक सुन्दर हिरन बनकर मारीच शीघ्र रावण के सामने विहार करने लगा । (२६)

बिषाण—सींग; क्षुर—खुर; सुघटन—सुन्दर; अजिने—चमड़े पर; पुच्छ—पूँछ, दुम; चामर—चँवर । (२६)

बसु प्रापत कृपण दीनवत होइला अनाइँ ।
बाहिला विमान पञ्चवटीवन बसाइ रसाइ ।
बेगे मायामृग यान करि त्याग अरण्ये पशिला ।
बैदेही चत्वरे खेळन्ते सत्वरे देखि से रसिला । २७ ।

सरलार्थ—उस विचित्र हिरन को देखकर रावण का मन फूला न समाया, मानो एक कृपण तथा दरिद्र मनुष्य ने रत्न पा लिया हो । अनन्तर

उसने उसका मन बहलाकर उसे विमान पर बैठाये हुए विमान को पञ्चवटी की ओर चलाया। वहाँ पहुँचकर मायामृग ने शीघ्रातिशीघ्र विमान छोड़कर वन में जा प्रवेश किया और सीता के आँगन में शीघ्र जाकर खेलने लगा। सीता ने उसे देखकर उसके प्रति श्रद्धा प्रगट की। (२७)

बसु—धन; अनाइँ—देखकर; चत्वरे—आँगन में; रसिला—सीता ने श्रद्धा प्रकट की। (२७)

बीणाजिणा-भाषी श्रीरामरे भाषि ए मृगे मो श्रद्धा।
बसन्ति अजिने अति सुरञ्जने ग्रिव कि ए बाधा।
बन्धने कवरी करन्ति चउँरी ए चारु चामर।
बामे धनु धरि राघब उच्चारि ए केते मातर। २८।

सरलार्थ—वीणा-विजित-वचना सीता ने श्रीराम से कहा, "इस हिरन के प्रति मेरी श्रद्धा बढ रही है। इसके चमड़े पर मै आनन्द सहित बैठती और इसकी मनोहर पूँछ के चँवर से केशों का जूड़ा बाँधने के लिए चौरी बनाती। क्या आप इसको तीर मार सकते है ?" श्रीराम ने बाये हाथ में धनु पकड़कर उत्तर दिया, "यह कौन-सा क्लेश का काम है ? (यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है"।) (२८)

कबरी—जूड़ा; चउँरी—चौंरी; ए केते मातर—इसमें क्या ही क्लेश है ? (२८)

बदति लक्ष्मण ए कपटी एण मारीच निश्चय।
बिलोकिबा थाउ शुणिछ बातायु स्वर्णरत्नमय।
बिनोद देखाइ दूर करिनेइ नृपजमानङ्कु।
बध करे तुंग श्रृंगरे ए रंग आसइ मनकु। २९।

सरलार्थ—तव लक्ष्मण ने कहा, "यह मायामृग निश्चय ही मारीच राक्षस है। स्वर्णरत्नमय मृग देखना तो दूर रहा, भला किसी ने उसके बारे में सुना भी है ? मेरे ख्याल में मारीच राक्षस कपटवेश में मृग बनकर राजपुत्रों को विनोद-कौतुक दिखाकर दूर ले चलता है और पर्वत की ऊँची चोटी पर उन्हीका वध करता है"। (२९)

वदति—वोलते हैं; एण-मृग, हिरन; विलोकिवा—देखना; वातायु—मृग, हिरन; नृपजमानङ्कु—नृपपुत्रों को। (२९)

बधिबि अवश्य मृग बा राक्षस श्रीराम बोइले।
बरारोहा भीरु नास्ति करु करु ता पछे धाइँले।
बोलिण लक्ष्मण सीतार रक्षण लागइटि तोते।
बड़ मायावी अस्रपे ए अटवी भ्रमन्ति निरते। ३०।

सरलार्थ—लक्ष्मण की वात सुनकर श्रीराम ने कहा, "चाहे यह मृग हो या राक्षस, मैं निश्चय ही उसका वध करूँगा।" लक्ष्मण की वातों से परमासुन्दरी सीता भयभीत हो पड़ी थी। इसलिए उनके राम को इस काम से वारण करते-करते राम मृग के पीछे दौड़े। तव वे लक्ष्मण से कह गये, "हे लक्ष्मण! तुम सीता की रखवाली करते रहो। वड़े मायावी राक्षस लोग इस वन मे निरन्तर घूम रहे है। इसलिए जरा सावधान रहना"। (३०)

वरारोहा—परमासुन्दरी; भीरु—भयालु; अस्रपे—राक्षस लोग; अटवी—वन। (३०)

बिदूर रक्ष विद्यु माया प्रत्यक्ष हुअइ नुहइ।
बिदूरे नेइ लक्ष्मण त्राहि कर त्रिबार शुभाई।
बधिरवत धीर सीता—देवर से शव्द श्रोतारे।
बसुमती-पुत्री वोइले सौमित्रि याअ हे सत्वरे। ३१।

सरलार्थ—वह मायावी राक्षस थोड़ी दूरी में विजली की तरह दिखाई देकर फिर ओझल हो जाता। इसी प्रकार वह श्रीराम को काफी दूर ले गया। अन्त में श्रीराम ने उसे तीर सन्धाना, तो मृग ने सीता तथा लक्ष्मण को सुनाते हुए ऊँची आवाज से 'हे लक्ष्मण, त्राहि-त्राहि!' ये शव्द तीन वार उच्चारे। सीता के देवर लक्ष्मण वहरे की तरह सुनकर भी अनसुने के समान स्थिर रहे। परन्तु पृथिवीकन्या सीता ने कहा, "हे लक्ष्मण! तुम शीघ्र ही जाओ"। (३१)

विदूर—थोड़ा दूर; रक्ष—राक्षस; विद्यु—विजली; विदूरे—विशेष दूर; शुभाइ—सुनाकर; वधिरवत—वहरे की तरह; सीता-देवर—लक्ष्मण; वसुमती-पुत्री—पृथिवीकन्या सीता। (३१)

बिपत्ति पतन पति तव नाम धरि ये डाकन्ति।
बिश्वे एक वीर ए निषत गिर ताङ्कर कि सति।
बोलन्ति लक्ष्मण मैथिळी भाषण छद्मे कि गमन।
बल्लभी करि मोते देव बिचारि भरत सदन। ३२।

सरलार्थ—सीता ने फिर कहा, "विपद पड़ने से शायद पति श्रीराम तुम्हारा नाम लिये पुकार रहे हैं"। सीता की वाणी सुनकर लक्ष्मण ने कहा, "अयि सति! विश्व भर में रामचन्द्रजी अद्वितीय वीर है। क्या उनसे ऐसे थकावट-भरे वचन निकल सकते है? (कदापि नहीं"!) लक्ष्मण के ऐसा वोलते सीता नाराज होकर बोली, "शायद तुम यहाँ हमारे साथ कपट से आये हुए हो। श्रीराम के अभाव मे शायद तुम मुझे लेकर भरत के गृह मे उनकी पत्नी के रूप में सौंपोगे"। (३२)

निषत गिर—थकावट भरे वचन; वल्लभी—पत्नी, प्रिया। (३२)

बैश्वानरे मुँ झासिबि बोलि खरे से पाशे गमित ।
बाह्य कर एक आत्मा दूषि हेब लक्ष्मण भाषित ।
ब्याघ्र पराये गतिकि ब्यग्र कले होइ से कुपित ।
बिजन-वन शंका घेनि जानकी हुअन्ते गुपत । ३३ ।

सरलार्थ—"अग्नि में मैं प्रवेश करूँगी" —कहती हुई सीता उसके पास जल्दी से चली । यह देख कर लक्ष्मण ने कहा, "हम चारों भाई एक आत्मा है, तुम हम लोगों को भिन्न कर दे रही हो । इसलिए तुम दूषित होगी" । —यह कह कर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर व्याघ्रगति से शीघ्र चलने लगे । तदनन्तर सीता विजन वन की शंका करके कुटीर में जा छिपीं । (३३)

वैश्वानरे—अग्नि में; झासिबि—प्रवेश करूँगी; गमित—गईं, चलीं; बाह्य कर—भिन्न कर रही हो; दूषि हेब—दूषित होंगी; लक्ष्मण भाषित—लक्ष्मण ने कहा; कुपित—क्रुद्ध; बिजन—जनशून्य; गुपत—गुप्त, छिप गईं । (३३)

बहि ग्रतिवेश रावण ये आस्य भुजकु लुचाइ ।
बिभूति अङ्ग करङ्क करमाळे शङ्कर जपइ ।
बसन कषाय भिक्षा आणि दिअ थाळरे बोइला ।
बस क्षणे ईश आसन्तु ए भाष भाषिण महिळा । ३४ ।

सरलार्थ—लक्ष्मण को चले गये देख कर रावण ने मुखों (नौ मुखों) तथा भुजाओं (अठारह भुजाओं) को छिपा लिया एवं ब्रह्मचारी का वेश धारण किया । उसने अपने सारे शरीर पर राख मल कर, कषाय वस्त्र पहने । वाये हाथ मे कमण्डलु तथा दायें हाथ में माला धारण किये, शंकर का नाम जपते हुए कुटीर के सामने आ पहुँचा एव 'मेरे थाल मे भिक्षा दो' कहते हुए, द्वार के सामने पुकारा । वह सुनकर सीता ने कहा, "एक ही क्षण के लिए प्रतीक्षा करना, मेरे ईश (पतिदेव) आवे" । (३४)

आस्य—मुख; भुज—भुजाओं को; लुचाइ—छिपाकर; बिभूति—राख; करंक-कमण्डलु; वसन कषाय—गेरुआ वस्त्र; ईश—पतिदेव; ए भाष—यह वचन; भाषिण महिला—रमणी (सीता) ने कहा । (३४)

विंशपाणि भणि ईशान कलेणि ए वने कि बसा ।
बैदेही कहि न बुझ कि से नोहि धबरे ए भाषा ।
बोले लंकपति एथि गतागति करन्ति वृक्षकि ।
बल्लभे कहइ राघवटि सेहि भाषित जानकी । ३५ ।

सरलार्थ—सीता से 'ईश आवे' सुनकर विंशपाणि रावण ने व्यग्योक्ति प्रकाश करते हुए कहा, "क्या ईशान (अर्थात् महादेव) इस वन में निवास

करने लगे है ?" सीता ने कहा, "क्या तुम समझ नही सके ? वह नहीं; 'धव'(पति) को भी ईश कहते है।" रावण ने यह सुनकर कहा, "क्या इस वन मे धव (वृक्ष) सव यातायात करते है ?" सीता ने कहा, "नही, 'धव' कहते है वल्लभ (स्वामी) को। मेरे धव (पति या वल्लभ) का नाम है राघव जी"। (३५)

ईशान—ईश्वर, महादेव; वसा—वास, वसेरा; धव—पति (सीता का उद्देश्य); धव-वृक्ष (रावण ने जिस अर्थ मे समझा)। (श्लेष वक्रोक्ति) (३५)

बिचित्र वाणी शुणिलि दैत्य भणि तुहि त मानुषी।
बारिधिवासी मत्स्य से स्थळे आसि तो संगे विळसि।
बक्र उकति कहुछ होइ यति वोइले पार्थिवी।
बोले मुँ लङ्केश तोते करि आश आसिछि साधवि। ३६।

सरलार्थ—यह सुनकर राक्षस रावण ने कहा, "वड़ी अनोखी वात मैंने तुम से सुनी। तुम तो मानवी हो, समुद्रवासी राघव मत्स्य क्या यहाँ आकर तुम से क्रीड़ा करता है ?" इस पर सीता ने कहा, "तुम तपस्वी होकर भी ऐसी वक्रोक्ति में वातचीत कर रहे हो !" अनन्तर रावण ने कहा, "अयि सति ! मै लंका का राजा हूँ। तुम्हारी आशा करके यहाँ आ गया हूँ"। (३६)

मानुषी—मानवी; वारिधिवासी—समुद्रवासी; पार्थिवी—पृथिवीकन्या, सीता; साधवि—हे सति ! (३६)

बिभूति किस कहिवि मोर देश कनकमृत्तिका।
बिंशभुज दशवदन विशेष पद्मिनीनायिका।
बड़पणु वसे इन्द्र द्वा:स्थ पाशे विशुद्ध जातिरे।
ब्रह्मार चतुर्थ पुरुष मुँ सत चिरायु ता बरे। ३७।

सरलार्थ—आगे रावण ने सीता के मन मे अनुराग पैदा करने के लिए अपनी सपत्ति, शोभा, वड़ाई तथा जाति की महत्ता दिखाते हुए कहा, "मेरी संपत्ति की वात क्या कहूँ ? मेरे देश की मिट्टी सोने की है, मेरे बीस भुजाएँ, दस शिर तथा अनेक पद्मिनीजातीया स्त्रियाँ है। मेरी वड़ाई की वजह से इन्द्र मेरे द्वारपाल के पास आ वैठता है। मै ब्रह्मा का चौथा वंशज हूँ, इसलिए जाति में विशुद्ध हूँ। अधिकन्तु ब्रह्मा जी के वरदान से मै चिरायु हुआ हूँ, यह सच है। (३७)

विभूति—संपत्ति, कनक-मृत्तिका—सोने की मिट्टी; द्वा:स्थ—द्वारपाल। (३७)

बोइले महीजा जातुधान या या नोहि शिरश्छेद।
वृषाळि चञ्चक विरूप कि ठिक वड़ाइ संवाद।

बीरकेशरी जायाकु लोड़ु हरि होइछि केबे हें ।
बीर आरण्य नृपुँ तो पति धन्य हेब कि से कहे । ३८ ।

सरलार्थ—यह सुनकर महीकन्या सीता ने कहा, "अरे राक्षस, तू यहाँ से जा, जा; मेरे पतिदेव से तेरा शिरश्छेद होने के पहले तू जल्दी भाग जा । तूने जो कहा कि मेरा देश सोने की मिट्टी का है, इससे साबित होता है कि तू 'वृष' (मूषिक) है, क्योंकि वह मिट्टी का आदर करता है। तूने जो कहा कि मेरे विंश भूजाएँ हैं, प्रतीत होता है कि तू 'अलि' (बिच्छू) है, क्योंकि बिच्छू के बहुत भुजाएँ है। फिर तेरे बहुत पद्मिनी नायिकाएँ होने के कारण तू 'अलि' (भ्रमर) है। अपने को 'चिरायु' कहने के कारण तू 'वञ्चक' (सियार) है, क्योंकि सियार चिरायु होते है और इसलिए कि तेरे दस मुख है, तू विरूप (विकृतरूप) है। इस प्रकार तू ठीक रूप से संजोकर अपनी बड़ाई का संवाद जाहिर कर रहा है। तू शृगाल होकर वीर केशरी की पत्नी का हरण करना चाहता है! यह क्या सम्भव हो सकता है?" सीता की बाते सुनकर रावण ने फिर कहा, "वीर अनरण्य (राम के पूर्वज) राजा से तेरा पति क्या अधिक धन्य या स्तुत्य है? (अर्थात् तेरा पति अनरण्य से क्या अधिक बलवान् है?) मैने तेरे पति से अधिक बलवान् अनरण्य राजा को मारा है, तो तेरे पति की मेरे सामने क्या सामर्थ्य ?" (३८)

जातुधान—राक्षस; वृषाळि—वृष अळि; वृष—मूषिक, चूहा; अळि—बिच्छू, भ्रमर (श्लेष); बञ्चक—शृगाल, सियार; विरूप—विकृत रूप; वीर केशरी—वीर सिंह; जाया—पत्नी; लोड़ू—चाहता है; हरि—हरण; आरण्य—सूर्यवंश के प्रथम राजा अनरण्य। (३८)

बप्ता दणरथ जणा सामरथ डराउँ भृगुप ।
वोले मैथिळी ता गर्व दळि नाश य़िबु रे कौणप ।
बंशाभिमान उद्धरे सुनन्दन से काळ प्रमाण ।
बहि निजमूर्ति बळे नेबा रीति आरम्भु रावण । ३९ ।
बरहि अन्तरे गुपत सत्वरे न देखि लंकेश ।
बेदमती मत एहि हेला सत विचारे मानस ।
ब्यक्त दिशु पुणि बळे धरि आणि आणन्ते अंगण ।
बात सरित स्थकित तरळित होइला पाषाण । ४० ।

सरलार्थ—"मुझे भलीभाँति मालूम है कि तेरे पति के पिता दशरथ की कितनी सामर्थ्य है। वह भृगुपति परशुराम के डर से स्त्रियों मे छिपा था। तो पुत्र की वहादुरी कितनी है"। सीता ने कहा, "रामचन्द्र ने परशुराम के गर्व को खर्व किया है। अरे राक्षस! अब तेरे विनाश का समय

आ पहुँचा है। सुपुत्र होने से ही वंश की मर्यादा की रक्षा करता है। अब वह मर्यादा-रक्षा का समय उपस्थित है। तूने अनरण्य राजा का विनाश किया था। आज उनके वंशज श्रीराम तेरा विनाश करके उसका वदला जरूर लेंगे"। यह सुनकर रावण क्रुद्ध होकर जब अपना रूप धारणपूर्वक सीता को लेने के लिए उद्यत हुआ, तो सती शीघ्र ही वहाँ से जाकर अग्नि मे ओझल हो गयी। उन्हें न देख सकने के कारण रावण ने सोचा—वेदमती की तरह यह कथा सत्य सिद्ध हुई कि उसने मेरे ही हेतु अग्नि मे प्रवेश किया। फिर सीता प्रगट हो कर दिखाई दी। तो वह उन्हे बलात् पकड़कर आँगन मे ले आया। यह घटना देखकर पवन और सरित सब स्थिर हो गये एवं पत्थर सब पिघल गये। (३९,४०)

बप्ता—पिता, बाप; भृगुप—भृगुपति परशुराम; मैथिळी—सीता; कौणप—असुर; सुनन्दन—उत्तमपुत्र; बरहि (र्बहि)—अग्नि; बात—पवन; सरित—नदियाँ; स्थकित—स्थिर; पाषाण—पत्थर। (३९,४०)

बसुधा कम्पिता चकित देवता कि हेला कि हेला।
बचने शोचने अश्रुविमोचने आकाश पूरिला।
बरषिला टोपा टोपा नीर किर्पा न थाइ मुदिर।
बिहंगे उत्सुके भाबन्ति चातके बारिले पानर। ४१।

सरलार्थ—और भी पृथिवी कम्पिता हुई। देवता लोग चकित हो गये। 'क्या हुआ?' 'क्या हुआ?' आदि करुण तथा शोकार्त्त शब्द आकाश मे गूँज उठे। सीता तथा देवता-लोगो के अश्रुत्याग से आकाश भर गया। उनके अश्रुत्याग से पक्षियों ने उत्सुक मन मे सोचा कि आकाश मे मेघ न होने पर भी जल बिन्दु-बिन्दु होकर कैसे बरसा? चातकों ने उन जल-बिन्दुओ को पीकर जाना कि यह मेघ का जल नही, क्योकि यह खारा लगता है। (४१)

टोपा-टोपा—बिन्दु-बिन्दु; मुदिर—मेघ; विहंगे—पक्षियों ने; बारिले-जाना, निर्णय किया; पानर—पीने से, पीकर। (४b)

बिबुध बिबिध बुद्धि कले सिद्धि के बोले ए सीता।
बोले के छाया के बोले माया काया जाणइ विधाता।
बन्दी[1] कारापुरे मुदिला प्रकारे बसाइ स्यन्दने।
बन्दी[2] होइ से स्तुति-पाठ-पठने बाहिला बहने। ४२।

सरलार्थ—देव लोग यह घटना देख कर नाना प्रकार के विचार मन में लाये। किसी ने कहा, 'ये सीता है', किसी ने कहा, 'यह सीता की केवल छाया है'। और किसी ने कहा, 'यह सीता की माया-देह है'। कैदी को कैदीखाने मे बन्दी करने की तरह रावण सीता को रथ मे बैठा

कर उनके सामने भाट की जैसी स्तुति पढ़ता हुआ शीघ्रता से रथ चलाने लगा। (४२)

बिबुध—देव लोग; बन्दी[1]—कैदी को; कारापुरे—कैदीखाने में; मुदिला प्रकारे—बन्द करने की तरह; स्यन्दने—रथ मे; बन्दी[2]—भाट; (यमक); बाहिला—चलाया; बहने—शीघ्रता से। (४२)

बनबळजा 'हा राम' स्वने पूर्ण जटायु तरके।
बनप्रियकु शिखाइ गीत शोकबराड़ी रागे के।
बजाइ वीणारे नारद रामरे संखोळि याइ कि।
बिंशबाहु सीता एकरथे स्थिता चाहान्ते बिलोकि। ४३।

सरलार्थ—वन भूमि के 'हा राम' स्वर से पूर्ण होते (अथवा सुन्दरी स्त्री सीता के 'हा राम' स्वर से वनस्थली के भर जाते), सपाति के भाई जटायु ने विचार किया, "कोई शोकबराड़ी राग से कोयल को गीत सिखा रहा है क्या? अथवा नारद अपनी वीणा मे 'राम' नाम अलापते हुए श्रीराम की अगवानी करने के लिए जा रहे है क्या?" मन में ऐसा तर्क-वितर्क करते हुए उसने देखा कि विशवाहु रावण तथा सीता एक ही रथ में बैठे हुए है। (४३)

वनवळजा—वनभूमि; वळजा—सुन्दरी स्त्री; तरके (तर्के)—तर्कणा करता है; बनप्रियकु—कोयल को; शोक-बराड़ी—करुण राग विशेष; संखोळि—अगवानी करने के लिए; चाहान्ते बिलोकि—जब ताक कर देखा। (४३)

बेद पोथि के सुराप करे देला बोलि से धाइँला।
बिस्तारि चञ्चु स्यन्दन ग्रास रचुँ उद्‌गारि थोइला।
बार्द्धि अगस्ति उदरे जीर्णमति एक्षणि हुअन्तु।
बैदेही त्राहि कहि देह बिदारि मुख त्रोटि हेतु। ४४।

सरलार्थ—'अरे, शराबी के हाथ में किसने बेदपोथी दी?'—कहता हुआ जटायु दौड़ पड़ा। चोंच फैलाकर रथ समेत रावण को ग्रसते ही, अचानक उसे ख़्याल हुआ कि रथ में जानकी जी है और यह समझ कर उसने रथ को उगल रक्खा। रावण की ओर निहार कर उसने कहा, 'अगस्ति मुनि के पेट मे समुद्र के हज़म होने की तरह अभी तू भी मेरे पेट मे हज़म हो जाता। केवल सीता ही के हेतु तूने रक्षा पा ली।' यह कह कर वह रावण की देह को अपनी चोच तथा नाखूनो से नोचने लगा। (४४)

सुराप—मद्यप; उद्‌गारि—उगलकर; थोइला—रक्खा; बार्द्धि—बारिधि, समुद्र; जीर्णमति—हज़म होने की तरह; त्रोटि—चोंच। (४४)

बिमानकु पक्षपाते पक्षघाते भांगिला उद्वेगे।
बामे क्षीणकुक्षी दक्षिणे पक्षकु छेदिला खड़्गे।

बसि पुष्पकरे भाबुँ आसिबारे पुष्करे गमन।
बार्त्ता देबाय़ाए अय़ोध्या ईश्वरे थाउ तो जीवन। ४५।

सरलार्थ—सीता की रक्षा के अभिप्राय से उद्वेग से जटायु ने अपने डैनो से रावण का विमान तोड़ डाला। अनन्तर रावण ने क्षीणकटि सीता को बाये हाथ में धारण किया एव दाये हाथ मे तलवार पकड़कर उससे जटायु के पंख काट डाले। उसके बाद उसके पुष्पक विमान का स्मरण करते ही, वह वहाँ आ पहुँचा। रावण सीता को अपने साथ लिये आकाश मार्ग में चलने लगा। इस समय सीता ने जटायु से कहा, रावण ने मुझे चुरा लिया, यह सवाद जब तक तुम श्रीराम को न दोगे, तब तक तुम्हारे प्राण शरीर में अवश्य रहे। (४५)

पक्षपाते—सीता का पक्ष करके; पक्षघाते—पंखो के आघात से; भांगिला—तोड़ा; क्षीणकुक्षी—पतली कमरवाली, सीता; पुष्पकरे—पुष्पक विमान में; पुष्करे—आकाश में; वार्त्ता—खबर; थाउ—रहे। (४५)

बोलँ ठाकुराणी रक्ष छळे मणि अयोध्याबर ये।
बारता प्रापते कि करिब मोते पुण से नाराजे।
ब्योमे रथ याइ ऋष्यमूके पाइ अवळा देखिले।
बसिछि सुग्रीव घेनिण सचिव भूषण काढ़िले। ४६।

सरलार्थ—देवी सीता के बोलते, रावण ने व्यग्य करते हुए उनसे कहा, "रामचन्द्र अयोध्यावर (अयोग्य योद्धाओं में श्रेष्ठ है, अर्थात् शत्रुओं से लड़ने को असमर्थ) है। इसलिए उसने अयोध्या का वर्जन किया। वार्त्ता पाकर वह शर से मेरा क्या कर सकेगा?" इतने में रथ आकाशमार्ग में उड़ता हुआ ऋष्यमूक पर्वत के सामने आ पहुँचा। वहाँ पर अबला सीता ने वानरराज सुग्रीव को अपने मन्त्रियों के सहित बैठे देखा। सुग्रीव को देख कर सीता ने अपने शरीर से आभूषण निकाले। (४६)

ठाकुराणी—देवी सीता; रक्ष—राक्षस रावण; भणि—कहा; अयोध्या वरये—जो अयोग्य योद्धाओं में श्रेष्ठ है, इसलिए अयोध्या का वर्जन किया; (श्लेष); नाराजे—नाराच से, शर से; घेनिण—साथ लिये; सचिव—मन्त्रियों को; काढ़िले—निकाले। (४६)

बसने बान्धि पकाइ कृपानिधि पाइबे कळपिण।
बानरेश पाइ देला शून्ये चाहिँ जानकी भाषण।
बार्त्ता कह रामे मोते लंका ग्रामे नेलाटि रावण।
बिसोरिले चित्तुँ मूळटि मो मृत्यु काहाकु दूषण। ४७।

सरलार्थ—यह विचार करके कि कृपानिधि श्रीरामचन्द्र जी यह

अवश्य पायेंगे, सीता ने अपनी ओढ़नी में अलंकार बाँध कर नीचे डाल दिये। वानरराज सुग्रीव ने उन अलंकारों को पाकर शून्य की ओर देखा। तो सीता ने उनसे कहा, "रावण मुझे लंकापुर में ले चला। तुम यह संवाद श्रीराम को देना और उनसे कहना कि अगर वे मुझे अपने मन से भुला दें, तो मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। यह निन्दा किसको होगी ? उन्हीं को ही तो"। (४७)

कळ्पिण—विचार करके; बिसोरिले—अगर भुला दे; काहाकु—किसको; दूषण—कलंक, निन्दा। (४७)

बोलिबाकु रथ गला एते पथ अदृश्य होइला।
बिभूषणमान करिण यतन सुग्रीव थोइला।
बियतुँ खसाइ रथ पुरे याइ अशोक विपिने।
बेढ़ाइ सहस्र असुरी जगाइ ताहिँरे प्रधाने। ४८।

सरलार्थ—सीता के ऐसा बोलते-बोलते रथ इतना दूर आगे बढ़ गया था कि वह बिल्कुल ओझल हो गया। सुग्रीव ने सीता के सारे आभूषण बटोर कर सयत्न अपने पास रख लिये। रावण आकाशमार्ग से रथ खिसका कर अपने पुर मे गया और अशोकवन में एक हजार राक्षसियों से सीता को घेरा रक्खा। उनमें प्रधान-प्रधान राक्षसियों को उसने सीता की रखवाली करने के लिए रक्षिकाओं के रूप में नियुक्त कर दिया। (४८)

बियतुँ—आकाश से; ताहिँरे—उनमें। (४८)

बेभारे समर्पि समर्पाकु सखी त्रिजटा कराइ।
बृद्धि हरष भवनरे प्रवेश हसिला हुअइ।
बान्धवी रामर पाशबन्धा मृगी पराय भयरु।
बहिला शिळा पितुळा तुळा सिद्धि सुशीळा हेबारु। ४९।

सरलार्थ—रावण ने सीता को अशोकवन में समर्पा नामक मुख्य रक्षयित्री के सुपुर्द कर दिया एवं त्रिजटा नाम्नी राक्षसी को उनकी सहेली के रूप मे नियुक्त कर दिया। अनन्तर आनन्द-वृद्धि के हेतु वह हँसता हुआ अपने गृह में जा उपस्थित हुआ। भय के कारण राम-पत्नी सीता फाँस से बँधी हिरनी की तरह हुई, परन्तु सुशीला होने के हेतु पत्थर की मूर्ति की तरह नीरव रही। (४९)

बान्धवी रामर—राम की पत्नी; मृगी—हिरनी; शिळा पितुळा—पत्थर की मूर्ति; सुशीळा हेबारु—सच्चरित्रा होने की वजह से। (४९)

बिधाता वचने सुधा घेनि बने नारद मिळित।
बिमोहित करि असुरीमानङ्क कहिले संकेत।

बिच्छेद तुटिब चतुर्द्दशमासे न कर शोचना।
बध रावण सगोत्र होइ हेब विमळलोचना। ५०।

सरलार्थ—ब्रह्मा के वचन से नारद अमृत लिये अशोकवन मे उपस्थित हुए। उन्होने राक्षसियों को विमोहित कर दिया और सीता को सकेत दिया कि चौदह महीने के बाद तुम्हारा बिछोह दूर हो जाएगा। कुछ चिन्ता न करना। अयि विमलनयने ! रावण सवंश विनाश-प्राप्त होगा। (५०)

सुधा—अमृत; घेनि—लिये; शोचना—चिन्ता, शोक; सगोत्र—सवंश। (५०)

बाधा न कटिब क्षुधापिपासा ए सुधा कर ग्रास।
बैद्य अष्टाङ्ग व्याधिमन्ते औषधि बिहिला सदृश।
बिबेक हेला पाइबि त मुँ धन्य ईश्वर भरसा।
बाहुड़िले ऋषि अमृतकु ग्रासि बसिले सुदृशा। ५१।

सरलार्थ—"लो, यह अमृत पान करो , तुम्हे भूख या प्यास कुछ भी नही सताएगी"। ये कथाएँ कह कर नारद ने सीता को स्वस्थ किया, मानो वैद्य ने औषध के द्वारा अष्टांग-व्याधिग्रस्त रोगी को स्वस्थ कर दिया हो। नारद के वचनो से सीता के विवेक का उदय हुआ, उन्होंने सोचा "श्रीराम को पाकर मैं धन्य होऊँगी, ईश्वर ही एक मात्र मेरे भरोसा है"। अनन्तर नारद वहाँ से लौट चले एव सुनेत्री सीता अमृत पीकर धीर-स्थिर होकर बैठी रही। (५१)

बाधा न करिब—नहीं सताएगी; क्षुधा—भूख; पिपासा—प्यास; अष्टांग व्याधिमन्ते—अष्टांग रोगग्रस्त रोगी को; सुदृशा—सुनेत्री, सुन्दर नयनवाली। (५१)

बिम्बोष्ठी अवनीदृष्टि अति कष्टी कपोळे श्रीकर।
ब्याकुळ केते न देखि हेबे मोते करे ए विचार।
बइदेहीश बिळास नाम गीत 'ब' कारे रचन।
बान पदे छान्द उपइन्द्र कृत बुझिबे सुमन। ५२।

सरलार्थ—विम्बाधरी सीता ने अतिशय दीना होकर वदन नीचा किये श्रीकर (दाये हाथ) को गाल पर रक्खे चिन्ता की, "श्रीराम मुझे पर्णकुटीर मे न देख कर कितने व्याकुल हो रहे होगे"। यह 'बैदेहीश बिळास' काव्य (अपनी प्रत्येक पक्ति मे) 'ब' ही को आद्य-अक्षर-स्वरूप से (आरभ मे) रखकर रचित किया गया है। कवि उपेन्द्र भञ्ज ने इस छान्द की बावन पदों मे समाप्ति की। पण्डित लोग इसका मर्म समझेगे। (५२)

बिम्बोष्ठी—बिम्बाधरी; अवनी-दृष्टि—पृथिवी की ओर देख कर; अति कष्टी—अति दीना-हीना; कपोळे—गाल में; श्रीकर—शोभित हस्त, दायाँ हाथ; वकारे—'ब' को आद्य अक्षर के स्वरूप रखकर; सुमन—पण्डित लोग। (५२)

॥ इति चतुर्विंश छान्द ॥

पञ्चविंश छान्द

राग—शंकराभरण

बाजी[1] बाजिबारे[2] त्राहि लक्ष्मण शबद।
बिचरने राम[1] राम[2] होइले स्तबध।
बिहिलाक नरबाणी। बिपद न पुण उपस्थित हुए शुणि। १।

सरलार्थ—शर के बजते ही कनकमृग के 'त्राहि लक्ष्मण' शब्दों का उच्चारण करने से रामचन्द्रजी ने चकित होकर सोचा, इसने पशु होकर भी मनुष्य के समान बात कही। यह सुनकर आशका हो रही है कोई मुसीबत कही न आ जाय। (क्योकि पशु का बोलना अपशकुन ही है।) (१)

बाजी[1]—शर; बाजिबारे[2] बजते ही; (यमक); बिरचने—बोलने से, उच्चारण करने से; राम[1]—मृग; राम[2]—रामचन्द्र जी; (यमक) होइले—हुए; स्तबध(स्तब्ध)—चकित; बिहिलाक—विधान की, कही; नरबाणी—मनुष्योचित कथा। (१)

बिमळ केमन्त चन्द्र से न मारुँ मरि।
बसिला कळंक होइ अंके सेहिपरि।
बध मोहयोगुं एहि। बिश्वे कळंक न करुँ रामचन्द्र मुहिँ। २।

सरलार्थ—चन्द्रमा कितना स्वच्छ है। उसके न मारने पर भी मृग अपनी इच्छानुसार मर कर उसकी गोद में कलंक-स्वरूप बैठा रहा, जब कि यह मृग मेरे ही हाथ से निहत हुआ। मै रामचन्द्र, अर्थात् रमणीय चन्द्र हूँ। ससार में यह मृग मेरा कलक न फैलावे। (२)

अंके—गोद में; सेहिपरि—उसी तरह; रामचन्द्र—श्रीराम, रमणीय चन्द्र; (श्लेष)। (२)

बिग्रहुँ मायामृगरु ज्योति बाहारिला।
बपुरे से दूषणरिपुरे मिशिगला।
बड़ सुकृत शबर। बाहुडिले भार करि सुमनसबर। ३।

सरलार्थ—कुछ समय के बाद उस मायामृग की देह से ज्योति निकली। वह ज्योति दूषण राक्षस के अरि श्रीराम के शरीर मे लीन हो गयी। इससे मारीच का सारूप्य मोक्ष सूचित हुआ। फिर क्या? उसके शव का भी बड़ा पुण्य है, क्योकि देवश्रेष्ठ पण्डित श्रीराम उसका कॉवर लिये कुटीर की ओर लौट चले। (३)

बिग्रहुँ—देह से; बपुरे—शरीर मे; शव—मृतदेह; भार—कॉवर, बहँगी; सुमनसबर—देवश्रेष्ठ या पण्डितश्रेष्ठ श्रीराम। (३)

बाटरे अनुज भेट मति विरसिता।
बोले वीर सीता काहिँ कलु तु एकता।
बक्षुँ होइले अन्तर। वहइ ये थर भये हृदय पथर।४।

सरलार्थ—लौटते समय श्रीराम ने अनुज लक्ष्मण को खिन्न मन से आते हुए देखा। वीर श्रीराम ने उनसे पूछा, "अरे! तुम सीता को अकेली कहाँ छोड़ आये? मेरे हृदय से अलग होने पर वह मारे भय के मन में काँप उठती है। (४)

अनुज—छोटे भाई लक्ष्मण; विरसिता—खिन्न, उदास; एकता—अकेली; हृदय-पथर—मन में। (४)

बोइले सुमित्रासुत शुण रघुराण।
बणा हेले जणा थाउ तुम्भ वीरपण।
बाणी मोर नामे त्राहि। बिकाशरु सरुमध्या भीरु भय वहि।५।

सरलार्थ—सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "हे रघुवशराज! सुनिए। आपकी वीरता सीता को भली-भाँति मालूम थी। फिर भी वह कृशकटि भीरु 'त्राहि लक्ष्मण' वाणी के प्रकाश से मारे भय के भटक गईं। (५)

बणा—भटकी, भौचक में पड़ी; सरुमध्या—क्षीणकटि, पतली कमर वाली। (५)

बैदेही प्रमाण फळे कटु करि जात।
बिदारित हृद-क्षेत्र सीता नाम सत।
बिना भक्षुँ जने बामा। बाणी सुधा बोले सुरमते नोहे समा।६।

सरलार्थ—उनका नाम है वैदेही। 'पिप्पली' को भी 'वैदेही' कहते हैं। पिप्पली की कटुता मनुष्य को असह्य यातना देती है। उसी प्रकार सीता ने कड़ी बात कह कर मेरे मन मे तीव्र व्यथा उत्पन्न की और अपने 'वैदेही' नाम को सार्थक किया। फिर 'सीता' का अर्थ होता है लांगल। सीता ने अपने वचनरूपी लागल से मेरे हृदय-रूपी खेत को कर्षित कर के अपने 'सीता' नाम को सार्थक किया है। लोगों ने अमृत का भोजन नही किया है, इसलिए स्त्रियों के वचन को वे अमृत-तुल्य समझते है। परन्तु देवताओं के, जिन्होने अमृत खाया है, मत मे उनकी वाणी अमृत के समान नही है।" (६)

बैदेही—सीता, पिप्पली; सीता—जानकी, लांगल (श्लेष); वामा—स्त्री; सुरमते—देवताओ के मत में। (६)

बिज्ञ यंणु ग्रोगी तेणु श्रद्धारे न शुणि ।
बोले राम शिबरु के बड़ ग्रोगी पुणि ।
बहि अर्द्ध अबयबे । बिदूर शङ्कारे शुणुछन्ति रात्रदिबे । ७ ।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने आगे कहा, "योगीजन विशेष ज्ञानी हैं। इसलिए वे उनकी बातों को श्रद्धा से नही सुनते" । लक्ष्मण के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, "इस संसार में शिवजी से बड़े योगी और कौन हैं ? वे तो स्त्री के अन्तर होने की आशंका से पार्वती को अर्द्धांग में धारण किये उनकी बाते दिनरात सुना करते है। तो फिर नहीं सुनता है कौन ? (७)

अर्द्ध अवयवे—अर्द्धांग में; विदूर—अन्तर; रात्रदिबे—रातदिन । (७)

बचन दीर्घ रचन सत्वर गमन ।
बाळा अनुसरि न आसिबा देखि छन्न ।
बिचारन्ति स्नेहाधीना । बिमना नुहे सदोषे एबे दोष बिना । ८ ।

सरलार्थ—श्रीराम ने लक्ष्मण से दीर्घ स्वर में ये बाते कह कर शीघ्र-गति से गमन किया । कुटीर के निकट उपस्थित होकर उन्होंने देखा कि सीता उनकी अगवानी करने के लिए नही आ रही है। तो वे बड़े व्याकुल होकर चिन्ता-मग्न हुए । उन्होंने सोचा, "सीता तो मेरी स्नेहाधीना है । मेरा दोष होते हुए भी वह कभी मुझसे रूठती नही। आज मेरे बिना दोष के वह ऐसा रूठीं क्यों ? (८)

छन्न—व्याकुल; विमना—रूठी हुई । (८)

बृक्ष करुणारे से निराश फळ कहि ।
बन्धु स्वाधीनभर्त्तृका बोलि येबे मुहिँ ।
बाड़े लेखिथाई स्मरि । बोलुथाइ लेख तवाधीनभर्त्ता करि । ९ ।

सरलार्थ—श्रीराम ने चिन्तामग्न होकर कहा, "करुणा के वृक्ष पर कभी नैराश्य का फल क्या फलता है ? (कभी नही ।) सीता करुणा की मूर्ति है । 'वे मुझे कभी निराश नही करेगी । अरी वन्धु ! जब मै दीवाल पर यह लिखता कि तुम स्वाधीन-भर्त्तृका हो, अर्थात् मै तुम्हारा अधीन या अनुगत हूँ, तब तुम बोलती 'हे नाथ ! ऐसा मत लिखता, यह लिखना कि मैं (सीता) तुम्हारे अधीन हूँ ।' ऐसी प्रीतिवत्सला सीता कभी मुझसे रूठ सकती है क्या ?" (अर्थात् नही) (९)

करुणा—दया; स्वाधीन-भर्त्तृका—जिस नारी के अधीन उसका पति रहता है; भर्त्ता—हे स्वामि । (९)

बिरहोत्कण्ठिता सार नागरीरतन ।
बिचारि त थान्ता नब नब भाबमान ।
बचनके मुँ ताहारि । बन्धने कबरी आणि आसिछि चउँरी । १० ।

सरलार्थ—वह नागरीवर सीता विरहोत्कण्ठिता नायिकाओ मे श्रेष्ठा है । मेरे विरह मे वियोगिनी होकर वे नये-नये भाव अपने मन में लाती । मै उनके एक ही पद की वाणी से कवरी-बन्धन के लिए चौरी ले आया हूँ । तो फिर वे विमना किस लिए हुई ? (१०)

विरहोत्कण्ठिता—काव्यादि में वर्णित नायिका विशेष, स्वामी के विरह के कारण उत्कण्ठा-जर्जरिता स्त्री; कबरी—जूड़ा; —चउँरी—चौंरी । (१०)

बासकसज्जा हुए मो पाशुँ गला क्षणे ।
बेश सारि शय्या करि निरेखे प्राङ्गणे ।
बिप्रलब्धा होइ धन । बिकाश कुसुमकाळे तेजि कोळिस्थान । ११ ।

सरलार्थ—मेरे समीप से जाते ही मेरी प्रियतमा सीता वासकसज्जा नायिका बनती है । अर्थात् वह स्वय अपना वेश सँवार कर सेज बिछाकर आँगन मे खड़ी मेरी राह देखती है । फिर प्रिया पुष्पवती होने के समय ही केलि-स्थान त्यागती है, मानोविप्रलब्धा मानिनीनायिका हों । आज तो वह अवस्था नहीं हुई है । वह क्यों दिखाई नही देती ? (११)

वासकसज्जा—काव्योक्त नायिका विशेष, स्वयं वेशभूषाओ से सज्जिता होकर तथा अपने केलिमन्दिर को नाना मनोहर द्रव्यो से सजाकर जो नायिका नायक की प्रतीक्षा करती रहती है; विप्रलब्धा—नायिका का एक भेद, संकेत स्थल में अपने नायक को न देख कर जो नायिका हताश होती है । (११)

बार बार अभिसार मो पाशे पण्डिता ।
बिपरीत मागिबारे हुअइ खण्डिता ।
बिधि प्रोषितभर्त्तृका । बान्धवीकु करिबाकु करुअछि दका । १२ ।

सरलार्थ—मेरी प्रिया अभिसारिका नायिका की तरह मेरे निकट बार-बार आने मे पण्डिता (निपुणा) है । जब मै विपरीत रति माँगता, वह खण्डिता नायिका वनती, अर्थात् क्रोधयुक्त होकर मेरे अनुरोध का खण्डन करती है । (अभी मैने तो उनसे विपरीत रति नही माँगी है । तो फिर आज उनकी यह रीति क्यो हुई ?) विधाता से मेरी प्रिया को प्रोषितभर्त्तृका (अर्थात् मुझ से उनका विछोह) करने की मै हमेशा आशका करता रहा । अब वह आशंका क्या वास्तव में उपस्थित हुई ? (१२)

अभिसारिका—नायिका विशेष; जो नायिका अपने प्रेमिक सहित मिलनार्थ संकेत स्थल को जाती है, वह अभिसारिका नायिका कहलाती है; खण्डिता—जिस नायिका का

नायक अन्य नारी के प्रति आसक्त होता है, जिस नायिका का पति अन्य स्त्री-सम्भोग-चिह्नों से चिह्नित होकर नायिका के समीप आने पर नायिका ऐसे नायक को देखकर ईर्ष्यान्विता होती है, वह खण्डिता नायिका है; प्रोषितभर्तृका—पति के प्रवास के हेतु कामार्त्ता तथा दुःखार्त्ता स्त्री। (१२)

बहिथिबारे शरीर जीवनईश्वरी।
बहिब नाहिँ कळहान्तरिता चातुरी।
बिर्बजित प्रियाहृद। बिच्छन्दरे केमन्ते से कला आसपद। १३।

सरलार्थ—जब तक मेरी प्राणेश्वरी ने शरीर-धारण किया (रखा) होगा, तब तक वह मुझसे कलहान्तरिता नायिका का सा वर्ताव नहीं करेगी। (अर्थात् कलह कर के मुझ से अन्तर नही होगी।) क्योकि मेरी प्रिया का हृदय कपटशून्य है। अब उन्होंने अपने हृदय को कैसे विशेष छल-कपट का आधार बनाया? (१३)

कळहान्तरिता—नायक से कलह करके पश्चात्ताप करनेवाली नारी;

बिर्बजित—शून्य; विच्छन्दरे—विशेष छल-कपट से, आसपद (आस्पद)—आधार, स्थान। (१३)

बोइले देहळी पाशे मृगभार थोइ।
बास देहर कि करि निबारिबु तुहि।
बिळम्बुँ मो करि हट। विधान ये करिअछु लुचिबा कपट। १४।

सरलार्थ—मन में श्रीरामचन्द्र यह विचार करते हुए कुटीर के सामने आ पहुँचे। उन्होंने देहली पर मरा मृग रख कर कहा, "मेरे लौटने में विलम्ब देख कर शायद तुमने हठ करके कपट से छिपने का विधान किया है। परन्तु अपने को तुम क्या छिपा सकती हो? तुम्हारे शरीर की सुगन्ध से मुझे इसका पता जरूर लग जाएगा कि तुम कहाँ छिपी हुई हो। सुतरां छिपने का तुम्हें कोई फ़ायदा नही मिलेगा। (१४)

बास—सुगन्ध। (१४)

बिलोप नोहिबु रसवती पुरे तमे।
बिधिरे प्रसन्नमुखी हास हीरा क्रमे।
बिस्तारित करि पाणि। बेश्मे पशि कोळकु आस रे प्रिय भणि।१५।

सरलार्थ—अयि रसवति! तुम अन्धकार मे अदृश्य नही हो सकती। क्योंकि दैवयोग से तुम प्रसन्नवदना हो। तुम्हारी हँसी हीरे के समान चमकेगी। इसलिए तुम अन्धकार मे भी दिखाई दे सकोगी।" यह कहकर रामचन्द्रजी ने पर्णगृह में प्रवेश किया एवं हाथ फैला कर पुकारा, "हे प्रिये, मेरी गोद में आ जाओ"। (१५)

विलोप—अदृश्य, गायब; रसवति—अयि शृंगाररसवाली सीते !; पाणि—हाथ; वेश्मे—घर में, पर्णकुटीर में; भणि—राम ने सीता को पुकार कर कहा। (१५)

बोलिथिलु भाण एका मृगचर्म पुच्छ।
बाछि बाछि तोळि आणि अछि पुष्पगुच्छ।
बस से अजिने बेगे। बान्धइ मुँ कुन्तळ चामर फुल य़ोगे। १६।

सरलार्थ—तुमने केवल मृगचर्म तथा मृगपुच्छ लाने को मुझसे कहा था। परन्तु मै उनके अलावे चुन-चुन कर कुछ पुष्पगुच्छ भी तोड़ लाया हूँ। तुम शीघ्र आकर कनकमृग के चर्म पर वैठो। फूलों तथा चवरो से तुम्हारे केश वाँध दूँ। (१६)

कुन्तळ—केश; चामर—चँवर। (१६)

बहिछु शंका चउँरी देइ मोर हस्त।
बदाइबे रचिबाकु कि पुरुषायित।
बोलिबाकु नाहिँ नाहिँ। बोइला बचन आन होइछि मो काहिँ। १७।

सरलार्थ—अयि प्रिये ! क्या तुम यही सोच कर भय कर रही हो कि तुम्हारी चौरी को हाथ मे देकर अपने विपरीत रति करने को तुमसे कहेंगे। नही, मै वह कहूँगा नही, अपने मन से तुम शका-त्यागपूर्वक मेरे निकट आओ। क्योकि तुम भलीभाँति जानती हो कि मेरा कहना अन्यथा नही होता। (१७)

पुरुषायित—विपरीत रति। (१७)

बन्धु तुहि धन तुहि प्राण तुहि सते।
बन्धु धन दूर करि आणिछि संगते।
बिगत तु हेले रक्षा। ब्रह्माण्डरे कि रूपरे अछि सुकटाक्षा। १८।

सरलार्थ—अरी सुदृशा ! तुम मेरी वन्धु, धन एव प्राण हो। क्योंकि मै वन्धु व धन छोड़ तुम्हें अपने साथ लाया हूँ। अगर तुमने मुझे त्याग दिया, तो इस संसार मे मेरी रक्षा का और कौन-सा उपाय है ? (१८)

सुकटाक्षा—उत्तमनयना, सुदृशा। (१८)

बसइ हृदये दया कठिन उरज।
बन्द्य जगतरे ज्येष्ठ अटइ सहज।
बिकर्मरु मोर हेजि। बरारोहा एमन्त भाबकु अछि भजि। १९।

सरलार्थ—अयि परमासुन्दरि ! तुम्हारे हृदय में कोमल दया गुण तथा कठिन स्तन दोनो निवास करते है। इन दो गुणों मे ज्येष्ठ है दयागुण,

जो इस जगत में पूज्य है। परन्तु कठिनगुण पूज्य नही। मेरे दुर्भाग्य के हेतु तुमने क्या कनिष्ठ कठिनगुण को धारण किया है ? यह समझ करके कि राम ज्येष्ठ होते हुए भी पूज्य नही हुए, वल्कि भरत कनिष्ठ होकर भी पूज्य हुए, शायद तुमने ज्येष्ठगुण दया को छोड़कर कनिष्ठ कठिनगुण को अपनाया है। (१९)

विकर्म—दुर्भाग्य; वरारोहा—परमासुन्दरि ! (१९)

बिनति इंगित छळ बचन प्रकाशि।
बेळे न पारिले यहुँ बाळा मन तोषि।
व्यर्थ बाचाळे पण्डित। बुझाइला प्राय शास्त्र होइला तेमन्त। २०।

सरलार्थ—ऐसे विनय-परिहास-छलपूर्ण वाक्य सब प्रकाश करके भी श्रीराम एक बार भी सीता का मन सतुष्ट नही कर सके। पण्डित का वाचाल या मूर्ख को शास्त्रार्थ समझाना व्यर्थ ही है। उसी तरह प्रभु के ये वचन सब व्यर्थ हुए, क्योंकि अनुपस्थिता सीता पर इन वचनों का कोई असर नही पड़ा। (२०)

वाचाळ—मूर्ख, वावदूक, बहुत बकवास करनेवाला। (२०)

बकता लक्ष्मणे कि जानकी क्षीणकुक्षी।
बिग्र हेला राक्षसी कपटे गला भक्षि।
बाध हेला स्तिरीहत्या। बध न कलाकु शुझाइला बइरता। २१।

सरलार्थ—तदनन्तर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "कृशोदरी सीता को क्या विगत-नासिका सूर्पणखा राक्षसी आकर कपट से खा गई ? हमने यह विचार करके कि स्त्री-हत्या का दोष कहीं हमें न सतावे, उसका वध नहीं किया। इस हेतु शायद उसने इस तरह अपनी शत्रुता का बदला लेने का मौका पा लिया !" (२१)

बकता लक्ष्मणे—राम ने लक्ष्मण से कहा; क्षीणकुक्षी—कृशोदरी; बिग्र—विगत-नासिका, नासा—कर्णहीना; शुझाइला—बदला लिया; बइरता—शत्रुता। (२१)

बिधाता बिधान कला के आन करिब।
बोलुँ पिता 'हा राम!' 'हा राम!' गला जीब।
बेळ पड़िला लक्ष्मण। बोलु 'हा रामा!' 'हा रामा!' ग्रिव मो पराण।२२।

सरलार्थ—"हे लक्ष्मण ! विधाता का विधान कौन अन्यथा कर सकता ? पिता दशरथ ने 'हा राम !' 'हा राम !' कहते हुए अपने प्राण त्यागे। अब वही समय आ पहुँचा जब कि 'हा रामा !' 'हा रामा !' कहते-कहते मेरे प्राण छूटेंगे।" (२२)

के—कौन; आन—अन्यथा; हा राम ! हा राम !—राम के वनगमन के समय दशरथ के मुख से उच्चारित 'राम' नाम की करुण पुकार; वेळ—समय; हा रामा ! हा रामा !—सीता के विछोह-जनित राम का करुण सम्बोधन, हाय प्रियपत्नि! (२२)

बिरचि करिण तोते कृपासिन्धु मित।
बोलइ ग्रे प्रथमु पीयूष करि जात।
बश करि कलु शिब। बिष जन्माइलु आन जने पार ग्रिब। २३।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीराम ने करुण विलाप करते हुए कहा, "अयि प्रिये ! तुम्हे मै कृपा-समुद्र कहता हूँ। समुद्र ने पहले अमृत और वाद में विष उत्पन्न किया। उसी तरह तुमने पहले सुखरूपी अमृत देकर मुझे अपने वश कर लिया सो शुभ किया। अन्त में अव तुमने विष पैदा किया। वह विष शिव के सिवाय दूसरा कौन हजम कर सकेगा ? (अर्थात् कोई नही।) (२३)

मित—वन्धु, प्रिया सीता के प्रति सम्वोधन; शिव—शुभ, भगवान् शंकर जी (श्लेष); पार—हजम। (२३)

बोलन्ति ग्रे चन्द्र शशी कर्पूर हाटक।
बारि शशी मात्र करे जगत आलोक।
विध्वंसइ तम घोर। बिबेकिरतन धन मने वेळे कर। २४।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने आगे दृष्टान्तस्वरूप कहा, "संसार में शशी, कर्पूर, सुवर्ण, जल—ये सब 'चन्द्र' कहलाते है। परन्तु केवल शशी ही अन्धकार का ध्वस करता है और जगत को आलोकित करता है। उसी तरह जगत में अनेक सीता-नाम्नी रमणियाँ होने पर भी केवल तुम ही मेरी हर्षकारिणी हो। अपि श्रेष्ठविचारशीले प्रिये ! यह वात एक ही बार अपने मन में विचारो तो सही। (२४)

शशी—चन्द्रमा; कर्पूर—कपूर; हाटक—सोना; बारि—जल; बिबेकिरतन—श्रेष्ठ विचारशीले ! धन-प्रिये ! वेळे—एक ही वार। (२४)

बसन्त ऋतु त अन्त होइ नाहिँ गोरि।
बचन कोकिळ किपाँ छाड़िला माधुरी।
बेळुबेळ से अधिक। बिभ्रम जन्मु पादपे विनय-सर्जक। २५।

सरलार्थ—अरी गोरि ! अभी तो वसन्तऋतु का अन्त नही हुआ है। तुम्हारे वचन-रूपी कोकिल ने क्यों अपनी माधुरी छोडी ? (बसन्त के रहते हुए भी तुम्हारी वाणी-कोयल की बोली क्यो नीरव हुई ?)" इस तरह के विभ्रम जात होने से उन्होने पेड़ो से विनय करके कहा—(२५)

कोकिळ—कोयल; विनय-सर्जक—विनती के सृजनकारी, विनय करके कहा। (२५)

बल्ली आलिंगन न तुम्भर नाहिँ भळि ।
बियोगी हेलि बिशेषे अनुसरिथिलि ।
बाळी काहिँगला भाष । बिकशित पुष्पे त निर्द्दय होइ हस । २६ ।

सरलार्थ—"हे वृक्षो ! तुम सबको तो अपनी प्रियतमा लताओं ने गले लगाया है । वह तो अन्यथा नही हुआ है । खास करके तुम सबका अनुसरण करके मै यहाँ रहा था । अब मैं वियोगी हुआ । वताओ तो ज़रा, मेरी सीता कहाँ गयी ? अरे, तुम उत्तर नही देते ! वरन् अपने खिले हुए फूलों के मिस निर्दय होकर हँस रहे हो ! मै तुम्हारे आसरे में पड़ा हुआ था । फिर भी तुम मेरी विपत्ति के समय हँस रहे हो ! यह क्या तुम्हारा उचित बर्ताव है ? (२६)

बल्ली—लता; आलिंगन—परिरम्भ; बाळी—पत्नी सीता; काहिँ—कहाँ; गला—गयीं; भाष—कहो । (२६)

बोलाउछ के रसाळ के पुणि अशोक ।
बिभीतक केहि करि तुम्भ मध्ये ओक ।
बिना रस मुँ होइबि । बुड़ि शोकरे भीतक होइ दिन नेबि । २७ ।

सरलार्थ—तुम सब में कोई 'रसाल' (रसवन्त आम), कोई अशोक (शोकहीन), फिर कोई विभीतक (बहेड़ा) (भयहीन) कहला रहा है । तुम्हारे वीच मैं निवास करके नीरस होऊँ, फिर शोक में डूव कर भयालु हो दिन विताऊँ ! यह तुम सबको सुन्दर दिखाई देगा क्या ? (२७)

ओक—घर, वास । (२७)

बोलाअ ये फळबन्त मो प्रति आशारे ।
बिफळ होइण किए होइब संसारे ।
बिहृद मुँ नोहे मित । बह बोलि तुम्भे जटा मुँ बहिछि सत । २८ ।

सरलार्थ—तुम सब फलवन्तों के रूप में जगत मे प्रसिद्ध हुए हो । मेरे प्रति आशा में तुम क्या विफल होगे ? अर्थात् मेरी आशा को तुम विफल कर दोगे ? मै तो तुम्हारा शत्रु नही, वरना मित्र हूँ । देखो, तुमने जटा धारण की है तो तुम्हारे समान मैने भी जटा धारण की है । यह सच है । (२८)

विहृद—शत्रु । (२८)

बिमोदित एक पत्र—बास सुमनरे ।
बळ्कळ पिधान पुणि शाखा रञ्जनरे ।
बिळसित करे खग । बार्त्ता कहि मो प्रियार नाश हे उद्वेग । २९ ।

सरलार्थ—हे वृक्षगणो ! तुम और मै, दोनों एक-से हैं। तुम पत्रो तथा बास-सुमनो (सुगन्धित फूलो) से विशेष रूप से आनन्दित हो रहे हो। मै भी तुम्हारे समान पत्र-वास (पर्ण-कुटीर) तथा सुमन (उत्तम मन) से विशेष आनन्दित हुआ करता था। तुम सब बल्कल पहने हुए हो। मैं भी वल्कल का वस्त्र पहने हुए हूँ। तुम शाखाओं (डालों) से रञ्जित हुए हो। मै भी तुम्हारे समान शाखा (सहायक लक्ष्मण) के सहित मण्डित हुआ हूँ। तुम पर खग (पक्षी) लोग विलास करते है। मेरे हाथ मे भी खग (शर) सुशोभित होते है। ऐसी स्थिति में मैं सर्वतोरूपेण तुम लोगो का मित्र हूँ। अतएव मेरी प्रिया की खबर देकर मेरे हृदय के उद्वेग को दूर करो। (२९)

एका—एक-से; पत्र-वास-सुमनरे—पत्रों तथा सुगन्धित फूलों से (वृक्षों के पक्ष में), पर्ण-कुटीर तथा उत्तम मन से (राम के लिए) (श्लेष); बल्कल—छाले; पिधान—परिधान, वस्त्र; शाखा—डाल, सहायक; खग—पक्षी, शर (श्लेष)। (२९)

बाते पल्लब चळिले केउँ मार्गे नगे।
बिबेक ए ठारन्ति अछि कि एहि दिगे।
बास निकटे ऋषिङ्क। बिशुद्ध बाक्यकु शिखिछन्ति सारी शुक। ३०।

सरलार्थ—उस समय वृक्षों पर पत्ते पवन के द्वारा किसी ओर सचालित होने लगे। प्रभु ने उस तरफ ताक कर मन में विचार किया, "शायद ये वृक्ष मुझे इशारे से वता रहे है कि मेरी प्रिया इसी ओर गई है। सुतरा उसी ओर चल कर उन्होने सुना कि ऋषियो के आश्रमों के समीप शुकसारिकाएँ आपस मे विशुद्ध वाक्यो में बातचीत कर रही है। (३०)

वाते—पवन से; नगे—वृक्षों में; विवेक—विचार किया; ठारन्ति—इशारा करते हैं; सारी—मैनाएँ; शुक—तोते। (३०)

बोलन्ते राम राघब दाशरथि तहिँ।
बिबेचना नाम धरि डाके कि बैदेही।
बेगि होइ देखि मार्ग। बैष्णव सरसी प्राय चक्रचिह्ने योग। ३१।

सरलार्थ—उन तोतो तथा मैनाओ मे से कोई 'राम', कोई 'राघव' और कोई 'दाशरथि' नाम लेकर पुकार रहा है। उक्त पुकार सुन कर राम ने विचार किया "शायद सीता मेरा नाम लेकर पुकार रही है"। यह सोच कर मार्ग पर शीघ्र चलते-चलते उन्होंने देखा कि मार्ग वैष्णवो तथा सरोवरों की तरह चक्रचिह्न-युक्त हुआ है। अर्थात् जिस तरह वैष्णव लोग चक्रचिह्नो से और सरोवर चक्रवाकों से युक्त होते है, उसी तरह यह मार्ग भी रथ के चक्र-चिह्नो से युक्त हुआ है। (३१)

विवेचना—विचार किया; प्राये—समान, तरह; चक्र—चक्र की छापें, चकवे, चक्के; (श्लेष)। (३१)

बदन्ति भ्राते सुदन्ती सुदन्ति-गमनी ।
बळे बसाइ स्यन्दने के गला कि घेनि ।
बारि-राशि मध्ये मोर । बहित्र कटाइ धन हरिनेला जूर । ३२ ।

सरलार्थ—रथ के चक्र-चिह्न पड़ते देख कर राम ने भाई लक्ष्मण से कहा, "गजराजगमना सुदशना सीता को बलात् रथ पर बैठाके कोई ले गया क्या ? जिसने ऐसा किया, उसने मेरे भाव-समुद्र में चलते हुए प्रीति-वाणिज्य के पोत को भग्न कर सीता-रूपी धन को लूटकर ले लिया । (३२)

सुदन्ती—सुदशना; सुदन्तिगमनी—गजगमना; स्यन्दन—रथ; बारिराशि—समुद्र (भाव का); बहित्र—बोहित, जहाज; हरि नेला जर—लूट कर ले लिया । (३२)

बाणिज्य विहीने केहि जीवन पोषिबि ।
बर्ष्म-शिळे काहा तनु-सुवर्ण कषिबि ।
बारबानरु से फाइँ । बृद्धि रति लाभ मन अनुरूपे पाइ । ३३ ।

सरलार्थ—अब वाणिज्य के बिना मै कैसे जीवन का पोषण करूँ ? मेरी देहरूपी कसौटी पत्थर पर किसके शरीर-रूपी सुवर्ण को कसूँ ? अर्थात् अब किसको मै गले लगाऊँ ? बिशुद्ध सुवर्ण से मेरी प्रियतमा का तनु-सुवर्ण अधिक है । अपनी चाह के अनुसार बाणिज्य में सोना यदि रत्ती मात्र बढ़ जाय, तो सौदागर का आनन्द बढ़ जाता है । उसी तरह मैं प्रिया से सुरति का लाभ करके सुखी हुआ करता था ।" (३३)

बर्ष्म-शिळ—देहरूपी कसौटी पत्थर; बारबानरु—विशुद्ध सुवर्ण से; फाइँ—अधिक । (३३)

बिह्वळिला मानस झिल्लिका स्वन शुणि ।
बाजुछि त नूपुर संद्राव य़ोषामणि ।
बेगि पुणि एते भणि । बिभञ्जन रथकु देखिले चापपाणि । ३४ ।

सरलार्थ—इस समय झीगुरों की ध्वनि सुनकर रामचन्द्र जी का मन विह्वलित हो गया और उन्होंने सोचा, "यह ध्वनि मेरी रमणीमणि के नूपुरों की ध्वनि है । शायद उन्हे लिये चलनेवाले व्यक्ति के समीप से मेरी प्रियतमा भागी जा रही है" । यह विचार करके धनुर्द्धारी रामचन्द्र अत्यन्त शीघ्रता से आगे बढ़े और मार्ग मे विशेष रूप से भग्न एक रथ पड़ा देखा । (३४)

झिल्लिका—झींगुर; संद्राव—भागना; य़ोषामणि—रमणीमणि; बिभञ्जन—विशेष रूप से भग्न; चापपाणि—धनुर्द्धारी, रामचन्द्र । (३४)

बिलोळ चित्त मो शुभ कर्मे ए भगन।
बामाचोर धरि ताकु करे कि गमन।
बदे भ्रमर किंकिणी। बिरचिबारु कि रण रण पुणि पुणि। ३५।

सरलार्थ—वह भग्न रथ देख कर श्रीराम का चित्त अधिक चञ्चल हो उठा। उन्होंने सोचा, "मेरे ही शुभ कर्म के हेतु यह रथ भग्न हुआ है। नारीचोर मेरी प्रिया को लिये भाग रहा है क्या ?" उस समय भौरों का गुञ्जन सुन कर उन्होने समझा, "शायद सीता चोर के सहित युद्ध कर रही है जिससे उनकी करधनी बारवार ऐसी ध्वनि कर रही है।" (३५)

बिलोळ—अस्थिर, चञ्चल; किंकिणी—करधनी; रण—युद्ध; रण—ध्वनि; यमक; पुणि-पुणि—बार-बार। (३५)

बाणी शुणाइबा भळि रह रह डाकि।
बन्धु रससिन्धु रसाभूषा बोलि टेकि।
बक्त्रतुले विधु तुळॅु। विद्यमाने कवि हृद-पात्रे लघु कलॅु। ३६।

सरलार्थ—उन्होने सीता को सुनाते हुए ऊँचे स्वर से पुकार कर कहा, "अयि बन्धु ! अरी रससिन्धु ! अयि पृथिवी-शोभिनि ! जरा ठहरो, ठहरो। अयि सीते ! कवियो ने तुम्हारे मुख के साथ चन्द्र की तुलना करने के उद्देश्य से दोनो को अपने-अपने हृदय-तराजू पर तौला तो तुम्हारे मुख ने चन्द्रमा को हल्का कर दिया और फलस्वरूप वह ऊपर आकाश को उठ गया। (वज़न में जो कम होता है, वह ऊपर उठ जाता है।) अतएव तुमने अपनी मुख-शोभा मे चन्द्र को खर्व कर दिया है। (३६)

रससिन्धु—रस का समुद्र; रसाभूषा—अयि पृथिवीशोभिनि ! वक्त्र तुले—मुख के साथ; विद्यमान—स्थित, मौजूद; लघु—हल्का (व्यतिरेक अलंकार)। (३६)

ब्रह्मा यहुँ जात ताकु दळिछु पादरे।
बन्धाउ शाटीधटीरे सिंहकु मध्यरे।
बिपक्षर जीवनकु। बळाइछु मोर करे देबार मनकु। ३७।

सरलार्थ—जिस कमल से ब्रह्मा पैदा हुए है, तुमने उस कमल को अपने पैरों से कुचल दिया है। (अर्थात् कमल से तुम्हारे पैरों की अधिक शोभा है।) मध्यभाग अर्थात् कटि में पहनी साढ़ी के पाड़ से तुमने सिंह को बाँधा है। (तुम्हारी कटि सिंह-कटि से भी क्षीणतर है।) अतएव तुम महावीरा हो। अब तुमने स्वय अपने हाथों से शत्रु का विनाश न करके उसके प्राणों को मेरे हाथ देने को (विनाश करने के लिए) मन किया है। (३७)

यहुँ जात—जिस से जात (पद्म); शाटी-घटीरे—साढी के पाड़ से; बिपक्षर—शत्रु के; बळाइछु—मन किया है। (३७)

बोलिबोलि ग़ाउँ एहा जटायु पुच्छित ।
बिज्ञान हत अन्तरे कहिला उदन्त ।
बिभो! कोदण्डधारण । बैदेही घेनि गलाटि लंकाकु रावण । ३८ ।

सरलार्थ—यह बोलते हुए श्रीरामचन्द्र चलने लगे। मार्ग में उन्होंने जटायु को देखकर उससे पूछा। वह अचेत होकर पड़ा था। मूर्च्छाभंग के अनन्तर उसने सवाद दिया, "हे प्रभो कोदण्डधारि श्रीरामचन्द्र! रावण सीता को लिये लंकापुर चला गया।" (३८)

जटायु पुच्छित—जटायु से पूछा; विज्ञान हत अन्तरे—संज्ञाहीनता (मूर्च्छा) दूर होने पर; उदन्त—संवाद; घेनि—लिये। (३८)

बिबादे मुँ भांगिलि शतांग मोते हाणि ।
बसाइ पुष्पके घेनि गला रामामणि ।
बसा मध्यरु कपोती । बन्दी करि जाले ग़था लुब्धके निअन्ति । ३९ ।

सरलार्थ—यह देख कर मैने उसके साथ युद्ध करके उसका रथ तोड़ दिया, तो उसने मेरे दोनों पंख अपनी तलवार से काट दिये। जिस तरह व्याध (शिकारी) कपोती को उसके घोंसले से निकाल कर जाल में भर लेता है, उसी तरह रावण रामामणि सीता को पुष्पक विमान में बन्दी बनाये ले चला। (कोई-कोई व्याख्याता श्लेष मे 'पुष्पक' का 'रत्नकंगन' अर्थ और 'मणि' का 'लाल' अर्थ लेकर ऐसा अर्थ भी करते है। जिस तरह रत्नकंगन पर मणि जड़ाते है, उसी तरह रावण पुष्पक विमान में रामामणि सीता को बैठाये लंका ले चला।) (३९)

विवादे—युद्ध को; शतांग—रथ; लुब्धक—शिकारी, व्याध, बहेलिया। (३९)

बिजे कर दक्षिणे दक्षिण तुम्भे गुणे ।
बिशकर प्राण क्षीण कर तीक्ष्ण बाणे ।
बोलि बिसर्जिला जीब । बिहायसे रहि दिव्यरूपे कला स्तब । ४० ।

सरलार्थ—जटायु ने फिर कहा, "आप तो अपने क्षत्रिय-गुणों में दक्षिण (प्रवीण) है। अब दक्षिण दिशा में विराजमान होइए (पधारिए) एवं तीक्ष्ण शरों से रावण के प्राण क्षीण (विनाश) कीजिए।" यह कहते हुए जटायु ने प्राण त्याग किये। उन्होने आकाश में रह कर दिव्यरूप धारण कर श्रीराम की स्तुति की। (४०)

विशकर—रावण; विहायसे—आकाश में। (४०)

बिमळ होइ लभिला से परम गति ।
बह्नि ग़ोग कले शब स्वयं रघुपति ।
बासबरे बन्द्य ग़ेहि । बिप्र पोष्यपुत्र प्राय प्रेतक्रिया बहि । ४१ ।

सरलार्थ—जटायु यह पुण्यकर्म करके निर्मल हुआ एवं उसने परमगति (मुक्ति) लाभ की। इन्द्र के द्वारा बन्दनीय (पूज्य) श्रीराम ने जटायु के शरीर पर अग्नि-संयोग किया। फिर विप्र के गोद लिये हुए पुत्र की तरह प्रभु ने उसकी प्रेतक्रिया का यथाविधि सम्पादन किया। (४१)

शव—मुर्दा; बास बरे—इन्द्र के द्वारा; पोष्यपुत्र प्राय—गोद लिये हुए पुत्र की तरह। (४१)

बहिला प्राये कळिन्द पर्वतुँ काळिन्दी।
बक्षस्थळे पड़े अश्रु गले कान्दि कान्दि।
बयाळिश पदे छान्द। बिरचन वीरवर चिन्ति रामचन्द्र। ४२।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र के वक्षदेश पर आँसुओं की धारा वह चली, मानो यमुना नदी कलिन्द पर्वत से छूट चली हो। इस तरह विलाप करते हुए वहाँ से प्रभु ने दक्षिण की ओर गमन किया। वीरवर भञ्जकवि ने रामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए बयालीस पदों में इस छान्द की रचना की। (४२)

काळिन्दी—यमुना नदी। (४२)

॥ इति पञ्चविंश छान्द ॥

षड्विंश छान्द

राग—मङ्गल वराड़ि। मुनिवर वाणी। (प्रान्त यमक)

बने घने रघुमणि। बिपथ पथ न मणि।
बनपूर्ण अनुक्षण। बेनि ईक्षण ये। १।

सरलार्थ—श्रीराम के दोनों नेत्र सर्वदा अश्रुजल से पूर्ण है। इसलिए वे घने जंगल मे यह जानने के लिए कि यह मार्ग है या अमार्ग है, असमर्थ होकर आगे चल रहे हैं। (१)

बने घने—घने वन में; रघुमणि—रघुवंश के मणि-स्वरूप श्रीराम; विपथ-पथ—अमार्ग अथवा मार्ग; वन—जल, आँसू; अनुक्षण—सर्वदा; बेनि ईक्षण—दोनों नेत्र। (१)

बिछन्न मन उचित। बचन उच्चे रचित।
बिच्छेद हेलु तुरिते। बैदेही सीते ये। २।

सरलार्थ—सीता जी के वियोग के कारण उनका मन विशेष रूप से आकुल हो रहा है। यह उचित (अर्थात् स्वाभाविक) ही है। इसलिए वे ऊँचे स्वर में वचन बोल रहे है—"अयि वैदेहि! अयि सीते! तुम लेशमात्र ही दुःखित न हो कर (थोड़ी-सी भी मनोवेदना का अनुभव किये बिना) अत्यन्त सहज रूप से मुझ से बिछुड़ गयीं। (२)

बिच्छन्न—व्याकुल, विशेष रूप से छन्न; ईषिते—सहज ही, अनायास ही। (२)

बनद तमाळ तम। बाळे नुहे तारतम।
बिच्छेदाइ हेले तम। बिश्व उत्तम ए। ३।

सरलार्थ—मेघ, तमाल अन्धकार तथा राहु कालिमा में तुम्हारे केशों सहित तुलनीय नही है। राहु ने तुम्हारे केशों से समान होने की अभिलाषा की थी। परन्तु भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका शिरश्छेद करके उसका गर्व नाश किया। तुम्हारे केश इस प्रकार समूचे विश्व में उत्तम हैं। (३)

बनद—मेघ; तम—अन्धकार, राहु; तारतम—तुलनीय, समान; विच्छेदाइ—विखण्डित किया। (३)

बायुबाहन चमरी। बन्धे गर्भक सुमरि।
बिदूर सेहि सकाशे। बिहि प्रकाशे कि। ४।

सरलार्थ—ऐसे तुम्हारे सर्वोत्कृष्ट केशों को भूषण-स्वरूप चमरी मृग

की पूँछ के मध्य भाग में बाँध कर विधाता ने शायद उसकी शोभा बढ़ाना चाहा। अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए उसने शायद मुझसे तुम्हारा बिछोह संघटित किया। (४)

वायुवाहन—चमरी मृग; चमरी—पूँछ; गर्भक—केश या पूँछ मध्यस्थ भूषण; विधुर—बिछोह; सेहि सकाशे—उसी हेतु। (४)

बसिबे उच्च समाने। बेभारे किञ्चित माने।
बिधि सिद्धिकि रखिछि। बुद्धि शिखुछि ये। ५।

सरलार्थ—मेरी देहकान्ति तुम्हारे बिछोह के कारण मलिन हो जाने से विधि-निर्मित नीच अथवा निकृष्ट सारे उपमान (हम जैसे) उच्चतर या उत्कृष्टतर उपमेयों के साथ वास्तव मे एक ही आसन पर बैठे, तो विधाता की कीर्त्तियाँ उचित रूप से सुरक्षित रहेंगी, अर्थात् उनसे निर्मित सारे उपमान अपनी-अपनी स्वाभाविक बड़ाई जारी रक्खेगे। शायद इसी उद्देश्य से उसने मुझसे तुम्हारा वियोग संघटित करने की बुद्धि सीखी है, अथवा उपाय ठाना है। (५)

बेभारे—व्यवहार या रीति में, वास्तव में; किञ्चित माने—नीच उपमान सब; विधि—विधाता ने। (५)

बिहराइला चन्दने। ब्याळ पाइला निन्दने।
बसाइ चन्द्ररे शशा। बिना प्रशंसा ए। ६।

सरलार्थ—यों तो पहले (हमारा उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए) विधाता ने स्वनिर्मित उपमानों को तुच्छ या निकृष्ट करने की कोशिश की थी। उदाहरण-स्वरूप उसने कभी चन्दनवृक्ष पर सापों को लिपटाया, तो भी निन्दा पायी। फिर कभी चन्द्रमा पर शशक को बैठाकर भी कोई प्रशंसा नही प्राप्त की। अब फिर जो बुद्धि सीख रहा है, उसमें भी उसे प्रशंसा नही मिलेगी। (६)

बिहराइला—लिपटाया; ब्याळ—साँप; शशा—खरगोश। (६)

बिभोग काळ विचारि। बन्धु कलि बनचारी।
बाञ्छिला अकर्मबन्त। बिफळबत ए। ७।

सरलार्थ—विधाता की निन्दा करने के बाद रामचन्द्र ने खिन्न मन से कहा, "यह विचार करके कि यौवनावस्था सम्भोग का उपयुक्त समय है मैंने अपनी प्रिया को वनचारिणी किया, अर्थात् उन्हें अपने साथ ले आया। परन्तु कर्महीन (भाग्यहीन) मनुष्य का मनोरथ जैसे विफल होता है, उसी प्रकार मेरा मनोरथ विफल हुआ। (७)

बिभोग—सम्भोग; बन्धु—प्रिया; अकर्मबन्त—भाग्यहीन। (७)

बिपिने करि बिळास । बढ़ाइथिलि उल्लास ।
विध्वंस यथा स्वपन । बृद्धि कम्पन ये । ८ ।

सरलार्थ—प्रिया के साथ वन में विहार-पूर्वक मैं आनन्द बढ़ा रहा था। अब वह आनन्द-स्वप्नवत् कही ध्वंसप्राप्त हो गया।" इसी तरह चिन्ता करते-करते उनके शरीर में कम्पन पैदा होकर बढ़ने लगा। (अर्थात् वे विरह-वाधा के कारण उत्तरोत्तर अधिक काँपने लगे। (८)

उल्लास—आनन्द। (८)

बोलाउ अति गुणिक । बनितारत्ने माणिक्य ।
बेळुँबेळ रागनिधि । बसुँ सन्निधि ये । ९ ।

सरलार्थ—फिर बोले, "अयि प्रिये ! तुम अत्यन्त गुणवती कहलाती हो। तुम स्त्री-रत्नों में माणिक्य हो। तुम समय से समय पर, अधिक से अधिकतर स्नेह के आधार बन कर मेरे समीप आ बैठती थीं। (९)

गुणिक—गुणवती; वनिता-रत्ने—स्त्री-रत्नों मे; बेळुँबेळ—समय से समय पर; रागनिधि—अनुराग का आधार; बसुँ—बैठती थीं; सन्निधि—पास। (९)

बाहुरे करि बन्धन । बोलुथाउ एका धन ।
बाधि न पारे दीनता । बड़ उन्नता मुँ । १० ।

सरलार्थ—तुम अपनी बाहुओं से मुझे गले लगा कर बोलती, 'तुम्ही केवल मेरे एक मात्र धन हो। क्योकि तुम्हारे ही साथ रहने के हेतु मुझको कोई दुःख नहीं सता सकता।' तुम से यह कथा सुनकर मैं अपने को महाजन समझकर आनन्दमन हुआ करता। (१०)

एका धन—एक मात्र धन; बाधि न पारे—सता नहीं सकता; बड़ उन्नता—महाजन, महत जन। (१०)

बणा हेलि तेजुँ दण्डे[१] । बिभर्ति हेलि कि दण्डे[२] ।
बाहुड़ि आउ पाइबि । बोधि होइबि कि । ११ ।

सरलार्थ—हिरन के लोभ से मैंने भटक कर एक मात्र दण्ड के लिए तुम्हे छोड़ जा कर क्या ही दण्ड भोग किया ! क्या तुम्हें फिर सचमुच वापस पाकर मैं सान्त्वना पाऊँगा ? (मुझे इस का विश्वास नही हो रहा है।) (११)

वणा—भटका, पथभ्रष्ट; दण्डे[१]—एक ही दण्ड (घड़ी) के लिए; विभर्त्ति—विशेष रूप से भरती; कि दण्डे[२]—किस ही दण्ड द्वारा; (कितने ही बड़े दण्ड से मै सराबोर हो गया।) यमक (११)

बिदारि हेउछि उर । बसिथिला के चउर ।
बिदूर मोर हेबाकु । बेगे नेबाकु से । १२ ।

सरलार्थ—यह कथा स्मरण करते ही मेरा हृदय फटता जा रहा है। कौन चोर ऐसी सतर्कता से जग बैठा था कि मेरे तुम्हारे निकट से अन्तर होते ही वह आकर तुम्हे चुरा ले गया ! (१२)

विदारि हेउछि—विदीर्ण हो रहा है, फटता जा रहा है; उर—हृदय; चउर—(चौर), चोर; विदूर—अन्तर। (१२)

बिचित्र थिला से बन । बिम्ब चन्द्रर चुम्बन ।
बाळारुणुँ पान सुधा । बड़ बिशुद्धा ये । १३ ।

सरलार्थ—वह दण्डकारण्य वड़ा अनूठा था। क्योंकि वहाँ मैं एक ही साथ चन्द्रमण्डल (तुम्हारे मुख-रूपी चन्द्रमण्डल) से तथा वालसूर्य-मण्डल (तुम्हारे ओठों रूपी वालसूर्यमण्डल) से विशुद्ध अमृत पीने को मिलता था। (१३)

विम्व चन्द्रर—चन्द्र का मण्डल; वाळारुणुँ—वालसूर्यमण्डल से; सुधा—अमृत। (१३)

विचित्र एबे भावन । बञ्चइ दूर जीबन ।
बिना पितुळा नयन । ब्यक्त अयन ए । १४ ।

सरलार्थ—चिन्ता करने पर प्रतीत हो रहा है कि अब भी आश्चर्य-जनक घटनाएँ घट रही है। क्योंकि मेरे प्राण तुम, मुझ से दूर हो गयी हो, फिर भी मै जीवित रहा हूँ। और मेरी आँखों की पुतली ! तुम्हारे बिना मुझे (अब भी) मार्ग दीख पड़ रहा है। (१४)

पितुळा—पुतली; व्यक्त—प्रकाशित, दीख रहा है; अयन—पथ, मार्ग। (१४)

बपु न मरुँ पोड़इ । बेळ प्रभातुँ बुड़इ ।
बिशेषे अन्धार दिशे । ब्योमादि दिशे ये । १५ ।

सरलार्थ—मनुष्य के मरने पर ही उसका शरीर जल जाता है। परन्तु बिना मरे ही मेरा शरीर कामाग्नि से दग्ध हो रहा है। सन्ध्यागम में सूर्यास्त होता है। परन्तु प्रभात के समय ही मुझे सूर्यास्त-सा प्रतीत हो रहा है। क्योंकि तुम्हारे वियोग-जनित दुःख से मुझे आकाशादि दिशाएँ विशेष अन्धेरी दिखाई दे रही है। (१५)

वपु—शरीर, देह; पोड़इ—जल रहा है; वेळ—समय; अन्धार दिशे—अन्धेरी दीखती है; व्योयादि दिशे—आकाशादि दिशाएँ। (१५)

बर ग्ये वीरवृन्दर । बिदेहे होए ता दर ।
बिभेदक फुलशर । बपु देशर ग्ये । १६ ।

सरलार्थ—जो रामचन्द्र वीर-समूहों में श्रेष्ठ है, उन्हीं को देहहीन कन्दर्प से भय हो रहा है एवं उसके अतिशय कोमल पुष्प-शर उनके वज्र-कठिन शरीर को बेध रहे हैं। (१६)

बर—श्रेष्ठ; बिदेहे—कन्दर्प से; दर—डर; बिभेदक—विशेष रूप से बेधने वाला। (१६)

बज्र पिक - बचोदये । बाजिब आसि हृदये ।
बुद्धि आउ न दिशिले । बुझि बसिले ग्ये । १७ ।

सरलार्थ—कोयल की बोली के प्रकाशित होते ही वज्र के समान वह मेरे हृदय में आ बजेगी।" जब वे यह कथा बोल कर सोच में बैठ गये, तो उन्हें कोई बुद्धि नही पैंठी। (१७)

पिक—कोयल; बचोदये—वचन के प्रकाश में; न दिशिले—दिखाई नहीं पड़ी (बुद्धि दिखाई नहीं दी; बुद्धि नहीं पैंठी)। (१७)

बोलुँ एमन्त शुभिला । बिबन्ध कृते लोभिला ।
बाहु य़ोजन प्रमाण । बरुँ निर्माण ता । १८ ।
बढ़ाइ जीव भुञ्जित । बुकुरे तुण्ड राजित ।
बिकट मूर्ति कबन्ध । बिहिला बन्ध से। १९ ।

सरलार्थ—श्रीरामजी का ऐसा बोलना कबन्ध राक्षस को सुनाई पड़ा। तब श्रीरामजी को अपनी भुजाओं मे बन्धन करने के लिए उसका मन ललचाया। वर के प्रभाव से उसने अपनी बाहुओं को एक योजन (चारक्रोशों) तक फैलाया। इसी तरह अपनी दोनों लम्बी भुजाओं को फैला कर वह जीव-जन्तुओं को खीच लाता और उन्हें भक्षण करता। उसके सिर न होने से वक्ष पर उसका मुँह प्रकाशित हुआ है। ऐसे भयंकररूप कबन्ध नामक राक्षस ने अपनी भुजाओ से श्रीरामजी को बाँध डाला। (१८, १९)

एमन्त—ऐसा; शुभिला—सुनाई पड़ा; बिबन्ध कृते—विशेष रूप से बन्धन करने को, लोभिला—लुभाया; बुकुरे—वक्ष पर; तुण्ड—मुँह; कबन्ध—कबन्ध नामक राक्षस ने; बिहिला बन्ध—बाँध डाला। (१८,१९)

बोलन्ति भ्राते राघब । बाहु हेला कि लाघब ।
बाटरे एक कमठ । बिहिछि मठ ए । २० ।
बदन गुप्त होइछि । बिनाशि भक्षिबा इच्छि ।
बिपाक कर्मरे रोध । ब्यङ्ग निरोध ए । २१ ।

सरलार्थ—ऐसी विपत्ति में फँसे देख कर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "क्या हम लोगों का वाहुवल क्षीण होने लगा है ? यह देखो। मार्ग मे एक कछुआ हम दोनों को विनाशपूर्वक भोजन करने के उद्देश्य से अपना मुँह छिपाए वैठा है। कहते हैं, कर्म के विपाक के समय मेँढ़क भी पथ पर रोड़े अटकाता है। सुतरां हम लोगों के दुर्भाग्य से इसने हमारा पथरोध किया है। (२०, २१)

वाहु—वाहुवल; लाघव—लघु, क्षीण; कमठ—कछुआ, कछुए के समान तुच्छ कवन्ध; विहिछि मठ—ठहराव किया है, वैठा है; व्यङ्ग—विकलांग, मेँढ़क (कबन्ध के लिए प्रयुक्त); (२०,२१)

बिकोष कृपाण करे। बिघात कले ता करे।
व्योमे दिव्य रूप स्थित। बार्त्ता कथित से। २२।

सरलार्थ—यह सुन कर लक्ष्मण जी ने अपने हाथ से म्यान से तलवार निकाल कर उससे कवन्ध का वाहुच्छेदन किया। उसने देह त्याग करके दिव्यरूप धारण किया। (अर्थात् वह मुक्त हो गया।) तव उसने आकाश में रहते हुए श्रीराम को सीता जी का संवाद दिया। (२२)

विकोष—म्यान-मुक्त; वार्त्ता कथित—वार्त्ता दी। (२२)

वक्त्रमाली लङ्कपति। विहिछि भिन्न विपत्ति।
वसुमती स्थिरताकु। विनाश ताकु ये। २३।

सरलार्थ—उसने कहा, "हे श्रीराम! वक्त्रमाली अर्थात् वहुमुख-विशिष्ट लंकपति रावण ने आपकी प्रिया-विछोह-जनित विपत्ति संघटित की है। भूदेवी (पृथिवी) को स्थिर करने के लिए अर्थात् तत्रस्थ प्राणिवर्गों के भय-निवारणार्थ आप उसका विनाश कीजिएगा।" (२३)

विबुध भाव घेनित। विधिरे नरे जनित।
विष्णु मा तुम्भे दम्पती। वह्माण्ड - पति हे। २४।

सरलार्थ—हे ब्रह्माण्डपति! तुम पत्नी-पति दोनों साक्षात् लक्ष्मी-नारायण हो। देवताओं के प्रेम-भक्ति-अनुराग से विमुग्ध होकर विधाना-नुसार आपने नररूप में (अथवा नरलोक में) जन्म ग्रहण किया है। (२४)

दम्पती—पति-पत्नी (जाया व पति); विवुध—देवता; मा—लक्ष्मी। (२४)

बिग्रहानुग्रहे सरि। विशिष्ट गति प्रसरि।
विदृश्य कहि वहने। बिजे गहने से। २५।

सरलार्थ—हे प्रभो! आपमें अपना-पराया, कोई भेद नहीं। अर्थात् आप शत्रु-मित्र, सभी के प्रति समान व्यवहार करते हैं। दोनो

को समान गति (मुक्ति) देते हो ।" यह कह कर वह अदृश्य हो गया । अनन्तर प्रभु श्रीराम ने घने वन के भीतर गमन किया । (२५)

विग्रहानुग्रहे—शत्रु-मित्र के प्रति; सरि—समान, विदृश्य—अदृश्य; गहने—घने वन में । (२५)

बिकळ चित्ते श्रीराम । बिश्व - लोचनाभिराम ।
बिग्रह क्षुधारे थरे । बहु पथरे ये । २६ ।

सरलार्थ—विश्वजनो के नयनानन्द-विधायक प्रभु श्रीराम व्याकुल मन से वहुत दूर पथ पर आगे बढ़े तो भूख से उनका शरीर काँपने लगा ।(२६)

विग्रह—शरीर । (२६)

बिहे स्तुति य़ारे श्रुति । बत्सा धेनुस्वन श्रुति ।
बरजे क्षीर मागि त । बिहु इङ्गित से । २७ ।
बोलन्ते होइ बिरक्त । बिदुहँ न पयः रक्त ।
बिनय ब्रज सरब । बिना गरब से । २८ ।

सरलार्थ—जिन श्रीरामचन्द्रजी की वेद स्तुति करते है, उन्होंने मार्ग पर गायों तथा बछड़ों की ध्वनि सुनकर वहाँ गमन किया एवं ग्वालो से दूध माँगा । तब ग्वालों ने उनकी दिल्लगी उड़ायी तो प्रभु ने गुस्से में आकर उन्हें शाप दे दिया, "तुम लोग दूध के बदले रक्त दुहो ।" सुतरां उन लोगों ने केवल रक्त दुहा । इस लिए ग्वालों ने आकर गर्व-परित्यागपूर्वक उनसे विनती की, तो प्रभु रामचन्द्र ने उन्हें आदेश दिया, "अब जाकर दूध दुहो ।" (२७, २८)

य़ारे—जिनकी; श्रुति—वेद; वत्सा—वछड़ा; धेनु—गाय; स्वन—शब्द, ध्वनि; श्रुति—सुनकर; बरजे—ग्वालों को; क्षीर—दूध; इङ्गित—दिल्लगी, उपहास; बिदुहँ—विशेष रूप से दोहन करो; न पय—दूध नही; (रक्त दुहो ।) (२७,२८)

बल्लबे क्षीर दानकु । बिहि बोधिला मनकु ।
बिपुळ तोष चिन्तारे । बरद तारे से । २९ ।

सरलार्थ—उन ग्वालों में से एक ने श्रीराम तथा लक्ष्मण को उनका अपना-अपना मन-चाहा दूध पीने को दिया और इस तरह उनके चित्तों को सन्तुष्ट किया । इससे चिन्तायुक्त श्रीराम ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर उसे वरदान दिया । (२९)

वल्लबे—उनमें से एक ग्वाले ने; वरद तारे—उसके प्रति वरदायक हुए । (२९)

बाञ्छा तो हेबु कुमर । बर ए केउँ अमर ।
बर्त्तिवु होइ तु नन्द । बहि आनन्द य़े । ३० ।

सरलार्थ—श्रीराम ने उसे यह वरदान दिया, "तुम हम को पुत्रों के रूप में चाहते हो; हम तुम्हारे पुत्रो के रूप मे पैदा होकर तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करेंगे।" यह सुन कर ग्वाले ने कहा, "ये दोनों शायद कोई देवता हों, अन्यथा मेरा मनचाहा वर देते कैसे?" श्रीराम ने कहा, "तुम नन्दगोपाल के नाम से धरा पर जन्म ग्रहण करोगे और आनन्द से दिन बिताओगे। (३०)

वाञ्छा—मनोरथ, कामना; वर्त्तिबु—जन्म लोगे। (३०)

बारे क्षीर दाने जीब । बोधिलु ए शुझायिब ।
बढ़िबुँ पुत्र भावरे । ब्रज नबरे ये । ३१ ।

सरलार्थ—तुमने एक वार दूधदान देकर हमारा चित्त-बोधपूर्वक हमारा बड़ा भारी उपकार किया है। हम दोनों गोपपुर में तुम्हारे पुत्रों के रूप में बढ़कर उसका बदला चुकाएँगे। (३१)

शुझायिब—बदला चुका जाएगा; व्रजनबरे—गोपपुर में। (३१)

बामा यशोदा बोलाउ । बाळ - खेळारे भुलाउ ।
बनमाळी कृष्ण हरि । बोलि बिहरि ये । ३२ ।

सरलार्थ—यशोदा नाम्नी तुम्हारी पत्नी हम दोनों की बालक्रीड़ा कराके हमारा मन बहलाएँगी एवं मुझे वनमाली, कृष्ण व हरि आदि नामों से पुकार कर आनन्द से कालातिपात करेगी। (३२)

भुलाउ—भुलावे, मनबहलावे। (३२)

बळभद्र अबरज । बोलाइब हे बरज ।
बुड़ ना आउ द्वापरे[1] । बिद्य द्वापरे[2] ये । ३३ ।

सरलार्थ—हे गोपाल! हमरा छोटा भाई (लक्ष्मण) बलभद्र कहलाएगा। तुम अब सन्देह में मत डूबो। हमारी यह वाणी द्वापरयुग में निश्चय ही संघटित होगी।" (३३)

अबरज—छोटा भाई (लक्ष्मण); बरज—गोपाल; द्वापरे[1]—संशय में; बिद्य—विद्यमान होगी, संघटित होगी; द्वापरे[2]—द्वापर युग में। (३३)

बास से स्थाने निशिक । बासरे सूर्य्यवंशिक ।
बने दक्षिण मुखरे । बिहार खरे से । ३४ ।

सरलार्थ—सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र ने वहाँ रात बिताई एव सुबह उस वन की दक्षिण दिशा में शीघ्र गमन किया। (३४)

निशिक—रात; वासरे—दिन होते, सुबह, प्रभात में, सूर्य्यवंशिक—सूर्यवंशी श्रीराम चन्द्र (ने); खरे—शीघ्र ही। (३४)

बिपिन अति झळिका । बिकच नवमाळिका ।
बिळसे अळिपाळिका । बाण - माळिका कि । ३५ ।

सरलार्थ—वह वन बड़ा सुहावना हुआ है। विकसित नवमालिका फूलों पर भौरों की पक्तियों को क्रीड़ा करते हुए देखकर श्रीराम ने सोचा, 'ये सब कन्दर्प के वाणसमूह है क्या !' (३५)

विपिन—वन; झळिका—सुहावना; विकच—विकसित; नवमाळिका—नवमल्लिका, नेवारियाँ; अळिपाळिका—भ्रमरों की पंक्तियाँ; बाणमेळिका—बाण-समूह। (३५)

बिषम-बिशिख गुणे । बळाइ अछि कि गुणे ।
बहि अतसी प्रमाण । बिद्य कमाण कि । ३६ ।

सरलार्थ—और भी, वह वनभूमि धनुषाकृति-विशिष्ट अतसी कुसुमों से शोभा पा रही है। उन पर भी भौरों की पंक्तियाँ बैठ कर मधुपान कर रही है। नवमालिका तथा अतसी कुसुमों पर बैठी भ्रमरपंक्तियों को देखकर विरही श्रीराम ने सोचा, "कन्दर्प किस हेतु अतसी पुष्पों के धनुष में भ्रमरश्रेणी-रूपी प्रत्यंचा चढ़ाकर उस पर नवमालिका-रूपी शर सन्धान करके मुझे उन शरों से मार रहा है।" (३६)

विषम-विशिख—कन्दर्प; गुणे—प्रत्यंचा को; कि गुणे—किस हेतु; अतसी—एक फूल, विद्य—विद्यमान, वर्त्तमान; कमाण—धनुष। (३६)

बिषाइ मधु पतनु । बने चमकित तनु ।
बल्लभीमणि हा सीता । बळे भाषिता से । ३७ ।

सरलार्थ—इस समय प्रभु के शरीर पर कुछ मकरन्द गिर पड़ने से प्रभु वन में चौक उठे। उन्होंने सोचा, "क्या कन्दर्प ने मुझे मकरन्द-रूपी विष से युक्त यह नवमालिका का शर मुझे मारा ?" यह सोचकर वे ऊँचे स्वर में 'हा वल्लभीमणि सीते !' पुकार उठे। (३७)

बिषाइ—विषयुक्त (जहरीला) करके; बळे—ऊँचे स्वर में; भाषिता—बोल उठे, पुकार उठे। (३७)

बृषा शरभङ्गाळये । बसिथिले कले लये ।
बिष्णु आम्भ कष्ट भाङ्गि । बिपद भागी से । ३८ ।
बन्दी जगत जननी । बिमळ कमळाननी ।
बोलि रहिले अन्तरे । बिजे सत्वरे से । ३९ ।
बाण — शरासनधर । बेनि मुनि सन्निधिर ।
बिबुधाळयकु गमे । बन्दि निगमे से । ४० ।

सरलार्थ—इन्द्र उस समय शरभंग मुनि के आश्रम में बैठे हुए थे।

उन्होंने रामचन्द्र को देख कर सोचा, "विष्णु भगवान् ने हम लोगों का कष्ट-मोचन करने के लिए राम के रूप मे हमारी को विपत्ति का अंश स्वीकार कर लिया है। और भी, अमल-पद्मवदना जगन्माता लक्ष्मी, सीता के रूप में हम लोगो की विपद-भागिनी होकर रावण के गृह मे बन्दिनी हुई है।" यह सोचकर इन्द्र वहाँ से आड़ में रह गये। तदनन्तर धनुशरधारी रामलक्ष्मण दोनो भाई मुनि के आश्रम में शीघ्र पधारे। इन्द्र श्रीराम जी की वेद-वाक्यो में स्तुति करके स्वर्ग सिधारे। (३८,३९,४०)

वृषा—इन्द्र; शरभंगाळये—शरभंग मुनि के आश्रम में; वसिथिले—बैठे थे; कलेलये—विचार किया, सोचा; वाणशरासन-धर—धनुशरधारी; वेनि—दोनों, (रामलक्ष्मण); विबुधाळयकु—स्वर्ग को; वन्दि निगमे—वेद वाक्यों से स्तुति करके। (३८, ३९, ४०)

बड़ सुकृती शबरी। बुलिण दिवा शर्वरी।
बुझे रसाळ आस्वादु। बाछइ स्वादु से। ४१।
बिजय राम करिबे। बिभुक्ते मोते तारिबे।
बिलोकि सन्ताप-च्युत। बढ़ाइ चूत से। ४२।

सरलार्थ—उस वन मे श्रवणा नाम्नी शवरी वास करती थी। वह दिन-रात घूम कर आम सब खोज लाती और उनमें से चख-चख कर जायकेदार आमों को पहचान लेती तथा उन्हें छाँट रखती। क्योंकि उसने जाना था कि प्रभु मेरे यहाँ पधारेगे एव इन्ही आमों का भोजन करके मुझे शवरी-जन्म से मुक्त करेंगे। इसी समय प्रभु को वहाँ देख कर शवरी ने उनके दर्शन किये एव अपना सन्ताप दूर किया। उसने प्रभु की ओर चुने हुए आम भोजनार्थ बढा दिये। (४१,४२)

सुकृती—पुण्यवती; आस्वादुं—आस्वादन से, चखने से; वाछइ—छाँटती, चुनती; स्वादु—स्वादिष्ट, जायकेदार; विभुक्ते—विशेष रूप से भोजन करके; मोते—मुझे; तारिबे—तारण करेंगे, मुक्त करेंगे; सन्तापच्युत—दुःख दूर हुआ; चूत—आम। (४१, ४२)

बिश्वव्यापी ता भाबरे। बिभोगी हेले जबरे।
बिद्य भावग्राही पद। बेगे आस्पद से। ४३।

सरलार्थ—चराचरव्यापी श्रीराम ने शवरी के भाव से अर्थात् भक्ति के वश होकर शीघ्र ही उन्ही आमों का भोजन किया। चूंकि उनमे 'भावग्राही' नाम विद्यमान है, इसलिए वे अतिशीघ्र भक्ति के आस्पद हुए। अर्थात् शवरी की भक्ति स्वीकार-पूर्वक अपने 'भावग्राही' नाम की सार्थकता प्रतिपादित की। (४३)

विभोगी—विशेष रूप से भोग (भोजन) करनेवाले; जबरे—शीघ्र। (४३)

बिदन्तमुद्रा रसाळ । बियोग कले बिशाळ ।
बनजाक्ष ततपर । बसुधा पर ये । ४४ ।

सरलार्थ—विशाल कमल जैसे नयनोंवाले श्रीराम ने, जिन आमों पर (शवरी के) दन्त-चिह्न नही थे, उन्हे पृथिवी पर वियोग किया, अर्थात् उन आमों को भूमि पर फेंक दिया । (४४)

विशाळ वनजाक्ष—बृहत् कमल जैसे नयनों वाले (श्रीराम); विदन्त मुद्रा—दन्तचिन्ह-रहित । (४४)

बिचिह्न ए दशनरे । बिरोधी मो अशनरे ।
बोलि चाहिँ प्रसन्नरे । बिद्यमानरे से । ४५ ।

सरलार्थ—प्रभु ने कहा, "इस आम पर दाँतों के चिह्न नहीं है। इसी हेतु यह मेरे भोजन का विरोधी है, अर्थात् मेरे भोजन के लिए अनुपयुक्त है।" यह कहते हुए श्रीराम प्रसन्नता से उपस्थिता शवरी की ओर निहारने लगे । (४५)

बिचिह्न ए दशनरे—यह आम दन्तचिह्न-हीन है; विरोधी—अनुपयुक्त, मो—मेरे; अशनरे—भोजन के निमित्त । (४५)

ब्याख्यान शबरी करे । बसति ऋष्यमूकरे ।
बिहि सुग्रीब क्रोड़रे । बाळिर डरे ये । ४६ ।
बिघ्नकर ए दशा से । बिबाद रचि दशास्ये ।
बिम्बोष्ठीकि देब आणि । बिकाशि आणि से । ४७ ।

सरलार्थ—श्रीराम की प्रसन्नता देख कर शवरी ने कहा, "किष्किन्ध्या के राजा बालि के डर से उसका छोटा भाई सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत की गोद में अब निवास कर रहा है । वह दसमुखवाले रावण के सहित युद्ध करके अपनी वीरता-प्रकाशपूर्वक आपकी प्रियतमा विम्बाधरी सीता को ला देगा एवं आपकी इस बिरहावस्था का विनाशकारी होगा । (अर्थात् उसकी सहायता से आपकी विरहदशा समाप्त होगी ।) (४६,४७)

दशास्ये—दस मुख वाले (रावण के सहित); बिम्वोष्ठीकि—विम्बाधरी सीता को; देव आणि—ला देगा; बिकाशि आणि—वड़ाई (वीरता) प्रकाशपूर्वक । (४६,४७)

बारता कहि भकति । बिमाने से नभगति ।
बाहार सेहि आदेश । बन प्रदेशे से । ४८ ।

सरलार्थ—शवरी ने श्रीराम के प्रति अत्यन्त भक्तिप्रकाश-पूर्वक सीता का सन्देश दिया । फलस्वरूप वह देव-विमान पर आरोहण-पूर्वक स्वदेह मे

आकाशमार्ग पर स्वर्गधाम सिधारी। राम-लक्ष्मण दोनों उसके आदेशानुसार सुग्रीव की खोज करते हुए अरण्यभूमि के मध्य आगे बढ़े। (४८)

बारता—वार्त्ता, सन्देश। (४८)

बाटे पम्पा सारसर[1] । बिराजि त सारसर[2] ।
बिराजित सारसर[3] । बृषार - सर[4] से । ४९ ।

सरलार्थ—जाते-जाते मार्ग में पम्पा सरोवर नामक एक श्रेष्ठ सरोवर देखा। उसमें हंस तथा अन्यान्य पक्षिगण विहार-पूर्वक शोभा पा रहे है; और भी, वह कमलों से सुशोभित है। वह इन्द्र का सरोवर है। (४९)

सारसर[1]—उत्तम सरोवर; बिराजि—पक्षिगण; त—तो; सारसर[2]—हंस; बिराजित—सुशोभित; सारसर[3]—कमल पुष्पों से; बृषार सर[4]—इन्द्र का सरोवर, (प्रान्त यमक की माधुरी उपभोग्य ही है।) (४९)

बिधिरे हीन भ्रमर[1] । बिळसुछन्ति भ्रमर[2] ।
बिळास यहिँ भ्रमर[3] । बाञ्छे अमर से । ५० ।

सरलार्थ—विधाता के विधानानुसार उस सरोवर मे भँवर नही। उसमें भौरे विलास कर रहे है। वह ऐसा मनोहर-रूप है कि देवलोगों को उस पर आकाश-सिन्धु (आकाश-गगा) का भ्रम हो रहा है एवं वे लोग उसमे विलास करने की कामना कर रहे है। (आकाश-गंगा के सदृश भँवरहीन तथा भ्रमर-परिशोभित पम्पा-सरोवर मे देवलोग स्नान करने की इच्छा कर रहे है।) (५०)

भ्रमर[1]—भँवर; भ्रमर[2]—भौरे, भ्रमर[3]—भ्रमवशतः; अमर—देवता लोग। (५०)

बारिरे आदर सरे[1] । बिमळ आदरशरे[2] ।
बिबेक हंसामानस । बळि मानस ये । ५१ ।

सरलार्थ—उस सरोवर का जल इतना स्वच्छ है कि उसे देखने पर निर्मल दर्पण का भी अनादर होने लगता है। अर्थात् उसके जलकी स्वच्छता निर्मल दर्पण की स्वच्छता से भी कही अधिक है। उस सरोवर को देखकर हंस सब विचार कर रहे है कि यह सौन्दर्य मे मानसरोवर से भी अधिक है। (५१)

वारिरे—जल को देखने से; आदर सरे[1]—आदर समाप्त होता है; बिमळ आदरशरे[2]—निर्मल दर्पण के प्रति; विवेक—विचार कर रहे हैं; हंसा—हंस पक्षिसमूह से; मानस—मन में; वळि मानस—मानसरोवर से बढ़ कर; (व्यतिरेक अलंकार)। (५१)

बिध्वंस ताप स्परश । बड़ अतळ स्परश ।
बिनिद्र नीळ सारस । बहइ रस से । ५२ ।

सरलार्थ—उस सरोवर का जल इतना ठण्डा है कि उसका स्पर्श करते ही देह का सारा ताप दूर हो जाता है और शरीर शीतल हो जाता है। वह अत्यन्त अथाह है। उसमे नीले कमलों के समूह खिले हुए हैं। वह जल के रूप मे मधुमय मकरन्द वहन करता है। (५२)

अतळस्परश—अत्यन्त गहरा; बिनिद्र—विकसित; नीळसारस—नीले कमल; रस—जल, मकरन्द। (५२)

बाञ्छि तृषार्त्त कमळ[1] । बिघन तीरे कमळ[2] ।
बिरचे भृंग कुमुद[1] । बहु कुमुद[2] ए । ५३ ।

सरलार्थ—तृषार्त्त मृग-समूह जलपान करने की इच्छा से उसके किनारे पर इकट्ठे हुए है। उस सरोवर में बहुत कुमुद खिले हुए है, जिन्हें देखकर भ्रमर अतिशय आनन्द प्रकाश कर रहे हैं। (५३)

तृषार्त्त—प्यास से दुःखी; कमळ[1]—मृग; बिघन—पूर्ण, इकट्ठे; कमळ[2]—जल; भृंग—भौरा; कुमुद[1]—कुई फूल; कुमुद[2]—आनन्द। (५३)

बुड़ि उठे चक्र[1] चक्र[2] । बहे गति यथा चक्र[3] ।
विनोदरे चक्रबाकी । बिचक्रबा कि से । ५४ ।

सरलार्थ—उसमे चकवे बार-बार डूब रहे है और ऊपर उठ रहे है। वे सब चकवियों के सहित क्रीड़ा मे मस्त होकर इतनी चञ्चल तथा चक्राकार-गति कर रहे है कि, उसे देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चक्रपवन अथवा ववण्डर हो। (५४)

चक्र[1]—चकवा पक्षी; चक्र[2]—समूह; चक्र[3]—चक्का; चक्राकार मे; विनोदरे—आनन्द में; चक्रवाकी—चकवियाँ; बिचक्रवा कि—चक्रपवन या बवँडर क्या ! (उत्प्रेक्षा) (५४)

बीक्षणे होइ बिरही । बोले रघुवीर रहि ।
बिष्किर कह मधुर । बार्त्ता बधूर मो । ५५ ।

सरलार्थ—उनकी क्रीडा देखकर श्रीराम विरही होकर वहाँ कुछ समय अटक गये और बोले, "हे चक्रवाक पक्षियो ! तुम सब मेरी प्रिया का मनोहर सन्देश बताओ। (५५)

बीक्षणे—देख कर; विष्किर—पक्षी। (५५)

बाळा मो रससरसी । बिहरे मुँ मीन रसि ।
बिधुरे केमन्ते जीब । बुझ न य़िब य़े । ५६ ।

सरलार्थ—"मेरी प्रिया रसपूर्ण सरोवर है और मैं उसमें मीन की

तरह रहकर विहार (क्रीड़ा) किया करता था। जिस तरह मीनके सरोवर के जल से अन्तर होने पर, उसका जीवन नहीं रहता, उसी तरह अपनी प्रिया के विछोह में मेरा जीवन बिना निकले कैसे रहेगा, ज़रा विचार करके समझो तो सही। (५६)

रस-सरसी—रसमय सरोवर; रसि—रसमग्न होकर; बिधुरे—बिछोह मे। (५६)

बड़िशशरे मदन। बिचारुअछि भेदन।
बहिछि से केउँ देश। बुझि सन्देश ए। ५७।

सरलार्थ—कन्दर्प बसी-काँटे के समान शर से मीन के से मेरे शरीर को बेधना विचार रहा है। अतएब तुमलोग ज़रा, मेरी प्रिया किस देश मे है, इसका पता बूझकर मुझसे कहो। (५७)

बड़िशशरे—बंसी के समान शर से। (५७)

बदन सदा अमळ। बिकाशि थिला कमळ।
बिलोळ नेत्र खञ्जन। बसि रञ्जन से। ५८।
बिलोकि मो सुरपति। बिभूति थिला प्रापति।
बिच्छेदु दीन होइछि। बाहुडुँ इच्छि ए। ५९।

सरलार्थ—मेरी प्रिया के निर्मल मुखकमल पर चञ्चल नेत्र-युगल शोभा पाते है, मानो विकसित कमल पर दो खञ्जन पक्षी सुशोभित हो रहे हों। सुतरां उनका मुख-सौन्दर्य देखते ही मुझे ऐसा लगता है मानो इन्द्रसम्पद मिल गया हो। अब उनके विछोह से अत्यन्त दीन हो पड़ा हूँ और चाहता हूँ कि वे फिर मेरे पास लौट आवे। (५८, ५९)

बिलोळ—चञ्चल; सुरपति—इन्द्र; विभूति—ऐश्वर्य या सम्पद; बाहुडुँ-(उनके) लौटने के लिए; इच्छि—चाहता हूँ, इच्छा करता हूँ। (५८,५९)

बक्षोजे तब युगकु। बिहन्ति कवि योगकु।
बद अछि सोदरता। बन्धु बारता तु। ६०।

सरलार्थ—कविजन वर्णना करते है कि मेरी प्रिया के स्तनयुगल के सहित तुम्हारी जोड़ी आकृति में बिलकुल समान है। सुतरां तुम लोगों की उनके सहित वन्धुता है। अतएब तुम मुझसे उनका समाचार बताओ।" (६०)

बक्षोज—स्तन; सोदरता—वन्धुता, बन्धु-वारता—प्रिया का सन्देश। (६०)

बोलुँ कोपि चक्रवाक। बोइला एमन्त बाक्य।
बेनि नाबे देइ पद। ब्यर्थ सम्पद एँ। ६१।

बहु जटा स्तिरीहित । बुड़ि मरिबा बिहित ।
बिहग रति बिलोक । बिलज्ज लोक तु । ६२ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र के इस प्रश्न पर एक चक्रवाक ने क्रुद्ध होकर ऐसा वाक्य कहा, "दो नौकाओं पर पैर रखनेवाला मनुष्य बीच मे डूब मरता है एवं उसका सारा सम्पद व्यर्थ हो जाता है। उसी तरह तुमने अपने शिर पर जटा धारण किया है एवं दूसरे पक्ष में स्त्री-सम्भोग चाह रहे हो ! अतएव तुम्हारी वैष्णव होकर मोक्ष-सम्पद-लाभ करने की आशा व्यर्थ साबित होगी। ऐसा कपटी जटधारी वैष्णव होने की अपेक्षा डूब मरना कहीं अच्छा है। तिस पर तुम इतने निर्लज्ज हो कि पक्षियों की रति-क्रीड़ा देख रहे हो।" (६१,६२)

कोपि—क्रुद्ध होकर; बिहग—पक्षी; बिलोक—देख रहे हो; बिलज्ज—निर्ल्लज्ज। (६१,६२)

बोलु बोइले तक्षण । बिचक्षण सुलक्षण ।
बिज्ञ हेउछु इच्छार । बिहग छार तु । ६३ ।

सरलार्थ—चक्रवाक के ये अभिमान-भरे वचन सुनते ही बिलक्षण (विचार-निपुण) सुलक्षण लक्ष्मण ने कहा, "तू एक मामूली (तुच्छ) पक्षी है। तिस पर भी अपने को एक विशेष जाननेवाला पण्डित समझ रहा है ?" (६३)

विचक्षण—विचार-निपुण; सुलक्षण—अच्छे लक्षणों से युक्त; बिहग—पक्षी; छार—तुच्छ। (६३)

बिख्यातु तप हेतु हिँ । बोलाउ कुटुम्बी तुहि ।
बशिष्ठादि ए अजाण । बड़ सुजाण तु । ६४ ।

सरलार्थ—लक्ष्मण ने आगे कहा, "तू कुटुम्बी (गृही) होते हुए भी तपस्या के सारे लक्षण बता रहा है। बशिष्ठादि मुनिलोग जटाएँ बाँधकर तपस्या कर रहे है। फिर भी तो वे गृही है। शायद वे कुछ नही जानते; तू उनसे बहुत अधिक जाननेवाला है।" (६४)

बिख्यातु—बता रहा है; तपहेतुहिँ—तपस्या के लक्षण; अजाण—न जानने वाले; सुजाण—अच्छा जाननेवाला। (६४)

बियोगरे निअ काळ । बिहि ए शाप तत्काळ ।
बेनि सोदर बहने । बिजे गहने से । ६५ ।

सरलार्थ—"तुम दोनों पारस्परिक विछोह मे अपने दिन बिताओ।" यह अभिशाप देते हुए दोनों भाइयों ने घने अरण्य में गमन किया। (६५)

बियोगरे—विछोह में; बेनि सोदर—दोनों भाइयों ने; बिजे गहने—घने अरण्य में गमन किया। (६५)

ब्याकुळरे होइ क्षीणी । बल्लभे भाषे पक्षिणी ।
बिभोगरे रति सार । बिद्य संसार ए । ६६ ।

बिपद कि शिरश्छेद । बड़ बिपद विच्छेद ।
बंश बढ़िबा अर्ज्जन । ब्यर्थ सर्ज्जन ए । ६७ ।

सरलार्थ—इस अभिशाप के हेतु व्याकुलतावश होकर चक्रवाकी ने क्षीण (दीन) दशा प्राप्त की एव अपने पति से कहा, "कहते है संसार मे सारे भोगो मे रतिभोग श्रेष्ठ है । शिरश्छेद की विपत्ति की विरह-विपत्ति के समक्ष क्या गिनती ? (अर्थात् विरह-विपत्ति शिरश्छेद की विपत्ति से कही घोर दु:खदायक है ।) और भी, रतिभोग के द्वारा वशवृद्धि होती है । सुतरां उसके अभाव में वश का लोप होता है । तुमने व्यर्थ ही कुबुद्धि की रचना करके हमारे वश का लोप किया ।" (६६, ६७)

क्षीणी—दीना; बल्लभे—पति से; पक्षिणी—चक्रवाकी, चकवी; व्यर्थ सर्ज्जन—व्यर्थ ही कुबुद्धि की रचना की । (६६,६७)

बिचारि से गोड़ाइले । बिनयी रामे होइले ।
बिभो दक्षिण गमन । बाम सुमन हे । ६८ ।

सरलार्थ—ऐसा विचार करते हुए पति-पत्नी दोनों ने श्रीरामचन्द्र जी का पीछा किया और बड़ी विनय से उनसे कहा, "हे दक्षिणगामि प्रभो ! (हे अनुकूल प्रभो !) आप सुमन (पण्डित) होकर भी हमारे प्रति वाम (प्रतिकूल) हुए !" (६८)

गोड़ाइले—पीछा किया; विभो दक्षिणगमन !—हे दक्षिण की ओर जाने वाले ! (हे अनुकूल प्रभो !) (६८)

बहि मधुर मूरति । बिहिल कटु भारती ।
बिजाति केते मातक । वेळे बितर्क ये । ६९ ।

सरलार्थ—उन्होने आगे कहा, "आप ने ऐसी मधुर मूर्ति धारण करते हुए भी इस प्रकार कटु वचन कहे अर्थात् ऐसा गुरुतर अभिशाप दे दिया ! हम लोग हैं तो पक्षीजाति के ही । हम लोगों का ज्ञान कितना है ? इस बात का जरा भी विचार करो तो सही ! (६९)

कटु भारती—कडुवी बात, कठोर वचन, कठोर अभिशाप; बि-जाति—पक्षी जाति; बेळे बितर्क—एक बार भी विचार करो तो । (६९)

बदन दश विंशति । बाहु ता आगे बसति ।
बिमाने शोक - जंनिता । बर - बनिता ये । ७० ।

बिलोक एते मातर । बिबेक कर चित्तर ।
बिह शापकु सुगति । बिहुँ भकति से । ७१ ।

सरलार्थ—दशमुखों तथा बीसभुजाओं वाला एक व्यक्ति विमान पर बैठा चला जा रहा था। उसके समीप एक परमासुन्दरी रमणी बैठी शोक से करुण विलाप कर रही थी। हम लोगों ने इतना ही देखा है। आप इसी से अपने मन मे विचार करे कि वह कौन हो सकती है। अब हम लोगों को शापमुक्त कीजिए।" यह कहते हुए पक्षियों ने उनकी विशेष भक्ति की। (७०,७१)

वर बनिता—परमासुन्दरी नारी; बिबेक—विचार करो; बिहुँ भकति—भक्ति का विधान किया। (७०,७१)

बासरे मातर तर । बिभावरीरे अन्तर ।
बेनिकुळे नदे रह । बाधु विरह ए । ७२ ।
बरद राघब हेले । बाहुड़िले पक्षी हेळे ।
बोले उपेन्द्र आस्पद । बास्तरि पद ए । ७३ ।

सरलार्थ—उनकी ऐसी भक्ति देख कर प्रभु श्रीराम ने कहा, "तुम लोगो को केवल दिन मे ही रतिक्रीड़ा करने के लिए अवसर मिलेगा, और रात में तुम्हारा परस्पर से बिछोह हो जाएगा। ऐसी हालत में नदी के दोनों किनारो पर एक दूसरे से बिछुड़ते हुए तुम रहोगे और विषम-विरह की वेदना से पीड़ा पाओगे"। श्रीराम के ऐसे वरदानानन्तर पक्षियो की जोड़ी आनन्द से लौट गयी। भञ्जकवि ने षड्विश छान्द को बहत्तर पदों में ओतप्रोत करके कहा है। (७२,७३)

बासर—दिन; तर—रतिक्रीड़ा के लिए अवसर; बिभावरीरे—रात में; अन्तर—बिछोह; बेनि कूळे—दोनों किनारो में; नदे—नदी के; हेले—हुए; हेळे—आनन्द से; आस्पद—आधार, स्थान। (७२,७३)

॥ इति षड्विश छान्द ॥

सप्तविंश छान्द

राग—भैरव । आद्यप्रान्तानुप्रास

विजयी जगतरे कातर बिमने ।
विजयि पथे तोळिले कदम्ब सुमने ।
बीर हेजे केउँ दिन करिबि दर्शन ।
बिरहे ये होइथिब कपोळे एसन । १ ।

सरलार्थ—इस जगत के एक मात्र विजयी रामचन्द्र ने सीता के विरह-जनित मनोव्यथा से मार्ग पर चलते-चलते एक कदम्ब फूल तोड़ा । उसे हाथ में पकड़ कर वे मन में सोचने लगे, "अहह ! किस दिन मैं अपनी प्रिया को देखूंगा ? विरह के कारण उनका गण्डस्थल तो ऐसे कदम्बफूल की तरह हुआ होगा । (अर्थात् उनका गण्डस्थल ऐसे कदम्ब-फूल के केसरों की तरह रोमाञ्चित हुआ होगा ।) (१)

विजयि—जाते-जाते, चलते-चलते; कपोळे—गण्डस्थल पर । (१)

बिबसन करि नख चाळन्ते किञ्चित ।
बिबशरु हेब कि ए रूपे रोमाञ्चित ?
बङ्किळ हरि खोजिले न पाइ बिमति ।
बङ्किम-नयना मो होइला एहिमति । २ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र फिर सोचने लगे, "प्रिया को वस्त्रहीना करके उनके शरीर पर धीरे-धीरे नख चलाने से क्या वे भाव-विह्वला होकर इस तरह रोमाञ्चित होगी ?" इसी तरह चिन्ता करते हुए उन्होंने उस कदम्व-फूल की नाल को तोड़ दिया, एवं नाल के छेदन-स्थल को ढूंढने पर भी नही पाया । विचलितमना होकर उन्होंने अपने मन में सोचा, "मेरी वक्रनयना सीता इसी तरह हो गईं । (अर्थात् मैने उन्हें खो दिया और अव खोजने पर भी नही पा रहा हूँ ।) (२)

बिबसन—वस्त्रहीन; बिबशरु—विह्वलता से, भाव-विह्वल होकर; बङ्किळ—कदम्बकी नाल;, बिमति—विचलितमना, घवड़ाये हुए; बङ्किमनयना-वामाक्षी, वक्रनयना । (२)

विचक्षण होइले कि हेब परम्परा ।
विचळित दम्भ ठाव न करिबि परा ।

बिबेक जातरे पुष्प पकाइ बेगरे।
बिबेचना कले अछि कर्बुर नगरे। ३।

सरलार्थ—मैं परम्परा से अर्थात् बचपन से सुचतुर हूँ। परन्तु उससे क्या फ़ायदा होगा? अब विरह के कारण मेरा धैर्य-लोप हो गया है। सुतरां मुझे यह आशंका हो रही है कि मै सीता का पता कहीं भी न लगा सकूँ।" इस समय अपने विवेक का उदय होते ही उन्होंने फूल को नीचे डाल दिया एवं विचार किया (उन्हें याद हो आया)— "अरे, मेरी प्रिया तो इस समय राक्षसपुरी में है! (भावावेश में मै क्या बोलता जा रहा हूँ!") (३)

बिचक्षण—बुद्धिमान, सुचतुर, कर्बुरनगरे—राक्षसपुरी में। (३)

बहिले कोप छेदि पकाइ देबि शिर।
बहिले पथे झमक प्रकाशि असिर।
बिराधपर लक्ष्मण धृत धनुशर।
बिराजिले ऋष्यमूक गिरि पारुशर। ४।

सरलार्थ—यह बात याद करते ही श्रीराम, क्रोधान्वित होकर बोले, "मैं रावण के दस मस्तकों का निश्चय ही छेदन करूँगा।" यह बोल कर उन्होंने म्यान से तलवार निकाल ली और उसकी चमक से मार्ग को जगमगा दिया। फिर शीघ्र ही उन्होंने वहाँ से गमन किया। पथ पर चलते-चलते धनुशरधारी विराध-शत्रु श्रीराम, भाई लक्ष्मण सहित ऋष्यमूक पर्वत के निकट विराजमान हुए। (४)

झमक—चमक; असिर—तलवार का; विराधपर—विराध राक्षस के शत्रु, श्रीराम। (४)

बिबरगत सुग्रीब देखि से उभय।
बि-बर लोकने यथा पन्नग सभय।
बळिष्ठ करि पेषिछि पाञ्चि बेनि चार।
बळिमुखराजे य़ेणु गिरि अप्रचार। ५।

बधिबे मोते बिचारि बेपथु रचन।
बधिर प्राय न शुणे मन्त्रीङ्क बचन।
बाळिश कि तुम्भे ताकु कहे हनुमान।
बाळि बिना पराक्रमे के आम्भसमान? ६।

सरलार्थ—श्रीरामलक्ष्मण को देखते ही सुग्रीव ने मारे भय के गिरि के गह्वर में प्रवेश किया मानो गरुड़को देखकर सर्प भय से विवर में प्रवेश

कर रहा हो। सुग्रीव ने मन में शंका की, कि यह गिरि ऋषि के अभिशाप के कारण वालि के लिए अगम्य है, इस लिए वह स्वय नही आ सका और मेरे विनाशार्थ इन्ही दोनो वलवान् चरो (दूतों) को प्रेरित किया है। ये निश्चय ही मेरा वध करेंगे,— यह सोचकर वे कॉप उठे। बहरे के समान उन्होने मन्त्रियों की एक भी नही सुनी। हनुमान् ने उनसे कहा, "तुम कितने अज्ञानी हो, सिवाय वालि के वलपराक्रम मे हमारे समकक्ष और कौन है जिससे तुम इतना डर रहे हो ?" (५,६)

विवरु—पक्षिश्रेष्ठ गरुड़; विवरगत—विवर मे प्रवेश किया; पन्नग—सर्प; वळिमुखराजे—वानरपति वालि के लिए; अप्रचार—अगम्य; वेपथु—कम्पन; वाळिश-मूर्ख। (५,६)

बिधुरे[1] ए प्रभा थिव लक्ष्य ग्रोखिवारे।
बिधुरे[2] ए प्रभा नाहिँ पूर्णे देखिवारे।
बानप्रस्थ वेशधारी मनकु न पाइ।
बानरपतिर चार हेबे ए किपाइँ। ७।

सरलार्थ—तुलना करने पर पता चलता है कि ऐसा तेज केवल भगवान् विष्णु में ही रह सकता है। परन्तु पूर्णचन्द्र में देखा नही जाता। तिस पर भी ये लोग मुनिवेशधारी है। किस हेतु ये लोग वानरपति वालि के दूत हों ? तुमने जो अनुमान लगाया है कि ये वालि के दूत हो सकते हैं, इनका ऐसा वेश देखकर मुझे ठीक नही जंचता। (७)

बिधुरे[1]—विष्णु भगवान् मे; विधुरे[2]—चन्द्रमा मे, (यमक); वानप्रस्थ-वेशधारी—मुनिवेशधारी; वानरपतिर—वानरराजा वालिके; चार—दूत; किपाइँ—किसलिए ? (७)

वशीभूत नोहि नभमार्गे स्यन्दनरे।
बसि याउथिला रामा युक्त क्रन्दनरे।
बल्लरी पशुपक्षीङ्कि करुथिला साक्ष्य।
बल्लभ से ताारीर हेबे कि सारसाक्ष। ८।

सरलार्थ—हनुमान् ने कहा, "उस दिन एक रमणी रथ मे वैठी आकाशमार्ग में गमन कर रही थी। उसे ले चलनेवाले पुरुष के वश मे विना आये वह यह वखानती हुई कि यह दुष्ट मुझे लिए जा रहा है विलाप करती थी एव लताओ, पशुओ तथा पक्षियो को साक्षी वना रही थी। मुझे ऐसा लग रहा है कि ये राजीवलोचन उस रमणी के पति हों। (८)

वशीभूत—अनुरक्त; नोहि—न होकर; स्यन्दनरे—रथ में; बल्लरी—लता; बल्लभ—पति; सारसाक्ष—राजीवलोचन। (८)

बिरही हेला पराय दिशइ तनु त ।
बिरञ्चि रचिबारे सुन्दरे एहि नुत ।
वाड़बेयसुत भाषे सत ए तरक ।
बार एते कन्या येउँ नाम उच्चारक । ९ ।

सरलार्थ—इनकी देह से तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये विरही है। (इनके कृश तथा पाण्डुर शरीर से इनकी विरहावस्था के लक्षण प्रकट हो रहे है।) फिर भी, विधि-रचित सुन्दर पुरुषों मे ये सर्वप्रशंसित है।" हनुमान के ये वचन सुनकर नल नामक वानर ने कहा, "तुम्हारा यह अनुमान सच ही है। परन्तु इतना ही पता लगाओ कि रथ मे गमन करते समय वह नारी जिस नाम का उच्चारण कर रही थी, ये वही नाम-धारी पुरुष है या नही। (९)

तनु—शरीर, देह; त—तो; नुत—प्रशंसित; वाड़वेयसुत—नल नामक वानर; भाषे—कहा; तरक(तर्क)—अनुमान; बार—पता लगाओ, स्थिर करो। (९)

बिहि कङ्कबेश याइ के तुम्भे पचार ।
बिहिब से ताहि येवे होइव प्रचार ।
बाहार हेव बचन प्राक्रम भरसा ।
वाहा धनु देखि मणि जिणिपारे रसा । १० ।

सरलार्थ—नल ने आगे कहा, "हे हनुमान ! तुम ब्राह्मण का वेश-धारणपूर्वक उनके समीप जाओ एव उनसे यह पूछो कि आप कौन हैं। यदि वे बोले कि मेरी पत्नी का हरण हो गया है, मैं राम हूँ, इत्यादि; तो सारी बातें स्पष्ट हो जाएँगी। और भी उनकी कथाओं से उनके बल तथा धैर्य का पता लग जाएगा। बाहुओं तथा धनुप को देखकर मुझे ऐसा अनुमान हो रहा है कि ये आसानी से सारे भूमण्डल को जीत सकते हैं।" (१०)

कङ्कवेश—कपटी ब्राह्मण का वेश; प्राक्रम—पराक्रम; भरसा—धैर्य; मणि—अनुमान करता हूँ; रसा—पृथिवी; भूमण्डल। (१०)

वहन करि कपट मूरति बिधान ।
बहतु से करुणानिधान सन्निधान ।
वदति बिहरुअछ घोर काननर ।
बदरिका तेजि किपाँ नारायण नर । ११ ।

सरलार्थ—यह सुनकर हनुमान् ने शीघ्र ही कपटरूप धारण किया एवं दूत के रूप में उन्ही करुणा-सागर श्रीराम के समीप जाकर कहा, "आप दोनों

तो नर-नारायण की तरह प्रतीत हो रहे है। दोनों वदरिकाश्रम छोड़कर इस घने कानन में किस लिए भ्रमण कर रहे है ?"(११)

बहन—शीघ्र ही; बहुतु—दूत, पथिक; करुणानिधान—दयासागर श्रीराम; किपां—किसलिए; नरनारायण—वदरिकाश्रमस्थ ऋषिद्वय। (११)

बाहुजमूर्त्ति त जटा मुकुट मण्डन।
बाहु बह शस्त्र इच्छि काहार खण्डन ?
बाचक होइण पुच्छाँ करुँ रघुराण।
बाचस्पति कि ब्रह्मा कि बुझाइ पुराण। १२।

सरलार्थ—"क्षत्रिय-रूप धारण करते हुए भी जटामुकुटों से विमण्डित हुए है ! किसके खण्डन (विनाश) के उद्देश्य से अपने हाथों में शस्त्रो का धारण किये हुए है ?" हनुमान् के पूछने पर श्रीराम ने उनसे निम्नलिखित वचन कहे। उनके बोलते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो ब्रह्मा वृहस्पति को पुराण समझा रहे हों। (१२)

बाहुजमूर्त्तिं—क्षत्रियरूप; बाचस्पति—वृहस्पति। (उत्प्रेक्षालंकार)। (१२)

बहुत बिधाने दशरथङ्क तनय।
बहुँ राम लक्ष्मण नामकु सविनय।
बिश्वामित्र[1] आसि नेले यागकु पचारि।
बिश्वामित्र[2] सुबाहुर बिनाश बिचारि। १३।

सरलार्थ—"राजा दशरथ ने ऋषश्रृग के द्वारा वेद-विहित नियमानुसार यागयज्ञादि बहुत कर्म कराये, फलस्वरूप, उनके पुत्रों के रूप मे हम जन्मग्रहण-पूर्वक राम-लक्ष्मण, ये दो नाम धारण किये हुए है। जगत का शत्रु सुबाहु राक्षस विश्वामित्र आदि मुनियों का यज्ञ ध्वस कर रहा था। यह विचार करके कि उसका विनाश हम लोगों के हाथ हो सके, मुनि पिता दशरथ जी से पूछकर हमको अपने यज्ञ-स्थल पर ले गये थे, वहाँ पहुँचकर हम लोगों ने सुबाहु राक्षस का वध करके मुनियों की यज्ञ-रक्षा की। (१३)

बिश्वामित्र[1]—मुनि; बिश्वामित्र[2]—विश्वका अमित्र अर्थात् शत्रु (सुबाहु), (यमक)। (१३)

बिभावसु - कोटि - प्रभा शिवधनु धरि।
बिभा हेलुँ सीता कि शोभिता बिम्बाधरी।
बन्दारु परशुराम दर्प - विभञ्जन।
बन्दान्ते प्राते जनक करिण राजन। १४।

सरलार्थ—"अनन्तर हम ने ऋषि के सहित मिथिलापुरी गमन किया एवं वहाँ करोड़ों सूर्यो की प्रभावाले शिवधनुष का भंग करके परमासुन्दरी विम्बोष्ठी सीता से विवाह किया। मार्ग पर सीता सहित आते समय हमने परशुराम का गर्व दलन किया। उन्होंने पराजय-स्वीकार-पूर्वक हमारी स्तुतिगान की। अयोध्या मे पहुँचने पर एक दिन सुवह पिता ने मेरा राज-तिलक-सम्पादनपूर्वक मेरी वन्दना करने की इच्छा प्रकट की थी। (१४)

विभावसु-कोटि-प्रभा—करोड़ो सूर्यों की प्रभावाला; वन्दारु—स्तुति-पाठक; बन्दान्ते—वन्दना (आरती) करने की अभिलाषा करते। (१४)

विधायक वनगति मन्थरा मन्थिला।
विधाता भाल लेखन प्रिया दूर थिला।
बञ्चुथिलुँ दिन पञ्चवटीरे विहरि।
बञ्चक हरि - बल्लभी ए अद्‌भुत हरि। १५।

सरलार्थ—"इस समय कैकेयी की दासी मन्थरा ने षड्‌यन्त्र रचा और हमारे वनवास के निमित्त कैकेयी को राजा से वर माँगने के लिए प्रेरित किया। राजा ने अपनी सत्य-रक्षा करके हम को वन मे भेज दिया। विधाता ने मेरे भाग्य मे तो प्रिया का विछोह लिखा था। हम लोग पञ्चवटी-वन में आनन्द से विहार-पूर्वक दिन बिता रहे थे। किन्तु यह अचरज की बात है कि किसी प्रतारक ने मेरी प्रियतमा को चुरा लिया, जैसे सियार सिंह की पत्नी को चुरा लेता है। (१५)

मन्थरा मन्थिला—मन्थरा ने षड्‌यन्त्र रचा; बञ्चुथिलुँ दिन—दिन बिता रहे थे; बञ्चक—प्रतारक (ठग), स्यार; हरि-बल्लभी—सिंह-पत्नी; सिंहनी। (१५)

बिलोकन कराइला विचित्र कुरङ्ग।
बिलोळ होइ ता सङ्गे करिबारु रङ्ग।
बेदना अगोचररु जात अकथित।
वेदचोर शङ्खा प्राय सिन्धु मध्ये स्थित। १६।

सरलार्थ—"उस प्रतारक ने पहले हम लोगों को एक विचित्र मृग दिखलाया। मैंने विशेष रूप से चञ्चल होकर उसके साथ क्रीड़ाकौतुक किया एवं उसका पीछा किया तो प्रिया-वियोग संघटित हुआ। उस प्रतारक ने मेरी प्रियतमा को समुद्र के मध्य में छिपा रक्खा है, जैसे वेद-चोर शङ्खासुर ने वेद चुरा कर समुद्र में रक्खा था। परन्तु इस बात का अच्छी तरह पता न लगने के कारण मेरे मन मे अकथनीय यन्त्रणा हो रही है। (१६)

कुरङ्ग—मृग; बिलोळ—विशेष रूप से चंचल। (१६)

बिच्छेदी जानकी अछि वोलि लङ्कादेश ।
बिच्छेदुँ कवन्ध वाहु कहिला सन्देश ।
बिंश संख्या कर दश सख्या ता लपन ।
बिषम - विशिखे[1] मोते करिछि तापन । १७ ।
बिषम बिशिखे[2] ताकु करिवि अवश ।
बिंशभुज दशमुण्ड छेदिवि अवश्य ।
विग्रहुँ[1] यो जीव भिन्न से करि प्रकट ।
बिग्रहुँ[2] ता जीव भिन्न करिवि निकट । १८ ।

सरलार्थ—मार्ग मे कवन्ध नामक राक्षस हम लोगो पर हमला करने जा रहा था, तो हमने उसकी वाहुओ का छेदन करके उसे जीवन्मुक्त कर दिया । आकाश-मार्ग मे जाते समय उसने हमे यह समाचार दिया कि विरहिणी सीता लङ्कापुरी मे है । उनके हरणकारी के दस मुख तथा बीस भुजाएँ है । तो वही व्यक्ति मुझे काम के शरो से सन्तापित कर रहा है । मुतरा सुतीक्ष्ण वाणों से मै उसे शक्तिहीन कर दूँगा एव अवश्य ही उसकी दस भुजाओ तथा दस सिरो का छेदन करूँगा । उसने प्रकाश्य मे मेरी प्राण-समा जानकी को मेरे शरीर से विछुडाया है । मैं विना विलम्व के युद्ध करके उसके शरीर से जीवन को अलग कर दूँगा । (अर्थात् उसका मरण-विधान करूँगा ।) (१७,१८)

विच्छेदी—विरहिणी; लपन—मुख; विषम-विशिखे[1]—कन्दर्प (के शरो) से; विषम विशिखे[2]—प्रचण्ड (सुतीक्ष्ण) वाणो से; अवश—शक्तिहीन; विग्रहुँ[1]—शरीर से; विग्रहुँ[2]—युद्ध करके (यमक); निकट—अविलम्ब में । (१७,१८)

बिभिन्ने शिरे कवन्ध नृत्यन्ति समरे[1] ।
बिभीते प्राण - विहीने भ्रमे से समरे[2] ।
बिका मोर प्राण मन जानकी पाशरे ।
बिकाश तुम्भे के भ्रम ए वन देशरे । १९ ।

सरलार्थ—युद्ध-क्षेत्र में शिरहीन कवन्ध जैसे नृत्य करता है, (अर्थात् इधर-उधर दौड़ता रहता है,) उसी तरह जीवन-तुल्या सीता को खोकर मै कन्दर्प से विशेप रूप से भयभीत होकर इधर-उधर भटकता-फिर रहा हूँ । मेरा मन-प्राण जानकी के पास बिक गया है । हे विप्र ! तुम कौन हो ? किस लिए इस वन-प्रदेश मे भ्रमण कर रहे हो ? प्रकाश करो" । (१९)

विभिन्न शिरे—शिरहीन होकर; कवन्ध—मस्तकहीन शरीर; समरे[1]—युद्धक्षेत्र में; बिभीते—कन्दर्प से विशेष रूप से डरकर; समरे[2]—समान; विकाश—प्रकाश करो; के—कौन । (१९)

बळवृद्धि हेला जेणु राम दरशनु ।
बळरिपु - सोदरज कहे परसन्नु ।
बळिमुखश्रेष्ठ बाळि सुग्रीब सोदर ।
बळि नाहिँ बळे ताङ्कु जेणि बिबादर । २० ।

बनवासी सुग्रीव ए गिरि अनुसारि ।
बनधिरे मइनाक लुचिलार सरि ।
बहिणीतनुज मुहिँ नाम हनुमान ।
बहिण ताहारे प्रीति रहे सानुमान । २१ ।

सरलार्थ—राम को देखकर पवन-पुत्र हनुमान् का बल बढ़ गया । उन्होंने आनन्दित होकर कहा, "वानर-श्रेष्ठ बालि और सुग्रीव दोनों सहोदर भाई है । बल में उन्हें जीतनेवाला दूसरा कोई नहीं । उन दोनो मे विवाद होने पर सुग्रीव हार गये और जैसे मैनाक पर्वत समुद्र के आसरे में छिपा रहा है, उसी तरह सुग्रीव बनवासी होकर इसी पर्वत के आसरे मे रहते है । मै उनकी बहन का पुत्र (भानजा) हनुमान् हूँ । उनके प्रति स्नेहवश होकर मै भी उन्हीं के साथ इसी पर्वत में रहता हूँ । (२०,२१)

बळरिपु-सोदरज—इन्द्र का भतीजा (पवन का पुत्र) हनुमान्; बनधिरे—समुद्र में; बहिणी-तनुज-बहन का पुत्र (भानजा); सानुमान—पर्वत । (२०,२१)

बिजे कर घनश्याम से हेउ सानन्द ।
बिजे तुम्भ कृपाजळ वर्षे धाम रन्ध्र ।
विधु करे महोज्ज्वळ येमन्त रजनी ।
विधुप्रभा अधिक रजनी हेले जाणि । २२ ।

व्यवस्थिते पड़िअछि सेहि काळ सार ।
व्यवहारे हेव एवे विख्यात संसार ।
विलोमे पद्मलोचन भापे भारतीकि ।
विलोक करिवा घर निज पुरलोकि । २३ ।

तथा चन्द्रमा के मिलन से पूर्णिमा के ख्याति प्राप्त करने की तरह आप दोनों की मित्रता ससार भर मे ख्याति प्राप्त करेगी।" यह सुनकर राजीवलोचन श्रीरामचन्द्र ने छद्मवेश में द्विज-रूप धारण-पूर्वक आये हुए हनुमान् से यह बात कही, "तुम अपना रूप धारण करो, क्योंकि हम तुम्हारा स्वरूप देखना चाहते हैं। (२२,२३)

घनश्याम—श्याम मूर्त्ति, नीलमेघ; सारंग—चातक पक्षी; विधुकर—चन्द्रकिरण; रजनी—रात्रि; जनि—जात या उत्पन्न होना; व्यवस्थिते—संयोग से; व्यवहारे—मित्रता से; विलोमे—छद्म-द्विज-वेशधारी हनुमान से; भारती—वचन, कथा। (२२,२३)

वहु वीर शाखामृग तनु ततपर।
वहुत आनन्द चाहिँ हेले खरपर।
विभु जगतर चाहिँ पुच्छिले झटित।
विभूषण कपि होइ दिव्य किरीटि त। २४।

सरलार्थ—वीर हनुमान् ने तत्परता से अपना रूप धारण किया, (अर्थात् कपट द्विज-वेश तजकर अपना वानर-रूप धारण किया,) तो खरारि श्रीराम उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। तदनन्तर जगद्‌विभु ने उनसे शीघ्र पूछा, "तुम वानर होकर किस हेतु दिव्यकिरीट से विभूषित हुए हो?" (२४)

शाखामृग—वानर; तनु—देह; खरपर—खरारि श्रीराम; किरीटि—मुकुट। (२४)

ब्रह्मावरे पाइछि मुँ पवनतनय।
ब्रह्माण्डनाथ शुण हे बोलि सविनय।
वार वार पद्मपादे विहि दण्डवत।
वारण - त्राणङ्कु घेनिगला परवत। २५।

सरलार्थ—श्रीराम के प्रश्न पर हनुमान् ने उत्तर दिया, "हे ब्रह्माण्ड-नाथ! सुनिए, मैं वायु का पुत्र हूँ। ब्रह्मा के वर से मैंने यह मुकुट पाया है।" तदनन्तर वे प्रभु के पद्मपाद में बार-बार दण्डवत प्रणाम करके गजोद्धारक भगवान् श्रीराम को ऋष्यमूक पर्वत की ओर ले चले। (२५)

वारण—त्राणङ्कु—गजोद्धारक श्रीराम को; घेनिगला—ले चले। (२५)

बोधि मातुळकु राम पाशे भेटाइला।
बोधिद्रुम तळे प्रवाळरे वसाइला।
बिकसित कले राम वेगे स्वचरित।
बिकर्त्तन - सुत पुनः कथित त्वरित। २६।

सरलार्थ—हनुमान् ने पर्वत पर एक अश्वत्थवृक्ष के नीचे कुछ कोमल पत्र बिछाकर एक पल्लवासन बनाया और उस पर प्रभु को बैठाया। उसके बाद मामा सुग्रीव को श्रीराम की सारी बातें समझाकर उन्हें प्रभु से मिलाया। श्रीरामचन्द्र ने अपना सारा चरित (जन्म से लेकर सीता-हरण तक) सुग्रीव से कह सुनाया। फिर सुग्रीव ने प्रभु से शीघ्र ही अपनी राम कहानी कह सुनाई। (२६)

मातुळ—मामा; बोधिद्रुम—अश्वत्थ-वृक्ष; प्रवाळ—नये पत्ते; बिकर्त्तन-सुत—सूर्यपुत्र अर्थात् सुग्रीव; कथित—कहा; त्वरित—शीघ्र, चंचल। (२६)

बिधिबशे ऋक्षराजा पशि स्कन्धबने।
बिधिरे होइण स्तिरी - स्वरूप जबने।
बृषा, भानु य़ाउँ बिधाताकु संखोळित।
बृषाळ ऊरुकु देखि रेतहिँ स्खळित। २७।

सरलार्थ—पुराने जमाने में एक बार ऋक्ष नामक एक राजा ने जाते-जाते दैव-योग से पार्वती के द्वारा प्रतिष्ठित स्कन्ध नामक वन में प्रवेश किया। पार्वती ने ऐसा नियम-विधान किया था कि जो भी कोई पुरुष उनकी अनुमति के बिना उस वन मे प्रवेश करेगा, वह अवश्य ही स्त्री-रूप धारण करेगा। अतएव उक्त अभिशापानुसार ऋक्षराजा ने स्त्री-स्वरूप को प्राप्त किया। एक दिन इन्द्र तथा सूर्य उसी मार्ग पर विधाता का स्वागत करने जा रहे थे। दोनो ने उस सुन्दरी रमणी की दो बड़ी जाँघों को देखा तो उनका वीर्यपात हुआ। (२७)

बिधि-बशे—दैव योग से; जबने—शीघ्र ही; बृषा—इन्द्र, भानु—सूर्य; बृषाळ ऊरु—बड़ी जांघें। (२७)

बाळ ग्रीबे पतने पतन हेलु मही।
बाळ बेनि ख्यात बाळि सुग्रीब नामहिँ।
बनरु पार्वतीर य़े उद्धरि सादरे।
बनरुहोद्भब समर्पिले खड़दरे। २८।

सरलार्थ—इन्द्र का वीर्य उस सुन्दरी के बालों में तथा सूर्य का रेत उसकी ग्रीवा मे पड़ते ही हम दोनों (बालि तथा मै) दो बालकों के रूप-धारणपूर्वक पृथ्वी पर पतित हुए (जात हुए)। और जन्म-स्थानों के नामानुसार हम दोनों बालि तथा सुग्रीव नाम से ख्यात हुए। अनन्तर पद्मनन्दन ब्रह्मा ने पार्वती के वन में से हम दोनों का उद्धार करके खड़द नामक किष्किन्ध्या के राजा को समर्पित किया। (२८)

बाळग्रीबे—बालों में व ग्रीवा (गले) में; बनरुहोद्भव—पद्मभू, ब्रह्मा। (२८)

बसुँ राजा युबराजपदे किष्किन्ध्यारे ।
बसुधारे बाळि सम नाहिँ के य़ोद्धारे ।
बारिज - बन्धु उदेकु एड़े वीर - पण ।
बारिधि चारिरे करि आसइ तर्पण । २९ ।

सरलार्थ—अनन्तर हम दोनो किष्किन्ध्या के क्रमशः राजा तथा युवराज के पद पर अभिषिक्त हुए । (वालि राजा हुए और मैं युवराज हुआ ।) इस पृथिवी मे बालि के समान और दूसरा योद्धा कोई है ही नही । वह इतना बड़ा वीर है कि सूर्योदय तक चार समुद्रो में तर्पण करके लौट आता है । (२९)

बारिज-बन्धु—कमलवन्धु-सूर्य; बारिधि—समुद्र; । (२९)

बातकी पराये रिपु दर्शने थरित ।
बात पुष्प - गन्ध प्राये बळार्द्ध हरित ।
बादन न कले स्वर्गे देवता दुन्दुभि ।
बाद रचिब बिचारि शुणिले दुन्दुभि । ३० ।

सरलार्थ—बालि का इतना बड़ा पराक्रम है कि उसे देखते ही शत्रु वातरोगियो की तरह काँपते है । जिस तरह पवन स्पर्श-मात्र से ही पुष्पो की सुगन्ध हर लेता है, उसी तरह वह शत्रु को देखते ही उसका आधा बल हर लेता है । पूर्वकाल मे दुन्दुभि नामक एक महावली दैत्य था । उसका पराक्रम इतना था कि वह कही से भी रण-दुन्दुभी का निनाद सुनते ही झगड़ा खडा कर आफत मचा देता था । इस भय से देवतालोग स्वर्ग मे दुन्दुभी वाद्य नही बजा पा रहे थे । (३०)

बातकी—वातरोगी । (३०)

बाहास्फोट मारिबाकु सुमेरु पर्वते ।
बाहारु से दैत्य भये स्तुतिरे प्रवर्त्ते ।
बिभ्राट पारिले रच कपीशे संग्राम ।
बिभावरीचर शुणि भाङ्गिला ए ग्राम । ३१ ।

सरलार्थ—एक बार जब वह राक्षस सुमेरु पर्वत मे साभिमान बाहुस्फोट मारने को उद्यत हुआ, तो सुमेरु ने भय से उसकी स्तुति की और बडी विनती से कहा, 'हे महावीर ! तुम मे अगर सामर्थ्य हो, तो कपिराज बालि के सहित युद्ध करो; तब तुम्हारी वीरता का पता लग जाएगा । परन्तु तुम्हारे बाहुदण्ड की चोट से मुझे चकनाचूर करने से तुम्हे बिरले ही कोई यश प्राप्त होगा ।' यह सुनकर उस राक्षस ने यहाँ आकर किष्किन्ध्या नगर तोड़ा । (३१)

बाहास्फोट—अभिमान से बाहुओं पर ताल ठोंकना; बिभ्राट—युद्ध; पारिले—अगर तुम लड़ सकोगे, अगर तुममें सामर्थ्य हो; कपीशे—कपिराज बालि के सहित; बिभावरीचर—राक्षस (दुन्दुभि) ने; भाङ्गिला—तोड़ा। (३१)

बिधाने मदान्धकरी से ए हरिबर।
बिधा प्रहारे उचिते प्रकट राबर।
बळी गर्व खर्व होइ एतेक दइत।
बळीवर्द रूप धरि हेउँ पळायित। ३२।

बाम जारे इन्द्रसुत काहिँ ता रक्षण।
बाम करे पाद धरि बुलाउँ तत्क्षण।
बिसर्जिला प्राण नासारन्ध्रे जात रक्त।
बिपतिते मातङ्ग आश्रमे से बिरक्त। ३३।

सरलार्थ—सचमुच ही वह राक्षस मदमत्त हस्ती के सदृश और वालि सिंहराज के समान बलवान् है। सुतरां वालि के एक ही घूँसे से उस राक्षस ने बड़ी चीत्कार की। इसी तरह बलवान् राक्षस का गर्व खर्व हो जाने से वह बैल का रूप धारण-पूर्वक वहाँ से भागने को उद्यत हुआ। इन्द्र-पुत्र वालि जिसका शत्रु हो, उसकी रक्षा करने के लिए इस संसार में और कौन है? उसे भागते देखकर वालि हठात् उसके एक पैर को अपने बाये हाथ से पकड़कर उसे घुमाने लगा तो उसने प्राण-त्याग किया। इस समय उसकी नाक के छेदों से निकलता हुआ रक्त छिटक कर मातङ्ग ऋषि के आश्रम में जा गिरा, तो ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए। (३२,३३)

बिधाने—सचमुच ही, वास्तव में, असलियत तें; मदान्ध करी—मदमत्त हस्ती; हरिवर—सिंहराज; बिधा—घूँसा; राबर—चीत्कार; बळीवर्द—बैल; बाम—विरोधी, शत्रु; इन्द्रसुत—वालि; नासारन्ध्रे—नाक के छेदों से; बिपतिते—पड़ने से, गिरने से; बिरक्त—क्रुद्ध। (३२, ३३)

बिहित मणि असहित से रोषिले।
बिहि शाप तोर मृत्यु ए शैळे आसिले।
बहि शब ताहा जाणि आणि ए निकटे।
बहित येमन्त स्थित समुद्रे प्रकटे। ३४।

सरलार्थ—उस ऋषि ने देवताओं के लिए हितकर दुन्दुभि की मृत्यु को अहित समझकर क्रोध से बालि को शाप दिया, 'अगर तू इस ऋष्यमूक पर्वत पर आएगा तो निश्चय ही तेरी मृत्यु होगी।' शाप का वृत्तान्त जानकर बालि ने दुन्दुभि का शव लादला कर इसी पर्वत के पास डालदिया। देखिए, वह शव कैसे समुद्र में पड़े पोत की तरह दीख रहा है। (३४)

विहित—अहित, अमंगल; अमरहित—देवताओं का मंगल; शैळ—पर्वत; शव—मुर्दा; वहित—पोत। (३४)

बळाहकुँ पृथु तुङ्ग न भेदे भिदुर।
बळात्कारे बाळि केड़े बहि एते दूर।
बड़ क्रोधे ता भ्रात मायावी आगतरे।
बड़भी प्रासाद भाङ्गि नगरु सत्वरे। ३५।

सरलार्थ—दुन्दुभि राक्षस का शरीर पर्वत से भी अधिक मोटा एवं ऊँचा है। बालि उसे बलपूर्वक इतना दूर लाद लाया! इससे वह कितना बड़ा वीर है, आप अनुमान कीजिएगा। जब दुन्दुभि का मृत्यु-संवाद उसका भाई मायावी सुन पाया, तो अत्यन्त क्रोध से वह किष्किन्ध्या आया एवं तुरन्त ही नगरस्थ बड़ी-बड़ी अटारियों तथा चन्द्रशालाओं को उसने तोड़ डाला। (३५)

बळाहकुँ—पर्वत से; पृथु—मोटा; तुङ्ग—ऊँचा; भिदुर—बज्र; बड़भी—चन्द्रशाला; प्रासाद—अटारियाँ। (३५)

बर से योद्धारे मरामरि तळे तळे।
बरषे युझि कढ़ाइ नेइ रसा तळे।
बिळद्वारे दैत्य नाशे बाहार रुधिर।
बिळसि चित्तरे बाळि बिनाश अधीर। ३६।

सरलार्थ—बालि एवं मायावी दोनों वीरता में श्रेष्ठ है। सुतरां दोनों ने परस्पर को थप्पड़े मारते हुए एक साल तक युद्ध किया। अनन्तर वह मायावी राक्षस कौशल से बालि को पातालपुर में ले चला। आखिर पाताल में वह राक्षस बालि के द्वारा निहत हुआ, तो गर्त्तमुख मे रक्त दिखाई दिया। वह देखकर हमलोग मन में यह विचार करते हुए कि बालि पाताल मे शायद मर गया, व्याकुल होने लगे। (३६)

बर—श्रेष्ठ, महत्; तळे तळे—थप्पड़ों से; कढ़ाइ—ले चलकर; रसातळे—पाताल में; बिळद्वारे—गर्त्त-मुख में; रुधिर—रक्त; बिळसि—विचार करके। (३६)

बसुधा - भृतरे पोति आसिलुँ बिबर।
बसुँ अभिषेके मुहिँ मिळे कपिबर।
बाळाकु मो कोळुँ धरि रचि निधूबन।
बाळा - कर्षिबारे नेउथिला मो जीवन। ३७।

सरलार्थ—कहीं वह मायावी राक्षस उसी गर्त में से निकल कर हम लोगों का विनाश न कर दे, इसी आतंक से हम लोगों ने उसी

गर्त्तद्वार को पर्वतों से ढक दिया। अनन्तर जब मै राजपद पर अभिषिक्त हो रहा था, उस समय कपिराज बालि आ पहुँचा। उसने क्रोधान्ध होकर मेरी पत्नी को मेरी गोद से छीन लिया और बलात् उसके सहित रतिक्रीड़ा की। फिर इतने जोर से मेरे बालों को खींचा कि मेरा जीवन संकटापन्न हो गया। (३७)

बसुधाभृतरे—पर्वतों से; बिवर—गर्त्त; कपिबर—कपिश्रेष्ठ बालि; निधूवन—रतिक्रीड़ा; बाळाकर्षिबारे—बाल खींचकर। (३७)

बिकळ होइ पळाउँ गोड़ाइ चरमे।
बिलोके लोकालोक डेइँलि कि धरमे।
बाहुड़िथिब सेठारु निज कटकर।
बाहुजबर मुँ पड़ुँ सुवर्ण पङ्कर। ३८।
बिहायस बाणी शुणि नयन बुजिलि।
बिहार डेइँ पड़ि ए गिरिरे सर्जिलि।
बिळम्बि छत्र चामर याहा याहा करे।
बिलग करि रखि न देला कटकरे। ३९।

सरलार्थ—हे क्षत्रियश्रेष्ठ रामचन्द्र! उसके बाद मै व्याकुल होकर भागने लगा तो उसने मेरा पीछा किया। परन्तु अपने धर्मबल से मै जीवन की व्याकुलता से लोकालोक पर्वत तक कूद पड़ा। शायद वहाँ से बालि अपनी राजधानी को लौट गया होगा। जब मै लोकालोक पर्वत के इस पार सुवर्ण-पंक मे पड़ा, तब मुझे आकाशवाणी सुनाई पड़ी, "अगर तुम आँखें मूँद लो, तो इस पर्वत को लाँघ सकोगे।" सुतरां मैने आँखे मूँद लीं और उस पर्वत को लाँघ कर यहाँ ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगा। मेरे तिलक के समय और भी जिन्होंने क्षत्र-चामरों आदि का धारण किया था, बालि ने उन सभी को अपनी राजधानी किष्किन्ध्या नगर में न रहने देकर बाहर भगा दिया। (३८, ३९)

चरमे—पीछे; डेइँलि-कूद पड़ा; कटकर—राजधानी में; बाहुजबर—क्षत्रिय, श्रेष्ठ रामचन्द्र; बिहायसवाणी—आकाश-वाणी; बिहार—बास; बिलग—अलग, बाहर। (३८,३९)

बीर एके एके जिणि पारन्ति धरणी।
बिभङ्ग ताहा युद्धकु एहाङ्क करणी।
बिशकर नेला दिन स्यन्दने नभरे।
बिषम ब्यथितमति हेला शोक-भरे। ४०।

वाळीकु छड़ाइथान्तु आम्भे तुच्छ रणे ।
बाळि मित्र भय हेला गुहारि करणे ।
बिमान चाहिँबाकु किष्किन्ध्या पाशे थिला ।
बिमातृज नुहे व्यर्थे मो दर्प मन्थिला ।४१।

सरलार्थ—मेरे साथ जो सब वीर थे, उनमे से हर एक वीर इस पृथिवी को जीत सकता है, यह बिलकुल सच है। किन्तु वालि से युद्ध करने के लिए उनकी सामर्थ्य सकुचा रही है। जिस दिन रावण आपकी पत्नी को रथ मे बैठाये आकाश-मार्ग मे ले जा रहा था, उस दिन हम लोगो के चित्त शोक के कारण अत्यन्त व्याकुल हुए। हम लोग मामूली युद्ध करके उससे आपकी पत्नी को छीन ला सकते; परन्तु इस भय से कि उसके वालि का मित्र होने के कारण कही उसके आगे जा शिकायत न कर दे, हमलोगो ने उसके सहित युद्ध नही किया। और भी देखते-देखते रथ किष्किन्ध्या के आसपास पहुँच चुका था। इससे आप यह जानिए कि वह मेरा सौतेला भाई नही है। मेरा सहोदर भाई होते हुए भी उसने मुझे इतना भय दिखाया है कि मेरा गर्व उससे बिलकुल चूरमार हो गया है। (४०,४१)

बिभंग—कातर, संकुचित; करणी—सामर्थ्य; विपन्न व्यथित-मति—अतिशय व्याकुल; वाळीकि—पत्नी (सीता) को; तुच्छ रणे—मामूली युद्ध से, आसानी से; बाळिमित्र—रावण के वालि का मित्र होने के कारण; गुहारि—शिकायत, अभियोग; विमातृज—सौतीला भाई। (४०,४१)

विभूति जटा-धारण चिह्न से काहार ।
बिभूषा पकाइछि केयूर मणिहार ।
बोलि से गुहारु आणिदेला से भूषण ।
बोळि देला कि चन्दन शम्बरदूषण ।४२।

सरलार्थ—जब रावण उक्त नारी को लिये जा रहा था, तब वे अपने बाजूबन्द तथा रत्नहारादि अलंकार यहाँ डाल गई है। हे विभूति-जटाधारी रामचन्द्र! आप ही पहचानिए कि वे सब आभूपण किसके है? यह कहते हुए सुग्रीव ने वे सब आभूषण पर्वत-गह्वर से ला कर श्रीरामचन्द्र को दिये। उन सबको पाकर श्रीराम ने ऐसा शीतल आनन्द अनुभव किया मानो कामदेव ने तरल चन्दन को सन्तप्त मनुष्य के शरीर पर पोत दिया हो। (४२)

विभूति—राख; केयूर—बाजूबन्द; बोळिदेला—पोत दिया, लेप कर दिया; शम्बरदूषण—शम्बरारि, कामदेव; उत्प्रेक्षालंकार। (४२)

बसने अम्ळान होइथिला से बन्धन।
बशचित्त कबचकृतकु हेला धन।
बीथि बीथि बाण प्रहारिबारे अतनु।
बिथिर होइ एथिरे घोड़ाइबि तनु।४३।

सरलार्थ—वे सब आभूषण अम्लान वस्त्र में बाँधे हुए थे। उक्त अम्लान वसन को देखकर रामचन्द्रजी का चित्त ऐसे वशीभूत हो गया कि उन्होंने अनुभव किया—मेरी प्रिया इसे कवच बनाने के लिए मुझे दे गई है। कारण, जब कन्दर्प माल-माल शरों से मुझ पर प्रहार करेगा, मैं अस्थिर होकर इस वस्त्र से अपने शरीर को ढक लूँगा। सुतरां काम के शर मेरे शरीर को और नहीं वेध सकेंगे। (४३)

कवच कृतकु—वर्म करने के लिए; बीथि बीथि—माल-माल, समूह-समूह; अतनु—कन्दर्प; बिथिर—अस्थिर। (४३)

बासगण्ठि फिटाइ देखिले अळंकार।
बासअंगी प्रशंसा कहिले ए प्रकार।
बाम - नेत्राटि मण्डन रत्नमण्डनकु।
बाम हेला बिधि एतेकाळे एमानङ्कु।४४।
बिहीन - बेश से नोहि ए होइ सम्मत।
बिहित शोभा अशेष प्रिया नभ मत।
बिभिन्न दीन हेबारे नक्षत्रमाळारे।
बिभीत चित्त नोहिब रजनी मेळारे।४५।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने उस वस्त्र की गाँठ खोलकर उन आभूषणों को देखा और सीता की इस ढंग से प्रशंसा की—"सुगन्धित अंगों वाली वामलोचना सीता इन्ही आभूषणो की भूषण-स्वरूपा है। अर्थात् ये सब उसके शरीर पर रहकर ही सुन्दर दिखाई देते है, परन्तु इनसे सीता का शरीर सुन्दर नही दीखता। विधाता इतने दिनों के बाद इन्हीं आभूषणों के प्रति वाम या प्रतिकूल हुए। अर्थात् सीता के शरीर से बिछुड़कर ये सब शोभाहीन हुए। सुतरां इनके बिछुड़ने पर सीता वेशहीना नही हुई है, बल्कि ये ही आभूषण सीताहीन होकर वेशहीन हुए है। मुझे तो ऐसा अनुमान होता है कि मेरी प्रिया सीता दिवाकालीन नक्षत्रहीन आकाश की तरह भूषणहीना होकर भी सुशोभित हो रही होंगी। आकाश 'दिन' होने पर नक्षत्रमाला से विभिन्न (विशेष अलग) होकर भी शोभा पाता है। उसी तरह मेरे विरह से 'दीन' (खिन्न) मेरी प्रिया मोतीमाला से विभिन्न (विशेष रूप से भिन्न) होकर भी शोभा पा रही होंगी।

आकाश रात से मिलित होने पर विशेप रूप से भीतचित्त नहीं होता है। सीता 'रज' (अर्थात् धूल) से 'नि' (अर्थात् निश्चय) रूप से मिलित (अर्थात् धूलि-धूसरित) होकर शरीर-प्राणो के प्रति अनादर के हेतु निभीतचित्त (निडर) हुई होगी। (कोई-कोई ऐसा अर्थ भी करते है—) आकाश रात्र से मिलित होने से उसके चित्त में विशेप भय उत्पन्न होता है; रात होने पर सीता के मन मे विशेप भय नही होगा क्या ? अवश्य होगा। (४४,४५)

वासगण्ठि—वस्त्र की गाँठ; फिटाइ-खोलकर; वासअंगी—सुगन्धित अंगोंवाली; वाम—प्रतिकूल; एमानङ्कु—इन (अलंकारों) के प्रति; नभ मत—आकाश के समान; दीन—खिन्न; दिन—दिवस; नक्षत्र-माला से—तारावलियों से, मोतियों से; विभीत चित्त—विशेष रूप से डरा हुआ चित्त; रजनी मेळारे—रात के मेल से; रज नि मेळारे—निश्चय धूलिधूसरित होकर; (श्लेष, काकु)। (४४, ४५)

विदीप्त हेबारु करि ताप घनकाळ।
बिदित कला कङ्कण मुञ्चिबा तत्काळ।
बिद्युद्गोरी मानसर स्मरशर दरे।
बिदूरता हंसकर निश्चय आदरे। ४६।

सरलार्थ—पृथिवी के प्रखर ताप का निवारण करने के लिए बरसात उस पर जलविन्दु छोड़ती है। उसी तरह सीता ने विरह-ताप से अत्यन्त तप्त होकर उसके निवारण के लिए अपने कंगन नामक करभूषणों को त्यागा होगा। इस विरहावस्था में उन्हें इन आभूपणों की पहनाई नही भायी होगी। हस-समूह शरत्काल में मानसरोवर को छोड़ बहुत दूरी पर चले जाते हैं। उसी तरह बिजली के सदृश गोरी सीता ने अपने मानस में कन्दर्प के बाण के आघात से डरकर अपने हंसकों (नूपुरों) का परित्याग किया होगा। (विरहावस्था मे इन्हीं नूपुरो के कारण कन्दर्प का वाण कही इन्हें अधिक न सतावे, इसलिए सीता ने अपने पैरों से इन्ही आभूषणौ को निकाल दिया है। (४६)

विदीप्त—अत्यन्त तप्त; घनकाळ—वरसात, कंकण—जल विन्दु, कंगन; मुञ्चिबा—छोड़ना; विद्युद्गोरी—बिजली के समान गोरी सीता; मानसर—मानसरोवर, मन; स्मरशर—कन्दर्प का बाण; दरे—डर से; हंसक—हंसपक्षी, नूपुर; (श्लेष)। (४६)

बन्दी होइ रक्षपुरे एमन्त मतिरे।
बन्दिआ रखिला परा ताहार श्रुतिरे।
बिधबा वेश शंकारे रखिछि अतुल।
बिध्वंसे ए भाब धैर्य्य स्नेही काहिँ तुल ? ४७।

सरलार्थ—यह सोचकर कि मैं राक्षसपुरी में बन्दी हुई, सीता ने अपने 'बन्दिआ' (बुंदा) नामक कर्णाभूषण को अपने कर्णो में शायद रख लिया हो। और विधवा होने की आशंका से 'अतुल' नामक हस्तालंकार को उन्होंने अपने शरीर पर रख लिया है। अहा ! प्रिया के ये सब मनोभाव मेरे धैर्य का विनाश कर रहे है। (अर्थात् उनकी ये सब मनोदशाएँ सोचकर मेरे धैर्य का लोप हो रहा है।) वास्तव में उनके समान स्नेही इस जगत में और कहाँ है ? (४७)

रक्षपुरे—राक्षसपुरी लंका में; बन्दिआ—कर्णाभूषण विशेष, बुंदा; श्रुतिरे—कानों में; अतुल—कंगन के सदृश हस्तालंकार विशेष; तुल—समान, सदृश। (४७)

बर्णन्ते ए रूपे स्वरभंग परचरे।
बर्णमान ब्यक्त होइ तहुँ न उच्चरे।
बत्सर सम लबक नोहिला निबारि।
बत्सस्थळ तिन्तिगला पड़ि अश्रुबारि। ४८।

सरलार्थ इस प्रकार वर्णना करते-करते भावावेश के कारण श्रीराम जी का स्वरभंग हुआ। उनके मुख से अक्षर स्पष्ट रूप से उच्चारित नही हो सके। एक ही क्षण उन्हें वर्ष के समान प्रतीत हुआ एवं आँखों से आँसू टपक कर उनका वक्षस्थल भीग गया। (४८)

परचरे (प्रचरे)—प्रसारित हुआ, प्रकाशित हुआ; वर्णमान—अक्षर सब; बत्सर सम—वर्ष के समान; लबक—एक ही क्षण या मुहूर्त्त; बत्सस्थळ—वक्षस्थल; तिन्तिगला—भीग गया। (४८)

बिषादे निःश्वास तेजि हा सीता भाषित।
बिषाविष्ट कामकाण्डे हेले आकर्षित।
बान्धन्ते भूषा लक्ष्मण एहा देखि हेळे।
बान्धबि रे कि दण्ड हेलाटि कहि हेले। ४९।

सरलार्थ रामचन्द्र कन्दर्प के विषाक्त शरों से विद्ध हो गये। उन्होंने दुःख से दीर्घ निःश्वास छोड़कर उच्चारण किया, "हा सीते !" इस समय जव लक्ष्मण ने उन आभूषणों को बाँधा, तो श्रीराम ने अवज्ञा से उनकी ओर निहारकर कहा, "अहह ! मेरी प्रिया ने यह कैसा दण्ड भोग किया ! (४९)

बिषाविष्ट—विषाक्त; कामकाण्डे—काम रूपक वाणों से अथवा कन्दर्प शरों से; भूषा—अलंकार; हेळे—अवज्ञा से, अवहेलना से। (४९)

बड़भी शयने हृदुँ हृदय अन्तरे।
वड़ भयाळु चमकि भिड़इ कातरे।

बिलोप जीवन नोहिथिब निकि सती।
बिलोकि दशबदन भुजहिं बिशति। ५०।

सरलार्थ—"जब हम दोनों चन्द्रशालापुर में सोये रहते, तब मेरे वक्ष से उनका वक्ष अलग होते ही वे भय से चौंक उठतीं और कातरता से मुझे अपनी तरफ खींच लेतीं। उन्हीं सती सीता ने रावण के दस सिरों तथा बीस भुजाओं को देखकर क्या आज तक अपने प्राण नहीं त्यागे होंगे? (अर्थात् रावण का भयकर रूप देखकर शायद उन्होंने प्राण्य-त्याग किया होगा।) (५०)

बड़भी—चन्द्रशालापुर, अट्टालिका; भिड़इ—खींचतीं; बिलोप जीवन—प्राणत्याग; नोहिथिब निकि—क्या नहीं किया होगा?; सती—सती सीता ने। (५०)

बञ्चक आयत्ते शश पड़िला परि रे।
बञ्चुथिब जीब थिले दिबा शर्बरीरे।
बन्दी ब्याध-जाले हेला कपोती येसन।
बन्दिता कबिरे ये सुन्दरी से एसन। ५१।

सरलार्थ—"अगर मेरी प्रिया जीवन में रही हो, तो शृगाल के वश में पड़े हुए खरगोश की तरह दिन और रात बिता रही होंगी। जो सीता ऐसी (अनुपम) सुन्दरी है कि वे कविजनों से वन्दनीया है, वही शिकारी के जाल में पड़ी कपोती की तरह अतिशय व्याकुल हो रही होंगी। (५१)

बञ्चक—सियार, शृगाल; शश—खरगोश; परि—तरह; बञ्चुथिब—बिता रही होंगी; दिबाशर्बरीरे—दिन और रात; कपोती—कबूतरी। (५१)

बिना दरशन ताहा कषण भावने।
बिनाश नोहि रहिछि काहिंकि जीवने?
बिरचि आद्यन्त अनुप्रास आसपदे।
बीरबर उपइन्द्र छान्द बान पदे। ५२।

सरलार्थ—"उनके दर्शन के बिना मैं उनका क्लेश ही मन में सोच रहा हूँ! इस प्रकार सोचता-सोचता बिना मरे मैं क्योंकर जीवित रहा हूँ?" भञ्जकवि ने आद्यन्त अनुप्रास के आधार पर हुए इस छान्द की बावन पदों में रचना की। (५२)

ताहा—उनका; कषण—क्लेश, कष्ट; आसपदे—आधार पर। (५२)

॥ इति सप्तविंश छान्द ॥

अष्टाविंश छान्द

राग—देशाख, चक्रकेळि वाणी

बोले सुग्रीबे राम कळेशभाषा । बेनि जने पड़िछि एक दशा । १ ।
बिभाबसुबंशे जात आम्भर । बिधिरे त तुम्भे ताङ्क कुमर । २ ।
बसु अय़ोध्या किष्किन्ध्या राजन । बि-भूतिरे बने हेला सदन । ३ ।
बामा - बिच्छेद पर - धरषणे । बञ्चि दिन फळमूळ भक्षणे । ४ ।
बन्धु अनुज मन्त्री प्रबोधने । बोध होइ रहिथाइँ जीबने । ५ ।
बाधा माता-भ्रातारे उपुजिछि । बइरिकि साधिबा इच्छा अछि । ६ ।
ब्यबहारे मित्र हेबा उचित । बोले सुग्रीब शुण रघुसुत । ७ ।

सरलार्थ—श्रीराम जी सुग्रीव से अपनी व्यथा-भरी कहानी इस प्रकार बोलने लगे— "हम दोनों को एक-सी दशा आ पड़ी है । (कैसे ?) हमारा सूर्य-वंश में जन्म हुआ है और विधानानुसार तुम सूर्य के पुत्र हो । हमारे अयोध्या के तथा तुम्हारे किष्किन्ध्या के राज-सिंहासन पर बैठते समय ऐसी दुर्दशा आ पहुँची कि हम दोनों को धन-हीन अवस्था में (अथवा तुमको धन-हीन अवस्था में तो हमको भस्म-वेशी निर्धन संन्यासी के रूप मे) वन में ही वास करना पड़ा है । रावण से हमारा और बालि से तुम्हारा, इस प्रकार शत्रुओं के उपद्रव से दोनो का प्रिया-वियोग संघटित हुआ है और दोनो फलमूल-भोजन करके अपना-अपना जीवन बिता रहे है । हम अपने बन्धु (सहायक) तथा अनुज (छोटे भाई लक्ष्मण) के सान्त्वना-वाक्यों से जी रहे है तो तुम अपने बन्धु हनुमान तथा मन्त्रियों के प्रबोधना-वाक्यों से सान्त्वना पाकर जीवित रहे हो । माता (सौतेली माता कैकेयी) के कारण हमारी राज्य-प्राप्ति मे और भ्राता (बालि) के कारण तुम्हारी राज्य-प्राप्ति मे बाधा उपजी है । हमारा रावण से तथा तुम्हारा बालि से, इस प्रकार दोनों का अपने-अपने शत्रु से बदला लेने का अभिप्राय रहा है । उपर्युक्त कारणों से हम दोनो का व्यवहार एक-सा हुआ । सुतरां हम दोनो को पारस्परिक मित्रता-सूत्र से आबद्ध होना चाहिए ।" तब सुग्रीव बोले— "हे रामचन्द्र जी ! मै जो कह रहा हूँ, उसे ज़रा सुनिएगा । (१-७)

बिभावसु-वंशे—सूर्य-वंश मे; वि-भूतिरे—विगत भूति अर्थात् धनहीन अवस्था में, (विभूति—ऐश्वर्य), भस्म; (श्लेष) पर-धरषणे—शत्रु के धर्षण (उपद्रव) से; वइरिकि—वैरी से; साधिवा—बदला लेने का; इच्छा—अभिप्राय; अछि—है; रघुसुत—रामचन्द्र । (१-७)

बुल धरणी निर्भयरे तुम्भे । बाळि डरे गिरिरे लुचुँ आम्भे। ८ ।
बळवन्त हेले य़था केशरी । बधे गजादि शरभकु डरि । ९ ।
बिहि पारिबि केउँ उपकार । बोल मित्र हेबा तुम्भ आम्भर ।१०।

सरलार्थ—"हम दोनों में केवल इतना ही प्रभेद है कि आप निर्भय पृथिवी पर घूम रहे है, जब कि बालि से डरकर हम पर्वत-गह्वर में छिपे है। हम बड़े शूर-वीर तो है ही। जिस तरह सिंह बलवान् होकर हाथियो जैसे बड़े-बडे पशुओं का वध करता है, परन्तु आठपैरों वाले मृग से डरता है, उसी तरह हम बड़े-बड़े पशुओ का तो वध कर लेते है; परन्तु बालि से डर रहे है। आप बोल रहे है कि आप और हम दोनों मित्र बने। परन्तु मित्र होने से मैं आपका कौन-सा उपकार कर सकूँगा ?" (८,९,१०)

बुल—घूमते हो; लुचु—छिपते है; केशरी—सिंह; शरभ—अष्टपाद विशिष्ट मृग। (८,९,१०)

बोले रघुबीर शुणि उत्सुके । बिन्धि पकाइबि बाळि बाणके ।११।
ब्रह्मलोके थिले सीता खोजाइ । बाद रचने आणिबि से कहि ।१२।
बीर ए कपि मोर सङ्गे अछि । बाळभानु जन्मुँ डेइँ धरिछि ।१३।
बोलाबोलि से होइ एतेमात्र । बह्नि साक्षी कराइ हेले मित्र ।१४।

सरलार्थ—यह सुनकर रामचन्द्र ने उत्सुक होकर कहा, "मै एक ही बाण मारकर बालि का वध कर दूँगा। तुम क्यों डर रहे हो?" रामचन्द्र की यह बात सुनकर सुग्रीव ने कहा, "सीता ब्रह्मलोक में होने पर भी मैं युद्ध-रचनापूर्वक वहाँ से ले आऊँगा। मेरे साथ यह जो कपि (हनुमान) है, वह बड़ा वीर है।" पैदा होते ही उसने कूद कर बाल-रवि को पकड़ा है। दोनो ने आपस मे इतनी बात अर्थात् प्रतिज्ञा की कि रामचन्द्र जी बालि का वध करेगे एवं सुग्रीव सीता जी को ढूँढ ला देंगे और दोनों अग्नि को साक्षी रखकर मित्र बने। (११-१४)

बिन्धि पकाइबि—तीर से मार डालूँगा; बाद रचने—युद्ध छेड़कर; बाळभानु—नवोदित सूर्य; डेइँ—कूद; बोलाबालि हेले—बात की, प्रतिज्ञा की। (११-१४)

बोलुँ शत्रुकु देखाअ राघब । बोलुअछि सबिनये सुग्रीब ।१५।
बिन्धिबाकु इच्छा य़ेबे बाळिकि । बळ कष दुन्दुभि अस्थि टेकि ।१६।

सरलार्थ—तदनन्तर राम ने सुग्रीव से कहा— "तो तुम अपना शत्रु कहाँ है, मुझे दिखाओ।" सुग्रीव ने सविनय कहा, "अगर आप बालि का वध करना चाहते हों, तो पहले दुन्दुभि राक्षस की हड्डियाँ उठाकर अपना बल कसिए। बालि से निहत दुन्दुभि राक्षस की अस्थियों को

उठा सकने से इस बात का सबूत मिल जाएगा कि आप वालि का वध कर सकेंगे।" (१५,१६)

राघव—श्रीराम; बोलुअछि—बोल रहा है; बिन्धिबाकु—तीर मारने को; बळ कष—बल कसिए; अस्थि—हड्डियाँ; टेकि—उठाकर। (१५,१६)

बिजे राम शुणि से सन्निधिर। बृद्धाङ्गुळिकि बाम चरणर।१७।
बिन्यस्त ये कले अस्थि-गिरिरे। बनरुहे करिकर परिरे।१८।
बेगे तोळि से कळि से येमन्ते। बिहायसे फिङ्गिदेले तेमन्ते।१९।

सरलार्थ—श्रीराम यह सुनकर उन हड्डियो के पास गये और अस्थि-गिरि पर उन्होंने अपने बाये पैर के अँगूठे को विन्यस्त किया, मानो हाथी ने अपनी सूँड को कमल पर विनियोजित कर दिया! अनन्तर हाथी जिस प्रकार उस कमलकली को आसानी से फेक देता है, उसी प्रकार श्रीराम ने शीघ्र ही उस अस्थि-पर्वत को आसानी से आकाश पर उठा फेक दिया। (१७,१८,१९)

बिजे—गये; सन्निधिर—समीप, पास; बृद्धांगुळिकि—पैरे के अँगूठे को; बिन्यस्त—विनियोजित; बनरुहे—कमल को; करीकर—हाथी की सूँड; तोळि—उठाकर; कळि—कली (कमल की कली); ये‌मन्त—जिस प्रकार; बिहायसे—आकाश मे; तेमन्त—उसी प्रकार। (१७,१८,१९)

बरे शुभन्ते शबद ताहार। ब्योमे दृष्टि किष्किन्ध्या-वासीङ्कर।२०।
बितर्किले से मइनाक उड़ि। बज्रघाए बहुत दूरे पड़ि।२१।

सरलार्थ—जब रामचन्द्र जी ने उन अस्थियो को फेक दिया, तब उन के आकाश-मार्ग मे उड़ने से ऐसा भयंकर शब्द सुनाई पड़ा कि किष्किन्ध्या-वासियों ने आकाश की ओर निहारा। उन्होंने आपस में चर्चा की, "क्या इन्द्र के बज्राघात से मैनाक पर्वत उड़कर बहुत दूरी मे जा पड़ा!" (२०,२१)

बरे—ऊँची आवाज से; शुभन्ते—सुनाई पड़ने से; बितर्किले—चर्चा की, तर्कणा की; बज्रघाए—बज्राघात से। (२०,२१)

बिकळ्पता उपुजिला सुग्रीबे। बड़ गरु ए होइथिला पूर्बे।२२।
बसा आदि मांस चर्म संपूर्ण। बिनाश त पूतिबशे सेमान।२३।
बिबस्वान किरणे शुष्कभाव। बहे बाळि तेबे एबे राघव।२४।

सरलार्थ—यह देखकर सुग्रीव के मन में संशय हुआ कि पहले ये हड्डियाँ चरबी, मांस, चमड़े आदि वस्तुओं से भरपूर होने के कारण बड़ी भारी थीं। अब वे सारी चीजें तो सड़कर गल गई हैं। और भी सूरज की किरणों से ये हड्डियाँ सूख गई है। इन्ही कारणों से ये हल्की हो गई है।

दुन्दुभि राक्षस को मार कर उसके सर्वतोरूपेण भारी शव को तव वालि यहाँ लाद लाया था। अव रामचन्द्र ने केवल इसकी सूखी हल्की हड्डियों को उठा कर फेक दिया। अतएव यह नि:सशय रूप से मालूम नही हो सका कि रामचन्द्र जी का वल उससे अधिक है अथवा कम है। (२२,२३,२४)

बिकळ्पता—संशय; गरु—भारी, वजनदार; बसा—मेद, चरवी; पूतिवशे—सड़ने के कारण; सेमान—वे सब; बिबस्वान—सूरज; तेबे—तब, उस समय; एबे—अब; राघव—श्रीराम। (२२,२३,२४)

बोले कथा एक अछि आहुरि। वज्रुँ आण्ट सण्तशाळ माधुरी।२५।
बाळि जाते[1] भरा मणु बसुधा। बळ अधे रखिछि तहिँ बेधा।२६।
बहे तुळपात्र रहे समाने। बिभागरे गुरुद्रव्य य़ेसने।२७।
बिन्धि भेदि न पारन्ति इन्द्रादि। बाणकरे पारिब य़ेबे छेदि।२८।

सरलार्थ—सुग्रीव ने कहा, "फिर एक वात और है। सप्तशाल वृक्षों की माधुरी (सख्ती) बज्र से भी अधिक है। वालि के जन्म से पृथिवी ने भार का अनुभव किया। [अथवा वालि के (यान्ते) चलते समय पृथिवी भार का अनुभव करती है।] इसी वजह से विधाता ने वालि के बल का आधा भाग इन्ही सप्तशाल वृक्षो मे रक्खा है। किसी गुरु द्रव्य को बराबर-वराबर, दो हिस्सो में विभाजित करके एक तराजू पर रखने से दो पलड़े एक ही तल पर समान रहते है, अर्थात् किसी भी ओर कोई पलड़ा नही झुकता, ठीक उसी तरह बालि के वल का आधाभाग सप्तशाल वृक्षो में रहकर सन्तुलित हो जाता है। फलस्वरूप बालि-गुरुत्व का आधिक्य पृथिवी पर नहीं पड़ता और वह नीचे की ओर धँसने से बच जाती है। इन्ही सप्तशाल वृक्षो को इन्द्रादि देवता लोग बाणों से बेध नही सकते। अगर आप एक ही वाण से इनको काट सकते, तो आपके बल का सबूत मिल जाएगा और इसके वारे मे हम नि.सशय हो जाएँगे कि आपमे बालि का वध करने की सामर्थ्य जरूर है।" (२५-२८)

आहुरि—और भी; आण्ट—अधिक; माधुरी—कठोरता, सख्ती; जाते—जन्म से, (य़ान्ते—चलते समय); बसुधा—पृथिवी; बेधा—विधाता ने; तुळपात्र—ताराजू, तुला; बाणकरे—एक ही बाण से; पारिब य़ेबे छेदि—अगर छेदन कर सकते। (२५-२८)

बिराधारि बोइले काहिँ काहिँ। बळिमुखश्रेष्ठ नेइ देखाइ।२९।

सरलार्थ—तब विराध राक्षस के शत्रु रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा, "कहाँ है सप्तशाल वृक्ष? दिखाओ मुझे।" तो वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने उन्हें वहाँ ले जाकर वे वृक्ष दिखलाये। (२९)

बिराधारि—विराध राक्षस के शत्रु श्रीराम ने; बळिमुखश्रेष्ठ—वानरश्रेष्ठ (सुग्रीव) ने। (२९)

---

[1] य़ान्ते (पाठान्तर)—जाते (चलते) समय।

(नागवन्ध) ♦

"बिशाळता पबि दृढ़ सेबन। बृक्षवृत शतपत्र रञ्जन।३०।

सरलार्थ—वे सप्तशाल वृक्ष वड़े विशाल थे। (अर्थात् दैर्घ्य-प्रस्थ में बड़ी दूरी तक फैले थे) और भी बज्र के समान कठिन थे। इस तरह विशालता तथा कठिनता दोनों ही गुण उन वृक्षों की सेवा किया करते थे। वे सात वृक्ष एकत्र मण्डलकार में रह कर पद्म की तरह सुहावने दीखते थे। (३०)

पवि—वज्र; वृत—गोलाकार, मण्डलाकर; शतपत्र—कमल, पद्म; रञ्जन—शोभनीय, सुहावने। (३०)

बक्रे रहि सशोभाधृता सेहि। बहि नाग गाढ़ तरु दिशइ।३१।
बप्र तारतर सार नबीन। बिष सप्रभारे बिहगहीन।३२।

सरलार्थ—उन वृक्षो ने वक्राकार मे रहकर परम शोभा धारण की थी। फिर क्या? एक नाग का वहन किये वे घने दीखते थे। इस प्रकार नाग के सहित सप्तशाल वृक्षों का घेर एक नूतन तथा श्रेष्ठ दुर्ग की तरह देदीप्यमान दीखता था। नाग के जहर के प्रभाव से वे वृक्ष पक्षी-शून्य हो गये थे अर्थात् उन वृक्षो पर कोई चिड़िया नही रह पाती थी। (३१,३२)

सशोभा—परम या अतिशय शोभा; धृता—धारण की थी; सेहि—उन्ही वृक्षों ने; गाढ़—गाढ़े, घने; तरु—वृक्ष; दिशइ—दीखते थे; वप्र—दुर्ग; तारतर—देदीप्यमान; सार—श्रेष्ठ; नवीन-नूतन; सप्रभारे—प्रभाव से; विहगहीन—पक्षीशून्थ। (३१,३२)

बनरुहपद प्रतळ बळ। बिनयरत सर्प सप्तशाळ"।३३।
ब्याळ सळखि हेउँ रघुबीर। बाण प्रयोग कले से सत्वर।३४।
बृक्ष सात भेदि भेदि पर्बते। बाहुड़िला से मार्गण त्वरिते।३५।
बिष्णु मणि चक्रवन्धे सुग्रीब। बिनत से अद्भुत देखि जब।३६।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र के अपने पद्म-पाद के पंजे के बल से साँप को दवाने से वह सप्तशाल-सर्प विनय-रत हुआ। साँप के विनयी होकर अपने को सीधा करते ही वे सात टेढ़े वृक्ष भी सीधे हो गये और श्रीराम

♦ नागवन्ध :— यह कविता-रचना का नागाकृति बन्धविशेप है। रीतिकाल मे ओडिआ कवि विविध वस्तुओ के चित्रो पर नाना प्रकार के वन्धो की कल्पना करके कविताएँ लिखा करते थे। जैसे— नागवन्ध, चक्रवन्ध, पद्मवन्ध, रथवन्ध, आदि। नागवन्ध की कविता ऐसी रचित होती है कि कुण्डलित नाग के चित्र पर उक्त कविता के अक्षर सब धारावाहिक रूप से सन्निवेशित किये जा सकते है। उपेन्द्रभञ्जकृत 'चित्र-काव्य वन्धोदय' नामक ग्रन्थ मे ऐसी महुत सचित्रवन्ध कविताएँ मिलती है।

ने उनकी ओर शीघ्र ही शर का प्रयोग किया। वह शर सप्तशालों को एक के बाद दूसरे को क्रमशः वेध करके फिर शीघ्रता से ऋष्यमूक पर्वत पर वापस आया एवं श्रीराम की तरकश मे घुस गया। यह अद्भुत कर्म देखकर सुग्रीव को विश्वास हो गया कि वे (श्रीराम) चक्रायुध या नारायण है। तब सुग्रीव ने शीघ्र ही चक्रवन्ध मे उनकी विनती की। (३३-३६)

वनरुहपद—पद्मपाद; प्रतळ—पैर का पंजा; व्याळ—साँप; सळखि हेउँ—सीधा होते; मार्गण—वाण, शर; अद्भुत—अद्भुत कर्म; जव—शीघ्रता से। (३३-३६)

‡ (चक्रवन्ध)

"बिभु खरपर मेळ साधबि। बिद्धशाळ मेघतनु भा-रबि।३७।
बीरभा-नुत क स्व भूप्रसबि। बीशप्रभु स्वतरे क बिभाबि।३८।

सरलार्थ—सुग्रीव ने चक्रवन्ध मे यों स्तुति की— "हे विभो (सर्वव्यापक परमेश्वर!) हे खर राक्षस के शत्रु रामचन्द्र! आप साध्वी सीता के सहित सम्मिलित हुए है, (अर्थात् पतिव्रता सीता से विवाह-सूत्र में आवद्ध हुए है,) आप सप्तशाल-भेदी है। आप मेघश्याम-शरीर धारण किये हुए है। रवि के समान आपकी प्रभा तेजोमयी है। अपनी वीरता के कारण आप इस ससार में सभी से पूजित है। सभी आपको प्रणाम करते है। आप स्वयं गरुड़वाहन नारायण है एव रामावतार मे नर के रूप में इस ससार में अवतरित हुए है। ब्रह्माजी स्वतः भक्ति के साथ आपका ध्यान करते है। (३७, ३८)

विभु—हे विभो!, हे सर्वव्यापक परमेश्वर!; खर पर—खर राक्षस के शत्रु रामचन्द्र; मेळ साधबि—हे साध्वी-सीता-संमिलित प्रभो! साध्वी (पतिव्रता) सीता के साथ जो मिले हुए हैं, (अर्थात् श्रीरामचन्द्र); विद्धशाळ—सप्तशाल-भेदी; मेघतनु—मेघ के समान श्यामल शरीरवाले; भा-रवि—सूर्य के समान तेजोयान्; वीरभा—वीरता; नुत—पूजित प्रणत; स्व—स्वयं; क—नारायण; भूप्रसवि—पृथिवी पर आपने जन्म-ग्रहण किया है; वीशप्रभु—(वि+ईश=पक्षियों के राजा गरुड़ के प्रभु) नारायण, श्रीरामचन्द्र; स्वतरे—स्वतः; क—ब्रह्मा; विभावि—ध्यान करते है। (३७,३८)

बिभाबिकरे खेद भेद पबि। बिपद भेदन तार पदबी।३९।
बिदपर तापसदत्त हबि। बिह त दशरूप रख भूबि" ।४०।

सरलार्थ—"भक्तजनों के दुःख के भेदन (अर्थात् खण्डन या भञ्जन) के लिए आप वज्र सदृश शक्तिशाली अथवा समर्थ है। सुतरां आप की 'विपद-भेदन' ('विपदभञ्जन') उपाधि इस धरती पर विस्तृत हुई है। ज्ञानिश्रेष्ठ मुनि लोग यज्ञक्रिया में आपको घृतदान करते है। आप मीन,

‡ चक्रबन्ध :— यह छन्दोवद्ध—रचना—संवलित चित्र काव्यविशेष है। इसमे पदों के सव अक्षर चक्राकार मे सजाये जा सकते है। यो तो हर एक पक्ति के अन्तिम पाँच अक्षरों को उलटा कर नये शब्दों से परवर्त्ती पक्ति की रचना इसकी उल्लेखनीय विशेषता है।

कूर्मादि दस प्रकार के अवतार धारण-पूर्वक पृथिवी की रक्षा करते हैं।" (३९-४०)

बिभाविकरे—विशेष रूप से भावुकों के अर्थात् भक्तजनों के; खेद—दुःख; भेद—भञ्जन, खण्डन; पवि—वज्र; तार—विस्तृत; बिदपर—ज्ञानिश्रेष्ठ; तापस—तपस्वी अर्थात् मुनिलोग; हवि—घी; भुवि—पृथिवी। (३९,४०)

बोलि ओळगि होइला बाहार। बेनि सोदर मन्त्रीए सङ्गर।४१।
बाटे य़ाउँ देखिले दिब्य सरे। बाद्य नाद शुभे जळ भितरे।४२।

सरलार्थ—इस तरह विनती करने के बाद सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करके निकल पड़े। राम-लक्ष्मण दोनों भाई और मन्त्री उनके साथ हो चले। चलते-चलते मार्ग पर उन्होंने एक दिव्य सरोवर देखा। सरोवर के जल के भीतर से वाद्यों के बजने की आवाज सुनाई पड़ती थी। (४१, ४२)

बोलि—विनती करके; बेनि सोदर—राम लक्ष्मण दोनों भाई; य़ाउँ—जाते, चलते; देखिले—देखा; सरे—सरोवर (को); नाद—आवाज; शुभे—सुनाई पड़ती थी। (४१,४२)

बिचित्र त बोइले रामचन्द्र। बक्ता शुणि प्ळबग-कुळचन्द्र।४३।
बनौकाए नाम ता मन्दकर्ण्ण। बिरचइ तपस्या बसि बन।४४।
बळात्कारे ए इन्द्रपद नेब। बार बार शक्र भय सम्भब।४५।
बार बारबधूकु पेषिदेइ।बारकीर बुद्धि से ताङ्कु चाहिँ।४६।

सरलार्थ—उन वाद्यों की ध्वनि सुनकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, "यह तो बड़ी विचित्र बात है।" तब वानरकुल-चन्द्रमा सुग्रीव ने कहा, "मन्दकर्ण नामक एक ऋषि इस वन में तपस्या करते थे। उनकी कठोर तपस्या देखकर इन्द्र जी के मन में यह आशंका बार-बार होने लगी कि शायद यह ऋषि बलात् मेरे इन्द्रपद का हरण कर ले। इस हेतु उन्होने ऋषि के तपोभंग के लिए बारह स्वर्ग वेश्याओं को भेजा। उनको देखते ही ऋषि के मन में पाप-बुद्धि का सचार हुआ। (अर्थात् उन्हें देखते ही ऋषि तपस्या-त्यागपूर्वक कामासक्त होकर उनसे रति-क्रीड़ा करने के लिए प्रवृत्त हुए।) (४३-४६)

बक्ता शुणि प्ळबगकुळचन्द्र—वानरवंश के चन्द्रमा सुग्रीब ने कहा; बनौकाए—वन है ओक (घर) जिसका अर्थात् एक ऋषि; बळात्कारे—बलात्, जबरदस्ती से; शक्र—इन्द्र; बार-बारह; बारबधूकु—वेश्याओं को; पेषिदेइ—भेज दिया; बारकी—पापी; से—वे (ऋषि मन्दकर्ण); ताङ्कु—उन्हें (उन वेश्याओं को); चाहिँ—देखकर। (४३-४६)

बार मध्ये पुर सुरशिळ्पी य़े । वारस्वती लक्ष्य करि कळ्पि य़े ।४७।
वश करि से नृत्य-गीते मन । बाजे मर्द्दळ ताळ ताळीमान ।४८।

सरलार्थ—"अनन्तर इन्द्रजी के आदेशानुसार स्वर्गशिल्पी विश्वकर्मा ने आकर ब्रह्मा के पुर के सदृश जल के भीतर एक पुर का निर्माण किया। अभी उसी पुर में नृत्यगीतरता वेश्याएँ ऋषि के मन को वहला रही है। इसलिए मृदंग, झाँझे, करताल, मजीरे आदि वज रहे है। (४७, ४८)

वारमध्ये—जल के भीतर; सुरशिळ्पी—देवताओं के कारीगर विश्वकर्मा; वारस्वती—ब्रह्मा का पुर; लक्ष्य करि—सादृश्य या समानता करके; कळ्पि—कल्पना करके; मर्द्दळा—मृदंग; ताळ—करताल झाँझें; ताळीमान—मजीरे। (४७,४८)

वुझ क्षत्रियवर बोलि याइ । वनपति द्‌वाररे स्थित होइ ।४९।
बीर-डाक सर्जिला अति टाण । वर्षा बिना कि गर्जे मेघ द्रोण ।५०।
बणा बिवेक हेले पुरजने । बाळि थिला य़े मध्याह्न शयने ।५१।
वारुणीकि पानहिँ करिथिला । बारुणीरे शब्द शुणि धाइँला ।५२।
बज्रमुथे सुग्रीव - दम्भ - शृङ्ग । विभञ्जने बाहुड़ि गला बेग ।५३।
विलोकिले एतिकि चापधारी । विद्यु झटकि लीन हेला परि ।५४।

सरलार्थ—"हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! आप जो ध्वनि सुन रहे है, उसका यही कारण समझे।"— यह कहते हुए सुग्रीव साथ ही साथ जाकर वालि के सिंहद्वार में उपस्थित हुए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने ऊँची आवाज से एक वीरोचित ललकार दी। उसे सुनकर प्रतीत हुआ, मानो बिना वारिश के द्रोणमेघ गरज रहा हो। उस ललकार को सुनकर किष्किन्ध्या नगर-वासी लोगों का विचार-विवेक बावला हो गया। वे इस शब्द का कारण निर्णय नही कर पाये। उस समय वालि मध्याह्न-शयन में सुस्ता रहा था। शराव पीकर वह सोया हुआ था। जब पश्चिम दिशा में सुग्रीव की यह चुनौती उसने सुनी, तव वह तन्द्रा तथा मद-मस्ती से गुस्से में उठकर दौड़ आया एवं वज्रतुल्य मुट्ठी के आघात से सुग्रीव के गर्व-शृंग को तोड़कर शीघ्र ही लौट गया। (अर्थात् अपने एक ही घूँसे से सुग्रीव को हारा देखकर वालि वहाँ से लौट गया।) धनुर्द्धारी श्रीराम केवल इतना ही देख पाये कि वालि और सुग्रीव बादल में विजली चमककर फिर ओझल होने की तरह वहाँ दिखाई देकर फिर कही गायब हो गये। (४९-५४)

क्षत्रियवर—हे क्षत्रियश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र !; वनपतिद्वारे—सिंहद्वार में; वीरडाक—वीरोचित ललकार; टाण—कठिन, ऊँची; मेघद्रोण—द्रोण नामक बहुत अधिक वरसनेवाला बादल; बाण—भौंचक्के; वारुणीकि—शराव को; बारुणीरे—पश्चिम दिशा में; दम्भ-शृंग—अभिमान रूपी चोटी; विभञ्जने—तोड़कर; चापधारी—धनुर्द्धारी श्रीराम (ने); विद्यु—विजली। (४९-५४)

बिपथ ग़े शुष्कनदी भानुज । बढ़िजळ पड़ि शीघ्र सहज ।५५।
बिश्रामकु न पाइ केउँठारे । बिलीन से गिरि-गुहा-सागरे ।५६।

सरलार्थ—सूखी हुई नदी में बाढ़ का जल सहज-स्वाभाविक ढंग से शीघ्र ही उमड़ पड़ता है। ठीक उसी तरह सुग्रीव बालि की मार के आघात से व्याकुल होकर मार्ग-अमार्ग का विचार किये बिना अत्यन्त शीघ्र गति से भाग गये। वह जल आगे बढ़ते-बढ़ते जैसे कहीं पर भी विश्राम या ठहराव पाये बिना अन्त में समुद्र में लीन हो जाता है, वैसे सुग्रीव भागते-भागते कही पर भी बिना रुके अन्त में एक गिरि की गुफा में जा छिपे। (५५, ५६)

बिपथ—अमार्ग; भानुज—सूर्यपुत्र सुग्रीव; केउँठारे—कहीं पर भी। (५५,५६)

बाहुड़ाबिजे दाशरथि कहि । बळ किछि नाहिँ त मित्र देहि ।५७।

सरलार्थ—सुग्रीव को हारकर भागा देखकर श्रीराम अपने विश्राम-स्थल को वापस आ गये। उन्होंने कहा, "मित्र के शरीर में तो थोड़ी भी शक्ति नही।" (५७)

बाहुड़ाबिजे—वापस आये ; दाशरथि—श्रीराम ने; देहि—शरीर में। (५७)

बातात्मज बाणी कला प्रकाश । ब्रह्मप्रळयजळे मेरु नाश ।५८।

सरलार्थ—यह सुनकर हनुमान् ने कहा, "ब्रह्मप्रलय को छोड़कर दूसरा कोई प्रलय मेरुपर्वत का नाश नही कर सकता, उसी तरह बालि को छोड़कर दूसरा कोई वीर सुग्रीव को नही हरा सकता। (अर्थात् सिवाय ब्रह्मप्रलय के मेरुपर्वत जगज्जयी है। उसी तरह सिवाय बालि के सुग्रीव जगद्विजयी है।" (५८)

बातात्मज—पवनसुत हनुमान्। (५८)

बुलि ऋष्यमूके खोजि न पाइ । बिबरके से ठाब कले ग़ाई ।५९।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीराम आदि वीर सारे ऋष्यमूक पर्वत में सुग्रीव को ढूँढते फिरे, परन्तु उन्होने सुग्रीव का पता नही पाया। अन्त मे उन्होंने पता लगाया कि वे दूसरे एक पर्वत की गुफा मे छिपे हुए है। (५९)

बिबरके—एक बिल में, एक गुफा में; ठाब कले—पता लगाया। (५९)

बृषदंश भये ग़था इन्दूर । बाहारइ नाहिँ निज बिबर ।६०।

सरलार्थ—जैसे चूहा बिल्ली के भय से अपने बिल से नही निकलता, उसी तरह सुग्रीव बालि के डर से जिस गुफा मे छिपे है, वहाँ से नहीं निकल पाते। (६०)

बृषदंश—बिल्ली; ग़था—जैसे; इन्दूर—चूहा; बिबर—गर्त्त, बिल। (६०)

बोध न घेनि से एमन्त बोलि । बुकु चमके आउ गले मलि ।६१।
व्यर्थे न अरज पशुपातक । बेळे गलि न बुझि ग्रेणु बाक ।६२।
बिष खाइछि जाणु जाणु केहि । बर्त्तिथिले सम्पत्ति भोग होइ।६३।
बिचेष्टाकु देखि रघुनन्दन । बळ देले करिण आलिङ्गन ।६४।
ब्याघ्र बिपिने यथा छपिथाइ । बाहारइ क्षुधार्त्ते रड़ि देइ ।६५।
वेनिभ्रात एकमूर्त्ति बहन्ति । बारि नोहिले बोलि रघुपति ।६६।
बनमल्लीमाळा करि रचन । बिलम्बाइ कण्ठरे कले चिह्न ।६७।
बतासर पराय़े ध्वनिमन्त । बेगे य़ाइ नगरपाशे स्थित ।६८।
वृक्षान्तरे रहिले रघुराण । बसाइण कोदण्डगुणे बाण ।६९।
ब्याध जगि य़ेमन्त जळघाट । बातासन आगमने लम्पट ।७०।

सरलार्थ—श्रीराम ने सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए बुलाया और कहा, "जाओ, फिर एक बार जाकर उससे लड़ो और उसका वध करो।" परन्तु सुग्रीव ने उनकी सान्त्वना को स्वीकार किये बिना कहा, "उसके एक ही घूँसे से मेरा हृदय काँप रहा है। फिर एक बार जाऊँ तो मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। सुतरां मुझे और फिर उससे लड़ने को प्रेरित मत कीजिए।" उन्होने आगे कहा, "आपकी बात को न समझकर मै एक बार उसके पास गया और उसका फल मुझे मिल गया। अब आप व्यर्थ ही पशुहत्याजनित पाप मत कमाइए। (अर्थात् आप ही के कारण मै अगर उससे इस बार मारा जाऊँ तो आपको वृथा ही पशु-हत्या का पाप लगेगा। क्या कोई जान-बूझकर विष का भोजन करता है? (अर्थात् नही।) प्राणो मे जीवित रहने पर ही कोई सम्पत्ति का उपभोग करता है तो। (मेरे मर जाने से राज्य का उपभोग मैं कर सकूँगा कैसे?)" अपने मित्र सुग्रीव को इस प्रकार वीतस्पृह देखकर रघुकुल के आनन्दबर्द्धक श्रीराम ने उन्हे गले लगाकर बल दान किया। (अर्थात् अपने श्रीअंगों से उन्हें तेज दान किया।) बाघ जगल मे छिपा रहता है, परन्तु भूखा होने पर ही दहाड़ देकर निकल पड़ता है। उसी तरह सुग्रीव विष्णु-तेज पाकर वीर की सी ललकार देते हुए युद्ध के लिए निकल पड़े। दोनों बालि तथा सुग्रीव समान-आकृति वाले थे। इस हेतु वे नहीं पहचाने जा सकते। यह समझकर श्रीराम ने सुग्रीव के गले मे वनमल्लिकाओं की एक माला पहना दी ताकि उनकी पहचान आसान हो। अनन्तर सुग्रीव प्रभञ्जन के समान गर्जन करते हुए आगे बढ़ने लगे। बाधा पाकर वह पवन जैसे रुक जाता है, सुग्रीव वैसे बालि को विघ्न के समान पाकर नगर के समीप अटक गये। श्रीरामचन्द्र धनुकी प्रत्यंचा पर बाण चढाये एक वृक्ष की ओट में ठहरे। (क्योकि शत्रुको देखते ही बालि उसके बल

का आधा भाग हरण कर लेता है। सर्वान्तिर्यामी श्रीराम यह जानकर वहाँ छिपे रहे।) शिकारी पनघट पर हिरन के आने की प्रतीक्षा में लालच से जगा रहता है। उसी तरह श्रीराम वृक्ष की ओट मे जगते हुए बालि के आगमन के प्रति लालची हुए। (६१-७०)

बोध—सान्त्वना; न घेनि—स्वीकार न करके; एमन्त—इस प्रकार; बुकु—हृदय, वक्ष; बेळे—एक बार; ये णु—जिस कारण से; बाक—बात; विचेष्टा—निःस्पृह; रड़ि—दहाड़; बेनि भ्रात—दोनों भाई, बालि तथा सुग्रीव; बतास—आँधी, प्रभञ्जन, पराये—तरह; ध्वनिमन्त—शब्दायमान; वातासन—हिरन; लम्पट—लोभी, लालची। (६१-७०)

बिस्मय ग्रे किष्किध्याबासी चाहिँ। बोले पीतबास हेला कि तहिँ।७१।

सरलार्थ—किष्किन्ध्यावासी सुग्रीव को फिर आये देखकर विस्मित हुए। उनमें से कई एक ने कहा, "सुग्रीव पीतवास (पीताम्बर, विष्णु) हो गया क्या! (इसलिए शायद उसके शरीर पर विष्णु का तेज झलक रहा है।)" और किसी ने कहा, "वह नही; सुग्रीव पित्तवास (पित्तका स्थान) हो गया है। (पित्ताध्यक्य हेतु वह पागल हो गया है। सुतरां मार खाकर फिर भी आ रहा है।)" (७१)

पीतवास—पीताम्बर, विष्णु; (पित्तवास)—पित्त का स्थ न; (श्लेष)। (७१)

बोले के खगबह पक्ष थिब। बिशेषरे तेजचक्र सम्भब।७२।

सरलार्थ—'पीतवास' के पक्षावलम्ब में फिर कुछों ने कहा, "गरुड़-वाहन नारायण शायद इसके पक्ष में सहायक है। इसलिए इसके शरीर में तेज-समूह विशेष रूप में उत्पन्न हो रहा है।" 'पित्तवास' के पक्षावलम्बन में आगे कई बोले, "इन्द्रियव्यापी वायु पित्त का सहारा दे रही है। इसलिए इसके शरीर पर तेज-समूह का विशेष प्रकाश सम्भव हुआ है। (७२)

खगबह—गरुड़वाहन नारायण, इन्द्रियव्यापी—वायु; तेजचक्र—तेजसमूह; सम्भव—जात, उत्पन्न, सम्भावना; (श्लेष)। (७२)

बोले अपूर्ब शिब हेब केहि। बिभूषणे फुल-माळी सेबइ।७३।

सरलार्थ—फिर किसी ने कहा, "सुग्रीव का अशिव या अमंगल होगा। चूँकि यह फूलों की माला से विभूषित हुआ है, इससे पता चलता है कि यह सुग्रीव माता चण्डियो की सेवा करेगा। (अर्थात् माता चण्डियो के सामने इसकी बलि दी जाएगी।) और कुछों ने सुग्रीव को गले में फूलों की माला पहने देखकर विचार किया, "यह अपूर्व शिव है।) (अर्थात् इसने आश्चर्यजनक शिवरूप धारण किया है।) क्योकि जैसे मालीलोग

शिवजी को फूलों से विभूपित करते हैं, उसी तरह यह पुष्पमाला से भूषित हुआ है, सुतरां इससे इसका अपूर्व अर्थात् अभूतपूर्व मंगल होगा।" (७३)

अपूर्व शिव—'अ' पूर्व शिव—(शिव के पूर्व मे 'अ' रखने से 'अशिव' होता है)—अशिव, अमंगल; अपूर्व शिव—अभूतपूर्व मंगल; (श्लेष); केहि—कोई, किसी ने; माळी—(मा+आळी = माताओं का समूह; चण्डियों का समूह, माळी—माली, मालाकार; (श्लेष)। (७३)

वोले के कर्म उदय़हिँ ख्यात। विधिरे हंस तोषदाने स्वत।७४।

सरलार्थ—किसी-किसी ने कहा, "पहले सुग्रीव ने अपने पिता सूर्यदेव को सन्तोप-दान करने के लिए स्वेच्छा से नाना प्रकार के शुभ कर्मानुष्ठानों में नियुक्त होकर ख्याति प्राप्त की थी। अव भी भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए शुभकर्मानुष्ठान कर रहा है। सुतरां यह कहा जा सकता है कि इसका भाग्योदय सुनिश्चित है।" (७४)

के—कोई, किसी ने; हंस—सूर्य, भगवान् विष्णु (श्रीराम); (श्लेष)। (७४)

वोले केहि वनौकासार एहि। वाञ्छा भस्म चितारे कि करइ।७५।

सरलार्थ—किसी ने कहा, "वनवासी ऋपिश्रेष्ठ जैसे भस्म (विभूति) तथा चिता (तिलक) की अभिलापा करते है, उसी तरह इस वानर-श्रेष्ठ सुग्रीव ने चिता (श्मशानाग्नि) मे जल कर भस्म (राख) बनने की अभिलापा की है क्या? (अर्थात् सुग्रीव वालि के हाथ से मरकर श्मशान में भस्मीभूत होने की अभिलापा करके शायद यहाँ आया है।)" (७५)

वनौकासार—वनवासी ऋपिश्रेष्ठ अथवा वानरश्रेष्ठ; (श्लेष); वाञ्छा—अभिलाषा, कामना; भस्म—राख, विभूति; चिता—तिलक, श्मशानाग्नि; (श्लेष)। (७५)

विकर्त्तनसुत एहि समये। वाळि आसरे वोलि डाक दिए।७६।

सरलार्थ—जव किष्किन्ध्यावासी लोग आपस में ऐसी वात-चीत कर रहे थे, तव सूर्यपुत्र सुग्रीव ने ललकार दी, "अरे वालि! आ युद्ध कर मेरे साथ।" (७६)

विकर्त्तनसुत—सूर्यपुत्र सुग्रीव; डाक—चुनौती, ललकार। (७६)

वोलाउ तु महीश ए भुवन। वक्षभेद पकार एवे घेन।७७।

सरलार्थ—सुग्रीव ने आगे कहा, "तू अभी तक किष्किन्ध्या राज्य का महीश (राजा) कहलाता था। अव उस 'महीश' शब्द के अन्तिम 'श' की जगह पर वक्षभेदी 'प'कार ग्रहण कर। अर्थात् 'महीश' के स्थान मे तू अपने को 'महिप' (भैस) पशु के रूप मे समझना।" (७७)

महीश—राजा; 'श' के स्थान में बक्षभेद षकार (मूर्धन्य ष) का प्रयोग करने से 'महीश' शब्द 'महिष' (जिसका अर्थ 'भैंस' है) हो जाता है। (७७)

बिभेद न रहिब चरमरे। बीरशाद्दूळ मुख - पतनरे।७८।

सरलार्थ—"अरे वालि ! अगर भैंस महाबली बाघ के मुख में पड़ जाय, तो वह उसके पृष्ठदेश को क्षत-विक्षत करके उसका विनाश करता है। महाबली बाघ के समान मैं भी वीरश्रेष्ठ हूँ। यदि तू आज मेरे सम्मुख आ जाय, तो तेरे चमड़े का कोई भेद-प्रभेद नही रहेगा। (अर्थात् मै तेरा काम तमाम कर दूँगा जिससे तुम्हारी अस्थियाँ, मांस तथा चमड़े एकाकार हो जायँ। सुतरां तेरा चमड़ा नही पहचाना जा सकेगा।" (अथवा तू वीरश्रेष्ठ श्रीराम के सामने आ जाय, तो उनका बाण तेरे वक्ष को बेध करके पीठ पर फूट निकलेगा।") (७८)

विभेदन—क्षतविक्षत; विभेद न—भेद-प्रभेद का न रहना, एकाकार हो जाना; (श्लेष); बीरशाद्दूळ—महाबली व्याघ्र, वीरश्रेष्ठ। (७८)

बर्ण्ण अधिक महीश पदरे। बिहाइबा ये महीशयनरे।७९।

सरलार्थ—सुग्रीव ने और भी कहा, "तूने जो 'महीश' पदवी (राज़ पद) प्राप्त की है, उस पदवी के साथ दो अधिक वर्ण ('यन') जोड़कर के हम तुझे 'महीशयन' (पृथिवी पर शयन) करा देंगे और तेरे 'महीश' पद (राज पद) को हरण कर लेंगे।" (७९)

बिहाइबा—विधान करेंगे। (७९)

वर्षामुखे शुणि य़था स्तनित। बहि गरब शरभ प्रमत्त।८०।

सरलार्थ—बरसात के प्रारम्भ में मेघ का गर्जन सुनकर जिस तरह शरभ नामक पशु अभिमान से भरकर उन्मत्त हो उठता है, उसी प्रकार वालि सुग्रीव की व्यग्य भरी ललकार सुनकर मदमस्त हो उठा। (८०)

वर्षामुखे—बरसात के प्रारम्भ में, स्तनित—मेघगर्जन; शरभ—आठपैरोंवाला हिरन। (८०)

बड़ाइरे के मो आगे गर्जइ। बिदारणे न जाणि मृत्यु डेइँ।८१।

सरलार्थ—मेघ का गर्जन सुनकर शरभ अभिमान से यह सोचता है, "कौन मेरे सामने बड़ाई करके गरज रहा है ? मै उसे फाड़ डालूँगा।" ऐसा विचार करके और यह बिना जाने कि उसका मृत्यु-काल समुपस्थित है, उसको विदीर्ण करने के लिए वह पर्वत पर से नीचे कूदकर मृत्यु के मुख में पड़ता है। उसी तरह रण-पण्डित बालि अपनी मृत्यु की आशका किये विना कुदान भर के निकल आया। (८१)

डेइँ—कूदकर। (८१)

बाळीश त तथा कोपे गमित । बाळी शतप्रकारे निषेधित ।८२।

सरलार्थ—बालि बन्दरों का राजा है । वह सक्रोध शरभ के समान कुदान भरके सुग्रीव से लड़ने के लिए बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा । उस समय उसकी पत्नी तारा ने उसे जाने से सौ प्रकार से मना किया । (८२)

बाळीश—(वाळि+ईश) वालि नामक मर्कटराज; गमित—गया, आगे बढ़ा; वाळी—पत्नी (तारा) ने; निषेधित—मना किया । (८२)

बाळीश त नुह घेन सुचित्त । बाळीबराट द्यूते सदा जित ।८३।

सरलार्थ—तारा ने कहा, "हे नाथ ! आप तो मूर्ख नहीं हैं । ज़रा स्थिरचित्त होकर विचार कीजिए । छोटी कौड़ियों से जो जुआ का खेल होता है, उसमे हमेशा क्या जीत होती है ? (अर्थात् नही ।) सुतरां महापराक्रमी होते हुए भी आपके लिए यह सम्भव नही कि आप हमेशा युद्ध में विजयी ही हों ।" (८३)

बाळीश—मूर्ख; घेन—ग्रहण करो; बाळीबराट—छोटी कौड़ियों (के); द्यूते—जुआ खेल मे । (८३)

बादे सहाय से कार पाइछि । बासरके बेनिथर धाइँछि ।८४।

सरलार्थ—तारा ने आगे कहा, "तुम से विवाद करने के लिए सुग्रीव ने शायद किसी की सहायता प्राप्त की है । अन्यथा वह एक ही दिन मे दो बार क्यों दौड़ लगाता ? (८४)

बादे—विवाद के लिए; कार—किसी की; बासरके—एक ही दिन में; बेनिथर—दो बार; धाइँछि—दौड़ लगायी है। (८४)

बिड़िथिब परीक्षा करि सेहि । बड़शव्द शुभिला आज काहिँ ।८५।

सरलार्थ—मुझे ऐसा लग रहा है कि उसने निश्चय ही अपने सहायक की वल-परीक्षा की होगी । अन्यथा आज इतनी वड़ी आवाज कहाँ से सुनाई पड़ी ? (८५)

बिड़िथिब—परखी होगी । (८५)

ब्योमे दुन्दुभि अस्थि उड़ाइला । बिन्धि अबा सप्तशाळ थोइला ।८६।

सरलार्थ—वह बड़ी आवाज़ सुनकर मुझे सत्य प्रतीत हो रहा है कि उसी सहायक ने दुन्दुभि राक्षस की अस्थियों को आकाश पर उड़ा दिया अथवा सप्तशाल वृक्षों को बेध कर नीचे गिरा दिया । (८६)

अबा—अथवा; थोइला—नीचे रखा, नीचे गिरा दिया । (८६)

बदन मो चन्द्र परि ताटङ्क । बृहस्पति शुक्र परि झटक ।८७।
बिधु थाउँ से तारा नोहु अस्त । बास प्रसारि मागुअछि कान्त ।८८।

सरलार्थ—फिर तारा ने कहा, "हे नाथ ! मेरा वदन चन्द्र-सदृश है। उसके दोनों ओर मेरे दो कर्णाभूषण वृहस्पति तथा शुक्र के समान झलक रहे है। अतएव मेरे मुखचन्द्र रहते मेरे कर्णाभूषणों-रूपी दोनों नक्षत्र अस्त न हो जावें—यही मैं आँचल लेकर आप से भीख माँग रही हूँ। (अर्थात् मैं आँचल लेकर आपसे यही माँग कर रही हूँ कि आप सुग्रीव से लड़ने को जाकर मुझे विधवा न करावे और फलतः मुझे अपने कर्णाभूषणों को निकाल दूर करने की दुर्दशा भोगनी न पड़े।" (८७, ८८)

ताटंक—कर्णाभूषण; झटक—झलक रहे हैं; बिधु—चन्द्र (मुख), थाउँ—होते, रहते; बास प्रसारि—आँचल लेकर; मागुअछि—माँग रही हूँ। (८७,८८)

बल्लभीर बचन न घेनिला । बायुबेगे दुर्गद्वारे मिळिला ।८९।

सरलार्थ—बालि ने अपनी प्रियतमा पत्नी के वचन बिना सुने पवन वेग से गमन किया और दुर्गद्वार में जा उपस्थित हुआ। (८९)

बल्लभीर—प्रियतमा पत्नी के। (८९)

बराहबर द्वीपी भेटाभेटि । बराहब रचिण ग्रथा रटि ।९०।

सरलार्थ—बलवान् सूअर और बाघ आपस में सामने हो जावें, तो घोर गर्जन-पूर्वक दोनों लडने लगते है। उसी तरह बालि तथा सुग्रीव परस्पर सामने होकर घोर गर्जनपूर्वक युद्ध करने लगे। (९०)

बराहबर—बलवान् अथवा श्रेष्ठ वराह, द्वीपी—बाघ, चीता; भेटाभेटि—सामने होना, मुकाबला करना; बराहब—श्रेष्ठ अथवा घोर युद्ध; रचिण—करते हैं; रटि—गर्जन करके। (९०)

बिबादी कि सउरी कुज दुइ । बिश्वम्भरा भाराबशे कम्पइ ।९१।
ब्याळयुग्म कि खेळि गड़ागड़ि । बृक्ष पाषाण तनु लागि छिड़ि ।९२।

सरलार्थ—उन दोनों का युद्ध देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो शनि और मंगल आपस में झगड़ा कर रहे हों। दोनों के भार से पृथिवी काँपने लगी। फिर जब दोनों भूमि पर लुढ़कने लगे, तो ऐसा मालूम हुआ मानो दो साँप रपटते हुए खेल रहे हों। उनके शरीरो की रगड़ खाकर पेड, पत्थर आदि छिल गये। इससे उनके शरीरो की गाढ़ता सूचित हुई। (९१-९२)

सउरी—शनि; कुज—मंगल; बिश्वम्भरा—पृथिवी; ब्याळ—साँप; युग्म—दो। (९१,९२)

बाळि सुग्रीब उपरे दिशिला । बाज शुककु कि माड़ि बसिला ।९३।

सरलार्थ—इसी प्रकार लुढ़कते-लुढकते वालि सुग्रीव को दबोचता हुआ दिखाई दिया। यह देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्येन पक्षी तोते को दबोच बैठा हो। (९३)

दिशिला—दिखाई दिया, दीखा; वाज—श्येन; शुककु—तोते को; माड़ि बसिला—दबोच बैठा; (उत्प्रेक्षालंकार)। (९३)

बाण प्रहारे देखि दूषणारि। बुकु फुटि पृष्ठे मून बाहारि।९४।

सरलार्थ—दूषण राक्षस के शत्रु श्रीराम ने वालि को सुग्रीव पर प्रवल देखकर वाण का प्रहार किया। उस वाण की नोक वालि के वक्षस्थल में चुभकर पीठ पर निकल पड़ी। (९४)

बुकु—वक्षस्थल; मून—नोक। (९४)

बिबुधाद्रिरे य़ेसनेक होइ। बारणेन्द्र दशन भेदि रहि।९५।

सरलार्थ—जिस तरह हस्तीश्रेष्ठ ऐरावत का दाँत मेरुपर्वत में सट गया था, वैसे श्रीराम का शर वालि के शरीर मे लगा रहा। (गंगा मेरु पर्वत होकर मर्त्यलोक मे आते समय पर्वत के एक गह्वर मे अटक गई थी। ऐरावत के अपने दन्ताघात से मेरु पर्वत को बेधते समय उसका दाँत उस में लग गया था।) (९५)

विबुधाद्रि—मेरुपर्वत; य़ेसनेक—जिस प्रकार, जैसे। (९५)

बोलि अङ्गद तक्षणे ढळिला। बिनाकारणे अङ्गदत्त हेला।९६।

सरलार्थ—वालि के शरीर मे शर के चुभते ही उसने अंगद को सम्वोधन करके कहा, "मेरा शरीर व्यर्थ ही नष्ट हुआ।" यह कहता हुआ वह उसी क्षण मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। (९६)

बिनाकारणे—व्यर्थ ही; अंगदत्त—शरीर नष्ट। (९६)

बिघ्नराज मूषिक करि यम। बन्धनरे पाशरे य़था क्षम।९७।
बाहु टेकि हस्तरे पेलि देइ। बिरोचन नन्दन उभा होइ।९८।

सरलार्थ—गणेश यम को मूषिक करके उन्हें फाँस मे बाँधने को समर्थ हुए थे। उसी तरह सुग्रीव ने अब निडर होकर अपनी बाहुओं को उठाया और हाथो से वालि को ढकेल कर खड़ा हुआ। (९७,९८)

विघ्नराज—गणेश; मूषिक—चूहा; पाशरे—फाँस में, क्षम—समर्थ, पेलिदेइ—ठेल देकर; बिरोचननन्दन—सूर्यपुत्र सुग्रीव; उभा होइ—खड़ा हुआ। (९७,९८)

बाहारिले लक्ष्मण राम घेनि। बृक्षान्तरु ये ससङ्ग सेनानी।९९।

सरलार्थ—सुग्रीव को खड़े देखकर हनुमान् आदि वानर सेनापतियो को संग लेकर वृक्ष की आड से राम-लक्ष्मण दोनों निकले। (९९)

बृक्षान्तरु—पेड़ की आड़ से; ससंग—सग में लेकर; सेनानी—सेनापति। (९९)

व्याघ्र बिन्धि पकाइ किछि दूरे। बेढ़ि देखन्ति य़ाइ यथा नरे।१००।

सरलार्थ—लोग बाघ को तीर मारते है और उससे कुछ दूरी पर ठहर कर उसे घेरते हुए देखते हैं। उसी तरह वालि को तीर मार कर श्रीराम-लक्ष्मण आदि वीरों ने वानर सेनापतियों के साथ कुछ दूरी पर उसे घेरते हुए देखा। (१००)

बिन्धि—बिँधकर, तीर मारकर; बेढ़ि—घेर कर। (१००)

बानरेश पाशे थिले देखिला। बपुबन्त दर्पक ए ग़ोखिला।१०१।

सरलार्थ—वानरराज बालि ने अपने समीप श्रीराम को देखकर मन में विचार किया, "ये मूर्त्तिमन्त कन्दर्प है क्या?" (१०१)

बानरेश—वानरराज वालि ने; बपुवन्त—मूर्त्तिमन्त; दर्पक—कन्दर्प; ग़ोखिला—तुलना की, विचार किया। (१०१)

बिचारिला दर्पक ए अग्रते। बळबान सुन्दर ग़े जगते।१०२।

सरलार्थ—फिर बालि ने विचार किया, "जो सब लोग इस जगत में सौन्दर्य तथा बलवत्ता में कन्दर्प-सदृश प्रसिद्ध है, ये (रामचन्द्र) उन लोगों में अग्रगण्य है। (१०२)

बसुन्धरा चूड़ामणि मर्कत। बिराजिबा ज्योति एबे ब्यकत।१०३।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र की घनश्याम मूर्ति देखकर बालि ने सोचा, "भूदेवी की मरकतशिरोमणि की शोभा इतने दिनों के बाद शायद अभी अभिव्यक्त हुई। (अर्थात् स्पष्ट दिखाई दी।) (१०३)

बसुन्धरा—पृथिवी देवी; एबे—अब, अभी। (१०३)

बोलुँ के तुम्भे बोइले श्रीराम। बंशे रघुनृपतिर जनम।१०४।

सरलार्थ—"तुम कौन हो?"—वालि के इस प्रश्न पर श्रीराम ने उत्तर दिया, "हमने रघुनरपति के वंश में जन्म ग्रहण किया है।" (१०४)

के—कौन?; तुम्भे—तुम। (१०४)

बसुमतीरे[1] भरा हेले दुष्टे। बसुँमतिरे[2] एहि कथा पुष्टे।१०५।
बुलि बनरे बिराध कबन्ध। बळ सहिते खर कलुँ बध।१०६।

सरलार्थ—आगे श्रीराम ने कहा, "दुष्ट राक्षसों के द्वारा जब पृथिवी भाराक्रान्त होती है, हम ऐसी स्थिति को अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण समझते है और उसके इस भार को दूर करने के लिए धरा पर अवतीर्ण होकर यहाँ वास करते है। ऐसी एक दुःखद स्थिति से पृथिवी की रक्षा करने के लिए हम इस समय भी यहाँ अवतरित हुए हैं और हमने वन में विहार-पूर्वक विराध, कबन्ध तथा खरादि राक्षसो को ससैन्य विनाश किया है। (१०५, १०६)

वसुमतीरे[1]—पृथिवी में; वसुं मतिरे[2]—मन में विचारपूर्वक वास करते हैं; (यमक); पुण्टे—गुरुत्वपूर्ण; बुलि—विहार पूर्वक; बळ सहिते—सैन्यो सहित; कलुं बध—हमने बध किया। (१०५,१०६)

बातायु ए होइ आसुँ मारीच। बिन्धुँ ताहाकु गोड़ाइ नाराच।१०७।
बिसर्जुं से प्राण त्राहि लक्ष्मण। बच कला भ्रात गला तत्क्षण।१०८।

सरलार्थ—"मारीच नामक राक्षस के माया-रचना-पूर्वक हिरन का रूप धारण करके हमारे कुटीर के पास आने से मैने उसका पीछा किया एवं उसे तीर मारा। शर के प्रहार से प्राण त्यागते वक्त उसने 'त्राहि लक्ष्मण' शब्दों का उच्चारण किथा। उसे सुनकर साथ-ही-साथ भाई लक्ष्मण मेरे पास गया।" (१०७, १०८)

बातायु—हिरन, मृग; विन्धु—विधते; ताहाकु—उसे, उसके; गोड़ाइ—पीछा करके; नाराच—शर, तीर; विसुर्जुं—त्यागते, छोड़ते; बच कला—प्रकाश किया, उच्चारण किया; भ्रात—भाई लक्ष्मण; गला—गया; तत्क्षण—साथ-ही-साथ। (१०७,१०८)

बामा सेनेहे सङ्गे आसिथिला। बैश्रबण एका देखि हरिला।१०९।

सरलार्थ—"मेरी प्रिया बड़े स्नेह से मेरे साथ वन में आयी थी। उन्हें कुटीर मे अकेली देखकर लंका के राजा रावण ने उन्हें हरण कर लिया।" (१०९)

बैश्रवण—विश्रवानन्दन रावण। (१०९)

बनिताकु खोजु ऋष्यमूकर। बड़ दीन दिनबन्धु-कुमर।११०।

सरलार्थ—"प्रिया को खोजता हुआ मै ऋष्यमूक पर्वत पर आ पहुँचा; वहाँ मैने सूर्यपुत्र सुग्रीव को अत्यन्त दुःखी होकर दिन बिताते देखा।(११०)

वनिता—प्रिया, पत्नी; दीन—दुःखी; दिनबन्धुकुमर सूर्यपुत्र सुग्रीव। (११०)

बहि करुणा मित्र ये होइलु। बैरी मित्र बोलिण माइलुँ।१११।

सरलार्थ—"हम लोगों ने कृपापरवश होकर उनसे मित्रता की। चूँकि तुम हम लोगों के मित्र के शत्रु हो, इस लिए हमने तुम्हारा विनाश किया।" (१११)

वैरी—शत्रु। (१११)

बाळि बोइला तु दाशरथि कि। बृद्ध बानरे नाशिलु एथिकि।११२।

सरलार्थ—यह सुनकर बालि ने व्वंग्योक्ति प्रकाश करते हुए कहा "क्या तू दशरथ का पुत्र है? अन्यथा ऐसी तुच्छ बात के लिए तू एक बूढ़े बन्दर को कैसे मारता? (११२)

दाशरथि—दशरथ का पुत्र, श्रीराम; एथिकि—ऐसी तुच्छ बात के लिए। (११२)

बप्ता जिणि याहार ग्रह खञ्ज । बिस्तारिछि कीरतिकि सहज।११३।
बिमर्द्दन - क्षत्रिय भृगुबर । बादे क्षम नोहिला त ताहार।११४।

सरलार्थ—"तेरे बाप दशरथ ने खज शनि महाग्रह पर विजय प्राप्त करके अपनी कीर्त्ति फैलायी थी। परन्तु क्षत्रियकुलान्तक परशुराम से विवाद करने को समर्थ नही हुआ। तू तो उसी दशरथ का पुत्र है, और अधिक तू क्या कर सकता ?" (११३,११४)

बप्ता—बाप, पिता; याहार—जिसका; ग्रह खञ्ज—लंगड़ा ग्रह; विस्तारिछि—फैलाया है, कीरतिकि—कोर्त्ति को; बिमर्द्दन—क्षत्रिय-कुलान्तकारी; भृगुबर—परशुराम; बादे—विवाद में, झगड़े में; क्षम—समर्थ; ताहार—उससे, उसके साथ। (११३,११४)

बिंशबाहु तोर दाराबइरी । बाद ता सङ्गरे आग न करि।११५।

सरलार्थ—"विंशबाहु रावण तेरा दारवैरी अर्थात् स्त्री-शत्रु है। पहले उससे विवाद करने के बजाय तूने एक निर्दोष बूढ़े बन्दर को मारकर कौन-सा यश लाभ किया ? (११५)

बिंशबाहु—बीस भुजाओंवाला रावण; आग—पहले। (११५)

बृक्षदंश रूपरे गुप्ते रहि । बाणे बिन्धिलु देहे रहे सेहि ।११६।

सरलार्थ—"भला सामने खड़ा होकर तूने युद्ध किया होता ! वैसा न करके एक विडाल की तरह छिप कर तूने एक तीर मारा ! वह तीर फिर एक बूढ़े बन्दर के शरीर मे चुभकर बाहर निकले बिना सटा रहा।" (११६)

बृषदंश—चूहे को मारनेवाला, बिडाल; गुप्ते—छिपकर। (११६)

बड़ाइकि रक्षणे आपणार । बोलि देले रामचन्द्र ए गिर ।११७।
बळ कोटिसिंहर कि बादरे । बहे बसे राजन पदबीरे ।११८।
बहे सिन्धुरे कि निति तर्पण । बामा अनुज भ्रातार हरण ।११९।
बृजिनकु छेदि तो कङ्कपत्रे । बधि जणकु ऋण देलुँ मित्रे ।१२०।

सरलार्थ—बालि की बातें सुनकर (लज्जित) श्रीराम ने अपनी बड़ाई बचाते हुए कहा, "तू बन्दर नही। क्या बन्दर कभी करोड़ों सिंहों का पराक्रम धारण-पूर्वक राजसिंहासन पर बैठ राज्य निर्वाह कर सकता है ? यह बिल्कुल असम्भव है। अतएव तू महावीर और बड़ा राजनीतिज्ञ है। एक बन्दर क्या कहीं रोज चार समुद्रो मे तर्पण कर सकता है ? इससे अनुमान होता है कि तू धार्मिक तथा ज्ञानी है। ऐसा धार्मिक तथा ज्ञानी पुरुष होते हुए भी तूने अपने छोटे भाई की पत्नी को

हरण करने से पाप कमाया है। इस लिए हमने तेरे उस पाप को कंकपत्र नामक शर से छेद कर, एक मित्र (सुग्रीव) को ऋण-दान दिया। (अर्थात् तुझे मारकर मित्र सुग्रीव को ऋणी किया।) (११७-१२०)

गिर—कथा, बात; बृजिनकु—पाप को; कंकपत्रे—कंकपत्र नामक शर से। (११७-१२०)

बृद्धि कळन्तर होइ प्रबर्त्ति। बधिबे से राबण पुत्र नाति।१२१।

सरलार्थ—"वही पूँजी सूद सहित सुग्रीव के हाथ में बढ़ेगी और उसे चुकाने के लिए वे रावण के पुत्रो तथा नातियों का वध अवश्य करेंगे। (१२१)

कळन्तर—सूद; से—वे (सुग्रीव)। (१२१)

बोलिछन्ति सीता आणि देबार। बाळि बोइला क्ळेशरे हेबार।१२२।
बिक्ळेशरे के मो बिना करता। ब्रह्माण्डे से एका मोरे बिनता।१२३।
बिभाकर तेजस्वी यथा हेले। बिधुन्तुद केबळ ग्रासे भले।१२४।

सरलार्थ—"और भी उन्होंने हमें सीता को ला देने के लिए वादा किया है।" यह सुनकर बालि ने कहा, "सुग्रीव से यह काम बड़े क्लेश से साधित होगा। क्योकि मुझे छोड़कर इस जगत मे और कौन ऐसा है जो आसानी से रावण से सीता को लाने मे समर्थ हो? (अर्थात् सिवाय मेरे दूसरा कोई रावण से सीता को नहीं ला सकता।) इस पृथिवी में मेरे ही सिवाय रावण किसी दूसरे व्यक्ति के सामने वीरता मे अपना सिर नही झुकाता। (अर्थात् अकेला मै ही उसे हरा सकता।) सूर्य तेजस्वी होने पर भी, राहु आसानी से उन्हे ग्रस लेता है। उसी तरह रावण बलवान् होने पर भी मैं आसानी से उसे पराजित कर सकता हूँ।" (१२२, १२३, १२४)

बिक्ळेशरे—अक्लेश से, अनायास से, आसानी से; बिनता—विनम्र; बिभाकर—सूर्य; बिधुन्तुद—राहु। (१२२,१२३,१२४)

बिशल्यकु करिबा राम भाषि। बइकुण्ठकु मोते बाट दिशि।१२५।

सरलार्थ—बालि से ये बाते सुनकर श्रीराम ने कहा, "तो हम तुझे विशल्य कर दे। (अर्थात् तेरे वक्ष से वाण को निकाल कर घाव पर विशल्यकरणी नामक दवा प्रयोगपूर्वक तेरा घाव भर दे।) बालि ने कहा, "नही, मुझे वैकुण्ठपुर का मार्ग दिखाई पड़ने लगा है। मै इस पापमय संसार मे और रहना नही चाहता हूँ।" (१२५)

बिशल्य—बाण निकालकर घाव भर देना; भाषि—कहा; मोते—मुझे (बालि को); बाट—मार्ग; दिशि—दीखने लगा है। (१२५)

बइकुण्ठ तु हेलु नाशहेतु । बर्ष्मबन्ते अबधि होए मृत्यु ।१२६।

सरलार्थ—आगे बालि ने कहा, "तुम स्वयं बैकुण्ड (भगवान्) हो जो कि मेरी मृत्यु के कारण हुए हो। सुतरां मेरी मुक्ति अवश्यम्भावी है। देहवन्त होने पर ही (अर्थात् ससार में देह धारणपूर्वक पैदा होते ही) प्राणी को अवश्य ही मरना होगा। सुतरा जब कभी-न-कभी मुझे मरना ही है, तब इस वक्त तुम्हारे हाथ से क्यो मरकर मुक्त न हो जाऊँ ?" (१२६)

बइकुण्ठ—बैकुण्ठ, भगवान्; बर्ष्मवन्ते—देहवन्त को, शरीरधारी को; अबधि—अवश्य ही, निश्चय ही। (१२६)

बोलुँ कपिईश आसे अङ्गद । बार्त्ता पाइ कहे लभि बिषाद ।१२७।
बिचित्रेक पूर्बरे होइथिला । बिन्ध्यकरोधी समुद्र पिइला ।१२८।
बिचित्रेक एबे तोह शरीरे । बिभेदित होइला तीक्ष्णशरे ।१२९।
बिष्णु मधुकइटभ पाताळे । बिनाशरु ए कीर्त्ति बळाइले ।१३०।
बर बराह मूरति धरिबा । बड़ नोहे हिरण्याक्ष मारिबा ।१३१।
बळि[1] हिरण्यदारणु ए यश । बळि[2] पाताळे रखिबा रहस्य ।१३२।
बळी भूत भविष्य बर्त्तमाने । बळिमुखेश सम के भुबने ? ।१३३।

सरलार्थ—वानरसम्राट् बालि के इस तरह बोलते समय उसका पुत्र अगद वार्त्ता पाकर वहाँ आ पहुँचा। पिता की यह दुर्दशा देखकर बड़े दु.ख से उसने कहा, "अगस्ति ऋषि के द्वारा समुद्र-पान रूपी आश्चर्यजनक घटना पहले सघटित हुई थी। अभी उसी तरह की और एक आश्चर्यजनक घटना मै यही देख रहा हूँ कि तुम्हारे जिस शरीर को बज्र भी बेध नहीं सकता, उसी शरीर मे एक नुकीला तीर कैसे चुभ गया !" फिर कहा, "विष्णु ने पाताल मे मधुकैटभ नामक दैत्य का विनाशपूर्वक जो कीर्त्ति कमायी थी, उस कीर्त्ति से यही महत्तर है। विष्णु जी का श्रेष्ठ वराह का रूप धारण-पूर्वक हिरण्याक्ष-वध-प्रसग अवश्य इससे बड़ा नही है। फिर उन्ही विष्णु भगवान् ने नृसिहावतार में हिरण्यकश्यपु का विदारण करके जो यश कमाया था, उससे यही बढ़ गया, और उन्होंने वामनावतार में बलि दैत्य को पाताल में दबाकर जो कौतुक किया था, यह उससे भी बढ गया। क्योंकि भूत, भविष्यत तथा वर्त्तमान—तीन कालों में ससार भर में बालि के समान बलवान् और कौन है ? (अर्थात् कोई नही।)" (१२७-१३३)

कपिईश—वानरसम्राट् बालि; बिषाद—दुःख; बिन्ध्यकरोधी—विन्ध्यपर्वत की वृद्धि को अपने प्रत्यागमन तक रोकनेवाले अगस्ति मुनि; बळाइले—बढ़ाया; बर बराह—बलवान् सूअर; बळि[1]—बढ़कर; बळि[2] दैत्य; (यमक); रहस्य—कौतुक; बळी—बलवान्; बळिमुखेश—वानरश्रेष्ठ बालि। (१२७-१३३)

बळि दश दिगकु दशशिर । बळिअछि मन एबे देबार ।१३४।
बिष्णु एहि बोलिण कपीश्वर । बिलम्बाइ सुग्रीव सुग्रीबर ।१३५।
वास्तोस्पति देला रत्नमाळाकु । वाहुधरि समर्पि अङ्गदकु ।१३६।

सरलार्थ—अंगद की बाते सुनकर बालि ने कहा, "तूने जिन विष्णु भगवान् की कथाएँ कही, उन्ही विष्णु ने अव रामावतार-धारण किया है। इसी अवतार में रावण का वध करके उसके दस सिरों को दस दिशाओं को बलिस्वरूप देने के लिए इन्होने मन किया है।" यह कहते हुए उसने इन्द्रदत्त रत्नमाला सुग्रीव के सुन्दर गले में पहना दी और पुत्र अंगद की बाहु पकड़कर उसे सुग्रीव को सौप दिया। (१३४-१३६)

कपीश्वर—वानरश्रेष्ठ वालि; विलम्बाइ—पहना दी; सुग्रीव—सुन्दर गले में; सुग्रीवर—सुग्रीव (वानर) के; वास्तोष्पति देला—इन्द्र-दत्त; समर्पि—सौंप दिया। (१३४-१३६)

बाहुळेय कि शर नेइ क्रौञ्चु । बाहुजेश उत्पाट शर रचुँ ।१३७।

सरलार्थ—अनन्तर क्षत्रियश्रेष्ठ वीर श्रीरामचन्द्र ने बालि के शरीर से बाण को निकाल लिया। यह देखकर प्रतीत हुआ, मानो कार्त्तिकेय क्रौचपर्वत से शर निकाल रहे हों। (१३७)

वाहुळेय—कार्त्तिकेय; क्रौंचु—क्रौच पर्वत से; बाहुजेश—क्षत्रियवर श्रीरामचन्द्र। (उत्प्रेक्षा) (१३७)

बिशेषत तप प्रभा होइला । बिनिर्गत जीबनरे रहिला ।१३८।

सरलार्थ—वालि के निधन-काल में विशेष कर ग्रीष्मऋतु के तेज की प्रतीति हुई। क्योंकि ग्रीष्मऋतु में जलाशय जैसे जीवनहीन (जलशून्य) हो जाता है, वैसे बालि का शरीर जीवनहीन (प्राणहीन) अवस्था मे पड़ा रहा। (१३८)

तपप्रभा—ग्रीष्मऋतु का तेज; विनिर्गत—व्यतीत, विना, बाहर निकला हुआ; जीवनरे—जल के, जीवन के; (श्लेष)। (१३८)

बिचञ्चळ नेत्रमीन स्तबध । बिकशिला नाहिँ हास कुमुद ।१३९।

सरलार्थ—जब जलाशय का जल सूख जाता है, उसमे मीन गतागत नही कर पाते तथा कुमुद नही खिलते। उसी तरह मुमूर्ष, बालि के विशेष चञ्चल नेत्रोंरूपी मीन गतिहीन हो गये (अर्थात् नेत्रो का पलक-पात बन्द हो गया) और उसके मुख में हास्य-रूपी कुमुद नही खिला (अर्थात् मुख मे हँसी दिखाई नही दी। (१३९)

विचञ्चल — विशेष चञ्चल; स्तबध (स्तब्ध)—गतिहीन; विकशिला नहीं—नहीं बिगसा, नही खिला। (१३९)

बाळि-बेर ग्रेमन्त शुष्क ह्लद । बात्तबिहुँ तारा शुणि बिषाद ।१४०।

सरलार्थ—अतएव बालि का शरीर सूखे हुए ह्लद के समान हुआ। (अर्थात् बालि मर गया।) उसकी पत्नी तारा दूत के मुख से यह दु:संवाद सुनकर बड़ी दु:खित हुई। (१४०)

बेर—शरीर ; ग्रेमन्त—जिस प्रकार; बात्तबिहुँ— दूत से (१४०)

बाळ फिटि लोटे पृष्ठे धावन्ते । बारिद कि खेळे हेम-पर्बते ।१४१।

सरलार्थ—दौड़ते समय तारा का सुनील केशगुच्छ खुलकर उसकी पीठ पर डोल रहा है। उसे देखकर प्रतीत होता है। जैसे स्वर्णपर्वत पर मेघ खेल रहा हो। (१४१)

फिटि—खुलकर; लोटे—डोलता है; धावन्ते—दौड़ते समय; बारिद—मेघ; हेमपर्वते—स्वर्णपर्वत पर; (उत्प्रेक्षा)। (१४१)

बक खसिला परि पुष्प पड़े । बाष्पजळ नयनयुगुँ गड़े ।१४२।

सरलार्थ—उसके केशों से फूल गिर रहे है, मानो बारिश के समय बगुलों की पाँतें आकाश से खिसक रही हो और दोनों नेत्रों से आँसुओं की धाराएँ बह रही है, मानो मेघ से जल-धाराएँ गिर रही हों। (१४२)

बक—बगुले; नयन युग्मु—दोनों नयनो से; गड़े—लुकढ़ती है, गिर रही है; (उत्प्रेक्षा)। (१४२)

बिधूत्थानु द्रबि बहे कळङ्क । बक्त् पाशे चञ्चळित ताटङ्क ।१४३।
बिकारे कि बातर शोभाजळे । बेनि निर्मळतर तार चळे ।१४४।

सरलार्थ—अश्रुजल उसके नेत्रस्थित कज्जल से मिलकर बह रहा है। यह देख कर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है—त्रस्त मुख-चन्द्र से मानो कलंक पिघल कर बहता जा रहा हो। उसके दौड़ते समय मुख के दोनों ओर दोनों कर्णाभूषण चंचल होकर डोल रहे है। उन्हें देखकर यह प्रतीत हो रहा है, मानो वायु से चंचल होकर शोभा-रूपी जल में दो समुज्ज्वल तारे प्रतिविम्बित होकर नाच रहे हो। (१४३,१४४)

विधूत्थानु—मुख-चन्द्र से; बक्त्र—मुख; ताटंक—कर्णाभूषण; बिकारे कि बातर—वायु के विकार से; बेनि—दो; तार—तारे; (उत्प्रेक्षा)। (१४३,१४४)

बक्षोजरु खसे हारमुकुता ।बसुन्धरा नीरबिन्दु शोभिता ।१४५।

सरलार्थ—दौड़ते वक्त तारा के दोनों स्तनों पर के मुक्ताहारों से मोती सब भूमि पर गिर विखर रहे है। मानो पृथिवी जलविन्दुओं से शोभित हो रही हो। (१४५)

वक्षोजर—स्तनों से; मुकुता—मुक्ता, मोती; बसुन्धरा—पृथिवी; (उत्प्रेक्षा) (१४५)

[कुछ व्याख्याकार वक्षोज के लिए 'पयोधर' (मेघ) और कुछ 'कलश' उपमान अनुमानपूर्वक बैठाकर क्रमशः वक्षोज-पयोधर और वक्षोज-कलश से पतित मोतियों को बारिश के जल-विन्दुओं और कलश के जल-विन्दुओं के सहित उपमित करके उन जल-विन्दुओं से धरती का शोभित होना वर्णन करते हैं।]

बैबस्वतपुरे गल ए स्वर। विधबा करि मोते प्राणेश्वर।१४६।

सरलार्थ—बालि का मृत शरीर देखकर तारा ने ऊँचे स्वर से रोते हुए कहा, "हाय प्राणेश्वर! मुझे विधवा करके तुम यमपुर सिधारे!" (१४६)

बैवस्वतपुर—यमपुर; मोते—मुझे। (१४६)

बेळ अस्त होइला प्रभातरे। बोलि पड़िला बाळिर उपरे।१४७।
बळाहकुँ छिड़िपड़ि बिजुळि। बळाहक उपरे किबा खेळि।१४८।

सरलार्थ—"प्रभात के समय सूर्यास्त आ उपस्थित हुआ। (अर्थात् मेरे सुख के प्रारम्भिक काल मे अचानक यह घोर दुःख उपस्थित हुआ।)" कहती हुई तारा बालि पर गिर पड़ी। यह दृश्य देखकर प्रतीत हुआ, मानो बिजली मेघ से खिसक कर पर्वत पर खेल रही हो। (१४७,१४८)

बळाहकुँ—मेघ से; बळाहक—पर्वत; उत्प्रेक्षा। (१४७,१४८)

बिलोकन करिण रघुबीर। बिचारिले बानरी असुन्दर।१४९।
बोलन्ति ये जनमाने संसारे। बिलक्षित केउँ रम्भा एहारे।१५०।

सरलार्थ—तारा को देखकर श्रीराम ने मन में विचार किया, "संसार के लोग यह जो कहते है कि वानरी सबसे वड़ी असुन्दरी है, उनका यह कथन मिथ्या प्रतीत होता है। तारा वास्तव में एक वानरी (वानर की पत्नी) हैं। परन्तु सौन्दर्य में कौन-सी रम्भा इसके सहित उपमित हो सकती है? (अर्थात् स्वर्ग-वेश्या रम्भा से भी तारा अधिक सुन्दर है।) (१४९, १५०)

विलोकन करिण—अवलोकन करके; वानरी—बन्दरी; विलक्षित—उपमित, तुलित; एहारे—इसके सहित; व्यतिरेक। (१४९,१५०)

बोलाइला एथि कि नाम तारा। बिहि बिहुँ होइला नेत्रतारा।१५१।

सरलार्थ—विधाता ने इसको रूपवती करके निर्मित किया। इसका निर्माण करते-करते अनिन्द्यसुन्दरी हो जाने से यह विधाता के नेत्रों में तारा (आँखो का तारा, आँखों की पुतली) वन कर रह गयी, इसीलिए क्या यह 'तारा' नाम से अभिहित हुई?" (१५१)

बोलाइला—कहलाई, अभिहित हुई; एथिकि—इसीलिए क्या ?; बिहि—विधाता; विहुँ—निर्माण करते-करते, गढ़ते-गढ़ते; नेत्रतारा—आंखों की पुतली। (१५१)

बाळिबाळी श्रीरामे अनाइला। बाणी-बाण व्याकुळे य़ोग कला।१५२।

सरलार्थ—जब श्रीराम तारा की ऐसी प्रशंसा कर रहे थे, उसने उनकी ओर ताका और व्याकुलता से वाक्य-बाण का प्रयोग किया। (१५२)

अनाइला—ताका; वाक्य-वाण—कटूक्ति। (१५२)

बिच्छेद य़े कला मो बल्लभर। बाळाभोग सम्पूर्ण्ण नोहु तार।१५३।

सरलार्थ—तारा ने शाप दिया, "जिसने मेरे पतिदेव का मुझसे विछोह कराया, उसका भी पत्नी-सम्भोग पूर्ण न हो।" (१५३)

बल्लभर—पति का; बाळाभोग—पत्नी-सम्भोग; तार—उसका। (१५३)

व्यथा उपुजाइ रघुनायके। बाळि बिन्धिबा काण्डरु अधिके।१५४।

सरलार्थ—तारा के इस वाग्वाण ने श्रीराम के हृदय में बड़ी व्यथा उपजायी, जो मानो बालि के शरीर-विद्ध बाण से उन्हें अधिक नुकीला अनुभूत हुआ। (अर्थात् बालि ने प्रभु के शराघात से जो कष्ट पाया था, प्रभु ने तारा की कटूक्ति से उससे कही अधिक कष्ट पाया।) (१५४)

रघुनायके—राम के प्रति; काण्ड—शर, वाण। (१५४)

बिधबा तु किपाइँ हेबु लोके। बस सुग्रीब कोळे अभिषेके।१५५।

सरलार्थ—श्रीराम ने कहा, "तू इस संसार में विधवा क्यों होगी ? तू सुग्रीव के तिलक के समय उनकी गोद पर बैठ।" (१५५)

किपाइँ—क्यों ?; बस—बैठ; कोळे—गोद में। (१५५)

बसुँ प्रह्लाद इन्द्रपद लभि। बृषा थाउँ शची तार बल्लभी।१५६।
बधू अधिक कि शाशुठाबरु। बोधि ताकु बाणी एहि न्यासरु।१५७।

सरलार्थ—तू यह कह सकती है— 'मै पतिव्रता हूँ, अकरणीय कार्य कैसे करूँ ?' हम उसका उदाहरण दे रहे हैं। तू सुन ! जब भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद इन्द्रपद-लाभपूर्वक स्वर्ग में बैठे, तब पहले इन्द्र के रहते हुए भी उनकी पत्नी शचीदेवी प्रह्लाद की पत्नी बनी। सास से बहू क्या अधिक है ? तेरी सास प्रह्लाद की पत्नी बनी। अतएव तू भी सुग्रीव की पत्नी बन सकती है, और सती कहला सकती है। इसमें तुझे कोई दोष नहीं लगेगा।" इसी तरह नाना प्रकार की कथाएँ कहकर श्रीराम ने तारा को सान्त्वना दी। (१५६,१५७)

बसुँ—बैठते; बृषा—इन्द्र; बल्लभी—पत्नी; शाशुठाबरु—सास के पद से, सास से; एहि न्यासरु—इसी तरह से। (विशेष सूचनाः—बालि इन्द्र का पुत्र है। इसलिए बालि की पत्नी तारा इन्द्र-पत्नी शची की वधू है।) (१५६,१५७)

बानरेन्द्र मित्रकु करि मोदे । बिहि युबराज पद अङ्गदे ।१५८।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीरामचन्द्र ने सानन्द मित्र सुग्रीव को वानरराज के पद पर अभिषिक्त किया और अंगद को युवराज का पद प्रदान किया । (१५८)

बानरेन्द्र—वानरराजा; मोदे—आनन्द से । (१५८)

बिद्य पट्टमहिषी तारा होइ । बन्द्या साध्वी पदरे बर पाइ ।१५९।

सरलार्थ—तारा पट्टमहिषी के पद से प्रसिद्ध हुई । श्रीरामचन्द्र के वरदान से वह सती के रूप में सारे जगत में वन्दनीया हुई । (१५९)

विद्य—प्रसिद्ध; पट्टमहिषी—पटरानी; साध्वी—सती, पतिव्रता । (१५९)

बदनकु मित्र चाहिँ भाषे । वड़ दुखी होइछ बनबासे ।१६०।
बिच्छेदित[1] होइ प्रियबतीरे । बिच्छेदित[2] नितिरे स्मर-तीरे ।१६१।
बञ्चि बरषाग्राक रहि पुरे । बादी हेबा लङ्केशे तदुत्तारे ।१६२।

सरलार्थ—कुछ दिनों के वाद श्रीराम ने मित्र सुग्रीव के वदन की ओर निरख कर कहा, "तुम वनमे वास करके बहुत खिन्न हो पड़े हो । अपनी प्रियतमा पत्नी से बिछुड़ कर प्रतिदिन कन्दर्प के वाण से विशेष रूप से और भी आहत हुए हो । अतएव इस वरसात में घर में वासपूर्वक समस्त सुखों का उपभोग करो । उसके अनन्तर हम जाकर रावण से युद्ध करेंगे । (१६०,१६१,१६२)

विच्छेदित[1]—बिछुड़कर; विच्छेदित[2]—विशेषरूप से आहत (घायल); (यमक) स्मरतीरे—कामदेव के वाण से; लङ्केशे—लंका के राजा रावण से; बादी हेबा—विवादी होंगे, युद्ध करेगे; तदुत्तारे—उसके अनन्तर । (१६०,१६१,१६२)

बर्षा बञ्चु आम्भे माल्यबन्तरे । बोलि बिजे लक्ष्मण सङ्गतरे ।१६३।

सरलार्थ—हम माल्यवन्त पर्वत पर वास करके इस वर्षाऋतु को बितावे ।"—यह कहकर श्रीराम लक्ष्मण के सहित माल्यवन्त पर्वत की ओर चले । (१६३)

बञ्चु—(हम) बितावे; विजे—रवाना हुए, चले । (१६३)

बृत सेनानीरे होइ सुग्रीब । बाहुड़ाइ देले पथुँ राघब ।१६४।

सरलार्थ—सैन्य-सेनापतियों के द्वारा परिवेष्टित सुग्रीव को श्रीराम ने मार्ग से लौटा दिया । (१६४)

बृत—घेरा हुआ, परिवेष्टित; सेनानीरे—सैन्य-सेनापतियों से; बाहुड़ाइदेले—लौटा दिया; पथुँ—पथ से, मार्ग से; राघव—श्रीराम ने । (१६४)

बळ साजि आस न बळुँ कण्ट । बोलि सौमित्रेय बाणी प्रकट ।१६५।

सरलार्थ—माल्यवन्त चलते समय लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा, "देखो, तुम्हें दी हुई अवधि जैसे बीत न जाय। अवधि समाप्त होने के पहले सैन्य सजाकर यहाँ आ जाना। (१६५)

वळ—सैन्य; न बळुँ—न बीते, न बढ़े; कण्ट—अवधि; सौमित्रेय—लक्ष्मण ने; बाणी प्रकट—वाणी अभिव्यक्त की, कहा। (१६५)

बिभाबसुबंशिक त्वरा होइ। बसा माल्यबन्तरे कले ग्राइँ।१६६।

सरलार्थ—सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र ने अतिशीघ्र जाकर माल्यवन्त पर्वत पर निवास किया। (१६६)

विभावसुवंशिक—सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र; त्वरा—अति शीघ्र; बसा—बसेरा, वास; कले—किया; याइ—जाकर। (१६६)

बिश्वधात्रीरु हत हेले कीर्त्ति[1]। बिख्यातिबे असुर नाशकीर्त्ति[2]।१६७।

सरलार्थ—पृथिवी से वर्षाकालीन पक के सूख जाने पर (अर्थात् शरत् ऋतु के आगमन में) श्रीरामचन्द्र असुरों का वध करके जगत मे अपना यश फैलाएँगे। (१६७)

विश्वधात्री—पृथिवी; हत—नष्ट; कीर्त्ति[1]—पंक, कीचड़; विख्यातिबे—फैलाएँगे; कीर्त्ति[2]—यश; (यमक)। (१६७)

बसुमतीधररे श्रेष्ठ सार। बोलाइला रचुं रामबिहार।१६८।

सरलार्थ—माल्यवन्त पर्वत पर राम के विहार करते समय, वह पर्वत अनुपम शोभा-धारणपूर्वक सारे श्रेष्ठ पर्वतों में सार (शिरोमणि) कहलाया। (१६८)

वसुमतीधररे—भूधरों में, पर्वतो में; बोलाइला—कहलाया। (१६८)

बिगत दुःख सुग्रीब सुरङ्गे। बिळसित ये तारा रुमा सङ्गे।१६९।
बिमळिन छत्र चामर पुञ्ज। बिराजित भ्रमणरे सहज।१७०।

सरलार्थ—सारे दुःखों के दूर होने से सुग्रीव ने तारा तथा रुमा के साथ सहर्ष विहार किया। देश-भ्रमण के समय वे स्वाभाविक रूप से अपने राजकीय चिह्न, श्वेत छत्र-चामर-समूह से सुशोभित हुए। (१६९,१७०)

विगत—दूर होने से; सुरंगे—सहर्ष, सविनोद; विमळिन—श्वेत, सफेद; विराजित—सुशोभित; सहज—स्वाभाविक रूप से। (१६९,१७०)

बुधे बुझ ए गीत होइ तोष । बिंश अष्ट अधिक छान्द शेष ।१७१।
बास्तरि अधिक शतशपद । बिहु सकळ हृदये प्रमोद ।१७२।
बन्दे बीरबर भञ्ज आनन्दे । बइदेहीश चरणारबिन्दे ।१७३।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! इस गीत को सन्तोषपूर्वक समझिए । अट्ठाइस छान्द यही समाप्त हुआ । ये एक सौ बहत्तर पद सभी के हृदयों में आनन्द उत्पन्न करे । वीरवर भञ्जकवि बैदेहीपति श्रीरामचन्द्र के चरणकमलों की सानन्द बन्दना कर रहे है । (१७१,१७२,१७३)

बुधे—हे पण्डितो; **बिंश अष्ट अधिक**—बीस से आठ अधिक = अट्ठाइस; **बास्तरि**—बहत्तर; **बिहु**—विधान करे, निर्माण करे, उत्पन्न करे; **प्रमोद**—आनन्द, हर्ष; **चरणारबिन्दे**—चरणकमलों की । (१७१,१७२,१७३)

॥ इति अष्टाविंश छान्द ॥

ऊनत्रिंश छान्द

राग—कल्याण आहारी

बिरोधाभास प्रकटाइ कबिरे बरषा समय सञ्चरि।
ब्यापि शोभा दिशे भयङ्कर दिशे गरासे घनाघन हरि।
बिसर्जइ ग्रे। बड़ आनन्दरे जीबन।
बिधिरे काळिका महिषसन्ताप नाशि प्रमोद करे दान। १।

सरलार्थ—अब बरसात आ पहुँची। इस ऋतु ने कवि उपेन्द्र के मन से विरोधाभास अलंकार की अभिव्यक्ति करायी।

विरुद्धार्थ—बरसात के उपस्थित होने से पृथिवी में सर्वत्र शोभा फैल गयी और पृथिवी सुन्दर व भयंकर दिखाई पड़ी। मस्त हाथी ने सिंह को ग्रास किया और उसने आनन्द से प्राण-त्याग किया। दैव-योग से दुर्गा ने महिषासुर का सन्ताप-नाशपूर्वक उसे आनन्द-दान किया।

विरोध के परिहार से प्रकृतार्थ—बरसात के आगमन में मेघसमूहों की शोभा दिशा-दिशा मे फैल गयी। उनके अन्धकार के हेतु दिशाएँ भयंकर भी दिखाई देने लगी। इस तरह पृथिवी के सुन्दर तथा भयंकर—दोनों रूप प्रकटित हुए। मेघों ने सूर्य तथा चन्द्र, दोनों को ग्रास करके (अर्थात् ढककर) बड़े आनन्द से जल बरसाया। प्रकृति के विधानानुसार मेघसमूहों ने जल वृष्टि से भैसों का शरीर-ताप विनाश करके उन्हें आनन्द प्रदान किया। (१)

दिशे—दिशाओं में; दिशे—दीखती है; घनाघन—मस्त हाथी, बरसनेवाले मेघसमूह; हरि—सिंह, सूर्य, चन्द्र; बिसर्जइ—छोड़ते हैं; जीवन—प्राण, जल; कालिका—दुर्गा, मेघ, महिष—महिषासुर, भैसा। (१)

विरोधाभास अलकार—"जातिः चतुर्भिः जात्याद्यैः गुणो गुणादिभिः त्रिभिः। क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्य द्रव्येण वा मिथः। भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः। (विश्वनाथ कविराज-कृत 'साहित्य-दर्पण' से उद्धृत)

परिभाषा—जहाँ किसी घटना के वर्णन में वास्तव विरोध न होते हुए भी विरोधवत् आभास होता है, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता।

इसके दस भेद हैं—जातिगत विरोध—(चार भेद)—जातिका जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य से विरोध; गुणगत विरोध—(तीन भेद)—गुण का गुण, क्रिया तथा द्रव्य से विरोध; क्रियागत विरोध—(दो भेद) क्रिया का क्रिया तथा द्रव्य से एवं द्रव्यगत विरोध—(एक भेद)—द्रव्य का केवल द्रव्य ही से विरोध। इस छान्द के प्रत्येक पदका अर्थ पहले विरोधात्मक उक्तियों मे दिया गया है। उसके बाद विरोध का परिहारपूर्वक उसका प्रकृत अर्थ दिया गया है।

बिजनित कला श्वान अबिरते चमक रचिला शरभे।
बिहित द्विजब्रजर कषणकु करके पुण से आरम्भे।
बृद्धश्रबार। बाणासन ये करे जात।
बिहित रोहित स्वरूप त्वरित नाकरे रङ्ग बिहरित। २।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)— कुत्ते के भेड़ी के साथ सुरति करने से जो सन्तान पैदा हुई, उसने महाबली शरभ जैसे पशु को भी चौका दिया एवं कमण्डलुओं के आघात से ब्राह्मणो को क्लेश हुआ। इन्द्र के धनुष ने रोहू मत्स्य का रूप धारण करके स्वर्ग में नाना रंगों में विहार किया।

विरोध के परिहार से प्रकृतार्थ—इस समय मेघों ने हमेशा गर्जन करके शरभ जैसे महावली पशु मे भी कँपकँपी पैदा कर दी। फिर आकाश से ओले बरसने लगे और उनके आघात से पक्षियों को बहुत कष्ट मिला। इन्द्रधनुष ने रक्तवर्ण धारणपूर्वक आकाश में रग में विहार किया। (२)

विजनित—जात, उत्पन्न; श्वान—कुत्ता, (स्वान) शब्द; अबिरते—मेषी (भेड़ी) से रत होकर, हमेशा; शरभ—आठ पैरो वाला कल्पित मृग; द्विजब्रजर—ब्राह्मणसमूह का, पक्षि—समूह का; करके—कमण्डलुओं से, ओलों से; बृद्धश्रबार—इन्द्र का; बाणासन-धनुष; नाकरे—स्वर्ग में, आकाश में। (२)

बिष्णुपद लीन हेबारे चञ्चळा ज्योति प्रकाशि कला लीळा।
बिषकण्ठ सुखे बिळसे कुळिशे गिरिजा सङ्घाति होइला।
बिलोकने ये। बिरस य़ोगीए नोहिले।
बिकाश पुष्पे सुजाति सुमनाए मधुप मनकु मोहिले। ३।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)—'विष्णु' पद के लीन होने से लक्ष्मी ने अपनी कान्ति प्रकाशित करके लीला की। पार्वती को 'कुलिश' नामक मछली से आघात प्राप्त हुआ जिससे महादेव जी ने सानन्द विहार किया। यह देखकर दूसरे योगिजन खिन्न नही हुए। (आनन्दित हुए)। रजोवती होने के समय कुलीना पण्डिता रमणियों ने रतिक्रीड़ा में मद्यप पुरुषों के मन को बहलाया।

विरोधका परिहार तथा प्रकृतार्थ—मेघों के आवरण से आकाश के लीन होने पर (न दीखने पर) विजली ने उसमें अपनी कान्ति प्रकाशपूर्वक क्रीड़ा की। वगुले (अथवा मोर) आनन्द से विहार करने लगे। छोटे-छोटे पर्वत वज्राघात से विनष्ट हुए। इस समय को देखकर संयोगी (अर्थात् संसारी) लोग दुःखी न होकर आनन्दित हुए। जाई तथा मालती लताओं ने विकसित होकर भौरों के मन को बहकाया। (३)

विष्णुपद—'विष्णु' का पद या स्थान, आकाश; चञ्चळा, बिजली; विषकण्ठ—महादेव, बगला, मयूर; कुळिश—एक मछली, वज्र; गिरिजा—पार्वती, पर्वत से

जात छोटे-छोटे पर्वत; संघाति—विनष्ट; बिरस—दुःखी, खिन्न; नोहिले—नहीं हुए; सुमनाए—पण्डिता रमणियाँ, जाई (चमेली) लताएँ; मधुप—मद्यप (शराबी) भौंरा। (३)

ब्रह्मपुत्रकु भक्षिबा इच्छा कले बिच्छेदी होइथिला जने।
बिचारि पथिक पद बिसरिले अति उत्सुक जात मने।
बिहे अगति। बहे य़हिंरे सदागति।
बिटप बिनाशे सुमनरे हसे गणिकापन्ति दिबाराति।४।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)—दो या ततोऽधिक खण्डों में कटे हुए जनों ने कपिल ऋषि को भक्षण करने की इच्छा की। विचारी (आकाश में चलने वाले) भगवान् के (अथवा देवताओं के) भजन-पथिकों (अर्थात् वैष्णवों) की पदवी (स्थान यानी मुक्ति) को अत्यन्त उत्सुक मन से उत्पन्न करने से वे विनष्ट हुए। जहाँ (अर्थात् जिस पथ पर) 'सदा-मुक्तिवह' लोग ऐसी अगति का विधान करते है, वहाँ गति का प्रश्न फिर कहाँ है ? फिर वेश्याएँ विट पुरुषों का विनाशपूर्वक आनन्द के साथ दिन-रात हँसने लगी।

विरोध के परिहार से प्रकृतार्थ—इस ऋतु में वियोगी जनों ने मन में इच्छा की कि हम लोग यह विरह-व्यथा और नही सह सकते और कालकूट विष खाकर प्राण-त्याग करेंगे। बेचारे पथिक लोगों ने अपनी-अपनी प्रियाओं के समीप पहुँचकर उत्सुक मन से पथिक-पद को अर्थात् पथिक की अवस्था (थकावट) को भुला दिया। और भी इस समय हवा अस्तव्यस्त होकर (अर्थात् द्रुतगति से) बहने से जूही लताओं ने पत्रों को झड़ा दिया और कुसुम-विकास के मिस दिन-रात हास प्रकाश किया। (४)

ब्रह्मपुत्रकु—नारद, वशिष्ठ, सनकादि ब्रह्मा के पुत्रों को, कपिल ऋषि को, कालकूट विष को; बिच्छेदी होइथिला जने—विशेष रूप से कटे हुए जनों ने, विरही लोगों ने; बिचारि (री)—नभचारी (भगवान्, देवता), बेचारे; पथिक—भजन-पथिक (वैष्णव लोग); बटोहियों की; पद—पदवी (स्थान), थकावट; बिसरिले—बिसराया, भुला दिया; अगति—अमुक्ति, अस्त-व्यस्त; सदागति—सदामुक्तिदायक, वायु; बिटप—लंपट, पत्र; सुमनरे—आनन्द से; फूलों से; गणिकापन्ति—वेश्याएँ, जूही लताएँ। (४)

बिमळ ककुभ कदम्ब ककुभ कदम्ब मळिन रभसे।
बिदित उडुप पुष्करे उडुप पुष्करे आउ ये न दिशे।
बने कले ये। बरही शिखा टेकि नृत्य।
बने हेले य़े बरहि शिखा तहिँ समस्त परकारे हत।५।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)—इस समय शीघ्र ही दिशाओं का समूह निर्मल हुआ। फिर दिशाओंका समूह शीघ्र ही मलिन हुआ। आकाश में चन्द्र

उदित हुए। फिर आकाश में चन्द्र विलीन हुए। वन में मयूरों ने अपनी-अपनी पूँछें उठाकर नृत्य किया। फिर वन में मयूर की पूँछे सब विनष्ट हुईं।

विरोधका परिहार तथा प्रकृतार्थ—वर्षागम में अर्जुन तथा कदम्ब वृक्ष सब प्रेमोत्साह से निर्मल हो गये और रमणीय दीखने लगे। मेघाच्छन्न होने के कारण दिशाएँ मलिन हो गई। जल में बेड़े उतराते हुए दीखने लगे। मेघ के आवरण से चन्द्र बिल्कुल दिखाई नही पड़े। वन में मयूरों ने शिखाएँ उठाकर नृत्य किया। बारिश के द्वारा वन से दावाग्नि की शिखा सर्वतोरूपेण विनष्ट हो गई। (५)

विमळ—स्वच्छ, ककुभ कदम्ब—दिशाओ का समूह, ककुभ कदम्ब—दिशाओं का समूह; मळिन—मैली; रभसे—वेग से; विदित-उदित; उड़ुप—चन्द्र; पुष्करे—आकाश में; उड़ुप—चन्द्र; पुष्करे—आकाश मे; आउ—और; न दिशे—नहीं दीखते; बरही (बर्हीं) मयूर; बरहि—बर्हीं–मयूर; (विरुद्धार्थ मे)। ककुभ—अर्जुनवृक्ष; कदम्ब—कदम्ब वृक्ष; ककुभ कदम्ब—दिशाओ का समूह; रभ से—प्रेमोत्साह से; विदित—दिखाई दिये; उड़ुप—बेड़े; पुष्करे—जल में; उड़ुप—चन्द्र; पुष्करे—आकाश में, बरही—(बर्हीं)—मयूर; बरहि (बर्हीं)—दावाग्नि; (प्रकृतार्थ में); यमक, श्लेष। (५)

बाहारु कन्दळी[1] भक्षिले कन्दळी[2] होइ अतिशय लाळस।
विपुळ कामदर दूर नोहिला कामे दरदूर हरष।
बर कोळरे। बसि गन्धबती शोभन।
बरकोळरे गन्धबती अशोभा सहजे होइला जनन। ६।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)—इस समय घास के अँखुए सब उगने लगे एवं मृगों ने उन्हें आनन्द से भोजन किया। विपुल (अर्थात् भयंकर) है जो कामभय, वह दूर नही हुआ। फिर कामभय के दूर होने से हर्ष उत्पन्न हुआ। सुगन्धवती रमणियाँ कान्तो की गोदों मे बैठी सुशोभित हुईं। फिर उन्ही सुगन्धवती रमणियों ने पतियों की गोदो मे बैठते हुए सहज ही अशोभा उत्पन्न की।

विरोधका परिहार तथा प्रकृतार्थ—बरसात के आगमन मे घास के अँखुए भूमिपर उगने लगे। हिरनों ने उन्हें सानन्द भोजन किया। यन्त्रणादायक काम-भय दूर नही हुआ। मेंढक सब कामक्रीड़ा से आनन्दित हुए। केवट लोग मनोहर बेड़ों पर बैठकर सुशोभित होने लगे। बड़े-बड़े सूअरों से भूमि विदीर्ण होने के कारण वह सहज ही असुन्दर दिखाई देने लगी। (६)

कन्दळी[1]—घास के अँखुए; कन्दळी[2]—मृगों ने; कामदर—कन्दर्पजनित भय; दर दूर—डर का दूर होना, मेंढक (दर्दूर); बर कोळरे—पतियों की गोदो में, मनोहर बेड़ो में; बसि—बैठकर; गन्धबती—सुवासिनी रमणियाँ, केवट; बरकोळरे—बड़े-बड़े सूअरों से; गन्धबती—पृथिवी। (६)

वियोगी सारसे संयोगी सारसे होइ ये रहिले सरसी ।
बिगत हेले दीनचक्र आगत होइले दीनचक्र आसि ।
बाळिनाशन । बाळीप्रोतिमन्त श्रवण ।
बनद निनद करु पचारिले शुणि सुलक्षण लक्ष्मण । ७ ।

सरलार्थ—(विरुद्धार्थ)—इस ऋतु मे सरोवर सब पद्मों से वियोगी हुए । फिर वे सब पद्मों से संयोगी हुए । दुःखी चकवे गये और दुःखी चकवे फिर आये । मेघ ने गर्जन किया । इस गर्जन को सुनकर बालि का नाश करने वाले तथा बाली सीता से प्रीति रखने वाले श्रीराम ने सुलक्षणयुक्त लक्ष्मण से पूछा, "सुनो भाई लक्ष्मण, यह कौन-सा शब्द सुनाई पड़ रहा है ?"

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—बरसात में जल के आधिक्य के कारण सरोवर सब पद्मशून्य हो गये । परन्तु वे सब हंस-समूहों से भरपूर हो गये । जलाभाव के हेतु भागे हुए चकवे फिर आ गये । मर्कटराज बालि की हत्या करने वाले तथा बाली सीता से एकान्त प्रीति रखनेवाले श्रीराम ने मेघ का गर्जन सुनकर उत्तम लक्षणों से युक्त लक्ष्मण से पूछा, "यह कौन-सा शब्द सुनाई पड़ रहा है भाई ? (७)

सारस—पद्म, हंस; सरसी—सरोवर, ताल; दीनचक्र—जलाभाव के कष्ट से पीड़ित; दीन—चक्र—दुःखी चकवे; बाळिनाशन—बालिहन्ता; बाळी-प्रीतिमन्त—बाला सीता से अनुरक्त राम ने; श्रवण—सुनकर; बनद निनद—मेघ गर्जन; सुलक्षण-उत्तम लक्षणों से युक्त। (७)

बोले घट घट केऊँ घटकार एहि कि घट घट नेब ।
बिदुर धन ग़ाहार ताकु घोट लगाइ कि कला दइब ।
बुले ता चार । बृत्त एणु काळकण्टके ।
बेभारे मुँ बोलि चिह्नि न पारिटि पुच्छन्ति कोबा कोबा डाके । ८ ।

सरलार्थ—इस समय मेघ का 'घट' 'घट' गर्जन सुनकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, "यह कौन-सा घटकार (दुर्दशा सघटित करने वाला व्यक्ति) है जो मेरे घट (शरीर) से घट (जीवन) ले चलेगा ? यह गर्जन सुनकर मुझे ऐसा लग रहा है कि जिसका पत्नी-वियोग हुआ है, उसे घोटने (घेरने) के लिए दैव ने इन्हीं मेघों को लगा दिया क्या ! उस दैव के दूत सब पपीहों के रूप में चारों ओर फैलकर घूम रहे है । उनकी 'कोबा' 'कोबा' बोलियाँ सुनकर ऐसा लग रहा है कि मुझ-जैसे प्रिया-विरही को न पहचान सक कर वे मानो पूछ रहे हों—'प्रिया-विरही कौन है ?' 'प्रिया-विरही कौन है ?' (८)

घट घट—मेघों का गर्जन; केउँ घटकार—कौन सा दुर्दशा घटानेवाला व्यक्ति ?; घट—शरीर (से), घट—जीवन; (यमक); विदूर—विरहिणी; धन-(धनी)-पत्नी; घोट—घेर लो; चार—दूल; वृत—फैले हुए है, व्याप्त; काळकण्टके—पपीहों से; बेभारे-वास्तव में, मुं बोलि—मै ही प्रिया-विरही हूँ; कोवा कोया—कौन प्रिया-विरही है ? कौन प्रिया-विरही है ?; डाके—पुकार या बोली के द्वारा। (८)

बळात्कारे घट घेनिले अछि त मन्दे भल कष्टुँ तरणे।
बार्त्ता पाइ प्राणेश्वरी अनुसरि सुगति अछि ता चरणे।
बन्धु से पुणि। बारिदान नेत्नु करणे।
बाक्य 'हा नाथ' युक्ते हेब सुगति धाता बन्दिबा ए कारणे। ९।

सरलार्थ—विधाता यदि इन दुर्दशा घटाने वाले मेघों के द्वारा मेरे प्राण-घटको बलात् ले चले (अर्थात् मेरा विनाश कर दे), तो भले ही यह बुरा हो, फिर भी विरह-यातना से मुझे त्राहि मिल जायगी जिससे मेरा मगल अवश्यम्भावी है। यह दुसंवाद पाकर मेरी प्राणेश्वरी सीता मेरे निकट चली आएँगी। उनके अन्तिम दर्शन से मेरा मुक्ति-लाभ सुनिश्चित है क्योंकि उनके चरणों मे मुक्ति है। वे भी मेरी प्रियतमा है। सुतरां मुझे मृत देखकर वे 'हा नाथ !' वाक्य उच्चारण करके रो उठेगी। वेद-वाक्य-उच्चारणपूर्वक आत्मीय-स्वजन यदि प्रेत को जलदान (तिलांजलि) दे, तो वह प्रेतत्व से मुक्ति-लाभ करता है। उसी तरह 'हा नाथ !' कहती हुई जब सीता रो उठेगी, तो अपने रोदन-जल से वे मेरे उद्देश्य में तिलांजलि अर्पित करेगी जिससे मै प्रेतत्व से अवश्य मुक्ति पाऊँगा। अतएव मुझे शीघ्र मृत्यु के लिए विधाता से विनती करनी चाहिए। (९)

बळात्कारे—बलात्, बल-प्रयोगपूर्वक; घट—जीवन को; वार्त्ता—संवाद, मृत्यु का दुःसंवाद; प्राणेश्वरी—प्राण की ईश्वरी, पत्नी; सुगति—मुक्ति, ता-उसके (उनके); पुणि—फिर; वारिदान—जलदान; नेत्रु—नयनों से; धाता—विधाता को; वन्दिबा—वन्दना करेंगे। (९)

बाहारि पर्णबासुँ चाहिँ बोइले बिभ्रमे सराबु रावण।
बैदेही हरणे जटायु मारणे गरुड़ डरे पक्षिगण।
बेढ़िछन्ति ये। बिकाशि के शिखा के डाके।
वसिण मरुतरथे शरबृष्टि करे युक्त होइ कार्मुके। १०।

सरलार्थ—(पवन के झोंके से काले मेघ चल रहे है, आकाश में इन्द्र-धनुप फैला हुआ है, मोर नाच रहे है, पपीहे 'पीऊ' पीऊ' करके पुकार रहे है और मेघ गर्जनपूर्वक वरस रहे है।) इस समय श्रीराम पत्रकुटीर से निकल आये। उन्होने ऊपर आकाश की ओर देखा एवं मेघ का गर्जन सुनकर भ्रमवशतः कहा, "यह काला मेघ राव (गर्जन) कर रहा है, इसलिए

यह रावण है। (जन्म के समय रावण ने घोर गर्जन किया था। इसलिए उसे 'रावण' नाम दिया गया था।) सीता को चुराकर ले चलते समय रावण ने रक्षाकारी जटायु को मारा। इसी हेतु गरुड़ के भय से पक्षी-समूह रावण से युद्ध करने के लिए उसको घेरे हुए है। उन पक्षियों में से कोई (मयूर) अपनी कलँगी उठाकर सुसज्जित रहा है। कोई (चातक) ललकार रहा है। मेघरूपी रावण पवनरूपी रथ में बैठ इन्द्रधनुष-रूपी कोदण्ड धारणपूर्वक जलधारा रूपी शर बरसा रहा है।" (१०)

पर्णवासुं—पत्रकुटीर से; बिभ्रमे—भ्रमवशतः, सराबु—राव (शब्द) सहित; के—कोई; शिखा—(मयूर की) कलँगी; डाके—ललकारता है; मरुत-रथे—पवनरूपी रथ; कार्मुके—धनुष से। (रूपकालंकार) (१०)

बाळाकु मोर चरमे लुचाइछि न दिशे तेणु शशीमुख।
बिद्युत्कान्ति दिशि न दिशि याउछि अंग प्रचळे तार देख।
बाणी कोकिळ। बहिछि गद्‌गद शोकरु।
बढ़ाइ समर छड़ाइ घेनिबा सार नाहिँ एहा बिचारु। ११।

सरलार्थ—"उस मेघ रूपी रावण ने मेरी प्रियतमा को पीछे की तरफ़ छिपा रखा है। इसलिए मेरी प्रिया का चन्द्र-मुख नही दिखाई पड़ता। (चन्द्र मेघ की आड़ में छिप गया है।) और भी वह देखो, मेरी प्रिया के अंगो की खीचातानी से कभी उसकी विद्युत्-कान्ति दीख रही है तो कभी ओझल हो रही है। फिर वह रो रही है। रोने के कारण उनका स्वर कोयल के स्वर के सदृश गद्‌गद सुनाई पड़ रहा है। सुतरां इस समय उससे युद्ध छेड़कर उससे सीता को छीन लाना सबसे श्रेष्ठ उपाय है।" श्रीराम ऐसा विचार कर रहे थे।— (११)

बाळाकु मोर—मेरी प्रिया को; चरमे—पृष्ठ भाग में, पीछे की ओर; शशीमुख—चन्द्रमुख; विद्युत्कान्ति—बिजली की-सी कान्ति; दिशि न दिशि याउछि—कभी दीख रही है तो कभी ओझल हो रही है; अंगप्रचळे—अंगों की खींचातानी से; बढ़ाइ समर—युद्ध छेड़कर; छड़ाइ—छीन कर, घेनिबा—ग्रहण करना, ले लेना; सार नहीं—इससे श्रेष्ठतर दूसरा उपाय नहीं; एहा बिचारु—यह विचारने, श्रीराम यह विचार कर रहे थे —— (११)

बरषा हेलाणि घन नभे खेळे भाषिले शत्रुघन-ज्येष्ठ।
बिनति हेले उन्नति छाड़ि दूत हुअ बोलिण होइ हृष्ट।
बारिबाह हे! बिनाशिछ दबबिकळ
बनरामर, मुहिँ राम बिनाश कामानळताप चपळ। १२।

सरलार्थ—शत्रुघ्न के बड़े भाई लक्ष्मण ने कहा, "यह रावण नही है। वर्षाऋतु पृथिवी में उपस्थित हुई है। इसलिए मेघ-समूह आकाश में

क्रीड़ा कर रहे है।" यह सुनकर श्रीराम ने अहकार-परिहारपूर्वक सविनय और सहर्ष कहा, "हे जलधर! तुम मेरे दूत बनो। तुमने जलधारा बरसाकर वनवासी राम (मृगों) की दावाग्नि-जनित व्याकुलता को दूर किया है। उसी तरह मै भी एक वनवासी राम हूं और तुम मेरे कामाग्नि-जनित सन्ताप का विनाश करो।" (१२)

वरषा—वर्षाऋतु, बरसात; हेलाणि—हुई है, उपस्थित हुई है; घन—मेघ; नभे—आकाश में; खेळे—खेल रहे है; भाषिले—बोले, कहा; शत्रुघन ज्येष्ठ—शत्रुघ्न के अग्रज लक्ष्मण; विनति—विनयी; उन्नति—उच्चता, अभिमान, अहंकार; छाड़ि—छोड़कर; वारिवाह है, हे जलधर!, हे मेघ!; बिनाशिछ—विनाश किया है, दूर किया है, दब विकळ—दावाग्नि-जनित व्याकुलता को; बनरामर—वनवासी मृग (मृगों) की; राम—मैं भी वनवासी एक राम हूँ, बिनाश—नाश करो, कामानळताप—कामाग्नि-जनित सन्ताप को; चपळ—शीघ्र ही। (१२)

बिरहरे क्षीण भीरुमणि धन न निअ प्रखर पबन।
बज्रपतन स्तनित न करिब प्रबेश हेब सन्निधान।
बारिबाह हे! बन्धु नबानुभबी सत।
बोलिब येमन्ते शिब शिब नित्ये से रूपे मनाइब चित्त। १३।

सरलार्थ—श्रीराम ने आगे मेघ से कहा, "विरह के हेतु मेरी प्रिया अत्यन्त दुबली हो गयी होगी। सुतरां तुम प्रखर पवन को अपने साथ मत लेना, क्योकि वह प्रखर पवन से उड़ जा सकती है। फिर वह अत्यन्त भयशीला है। इसलिए तुम बज्रपात तथा निर्घोष मत करो। क्योंकि वह शब्द सुनने से उनके प्राण निकल जा सकते है। अतएव तुम बिना पवन तथा गर्जन के उनके पास पहुँचोगे। हे जलधर! यह सच है कि मेरी प्रिया नवानुभवी है। (अर्थात् इसके पहले उन्होंने कभी भी विरह-यन्त्रणा का अनुभव नही किया था।) अब तुम इसके लिए उन्हें मनाओगे कि वह हमेशा 'शिव' 'शिव' उच्चारण करे। क्योकि शिव-नाम का उच्चारण करने से उनका कामताप काफ़ी हद तक शान्त हो जाएगा।" (१३)

भीरुमणि—भयालु, डरपोक; न निअ—मत लो; प्रखर—तेज; स्तनित—मेघ का निर्घोष; सन्निधान—निकट; वन्धु—प्रिया; नवानुभवी—विरह-यातना का हाल ही में जिन्हे अनुभव हुआ है; मनाइव—मनाओगे। (१३)

बुझाअ तु परा पराण कान्तर तो हते से त न जीइब।
बररसिका स्नेहाधीना ए शङ्का बहिटि जीबने रहिब।
बारिबाह हे! बचने रचिब एतेक।
विच्छेदे अनेक दिशु तु त एक ए पुणि केउँ कउतुक। १४।

सरलार्थ—"और भी उन्हे यह समझाकर कहो, तुम अपने प्रियतम पति के जीवन-स्वरूप हो। सुतरां तुम्हारी मृत्यु से वे (पतिदेव) जीवित नही रहेंगे। (अर्थात् तुम्हारी मृत्यु से उनकी मृत्यु सुनिश्चित है।)" मेरी प्रिया श्रेष्ठ प्रेमिका एव स्नेहाधीना है। तुमसे उक्त कथन सुनकर वे मेरी मृत्यु की आशका से निश्चय ही जीवित रह जाएँगी। हे जलधर! और भी इतना कहना कि तुम तो एक हो, परन्तु बिछोह मे तुम्हारे कान्त को अनेक होकर कैसे दिखाई पड़ रही हो? यह फिर कौन-सा कौतुक है? (१४)

बुझाअ—समझाओ; बररसिका—श्रेष्ठ प्रेमिका; एतेक—इतना ही; दिशु—दिखाई दे रही हो; केउँ—कौन-सा; कउतुक—कौतुक, खेल, मजाक। (१४)

बुजुँ नयन शयने लीळामान दिशियाइ येणु तोहर।
बेळ तेतेक सुख भोग येतेक कउतुक जातु मातर।
बारिबाह हे! बोल दुःखी सदा नोहिले।
बाहारे तोहर आहा करिबाकु साहा नाहिँ येणु अखिळे। १५।

सरलार्थ—"हे जलधर! फिर कहना—जब तुम्हारे प्रियतम आँखे मूँद सोये रहते है, तव तुम्हारी पुरानी लीलाएँ उन्हे स्वप्न में दिखाई देती हैं। उतने ही समय तक जो कुछ हास्य-विनोद उत्पन्न होता है, उसी से उन्हें कुछ आनन्द-भोग होता है। सुतरा वे सदा दुःखी नही है। अगर सीता जी के मन मे यह आशंका उपजे कि क्या मेरा स्वप्न अकेला ही उन्हें (रामचन्द्र जी को) आनन्द देता होगा? दूसरी ओर से उन्हें भी आनन्द मिल रहा होगा। इसलिए श्रीराम सीता से फिर यह बोलने के लिए मेघ से अनुरोध कर रहे है कि समूचे ब्रह्माण्ड मे तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई 'अहह' कहकर उन्हे सान्त्वना देने के लिए सहाय नही है।" (१५)

बुजुँ—मूँदते; दिशियाइ—दीखती है, दिखाई देती है; येणु—चूँकि; तोहर—तेरी (तुम्हारी); वेळ—समय; तेतेक—उतना ही; येतेक—जितना ही; कउतुक—कौतुक, हास्य—विनोद; जातु—उत्पन्न; मातर—मात्र, केवल, सिर्फ़; अखिळे—समूचे संसार में। (१५)

बेश करें मानसिके केश बान्धुँ अळता लेखन पर्य्यन्ते।
बिचार मानस मुँ प्रियार दास सेबा बिघ्न नोहे येमन्ते।
बारिबाह हे! बिस्मरिब नाहिँ ए बाणी।
बर्त्तन रतिरतन लेखि देब भेटे तरुणी नोहि ऋणी। १६।

सरलार्थ—"मैं प्रिया का दास हूँ। यह विचार करके कि जिस तरह प्रिया की सेवा में किसी प्रकार की त्रुटी न हो, बिछोह के दिन से जूड़ा

कन्दर्प—ज्वर से रक्षा पाने के लिए श्रीरामचन्द्र जी सीता जी के मुख-चन्द्र-दर्शन रूपी क्वाथ तथा अधर-सूर्य रूपी उदय-भास्कर-रस की वटिकाओं का पान-सेवन चाहते हैं।); यहुँ—जव; बन्धुकु—प्रिया सीता को (से) एते—इतनी ही; घेनाइब—मनमानी बातें बोलना; उदयोग—उद्योग, प्रयत्न; ये मन्ते—जिस प्रकार, जैसे; त्वरिते—शीघ्र ही। (२०)

बल्लभी बोलि मोर ताकु चिह्निब ये शय्या करिथिब धरा।
बिशीर्ण शाणबसा रत्नगण्ठिरु फुटि रतन हेला परा।
बारिबाह हे ! बसिथिब अबा देखिब।
बेणी पृष्ठभागे मन्त्रधूळिपात स्थगित नाग प्राय थिब। २१।

सरलार्थ—"हे मेघ ! मेरी प्रिया का मैं तुम्हें यह परिचय दे रहा हूँ। सान से शोधा हुआ तथा गाँठ से गिरा हुआ रत्न भूमिपर पड़कर जैसे अत्यन्त क्षीण तथा उज्ज्वल दीखता है, उसी तरह जो (स्त्री) भूमि पर सोयी हुई क्षीण तथा उज्ज्वल दीख रही होगी, उसे मेरी प्रियतमा पहचानो; अथवा अत्यन्त चिन्ता-मग्न होकर जो बैठी होगी एवं इसी हेतु मन्त्र-धूलि से वशीभूत काले नाग की तरह जिसकी वेणी पीठ पर स्थिर होकर पड़ी रही होगी, उसे तुम मेरी प्रिया जानो। (२१)

बल्लभी—प्रिया, पत्नी; मोर—मेरी; ताकु—उसे; चिह्निव—पहचानोगे; धरा—भूमि; बिशीर्ण—विशेष रूप से क्षीण; शाणबसा—सान रखा हुआ, सान से शोधा हुआ; गण्ठिरु—गाँठ से; परा—(पराय, प्राय)—तरह, बसिथिब—बैठी होगी; अबा—अथवा; स्थगित—स्थिर। (२१)

बार्त्ता मोर कहि ता बार्त्ता आणिले भेट हेला दिनु प्रियार।
बड़ाइ तो रखि घनकेशी बोलि नित्ये डाकिबि सत्य मोर।
बोलुँ बारिद। बायुबळे चळुँ दक्षिणे।
बिचारि गला त तृपति बाइशि पदरे उपइन्द्र भणे। २२।

सरलार्थ—"हे जलधर ! तुम प्रिया से मेरी वार्त्ता कहकर उनकी वार्त्ता लाओगे तो उनसे मेरी भेटके दिन से मैं तुम्हारी सम्मान-रक्षा करके उन्हें नित्य 'घनकेशी' कहकर सम्बोधन करूँगा। यह मेरा सत्य है।" श्रीराम के ऐसा बोलते मेघ पवन के द्वारा सचालित होकर दक्षिण दिशा की ओर चलने लगा। यह सोचकर कि मेरी कथानुसार पवन ने काम किया, श्रीरामचन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उपेन्द्रभञ्ज ने बाइस पदों में इस छान्द की रचना की। (२२)

बड़ाइ—सम्मान; घनकेशी—मेघ के वर्ण के समान नीले केशों वाली (सीता); डाकिबि—सम्बोधन करूँगा, पुकारूँगा; बारिद—मेघ; तृपति—(तृप्ति)—सन्तोष; उपइन्द्र—कवि उपेन्द्र भञ्ज; भणे—वर्णना की, रचना की। (२२)

॥ इति ऊनत्रिश छान्द ॥

त्रिंश छान्द

राग—बङ्गळाश्री । चक्रसिंहावलोकन

बरषाकाळ अन्त करे शरद बहि शिब आड़म्बर ।
बरधुत घनाघन खण्डकृते केशरी सरि आबर । १ ।

सरलार्थ—शिवजी 'मृत्युञ्जय' कहलाते है, क्योंकि उन्होंने मृत्यु का विनाश करके उसपर विजय पाई थी । वैसे शरत्काल ने वर्षाकाल का अन्त (विनाश) करके शिवजी का आड़म्बर प्रकाश किया । फिर सिंह मस्त हाथी के बढ़नेवाले गर्व का खण्डन करता है । वैसे यह शरत्काल निविड़ मेघ-समूह को छिन्न-भिन्न करके उसी सिंह के समान हुआ । (१)

आड़म्बर—घमंड, गर्व, आटोप; बरधुत—बर्द्धुत—बढ़नेवाले; घनाघन—मस्त हाथी, बरसनेवाले घने बादलों का समूह; केशरी—सिंह; सरि—सदृश, समान; आबर और भी, फिर; (श्लेष) । (१)

बर पराये नबकन्यालिङ्गने बढ़ाइ शोभा प्रबर ।
बरणकृत रजकप्रभाबकु निर्मळकारी अम्बर । २ ।

सरलार्थ—जैसे वर नव-विवाहिता कन्या के आलिंगन से श्रेष्ठ शोभा को बढ़ाता है, उसी तरह शरत्काल ने कन्या मास के संयोग से अपनी प्रधान शोभा की वृद्धि की । और भी उस शरत्काल ने धोबी की शक्ति का ग्रहण किया । धोबी अम्बर (वस्त्रों) को निर्मल कर देता है । उसी प्रकार इस शरत्काल ने अम्बर (आकाश) को निर्मल कर दिया । (२)

वर—दूल्हा; परा—सदृश; शोभा प्रवर—शोभा श्रेष्ठ, वरणकृत—वरण किया, ग्रहण किया; रजक प्रभावकु—धोबी की शक्ति को; निर्मळकारी—साफ़ करने वाला; अम्बर—वस्त्र, आकाश; (श्लेष) । (२)

बरषण शरे कृष्णसार हते यथा लुब्धक-शबर ।
बरधन लीळा पुष्करे तरणि कराइ से कि धीबर । ३ ।

सरलार्थ—पुनश्च वह शरत्काल लोभी शवर के सदृश हुआ । क्योंकि शवर जैसे कृष्णसार मृगों को मारने के लिए शरवृष्टि करता है, उसी तरह इस शरत् ऋतु ने जल बरसानेवाले मेघ की कृष्णवर्ण मज्जा का नाश किया । (अर्थात् शरत्कालीन आकाश निर्मल रहता है । इसलिए यह शुक्लवर्ण दीखता है ।) फिर अनुमान किया जाता है—यह शरत्काल केवट है क्या ? क्योंकि केवट जैसे जल में नौका का क्रीड़ावर्द्धन करता है, वैसे इस ऋतु ने आकाश में सूर्य की लीला का वर्द्धन किया । (३)

वरषण शरे—शरवृष्टि द्वारा, जल वरसानेवाले मेघ के; कृष्णसार—मृगविशेष, कृष्ण—काला, सार—मज्जा; यथा—जैसे, लुब्धक—लोभी (शवर); पुष्करे—जल में, आकाश में; तरणि (णी)-नौका, सूर्य; से—वह (शरत् काल); धीवर—केवट। (उपमा, उत्प्रेक्षा तथा श्लेष)। (३)

बर उज्ज्वळ चन्द्र शिरो जन्माइ य़ेमन्त सरितबर।
बरग बरग सुमना उत्फुल्लकारके कि पीताम्बर। ४ ।

सरलार्थ—समुद्र ने अपने गर्भ से अत्युज्ज्वल चन्द्र तथा लक्ष्मी को उत्पन्न किया था। उसी तरह शरत्काल ने चन्द्र की अतिशय उज्ज्वल शोभा (अथवा अत्युज्ज्वल कर्पूर की सी शोभा) को उत्पन्न किया। सुतरां शरत्काल समुद्रतुल्य हुआ। पीताम्बर श्रीकृष्ण ने बहुत गोपांगनाओं तथा देवांगनाओं के हृदयों को उत्पुल्ल किया था। उसी तरह शरत्काल ने भिन्न-भिन्न जातियों के फूलों को विकसित किया। अतएव यह काल श्रीकृष्ण के सदृश हुआ। (४)

वर उज्ज्वळ—अति उज्ज्वल; चन्द्र—चन्द्रमा, कर्पूर; शिरी (श्री)—लक्ष्मी, शोभा य़ेमन्त—जैसे; सरितवर—समुद्र; वरग वरग—(वर्ग वर्ग)—भिन्न-भिन्न जातियों के; सुमना—रमणियाँ; उत्फुल्लकारके—प्रफुल्ल करनेवाला, पीताम्बर—श्रीकृष्ण; (श्लेष, उत्प्रेक्षा)। (४)

बरहे मळिन शिखीकि कराइ हिमन्त अनुभाबर।
बरणि भुबन निर्मळ रचने तुळ से पद्मभबर। ५ ।

सरलार्थ—हेमन्तकाल अग्नि को शिखा में मलिन करता है। उसी तरह इस शरत्काल ने मयूर को पूँछ में मलिन किया। (अर्थात् जैसे हेमन्तकाल मे अग्नि-शिखा मलिन हो जाती है, वैसे शरत्काल में मोर पूँछ उठाकर नही नाचते।) सुतरां शरत्काल ने हेमन्त ऋतु के भाव का अनुसरण किया। ब्रह्मा ससार की निर्मल रूप से रचना करते है। उसी तरह शरत्काल ने जल की निर्मलता की रचना की। (अर्थात् शरत् ऋतु मे जल निर्मल हुआ।) सुतरां यह वर्णित किया गया कि शरत्काल ब्रह्मातुल्य है। (५)

वरहे—(वर्हे) शिखा में, पूँछ में; शिखी—मयूर, अग्नि; हिमन्त—हेमन्त ऋतु, अनुभाव—भाव का अनुसरण; वरणि—वर्णित; भुवन—संसार, जल; तुळ—तुल्य, सदृश; पद्मभवर—ब्रह्मा के। (५)

बरजबरद राम ए समये बिळम्बरु सुग्रीबर।
बरगि देइ सत्वरे आण य़ाइ गमन्ते सीतादेबर। ६ ।
बरछाघातिकि परि ब्याकुळरे तुलन्ति गिरिबिबर।
बरबरनाकु खोजन्ति पुछन्ति अछन्ति य़ेते स्थाबर। ७ ।

सरलार्थ—इस समय दूध देनेवाले गोपाल के वरदाता श्रीराम ने सुग्रीव के आगमन का विलम्ब देखकर उन्हें बुला लाने के लिए लक्ष्मण को भेजा। उनके चले जाने के बाद रामचन्द्र बरछे से आहत व्यक्ति की तरह व्याकुल होकर पर्वत की गुफाओं में घूमते हुए गौरांगी सीता को ढूँढने लगे और तत्रस्थ वृक्ष-पर्वतों आदि स्थावरों से सीता का सन्देश पूछने लगे। (६, ७)

बरज—गोपाल; बरज वरद—गोपाल के वरदाता रामचन्द्र; सीतादेबर—लक्ष्मण; बरछाघातिक-बरछे से घायल व्यक्ति; तुलन्ति—ढूँढते है; गिरिबिबर—पर्वत की गुफाओं में; बर बरना—वरवर्णा—श्रेष्ठ (गौर) वर्णवाली; पुच्छन्ति—पूछते है; य़ेते—जितने; स्थावर—वृक्ष-पर्वत आदि अचल वस्तु। (६, ७)

बरद होइबा देखिथिले कह एमन्त सुन्दरीबर।
बरज बरज य़हिँ शोभाबती नाहिँ से सुरनबर। ८।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने पूछा, "हे स्थावरो! देव-भुवन या स्वर्ग में बहुत सुन्दरी रमणियाँ है। फिर भी उनमें से कोई एक भी मेरी प्रिया के सहित तुलनीया नही। (अर्थात् मेरी पत्नी के समान सुन्दरी रमणी स्वर्गलोक मे भी नही है।) ऐसी सुन्दरी-श्रेष्ठ रमणी को तुम लोगो में से क्या किसी ने कही देखा है? यदि तुम लोगों मे से कोई यह बता दे कि वह कहाॅ है, तो मैं उसे अपना चाहा हुआ वर दान करूँगा। (८)

वरद—वरदायक; एमन्त ऐसी; सुन्दरीवर—सुन्दरी श्रेष्ठ; बरज बरज—वृन्द-वृन्द, बहुसंख्यक; य़हिँ—जहाॅ, जिस स्वर्ग में; सुरनबर—देव भुवन मे, स्वर्ग मे। (८)

बरनीय कि बहुमूल्य दुकूळ बन्धु अन्य स्तिरीबर।
बरर्बाणिनी हरिद्रा बोलाइला छुइँ याहा कळेबर। ९।

सरलार्थ—दूसरी नारियाॅ बहुमूल्य रेशमी वस्त्रो से सुशोभित होकर सुन्दरी-श्रेष्ठ कहलाती है। परन्तु मेरी प्रिया ऐसे मूल्यवान् वस्त्रों से सुन्दरी के रूप में वर्णनीया नही है। वास्तव मे वसन-भूषणों से भूषिता न होते समय वह अपनी स्वाभाविक शारीरिक शोभा से सुन्दरी-शिरोमणि कहलाती है। जिन नारीवर के शरीर को छूकर हलदी श्रेष्ठवर्णधारिणी कहलायी, उनकी शोभा की बात मैं कहाँ तक कह सकूँ? (९)

दुकूळ—रेशमी वस्त्र; बन्धु—प्रिया सीता; अन्य—दूसरी, स्तिरीवर—स्त्री श्रेष्ठ; हरिद्रा—हलदी; छुइँ—छूकर; य़ाहा—जिसका, जिनका; कळेबर—शरीर। (९)

बरने निऊन हेमभूषामान नुहइ क्षीण पीबर।
बर चीन जड़ि अङ्गे ब्यक्त धड़ि थिबारु पीत अम्बर। १०।

सरलार्थ—उनके शरीर पर भूषित हुए सुवर्ण आभूपण सब उनके शरीर की गौर कान्ति से न्यून या निष्प्रभ हो जाते है। और भी मेरी

प्रिया कृशांगी नहीं अथवा स्थूलांगी नही। (अर्थात् उनका शरीर मँझला-सा है।) अत्यन्त सूक्ष्म पीला वस्त्र उनके शरीर के वर्ण से ऐसा जड़ित रहता है कि केवल पाड़ से ही यह मालूम पड़ता है कि वह वस्त्र है। (अर्थात् पाड़ न होता तो यह मालूम न पडता कि वह वस्त्र है।) (१०)

वरने—शरीर के गौरवर्ण से; निऊन—न्यून, निष्प्रभ; हेमभूषामान—सुवर्ण आभूषण सब; क्षीण—कृश; पीवर—स्थूल, मोटा; बरचीन—अति सूक्ष्म; व्यक्त—प्रकाशित, मालूम पड़ता है; धड़ि—पाड़; थिवारु—होने से; पीत अम्बर—पीत वस्त्र। (१०)

बरटा गतिरे शरण पशिछि से लावण्य सरोवर।
बरनितम्बा बदन तामरस विकाश रात्रिदिवर।११।

सरलार्थ—मेरी प्रिया एक लावण्य-सरोवर है। सुतरां हंसी ने उनकी गति में शरण ली है। (अर्थात् सीता हंसगमना है।) पद्म सरोवर में केवल दिन मे ही विकसित होता है। परन्तु इन वरनितम्वा के शरीर-सरोवर मे उनका मुख-पद्म दिन रात हमेशा खिलता रहता है। (अर्थात् सीतादेवी सदा प्रसन्नवदना हैं।) (११)

वरटा—हंसी; लावण्य—सरोवर—सौन्दर्य—पुष्करिणी; वरनितम्वा—श्रेष्ठ कटि है जिनका, सीता; वदन-तामरस—मुख-कमल; रात्रि—दिवर—रातदिन; (व्यतिरेक)। (११)

तुलनीयः— सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलिन वह, निसि-दिन यह विगसाय॥

बरधमान हेउथाइ न तुटि सर्बदा प्रेमसम्बर।
बरतमानरे ताहा आस्वादनविहीने आन तूवर।१२।

सरलार्थ—उस लावण्य-सरसी का प्रेम-जल कभी भी घटता नही, वरना हमेशा वढता रहता है। अव उस प्रेम-जल के आस्वादन के विना दूसरे भक्ष्य पदार्थ मुझे कसैले लगते है। (१२)

न तुटि—न घटकर; प्रेम सम्वर—प्रेम-जल; आन—दूसरे भक्ष्य पदार्थ; तूवर—कसैला। (१२)

बरतिवि केहि ता बिच्छेदे मुहिँ हेउअछि हरबर।
बरळ समान घात करुअछि फुलशरे रतिबर।१३।

सरलार्थ—उनके विरह मे मैं किस प्रकार जीवन धारण करूँ? यह सोचकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। ऐसी हालत में भी कन्दर्प अपने फूल-शरों से वर्रे की तरह मुझे घायल कर रहा है। (१३)

वरतिवि—जीवन धारण करूँ; केहि—किस प्रकार; हरवर—व्याकुल, परेशान; बरळ—बर्रे, भिड़; रतिवर—कन्दर्प। (१३)

बरतपाळना मो एक लळना हेलादिनु स्वयम्बर ।
बरतन भाबरतन मुँ दास रचन अर्थे कबर । १४ ।

सरलार्थ—जबसे मेरी प्रिया ने स्वयवर सभा में मेरा वरण कर लिया है, तब से मैंने एक पत्नी-व्रत का पालन किया है। (अर्थात् उनसे मेरे विवाह के दिन से मैने दूसरी स्त्री के सहित सभोग नही किया है।) उनके केश-विन्यासार्थ मै एक दास के रूप में नियुक्त होता तथा उनसे भावरूपी रत्न वेतन के रूप मे पाता। (१४)

बरत-पाळना—व्रत-पालन; एक लळना—एक ही पत्नी; बरतन—(वर्त्तन)—वेतन; भावरतन—प्रेम-रत्न; रचन अर्थे कबर—केशविन्यास के लिए, जूड़ा बाँधने के लिए। (१४)

बरती बाळामूरति नेत्र रोगे जीबन से मो जीबर ।
बरहिण - पुच्छ - तुच्छक - कुन्तळा लभ्ये दिअन्ते के बर । १५ ।

सरलार्थ—मेरी बाला सीता की मूर्त्ति मेरे नेत्र-रोग के लिए महौषधि अर्थात् अञ्जन-स्वरूपा है। फिर वे मेरे जीवन के जीवन हैं। सीता के केश नीलापन में मोर की पूँछ की निन्दा करते हैं। अहह! ऐसी सुकेशी सीता का लाभ करने के लिए मुझे कोई वरदान करता भला।(१५)

बरती—नेत्राञ्जन; बरहिण-पुच्छ-तुच्छक-कुन्तळा—अपने बालों के नीलापन से मोर की पूँछ की निन्दा करनेवाली; दिअन्ते—देते; के—कोई। (१५)

बर एते देह मने रहु मन ग्रेमन्त अबयबर ।
बरर्वणिनी पाशरे परबेश हुअन्ति एक लबर । १६ ।

सरलार्थ—मुझे कोई ऐसा वरदान करता कि जिस तरह देह में मन रहता है, उसी तरह तुम्हारे मन में यह देह रहे, तो बहुत अच्छा होता। तब मन के स्वेच्छागामित्व के कारण मैं एक ही क्षण मे उन्ही गौरांगी सीता के पास पहुँच जाता। (१६)

वरर्वणिनी—श्रेष्ठ वर्णवाली; एक लबर—एक ही क्षण में। (१६)

बरही रूप बिरह हृदबने जाळिबा कामदेबर ।
बरबि आहा बाणी भाबजळकु लिभान्ता कान्ता जबर । १७ ।

सरलार्थ—प्रिया के सहित मेरा मिलन होने पर वह जब देखतीं कि कन्दर्प मेरे हृदय-वन में अग्नि के रूप मे विरह को जला रहा है, तब वह शीघ्र ही 'अहह' शब्द उच्चारणपूर्वक भावरूपी जल बरसाकर उस अग्नि को बुझा देती। (१७)

बरही—(वर्हो)—अग्नि; भाव—जल—अनुरागरूपी जल; लिभान्ता—बुझातीं; कान्ता—प्रिया; जबर—शीघ्र ही। (१७)

बरतिक आदि पक्षी अछ पक्ष देले उड़न्ति दिबर।
बरष मध्ये लुचाइथिब केहि मिळन्ति बन्धु-ठाबर। १८।

सरलार्थ—हे बटेर आदि पक्षियो ! तुम लोगों में से कोई मुझे अपने पंख दे देता, तो मै आकाश में उड़ जाता एवं किसी ने जम्बुद्वीप में कहीं भी मेरी प्रिया को छिपा रखा हो, तो उनके सहित अवश्य ही मिल जाता। (१८)

वरतिक—(वर्त्तिक)—बटेर; उड़न्ति—उड़ता; दिबर— आकाश में; बरष मध्ये—जम्बु द्वीप में; लुचाइथिब—छिपा रखा होगा; केहि—किसीने; मिळन्ति—मिलता; बन्धु ठाबर—प्रिया के पास, प्रिया सहित। (१८)

बरआरोहा तनु भिन्न दरेटि हर हेले दिगम्बर।
बरषक क्षण हेब ताहा भिन्ने बड़ निकि मानबर। १९।

सरलार्थ—इस डर से कि कही परमासुन्दरी पार्वती का अंग अपने शरीर से एक ही क्षण के लिए भिन्न न हो जाय, महादेव शिव जी भी हमेशा नंगे रहते है और अपने आधे शरीर मे पार्वती को धारण करते है। सुतरां वैसी एक स्त्री के बिछोह में एक ही क्षण एक वर्ष के समान प्रतीत होना क्या एक मनुष्य के लिए बड़ी बात है ? (अर्थात् बड़ी बात नही अथवा कोई आश्चर्य नही है।) (१९)

बरआरोहा—परमासुन्दरी; दरेटि—डर से; दिगम्बर—उलग्न, नंगे; ताहा भिन्ने—उनके विरह में। (१९)

बरति प्रआद्ये मो दुर्द्दशा रति बिच्छेदे होइ सम्बर।
बरजन किपाँ अतनु हेबार कला जड़ बेदबर। २०।

सरलार्थ—शम्बरासुर कन्दर्प से उसकी प्रिया रति का बिछोह संघटित करने के लिए प्रवृत्त हुआ था। उसी तरह मेरी दुर्दशा मुझसे मेरी प्रिया का बिछोह संघटित करने के लिए प्रवृत्त हुई है। मूर्ख विधाता ने जब ऐसा किया, तो मुझे उसने कन्दर्प के समान देहहीन क्यों नही किया ? क्योकि कन्दर्प की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी रति को ले लेने के लिए शम्बरासुर ने जरा भी कष्ट अनुभव नहीं किया। परन्तु मेरे जीते ही एक दूसरे (राक्षस) ने मेरी पत्नी को चुरा लिया। इसलिए मेरे मन में बड़ी व्यथा हो रही है। (२०)

बरति 'प्र' आद्ये—'र्वात्त' शब्द के पहले 'प्र' = प्रर्वात्त—जिसका अर्थ है प्रवृत्त होना; शम्बर—शम्बरासुर; बरजन—(बर्जन) छोड़ना, न करना; किपाँ—किसलिए; अतनु—बिना शरीर का, देहहीन; जड़—मूर्ख; बेदबर—ब्रह्मा, विधाता। (२०)

बरअंगी-अंगे मिशन्ति पुणि ता करि भावे स्वभावर।
बरत कि करि काहिँ झासिथिलि अजणा से पूरबर।२१।

सरलार्थ—मैं यह जान नहीं पाता कि पूर्व जन्म में कौन-सा व्रता-चरण करके अथवा किस तीर्थ जल में अपने को बलि चढ़ाकर मैं उन सुन्दरी के शरीर से मिला था। अब स्वभाव (अभ्यास)-वश वही बात मैं सोच रहा हूँ। किसी भी प्रकार यदि मैं वह उपाय जान पाता, तो उसी का साधन-पूर्वक उन श्रेष्ठ-अंगवाली सुन्दरी के साथ मैं मिल जाता। (२१)

बरअंगी—श्रेष्ठ अंगवाली, सुन्दरी; ता करि—वही उपाय करके; भावे—सोचता हूँ; बरत—व्रत; काहिँ—कहीं; झासिथिलि[२], पूरबर—पूर्वका। (२१)

बर शब्द पाद आद्य प्रान्त छान्द बुधरञ्जन भावर।
बरते चक्रसिंहावलोके कहे उपइन्द्र बीरबर।२२।

सरलार्थ—इस छान्द के प्रत्येक पाद के आद्य तथा प्रान्त में 'बर' शब्द सिद्ध हुआ है। फिर भाषा में यह बुध (पण्डित) जनों का आनन्ददायक है। विशेषत: यह छान्द चक्रसिंहावलोकन छन्द मे रचित किया गया है। 'बीरबर' उपाधिधारी उपेन्द्र नामक कवि ने यह छान्द कहा है। (२२)

बुधरञ्जनकारी—भाव में पण्डितों का आनन्ददायक; बरते—प्रवृत्त होना, रचित हुआ है। (२२)

॥ इति त्रिश छान्द ॥

एकत्रिंश छान्द

राग—बराड़ि । आपाढ़शुक्ळ बाणी

बके बसिथिला ध्रुब उपरे । बिष्णुपदकु भजिला उत्तारे ।
बळक्ष पक्षकु अगरे बहि । बहन से तम नाशन बिहि ।
बकता ए गिर । बिश्राम बार्त्ता कहिबा सुन्दर । १ ।

सरलार्थ—इस तरह व्याकुल-चित्त श्रीरामचन्द्र जी सीता जी का अन्वेषणपूर्वक वृक्षलताओं तथा पशुपक्षियों से पूछते हुए इधर-उधर घूम रहे थे । इस समय एक बगुला आकाश पर उड़ने के बाद एक ठूँठ पर आ बैठा हुआ था । वह अपने शरीर मे सफेद पर धारण किये हुए था और अपने परों की सफेदी से शीघ्र ही आसपास के अन्धकार का नाश कर रहा था । श्रीरामचन्द्र जी को देखकर उसने यह वचन कहा, "हे सुन्दर ! अगर आप यहीं कुछ समय के लिए विश्राम करे, तो मै आपसे आपकी प्रिया का सन्देश अवश्य कहूँगा । (१)

बके—एक बगुला; ध्रुव—ठूँठ; बिष्णुपदकु—आकाश को; भजिला उतारे—उड़ने के बाद; बळक्षपक्ष—सफेद पंख, सफ़ेद पर; बहन—शीघ्र ही; बकता ए गिर—यह वचन कहा; बार्त्ता—प्रिया की खबर; सुन्दर—हे सुन्दर श्रीरामचन्द्र ! (१)

बधुँ काम धर्मे अछि जीबने । बधू कामबशे भ्रम ए बने ।
बाउनुअछ ग्रेउँ रमणीये । बिशेष शोभा तहुँ रमणीए ।
बिंशबाहु रथे । बिलोकिछि गला दक्षिण-पथे । २ ।

सरलार्थ—जिस वधू की प्राप्ति-कामना में आप इस वन में इधर उधर घूम रहे है, आपसे विरह के कारण कन्दर्प उसका वध करने की चेष्टा में रहा है । फिर भी वह वधू (सीता) अपने पातिव्रत्य रूपी धर्म-बल से जीवित रही है । अपनी प्रिया का सौन्दर्य-गुण आप जैसा बखानकर विलाप कर रहे है, ततोऽधिक रूपवती एक रमणी को रथ में बैठाये दक्षिण दिशा की ओर ले जाने वाले बीस भुजाओं वाले रावण को मैंने देखा है । (२)

बधुँ काम—वधरत कन्दर्प से; धर्मे—पातिव्रत्यरूपी धर्मबल से; बधू काम (बशे)—पत्नी की प्राप्ति-कामना से; (यमक); भ्रम ए बने—इस वन में घूम रहे हो; बाउनुअछ—बखानकर विलापकर रहे हो; (ये उँ) रमणीये—जिस सौन्दर्य को; तहुँ—उससे; रमणीए—एक रमणी; बिंशबाहु—बीस भुजाओं वाला रावण; बिलोकिछि—मैंने देखा है; गला—गया । (२)

विषप्रसून इन्दु निति देखें। बिलक्ष प्रसन्न न थिला मुखे।
बाष्प हेउछि नयनु जनिता। बोलन्ति मोन उद्‌गारे मुकुता।
बड़ ऊणा सेहि। वारिरे लुचे धरि भक्षेँ मुहिँ। ३।

सरलार्थ—(साधारणतया सुन्दरी रमणी के मुख की कमल और चन्द्रमा से तुलना की जाती है।) हर रोज (दिन में) कमल तथा (रात में) चन्द्र को मै देखता हूँ। परन्तु वे दोनों उस रमणी के प्रसन्नताहीन (विपण्ण) मुख से भी तुलनीय नही है। (फिर प्रसन्न वदन से तुलनीय होने की बात तो दूर रही।) उनके नयनों से आँसू की बूँदें गिर रही थी। कविजन कहते हैं मीन मोती उगलते है और नयनरूपी मीन आँसू-रूपी मोती उगलते है। परन्तु सीता के नयनों से जो अश्रुविन्दु गिर रहे हैं, उन अश्रुविन्दुओ के आगे मीनों के मोती उगलने का दृश्य भी बहुत न्यून (तुच्छ) है। इस हेतु मीन मारे लज्जा के पानी में छिप जाते हैं और मैं उन्हें ढूंढ पकड़कर भोजन करता हूँ। (३)

विषप्रसून—कमल, पद्म; इन्दु—चन्द्रमा; विलक्ष्य—तुलनीय नहीं हैं; प्रसन्न न थिला मुखे—प्रसन्नताहीन (विषण्ण) मुख से; बाष्प—अश्रुविन्दु; जनिता—जात, उत्पन्न हो रहे हैं; उद्‌गारे—उगलते है; मुकुता—मुक्ता; मोती; ऊणा—न्यून, तुच्छ; बारिरे—जलमें; लुचे—छिपते है। (व्यतिरेक) (३)

बास चहटि अङ्ग याउथिला। वेढ़िथिले रथे भ्रमरमाळा।
बर्ण झटक बिजुळिरे नाहिँ। बारिद निकटे देखिछि मुहिँ।
बीणा कि मधुर। बाहारुथिला ग्रेउँ रामस्वर। ४।

सरलार्थ—उस रमणी के शरीर से सुगन्ध महक कर पसर रही थी। इसलिए रथ के चारो ओर भौंरों की पंक्तियाँ घिर रही थी। (इससे सीता का पद्मिनी नारी का लक्षण सूचित होता है।) रमणी के गौर वर्ण की चमक बिजली में भी नही। (आप पूछ सकते है, "तूने कैसे जाना कि उसके वर्ण की चमक बिजली मे भी नही?") वारिश के समय बादल के निकट जाकर मैने बिजली देखी है। फिर उसके कण्ठ से जो 'राम' 'राम' स्वर निकल रहा था, उसके आगे वीणा का स्वर क्या मधुर है? (अर्थात् सीता का 'राम' नाम का उच्चारण वीणा की मधुर-ध्वनि से कही अधिक मधुर मालूम पड़ता था।) (४)

बास—सुगन्ध; चहटि—महक कर, पसर कर; वर्णझटक—वर्ण की चमक; बारिद—बादल; बाहारुथिला—निकल रहा था; ये॑उँ—जी। (व्यतिरेक) (४)

बोलिब तु बीणा शुणिलु काहुँ। बाजइ सपतस्वररे सेहु।
बर्षाभू धबत मयूर षड्‌ज। वनप्रियरे पञ्चम सहज।
वाजुछि मो कर्णे। बिधिरे एहिपरि आउमाने। ५।

सरलार्थ—आप बोल सकते, "तू तो एक मामूली पक्षी है, तूने वीणा का स्वर कहाँ से सुना ?" परन्तु मैने सुना है, वीणा सप्तस्वरों मे बजती है। मेंढ़क के धैवत स्वर, मयूर के षड़ज और कोयल के पञ्चम स्वर है। इस विधान के अनुसार और सब स्वर भी सहज (स्वाभाविक) हैं। (अर्थात् गाय के ऋषभ स्वर, वकरे के गान्धार स्वर, क्रौञ्च के मध्यम स्वर और हाथी के निषाद स्वर है।) इस प्रकार मैंने सारे सात स्वर सुने है। परन्तु उस रमणी के कण्ठस्वर की मधुरता इन्हीं सात स्वरों मे से किसी एक मे तो बिल्कुल नही है या न एक साथ सात स्वर रखनेवाली किसी वीणा में भी है। (५)

काहुँ—कहाँ से; सेहु—वही; वर्षाभू—मेंढ़क; मयूर—मोर; धैवत—मेंढ़क का स्वर; षड़्ज—मयूर का स्वर; वनप्रिय—कोयल; पञ्चम—कोयल का स्वर।

आउमाने—और सब स्वर (जैसे गाय के ऋषभ, वकरे के गान्धार, क्रौञ्च के मध्यम और हाथी के निषाद—स्वर है।)

वि. द्र. :—किसी संगीत—यन्त्र की प्रारम्भिक शिक्षण—ध्वनियाँ स, रि, ग, म, प, ध, नि—ये सात ध्वनियाँ हैं, जो उपर्युक्त प्राणियो (क्रमशः मयूर, गाय, वकरे, क्रौञ्च, पिक, मेंढ़क और हाथी) की बोलियो पर स्थिर की गयी है। (५)

बार्त्ता शुणि वर याचुँ कृपाळु। बसारे वर्षारे आहार मिळु।
बळाका भाषुँ आज्ञा देले हेउ। बक्री चतुरमास आणिदेउ।
बल्लभी अच्छिष्ट। बोलु बोइले पान करि ओष्ठ। ६।

सरलार्थ—बगले से सीता का संवाद सुनकर जब कृपालु श्रीराम ने उससे वरदान माँगने को कहा, तो उसने कहा, "बरसात मे मेरे अपने घोसले में रहते हुए भी मुझे खाना मिल जाय। (अर्थात् बरसात में खाना ढूँढने के लिए मुझे कही बाहर जाना न पड़े।)" बगले की बात सुनकर श्रीराम ने आज्ञा दी, "अच्छा, ऐसा ही हो, तुम्हारी पत्नी बगली वर्षा ऋतु के चार महीनो तक तुम्हे खाना ला दे।" बगले ने हिचकिचा कर कहा, "वह तो तभी पत्नी की जूठन होगी। (उसे मैं कैसे खाऊँ ?)" यह सुनकर श्रीराम ने कहा, "सभोग-काल में पुरुष लोग तो स्त्रियों का ओष्ठ-पान (अधर रस का पान) करते है। इसमे जब दोष नही है, तब पत्नी की जूठन खाना तुम्हारे लिए कोई दोष भी नही होगा। (६)

सूचना—स्त्री-सम्भोग के समय पुरुष नारी का ओष्ठ-पान करता है। यह कोई दोष नही। इसके बारे मे मनु कहते हैं,

"मक्षिका सन्ततेर्धारा मार्जारी ब्रह्मविन्दवः।
वालवामामुखोच्छिष्ट न दोषो मनुरब्रवीत्॥"

याचुँ—याचना करते, माँगने के लिए कहते; बसारे—घोंसले में; वर्षारे—वर्षा ऋतु में; आहार—खाना, मिळु—मिले; बळाका—बगला; भाषुँ—बोलते; बकी—बगली; चतुरमास—चार महीनोवाली बरसात; बल्लभी—पत्नी; उच्छिष्ट—जूठन। (६)

बुलि पुणि बने बारता रता । बिकाश काशहासिता हा सीता ।
बक्षपल्यंक मो तो शयनकु । ब्यथा देला कि कोमळ अङ्गकु ।
बिदूर ए दोषुँ । बसुनाहुँ कोळे दिशे त दिशु । ७ ।

सरलार्थ—बगले को वरदान करने के बाद श्रीरामचन्द्र फिर वन में घूमते हुए सीता जी की सन्देश-प्राप्ति में प्रयत्नशील रहे। उन्होंने खेद-भरे वचन से कहा, "अयि विकसित काशफूल के समान हँसनेवाली सीते ! मेरे कठिन वक्षरूपी पलंग पर सोने से क्या तुम्हारे कोमल अगों को व्यथा लगती थी ? शायद मेरे इसी दोष के कारण तुम मुझसे अलग हो गई । तुम भले ही दिशाओ मे दीख रही हो, परन्तु मेरी गोद मे क्यो नही बैठती हो ? (७)

बुलि—घूमते हुए; वारतारता—सन्देश-प्राप्ति के लिए यत्नवान्; बिकाश काश-हासिता—विगसे हुए काश फूल के समान सफ़ेद हंसी प्रकाश करने वाली; बिदूर—विशेष रूप से दूर, अलग; कोळे—गोद मे; दिशे—दिशाओ मे; दिशु—दीखती हो। (७)

बोळि होइ एबे बहु चन्दन । बिञ्चिथिबि तहिँ कर्पूर-चूर्ण ।
बिगुणा न घेनिबि देबु लेखि । बेळे श्रीहस्तरे आजन्म सुखि ।
बक्षोज ये निन्दु । बन्धु आलिङ्गने बिलग हृदु । ८ ।

सरलार्थ—मेरे कर्कश वक्ष को कोमल करने के लिए मै उस पर अब बहुत चन्दन पोत दूँगा एवं कपूर का चूना बिखेर दूँगा । परन्तु अरी आजन्म सुखिनि ! तुम अपने श्रीहस्तो से केवल एक ही बार इतना ही लिख देना, "तुम्हारे ऐसा करने से मै बुरा नही मानूँगी ।" क्योंकि आलिगन के समय अपने स्तनों के कारण तुम्हारा शरीर मेरे शरीर से अलग हो जाता है, इसलिए तुम अपने स्तनों का तिरस्कार करती । सुतरां इसी आशंका से कि कही मेरा वक्ष तुम्हारे वक्ष से अलग न हो जाय, मैं अपने वक्ष पर कभी कपूर और चन्दन नही पोतता था । यदि तुम उपर्युक्त अनुसार लिख दो, तो मै अब से अवश्य वैसा ही करूँगा । (अर्थात् अपने वक्ष की कोमलता के लिए उपचार करूँगा ।) (८)

बोळि होइ—पोतकर; विञ्चिथिबि—बिखेर दूँगा; तहिँ—उस पर; कर्पूरचर्ण—कपूर का चूना; बिगुणा न घेनिबि—बुरा नहीं मानूँगी; वेळे—एक ही बार; आजन्म-सुखि—अरी जन्म से सुखिनि ! ; वक्षोज—स्तन; बन्धु—अरी बान्धवि ! अयि प्रिये ! ; बिलग—अलग । (८)

बोइला कुक्कुट शुणि सेक्षणि । बतिशलक्षणी चारु ईक्षणी ।
बिहायस पथे गलाणि रथे । बसाइ नेउथिला रक्षनाथे ।
बिलसे के आग । बिबेक होइ ता कथा प्रसङ्ग । ९ ।

हंसी उड़ा रहे हो। सुतरा तुम लोगो को मैं शाप देता हूँ कि तुम पर्वतों जैसे ऊँचे स्थानो पर न बैठ नीचे गिर पड़ो। श्रीराम के ऐसा बोलते सब पेड़ पर्वतों की चोटियो से नीचे गिर पड़े। इससे पर्वत-समूह असुन्दर दिखाई दिये। (१३)

प्रश्रवण—कानयुक्त, खोड़रयुक्त; विवर्ण—असुन्दर; महीभृत—पर्वत; दिशिले—दीखे, दिखाई दिये। (१३)

बैदर्भीपति अइले सङ्खोळि। विहरु मार्कण्डेय ऋषि मिळि।
बासाञ्चळे अश्रु पोछि श्रीराम। बेनि मुनिङ्कि विहिले प्रणाम।
बोलन्ति कुम्भज। बिबेकिशेखर होइ अधैर्य्य। १४।

सरलार्थ—उस समय बैदर्भीपति अगस्ति मुनि श्रीरामचन्द्र की अगवानी करने के लिए वहाँ आ पहुँचे। यों स्वेच्छानुसार विहार करते हुए मार्कण्डेय मुनि भी आकर वहीं पहुँच गये। दोनो मुनियो को आये देखकर श्रीराम ने अपने वस्त्र के आँचल से अपने आँसू पोछ लिये एवं दोनों को सभक्ति प्रणाम किया। श्रीराम को शोकाकुल देखकर अगस्ति मुनि ने उन्हे सान्त्वना-प्रदान पूर्वक कहा, "आप विवेकियों में श्रेष्ठ होते हुए भी ऐसे अधीर हो रहे है!" (१४)

बैदर्भीपति—बैदर्भ राजकन्या के पति अगस्ति; अइले—आये; संखोळि—अगवानी (स्वागत) करने के लिए; बासाञ्चळे—अपने वस्त्र के आँचल से (अथवा अपने करतल के पृष्ठ भाग से); कुम्भज—कुम्भयोनि, अगस्ति मुनि; बिबेकिशेखर—विवेकियो में श्रेष्ठ; अधैर्य्य—अधीर। (१४)

बोइले राम काम भस्म गला। बल्लभीकि तार शम्बर नेला।
बसिछि जीबे आन नेला भीरु। बळि क्षत बड़ अछि खथिरु।
बोधे मुनिबर। बसन्ता नाहिँ द्वा:स्थ निरोधर। १५।

सरलार्थ—अगस्ति मुनि के सान्त्वना-भरे वाक्य सुनकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, "कन्दर्प के हर की कोपाग्नि से भस्मीभूत होने पर ही उसकी प्रिया को शम्बरासुर ने हरण कर लिया। परन्तु मेरे जीते रहने पर भी एक दूसरे (रावण) ने मेरी भयालु पत्नी को चुरा लिया। इससे बढ़कर और व्यथा का विषय क्या हो सकता है? (अर्थात् इससे बढ़कर और व्यथा-जनक विषय कुछ हो ही नही सकता।)" रामचन्द्र जी के वचन सुनकर मुनिवर अगस्ति उन्हें फिर सान्त्वना देते हुए बोले, तुम्हारे पर्णकुटीर के सामने निषेध करने के लिए कोई पहरेदार नही था। इसलिए रावण ने सीता को चुरा लिया। (अथवा रावण तथा कुम्भकर्ण पूर्व जन्म में जय-विजय नामों से वैकुण्ठपुरी मे पहरेदार बने थे। इस जन्म में रावण तथा

कुम्भकर्ण के नामों से दोनों पहरेदार बन सीता की चौकसी नही करते क्या ? (अर्थात् दोनो अब सीता की चौकसी कर रहे हैं।) (१५)

बल्लभीकि—पत्नी (रति) को; शम्बर—शम्बरासुर ने; आन—दूसरे ने; भीरु—भयालु (पत्नी) को; क्षत—व्यथा; एथिरु—इससे; बोधे—सान्त्वना देते हैं; द्वाःस्थ—द्वारी, पहरेदार; निरोधर—रोकने के लिए, चौकसी करने के लिए। (१५)

बिदेह ये देह पाइब पुणि। बधि शम्बर त रखिब आणि।
बळबन्त स्वय अछ पराणे। बाळि बध हेला य़ा एकबाणे।
बइरी तुम्भर। बन्दी होइथिला ताहा कक्षर। १६।

सरलार्थ—अगस्ति ने आगे कहा, "कन्दर्प फिर शरीर-लाभपूर्वक शम्बरासुर का विनाश करेगा और अपनी आन की रक्षा करेगा। आप स्वयं तो जीवित रहे है और बलवान् भी है। करोड़ों सिंहों के बलवाले बालि का आपने एक ही बाण से वध किया। आपका शत्रु रावण उसी बालि की काँख में बन्दी हुआ था। उसी रावण की क्या गिनती है ? (अर्थात् उस रावण को हराना आपके तो बाये हाथ का खेल होगा।)" (१६)

बिदेह—कन्दर्प; आणि—आन, बड़ाई, गौरव; बइरी—(बैरी)—शत्रु (रावण); कक्षरे—कॉख में। (१६)

बेदना सहि नोहे राम भाषे। बन्दी से बड़ भयाळु राक्षसे।
बिपिने बिच्छेदभयरु केळि। बिरहानळ देउथिब जाळि।
बसि एका घोषि। बञ्चिथिब निकि प्रीतिलाळसी। १७।

सरलार्थ—तब श्रीराम ने कहा, "मेरी व्यथा सही ही नही जा सकती। मेरी प्रिया सीता बड़ी ही सुकुमारी है। (वह व्यथा सह नहीं सकतीं।) वह बड़ी भयालु है। तिस पर वह राक्षसो के द्वारा बन्दिनी बनायी गयी है। जिन राक्षसों से देवता लोग भी भय करते है, उनके सामने उस स्त्री ही की क्या गिनती ? (अर्थात् सभव है वह मर गई हों।) बिछोह के भय से वह मेरे साथ जगल में आकर क्रीड़ा का सुख अनुभव करती थी। अब विरहाग्नि उन्हें जला देती होगी। प्रीति की अभिलाषा करनेवाली मेरी वह प्रिया मेरे विरह मे क्या जीवित रही होंगी ?— यही मैं बैठकर हमेशा रट रहा हूँ। (१७)

भाषे—कहते हैं; भयाळु—डरपोक; केळि—क्रीड़ा, घोषि—रटना; बञ्चिथिब—क्या जीवित रही होंगी; प्रीतिलाळसी—प्रेम की अभिलाषा करनेवाली। (१७)

बोध देले ततकाळ अगस्ति। बिश्वधात्री पुत्री कनकगात्री।
बारण नाम आद्य प्रान्ताक्षरे। ब्यक्त महासुर नाम मध्यरे।
बञ्चिछि ए नामा। बामा बिच्छेदे अति प्रीतिधामा। १८।

सरलार्थ—श्रीराम की खेदभरी वात सुनकर अगस्ति मुनि ने उन्हे साथ-ही-साथ सान्त्वना दी और कहा, "सीता देवी संसार की धाय अथवा माता सर्वंसहा पृथिवी की कन्या है। माता धरती सारे दु:ख-कष्टों को सह सकती है। इसलिए वह सर्वसहा कहलाती है। उसकी कन्या सीता भी सारे क्लेशों को सह सकती है। आपने फिर जो कहा कि विरहानल उन्हें जला देता होगा, वह भी नही हो सकता। क्योंकि सीता कनकगात्री अर्थात् सुवर्णांगी है। सुवर्ण को अग्नि में जलाने से वह म्लान होने के बजाय अधिक जाज्वल्यमान होता है। उसी तरह सुवर्णांगी सीता विरहाग्नि से मलिन न होकर अधिक तेजोमण्डित होंगी। 'वारण' शब्द का एक प्रतिशब्द है 'दन्ती'। 'दन्ती' शब्द के दो ही अक्षर हैं—एक आद्य मे, एक प्रान्त में। उन दोनों अक्षरों के बीच महासुर का नाम 'मय' व्यक्त (प्रकाश) करने से समूचा शब्द 'दमयन्ती' हुआ। वही दमयन्ती नाम्नी वामा, जो कि नलराजा की पत्नी हैं तथा अत्यन्त प्रीतिस्थानीया (अर्थात् प्रेममयी) है, पति के विछोह मे भी उन्होंने प्राण-धारण किया था। सुतरां सीता भी आपके विरह में नि सन्देह जीवित रही होगी। (आप यह शंका न करें कि वह जीवित नही रही होगी।) (१८)

बोध—सान्त्वना; विश्वधात्री—संसार की धाय या जननी; पुत्री—कन्या; कनकगात्री—सुवर्णांगी; वारण—हाथी (दन्ती); महासुर—बड़ा असुर, मय; वर्त्तिछि—जीवित रही है; प्रीतिधामा—प्रेममयी। (१८)

बाहुड़ु बोधि मार्कण्डेय पुछि। बिष्णु परा पराक्रम काहिँछि।
बहि नाहान्ति त दर अरिकि[1]। बहिछन्ति एका दर अरिकि[2]।
बिपति बिहीन। बिपत्ति भञ्जने होइ मउन। १९।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र को सान्त्वना देकर अगस्ति मार्कण्डेय मुनि के सहित लौट रहे थे। मार्ग पर मार्कण्डेय ने उनसे पूछा, "ये रामचन्द्र जी विष्णु भगवान् है न? इनमे विष्णु का-सा पराक्रम है कहाँ? विष्णु के सदृश शंख-चक्र धारण करने के बजाय इन्होने शत्रु से भय धारण किया है। फिर ये गरुड-विहीन है। (अर्थात् विष्णु के वाहन गरुड़ इनके समीप नही है।) विष्णू होते तो गरुड़ इनके साथ होते। यदि ये विष्णु होते, तो अपने 'विपत्ति-भञ्जन' नाम की सार्थकता प्रतिपन्न करते। विपत्तियो का खण्डन करने में असमर्थ होकर क्या यो मूक अथवा मौन रहते? इन सब बातों से मैं समझ रहा हूँ कि ये विष्णु भगवान् नही हैं। (१९)

वाहुड़ु—लौटते; बोधि—सान्त्वना देकर; पुच्छि—पूछा; परा—सदृश; काहिँछि—कहाँ है? वहि नाहान्ति—धारण नहीं किया है; दर अरिकि[1]—शंखचक्रको; (यमक); बरिछन्ति एका—केवल धारण किया है; दर अरिकि[2]—शत्रु से भय को, (शत्रु से भय करते है); बिपति-बिहीन—पक्षियों के स्वामी गरुड़ इनके वाहन नहीं हैं; विपत्ति-भञ्जने—विपत्तियों का खण्डन करने में; मउन—मौन, मूक; (यमक अलंकार) (१९)

बिश्वकेतु ए परते हुअइ । बाळीबिच्छेद जन्मान्ते न याइ ।
बहिछिं शिरीषाङ्गी शिरी शिरी । ब्यर्थ प्रतीति रागलता परि ।
बन्दी से दैत्यरे । बिधान होइला जनमान्तरे । २० ।

सरलार्थ—(इनकी रूपवत्ता से) मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये कन्दर्प है । सुतरां जन्मान्तर में भी इनका वामा से विछोह दूर नहीं होता है । पूर्वजन्म में हर जी के कोपानल से भस्मीभूत होने के कारण वामा से इनका विछोह संघटित हुआ था । इस जन्म में जीवित रहते हुए भी इनका वामा-विरह संघटित हुआ । शिरीषांगी (कोमलांगी) सीता ने श्री (लक्ष्मी) की श्री (शोभा) धारण की है । (अर्थात् सीता अत्यन्त सुन्दरी होने के कारण लक्ष्मी की तरह प्रतीत होती है ।) परन्तु यह आरोप भी भ्रमात्मक है । सीता निश्चय ही रति हैं । पूर्वजन्म में रति दैत्य शम्बरासुर कर्त्तृक वन्दिनी हुई थी तो इस जन्म में राक्षसाधिपति रावण कर्त्तृक वन्दिनी हुई हैं ।" (२०)

विश्वकेतु—कन्दर्प; रागलता परि—रति की तरह । (२०)

बोले अगस्ति होइण चतुर[1] । बणा हुअ थिला भुज चतुर[2] ।
बटे प्रळयकाळे देखिअछ । बाळमूरति होइथिला स्वच्छ ।
बिभूति देखिब । ब्रह्मादि थिबे अभिषेक हेब । २१ ।

सरलार्थ—मार्कण्डेय की बातें सुनकर अगस्ति मुनि ने कहा, "आप सुचतुर होकर भी ऐसे भटक रहे है ? जब प्रलय-काल में विष्णु भगवान् ने स्वच्छ, मनोहर बालक-रूप (बालमुकुन्द-मूर्त्ति)-धारण-पूर्वक कल्पवट के पत्र-पुट में शयन किया था, आपने तो उनके उसी समय के रूप को देखा है । उस समय क्या उनके चार भुजाएँ तथा शंखचक्रादि आयुध थे ? (अर्थात् नही ।) वही दो भुजाओंवाली मूर्त्ति या रूप अब श्रीरामजी के रूप मे फिर से धराधाम पर अवतरित हुए है । फिर जब ब्रह्मादि देवताओं की उपस्थिति में उन्हीं श्रीराम का अभिषेक-विधान किया जाएगा, तब ही आप उनका ऐश्वर्य देख सकेंगे । (अब नरशरीर धारण करने के कारण आप सन्देहवश उन्हें पहचान नही सकते ।) (२१)

चतुर[1]—प्रवीण, पण्डित; बणा हुअ—भटकते हो; चतुर[2]—चार; (यमक); बटे—बरगद के पेड़ में; विभूति—ऐश्वर्य; अभिषेक—तिलक । (२१)

बामन होइ यथा त्रिबिक्रम । बृद्धि ऐश्वर्य्य हेब सेहि क्रम ।
बेगे मुनि बेनि आश्रमे स्थित । बिख्यात हेमन्त कि ऐराबत ।
बर्ण कुज्झटित । ब्यापिगला जगतीरे झटित । २२ ।

सरलार्थ—जैसे विष्णु भगवान् वामन होकर फिर क्रमशः त्रिविक्रम हुए, उसी क्रम में इनके ऐश्वर्य की वृद्धि होगी।" यों कथोपकथन करते हुए दोनों मुनि जाकर अपने-अपने आश्रम में उपस्थित हुए। इस समय हेमन्त ऋतु ऐरावत हस्ती के सदृश विख्यात हुई क्या! अर्थात् ऐरावत हाथी के समुद्र से उत्पन्न होते समय जैसे धूसर वर्ण जल पर शीघ्र ही फैल गया था, उसी तरह हेमन्त ऋतु के आविर्भाव से संसार मे शीघ्र ही कुहरा फैल गया। (२२)

त्रिविक्रम—तीन डग, विष्णु का वामन रूप; वर्णकुज्झटित—धूसर रंग, कुहरा रंग, जगतीरे—जलमें, संसार मे; व्यापिगला—फैल गया, झटित—शीघ्र ही। (२२)

बिभ्राजित होइ कुन्ददन्तरे। बिळास रचि बन-पर्बतरे।
बृष्टि तुषार मदकण करे। बळाइला अति आदर सुरे।
बासबर स्नेही। बळ-मानस-कम्पन कराइ। २३।

सरलार्थ—ऐरावत हाथी अपने कुन्द-दन्तों से (अर्थात् शुभ्र दाँतों से) सुशोभित होकर वनपर्वतों में क्रीड़ा या विहारपूर्वक मदजल की वृष्टि करता है, देवताओं मे अपना आदर बढ़ाता है एव इन्द्र से स्नेह प्राप्त करके बलासुर के हृदय को कँपाता है। उसी तरह हेमन्त ऋतु नये कुन्दपुष्पों रूपी दाँतों से विराजित हो तुषार-विन्दुओं रूपी मद-जल बरसाकर कुहरे के रूप में वन-पर्वतो मे विहार कर रही है। यह सूरज में लोगों का आदर बढ़ाती है, उत्तम वस्त्रो अथवा श्रेष्ठ गृहों के प्रति लोगों को स्नेहयुक्त करती है और वलिष्ठ लोगों के हृदयों को कँपाती है। (तात्पर्य यह है कि हेमन्त ऋतु के पृथिवी मे पहुँचने पर कुन्दफूल खिलने लगे। रात मे धरती पर ओस की बूँदें पड़ने लगीं और पृथिवी कुहरे से ढक गयी। लोगों ने सूरज की किरणें पाने, उत्तम शीतवस्त्र-व्यवहार करने तथा श्रेष्ठ गृहों में वास करने के लिए आग्रह प्रगट किया और भयंकर जाड़े से यहाँ तक बलवान् मनुष्य भी काँपने लगे।) (२३)

विभ्राजित—विराजित; कुन्ददन्तरे—शुभ्र दाँतों से, कुन्द फूलों से; तुषार—हिम, वरफ; मदकण—मत्तहाथी के गण्डस्थलो से निर्गत जलविन्दु; सुरे—देवताओं में, (सूरे)—सूरज में; बासवर—इन्द्र का; वास वर—श्रेष्ठ वस्त्र या गृह; बळमानस—वलासुर का हृदय, बलिष्ठ लोगो के हृदय; (श्लेष)। (२३)

बिरस दीन निरते न-मुचि। बिस्तारि ऐन्द्रर चित्त सुरुचि।
बहि हिरण्याक्ष छबि शिशिर। बराहदाढ़ भेदरे रुचिर।
बिशोधित घन। बिरब रहिला मही कम्पन। २४।

सरलार्थ—ऐरावत हाथी के हेतु नमुचि नामक राक्षस निरन्तर विरस तथा दीन हुआ। फिर उसी ऐरावत ने इन्द्र-पुत्र जयन्त के मन की सुरुचि

को बढ़ाया। उसी तरह इस हेमन्त ऋतु ने दीनों (गरीबों) की विरसता (दुःख) को नहीं छुड़ाया एव काकों के चित्तो की प्रसन्नता तथा शरीरों की कान्ति को बढ़ाया। तदनन्तर शिशिर ऋतु हिरण्याक्ष राक्षस की छवि को धारण करके पृथिवी पर उपस्थित हुई। हिरण्याक्ष वराहावतारी विष्णु के दाढ़ के आघात से सुन्दर रूप से (मुक्ति लाभपूर्वक) विनष्ट हुआ। तब उसका निविड़ घोर गर्जन थम गया और फलस्वरूप भूकम्प भी बन्द हो गया। वैसे शिशिर ऋतु मे बारिहादाढ फूलों के खिलने से पृथिवी बड़ी सुन्दर दिखाई दी। आकाश मेघों से विमुक्त हुआ। फलस्वरूप मेघ-गर्जन थम गया एवं मेघ-गर्जन थमने से भूकम्प भी थम गया। (२४)

बिरस—रसहीन, विषण्ण; दीन—खिन्न, गरीव; न-मुचि—नमुचि नामक राक्षस, न छुड़ाकर; ऐन्द्रि—इन्द्र का पुत्र जयन्त, काक-समूह का; वराहदाढ़—चौभड़, एक जंगली फूल जो शिशिर ऋतु में खिलता है; बिशोधित—संयत होना (थम जाना), विमुक्त होना; घन—निविड़, मेघ; बिरब—घोर-गर्जन; महीकम्पन—भूकम्प। (२४)

बिदेशरे हेला मङ्गल जात। बरुण सुमने हेला रञ्जित।
ब्याध सम करि पुणि से काळ। बनरु नाशिला खोजि कमळ।
बाहुबन्धे रखे। बेळे बेळे जन से पाशे योखे। २५।

सरलार्थ—हिरण्याक्ष की मृत्यु से देश-विदेशो में विशेष शुभ (मगल) उत्पन्न हुआ (उसके उपद्रव का निवारण हुआ) एवं वरुणादि देवगण आनन्दित हुए। वैसे शिशिर ऋतु मे देश-विदेशों मे विवाहादि मांगलिक उत्सव मनाये गये और वरुण वृक्षसमूह फूलो से सुशोभित होने लगे। फिर इस शिशिर ऋतु ने जल मे से कमलों को खोज विनाश किया (अर्थात् जला दिया), मानो किसी व्याध ने जंगल मे से मृगो को खोज मार दिया हो। समय-समय पर व्याध फाँस से मृगो को बँधा देता है। वैसे इस शिशिर ऋतु ने रात में स्त्रियों की बाहु-फाँस से पुरुषों को बँधा दिया। (२५)

विदेशरे—देश देशान्तरों में; वरुण—वरुणादि देवता, वृक्षविशेष; व्याध—शिकारी; वनरु—जल से, जंगल से; कमळ—पद्म, मृग; योखे—जोड़ता है; श्लेष। (२५)

बितररु राम कहे आतुरे। बोलाउ तु ऋतु बाधु ऋतुरे।
बिधाता तुहिन बोलिछि जाणि। बिदग्ध करु तु पद्मिनीश्रेणी।
बन्धु मो पद्मिनी। बिनाश ना ताकु भ्रमकु घेनि। २६।

सरलार्थ—इस प्रकार जब शिशिर ऋतु क्रमशः बढ़ने लगी, श्रीराम ने आतुर होकर कहा, "हे शिशिर काल! तू छ. ऋतुओं में एक ऋतु है। 'ऋतु' कहलाने से स्त्री-कुसुम के रूप में तू पुरुषों को पीड़ा देती है,

अर्थात् तू स्त्रियों मे रजरूप धारणपूर्वक उन्हें पुरुषो से विछुड़ा कर सताती है। इस हेतु विधाता ने तुझे 'तुहिन' नाम दे रखा है, अर्थात् सारी ऋतुओ मे 'तू हीन' (नीच) है। तू पद्मिनी लता को विनष्ट करती है। मेरी पत्नी सीता भी पद्मिनी-जातीया है। सुतरां तू भ्रमवश उसे मारना मत।" (२६)

बितररु—विस्तृत होने से, बढने से; ऋतुरे—स्त्री-कुसुम अथवा स्त्री-रजोरूप में; बाधु—पीड़ा देती है; तुहिन—शीत ऋतु, तू हीन (तू नीच है); श्लेष; बिदग्ध—भस्मीभूत, (जला देना); पद्मिनीश्रेणी—पद्मिनी लताओ को, बन्धु—प्रिया; पद्मिनी—पद्मिनी-जातीया स्त्री; भ्रमकु घेनि—भ्रमवशतः (२६)

बृक्षे बसि हुँ हुँ करुँ कपोत। बिचारिले शुणि कला सम्मत।
बोइले उच्चे तुषार तुषार। ब्रह्माण्डे त होइथिला तु सार।
बिपक्षर तहिँ। बाद अनुकूळ समय तुहि। २७।

सरलार्थ—ऐसे समय पर एक कबूतर ने पेड़ पर बैठकर 'हुँ' 'हुँ' ('हाँ' 'हाँ') बोली प्रगट की तो श्रीराम ने समझा, "मेरी विनती पर शिशिर ऋतु ने कबूतर की बोली के मिस अपनी सम्मति अभिव्यक्त की। (अर्थात् शिशिर ऋतु मेरी प्रिया का विनाश नही करेगी।)" सुतरां उन्होने सहर्ष ऊँचे स्वर से कहा, "अरी तुषार ऋतु! ब्रह्माण्ड मे तेरे 'तुषार' नाम से अनुमित होता है कि चूँकि सब ऋतुओं मे 'तू सार' है इसलिए विधाता ने तुझे 'तू सार' (अथवा 'तुषार') नाम दिया है। ऋतुओ में श्रेष्ठ होने के कारण तू ही शत्रु पर चढ़ाई के लिए उपयुक्त समय है।" (इसलिए हम लोग इसी समय में शत्रु का विनाश करने के लिए रणाभियान शुरू करेंगे।) (२७)

बिपक्ष—शत्रु पक्ष; बाद अनुकूळ—अभियान के लिए उपयुक्त। (२७)

बर्त्तिथाउ एका नागरीबर। ब्रती थाइ से त जीबन मोर।
बर्त्तिथिबारे मो नाहिँ संशय। बञ्चाइ त्रिकाळे मोते ता देह।
बञ्चुथिब सेहि। बर्ष्म उष्मशीत द्विमत बहि। २८।

सरलार्थ—मेरी नागरीमणि सीता पतिपरायणता रूपी व्रत में व्रती होकर जीवित रहें। वे तो मेरे प्राण है। मैं यहाँ जीवित हूँ। इससे पता चलता है कि वे मेरे प्राण निःसन्देह ही जीवित होंगी। उनका शरीर ग्रीष्म, वर्षा तथा शिशिर—इन तीन ऋतुओं में मेरी रक्षा करता है। अर्थात् इन तीन ऋतुओं मे उन्ही की ही वजह से मुझे कष्ट का अनुभव नही होता है। उनका शरीर गरमी में शीतल, बरसात में उष्ण व शीतल एवं जाड़े में उष्ण अनुभूत होता है। इस प्रकार उनका शरीर

कभी उष्ण, कभी शीतल और कभी उष्ण व शीतल, दोनो प्रकार के गुण वहनपूर्वक मेरी रक्षा करता है। (२८)

बत्तिथाउ—जीवित रहे; नागरीवर—रसिका-शिरोमणि सीता; व्रती—व्रत करने वाली; त्रिकाळे—ग्रीष्म, वर्षा तथा शिशिर मे; वर्म्म—शरीर; द्विमत—दोनो प्रकार—(उष्ण व शीतल।) (२८)

बान्धवी परा मो नाहिँ सुन्दरी। वासे देह सज सरोज परि।
बामदेबारि हृदे ग्रोखि शर। बिन्धुँ मोहि होइ थरिब कर।
बाजिब कि लाख। बिशीर्ण हेब गुण शिळीमुख। २९।

सरलार्थ—मेरी प्रिया सीता के समान सुन्दरी नारी इस जगत में और नहीं है। उनकी देह अभी-अभी खिले कमल की तरह महकती है। (इससे सीता के सौन्दर्यातिशय्य तथा पद्मिनी-नारी-लक्षण सूचित होते है।) कन्दर्प जब अपने धनुष पर बाण चढाकर सीता के हृदय की ओर निशाना लगावे, तो उनकी सुन्दरता से मुग्ध होकर निश्चय ही उसके हाथ काँप उठेंगे। सुतरां लक्ष्य-भ्रष्ट होने से उसका शर क्या सीता के हृदय को बेध सकेगा? (अर्थात् नही।) इस प्रकार धनुष की प्रत्यंचा व वाण मोह के हेतु तितर-बितर हो जाएगा। (२९)

बान्धवी—प्रिया; सज सरोज—सद्यप्रस्फुटित कमल; बामदेबारि—शिवका शत्रु, कन्दर्प; बाजिब कि—बजेगा क्या? लाख—लक्ष्य, निशाना; बिशीर्ण—तितर-बितर; गुण शिळीमुख—प्रत्यंचा व वाण। (२९)

बिरहानळ जाळुँ ता शरीर। बुड़िथिब भाव भाबना-नीर।
बहुत जन्मर सुकृतराशि। बिनोद कले मो एठारे आसि।
बिधि बिधि भला। बारुणी शोभारीति ताकु देला। ३०।

सरलार्थ—विरहानल उनकी देह को कभी से जला देता। परन्तु वह ऐसा कर नही सकता, क्योंकि वह मेरी प्रिया हमेशा मेरे भाव-सम्बन्धी चिन्ता-जल में डूब रही होंगी। मेरे बहुत जन्मों की पुण्यराशि ने यहाँ आकर क्रीड़ा की। (अर्थात् जन्म-जन्मान्तरो में कमाये गये मेरे पुण्य-समूह ने यही अपना कमाल दिखाया, जिससे सीता मेरे प्रेम-जल में डूबकर विरहानल से रक्षा पा जाती है।) विधाता का विधान भी उत्तम है। क्योंकि उन्होंने सीता के विरह-कष्ट को समझकर उनकी रक्षा के लिए उन्हें वरुण-सम्बन्धी शोभारीति प्रदान की है। अर्थात् जिस प्रकार वरुण देवता जल में डूबे रहते है, उसी तरह मेरे प्रेम-भाव-जल में सीता डूबी रही हैं। सुतरां विरहानल उनको कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता है।

(अथवा पुण्येच्छु लोग वारुणी योग में समुद्र-जल में गोते लगाकर जैसे पुण्य लाभ करते है, उसी तरह मेरी प्रिया ने मेरे भाव-रूपी जल में डूबकर पुण्य कमाया और अपने विरहानल को बुझाया। सुतरां विधाता का विधान धन्य है।) (३०)

विनोद—क्रीड़ा; विधि-विधि—विधाता का विधान; वारुणी—वरुण-सम्बन्धी, वारुणी योग। (३०)

बिबादीरे होइ ग्रीपमाकार। वंश वहुत काळु वृद्धि तार।
बह्निशरे ता करि भस्मीभूत। विश्रामनगरे देइ ज्वळित।
बळ पतङ्गादि। वळे पकाइवि तहिँ सम्पादि। ३१।

सरलार्थ—श्रीराम ने आगे कहा, "मै अपने शत्रु रावण के प्रति ग्रीष्म-काल के सदृश होऊँगा एवं बहुत काल से बाँस वन के समान वढ़े आये रावण के वंश को दावानल-तुल्य अग्नि-शर से भस्म कर दूँगा। और भी उसके वासस्थान लकापुर को बाँस-वन के आश्रयदाता पर्वत की तरह जला दूँगा और उसके सैन्यों रूपी पतंगों को वलात् लेकर उस अग्नि मे डाल दूँगा।" (३१)

बिवादीरे—शत्रु (रावण) के प्रति; ग्रीपमाकार—ग्रीष्मकाल-सदृश; बह्निशर—अग्निशर; विश्रामनगरे—वासस्थान को, आश्रयदाता पर्वत को; (श्लेष); बळ-पतंगादि—सैन्यों रूपी पतंगो को; वळे—वलात्, वलपूर्वक; तहिँ—उस अग्नि में; सम्पादि—सम्पादन करना, डालना। (३१)

बिधाता रखिवाकु पक्ष हेले। ब्रह्मपदवी न रखिबि भले।
बोलिण मउन रघुनन्दन। वानरपति आगमने मन।
वोले उपइन्द्र। बतिश पदे मनोरम छान्द। ३२।

सरलार्थ—उसी रावण की रक्षा करने के लिए यदि स्वयं विधाता भी उसका पक्ष ग्रहण करें, तो उनके लोकेश-ऐश्वर्य को भले नही रखूँगा। (अर्थात् लोप कर दूँगा।)" यह कहकर श्रीराम मौन हुए और वानरराज सुग्रीव के आगमन मे प्रति मनोनिवेश किया।

उपेन्द्र भञ्ज ने बत्तीस पदों में इस मनोरम छान्द की रचना की। (३२)

ब्रह्मपदवी—लोकेश ऐश्वर्य; वानरपति—सुग्रीव। (३२)

॥ इति एकत्रिंश छान्द ॥

द्वात्रिंश छान्द

राग—मङ्गळगुज्जरी

बिक्रमि लक्ष्मण मिळे किष्किन्ध्या कानन ।
बसन्त मळयाद्रिरु कि से आगमन । १ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी का आदेश पाकर लक्ष्मण माल्यवन्त पर्वत से अतिशीघ्र रवाना होकर किष्किन्ध्यापुर के समीपवर्ती वन में उपस्थित हुए। लक्ष्मण की गौरकान्ति देखकर कवि उत्प्रेक्षा करते है—(चूंकि वसन्त भी गौरवर्ण है) मानो वसन्त मलयपर्वत से आ गया हो। (१)

बिक्रमि—रवाना होकर, जाकर; मळयाद्रिरु—मलय पर्वत से; (उत्प्रेक्षालंकार) (१)

बचन कोकिळ सदागति मेळ होइ ।
बहुत सुमनाकु से उत्फुल्ल कराइ । २ ।

सरलार्थ—जैसे वसन्त-काल कोयल की बोली तथा दक्षिणी हवा से सम्मिलित होकर आता है और बहुत-से फूलों को खिलाता है, वैसे लक्ष्मण ने कोकिल के-से मधुर वचन तथा अविराम गमन सहित देवगणों को आनन्दित कराया। (अर्थात् गमन के समय लक्ष्मण का स्वर सुनकर तथा उनकी अविराम गति देखकर देवगण सन्तुष्ट हुए)। (२)

सदागति—पवन (दक्षिणी मलय पवन के प्रति अभिप्रेत), अविराम गमन; बहुत सुमना—अनेक फूल, देवतालोग; उत्फुल्ल—विकसित (खिले हुए), आनन्दित।(२)

बिहिबे दक्षिणभावे य़ात्रा आरम्भिण ।
बनौका खेळिबे रक्षे अबीर करिण । ३ ।

सरलार्थ—वसन्तकाल में लोग वसन्तोत्सव (दोलयात्रा) मनाते हैं और फाग खेलते है। उसी तरह लक्ष्मण दक्षिणस्थ लंका की तरफ युद्ध-यात्रा करके वहाँ युद्ध छेड़ देंगे और वहाँ के राक्षस लोगों को कमजोर करते हुए वानर उनसे रण-क्रीड़ा करेंगे। (३)

य़ात्रा—वसन्तोत्सव, दोलयात्रा; बनौका—वन है ओक (घर) जिनका, वानर, बन्दर; रक्षे—राक्षसों को; अबीर—फाग, वीर्यहीन (कमजोर)। (३)

बिजे राजा सिंहद्वारे रामानुज याइ ।
बन्ध लभि प्रबृद्ध सरित सरि रहि । ४ ।

सरलार्थ—जैसे बढती हुई नदी मार्ग पर सामने कोई बाँध आ जाने, पर वहीं रुक जाती है, वैसे लक्ष्मण सुग्रीव के सिंहद्वार में अपनी गति बन्द करके विराजमान हो गये। (४)

पुवृद्ध सरित—बढ़ती हुई नदी; रामानुज—लक्ष्मण। (४)

बिधिरे त शराळीरे युक्त होइछन्ति।
बारि - पूर्ण अपघने रुचिर दिशन्ति। ५।

सरलार्थ—स्वभावत जल से भरी वह नदी टिटिहरियों के समूह से सुन्दर दीखती है। वैसे लक्ष्मण शरीरस्थ पसीने की बूदो तथा शरसमूहसे सुन्दर दिखाई देते थे। (५)

शराळी—टिटिहरी पक्षी; वारिपूर्ण—जल या धर्मपूर्ण; अपधन शरीर। (५)

बसिथिला द्विबिद नामरे कपि द्वारे।
बोइले कह लक्ष्मण आगत राजारे। ६।
बृषण बिदारि चक्षु चाळि से रदन।
बिकृतमुख देखाइ भाषे के तु पुन। ७।

सरलार्थ—इस समय सिंहद्वार में द्विविद नामक एक वन्दर वैठा हुआ था। उसे देखकर लक्ष्मण ने कहा; "अपने राजा से कहना कि लक्ष्मण जी आये है।" यह सुनकर उस बन्दर ने अण्डकोष खुजलाकर, आँखे घुमाकर और दाँत चबाकर तथा भयकर मुख दिखाकर लक्ष्मण से पूछा, "तू कौन है ?" (६,७)

बृषण—अण्डकोश; रदन—दाँत; विकृतमुख—भयंकर मुख; के तु—कौन है, तू ? (६,७)

बोइले केतु हुअन्तु ए देहरे नाहिं।
बिळम्ब न करि तु लक्ष्मण हुअ कहि। ८।

सरलार्थ—एक नादान बन्दर का ऐसा व्यवहार देखकर लक्ष्मण ने उससे कहा, "तेरे प्रश्न 'के तु ?' पर तुझे केतुग्रह के समान इसी ही क्षण दो टुकड़े करके काट डालता। परन्तु मेरे इसी शरीर मे तुझे वैसा नहीं करूँगा। बलभद्र के अवतार मे रैवत पर्वत पर तेरा विनाश करूँगा। जो हो, बिना विलम्ब के जाकर अपने राजा से कहना कि लक्ष्मण जी आये है।" (८)

केतु—ग्रहविशेष, जिसका सिर राहु हुआ था। (८)

बळी बळि देखे से प्ळबगचन्द्र शोभा।
ब्योमदोळिरे उदय कोळे तारा प्रभा। ९।

सरलार्थ—वह वन्दर लक्ष्मण जी के समीप से गया और देहली का अतिक्रम करके गृह में प्रवेश किया। गृह में उसने वानरपति सुग्रीव की चन्द्रमा की-सी दिव्यशोभा देखी। जैसे चन्द्र आकाश में उदित होते हैं और उनके मण्डल में तारे दीप्तिमान् होते है, उसी तरह सुग्रीव आकाश में झूले हिंडोले में वैठे हुए है और उनकी गोद में पटरानी तारा अपनी दीप्ति दिखा रही है। (९)

वळी—देहली; बळि—अतिक्रम करके, आगे बढ़कर; प्ळवगचन्द्र—वानरपति, सुग्रीव; व्योम—आकाश; व्योमदोळिरे—आकाश में झूले हिंडोले मे; कोळे—मण्डल में गोद में। (९)

बेनि कर योड़ि जणाइला ततक्षण।
बिजय पुरुषे द्वारे बोलान्ति लक्ष्मण। १०।

सरलार्थ—तदनन्तर वानर द्विविद ने सुग्रीव के समीप पहुँचकर दोनों हाथों को जोड़ते हुए राजा को जनाया, "राजन्! लक्ष्मण नामक एक पुरुष सिंहद्वार देश में विराजमान हुए है।" (१०)

बिजय—विराजमान; बोलान्ति—कहलाते हैं, नामवाले। (१०)

बिचित्र मणि भणिला शशीरु खसिला।
बहि नरतनु किपाँ एठाकु आसिला। ११।
बतिश संख्या ये देहें से सहजमत।
बोल या केउँ लक्ष्मण आसि कि निमित्त। १२।

सरलार्थ—द्विविद से यह सुनकर सुग्रीव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "लक्षण तो चन्द्रमा में है। वह किस तरह वहाँ से खिसका? और नरतनु धारण करके वह यहाँ क्यो आया है?" फिर 'लक्ष्मण' शब्द को देहस्थ बत्तीस लक्षण समझकर सुग्रीव ने कहा, "जाकर उससे पूछना कि वह कौन-सा लक्ष्मण है और यहाँ किसलिए आया है? (११,१२)

बिचित्र—आश्चर्य; भणिला-कहा; शशीरु—चन्द्र से; किपाँ—किसलिए; केउँ लक्ष्मण—कौन-सा लक्षण? (११-१२)

बाहुड़ि द्वाःस्थ पुच्छन्ते बोलइ से बीर।
बोल से राम अनुज ये शिरीद तोर। १३।

सरलार्थ—द्वारपाल द्विविद ने वहाँ से लौट आकर जब लक्ष्मण से पूछा, "आप कौन-से लक्ष्मण है?," तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "जाकर सुग्रीव से कहना—तुम्हारे सम्पददाता रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण जी आये है।" (१३)

द्वाःस्थ—द्वारपाल (द्विविद); राम अनुज—रामचन्द्र के छोटे भाई (लक्ष्मण); शिरीद—सम्पददाता। (१३)

बानर ग्राउँ पाञ्चिले न कहु ए भाष।
बातायु राम ता अनुग्रायी सिना शश। १४।

सरलार्थ--उस बन्दर (द्विविद) के जाने के बाद लक्ष्मण ने मनमें सोचा, "इसने 'लक्ष्मण' शब्द का जैसा अर्थ (लक्षण, चिन्ह) समझा, उसी तरह 'राम' शब्द का अर्थ 'मृग' समझकर, उसके छोटे भाई 'शशक' के अर्थ में मुझे न कह दे।" (१४)

याउँ—जाने के बाद; ए भाष—यह कथा, यह अर्थ; बातायु—मृग, हिरन; राम श्रीरामचन्द्र ('राम' का एक अर्थ 'हिरन' भी है;) ता अनुयायी—उसका छोटा भाई; शश—खरगोश। (१४)

बिनोदी हस्तरु पोषा मर्कट फिटइ।
बिकृत मुख देखाइ गुण न मानइ। १५।
बळिमुख सिना एहि से बुद्धि रचित।
बाळि-नाशास्त्र धनुरे योचि तिआरि त। १६।

सरलार्थ--फिर लक्ष्मण ने सोचा, "सुग्रीव तो वानर जाति का है। जैसे विनोदी मनुष्य के हाथ से पालतू वन्दर छूट जाय तो वह पालनेवाले का उपकार मानने के बदले उसको अपना विकृत मुख दिखाता है, उसी तरह सुग्रीव ने यह कुबुद्धि की कि वह हमारे किये उपकार को नहीं मानता।" इसलिए उन्होने अपने मन में वड़ा क्रोध किया और जिस बाण से श्रीराम ने बालि का विनाश किया था, उसी शरको धनुष पर चढ़ाकर तैयार हो गये। (१५,१६)

विनोदी—कौतूहली, मौजी; पोषा—पालतू; मर्कट—वन्दर; फिटइ—छूटता है; वळिमुख—वन्दर; बाळिनाशास्त्र—वालि का नाश करने वाला बाण; योचि—चढ़ाकर; तिआरि—तैयार हो गये। (१५-१६)

बसिबा दोळिस्तम्भकु भेदि दिअ त्रास।
बोलुछि सुग्रीबे ए समये तारा भाष। १७।
बिभ्रम हेल किपाईं रघूत्तम भ्राते।
बदान्य से ए सम्पदे सेहि मदमत्ते। १८।

सरलार्थ--लक्ष्मण ने शरको आदेश दिया, "अरे शर! तू जा और जिस हिंडोले में सुग्रीव बैठे हुए है, उसके खम्भे मे वेधकर उसे केवल भय देना।" इसी समय तारा सुग्रीव से बोल रही थी, "हे नाथ! जिन्होंने

तुम्हें यह सारी सम्पत्ति दी है, उस सम्पद-मद से घमंडी होकर उन्हीं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम के भाई लक्ष्मण को तुम क्यों भूल जाते हो ? (अर्थात् नहीं पहचान सकते !)" (१७,१८)

दोळिस्तम्भकु—हिंडोले के खम्भे को; भेदि—वेधकर; दिअ—दो; त्रास—भय; भाष—वचन; विभ्रम—विस्मृत; रघूत्तम—रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम; भ्राते—भाई लक्ष्मण को; बदान्य—दाता; सेहि—उसी; मदमत्ते—घमंड से घमंडी होकर। (१७-१८)

बाजे आसि स्तम्भे शर पड़े कि निर्घात।
बाणतेजघाते रबिसुत मूरुछित ।१९।

सरलार्थ—जब तारा अपने पतिदेव से इस प्रकार बोल रही थी, उस समय लक्ष्मण से प्रेषित शर सुग्रीव जी के हिंडोले के खम्भे में आ बजा, मानो वज्रपात हुआ। उस शर के तेज तथा आघात से सुग्रीव मूर्च्छित हो पड़े। (१९)

निर्घात—वज्रपात के समान; रबिसुत—सुग्रीव। (१९)

बासान्तरे थिले शाखामृग मन्त्री पाञ्च[1]।
बज्र, इन्द्र बाळि छळे माइला ए पाञ्च[2]।२०।

सरलार्थ—इस भयंकर शब्द को सुनकर दूसरे एक घर में रहे पाँच वानर-मन्त्रियों ने अनुमान लगाया कि (चूँकि सुग्रीव ने छल से बालि का बध कराया था इसलिए) बालि के पिता इन्द्र ने क्रोधवश होकर शायद सुग्रीव पर वज्र-प्रहार किया हो। (२०)

वासान्तरे—अन्य एक गृह में; शाखामृगमन्त्री—वानर-मन्त्री; पाञ्च[1]—पाँच; बाळिछळे—बालिबध का बदला लेने के लिए; पाञ्च[2]—विचार, अनुमान; (प्रान्त यमक) (२०)

बध-प्राण य़ेबे करिथिब सुग्रीबङ्कु।
बुड़ाइबा ता सम्पद कहि राघबङ्कु।२१।

सरलार्थ—यदि इन्द्र ने सुग्रीव का जान से निधन कर दिया होगा तो श्रीराम से कहकर हम लोग उसकी श्री सपत्ति आदि डुबाएँगे। (२१)

बुड़ाइबा—डुबाएंगे। (२१)

बोले के कहिबा य़ाए राघबङ्कु काहिँ।
बारि सिञ्चि कर्ण फुङ्के तारा महादेई।२२।
बसे झाम य़ाइ पित्तरोगी प्राय छन्न।
बुझिले समस्त कथा उपायविहीन।२३।

सरलार्थ—फिर उनमें से किसी ने कहा, "श्रीराम जी से कहने के लिए और समय कहाँ है ? (क्योंकि सुग्रीव की अब जान के लाले पड़े है।) इस समय सुग्रीव को हतचेष्ट तथा मूर्च्छित देखकर उनकी पटरानी तारा ने उनके वदन पर जल सींचकर कान फूँके। तब सुग्रीव पित्तरोगी की तरह चचल होकर उठ बैठ और फिर मूर्च्छित हुए।" इस रीति से मन्त्री लोगों ने सारी बातें समझ ली। अर्थात् यह जानकर कि लक्ष्मण जी के द्वारा यह सब सघटित हुआ है, सभी लाचार हो गये। (२२, २३)

महादेई—पटरानी; झाम—मूर्छित; उपाय-विहीन—निरुपाय, लाचार। (२२-२३)

बन्दापनास्थाळी घेनि बाहारिले राणी।
बाड़ान्तरे मन्त्री घेनि कपि-चूड़ामणि। २४।

सरलार्थ—यह बात जानकर कि लक्ष्मण गुस्से से भरे हुए है, सभी के प्राणों मे भय का सचार हुआ। परन्तु उनके क्रोध को शान्त करने के लिए कोई भी उनके समीप जाने को तैयार नहीं हुए। अन्त में यह समझकर कि नारियाँ अवध्या है, अतएव अगर मै जाऊँ तो वे मेरा वध नही करेगे, पटरानी तारा आरती की थाली लिए लक्ष्मण जी को मनाने के लिए उनके पास गयी। वानरपति सुग्रीव दूसरे मन्त्रियो के सहित दीवाल की आड़ में छिपे रहे। (२४)

बन्दापनास्थाळी—आरती की थाली; बाड़ान्तरे—दीवार की आड़ में; कपि—चूड़ामणि—वानरश्रेष्ठ सुग्रीव। (२४)

बाळिका जाङ्गळी स्तन पेटी बिशारद।
बन्दाण तण्डुल धूळि तनुगन्ध गद। २५।
बिनय पदहिँ रागयोगरे उकत।
बशीकृत पुन्नागकु बिहिव स्थकित। २६।

सरलार्थ—विषवैद्य या सँपेरे मन्त्र-धूलि डालकर और मउहर गाकर साँप को वशीभूत करते है। उसी प्रकार तारा स्वयं प्रवीण विष-वैद्य बनी। उसने अपने स्तनों को पिटारियाँ, आरती-अक्षत को मन्त्र-धूलि, देह-सौरभ को गद बनाया और सानुराग विनती-भरे वचन-रूपी मउहर गाकर पुरुष-श्रेष्ठ लक्ष्मण जी को पुरुष नाग (सर्प) की तरह वशीभूत किया। अर्थात् तारा के ऐसे व्यवहार तथा विनय-वाक्यों से लक्ष्मण जी का क्रोध शान्त हुआ। (२५, २६)

बाळिका—बाला तारा; जाङ्गळी—विष-वैद्य, मदारी, सँपेरा; बिशारद—प्रवीण; बन्दाण—तण्डुळ—आरती के लिए अखण्डित चावल; तनुगन्ध—शरीर की सुगन्ध; गद—

साँप का विष हरने वाली एक जड़ी, रागयोगरे—अनुराग के साथ; उक्त—कहकर, गाकर; पुन्नाग—पुरुष श्रेष्ठ (लक्ष्मण), पुरुष नाग (साँप); विहित—विधान किया; स्थकित—शान्त, स्थिर। (२५-२६)

बानर - ईश समन्त्री करि भेटाइला।
बचन रचन ताङ्क एमन्ते होइला। २७।

सरलार्थ—इसके अनन्तर तारा ने मन्त्रियों के सहित वानरपति सुग्रीव को लेकर लक्ष्मण जी से भेंट कराई। लक्ष्मण जी को देखकर उन्होंने नीचे लिखे अनुसार विनती की। (२७)

वानरईश—वानरपति सुग्रीव; एमन्ते—इस प्रकार। (२७)

बत्से भक्त पादघात बिहिले माधब।
बत्सळे सहिले एते बोइले सुग्रीव। २८।

सरलार्थ—सुग्रीव ने कहा, "हे प्रभो! भक्त भृगुऋषि ने विष्णु जी के हृदय पर पदाघात किया था। परन्तु भगवान् ने उनके इतने बड़े अपराध से जरा भी क्रोध प्रगट नहीं किया था, बल्कि सस्नेह उस पदाघात को सहन किया था। क्योंकि प्रभु भक्तवत्सल है।" (२८)

बत्से—वक्ष में, हृदय में; माधव—विष्णु ने; बत्सळे—स्नेह से; एते—इतना। (२८)

बोइले मन्त्रीए प्रह्लादकु इन्द्र कले।
बिभूति-मदे से न चिह्निला कि कोपिले। २९।

सरलार्थ—अनन्तर मन्त्रियों ने कहा, "महाप्रभु ने प्रह्लाद को स्वर्ग में इन्द्र बना दिया। परन्तु ऐश्वर्य के गर्व से उन्मत्त होकर वे विष्णु को पहचान नहीं सके। क्या विष्णु भगवान् ने इसके लिए उनके प्रति क्रोध प्रगट किया था? (अर्थात् नहीं।) उसी तरह चूँकि सुग्रीव आपको पहचान नहीं सके, इसके लिए क्या आपको उनके प्रति कोप करना चाहिए? (२९)

बिभूतिमदे—ऐश्वर्य के गर्व से। (२९)

बाहुळे घृत ढाळिले यथा तेजराजि।
बिहिले दुग्ध आहुति तथा शान्ति भजि। ३०।

सरलार्थ—अग्नि में घी डालने से वह प्रज्वलित हो उठती है। परन्तु दूध की आहुति देने से वह शान्त हो जाती है। उसी तरह लक्ष्मण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। परन्तु दुग्धाहुति-तुल्य सुग्रीव के विनय-भरे वाक्यों से वह शीघ्र ही शान्त हो गयी। (अर्थात् सुग्रीव तथा उनके मन्त्रियों के विनीत वचनों से लक्ष्मण जी का कोप शान्त हो गया।) (३०)

बाहुळे—अग्नि में। (३०)

बिजे कर पुरे बोलु बसि तरुतळ।
बिधान लङ्काकु सुग्रीबादि अनुकुळ। ३१।

सरलार्थ—इस समय सुग्रीव ने लक्ष्मण से अनुरोध किया, "आप हमारे घर में पधारिये।" परन्तु लक्ष्मण जी घर में न जाकर एक पेड़ के नीचे बैठे रहे। ठीक इसी समय सुग्रीव प्रमुख वानरवर्ग ने लंका के लिए यात्रा अनुकूल कर दी। (३१)

बिजे कर—पधारिए; अनुकूळ—आरम्भ। (३१)

ब्यथित रामर सैन्य आणिगला चारे।
बञ्चन्ति से निशि बसि कथा परस्परे। ३२।

सरलार्थ—जो सब दूत लोग श्रीरामचन्द्र जी के लिए सैन्य लाने गये थे, वे अभी तक नहीं लौट आये। इस हेतु सुग्रीव को बड़ा दुःख हुआ। उस विषय मे बातचीत करते हुए उन्होंने रात बिताई। (अर्थात् उन दूतों के विषय में बातचीत करते-करते, रात बीत गयी।) (३२)

आणिगला चारे—जो सब दूत (श्रीराम के लिए) सैन्य लाने गये थे; बञ्चन्ति—बितायी; निशि—रात; कथा परस्परे—परस्पर बातें करते हुए। (३२)

बोइला त क्षणदा से क्षण प्राये गला।
बासर प्रसरुँ द्विज आनन्द बढ़िला। ३३।

सरलार्थ—रात्रि का एक दूसरा नाम है 'क्षणदा'। सुतरा वह एक ही क्षण के समान बीत गयी। रात के अन्त में दिन का प्रसार हुआ, तो पक्षियों तथा ब्राह्मणों का आनन्द बढ़ने लगा। (३३)

क्षणदा—रात्रि; बासर—दिन; द्विज—पक्षी, ब्राह्मण; (श्लेष) (३३)

बिशुद्धकर्म उदये सलीळे गमन।
बिनाशिला तम दिनबन्धु दरशन। ३४।

सरलार्थ—(पक्षियों के पक्ष में) इस समय पक्षियों ने अपने विशुद्ध (भोजनादि) कर्म करने के लिए क्रीड़ाप्रकाशपूर्वक गमन किया। लोगों की आँखों से सूर्य का दर्शन लोप करनेवाले अन्धकार का सूर्य ही ने विनाश किया। (ब्राह्मणों के पक्ष में)—सूर्योदय से अन्धकार दूर हो गया। ब्राह्मण लोगों ने अपने-अपने प्रातःकर्म (अर्थात् सन्ध्यातर्पणादि विशुद्ध कर्म) करने के लिए जल में प्रवेश किया और विष्णु भगवान् के दर्शनद्वारा अपने-अपने अज्ञान का विनाश किया। (अर्थात् सुबह ब्राह्मण लोगों ने स्नानादि नित्यकर्मो का सम्पादनपूर्वक भगवान् विष्णु के दर्शन किये। (३४)

विशुद्धकर्म—भोजनादि कर्म, पवित्र नित्य-कर्म; सलीळे—क्रीड़ा-पूर्वक, सलिळे जलमें; तम—अन्धकार, अज्ञान; दिनवन्धु—सूर्य, (दीनवन्धु)— भगवान् विष्णु; श्लेष। (३४)

वळ घेनि ए समये अङ्गद प्रवेश।
ब्रह्माण्ड पूरित हेला किळिकिळा घोष। ३५।

सरलार्थ—इस समय मे अंगद अपने साथ सैन्य लिये वहाँ उपस्थित हुआ। बन्दरों की किलकारियो से सारा संसार भर गया। (३५)

वळ—सैन्य; किळिकिळा घोष—किलकारियों से। (३५)

बोलि श्रीजगन्मङ्गळ सुग्रीव लक्ष्मण।
बाहारिले सङ्ग करि सेनापतिगण। ३६।

सरलार्थ—सैन्यों को आये देखकर सुग्रीव व लक्ष्मण 'श्रीजगन्मंगल' नाम का उच्चारण करके सेनापतियों के सहित श्रीराम जी के निकट निकले। (३६)

बोलि—बोलकर, उच्चारण करके; श्रीजगन्मङ्गळ—श्री विश्वमङ्गल, श्रीराम। (३६)

वसुधा-भृतरे थाइ भाळे दाशरथि।
बाहुड़ि त न आसिला सौमित्रेय एथि। ३७।

सरलार्थ—उधर श्रीरामचन्द्र जी माल्यवन्त पर्वत पर बैठे सोच रहे हैं, "लक्ष्मण यहाँ अभी तक क्यो नही लौट आये ? (३७)

वसुधाभृतरे—पर्वत (माल्यवन्त) पर; दाशरथि—दशरथपुत्र, श्रीराम; भाळे—सोच रहे हैं; सौमित्रेय—सुमित्रानन्दन, लक्ष्मण; एथि—यहाँ। (३७)

बैद्य सेहि रोगी मुहिँ ताहा उपचारे।
ब्यवहार करि रहिथिलि जीबनरे। ३८।

सरलार्थ—लक्ष्मण वैद्य है। मैं रोगी हूँ और अभी तक उनकी चिकित्सानुसार कार्य करके मैं जीवित रहा था। (३८)

उपचारे—चिकित्सा से। (३८)

ब्याधि असाध्य जाणि कि न आसे सन्निधि।
बिनाश होइबा कथा मोर हेला सिद्धि। ३९।

सरलार्थ—क्या यह जानकर कि मेरी बीमारी दुरारोग्य है, वे मेरे समीप नहीं आ रहे है ? सुतरां अब यह सिद्ध हो गया कि मेरा विनाश अवश्यम्भावी है।" (३९)

व्याधि—रोग, बीमारी; असाध्य—दुरारोग्य, जिसका आरोग्य न हो सके या जिसका आरोग्य अतिशय कठिन हो; सन्निधि—समीप। (३९)

बाणी शुभिला ए काळे धाम रह गम।
विषय कि, भाळि अनाइले रघूत्तम। ४०।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ऐसा सोच रहे थे कि एकाएक उन्हें 'दौड़ो', 'रुको', 'चलो' आदि शब्दों की आवाजें सुनाई पड़ी। (ये शब्द सेनापतियों के क्रमशः पीछे पड़े व आगे बढ़े हुए एवं साधारणतया सभी सैन्यों के प्रति आदेश थे।) रघुवंशीश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी ने यह जानने के लिए कि ये शब्द क्या है, उस तरफ नजर डाली। (४०)

धाम—धाओ, दौड़ो; रह—रहो, रुको; गम—चलो; भाळि—सोचकर; अनाइले—दृष्टि डाली; रघूत्तम—रघुवंशमे उत्तम (श्रेष्ठ) श्रीराम जी (ने)। (४०)

बन गिरि व्यापि आसे अलेख प्ळवग।
बारुणी सन्ध्या अरुणी प्राये केउँ मार्ग। ४१।

सरलार्थ—रामचन्द्र जी ने देखा कि वनपर्वतो को भरे अनगिनत बन्दर आ रहे है। लाल तथा काले रंगवाले वन्दरों के द्वारा कोई-कोई मार्ग सन्ध्याकालीन पश्चिमाकाश की तरह लाल दिखाई देने लगा। (४१)

अलेख—असंख्य, अनगिनत; प्ळवग—वन्दर; वारुणी सन्ध्या—सन्ध्याकालीन पश्चिमाकाश; प्राये—तरह; केउँ—कोई-कोई। (४१)

ब्यापिला परि के दिगे धूमपाण्डुरता।
बिधुकर नबोदये आसिवा शोभिता। ४२।

सरलार्थ—किसी-किसी दिशा में धूम तथा पाण्डु वर्णवाले वन्दरो के एक साथ आने से वह दिशा ऐसी सुहावनी दिखाई दी मानो अभी-अभी उदित हुए चन्द्र की किरणों के योग से आकाश सुशोभित हो रहा है। (४२)

धूम—कुहरे रंगका; पाण्डुरता—सफेद-पीला रंग; विधुकर—चन्द्र की किरणें; नबोदये—अभी-अभी उदित हुए। (४२)

बिदित केउँ दिगरे कुज्झटिका परा।
बहे केउँ पथरे कि हरिताळ धारा। ४३।

सरलार्थ—फिर किसी दिशा में कुहरे रंग के बन्दरों के आने के कारण वह दिशा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो वहाँ कुहरा छा गया हो। किसी और एक दिशा मे हल्दी रंग के बन्दरों के आने से वह दिशा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो वहाँ हल्दी की धारा बह रही हो। (सुतरां

उपर्युक्त दो पदों से अनुमान किया जा सकता है कि सुग्रीव धूमिल, रक्तिम, पाण्डुर (सफेद), कुहरे, तथा पीले रगो के वन्दरों से घिरे हुए आ रहे है।) (४३)

कुज्झटिका—कुहरा; हरिताळ—हलदी (उत्प्रेक्षा)। (४३)

बिषबैद्य परा शोभा अछन्ति से पाइ।
बिळेशय लाङ्गुळकु आणन्ति खेळाइ। ४४।

सरलार्थ—साँपों के सदृश पूँछों को खेलाते हुए बन्दरों के समूहों ने ऐसी शोभा धारण की है, मानो सँपेरे हों। (४४)

विषवैद्य—सँपेरे; बिळेशय—सर्प; (उत्प्रेक्षा) (४४)

बीचिए बीचिए कि नदीर आळी आळी।
बक्त्र नीळाब्ज कैरब कोकनद झळि। ४५।

सरलार्थ—बन्दरों के समूह मानो नदियाँ हों। नदियों में लहरें सब एक दूसरी के बाद पंक्तियों में उमड़ आती है। उसी तरह वानर वर्ग एक दूसरे के बाद कुदान भरके पंक्तियों में वढते आ रहे है, फिर नदियों में नीलकमलों, कुमुदों तथा रक्तकमलों आदि की पंक्तियाँ खिलती हैं, उसी तरह बन्दरों के काले, पाण्डु तथा रक्तिम वर्णों के मुख सुशोभित हो रहे है। (४५)

बीचिए बीचिए—लहर के बाद लहर; आळी आळी—पंक्ति-पंक्ति; वक्त्र—मुख, वदन; नीळाब्ज—नीलकमल; कैरब—कुमुद या श्वेत कोईं; कोकनद—रक्तकमल, (उत्प्रेक्षा, उपमा) (४५)

बृद्धश्रवादिगुँ सन्ध्या तम य़था घोटि।
बिहरन्ति केउँ पक्षे ऋक्ष कोटि-कोटि। ४६।

सरलार्थ—किसी किसी दिशा में से करोड़ों भालू विहार करते हुए आगे वढे आ रहे है, जैसे शाम के समय पूर्व दिशा से अन्धकार उमड़ आ रहा हो। (४६)

वृद्धश्रवादिगुं—पूर्व दिशा से; तम—अन्धकार; ऋक्ष—भालू; (उपमा) (४६)

वसुधामृत तळरे रखि कपि सैन्य।
व्रध्नसुत लक्ष्मण सुषेण हनुमान। ४७।
बाळिपुत्र जाम्बब ताराक्ष साते य़ाइ।
बिनति राघबे उच्च आसने वसाइ। ४८।

सरलार्थ—इसके अनन्तर माल्यवन्त पर्वत के तले वानर सैन्यों को ठहराकर सुग्रीव, लक्ष्मण, सुषेण, हनुमान्, अंगद, जाम्बवान और ताराक्ष—इन सात ने जाकर श्रीरामचन्द्र जी को उच्चासन पर बैठाकर उन्हें विनती की। (अथवा श्रीरामचन्द्र जी को उनके प्रणामानन्तर प्रभुने उन्हें बैठने के लिए उच्चासन दिया।) (४७, ४८)

वसुधामृत तळे—माल्यवन्त पर्वत के नीचे; अग्नसुत—सुग्रीव; बाळिपुत्र—अंगद; जाम्बव—जाम्बवान्, भल्लुकराज; ताराक्ष—एक बन्दर। (४७-४८)

विश्रामिले रामचन्द्रे रामचन्द्र विधि।
विदित उदित सप्तऋषि कि सन्निधि। ४९।

सरलार्थ—जब उपर्युक्त सात सेनापति श्रीरामचन्द्र जी के समीप बैठे, तो प्रभु श्रीरामचन्द्र मे वास्तविक रमणीय चन्द्र का विधान हुआ। (अर्थात् यह प्रतीत हुआ कि श्रीरामचन्द्र में रमणीय चन्द्र ने आकर विश्राम प्राप्त किया हो।) फिर उन सात सेनापतियों को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो चन्द्र के समीप सप्तर्षिनक्षत्र (मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ) उदित हुए हों। (अर्थात् चन्द्र के पास सप्तर्षिनक्षत्रों का उदय जैसा सुहावना दीखता है, श्रीरामचन्द्र के समीप इन सात सेनापतियों का बैठना वैसा सुहावना लगा।) (४९)

रामचन्द्रे—प्रभु श्रीरामचन्द्र में; रामचन्द्र विधि—रमणीय चन्द्र का विधान; बिदित—प्रकाशित; सन्निधि—समीप, पास; (उत्प्रेक्षा)। (४९)

वेढ़िबे क्रमक्रमरे ऋक्षपन्ति पुणि।
बातात्मज युवराज दुहें गले आणि। ५०।

सरलार्थ—इसके बाद जैसे तारों की पंक्तियां चन्द्र को घेरती हैं, वैसे भालुओं की पंक्तियाँ पुनः क्रम-क्रम से प्रभु श्रीराम जी को घेरेंगे। इसलिए हनुमान् तथा अंगद दोनों उन्हे ले आने के लिए पर्वत के नीचे गये। (५०)

ऋक्षपन्ति—तारों की पंक्तियां, भालुओं की श्रेणियां; (श्लेष); बातात्मज—हनुमान्; युवराज—अंगद; आणि—लाने के लिए। (५०)

बिभ्राजन्ति चक्रवर्त्ती परा चापधारी।
बाहिनी पुच्छन्ति नाम बळकु उच्चारि। ५१।

सरलार्थ—सैन्यो से घिरे धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र ऐसे सुशोभित हो रहे है, मानो सार्वभौम सम्राट् हों, (अर्थात् ससागरा धरा के अधीश्वर हो।) अनन्तर हर एक सैन्य का नाम तथा पराक्रम जानने के लिए प्रभु प्रत्येक को पुकार कर यह पूछने लगे। (५१)

बिभ्राजन्ति—सुशोभित होते हैं; चक्रवर्त्ती परा—सार्वभौम सम्राट् की तरह; चापधारी—धनुर्द्धारी श्रीराम; बाहिनी—सैन्यों से; उच्चारि—पुकार कर। (५१)

बसन्ति तोष बर्द्धन से नब मदन।
बन्द्य हेले चन्दने जगतप्राण पुनः। ५२।

सरलार्थ—वसन्त कन्दर्प का सन्तोष बढ़ाता है। उसी तरह वसन्त नामक एक सेनापति ने नूतन कन्दर्प के सदृश श्रीरामचन्द्र के आनन्द को वढ़ाया। जैसे वायु चन्दन वृक्ष के संसर्ग से जगत मे वन्दनीय होती है, वैसे सृष्टिरक्षक श्रीरामचन्द्र जी चन्दन नामक सेनापति द्वारा वन्दित हुए। (५२)

नव मदन—नूतन कन्दर्प; जगतप्राण—वायु, सृष्टिरक्षक। (श्लेष, उपमा) (५२)

बेळे बेळे अनाइले गबाक्ष बोलन्ते।
बिक्रमि सेपरि आसे गबय आसन्ते। ५३।

सरलार्थ—जब किसी ने यह बता दिया कि यह गवाक्ष नामक सेनापति है, तो प्रभु ने उसकी ओर बारबार निहारा, मानो खिड़की के मध्य बाहर निहार रहे हों। जब सेनापति गवय आ रहे थे, तो प्रभु बोले, "यह तो गयल के समान तेजी से आ रहा है। (५३)

गबाक्ष—एक वानर सेनापति, झरोखा; गवय—एक वानर सेनापति, गयल। (श्लेष, उपमा) (५३)

बर्ष्म - मधुरे कञ्चन डाळिम्ब उत्फुल।
ब्यवस्थिते पनसकु कराइ सफळ। ५४।

सरलार्थ—जैसे वसन्तकाल कचनार तथा दाड़िम दोनों वृक्षो को पनपाता तथा बिगसाता है, वैसे श्रीराम जी के मनोहर रूप ने कञ्चन तथा दाड़िम नामक दोनों सेनापतियों को परमानन्द दिया। (अर्थात् ये दोनों श्रीराम का रूप देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए।) फिर वही वसन्त काल, जैसे पनस वृक्ष को नियमानुमार फैलाता है, वैसे श्रीरामचन्द्र के मनोहर रूप ने पनस नामक सेनापतिको सफल कराया। (अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन से उसका जीवन सफल हुआ।) (५४)

बर्ष्ममधुरे—वसन्तकाल, मनोहर रूप से; कञ्चन—कंचनार वृक्ष, इस नामका सेनापति; डाळिम्ब—दाडिम वृक्ष, इस नामका सेनापति; पणस—पनसवृक्ष, इस नामका सेनापति, (श्लेष, उपमा) (५४)

बर्द्धनकारक पनशीळरे सुशीळ।
बिकाशि महीन्द्रशिरी महीन्द्रे चपळ। ५५।

सरलार्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्र ने पनशील नामक दलपति से सद्‌व्यवहार बढ़ाया। (अर्थात् उसका बड़ा आदर किया।) फिर उन्होंने महीन्द्र नामक यूथपति में शीघ्र ही राजलक्ष्मी का विकास किया। (अर्थात् महीन्द्र नामक सेनापति ऐसा आनन्दित हुआ मानो उसने राज-सम्पदा का लाभ किया हो।) (५५)

सुशीळ—सद्‌व्यवहार; महीन्द्रशिरी—राजलक्ष्मी, राजसम्पद। (५५)

बिबिध - सुखद से द्विविद नाम ग्रेणु।
बळ कषि दाशरथि शउरिर एणु। ५६।

सरलार्थ—श्रीराम जी ने अपने दर्शनमात्र से ही द्विविद नामक सेनापति को विविध सुख प्रदान किया। पिता दशरथ जी ने शौरी (शनिश्चर) महाग्रह का बल कसा था। इसलिए उनके पुत्र दाशरथि (श्रीराम) ने शौरी नामक सेनापति का बल कसा। (५६)

दाशरथि—दशरथ के पुत्र श्रीराम; शौरि—शनिश्चर महाग्रह, शौरि नामक सेनापति। (५६)

बर्ण चाहुँ नीळ देखि से नाम उदित।
बोलु नळ बोइले अवधि संख्याकृत। ५७।

सरलार्थ—नील नामक यूथपति की ओर देख श्रीराम ने कहा, "क्या इसका नाम नील है? वर्ण के अनुसार इसका नाम यथार्थ हुआ है।" अनन्तर श्रीराम ने सेनापति नल का नाम सुनकर कहा, "जिस प्रकार नल या पदिका के द्वारा जमीन के आयतन का निर्णय किया जाता है, उसी प्रकार यह नल सेनापति समुद्र-जल की कलना करेगा। (५७)

नळ—जमीन नापने का एक डंडा, नल नामक सेनापति; अवधि—अब्धि—समुद्र। (श्लेष) (५७)

बिलोकि गन्धमादन सेहि बोलि स्मरे।
बिकाशे कुमुद रामचन्द्र सहजरे। ५८।

सरलार्थ—पर्वत के समान मोटे शरीरवाले गन्धमादन नामक यूथपति को देखकर श्रीराम ने समझा, शायद यह गन्धमादन पर्वत है। जैसे रमणीयचन्द्र (अथवा पूर्णचन्द्र) कुमुद (कोई फूल) का प्रमोद करता है, वैसे प्रभु रामचन्द्र ने 'कुमुद' नामक सेनापति को आनन्दित करके अपने नामकी सार्थकता प्रतिपन्न की। (अर्थात् कुमुद नामक सेनापति प्रभु श्रीराम के दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ।) (५८)

कुमुद—कोईं फल, वानर सेनापति; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, श्रीरामजी; (श्लेष) (५८)

बळ गले केशरी एहाकु के समान ।
बर्ण बेनि काळिञ्जनु शुणि महास्वन । ५९ ।

सरलार्थ—अनन्तर केशरी नामक यूथपति को देखकर प्रभु ने कहा, "इससे के सरि ? —अर्थात् बल में इसके समान और कौन है ? —याने यह अद्वितीय वीर है।" फिर कालिञ्जन नामक सेनापति से मेघ का-सा महागर्जन सुनकर श्रीरामने कहा, "शायद यह सेनापति (इसके आद्य दो अक्षर —'कालि', अर्थात्) मेघ है।" (५९)

केशरी—वानर सेनापति, के सरि (कौन इसके समान है ?); काळिञ्जन—सेनापति, काळि—मेघ। (५९)

बिल्वबने पृथ्वी कपि याक देले स्थान ।
बिष्णुमायारु करि से होइला बर्द्धन । ६० ।

सरलार्थ—श्रीराम ने सब कपियों के ठहरने के लिए उनको बेल के बन में स्थान दिया। वह वन विष्णु जी की माया द्वारा पनपा था। (६०)

बिल्वबने=बेलके वनमें; पृथ्वी—समूचे, सारे, सब। (६०)

ब्रह्माण्ड याहा उदरे प्रळये सम्भाइ ।
बुलि मार्कण्डेय ऋषि अन्त पाइ नाहिँ । ६१ ।

सरलार्थ—जिन विष्णु भगवान् के उदर में प्रलयकाल में सारा ब्रह्माण्ड लीन हो गया था और मार्कण्डेय ऋषि भ्रमित होकर भी जिनका अन्त नही पा सके, उन बिष्णु जी का अन्त कौन पा सकेगा ? (६१)

बुलि—घूमकर, भ्रमित होकर। (६१)

बाषठि पदरे सैन्यभेट छान्द शेष ।
बीरबर उपइन्द्र भञ्ज कहे रस । ६२ ।

सरलार्थ—यह 'सैन्य-भेट' (सैनिको से मिलन) छान्द बासठ पदो में समाप्त हुआ। वीरवर उपेन्द्र भञ्ज ने इस रस की अभिव्यक्ति की। (६२)

सैन्यभेट—सैन्यों से मिलन। (६२)

॥ इति द्वात्रिंश छान्द ॥

त्रयत्रिंश छान्द

राग—घण्टारव

बिभूषा जटा मुकुट । बिजे माल्यबन्त कूट ।
बेढ़िछन्ति चउकति यूथपति कि आज्ञा देबे सम्राट । १ ।

सरलार्थ—जटा-मुकुट से विभूषित होकर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी माल्यवन्त पर्वत की चोटी पर विराजमान हुए है। इसकी प्रतीक्षा करते हुए कि वे राजाधिराज (श्रीराम जी) कुछ आदेश दें, नल, नील आदि सेनापति उनके चारों ओर घेरे रहे है। (१)

कूट—शिखर, चोटी; चउकति—चारों ओर; यूथपथि—सेनापति, दलपति। (१)

बारबेनि लोके सार । बीरधू ख्यात याहार ।
बोलन्ति सुग्रीबे प्रिया खोजि एबे दिगे दिगे यान्तु चार । २ ।

सरलार्थ—जिनकी श्रेष्ठ वीरता चौदह भुवनों मे प्रसिद्ध है, वे वीर-वर श्रीराम जी सुग्रीव जी से बोले, "अब मेरी प्रिया की खोज करने के लिए हर दिशा में दूत जावे। (२)

बारबेनि—बारह और दो, चौदह; लोके—भुवनों में; सार—श्रेष्ठ; बीरधू—वीरता; ख्यात—प्रसिद्ध; याहार—जिनकी; यान्तु—जावे; चार—दूत। (२)

बिळ, बन, गिरि, पुरे । बिळसन्तु लोड़िबारे ।
बिळम्ब न करि सन्देश समस्त देशरु आणन्तु खरे । ३ ।

सरलार्थ—वे दूत लोग गर्त्तो, विवरों, वनों, पर्वत-गुफाओं, गाँवो और नगरों में सीता की खोज करते हुए भ्रमण करें और विलम्ब किये बिना सभी देशों में से सन्देश शीघ्रातिशीघ्र लावे। (३)

बिळ—गर्त्त, विवर; बिळसन्तु—भ्रमण करे; लोड़िवारे—खोजते हुए; आणन्तु—लावें; खरे—शीघ्र ही। (३)

बड़े ये राबकु बिहि । बोलाइ राबण सेहि ।
बन्दी करिछि के रमणीमणिकि समूळ करिबा ताहि । ४ ।

सरलार्थ—जो खूब जोर से चिल्लाता है, उसे रावण बोलते है। फिर रावण नामक एक राक्षस है। इसलिए पहले यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि मेरे नारी-रत्न को किस रावण ने बन्दी करके रखा है। (४)

राब—शब्द, गुंजार, आवाज; समूळ—निश्चित; ताहि—उसी को। (४)

बसिबा स्थान आहुरि। बणा हेब सेहिपरि।
बास कुळटार स्थिति डाकिनीर रक्षग्राम लङ्कापुरी। ५ ।

सरलार्थ—उसी तरह फिर रावण के निवास-स्थल के बारे में भी भटकने की शंका है। उसका वासस्थान लंकापुरी है। परन्तु कुलटाओं, डाकिनियों और राक्षसों के वासस्थानों को 'लंका' कहते है। इसलिए यह जान लेना अत्यावश्यक है कि किस लंका में उस रावण का घर है। सुतरां यह जान लेना कि राक्षसों का ग्राम जो लंकापुरी है, उसी में मेरी प्रियतमा सीता है। (५)

आहुरि—फिर; वणा—भौचक्का, भटका; कुळटा—व्यभिचारिणी स्त्री; डाकिनी डाइन, चुड़ैल; रक्षग्राम—राक्षसों का ग्राम। (५)

बाद कनक नगरे। बिहन्ताइबा बेगरे।
बिबुधाचळे कि समुद्र से कूळे यिबाकु संशय करे। ६ ।

सरलार्थ—हम लोग तुरन्त जाकर स्वर्णपुरी लंका में पहुँच जाते और वहाँ युद्ध छेड़ देते। परन्तु हमें इसका पता नही कि वह कनकनगरी मेरु पर्वत पर है अथवा समुद्र के पार बसी हुई है। इसलिए हमें इसपर संशय हो रहा है कि हम लोग कहाँ जावें। (६)

बाद—युद्ध; कनक नगरे—सुवर्णपुर (लंका) में; विबुधाचळ—मेरु पर्वत। (६)

बैदेही सीता मो रामा। बैदेही बणिक बामा।
बिष्णुपदी सीता गुड़कारगृह सितारे नोहि बिभ्रमा। ७ ।

सरलार्थ—मेरी प्रिया का नाम 'वैदेही' एवं 'सीता' है। परन्तु वणिक की पत्नी का नाम 'वैदेही' है, गंगा जी का नाम 'सीता' है और हलवाई के घर में मिलनेवाली शर्करा या मिसरी का नाम भी 'सिता' है। इसलिए सावधान रहना कि नामों में समता होने के कारण तुम लोगों को इन चीजों में मेरी प्रिया का भ्रम न होने पावे। (७)

रामा—प्रिया, पत्नी; विष्णपदी—गंगा, गुड़कार-गृह—हलवाई के घर को; सितारे—शक्कर में, मिसरी में; नोहि—न हो; विभ्रमा—विशेष भ्रम। (७)

बुझिब पुणि सहजे। बहे षड़नाम से य़े।
बैदेही, जानकी, मैथिळी, पार्थिबी, य़ोजनगन्धा, सीता य़े। ८ ।

सरलार्थ—तुम लोग सहज ही अर्थात् निःसन्देह रूपसे जान सकोगे कि जिसने वैदेही, जानकी, मैथिली, पार्थिवी, योजनगन्धा और सीता—ये छः नाम धारण किये होंगे, वही मेरी प्रिया है। (८)

षड़ नाम—छः नाम। (८)

ब्रह्माण्डे न थिला सरि । बिपाक कर्मु मोहरि ।
विनिन्द्यरे निन्द्य उपमा देबाकु होइला समान करि । ९ ।

सरलार्थ—मेरी प्रियतमा सीता के सहित ब्रह्मांड में कोई समान नही था । परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि उन्ही अनिन्द्या सीता से आज निन्दनीय उपमाओं को समान करते बना । (९)

विपाक कर्मु—दुर्भाग्य के हेतु; विनिन्द्य—अनिन्द्य, प्रशंसनीय । (९)

बिधाता बिधानी नोहि । बुध कबि थिले कहि ।
बहि ईरिषा ता सर्जना उपमा दिआइ बिच्छेद बिहि । १० ।

सरलार्थ—पण्डित तथा कवि लोग कहते है कि मेरी प्रिया विधि-निर्मिता नहीं है । इसलिए ईर्ष्यापरवश होकर उसने यह बिछोह सघटित किया है, ताकि वह (बिछोहजनित कृशता के कारण) सीता की तत्सृष्ट पदार्थो से उपमा दे सके । (१०)

वुध—पण्डित । (१०)

बढ़िण चूर्ण कुन्तळ । बळिथिब अर्द्धभाल ।
बक्षोरुहे मुख मेळ करिथिब ए दृष्टिकृते सफळ । ११ ।
बिभाबरी अबशेषे । बिधुन्तुद अळपग्रासे ।
वारुणी अचळ चूळे पूर्णशशी प्रभाहीन यथा दिशे । १२ ।

सरलार्थ—उसे ही मेरी प्रिया सफलतापूर्वक समझो, जिस रमणी के अलक उसके ललाट के अर्द्धभाग से आगे बढ गये होगे और जिसने अपने वदन को स्तनो से मिला रखा होगा । (अर्थात् चिन्ता के हेतु जो अपना मुख झुकाये बैठी होगी ।) रात्रि के अन्त में राहु से थोड़ा-सा निगला हुआ पूर्णचन्द्र पश्चिम दिशा के अस्ताचल की चोटी पर जैसा निष्प्रभ दिखाई पडता है, कुचोपरि सीता का अलकाच्छन्न वदनमण्डल वैसा निष्प्रभ दिखाई दे रहा होगा । (११,१२)

पूर्णकुन्तळ—अलक; बक्षोरुहे—स्तनों में; बिभावरी—रात्रि; बिधुन्तुद—राहु; वारुणीअचळचूळे—पश्चिम दिशास्थ अस्त पर्वत के शिखर पर; (उपमालंकार)।(११,१२)

बळि शोभा रोमाबळी । बर्ण कुच पाण्डु झळि ।
वल्लकी उरे आउजाइ शारदा चिन्ता राग गुण भाळि । १३ ।

सरलार्थ—जैसे वाग्देवी अपनी वीणा को अपने वक्ष से उठँगाकर राग-रागिनियो की चिन्ता करती है, वैसे मेरी प्रिया सीता अब पांडु रंगवाली कुच-तुंबी, त्रिवली रूपी खूँटी और रोमावली रूपी डोरी से वनी वीणा को अपने हृदय से उठँगाकर मेरे गुणों की चिन्ता कर रही होगी ।(१३)

बळि—त्रिबली, पेट पर पड़ने वाली (तीन) शिकनें; कुच—स्तन; बल्लकी—वीणा; उरे—वक्ष पर, आउजाइ—उठँगाकर, सहारे टिकाकर; शारदा—सरस्वती, वाग्देवी। (१३)

बिमळ नयनु जळ। बहि पडुथिब तळ।
बिज्वळित शंख नीळ हिंगुळरे शायकुँ खसे कि फळ। १४।

सरलार्थ—मेरी प्रियतमा सीता के दोनों निर्मल नयनों से अश्रु-जलविन्दु बहते हुए नीचे गिर रहे होंगे। वे विन्दु ऐसे प्रतीत हो रहे होंगे मानो सफेद, नीले तथा लाल रग से दीप्तिमन्त नयन-शरों से फल नीचे गिर रहे हों। विशेषः—नयनो की तुलना शरों से की जाती है। (१४)

बिज्वळित—दीप्तिमन्त; शंख—सफेद रंग, नीळ—नीलारंग; हिंगुळ—ईँगुर का अर्थात् लाल रंग; शायकुँ—शरो से, नयनोंरूपी शरो से; फळ—शर के अग्र भाग; उत्प्रेक्षालंकार।

विशेषः—नयनों की तुलना शरों से की जाती है। (१४)

बक्र चाहाणि सन्धान। बिफळु न थिब घेन।
बाणासनभूरु भीरुर अञ्जन शिञ्जिनी हेबारु शीर्ण। १५।

सरलार्थ—यह समझना कि नयन-शरों के फलहीन होने के कारण सीता अब अपनी तिरछी निगाह रूपी शर-सन्धान नही कर रही होंगी। फिर मेरी भीरु प्रियतमा के अश्रु-जल से उनका नेत्राञ्जन धुल गया होगा। इस प्रकार उनके भ्रूलता-धनुष से अञ्जन-प्रत्यंचा के टूट जाने पर वे अपने कटाक्ष-रूपी शर-सन्धान नही कर सकती होंगी। भाव यही है कि हमेशा शोक करते रहने के कारण अब सीता के नयनों मे पूर्ववत् शोभा नही होगी और मन मे हर्ष भी नही होगा। ऐसी हालत मे कामोद्दीपक कटाक्षपात उनके लिए एकान्त असम्भव है। (१५)

वक्र चाहाणि—तिरछी निगाह, कटाक्ष; बिफळु—विवर्जित फल (फलहीन) होने के कारण; घेन—समझो; बाणासन—धनुष; भूरु—भ्रूलता; भीरुर—डरपोक (सीता) के; अञ्जन—कज्जल; शिञ्जिनी—प्रत्यंचा; शीर्ण—टूटा होगा। (१५)

बाजि खरश्वास तार। बिभङ्ग भजि अधर।
बिम्बफळ पाचि शुखिगला रुचि करिथिब अङ्गीकार। १६।

सरलार्थ—उष्ण खरश्वास बहकर लगने के कारण उनके सुरग अधरों ने रक्तिमाहीन हो ऐसी छवि धारण की होगी मानो बिम्बफल पककर सूख गये हों। (विरह-ताप से निःश्वास की उष्णता और प्रखरता अनुभूत होती है)। (१६)

विभंग—रक्तिमाहीन; विम्वफळ—कुन्दरू; रुचि—शोभा, छबि; अंगीकार—स्वीकार, ग्रहण, धारण। (१६)

बिशीर्णरे सुकुमारी। बहिथिब मध्यशिरी।
विचारुछि गरु मध्य अति सरु होइथिब काहा परि। १७।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने आगे कहा, "मैं सोचता हूँ कि सुकुमारी सीता का शरीर विरह के कारण विशेष कृश होते हुए भी सुन्दर दीख रहा होगा। फिर विशेष सोचता हूँ कि सीता के स्वाभाविक शरीर में उनकी कटि अत्यन्त कृश दीखती थी। अव उनके क्षीण शरीर में उनकी कृश कटि किसके समान हुई होगी ? (१७)

विशीर्ण—विशेष क्षीण; मध्य—भी; गरु—गुरुत्वके साथ; मध्य—कटि, कमर; सरु—क्षीण; काहा परि—किसके समान ? (१७)

बोलिब येते युबती। बिरहिणी एहि मति।
बिगत चन्दने पल्लब शयने न थिब ये घेन मति। १८।

सरलार्थ—तुम लोग कह सकते हो, "जगत में जितनी युवतियाँ विरहिणी होती हैं, सभी की तो ऐसी हालत होती है। तब हम आपकी प्रिया को कैसे पहचानें ?" परन्तु यह समझना कि साधारणतया स्त्री लोग विरहावस्था में विरहताप से अपने को वचाने के लिए चन्दनादि शीतल द्रव्य शरीर पर पोतती है और सुकोमल पत्र-शय्या पर सोती है। परन्तु इसके विपरीत जो स्त्री विरहताप से अपने को वचाने के लिए ये सव उपचार नही कर रही होगी (अर्थात् जो अपने शरीर पर चन्दन नही पोतती होगी अथवा पत्र-शय्या पर नही सोती होगी), उसे ही मेरी प्रिया समझना। (१८)

एहि मति—इस प्रकार; घेन—ग्रहण करो, समझो; मति—मनमें। (१८)

बामदेव - बामा केते। बिभाति समा जगते।
बन्धु सङ्गते मो से त अर्द्ध अङ्गी विरही हेबे केमन्ते। १९।

सरलार्थ—इस जगत में मेरी प्रिया के सहित सौन्दर्य में केवल महादेव जी की पत्नी पार्वती जी कुछ हद तक समान हो सकती है। परन्तु वे तो हमेशा शिवजी के अर्द्धांग में वास करती है। सुतरां वे कैसे विरहिणी हो सकती है ? (अर्थात् पार्वती जी विरहिणी नही है।) अतएव तुम लोग देखो कि जो पार्वती जी से अधिक सुन्दरी और फिर विरहिणी है, वही मेरी प्रिया है। (१९)

बामदेबबामा—महादेवजी की पत्नी, पार्वती; विभाति—सौन्दर्य; बन्धु सङ्गते मो—मेरी प्रिया के सहित; केमन्ते—कैसे। (१९)

बाक्य मन्द होइथिब । बरषा पिक स्वभाब ।
वृक्ष हेब तुम्भे मो कथा श्रबण जम्बु पान कराइब । २० ।

सरलार्थ—बरसात मे कोयल का स्वर धीमा हो जाता है। (अर्थात् वह मूक हो जाती है।) परन्तु जामुन का रस पीने से उसका स्वर निकल आता है। उसी प्रकार वर्तमान (मुझसे विरह के हेतु) मेरी प्रिया का स्वर रुद्ध हो गया होगा। (अर्थात् वह मूक होकर बैठी रही होंगी।) सुतरां अगर तुम वृक्ष बनकर उन्हे मेरा प्रसंगरूपी जामुन का रस पिलाओगे, तो उनका स्वर अवश्य ही निकल आएगा। (अर्थात् मेरे विरह के कारण मूक मेरी प्रिया तुम लोगों से मेरा प्रसंग सुनकर निश्चय मुँह खोलकर बातें करेगी।) (२०)

मन्द—धीमा; पिक—कोयल; जम्बु—जामुन, जंबू। (२०)

बारता शुणिले मोर। बदने प्रसन्न तार।
बहि आणु मन्दे दृढ़ करि शिळे कचाड़ि देब मुकुर। २१।

सरलार्थ—मेरा प्रसंग सुनते ही वह अपने बदन पर प्रसन्नता धीरे धीरे वहन कर लाएँगी। उस समय तुम लोग उनकी मुख-कान्ति देखोगे तो आईने को तुच्छ समझकर उससे यह कहकर कि तुझमे कौन-सी शोभा या कान्ति है, उसे पत्थर पर पटक दोगे। (भावार्थ यह है कि जब सीता मेरा सन्देश सुनेंगी, तब वह फूली न समाएँगी। उनकी उस समय की मुखशोभा की तुलना में आईने की कान्ति अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होगी।) (२१)

शिळे—पत्थर पर; कचाड़िदेव—पटक दोगे; मुकुर—दर्पण, आईना। (२१)

बहिबाकु शात रङ्गे। बीर सात सात सङ्गे।
बसन्त पूर्बरे पद्मिनी-क्षीणकु नाश अर्थे पेषि बेगे। २२।

सरलार्थ—इस उद्देश्य से कि सैन्य सेनापति लोग आपस में मिल-जुलकर खेलकूद करते हुए प्रसन्नता सहित आगे बढ़ते जावे, श्रीरामचन्द्र ने प्रत्येक दलपति के साथ सात-सात के हिसाब से वीर सैन्य दिये। (जैसे वसन्त समय पद्मिनी लता की क्षीणता का नाश करता है, वैसे) इस अभिप्राय से कि वसन्त नामक दलपति पद्मिनी जातीया मेरी प्रिया सीता की (विरह-जनित) क्षीणता का नाश कर सके, श्रीरामचन्द्र ने उसे पूर्व दिशा की ओर शीघ्र ही भेजा। (क्योंकि वसन्त पूर्व दिशा का अधिपति है)। (२२)

शात—सुख, प्रसन्नता; रङ्गे—हर्ष से। (२२)

बिभेदने दुःखराशि। बारुणीकि शौरि पेषि।
बर्गे उत्तरे शतबळी अबळा-बळद हेबा मनासि। २३।

सरलार्थ—शौरि (शनि) पश्चिम दिशा का अधिपति है और वह दु:खराशि का विनाशकारी है। इसलिए शौरि नामक कपि सेनापति को श्रीराम ने पश्चिम दिशा की ओर भेजा ताकि वह उनकी प्रिया की दु:खराशि का नाश कर सके। (अथवा शौरि, अर्थात् कृष्ण, दु:खराशि का नाश करते है। इस दु:खनाश के लिए उन्होंने शौरि नामक सेनापति को भेज दिया।) फिर यह सोचकर कि मेरी प्रिया तो अवला, अर्थात् बलहीना है, उन्होंने शतबली, जो उन्हें बल देगा, नामक यूथपति को उत्तर दिशा की ओर भेजा। (२३)

बिभेदने—नाश करने के लिए; वारुणीकि—पश्चिम दिशा की ओर; शौरि—शनिग्रह, कपि सेनापति, (कृष्ण); श्लेश; बर्गे—भेजा; अबळा—बलहीना, स्त्री। (२३)

बाळी आनन्द कारणे। बाळिनन्दन दक्षिणे।
बिघ्न नाहिँ हनुमान अनुमान मानघ्न हेब बीक्षणे। २४।

सरलार्थ—ये अगद वालि के नन्दन (पुत्र) है। (अर्थात् इन्होने बालि को आनन्द प्रदान किया था।) "सुतरां ये निश्चय ही मेरी बाली (प्रिया) सीता को आनन्द प्रदान करेंगे।"—इस अभिप्राय से श्रीरामचन्द्र ने उन्हें दक्षिण दिशा की ओर भेजा। फिर उन्होने अनुमान लगाया कि हनुमान का तो विघ्न (विनाश) नही और उन्हे देखते ही सीता के मान का नाश होगा। इसलिए उन्होंने हनुमान् जी को अंगद जी के सहित भेज दिया। (२४)

बाळीनन्दन कारणे—पत्नी सीता के आनन्द के लिए; बाळिनन्दन—बालिपुत्र अंगद; श्लेष; मानघ्न—मान-नाशक, मान का नाश करने वाला; बीक्षणे—देखते ही। (२४)

बार्त्ता कहे राम नेइ। बन्धु देख सिन्धु डेइँ।
बिश्वास न कले आश्वास कर तु एहि मुद्रिकाकु देइ। २५।

सरलार्थ—यह समझकर कि हनुमान विश्वासी दूत है, रामचन्द्र ने उन्हे अपने पास बुलाकर बड़े गोपनीय ढंग से उनसे कहा, "मेरे मित्र! तुम समुद्र पार करके मेरी प्रिया सीता को देखोगे। यदि वह विश्वास न करे कि तुम मेरे दूत हो, तो तुम उन्हें यह अँगूठी दिखाकर उनमे विश्वास पैदा करना और उन्हे नाना प्रकार की सान्त्वनाएँ प्रदान करना।" यह कहकर श्रीराम ने अपनी उँगली से अँगूठी निकालकर उसे हनुमान जी के हाथ पर रख दिया। (२५)

आश्वास—सान्त्वना, ढाढ़स; मुद्रिका अङ्गूठी। (२५)

बिश्वास एणे न कले। बोल चित्रकूट शैळे।
बिचित्र चित्रक गइरके परा लेखिथिले तब भाले। २६।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने आगे कहा, यदि इससे (अर्थात् अँगूठी पाकर) भी वह तुम पर विश्वास न करें, तो तुम कहना, 'चित्रकूट पर्वत पर वास करते समय आपके पतिदेव ने आपके भालपट पर गेरू से अनूठा तिलक अकित किया था न? (अर्थात्, क्या आपको याद नही कि उस समय पति ने आपके ललाट पट पर गेरू से तिलक अकित किया था ?)' (२६)

चित्रक—तिलक; भाले—ललाट पर। (२६)

बिळसु ये कीशशिशु। बड़ भये कोळे पशु।
बिराजि तो चिता कान्त हृदे कान्त तो भाले से हृदपाशु। २७।

सरलार्थ—'फिर इस समय (जब आपके पतिदेव आपके ललाट-पट को गेरू से चित्रित करते थे,) बन्दर के बच्चो ने आपके निकट क्रीड़ा शुरू कर दी, तो भय से आपने उन्हे गले लगा लिया। फलस्वरूप, आपका ललाट-पटस्थ गैरिक चित्र उनके (पति के) हृदय पर लग शोभित होने लगा एवं उनका (पति का) हृदय-विलेपित भस्म आपके शरीर पर लगने से सुहावना दिखाई दिया।' (२७)

कीशशिशु—बन्दर के बच्चे; कोळे पशुं—गोद मे घुसते, गले लगाते; चिता—गैरिक चित्र; हृदपांशु—हृदय की विभूति, हृदयविलेपित भस्म। (२७)

बारुणी प्राची माधुरी। बेनि स्थान सन्ध्या परि।
बिम्ब सबितार चन्द्र कर तार कथा हेल स्नेह भरि। २८।

सरलार्थ—'तब आप दोनो सस्नेह आपस में यों बातचीत कर रहे थे। आप पतिदेव से बोल रही थी, "आपका हृदयदेश मेरे गैरिक रंग के तिलक के हेतु सूर्यमण्डल के अस्तराग से रञ्जित सायकालीन पश्चिमी आकाश की तरह लाल दीख रहा है।" तो आपके पतिदेव बोल रहे थे, "तुम्हारा हृदय मेरे भस्म के कारण चन्द्र-कर दीप्त सन्ध्याकालीन पूर्वाकाश की तरह दिखाई दे रहा है।" (अर्थात् आपने उनके हृदय की सायंकालीन पश्चिमाकाश से और उन्होने आपके हृदय की सायंकालीन पूर्वाकाश के साथ समानता की थी।)' (२८)

बारुणी—पश्चिम दिशा; प्राची—पूर्व दिशा; बेनि—दोनों; बिम्ब सबितार—सविता बिम्ब—सूर्यमण्डल; चन्द्रकर तार—चन्द्रकिरण की दीप्ति। (२८)

बदाइ देबु पाबनि। बिहुँ मधुशय्या बेनि।
बह्नि साक्षी करि कला नियमकु चित्ते थिब एका घेनि। २९।

सरलार्थ—"हे वायुपुत्र हनुमान! तुम उन्हें और भी समझाकर कहोगे कि आप दोनो ने सुहागरात को सुहाग-सेज पर दीप-वह्नि को

साक्षी बनाकर जो नियम किया था, उसे आप एक ही चित्तमें याद रखे रहिएगा। कभी मत भूलिएगा।" (२९)

बदाइदेबु—कह देना; पावनि—पवन-पुत्र हनुमान; वह्नि—दीपशिखा। (२९)

बड़ चतुरी से सत। बोलन्ते किस कह त।
बोलिब बोलिछ आन आननकु न चाहिँब श्रद्धायुक्त। ३०।

सरलार्थ—वह सीता बड़ी चतुर (सयानी) है। तुम्हारी यह बात सुनकर वह कहेगी—"क्या यह सच है? तो बताओ न, 'मैंने कौन-सा नियम (शर्त्त) किया था?' तब तुम उत्तर देते हुए कहोगे, "आपने यह कहा था कि श्रद्धायुक्त होकर (अर्थात् आसक्तिवशतः) मैं आजीवन दूसरे पुरुष का मुखावलोकन नहीं करूँगी।" (३०)

चतुरी—सयानी; आन आननकु—दूसरे पुरुष के मुख को; न चाहिँबि—नहीं देखूंगी। (३०)

वहि स्वरूप कन्दर्प। वशीकरणकु आप।
वसाइ चापरे उन्माद मोहन रोपि मिळिले समीप। ३१।

सरलार्थ—"फिर कहना कि आपने और भी यह कहा है कि चाहे वश करनेवाला स्वयं कन्दर्प भले ही अपना स्वरूप धारणपूर्वक अपने धनुष पर उन्मादन तथा मोहन नामोंके दोनों शरों को सन्धानते हुए मेरे समीप उपस्थित हों, तो भी मैं उसकी ओर नहीं निहारूँगी।" (३१)

वशीकरणकु—वश करने वाला (कन्दर्प), चापरे—धनुष पर; रोपि—आरोपण अथवा सन्धान करके। (३१)

बोलिब एथकु याहा। बान्धि गण्ठि करि ताहा।
बाणिज्य करिबा सेहि सुबर्णरे नाश होइब उत्साहा। ३२।

सरलार्थ—"तुम्हारी ये सारी बातें सुनकर वह जो उत्तर देंगी, उसके अक्षरों को सुवर्ण के समान तुम गाँठ लगाकर बाँध लाना। उसी सुवर्ण से वाणिज्य करने पर मेरी उत्कण्ठा का नाश होगा। (अर्थात् मेरा दुःख-सन्ताप दूर होगा।)

(भावार्थ यही है कि तुम्हारी बातें सुनकर वह जो कुछ बोलेगी, तुम उसे न भूलना एवं उसे ज्यों का त्यों मेरे सामने प्रकाश करना। क्योंकि तुमसे वह सारी बातें सुनकर मेरे हृदय की वेदनाएँ दूर हो जाएंगी।)" (३२)

सुवर्ण—अच्छे अक्षर, सोना; (श्लेष); उत्साहा—उद्वेग, उत्कंठा। (३२)

बरषा याए नोहिब। वियोग भरसा देब।
वल्लभ जानुसिंहासनाभिषेकी एथि भितरे होइब। ३३।

सरलार्थ—"तुम उन्हें भरोसा देकर यह कहना कि आपका बिछोह आगामी बरसात तक भी नही रहेगा। (अर्थात् बरसात के पहले अपने पतिके साथ आपका निश्चय ही मिलन हो जाएगा।) इसी बीच (शिशिर ऋतु से ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक) पतिदेव के जानु-सिहासन पर आपका तिलक होगा। (अर्थात् ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक आप पतिदेव से आलिंगनपूर्वक मिलन कर सकेंगी।)" (३३)

बल्लभ—स्वामी, पतिदेव, जानुसिंहासनाभिषेकी—जांघों रूपी सिंहासन पर अभिषिक्त। (३३)

बोलिब न कर चिन्ता। बधे रावणर सीता।
बिराध-बध परशुराम गर्व खर्ब तब बिलोकिता। ३४।

सरलार्थ—"फिर बोलना—'अयि सीते! रावण के विनाश के बारे में आप कोई चिन्ता न करे। श्रीरामचन्द्र जी निश्चय ही रावण का वध करेगे। आपने अपनी ही आँखों से उन्हें विराध राक्षस का वध तथा क्षत्रियकुलान्तक परशुराम का गर्व खर्व किये देखा है। (मैं उस प्रसंग पर आपसे अधिक क्या बताऊँ'?)" (३४)

तब बिलोकिता—आपने अपनी आँखों से ही देखा है। (३४)

बेळ हेउ शुभ सर्ब। बरद दुर्गा माधब।
बारिधिसुता नरसिंह हुअन्तु ठाब करि बाहुड़िब। ३५।
बाहार तारानन्दन। बातज गन्धमादन।
बैद्य कपिङ्क ताराक्ष जाम्बबान नळ नीळ बिद्यमान। ३६।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र ने हनुमान जी से ये सारी बाते समझा-बुझाकर कहने के बाद उन लोगों को आशीर्वाद के वचन सुनाये—"तुम लोगों का सदा मगल हो और सीता का पता लगाकर कुशल-क्षेम से वापस आने में तुम्हें दुर्गा तथा माधव एव लक्ष्मी-नृसिंह आदि देवदेवियाँ वरद हों।" उसी शुभ अवसर पर अंगद, हनुमान, गन्धमादन, सुषेण, ताराक्ष, जाम्ववान्, नल, नील आदि जितने दलपति मौजूद थे, उन्होने सीता का अन्वेषण करने के लिए यात्रा अनुकूल कर दी। (३५,३६)

बेळ—समय, अवसर; बरद—वरदायक; दुर्गा—देवी दुर्गा; माधव—श्रीकृष्ण, नारायण, बारिधिसुता—समुद्रकन्या लक्ष्मी; नरसिंह—नृसिंह भगवान्; ठाब करि—पता लगाकर; बाहुडिब—लौटोगे। तारानन्दन—अंगद; बातज—वायुपुत्र हनुमान्; बैद्य कपिङ्क—कपियो के बैद्य, सुषेण। (३५-३६)

बिहरिले दिशे-दिशे। बानरदूते रभसे।
बिशेष कटक ग्राम घोष पक्वणादि तहिँ बासे-बासे। ३७।

सरलार्थ—तदनन्तर वानर दूतगण, अत्यन्त शीघ्रता से दिशा-दिशा में विहार करने लगे। खासकर के राजधानियों, ग्रामो, आभीर-पल्लियो तथा शवरों के निवासो आदि स्थलों के प्रत्येक गृह मे उन लोगों ने सीता की खोज की। (३७)

दिशे दिशे—दिशा-दिशा में; रभसे—शीघ्रता से, वेग से, कटक—राजधानियों में; घोष—ग्वालो की बस्तियो मे, पक्वणादि—शवरो के वास-स्थानो में। (३७)

बसुधामृते न छाड़ि। बड़ सान आदि लोड़ि।
बिबरे-बिबरे शृगे-शृगे रङ्गे खोजि गले दुःख पड़ि। ३८।

सरलार्थ—वे पर्वतों में से किसी एक को न छोड़कर वड़े या छोटे, हर एक पर्वत के प्रत्येक गह्वर तथा चोटी में कष्ट झेलते हुए भी कौतुक से सीता को खोजते गये। (३८)

बसुधाभृते—पर्वतों में; बड़—वड़े; सान-छोटे; लोड़ि—खोजते गये; बिबरे-बिबरे—प्रत्येक गह्वर में; शृंगे-शृंगे—प्रत्येक चोटी में; रंगे—कौतुक से। (३८)

बने-बने पुणि लोड़े। बृक्षे-बृक्षे क्रोड़े-क्रोड़े।
बिभाकर उदे होइबा स्थानरु ग़ेउँ स्थाने याइ बुड़े। ३९।

सरलार्थ—फिर उन्होंने प्रत्येक वन, वृक्ष तथा वृक्षके प्रत्येक खोड़र मे घूमते हुए सीता को खोजा और भी सूर्य के उदयाचल से अस्ताचल (पूर्व से पश्चिम दिशा) तक भटकते रहे। (३९)

क्रोड़े क्रोड़े—प्रत्येक खोड़र में; बिभाकर—सूर्य; ग़ेउँ स्थाने—जिस स्थान में; बुड़े—डूबता है, अस्त होता है। (३९)

बारिद शीत बसति। बिरचिबा याए गति।
बाहुड़े त्रिदिग दूत मास पूर्ण काहिँ न देखिण सती। ४०।

सरलार्थ—बन्दर तथा भालू दूत पृथ्वी में जहाँ तक वर्षा तथा शीत ऋतु का वास है, अर्थात् पृथ्वी के सब स्थानों में घूमकर सीता का अन्वेषण किया। परन्तु तीन दिशाओं मे गये दूत किसी भी स्थान में सती को न देखकर, जब एक महीना पूरा हो गया, वापस चलेआये। (४०)

बारिद—मेघ, वर्षा; शीत—शिशिर ऋतु; बसति-वास; काहिँ—कहीं, किसी भी स्थान में। (४०)

बिधि-पूर्ब करि पूर्ब। बारता कथित सर्ब।
बिहिले उत्तर उत्तर, कहिले प्रतीचीर प्रतिठाब। ४१।

सरलार्थ—अनन्तर पूर्व दिशा को गये दूतों ने वहाँ की सारी वार्त्ताएँ यथाविधि श्रीराम जी के सामने अभिव्यक्त की। इस प्रकार उत्तर तथा

पश्चिम दिशाओं में गये हुए सैन्यों ने अपना-अपना अन्वेषण-समाचार प्रभु से कहा। (४१)

बिधिपूर्वक—यथाविधि; उत्तर—उत्तर दिशा में गये दूतों ने; उत्तर—जवाब, खोज की खबर; (यमक); प्रतीचि—पश्चिम दिशा; प्रतिठाब—पता। (४१)

बृक्षक नामरे रम्या। बेनि फुल जळधामा।
बामा-नेत्रस्थित, लता मुख-जात, ठिक महीपति नामा। ४२।

बपु सार आदि करि। बिलोकि बार्त्ता प्रचारि।
बळिदान घेना एका देखि नाहुँ काहिँ अछि सुकुमारी। ४३।

सरलार्थ—दूत-दलपतियो ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा, "हम लोगों ने एक वृक्ष (नागरंग अर्थात् नारंगी) के नामानुसार मनोहर नामधारी ऐरावत नामक पूर्वदिग्गज से, दो जलजात फूलों (पुण्डरीक-अर्थात् कमल व कुमुद-अर्थात् कोईं) के नामों से अभिहित पुण्डरीक व कुमुद नामधारी (क्रमशः) अग्नि तथा नैर्ऋत दिशाओं के दोनों हाथियों से, स्त्रियों के नेत्रस्थित पदार्थ (कज्जल अर्थात् अञ्जन) के नामानुसार अञ्जन नामक पश्चिम दिशा के हाथी से, लता से जात 'पुष्प' व मुख से जात 'दन्त'—इन दोनों शब्दों के सम्मिलित नाम धारण करनेवाले—अर्थात् पुष्पदन्त नामक वायव्य दिग्गज से, फिर ठीक 'महीपति' (राजाधिराज अर्थात् सार्वभौम) नामानुसार सार्वभौम नामक उत्तर दिग्गज से और अन्त मे 'बपुसार' (बपु अर्थात् 'प्रतीक' शब्द के आद्य में 'सार' अर्थात् 'सु' लगाने से सुप्रतीक हुआ) अर्थात् सुप्रतीक नामक सुन्दर शरीरधारी ऐशान्य दिग्गज से सीता जी का दर्शन-सन्देश पूछा कि सुकुमारी सीता कहाँ है। परन्तु उन लोगों ने कहा कि हम लोगों ने सिर्फ बलि का दानग्रहण करनेवाले (अर्थात् वामन) वामन नामक दक्षिण दिग्गज को नहीं देखा है; शेष सभी स्थानों में तलाश करके हम लोगों ने कहीं भी सीता के दर्शन नही पाये। (४२,४३)

बृक्षक—नागरंग, ऐरावत।
१. ऐरावते नागरंगे इत्यमरः।
ऐरावते पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः। इति।
२. अंग प्रतीको वयव इति चामरः। (४२-४३)

बिस्मये राम निर्बाक। बोले प्ळबग-नायक।
बळाहक होइ दक्षिण दूते से तोषिबे चित्तचातक। ४४।

सरलार्थ—दूत-दलपतियों के मुखों से ऐसा समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्र विस्मित होकर मौन रहे। उन्हें मौन देखकर वानरपति

सुग्रीव ने कहा, "दक्षिण दिशा में भेजे गये दूत लोग निश्चय ही मेघ के सदृश आपके चित्त-चातक का सन्तोष-विधान करेंगे।" (४४)

निर्वाक—मौन; प्ळवगनायक— वानरों के राजा सुग्रीव, वळाहक—मेघ। (४४)

बज्र अङ्गदसम्भब। बिद्युज्जरत जाम्बब।
बर्ण नीळ पबमान जात मेघ घन रस उपुजिब। ४५।

सरलार्थ—अंगद में जो हीरा शोभा पा रहा है, वह वज्र के समान होगा। वृद्ध जाम्बव अपने बुढापे के हेतु सहज ही निष्प्रभ है। वे बिजली के सदृश होंगे। नील नामक सेनापति, जिनका वर्ण नीला है, वे नीले रग के मेघ के समान होगे और बातसुत हनुमान जी पवन के रूपमें दिखाई देंगे। इसी तरह जब वे लोग इकट्ठे होंगे, तब घन रस की उत्पत्ति होगी। (अर्थात् इसी तरह वे सब सेनापति वर्षा के विभिन्न विभावो के रूप मे मिलकर जब वृष्टि करेंगे, तब आपके चित्तरूपी पपीहे की आशा पूरी होगी।) (४५)

बज्र—हीरा, अशनि; बिद्युत्—निष्प्रभ, बिजली; जरत—वृद्ध; पबमानजात—पवनसुत हनुमान्, पवन के रूप मे जात। (४५)

बोधन्ते श्रीराम हसि। बिकाशे शिशिर आसि।
ब्याघ्र प्राय जाड़ माड़ि बसुं लोके मोड़ि होइ इषि भाषि। ४६।

सरलार्थ—सुग्रीव से ऐसी सान्त्वना पाकर श्रीराम जी मुसकुराये। इसी समय पृथ्वी मे शिशिर ऋतु पनपने लगी। बाघ के समान भयंकर जाड़ा धरती पर टूट पड़ा। इसलिए ससार के लोग परस्पर के सहित लगे बैठे और 'इषि' 'इषि' कहने लगे। (४६)

माड़ि बसुं—टूट पड़ने से; मोड़ि होइ—मुड़कर, इषि—कष्टसूचक ध्वनि; भाषि—कहने लगे। (४६)

बासर शिशु समरे। बढि आसइ क्रमरे।
बाणी शुकपोत रुत प्रकाशित कउतुक सुरम्यरे। ४७।

सरलार्थ—जब शिशिर ऋतु आ पहुँची, हेमन्त ऋतु के छोटे दिन शिशु के समान धीरे-धीरे वढ़ने लगे और शिशुओं की तोतीली बातों के समान तोतों के बच्चो की मीठी बोली सुनाई पड़ी। (शिशिर ऋतु में दिन धीरे-धीरे बढ़ते है और तोतों के बच्चों की ध्वनि सुनाई पड़ती है।) (४७)

बासर—दिन, दिवस; शुकपोत—तोतों के बच्चों की; रुत—ध्वनि, बोली। (४७)

बिगत - शय्या प्रातरे। बुड़ करे साधु नीरे।
बृजिन दोष नाहिँ बोलि आम्भर माधब नाम उच्चारे। ४८।

सरलार्थ—इस ऋतु में साधु लोगों ने प्रत्युष में शय्याओं का त्याग किया। उन्होंने जल मे स्नान (माघ-स्नान) किया एवं यह कहते हुए कि "हम लोगों को पाप का कोई दोष नही है", विष्णु भगवान् का नाम उच्चारण किया। (४८)

विगतशय्या—सेज छोड़कर; वृजिन—पाप; माधव—विष्णु भगवान्। (४८)

बर्त्तुळ लाङ्गळी फळ। बिचित्र चित्रे उज्ज्वळ।
बचन ए रूपे धरिबा बिचारि पूजिले किशोरकुळ। ४९।

सरलार्थ—किशोर बालकों ने गोल नारियल फलों को नाना प्रकार के अनूठे रंगों से उज्ज्वल रूप से चित्रित किया एव यह विचार करके कि गुरु के बताये हुए पाठ को हम लोग इसी माफिक (चित्रणपूर्वक) पकड़ लेंगे, नारियलों की पूजा की। (तात्पर्य यह है कि माघ के महीने मे श्रीपञ्चमी या सरस्वती पूजा के उपलक्ष्यमें बालक नारियलो को चित्रित करके उनकी पूजा करते है।) (४९)

बर्त्तुळ—गोल; लांगळी फळ—नारियलों के फल; बचन—गुरु के बताये हुए पाठ; किशोरकुळ—दस से पन्द्रह वर्ष तक की उम्र के बालक। (४९)

बाल्य अबस्था सेबती। बिसर्ज कि पुष्पबती।
बहे राग अति तरुण घातकी अनुसरिण झटति। ५०।

सरलार्थ—इस ऋतु मे सेवतीलता अपनी बाल्यावस्था को पार करके पुष्पवती हुई। (अर्थात् सेवती लतापर फूल खिल उठे।) फिर जैसे युवा पुरुष पुष्पवती स्त्री का अनुसरण करते है, उसी प्रकार धातकी पौधे ने अत्यन्त स्नेह से शीघ्र ही पुष्पवती सेवती लता का अनुसरण किया। (अर्थात् धातकी लता पर भी फूल खिलने लगे।) (भाव यही है कि शीत की ऋतु में सेवती लता तथा धातकी पौधे पर फूल खिलने लगे। (५०)

बिसर्जि—छोड़कर, पार करके; पुष्पवती—बालिका का रजस्वला होना, फूलो का खिलना; राग—अनुराग, स्नेह; तरुण—युवा; धातकी—घव का फूल, झटति—शीघ्र ही। (५०)

बिरही सुमना हते। बिटमधुलिट - व्राते।
व्यथित त्यजि समत्ते रसे मज्जि अनबरतरे माते। ५१।

सरलार्थ—शिशिर ऋतु में मालती रूपिणी प्रियाओं के विनाश से भ्रमरों रूपी विटपुरुष विरही हुए। अनन्तर जैसे विरही विट पुरुष पहली प्रिया को भूलकर दूसरी स्त्री का भोग करते है वैसे विरही भौरे मालती फूलों से विरह-जनित व्यथा को त्याग कर दूसरे फूलों से मस्ती के साथ रस (पुष्परस रूपी श्रृंगार रस) का भोग हमेशा करने लगे।

(तात्पर्य यही है कि शीत ऋतु में मालती के फूल नष्ट हो जाते है, अर्थात् हरगिज नहीं खिलते। सुतरा भौंरे इस ऋतु मे उस लता के पास बिल्कुल नही जाते।) (५१)

सुमना—मालती, प्रिया; विट—जार पुरुष; मधुलिटव्राते—भ्रमरों का समूह; अनवरतरे—हमेशा। (५१)

बिहरु दक्षिण चारे। वाटे एक महासुरे।
बिरोधी केश भुज पाद धरिण मारे कफोणी प्रहारे। ५२।

सरलार्थ—इस समय दक्षिण दिशा की ओर जानेवाले दूत विहरते-विहरते, मार्ग मे एक बड़ा असुर उनका विरोधी हुआ। उन्होने उसके केश, भुजाएँ तथा पैर पकड़कर कुहनी के प्रहार से उसका काम तमाम कर डाला। (५२)

कफोणी—कुहनी। (५२)

वुलि-वुलि श्रम पाइ। बिळेक भेटिले ग्राइ।
व्याळ साहस गुन्थामाळी सदृश प्रवेश तहिँ झसाइ। ५३।

सरलार्थ—इस प्रकार घूमते-घामते वे थक गये। चलते-चलते अन्त में उन्होने पथ पर एक गर्त्त देखा। यह आशा लगाये कि उस गर्त्त मे सीता जी हों, उन्होने साँप के-से साहस के साथ गूथी हुई माला के समान परस्पर का हाथ पकड़कर उस गर्त्त में धीरे-धीरे प्रवेश किया। (५३)

विळेक—एक गर्त्त; व्याळ—साँप। (५३)

बैकुण्ठ खर्बट परि। बिलोकित एक पुरी।
बसिछि रामाए लावण्यधामाए नानारत्नकूटसरि। ५४।

सरलार्थ—उस गर्त्त मे प्रवेश करके उन्होने वैकुण्ठ पाटना की तरह एक नगरी देखी। उस नगरी मे नानाविध रत्नपुञ्ज के सदृश एक लावण्य-धामा रमणी बैठी हुई थी। (५४)

खर्बट—पाटना; रामाए—एक रमणी; नानारत्नकूट सरि—विविध रत्नपुंज। (५४)

बाळ अळक रोमाळी। बक्रडोळा भुरुबल्ली।
बारबार नीळमणि मरकत श्रेणीरु दिशइ झळि। ५५।

सरलार्थ—उस रमणी के बाल, अलकाएँ और रोमावली नीलमणियाँ एवं टेढ़ी पुतलियाँ व भ्रूलताएँ मरकत-मालाओं के समूह से अधिक चमक रही है। (५५)

अळक—चूर्णकुन्तल; बक्रडोळा—टेढी पुतलियाँ; भुरुवल्ली—भ्रूलताएँ; वारबार—समूह; झळि—चमकना (५५)

बिड़म्ब ओष्ठ नेत्रान्त । बनज चरण हस्त ।
बिद्रुम माणिक्य अमूल्य छबिरे चित्त हुए अनुरक्त । ५६ ।

सरलार्थ—उस रमणी के ओष्ठ व नेत्र प्रान्त विद्रुम और पादपद्म व हस्तपद्म माणिक्य के सदृश सुशोभित हो रहे थे। उसके अगों की ऐसी अमूल्य छवि से दर्शक का चित्त उसकी ओर बरबस खिंच जाता है। (५६)

बिड़म्ब—सदृश; ओष्ठ—ओठ; नेत्रान्त—नेत्रप्रान्त; बनज—कमल, पद्म; बिद्रुम—मूंगे; माणिक्य—मानिक, लाल। (५६)

बिकाश हास दशने । बिघटे नख प्रसन्ने ।
बज्रमणि मोतिपन्ति अपघन काञ्चने जड़ि यतने । ५७ ।

सरलार्थ—मुख पर हॉसी प्रगट होते वक्त उसके दॉतो की पक्ति हीरों की पंक्ति के सदृश चमक रही है। उसके नाखून उज्ज्वलता मे मोतीमाला के समान दीख रहे है। इसी तरह सारे अंग-रत्न उसके शरीर-सुवर्ण से मनोहर रूप से जड़ित हुए है। (५७)

दशने—दन्तपंक्ति; प्रसन्ने—उज्ज्वलता में; बज्रमणि—हीरा; मोतिपन्ति—मोती की पाँतें, अपघन—शरीर; काञ्चने—सुवर्ण से। (५७)

बोले के नोहे ए रामा । बिधाता पूजा प्रतिमा ।
बाञ्छित त्रिपुर मोहे तिनि पुष्प देइ करिछि सुषमा । ५८ ।
बासुअछि महमह । बदन सरसीरुह ।
बिरळ अङ्गुळि निश्चे चम्पाकळी शिरीषकोमळ देह । ५९ ।

सरलार्थ—उस रमणी को देखकर दूतों मे से किसी ने कहा, "यह स्त्री नही है, यह विधाता की एक पूजा-प्रतिमा है। सुतरां उसने तीन भुवनों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) को विमोहित करने के अभिप्राय से तीन फूलों (कमल, चम्पक कलियों तथा शिरीष) की शोभाओं को इकट्ठा करके इस शोभा-प्रतिमा को बनाया है। इसका सुन्दर वदन कमल, समुज्ज्वल उंगलियाँ चम्पाकलियों और कोमल शरीर शिरीष के फूल के सदृश महक रहा है। इस प्रकार विधाता ने कमल, चम्पक और शिरीष—इन तीन फूलों से इस पूजा-प्रतिमा को सुसज्जित तथा सुशोभित करके बनाया है। (५८-५९)

सुषमा—शोभा; सरसीरूह—कमल; बिरळ—समुज्ज्वल; रूपकालंकार। (५८-५९)

बोले के मन्त्रे सजीब । ब्यर्थ नुहइ ए ध्रुब ।
बसे स्थाने-स्थाने खञ्जन मक्षिका चक्रबाक असम्भब । ६० ।

सरलार्थ—फिर किसी ने कहा, "यह पूजाप्रतिमा मन्त्र द्वारा सजीव की गई है। यह बात व्यर्थ या निरर्थक नहीं है। यह पूर्णतः सत्य है। क्योंकि इसके मुख में नेत्रोंरूपी खञ्जन, उदर में रोमावली रूपी मक्खियाँ और वक्षपर स्तनो रूपी चक्रवाक—इस तरह शरीर के स्थान-स्थान पर विविध जीव बैठे हुए है। सुतरां इस रमणी मे असंभव संभव हुआ है।" (६०)

ध्रुव—सत्य। (६०)

बिचारु बोइले बाळी। बानरे काहिँर मिळि।
बोइले श्रीराम दूत आम्भे खोजुअछु बने मइथिळी। ६१।

सरलार्थ—दूत लोग ऐसा विचार कर रहे थे कि उस रमणी ने कहा, "अरे, तुम लोग किस स्थान के रहनेवाले बन्दर हो? यहाँ किसलिए आ पहुँचे हो?" बन्दरों ने कहा, "हम लोग श्रीरामचन्द्र जी के दूत है। उनकी पत्नी मैथिली सीता को यहाँ वन में ढूँढ रहे है।" (६१)

काहिँर—किस स्थान के? (६१)

बड़ तृषार्त्त होइलुँ। बिबरकु चाहिँ देलुँ।
बिष्किरे नीरे जरजर तहिँरु बाहारे आम्भे पशिलुँ। ६२।

सरलार्थ—उन्होने आगे कहा, "हम लोग घूमते-घूमते अत्यन्त प्यासे हो गये और जल पाने की आशा से इस गर्त्त के अन्दर ताक दिया और यहाँ के भीतर से पक्षियो को पानी से सराबोर हुए निकलते देखा। तब हमने यह आशा करके कि इसमे जल अवश्य होगा, इसमें प्रवेश किया।(६२)

विबर—विल, गर्त्त; विष्किरे—पक्षी; नीरे—जल से; जरजर—सराबोर; वाहारे—निकलते। (६२)

बिनाश हे तृषा क्षुधा। बानरे बोइला मुग्धा।
बुजि नेत्र याअ बिदृश्यपुररु स्वयंप्रभा मुहिँ सिद्धा। ६३।
बिश - भुज पुरे नेइ। बन्दी करिछि बैदेही।
बोलकु ताहार आचरण करि बिन्ध्यगिरिपरे शोहि। ६४।

सरलार्थ—दूतों की वात सुनकर रमणी ने उनसे कहा, "मैं एक तपस्विनी हूँ, मेरा नाम स्वयप्रभा है। मेरे आदेशानुसार तुम लोगों की भूख-प्यास दूर हो जाय। रावण ने सीता को चुरा अपने पुर में बन्दी कराके रखा है। तुम लोग अपनी-अपनी आँखें मूँदकर इस अदृश्यपुर से चले जाओ।" दूतों ने उसकी वात मानकर अपनी-अपनी आँखें मूँद लीं तो एकाएक जाकर विन्ध्य पर्वत पर विराजमान हुए।(६३,६४)

मुग्धा—रमणी; विदृश्यपुररु—अदृश्यपुर से; सिद्धा—तपस्विनी; शोहि—विराजमान। (६३-६४)

बिदृश्यन्ते तहिँ दिश। बिहिले खर निःश्वास।
बिहुँ कुशशय्या अङ्गद सम्पाति पाञ्चिला करिबि ग्रास। ६५।

सरलार्थ—पर्वत पर खड़े होने से उन्हें सब दिशाएँ दिखाई दीं। तदनन्तर उन लोगो ने लम्बी साँस लेकर आपस मे बातचीत की, "हम लोग विपन्मुक्त हो गये।" इस समय इसके लिए कि किस प्रकार सीता का पता लगाना होगा अंगद ने (प्राण-विसर्जन के लिए) कुश की सेज बिछाई। कुशासन पर सोते (अरुण-पुत्र) सम्पाति ने उन्हें खाने की इच्छा की। (६५)

बिदृश्यन्ते—दिखाई देने से; बिहुँ—विधान करते; पाञ्चिला—इच्छा की, चाहा। (६५)

बदुँ से आउमानङ्कु। बार्त्ता कह श्रीरामङ्कु।
बिनाश ताहाङ्क कार्य्यरे जटायु लभे परम धामकु। ६६।

सरलार्थ—अनन्तर अंगद ने अपने दूसरे सहचर दूतों से कहा, "तुम लोग जाकर श्रीरामचन्द्र जी से यह समाचार कहो कि जटायु ने जिस प्रकार उनका कार्य सम्पादन करने जाकर मृत्युलाभपूर्वक वैकुण्ठधाम गमन किया, उसी प्रकार मैं भी उन्ही के कार्य में विनाश (मृत्यु)-लाभ पूर्वक परमधाम (स्वर्ग)-लाभ करूँगा।" "(अर्थात् रामचन्द्रजी से मैं यह अनुरोध कर रहा हूँ कि वे मुझे यह मौका दे कि मै उन्हीं के कार्य सम्पादन में मृत होकर स्वर्गलाभ करूँ।)" (६६)

बदुँ—कहा; आउमानङ्कु—औरों से, दूसरे सहगामी दूतों से; परमधामकु—स्वर्गधाम को। (६६)

बिहग पचारे ताङ्क। बधिला के जटायुकु।
ब्यबस्थिते सर्ब कहुँ बोले टेकि निअ हे मोते स्नानकु। ६७।

सरलार्थ—अंगद की बात सुनकर संपाति ने उनसे पूछा, "जटायु का वध किसने किया?" अगद ने जटायु की सारी रामकहानी आद्योपान्त ठीक रूप से उसे कह सुनाई। तो संपाति ने कहा, "स्नान के लिए मुझे शीघ्र ही उठा लो।" (६७)

बिहग—पक्षी संपाति; के—किसने; ब्यवस्थिते—ठीक ढंग से; टेकि निअ—उठा लो। (६७)

बाज पल्लबिला तार। बिक्ळेशे छुउँ से बीर।
बसाइ पृष्ठरे लङ्का देखाइला सुमरुँ आसि कुमर। ६८।

सरलार्थ—जब जाम्बवान् आदि वीरो ने उसके शरीर को छू दिया, तो एकाएक आसानी से उसके पंख पनप उठे। उसके अपने वेटे को याद करते ही, वह आकर वहाँ उपस्थित हुआ और अपने पिता के आदेशानुसार दूतों को अपनी पीठ पर बैठाकर लंकापुर दिखाया। (६८)

वाज—पंख, डैने; विक्ळेशे—अक्लेश ही,अनायास से; सुमरुँ—याद करते ही।(६८)

बेनि गले हिमाळये। वञ्चे अष्ट कष्टमये।
बिनिद्रे रजनी निए रघुपति शीतार्त्ते सीतार्थे लये। ६९।

सरलार्थ—अनन्तर सम्पाति तथा उसके पुत्र, दोनो ने हिमालय में गमन किया। इसलिए अंगदादि आठ वीरो ने बड़े कष्ट से दिन बिताये। इधर रघुपति ने शीत से प्रपीडित होकर इस सोच में कि सीता इन दिनों कैसे जीवित रहेंगी, विना सोये राते बिताई। (६९)

बेनि—दोनों; विनिद्रे—नींद के बिना, बिना सोये; शीतार्त्ते—शीत से प्रपीड़ित होकर; सीतार्थे—सीता के लिए; लये—सोच में। (६९)

बपु एके थरथर। बाजे पञ्चशर शर।
बळबन्तकु एते दूर करइ कि नोहिब अबळार। ७०।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने सोचा, "एक तो जाड़े से शरीर ठिठुर रहा है, तिस पर फिर कन्दर्प का शर बजने से वलवान् होने पर भी मैं इतना कष्ट अनुभव कर रहा हूँ। तो अबला (दुर्बला) सीता की क्या दुर्दशा नही होती होगी ?" (७०)

बपु—शरीर; पञ्चशर—कन्दर्प; अबळार—दुर्बला स्त्री सीता की। (७०)

बेनि-बेनि मेळ होइ। बान्ध के पाश न थाइ।
बिन्धे के देह बिहीने क्षत बिना हृदय मध्ये भेदइ। ७१।

सरलार्थ—शीत ऋतु मे सयोगी स्त्री-पुरुष का मिलन देखने से प्रतीत होता है जैसे कोई बिना फाँस के दोनो को बाँध रहा है। फिर विरही-विरहिणी को देखने से प्रतीत होता है, जैसे कोई देहविहीन (अनंग, कन्दर्प) दोनो को तीर मार रहा है। और वह तीर शरीर में कोई घाव किये बिना जैसे उन्हे बेध रहा है। सचमुच शीत तथा कन्दर्प की यह करतूत बड़ी आश्चर्यजनक है। (७१)

पाश—फाँस (७१)

विचारिले रामचन्द्र । वास्तरि पदे ए छान्द ।
बोले उपइन्द्र मास लेखि कृश बैदेही शोकरे सान्द्र । ७२ ।

सरलार्थ—इधर श्रीरामचन्द्र जी ऐसा विचार कर रहे थे और उधर सीताजी विरह-जनित शोक से जर्जरित होकर विरह के महीनों को गिनती हुई कृश होती गई । भञ्ज कवि ने इस छान्द की बहत्तर पदों में रचना की । (७२)

मास लेखि—विरह के महीनों को गिनती हुई; सान्द्र—जर्जरित, पूर्ण । (७२)

॥ इति त्रयत्रिंश छान्द ॥

चतुस्त्रिंश छान्द

राग—वसन्त

वसन्त समय अति रसमय रभस प्रवेश आसि ये।
विद्रुम छवि सुद्रुम लता भाव पल्लवे सराग दिशि ये।
बिकशि[1]। विकशि[2] कुसुममान ये।
वोलाइले जव नव पुष्पबती भाव रसकले दान ये। १।

सरलार्थ—शीतकाल के वाद अत्यन्त रसमय (शृंगाररस-प्रधान) वसन्त काल शीघ्र ही आकर धरती पर उपस्थित हुआ। सुतरां वसन्त के समागम मे आम आदि अच्छे वृक्ष और प्रियंगु आदि लताएँ इस अभिप्राय से कि हम वर्ण मे प्रवालों (मूँगो) के साथ समान होगे, नये किशलयों से लाल दिखाई देने लगी। पुष्प-समूह घने रूप से (वहुत) खिलने लगे। जैसे पुष्पवती नारियाँ भाव (या अनुराग) से पुरुषों को शृंगाररस दान करती हैं, वैसे पुष्पवती लताओ ने प्रेम से भौरों को पुष्परस रूपी शृगाररस दान किया। तात्पर्य यह है कि वसन्त ऋतु के समागम में वृक्ष-लताएँ फूली-फलीं और भौरों ने आनन्द से पुष्परस पान किया। (१)

रभस—शीघ्र ही; विद्रुम—प्रवाल, मूंगे; सुद्रुम—अच्छे पेड़; सराग—रक्तवर्ण; बिकशि[1]—निविड़ रूप से; विकशि[2]—खिलते हैं; (यमक); कुसुममान—फूल सव; जव—शीघ्र। (१)

वासन्ती मल्ली निआळी छुरिअना यहिँ हेले इच्छावती ये।
बासकु आसि भ्रमरजारे रसि मधुमादकरे माति ये।
वसन्त। बात वास हरे एका ये।
बसाइ न दिए पाशे मधुपकु केतकी सती नायिका ये। २।

सरलार्थ—इस समय में माधवीलता, मल्लिका, नवमल्लिका व सुलताना चपा आदि लताओं ने स्वेच्छाचारिणी (अर्थात् कामुकी) रमणियों की तरह आचरण किया। अर्थात् जैसे जार पुरुष लोग कामुकी रमणियों के घरो में आकर शराव आदि मादक द्रव्य-पानपूर्वक रतिरस में मस्त होते है, वैसे सुगन्ध के हेतु भौरे उपर्युक्त लताओं के समीप आकर पुष्परस रूपी मादक द्रव्य-पान-पूर्वक उनके प्रेम मे मस्त होने लगे। जैसे सती स्त्री शरावी पुरुष को अपने पास वैठने नही देती, वैसे केतकी ने मधुप भ्रमर को अपने पास वैठने नही दिया। (केतकी के पराग से भौरे अन्धे हो जाते है

और उनके पंख टूट जाते है। इसलिए वे केतकी लता के समीप नही आ सकते।) फिर सती स्त्रियों के केवल पति ही उनके वस्त्रो का हरण करने को समर्थ होते है। वैसे एक ही वसन्त पवन ने केतकियों की बास (सुगन्ध) को हरण किया। (२)

बासन्ती—जूही, माधवी लता; निआळी—नवमल्लिका; छुरिअना—सुलताना चंपा; इच्छावती—स्वेच्छाचारिणी, कामुकी; बासकु—निवास-स्थान (घर) को; भ्रमरजारे—भौंरे रूपी विट पुरुष; मधुमादक—पुष्परस-रूपी मादक द्रव्य; बात—पवन (मलय पवन); बास—वस्त्र, सुगन्ध; (श्लेष); केतकी—केवड़ा। (२)

बर्य्यानारी परि फुलमाळ धरि केबल किंशुक थाइ ये।
बेश्या परि चूत कोळे परभृत बसाइ गीत गुआइ ये।
बिहित। बिहि पुन्नाग सुनारी ये।
बिदेश बाहुड़ा समये बसन्ते पुलक याइ सञ्चरि ये। ३।

सरलार्थ—किंशुक वृक्ष स्वयवरा स्त्री के सदृश एक फूल-माला पकड़े खड़ा रहा। (इस समय मे अनगिनत पलाश के फूल खिलते है। परन्तु उनके कोई गन्ध न होने के कारण भौरे उनके पास नही जाते।) जैसे वेश्या पर-पुरुष को अपनी गोद मे बैठाये गीत गवाती है, वैसे आम के पेड़ ने अपनी गोद मे कोयल को बैठाकर उससे सगीत-गान कराया। जैसे विदेश से लौटे पुरुष से मिलन के समय स्त्री-पुरुष, दोनो में आनन्द से पुलक का सचार हो, वैसे पुरुष-श्रेष्ठ (रसिक पुरुष) तथा उत्तम नारी के नाम तथा अभिमान को धारण करने वाले पुन्नाग और सुनारी (अमलतास) वृक्षो मे वसन्तागम में पुलक का सचार हुआ। (अर्थात् पुन्नाग तथा अमलतास वृक्ष खिल उठे।)

वसन्त समय मे टेसू के फूल खिलते है, कोयले आम के पेड़ों पर बैठी बोलती है और पुन्नाग तथा अमलतास खिलते है। (३)

बर्य्यानारी—स्वयंवरा नारी; किंशुक—पलाश, टेसू; चूत—आम; कोळे—गोद में; परभृत—कोयल; गुआइ—गवाकर; पुन्नाग—पुरुषश्रेष्ठ (रसिक पुरुष), पुन्नाग वृक्ष; सुनारी—उत्तम नारी, अमलतास के पेड़। (श्लेष) (३)

बञ्जुळबने मञ्जुळबती सीता एकाळ अबस्था धरि ये।
बिकाशिले मल्ली फुटे तनुचम्पा मदनरसरे पूरि ये।
बिधृत। बिधुमुख धूळि म्लान ये।
बृद्धि होइ दीनभाव अतिशय संयोग पाणि नळिन ये। ४।

सरलार्थ—मनोहारिणी सीता ने इस समय अशोक वन मे इसी काल की अवस्था को धारण किया। क्योकि इस काल में जैसे मल्ली फूल सब

खिलते है, वैसे सीतादेवी ने विरह-जनित अतिशय पीड़ावशतः 'मलि' 'मलि' (मैं मरी, मैं मरी) शब्द का उच्चारण किया। इसी समय चम्पा फूलों के विकसित होने की तरह उनका चम्पक पुष्पोपम गौरवर्ण का शरीर आसक्त हुआ। वसन्तकाल मदनरस (श्रृगाररस) से भरपूर है। वैसे सीताजी का हृदय भी श्रृंगार भाव से भर गया। इस काल में चन्द्र का मुख धूलि के कारण मलिन दीखता है। उसी तरह सीता के मुख-चन्द्र ने काम-पीड़ा वशतः भूमिशयन से म्लान भाव धारण किया। इस काल में दिन बढ़ने लगे। उसी तरह सीता का दीन भाव (विरह के हेतु) बढ़ने लगा। इस वसन्तकाल मे पानी मे कमल अत्यधिक परिमाण में खिलने लगे। वैसे सीता ने अपने हाथों को हमेशा मुख-पद्म से सयुक्त किया। (अर्थात् चिन्तातिशय्य के कारण सीता हमेशा सिर में हाथ देकर वैठीं)। (४)

वञ्जुळ वने—अशोक वन में; मञ्जुळवती—मनोहारिणी; बिधृत—धारण की; पाणि—हाथ, पानी; नळिन—पद्म; तनु—शरीर; असंख्य—विस्तृत रूप से; मदन—कामदेव, धतूरा; (श्लेष उपमा, रूपक)। (४)

बोइले मधु तु मोते डराउछु रम्या पदु रमा घेनि ये।
बसुधाभृते तुहइ हृदयज स्थापु तु बिरहअग्नि ये।
बुधे ये। बिहन्ति शम्भु उपमा ये।
बिनाश चन्द्रार्ध बिपाककर्मरु नोहिबु किपाइँ भ्रमा ये। ५।

सरलार्थ—सीता ने वसन्तकाल को देखकर कहा, "अरे मधुकाल! चूँकि मैं रम्या (सुन्दरी) हूँ, इसलिए मुझे रमा (लक्ष्मी) समझकर तू मधुराक्षस के समान मुझे भय दिखा रही है! मेरे स्तन तो पर्वत नही। तू उस पर विरहाग्नि की स्थापना क्यो कर रहा है? पण्डित लोग स्तनों की शिव से तुलना करते है। परन्तु मेरे भाग्य-विपर्यय से पति के बिछुड़ने से मेरे स्तन-शम्भु नखक्षत रूपी चन्द्रार्द्ध से विवर्जित है। अतएव तुझे भ्रम क्यों न हो? (अर्थात् शिवजी के मस्तक पर जैसे अर्द्धचन्द्र रहता है, वैसे पति-मिलन के समय मेरे स्तनों रूपी शम्भु पर पतिदेव के नखक्षत द्वारा अर्द्धचन्द्र सा चिह्न अकित रहता था। अब वैसा होता, तो मेरे स्तनों को तू शम्भुज्ञान करता। परन्तु अब पतिदेव के विरह के कारण वे चिह्न मेरे स्तनों पर नही है। इसलिए उन्हें शम्भु न समझकर उन्हें पर्वत समझना तेरे लिए स्वाभाविक ही है।) (५)

मधु—वसन्त काल, मधु नामक राक्षस; (श्लेष); वसुधाभृत—पर्वत; हृदयज—स्तन; बुधे—पण्डितलोग, शम्भु—महादेव। (५)

बसिण रसाळे[1] संयोगी रसाळे[2] पञ्चम स्वरकु तहिँ ये ।
बिहन्ते कोकिळ अश्रुरे पङ्किळ गण्ड करि बइदेही ये ।
बोलन्ति । बोलाउ मन्दतनय ये ।
बिशेषरे मन्द त नय न कर परभृत नामे दय ये । ६ ।

सरलार्थ—संयोगी लोगों के आनन्ददायक वसन्तकाल के आम के वृक्ष पर बैठ कोयल ने जब पञ्चम स्वर का तान छेड़ दिया, तो सीता ने उसे सुनकर अपने गण्ड-स्थल को आँसू के जल से पंकिल कर दिया और कहा, "अरी कोयल ! तू मन्दतनय (अर्थात् कौए से पाला पोसा हुआ) है । इसलिए स्वभाववश तो तू बुरा है । अब तू अपना बुरा आचरण न करना और अपने परभृत नाम को सार्थक करना । (अर्थात् दूसरे से प्रतिपालित होने के कारण अपना भृत (भृत्य) पद—अपने दास का भाव—दिखा) । तात्पर्य यह है कि तू मेरे दूत स्वरूप काम कर ।" (६)

रसाळे[1]—आम के पेड़ पर; संयोगी—सम्मिलित पति-पत्नी; रसाळे[2]—आनन्ददायक, रसयुक्त; (यमक); पंकिळ—पंकयुक्त; गण्ड—गाल; मन्दतनय—कौए से पाला पोसा हुआ, कोकिल; मन्द—बुरा; त—तो; नय—नीति, आचरण; (श्लेष); परभृत—कोकिल, दास; नामोदय—नाम को सार्थक करना । (६)

बने अइल तिनि बेनि रहिले एक गला एका होइ ये ।
बोलिबाकु आहा केहि नाहिँ साहा से जन बञ्चिब केहि से ।
बल्लभे । बनप्रिय कह एते ये ।
ब्रह्माण्डनाथ-हात धरिं अनाथ कि शुभुअछि जगते ये । ७ ।

सरलार्थ—अरी कोयल ! तुम प्रियतम से इतना ही कहना—"वन में आप तीन लोग आये । दो रहे, लेकिन सिर्फ एक ही (सीता) अकेली हो गयी । उसकी दारुण व्यथा के समय 'अहह' बोलने के लिए कोई भी सहाय नही है । तो वह वेचारी बचेगी कैसे ? अरी कोयल ! उनसे फिर बोलना कि उन जैसे ब्रह्माण्डनाथ का पाणिग्रहण करके मैं आज अनाथ हो गयी । जगत में क्या सुनाई दे रहा है ? (अर्थात् जगत में इसके लिए प्रभु की जो निन्दा सुनाई पड़ रही है, उसे प्रभु क्या सुन नहीं सकते ?) (७)

तिनि—तीन; बेनि—दो; आहा—अहह; साहा—सहाय; केहि—कैसे; बल्लभे—प्रियतम से; बनप्रिय—कोकिल; कि—क्या; शुभुअछि—सुनाई दे रहा है । (७)

बोलिबे अबा से छाड़ि गला सिना आयत्ते मुँ आसिनाहिँ ये ।
बेनि पिण्ड एक जीबन बिच्छेद पाइँ बिहिथिला बिहि ये ।
बल्लभे । बनप्रिय कह एते ये ।
बिगुण सेबकीरे प्रभु घेनिले से भल हेब केमन्ते ये । ८ ।

सरलार्थ—यह सुनकर वे (मेरे प्रियतम श्रीरामजी) कहेगे, "वह (सीता) मुझे छोड़ चली गयी, मैने तो उन्हें नही त्यागा है ।" परन्तु मेरा कहना यह है कि मै तो अपनी इच्छानुसार यहाँ नही आयी हूँ । एक (रावण) मुझे बलात् यहाँ ले आया है । मेरे विचार मे विधाता ने हम दोनों को विछोह की व्यथा देने के अभिप्राय से दोनों के पिण्डों में एक ही जीवन रख दिया था । अरे कोकिल ! मेरे प्रिय से बोलना कि यदि प्रभु इस दासी के प्रति इस तरह विरक्त होवे, तो इस दासी की भलाई कैसे होगी ? (८)

आयते—अपनी इच्छानुसार; बेनि पिण्ड—दो शरीर; बिगुण—विरक्ति, क्रोध; सेबकी—दासी; भल—भलाई, मंगल, हित; केमन्ते—कैसे । (८)

बंश तपि-कोपानळे दग्ध जाणि ये कुळजात नृपति ये ।
बुहाइ गंगा बिष्णुपदुँ बहुत क्लेश कराइले शान्ति ये ।
बल्लभे । बनप्रिय कह एते ये ।
बिरहतापानळे प्रिया दगध शान्ति न बिचार चित्ते ये । ९ ।

सरलार्थ—यह जानकर कि कपिल महर्षि के कोपानल से अपना वंश दग्धीभूत हुआ, जिस कुल मे उत्पन्न हुए नृप भगीरथ बहुत क्लेश-स्वीकार-पूर्वक तपस्या करके विष्णु भगवान् के पाद से गंगा जी को बहा लाये और स्ववंश के पितरों के अग्नि-ताप की शान्ति करायी । अरे कोकिल ! तुम मेरे कान्त से बोलना—"आपकी प्रियतमा विरह-तापानल से दग्ध हो रही है । आप इसके बारे में जरा भी नही सोच रहे है कि वह इससे किस तरह शान्ति-लाभ करे । —उसी वंश में जो तुम्हारा जन्म हुआ है ! (९)

तपि कोपानळे—तपस्वी कपिल जी के क्रोध रूपी अनल से; बिरहा तापानळे—विरह-ताप रूपी अग्नि से । (९)

बने आसिलादिनु मने विचारि पल्यङ्कशयना एहि ये ।
बक्षबिहीनरे नबपल्लबर शेये न दिअ शुआइ ये ।
बल्लभे । बनप्रिय कह एते ये ।
बसुमती धूळि एबे करि तूळी निद्रा से यिब केमन्ते ये । १० ।

सरलार्थ—जब से मै वन मे आयी, तभी से वे मेरे प्रियतम सोचते रहते, "मेरी प्रिया पलंग पर सोती थी; अब वह कैसे सोये ?" इसी हेतु वे अपने वक्ष के बिना मुझे नवपल्लव शय्या पर भी सोने नही देते। अरे कोकिल ! प्रियतम से इतना ही कहना—"अब आपकी प्रिया धरती की धूल को सेज बनाकर कैसे सो सकती है ?" (१०)

बसुमती—पृथिवी; तूळी—रुई की सेज, रजाई। (१०)

बसन्त-दूत एमन्त कहुँ गत भाळिले से कहिगला ये।
बिन्ध्ये थिला सेना बिमना अङ्गद प्राण बिसर्जिबा कला ये।
बोइले। बारिजीब नोहि सर्बे ये।
बाहुप्लबनरे केते दूर यिबा अन्त त नाहिँ अर्णबे ये। ११।

सरलार्थ—सीता के ऐसा कहते समय वसन्त-दूत कोकिल उड़ गया। तो सीता ने समझा कि शायद वह मेरी बातें श्रीरामचन्द्र जी से बोलने जा रहा हो। उधर बिन्ध्यपर्वत पर सेनाओ को बड़ा दुःख हुआ कि हम लोग श्रीराम जी के अभिप्रेत कार्य के साधन में असमर्थ रहे। इस हेतु अंगद ने अपने प्राण त्यागना ठाना। और सब दूतों ने कहा, "हम लोग तो जलचर जीव नही है। जिस समुद्र का अन्त नही, उसमे हम लोग कहाँ तक तैर कर चले ?" (११)

बसन्तदूत—कोकिल; एमन्त—ऐसा; भाळिले—समझी, सोचा; बिमना—दुखी; बाहुप्ळबनरे—तैरकर, अर्णबे—समुद्र में। (११)

बाहुड़िले पराक्रम-हीन लाज घन गर्जन न सहि ये।
बिक्रमि जळे डेइँ पड़ि बुड़िबा शरभ पराये होइ ये।
बुद्धिकि। शुणि बोले हनुमन्त ये।
बिचारइँ मुहिँ यिबि चन्द्रमुहीँ ठारु आणिबि उदन्त ये। १२।

सरलार्थ—उन्होंने फिर कहा, "यदि हम लोग यही से लौट जावें, तो हम सब अपनी-अपनी कमज़ोरी का परिचय देकर निश्चय ही लज्जित होंगे। सुतरा हम लोगो का अपने-अपने प्राण-धारण करने की अपेक्षा, मेघ का गर्जन न सहकर जैसे आठ-पैरों वाला मृग जल में कूद मरता है, जल में डूब मरना कही अच्छा है।" उनका यह विचार सुनकर हनुमान् ने कहा, "मै सोच रहा हूँ कि समुद्र को पार करूँ और चन्द्रवदना सीता से सन्देश ले आऊँ।" (१२)

शरभ—आठ पैरों वाला मृग; चन्द्रमुहीँ—चन्द्रबदना सीता। (१२)

बोले जाम्बब तोहरे कार्य्य हेव विचारि रघुनन्दन ये।
बेदना निबेदन करि संकेत समर्पि अछन्ति पुनः ये।
बेगरे। बिलंघन कर सिन्धु ये।
बियत मार्गरे याबत प्रकारे मङ्गळ करन्तु विधु ये। १३।

सरलार्थ—हनुमान् की बातें सुनकर भल्लुकराज जाम्ववान् ने कहा, "तुम्हारे ही द्वारा यह कार्य सिद्ध होगा। इसी विचार से रामचन्द्र जी ने तुम्हें अपनी विरह-वेदना निवेदन करके संकेत-स्वरूप एक अंगूठी दी है। इसलिए तुम शीघ्रातिशीघ्र समुद्र को लाँघकर जाओ। आकाश के मार्ग में विष्णु भगवान् तुम्हारा सर्वविध मंगल-विधान करें।" (१३)

बेदना—विरह का दुःख; निवेदन—जताना; संकेत—चिह्न; बियत-मार्गरे—आकाश मार्ग में; विधु—नारायण, विष्णु। (१३)

बृक्ष दिबि स्थिति गिरि अधोगति भक्षणे उदर फाटि ये।
बीर हनुमान करन्ते गमन विषम समस्या घटि ये।
बाहुर। वायुरे तरु सञ्चार ये।
विश्रामुँ मैनाक बुड़ु भक्षुँ दारि उदरकु सिंहिकार ये। १४।

सरलार्थ—वीर हनुमान् के गमन करते समय विषम समस्या संघटित हुई। वृक्ष सब आकाश में स्थित हुए और पर्वत सब पाताल में धँस गये और खानेवाले लोगों के पेट फट गये।

गमन के समय उनके वाहु-जात पवन से वृक्ष सब आकाश में उड़ने लगे। जाते-जाते थककर जब उन्होंने मैनाक पर्वत पर विश्राम किया, वह पाताल में धँस गया। आकाश में उड़ते समय राहुमाता सिंहिका ने हनुमान् को निगल लिया तो वे उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आये।

इस तरह विषम समस्या की पूर्ति हुई। (१४)

दिबि—स्वर्ग में, आकाश में; अधोगति—पातालगमन; बिषम समस्या—अति आश्चर्यजनक घटना; सञ्चार—उड़ना; भक्षुँ—भक्षण करते, निगलते; दारि—विदीर्ण करके; सिंहिका—राहु-माता। (१४)

बचने देबङ्क रचने बिघ्नकु कद्रु गले बाट छाडि ये।
बिळुं बाहार ना सर्पङ्कु तिआरि पड़िछि बिषम धाड़ि ये।
बिष्णु ये। बहिछन्ति राममूर्त्ति ये।
बिशिख धनु करि चक्र गदाकु हरि ए कृत बिपति ये। १५।

सरलार्थ—नागमाता कद्रु हनुमान् के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए आ पहुँची, तो देवताओं की विनती से उन्हें पथ छोड़ दिया। अपने पुत्रों

सर्पों से सान्त्वना देकर उन्होंने कहा, "तुम लोग अभी गर्त्तों से मत निकलो, अब बड़ा विषम काल आ पड़ा है। क्योंकि विष्णु भगवान् ने अब राममूर्ति धारण की है। उन्होंने अपने चक्र तथा गदा को धनुष तथा शर एवं गरुड़ को वानर बनाया है। सुतरां यह हनुमान-रूपी गरुड़ नागों का हन्ता है (इससे जरा छुपकर रहना।) (१५)

कद्रु—नागमाता; विळुँ—गर्त्तों से; विषम घड़ि—कुसमय; बिशिख—शर; हरि—वानर; बिपति—पक्षियों के स्वामी, गरुड़। (१५)

बिभाबसु परि गगने सञ्चरि ताराए खसिला परि ग्ने।
बिपतित, ग्ने पतितत्राहिदूत सुबेळे सुबळ गिरि ये।
बिलोकि। बरण[1] शोभा लङ्कार ग्ने।
बरण[2] कला मने मर्त्यभुबने सर्बपुर अळङ्कार ग्ने। १६।

सरलार्थ—पतितपावन श्रीरामचन्द्र के दूत हनुमान् जी सूर्य के समान आकाश मार्ग में गमनपूर्वक सुअवसर मे सुबेल नामक पर्वत पर उपस्थित हुए, मानो एक तारा नभोमण्डल से खिसक पड़ा हो। अनन्तर लङ्कादुर्ग में प्राचीर की शोभा को देखकर अपने मन में उसकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा, "यह लंकापुरी मर्त्यलोक के पुरो का अलंकार-स्वरूप है।" (१६)

बिभावसु—सूर्य; बिपतित—प्रविष्ट; पतित त्राहि दूत—पतितपावन (अथवा पतित-उद्धारक) श्री रामचन्द्र जी के दूत हनुमान्; सुबेळे—अच्छी बेला में, सुअवसर में; सुबळगिरि—सुबल नायक पर्वत; वरण[1]—प्राचीर, परकोटा; वरण[2]—प्रशंसा (स्तुति), पूजा; (यमक अलंकार)। (१६)

बळय एक पृथ्वी देबी किपाइँ केउँ कुण्डळी निर्माणि ग्ने।
बोलाइ एथिकि कनककटक एठारु होइला जाणि ग्ने।
बिन्धाणि। बिस्तारि मुखकबाटी ग्ने।
बाद्यनाद छळे बोले लगा लगा आउ पटे नाहिँ हटि ग्ने। १७।

सरलार्थ—हनुमान् ने उस स्वर्णमय प्राचीर को देखकर फिर सोचा, "क्या किसी सोनार ने पृथिवी-देवी के लिए यह सोने का कंगन बनाया है? मैं निस्सन्देह रूप से जान सकता हूँ कि इसीलिए इस पुर का नाम 'कनककटक' पड़ा है। उस प्राचीर में एक द्वार देखकर और निकट ही वाद्यनाद या समुद्र का गर्जन सुनकर हनुमान् ने सोचा कि शायद पृथिवी-देवी के पहनने के लिए कोई सोनार उस कगन का मुख खोलकर वाद्य-ध्वनि के मिस उनसे 'इसे लगाओ', 'इसे लगाओ' (इस कगन को पहनो, पहनो) बोल रही है। परन्तु ऐसा और एक न होने के कारण पृथिवी-देवी एक ही कंगन पहनने को इनकार करके हट रही हैं। (तात्पर्य यह

है कि लंका का प्राचीर कंगन के सदृश गोल है। उसे समुद्र घेरे रहने के कारण वह पुरी हमेशा समुद्र के गर्जन से शब्दायमान होती है, और इस पुरी के सदृश दूसरी पुरी पृथिवी मे नही है।) (१७)

वळय—सोने का कंगन; कुण्डळी—सोनार; बिस्तारि—खोलकर; मुखकवाटी—मुँह रूपी द्वार; पटे-एक ही। (१७)

बिरोधाभास उदये ए समये दिन अबसान होइ ये।
बळाराति नाक बिहारकु मति सुर त्वरिते पळाइ ये।
बिळसे। बहन ऐन्द्रि नीडरे ये।
बरुणदिशि रक्तमय आउँसि शुक-बि तुण्ड सत्वरे ये। १८।

सरलार्थ—इस समय दिवस का अन्त हुआ और कवि के मन में विरोधाभास अलंकार का उदय हुआ।

विरुद्धार्थ—इन्द्र ने स्वर्ग मे विहार करने के लिए इच्छा की तो देवता लोग शीघ्र ही स्वर्गपुर छोड़कर भाग गये। इसीलिए इन्द्रपुत्र जयन्त निर्भय वहाँ विहार करने लगा। फिर वरुणदेव (समुद्र) ने निस्सकोच ही लालवर्ण का रूप धारण किया। वरुण की यह अवस्था देखकर शुक्र ने हँसी न संभाल कर अपना मुँह सहलाया। (अथवा वरुण वृक्ष के लालवर्ण दीखने से शुक्र पक्षियो ने शीघ्र ही अपने-अपने मुँह को सहलाया।)

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—इस समय उल्लुओं ने आकाश में विहार करना चाहा, तो सूर्य शीघ्र ही भाग गये। (अर्थात् अस्त हुए।) कौवो ने अपने-अपने घोसले में सुख से वास किया। पश्चिम दिशा के रक्तमय दिखाई देने से सुकवियों (उत्तम कवियों अथवा पण्डितों) ने शीघ्र ही अपना-अपना मुख सहलाया। (अर्थात् शाम होने पर कवि या पण्डित लोग कविता व पाठ-पठन से शीघ्र ही निवृत्त हुए।) (अथवा शाम होने पर तोतो ने अपनी-अपनी काँख के नीचे मुँह रखे सोने के लिए मुँह सहलाये। (१८)

बळाराति—इन्द्र, उल्लू; नाक—स्वर्ग, आकाश; सुर—देवता लोग, (सूर) सूर्य; ऐन्द्रि—इन्द्रपुत्र जयन्त, काक; नीड़रे—घोसले में, (निडरे) निर्भय में; वरुण दिशि—समुद्र दीखना, वरुण देवता (अथवा वरुण वृक्ष), पश्चिमी दिशा; आउंसि—सहलाया; शुकबि—(सुकवि)—शुक्रग्रह, उत्तम कवि; शुक-बि—शुक पक्षी। (१८)

बिसर्ज्जे चक्र अनन्त पाणि रङ्ग तम बाहुडाकु डरि ये।
बिधायक दरध्वनिकि पञ्चास्य सद्म प्रदीपक करि ये।
बिक्रमे। बिदित नोहि मारुति ये।
बत्स धेनु-संगे पुण्यजनपति-दिगुँ पुण्यजनपति ये। १९।

सरलार्थ—विरुद्धार्थ—राहु की 'बाहुड़ा विजय' (प्रत्यावर्त्तन) से डरकर सुदर्शन चक्र ने अनन्तपाणि के रग (अर्थात् भगवान्-के हाथों की क्रीड़ा) को त्यागा। सिंह ने अपने गृह (गुफा) मे कातर ध्वनि प्रकाश करके सबके मन में भय उत्पन्न किया।

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—अन्धकार को लौट आये देखकर चक्रवाक पक्षी ने अनन्तपाणि रंग (जल में विविध प्रकार की रति-क्रीड़ाओं को) त्यागा। सेवकों ने महादेवजी के मन्दिर में दीप जलाकर शंख बजाये।

ऐसे समय मे सीता की तलाश मे गये हुए हनुमान् जी ने छद्मवेश-धारण-पूर्वक उत्तर दिशा से आ रहे गाय-बछड़ों से मिलकर लंकागढ़ में प्रवेश किया, तो द्वारपाल राक्षसों ने उन्हें देखकर चीत्कार किया। (१९)

विसर्जे—त्याग किया; चक्र—सुदर्शन चक्र, चकवा; अनन्त पाणि रंग—भगवान् की हस्तक्रीड़ा की, जल मे विविध क्रीड़ाओ को; तप—राहु, अन्धकार; बाहुडा—लौटना, प्रत्यावर्त्तन; दरध्वनि—शंख ध्वनि, डर की आवाज; पञ्चास्य—सिंह, महादेव जी; सद्मे—गृह मे; प्रदीपक—अत्यन्त कातर स्वर, दिये; मारुति—हनुमान; पुण्यजनपति[1]-दिगुं—कुबेर की दिशा (उत्तर दिशा) से; पुण्यजनपति[2]—द्वारपाल राक्षस; (विरोधाभास, यमक अलकार)। (१९)

बञ्चक बिड़ाळ श्वान एहि स्वन के गला के गला बिहि ये।
बळिमुख परा मुख त दिशिला कपाट किळिले कहि ये।
बायुज। बिचारइ तार मति ये।
बासुकिबिष काळिन्दीजळ भ्रमे पिइ बाञ्छा करे शान्ति ये। २०।

सरलार्थ—छद्मवेशी हनुमान् को देखकर पहरेदार राक्षस चिल्ला उठे। किसी ने कहा, "एक स्यार घुस आया।" किसी ने कहा, "एक बिडाल आ गया।" फिर किसी ने कहा, "एक कुत्ता कहीं से आ घुसा" और किसी ने कहा, "एक बन्दर का-सा मुँह तो दिखाई दिया।" इस प्रकार आपस में बातचीत करते हुए उन राक्षसो ने उत्तर दिशा के दरवाजे बन्द कर दिये। उस समय हनुमान् ने अपने मन मे विचार किया, "ये लोग कालिन्दी जल के भ्रम में सर्पराज बासुकि के विष को पीकर शान्ति पाना चाहते है।" (अर्थात् ये लोग मुझे दुर्ग में यों अवरुद्ध करके खाना चाहते हैं। परन्तु ये नही समझते कि मै विषतुल्य उनका प्राण-नाश करूँगा।) (२०)

वञ्चक—स्यार; बिड़ाळ—बिल्ला; श्वान—कुत्ता; बळिमुख—बन्दर; वायुज—हनुमान्। (२०)

बिशव प्रळय कज्जळजळे हेला प्राय ध्वान्त निशा घोटि ये ।
बाजइ किङ्किणी भ्रमइ लंकिनी बाटे हनुमान भेटि ये ।
बोइला । बानर तु याउ केणे रे ।
बिधा बिधाने अरक्षित पराये मूर्च्छित होइला क्षणे ये । २१ ।

सरलार्थ—संसार का जिस प्रकार काजल के सदृश काले जल से प्रलय हुआ था, उसी तरह निविड़ अन्धकारमयी रजनी ससार को निगलने के लिए उमड़ आयी। चलते-चलते हनुमान् जी ने मार्ग पर एक छोटी घंटी बजाती घूमती हुई लकदेवी से भेट की। लंकदेवी ने हनुमान् को देखकर उनसे पूछा, "अरे बन्दर ! तू कहाँ जा रहा है ?" यह सुनकर हनुमान् ने लंकदेवी को एक घूंसा दिया तो वह एक क्षण के लिए अरक्षित जन की तरह बेहोश हो गयी। (२१)

कज्ज्वळ जळे—काले पानी में; प्राय—तरह, सदृश; ध्वान्त—अन्धकारमय; लंकिनी—लंकदेवी; केणे—कहाँ; विधा—घूंसा। (२१)

बहि चेता कहि ग्रामदेबी मुहिँ तोरे हेलि पराभबी ये ।
बेधा कहिछि दशमूर्द्धा अशुभसूचक लोड़े पार्थिबी ये ।
बायुज । बणिकमानङ्कु चाहिँ ये ।
बिचारे कुबेर नबनिधि घेनि ठाबे ठाबे अछि रहि ये । २२ ।

सरलार्थ—अनन्तर जब लंकदेवी होश में आयी, वह बोली, "मैं लंकिनी हूँ। आज तुझसे मेरा तिरस्कार हुआ। विधाता ने पहले से मुझसे यह बात बताई है कि एक बन्दर के द्वारा तेरा तिरस्कार रावण के लिए अशुभ-सूचक शकुन है। अब जाकर सीता की खोज कर।" तदनन्तर वहाँ के वणिकों की ओर निहार कर वायुसुत हनुमान् ने मन मे विचार किया, "यहाँ क्या कुबेर पद्मादि नवनिधियों को साथ लिये स्थल-स्थल पर ठहरा है ?" (२२)

ग्रामदेबी—लंकानगरी की अधिष्ठात्री देवी; पराभवो—पराजित; बेधा—बिधाता ने, दशमूर्द्धा—दस सिरों वाला, रावण; लोड़—खोज; पार्थिबी—पृथिवी कन्या (सीता) को; नवनिधि—नौ रत्न (जैसे मोती, माणिक्य, बैडुर्य, गोमेद, बज्र, पद्मराग, मरकत और नीलकान्त।); ठावे ठाबे—ठौर-ठौर पर, स्थल-स्थल में। (२२)

बिपणि चाहिँ पुणि पुणि भाळइ किपाँ सिन्धु रत्नाकर ये ।
बेदाध्यान शुणि मने मने गुणि एहि मुख बिधातार ये ।
बड़भी । बिलोकि भ्रम उपुजे ये ।
बिबिध पर्बत शत शत सत नाना रत्नशृङ्गे राजे ये । २३ ।

सरलार्थ—उसके बाद दुकानों की ओर बारबार निरीक्षण करते हुए हनुमान् ने सोचा, "लोग समुद्र को क्यों 'रत्नाकर' कहते है ? (यह पुर तो रत्नों का स्थल है) । फिर वहाँ वेद-पाठ सुनकर उन्होने सोचा, "यह पुर क्या ब्रह्मा का मुख है !" लका के अत्युच्च प्रासादों को देखकर उन्हें भ्रम हुआ, "ये वास्तव में अट्टालिकाएँ नही हैं। बल्कि सैकड़ों मेरु पर्वत रत्नजटित चोटियो से विराजित हो खड़े है।" (तात्पर्य यह है कि हनुमान् ने देखा कि लका की दुकाने विविध रत्नों से भरी हुई हैं, वहाँ हमेशा वेदाध्ययन हो रहा है और वहाँ विविध-रत्न-जटित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद खड़े है।) (२३)

विपणि—बाजार; वड़भी—अटारियाँ; बिबुध पर्बत—मेरु पर्बत। (२३)

बृषा अश्वकु हयचय ह्लेषारे प्रशंसाहिँ न करन्ति य़े ।
बारणगण अनुक्षण दन्तरे दिगदन्तीङ्कि हसन्ति ये ।
बिमान । बाछि कि स्वर्गमण्डप ये ।
बइजयन्त असम कहे चक्रचळने रथकळाप य़े । २४ ।

सरलार्थ—और भी उन्होने देखा कि वहाँ के घोड़े हिनहिनाहट में इन्द्र के अश्व उच्चैःश्रवा की हँसी उड़ा रहे है। हाथी अपने-अपने दाँतों के प्रकाश से हमेशा दिग्गजों का तिरस्कार कर रहे है। फिर वहाँ के विमानों को देखकर उन्होने सोचा, "इनके सामने स्वर्गमण्डप कितना तुच्छ है ? (अर्थात् स्वर्गमण्डप भी इनसे तुलनीय नही है।) अधिकन्तु, वहाँ के रथसमूह चलते समय अपने-अपने चक्रघोष के मिस यह बता रहे हैं कि रावण के पुर के सहित इन्द्र का प्रासाद भी तुलनीय नही है। (२४)

बृषा अश्वकु—इन्द्र के घोड़े (उच्चैःश्रवा) को; हयचय—घोड़ों का समूह; ह्लेषारे—हिनहिनाहट में; बारण गण—हाथियों का समूह; दिगदन्तिङ्कि—दिग्गजों को; बाछि—चुनकर; वइजयन्त (वैजयन्त)—इन्द्र का प्रासाद; रथ-कळाप—रथों का समूह। (२४)

बियद्गंगा बीचि रुचिक धरिबा पाञ्चि चिराळ बिळसि य़े ।
बिशाळ ककुद उष्ट्रङ्कर चाहिँ शैळुँ गण्डशैळु खसि य़े ।
बायुज । बासे बासे पशि खोजि य़े ।
बुलि आसे पात्र सामन्त उआस सीता आशे चित्त मज्जि य़े । २५ ।

सरलार्थ—लंकापुरी के प्रासादो पर फहरती हुई पताकाओं की गति देखकर हनुमान् ने सोचा, "ये पताकाएँ शायद आकाशगंगा की लहरों की शोभा को धारण करने की इच्छा से उड रही हैं। फिर ऊँटों के वड़े कूबड़ों को देखकर उन्हें प्रतीत हुआ, शायद पर्वतों के ऊपर से वड़े-वड़े

पत्थर-खण्ड नीचे खिसक रहे हो। (इससे ऊँटों की बड़ी आकृति की सूचना मिल रही है।)" इसी तरह लंकापुरी की शोभा का निरीक्षण करके हनुमान् जी ने सीता को देखने की आशा से मन लगाकर प्रत्येक घर में घुसकर अन्वेषण किया और वे पात्रों तथा सामन्त राजाओं के प्रासादो मे भी घूम आये। (२५)

बियद्‌गंगा—स्वर्गंगा; बीचि—लहरें; चिराळ—पताकाएँ; ककुद—कूबड़। (२५)

बल्लिका पादप जड़ित स्वरूप भिड़ाभिड़ि जायापति ये।
बिभूषित पुष्पगुच्छे होइछन्ति मधु गर्भरे दीपति ये।
बायुज। बिळम्ब न करि याइ ये।
बात येमन्त सुरभि घेनि मन्दगतिकि प्रचारि थाइ ये। २६।

सरलार्थ—हनुमान् ने भवनो मे घूमते हुए देखा कि स्त्री-पुरुष परस्पर यो लिपटे सोये हुए है, मानो लता-विजड़ित वृक्ष हों। लता एव वृक्ष पुष्पस्तवको से मिश्रित होते है और अपने-अपने गर्भ मे मकरन्द या पुष्परस को रखते है। उसी तरह ये स्त्री-पुरुष पुष्पमालाओं से विषमित हुए है और इन्होने अपने-अपने गर्भ मे मद्य को रखा है। (अर्थात् इन्होने मद्यपान किया है।) जैसे पवन फूलो से सुगन्ध लेने के लिए विना विलम्ब किये मन्दगति को प्रकाश करता है, उसी तरह हनुमान् जी विना विलम्ब के धीरे-धीरे चलने लगे। (२६)

बल्लिका—लताएँ; पादप—वृक्ष, पेड़; भिड़ाभिड़ि—लिपटे हुए; जायापति—स्त्री-पुरुष; मधु—मकरन्द, मद्य; सुरभि—सुगन्ध। (२६)

बासबजित कुम्भकर्ण इत्यादि बासबरे भ्रमि गला ये।
बासरमुख योख शोभा रतनप्रभारे से होइथिला ये।
बायुज। बिळासिनीङ्कु लोकने ये।
बिबेक ए स्वर्गे न थिबे नोहिबे रामबल्लभी समाने ये। २७।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् ने इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण आदि राक्षसों के सुन्दर वास-भवनो मे घूमते हुए देखा कि उनके वे सारे भवन रत्नालोक से प्रभातकाल की तरह शोभायमान हुए है। फिर आलोकित भवनो मे उन्होने विलासवती रमणियों को देखकर यह विचार किया कि ऐसी सुन्दरी स्त्रियाँ शायद स्वर्ग मे भी न हो। फिर भी यह रमणियाँ सौन्दर्य मे सीता के साथ तुलनीय नही हो सकतीं। (२७)

बासवजित—इन्द्रजित; बासबरे—रमणीय गृहों मे; बासरमुख—दिन का पहला भाग, प्रभात; योख—तुलनीय; बिळासिनीङ्कु—स्त्रियों को; रामवल्लभी—राम की पत्नी सीता। (२७)

बासे पूर्ण जाति माळती सेबती केतकी तुले कि सरि ये ।
बासनिकरे अत्यन्त मनोहरे येमन्त प्रकारे जरि ये ।
बायुज । बक्त्रमाळी पुरे मिळि ये ।
बिरचन शय्यामान स्थाने स्थाने शोइछन्ति दिब्यबाळी ये । २८ ।

सरलार्थ—चमेली, मालती, सेवती आदि फूल सौरभ से भरपूर होते हुए भी केवड़े के सहित तुलनीय नही है । उसी तरह ये रमणियाँ चाहे कितनी भी सुन्दर क्यों न हों, परन्तु सीता से समान नही । फिर कपड़ों में जैसे जरीदार कपड़ा सबसे अधिक सुन्दर दिखाई पड़ता है, उसी तरह यहाँ की अनगिनत स्त्रियों मे सीता अत्यन्त सुन्दर है । मन में यों विचार करते हुए हनुमान् ने रावण के वासभवन में उपस्थित होकर देखा कि स्थान-स्थान में सुसज्जित सेजों पर दिव्य स्त्रियाँ सोई हुई है । (२८)

बासे—सुगन्ध से; जाति—जाई, चमेली; वासनिकरे—वस्त्रों में, कपड़ों में; वक्त्रमाळी—रावण; दिब्यबाळी—दिव्य स्त्रियाँ । (२८)

बारण पद्मिनीबन मन्थिछि कि शेय-सरोबरे आसि ये ।
बाळ शैबाळ अस्तब्यस्त जघन पुळिन अळप दिशि ये ।
बिदीप्त । बातायु मद कर्दम ये ।
बिछिन्न हारमुकुता हसुअछि कळी कह्लार कुसुम ये । २९ ।

सरलार्थ—हनुमान् ने उन रमणियों की शोभा को फिर निहारते हुए सोचा, "जैसे हाथी सरोवर में घुसकर कमलवन को कुचल देता है, वैसे रावण ने इन रमणियों के सेजो रूपी सरोवरों में आकर रति के मिस इन पद्मिनी-जातीया स्त्रियों को कुचल डाला है क्या ? पद्मवन को कुचल देकर जब हाथी चल देता है, तब कमलों को घेरे सिवार तितर-वितर हो जाते है । उसी तरह इन स्त्रियो के केशगुच्छ खुलकर अस्त-व्यस्त हो पड़े है एवं हाथी उपद्रव के बाद जैसे सरोवर के किनारे अल्प दीख पड़ते है, रावण के सम्भोग के अनन्तर इन रमणियों की जाँघे थोड़ी-सी खुली दीखती है । और भी सरोवर में जिस तरह कीचड या पंक दिखाई देता है, वैसे इनकी शरीरस्था कस्तूरी उनके पसीने की बूँदों से भीगकर कीचड़ की तरह झलक रही है । फिर उन रमणियो की मुक्ता-मालाएँ टूटकर सेज पर इतस्ततः बिखर पडी है और सौन्दर्य में ये सरोवरस्थ श्वेत पद्मों की कलियों की हँसी उड़ा रही है । (२९)

बारण—हाथी; बाळ—बाल, केश; शैबाळ—सेवार; अस्त-व्यस्त—तितर-बितर; जघन—जाँघें; पुळिन—किनारे; दिशि—दीख रहे है; वातायुमद—मृगमद, कस्तूरी; कर्द्दम—कीचड़; कळीकह्लार—श्वेत पद्मों की कलियों की । (२९)

बाहु टेकि हस्त छन्दु के अळसे अवशे से भावे मोहि ये ।
बाते उपुड़ि सनाळ पद्म दिशे कुच पृथु कन्द दुइ ये ।
वामा के । विजृम्भित होइ वसे ये ।
बिकशि आसिला कोकनद छवि अङ्गीकार करि आसे ये । ३० ।

सरलार्थ—इस समय रतिजनित थकावट के मारे किसी रमणी ने अपनी बाहुओं को ऊपर उठाये, दोनो हाथों को मुख के दोनों ओर परस्पर छाँदकर अंगड़ाई ली । यों उसके दोनो स्तन दोनों हाथों के साथ ठिलकर छाती पर उभरे दिखाई दिये । उस शोभा को देखकर हनुमान् ने विमोहित होकर सोचा, "पवन के द्वारा पद्म सनाल और समूल उखड़ रहे हैं क्या ! फलस्वरूप उसके दोनों पृथुल स्तन पद्ममूलों की तरह दिखाई दे रहे है । फिर किसी रमणी के जम्हाई लिये बैठने पर उसका मुख विगसित हो आनेवाले रक्तकमल की तरह दिखाई दिया । (३०)

छन्दु—छाँदते, लिपटते; बाते—पवन से; उपुड़ि—उखड़कर; कुच—स्तन; पृथु—पृथुल; कन्द—पद्ममूल; वामाके—कोई स्त्री; विजृम्भित—जम्हाई लेना; कोकनद—रक्तपद्म । (३०)

(यहाँ हाथ पद्मो, बाहुएँ पद्मनालों, स्तन पद्ममूलों और मुख रक्तकमल से तुलनीय है ।)

बनिता के रतिश्रमे खरश्वास मुञ्चिबारे नासा फुलि ये ।
बल्लभी यन्त्र ताउछि कि कामर लौहशर गढ़ा बोलि ये ।
वक्षोजे । बसि नखचिह्न चाहें ये ।
वड़भीरे रंग सुचीरकेतु कि रुचि चाञ्चल्य न बहे ये । ३१ ।

सरलार्थ—कोई रमणी रतिश्रम के हेतु लम्बी साँस छोड़ रही है, तो उसके नथुने फूल उठे है । यह देखकर हनुमान् ने सोचा, "वह रमणी नथुने नही फुला रही है, बल्कि कन्दर्प से यह बोलती हुई कि फूलशरों से मुझे कुछ नहीं होगा, मेरे लिए अब लौहशर बनाओ, मानो कन्दर्प की भाथी तपा रही है ।" कोई स्त्री अपने वक्ष पर पड़े नखक्षतों को देख रही है । उन नखक्षत-चिह्नों ने प्रासादो पर स्थिर रही रेशमी-पताका की शोभा को धारण किया है । (यहाँ पर कुच प्रासाद और नखरेखाएँ स्थिर रेशमी (रंग की) पताकाओं से उपमेय है ।) (३१)

बनिता के—कोई स्त्री; मुञ्चिबारे—छोड़ने में; यन्त्र—भाथी; ताउछि—तपा रही हैं; वक्षोजे—स्तनों पर; वड़भी—अटारी; सुचीरकेतु—रेशमी पताका; रुचि—शोभा (उत्प्रेक्षालंकार) । (३१)

बन्धभेद चित्र कला प्राय केउँ केउँ शेय़ सुरञ्जन य़े।
बरबर्णिनी सञ्चा लाक्षा अङ्कित घनसार सुअञ्जन य़े।
ब्यक्ति के। ब्यक्ति के रामा ए तहिँ य़े।
बिश्वसृक चित्रकार होइछि कि राबण बनके लिहि य़े। ३२।

सरलार्थ—हनुमान् ने आगे देखा, कोई-कोई सेज रतिबन्धों के भेदों (चौसठ प्रकार) के चित्रों से चित्रित की हुई-सी बड़ी सुन्दर दीख रही है। प्रत्येक सेज पर एक-एक रमणी हल्दी, अलता व काजल से अपनी शोभा और कर्पूरचूर्ण से अपनी सुगन्ध बढ़ाये अस्तव्यस्त ढंग से सोई हुई है। उन सेजों को देखकर यों लग रहा है, मानो विधातारूपी चित्रकार ने रावण-रूपी तूलिका से इन्हीं सेजों को चित्रित किया है। (अर्थात् रावण के उन स्त्रियों के रति करते समय उनके शरीरों से हल्दी, अलता आदि लगकर सारी सेजें चित्रित हो गयी हैं।) (३२)

वरर्वाणनी—हलदी; लाक्षा—अलता; घनसार—कर्पूर; विश्वसृक्—विधाता; रावण-वनके—रावणरूपी तूलिका से। (३२)

बर्णे श्यामा होइ समस्ते गोटिए नाहिँ त आणिछि बाछि य़े।
बसुधा स्वर्गरे थोइ स्वर्ग य़ोषामानङ्कु करिछि छि छि य़े।
बायुज। बिचारे कि भाग्यबन्त य़े।
बृन्दक धेनुरे एक षण्ढ परि बिभोगे होइछि मत्त य़े। ३३।

सरलार्थ—विरुद्धार्थ—प्रथम पंक्ति (पाद) में :—

सभी रमणियाँ वर्ण में श्यामा है। परन्तु एक भी तो वर्ण में श्यामा नहीं है।

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—सभी रमणियाँ वर्ण में तप्तकांचन के समान गौरवर्ण है, उनमें एक भी श्यामला (काली) नही है।

आगे के पादों का अर्थ—रावण उन रमणियों को तीन भुवनों में से चुन-चुनकर ले आया है और उनको वसुधास्वर्ग (पृथिवी में स्वर्गतुल्या लंकापुरी) में रखकर स्वर्ग की स्त्रियों को छिछोलता है। यह देखकर हनुमान् ने मन में सोचा, "रावण कितना ही भाग्यवन्त है! वह एक झुन्ड गायों में एक साँड की तरह संभोग में मस्त हुआ है।" (३३)

श्यामा—तप्तकाञ्चनवर्णा, साँवली; स्वर्गयोषामानङ्कु—स्वर्ग की स्त्रियों को; वृन्दक—झुंड; धेनुरे—गायों में; षण्ढ—साँड़। (३३)

बिञ्चणी चामर पाणिरे चरणे करिण करकु न्यास ये ।
बोळे चन्दन दळे धनसारकु दीपित करे स्नेहाश ये ।
बामाए । बिचेतन निद्रावशे ये ।
बारि परिचारी बारिजगन्धाङ्कु हस्तिनी करि मानसे ये । ३४ ।

सरलार्थ—और कुछ स्त्रियाँ पूर्वोक्त रमणियों की सेवा में नियुक्त की गयी हैं । कोई हाथो में व्यजनों व चामरों को पकड़े है, कोई-कोई चरणों पर हाथ रखकर पद-सेवा कर रही है । कुछ चन्दन पोत रही है, कोई कपूर मल रही है, कोई दीप जला रही है, और दूसरी कुछ स्त्रियाँ गहरी नींद में अचेत हो पड़ी है । उन्हें इस तरह सेवा में नियुक्त होते देखकर हनुमान् ने समझ लिया कि ये हस्तिनी-जातीया स्त्रियाँ पूर्वोक्त पद्मिनी-जातीया नारियों की दासियाँ है । (३४)

बिञ्चणी—व्यजन; चामर—चँवर; धनसार—कपूर; स्नेहाश—दीप; बारि—पहचाना; परिचारी—दासियाँ; बारिजगन्धाङ्कु—पद्मिनी-जातीया नारियो की । (३४)

बाड़े बाड़े लेखा मधुसूदन से दाशरथि नाम येहि ये ।
बिदेहराजन पाळन्ता ये सुता सीता चोरि बिना केहि ये ।
बधे मो । ब्रह्माण्डे नाहिब क्षम ये ।
बढ़िला बिबेक पढ़ि पाबनिर ए जाण पशु जनम ये । ३५ ।

सरलार्थ—"जनक जी की पाली हुई कन्या लक्ष्मीस्वरूप सीता का हरण करने से, केवल दशरथ जी के पुत्र श्रीरामरूपी विष्णु भगवान् मेरा विनाश करने को समर्थ है । उन्हें छोड़कर दूसरा कोई भी मेरा विनाश नहीं कर सकता ।" यह बात रावण के भवन की प्रत्येक दीवाल पर लिखी हुई थी । हनुमान् ने उसे पढकर अनुमान किया कि रावण ने पशु का जन्म लाभ किया है, सुतरां जान-बूझकर इसने अपनी मृत्यु का वरण किया है । (३५)

बाड़े-बाड़े—दीवाल-दीवाल पर; पावनि—पवनपुत्र हनुमान् । (३५)

बृद्धि परसन्न हेब दरशन लोक-जननीर भाळि ये ।
बिहरु बिहरु राबण शयन सदनरे याइँ मिळि ये ।
बिलोकि । बरांगनाए ता कोळ ये ।
बाहुकु बाहु सर्पे सर्प मुखकु मुखराहु-चन्द्र मेळ ये । ३६ ।

सरलार्थ—यह सोचकर कि अब जगज्जननी सीताजी के दर्शन मुझे मिलेंगे, हनुमान् जी की प्रसन्नता बढ़ने लगी । इसी प्रकार घूमते-घामते हनुमान् ने रावण के शयन-प्रकोष्ठ मे प्रवेशपूर्वक देखा कि एक रमणी

रावण की गोद मे सोई हुई है, रावण व उस रमणी की भुजाएँ परस्पर से लिपटी हुई इस तरह दिखाई दे रही है मानो एक साँप से दूसरा साँप लिपटा हुआ हो। फिर रावण का मुख उस रमणी के मुख से लगकर यों दीख रहा है, मानो राहु का चन्द्र से मिलन हो गया हो। (३६)

लोकजननीर—जगज्जननी सीता के (दर्शन); भाळि—सोचकर।
(रावण राहु और वरांगना चन्द्र से तुलनीय है।) (३६)

बिराजुछि बिद्युद्घनेकि मांसळ मीन स्थकित माधुरी ये।
बुजिबा नयन युगळ उरज मंगळकुम्भ चातुरी ये।
बिहित। बिद्य गुबाक चुचुक ये।
बसन्तद्रुम छदन आच्छादन कुरंगमदचित्रक ये। ३७।

सरलार्थ—रावण के कृष्ण शरीर में वह गौरवर्ण रमणी यों शोभा पा रही है, मानो मेघ में बिजली चमक रही हो। उसके मूँदे हुए दोनों नयन यों सुशोभित हो रहे है, मानो दो मोटे शरीर वाले मत्स्य स्थिर रहे हों। उसके दोनों स्तनों ने मंगल पूर्णकुम्भ का चातुर्य प्राप्त किया है। स्तनों पर दो चुचुक मानो विधानानुसार रखी हुई दो सुपारियाँ हों। फिर दोनों स्तनो पर अकित कस्तूरी के चित्र, उन स्तनोंरूपी मागलिक कुम्भों को मानो आम के पत्रों सदृश ढक रहे हों। (३७)

बिद्युत्—बिजली; घने—मेघ में; स्थकित—स्थिर; बुजिबा नयन—मूँदी हुई आँखें; युगळ उरज—दोनो स्तन; मंगळकुम्भ—शुभ कलश; गुबाक—सुपारी; चुचुक—स्तनाग्र; बसन्तद्रुम—आमका पेड़; छदन—पत्र; कुरंगमदचित्रक—कस्तूरी से लिखे मीन-मकरों आदि के चित्र। (उत्प्रेक्षा अलकार)। (३७)

बिच्छन्द उरु उरुकु दिगदन्ती करे कि कदळीतरु ये।
बिचित्रकर्मा बोलाइथिब बिधि निर्माण करि ए भीरु ये।
बिलोकि। बातसुत बिचारिला ये।
बतिशलक्षण-पूरित ए सीता निश्चे नीचबुद्धि कला ये। ३८।

सरलार्थ—उस रमणी की जाँघ को जाँघ से सटाये हुए सोये देखकर यों प्रतीत होता रहा है मानो दिशा के हाथी ने अपनी सूँड़ से केले के वृक्ष को धारण किया हो। फिर उस रमणी के सौन्दर्य को देखकर ऐसा लग रहा है मानो उसका निर्माण करने से ही विधाता विचित्रकर्मा कहलाया होगा। उस रमणी को बत्तीस लक्षणो से युक्त देखकर हनुमान् जी ने शंका की, "यह निश्चय ही सीतादेवी है। अब कुबुद्धि करके वे रावण से आसक्त हुई है।" (३८)

बिच्छन्द—विशेष रूप से सटाये हुए; दिगदन्ती—दिग्गज; बातसुत—पवन-पुत्र हनुमान्। (३८)

बिधिपदकु अबिधि सिद्धि कला धाता ए बिधान रचि ये ।
बिशुद्ध रामसुधापानी सीताकु कोचिळाशन त रुचि ये ।
बायुज । बहु दीन होइ ध्यायि ये ।
बदनमधुगन्धरु जणा अर्थे भृङ्ग होइ पाशे याइ ये । ३९ ।

सरलार्थ—विधाता ने इससे पहले विहित (विधि-सम्मत) कार्यो का सपादन करके अपने 'विधि' नाम की सार्थकता प्रतिपन्न की थी । परन्तु अब सीता का रावण से मिलनरूपी अविहित कर्म करके अपने 'विधि' पद को 'अविधि' सिद्ध किया । फिर श्रीरामचन्द्र जी की प्रेम-सुधा पीनेवाली सीता को कुचलाफल-भोजन-समान रावण-प्रीति भायी कैसे ?" ऐसा सोचकर हनुमान् जी को बड़ा दुःख हुआ । मुख की गन्ध से यह जानने के लिए कि वह सीता है, या राक्षसी, वे रमणी के समीप गये । परन्तु उसके मुख से निकलती हुई गन्ध से उन्होंने जान लिया कि यह निश्चय राक्षसी है, सीता देवी नही । (३९)

बिधिपदकु—विधाता के पद को; अबिधि—अविहित, अनुचित; कोचिळाशन—कुचला फलका भोजन; भृंग—भ्रमर, भौरा । (३९)

बणा हेलि आखि थाउँ न रखिलि हीरक स्फटिक हेज ये ।
बणिक पराये होइलि सुबर्ण तुळरे तुळिलि गुन्ज ये ।
बितुळ । बातुळ होइलि मुहिँ ये ।
बक्र मृणाळखण्डकु ए द्वितीयाचांद बोलि देलि कहि ये । ४० ।

सरलार्थ—असली बात समझकर वे पछताये कि भ्रमवशतः मैंने सीता की निन्दा की । उन्होने अपनी शंका के लिए अपने को धिक्कारा और कहा कि मै आँखो के होते हुए भी भटक गया । क्योंकि मैं हीरक व स्फटिक पत्थरों का भेद नही समझ सका । मैं उस सोनार के सदृश हो गया जो भ्रमवशतः सोने से गुंजाफल को समान करता है, क्योंकि (जगज्जननी, अनिन्द्यसुन्दरी और निष्कलंका) सीता के साथ मैंने तुलना में अयोग्या एक राक्षसी को समान करके तौला है । मैंने पागल के समान एक टेढ़ी कमल-नाल को दूज का चाँद कह दिया ।" (४०)

बणा—भटका; हेज-भेद, प्रभेद; गुन्ज—गुंजाफल; वक्र—टेढ़ी; मृणाळखण्ड—कमल की नाल; द्वितीया चान्द—दूज का चाँद (भ्रान्तिमान्) । (४०)

बह्निसेनेही पतंग सिना होइ तहिँ नाहिँ बह्नि भाब ये ।
बिबेचना किपाँ एतेक न कलि पोड़ियान्ता अबयब ये ।
बोइलि । ब्रह्मकन्याकु मातंगी ये ।
बुड़ि मरिबि सिन्धुजळे गळे मुँ शिळे बान्धि ए आतंगी ये । ४१ ।

सरलार्थ—हनुमान् ने फिर कहा, "पतंग अग्नि से स्नेह करता है, परन्तु अग्नि पतंग से स्नेह-भाव प्रकाश नही करता। उसी तरह रावण ने पतंग के सदृश अग्नि-स्वरूपा सीताजी का शरीर स्पर्श किया होता, तो उसके सारे अंग-प्रत्यग जल जाते। मैने ये सब विचार क्यों नही किये ? मैंने ऋषिकुमारी को चण्डाली बोल दिया ! इस अपराध से अपने गले में पत्थर बाँधकर समुद्र के जल में जा डूब मरूँगा।" यह कहते हुए हनुमान् बड़े व्याकुल हुए। (४१)

वह्निभाव—अग्नि का स्नेह; एतेक—इतना; पोड़िय़ान्ता—जलजाता; ब्रह्मकन्या—ऋषिकन्या (सीता के प्रति अभिप्रेत); मातंगी—चाण्डाली, मिहतरानी; आतंगी—आशंकायुक्त, व्याकुल। (४१)

बिचारे य़ेबे श्रीराम-कार्य़ तेबे करि न पारिलि किछि य़े।
बोलिबा एमन्त दोष हेब सत चित्र सुकृत त अछि य़े।
बाहुड़ि। बैदेही कहिला बाणी य़े।
ब्रह्मपदबीकि भाबिले पाइबि राघब छामुरे भणि य़े। ४२।

सरलार्थ—हनुमान् ने फिर मन में विचार किया, "यदि आत्महत्या करके मरूँ, तो श्रीराम जी का कोई भी काम मै नही कर सका। सुतरां भ्रमवश सीता जी की निन्दा करने का अपराध मुझे निश्चय ही लगेगा। यह सच है। परन्तु यदि मै कार्य का साधन कर सका, तो मेरे भाग्य में विचित्र पुण्यार्जन बदा है। क्योंकि जब वापस जाकर श्रीराम जी के सामने सीता की कही बाते प्रकाश करूँ, तो इच्छा करने से यहाँ तक ब्रह्मपदवी भी पा सकूँगा। पुण्य न होने से क्या ब्रह्मपदवी मिल सकती है ? अतएव समुद्र में डूब मरना किसी भी प्रकार से उचित नहीं होगा। (४२)

सुकृत—पुण्य; छामुरे—सम्मुख; भणि—कहकर। (४२)

बनीए देखिला केते दूरे य़ाइ सेहि पुर सन्निकटे य़े।
बिशोकमना होइ तहिँ गमन जगती तथि प्रकटे य़े।
बेष्टित। बिशेष होइ राक्षसी य़े।
बामहस्त न्यस्त कपोळे अबनी-दृष्टिरे रामाए बसि य़े। ४३।

सरलार्थ—यों सोचते हुए हनुमान् जी आगे बढ़े और थोड़ी दूरी पर उन्होंने एक वन देखा। सीता जी के दर्शन के विना अत्यन्त शोकाकुल होकर उन्होने उक्त वन में प्रवेश किया और देखा कि तन्मध्यस्थ एक अंटारी पर एक रमणी अपने बाँयें हाथ को गाल पर रखे और सिर नीचा

किये बैठी हुई है। वहुत-सी राक्षसियाँ उसके चारों ओर घेरी रही है। (४३)

बनीए—एक बगीचा; बिशोकमना—विशेष रूप से शोकाकुल; जगती—अटारी; कपोळे—गाल पर; अवनी दृष्टि—पृथिवी (नीचे) की ओर मुंह झुकाये। (४३)

बिद्रुम माणिक्य मुकुता मर्कत नीळमणिरे रचना ये।
बनितारतन पद ताकु साजि होइछि हीराबिहीना ये।
बिपुळ। बिरहशाणरे बसि ये।
बिशीर्ण समस्तशेष होइ एक गला कि चित्ते आभासि ये। ४४।

सरलार्थ—वह रमणी प्रवाल, मानिक, मोती, मर्कत, नीलमणि आदि रत्नों से बनी एक प्रतिमा की तरह दिखाई दे रही है, क्योकि उसके हस्त प्रवालों, दाँत मोतियो, अधर मानिकों, केश मर्कतो एवं नेत्रो के गोलक नीलमणियों के समान दीख रहे है। उसके अधरों पर केवल हँसी-रूपी हीरा न होने से वह हीरा-हीना है। तिस पर भी 'रमणी-रत्न' पदवी उसके लिए उपयुक्त जंचती है। विरह से क्षीणा तथा हास्यविहीना उस स्त्री को देखने से प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त समूचे रत्न विरहरूपी सान पर बैठने से विशेष रूप से क्षीण हो गये है, उनमे से एकमात्र हीरा ही समाप्त हो गया है। (अर्थात् विरहावस्था के कारण उसके अंग-प्रत्यंगरूपी रत्न क्षीण व शीर्ण-विशीर्ण होने पर भी रमणी-रत्न के इन अंग-प्रत्यंगों में कुछ-कुछ सौन्दर्य अवश्य वर्तमान था। केवल उसके मुख से हँसी नही निकल रही थी।) (४४)

बिद्रुम—प्रवाल, मूंगे; साजि—जँचता है; बिरहशाण—बिरहरूपी सान; चित्ते आभासि—मन में प्रतीत होता है। (४४)

बनज निउँछाळि करि खञ्जन निउँछाळिबारे नेत्रे ये।
बितर्क पदे पतन के चञ्चळ सदा के रहिछि गात्रे ये।
बहइ। बारि या जनमि तहुँ ये।
बिखनरे धन्य भाबि द्रबीभूत नयन होइछि यहुँ ये। ४५।

सरलार्थ—उस रमणी के पद्म-सदृश रमणीय पादों तथा खञ्जन पक्षी की देह की-सी चञ्चलता देखकर यों प्रतीत होता है, मानो विधाता ने इन्ही दोनों (पद्म तथा खंजन पक्षी) को सीता के सहित समान करने के अभिप्राय से उनके नेत्रो की पहले पद्म एवं बाद में खंजन द्वारा वन्दना करवाई। परन्तु दोनों पद्म तथा खंजन रमणी के नेत्रों द्वारा परास्त होने से पद्म विनयी होकर उसके पादों के नीचे पड़ा है (शरण आया है)

और खंजन पक्षी ने उनकी आँखों से चचलता को अपने शरीर में ला रखा है। उसके नेत्रों से बहते हुए आँसू जल को देखने से प्रतीत होता है, मानो पद्म व खजन—इन दोनों का दुःख देख नेत्रों का हृदय पिघल रहा हो! दूसरों के दुःख में पिघलना सज्जनों का स्वभावसिद्ध गुण है। इसके लिए विधाता को भी धन्यवाद है। (क्योकि उनके पद्म व खजन के द्वारा नेत्रों की वन्दना कराने से ही नेत्रों को करुणा आई।) (४५)

बनज—कमल, पद्म; निउँछाळि—बन्दना; खंजन—पक्षी विशेष; बितर्क—विशेष रूप से तर्कणा होती है, सम्भावना की जाती है; गात्रे—शरीर में; बारि—आँसू जल; बिखनरे—विधाता को; द्रवीभूत—पिघले हुए (व्यतिरेक अलंकार)। (४५)

बक्षोजे पुणि अश्रु जड़ि पड़ि से बेनि उपमा सम्भबे ये।
ब्योम हृदये रामचन्द्र उदये चन्द्रशिळ शैळ द्रबे ये।
बिदित। बेनि शातकुम्भ कुम्भ ये।
बिभर्त्ति-राम-प्रेम नीर बहुत उच्छुळिबार आरम्भ ये। ४६।

सरलार्थ—उस रमणी के दोनों स्तनों में आँसू के बूँद गिरे लगे हुए हैं। इसलिए स्तनों के प्रति ये दोनो उपमाएँ सम्भव हो रही है। प्रथम उपमा यह है कि रमणी के हृदयरूपी आकाश में रामचन्द्र-रूपी रमणीय चन्द्र के उदित होने से चन्द्रकान्त मणियो के पर्वतों के सदृश उसके दोनों स्तन मानो पिघल गये हों। दूसरी उपमा यह है कि स्वर्ण-कलशों के सदृश दोनों स्तनों में रामचन्द्रजी का प्रेम-नीर मानो भरकर उछल पड़ रहा हो। (अर्थात् वह रमणी हमेशा अपने हृदय में रामचन्द्र जी को सोच रही है।) (४६)

बक्षोजे—स्तनों पर; बेनि उपमा—दो उपमाएँ; ब्योम हृदये—हृदयरूपी आकाश में; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, प्रभु श्रीरामचन्द्र; चन्द्रशिळ शैळ—चन्द्रकान्त पर्वत; शातकुम्भ कुम्भ—सुवर्ण कलश; उच्छुळिवार आरम्भ—उछल पड़ता है (उपमा, परंपरित रूपक)। (४६)

बढ़ि अळका भाल अर्द्ध ग्रासिका ए लक्ष्यरे चित्त त्वरा ये।
बिरूपाक्ष अरि जातरूप फरि कळङ्कि आसिला परा ये।
बेणीर। बन्धा फिटिबार नाहिँ ये।
ब्याकोष पुष्प मण्डन कोषहीन पट्टिश कि डेरा होइ ये। ४७।

सरलार्थ—और भी उसकी अलकाओं ने बढ़कर उसके आधे ललाट को ढक लिया है। इन्हें देखकर चित्त मे शीघ्र ही प्रतीत होता है, मानो कन्दर्प के सोने के ढाल पर कलक लग रहा हो। अभी तक उसका वेणी-बन्धन नही खुला है। उसका सौन्दर्य देखकर लग रहा है, मानो कन्दर्प

की तलवार विकसित पुष्पमण्डनरूपी म्यान से निकलकर उटंगी हुई है। (४७)

अळका—चूर्णकुन्तल; ए लक्ष्यरे—इस उपमा के लिए; त्वरा—चंचल; विरूपाक्ष अरि—महादेव जी का शत्रु, कन्दर्प; जातरूप—सुवर्ण; फरि—ढाल; व्याकोषपुष्प—प्रस्फुटित (विकसित) फूल; कोषहीन—म्यान से निकलकर; पट्टिश—तलवार; डेरा होइ—उटंगी हुई है। (४७)

बीर हनुमान मानसे भावन एहि कथामान कला ये।
बाम हेले राम कामरे पुरुष प्रशंसा ससारे थिला ये।
बनिता। वर होइथिला रम्भा ये।
बिशेष शोभा नळिनी[1] नळिनी[2] रे नळिनी[3] परि अरम्भा ये।४८।

सरलार्थ—वीर हनुमान् ने श्रीराम और सीता के वारे में अपने मन में ये बाते सोची।

"इस संसार में कन्दर्प सौन्दर्य मे पुरुषों में सबसे अधिक प्रशंसित था। परन्तु अव श्रीराम ने उसके शत्रु होकर उसकी इस प्रशंसा का लोप किया। फिर सुन्दरी स्त्रियों मे श्रेष्ठा स्त्री के रूप मे रम्भा की गिनती की जाती थी, किन्तु अव विशेष शोभावती पद्मिनी सीता ने पुष्करिणी में पद्मलता की तरह अपनी शोभा का विस्तार किया एवं रम्भा की कीर्त्ति का लोप किया।" (४८)

वाम—शत्रु; वनितावर—नारीश्रेष्ठ; नळिनी[1]—पद्मिनी (सीता), नळिनी रे[2]—पुष्करिणी में; नळिनी[3]—पद्मलता; (यमक); अरम्भा—रम्भा की कीर्त्ति का लोप किया। (४८)

बान्धबी एहि से रामर[1] रामर[2]-निकेतन कि संशय ये।
बिरही बिरहिणी परस्पररे होइछन्ति अतिशय ये।
बिलोकि। वेनिङ्कि धन्य मो नेत्र ये।
बाणी शुणिछि ताङ्कर एहाङ्कर बाणी कि शुणिब श्रोत्र ये। ४९।

सरलार्थ—हनुमान् ने मन में सोचा, "यह सौन्दर्यधामा निश्चय ही श्रीराम की प्रिया है। इसमें कोई भी संशय नहीं है। वे दोनों परस्पर से विशेष रूप से विरही-विरहिणी हुए है। दोनों के दर्शन से मेरे नयन धन्य हुए। मैने श्रीरामचन्द्र जी के श्रीमुख से वचन सुने है। अब मेरे कान इन (सीता) के वचन सुनेगे क्या? (दोनों के वचन सुनने पर मेरे कान निश्चय ही धन्य होंगे।) (४९)

बान्धबी—प्रियतमा; रामर[1]—श्रीराम की; रामर[2]—सौन्दर्य का; (यमक); निकेतन—धाम; वेनिङ्कि—दोनों (राम और सीता) को; श्रोत्र—कान। (४९)

बसुधाशिरी ए शिरीए शिरीषअंगिनी सन्देह नाहिं ये ।
बिशाळ नितम्ब रोमाबळी ब्याज चक्र गदा अछि थोइ ये ।
बिच्छेद । बिधाने डराउ दैत्य ये ।
बिश्वम्भरापति जाणि देइछन्ति ए मूर्त्तिरे नाहिँ हस्त ये । ५० ।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् ने ठान लिया कि ये धरित्री-मण्डना शिरीष-कोमलांगी रमणी निश्चय ही लक्ष्मी है। इसमें जरा भी सन्देह नही। क्योकि बिछोह के समय राक्षसो के भय से अपने को बचाने के लिए रामचन्द्र ने इन्हे चक्र व गदा दिया है। इन्होने चक्र को विशाल कन्धो एव गदा को रोमावली के मिस धारण किया है। सुतरां इस नारायणावतारी के रामावतार के हस्तों में चक्र व गदा, ये दोनों आयुध नही है। (५०)

बसुधाशिरी (बसुधा श्री)—धरणीमण्डना; शिरी ए—ये श्री (लक्ष्मी) ही है; शिरीष अंगिनी—शिरीष फल के समान कोमलांगी; बिश्वम्भरापति—नारायण। (५०)

बिराजमान द्विभुज एहि हेतु शारङ्ग शर बिधृत ये ।
ब्याज नासिका देखाइ चञ्चु अङ्के खगेश्वरहिँ गुपत ये ।
बाहन । बारण गतिरे थिब ये ।
बारिजासनी सरोज पाद बेनि बाञ्छा सिद्ध मो करिब ये । ५१ ।

सरलार्थ—इस हेतु (अर्थात् चक्र व गदा दे देने से) नारायण ने इस अवतार में द्विभुजाओं से बिराजमान होकर अपने हाथों में धनुष व शर धारण किये है। उनके वाहन गरुड जी ने निश्चय ही इनके शरीर मे छिपकर नासिका के मिस चोंच दिखाई है। तब लक्ष्मी का वाहन हस्ती भी इनके पादों की गति मे जरूर होगा। लक्ष्मी पद्मासना है। सुतरां इनके दोनों पैर पद्मों के समान हुए हैं। हनुमान् ने स्थिर किया कि ये दोनो पाद निश्चय ही मेरा मनोरथ सिद्ध करेगे। (५१)

शारंग—धनुष; ब्याज—मिस, बहाने; नासिका—नाक; चञ्चु—चोंच; खगेश्वर—गरुड़; बारण—हाथी; बारिजासनी—पद्मासनी (लक्ष्मी); सरोज—पद्म। (५१)

बर्ष्म पुलकित बिचारु एमन्त प्रियक[1] प्रियक[2] घेनि ये ।
बेभारे होइला पराए सनिधि[1] सन्निधि[2] गमे पाबनि ये ।
बुझ हे । बुद्धि उत्तम कोबिद हे ।
बान पदे उपइन्द्र भञ्ज बीरबर शेष करे छान्द ये । ५२ ।

सरलार्थ—हनुमान् के ऐसे प्रीतिप्रद विषय सोचते समय, उनके शरीर पर रोंवे खड़े हो गये, मानो उनका शरीर कदम्ब-फूल हो। उन्होंने सीता जी की सन्निधि (सामीप्य) का लाभ किया, मानो किसी सौदागर ने अपने व्यवसाय में सनिधि (संपद) का लाभ किया हो। (अर्थात् सीताजी का अन्वेषण करते हुए हनुमान् ने उन्हे पा लिया और उनके समीप गये।) हे पण्डित-समूहो! भञ्जकविकृत बावन पदों में विरचित इस छान्द को आप लोग भली-भाँति समझे। (५२)

वर्ष्म—शरीर; प्रियक[१]—प्रीतिपद; प्रियक[२]—कदम्बफूल; बेभार—व्यवसाय, पेशा; सनिधि[१]—सम्पद; सन्निधि[२]—सामीप्य; (यमक)। (५२)

। इति चतुस्त्रिंश छान्द ।

पञ्चत्रिंश छान्द

राग—चिन्ता भैरव

बुधे शुणिबा हेउ सुमति । बइश्रबणे लंक देबती ।
बिहिला सन्देश हेलाटि जीबेश बार्त्ता प्रबेश जानकी कति रे ।
बिशाक्ष । १ ।

सरलार्थ—हे उत्तम बुद्धि वाले पण्डितो । जरा सुनिएगा । लंकदेवी ने स्वप्न में रावण से कहा, "अरे बीस आँखों वाले रावण ! सीता के समीप उनके प्राणपति श्रीरामचन्द्रजी का सन्देश आ पहुँचा है ।" (१)

बुधे—हे पण्डितो; सुमति—सुबुद्धि, उत्तम बुद्धि वाले; बइश्रवणे—विश्रवा-पुत्र रावण को; लंकदेवती—लंकिनी; सन्देश—खबर; जीबेश—प्राणपति (रामचन्द्र); कति—निकट; बिशाक्ष—बीस आँखों वाला, रावण । (१)

बसि स्वपन चेति कम्पन । बाहारिला से अशोक बन ।
बहुत दिहुड़ि अन्धार घउड़ि शुभे मणिमा मणिमा स्वन से ।
बीथिरे । २ ।

सरलार्थ—रावण ने स्वप्न से सचेत हो निद्रा का त्याग किया और उठ बैठा । शीघ्र ही काँपते हुए शरीर से वह अशोक वन की तरफ निकल पड़ा । चलते वक्त उसके सामने पथ पर असख्य मशाल जल पथ को आलोकित कर रहे है और 'श्रीमन् !' 'श्रीमन् !' राजसबोधन सुनाई पड़ रहा है । (२)

दिहुड़ि—मशाल; घउड़ि—हटाकर; शुभे—सुनाई पड़ता है; मणिमा मणिमा—श्रीमन्, श्रीमन्; बीथिरे—मार्ग में । (२)

बुलाउछि चक्रप्राये नेत्र । बहि शूळगदा आसिपत्र ।
बिशार्द्ध आनन शोभा आन-आन[1] आन[2] न लंघे य़ा देबगोत्र से ।
बिशाक्ष । ३ ।

सरलार्थ—जिसकी आज्ञा को यहाँ तक देवता लोग भी लाँघ नहीं सकते, वही रावण अपनी बीस आँखों को चक्रों सदृश घुमाता हुआ चारों ओर निरख रहा है । अपने हाथों में वह शूल, गदा, तलवार आदि अस्त्र धारण किये हुए है एवं उसके दस मुखों की शोभाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हो रही है । (३)

बुलाउछि—घुमा रहा है; असिपत्र—तलवार; बिशार्द्ध आनन—दसमुख; आनआन[1]—भिन्न-भिन्न; आन[2]—आदेश; देबगोत्र—देवता लोग । (३)

बड़भी[1] कि उठि ग्राउँ दुष्ट । बड़भी[2] रे सीता कले पृष्ठ ।
बिषयमान अतिशय संशय नष्ट हेब भाबि हेला हृष्ट से ।
बातज । ४ ।

सरलार्थ—दुष्ट रावण के इस समय अटारी पर उठते, सीता अति भय से उसकी ओर पीठ किये बैठ गयी। यह सोचते हुए कि अब बहुत-सी संशयपूर्ण बातों मे से संशय दूर हो जाएगा (अर्थात् सीता वास्तव मे रावण के प्रति अनुरक्ता या विरक्ता है) हनुमान्‌जी विशेष प्रसन्न हुए। (४)

बड़भी[1]—अटारी; बड़भी[2]—बड़ा भय; वातज—हनुमान्। (४)

बसे पाशे होइ मधु-ब्रते । बाणी सरस शर कि श्रुते ।
बसइ भाषइ दैत्य, न बसइ किपाँ कृपा मोह ठारे चित्ते रे ।
बराङ्गि । ५ ।

सरलार्थ—यह सुनने के लिए कि रावण के वाक्य सीता को सरस (रसयुक्ता) कराएँगे अथवा शरतुल्य व्यथा देगे, हनुमान् एक भ्रमर का रूप धारणपूर्वक उनके समीप जा बैठे। इस समय रावण सीता के पास आ बैठा और उनसे कहने लगा, "अरी श्रेष्ठ अगों वाली सीते! तेरे हृदय मे मेरे लिए जरा भी दया क्यों नही हो रही है?" (५)

मधुब्रते—भ्रमर; दैत्य—राक्षस रावण; वरांगि—अयि श्रेष्ठ अंगो वाली (सीते!) (५)

बदान्य ये लोक होइथाइ । बुझ तनु दान कि न देइ ।
बिधिरे तु निधिरूपा रसनिधि मुँ ग्ने तोहर सन्निधिस्थायी रे ।
बराङ्गि । ६ ।

सरलार्थ—रावण ने आगे सीता से कहा, "तू जरा मन देकर समझ—जो आदमी पृथिवी में दाताश्रेष्ठ होता है, वह क्या तनु (थोड़ा-सा भी) दान नही देता? (अर्थात् निश्चय ही देता है।) सुतरां तू मुझे अपना तनु (शरीर) दान कर। तू कह सकती है कि मेरे पास है ही क्या जो मै तुझे दूं? परन्तु यह समझ कि तेरे मुखग्रीवादि अग-प्रत्यंग शंख पद्मादि नवनिधियो के सदृश है, सुतरां तू वास्तव में निधि-स्वरूपा (रत्न-स्वरूपा) है। फिर तू रस का समुद्र है। सुतरां मैं तुझसे रतिरस (रत्तीभर रस, प्रेम) प्राप्त करने के लिए तेरे पास आया हूँ। अरी सुन्दरि! तू मेरी मनस्कामना पूर्ण कर। (६)

बदान्य—दाताश्रेष्ठ; तनु—देह, अल्प; निधिरूपा—रत्नस्वरूपा; रसनिधि—रससमुद्र। (६)

बिभाकर-बल्लभी पद्मिनी । बिळसइ से मधुप[1] घेनि ।
बिभाकर बंशी प्रिया तु पद्मिनी मु मधुप[2] हुअ रसदानी रे ।
बराङ्गि । ७ ।

सरलार्थ—तू बोल सकती है—मै सूर्यवंशी राजा श्रीराम की प्रिया होकर तेरे समान मद्यप राक्षस सहित कैसे प्रीति करूँ ? परन्तु यह देख—सूर्यप्रिया पद्मिनी भ्रमर के सहित भी प्रेम करती है। उसी तरह तू रामचन्द्रजी की प्रिया और पद्मिनी-जातीया स्त्री है। सुतरां मुझ जैसे मद्यप के सहित प्रेम करने से तुझे कुछ भी दोष नही लगेगा। (७)

बिभाकर—सूर्य; बल्लभी—प्रिया; मधुप[1]—भ्रमर; मधुप[2]—मद्यप। (७)

बारि पाशकु तृषार्त्ती ग्राइ । बिचार त करे से कि नाहिँ ।
बारिदबारिरे आशायी चातक तृषा निबारे तुषार पिइ रे ।
बराङ्गि । ८ ।

सरलार्थ—तू विचार कर तो सही। कोई प्यासा आदमी जब जल के पास जाय, तो वह जल उसको कही निषेध करता है क्या ? (अर्थात् नहीं करता।) तब तू मुझे क्यों निषेध करती है ? तू कह सकती है—तू यदि प्यासा आदमी है, तो जिस प्रकार प्यासा कही से भी जलपान करके अपनी प्यास मिटाता है, उसी तरह तू भी दूसरी स्त्री के सम्भोग से अपनी काम की तृषा मिटा। परन्तु वह हो ही नहीं सकता। क्योकि मेघ के जल के प्रति आशा रखने वाला चातक पक्षी क्या तुषार (हिम) पीकर अपनी प्यास मिटाता है ? (कदापि नही।) अरी वरांगि ! उसी तरह दूसरी स्त्री के साथ सम्भोग करने से मेरी काम-पिपासा नही मिटेगी। (८)

बारि—जल; तृषार्त्ती—प्यासा; बारिदबारि—मेघ का जल; तृषा निवारे—प्यास बुझाता है; तुषार—ओस; पिइ—पीकर। (८)

बहु-नायिका-बल्लभ शङ्का । बहु बिमुख पाश्चि रसिका ।
बिप्रलब्धा सम सुषम समस्ते हेबे हेबु स्वाधीनभर्तृका रे ।
बराङ्गि । ९ ।

सरलार्थ—अरी रसिका ! (अनुरागिणि या रसवति !) तू अपने मन में मेरे प्रति इसलिए विरस भाव ला रही है कि यह (रावण) तो बहुत स्त्रियों का पति है। (इसको मैं कहाँ तक विश्वास करके इससे प्रीति करूँगी ?) परन्तु इसके बारे मे तुझे सन्देह करना न चाहिए। क्योंकि वे सारी नायिकाएं विप्रलब्धा नायिकाओं की तरह होगी।

अरी वरांगि ! तू ही मेरी स्वाधीनभर्त्तृका नायिका होगी। (अर्थात् एक क्षण के लिए भी मैं तेरा सामीप्य छोड़ूँगा नही।) (९)

बहुनायिका-वल्लभ—बहुत स्त्रियों का पति; विप्रलब्धा—संकेत-स्थल में प्रिय से न मिलने से दुखी नायिका; सुषम—सुन्दरी; स्वाधीन-भर्त्तृका—पति को अपने वश में रखनेवाली नायिका। (९)

बिंशु सप्ताधिक तारापति । बिधु रोहिणी ता प्रियबती ।
बिकृत नुह मुँ स्वीकृत करुछि तोह कृत रसे मोर प्रीति रे ।
बराङ्गि । १० ।

सरलार्थ—तू अपने मन में फिर शंका कर सकती है कि पुरुष लोग ऐसा बोलते हैं, परन्तु कार्यतः नही करते। सुतरां देख, "चन्द्र सत्ताईस नक्षत्रों का पति होने पर भी, रोहिणी उसकी सबसे श्रेष्ठा प्रियतमा है। (उसी तरह मेरे अनेक पत्नियाँ रहते हुए भी तू ही मेरी सबसे बड़ी प्रिया होगी।) अरी वरागि ! तू विमना मत होना। मैं शपथ करके बोल रहा हूँ कि केवल तेरे ही द्वारा किये रस में मेरी प्रीति होगी। (अर्थात् मैं केवल तुझसे ही आसक्त रहूँगा।)" (१०)

बिंशु सप्ताधिक—सत्ताइस नक्षत्र; तारापति—चन्द्र; बिधु—चन्द्र; रोहिणी—चन्द्रपत्नी। (१०)

बाणी बाण मोहर होइला । व्यथा सीताङ्कु देला जाणिला ।
बेदमतीमति न पुण युबती शाप देब ए भये उठिला से ।
बिशाक्ष । ११ ।

सरलार्थ—रावण सीता के आशयो से समझ सका कि मेरी चापलूस वाणियाँ बाणों के समान उसे व्यथा दे रही है। सुतरां इस भय से कही यह (सीता) वेदमती की तरह मुझे शाप न दे दे, वह और बिना फुसलाये, वहाँ से चल उठा। (११)

बेदमती मति—वेदमती की तरह। (११)

बोइला से ए मासे रमणी । बल्लभकु न पारिले आणि ।
बधिबि अबधि चन्द्रहास घेनि चन्द्रहास शोभि थाअ जाणि रे।
बराङ्गि । १२ ।

सरलार्थ—फिर भी चलते वक्त रावण ने सीता से कहा, "अरी रमणि ! इस मास के अन्दर यदि तू अपने पति को नही ला सकी, तो एक तलवार से मैं अवश्य तेरा वध करूँगा। अयि चन्द्रकिरणों के सदृश हसी से शोभित होने वाली सीते ! अयि वरांगि ! यह निश्चय ही जान रखना।" (१२)

वल्लभकु—पति (रामचन्द्र) को; चन्द्रहास[1]—खड्ग, तलवार; चन्द्रहास[2]-शोभि—अयि चाँद की-सी हंसी से शोभित होनेवाली (सीते)! (यमक)। (१२)

बहुमूल्य रत्न योगीठाबे । बन्धा होइथाइ करे तेबे ।
बळ करिबा करणि तार काहिँ पड़े तस्कर कररे य़ेबे रे ।
बराङ्गि । १३ ।

सरलार्थ—अरी वरांगि! यदि बहुमूल्य रत्न योगी (संन्यासी) के निकट होता है एवं एक चोर बल-प्रयोग पूर्वक वही रत्न उस योगी से छीन लेता है, तो वह योगी अपने बल से उस चोर से वह वापस लाने में समर्थ होता है क्या? (अर्थात् तू एक रत्न-स्वरूप रामचन्द्र रूपी योगी के पास थी। एक चोर के सदृश मैं तुझे उससे वलात् चुरा लाया। मुझसे तुझे फिर वापस ले लेने को उसमें सामर्थ्य कहाँ है?) (१३)

योगीठाबे—योगी (संन्यासी) के पास; करणि—सामर्थ्य; तस्कर—चोर। (१३)

बाहुड़िला से सक्रोध होइ । बाटे राक्षसीमानङ्कु कहि ।
बश त बोहिला स्नेहरे कहन्ते एबे रहरे भय देखाइ से ।
बामाकु । १४ ।

सरलार्थ—सीता से यों कहकर रावण क्रोधपूर्ण हृदय से लौट चला। चलते समय वह मार्ग में राक्षसियो से कह गया, "राक्षसियो! स्नेह या आदर से कहने पर भी यह (सीता) मेरी वशीभूता नही हुई। सुतरां अब इस वामा को भय दिखाते रहना।" (१४)

बाहुड़िला—लौटा; सक्रोध—क्रुद्ध; बामाकु—स्त्री को, सीता को। (१४)

बोलुँ बाहुड़िण निशाचरी । बेढ़ि भयङ्कर रूप धरि ।
बाण्ट पळ पळ[1] करि एहा पळ[2] शिरे उपळ ताड़ उच्चारि से ।
बामाए । १५ ।

सरलार्थ—रावण के ऐसा बोलने से राक्षसियाँ लौट आई। उन्होंने भयकर रूप धारण करके सीता को घेर लिया। वे सब चिल्लाकर बोलने लगी, "अरी राक्षस-स्त्रियो! अब इसके सिर पर पत्थर पटक दो एवं इसका काम तमाम कर दो। फिर इसके मांस को पलपल वजन करके बाँटो, हम लोग भोजन करें। (१५)

निशाचरी—राक्षसियाँ; बेढ़ि—घेरकर; पळपळ[1]—चार कर्ष की एक प्राचीन तौल; पळ[2]—मांस; उपळ—पत्थर; ताड़—पटको; उच्चारि—चिल्लाकर कहा; बामाए—अरी स्त्रियो, अरी राक्षसियो! (१५)

बश नोहे ए राजाधिराजे। बड़पण देखाइछि धैर्य।
बायसी हंस प्रेयसी योग काहिँ बर्ण असित सित कि भजे गो।
बामाए। १६।

सरलार्थ—उन राक्षसियों में से फिर किसी ने कहा, "राजाधिराज (सम्राट्) रावण से वशीभूता न हो इसने अपने (पातिव्रत्य के) धैर्य मे बड़ाई दिखाई है। (अर्थात् इसके मन में यह अभिमान है कि मैं इतनी धैर्यशाली हूँ कि चाहे प्राण भी चले जावे, फिर भी अपना पातिव्रत्य नही छोड़ूँगी।) परन्तु अरी वामाओ! कौवे की पत्नी हंस की प्रियतमा कहाँ हो सकती है? अथवा काला रंग सफेद रग कहाँ बन सकता है? (अर्थात् यह जटाधारी योगी राम की पत्नी राजाधिराज सम्राट् रावण की पत्नी बनेगी कैसे? (१६)

राजाधिराजे—सम्राट् (रावण के लिए उद्‌दिष्ट) से; बायसी—काकी, कौवे की पत्नी; हंस प्रेयसी—हंस की पत्नी; असित—काला; सित—सफेद। (१६)

ब्यबहार एहा शुक परि। बिळसन्ता सुबर्ण पञ्जरी।
बन भबन भाबना एका करे भला पढ़ाइछि जटाधारी गो।
बामाए। १७।

सरलार्थ—अनन्तर और किसी राक्षसी ने कहा, "इसका स्वभाव या आचरण ठीक शुक पक्षी का-सा है। शुक पक्षी सोने के पिंजडे मे खुशी से क्रीडा करता। परन्तु वह ऐसा न करके केवल अपने वन के भवन (घोंसले) की भावना करता है। उसी तरह यह (सीता) सोने के पिंजड़े के सदृश लंकापुरी में आनन्द से बिलास करती। परन्तु अरी वामाओ (राक्षस-स्त्रियो)! वह ऐसा न करके वन में स्थित अपने पत्र-कुटीर ही को सोच रही है। लोग तोते को 'राम' नाम या 'कृष्ण' नाम पढ़ाते है। उसी तरह उस जटाधारी राम ने इसे 'राम' नाम (या अपना नाम) इसी तरह पढ़ाया है कि यह उसे क्षण काल के लिए भी नही भूल सकती।" (१७)

बिळसन्ता—क्रीड़ा करती; बनभबन—जंगल का घर, झोंपडी; जटाधारी—श्रीराम (ने)। (१७)

बोलुअछि एका राम राम। बन्दि मोक्षणे हेब कि क्षम।
बिबेक प्रचरि पक्षी बनचारी बाइ पशु चारि ए सुषम गो।
बान्धबि। १८।

सरलार्थ—फिर किसी राक्षसी ने कहा, "यह हमेशा शुक पक्षी (तोते) के सदृश 'राम' 'राम' रट रही है। परन्तु वह 'राम' नाम तोते

को बन्धन से क्या मुक्त कर सकता है ? (हरगिज नहीं)। उसी तरह यह भी हमेशा 'राम' नाम रट रही है, किन्तु वह नाम इसे यहाँ के बन्धन से मुक्त करने को हरगिज समर्थ नही होगा। अरी राक्षस-स्त्रियो ! मेरे विचार में पक्षी, वनचारी (संन्यासी), बावला और पशु—ये चार समान है। ये भला-बुरा कुछ भी नहीं समझ पाते।" (१८)

बन्दिमोक्षणे—बन्धन से मुक्ति देने के लिए; विवेक प्रचरि—मै बिचार करती हूँ; बनचारी—सन्यासी; बाइ—बावला, पागल; सुषम—समान; बान्धवि—अयि सखि ! (१८)

बोधि त्रिजटा ताहाङ्कु रखि। बोले सीता सितांशुसुमुखी।
बरुणदिगे कि तरुण अरुण उदे होइछि के अछ देखि गो।
बामाए। १९।

सरलार्थ—राक्षसियों को ऐसा बोलते सुनकर त्रिजटा नामक राक्षसी ने उन्हें असली बात समझा-बुझाकर रखा। अर्थात् उन्हें और कुछ बोलने नही दिया। तदनन्तर चारु चन्द्रवदना सीता ने कहा, "अरी वामाओ ! पश्चिम दिशा में वालरविका उदय होना भला किसी ने देखा है ? (अर्थात् नही।) (१९)

बोधि—समझा-बुझाकर; सितांशुसुमुखी—चारुचन्द्रवन्दना, बरुणदिगे—पश्चिम दिशा में; तरुण-अरुण—बालरवि; बामाए—अयि राक्षसियो। (१९)

बिकशिछि कि शिखरिशिखे। बिना जळरे पद्म ता सुखे।
बन्धन आशाबन्धरे कि कुन्जर शुणा प्रबन्ध कि मूर्खमुखे गो।
बामाए। २०।

सरलार्थ—"अरी वामाओ ! पर्वत की चोटी पर बिना जल के अपनी इच्छानुसार क्या कमल कभी खिला है ? क्या मकड़ी के सूत से कभी हाथी बाँधा जा सकता है ? या मूर्ख के मुख में कभी प्रबन्ध (महाकाव्य) सुना गया है ? (अर्थात् ऐसा होना असभव ही है।) (२०)

शिखरीशिखे—पर्वत की चोटी पर; आशाबन्धरे—मकणी के जाल से; कुन्जर—हाथी; प्रवन्ध—महाकाव्य; मूर्खमुखे—अनपढ़ के मुँह में। (२०)

बळिपड़ि बा एमान हेब। बइदेही चित्त न टळिब।
बिना श्रीरामरे कोटिए कामरे ए त पामरे कि सम्भबिब गो।
बामाए। २१।

सरलार्थ—अरी वामाओ ! ऐसी असंभव (अनहोनी) बातों का होना कभी संभव हो सकता है। (अर्थात् पश्चिम दिशा में सूर्योदयादि घटनाएँ कभी संघटित हो सकती है।) परन्तु श्रीराम के बिना करोड़ों

कन्दर्प अगर एकमूर्त्ति होकर सीता के मन को टालने की चेष्टा करें, तो भी उसका मन कभी नहीं टलेगा। और यह रावण तो पामर (नीच) है। इसकी बात कौन पूछे ?" (२१)

बळि पड़ि बा एमान हेब—ये सब घटनाएँ अपने-अपने नियम से बाहर जाकर सम्भव हो सकती हैं; न टळिब—नहीं टलेगा; कोटिए कामरे—करोड़ो कन्दर्पोंसे; ए त पामरे—इस पापात्मा रावण के प्रति; कि सम्भबिब—क्या हो सकता है ? (अर्थात् नहीं)। (२१).

बोलि मउन जानकी हेले। बिभावरी शेप एहिकाळे।
बिरञ्चि नारद तुम्बुरु लंकारे सेबा विरचिबाकु आसिले से।
बेगरे। २२।

सरलार्थ—यह बोलकर जानकी चुप रही। इस समय रात समाप्त हो गयी। प्रत्यूष होते ही ब्रह्मा, नारद, तुम्बुरू आदि देवता अपनी-अपनी सेवा मे योगदान करने के लिए लंकापुरस्थ रावण के राजप्रासाद मे शीघ्र ही आ पहुंचे। (२२)

बिभावरी—रात; सेबा विरचिबाकु—सेवा करने के लिए; बेगरे—शीघ्रता से। (२२)

बेद बीणा स्तुति आरम्भणे। बोले दास्थ केउँ बड़पणे।
बिषय न जाणि हुअ कळकळ रह सकळे मउने क्षणे हे।
बिबुधे। २३।

सरलार्थ—अनन्तर ब्रह्मा के वेद-पठन, नारद के वीणा-वादन और तुम्बुर के स्तुतिपाठ का आरम्भ करते, द्वारपाल ने उनके पास उपस्थित होकर उन लोगों से कहा, "देवगण ! तुम लोग बिना कोई बात समझे किसी बड़प्पन से चिल्लाहट कर रहे हो ?" एक क्षण के लिए सब चुप रहो तो भला। (२३)

द्वास्थ—द्वारपाल, पहरेवाला; केउँ बड़पणे—किस बड़ाई से; कळकळ—बकबक करना, चिल्लाना; बिबुधे—हे देवताओ ! (२३)

बिषे कि बोलुँ बोले त्वरित। ब्याधि राजा अन्तर्गते जात।
बैदेही पाचन रस रत्नाकर बिरचनकु अर्च्चिते चित्त हे।
बिबुधे। २४।

सरलार्थ—द्वारपाल की ऐसी बात सुनकर ब्रह्मादि देवगण ने पूछा, "अरे, बात क्या है ?" द्वारपाल ने उत्तर दिया, "देवो ! राजा (रावण) मे एक अन्तर्व्याधि (विरह-व्याधि) उत्पन्न हुई है। सुतरा 'वैदेही पाचन'

(पिप्पल के क्वाथ) से 'रस-रत्नाकर' नामक वटिका मिलाकर सेवन करने की उन्हे इच्छा हो रही है। दूसरे विषय मे उनका मन नहीं है।"

इगितार्थ—अब राजा विरही है। सुतरां उन्हें इस विषय में बड़ी चिन्ता हो रही है कि कैसे वे सीता से रस-रत्नाकर (अत्यधिक रति-सुख) का लाभ करे। (२४)

तुलनीय—ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैषं समयस्तूष्णी बहिः स्थीयताम्
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः।
वीणां संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो
सीतारल्लकभल्लभिन्नहृदय स्वस्थो न लङ्केश्वरः॥
(इति हनुमान कविकृत महानाटके)

बिषे कि—विषय क्या है ? ; व्याधि—रोग, विरहरोग; बैदेही पाचन—(आयुर्वेद शास्त्र मे उक्त पिप्पलका क्वाथ, रस-रत्नाकर—एक वटिका, (इंगितार्थ मे) सीता से अत्यधिक रतिसुख-लाभ (श्लेष)। (२४)

ब्रह्मा बोले तेबे सन्निपात। बिनाशने तेज हुए सत।
बिहिल भङ्गी त न बुझि इङ्गित जाण परा सङ्गीत साहित्य हे।
बिधातः। २५।

सरलार्थ—यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा, तब उन्हें सन्निपात रोग हो गया है। वाञ्छित औषध का सेवन न करने से उनका रोग तेज हुआ है।"

इगितार्थ—"तब इससे उनका (रावण का) शंनिपात (मंगल का बिल्कुल लोप) हुआ। इससे उनकी सवंश नाश में अत्यधिक प्रवृत्ति उपजी है।" यह सुनकर द्वारपाल ने इस पर अविश्वास करके कि ब्रह्माजी की भविष्यद्वाणी सचमुच संघटित होगी, कहा, "हे विधाता! आप संगीत-साहित्यादि तो जानते है। तब मेरी बात का अभिप्राय समझे विना आपने मेरी हँसी क्यों उड़ायी ?" (२५)

सन्निपात—रोगविशेष, (शंनिपात)—मंगल का लोप, सन्निपात-विनाशने—सवंशनाश; भंगी—हँसी, मजाक; इंगित—अभिप्राय (श्लेष)। (२५)

बिध्वंसन तामस क्रमशे। बिकर्त्तन उदे होइ आसे।
बिश्वचतुरी उकुटाइ कस्तूरी घेने कुङ्कुम चातुरीबशे से।
बिग्रहे। २६।

सरलार्थ—इस समय मे सूर्योदय होने से अन्धकार धीरे-धीरे गायब होने लगा। पूर्व दिशा ने रक्त रग धारण किया। उस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो पृथिवीरूपिणी चतुर स्त्री ने अपने शरीर में

(सूर्योदय के पहले) पोती हुई कस्तूरी को हटाकर इस अभिप्राय से कि अपना रग अधिक मनोरजक हो, उसमे चतुराईवश रोली पोत ली हो। (२६)

बिध्वंसन—विशेष रूप से ध्वंसप्राप्त; तामस—अन्धकार; बिकर्त्तन—सूर्य; बिश्व-चतुरी—पृथिवी रूपिणी स्त्री; उकुटाइ—हटाकर; कस्तूरी—मृगमद (सफेदी); कुंकुम—रोली (लाल रंग); बिग्रहे—शरीर मे (उत्प्रेक्षा)। (२६)

बृषा बाहार चढि कुञ्जर। ब्यकत कि ता शिर-सिन्दूर।
बहे रङ्गाम्बरे छत्र आड़म्बरे अम्बरे कि दिगपरिचार से।
बिराजे। २७।

सरलार्थ—देखते-देखते सूर्य पूर्णरूप से उदित हुए। उस रक्ताभ सूर्यमण्डल को देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे हैं, मानो इन्द्र ऐरावत हस्ती के पृष्ठ पर बैठ निकल पड़े हो, और फलस्वरूप ऐरावत के मस्तक पर का सिन्दूर-विन्दु पूर्व दिशा मे सुहावना दीख रहा हो! अथवा इन्द्र के विजे करने से उनके दिशाओ रूपी परिजनों ने (पूर्व दिशा रूपी भृत्य) लाल रग के वस्त्रो से बने राजछत्र को आकाश मे ठाठ से धारण किया है क्या! सूर्यमण्डल इस तरह विराजित हुआ। (२७)

बृषा—इन्द्र; कुञ्जर—हस्ती (ऐरावत); ब्यकत-(व्यक्त)—प्रकाशित; रंगाम्बरे—लाल वस्त्र से; छत्र—छाता (राजछत्र); आड़म्बरे—शान से, ठाठ से; अम्बरे—आकाश मे; दिगपरिचार—दिशाओंरूपी नौकर। (२७)

बाहारिले ऐन्द्रिए आनन्द। बाजे देबाळये शङ्खबृन्द।
बञ्चिले कोड़े लुचिले रात्रिचरे न मुञ्चिले कदा भय हृद से।
बासरे। २८।

सरलार्थ—सूर्य को उदित होते देखकर कौवे आनन्द से निकले। देवमन्दिरों मे शखसमूह बजने लगे। पेड़ों के खोड़र में उल्लू छिपकर बच गये। वास-स्थानों में रहते हुए भी उन्होंने अपने-अपने हृदय से भय नही त्यागा। (२८)

ऐन्द्रिए—कौवे; रात्रिचरे—उल्लू आदि पक्षी; न मुञ्चिले—नही त्यागा; बासरे—दिवस में; (उत्प्रेक्षा)। (२८)

बीक्षण ए समयकु कले। बिभक्षणे मन बळाइले।
बिगत कर्बुरी गुपत जगतरञ्जनीर पारुशरु हेले से।
बेगरे। २९।

सरलार्थ—इस (प्रभात) समय को देखकर राक्षसियों ने भोजन की ओर ध्यान दिया। इसलिए वे जगन्मोहिनी सीता के समीप से शीघ्र ही चली गयी। (२९)

वीक्षण—देखना; विभक्षणे—भोजन-निमित्त; कर्बुरी—राक्षसियां; जगतरञ्जनी—जगन्मोहिनी सीता; पारुशरु—पार्श्व से, पास से। (२९)

बृद्ध गण्डुकी नदी स्नानरे। बळाइले चित्त ततपरे।
बिळम्ब गमन प्रळम्बकुन्तळा अबलम्ब एहि मनोहरे से।
बैदेही। ३०।

सरलार्थ—अनन्तर सुदीर्घकेशी सीता ने सुविस्तृत गण्डुकी नदी मे स्नान करने के लिए मन किया। सीता की इस समय की धीर मन्थर-गति ने निम्नलिखित शोभा को धारण किया। (३०)

वृद्ध—वर्द्धित, सुविस्तृत; प्रळम्बकुन्तळा—सुदीर्घकेशी; अबलम्ब—धारण किया; एहि मनोहरे—इस शोभा को। (३०)

बिशेषित गभीळसी हसी। वनजिनी दळे कि बिळसि।
वाहु लम्वित कुच चक्र चुम्बित मृणाळकु एहि लक्ष्य आसि से।
बैदेही। ३१।

सरलार्थ—सीता की उस समय की गति देखकर प्रतीत हुआ, मानो विशेष गर्भभार से आलसी हंसी पद्म-पत्र पर क्रीड़ा कर रही हो। और भी उनके लंवित बाहुयुगल व स्तनद्वय को देखकर कवि के मन में यह उत्प्रेक्षा आई, मानो दो पद्मनालों को दोनों चकवे धारण किये हुए हैं। (यहाँ वाहुएँ पद्मनालों और स्तन चकवों से उपमेय है।) (३१)

विशेषित—विशेष रूप में; गर्भाळसी—गर्भ के हेतु आलसी; वनजिनी दळे—पद्मिनी-लता के पत्र में; कि विळसि—क्रीड़ा करती है क्या! कुच-चक्र—स्तनों रूपी चक्रवाकों को; मृणाळकु—पद्म की नाल के प्रति; एहि लक्ष्य—यही उपमा; आसि—जँचती है (उत्प्रेक्षा, रूपक)। (३१)

वेणी अळप चरमे चळे। बसि मयूरपुच्छ कि चाळे।
बेनि डोळाहिँ न चाहिँला चाहिँला कि शोइला होइ भृङ्गखेळे से।
बारिजे। ३२।

सरलार्थ—फिर सीता के चलते समय उनकी वेणी पीठ पर जरा-जरा हिलती थी। यह देखकर प्रतीत होता है, मानो मोर बैठकर अपनी लम्बी पूँछ नचा रहा हो। और भी, उनके दोनों गोलक, जो देखते, अनदेखते-से हो रहे है, देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो अपना मुख नीचा किये खिले हुए पद्मफूल पर दोनों भौंरे वैठकर क्रीडा कर रहे हो। (३२)

चरमे—पीठ पर; दोळे—झूलती है; वेनि—दोनों; डोळा—गोलक; भृंग—भौंरे; बारिजे—पद्म पर (उत्प्रेक्षा)। (३२)

बार्द्धिजाते इन्दु निष्कळङ्का । बदनरे छाड़ि कि से शङ्का ।
बढ़िले जड़िले घोड़िले भालार्द्ध बेढ़ि चकोरपन्ति अळका से ।
बैदेही । ३३ ।

सरलार्थ—चन्द्र समुद्र से पैदा होते समय निष्कलंक थे और चकोर उनसे प्रसन्नचित्त से चन्द्रिका-पान कर रहे थे। धीरे-धीरे चन्द्र सकलंक हो गये। इसलिए चकोरों ने उनसे चन्द्रिका-पान त्याग दिया। इसी समय मे सीता की अलकाओं ने बढ़कर उनके ललाट के आधे भाग को ढक लिया है। अलकावृत्त सीता के निष्कलक मुख को देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है, मानो चकोरो ने सीता के वदन पर से चन्द्रमास्थित कलंक की शका त्याग करके (विमल सुधापान के उद्देश्य से) उसको घेर लिया है। (३३)

बार्द्धिजाते—समुद्र से पैदा होते समय; इन्दु—चन्द्र; निष्कळंका—कलंकहीना; भालार्द्ध—कपाल (ललाट) का आधा भाग; चकोरपन्ति—चकोर समूह; अळका—चूर्ण-कुन्तल। (३३)

बिचळित नासा श्वासबळे । बसि ऊर्ध्वे कि शुक चञ्चळे ।
बिम्बाधर शुष्क धरणु धरषे नाहिँ एहि उपलक्ष्य मिळे से ।
बैदेही । ३४ ।

सरलार्थ—इस समय नि:श्वास-प्रश्वास के द्वारा सीता के नथुने फूलकर ऊपर उठ रहे थे और गिर रहे थे और उनके विम्ब सदृश अधर सूख गये थे। इसलिए उनके अधरों के ऊपर स्थित फूली हुई नासा को देखकर यही उत्प्रेक्षा कवि को जँच रही है, मानो एक तोता ऊपर बैठकर आहार की इच्छा से अपना मुख पसारता हुआ चचल हो रहा हो एवं होठों रूपी कुन्दरुओं को सूखे देखकर उन्हे अपनी चोच से पकड़ना नही चाह रहा हो। (३४)

बिम्बाधर—बिम्बफल के समान होंठ; शुष्क धरणु—सूखापन पकड़ने से; धरषे नाहिँ—नही पकड़ रहा है; उपलक्ष्य—उपमा, उत्प्रेक्षा (उत्प्रेक्षालंकार)। (३४)

बक्षोज तळे रोमाळी साधु । बिजनस्थान हृद बिशुद्धुँ ।
बाहुड़े शरघा शरधारे उरे सर्जि अबा राम-प्रेम-मधु से ।
बैदेही । ३५ ।

बिलक्षि एमान हनुमान । बिचारि ए अनुमानमान ।
बिश्राम एक तरुतळे तरुणी एथि उत्तारु अमृत-पान से ।
बिहिले । ३६ ।

सरलार्थ—उनके स्तनों के नीचे मनोहर रोमावली देखकर प्रतीत होता है, मानो मधुमक्खियाँ सीता जी के हृदय को विशुद्ध विजन-स्थान ठानकर वही श्रीरामचन्द्र जी का प्रेम-मधु संचयार्थ उससे स्तनरूपी मधु-कोष का श्रद्धा से निर्माणपूर्वक लौट रही हों। हनुमान् जी ने अनुमान से सीताजी मे उपर्युक्त उपमाओं को विशेष रूप से देखकर इसी तरह उत्प्रेक्षाएँ की। तदनन्तर तरुणी सीतादेवी ने एक वृक्ष के नीचे बैठकर अमृत-पान किया। (३५, ३६)

वक्षोज—स्तन; साधु—मनोहर; शरघा—मधुमक्खियों का समूह; शरधारे—श्रद्धा से; उरे—हृदय में; राम-प्रेम-मधु—रामचन्द्र जी का प्रेमरूपी मधु; बिलक्षि—विशेष रूप से लक्ष्य करके; एमान—इन उपमाओं को; अनुमानमान—अनुमानो या कल्पनाओं से; तरुणी—रमणी सीता; एथि उत्तारु—इसके अनन्तर (उत्प्रेक्षा)। (३५-३६)

बोले दाशरथि चापधारी। बन दण्डके पुणि बिहरि।
वहे नाम राम श्रीराम राघब रामचन्द्र रामभद्र करि से।
बिधातः। ३७।

सरलार्थ—इस समय हनुमान् जी सीता के समीप जाकर खेदभरे वचन बोलने लगे, मानो किसी दूसरे व्यक्ति से कह रहे हों—"हाय विधाता! जो दशरथ महाराज के पुत्र है और जिन्होंने श्रीराम, राघव, रामचन्द्र और रामभद्र—ये चार नाम वहन किये है, उन्हीं रामचन्द्र जी ने धनुधारणपूर्वक दुःख से दण्डकारण्य वन मे विहार किया! (३७)

बोले—हनुमान जी बोले; दाशरथि चापधारी—कोदण्डधर दशरथ-पुत्र श्रीराम; बनदण्डके—दण्डकारण्य में; बिधातः—हे विधाता! (३७)

बन्धु प्राणर पृथ्वीकुमारी। बिसर्जन्ति कि दिबा शर्बरी।
बिचक्षण से लक्षणरे रक्षण भ्रात अक्ष्मणहिँ अनुसरि हे।
बिधातः। ३८।

सरलार्थ—पृथिवी-कन्या सीता उनके प्राणो की बन्धु है। दिन या रात, किसी भी समय वे उन्हें अपने समीप से अन्तर नही करते। इसी हेतु वे उन्हें अपने सग ले आये थे। एकदा वे सर्वलक्षण-संपन्न भाई लक्ष्मण पर उनकी रखवाली अर्पण करके शिकार खेलने गये थे। इतने में भाई लक्ष्मण ने सीता को अकेली छोड़कर उनका अनुसरण किया। (३८)

पृथ्वीकुमारी—पृथिवी-कन्या सीता; दिबाशर्बरी—दिनरात; बिलक्षण लक्षणरे—सर्वलक्षण-संपन्न; रक्षण—रखवाली; अनुसरि—अनुसरण किया। (३८)

वाळा गळामाळा होइथिला । विच्छेदिण के ता चोरी कला ।
बारता श्रवण रावण द्रविण क्रमे सुग्रीव संयोग हेला हे ।
बिधातः । ३९ ।

सरलार्थ—हे विधाता ! वह बाला (स्त्री) श्रीराम के गले की माला थी। किसी चोर ने उनके गले को काटकर माला को चुरा लिया। (अथवा गले की माला को काटकर चुरा लिया।) रामचन्द्र जी ने वार्त्ता सुनी कि रावण ने उन सीतारूपिणी कण्ठहार को चुरा लिया। रामचन्द्र जी ने कैसे वह वार्त्ता सुनी ? सीता जी द्वारा डाले हुए सुवर्ण अलकारों से प्रभु ने वह वार्त्ता सुनी और उस वार्त्ता के दाता तथा उन अलंकारों के रक्षक सुग्रीव जी से मित्रता स्थापित की। हाय विधाता ! सीता की तरह सुकुमारी और राम की तरह सुकुमार व्यक्तियों के प्रति तुमने यही कष्ट-विधान किया ! (३९)

वाळा—स्त्री (सीता); के—किसी (चोर) ने; द्रविण—सोना, वित्त। (३९)

वेनि चेतनाकु प्राण-जात । विमळिने होइछि मिळित ।
बोलन्ति त जाणु रमणीमणिकि हृदे मणि आणिले ए सत हे ।
विधातः । ४० ।

सरलार्थ—मुझसे श्रीराम ने यह वार्त्ता भेजी है—"अरे हनुमान् ! विछोह के पूर्व हम दोनों सिर और धड़ की तरह सर्वतोरूपेण मिले हुए थे। किन्तु विछोह के वाद दोनो वेसुध हो पड़े है। फिर हम दोनों का मिलन हो जाय, तो दोनो का फिर से चैतन्योदय होगा। इस मिलन के लिए हनुमान् निर्मल रूप से मिला हुआ है। अरे हनुमान् ! तुम ये सव जानते हो। सुतरां रमणीमणि सीता के साथ मुझे मिला दो।" सीता ने ये सव वाते सुनकर अपने हृदय में विचार किया—"यह जो सव वोल रहा है, वह अक्षरशः सत्य है।" (४०)

वेनि—दोनों; चेतनाकु—चेतना (ज्ञान) लाने के लिए; प्राणजात—पवनसुत हनुमान्; विमळिने—निर्मल रूप से; रमणीमणिकि—रमणी-श्रेष्ठा (सीता) को; हृदे मणि—हृदय में विचार करके। (४०)

बाळी मृतपिण्ड होइथिला । बच सञ्जीबनी मन्त्र हेला ।
वाहिला जाडी शुककण्ठे रहिला नाहिँ कहिबार आरम्भिला से ।
बैदेही । ४१ ।

सरलार्थ—सीता विरह के हेतु मृतपिण्ड के समान हो गयी थी। हनुमान् जी की पूर्वोक्त कथाओं ने सजीवनी-मन्त्र के समान उनमें जीवन्यास किया। (अर्थात् हनुमात् जी की वातों ने उन्हें सचेत कर दिया।)

इसलिए शुक-कण्ठ के समान सीता के कण्ठ मे जड़ता फिर नही रही। उन्होने बाते बोलना शुरू कर दिया। (४१)

बच—वचन; जाड़ी—जड़ता। (४१)

बाबु के तुम्भ पाशकु आस। बेगे पूर्ण कर मोर आश।
बचन सलिळ सेचन रचन ताप मोचनकु हेला लेश से।
बिशेष। ४२।

सरलार्थ—उन्होने कहा, "तात! तुम कौन हो? मेरे पास आओ और बिना विलम्ब के ही मेरी आशा की पूर्ति करो। तुम्हारे वचनों ने मेरे हृदय-सन्ताप को कुछ हद तक शीतल कर दिया है, किसी ने जल की सिंचाई कर दी हो।" (४२)

बाबु—तात; के तुम्भे—कौन हो तुम; वचन-सलिळ—बचनरूपी जल; ताप—विरहजनित सन्ताप; लेश—कुछ। (४२)

बपुबन्त दुर्ल्लभ मर्कट। बिलोकिण हुअन्ते प्रकट।
बिचारे लम्पट ए निश्चे कपट बहे अमूल्य पटमुकुट ए।
बानर। ४३।

सरलार्थ—तब हनुमान् जी एक वपुवन्त (सुशरीरधारी) और परम-सुन्दर बन्दर के रूप मे सीता के समीप गये, तो सीता ने उन्हें देखकर विचार किया—यह निश्चय ही वही छद्मवेशी रावण है। वही रावण कपटवेश धारण करके मेरे निकट आया है। अन्यथा एक वानर कब वस्त्र व मुकुट पहनता?" (४३)

वपुवन्त—सुशरीरधारी; दुर्ल्लभ—परमसुन्दर; पटमुकुट—वस्त्र व मुकुट। (४३)

बहि स्थकित न कहुँ गिरि। बिचारिला से पावनि धीर।
बोले स्मररामाधिक सुकुमार-अङ्गि बात-कुमर मुँ स्मर गो।
बैदेही। ४४।

सरलार्थ—मन में ऐसा विचार करके सीता बिना कुछ बोले चुप हो बैठी रही। परन्तु पण्डित व धीर पवनपुत्र हनुमान् जी सीता के मनोभाव को समझ गये। वे बोले, "अयि रतिविनिन्दिका कोमलांगि! मैं पवन-पुत्र हनुमान् हूँ।" (४४)

स्थकित—मौन, चुप्पी; गिर—वचन, कथा; पावनि—पवनसुत हनुमान्; स्मररामाधिक—कन्दर्पपत्नी रति को धिक्कारने वाली; कोमळांगि—अयि कोमल अंगो वाली (सीते)!; बातकुमर—पवनसुत; स्मर—याद रखना। (४४)

बसनरे रखिथिला मुदि[1] । बश पाञ्चि फेड़ि देला मुदि[2] ।
बेगरे आदरे शिरे थोइ दरे चोरी कला हृदरे सम्पादि से ।
बैदेही । ४५ ।

सरलार्थ—सीता को वशीभूत करने के उद्देश्य से (अर्थात् उनके मन में विश्वास लाने के लिए) हनुमान् जी ने अपने वस्त्र की गाँठ खोलकर उसमें बँधी अगूठी सीता को दी। उसे देखते ही सीता ने उसे आदर से अतिशीघ्र अपने सिर पर लगाया एव भय के साथ अपने मन मे सोचा, "यह छद्मवेशी रावण किस तरह यह अंगूठी चुरा के लाया ?" (४५)

बसनरे—वस्त्र में; मुदि[1]—अँगूठी; बश पाञ्चि—विश्वास पैदा करने के लिए सोचकर; फेड़ि देला—खोल दिया; मुदि[2]—बन्धन, गाँठ (यमक); दरे—भय के सहित। (४५)

बोलि देला तहिँ हनुमन्त । बिख्यातिबा कहिबा गुपत ।
बिरस हरष बिवाद सारस आननरे कराइला जात से ।
बातज । ४६ ।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने सीता को वह अंगूठी प्रदान की। फिर भी उनकी भावभगियो से ऐसा अनुभव करके कि उनका मुझपर विश्वास नही हो रहा है, हनुमान् जी ने कहा, "अच्छा, आपके पतिदेव ने जो सब गोपनीय बाते बताई है, उनको हम प्रकाश करे।" यह कहकर हनुमान् जी ने सीता के पद्म-मुख पर युगपत् हर्ष व विषाद के विवाद को उत्पन्न किया। (अर्थात् यह समझकर कि मै गोपनीय बाते सुनूँ, सीतादेवी प्रसन्न हुई और यह शका करके कि रावण ने कही छल न किया हो, वे खिन्न हुई।) (४६)

बिख्यातिबा—(हम) प्रकाश करेंगे; सारसआननरे—पद्ममुख में; बातज—वातजात हनुमान जी (ने)। (४६)

बदे क्रीड़ु चित्रकूटाचळे । बिहु गइरिके चिता भाले ।
बिजन्य भयरे कीशनिचयरे लगाइछ प्रिय बक्षस्थळे गो ।
बैदेही । ४७ ।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् ने आरम्भ किया, "अयि सीते ! एकदा जब आप चित्रकूट पर्वत पर क्रीड़ा कर रही थीं, श्रीराम जी ने कौतुक से आपके भाल पर गेरू से चिता लिखी थी। इस समय बन्दरों से उत्पन्न भय के हेतु आपने श्रीरामचन्द्र जी को गले लगा लिया, तो आपके भालदेश मे अकित गेरू की चिता उनके वक्षदेश पर लग गयी।" (४७)

बदे—(हनुमानजी) बोलने लगे; चित्रकूटाचळे—चित्रकूट पर्वत पर; गइरिके—गेरू से; चिता—तिलक; बिजन्य—जात, उत्पन्न; कीशनिचय—मर्कटसमूह। (४७)

बासरकरे अवनीशोभि । बिञ्चि जगिथिल मृगनाभि ।
बळरे मिथ्या कि कबळ अर्थरे बिम्बाधरे क्षति कला लेभी से ।
बायस । ४८ ।

सरलार्थ—"अयि अवनीशोभिनी सीते ! एकदा आप सूर्य की किरणों में कस्तूरी बिखेरकर उसकी चौकसी किये बैठी थी। एक लोभी कौवे ने उसे खाने के लिए आपके कुन्दरुओं जैसे होंठों में बलात् आघात किया। यह क्या झूठ है ?" (४८)

बासरकरे—सूर्य किरणों में; अवनीशोभि—अयि पृथिवी-शोभिनी सीते ! बिञ्चि—बिखेरकर; मृगनाभि—कस्तूरी; कबळअर्थरे—खाने के अभिप्राय से; बिम्बाधरे—कुन्दरुओं के समान होंठों में; बायस—कौवे ने। (४८)

बल्लभहिँ कहिछन्ति ताहि । बिघातिक पद देला ग्रहिँ ।
बोले मिथ्या ए से शबद बदने कहिबाकु मुँ स्तबद होइ गो ।
बैदेही । ४९ ।

सरलार्थ—"अयि बैदेहि ! आपके पतिदेव ने मुझसे यह भी बताया है कि उस कौवे ने आपके किस स्थल पर (स्तन मे) पदाघात किया। परन्तु मैं वह प्रसंग अपने मुख में उच्चारण करने के हेतु भय से शंकित हो रहा हूँ। बताइए तो, क्या यह मिथ्या है ?" (४९)

बल्लभहिँ—आपके पतिदेव (श्रीराम जी) ही ने; ताहि—वही; बिघातिक पद—पदाघात; स्तबद—स्तब्ध, शंकित। (४९)

बिभा दिनान्ते मधुशयने । बिधुनन न रचुँ सुमने ।
बिधि करिछ नबीना राम बिना बिन्यासिब नाहिँ चित्त आने गो ।
बैदेही । ५० ।

सरलार्थ—"उन्होने और भी कहा है, अयि नवेली सीते ! विवाह की रात में सुहाग-सेज पर रतिक्रीड़ा के पूर्व आपने यह शपथ की है कि रामचन्द्र जी के बिना दूसरे पुरुष के प्रति मैं कभी आसक्त नहीं होऊँगी।" (५०)

बिभा—विवाह; दिनान्ते—रात में; मधुशयने—सुहाग सेज पर; बिधुनन—केलि, रतिक्रीड़ा; न रचुँ—आरम्भ के पहले; सुमने—निर्मल (अच्छे) मन से; बिधि—नियम, शपथ; नबीना—नवेली, नवतरुणी सीता; बिन्यासिब नाहिँ चित्त आने—दूसरे पुरुष के प्रति चित्त अर्पण नहीं करोगी। (५०)

बोले निःसंशय सीता गिरं । बिश्वासी तु बड़ प्रभुङ्कर ।
बोइलु नाहिँ त से कथा बिहित साक्षी रहित के से स्थानर हे ।
बातज । ५१ ।

सरलार्थ—हनुमान् जी के ये सारी गोपनीय बाते प्रकाश करने से सीता ने अपने मन से सन्देह दूर करके कहा, "हे पवनपुत्र हनुमान् जी ! सचमुच तुम प्रभुजी के बड़े विश्वस्त दूत हो। परन्तु तुमने यह नही बताया कि सुहाग-सेज पर मेरे शपथ लेते वक्त वहाँ साक्षी कौन था।" (५१)

निःसंशय—निश्चित; गिर—वचन, कथा; साक्षी रहित के—कौन साक्षी था ? (५१)

बिहे उत्तर से सत्यसन्ध । बोले से बा न बोइले सिद्ध ।
बिभ्रम एथि त देउछ ब्यथित दीप सिना स्थित पुर मध्य गो ।
बैदेही । ५२ ।

सरलार्थ—यह सुनकर सत्यशील हनुमान् ने उत्तर दिया, "अयि सीते ! मै यह बात बताऊँ या न बताऊँ, वही बात स्वतः सिद्ध हुई है। आप व्यर्थ ही विभ्रम में पडकर मुझे व्यथा दे रही है। साक्षी बनने के लिए तब उस कमरे मे एक दीप के सिवा और कोई नही था। सुतरा वही दीप ही इस विषय पर साक्षी है।" (५२)

सत्यसन्ध—सत्यशील; विभ्रम—बावली होकर; व्यथिथ—व्यथा। (५२)

बिच्छेदकु तुळपात्र करि । बेनि द्रब्यकु तुळिले सरि ।
बिचार प्रचारे पचारे ग्नाहाकु स्नेहु छाड़िला से ऊणा परि गो ।
बैदेही । ५३ ।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने आगे कहा, "अयि वैदेहि ! बिछोह को एक तराजू समझकर उसके दोनों पल्लों में आप दोनों (आप और श्रीरामजी) को तौला जाय, तो दोनो बराबर-बराबर होगे। (अर्थात् विरह-जनित क्लेश आपको उतना ही सता रहा है, जितना उनको।) इससे स्पष्ट हो रहा है कि आप दोनों का परस्पर के प्रति समान स्नेह है। यह सच ही है। परन्तु यह विषय और किसी से पूछा जाय, तो वह विवेक से विचारपूर्वक कहेगा कि जो ही दूसरे को छोड़ चला गया, उसीका उसके प्रति स्नेह कम है।" (५३)

बिच्छेद—विछोह; तुळापात्र—तराजू; विचार-प्रचारे—विवेकपूर्वक; ऊणा परि—न्यून-सी (स्नेह में)। (५३)

बिनश्यति हेब एते कहि । बिबेकीरे कि कहिबि मुहिँ ।
विजे कर मोर स्कन्धरे हरिब ताप बिहरिब भेट होइ गो ।
बल्लभे । ५४ ।

सरलार्थ—"आप तो विचार-चतुरी है। मैं आपसे अधिक क्या कहूँ ? आइए, मेरे कन्धों पर विराजिए। पति के संग आपका मिलन हो जाएगा और आपका विरह-ताप मिट जाएगा एवं आप उनके साथ विहार करेगी। यह बात कि आपका उनके प्रति स्नेह घट गया है, लोक में प्रगट होने पर आपके मनमें जो व्यथा उत्पन्न हुई है, वह व्यथा भी उनसे मिलने पर हट जायगी।" (५४)

बिनश्यति—दुःख दूर होगा; बिबेकी—विचारनिपुणा; बिजे कर—विराजिए; बल्लभे—पतिदेव सहित। (५४)

बोले जानकी तुम्भे कि कह । बृक्षे डेइँला कपि त नुह ।
बळात्कारे बळप्रबळ अबळा आणिलाकु ऊणा सत्य स्नेह हे ।
बातज । ५५ ।

सरलार्थ—यह सुनकर जानकी ने कहा, "हे पवन-पुत्र हनुमान् ! तुम क्या बोल रहे हो ? तुम तो पेड़ों पर कूदनेवाले बन्दरों की तरह नीचबुद्धि नही हो ! प्रवल पराक्रमशाली रावण बलात् मुझे ले आया। इस पर तुम ठान रहे हो कि मेरा प्रभु के प्रति स्नेह घट गया है। परन्तु फिर कैसे अपने कन्धों पर मुझे बैठाकर ले चलने की बात बोल रहे हो ? इतने बुद्धिमान् होकर भी ऐसी अनुचित बात कैसे बोल रहे हो ?" (५५)

बृक्षे डेईंला कपि—पेड़ो पर कूदने वाले बन्दर। (५५)

बाध प्रभुबीरधूकु हेब । बेनि बिषय चउर्य्ये थिब ।
बहि रामचन्द्र दुर्बह सागर तर बहन कीरति थिब हे ।
बातज । ५६ ।

सरलार्थ—"हे पवनपुत्र हनुमान् ! उससे प्रभु की वीरता की ख्याति मे वाधा उपजेगी। (अर्थात् तुम यदि मुझे चुरा लो, तो प्रभु की वीरता नहीं दिखाई पड़ेगी।) फिर दोनों की तरफ चोरी का अपवाद रहेगा। (अर्थात् रावण मुझे चुरा लाया था, तुम भी उसी तरह चुरा ले गये—यह निन्दा सर्वत्र फैल जाएगी।) अतएव तुम ऐसा फिर मत बोलना। बल्कि रामचन्द्रजी को वहनपूर्वक शीघ्र ही दुस्तर सागर को पार कर आओ। तभी तुम्हारी कीर्त्ति काल-काल तक टिक सकेगी।" (५६)

वीरधू—वीरता; चउर्य्य—चौर्य, चोरी; दुर्बह—दुस्तर; तर—पार करो; वहन—शीघ्र ही; कीरति—कीर्त्ति। (५६)

विकाशइ नाहिँ प्रतिआशा । बेढ़ि दुर्द्दशा अन्धार निशा ।
बिळसाइल प्रतिपद आस्पद हेब द्वितीया भाब सदृशा हे ।
बातज । ५७ ।

सरलार्थ—हे हनुमान् ! मेरी दुर्दशा अन्धेरी रात की तरह उमडती आती थी । इसलिए प्रिय-प्राप्ति की प्रत्याशा प्रति आशा (दिशा) की तरह नही प्रकाशित हो रही थी । (अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी की पुन: प्राप्ति के बारे में मै एकदम हताश हो पड़ी थी ।) अब तुमने उनके दूत-स्वरूप आकर जो सब सान्त्वना-गर्भक कथाएँ कही, उन कथाओं ने प्रतिपदा चन्द्र की तरह मेरे हृदय मे स्थान पाया है । आज से धीरे-धीरे वे कथाएँ द्वितीया चन्द्र की तरह बढने लगेगी एवं रामचन्द्रजी की पुन: प्राप्ति-सम्वन्धी मेरी आशा क्रमश: उज्ज्वल होगी ।" (५७)

प्रति आशा—प्रत्याशा (पुनः आशा), प्रतिदिशा; (श्लेष); दुर्दशा अन्धार निशा—दुर्दशारूपी अन्धेरी रात; प्रतिपद आस्पद—प्रतिपदा चन्द्र; द्वितीया भाव सदृशा—द्वितीया चन्द्र की तरह; बातज—हनुमान् । (५७)

बश मधुप काहुँ लभिब । बुझ शिबरात्रि सम्भबिब ।
बिभीतकी होइ पातकी केतकी सुकान्तिरे ईश भोग हेब हे ।
बातज । ५८ ।

सरलार्थ—सीता ने आगे कहा, "हे हनुमान् ! तुम आशका कर सकते हो—'यदि मैं बहुत दिनो तक यही रहूँ, तो मद्यप रावण बलात् मुझे अपने वश मे कर लेगा और मेरा सतीत्व नाश करेगा ।' परन्तु ऐसा हरगिज नही हो सकता । जैसे सुमनोहर केतकी कभी भी भ्रमर के वश में नही आती और शिवरात्रि की मंगलमयी रजनी में केवल ईश (महादेवजी) की उपभोग्या होती है, वैसे मैं भी निर्भय में रहकर, मद्यप रावण के वश में कभी नही आऊँगी और निष्कलंका रमणी के रूप मे सौन्दर्य-प्रकाशपूर्वक केवल ईश (पति) रामचन्द्र की उपभोग्या होऊँगी ।" (५८)

मधुप—मद्यप, शराबी (रावण); बिभीतकी—निर्भय से; सुकान्ति—सुमनोहर; ईश—महादेव, स्वामी (श्रीराम); श्लेष । (५८)

बदुँ त्वरिते पाबनि कहि । बेद शङ्खासुर ये चोराइ ।
बञ्चाइ पारिला लुचाइ सिन्धुरे सुख रचाइ धातारे सेहि गो ।
बैदेहि । ५९ ।

सरलार्थ—सीता के ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने शीघ्र ही कहा, "अयि सीते ! शखासुर ने वेद को चुराकर समुद्र में छिपाया । परन्तु

क्या वह उसे रख सका ? उन्हीं रामचन्द्रजी ने मीनावतार में शंखासुर का विनाश करके वेद लाकर ब्रह्मा को सुख दिया। अयि सीते ! उसी तरह रावण आपको चुरा लाया है और समुद्र मे छिपा रखा है। फिर भी रामचन्द्र जी उसका वध करके आपको प्रसन्न करेगे।" (५९)

बदुं—सीता के ऐसा बोलते; धातारे—विधाता को। (५९)

बिधुरता येते दिन थिला। बिधिठारे पुण सम्भबिला।
बेनि बेनि भाब प्रभाब स्वभाब मोक्ष केउँ आशे न पाइला गो।
बैदेहि। ६०।

सरलार्थ—अयि वैदेहि ! वेदों और विधाता का परस्पर से विछोह जितने दिनों तक होने वाला था, सो हो गया। उस अवधि के बाद वेद फिर ब्रह्मा के हस्तगत हुए। उसी तरह आप दोनों का जितने दिनों तक परस्पर से विछोह होना ही है, उस अवधि के बाद फिर दोनों का परस्पर से अवश्य मिलन होगा। सुतरां आप और रामचन्द्र जी, दोनों की चेष्टा, शक्ति तथा प्रकृति वेदों तथा ब्रह्मा जी, दोनों की-सी है, और उन दोनों के विछोह का जिस प्रकार मोक्ष (लोप) हो गया था, उसी तरह आप दोनों का विछोह निश्चय ही विलुप्त होगा। अयि सीते ! आपका विछोह से मोक्ष नही होगा कैसे ? (अवश्य होगा !) (६०)

बिधुरता—बिछोह; बिधिठारे—विधाता के पास; बेनि-बेनि भाब—दोनों-दोनों का भाव, ब्रह्मा तथा वेद का भाव, श्रीराम तथा आपका हाव-भाव। (६०)

बेनि जनङ्क चेष्टा तुम्भर। बुझि करुछि एहि बिचार।
बिधाता संसारसार प्रशंसार बिहि बसिला एक शरीर गो।
बैदेहि। ६१।

सरलार्थ—अयि वैदेहि ! आप दोनों की चेष्टाओं को समझकर मैं यह विचार कर रहा हूँ कि विधाता प्रशसा के योग्य संसार-सार वस्तुओं से एक शरीर बनाने के लिए बैठे। (अर्थात् इस अभिप्राय से कि एक ही शरीर को लोकोत्तर प्रशसा के योग्य करके निर्माण करूँगा, उन्होंने कोशिश की।) (६१)

बेनि जनङ्क—राम तथा सीता दोनों की; संसारसार—संसार में श्रेष्ठ; बिहि—निर्माण करने। (६१)

बिचारिला पुरुषे करिबि। बामा एपरि काहुँ आणिबि।
बेभारे शोभारे प्रभारे स्नेहरे गुणे द्विमूर्त्ति कला कि भाबि गो।
बैदेहि। ६२।

सरलार्थ—परन्तु आप दोनों को (दोनों रूपो को) देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो विधाता ने सोचा—"यदि मैं इन्ही ससार-सार वस्तुओं से एक ही पुरुष बनाऊँ, तो इसके अनुरूप एक स्त्री कहाँ से लाऊँ ?" सुतरां उन्होने ससार-सार वस्तुओं को इकट्ठी करके उनसे व्यवहार-स्वभाव, शोभा, प्रभा, गुण तथा स्नेह मे परस्पर से समानता करके एक स्त्री व एक पुरुष—इस तरह एक ही व्यक्ति की दो मूर्तियाँ बना दी। (६२)

बेभारे—व्यवहार में। (६२)

बपु चाहिँ बिचारे तुम्भर। बिरह य़े ठक वणिजार।
बेगे रूप्य देइ जातरुप नेइ घोटुँ स्वरूप काम अन्धार गो।
बैदेहि। ६३।

सरलार्थ—अयि वैदेहि ! आपका शरीर देखकर मैं ऐसा समझ रहा हूँ कि विरह एक ठग सौदागर है। अन्धकार के उमड़ते आते, ठग लोग चाँदी देकर उसके बदले जैसे सोना ले जाते है, उसी तरह आपको कामरूपी अन्धकार ने ढक लिया है और इसी का सुयोग लेकर विरहरूपी ठग आपको चाँदी के सदृश पाण्डुवर्ण देकर आपसे सोने की कान्ति ले गया है। (अर्थात् विरह के हेतु सीता की स्वाभाविक सुवर्णकान्ति ने पाण्डुवर्ण को धारण किया था।) (६३)

वपु—शरीर; वणिजार—सौदागर; रूप्य—चाँदी; जातरूप—सोना। (६३)

बिरकतुँ तब धब चित्त। बर्ण पालट अति दुःखित।
ब्यकत करि स्फटिक मरकत नेला अशकत अतिअन्त गो।
बैदेहि। ६४।

सरलार्थ—अयि वैदेहि ! फिर उस विरह-रूपी ठग ने आपके पतिदेव के मन मे विरक्ति पैदा करके उन्हें अत्यन्त दुःख-प्रदानपूर्वक बिल्कुल असमर्थ कर दिया और उनसे मर्कत कान्ति लेकर उन्हें स्फटिक दे दिया है। (अर्थात् विरह के कारण श्रीराम जी की मर्कतोपम नीलकान्त देह तथा तेज स्फटिक की तरह शुक्ल हो गयी है।) (६४)

बिरकतुँ—विरक्ति से; धब—पति; स्फटिक—बिल्लौर; अशकत—अशक्त, दुबले; अतिअन्त—अत्यन्त। (६४)

बेनि बर्ण अमूल्य पदार्थ। ब्यापि परस्परे हृदपथ।
बिहि रतन स्वर्णमाळा य़तन तनमन य़ेणे मनोरथ गो।
बैदेहि। ६५।

सरलार्थ—"अयि सीते ! आप दोनों के शरीरों का वर्ण सुवर्ण तथा मर्कतमणि की तरह अमूल्य है। यह भावना भी आप दोनो के हृदय-पथों में समा गयी है। (अर्थात् आपने अपने मनमें समझा है कि श्रीराम जी मर्कतवर्ण है और उन्होंने समझा है कि आप सुवर्णवर्णा है।) सुतरां इन्ही दोनो मूल्यवान् पदार्थो से सयत्न मालाओ का निर्माणपूर्वक जिनका जिनके प्रति एकमात्र मनोरथ (अभिलाष) है, उन्होंने उन्ही को माला की तरह ग्रहण किया है। (अर्थात् आप श्रीराम जी को मर्कतमाला के समान समझ रही है तो वे आपको स्वर्णमाला के समान समझ रहे हैं।)" (६५)

बेनिवर्ण—(रामसीता) दोनों का रंग; (राम के शरीर का मर्कत-का सा रंग और सीता के शरीर का स्वर्ण-सा रंग—दोनों रग अमूल्य हैं); तनमन—तल्लीन; ये णे—जिनका जिनके प्रति; मनोरथ—अभिलाषा। (६५)

बोले जानकी ता बाणी शुणि । बिख्यात हो आणि[1] राम आणि[2] ।
बळिले कण्ट बळिष्ठ रक्षनाथ बळिबत करिबटि पुणि हे ।
बातज । ६६ ।

सरलार्थ—हनुमान् की बातें सुनकर जानकी जी ने कहा, "हे हनुमान् जी ! तुम श्रीरामचन्द्र जी को यहाँ ले आओ और अपनी गौरव-रक्षापूर्वक विख्यात होओ। अवधि के बीत जाने पर बलवान् रावण मुझे यज्ञ-पशु की तरह बलि चढ़ाएगा। (हत्या करेगा।)" (६६)

आणि[1]—गौरव, बड़ाई; आणि[2]—लाकर (यमक); कण्ट—अवधि; रक्षनाथ—राक्षसपति रावण; बळिबत—यज्ञ में बलि चढ़ाये जाने वाले पशु की तरह। (६६)

बेदनाकु कि कहिबि देख । बन्धु दीनबन्धु मुँ नीरक्ष ।
बोलि रमणीशिरोमणि ता शिरोमणि देइ भाषे रख रख हे ।
बातज । ६७ ।

सरलार्थ—"हे हनुमान् ! तुम तो मेरे सारे दु:ख प्रत्यक्ष रूप में देख रहे हो। मै अधिक तुमसे क्या कहूँ ? तो तुम उनसे इतना ही कहना कि मेरे बन्धु (प्रियतम) दीनबन्धु होते हुए भी मैं अब अनाथ होकर रही हूँ।" रमणीमणि सीता ने यह कहकर अपनी मथामणि को निकालकर हनुमान् जी को वह मणि दी एव उनसे कहा, "इसे तुम अपने पास रखो।" (६७)

बन्धु—प्रियतम; दीनबन्धु—गरीबों के बन्धु श्रीराम; नीरक्ष—अनाथा, बेसहारा; रमणी-शिरोमणि—रमणीश्रेष्ठा सीता (ने); शिरोमणि—माथे की मणि; भाषे—बोलती हैं। (६७)

बन्दाइले ए रत्न श्वशुरे । बिद्यमान पदार्थ ए सुरे।
बसनस्थित श्वसनसुत कला सुप्रसन्नबदनी देबारे से।
बहने । ६८ ।

सरलार्थ—सीता ने आगे कहा, "मेरे ससुर ने मुझे यह रत्न विवाह के समय मुँह-दिखाई में पहनाया था। यह कोई मामूली रत्न नही। देव लोग इस पदार्थ को जानते है। (अर्थात् यह रत्न देवताओं का स्तुत्य रत्न है।)" यों कहते हुए जब अत्यन्त प्रसन्न-वदना सीता ने वह रत्न हनुमान् जी को दिया, तो हनुमान् जी ने उसे अपने वस्त्र में बाँध रखा। (६८)

बन्दाइले—भेट में पहनाया था; विद्यमान पदार्थ ए सुरे—देवताओं के स्तुत्य पदार्थ; बसनस्थित—वस्त्र में बाँध रखा; श्वसनसुत—पवनसुत हनुमान् (ने); सुप्रसन्नबदनी—अत्यन्त-प्रसन्न-वदना सीता; बहने—शीघ्रता से। (६८)

बोले मेलाणि होइलि मुहिँ । ब्यथा तेज सुधाकर-मुहिँ ।
बिदित कथा काळ काळ[1] होइब काळकाळ[2] एका थाअ ध्यायि गो।
बैदेहि । ६९ ।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् जी ने कहा, "अयि वैदेहि ! मै अब विदा ले रहा हूँ। अयि चन्द्रवदना सीते ! अपने मन से चिन्ता को दूर कीजिए। यह कथा कालोंकाल तक प्रसिद्ध होकर रहेगी। अपने इस शोक का हरण करने के लिए आप महादेव जी का ध्यान करती रहें।" (६९)

मेलाणि—विदाय; सुधाकरमुहिँ—अयि चन्द्रवदना सीते; बिदित—प्रसिद्ध; काळ काळ[1]—बहुत काल तक; काळकाळ[2]—महाकाल, महादेव को; (यमक)। (६९)

बोइले ये जनककुमारी । बृषाञ्जन यारे अनुसरि ।
बन्दी[1] मुँ ताहारे बन्दी[2] परकारे बन्दिले से पारिले निस्तारि हे।
बातज । ७० ।

सरलार्थ—यह सुनकर जनककुमारी सीता ने कहा, "हे वायुपुत्र हनुमान् जी ! महादेव जी ने जिस रावण का अनुसरण किया है, उसी रावण के द्वारा मैं बन्दिनी हुई हूँ। अतएव उन्ही महादेव जी की भाट के समान स्तुति करने से वे क्या मेरा परित्राण कर सकेंगे ?" (७०)

बृषाञ्जन—महादेव; यारे—जिस रावण का; बन्दी[1]—बन्दिनी, कैदी; ताहारे—उससे; बन्दी[2]—भाट; (यमक); परकारे-सदृश; पारिले से निस्तारि—वे क्या मेरी रक्षा कर सकेंगे ? (७०)

बिधातारहिँ नाहिँ आयत्त । बेद पढ़े अनुसरि नित्य ।
बिष्णु मातर कारण नोहिछन्ति कष्ट अन्तरकु ध्यायि चित्त हे ।
बातज । ७१ ।

सरलार्थ—सीता ने फिर कहा, "हे पवनपुत्र ! इस व्यथा से मुक्ति-लाभ करने के लिए मैं विधाता की स्तुति करती । परन्तु देख रही हूँ कि उनका भी यहाँ वश नही चलता । वे रावण का अनुसरण करके नित्य यहाँ वेदपाठ करते हैं । केवल विष्णु जी ही उससे नही डरते । सुतरां मेरी इस दुर्दशा के मोचन के लिए मै उन्हीं का ही हमेशा ध्यान कर रही हूं ।" (७१)

विधातार—ब्रह्मा का; नाहिँ आयस—वश नहीं है; बिष्णु मातर—एक मात्र विष्णु ही; कारण नोहिछन्ति—डरते नहीं; कष्ट अन्तरकु—दुर्दशा का मोचन करने के लिए । (७१)

बातात्मज सत्य बोलि य़ाइ । बीरबर उपइन्द्र कहि ।
बास्तरि पद छान्द बुधसम्पद मूर्ख बिपदकारक एहि हे ।
बिस्तीर्णे । ७२ ।

सरलार्थ—सीता के ऐसा कहने से पवनपुत्र हनुमान् जी ने कहा, "यह सत्य ही है", और उन्होंने सीता से विदा ली । पण्डितों के सम्पददायक तथा मूर्खो के विपदकारक बहत्तर पदो के इस छान्द को वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने विस्तृत रूप से कहा । (७२)

वातात्मज—पवनसुत हनुमान्; बुधसम्पद—पण्डितो की सम्पत्ति; मूर्ख-विपद-कारक—मूर्खों को संकट में डालनेवाले । (७२)

॥ इति पञ्चत्रिंश छान्द ॥

षट्त्रिंश छान्द

राग—बसन्त

बसति से बसन्तर सकळ काळरे। बिखन नामे लेखन मधुबन करे य़े। बिबिध तरुण तरु लता चारु अति। बन्ध्या नाहिँ सर्वे फळबन्त पुष्पबती य़े। बिभाबसुअंशु पशु नाहिँ पत्रघञ्चे। बिहरि बिहगे पञ्जरीस्थ शोभा रचे य़े। १।

सरलार्थ—वसन्त या मधुकाल उस अशोक वन में हमेशा वास करता है। इसलिए विधाता ने उस वन का नाम मधुवन रखा है। वह वन नाना प्रकार के तरुण तथा मनोहर वृक्षलताओ से भरपूर है। फिर सारे वृक्ष फलवान् और सारी लताएँ पुष्पवती है। अर्थात् उस वन में फलहीन वृक्ष या पुष्पहीन लताएँ दिखाई नही पड़ती है। घने पत्रो के कारण उस वन मे सूर्य की किरणे प्रवेश नही कर सकतीं। पक्षिसमूह उस वन में विहार (क्रीड़ा) कर रहे है। वे सब यो शोभा पा रहे है मानो पिंजड़े मे रहे हो। (१)

बिखन—विधाता; चारु—मनोहर, सुन्दर; बन्ध्या—बाँझ; पत्रघञ्चे—पत्रो की गहनता मे; घने पत्रों मे; बिभावसुअशु—सूर्यकिरणें; बिहरि—विहार (क्रीड़ा) करते हैं; बिहगे—पक्षी सब। (१)

बिज्वळित य़हिँ नानारत्न आळबाळ। बासर रजनी मेळ प्रभा महोज्ज्वळ ये। बास्तोष्पति धनपति सेबे लङ्कनाथ। बिनति से बनरे नन्दन चैत्ररथ य़े। बिहन्ति अमृततुल्य शीतळ अमृत। बढ़ान्ति चारि जीमूते बाद करि नित्य य़े। २।

सरलार्थ—उस वन में वृक्षों की जड़ो मे नाना रत्नों से बने थाले सब विशेष रूपसे देदीप्यमान हो रहे है। उन थालों की प्रभा से वन-भूमि दिनरात हमेशा महोज्ज्वल दिखाई दे रही है। अतएव वहाँ दिन रात बिल्कुल जाना नही जा सकता। अमरपति इन्द्र तथा धनपति कुबेर हमेशा लंकेश्वर रावण की सेवा करते हैं। सुतरां इन्द्रजी का उद्यान नन्दन कानन और कुबेरजी का उद्यान चैत्ररथ रावण के उद्यान की विनती कर रहे है। (अर्थात् मधुवन या अशोकवन की शोभा नन्दन तथा चैत्ररथ की शोभा से बढकर है।) फिर संवर्तकादि चार मेघ परस्पर से विवादी होकर वही अमृत तुल्य शीतल जल वरस रहे है। इसलिए

उस वन में वृक्षलताएँ बिना वाधा-विघ्नों के बढ़ रहे हैं। (मेघचतुष्टय भी रावण के सेवक थे।) (२)

बिज्वळि—विशेष रूप से दीप्तिमान्; आळबाळ—गढ़े; बास्तोष्पति—इन्द्र; धनपति—कुवेर; नन्दन—इन्द्र का उद्यान, चैत्ररथ—कुबेर का उद्यान; अमृत—जल; जीमूत—मेघ। (२)

बिबृत चन्दनगन्ध गन्धबह बहि। बालुका ब्याजरे हिमबालुका सिचइ ग्ये। बिहन्ति बाद आरम्भ गन्धर्बपदकु। बिञ्चन्ति कुरङ्ग खत करि ता मदकु ग्ये। बनप्रिय पञ्चमस्वरकु गीतारम्भे। बहिछुँ गन्धर्बपद छड़ाइण आम्भे ग्ये। ३।

सरलार्थ—वायु कुञ्जाकृतिविशिष्ट चन्दनवृक्षो से सुगन्ध वहनपूर्वक बह रही है और उस वन मे बालू के मिस कर्पूररज सीच रही है। वहाँ कस्तूरी मृग अपने-अपने मद (अर्थात् मृगमद) को खाद स्वरूप बिखेर रहे है। यह देखकर प्रतीत होता है कि मृगों का 'गन्धर्व' नामक एक नाम होने से वे स्वर्ग में विहार करनेवाले गन्धर्वों के सहित मानो होड़ लगाकर ऐसा कर रहे हों। उक्त वन मे कोकिल पञ्चम स्वर में गीत गान-पूर्वक तद्व्याज मे स्वर्ग में विहार करनेवाले गन्धर्वो से यह बता रहे है कि हम लोग तुम लोगों के 'गन्धर्व' पद को छीन लाये है, तुम फिर कैसे गन्धर्व होगे ? अर्थात् गायकनिपुण गन्धर्वो के सगीत-गान की अपेक्षा इन कोयलो का पंचमस्वर अधिक मधुर है। तात्पर्य यह है कि रावण के मधुवन में बहुत चन्दन वृक्ष होने के कारण वहाँ बहनेवाली वायु सुगन्ध-युक्त है। नन्दन तथा चैत्ररथ उद्यान में गन्धर्व लोग खाद देते है। वैसे यहाँ 'गन्धर्व' पदवाचक कस्तूरी मृग खादस्वरूप मृगमद बिखेर रहे है। अर्थात् उस वन में बहुत कस्तूरी मृग है। फिर उक्त वन में कोकिल पक्षी गायकनिपुण गन्धर्वो से अधिक मधुर स्वर में गान गा रहे हैं। (३)

विबृत—वेष्टित, कुञ्जाकृति विशिष्ट; गन्धबह—पवन; ब्याजरे—बहाने, मिस; हिमबालुका—कपूर; बाद—विवाद, होड़; गन्धर्वपदकु—स्वर्गविहारी गन्धर्वों से; बिञ्चन्ति—बिखेरते है। कुरंग—कस्तूरीमृग (उनका एक नाम 'गन्धर्व' भी है।); खत—खाद; ता मदकु—उसके मद को—मृगमद (कस्तूरी) को; बनप्रिय—कोकिल, कोयल; छड़ाइण—छीनकर; आम्भे—हम लोगों ने। (३)

बसुमती देबधर्मे न छुइँ चरणे। बोलाउछ गन्धर्ब केबळ सुलक्षणे ग्ये। बीणा बड़पण छड़ाइण नारदर। बिना बादने झिल्लिका झर्झर सुस्वर ग्ये। बिअर्थ ए अनुमानमानहिँ नुहइ। बळे ग्यक्षुँ रक्षे पुण्यजन पद नेइ ग्ये। ४।

सरलार्थ—वे कोकिल पंचमस्वर के मिस मृगों से बोल रहे है, (चूंकि वे पक्षी है, इसलिए वे आकाश में उड़ते है।) "हम लोग देवधर्म से दीक्षित (अर्थात् देवकल्प) गन्धर्वो के समान चरणों से पृथिवी का स्पर्श नही करते हैं। तुम लोगों में कौन-सा ऐसा सुलक्षण हैं जिससे कि तुम लोग 'गन्धर्व' नाम पाओगे ? उस वन में झींगुर नारद महर्षि के वीणा वादन की बड़ाई छीनकर किसी संगीत यन्त्रवादन के विना भी उत्तम स्वर-निर्झर बहाते है। यह अनुमान व्यर्थ ही नहीं है। क्योकि राक्षस लोगों ने यक्षों से बलात् 'पुण्यजन' पदवी छीन ली है। (४)

बसुमती—पृथिवी; बोलाउछ—कहला रहे हो; बड़पण—बड़ाई; बिना बाबने—बिना संगीत-यन्त्र बजाये; झिल्लिका—झींगुर; यक्षुं—यक्षों से; रक्षे—राक्षसों ने; पुण्यजनपदबी—राक्षस पदवी। (४)

बळे य़ेबे न नेले पातकी पुण्यजन। बोलाइले केउँ अर्थे सर्बे मने घेन ये। बन देखि महातोष हनुमान पाञ्चि। बादकाळे चोर प्राये य़िबा किपाँ लुचि य़े। बळहीन नोहे य़िबि होइ क्षुधातुर। बृक्ष उपाड़ि से फळ झाड़िला मुखर य़े। ५।

सरलार्थ—आप सब मन में विचार करें:—यदि राक्षस लोगों ने 'पुण्यजन' पदवी बलात् नही छीन ली होती, तो पापी होने के बावजूद वे लोग कैसे 'पुण्यजन' कहलाये ? ऐसे रमणीय वन को देखकर हनुमान् ने मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर सोचा, "विवाद के समय चोर की तरह लुकछिपकर क्यों जाऊंगा ? और भी मैं बलहीन नही हूँ कि यहाँ से भूखा जाऊँ।" मन में ऐसा विचार करके उन्होंने उद्यानस्थ वृक्षों को उखाड़कर उनके फलों को मुख मे झाड़ खाया। (५)

मने घेन—मनसें ग्रहण करो, बिचार करो; बादकाळे—निवाद के समय; किपाँ—क्यों ?, उपाड़ि—उखाड़कर। (५)

बाहास्फोट बिहिला उदर शान्ति अन्ते। बिमर्दिला पादे पुष्प छदन सहिते य़े। बिचारन्ति रक्षीराक्षसीए कि उत्पात। बतास बिहीने त कानन हेता हत य़े। ब्रह्मार अर्द्धबयस प्रळय त दूरे। बिशभुजे न डरि के अछि ए संसार य़े। ६।

सरलार्थ—अपना पेट भर जाने से हनुमान् ने अपनी बाहुओं को ठोंककर वन के शेष वृक्षलताओं के समूह को पुष्पपत्र सहित अपने पैरों से कुचल डाला। वन की रखवाली करनेवाली राक्षसियों ने यह देखकर सोचा, "यह कैसा उत्पात है। बिना तूफान के यह कानन उजड़ गया

कैसे ? ब्रह्मा की अवस्था तो अभी आधी हुई है। इसलिए प्रलय तो अभी बहुत दूर है। फिर बीस भुजाओं वाले रावण से बिना डरे संसार में ऐसा कौन है जो निर्भय से उसके उद्यान को उजाड़ सके ? (अर्थात् कोई नहीं।) (६)

बाहास्फोट—बाहुओं को ठोंकना; छदन—पत्र; रक्षीराक्षसीए—रखवाली करने वाली राक्षसियाँ; बतास—तूफान; हत—उजड़ा; बिंशभुजे—बीस भुजाओं वाले (रावण) से। (६)

बाळी भाळिले बानर देखि बाळि एहि। बार्त्ता कहिबारे भूपे नदी प्राये बहि य़े। बिभरण रोदन भयद ध्वनि मेळ। बर्ष्मरु गळित घर्म उल्लोळ कल्लोळ य़े। बाळ फिटि लोटि शइबाळचय कि से। बाहु ऊरु तरु कि उपुड़ि भासि आसे य़े। ७।

सरलार्थ—एक बन्दर को देखकर उद्यान की रखवाली करनेवाली राक्षसियो ने मन में सोचा, "यह निश्चय ही बाळि (कपि सम्राट्) है।" सुतरां राजा रावण को यह समाचार देने के लिए वे लोग नदी की तरह बह गईं। अर्थात् एक के पीछे दूसरी रह रावण के समीप चलने लगीं। चलते वक्त उन्होंने रोने की जो भयद ध्वनि धारण की थी, वह ऐसी सुनाई पड़ रही थी, मानो नदी जल का परस्पर से घातप्रतिघात-जनित 'कल' 'कल' शब्द हो। उनकी देहो से बहती हुई पसीनों की धार चंचल लहरों के सदृश दिखाई दे रही है। फिर उस समय उनकी जुड़ाएँ खुलकर भूमि पर लेट रही थी, मानो नदी में सेवारों का समूह खण्ड-खण्ड होकर उतरा रहा हो। उनकी भुजाओं तथा जाँघों को हिलते देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो नदी के स्रोत से वृक्षो का समूह उखड़कर उतराते-बहते जा रहे हों। (७)

बाळी—राक्षसियों ने; भाळिले—सोचा; बाळि—कपिराज बालि; (यमक) बिभरण—धारण की; बर्ष्मरु—शरीरों से; घर्म—पसीने; उल्लोळ—चंचल; कल्लोळ—तरंगें, लहरें; शइबाळचय—सेवारों का समूह; उपुड़ि—उखड़कर, भासि आसे—उतराता आ रहा हो। (उत्प्रेक्षा) (७)

बरषासूचक ए काळकु सभास्थान। बिस्तार घन रावण प्रतिभा निःस्वन ये। बिधि बात मेळ य़न्त्र बाजिबार तहिं। बरुण शक्रादि सुमनस स्फुट य़हिं य़े। बिरळरे नीळकण्ठ नृत्ये श्रद्धापर। बिहुँ हरि राति घोटि मोहित अन्धार य़े। ८।

सरलार्थ—उन राक्षसियों ने जाकर देखा कि रावण की सभास्थली बरसात की सूचना दे रही है। अर्थात् रावण की सभास्थली को देखकर

उन्होंने सोचा कि यहाँ बरसात उपस्थित हुई है। कैसे ? अपनी देह की कृष्णता के कारण रावण ने घन के सदृश विस्तार प्राप्त किया है। रावण की दीप्ति व शब्द चारों ओर फैल रहा है मानो बरसाती मेघ की गर्जन-दीप्ति चारों ओर फैल रही हो। रावण की राजसभा में विधाता के साथ पवनदेव मिले हुए है, मानो बरसात में मेघ के साथ वायु मिली हुई हो। बरसात में रसिक (कौतुकी) लोग इकट्ठे मिलकर यन्त्रवाद्य बजाते है। उसी तरह यहाँ नाचगीत चलते रहने से यन्त्रवाद्य बज रहे है, बरसात में वरुण तथा वनमल्लिका आदि फूल खिलते हैं। उसी तरह यहाँ वरुण, इन्द्र आदि देवता लोग देदीप्यमान हो रहे है। बरसात मे मोर प्रेमसे निर्मल (मनोहर) रूप से क्रीड़ा करते है। वैसे यहाँ महादेव जी श्रद्धा से ताण्डव नृत्य कर रहे है। बरसात मे मेघ की वजह से दिन रात के समान दीखता है क्योंकि चारों ओर अन्धकार उमड़ता-घुमड़ता रहता है। यहाँ महादेव जी अपने विरल ताण्डव नृत्य में श्रद्धापर हो विष्णु जी का आदर विधान कर रहे हैं, जिसके दर्शन से सब विमोहित हो गये। (८)

घन—मेघ; प्रतिभा—दीप्ति; निःस्वन—शब्द; विधि—नियम, बिधाता; (श्लेष); बात—वायु; बरुण—वृक्षविशेष, वरुणदेव अथवा समुद्र; शक्रादि—वनमल्लिका, इन्द्रादि; सुमनस—देवता, फूल; स्फुट—खिलना, प्रकाशित होना; बिरळरे—निर्मल रूप से; नीळकण्ठ—मोर, महादेवजी; हरि—रजनी, विष्णु; (श्लेष)।(८)

बिकास चंचळा अति से अन्ते शरद। बच चन्द्रोदय कला पुष्कर सुहृद ये। बिबेक प्रसरि हे तुहिन हेला आसि। बिभीषण अरिष्ट मसृण शुके भाषि ये। बनरक्ष बाणीन्यासे पुनः जड़कृत। बिशेषिते चित्ते गला प्रबर्त्ति शीतार्त्त ये।९।

सरलार्थ—बरसात में बिजली अत्यन्त ही चंचल हो उठती है। उसी तरह रावण का मोह देखकर उपस्थित दर्शक व सभासद् वर्ग अतिशय चचल हो उठे। बरसात के अनन्तर शरत्काल उपस्थित होता है और आकाश मे चन्द्र निर्मल रूप से प्रकाशित होता है। उसी तरह (जल सीचने तथा कपूर मलने से) मोह के बाद रावण का हृदय निर्मल हुआ अर्थात् वह सारी बातें जान सका। उसके निर्मल हृदय में हासचन्द्र का प्रकाश हुआ। अर्थात् चेतना पाकर वह हँसा और बात बोलने लगा। शरत्काल के बाद तुहिन (हिमकाल) के उपस्थित होने पर कौवे चिकने दीखते हैं और शुक पक्षी बोलते हैं। विभीषण ने शुकमन्त्री को कोमल ढग से यह बताया कि अब अमंगल आ पहुँचा। हिमकाल के अन्त में शीतकाल के उपस्थित होने पर प्राणी जाड़े से जड़ीभूत हो जाते है, उसी तरह वन रक्षिकाओं से (हनुमान के द्वारा) वन भंग की बात सुनकर रावण विस्मय से जड़ीभूत (स्तम्भीभूत)

हो गया। खासकर उसके चित्त में 'सीता आर्त्त' (सीता के निषेध सूचक वाक्यों से यह दुःख) उत्पन्न हुआ क्या ? (रावण ऐसा व्याकुल हुआ।) (९)

चञ्चळा—बिजली; बच—वचन; चन्द्रोदय—चन्द्रमा का उदय, कपूर मलना; पुष्कर—आकाश, जल; अरिष्ट—कौए; मसृण—चिकने; कोमल; शुक—तोते, शुक नामक मन्त्री से; वनरक्ष—वनकी रखवाली करनेवाली राक्षसियों के; वाणीन्यासे—कहने से; जड़कृत—जड़ीभूत, स्तम्भीभूत; शीतार्त्त—शीत से दुःखी, सीता के हेतु व्याकुल; (श्लेष)। (९)

बसन्ते भाळिबा किंशुकर प्रकाशित। बिन्यास होइब गिरीषम काळ प्रान्त ये। ब्रह्माङ्कु पुच्छिला शाखामृगे काहुँ आसि। बिभीतरे मृगराजकानने बिळसि ये। बोले से हेब सुग्रीब अबा हनुमान। बाळि बोलन्ताइँ रामबाणे से निधन ये। १०।

सरलार्थ—तदनन्तर कवि ने कहा, "शीतकाल के बाद वसन्तकाल का विषय विचार करेंगे। (अर्थात् हम वसन्तकाल का वर्णन करेंगे।)" इस काल मे किंशुक (अर्थात् पलाश) वृक्षों पर फूल खिलते है। उसी तरह रावण 'बसन्ते भाळि'—अर्थात् रावण ने बैठ चिन्ता की। उसने पूछा, "किं ? (अर्थात् क्या बात है यह ?) मेरा मधुवन किसने उजाड़ा ?" वसन्तकाल के बाद 'प्रान्त' (कथित कालों का परवर्ती) ग्रीष्मकाल आ पहुँचा। तो रावण की उक्त कथा पर शुकमन्त्री ने कहा, "ग्रीष्मकाल मे 'गिरिसम' (पर्वत दग्ध होने के समान) आपका मधुवन प्रज्वलित (विनष्ट) होगा।" परन्तु विभीषण ने समझा कि रावण भी ग्रीष्म-कालीन पर्वत की तरह विनष्ट होगा। तब रावण ने ब्रह्मा से पूछा, "कहां से एक नादान बन्दर आकर मुझ जैसे सिंह के मधुवन में निर्भय से क्रीड़ा कर रहा है ?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "वह सुग्रीव या हनुमान् ही होगा। मैंने बालि का नाम कहा होता। परन्तु बहुत दिनों से वह श्रीरामजी के शराघात से निहत हो चुका है। (१०)

बसन्ते भाळिबा—वसन्त काल का वर्णन करेंगे, बसन्ते भाळि—बैठकर चिन्ता की; (श्लेष); किंशुक—पलास; गिरीषम—ग्रीष्म काल, (गिरिसम) पर्वत तुल्य; (श्लेष); प्रान्त—अन्त मे; शाखामृगे—एक बन्दर; बिभीतरे—निर्भय से; मृगराज—सिंह; अबा-या; निधन—वध। (१०)

बिस्मय हरष शुणि बहु सैन्य पेषि। बान्धि आणिबटि न बिनाशि एहा भाषि ये। बिभु होइ से किङ्करगण-दण्डदानी। बाहु मोड़ि केश धरि प्राण कर घेनि ये। बिभञ्जन शाळ करे पबनजनित। बधि शार्दूळादि पाञ्च से केशरीसुत ये। ११।

सरलार्थ—ब्रह्माजी के मुख से यह सुनकर कि वालि का निधन हो चुका है, रावण युगपत् हर्ष व विषाद में डूब गया। यह सोचकर कि इस जगत् मे केवल वालि ही मुझे जीत सकता, अतएव उसके निधन से मेरा मंगल है, वह प्रसन्न हुआ। फिर जिन रामचन्द्र ने वालि को एक ही शर से मारा, वे मुझे आसानी से मार सकेंगे, यह सोचकर वह विषण्ण हुआ। अनन्तर रावण ने यह कहकर कि उस वानर को मारे विना यहाँ पर ले आओ, वहुत से सैन्यो को मधुवन भेजा। ज्यों ही सैनिकों ने वन में प्रवेश किया, हनुमान् ने राजा की तरह प्रजातुल्य रावण के किंकरों को कठिन दण्ड दिया—उनकी भुजाओ को मोड़, बाल खींच उनके प्राण रूप कर (राजस्व) ले लिये। अर्थात् उनका प्राण-नाश किया। फिर जैसे वतास पवन शालवृक्षो को तोड़ देता है, वैसे पवनजनित (पवनसुत) हनुमान् ने रावण के सालो का विनाश किया और 'केशरीसुत' (सिंह का बच्चा) जैसे शार्दूलों (बाघों) का विनाश करता है, उसी तरह इस केशरीसुत (हनुमान्) ने शार्दूलादि पाँच वीरों का काम तमाम कर डाला। (११)

विभु—राजा; किंकरगण—नौकर-समूह, प्रजासमूह; विभंजन—तोड़ना, बध करना; शाळरुरे—शाल वृक्षों को, सालों को; (श्लेष); पवन-जनित—तूफान, हनुमान; शार्दूळादि—वाघ आदि को, शार्दूल आदि पाँच वीरों को; केशरीसुत—सिंह का बच्चा हनुमान्; (श्लेष)। (११)

बहि मृत्युमूर्ति जम्बुमाळी अन्तमाळी। बिलम्बाइ गळे प्रशस्तर गर्ब दळि ये। बळ पुच्छुँ बोले तब प्राणसरि योख। बिग्रह त उदयाद्रि बाळभानु मुख ये। बिभूषा मुकुट ऊर्ध्वमुख किरण कि। बिळसे तहिँ लाङ्गुळ आसि कि बासुकि ये। १२।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् जी ने कालमूर्ति धारणपूर्वक जम्बुमाली नामक राक्षस का विनाश किया और उसकी अन्तड़ियाँ निकालकर उन्हें माला की तरह अपने गले में पहना। उन्होंने प्रशस्त नामक राक्षस सेनापति का गर्व चूर्ण किया तो वह रावण के यहाँ भाग आया। रावण ने उससे सारा समाचार सुनकर पूछा, "उसका वल कितना है?" तो प्रशस्त ने उत्तर दिया, "उसका बल आपके ही समान है। फिर उसका शरीर उदय-पर्वत की तरह विराट है। उसका मुख बालरवि है। सिरपर स्थित उसका मुकुट मानो ऊर्ध्वगामी सूर्यकिरणें है। उसकी पूँछ को देखकर प्रतीत होता है, मानो सर्पराज वासुकि वहाँ आकर क्रीड़ा कर रहा हो। (१२)

मृत्युमूर्त्ति—काल का रूप, यम; विळम्बाइ—लम्बा करके, पहनकर; प्रशस्त—रावण का एक सेनापति; दळि—कुचलकर; योख—उपमा करो, जोड़ो; बिग्रह—शरीर;

उदयाद्रि—उदयपर्वत; बाळभानु—बालरवि; लांगुळ—पूँछ; बासुकि—सर्पराज; (उत्प्रेक्षा)। (१२)

बिध्वंस तमस दम्भ से प्रभा अनाइँ। बड़धर्मे दूर मुँ दर्दूर परा होइ य़े। बइश्रबण श्रबणे पेषिला अक्षय। बिचारिला नाहिँ बध बोलि निःसंशय य़े। ब्याध अहङ्कारे शाखामृग बुद्धि करि। बेढ़ाइ से सैन्यजाल कळम्ब प्रहारि ये। १३।

सरलार्थ—प्रशस्त ने आगे कहा, "उसका बालसूर्योपम मुखमण्डल देखने से धैर्यरूपी अन्धकार विनष्ट होता है। अर्थात् उसके समुज्ज्वल मुखमण्डल को देखने से धैर्य का लोप हो जाता है। मेरा धर्मबल बहुत है। इसलिए मेंढ़क के समान मै उसकी पूँछरूपी बासुकि के काबू म बिना पड़े भाग आ सका।" यह सुनकर रावण ने (यह सोचकर कि अपने 'अक्षय' नामक पुत्र का रण मे कभी क्षय या विनाश नही होगा) अक्षय को हनुमान् जी से लड़ने को युद्धस्थल में भेज दिया। पिता के आदेश से अक्षय ने वहाँ जाकर अहकार के वश में अपने को शिकारी और हनुमान् जी को हिरन समझा और उसके चारों ओर सैन्योंरूपी जाल घिरवा दिया। फिर अक्षय ने हनुमान् पर तीर छोड़े। (१३)

तमस—अन्धकार; दर्दूर—मेंढ़क; बइश्रवण—विश्रवापुत्र रावण; शाखामृग—बन्दर; व्याध—शिकारी; कळम्ब—शर, वाण। (१३)

बळिमुखबळी शल्य झळिकि बहिला। बिमानभगने चक्रधर से होइला ये। बानर मध्यरे स्वतः मुहिँ हनुमान। बिजयरे बिभूतिरे करिबे कथन य़े। बहि खड़गफळक असुर भैरब। बहुत प्रकारे हेला संग्राम सम्भब य़े। १४।

सरलार्थ—अक्षय के शरसमूह मर्कट वीर हनुमान्‌जी के शरीर में चुभ लगे रहने से वे साही की तरह दिखाई पड़े। विष्णु भगवान् शत्रुओ का गर्व चूर्ण करने के लिए चक्र धारण करते है। हनुमान् जी ने अक्षय का विमान (रथ) तोड़कर रथ का चक्र धारण किया तो चक्रधर विष्णु की तरह दिखाई दिये। अनन्तर हनुमान्‌जी ने कहा, "मै वानरों मे (वानर-मुखाकृति-विशिष्ट देवयोनि अर्थात् किंपुरुषों में) स्वय ही श्रेष्ठ हूँ और मेरा नाम हनुमान् है। —यह विपय भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्-भागवत् के 'विभूति' अध्याय में अर्जुन से कहेगे।" यह सुनकर अक्षय ने तलवार व ढाल पकड़कर भैरव (तारावती के गर्भ से महादेवजी के

औरस से उत्पन्न पुत्र) की मूर्ति धारण की। तदनन्तर अक्षय व हनुमान् के बीच में नाना प्रकार के युद्ध हुए। (१४)

बळिमुख बळी—मर्कटवीर हनुमान्; शल्य—साही पक्षी; बिमान—विशेष रूप से गर्व; रथ; (श्लेष); चक्रधर—बिष्णु भगबान्; बिजयरे—अर्जुन से; बिभूतिरे—श्रीमद्भागवत के (१६वें) 'बिभूति' अध्याय में; (इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन (उद्धव ?) से अपने को "किंपुरुषाणां हनुमान्" बताया है, जिसका अर्थ है—"मै वानरमुखाकृति देवविशेषो मे हनुमान् हूँ।" खड़ग—खड्ग, तलवार; फळक—ढाल; असुर—रावणपुत्र अक्षय; भैरव—महादेव जी के औरस से तारावती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र। (१४)

बाजि बेनि शिरे बेनि आयुधहिँ हत। बिग्रहरे बिग्रहकु बिग्रहे जड़ित ये। बिनतानन्दन द्वन्द्व द्वन्द्व कला प्राये। बेपथु-बह बहन विश्वम्भरा होए ये। बिघात खरनखर खर रक्त स्रबि। बिकशि नदरे कोकनद ख्यात भाबि ये। १५।

सरलार्थ—दोनो (अक्षय तथा हनुमान्) के अस्त्र-शस्त्र परस्पर के सिर पर वज टूट गये। सुतरा दोनो ने विनताके दोनों पुत्रों—गरुड़ तथा अरुण की तरह देह से देह सटाकर मल्लयुद्ध छेड़ दिया। उनके पदाघातो से पृथिवी काँपने लगी और दोनों के तीक्ष्ण नखाघातों से दोनों के शरीर घायल हो गये और शरीरो से रक्त तेजी से झरने लगा एवं वह रक्त पृथिवी पर थक्को मे पड़कर यो शोभित हुआ मानो नदी मे रक्तपद्म खिल रहे हो। (१५)

विग्रह—देह, शरीर; बिनतानन्दन द्वन्द्व—विनता के दोनों पुत्र, गरुड़ तथा अरुण; द्वन्द्व—युद्ध; (यमक); बेपथु—कम्पन; विश्वम्भरा—पृथिवी; खरनख—तीक्ष्ण नाखून, खर—प्रवल वेग से; (यमक); कोकनद—रक्तकमल। (१५)

बरषा ग्रीषम नदी मारुति अक्षय। बुद्धि हेला सलीळ जीबन हेला क्षय ये। ब्यूह ब्यूह सैन्य मीन सङ्गी नाश पुण। बिहे आर्त्तस्वर चारगण पळाइण ये। बिचित्र कर्म श्रबणे इन्द्रजित पेषि। बिमान आरोहि मान मानसे से आसि ये। १६।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान्जी तथा अक्षय दोनों क्रमशः वर्षा तथा ग्रीष्मकालीन नदी की तरह दिखाई दिये। बरसात मे नदी का सलिल (जल) जैसे बृद्धि प्राप्त करता है, वैसे हनुमानजी युद्ध मे सलील (लीला या क्रीड़ा से युक्त) हुए एवं ग्रीष्मकाल में नदी का जीवन (जल) जैसे घटता है, वैसे युद्ध में अक्षय के वहुत से जीवनों (सैनिकों) का क्षय (विनाश) हुआ। नदी में जल सूख जाने पर अनगिनत मीन मर पड़ते

हैं। वैसे अक्षय के असंख्य सैनिक ढेर-ढेर होकर खेत रहे। यह देखकर चारों ने भाग जाकर रावण के सामने आकुल ध्वनि की। उनके मुखों से हनुमान्‌जी का ऐसा आश्चर्यजनक काम सुनकर रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजित को भेजा। इन्द्रजित विमान में चढ़कर घमंड से हनुमान्‌जी के पास गया। (१६)

मारुति—मरुतपुत्र हनुमान्; अक्षय—अक्षयकुमार; सलिल—जल, (सलील) लीलायुक्त; (श्लेष); जीवन—जल, सैनिक; (श्लेष); मानमानसे—अभिमान के साथ। (१६)

बिपिनरे दीप्त नोहि छपि द्वीपीपरि। बुलि क्रब्यादे खोजन्ति राजाज्ञाकु डरि य़े। बाजी चढ़ि इन्द्रजित भ्रमे उच्चे डाकि। बन्दि कहे बन्दी कपिइन्द्र गला शङ्कि ये। बृक्षे गुप्ते थिला रें रे कारे करि रड़ि। बाजरबे काकप्राये सैन्य गर्ब छाड़ि य़े। १७।

सरलार्थ—हनुमान्‌जी ने इन्द्रजित को देख लिया। परन्तु स्वयं उसे दिखाई न देकर वे एक बाघ की तरह उसी वन मे छिपे रहे। राक्षस लोग राजाज्ञा से डरकर घूमते हुए उन्हें ढूँढने लगे। इन्द्रजित् ने भी घोड़े पर चढ़कर चारो ओर घूमते हुए उन्हे बड़ी आवाज से पुकारा। इस समय उसके भाटों ने वन्दनापूर्वक उससे कहा, "इन्द्र तो आप से डर गया। और यह नादान बन्दर कहाँ रह सकता? आपको देखकर वह भय से भाग गया है।" हनुमान्‌जी पेड़ मे छिप बैठे थे। यह कथा सुनते ही वे और स्थिर नहीं रह सके। उन्होने 'रे रे' कार मचा दिया। उनकी यह चिल्लाहट सुनकर सैनिक लोग अत्यन्त शीघ्रता से भागने लगे, मानो श्येन पक्षी के गर्जन से कौवे भाग रहे हों। (१७)

दीप्त—प्रकाशित, प्रगट; द्वीपी—बाघ; क्रव्यादे—राक्षस लोग; बाजी—घोड़े; बन्दी—भाट, स्तावक; कपिइन्द्र—वानरश्रेष्ठ हनुमान्; बाज—श्येन। (१७)

बसि सुरभिबरे से शिब अछि होइ। बिशाखा शक्रारि करुँ बाणकु बंचाइ य़े। बिभूषि स्थाणु शिरकु इन्दुप्रभा ख्याते। बिन्ध बोले गुरुशिक्षा शर अछि य़ेते रे। बड़ाइ कृते भुजंग प्रयोग से कला। बन्धा कि से सुरमणि से पाशे होइला य़े। १८।

सरलार्थ—इस समय हनुमान्‌जी महादेव की तरह दिखाई दिये। महादेव जी सांड पर बैठते है। उसी तरह ये बड़े जाईफल वृक्ष पर बैठे हुए है। महादेवजी ने विशाखा (बे सहारे) बाणासुर को शक्रारि (विष्णु भगवान् के चक्राघात) से बचाया था। उसी तरह इन्द्रजित् के जाईफल पेड़ को शाखाहीन करने पर (डालियों को काटने पर) भी हनुमान् ने

उसके शरों को बचा दिया। (अर्थात् इन्द्रजित् के एक भी शरको अपने शरीर में बजने नही दिया।) इस समय हनुमान् फिर चन्द्र की तरह दिखाई दिये। वे स्थाणु (ठूँठ) जाईफल वृक्ष को मण्डनपूर्वक स्थाणु (महादेवजी) के मस्तक मण्डनकारी चन्द्र सदृश प्रतिभात होने लगे। ठूँठ पर बैठे हनुमान्जी ने कहा, "अरे इन्द्रजित्। तूने अपने गुरु से जितने शरों का प्रयोग सीखा है, उन सबका प्रयोग करके भी मेरा बाल बाँका नही कर सकता।" हनुमान्जी का ऐसा घमंड देखकर इन्द्रजित् ने नागफाँस का प्रयोग करते ही शूरमणि (वीरश्रेष्ठ) हनुमान्जी उसमें बँध गये। यह देखकर प्रतीत हुआ सुरमणि (इन्द्र) अथवा सूरमणि (सूर्य) नागपाश मे बँधे हुए हों। (१८)

सुरभिवर—साँड़, जाईफल का वृक्ष; (श्लेष); बिशाखा—शाखा-शून्य, बेसहारे शक्र—बिष्णु, अरि—चक्र; शक्रारि-इन्द्रजित; स्थाणु—शिव, ठूँठ; इन्दु—चन्द्र; शूरमणि—बीरश्रेष्ठ, (सुरमणि)—देवश्रेष्ठ इन्द्र, (सूरमणि)—सूर्य; (श्लेष)। (१८)

बळीबर्दे काष्ठ परि नेबा मल्ले बोले। बाहु रज्जु लागाइले स्वइच्छारे चाले ये। बिषबैद्य य़था सर्प भूषणरे आसे। बळबान बड़ देखिलार जन भाषे ये। बेढ़िछन्ति य़ातुधान मध्ये हनुमान। बन्धन करि तस्कर आणिला बिधान य़े। १९।

सरलार्थ—हनुमान्जी के नागपाश बन्धन के बाद पहलवानो ने कहा, "चले, हम लोग लकड़ी से बैल को बाँध लेने की तरह इसे बाँध ले चले। परन्तु ज्यों ही उन्होने हनुमान्जी की बाहु में रस्सी लगाई, वे अपनी इच्छा से ही चलने लगे। हनुमान्जी नागपाश से बँधे यो आ रहे है मानो कोई सँपेरा अपने शरीर में साँप लिपटाये आ रहा हो। देखनेवाले लोगों ने कहा, "यह बहुत बलवान् है।" उनके चारों ओर राक्षस लोग घेरे हुए है और मध्य में हनुमान्जी है। मानो लोग किसी चोर को बाँधे लिये आ रहे हों। (१९)

बळीवर्द्दे—बैल को; मल्ल—पहलवान; बिषवैद्य—सँपेरा; जातुधान—राक्षस; तस्कर—चोर। (१९)

बिचित्र कपि देखिबा बोलि लङ्काबासी। बाळ बृद्ध युबा स्तिरी पुंस मिशामिशि य़े। बोलइ के बिनाशिला मो भ्रात जनक। बध कला मो धब बोलि के करे शोक य़े। बोले के रखिछ कीश सजीबे नगरे[1]। बेगरे गर्त्ते पकाइ पोतिबा नगरे[2] ये। २०।

सरलार्थ—लंकानगर निवासी बोलने लगे, "चलें, हम लोग इस विचित्र बन्दर को देखें।" तो आबालवृद्ध-वनिता सभी उन्हें देखने के लिए इकट्ठे हो गये। उनमें से किसी ने कहा "इसने मेरे भाई का विनाश किया है।" किसी ने कहा, "इसने मेरे पिता और भाई का वध किया है।" फिर कोई स्त्री यह कहती हुई कि इसने मेरे पति का विनाश किया है, रोने लगी। और किसी ने कहा, "अरे, इस दुष्ट बन्दर को नगर में ला तुम लोगों ने इस जीवन में रखा है। शीघ्र ही उसे ले आओ, गड्ढे में डालकर उसे पर्वतों से दफना दें।" (२०)

जनक—पिता; धव—पति; कीश—वानर; नगरे[१]—नगर में, नगरे[२]—पर्वतों से; (यमक) (२०)

बिजे ये सभारे राक्षसेन्द्र से चत्वरे। बन्दी परबेश करुँ अनाइ सत्वरे ये। बोळे रे कपि आसिलु एथें मरिबाकु। बोलिबा आद्यरे दिअ बोले आकारकु ये। बदन हलाइ कहे कि बळिष्ठ तुहि। बाळुत बान्धि आणिला कहुछु बड़ाइ ये। २१।

सरलार्थ—जिस सभा में राक्षसराज विराजमान हुआ था, उस सभा-गृह के आँगन में बन्दी हनुमान् को उपस्थित कराया गया। रावण ने उसकी ओर शीघ्र ही ताककर कहा, "अरे बन्दर! तू क्या यहीं मरने आया?" यह सुनकर हनुमान् ने कहा, "तेरी कथनी के आद्य अक्षर में 'आ'कार का योग कर। अर्थात् मै मरने नहीं आया हूँ, बल्कि मारने आया हूँ।" यह सुनकर मुँह हिलाते हुए रावण ने कहा, "तू कैसा बलवान् है? मेरा बालक पुत्र (इन्द्रजित) तुझे बाँध लाया। तिस पर भी तू घमंड कर रहा है।" (२१)

राक्षसेन्द्र—राक्षस-श्रेष्ठ रावण; चत्वर—आँगन; बाळत—बालक, बच्चा, शिशु। (२१)

बाणी न्यास करे जन्मि क्षुधातुर होइ। बिम्ब बोलि बाळार्कंकु जननी देखाइ ये। बन्धिलि लांगुळे भानु से दोषरु बन्धा। बिध्वंसिबि लंका एहिक्षणि दशमूर्द्धा रे। बिश्रबानन्दन बोले अमर किन्नर। बिनय से हारि किस करिबु बानर रे। २२।

सरलार्थ—रावण की बातों के उत्तर-स्वरूप हनुमान्‌जी ने कहा, "पैदा होते ही मै भूखा हुआ तो मेरी जननी ने यह कहते हुए कि यह बिम्बफल है खाने के लिए मुझे बालरवि को दिखा दिया। साथ ही साथ मैने कूदकर सूरज को अपनी पूँछ से बाँध डाला। अरे दससिरों

रावण ! देख, इसी क्षण मैं तेरे लंकापुर का विध्वंस कर डालूँगा।" तब रावण ने कहा, "अरे वन्दर ! देवता व यक्ष लोग मुझसे हारकर मेरी विनती करते है। तू एक नादान वन्दर है; तू मेरा क्या विगाड़ सकता है ? (अर्थात् कुछ नही।)" (२२)

विम्वफळ—कुन्दुरू फल; वाळार्क—वालरवि; दशमूर्द्धा—दससिरों वाले रावण ! (२२)

वानर प्राभव मनु गला कि पासोर। बाळीश रे बाळि याहा करिछि बिचार ये। वाणके से वाळिकि नाशिले रघुबीर। बल्लभी आणिछु तांक काहिँ रक्षा तोर रे। बन्धाइ होइ सुग्रीबे मित्र बळ साजि। बारिधि पल्वळ डेइँ आसिछि मुँ खोजि ये। २३।

सरलार्थ—हनुमान् ने कहा, "वानरकृत तेरा तिरस्कार अपने मन से तू भूल गया है क्या ?" अरे मूर्ख ! वालि ने तुझपर जैसा वर्ताव किया है, जरा उसका स्मरण कर तो सही। उसी वालिको प्रभु श्रीराम ने एक ही वाण से मारा। तू उन्ही श्रीराम की पत्नी को चुरा लाया है। सुतरां तेरी और रक्षा नही। वे निश्चय ही तेरा विनाश करेंगे। रामचन्द्रजी ने अभी-अभी सुग्रीव से मित्रता स्थापित्त की है। वे सुग्रीव अभी सीता-चोर के विनाश के लिए सैन्य सजा रहे है। मैं भी समुद्र को एक तालाव के समान लाँघकर सीता की खोज करने के लिए यहाँ आया हूँ।" (२३)

वानरप्राभव—वानरकृत तेरा तिरस्कार; वाळीश रे—अरे मूर्ख !; रघुवीर—श्रीराम जी; वल्लभी—प्रिया, पत्नी; वारिधि—समुद्र; पल्वळ—छोटा तालाब। (२३)

बोलुँ मारुति बोइला दशग्रीब हसि। ब्याध जळघाट जगि शार्दूळ बिनाशि ये। वनौका संगे बनौका नुहन्ति कि मित। बुड़िथिला पंके मुँ माणिक्य उद्धरित ये। बरहि मृग पछरे पुच्छकु लुचाइ। बसुधापति नेइ ता मस्तके चळाइ ये। २४।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण ने हँसते हुए कहा, "शिकारी पनघट में छिपकर वाघ का वध करता है। वैसे रामचन्द्रजी ने छिपकर बालि का विनाश किया। इससे उसकी कौन-सी वहादुरी प्रगट हुई ? रामचन्द्र वन में वास करता है। सुतरां वह वनौका है। फिर बन्दरों को भी वनौका कहा जाता है। अतएव रामचन्द्र और सुग्रीव मे मित्रता यथार्थ हुई है। मानिक पंक में डूबे रहने की तरह नारी-रत्न सीता राम के पास

थी। पंक से मानिक की तरह मैंने उसका उद्धार किया। मोर तथा हिरन अपनी-अपनी पूँछ को शरीर के पीछे छिपा रखते है और राजा लोग उन्हें लाकर अपने-अपने सिर पर मुकुट स्वरूप स्थापित करते है। उसी तरह रामचन्द्र ने सीता को वन मे छिपा रखा था और मैंने उसे, अपने राजभवन में ला रखा है।" (२४)

मारुति—मरुत (पवन)—पुत्र हनुमान्; दशग्रीव—रावण; शार्दूळ—बाघ; बनौका—वनवासी; बनौका—बन्दर; (यमक); बरही—मोर; मृग—हिरन; बसुधापति—राजा। (२४)

बारिधि डेइँ आसिबा बड़ाइ कि भाबु। बतास य़ोगरे य़ोगे उड़ि पड़िथिबु रे। बइश्रबण बचने बोइला से पुण। बीरपण मोहर जाणन्तु एहिक्षण रे। बाहुय़ाक उपाड़ि मोड़न्ति शिर दश। बृजिनी तु पतित-पाबन तोरे बश य़े। २५।

सरलार्थ—रावण ने आगे कहा, "तू क्या सोचता है कि समुद्र को लाँघकर तूने बड़ा भारी एक काम कर दिया? परन्तु वह वैसा कुछ नही है। शायद प्रचण्ड पवन के झोंके से तू उड़ आकर यहाँ पड़ा होगा।" रावण के वचनों से हनुमान जी ने फिर कहा, "तू इसी क्षण मेरी बहादुरी जान सकता। मै तेरी बीस भुजाओ को उखाड़कर दस सिरो को मोड़ डालता। परन्तु मै वैसा नही करूँगा। क्योंकि तू बड़ा पापी है। तिसपर भी पतितपावन राम तुझपर दया-परवश हुए है। (अर्थात् तुझ जैसे पापी के परित्राण के लिए श्रीरामजी ही तेरा विनाश करेगे। इसलिए मै तेरा वध नही करूँगा)।" (२५)

बृजिनी—पापी; पतितपावन—पापियो के उद्धारक (श्रीरामजी)। (२५)

बोलिछन्ति मुँ मारिबि धनुशर छुइँ। बिभु आज्ञा भांगिबि कि करि भृत्य होइ य़े। बिंश-लोचन ए बचनरे कोपि जब। बड़ाइ न छाड़े कपि बध के रखिब य़े। बोले खड़ग प्रहारेँ खड़ग पराये। बिश्वाए न भेदि देहेँ बिकम्पित होए ये। २६।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने आगे कहा, "श्रीरामचन्द्र जी ने धनुशर को छूकर कसम खाई है कि मैं ही अपने हाथों से रावण का विनाश करूंगा। मैं एक दास होकर प्रभु का आदेश कैसे लंघन करूँ? (अर्थात् उनकी ऐसी प्रतिज्ञा होने की वजह से मै तेरा वध नही करूँगा।)" यह बात सुनकर रावण ने एकाए [illegible] कहा, "यह बन्दर

नही छोड़ता ! इसलिए इसका वध करो। देखें कौन इसकी रक्षा करेगा।" रावण के ऐसे आदेश से नौकरों ने हनुमान् जी पर तलवारों से प्रहार किया। परन्तु जैसे गैंडा पशु के शरीर मे शस्त्र नही वेधता, वैसे हनुमान् जी के शरीर मे तलवार की धार एक विश्वा भी नही वेधा। वे विना हिलेडुले स्थिर रहे। (अर्थात् तलवार की चोट से हनुमान तिलभर भी नहीं डिगे।) (३६)

(खड्ग)—तलवार; खड़ग—गैंडा; पराये—भाँति; विकम्पित—कम्पनहीन (स्थिर) होकर। (२६)

बिघात मुद्गर अन्य शस्त्रमानङ्कर। वर्षोपळ वृष्टिपरा महीधर शिर ये। विकोषक छुरीक भल्लक येवे मारि। विकाशइ आच्छुरितककु भल करि ये। विचारिला टाण करुथिले नागपाश। विबन्धु मुक्त नोहिबि पूर्बकर्म दोष ये। २७।

सरलार्थ—अनन्तर राक्षसों ने मुद्गर आदि अन्यान्य शस्त्रों से हनुमान् जी पर प्रहार किया। परन्तु जैसे पर्वत की चोटी पर ओले बरसने पर भी उसको कुछ भी नुकसान नही होता है, उसी तरह उन्ही शस्त्रो से हनुमान् जी के मस्तक को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा। अनन्तर चारो ने छुरों, भालों आदि शस्त्रो को म्यानों से निकालकर उनसे हनुमान्जी पर आघात किया, तो उन्होंने यन्त्रणा का अनुभव किये विना ऊँची आवाज से हँसी प्रकाश की। इसी तरह उन्हें नाना प्रकार के दण्ड दिये गये। तब हनुमान् जी ने सोचा, "मैं अपने प्राक्तन कर्मो के दोषों से नागपाश मे बँधा हुआ हूँ। अब यदि अभिमान करता रहूँगा, तो इस बन्धन से मुक्त नही हो पाऊँगा। यह सोचकर उन्होंने अपने मनसे गर्व त्यागा। (२७)

वर्षोपळ—करका, आले, महीधर शिर—पर्वत की चोटी पर; विकोषक—म्यानों से निकालकर; भल्लक—भाले; आच्छुरितक—अट्टहास, हँसी, दिल्लगी। (२७)

बोइला वधरे मोर इच्छा कलु येबे। बचनकु मोर सत्य करि पाळ तेबे रे। बस्त्र बेढ़ाइ लांगुळे जड़ाइ तइळे। बन्हि जाळि देले नाश अछि शापबळे ये। बोलु बोले रामदूत सत्य ए कहिला। वप्ता वोले इन्द्रजित शस्त्र संहारिला ये। २८।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् जी ने अत्यन्त विनम्रता से कहा, "अरे रावण ! तू यदि मेरा विनाश करना चाहता है, तो मेरे वचन का पालन कर। मेरी पूँछ में वस्त्र लिपटाकर उसे तेल से सराबोर करा दे और उसमें आग लगवा दे। मुझपर पूर्व से शाप है कि मैं ऐसे ही मरूँगा।"

यह सुनकर रावण ने कहा, "यह रामदूत सच बोल रहा है।" अनन्तर पिता के आदेश से इन्द्रजित शस्त्र-प्रहार से निवृत्त हुआ। (२८)

बप्ता—पिताजी (के); बोले—आदेश से। (२८)

बार्ता पाइ अशोककळिका सीता ग्रासि। बन्धा फिटु हनुमान मानसे मनासि ग्ने। बञ्जुळे अशोक नाम प्रसिद्धे रहिला। बिभीषण एहि काळे लङ्केशे कहिला ये। बध्य नुहइटि चार करिबा बिबेक। बिंशबाहु भाषे चोर चारे कि पातक ग्ने। २९।

सरलार्थ—जब सीता को पता चला कि हनुमान जी बन्धन मे पड़े हुए है, उन्होंने मन में यह विचार करके कि बन्धन खुल जाय, अशोक की एक कली खाई। उसी दिन से 'बञ्जुल' मे 'अशोक'—नाम प्रसिद्ध रहा। उसी दिन अशोक की कली को जल के साथ पीने से शोक का नाश होता है। (अशोककलिका श्चाष्टौ ये पिवन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नु युरिति ।।) इस समय में विभीषण ने लकेश रावण से कहा, "महाराज! आप विचार कीजिएगा। चोर या दूत लोग बध के योग्य नही है।" यह सुनकर रावण ने कहा, "चोर नौकर या दास को वध करने से कौन-सा पाप है? (२९)

बञ्जुळे—अशोकवृक्षमें; चारे–दास को। (२९)

बधि धनद चारकु पुष्पके बिळसि। बैदेही भोग करिबि एहाकु बिनाशि ग्ने। बारिधि कि सरित सरि लंघन होइ। बिभीषण मउन होइला एते कहि ये। बितर्कि शुक बोइला शंका एथे अछि। बिनाश हेतु त के काहाकु न कहिछि ये। ३०।

सरलार्थ—रावण ने फिर कहा, "मै कुबेर के भृत्य को मारकर उसके पुष्पक विमान मे विहार कर रहा हूँ। उसी तरह इस वानर का विनाश करके बैदेही (सीता) को भोग करूँगा।" यह सुनकर विभीषण ने कहा, "समुद्र को नदी की तरह क्या कोई लाँघ सकता है? (अर्थात् श्रीरामचन्द्र समुद्र है और कुबेर नदी है। दोनो की बराबरी कैसी?)" —यह कहकर विभीषण जी मौन रहे। इस समय मन्त्री शुक ने विशेष रूप से अनुमान करके कहा, "इसमें शंका है। विनाश का भेद कोई किसी से नहीं कहता है। इसने कैसे यह प्रकट कर दिया?" (३०)

धनद—कुबेर; सरित—नदी; वितर्कि—विशेष रूप से अनुमान करके। (३०)

बिळम्ब न कर उच्चे हनुमान भाषि। ब्याधिरूपे सलांगुळ परकट आसि ये। बासपिधानरे पुच्छ दिव्य कन्या परि। विशेषतः दयित तहिँरे स्नेह भरि ये। बिभाबसु योगकृते पादकु बढ़ाइ। बसिला मण्डप परे ज्योतिमन्त होइ ये। ३१।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान जी ने ऊँचे स्वर से पुकार कर कहा, "और विलम्ब मत करना। मेरे शरीर से सलग्न पूँछ में बीमारी आ प्रकट हुई है।" यह सुनकर राक्षसो ने उनकी पूँछ मे कपड़े लिपटाकर उसे वस्त्रावृता एक स्वर्गीया कन्या सी वना दिया। जैसे नायक स्वर्गीया कन्या से स्नेह (प्रेम) करते है, वैसे राक्षसों ने लागुल रूपिणी कन्या पर स्नेह (तेल) उँडेला। तदनन्तर जिस प्रकार विवाह के वश में कन्या विवाह-नक्षत्र के योग-निश्चय मे (शुभ लग्न मे) पाद पसारती है और (चलकर) दीप्तिमती होकर मण्डप (वेदी) पर बैठती है, उसी तहर अग्नि के सयोग से हनुमान पैर पसारकर दीप्तिमन्त हो मण्डप पर बैठे। (३१)

पिधान—वस्त्र; दयित—नायक; स्नेह—प्रेम, तेल; (श्लेष); बिभावशु—विवाह के वश से, विवाह करने के लिए, (विभावसु) अग्नि; (श्लेष)। (३१)

बोइला से दीर्घ करि आरे दशग्रीब। बुद्धि बळ तोहर कळना कलि सर्ब ये। बड़ करि लङ्केश्वर कला प्रत्युत्तर। बैश्वानर घेनि न उड़न्ति कि चकोर ये। बरहबान पदबी तर्ज्जनरे लिबि। ब्रह्माग्नि कपाळु जात कला बर भाबि ये। ३२।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने मण्डप पर बैठकर गर्व से कहा, "अरे दशग्रीव! इसीसे ही मैने तेरी बुद्धि व बल की कलना की।" यह सुनकर रावण ने ऊँचे स्वर से प्रत्युत्तर किया, "क्या चकोर पक्षी अग्नि को लिये नही उडते? तूने अधिक क्या किया?" इस समय में 'शिखावान्' पदप्राप्त अग्नि रावण की डाँट से बुझ गया। यह देखकर हनुमान जी ने अपने पूर्वप्राप्त वर का स्मरण करके अपने कपाल से ब्रह्माग्नि उत्पन्न की। (३२)

बैश्वानर—अग्नि; बरहवान्—शिखावान्; लिबि—बुझकर। (३२)

बिचित्रकर्मा त कपि बोइला प्रशस्त। बञ्चुक अग्नि देखाइ मुखुँ कि बिचित्र ये। बोलुँ राबण ज्वळित होइला नगर। बाहारिले सुकर कण्ढाइ परकार ये। बहि कक्षे करे धरि शिशु बामाबार। बोलन्ति अघरबशु होइलु अघर ये। ३३।

सरलार्थ—हनुमान्जी के कपाल से आग निकलते देखकर सेनापति प्रशस्त

ने कहा, "यह कपि तो विचित्रकर्मा है।" रावण ने उत्तर दिया "स्यार तो अपने मुख से आग दिखाता है। उसी तरह इसने भी दिखायी। इसमें क्या आश्चर्य है?" इधर रावण ऐसा बोल रहा था, कि उधर नगर जलने लगा। इसलिए राक्षस स्त्रियाँ छोटे-छोटे बच्चों को अपनी-अपनी काँख में सुन्दर गुड़ियों की तरह पकड़े निकल पड़ी। वे राक्षसियाँ बोलने लगी, "रावण के परस्त्रीहरण-पाप के कारण से हम लोग गृहशून्या हो गईं। (३३)

बिचित्रकर्मा—अद्भुतकर्म करनेवाले; बञ्चुक—स्यार; सुकर—मनोहर; कण्ढाइ—गुड़िया; कक्षे—काँख में; बामाबार—स्त्री (राक्षसी)—समूह; अघर—राजा का परस्त्री हरणरूपी पाप, घरहीन; (श्लेष)। (३३)

बळिगला शिखिशिखा ध्रुबमण्डळकु। बिळे पशि धूम पूर्ण कला पाताळकु ये। बासुकि नयन सेहि काळे जळस्थान। बैनतेय भाळे भला स्फुट जबा बन ये। बिहिला उत्तरे रथ भास्कर उत्तरे। बड़बानळ निऊन भजे पारावारे ये। ३४।

सरलार्थ—अग्निशिखा आकाश मे ध्रुवमण्डल के आगे बढ़ गई। गर्त्त मे धुएँ ने घुसकर पाताल को भर दिया। इसलिए सर्पराज वासुकि की आँखो से आँसू बहने लगा। विनतापुत्र सूर्यसारथि अरुण ने सोचा—"अड़हुल फूलों का वन अच्छी तरह से बिगसा है। इतने अड़हुल खिले है कि उनसे लंका के सारे गृह ढक गये है। इस काल में भास्कर के आदेशानुसार अरुण ने उनके रथ को उत्तरायण में चलाया। इस अग्निशिखा को देखकर समुद्र मे वाड़वाग्नि भी निस्तेज हो गई। (३४)

शिखिशिखा—अग्नि की शिखा; बिळे—गर्त्तों में; बैनतेय—बिनितापुत्र अरुण; स्फुट—विकसित; जबावन—अड़हुलों का वन; निऊन—न्यून, निस्तेज; पारावारे—समुद्र में। (३४)

बञ्चिबा भरसा अपसरसाए तेजि। बेहरणे येणु ता नृत्यरे थिले मज्जि ये। बैश्यमृत्यु बंश सती यिबा प्राये बुलि। बिचळित अर्च्चि रुचि खेळे कि बिजुळी ये। बाहुड़न्ति आळी प्राये मिळिण सारंगे। बिदग्ध काळबशरे पुरबर रंगे ये। ३५।

सरलार्थ—रावण के सभामण्डप पर नृत्यरता अप्सराओं ने उक्त अग्नि को देखकर बचने की आशा त्याग कर दी। वैश्य जाति के किसी पुरुष की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी उसका सहमरण करने के लिए अग्नि के चारों ओर घूमकर अन्त में अपने को अग्नि में निक्षेप करती है। उस समय की चंचल अग्निशिखा की कान्ति को देखकर प्रतीत हुआ, मानो कोई वैश्या

सती होने के लिए अपने को अग्नि मे वलिदान करने के उद्देश्य से घूम रही हो। अथवा विजली मानो क्रीड़ा कर रही हो। इस समय चातक पक्षी लकादहन-जनित धूमराशि को देखकर उसे मेघ समझ उसके समीप आते और उसे धुआँ समझकर वहाँ से लौट जाते। इन लौटते हुए चातको को देखकर प्रतीत हुआ, मानो सती होने के लिए जा रही वेश्या के साथ आयी हुई सखियाँ लौट रही हो। काल के वश में नगर-श्रेष्ठ लकापुर कौतुक से जल राख हो गया। (३५)

अपसरसाए—अप्सराएँ; वेहरणे—सभामण्डप पर; विचळित-अर्चिच—रुचि—चंचल अग्निशिखा की कान्ति, आळी—सखियाँ; सारंग—चातक समूह; पुरवर—नगरश्रेष्ठ लंका; रंगे—कौतुक से। (३५)

बिधि बाक्ये पुष्पकरे सकुटुम्बे बसि। वोध मारुति बोलि राबण धाता पेपि य़े। विबुधाळये चळन्ते य़था पावनिरे। बोले से सुदया कर रामभाबिनोरे य़े। वाध न करु राक्षस प्रचण्ड तपन। बइदेही नाम रम्य सररु जीवन य़े। ३६।

सरलार्थ—ब्रह्माजी के परामर्शानुसार रावण सकुटुम्ब पुष्पक विमान में बैठा और हनुमान् को समझा बुझाने के लिए ब्रह्मा जी को उनके पास भेज दिया। स्वर्गपुर मे चलते वक्त ब्रह्माजी मार्ग मे पवनपुत्र हनुमान जी से मिले और उन्हें नाना प्रकार से समझाया। उनकी प्रवोधना से हनुमान् जी ने कहा, "आप श्रीराम-पत्नी सीता के प्रति यही सुदया कीजिएगा—जैसे ग्रीष्मकालीन प्रचण्ड सूर्यताप 'वैदेही' नामक पुष्करिणी से जीवन (जल) नही सोखता, उसी तरह रावण का प्रचण्ड पराक्रम वैदेही (सीता) का जीवन (प्राण) नाश न करे। तव ही मैं लंकापुर को फिर वरबाद नही करूँगा।" (३६)

बिधि—विधाता ब्रह्मा जी के; वोध—समझाओ; बिबुधाळये—स्वर्गपुर में; पावनिरे—हनुमान से, रामभाबिनीरे—राम की पत्नी सीता से; प्रचण्ड तपन—प्रचण्ड सूर्यकिरण के समान रावण का पराक्रम; वैदेही—एक पुष्करिणी, सीता; जीवन-जल, प्राण; (श्लेष) (३६)

बिधाता कथित चन्द्रस्वरूप रम्भोरु। बेळे असुर राहुर स्परश पूर्बरु य़े। बर्त्तमान से य़ोग ए सम्बत्सरे नाहिँ। बहन तु राम आण सन्देशकु कहि ये। बिभीषण कुम्भकर्ण मन्दिर न नाशि। बट मार्कण्डेय करि प्रळय सदृशि ये। ३७।

सरलार्थ—विधाता ने कहा, "रम्भोरु (केले के वृक्षों के समान जाँघो वाली) सीता चन्द्रकिरण के सदृश सुवणवर्णा है। पूर्णिमा की तिथि मे चन्द्र

का स्पर्श राहु करता है। उसी तरह रावण ने पूर्व अभिशाप-वशत: एक ही बार (पंचवटी से चुरा लाते समय) सीता का स्पर्श किया है। इस वर्ष में वैसा योग नहीं। तुम यह खबर श्रीरामचन्द्र जी से कहकर उन्हें शीघ्र ही यहाँ ले आओ।" प्रलयकाल जैसे केवल वट और मार्कण्डेय ऋषि को छोड़ और सबको जल में डुबा देता है, वैसे ही हनुमान् जी ने केवल विभीषण तथा कुम्भकर्ण के भवनों को छोड़ सारी लकापुरी को जला दिया। (३७)

रम्भोरु—केलेके वृक्षों सी जाँघोंवाली; प्रळय सदृशि—प्रलय काल में वरगद तथा मार्कण्डेय ऋषि के समान (मुक्त)। (३७)

बायुज शान्तिकि भजि अग्निकि संहरि। बिदेहभूपजा भेटि त्रिजटा तिआरि ये। बसुमती-दुहिता हितरे थिबु तुहि। बीरेन्द्र श्रीरामचन्द्र छामुरे जणाइ ये। बिभीषणे कराइबि लङ्कारे अधिप। बैबस्वतपुरे यिबे दुष्ट कउणप ये। ३८।

सरलार्थ—अनन्तर वायुपुत्र हनुमान् ने ब्रह्मा के आदेश से शान्त होकर अपने कपाल से जात ब्रह्माग्नि को बुझा दिया। वहाँ से जाकर वे विदेहनन्दिनी सीता से मिले। फिर उन्होंने त्रिजटा राक्षसी से समझा-बुझाकर कहा, "तुम हमेशा सीता की भलाई में रहना, मैं वीरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र से कहकर तुम्हारे पिता विभीषण को लका का राजा बनवा दूंगा। और दुष्ट राक्षस लोग यमपुर सिधारेंगे।" (३८)

बायुज—वायुपुत्र हनुमान् जी; संहरि—बुझाकर; बिदेहभूपजा—सीता; बसुमती दुहिता—पृथिवी-कन्या सीता; अधिप—राजा; बैवस्वतपुर—यमपुर; कउणप—राक्षस। (३८)

बक्त्र बिकृतरे पुण राक्षसीङ्कि बदे। वन्दुथिब भल योग थिले सीता पादे ये। बदन्ते मणि बिषय फेड़ि देखाइला। बसनाञ्चळरे पुणि गण्ठिरे रखिला ये। बाहु बिस्तारि गगने गला ये सुबळे। बिशपाणि दग्धशेष द्रव्य आय कले ये। ३९।

सुबेल पर्वत पर जा पहुँचे। इधर बीसभुजाओं वाले रावण ने दहन से बचे हुए द्रव्यों को बटोर कर रखा। (३९)

बक्त्र—मुख; फेड़ि—खोलकर; वस्त्राञ्चळे—कपड़े की छोर मे। (३९)

बीरहरि लका पोड़ि धूमस्तोम कि से। बिहरि से हरि संध्या होइ कि आकाशे ये। बुझ रक्तबर्ण बह्नि ज्योत्स्ना घेनि-अछि। बिहरिबा निशाचरङ्कर प्रचारुछि ये। बिदित होइबे राम लक्ष्मण से अन्ते। बिश्वकर्मा पेषे धाता लङ्काकु त्वरिते ये। ४०।

सरलार्थ—इस समय सन्ध्याकाल आ पहुँचा। इसे देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है, वीर सिंह हनुमान् ने लंकानगरी जो जला दी, उससे उत्पन्न धूमराशि मानो सूर्यकी शोभा को हरणपूर्वक आकाश में सन्ध्या के रूपमे क्रीड़ा कर रही हो। हे पण्डितो! आप लोग विचारपूर्वक देखिए कि धूम अग्नि की रक्तवर्ण कान्ति को धारण करता है। वैसे ही इस सन्ध्या समय ने सूर्य की लाल किरण को धारण किया है। फिर सन्ध्याकाल उल्लुओं आदि निशाचरों की क्रीड़ा का प्रचार करता है। परन्तु सन्ध्याकाल में लंकानगर-निवासी राक्षसों की क्रीड़ा का विनाश हो गया। सन्ध्या के बाद निर्मल चन्द्रमा के उदय की भाँति यहाँ रामलक्ष्मण जी दोनो का आविर्भाव होगा। इस समय लंकानगरी के पुनर्निर्माण के लिए विधाता ने विश्वकर्मा को लंकापुर में शीघ्र ही भेज दिया। (४०)

बीरहरि—वीरसिंह; धूमस्तोम—धुएँ की राशि; हरि—सूर्य; निशाचर—उल्लू, राक्षस। (४०)

बिश्रबानन्दन पाशे होइला प्रबेश। बिस्रबाइ अमोह-मणिरे करि तोष ये। बिजनरे पुर सर्जनरे हेला क्षम। बर्णनीय नोहिला तहिँरे मनोरम ये। बणा हेले सत कि स्वपन बोलि जने। बोले के क्षम होइब ए पुर दहने ये। ४१।

सरलार्थ—विश्वकर्मा विश्रवानन्दन रावण के पास पहुँचे। उन्होंने रावण को अमोहमणि देकर उसके चित्त को पिघलाया और उसकी चिन्ता हटायी। इस तरह उन्होंने उसका सन्तोष-विधान किया। एकान्त मे बैठकर उन्होंने लंकापुरी का फिर से निर्माण करवाया। नवनिर्मित पुर का सौन्दर्य भाषा में कहा जा नहीं सकता। (अर्थात् उन्होंने लंकापुरी को पहले की अपेक्षा कही अधिक सुन्दर ढंग से बनवाया।) इस नवनिर्मित नगरी को देखकर राक्षस लोगों को भ्रम हुआ कि यही नगरी जो पहले

जल गयी थी, वह घटना सत्य है या सपना है। (अर्थात् लंकादहन का कोई चिन्ह फिर दिखाई नही पड़ा)। वे सब आपस में बातचीत करने लगे, "देखे, फिर कौन इसे जलाने में समर्थ होगा ?" (४१)

बिश्रवानन्दन—रावण; बिलबाइ—पिघलाकर; मनोरम-सौन्दर्य। (४१)

बोले के पोड़िछि धन्य राबण बड़ाइ। बिश्वकर्माकिरे देले बिबुधे गढ़ाइ ये। बोले के य़ाहा श्वशुर मय महासुर। बिचित्र तुहइ एमानङ्क होइबार ये। बयाळिश पद छान्द मोहु साधुमति। बकारे बिधान उपइन्द्र भञ्ज कृति ये। ४२।

सरलार्थ—फिर कई राक्षसों ने कहा, "रावण की बड़ाई धन्य है। क्योंकि जो लंकानगरी जल गई थी, उसे देवताओं ने फिर विश्वकर्मा से बनवा दिया।" फिर किसी ने कहा, "विचित्रकर्मा मय राक्षसश्रेष्ठ जिसका ससुर है, उसके लिए ऐसे सुन्दर पुर का निर्माण कौन-सा अचरज है ? (अर्थात् यह कोई अनूठापन नहीं है।)" बयालिस पदों और आद्य में 'ब' अक्षरवाला उपेन्द्रभञ्जकृत यह छान्द पण्डितों के मन को मुग्ध करे। (४२)

बिबुधे—देवताओं ने; साधुमति—पण्डितों को। (४२)

॥ इति षट्त्रिंश छान्द ॥

सप्तत्रिंश छान्द

राग—नळिनी गौड़ा

बुधे शुण एक - लये । बातसुत सुबळये ।
बञ्चिला सुखे तामसी । बासर प्रबेश आसि । १ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! एक ही ध्यान से आप लोग सुनें । पवनपुत्र हनुमान् ने सुबेल पर्वतपर सुख से वह रात बिताई । रात्रि के अन्त मे दिन आकर पहुँचा । (१)

बुधे—हे पण्डितो !; बातसुत—पवनपुत्र हनुमान् जी; बञ्चिला—बिताई; तामसी—रात; बासर—दिन । (१)

बिबस्वान उदे चाहिँ । बाहार ओळग बिहि ।
बियद्‌गति हनुमान । बोलाबोलि देखि जन । २ ।

सरलार्थ—सूर्य को उदित होते देखकर हनुमान् जी उन्हें प्रणाम-पूर्वक वहाँ से चल दिये । बालरवि से रंजित आकाशमार्ग में लालवर्ण-विशिष्ट हनुमान् जी को चलते देखकर लोग आपस में बातचीत करने लगे । (२)

बिबस्वान—सूर्य; ओळग—नमस्कार, प्रणाम; बियद्‌गति—आकाश में गमन।(२)

बिनिद्र हेउँ धूर्जटी । बेनि नेत्र अछि फिटि ।
बुजिछि नयन सत । बिशेषित अळसित । ३ ।

सरलार्थ—"महादेव जी की नीद टूट जाने से शायद, अभी उनके दो ही नेत्र, सूर्य तथा अग्नि, खुल गये है । (हनुमान् अग्नि की तरह तेजोमय है।) फिर विशेष आलस के कारण उन्होने अपने चन्द्र नेत्र को मूँद रखा है। यह सत्य ही है ।" (शिवजी के तीन नेत्र सूर्य, चन्द्र और अग्नि है । (३)

विनिद्र—उनींद; धूर्जटी—शिव; बेनि—दोनों; अछि फिटि—खुले हैं । (३)

बिचित्र प्रभात आज । बिदित त बेनि सूर्य्य ।
बिमान भानुर डेई । बिनतासुत कि याइ । ४ ।

सरलार्थ—आकाश में सूर्य तथा हनुमान्‌जी को देखकर उन लोगों ने फिर सोचा, "आज का प्रभात अनोखा है । क्योंकि आकाश में एक

ही समय में दो सूरज उगे हुए है। (अर्थात् हनुमान् सूर्य की तरह भी तेजोमय है।) आकाश में हनुमान् जी को चलते जाते देखकर कुछ लोगों ने सोचा, "क्या सूर्य-सारथि विनतासुत अरुण सूर्य के रथ से कूदकर भाग जा रहे हैं!" (अरुण भी लाल रग के है।) (४)

बिमान भानुर—सूर्य के रथ से; विनतासुत—अरुण, सूर्यसारथि। (४)

बोध के तहिँरे स्थापि। बिध्वंसिला लंका कपि।
ब्योममार्गे य़िबा चाहिँ। ब्योम भग्नीपति कहि। ५।

सरलार्थ—उस समय किसी ने हनुमान् जी को निःसशय रूप से पहचान कर कहा, "यह वही बन्दर है जिसने लंका को जलाया था।" इस समय में व्योमासुर के वहनोई रावण ने कहा— (५)

ब्योम भग्नीपति—व्योमासुर के बहनोई रावण ने। (५)

बाहिनी केहि प्ळबग। बधि दिअन्ता मो आग।
बिळसन्ता सेहि य़ोद्धा। बधाइ पाइ अय़ोध्या। ६।

सरलार्थ—"यदि कोई सेनापति इस वानर को वध करके मुझे दे देता, तो वह अयोध्यापुर को पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त करके उसमे विलास करता।" (६)

बाहिनी—सेना; प्ळबग—वानर; बधाइ—पुरस्कार। (६)

बिभीषण भाषे गिर। बामन बढ़ाइ कर।
बिधु धरिबाकु मन। बिन्यास करे य़ेसन। ७।
बिलंघि पल्वळ येहि। बिधिरे न पारे सेहि।
बारिधि तरिबा चित्त। बिचारिबा सेहि मत। ८।

सरलार्थ—यह सुनकर विभीषण ने कहा, "आप की चाह उस आदमी की तरह है जो वामन होकर भी चन्द्र को पकड़ने के लिए हाथ पसारता है अथवा उसकी चाह की तरह है जो एक छोटे से तालाव को लाँघ न सके, परन्तु समुद्र को पार करना चाहे। यह हँसी के योग्य है।" (७,८)

गिर—वचन; बामन—बौना; पल्वळ—छोटा तालाव; बारिधि—समुद्र। (७,८)

सरलार्थ—विभीषण जी की ऐसी रूखी बातों से रावण के दसमुख मलिन हो गये, मानो बिना तेल के दीप बुझ गया। उधर हनुमान् जी तूफान के वेग से आकाशमार्ग में जाकर बिन्ध्य पर्वत पर पहुँचे और जाम्बवान् को प्रणामपूर्वक बालिसुत अंगद के सामने बैठे। (९,१०)

विशार्द्ध—बीस का आधा, दस; तेमन्त—उसी प्रकार; बतास—तूफान; आग—सामने। (९,१०)

बिनाश सन्ध्या समय। बियत शोभा उदय।
बानर सभा होइला। बिधान श्लेष बहिला। ११।

सरलार्थ—जब हनुमान् जी बिन्ध्य पर्वत पर उपस्थित हुए, तब तक दिवस का अवसान हो गया था। सायकाल पहुँच रहा था और आकाश मे शोभा का उदय हो रहा था। उस समय हनुमान् प्रमुख वानरों की सभा सायकालीन आकाश की तरह दिखाई दी। तो कवि ने श्लेष-नियम की रक्षापूर्वक यह सन्ध्या की वर्णना की। (११)

वियत—आकाश। (११)

बिकाशि नीळ प्रभात। बिशेष तारा जनित।
बिदित ये ऋक्षबर। बिद्य मंगळ सञ्चार। १२।

सरलार्थ—जैसे सायकालीन आकाश नीली कान्ति को प्रकाश करता है, वैसे सभा में उपस्थित नील नामक वानर सेनापति अपनी दीप्ति को प्रकाश कर रहे है। आकाश में तारे जनित (उदित) होते है। उसी तरह तारा-जनित (अंगद) यहाँ विराजमान हुए है। आकाश मे 'ऋक्षवर' (तारापति अर्थात् चन्द्र) का उदय होता है। वैसे यहाँ 'ऋक्षवर' (भल्लुकराज जाम्बवान्) का आविर्भाव हुआ है। आकाश में मंगल ग्रह का सचार होता है। उसी प्रकार इस सभा में मंगल (शुभ) का संचार हुआ है। (१२)

नीळ प्रभा—नीली कान्ति, नील नामक वानर-सेनापति अपनी दीप्ति दिखा रहे हैं; ताराजनित—तारे उदित, तारा-पुत्र अंगद; ऋक्षवर—तारापति चन्द्र, ऋक्षराज जाम्बवान्; (श्लेष) (१२)

बार्त्ता हनुमन्त कहि। बारानिधि य़ाउँ डेइँ।
बिघ्न करि गिळिदेला। बिधुन्तुदमाता मला। १३।

सरलार्थ—हनुमान्जी उस सभामें अपने लंका गमनागमन का समाचार यों बोल रहे है—"जब मैं समुद्र को लाँघता हुआ जा रहा था, मेरी यात्रा में

विघ्न डालने के उद्देश्य से राहुमाता सिंहिका ने मुझे निगल डाला। उसका पेट फाड़कर मैं निकल पड़ा, तो वह मर गई।" (१३)

बारानिधि—समुद्र; डेइँ—कूदकर; गिळिदेला—निगल दिया; बिधुन्तुदमाता—राहुमाता सिंहिका। (१३)

बिरोधी होइ सुरसा। बळिला नाहिँ भरसा।
बोधि आसि मइनाक। बुड़िला सिन्धु उदक।१४।

सरलार्थ—"फिर चलते-चलते मार्ग मे नागमाता सुरसा मेरी शत्रु बन आई। परन्तु मुझसे झगड़ा करने के लिए उसे हिम्मत नहीं हुई। एक बन्धु के रूप मे मैनाक पर्वत मुझे समझा बुझाने के लिए आया। किन्तु ज्यों ही मै उस पर विश्राम करने बैठा तो वह समुद्र के जल में डूब गया।" (१४)

सुरसा—नागमाता; उदक—जल में (१४)

बेळास्ते सुबेळ होइ। बिक्रमि लंकाकु ग्राइ।
बिधा लंकिनी पाइला। बैदेही थिला कहिला।१५।

सरलार्थ—"शाम के वक्त मै सुबेल पर्वत पर जा पहुंचा। वहाँ से कूदकर लंकागढ़ गया। मार्ग मे लंकदेवी को देखकर एक घूंसा मारा। उसने मुझसे बताया कि सीतादेवी वहाँ पर है।" (१५)

बेळास्ते—सूर्यास्त के समय अर्थात् सन्ध्या में; सुबेळ—सुबेल पर्वत; लंकिनी—लंका की अधिष्ठात्री देवी; बिधाए—एक घूंसा। (१५)

बिचित्र होइ से पुर। बेभारे सुचित्र सार।
बिशाळ से भूरिशाळ। बिळोक लोकरे मेळ।१६।

सरलार्थ—(विरोधाभास अलंकार मे)

विरुद्धार्थ—"वह लंकापुरी वास्तव मे चित्रहीन होकर उत्कृष्ट चित्रों से चित्रित हुई है। वह पुरी शालविहीन होकर फिर बहुत शालों से भरपूर है। वह लोकशून्य होकर फिर बहुत लोगों से परिपूर्ण है।

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—वास्तव में उस लंकापुरी ने सार (उत्कृष्ट) चित्रों से चित्रित होकर विचित्र (अनूठे) सौन्दर्य को धारण किया है। वह पुरी वहुत शालाओं (श्रेणीबद्ध गृहों) से परिपूर्ण होकर विशाल (विस्तृत) बनी है। फिर विलोकन (देखने) से मालूम हो रहा है कि वहाँ बहुत लोग है।"(१६)

विरुद्धार्थः—विचित्र—चित्रहीन; सुचित्र—उत्तमचित्र; विशाळ—शालविहीन; भूरिशाळ—बहुशालों से युक्त; बिलोक—लोकशून्य; लोकरे मेळ—लोगों से पूर्ण।

प्रकृतार्थः—विचित्र—अनूठा; सुचित्र—उत्तम चित्र; विशाळ—विस्तृत; भूरिशाळ—बहुत श्रेणीबद्ध गृहों से पूर्ण; बिलोक—देखने से; लोकरे मेळ—बहुत लोगों से परिपूर्ण। (१६)

बहु जगतिरे नाहिँ। बहु जगतीरे शोहि।
बिहीन पुण्यजनरे। ब्यापित पुण्यजनरे। १७।

सरलार्थ—विरुद्धार्थः—"फिर वह लकापुरी बहुत जगतियों (अटारियों) से विहीन और बहुत जगतियों (अटारियो) से शोभित है। वह पुरी पुण्यजनों से विहीन तथा पुण्यजनों से परिपूर्ण है।

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—ऐसी नगरी चौदह भुवनों मे नहीं है। वह नगरी बहुत अटारियो से भरपूर है। उस पुरी मे धार्मिक लोगों का अभाव है। वह राक्षसों से ओत-प्रोत है।" (१७)

बिरुद्धार्थः—बहु जगतिरे नाहिँ—बहुत अटारियों से बिहीन; बहु जगतीरे शोहि—बहुत अटारियों से शोभित; बिहीन पुण्यजनरें—पुण्यजनों से शून्य; ब्यापित पुण्वजनरे—पुण्यजनों से भरपूर।

प्रकृतार्थ—बहु जगतिरे नाहिँ—चौदह भुवनो में नहीं; बहु जगतीरे शोहि—बहुत अटारियों से भरपूर; विहीन पुण्यजनरे—धार्मिक लोगों से शून्य; ब्यापित पुण्यजनरे—राक्षस लोगों से पूर्ण। (१७)

बज्र प्रभारे ज्वळित। बज्र प्रभा अबिदित।
बुलि एमन्त कटके। बास न छाड़ि झटके। १८।

सरलार्थ—विरुद्धार्थ—"फिर वह पुरी बज्रदीप्ति से उज्ज्वल है और वज्रदीप्ति से अप्रकाशित है।

विरोध का परिहार तथा प्रकृतार्थ—वह लंकापुरी वज्रप्रभा (हीरो की दीप्ति) से प्रकाशित हो रही है। वहाँ हरगिज वज्रपात नहीं होता। ऐसी ऐश्वर्यशालिनी लकापुरी के हरएक गृह मे मैं प्रवेश करके शीघ्र ही घूम आया।" (१८)

विरुद्धार्थ—वज्रप्रभारे पूरित—वज्रदीप्ति से दीप्तिमान्; वज्रप्रभा अविदित—वज्रदीप्ति से अप्रकाशित;

प्रकृतार्थः—वज्रप्रभारे ज्वलित—हीरो की दीप्ति से दीप्तिमान्; बज्रप्रभा अविदित—बज्रपात का अभाव। (१८)

(पद १६, १७, १८ में विरोधाभास अलंकार है।)

बिशकर अन्तःपुरे। बुलि खोजिला उतारे।
बनीए अशोकनामा। बड़ रम्य कि उपमा। १९।

सरलार्थ—"रावण के अन्त:पुर में प्रवेशपूर्वक मैंने ढूँढ़ने के बाद अशोक वन नामक एक उपवन देखा। वह बड़ा ही सुन्दर उद्यान है। उसकी तुलना के लिए इस जगत् मे कौन-सी वस्तु है? (अर्थात् वह उपवन सौन्दर्य में अनुपम है।)" (१९)

बिशकर—बीस हाथों वाला रावण; बनीए—एक उपवन। (१९)

बिराजे मध्ये जगती। बिजे जनकदुहिती।
बिजुळिझटक मात्र। बुजि होइ ग्रथा नेत्र। २०।

सरलार्थ—"उस उपवन में एक सुन्दर अटारी है। उसमे जनकनन्दिनी सीता विराजमान हुई है। उनको देखते ही उनकी वर्ण-ज्योति से मेरी आँखें बन्द हो गईं, जैसे बिजली की चमक से आँखें मुँद जाती हैं।" (२०)

जगती—अटारी; जनकदुहिती—जनकनन्दिनी सीता। (२०)

बिलोकि उत्तम करि। बिधिरे मुँ ग्ने न पारि।
बइकुण्ठ शिरी[1] शिरी[2]। बिस्तारिथिलार परि। २१।

सरलार्थ—"उनके वर्ण की चमक से मेरी आँखों मे चकाचौंध पैदा होने से मै उन्हे अच्छी तरह से देख नही सका। जैसे बैकुण्ठपुर में श्री (लक्ष्मी) श्री (शोभा) का विस्तार करती है, वैसे सीता ने अशोक वन में अपनी शोभा का विस्तार किया है।" (२१)

शिरी[1]—श्री—लक्ष्मी; शिरी[2]—श्री—शोभा; (यमक)। (२१)

बिचार शोभासागर। बिधाता मन्थु बाहार।
बारिधिरु ग्नेते द्रब्य। बिजन्य से एकठाब। २२।
बिचारे अधिक एहि। बुधे ताङ्कु धिक कहि।
बदन सर्बदा पूर्ण। बिधु कळङ्क बिहीन। २३।
बोलिब एमन्त बिधु। बिभाबरीरे से साधु।
बिभाबरु निशाकर। बोलिअछि बेदबर। २४।

सरलार्थ—"उन्हें देखकर मैंने अनुमान किया कि विधाता ने इस अभिप्राय से कि एक अनुपमा लावण्यमयी मूर्ति जगत में अवतीर्ण हो, शोभा-समुद्र का मन्थन किया, तो ये (सीता) उससे उत्पन्न हुई। क्योंकि प्राकृत समुद्र से जितनी सुन्दर वस्तुएँ उत्पन्न हुई थीं, उनको एक ही स्थलपर इकट्ठी करने पर भी वे सौन्दर्य में इनके सम्मुख तुच्छ होंगी—ऐसा पण्डित

लोग कहते हैं। (अर्थात् पण्डित लोगों के विचार में सीता का सौन्दर्य इन्हीं वस्तुओं के सौन्दर्य से कहीं अधिक है।) उदाहरण स्वरूप—समुद्र से उत्पन्न पदार्थों में चन्द्र मास में एक ही दिन पूर्णता को प्राप्त करता है; फिर उसमें कलंक है। परन्तु सीता का मुख-चन्द्र सर्वदा पूर्ण और कलंक-विहीन है। आप लोग कह सकते हैं कि चन्द्र रात में ठीक ऐसा ही सुन्दर दिखाई देता है। केवल दिवस में ही उसकी किरणों में घटिया होती है। इसलिए वेदवर ब्रह्मा ने उसे 'निशाकर' का नाम दिया है।" (२२,२३,२४)

बिजन्य—जात; एक ठाव-एक ही स्थल पर; बुधे—पण्डित लोग; धिक—तुच्छ; बिधु—चन्द्र; साधु—सुन्दर; बिभावरु—किरण के अभाव से; बेदवर—ब्रह्मा। (२२,२३,२४)

बासर निशारे सरि। बाळा आनन माधुरी।
बिमळ प्रसन्न किरण। बिधान से अनुक्षण। २५।

(तुलनीयः—"जौ छवि सुधा पयोनिधि होई।"
जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥
रामचरितमानस, बालकाण्ड)

सरलार्थ—"चन्द्र केवल रात में ही सुन्दर दिखाई देता है। परन्तु सीता की मुख-शोभा दिवस तथा रात में एक-सी है। तिसपर फिर प्रसन्नतारूपी किरण उनके वदन से हमेशा प्रकाशित होती रहती है।" (२५)

सरि—समान; बाळा—सीता; प्रसन्नकिरण—प्रसन्नतारूपी किरण; अनुक्षण—हर समय, हमेशा। (२५)

बिभूषा त्रिनेत्र सेहि। बहु नेत्रभूषा एहि।
बिद्रबाइ से शिळाए। बहु शीळा ए द्रबाए। २६।

सरलार्थ—"चन्द्र केवल त्रिनेत्र महादेव जी का ही शिरोभूषण है। परन्तु सीता का मुख-चन्द्र बहुत लोगों के नेत्रों का भूषण-स्वरूप हुआ है। (अर्थात् दर्शकों के नेत्रों का अमूल्य धन हुआ है।) चन्द्र केवल चन्द्रकान्त पत्थर को पिघला देता है। परन्तु सीता का आननचन्द्र बहुत धीर-स्वभाव लोगों के चित्त को पिघला दे रहा है।" (२६)

त्रिनेत्र—तीन आँखों वाले शिव; बिद्रबाइ—पिघलाता है; शिळाए—एक ही चन्द्रकान्त मणि को; शीळा—धीर स्वभाववाले व्यक्तियों को। (२६)

बिद्युत से क्षणप्रभा । बामा कान्ति चिर शोभा ।
बञ्चि लुचि स्वर्गेधिक । बासकु पारिजातक । २७ ।

सरलार्थ—"फिर बिजली से उनकी कान्ति की क्या उपमा दे ? बिजली तो क्षणप्रभा है । (अर्थात् देखते-देखते वह ओझल हो जाती है ।) किन्तु सीता की शोभा सर्वदा स्थायी है । सुतरां वह बिजली से भी अधिक सुन्दर है । तीसरे, पारिजात फूल सीता के अंगो की सुगन्धि से अपनी न्यूनता समझकर लज्जा के हेतु अपने को धिक्कारता हुआ स्वर्ग मे जा छिपा है ।" (२७)

क्षणप्रभा—क्षणकाल के लिए प्रभा दिखानेवाली, बिजली; बासकु—सुगन्धि से । (२७)

बड़ सुन्दरी रम्भा ये । बपुरे शरण भजे ।
बारणेन्द्र मन्थे गति । बासबे सेहि ब्रिनति । २८ ।

सरलार्थ—"चतुर्थतः बड़ी सुन्दरी रम्भा अप्सरा ने सौन्दर्य में सीता से हार खाकर उनके शरीर के एक अंश (ऊरु) में शरण ली है । इसलिए सीता रम्भोरु है । पञ्चमतः ऐरावत हस्ती मन्दगति मे सीता से हारकर स्वर्ग भाग गया एवं वहाँ इन्द्र की विनती कर रहा है । अतएव समुद्र से उत्पन्न सब वस्तुओं से सीता श्रेष्ठा है ।" (२८)

रम्भा—स्वर्गवेश्या रम्भा; बपुरे—शरीर के एक अंश (जाँघ) में, बारणेन्द्र—हस्तीश्रेष्ठ ऐरावत; बासवे—इन्द्र से । (२८)

बिष्णु मोहिनी होइबा । बुझ केते लक्ष्य देबा ।
बिपुळ पीयूषकुम्भ । बक्षोरुहे से आरम्भ । २९ ।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने आगे कहा, "और कितनी उपमाएँ देकर कहें ? इतने ही से समझ लेना । तो इतना ही और बोल रहा हूँ कि विष्णु भगवान् ने मोहिनी का रूप लेकर जैसे अमृतकुम्भ धारण किया था, वैसे इन विश्वमोहिनी सीतादेवी ने अपने दोनों स्तनों में अमृतकुम्भ की शोभा को धारण किया है ।" (२९)

लक्ष्य—उपमा; पीयूषकुम्भ—अमृत का कलश; बक्षोरुहे—स्तनों में । (२९)

बइश्रबण आसिला । बेसि बिनय भाषिला ।
बिअर्थ अज्ञ बचन । बिज्ञजनरे येसन । ३० ।

सरलार्थ—"इस समय रावण वहाँ आ पहुँचा और सीताके समीप बैठकर विनयभरे वाक्य कहे । परन्तु पण्डित लोग जैसे मूर्खो की कथाओ को

अग्राह्य कर देते है, वैसे ही सीता ने रावण के विनयभरे वाक्यो को नहीं सुना। (३०)

वइश्रवण—रावण; बिअर्थ—व्यर्थ; अज्ञ—मूर्ख, विज्ञ—पण्डित; ये सन—जैसे। (३०)

बिनायक जन्मदिन। बिधुकुत ता बदन।
बोधकर बिना दाने। बाहुड़िलार समाने। ३१।
बन्दन तेजि निन्दन। बिहि गला दशानन।
बियोग हेउँ तामसी। बिगत पाशुँ राक्षसी। ३२।

सरलार्थ—"जैसे गणेश जी की जन्मतिथि में कोई चन्द्र की ओर नही ताकता, वैसे-सीता ने रावण के मुखकी ओर ताका ही नही। दान के बिना (अर्थात् दान न पाकर) भाट लोग जैसे राजा की स्तुति करने के बजाय उसकी निन्दा करके लौट जाते है, वैसे रावण सीता का अनादर भाव देखकर उनकी स्तुति की जगह निन्दा करता हुआ उनके समीप से लौट गया। इस समय रात वीती और प्रभात हुआ तो राक्षसियाँ भी सीता के समीप से चली गईं।" (३१,३२)

बिनायक जन्मदिन विधुकुत—गणेश की जन्मतिथि को जैसे कोई चन्द्र की ओर नहीं ताकता; बोधकर—भाट; बियोग—बीतना। (३१,३२)

बार्त्ता कहि देलि मुदि। बाळिकामणि प्रमोदि।
बिनति पुणि त भणि। बल्लभ छामुकु मणि। ३३।
बैदेही देउँ आसिलि। बनीसार भग्न कलि।
बादारम्भे निशाचर। वध मुँ कलि अपार। ३४।

सरलार्थ—"अनन्तर सीता को एकान्त में देखकर मैंने उनसे बातचीत की और उन्हें संकेत की अंगूठी दी। वह अंगूठी पाकर स्त्रीरत्न सीता बड़ी प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने विनतीपूर्वक मुझसे बहुत-सी बातें कही। उन्होंने अपने पति श्रीराम जी के पास अपनी मणि मुझसे भेजी, तो मैं वहाँ से आया। उसके बाद मैने रावण के श्रेष्ठ उद्यान, मधुवन को तोडा। इसी हेतु राक्षसों के साथ मेरा युद्ध छिड़ा। मैंने बहुत-से राक्षसों के प्राण नाश किये। (३३,३४)

बाळिकामणि—सीता; प्रमोदि—आनन्दित होकर, बल्लभ छामुकु—पति (श्रीराम जी) के पास; बनीसार—श्रेष्ठ उपवन, मधुवन; बादारम्भे—युद्धमें, निशाचर—राक्षस; अपार—अपरिमित, बहुत। (३३,३४)

बैश्रबण एक सुत । बिदारणे से कोपित ।
बासबारि बरगिला । बिळेशये बान्धि नेला । ३५ ।

सरलार्थ—"रावण के एक पुत्र, अक्षय को मार डालने से उसने मुझ पर बड़ा कोप किया और इन्द्रजित को भेजा । इन्द्रजित ने नागपाश से मुझे बाँध लिया ।" (३५)

बासबारि—इन्द्रजित को; बरगिला—भेजा; बिळेशये—नागपाश से । (३५)

बिबिध दण्ड बिहित । बाणी परुष रचित ।
बड़ाइ मुँ न छाड़िलि । बाहु मोड़िबि बोइलि । ३६ ।

सरलार्थ—"इन्द्रजित ने मुझे नागपाश से बाँधकर रावण के निकट उपस्थित किया तो उसने मुझे नाना प्रकार के दण्ड दिलाये एव कड़ी बाते कहीं । फिर भी मैंने अपनी बड़ाई बिना छोड़े कहा कि मै तेरी बाहुओं को मोड़ तेरे प्राण लूंगा ।" (३६)

बाणी परुष—कठोर वचन । (३६)

बास लांगुड़े बेढ़ाइ । बह्निरे देला पोड़ाइ ।
बिध्वंसि तहिं नगर । बोध घेनि देबङ्कर । ३७ ।

सरलार्थ—"अनन्तर मेरे कपट परामर्श से उसने मेरी पूंछ मे कपड़े लिपटाकर उस पर आग लगा दी । उसी आग से मैने उसके लंकापुर को जला दिया । अन्त में देवताओं की प्रबोधना-वाणी स्वीकार करके मैं उस कर्म से निवृत्त हुआ ।" (३७)

बास—कपड़े; बेढ़ाइ—लिपटाकर; देला पोड़ाइ—जला दिया; बिध्वंसि—जलाकर । (३७)

बिचार पारई येते । बळबशे कलि तेते ।
बोलुँ बोले बाळिसुत । बधाइ माग त्वरित । ३८ ।

सरलार्थ—"तुम लोग विचार करो कि अपनी शक्ति को देखकर जितना करना चाहिए, मैंने उतना ही किया है ।" हनुमान् जी के इतना बोलते, अंगद ने प्रसन्न होकर कहा, "तुम मुझसे शीघ्र वधाई (पुरस्कार) माँगो, मैं दे दूंगा ।" (३८)

बधाइ—पुरस्कार । (३८)

बातात्मज तहुँ भाषि । बहुदिनु उपबासी ।
बाटिका किष्किन्ध्या अछि । बिबिध फळे शोभिछि । ३९ ।

बोध करिबा उदर । बदिबा राम छामुर ।
बिचार सर्बे य़ोगाइ । वायुरु सत्वरे य़ाइँ ।४०।

सरलार्थ—यह सुनकर पवनसुत हनुमान् जी ने कहा, "हम लोग बहुत दिनों के भूखे है । सुतरां तुम्हारी किष्किन्ध्या में जो मधुवन नाना प्रकार के फलो से भरपूर है, वहाँ हम लोग पहले जाकर विविध फलों का भोजनपूर्वक उदर शान्त करेगे एवं तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के सम्मुख सारे समाचार जताएँगे ।" यह बात सभी के मन को भायी तो सबने पवनवेग से वही गमन किया । (३९,४०)

बातात्मज—पवनसुत हनुमान्; वाटिका किष्किन्ध्या—किष्किन्ध्या का मधुवन; बोध करिबा उदर—पेट को शान्त करें; बदिबा—कहेगे, बोलेंगे; य़ोगाइ—पसन्द आने से, भाने से । (३९,४०)

बेभारे बोलन्ति हरि । बळे मधु नाश करि ।
बृक्षमान मनोरम । वहि कल्पद्रुम सम ।४१।

सरलार्थ—विधानानुसार (अभिधा के अनुसार) बन्दरों का नाम 'हरि' है और भगवान् का नाम भी 'हरि' है । सुतरां भगवान् ने जैसे बलपूर्वक 'मधु' नामक राक्षस का वध किया था, वैसे इन बन्दरों ने किष्किन्ध्या के मधुवन को बलपूर्वक नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । उस मधुवन में उगे हुए सुन्दर वृक्षों ने कल्पतरु के से सौन्दर्य को धारण किया था । (४१)

हरि—वानर, विष्णु; मधु—मधु राक्षस, मधुवन (श्लेष) । (४१)

बाञ्छित फळ प्रदान । बिरचने सुरञ्जन ।
बारिधिजा परा केते । बिराजे अपूर्व च्युते ।४२।

सरलार्थ—कल्पतरु सबको उनका अपना-अपना चाहा हुआ फल प्रदान करने के गुण से सुशोभित रहता है । वैसे इस वन के वृक्ष प्राणियों को उनका अपना-अपना कल्पित फल प्रदान करने (अर्थात् भोजन के लिए उनके मनके मुताबिक फल देने) मे अत्यन्त कुशल है । इस वन मे आम के पेड़ों पर अपूर्व (अनूठे) अमृत तुल्य सुस्वादु आमफल सुशोभित हो रहे है, मानो अ-पूर्व च्युते, अर्थात् अच्युत—विष्णुभगवान् की गोद में समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी विराजमान हो रही हो । (४२)

बारिधिजा—समुद्र से उत्पन्न अमृत, लक्ष्मी; अपूर्व च्युते—अनूठे आम फल, अच्युत (विष्णु भगवान्) की गोद मे; (श्लेष) (४२)

बश रम्भारे तरकि । बिद्य नळकुबर कि ।
बाहास्फोटमान करे । बिन्धाण मल्ल प्रकारे । ४३ ।

सरलार्थ—आम फलों को खाने के बाद वानर लोग पके हुए केले खाने मे लग गये । यह देखकर प्रतीत हुआ, मानो ये वानर कुबेर के पुत्र नलकुबर हों । क्योंकि नलकुबर जैसे रम्भा अप्सरा से वशीभूत होते हैं, वैसे ये वानर रम्भा (केलों) से वशीभूत हो गये है । अनन्तर वानर लोग अपनी-अपनी बाहुएँ ठोककर बन्धयुद्ध-क्रीड़ा करने लगे, मानो पहलवान मल्लयुद्ध-क्रीड़ा कर रहे हों । (४३)

रम्भा—केला, स्वर्वेश्या; (श्लेष); नळकुबर—कुबेर का पुत्र; बाहास्फोट—बाहुओं को ठोंकना । (४३)

बिहरिले पुष्पकरे । बइश्रबण समरे ।
बहिण राजन ग्रोख । बश दण्डे दधिमुख । ४४ ।

सरलार्थ—फिर वे वानर लोग कुबेर के समान हुए । क्योंकि कुबेर पुष्पक विमान में विहार करते है । वैसे ये 'पुष्पकरे' (हाथों में पुष्पगुच्छ लिये) विहार करने लगे । फिर उन्होंने राजाओं के समान आचरण किया । राजा लोग दण्ड से प्रजाओं को अपने वश कर लेते हैं । वैसे इन वानर लोगो ने दण्डविधानपूर्वक दधिमुख नामक अमराई के पहरेदार को अपने वश में कर लिया । (४४)

पुष्पकरे—पुष्पक रथमें; पुष्पगुच्छ हाथ में पकड़कर; (श्लेष); बइश्रवणसम—कुबेर के समान; ग्रोख—उपमा । (४४)

बानरइन्द्रे गुहारि । बिहि ओळग से करि ।
बन कले शीर्ण शोभा । बहि ग्रीष्म सूर्य्य प्रभा । ४५ ।
बाहुड़ि दक्षिण दूते । ब्यबहार अदभुते ।
बिनाश जीबे करुणा । बहुत प्रकारे ऊणा । ४६ ।

सरलार्थ—दधिमुख ने वहाँ से जाकर वानरराज सुग्रीव को प्रणाम पूर्वक उनसे विनती की, "प्रभो ! दक्षिण दिशा की ओर जो सब दूत गये थे, उन्होने लौटकर ग्रीष्मकालीन सूर्य की सी प्रभा विस्तार पूर्वक मधुवन की शोभा को चौपट कर डाला । इनका व्यवहार बड़ा अजीब है । क्यों कि ये बड़ी निर्दयता से जीवों का वध कर रहे हैं । ऐसे बुरे काम करना इनके लिए घोर निन्दनीय है ।" (४५,४६)

बानरइन्द्र—वानरराज सुग्रीव; गुहारि—विनती, अर्जी; ऊणा—न्यून, कम। (४५, ४६)

बिबस्वानसुत शुणि। बहे हरष सेक्षणि।
बिबेक ता हृदयरे। बिपिन भग्न प्रचारे। ४७।
ब्यबहारु मने हेजि। बैदेही पाइले खोजि।
बेश हेला एहा भाळि। बपुरे चन्दन बोळि। ४८।

सरलार्थ—दधिमुख से ऐसे समाचार सुनते ही सूर्यपुत्र सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई। यह सुनकर कि दक्षिण दिशावाले दूत लोगों ने मधुवन को चौपट करने में मस्ती दिखाई है, सुग्रीव मन में विचारपूर्वक जान सके कि इन्होंने निश्चय ही सीता को ढूंढ़ पाया है। ऐसा सोचकर उन्होंने वेश रचना की और अपने शरीर पर चन्दन पोता। (४७,४८)

बिवस्वानसुत—सूर्यपुत्र (सुग्रीव); विपिन—मधुवन; बपुरे—शरीर में। (४७,४८)

बन्धाइ फुले उष्णीष। बिभ्राज कला से शीर्ष।
बिषद पट्ट अम्बर। बेढ़ाण पिन्धा सत्वर। ४९।

सरलार्थ—सुग्रीव ने फिर सफेद फूलों से अपनी पगड़ी को बांधकर सिर को सुहावना बनाया, सफेद रेशमी कपड़ा पहना और शरीर पर ओढ़नी पहनी। (४९)

उष्णीष—पगड़ी; बिभ्राज—मण्डित; शीर्ष—मस्तक; बिषद—शुक्ल; पट्टअम्बर—रेशमी वस्त्र; बेढ़ाण—ओढ़नी; पिन्धा—पहनी। (४९)

बदन कर्पूरे पूरि। बनौका पति बाहारि।
बिमळ श्वेत चामर। बिनोदी से परिकर। ५०।

सरलार्थ—वानर-पति सुग्रीव ने अपने मुख पर कपूर का चूना मल कर उत्तम वेश बनाया और ऐसे वेश मे निकल पड़े। इस समय उनके परिजन अत्यन्त निर्मल सफेद चँवर धारणपूर्वक क्रीड़ा करने लगे। (अर्थात् सुग्रीव की सेवा करने लगे)। (५०)

बनौकापति—वानरों के स्वामी सुग्रीव; परिकर—नौकर चाकर। (५०)

बिधुसम छत्र शोहि। बिबिध बाद्य बाजइ।
बेढ़ि दधिमुख सैन्य। बार्त्तिक पाशे गमन। ५१।

सरलार्थ—सुग्रीव के चलते समय उनके सिर पर चन्द्रसदृश श्वेतछत्र सुशोभित हो रहा है, नाना प्रकार के वाद्य बज रहे है। दधिमुख व वानर सैन्य उनके चारों ओर घेरे रहे है। ऐसी सजधज के साथ उन्होंने दक्षिण दिशा वाले दूतों के पास गमन किया। (५१)

बार्त्तिक—दूत। (५१)

बान्धि दधिमुखे शाढ़ी। बिमनकु देइ छाड़ि।
बीरबर उपइन्द्र। बिरचे ए बान पद। ५२।

सरलार्थ—दधिमुख से मधुवन के चौपट होने का समाचार सुनकर दुखी होने के बजाय सुग्रीवने प्रसन्न मनसे उसके मस्तकपर साड़ी बँधवायी। वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द की बावन पदों में रचना की। (५२)

बिमन—दुःख, मनोवेदना; बान—बावन। (५२)

॥ इति सप्तत्रिंश छान्द ॥

अष्टत्रिंश छान्द

राग—कळहंस केदार

बदन पूरिअछि हास हरषे ।
बिकर्त्तनज ग्राइ श्रीराम पाशे ये ।
बिकर्त्तन सन्ताप हेला प्रभुर ।
बाहुड़े कार्य्य करि दक्षिण चार ये । १ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सुग्रीव ने हास्य तथा हर्षयुक्त वदन से (प्रसन्नमुख होकर) श्रीरामचन्द्र जी के निकट प्रवेशपूर्वक निवेदन किया, "हे महाप्रभो ! अब आपका सन्ताप विशेष रूपसे छिन्न हुआ (दूर हो गया) । क्योंकि दक्षिण दिशावाले दूत कार्य संपादन करके लौट आये है ।" (१)

बिकर्त्तनज—सूर्यपुत्र सुग्रीव; बिकर्त्तन—छिन्न, काटना । (१)

बोलुँ बोइले राम हे मित्र बस ।
बड़ मङ्गळयुक्त भाष त भाष ये ।
बधिर ब्याधि सते श्रुतिरु यिब ।
बैद्यदूत उदन्त - औषधि देब ये । २ ।

सरलार्थ—सुग्रीव के ऐसा बोलते ही श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, "हे मित्र बैठो, तुम तो बड़े शुभ समाचार बोल रहे हो । सीता जी का समाचार न सुनकर मेरे कानों मे बहरापन की जो बीमारी उत्पन्न हुई है, उस बीमारी को यें दूत रूपी वैद्य सीता का समाचार रूपी दवा प्रदान-पूर्वक मेरे कानों से क्या हटा सकते है ? यह मुझे विश्वास नहीं होता ।" (२)

भाष—कथा; भाष—बोल रहे हो; (यमक); श्रुतिरु—कान से; उदन्त—संवाद, खबर । (२)

बिळम्बकु कि महापिपासी सहि ।
बारिपूर्ण कासार देखाअ काहिँ ये ।
बृहस्पति चळने बरषे घन ।
बिचारे तथा ध्वस्त कले मो बन ये । ३ ।

सरलार्थ—दूतों के आने में विलम्ब देखकर श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा, "क्या प्यासा मनुष्य जल पीने के विषय में विलम्ब को सह सकता है ? सीता का समाचार सुनने में मैं भी एक प्यासा मनुष्य सा हुआ हूँ। सुतरां मुझे शीघ्र ही जलपूर्वक सरोवर के सदृश उन दूतों को दिखाओ। (अर्थात् उन दूतों के मुखों से सीता का समाचार सुनने के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ।)" यह सुनकर सुग्रीव जी ने कहा, "जैसे लोग वृहस्पति के संचार के पूर्व यह निश्चित रूप से जान लेते है कि बारिश होनेवाली है, वैसे दक्षिण दिशावालों के मस्ती से मेरे मधुबन को चौपट करने से मैं पहले से यह जान सकता हूँ कि उन लोगों ने सीता का पता निश्चय ही लगाया है। सुतरां आपको यह समाचार देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।" (३)

महापिपासी—अत्यन्त प्यासा, कासार—सरोवर; मो वन—मेरा मधुवन। (३)

बोलुँ सुग्रीब सत करु राघब।
बीर अष्ट अग्रते प्रबेश जब य़े।
बिनयरे ताङ्कर लय न रखि।
बक्त्र हरषे मात्र नयन रखि य़े। ४।

सरलार्थ—सुग्रीव की बातों पर श्रीरामजी ने विश्वास किया। इसी समय पर जाम्बवादि आठ वीरों ने वहाँ पहुँचकर श्रीरामजी को प्रणाम-पूर्वक विनती दिखाई। परन्तु श्रीरामजी ने उनकी ऐसी विनती की ओर ध्यान नहीं दिया। वे केवल उनके आनन्द-सूचक मुख तथा नयनों की ओर ताकते रहे। (उन्होंने सोचा कि अगर इन्होंने सीता को ढूंढ़ पाया होगा, तो इनके मुख प्रसन्न होंगे, अन्यथा विरस।) (४)

जव—शीघ्र ही; ववत्र—मुख। (४)

बाळिनन्दन राम-हृदय - मणि[१]।
बोले खोजिला तब हृदयमणि[२] य़े।
बिबर्द्धन केशरीपाळने य़ेहि।
बिभेदित सिन्धुर होइला सेहि य़े। ५।

सरलार्थ—बालिपुत्र अंगद ने श्रीरामचन्द्रजी का रुख समझकर कहा, "जो वानर-सिंह केशरीनामा वानरी से पाले-पोसे गये हैं, ऐसे हनुमान् जी ने समुद्र पार करके आपकी हृदय-मणि सीता को ढूंढ़ा। जैसे केशरी (सिंह) द्वारा पाला-पोसा हुआ सिंहशिशु सिन्धु (हाथी) को वेधकर मोती ढूंढ़ता है, वैसे केशरीपुत्र हनुमान् ने सिन्धु (समुद्र) को पार करके सीता-रूपिणी मणि को ढूंढ़ निकाला। (५)

वाळिनन्दन—अंगद; राम—हृदय मणि[1]—रामजी के हृदय को जानकर, हृदय-मणि[2]—सीता; (यमक); केशरी—सिंह; सिन्धु—हाथी। (५)

व्यक्त करि अञ्जनारञ्जित सिद्धि।
बिपथ दृश्य तमजनिता वधि ये।
बिहरित लंकारे स्वभाववशे।
बन्धन पाए रक्ष चउरवासे ये। ६।

सरलार्थ—"जैसे आँखों में अंजन लगाने से रतौंधी आदि चक्षुरोगों का विनाश होता है, वैसे अंजनापालित सिद्ध हनुमान ने आकाशमार्ग में जाते-जाते राहुमाता सिंहिका को देखकर उसका वध किया। फिर अपने बुरे स्वभाव के कारण कोई व्यक्ति व्यभिचारिणी नारी सहित क्रीड़ा करे, तो वह पाबंद होकर कैदीखाने में रहता है। उसी तरह अपने स्वभाव के वश लंका में डालों को तोड़ने से वे पाबंद होकर वन्दीखाने में रखे गये।" (६)

अञ्जन-आरञ्जित—अंजन (नेत्रौषध) लगाने से, अञ्जनापालित हनुमान्; तमजनिता—राहुमाता सिंहिका, रतौंधी; (श्लेष); विपथ—विशेष रूप से मार्ग दीख पड़ना, आकाश; लङ्का—पेड़ की डाल, लंकापुर, विटपी स्त्री; (श्लेष); चउरवास—चोरों का घर, कैदीखाना। (६)

बोले मुँ दाशरथि से, सीता पुणि।
बार्त्ता कह पड़िबा योगबारुणी ये।
बोलाउ तु पावनि पावन कर।
बिधिरे तो मज्जने मुँ ततपर ये। ७।

सरलार्थ—अंगद के मुख से ये सारी बातें सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान् जी से कहा, "मेरा नाम दाशरथि (दशरथ का पुत्र) है, अतएव मैं दासरथी (सेवक श्रेष्ठ) हूँ। फिर सीतादेवी 'सीता' (गंगा) है। तुम मुझे शीघ्र ही उनका समाचार कहो। उनका वैसा समाचार मेरे लिए वारुणी संयोग की तरह होगा। फिर तुम पावनि (पवन-पुत्र) अर्थात् पवित्रकारक हो। सुतरां तुम मुझे इस वारुणी संयोग में नहलाकर पवित्र करो। वास्तव मे सीता की वार्त्तारूपी गगा में डुबकी लगाने के लिए मैं अतिशय चंचल हो रहा हूँ। (अर्थात् सीता का समाचार पाने के लिए मैं वड़ा उत्कंठित हूँ। तुम अतिशीघ्र मुझसे उनका समाचार कहकर मेरी उत्कण्ठा दूर करो।)" (७)

दाशरथि—दशरथनन्दन श्रीराम, (दासरथी)—श्रेष्ठ सेवक; सीता—सीतादेवी, गंगा; (श्लेष); योग बारुणी—बारुणी संयोग; पावनि—पवनपुत्र हनुमान्, पवित्रकारक; (श्लेष); मज्जने—स्नान में। (७)

बेगरे हनुमान कथन चारु।
बरतरुणी बासे चन्दनतरु से।
वेष्टित निशाचरी नागाबळीरे।
बिलोकिलि अत्यन्त रम्य बनरे से। ८।

सरलार्थ—यह सुनकर हनुमान् जी ने बिना विलम्ब के मनोहर ढंग से कहा, "मैंने चन्दनवृक्ष के सदृश रमणीमणि सीता को अशोक वन में देखा। क्योंकि चन्दनवृक्ष जैसे हमेशा महकता है, हमेशा सांपों से घिरा रहता है एवं अत्यन्त मनोहर वन में होता है, वैसे सीतादेवी अत्यन्त सौरभयुक्ता हुई हैं, नागिनों के सदृश राक्षसियों से घिरी हुई हैं और मनोहर अशोकवन में रही हुई है।" (८)

चारु—मनोहर; निशाचरी—राक्षसियों से; नागाबळीरे—सर्पसमूह से। (८)

बिश्वजनक - चित्तहरिणी तहिँ।
बिभ्रम हेला निश्चे हरिणी एहि से।
बिरह सूत योग सत खुरूपा।
बामकर कपोळे चण्डीस्वरूपा से। ९।

सरलार्थ—हनुमान् जी ने आगे कहा, "जगज्जनमोहिनी सीता जी का वर्ण विरह के हेतु पाण्डु हो गया है। उसे देखकर मेरे मन में विभ्रम हुआ कि एक सुवर्ण प्रतिमा पारद के योग से अच्छी चाँदी की तरह शुक्लवर्ण हो गई है। फिर अपने बायें हाथ को गाल में रखकर बैठने से वे मानिनी स्त्री के सदृश दिखाई दे रही हैं। (९)

बिश्वजनकचित्त-हरिणी—जगज्जनमनमोहिनी; हरिणी—सुवर्ण प्रतिमा; सूत—पारद; कपोळे—गाल में; चण्डी—मानिनी स्त्री; सुरूपा—अच्छी चांदी, शम्भु। (९)

बिषमशर ब्याध हरिणी करि।
बिच्छेद घाट जगि बाण प्रहारि से।
बिशेषे पुंख ब्यक्त छन्निकि वहि।
विहिबार क्षतजटि नीर झोह से। १०।

नीर (अर्थात् आँसू) बह रहा है।" (भावार्थ यही है कि विरह के हेतु सीता कामपीड़िता हुई है। उनकी आँखों की बरौनियाँ शर के पुंख की तरह दिखाई दे रही हैं और वे हमेशा आँसू गिरा रही हैं। (१०)

बिषमशर—कन्दर्प; पुंख—शरके पिछले भाग का पक्षयुक्त अंश; क्षतज—रक्त। (१०)

बिचारिलि ए चित्रप्रतिमा पुनः।
बिधाता केते कळ्पि कला लेखन ये।
बायु संयोगे सार्थ पद्मिनीपद।
बितरण कुसुम स्वेद मरन्द ये। ११।

सरलार्थ—"मैने उन्हे देखकर फिर सोचा, 'विधाता ने कितने काल तक कल्पना करके इस आश्चर्यजनक चित्रप्रतिमा का निर्माण किया है?' उस समय उनके शरीर में हवा ने लगकर उनके 'पद्मिनी' पद को सार्थक किया। अर्थात् पद्म की नाल जैसे कँटीली होती है और पवन के द्वारा मन्द-मन्द चलती है, वे (सीता) उसी तरह पवन के स्पर्श से रोमांचयुक्त और कम्पित हो रही थी। और भी उनके मुख से पसीने की धारा छूट रही थी, जैसे पद्मिनीलता कमलों के कुसुमों से मकरन्द वितरण करती है।" (भावार्थ यही है कि हनुमान् जी सीता मे स्तम्भ, रोमांच, वेपथु व स्वेद आदि सात्त्विक विकारों या लक्षणों को देख सके थे।) (११)

स्वेद—पसीना; मरन्द—पुष्परस, मकरन्द। (११)

बचने आणे अबा ईश से ईशी।
बारि नुहइ येणु बिगत शशी ये।
बिहरुअछि भिन्नरूपे प्रळय।
बाधिबारु सात्त्विक से क्षीणकाय ये। १२।

सरलार्थ—यह स्पष्ट नही हो रहा है कि सीता 'हे ईश' (हे स्वामिन्!) कहकर अपने पतिदेव का सम्बोधन कर रही है अथवा अपनी व्यथा के आधिक्य के कारण 'ईशी' (पीड़ा-सूचक शब्द) बोल रही है। उनके 'ईश' और 'ईशी' इन दोनों शब्दों से अन्तिम दो वर्ण 'श' 'शी' सुनाई नही पड़ते। अर्थात् 'शशी' शब्द गायब हो गया है। शशी (अर्थात् चन्द्र) प्रलय के समय विनष्ट होता है। इसी हेतु यहाँ अनुमान किया जाता है कि यहाँ प्रलय भिन्न रूपमें (अर्थात् प्रच्छन्न रूपमें या गोपन में) विहार कर रहा है। और भी पूर्वोक्त सात्त्विक विकारों के कारण वे अत्यन्त दुबली-पतली हो पड़ी है।" (१२)

ईश—स्वामी; ईशी—वेदनाजनित एक शब्द; शशी-चन्द्र। (१२)

बिरहिणी ए पुरे आउ से बिना ।
बामा किपाइँ थिब कलि कल्पना ये ।
बिरहिणी बा थिब ए शोभा परि ।
बार बेनि भुबने काहिँ सुन्दरी ये । १३ ।

सरलार्थ—"मैंने और भी सोचा, 'इस लंकापुर में सीता के बिना और कोई नारी विरहिणी क्यों होगी ? बिरहिणियाँ भले ही हो सकतीं हैं । परन्तु ऐसी रूपवती रमणी चौदह भुवनों में कहाँ है ? अर्थात् कहीं भी नही । सुतरां लंकापुर में यह जो अनुपम सुन्दरी रमणी है यह निश्चय ही सीता है ।" (१३)

बारबेनि—बारह और दो, चौदह । (१३)

बिंशतिपाणि मिळि एहि समय ।
बिच्छेदन कला मो चित्तु संशय ये ।
बिनति बिरचन उन्नति तेजि ।
बधिरा परा धीरा कदा न मज्जि ये । १४ ।

सरलार्थ—"मैं ऐसे सोच रहा था तो रावण ने सीता के समीप उपस्थित होकर मेरे मन का संशय निवारण किया । पहले उसने गर्व-त्यागपूर्वक उनसे सविनय नाना प्रकार की चापलूस बातें कहीं । परन्तु धैर्यवती सीता ने उसके विनय-भरे वाक्यों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, मानो बहरी हों । (अर्थात् सीता उसकी बातों से किसी भी प्रकार नहीं भूलीं ।)" (१४)

बिंशतिपाणि—बीस भुजाओं वाला, रावण; उन्नति—गर्व; धीरा—धैर्यशालिनी; कदा—कभी भी । (१४)

बिहिगला से कण्ट मासके तोर ।
बल्लभकु देखाअ नोहिले मोर ये ।
बल्लभी हेबु एथि संशय नाहिँ ।
ब्रह्माण्डे अधिकारी अटइ मुहिँ ये । १५ ।

सरलार्थ—"यह देखकर कि सीता ने रावण की एक भी नही सुनी, रावण को बड़ा क्रोध हुआ । वह नियत कर गया, 'एक ही महीने में तू अपने पति को ला दिखा, अन्यथा अवधि के अनन्तर निःसंशय ही मेरी पत्नी होगी । मैं ही इस ब्रह्माण्ड का एक मात्र अधीश्वर हूँ ।" (१५)

कण्ट—अवधि, सीमा; बल्लभकु—अपने पति को; बल्लभी—पत्नी । (१५)

ब्रह्मादि के रखिब देखिबा देखि।
बोइले एते न सहि ता सुमुखी ये।
बज्रपातकु डरि करि शारङ्ग।
बारिधिर आशाकु छाड़िछि अज्ञ ये।१६।

सरलार्थ—"उस रावण ने फिर सीता से कहा, 'देख लूँ, ब्रह्मादि कौन देवता तेरी रक्षा करेंगे ?" सुमुखी सीता ने रावण के ऐसे अहम्मद-सूचक वचन सुनकर केवल इतना ही कहा, 'अरे मूर्ख, क्या वज्रपात से डरकर चातक पक्षी कभी मेघ की आशा त्याग सकता है ? (हरगिज नहीं।) उसी तरह चाहे तू मुझे कितना ही भय क्यों न दिखाये, मैं किसी भी तरह तेरे वश में नहीं आऊँगी ? (१६)

शारंग—चातक; बारिधर—मेघ; अज्ञ—मूर्ख। (१६)

बिहग केते नाहिँ के पारे भक्षि।
बह्निकणकु यथा चकोरपक्षी ये।
बधिबि निश्चे थाअ अल्प दिबस।
बीर-केश आउँसि गला राक्षस ये।१७।

सरलार्थ—'इस संसार में कितने ही पक्षी नहीं है ? (अर्थात् इस ससार मे बहुत से पक्षी है।) परन्तु उनमे से चकोर की तरह और कौन पक्षी चिनगारियाँ चुग सकता है ? (कोई नहीं।) उसी तरह रामचन्द्र को छोड़कर और कोई व्यक्ति मुझे संभोग नही कर सकता। सुतरां तू एक तुच्छ राक्षस मुझे कहाँ सम्भोग कर सकेगा ? (अर्थात् चकोर पक्षी के सिवाय कोई दूसरा पक्षी यदि चिनगारियाँ चुगने को चले तो वह जल मरता है। वैसे तू मुझे सम्भोग करने बैठे, तो निश्चय ही राख हो जाएगा)।' यह सुनकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह सीता से यह कहकर कि थोड़े ही दिन तू रह, मैं अवश्य तेरा वध करूँगा, अपनी मूंछ पर ताव देकर वहाँ से चला गया।" (१७)

बिहग—पक्षी; बह्निकणा—अग्निकणा, चिनगारियां; बीरकेश—मूंछ। (१७)

बिस्मय शुणि राम श्वास पकाइ।
बोइले मुँ सुधांशु हृदयस्थायी ये।
बोधकर आसर रामारे हेला।
बिहि जीबने थाउँ कि शुणाइला ये।१८।

सरलार्थ—हनुमान्‌जी री यह सुनकर रामचन्द्रजी को बड़ा विस्मय

हुआ। उन्होंने लम्बी साँस छोड़कर कहा, "हाय। मैं चन्द्र के हृदय-स्थित कलंक सदृश हूँ। (अर्थात् सूर्यवंश का कुलकलंक हूँ।) क्योंकि मैं जीवित हूँ। और मेरे जीते जी एक तुच्छ राक्षस ने मेरी पत्नी की ठकुरसुहाती की! दैवने मुझे क्या सुनवाया? मेरे जीवनधारण को धिक्कार है। (१८)

सुधांशु—चन्द्र; बोधकर—चाटुकार; आसर—राक्षस। (१८)

बाञ्छा नतानत सरणी धीबर।
बेगे हेबाकु दीप्ति करि मयूर ये।
बसि मध्ये ग्रीषम रचनाबळे।
बरद गात्र पात स्वनामे कले ये। १९।

सरलार्थ—बुद्धिमान् लोग विपत्-संकुल संसार पथ को पार करने के अभिप्राय से अथवा अपनी-अपनी कामना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए पंचाग्नि-स्थापना-पूर्वक उसमे बैठकर तपस्या करते है। अथवा गंगा में अपने-अपने जीवन को बलि चढ़ाते है। उसी तरह बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र ने प्रिया (सीता) के वासस्थान (लंका) को पड़े विपत्-संकुल मार्ग को अतिशीघ्र पार करने की कामना से ग्रीष्मकालीन सूर्यकिरण के सदृश तेजस्वी सेनापतियों के बीच बैठकर तपस्या की। (अर्थात् सन्तप्त हृदय में सीता को सोचा।) फिर वरद होने के लिए सीता के स्वनाम मे अपने शरीर को निक्षेप किया। (अर्थात् सीता के शरीर रूपी गंगा में अपने शरीर को बलि चढ़ाया।) प्रकाशतः हनुमान् जी से सीता का संवाद सुनकर श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त व्याकुल हुए एवं यह सोचते हुए कि सीता का उद्धार कैसे करूँ, उन्होंने अपने मन मे उपाय ठान लिया। इस प्रकार साधना में एकाग्रचित्त होने से सीता जी के रूप, गुण, स्नेह, सहबास, सुख आदि बातों की मधुर स्मृतियाँ उन्हें आ गई और वे सीतागतप्राण हो गये। (१९)

नतानत—ऊबड़खावड़; सरणी—पद; धीवर—दास; मयूर—शिखी, अग्नि; ग्रीष्मरचनाबळरे—अग्नि मे बैठकर; बरद—वरदायक; गात्रपात—शरीर को निक्षेप करना; स्वनामे—सीता के अपने नाम 'सीता' (रूपिणी गंगा) में। (१९)

बिळसे हंस मानसरे येसन।
बिरचि करिथिलि सिना प्रसन्न ये।
बाट त देखाइलु एथि उत्तारु।
बिधान कह कि कहिछि रम्भोरु ये। २०।

सरलार्थ—कुछ समय के बाद रामचन्द्रजी ने कहा, "हे हनुमान्‌जी ! जैसे हंस मानसरोवर मे क्रीड़ापूर्वक अत्यन्त प्रसन्न होता है, उसी तरह मैं भी सीता जी की अपने मानस मे सेवा करने के लिए ठानकर प्रसन्न हो रहा था। परन्तु अब तो तुमने मुझे उनकी प्रत्यक्ष सेवा करने का मार्ग दिखा दिया। तब और मैं उनकी मानसिक सेवा क्यों करूँ ? आगे तुम मुझसे यह बताओ कि रम्भा वृक्षों-सी जांघोवाली सीता ने इसके बारे में क्या करने को मुझसे कहा है।" (२०)

रम्भोरु—केले सी जाँघोंवाली। (२०)

बोले कर कोरक करि मारुति।
बिनाश हेला एहि समये राति ये।
बृद्ध गण्डुकीस्नाने एका सञ्चरि।
बेश महिळामणि महीकि करि ये। २१।

सरलार्थ—अनन्तर पवनसुत हनुमान्‌जी ने हाथ जोड़कर कहा, "इस समय रात बीत गई। सीता जी वृद्ध गण्डुकी नदी में नहाने के लिए अकेली गईं। नारीरत्न सीता ने अपने चलते समय पृथिवीदेवी को सुवेश में सजा लिया।" (२१)

कर कोरक करि—हाथ जोड़कर; मारुति—पवनपुत्र हनुमान्; सञ्चरि—जाकर; महिलामणि—नारीरत्न सीता; महीकि—पृथिवी को। (२१)

बक्षकु अश्रु-धारा-हारकु देइ।
बान्धि जबाचरणे गभाकु नेइ ये।
बिळसे पाश भृंग भृंगीनिकर।
बाजेणीबळा परदान प्रकार ये। २२।

सरलार्थ—"सीताजी ने अपनी अश्रुधारा रूपी मोती की माला को पृथिवीदेवी के वक्षस्थल पर पहनाकर अपने चरणचिन्हों रूपी अड़हूल फूलों से उनकी जूड़ा बाँध दी। फिर उन्होंने अपने शरीर की सुगन्ध के हेतु चारों ओर गुंजन करते हुए भौरों तथा भौरियों को पृथिवीदेवी के चरणों पर [illegible] बैठा। (अर्थात् जब सीता नहाने के लिए गण्डुकी नदी को जा रही थीं, उनकी आँखों से मुक्तामाला के समान आँसुओं की धारा बह रही थी, उनके लाल चरणों से पृथिवी पर अडहूल फूलों के समान चिन्ह अंकित होते जा रहे थे और पद्मगन्ध के हेतु उनके चारो ओर भौंरे मँडरा रहे थे।)" (२२)

जबाचरणे—चरणोंरूपी अड़हुल फूलों के मण्डन से; गभाकु—जूड़ाको; भृंगभृंगी-मानङ्कु—भौंरों और भौरियों को; बळा—पाजेब, पायल। (२२)

बिश्रामुँ कृष्णसार तळरे लेशे।
बाळक कृष्णसारनेत्रा अबशे ये।
बिस्तारु तब नाम थाइ नगर।
बिन्धिला प्राय कृष्ण सारसशर ये। २३।

सरलार्थ—"बाल हिरनी की-सी आँखोंवाली सीता ने कमजोरी के कारण अशोक पेड़ के नीचे कुछ ही क्षण के लिए विश्राम किया, तो पेड़पर रहकर मैंने आपके नाम का उच्चारण किया। आपका नाम सुनकर वे चकित हो उठी, मानो कन्दर्प ने कमलशर को मार दिया हो।" (२३)

कृष्णसार तळरे—शिशुपावृक्ष (अशोकवृक्ष) के नीचे; बाळक-कृष्णसारनेत्रा—शिशुहिरनी की सी आँखोवाली (सीता); अवशे—थकावट या कमजोरी के हेतु; नगर—वृक्षपर; कृष्ण—कन्दर्प; सारसशर—पद्मशर। (२३)

बिसोउँ ये सारंग यथा कमळे।
बिळसाइले दृष्टि नभे चञ्चळे ये।
बचन रचन के सुधा सिञ्चिला।
बनप्रिय ता शुणि ध्वनि मुञ्चिला ये। २४।

सरलार्थ—"उन्होंने अपने दोनों नेत्रों को आकाश में खेलाया, मानो दो भौरे कमल में घुसकर खेल रहे हों। अर्थात् आपका नाम सुनकर उन्होंने अपना मुख ऊपर उठाकर निहारा और कहा, "किसने मेरे कानों में अमृत सींचा ?" जब उन्होने ऐसा कहा, उनका कण्ठस्वर सुनकर कोयल ने अपना पंचमस्वर त्यागा। (अर्थात् सीता का कण्ठस्वर कोयल के पंचम स्वर से बढ़ गया।)" (२४)

बिसोऊँ—घुसकर क्रीड़ा करना; सारंग—भौंरे; कमळे—पद्म में; नभे—आकाश में; सुधा—अमृत; बनप्रिय—कोकिल; मुञ्चिला—(ध्वनि) त्यागी, छोड़ी। (२४)

ब्यक्त परचे दृश्य मुकुट कूट।
बिचारि न पचारि बार्त्ता प्रकट ये।
ब्यबहार न करुँ देलि मुँ मुदि।
बिघु होइ फुटाइ कुमुद-हृदी ये। २५।

सरलार्थ—"जब मै उनके प्रत्यय के लिए उनके सम्मुख दिखाई दिया, उन्होने पहले मेरा मुकुट देखकर मुझपर अविश्वास किया। (अर्थात् मझे

छद्मवेशी रावण समझ लिया।) इसलिए उन्होंने प्रकाश्य में मुझसे कोई भी बात नही पूछी। उनके मुझसे अच्छा बर्त्ताव न करने पर (अर्थात् मुझपर अविश्वास करने पर) मैंने उन्हें आपकी नामांकित अँगूठी दी। चन्द्र जैसे मूँदे हुए कुमुद को खिलाता है, वैसे उस अँगूठी ने सीता के मूँदे हुए हृद-कुमुद को खिलाया। (अर्थात् अँगूठी देखकर सीता को बड़ी प्रसन्नता हुई।)" (२५)

परचे—परिचय, प्रत्यय; मुदि—अंगूठी; बिधु—चन्द्र; कुमुदहृदी—सीता के हृदय-रूपी कुमुद को। (२५)

बिन्ध्यश्रृंग उदय तरणि परि।
बक्षोज परे आग करि ता धरि य़े।
बेलि देले सुमुहीं अन्तर मुहिं।
बिभु श्रीकर किपाँ छाडिलु तुहि रे। २६।

सरलार्थ—"वही अँगूठी श्रीरामचन्द्रजी की उँगली पर रहकर सम्भोग के समय सीता के स्तनो को छूती थी। यह याद करके सीता ने उसे पहले ही अपने स्तन पर रखा, ताकि अब का विरह-सन्ताप प्रशमित हो जाय। वह अँगूठी उनके स्तनपर रहकर बिन्ध्य पर्वत पर सूरज की तरह दिखाई दी। इस समय सुमुखी सीता ने कहा, "अरी अंगूठी! मैं तो प्रभु से अलग हो गई थी। अब तूने उनका श्रीकर क्यों त्यागा? इससे यह सिद्ध हुआ कि हम दोनों उनके प्रति अविश्वासी हो गईं।" (२६)

तरणि—सूर्य; बक्षोज—स्तन; बिभुश्रीकर—प्रभु के श्रीहस्तों को; किपाँ—क्यों? (२६)

बारिपूर्णता कुम्भे इच्छि त्वरित।
बोइले कह कि कथन गुपत य़े।
ब्याख्यान कलि मुहिं द्रोणचरित।
बनालक्तक चित्र भाब येमन्त य़े। २७।

सरलार्थ—"शुभ प्रश्न करते समय लोग पूर्णकुम्भों की स्थापना करते है। उसी तरह सीता ने अपने दोनों कुचरूपी कलशों को अपने आँसू जल से भरकर मुझसे प्रश्न किया कि यह बताओ कि प्रभुने कौन-सी गुप्त बातें कही है। यह सुनकर मैंने उनसे कौवे तथा गेरूचित्र का प्रसग बताया।" (२७)

द्रोणचरित—कौवे का प्रसंग; बनालक्तक चित्र—गेरू का चित्र। (२७)

बरचतुरी भाषे ये प्रभु रूप ।
बिशेषरे ध्वंसिला मुनिङ्क तप ये ।
बरद हेले जन्मान्तरे संगति ।
बिजन्य भाव मोर केड़े पीरति ये । २८ ।

सरलार्थ—"सुचतुरी सीता ने फिर कहा, प्रभु के जिस रूप ने मुनियों की तपस्या का विशेष रूप से ध्वंस किया (अर्थात् जिनके मनोहर रूप से विमोहित होकर मुनियों ने यह कामना की कि हम लोग इनको पति के रूप में पावें), फलस्वरूप अन्तर्यामी प्रभु ने उनके मनोभाव को जानकर यह वरदान दिया था कि जन्मान्तर मे तुम्हारा और हमारा मिलन दाम्पत्य होगा, उन्ही महाप्रभु का मुझसे कितना अनुराग है ! इससे तुम अनुमान लगाओ कि मैं कितनी भाग्यवती हूँ !" (२८)

बरचतुरी—सुचतुरी; संगति—दाम्पत्य-प्रेम; बिजन्य—भाग्य । (२८)

बिसर्जि नाहिं प्राण एहि मो काम ।
ब्यर्थ नोहिब मधुशय्या नियम ये ।
बोलिब मन मोर सेहि मोहने ।
बश होइछि एका रजनी दिने ये । २९ ।

सरलार्थ—"हे हनुमान्‌जी ! इस उद्देश्य से कि उनकी मधुशय्या (सुहाग-सेज) पर की गई शपथ व्यर्थ न हो जाय (अर्थात् सुहाग-सेज पर उन्होंने जो शपथ की थी कि जीवन-काल तक मैं दूसरी स्त्री से सग नही करूँगा, उसे अन्यथा न करने की आशा से) मैंने आज तक प्राणत्याग नही किया है। हे हनुमान्‌जी ! उन मोहन श्रीरामचन्द्रजी के सामने यह कहना कि मैं भी अपनी उसी सुहाग-रात की शपथ (कि मैं भी दूसरे पुरुष के प्रति आसक्त नही होऊँगी) को न टालने को दिन-रात सोच रही हूँ।" (२९)

मधुशय्या—सुहागसेज । (२९)

बिबुध नोहें पान करि पीयूष ।
बिभोगे इक्षुरसे हेबाकु बश ये ।
बनजिनी बोलाइ से रीति नाहिं ।
बिभाबसुरे प्रीति मधुपे स्नेही ये । ३० ।

सरलार्थ—"हे हनुमान्‌जी ! यह समझो कि मैं देवताओं की तरह नहीं हूँ, क्योंकि देव लोग अमृत-पान के बाद भी फिर तुच्छ ईख के रस से

आसक्त होते हैं। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी से प्रीति करके मैं फिर दूसरे पुरुष से हरगिज प्रीति नही करूँगी। फिर पद्मिनी-जातीया नायिका कहलाते हुए भी मैं वैसा आचरण नही करूँगी क्योंकि पद्मिनी कभी सूर्य से प्रीति करती है, तो कभी भ्रमर से। परन्तु सूर्यवंशीय रामचन्द्रजी से प्रीति करके फिर मद्यप रावण से प्रीति कभी नही करूँगी।" (३०)

बिबुध—देवलोग; पीयूष—अमृत; इक्षुरसे—ईख के रस से; बनजिनी—पद्मिनी; बिभावसु—सूर्य, सूर्यवंशी श्रीराम; मधुपे—भौंरेसे, मद्यप रावण से; (श्लेष)। (३०)

बुझाइ एहा घेनि आस झटति।
बीर बिरोधी बधि रखन्तु कीर्त्ति ये।
बिकल्प थिले देबि अनळे झास।
बिहन्ति जने झाम लागन्ते दोष ये।३१।

सरलार्थ—"हे हनुमान्‌जी! तुम श्रीरामचन्द्रजी को ये सारी बाते समझाकर उन्हे शीघ्र ही यहाँ ले आओ। वे वीर श्रीरामजी अपने विरोधी (शत्रु) रावण का वध करके संसार मे अपनी कीर्ति रखे। अगर उन्हें मेरे सतीत्व के बारे मे संशय हो, तो मै अग्नि मे प्रवेश-पूर्वक अपना बलिदान देकर उनका संशय दूर कराऊँगी। जिसे आग का ताप लगे, उसे लोग दोषी ठहराते है। अग्नि मे प्रवेश करने पर यदि मुझे कुछ भी हानि हो, तो मैं असती सिद्ध होऊँगी। (यदि मुझे कुछ भी हानि न हो, तो प्रभु के मन में कोई भी सन्देह नही रहेगा कि मै सती हूँ।)" (३१)

झटति—जल्दी से; बिरोधी, शत्रु; विकळ्प—संशय; अनळे—आगमें; झास—बलिदान; झाम—ताप। (३१)

बेदना निबेदना कले येतेक।
बेद पराये हेब कहुँ पुस्तक ये।
बोलि से शिरोमणि देले मो करे।
बासाञ्चळु फिटाइ देला सत्वरे ये।३२।

सरलार्थ—हनुमान्‌जी ने फिर कहा, "सीता ने अपने हृदय की जितनी व्यथाएँ कही, उन सबको मै कह बैठूँ, तो वे वेद की तरह एक बड़ी पोथी होंगी। अपनी रामकहानी कह चुकने के बाद उन्होंने अपनी माथामणि मेरे हाथ पर दी।" यह कहकर उन्होंने अपने वस्त्र के आँचल को खोल कर वह माथामणि शीघ्र ही श्रीराम जी के हाथ पर दी। (३२)

बासाञ्चळु—वस्त्र के छोर से। (३२)

बक्षे थोइले घेनि मणिग्रन्तकु ।
बिधिरे जपुथिले नाम मन्त्रकु ये ।
बार्त्ता-औषध श्रुति-मुखरे पिइ ।
बेगे चिन्ताज्वरकु शान्ति कराइ ये । ३३ ।

सरलार्थ—रोगी लोग साधारणतया मन्त्र, यन्त्र व दवा—इन तीन उपायों से रोगों का उपशम करते है । उसी तरह श्रीरामने सीता का नाम मन्त्र के रूप में जपकर, उनकी माथामणि को यन्त्र के रूप में हृदय में रखकर एवं हनुमान्‌जी से सुनी उनकी वार्त्ता को दवाके रूप में अपने कानों तथा मुख मे पीकर सहसा अपने चिन्ता-ज्वर का उपशम किया । (३३)

चिन्ता-ज्वर—चिन्तारूपी ज्वर को । (३३)

बाळी नाममाळीकि सराग रज्जु ।
बशे गुन्थि बचने से काळे मञ्जु ये ।
बारिजमुखी नीळोत्पळ - ईक्षणा ।
बन्धुक - अधरी पाटळीश्रबणा ये । ३४ ।
बिमळत्तिळफुल - नासा - शोभिनी ।
बर्ण चम्पा - शिरीष - मृदुअंगिनी ये ।
बञ्जुळांगुळि जाति नखतीक्षणा ।
चर उत्पळबासी जबाचरणा ये । ३५ ।
बिषादे हर हर पुणि उच्चारि ।
बपुरे गला रोम अंकुर पूरि ये ।
बिशेष स्नेह पुनः होइले कहि ।
बरसुन्दरी थिलि कि ग्नोगे पाइ ये । ३६ ।

सरलार्थ—उस समय रामचन्द्रजी ने अपनी प्रिया सीता के निम्न-लिखित नामों को वचन में उच्चारण-पूर्वक उन्हे अनुराग रूपी लाल रेशमी सूत से मनोहर ढंग से पुष्पमाला की तरह गूँथा । जैसे, अयि पद्ममुखि ! अयि नीलोत्पललोचने ! अयि बन्धुकाधरे ! अयि पाटली-पुष्प-श्रवणे ! अयि विमल-तिल-पुष्प-नासिका-शोभिनि ! अयि चंपकवर्णे । अयि शिरीष पुष्प कोमलांगि ! अयि अशोककलिकांगुलि ! अयि जातीपुष्पोपम तीक्ष्ण नख-धारिणि ! अयि श्रेष्ठ पद्मवासिनि ! अयि जवाचरणे ! आदि ।

इस तरह नाममाला गूँथने के बाद रामचन्द्रजी ने कहा, "हे शिव जी ! मेरा यह दुःख तुम हरण करो ।" ऐसा उच्चारण करते उनके

शरीर पर पुलक पैदा हुई। पुलक के कारण उनके शरीर पर रोंवे खड़े हुए। ऐसे सात्त्विक लक्षण प्रकट होते, स्नेहातिरेक्य से उन्होंने फिर कहा "मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य कमाया था जिसके फलस्वरूप ऐसी सुन्दरी रमणी को प्रिया के रूप में लाभ किया ?" (३४,३५,३६)

सराग—रज्जु—अनुरागरूपी रेशमी सूत; जाति—जाई, चमेली। (३४,३५)
बिषादे—दुःख में; बपुरे—शरीर में। (३६)

बाळाहि गुरुस्नेही झीनबसने।
बिदूर करुथाइ मो आलिंगने ये।
बारिरे बारि परि मो अगे मिशि।
बोळि हेला कुङ्कुम प्राय मुँ दिशि ये। ३७।

सरलार्थ—"फिर वह मेरी प्रिया महीन वस्त्रों से बड़ा प्यार करती है। तथापि आलिंगन के समय इस उद्देश्य से कि उनका शरीर मेरे शरीर से अलग न हो जाय, वह अपने पहने हुए महीन वस्त्र को हटा देती हैं एवं मेरे शरीर से यों मिल घुल जाती है, मानो पानी से पानी। अतएव मैं यों दिखाई देता हूँ, मानो कुंकुम से पोता हुआ हूँ।" (३७)

गुरुस्नेही—अत्यन्त स्नेही; झीन बसने—सूक्ष्म वस्त्र के प्रति। (३७)

वर्णके सिना मात्र रहइ भेद।
बसिबा काळे कोळे शिबसंपद ये।
बिभेद न थाइ त बिष्णुशिरीरे।
बिभोगी होइथिलि बेनि परिरे ये। ३८।

सरलार्थ—"सीता जब मेरी गोद में बैठती हैं, हम दोनों की शोभा शिवसंपद (शिवपार्वती) की शोभा की तरह दीखती है। केवल एक ही मात्र, वर्ण में प्रभेद रह जाता है। अर्थात् शिवजी शुक्लवर्ण है और मैं हूँ कृष्णवर्ण। परन्तु पार्वती और सीता दोनों गौरवर्णा है। सुतरां हम दोनों पुरुषों के वर्ण मे फ़र्क को छोड़कर दोनों का मिलन शिव पार्वती का-सा है। पर जब वह मेरी गोद मे बैठती है, विष्णु और लक्ष्मी के मिलन की तरह हम दोनों का मिलन सर्वतोरूपेण अभिन्न दिखाई पड़ता है। क्योंकि विष्णु तथा मैं दोनों कृष्णवर्ण और लक्ष्मी तथा सीता दोनों गौरवर्णा है। अतएव सीता को पाकर मैं हमेशा शिव तथा विष्णु के समान उपभोग किया करता था।" (३८)

वर्ण के—एकमात्र वर्ण में ही; शिवसंपद—शिवपार्वती की शोभा; बेनि परि—दोनों (शिव तथा विष्णु) की तरह। (३८)

बाळा अनुसरणे स्वतः मुँ छाइ ।
बक्त्र-पद्म चुम्बने भ्रमर होइ ये ।
ब्रह्म-निशा अभाग्य काहुँ घोटिला ।
बेनि कथाए घेनि अन्तर हेला ये । ३९ ।

सरलार्थ—"सीता का अनुसरण करने के बारे मे स्वभावतः मै छाया तथा उनके मुखपद्म चूमने के विषय मे मैं भौरे की तरह हुआ था । किन्तु मेरी अभाग्यदशा ब्रह्मनिशा की तरह कहीं से उमड़-घुमड़ आई । परिणाम-स्वरूप, मेरा छाया की तरह अनुसरण करना और भौंरे की तरह चूमना, दोनों बाते दूर हो गई ।" (३९)

ब्रह्मनिशा—ब्रह्मरात्रि । (३९)

ब्रह्मा हेलु भाग्य तु भानु उदिते ।
बिधान हेब प्रेम सृष्टि तेमन्ते ये ।
बोइला हनुमान अश्रुप्रळय ।
बिशीर्ण हेला एबे तेज संशय ये । ४० ।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी ने कहा, "हे हनुमान् ! ब्रह्मनिशा मे ब्रह्मा सोये रहते है । इसलिए सचराचर प्रलय फैला रहता है । परन्तु ब्रह्मनिशा का प्रभात होने पर ब्रह्मा जगते है और सृजन करते है । उसी तरह मेरे सौभाग्य के फलस्वरूप तुम ब्रह्मा स्वरूप आ यहाँ पहुँचे हो एवं ब्रह्मदिवस के प्रभात में सूर्योदय के समान सुग्रीव का यहाँ आविर्भाव हुआ है । सुतरां प्रलय के उपरान्त ब्रह्मा जैसे फिर से सृजन करते है, वैसे तुम दोनों हम दोनों के विछोहरूपी प्रलय को हटाकर फिर प्रेम का सृजन करो ।" यह सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा, "प्रलय के उपरान्त जैसे जल सूख जाता है, वैसे आपका यह प्रलयाश्रु (बिछोहजनित आँसू) निश्चय ही सूख जायगा । सुतरां मनसे संशय दूर करे ।" (४०)

भानु-उदिते—सूर्योदय (प्रभात), सुग्रीव; (श्लेष); तेमन्ते—उसी प्रकार; अश्रुप्रलय—आँसू रूपी प्रलयजल; बिशीर्ण—सूखना । (४०)

बराहबर योगे धरासुन्दरी ।
बळे बारीशस्थळुँ आणि उद्धरि ये ।
बरुण थिला पुरे केळि रचिब ।
बिजय दैत्य स्वतः काहुँ बञ्चिब ये । ४१ ।

सरलार्थ—"हे प्रभो ! आप श्रेष्ठ वराह के अवतार-योग में समुद्र

के जल में क्रीड़ा करते हुए राक्षस-श्रेष्ठ हिरण्याक्ष को विनाशपूर्वक पृथिवी-देवी को समुद्र जल से बलात् उद्धार कर लाये थे। उसी तरह इस (राम) अवतार में धरी (पकड़ी) हुई (अर्थात् रावण के गृह में बन्दिनी बनी) सीता सुन्दरी को बड़े युद्ध से समुद्रजल से घिरे लंकापुर से बलात् उद्धार कर ले आएंगे और प्राचीरवेष्टित उस पुर (गढ़) मे सीता के साथ क्रीड़ा करेंगे। आप वहाँ क्रीड़ा करें, तो दुर्जय रावण वहाँ कैसे जीवित रह सकेगा ? (अर्थात् वह जीवित नही रह सकेगा।)" (४१)

बराहबरे—श्रेष्ठ वराह के अवतार में, बड़े युद्ध में; धरासुन्दरी—मनोहारिणी पृथिवी देवी को, धरी हुई (बन्दिनी) सुन्दरी सीता को; बारीशस्थळु—वरुण पुरसे (समुद्र जल से) लंकापुर से; (श्लेष); वरण-प्राचीर। (४१)

बयाळिश पदरे ए चमत्कार।
बुधे हेळा न करि मने बिचार ये।
बोलइ उपइन्द्र भञ्ज ए गीत।
बैदेहीशबिळास नाम उदित ये। ४२।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! बयालिस पदों मे बड़े चमत्कार ढंग से इस छान्द की रचना की गई है। इसका मन में सावधानी से विचार करो। उपेन्द्र भञ्ज 'बैदेहीश-बिळास' नाम से विख्यात इस गीत को गाते है। (४२)

बुधे—हे पण्डितो !, हेळा—अवहेलना। (४२)

॥ इति अष्टत्रिंश छान्द ॥

ऊनचत्वारिंश छान्द

राग—मङ्गळ

बातसुत शुभ्रपक्ष उत्तर । बिबृद्धि कला रामचन्द्रर । १ ।

सरलार्थ—जिस तरह रमणीय चन्द्र की कला शुक्लपक्ष में क्रमशः बढ़ती जाती है, वैसे हनुमान्‌जी के उत्तररूपी शुक्लपक्ष में श्रीरामचन्द्र जी की आशा-कला क्रमशः बढ़ने लगी। (अर्थात् हनुमान्‌जी से उत्तर के रूप में पूर्वोक्त सारी कथाएँ सुनकर श्रीराम जी के मन में आशा का संचार हुआ।) (१)

बातसुत—पवनपुत्र हनुमान्; शुभ्रपक्ष—शुक्लपक्ष; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, श्रीरामचन्द्र; (श्लेष)। (१)

बिराजि धनुरे मण्डळ रचि । बिहित कर शररे रुचि । २ ।

सरलार्थ—वास्तव में रामचन्द्रजी रमणीय चन्द्र है। क्योंकि चन्द्र समय-समय पर धनुराशि में विराजित रहता है। उसी तरह श्रीरामचन्द्र जी धनुष से विराजित हुए है। (अर्थात् हाथ मे धनुष धारण किये हुए हैं।) चन्द्र क्रमशः बढ़कर अन्त में गोलाकार धारण करता है। उसी तरह रामचन्द्र धनुष को अपने कानों तक खीचने से उसने भी गोलाकार धारण किया। फिर चन्द्र जैसे यथारीति किरण विकीरण करते हुए मनोहर दिखाई देता है, उसी तरह श्रीराम जी अपने हाथ में शर धारण किये सुन्दर दिखाई देते है। (२)

धनुरे—धनुराशि में, धनुष सहित; मण्डळ—गोलाकार, मण्डलाकार; कर—हाथ किरण; (श्लेष)। (२)

बिस्तार करे कुमुद प्रसिद्ध । बिहित पद्मपररे क्रोध । ३ ।

सरलार्थ—चन्द्र कुमुद को अच्छी तरह खिलाता है और कमल पर क्रोध विधान करता है। (अर्थात् कमल को मूंद देता है।) उसी तरह रामचन्द्र जी ने कु (पृथिवी) के मुद (मोद या आनन्द) को बढ़ाकर पद्मसंख्यक (बहुसंख्यक) परों (शत्रुओं) पर क्रोध किया है। (३)

कुमुद—कोईं फूल, पृथिवी का आनन्द; (श्लेष); पद्मसंख्यक—(बहुसंख्यक); पररे—शत्रुओं को।(३)

बिधिरे उदय गिरिउपर । बिहारकारी कउशिकर । ४ ।

सरलार्थ--चन्द्र उदयाचल पर उदित होता है। उसी तरह श्रीरामजी माल्यवन्त पर्वत पर विराजमान हुए है। और भी चन्द्र उदित होकर कौशिक (उल्लू) की क्रीड़ा बढ़ाता है। उसी तरह श्रीरामजी ने (राक्षसों का विनाश करके) कौशिक (विश्वामित्र) का आनन्द बढ़ाया। (४)

कउशिकर—(कौशिक) उल्लू, विश्वामित्र-ऋषि; (श्लेष)।(४)

बोइले य़िबा एहि अनुकूले । बनिता अङ्गे शुभ दिशिले । ५ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, "यही समय यात्रा के लिए अनुकूल है। चलें, हम लोग रवाना होवें। क्योंकि अव सीता के अंगो के शुभ लक्षण दिखाई देने लगे है। (अर्थात् सीता का प्रतिरूप अव मेरी आंखो के सामने नाचता हुआ-सा मुझे प्रतीत हो रहा है।") (५)

अनुकूळे—शुभ समय में; शुभ—शुभ शकुन; दिशिले—दिखाई दिये, दीख पड़े।(५)

बिशेष लाबण्य लक्ष्मीर पुर । बिदित मध्ये सिंहाबतार । ६ ।

सरलार्थ—शुभ यात्रा आरम्भ करते समय लोग लक्ष्मीनृसिंह का ध्यान करते है। उसी तरह मैं अब अपनी प्रिया की सौन्दर्य-लक्ष्मी का ध्यान कर रहा हूँ और उनके नृसिंह अवतार के-से मध्यभाग (सिंह तुल्य कटि) को सोच रहा हूँ। (६)

लावण्य—सौन्दर्य; लक्ष्मीरपुर—लक्ष्मी का गृह; सिंहावतार—सिंह की-सी कटि। (६)

बिद्य पाराबत हुँहुँ आरम्भि । बेभारे द्विज सम्मति लभि । ७ ।

सरलार्थ—फिर यात्रारंभ के समय ब्राह्मणों की सम्मति आवश्यक है। उस समय निकट बैठे हुए कबूतरो की 'हूँ हूँ' ध्वनि से यह सूचित हुआ कि द्विजलोग (पक्षी, ब्राह्मण) यात्रानुकूल करने के लिए अपनी सम्मति दे रहे है। (७)

पारावत—कबूतर; द्विज—ब्राह्मण, पक्षी; (श्लेष)। (७)

बारलग्न य़ोग जाम्बब हेजि । बहन बन्दापना सरजि । ८ ।

सरलार्थ—इस समय जाम्बवान् ने वार (तिथि या दिन), लग्न और योग आदि को शोधकर यह तय किया कि यही समय यात्रा के लिए

शुभकर है। इसलिए उन्होंने युद्धयात्रा के सारे प्रबंध करके शीघ्र ही आरती बनाई। (८)

बारलग्न—तिथि और शुभ लग्न; बन्दापना—आरती। (८)

बनप्रिय गान गीत मङ्गळे। बियते राजहंस मिळिले। ९।

सरलार्थ—इस समय कोयल की बोली यात्रा-काल के मंगल गीत की तरह प्रतीत हुई। फिर आकाश मे राजहंसों का सम्मेलन और ही शुभ-सूचक हुआ। (९)

बनप्रियगान—कोयल की बोली; बियते—आकाश में। (९)

बामे शिबा गत शब घेनिण। बाहार हेले राम लक्ष्मण। १०।

सरलार्थ—यात्रारंभ के समय बायीं ओर शिवा (स्यार) और शव (मुर्दा) देखने पर मंगल होता है। रामचन्द्र जी ने देखा कि उनके बायीं ओर एक स्यार एवं शव वहन पूर्वक जा रहा है। इन्हीं शुभ शकुनों को देखकर राम-लक्ष्मण दोनों निकल पड़े। (१०)

शिबा—स्यार। (१०)

बिजये मारुति अंगद स्कन्धे। बिनये सङ्गे सुग्रीब बोधे। ११।

सरलार्थ—साथ रहे सुग्रीव ने रामलक्ष्मण से विनम्रता से समझाकर कहा, "आप दोनों भाई हनुमान् और अगद के कन्धों पर विराजिए। (११)

बिजये—विराजिए; मारुति—मरुत-पुत्र हनुमान; बोधे—समझाकर कहा। (११)

बेनिभ्रात बेनिभ्राते रुचिर। बिपति बृष कि हरि हर। १२।

सरलार्थ—राम और लक्ष्मण दोनों भाई क्रमशः हनुमानजी तथा अंगद जी के कन्धे पर बैठने से विष्णुजी और शिवजी के क्रमशः गरुड़ तथा वृषभ के कन्धे पर विराजमान हुए-से मनोहर प्रतीत हुए। (१२)

बेनि भ्रात—राम लक्ष्मण दोनों भाई; बेनि भ्राते—हनुमान् और अंगद दोनों भाइयों पर; बिपति—पक्षीपति गरुड़; बृष—साँड़; हरि—विष्णु; हर—शिव। (१२)

बुजाइ नयन रजनिकरे। बळरे सृष्टि कबळ करे। १३।

सरलार्थ—इस समय सैन्यों के पदाघात से इतनी धूल उड़ी कि उससे आँखे मुँद गईं। ऐसा प्रतीत हुआ मानो सैन्यों ने अपने-अपने बल से सृष्टि को ग्रस लिया हो। (अर्थात् सैन्यों के चलने से पृथिवी तथा आकाश ओझल हो गये।) (१३)

रजनिकरे—धूल के समूह से; कबळ-ग्रास। (१३)

ब्योमगङ्गारे स्वेद-नदी बादी । विग्रहे सन्धि ये न सम्पादि । १४ ।

सरलार्थ—चलते समय सैनिकों के शरीरों से इतना पसीना छूटा कि उसने इकट्ठा होकर मन्दाकिनी या आकाश-गंगा से बराबर होने के लिए उससे होड़ लगाई । फिर सैनिको ने शरीर-शरीर में कोई पार्थक्य नही रखा । (अर्थात् सैनिक लोग शरीर से शरीर सटाते हुए चले ।) (१४)

ब्योमगंगा—आकाश-गंगा; स्वेद—पसीना; विग्रहे—शरीरों के बीच; सन्धि—पार्थक्य । (१४)

बासुकि समान सोदर डाकि । बसुधा थिबा सङ्गते टेकि । १५ ।

सरलार्थ—इस समय वासुकि ने अपने समान बलवान् वीरों को बुलाकर कहा, "आओ, हम लोग मिलकर पृथिवी को उठा धरें । क्योकि श्रीराम जी के सैन्यो के चलने से पृथिवी को वजन लग रहा है । (१५)

बसुधा—पृथिवी; टेकि—उठाकर । (१५)

बल्लभ सङ्ग मानबयुबती । बहिला सेहि उपमा क्षिति । १६ ।

सरलार्थ—नव युवतियाँ अपने पतियों का संग पाकर आनन्दित होती है । पृथिवी ने वही उपमा पायी । (अर्थात् पृथिवी वैसी आनन्दिता हुई ।) (१६)

वल्लभ—स्वामी, पति; क्षिति—पृथिवी । (१६)

ब्यथा पाइले ताहा न गणिला । बिबेक चिरसन्ताप गला । १७ ।

सरलार्थ—बहुत दिनों से रावण की वजह से पृथिवी घोर व्यथा सहती हुई रही थी । अब श्रीरामचन्द्र जी रावण का वध करने जा रहे है । सुतरा यह सोचकर कि मेरी बहुत दिनो की व्यथा दूर होनेवाली है, उसे बड़ा आनन्द हुआ । इसलिए उसने अपने ऊपर श्रीरामचन्द्र जी के सैन्यों के गमनजनित कष्ट की कष्ट के रूप में गिनती नही की । (१७)

विवेक—विचार करके । (१७)

बिकळ केतकीरे भृङ्ग प्राये । बहिबा मार्ग वायु न पाए । १८ ।

सरलार्थ—जिस तरह केतकी फूल में पड़ा हुआ भौंरा उससे निकलने को असमर्थ होकर व्याकुल होता है, उसी तरह सैनिकों की भीड़ में बहने के लिए पथ न पाकर पवन भी व्याकुल हुआ । (अर्थात् इतनी बड़ी संख्या में सैन्य चल रहे थे कि उससे पवन की गति रुक गई ।) (१८)

केतकी—केवड़े में; भृंग प्राये—भौंरे की तरह । (१८)

बज्रताप घोष निशाण रबे । बिषाद बळि जात स्वभाबे । १९ ।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्रजी के अपने सैनिकों सहित चलते समय उनके निशानों की ध्वनि सुनकर पातालपुरवासी बलि ने आशंका की कि कहीं यह शब्द बज्र का शब्द न हो । इसलिए उनके मन में बड़ा भय हुआ । (१९)

निशाण—नगाड़े; बिषाद—दुःख, भय । (१९)

बारानिधिकि केते दिने भेटि । बीचि त अधिकारे प्रकटि । २० ।

सरलार्थ—इस तरह चलते-चलते, कुछ दिनों के बाद उन लोगों ने समुद्र से भेंट की । (अर्थात् जाकर समुद्र के किनारे पर पहुँचे ।) असंख्य सैन्यों को देखकर समुद्रको बड़ा आनन्द हुआ । इसलिए उसमें अत्यधिक मात्रा में लहरें दिखाई पड़ी । (२०)

बारानिधि—समुद्र; भेटि—भेंटकर, मिलकर; बीचि—लहरें । (२०)

बीणापुञ्ज प्राये बहु प्रबाळे । बिराजि ख्यात इक्ष्वाकुकुळे । २१ ।

सरलार्थ—वह समुद्र वीणासमूह के सदृश दीख रहा है । क्योंकि वीणासमूह जैसे बहुत प्रबालों (वीणादण्डों) से युक्त होता है, वैसे समुद्र भी असंख्य प्रवालों (मूँगों) से युक्त हुआ है, और भी, जैसे वीणासमूह ख्यात इक्ष्वाकु कुल (उत्कृष्ट लौकियों की तुंबियों) से सुशोभित होता है, वैसे समुद्र का किनारा इक्ष्वाकुवंश के ख्यातनामा श्रीरामचन्द्रजी से सुशोभित हुआ है । (२१)

वीणापुञ्ज—वीणासमूह; प्रवाळे—मूँगों से; इक्ष्वाकुकुळे—लौकी की तुंबियों से, इक्ष्वाकु-कुलचन्द्र श्रीरामचन्द्र जी से; श्लेष ।(२१)

बृन्द बृन्द य़हिं कच्छपयुक्त । बिशिष्ट सारगुणाहिं ब्यक्त । २२ ।

सरलार्थ—वीणासमूह में असंख्य कच्छप (वीणापीठ) संयुक्त रहते हैं । उसी तरह समुद्र में असंख्य कच्छप (कछुवे) रहते है । वीणा समूह में उत्कृष्ट तार प्रकाशित होते हैं । उसी तरह समुद्र का जल उत्कृष्ट गुणों (अर्थात् दधि, दुग्ध, सुरा आदि गुणों) से व्यक्त हुआ है । (२२)

य़हिं—जहां; कच्छप—वीणापीठ, कछुए; सारगुणा—उत्कृष्ट तार, उत्कृष्ट गुण (दधि, दुग्ध, सुरा आदि गुण), (श्लेष) । (२२)

बिपिन प्राये पलाशीरे मेळ । बिहारी जन्य लभ्य सुफळ । २३ ।

सरलार्थ—फिर वह समुद्र अरण्य के सदृश दीख रहा है। क्योंकि अरण्य में जैसे पलाशी (वृक्षसमूह) इकट्ठे होते है, वैसे समुद्र में पलाशी (मांसाशी राक्षसगण अथवा माँसाशी घड़ियाल) इकट्ठे हुए हैं। फिर वन में विहार करनेवाले लोग वहाँ से सुफल (उत्तम खाद्य) लाभ करते हैं। उसी तरह समुद्र में विहार करनेवाले नाविक लोग उससे सुफल (उत्कृष्ट पदार्थ) लाभ करते हैं। (अथवा लोग समुद्र में डूबकर उसमें से रत्न प्राप्त करते हैं। अथवा तीर्थस्थल होने से समुद्र में विहार करने वाले लोग वहाँ से सुफल (पुण्य) कमाते हैं।) (२३)

विपिन—वन; पलाशी—वृक्ष, मांसाशी राक्षस; (श्लेष)। (२३)

बिळसन्ति परभृत भ्रमरे। बरहीस्थित यँहि मध्यरे। २४।

सरलार्थ—फिर वन में परभृत (कोकिल) तथा भ्रमर विहार करते हैं। वैसे समुद्र में अत्युत्कृष्ट जल भँवर विहार कर रहे है। वन में वहीं (मयूर) रहते है। वैसे समुद्र में वही (वाड़वाग्नि) है। (२४)

परभृत—कोयल, उत्कृष्ट जल भँवर; वहीं—मोर, वाड़वाग्नि; (श्लेष)। (२४)

बिकुक्षिबंशी सिन्धुकूळे स्थित। ब्यूहकु कपिसैन्ये रचित। २५।

सरलार्थ—विकुक्षिवंशीय श्रीरामचन्द्र जी ने इस तरह समुद्र के किनारे रहकर वानर सैन्यों से व्यूह की रचना की। (अर्थात् युद्ध के लिए सैन्यों को श्रेणीबद्ध करके सजाया।) (२५)

विकुक्षिवंशी—विकुक्षिवंशीय रामचन्द्र जी; ब्यूह—सैनिकों की सजावट। (२५)

बार्त्ताबह लङ्केश्वरे कहिला। बाहुड़ि पूर्बपद अइला। २६।

सरलार्थ—इस समय एक दूत ने लंकेश्वर रावण को यह संवाद जनाया। सुतरां इस पद का पूर्वपद यहाँ लौट आया। (अर्थात् दूत ने रावण को यह अवगत कराया कि इक्ष्वाकुवंशीय रामचन्द्रजी सैन्यो को सजाकर समुद्र के किनारे पर ठहरे हैं।) (२६)

वार्त्तावह—दूत (ने); वाहुड़ि—लौटकर; अइला—आया। (२६)

बानर ऋक्ष केते राजा पुच्छे। बारिधि लंघनरे कि इच्छे। २७।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण ने पूछा, "बन्दर और भालू-सैनिकों की संख्या कितनी है और वे लोग समुद्र को पार करने के लिए क्या विचार (उपाय) कर रहे है ?" (२७)

बानर—बन्दर; ऋक्ष—भालू; वारिधि—समुद्र। (२७)

बोले चार कि पचार से सैन्य । बारिधि बेनि भेट रञ्जन । २८ ।

सरलार्थ—दूत ने उत्तर दिया, "उनकी संख्या क्या पूछ रहे है आप ? उनकी गिनती नहीं की जा सकती। समुद्र के किनारे पर अपरिमित सैन्यों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो दो समुद्र परस्पर से मिल रहे हों। (अर्थात् समुद्र के किनारे पर बन्दर तथा भालू सैनिकों का समूह एक दूसरे समुद्र की तरह दीख रहा है।)" (२८)

चार—दूत; बारिधि बेनि—दो समुद्र। (२८)

बोलन्ति पिइला अगस्ति एक । बहुत ग्रासे केते उदक । २९ ।

सरलार्थ—"सैन्य लोग आपस में बातचीत कर रहे है, अगस्ति ऋषि एक ही हैं। फिर भी वे अकेले तो समुद्र का जल पी गये। हम लोग अनेक ही हैं। हम लोग सभी मिलकर ग्रसें, तो समुद्रजल कितना है ? पीकर क्या समुद्र को सुखा नहीं देगे ?" (२९)

उदक—जल। (२९)

बिनाशरे पूर्बपुरुष-कीर्त्ति । बुझिबा बोलि राम बोलन्ति । ३० ।

सरलार्थ—"सैनिको की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी बोल रहे हैं, 'यह समुद्र हमारे पूर्वजों की कीर्ति है। तुम लोग इसका जल पी जाओगे तो हमारे पूर्वजों की कीर्ति लुप्त हो जाएगी। अतएव तुम लोग जरा सब्र करो। जो कुछ करना है, हमलोग विचार करके ही करेंगे।" (३०)

पूर्वपुरुष कीर्त्ति—पूर्वजों की कीर्त्ति, सगर राजा की कीर्त्ति। (२०)

बक्त्रबिकारे कहे लङ्केश्वर । बारताय़ाक मिथ्या तोहर । ३१ ।
ब्रह्माण्डरे एते बानर काहिं । बश से पुण मनुष्ये होइ । ३२ ।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण ने अपने मुखों को विकृत करके कहा, "तेरी सारी बातें झूठी है। इस जगत में इतने ही बन्दर कहाँ हैं जो फिर मनुष्य के वश हुए है ?" (३१,३२)

वक्त्रबिकारे—विकृत मुख से; वश—वशीभूत। (३१,३२)

बिभीषण शुणि योड़िला कर । बोइला सत कहुछि चार । ३३ ।
बणा हेउ हनुमान आसिबा । बाळिकि बिनशिबा भाषिबा । ३४ ।

सरलार्थ—रावणकी बात सुनकर विभीषण जी ने हाथ जोड़कर कहा, "दूत जो कुछ बोल रहा है, सारी बातें सच है। हनुमान्जी यहाँ आकर

आपसे कह गये है कि श्रीरामजी ने बालि का निधन किया है। तिस पर भी आप भ्रम में पड़ रहे है !" (३३,३४)

योड़िला कर—हाथ जोड़े; बणा—भौंचक्का; भाषिवा—कहना। (३३,३४)

बोले रावण बध बिचारिले। बृत्रारि त्रिपुरारि कि कले ! ३५।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण ने कहा, "इसके पूर्व मेरे विनाश का विचार करके वृत्रराक्षस के शत्रु इन्द्र तथा त्रिपुर राक्षस के शत्रु महादेव मेरा क्या कर सके ? वे देवराज तथा देवाधिदेव होकर भी मेरा कुछ भी नहीं कर सके। तो राम एक तुच्छ मानव होकर मेरा क्या बिगाड़ सकेगा ?" (३५)

बृत्रारि—इन्द्र; त्रिपुरारि—महादेव जी (ने)। (३५)

बसाइ द्वाःस्थ पाशरे नर्त्तन। बिरच बोलुं लंघिले घेन। ३६।

सरलार्थ—रावण ने फिर कहा, "मैंने इन्द्र को द्वारपाल के पास एक दूसरे द्वारपाल के रूप में बैठाया। और शिवजी को नाचने के लिए आदेश दिया। क्या वे मेरे आदेशका लंघन कर सके ? विचार करो तो।" (३६)

द्वाःस्थ—द्वारपाल; घेन—विचार करो। (३६)

बज्र शूळ लोम बक्र न करि। बानर नर कि करि पारि। ३७।

सरलार्थ—फिर कहा, "इन्द्र ने वज्र और महादेवजी ने त्रिशूल से मुझे मारा। परन्तु उनसे वे दोनों मेरा बाल भी बाँका नहीं कर पाये। नादान नर-वानर मेरा क्या बिगाड़ सकेंगे ?" (३७)

लोम बक्र न करि—बाल भी बाँका नहीं कर सके। (३७)

बिभीषण कला प्रतिउत्तर। बिबेक कर चित्ते तोहर। ३८।

बहि न पारिलु पशाकाठिकि। बृषाङ्क गिरि थिलु ये टेकि। ३९।

बज्ररे नमुचि दैत्य न मला। बारिर फेने बध होइला। ४०।

सरलार्थ—रावण की बात सुनकर विभीषण ने प्रत्युत्तर दिया, "हे भाई ! आपने अपने मस्तक पर कैलाश पर्वत को उठा लिया था। परन्तु पातालपुर में पासे की डंडी को उठा नही सके। फिर नमुचि दैत्य वज्राघात से नहीं मरा, पर सामान्य जलफेन से मारा गया। वैसे इन्द्र तथा महादेवजी भले ही आपका कुछ बिगाड़ नही सके; परन्तु मामूली नर-वानर ही आपका वध कर सकेंगे। जब विधाता प्रतिकूल होता है, ऐसा

होता ही है। ये सब घटनाएं आप अपने मन में विचार करते हुए देखिए।" (३८,३९,४०)

बिबेक कर—विचार करो; पशाकाठिकि—पासे की डंडी को; बृषाङ्क गिरि—महादेवजी के (कैलास] पर्वत को; बारिर फेणे—जल के फेन से। (३८,३९,४०)

बोइला लङ्केश सक्रोध होइ। बरजु पर दर्प देखाइ। ४१।
बसुधा-युक्त स्वनामकु कहि। बाहार करि लङ्कारु देइ। ४२।

सरलार्थ—विभीषण की बात सुनकर रावण आगबबूला हो गया और कहा, "अरे, तू मेरे शत्रु का अभिमान दिखाकर मुझे रोक रहा है?" इतना कहकर उसने वसुधा (मही) युक्त अपने नाम (रावण) अर्थात् मही-रावण नामक राक्षस से कहकर उसके द्वारा विभीषण को लंका से भगा दिया। (४१,४२)

बरजु—(तू) मुझे रोक रहा है!; परदर्प—शत्रु का अभिमान; बसुधायुक्त स्वनामकु—महीरावण नामक राक्षस से; बाहार करि—भगा दिया। (४१,४२)

बिबिध आदि चारि मन्त्री सङ्गे। बिहगगति नभरे रङ्गे। ४३।

सरलार्थ—तब विभीषण ने विविधादि चार मन्त्रियों को साथ लिये प्रसन्न मन में पक्षी की भाँति आकाशमार्ग में गमन किया। (४३)

बिहग—पक्षी; नभरे—आकाश में। (४३)

बळाहक प्राये दिशे दिशन्ति। बेढ़ाण बास से बकपन्ति। ४४।

सरलार्थ—राक्षस लोग स्वभावतः काले शरीरवाले हैं; सुतरां वे लोग उड़ते वक्त दक्षिण दिशा में मेघों की भाँति दिखाई दिये। उनकी सफेद ओढ़नियाँ तथा वस्त्र उनमें बगुलों की कतारों के सदृश दिखाई पड़े। (४४)

बळाहक—मेघ; दिशे—दक्षिण दिशा में। (४४)

बहे स्वेदजळ बिन्दु प्रकट। बासब-धनु परि मुकुट। ४५।

सरलार्थ—उड़ते जाते समय उनके शरीरों से बहती हुई पसीने की बूंदें वृष्टिजलविन्दुओं की तरह भूमिपर पड़ती थीं और उनके सिरों पर मुकुट इन्द्रधनुषों की तरह दीखने लगे। (४५)

स्वेद—पसीना; बासव धनु—इन्द्रधनुष। (४५)

बहइ श्वास झञ्जानिळ बत। बचन घोष करि जनित। ४६।

सरलार्थ—उनकी साँसें झंझापवन की भाँति बहने लगीं एवं विभीषण की बातें मेघ-निर्घोष के सदृश प्रतीत हुईं। (४६)

झञ्जानिळबत—झंझापवन की भाँति; घोष—मेघ-गर्जन। (४६)

बनौकापति महीधर तुळा। बिळास आसि ता पाशे कला। ४७।

सरलार्थ—मेघ सब पर्वतों पर क्रीड़ा करते है। अब काले रंगवाले एक मेघ के सदृश विभीषण ने पर्वतोपम वानरपति सुग्रीव के निकट विहार किया। (अर्थात् विभीषण सुग्रीव के पास उपस्थित हुए।) (४७)

बनौकापति—वानरों के स्वामी सुग्रीव; महीधर—पर्वत; तुळा—उपमाविशिष्ट; बिळास—क्रीड़ा। (४७)

बट सुबेळे राम बिष्णु स्थिते। बिहिबे रक्षप्रळय सते। ४८।

सरलार्थ—विष्णुजी ने वटपुट पर अवस्थान करके सारी सृष्टि में प्रलय मचाया था। उसी तरह श्रीरामचन्द्रजी सुबेल पर्वतरूपी वटपुट पर अवस्थान करके क्या सचमुच राक्षस सृष्टि का प्रलय करेंगे? (अर्थात् श्रीरामजी राक्षसों का जड़ सहित विनाश करेंगे।) (४८)

बट-सुबेळे—सुवेल पर्वतरूपी वरगद; रक्षप्रळय—राक्षसों का प्रलय। (४८)

बार्त्ता पाइ राम राजा प्रेषण। बहने ज्योतिर्बिद लक्ष्मण। ४९।
बुड़ाइ मानपात्र करि जळे। बुझिले शुभ अशुभ बेळे। ५०।

सरलार्थ—रावण-भ्राता विभीषण का आगमन-संवाद पाकर श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव को उनके निकट भेजा। लक्ष्मणजी एक ज्योतिषी के रूप में वहाँ पहुँचे और उन्होंने विभीषण को खोरी खड़ी की तरह समुद्र-जल में डुबोकर उनके आगमन के शुभाशुभ उद्देश्य का पता लगा लिया। (अर्थात् लक्ष्मण ने विभीषणजी को स्नान तथा शपथ कराके इसका पता लगा लिया कि वे किस अभिप्राय से आये है।) (४९,५०)

राजा—वानरराजा सुग्रीव को; ज्योतिर्विद—ज्योतिषी; मानपात्र—खोरी, खोरिया, पुराने जमाने में व्यवहृत समय-निरूपक छिद्रयुक्त पात्र विशेष। (४९,५०)

बिहरि हरि सङ्गे हरि हेला। बिलोकि राम राम पठिला। ५१।

सरलार्थ—इस समय में वानरराज सुग्रीव ने दूसरे वानरों के साथ मिलकर क्रीड़ा की। फिर रामचन्द्रजी को देखकर शुकपक्षी की तरह उन्होंने 'राम' 'राम' पढ़ा। (५१)

हरि संगे—वानरों के साथ; हरि—सुग्रीव, शुकपक्षी; यमक; पठिला—'राम' 'राम' पढ़ा। (५१)

बिस्तार खर तेज आहालाद। बिचारे हरि करि ता हृद। ५२।

सरलार्थ—श्रीराम को प्रचण्ड तेज फैलाते हुए देखकर विभीषण ने अपने हृदय में उन्हें सूर्य और फिर आनन्द का विस्तार करते हुए देखकर उन्हें चन्द्र समझा। (५२)

खर—प्रचण्ड; हरि—सूर्य, चन्द्र; (श्लेष); ता हृद—अपने हृदय में। (५२)

बिश्व-आत्मा-रूप सुमना मुदे। बिचारे हरि करि ता हृदे। ५३।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्रजी संसार के आत्मास्वरूप है (अथवा विष्णु की तरह रूपवान् हैं) एवं वे देवलोगों को प्रसन्न कर रहे हैं। ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को विभीषण ने अपने हृदय में भगवान् समझा (५३)

विश्व-आत्मा-रूप—संसार के आत्मास्वरूप; विष्णु के स्वरूप रूपवान्; सुमना—देवताओं को; मुदे—प्रसन्न कर रहे हैं; हरि—भगवान्। (५३)

बिलक्ष्य एते हरि[1] बन्दे पादे। बिचारे हरि[2] करि ता हृदे। ५४।

सरलार्थ—इतने (अर्थात् असंख्य) बन्दरों को रामचन्द्रजी की पाद-पूजा करते हुए देखकर विभीषण ने उन्हें जगत में अनुपम समझा। फिर उन्हें वानरों द्वारा पूजित होते देखकर विभीषण ने उन्हें वानरपति बालि समझा। (५४)

बिलक्ष्य—अनुपम; हरि[1]—वानर, वानरों को; हरि[2]—वानरपति बालि; (यमक)। (५४)

बारे संशय दण्डक[1] रभसे। बैकुण्ठमूर्त्ति दण्डक[2] दिशे। ५५।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी को देखते ही विभीषण के मन में यह संशय हुआ—क्या ये स्वयं यमराज है! किन्तु इस तरह चिन्ता करते-करते उन्हें एक ही मुहूर्त्त में नारायण की मूर्त्ति दिखाई पड़ी। (५५)

दण्डक[1]—यम; रभसे—वेग से, त्वरा से; बैकुण्ठमूर्त्ति—नारायण रूप; दण्डक[2]—एक ही मुहूर्त्त में; (यमक); दिशे—दिखाई दिया। (५५)

बसुधापात दण्डक सदृशि। बोइले उठ दण्डकवासी। ५६।

सरलार्थ—नारायण की मूर्त्ति दीखते ही, विभीपण दण्ड के सदृश भूमि पर पड़ गये। तब दण्डकवासी श्रीरामजी उनसे बोले, "उठो।" (५६)

बसुधापात—भूमि पर पड़े; दण्डक सदृशि—दण्डके सदृश; दण्डकवासी—दण्डकारण्यनिवासी श्रीरामजी; यमक। (५६)

बिन्यस्त कर कक्षे उभा होइ। बसाइ तार चित्त रसाइ। ५७।
बिश्वरे राम नाम थिबा ग्राक। बिग्रहे थिबु बरदायक। ५८।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी के आदेश से विभीषण जी उठे और अपने दोनों हाथों को काँखों मे रखकर खड़े हुए। प्रभु ने उन्हे अपने पास बैठाया और उनके मनको समझाते-बुझाते हुए उनसे कहा—"इस संसार में जब तक 'राम' नाम हो, तब तक तुम इसी शरीर में रहोगे। (अर्थात् मेरे नाम का लोप होने पर ही तुम्हारा यह शरीर लोप पाएगा।)" ऐसा वरदान रामचन्द्रजी ने विभीषण को दिया। (५७,५८)

कक्षे—काँख में; उभा होइ—खड़े होकर; चित्त रसाइ—मनको बहलाते हुए, समझाते-बुझाते हुए; बिग्रहे—शरीर में, देहमे; बरदायक—वरदाता। (५७,५८)

बाहार करि यमदाढुं बास। बान्धिले शाढ़ी हेलु लंकेश। ५९।

सरलार्थ—यह वरदान करके श्रीराम जी ने कटारी शस्त्र से वस्त्र निकाल कर उसे विभीषण जी के मस्तक पर बाँध दिया एवं कहा, "आज से तुम लंका के राजा बने।" (५९)

यमदाढ़ुं—कटारी से; बास—वस्त्र; लंकेश—लंका के राजा (५९)

ब्यबस्थिते राम पचारु तहिं। ब्यबस्था सर्ब लंकार कहि। ६०।
बिरजामण्डळे तपस्या कृत। ब्रह्मार बरे जगतजित। ६१।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्रजी ने विभीषण से लका की व्यवस्थाओं की पूछताछ की। विभीषण जी ने विधिपूर्वक लंका की सारी व्यवस्थाएँ बतायी। उन्होने यह भी बताया कि किस प्रकार रावण ने विरजामण्डल में तपस्या करके जगज्जय करने के लिए ब्रह्माजी से वर प्राप्त किया है। (६०,६१)

ब्यवस्थिते—विधिपूर्वक; जगतजित—जगद्विजयी, जगत को जीतने के लिए। (६०,६१)

बाषठी पदे उपइन्द्र भञ्ज। बिरचे छान्द सुजने हेज। ६२।

सरलार्थ—कविवर उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द की बासठ पदों में रचना की है। हे सुजनो! इसे मन में विचारो। (६२)

सुजने—हे सज्जनो!, हेज—विचारो। (६२)

॥ इति ऊनचत्वारिंश छान्द ॥

[तृतीय खण्ड समाप्त]

वैदेहीश-विळास

चतुर्थ खण्ड

चत्वारिंश छान्द

राग—आशाबरी

बळिला राघब आशा सीता प्रापतिरे ।
बिचारिले सिन्धु पोति य़िबा पर्बतरे य़े । १ ।

सरलार्थ—विभीषण के स्वय आकर श्रीरामजी के शरणापन्न होने से प्रभुजी ने जान लिया कि अब हम लोग लंकागढ़ को आसानी से वेध सकेंगे और उनकी सीता जी को प्राप्त करने की आशा बढ़ने लगी। सुतरां उन्होंने समुद्र को पाटकर लंका जाने का विचार किया। (१)

राघव—श्रीरामचन्द्र; सिन्धु—समुद्र; पोति—पाटकर। (१)

बुडिगला पकाइले कपि य़ेते गिरि ।
बुद्‌बुद न दिशे जळ फिफीकृत करि य़े । २ ।

सरलार्थ—समुद्र को पाटने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों को आदेश दिया। वानरों ने पर्वत सब लाद लाकर समुद्र में डाले। परन्तु बन्दरों ने जितने भी पर्वत वहाँ डाले, वे सब-के-सब डूब गये। बुलबुले दिखाई नही पड़े। जल ने 'फी' 'फी' ध्वनि की। इससे समुद्र की गहराई स्पष्ट हो गई थी। (२)

पकाइले—डाले; कपि—बन्दरों ने; बुद्‌बुद—बुलबुले; फिफीकृत—'फी' 'फी' शब्द करते हुए। (२)

बिस्मय नि:श्वास तेजि बरुण प्रसन्ने ।
बिनाशनरे शयन से दर्भशयने य़े । ३ ।

सरलार्थ—यह देखकर श्रीरामजी ने विस्मय से लम्बी साँस ली। फिर उन्होने समुद्र देवता वरुण जी को प्रसन्न करने के लिए विना भोजन किये

कुश की सेज पर शयन किया। (अर्थात् कुशासन पर वरुण जी के ध्यान में पड़े रहे।) (३)

बिनाशनरे—विना भोजन किये; दर्भशयने—कुशों की सेज पर सोना। (३)

बुधे शुण अन्य प्रसंगकु दशशिर।
बरगिला से शुक सारण करि चार ये। ४।

सरलार्थ—हे पण्डितो! अब दूसरा प्रसंग मन से ध्यान लगाकर सुनो। रावण ने शुक व सारण नामक अपने दो मन्त्रियों को दूतों के स्वरूप विभीषण के पास भेजा, (और उनसे कहा—) (४)

बुधे—हे पण्डितो; बरगिला—भेजा; चार—दूत। (४)

बिभीषणे कह ज्येष्ठभ्राता पिता[1] सरि।
बुझि न बुझि कोपि ता बाणी पिता[2] करि ये। ५।

सरलार्थ—"तुम दोनों जाकर विभीषण से कहो—'बड़े भाई पिता के समान है। चाहे समझे, या नासमझे, उन्होंने मारे क्रोध के तुमसे बहुत सी कड़वी बातें कहीं हैं। इसलिए क्या आपने मन में कष्ट किया? (अर्थात् उन सारी बातों से आपको कष्ट वोध करना नहीं चाहिए था।)' (५)

पिता[1] —बाप; सरि—समान; कोपि—क्रोध करके; पिता[2] —कड़वी; (यमक)। (५)

बिभूतिकि भुञ्जुथिलु बिभूतिभूषणे।
बड कुळे जनमि शरण कि कारणे ये ?। ६।

सरलार्थ—"तुम लोग फिर कहना—'आप बड़े कुल में जन्म लेकर अणिमादि ऐश्वर्य भोगते थे। अब उसका परित्याग करके राख मले हुए श्रीराम जी की शरण में क्यों आये? यह अनुचित ही है। (६)

बिभूतिकि—ऐश्वर्य को; भुञ्जुथिलु—भोगते थे; बिभूतिभूषणे—भस्मविलेपित श्रीराम जी की। (६)

बोल अङ्गदकु पिता-शत्रु भक्ति पुण्य।
बाद रचाइ पितृव्ये बाहुड़ाअ सैन्य ये। ७।

सरलार्थ—"तुम लोग अंगद से कहो—'पिता-शत्रु सुग्रीव (क्योंकि सुग्रीव ने रामचन्द्र जी के द्वारा अंगद के पिता वालि का बध कराया था)

से भक्ति करने से पुण्य मिलता है क्या ? सुतरां अब उस चाचा सुग्रीव से फिर से शत्रुता आरम्भ करके सैन्यों को वापस ले चलो ।" (७)

बाद—कलह, झगड़ा, शत्रुता; पितृव्ये—चाचा सुग्रीव से; वाहुड़ाअ—लौटाओ । (७)

बिहायसे बिहरि सागर जिणि ग्राइ ।
बर्त्तक स्वरूप धृत केँ केँ, केँ केँ कहि ये । ८ ।

सरलार्थ—रावण के आदेशानुसार पूर्वोक्त शुकसारण नामक दोनों मन्त्रियों ने पक्षियों के रूप धारणपूर्वक आकाश में उड़ते हुए सागर को पार कर लिया और श्रीरामचन्द्र जी की सेना के बीच घुसकर केँ केँ स्वर में बातें कहीं । (८)

बिहायसे—आकाश में; बर्त्तक—पक्षी; धृत—धारण करके । (८)

बिख्याति करुँ विंशति-कर कहिबार ।
बोध उभय भयरे पळाइ सत्वर ये । ९ ।

सरलार्थ—अनन्तर जब उन्होंने विभीषण के पास जाकर रावण की कही हुई बातें उनके सामने व्यक्त कीं, तो उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी सहित अंगद आदि सेनापतियों को उक्त सारे समाचार जताये । उन्हे सुनकर अंगद अति वेग से आकर दोनों दूतों का विनाश करने के लिए उद्यत हुए तो दोनों शीघ्र ही अपनी-अपनी जान बचाकर भाग गये । (९)

बिख्यात करुँ—बोलने से; बिंशतिकर—बीस हाथोंवाला रावण; उभय—दोनों । (९)

बाहुडि राबणे कहि शुण देब-रिपु ।
बोइला अनुज थिबि सीताङ्कु समर्पु ये । १० ।

सरलार्थ—लंका लौटकर दोनों ने रावण से कहा, "हे देवशत्रु ! जरा सुनिएगा । आपके छोटे भाई विभीषण ने कहा कि आप सीता को श्रीरामजी को समर्पण कर दे । तब ही जाकर मै वहाँ आऊँगा । (१०)

देवरिपु—देवताओं का शत्रु रावण; अनुज—छोटे भाई विभीषण; समर्पु—सौंप दे, वापस दे । (१०)

बञ्चिलुँ अगदे अंग देबारु कि धर्मे ।
बज्राघात सम तळ प्रहारिला व्योमे ये । ११ ।

"हम लोग अंगद को अंगदान करने से (अर्थात् अंगद के हाथों मरने से)

किस धर्म-कर्म से बच गये, पता नही। क्योंकि उसने बज्राघात के समान ऐसा एक थप्पड़ आकाश मे रहकर कस दिया कि अगर वह हम लोगों पर लगता, तो हम लोग निश्चय ही मर जाते। परन्तु संयोग से वह हम पर नही लगा। (११)

तळ—थप्पड़; व्योमे—आकाश मे। (११)

बाजिथिले चुर्ण बा पाताळे भजिथिब।
बिध्य भानु तोषि हेले बञ्चाइ दइब ये। १२।

सरलार्थ—"यहाँ तक कि बिंध्य पर्वत पर वह थप्पड़ लगता, तो वह अवश्य ही पाताल में धँस जाता और सूरज पर लगता तो वह निश्चय ही चूर्ण हो जाता। परन्तु वह उन दोनों पर नहीं लगा। इसलिए दोनों ने आनन्द से सोचा कि दैव ने हम दोनों को बचा लिया।" (१२)

भजिथिब—धँसजाता; बिन्ध्य—विन्ध्य पर्वत; भानु—सूरज; बञ्चाइ—बचा लिया। (१२)

बळ केते बोलुँ बोले येते शंख[1] सेहि।
बारिराशिरे जनित तेते शंख[2] नाहिँ ये। १३।

सरलार्थ—फिर रावण ने जब पूछा कि रामचन्द्र के सैन्यों की संख्या कितनी है, तब उन्होंने उत्तर दिया कि समुद्र में जितने शंख उत्पन्न नही हुए होंगे, उनके सैन्यों की उतनी ही संख्या है। (अर्थात् श्रीरामजी के असंख्य सैन्य है।) (१३)

बळ—सैन्य; शंख[1]—संख्या विशेष, सौ पद्म; बारिराशिरे—समुद्र में; शंख[2]—सामुद्रिक जीव विशेष; (यमक)। (१३)

बितरणे सागर कि पाञ्च पचारिला।
बिहे राम कुशशय्या प्रत्युत्तर देला ये। १४।

सरलार्थ—रावण ने फिर पूछा, "समुद्र को पार करने के लिए वे क्या उपाय कर रहे हैं?" उन दूतों ने उत्तर दिया, "इसके लिए श्रीराम जी कुशशय्या पर शयनपूर्वक वरुण जी से विनती कर रहे हैं।" (१४)

बितरणे—समुद्र को पार करने के लिए; पाञ्च—उपाय; प्रत्युत्तर—जवाब। (१४)

बिरसकु मन्द[1] करि मन्द[2] हास जन्मे।
बोले कि करिब एड़े हीनपराक्रमे ये। १५।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण अपना दुःख परित्यागपूर्वक मुसकराया। उसने कहा, "इतने ही थोड़े बल से वह मेरा क्या बिगाड़ सकेगा?" (१५)

बिरसकु—दुःख को; मन्द[1]—छोड़कर; मन्द[2]-हास—मुसकराहट। (१५)

बुधे शुण अन्य रस रघुनाथ उठि ।
बिरक्त होइण करिछन्ति रक्तदृष्टि ये । १६ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! अब अन्य रस (या प्रसग) सुनो । इधर बरुण जी के प्रसन्न न होने से श्रीरामजी कुश-शय्या-परित्यागपूर्वक उनसे मारे क्रोध के आरक्त-नयन हो उठे है । (१६)

रक्तदृष्टि—लाल आँखे । (१६)

बिकशित काळिन्दीरे कोकनद मत ।
बिचळित भ्रूबल्लिका शैबाळ येमन्त ये । १७ ।

सरलार्थ—उस समय श्रीरामचन्द्रजी के नीले शरीर मे उनकी लाल आँखे इस प्रकार सुशोभित हुई मानो कालिन्दी नदी मे रक्तपद्म खिल रहे हों । उनकी भ्रूलताएँ ऐसे कांपती थी, जैसे उक्त नदी में उत्पन्न शैवाल (सेवार) । (१७)

कोकनद—रक्तपद्म; भ्रूवल्लिका—भ्रूलता; शैबाळ—सेनार । (१७)

बिदुळ चापरे करि हेबारु संयुत ।
बीचि हस्त उत्तोळित काण्ड-पूर्ण सत ये । १८ ।

सरलार्थ—फिर श्रीरामचन्द्र जी नदी के किनारे पर उगे बेंत के सदृश धनुष पकड़े हुए है, लहरो के सदृश दोनो हाथों को ऊपर उठाये हुए है और उनका धनुष बाणो से भरपूर है, मानो नदी जल से पूर्ण हो । (तात्पर्य यही है कि श्रीराम जी ने बरुण जी की ओर निशाना लगाये धनुष पर बाण संधाने ।) (१८)

बिदुळ—पानी में उत्पन्न बेंत; चापरे—धनुष में; बीचि—लहरें । (१८)

बोलन्ति पृथ्वीनाशन दैत्यंकु लुचाउ ।
बिरचि कबन्ध नट जनंकु डराउ ये । १९ ।

सरलार्थ—अनन्तर क्रुध होकर श्रीराम जी ने समुद्र से कहा, "तू पृथ्वी-विनाशक राक्षसों को लेकर अपने गर्भस्थित लका में छिपाता है और रणभूमि में मस्तकहीन शवों के नृत्य की तरह अपने गर्भ में तरंगों का नृत्य रचकर लोगों को डराता है । (१९)

दैत्यङ्कु—राक्षसों को; कवन्धनाट—मस्तकहीन धड़ों का नृत्य । (१९)

बिदित ज्या जामाता मुँ दैत्यारि बोलाइ ।
बध कबन्ध करिछि यिबु आज काहिँ ये । २० ।

सरलार्थ—"यह जगद-विदित है कि मैं पृथिवी देवी का दामाद हूँ। फिर मैं राक्षसों का शत्रु कहलाता हूँ। और मैने कबन्ध नामक राक्षस का वध भी किया है। सुतरां तू सर्वतोरूपेण मेरा शत्रु हुआ। इसलिए मैं आज निश्चय ही तेरा संहार करूँगा। (२०)

ज्या—पृथिवी; जामाता—दामाद। (२०)

बाट देखा आणे तु नोहिले हेबु लोप।
ब्याकरण साधनरे बर्णर स्वरूप य़े। २१।

सरलार्थ—"अब तू सामने रहकर हम लोगों को लंका जाने का मार्ग दिखा दे। अन्यथा इसी क्षण तेरा लोप वैसे ही हो जाएगा, जिस तरह व्याकरण के नियमानुसार अक्षरों का लोप हो जाता है। इसमें जरा भी संशय नहीं है।" (२१)

नोहिले—अन्यथा; वर्णर स्वरूप—अक्षरों की तरह। (२१)

बेळु बेळ कोपबृद्धि चाप चक्रीकृत।
बिधबा अबस्था जह्नु-तनया सभीत य़े। २२।

सरलार्थ—यह कहते-कहते क्षणोंक्षण उनका क्रोध बढ़ता गया। अपने धनुष को कानों तक खीचने से उसने चक्राकार धारण किया। यह देखकर जह्नुसुता गंगादेवी को शंका हुई कि कही मै विधवा न होऊँ। (चूँकि समुद्र नदियों का पति है, उसके विनाश के भय से गगा नदी को यह शंका हुई।) (२२)

चाप—धनुष; जह्नुतनया—जाह्नवी, गंगा। (२२)

ब्यक्त पाराबार बार-बार शरमुने।
बिन्दु कुशर अग्ररे कुशर य़ेसने य़े। २३।

सरलार्थ—वरुण को मारने के लिए रामचन्द्रजी ने अपने धनुष पर जो अग्निशर संधाना था, उसकी नोक में समुद्र की जलराशि लगकर वैसे दिखाई दी जैसे कुश की नोक में जल की एक बूँद लग गई हो। (२३)

ब्यक्त—प्रकाशित; पारावार—समुद्र; बारबार—जलसमूह; कुशर बिन्दु—जलबिन्दु। (२३)

बडबानळ ख-द्योत[1]-कारी य़े खद्योत[2]।
बत दिशे से नाराच राजत[1] राजत[2] य़े। २४।

सरलार्थ—श्रीराम जी के शरश्रेष्ठ अग्निशर का तेज आकाश को

उज्ज्वल करने वाले सूर्य के तेज के सदृश प्रकाशित हुआ। उसके सामने समुद्रमध्यस्थित बड़बानल का तेज जुगनू की तरह ज्योतिहीन दिखाई दिया। (२४)

बड़बानळ—समुद्र से उत्पन्न अग्नि; ख-द्योत[१]-कारी—आकाश को उज्ज्वल करनेवाला सूरज; खद्योत[२]—जुगनू; बत—समान; नाराच राजत[१]—उत्कृष्ट शर; राजत[२]—तेज में, दीप्ति में। (२४)

ब्याकुळ सलीळ-चर सलीळ तेजिले।
बाड-लेखा लेखा चित्र-भाबकु भजिले ये़ं। २५।

सरलार्थ—फिर उस अग्निशर के तेज से जलचर प्राणिसमूह अपनी-अपनी मनोहर क्रीड़ाओं को त्याग अत्यन्त व्याकुल हो उठे और दीवारों पर अंकित चित्रों के सदृश जड़ अवस्था को प्राप्त हुए। (अर्थात् वे सब प्राणी साम्मीभूत हो गये। (२५)

सलिळचर—जलचर प्राणी; सलीळ—क्रीड़ा; बाड़लेखा—भीत पर लिखे। (२५)

बेळारे स्वर्णसरर सुदर्शन[१] प्राये।
बिकाश प्रचेता नामु सु-दर्शन[२] पाए ये़ं। २६।

सरलार्थ—जैसे जम्बुनद (जम्बुद्वीपस्थ एक नदी) के किनारे पर सुदर्शन नामक जामुन का पेड़ सुशोभित होता है, वैसे समुद्र के किनारे पर क्रुद्ध श्रीरामचन्द्र जी शोभा पा रहे है। उक्त जामुन के पेड़ को सबसे पहले प्रचेता नामक ऋषि ने देखा था। परन्तु यहाँ पर प्रचेता नामधारी वरुण ने रामचन्द्र के भली-भाँति दर्शन किये। (२६)

बेळारे—किनारे पर; स्वर्ण सर—जम्बुनद (जम्बुद्वीपस्थ एक नदी); सुदर्शन[१]—सुदर्शन नामक एक जामुन का पेड़; प्रचेता—एक ऋषि, वरुण; (श्लेष); सु-दर्शन[२]—उत्तम दर्शन; (यमक)। (२६)

बिलोकि शरर सुदर्शन परि प्रभा।
बिदूरे से पाशी[१] हेला पाशी[२] नोहि उमा ये़ं। २७।

सरलार्थ—उस अग्निशर की सुदर्शन चक्र की-सी दीप्ति देखकर वरुण भय से पास न आकर बहुत दूरी पर खड़े रहे। (२७)

बिलोकि—देखकर; सुदर्शन—विष्णुजी का चक्रायुध; प्रभा—दीप्ति; बिदूरे—बहुत दूरी पर; पाशी[१]—वरुण; पाशी[२]—पास में, निकटस्थ। (२७)

बसुधाभृतरे प्रजाबत शान्ति पाइ।
बोधिला से कर-रत्न-अळंकार देइ ये़ं। २८।

सरलार्थ—जैसे प्रजालोग राजा को राजस्व देकर शान्त करते है,

वैसे वरुण देवता ने रामचन्द्र जी को बहुत रत्नालंकार प्रदानपूर्वक उन्हें प्रबोधना दी। (अर्थात् उनका क्रोध शान्त किया।) (२८)

बसुधाभृत—राजा; कर—राजस्व। (२८)

बोलि स्वबंशकीर्त्तिकि नाशिब कि एते।
बधाइला से बाणे असाध्य थिले ये़ते ये़। २९।

सरलार्थ—अनन्तर वरुणदेवता ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा, "जो समुद्र आपके अपने वंश की (अर्थात् अपने पूर्वज सगर राजा की कीर्त्ति) है, उसका क्या आप अपने हाथों से विनाश करेंगे ?" इतना ही कहकर वरुण ने श्रीरामचन्द्रजी का सन्तोष विधान किया और धनुपपर सधाने हुए अग्नि-शर से अपने शत्रुओं का विनाश कराया। (२९)

स्ववंश कीर्त्तिकि—अपने पूर्वज सगर राजा की कीर्त्ति, समुद्र। (२९)

बोले बिचार तिमिरे[1] जगत ग्रासित।
बिचित्र निकि तिमिरे[2] ग्रासित पर्वत ये़। ३०।

सरलार्थ—वरुण देवता ने फिर कहा, "यदि अन्धकार के द्वारा समग्र संसार निगला जाता है, तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है कि तिमियों (विकट जल-मत्स्य) के द्वारा पर्वत निगले या खाये जावे ? (३०)

तिमिरे[1] —अन्धकार से; तिमिरे[2] —तिमि नामक मत्स्य से; (यमक)। (३०)

बार्द्धि गर्भस्थित लक्ष्मीमन्दरताडने।
बिराटमूर्त्तिमाने से परापत घेने ये़। ३१।

सरलार्थ—"हे राघवेन्द्र ! पहले लक्ष्मी समुद्र के गर्भ में थी। उस समय आप विराट मूर्त्ति धारण करके वहाँ उपस्थित हुए एवं आपने मन्दर पर्वत से मथे जा रहे समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी को प्राप्त किया था। (अथवा जब लक्ष्मी समुद्र के गर्भ में थी, उस समय आपको भयंकर रूप फवता था। मन्दर पर्वत के द्वारा समुद्र का मन्थन कराके आपने लक्ष्मी को प्राप्त किया था।) (३१)

बार्द्धि—वारिधि, समुद्र; मन्दर—पर्वत विशेष; ताड़ने—मन्थन से; बिराट मूर्त्ति—भयंकर रूप; माने—फवता था। (३१)

बार्द्धि-गर्भस्थित एबे कमळा अबधि।
बराटमूर्त्तिमाने तुम्भर बड सिद्धि हे। ३२।

सरलार्थ—"अब सीता भी लक्ष्मीस्वरूपा है। क्योंकि वे सागरमध्य-स्थित लंका मे है। सुतरा आप 'मन्द' (खल रावण) का 'ताड़न'

(विनाश) करने से लक्ष्मीस्वरूपा सीता को प्राप्त करेंगे। अब आपको यही क्षत्रियमूर्त्ति बहुत ही सुन्दर फबती है। अतएव आप यही वेश धारण करके शत्रुमुख से हम लोगों की रक्षा कीजिए और संसार में विख्यात होइए। (३२)

कमळा—लक्ष्मी (सीता); बिराट मूर्त्ति— भयंकर रूप, क्षत्रिय मूर्ति। (३२)

बान्ध सेतु हेतु अछि बिश्वकर्मासुत।
बस्त्र-माळा जळे क्षेपे शिशुकाळे नित्य ये। ३३।
बाळ बोलि कोपी नोहि कहि मुनि सर्ब।
बुडु ना नीररे तु छुइँबु येते द्रब्य ये। ३४।

सरलार्थ—"अब आप पर्वतसमूहों से समुद्र पर एक बाँध बँधाइए। उन पर्वतसमूहों के उतराने के लिए उपाय भी है। वह उपाय यों है। विश्वकर्मासुत नल अपने बचपन मे मुनियों के वस्त्र तथा मालाएँ लेकर रोज़ उन्हें पानी में डालता और क्रीड़ा करता। चूँकि वह बालक था, इसलिए मुनिलोगों ने उस पर गुस्सा किये बिना उससे कहा, "तू जितने ही द्रव्य पानी में डालेगा, वे सब पानी में हरगिज़ नही डूबेंगे। (३३,३४)

हेतु—कारण; बिश्वकर्मा-सुत—नल। (३३, ३४)

बुहाइण गोत्र-गोत्र पकाअ छुआइँ।
बार्द्धि-कळनारे नळ नाम अछि पाइ ये। ३५।

सरलार्थ—अतएव आप अपनी वानर-सेना के द्वारा पर्वतसमूहों को लदवा लाइए और नल से उनको छुलावें ताकि वे पर्वतसमूह जल में न डूबें। समुद्र के जल की नाप करने के लिए उसने 'नल' नाम धारण किया है।" (३५)

गोत्र-गोत्र—पर्वत-समूह; पकाअ—डालो; नळ—परिमाण, बाँस का एक मानदण्ड, जिससे आयतन, गहराई आदि की नाप की जाती है। (३५)

बोलि प्रदक्षिण करि होइला अन्तर।
बिश्वकर्मा-पुत्रे करि श्रीराम आदर ये। ३६।

सरलार्थ—यों कहकर वरुणजी श्रीरामजी की प्रदक्षिणापूर्वक वहाँ से चले गये। प्रभु ने विश्वकर्मासुत सेनापति नल जी का बड़ा आदर किया। (३६)

प्रदक्षिण—भ्रमण, घूमना। (३६)

ब्यापि कपि शिखरी उत्पाटिले अद्‌भुते ।
बिच्छन्दसुत स्परशे उदके पकान्ते ये । ३७ ।
बळ्कळ तिळर यथा उश्वासे रहिला ।
बिशेषित अद्‌भुत ए से समाने हेला ये । ३८ ।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीरामजी का आदेश पाकर वानरगण चारों ओर फैलकर पर्वतों को उखाड़ लाये और नल से छुलाकर उन्हें समुद्र पर डाला। परन्तु उन्हें डूबे बिना पानी पर तिल के छिलकों के समान हल्के रूप में उतराते देखकर सब बन्दर तथा भालू अचरज में डूब गये । (३७,३८)

शिखरी—पर्वत; उत्पाटिले—उखाड़े; बिच्छन्दसुत—नल; उदके—पानी में । (३७)
बल्कळ—छिलका । (३८)

बिहीनभीते रहिले एते गिरिबर ।
बिजे राम भावे मेरु मुँ देबनगर ये । ३९ ।

सरलार्थ—यह जानकर कि वहाँ श्रीरामचन्द्र जी विराजमान हुए है, ये सब श्रेष्ठ पर्वत निडर होकर रहे । मेरु पर्वत ने सोचा, "मैं देव लोगों का आवासनगर हूँ । देवताओं के हित के लिए भूपर अवतीर्ण श्रीरामजी समुद्र के किनारे पर विराजमान हुए है । अतएव मुझे लेने के लिए श्रीराम जी आदेश नहीं देगे ।" (३९)

बिहीनभीते—विना भय के, निर्भय; मुं—मैं; देवनगर—देवताओं की आवास-भूमि । (३९)

बन्दन्ति से चण्डी शम्भु भाबि हिमाळय ।
बासब-नप्ता बातज थिबारु मळय ये । ४० ।

सरलार्थ—हिमालय पर्वत ने सोचा, "श्रीरामजी हमेशा पार्वती तथा शिवजी की पूजा करते है । मै उन दोनों का वासस्थान हूँ । इसलिए उनके सैन्य मुझे उखाड़ नही लेगे ।" फिर मलय पर्वत ने सोचा, "मै इन्द्र के पोते अगद तथा पवनपुत्र हनुमान् जी की क्रीड़ाभूमि हूँ; इसलिए वे मुझे लेने के लिए आदेश नही देगे ।" (४०)

चण्डी—पार्वती; शम्भु—महादेव; बासब नप्ता—इन्द्र का नाती (अंगद); बातज—पवनपुत्र (हनुमान्) । (४०)

ब्रह्मापुत्र अश्विनीकुमारसुत स्थित ।
बिधीरकु तेजि गन्धमार्दन ए सत ये । ४१ ।

सरलार्थ—ब्रह्मापुत्र जाम्बवान् और देववैद्य अश्विनीकुमार के पुत्र

सुषेण पर्वत लाने गये थे। गन्धमार्दन पर्वत ने यह जानकर मन में सोचा, "मैं ब्राह्मणों का औषधवन हूँ। इसलिए वे मुझे अवश्य नही लेगे।" यह सोचकर उसने अपने मनसे चंचलता दूर की। (४१)

ब्रह्मापुत्र—जाम्बवान्; अश्विनीकुमार-सुत—सुषेण; बिधीरकु—चंचलता को। (४१)

बिभीषण भेटिअछि कइळास स्थिर।
बिद्रश्यता भाबि लोकालोक महीधर ये। ४२।

सरलार्थ—विभीषण जी श्रीरामचन्द्र के शरणापन्न हुए है। इसी हेतु कैलास पर्वत ने सोचा, "मैं विभीषण के भाई कुबेर जी का आवासस्थान हूँ। सुतरां वे मुझे नही लेगे।" फिर लोकालोक पर्वत ने सोचा, "मैं तो लोगों का अदृश्य हूँ, (अर्थात् मुझे तो कोई नही देख सकता।) इसलिए मैं समुद्र में जाने से बच सकता हूँ।" (४२)

बिदृश्यता—अदृश्य; महीधर—पर्वत। (४२)

बिबेक ए चित्रकूट माल्यबन्त करे।
बिळसि राघब य़ाइछन्ति आम्भपरे ये। ४३।

सरलार्थ—अनन्तर चित्रकूट तथा माल्यवन्त, दोनों पर्वतों ने विचार किया, "रामचन्द्रजी हम लोगों पर विहार-विलास कर गये है। सुतरां हम लोग क्यो आशंका करें कि वे हम लोगों को वहाँ लेगे?" (४३)

बिळसि—क्रीड़ा करके। (४३)

बिंध्य मन्दर सभय अछि रबिसुत।
बिचारिले एहि बिधि पर्बत बहुत ये। ४४।

सरलार्थ—चूँकि वहाँ सूर्यपुत्र सुग्रीवजी है, इसलिए विन्ध्य तथा मन्दर पर्वत दोनो भयभीत हुए। उन्हे पुरानी घटना याद आ गई। पूर्वकाल में विन्ध्य तथा मन्दर दोनों पर्वत इस उद्देश्य से कि हम दोनों में से कौन पहले सूर्यमण्डल को बेध सके, एक दूसरे से होड लगाकर बढ़ रहे थे। परन्तु अगस्ति मुनि ने उन्हें उस वृद्धि से रोक लिया। सुतरां यह शंका करते हुए कि कही सुग्रीव अपने पिता का ऋण चूकाने के लिए हम दोनों को उखाड़ न ले, दोनों भयभीत हो उठे। इसी प्रकार विचार करते हुए और सब पर्वत भी भय-भीत हुए। (४४)

रबिसुत—सुग्रीव; बिधि—प्रकार। (४४)

बामे[1] छुउँ बाम[2] हेउँ मारुतिकि बोधि।
बन्ध पडिबारे शोभा होइला बारिधि ये।४५।

सरलार्थ—वीर वानर तथा भालू अनगिनत पर्वत लाते थे और उन्हें नल से छुलाकर समुद्र में डालते। इस समय हनुमान् जी के हस्तस्थित पर्वत को नल ने अपने बायें हाथ से छू दिया। हनुमान्जी के इस पर क्रोध करते, श्रीरामजी ने उन्हें समझाबुझा दिया। इस तरह बाँध के पड़ने से समुद्र सुशोभित हुआ। (४५)

बामे[1]—बायें हाथ से; बाम[2]—विरोधी; मारुति—हनुमान् जी; बोधि—शान्त करके। (४५)

बालुका पकाअ बन्धे राम आज्ञा हेला।
बहुत नगर रुचि एक होइगला ये।४६।

सरलार्थ—पर्वतों की ऊँचाई में असमता के हेतु बाँध कहीं ऊँचा और कही नीचा हो गया। उसे चौरस करने के उद्देश्य से रामचन्द्र जी ने आदेश दिया, "अब इस पर बालू डालो।" सैनिकों ने बालू लाकर उस पर डाल दिया। इस पर बाँध समतल होकर सुन्दर दिखाई दिया। (४६)

नग—पर्वत। (४६)

बिखयात होइला से आश्चर्य जगतरे।
बिभ्राजे कुम्भीर गति से तळ उपरे ये।४७।

सरलार्थ—यह बात एक आश्चर्य के रूप में जगत में प्रसिद्ध हो गई कि पर्वत सब जल में न डूबकर उतराये और उक्त बाँध के नीचे घडियालों तथा उसके ऊपर हाथियों का गमनागमन शोभा पाने लगा है। (४७)

बिभ्राजे—शोभा पायी; कुम्भीर—घड़ियालों की, हाथियों की; (श्लेष)। (४७)

बाजी गतागत राजि हेला अतिशय।
बिदूर होइला यहिँ कुळटार भय ये।४८।

सरलार्थ—जैसे एक संन्यासिनी अपने कुल (वंश) के डूबने का भय मन में नही लाती है, वैसे श्रीरामचन्द्रजी ने बाँध बाँधकर उसपर घोड़ों, हाथियों आदि को मनोहर ढंग से दौड़ाकर अपने मन से कूल (बाँध) के डूब जाने का भय दूर किया। अर्थात् बाँध पर घोड़ों, हाथियों आदि को दौड़कर श्रीरामचन्द्रजी ने जाँचकर लिया कि समुद्र पर का बाँध और नहीं डूबेगा। (४८)

बाजी—घोड़े; राजि—मनोहर; कुळटा—संन्यासिनी। (४८)

बिळसित होइला सुजाति आखु करे ।
बिभु करे आश्वासिले प्रख्यात शुभरे ये़ । ४९ ।

सरलार्थ—एक गिलहरी पानी में डूबने और बालू पर खेलने के बाद आकर बाँधपर अपने शरीर को झाड़ रही थी । श्रीराम जी ने उसके ऐसे भक्तिभाव को देखकर प्रसन्न मन से स्नेहपूर्वक उसकी पीठ को सहलाया तो उसकी पीठ पर तीन शुक्ल रेखाएँ प्रकट हो गईं । (४९)

बिळसित—खेलना; आखु—गिलहरी; क-रे—जल में; बिभु—प्रभु श्रीराम ने; आश्वासिले—सहलाया; प्रख्यात—प्रकाशित । (४९)

बिजे राम प्राप्ति इच्छा सुबळय-शोभी ।
बळ तेजि कु-बळय सुबेळकु लभि ये । ५० ।

सरलार्थ—बाँध बनाने के बाद श्रीरामचन्द्र जी ने स्वर्ण-कंगनशोभिनी सीता को पाने के लिए सैन्यों के साथ समुद्र को पार किया और लंकास्थ सुबेल पर्वत पर उपस्थित हुए । (५०)

सुबळया-शोभी—स्वर्णकंकण-शोभिनी सीता; बळ—सेना; कुबळय—समुद्र; सुबेळकु—सुवेल पर्वत को । (५०)

बिस्तारे स्वर्ग सुसञ्च अधिकरे सत ।
बृन्द बृन्द रम्भा शताबरी ऐराबत ये़ । ५१ ।

सरलार्थ—सुबेल पर्वत की शोभा देखकर श्रीरामजी ने सोचा, "यह पर्वत सौन्दर्य में स्वर्गपुर से भी अधिक है । क्योंकि स्वर्गपुर रम्भा, शची आदि स्ववेंश्याओं और ऐरावत हस्ती से सुशोभित रहता है। उसी तरह यह सुबेल पर्वत केला, सतावर तथा नारंग पेड़ों से सुशोभित हो रहा है ।(५१)

सुसञ्च—मनोहर; रम्भा—केले का पेड़, स्वर्गवेश्या; शतावरी—शची, सतावर; ऐरावत—इन्द्र का हाथी, नारंग; (श्लेष) । (५१)

बोलिबारे हनुमान तहिँ दुर्ग करि ।
बिलक्षिले लङ्कागड पाताळर परि ये़ । ५२ ।

सरलार्थ—सुबेल पर्वत पर खड़े होकर ऊँचाई में कमी के कारण श्रीरामजी लंकागढ़ को नहीं देख सके । इसलिए हनुमान जी की सलाह के अनुसार उन्होंने वहाँ एक दुर्ग बनवाया । वहाँ खड़े होकर उन्होंने लंकापुर को पाताल के सदृश देखा । अर्थात् अधिक ऊँचाई पर खड़े होने से वे लंकागढ को अच्छी तरह देख पाये । (५२)

दुर्ग—गढ़; बिलक्षिले—देखा । (५२)

बळि रहिअछन्ति य़हिँरे करि स्थान ।
बिहरित होइछन्ति नागसारमान य़े । ५३ ।

सरलार्थ—उक्त गढ़पर खड़े होकर लंकापुर की ओर निहारने से वह पातालपुर के समान दिखाई दिया । पातालपुर मे राजा बलि और उत्कृष्ट सर्प लोग विहार करते है । किन्तु यहाँ पर बलिष्ठ लोग एवं उत्कृष्ट हस्ती सब विहार कर रहे हैं । (५३)

बळी—योद्धा, बलिराजा; नागसारमान—सर्पविशेष, हस्तीश्रेष्ठ; (श्लेष) । (५३)

बिज्ज्वळित होइअछि मणि किरणरे ।
बेभारे से राजित राक्षस शरणरे य़े । ५४ ।

सरलार्थ—फिर वह पातालपुर सर्पमस्तकस्थित मणियों की किरणों से दीप्तिमान् है । यहाँ लकापुर भी बहुमूल्य रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है । वास्तव में पातालपुर राक्षसों के रक्षण (आवास-भूमि) से जैसे सुशोभित होता है, वैसे लंकापुर भी राक्षसों के भवनों से सुशोभित हो रहा है । (५४)

बिज्वळित—दीप्तिमान; मणि—रत्नविशेष ; बेभारे—वास्तव मे; राजित—शोभित; शरणरे—रक्षण (आवास-भूमि) से; भवनों से । (५४)

बार्त्तिक आसर-चार खर लंकाराजे ।
बिजे खरपर य़ुक्त लक्ष्मण रबिजे य़े । ५५ ।

सरलार्थ—राक्षसदूत ने सुबेल पर्वत पर श्रीरामचन्द्र के सैन्यों को देखकर शीघ्र ही जाकर लंकाराज रावण से कहा, "हे प्रभो ! खरहन्ता रामचन्द्र अनुज लक्ष्मण, रविसुत सुग्रीव और सेनाओं सहित सुबेल पर्वतपर बिराजमान हुए है । मैं यह देख आया हूँ । (५५)

बार्त्तिक—वार्त्तावह, दूत; आसरचार—राक्षस-दूत; खर—शीघ्र; लंकाराजे—लंकाराजा रावण से; लक्ष्मण रविजे—लक्ष्मण तथा सुग्रीव के साथ । (५५)

बिधिपूर्बरे दक्षिण प्रतीचीरे उज ।
बिदित तब भ्रातार उत्तरे सहज य़े । ५६ ।

सरलार्थ—उस दूत ने रावण को लेकर उसे श्रीरामचन्द्र जी को पहचनवा दिया और कहा, "हे प्रभो ! विधि-विधान-पूर्वक कर्त्तव्य-सपादन चिरकालव्यापी विचारप्रवीण श्रीरामचन्द्र जी आपके भाई विभीषण के परामर्शानुसार सहजस्वाभाविक रीति से यहाँ आ पहुँचे है ।" (५६)

बिधिपूर्बरे—यथाविधि; दक्षिण—प्रवीण; प्रतीची—चिरकाल; उज—समर्थ । (५६)

बारता शुणु राबण त्रिजटा शुणिला ।
बैदेही पाशे बल्लभ प्रबेश कहिला ये । ५७ ।

सरलार्थ—रावण यह वार्ता सुन ही रहा था कि त्रिजटा ने शीघ्र ही जाकर सीता से कहा, "अयि सीते ! आपके पतिदेव श्रीरामजी ससैन्य आकर लंका में पधारे हैं ।" (५७)

बैदेही—सीता; बल्लभ—पति राम । (५७)

ब्यर्थलक्ष्य दरिद्र प्रापत लक्ष धन ।
बोलिब मृतपिण्डरे प्रबेश जीबन ये । ५८ ।

सरलार्थ—त्रिजटा के वचन सुनकर सीता देवी फूली न समायीं । कवि की यह उपमा, कि जैसे दरिद्र व्यक्ति ने लाख संख्या में धन पा लिया, वैसे सीता आनन्दिता हुईं, व्यर्थ सिद्ध हुई । क्योंकि सीतादेवी का हर्ष उससे कहीं अधिक हुआ । मानो मृत शरीर में जीवन का पुनःसंचार हो गया । (५८)

ब्यर्थलक्ष्य—कवि की उपमा व्यर्थ सिद्ध हुई; पिण्डरे— शरीर में । (५८)

बिमळ कमळनेत्रु कमळ जनित ।
बिगत से हेला येणु ऊणा उतपात ये । ५९ ।

सरलार्थ—यह सुनकर सीता जी के स्वच्छ कमलनयनो से बहते हुए आँसू विदूरित हुए और राक्षसों का अत्याचार धीरे-धीरे कम होने लगा । (५९)

बिमळ—स्वच्छ; कमळ-नेत्रु—पद्मनेत्रों से; कमळ—जल; बिगत—दूर । (५९)

बिजन्य गति चञ्चळे कमळ होइला ।
बोलिबारु काहिँ काहिँ सुबेळे बोइला ये । ६० ।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी की दर्शनाभिलाषा से उत्कण्ठिता होकर सीतादेवी ने अपनी आँखों को हिरन की सी चंचल गति से फिराया और पूछा, "प्रभु कहाँ आये है ?" त्रिजटा ने उत्तर दिया, "सुवेल पर्वत पर ।" (६०)

बिजन्य—जात; कमळ—मृग । (६०)

बचन सुधा-सेचन पराये मणिले ।
बिमोचन शोचन सीतार मनु कले ये । ६१ ।

सरलार्थ—त्रिजटा के वचनों को अमृततुल्य अनुभव करके सीतादेवी ने अपने मनसे शोक को दूर किया। (६१)

सुधा-सेचन—अमृत की सिंचाई। (६१)

बाञ्छिले पावनि हेउ चिरायुष हृदे।
बीरबर बाषठि पदरें छान्द छन्दे ये। ६२।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् जी से प्रसन्न होकर उन्हे मन में आशीर्वाद दिया कि हनुमान् दीर्घायु होवे। कविवर उपेन्द्र-भञ्ज ने बासठ पदों में इस छान्द की छन्दोवद्ध रचना की। (६२)

पावनि—हनुमान्; चिरायुष—दीर्घायु। (६२)

॥ इति चत्वारिंश छान्द ॥

एकचत्वारिंश छान्द

राग—विचित्र देशाक्ष

बोध क्रब्यादेश श्रीराम सन्देश पाइण स्वदेश जन ।
बाहार बिहार न कराइ साजि युद्ध उपचारमान से ।
बिभाबरी प्रबेशरे । बळ कळा आदेशरे हे । १ ।

बेनि मन्त्री पेषे से मर्कट बेशे प्रकट से सैन्ये याइ ।
बिचेतन बीर मुकुट-रतन एणाजिन शेये शोइ से ।
बसि लक्ष्मण समीपे । बिराजे मार्गण चापे हे । २ ।

सरलार्थ—यह समाचार, कि श्रीरामचन्द्र जी लंका में पहुँच गये है, पाकर राक्षसराज रावण ने अपने सैन्यो को बाहर नही जाने दिया और युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। जब रात आ पहुँची, तो उसने शुक और सारण नामक दोनों मन्त्रियो को श्रीरामजी के सैन्यों को गिनने के उद्देश्य से गोपन में भेज दिया। दोनों मन्त्रियों ने बन्दरों के वेश में श्रीराम की सेना में घुस कर देखा कि वीर-मुकुट में रत्न जैसे सुशोभित (वीरवरों में श्रेष्ठ) श्रीरामचन्द्र जी अचेत होकर मृगछालपर सोये हुए है और लक्ष्मण धनुष तथा शर धारणपूर्वक उनके समीप विराजमान हुए है। (१,२)

क्रब्यादेश—राक्षसराज रावण; सन्देश-वार्त्ता, समाचार, खबर; बिभावरी—रात; बळ कळा—सैन्यों की गिनती; बेनि मन्त्री—शुकसारण नामक दोनो मन्त्रियों को; बिचेतन—संज्ञाहीन बेहोश; वीर-मुकुट-रतन—वीर चूड़ामणि, वीरवरों में श्रेष्ठ रामचन्द्र; एणाजिन-मृगचर्म; मार्गण—शर; चापे—धनुष से। (१,२)

बिचारे सुग्रीब जाम्बब सुषेण लङ्का जय करिबारे ।
बाजणा दिआइ बुले बिभीषण जणागले सेहिठारे से ।
बन्धाइ रखिला सेहि । बासर प्रबेश तहिँ हे । ३ ।

सरलार्थ—सुग्रीव, जाम्बवान् तथा सुषेण आदि लंकाविजय पर विचार कर रहे है और विभीषण इस आशंका से कि किसी ओर से रावण का गुप्तचर आ पहुँच न जाय, नगाड़ा बजाकर चारों ओर घूम रहे है। इसी समय शुक और सारण दोनों मन्त्री वहाँ आ पहुँचे। उन्हें पहचान लेकर विभीषण ने उनको कैदी बना लिया। इतने में रात वीती और दिन का आरम्भ हुआ। (३)

बाजणा—नगाड़ा, वाजा; वासर—दिन। (३)

बिजे सभा करि अरि-करी-हरि हरीशे देइण शिर।
बाळिसुत पर कर हनुमान मर्दन करे पयर से।
बेळ भल भल्लमन्त्री। ब्यबस्थितरे कहन्ति से।४।

सरलार्थ—शत्रुरूपी हाथी का विदारण करनेवाले श्रीरामचन्द्ररूपी सिंह वानरराज सुग्रीव पर अपना सिर तथा वालिपुत्र अंगद पर अपने हाथ रखे सभा करते हुए विराजमान हुए है। और हनुमान् जी उनके पैरों का मर्द्दन कर रहे है। इसी समय भल्लुक-मन्त्री जाम्ववान् ने उपस्थित होकर कहा, "ज्योतिषी के मतानुसार आज ही युद्ध के लिए शुभ समय जँच रहा है। (४)

अरि—शत्रु; करी—हाथी; हरि—सिंह; हरीश—वानरराज सुग्रीव; बाळिसुत—अगद; पयर—पैर; भल्लमन्त्री—भालुओं के राजा जाम्बवान्; ब्यबस्थित—निर्धारित। (४)

बिशिख सळखे लक्ष्मण चरमे बन्दिरे दत्त ईक्षण।
बाणे देखन्ति रावण-बध एणे कर्णे कहे बिभिषण से।
बैदेही समीपे मन। बिधान अष्टाबधान हे।५।

सरलार्थ—पीछे की ओर लक्ष्मण बैठकर अपने शरो को सीधा कर रहे हैं और शुक-सारण दोनों बंधन में पड़े हुए हैं। श्रीराम जी लक्ष्मण तथा शुक्र-सारण पर निगाह डाले बैठे हुए है और ब्रह्मास्त्र को धारण किये उक्त दूतों से बोल रहे है, "इसी शर से रावण का वध होगा"। उधर विभीषण कान मे जो बोल रहे हैं, उसे भी सुन रहे है। सबसे बढ़कर सीता में उनका मन और ध्यान हमेशा लगा रहा है। इसी तरह विधाता ने श्रीरामचन्द्र में अष्टावधानी गुणों का विधान किया है। (५)

विशिख—वाण, शर; सळखे—सीधा कर रहे हैं; चरमे—पृष्ठ-देश में; बन्दिरे—बँधे हुए शुकसारण को; ईक्षण—चक्षु; अष्टावधान—एक ही समय मे आठ वस्तुओं पर ध्यान। (५)

बध न करि बरद हेले बेग रचन राम बचन।
बिभीषण सङ्गे रङ्गे मन्त्रीपणे बेनि जने हर दिन से।
बन्धनमुक्त ओळगे। बाहुड़े लङ्काकु वेगे हे।६।

सरलार्थ—बंधन में पड़े हुए दोनों मन्त्रियों से प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, "तुम दोनों अब विभीषण के मन्त्रियों के रूप में रहकर आनन्द से दिन बिताओ।" यह कहकर प्रभु ने दोनों को मुक्त कर दिया तो दोनों श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके लंका चले गये। (६)

बरद—वरदाता; रंगे—कौतुक से; ओळग—प्रणाम, नमस्कार। (६)

बृथा कला दशमथा ताङ्क कथा भल सेहि भल्ल हेला ।
ब्यथा हृदयरे उदय तत्क्षण शार्दूळकु बरगिला से ।
बिहि अञ्जन घेनिला । बरणे उठि चाहिँला हे । ७ ।

सरलार्थ—अनन्तर उक्त दोनों मन्त्रियो ने रावण के समक्ष जब सारी बातें ठीक-ठीक बताईं, दससिर रावण उन बातो को झूठी समझा। फिर बरछी के समान उन बातों ने एकाएक रावण के हृदय में बेधकर व्यथा उपजायी। इसके बाद यह जानने के लिए कि वे बातें कहाँ तक सच हैं या झूठ; उसने शार्दूल नामक एक राक्षस-दूत को भेज दिया। उस शार्दूल ने अपनी आँखो में विधातादत्त अंजन लगाकर परकोटे पर चढ़कर निहारा। (७)

बृथा—झूठ; दशमथा—दस सिरोंवाले रावण ने; भल्ल—भाला; बरगिला—भेजा; बरणे—प्राचीर पर, परकोटे पर। (७)

बिळोकन करि बाहुड़ि कहिला भूलोक ब्यापित कपि ।
बोइला रावण इन्द्रजाल-माया शिक्षा करिथिब तपी से ।
बचनरे भाङ्गि दूत । बिभो ! मिथ्या नुहे सत हे । ८ ।

सरलार्थ—शार्दूल ने वहाँ से लौटकर रावण से कहा, "वानर लोग सारे भूलोक में फैल गये है।" यह सुनकर रावण ने कहा, "उस तपस्वी (रामचन्द्र) ने निश्चय ही जादू की विद्या सीखी होगी।" रावण की यह बात सुनकर, उस दूत ने कहा, "हे विभो! यह बात झूठी नहीं है, वरन् सच है। आप इसको असम्भव समझ रहे हैं क्यों ?" (८)

इन्द्रजाल—जादू, टोना। (८)

बीरतरु सम सामान्य बानर गिरीषम[1] गिरिसम[2] ।
बड़ बड़ ग्रेहि यूथपति सेहि कोप-अनळ जनम से ।
बोले दशास्य तु कबि । बक्षोरुहे मेरु भाबि हे । ९ ।

सरलार्थ—फिर उस दूत ने कहा, "उन वानरों मे जो सामान्य (क्षुद्राकार) हैं, वे अर्जुन वृक्षों के सदृश है। जो आकार में बड़े हैं, अर्थात् वानर-यूथप ग्रीष्मकालीन पर्वतो के सदृश हैं।" यह सुनकर रावण ने कहा, "तू एक कवि है। क्योकि जैसे कवि-लोग स्तन की मेरु के समान कल्पना करते हैं; उसी तरह तू भी वानरो की ग्रीष्म-कालीन पर्वतों के समान कल्पना कर रहा है।" (९)

बीरतरु—अर्जुनवृक्ष; गिरीषम[1] ग्रीष्म काल; गिरिसम[2]—पर्वत सदृश (यमक); दशास्य—दसमुखोंवाला रावण; बक्षोरुहे—स्तनों को; मेरु—मेरु पर्वत। (९)

बड़-भी[1] हृदे जनित व्याजदम्भ बड़भी[2] य़ाइ आरोहि।
विम्ब चन्द्र बिम्ब किरण य़हिँरे हेठ-वदनरे चाहिँ से।
बारिय़न्त्र परि यहिँ। बियतगङ्गाहिँ वहि हे। १०।

सरलार्थ—सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए रावण उन्हें बाह्य कपट-दम्भ अवश्य दिखा रहा था। परन्तु उसके हृदय में बड़ा भय उत्पन्न होने से उसने स्वयं चन्द्रशाला पर आरोहण-पूर्वक निहारा; जिस अटारी में चन्द्रमण्डल को आईने के रूप मे अधोमुख से देखना होता है और जहाँ स्वर्गगंगा का स्रोत जलयन्त्र के रूप मे बहता है। (अर्थात् उसका प्रासाद इतना ऊँचा है कि, उसकी चन्द्रशाला चन्द्रमण्डल के ऊपर तथा स्वर्गगंगा के समीप स्थित है।) (१०)

बड़भी[1]—अतिभय; व्याजदम्भ—कपट अभिमान; बड़भी[2]—चन्द्रशाला; (यमक) आरोहि—चढ़कर; बिम्ब—दर्पण, आईना; हेठ-वदनरे—झुके हुए मुख से; बारिय़न्त्र—जलयन्त्र; बियतगंगा—स्वर्गगंगा। (१०)

बितानर मोतिपन्ति तार[1] तार[2] उदय य़ा मध्यपुरे।
बिभाबसु फेरि गति करि मेरु प्रदक्षिण परकारे से।
बसि तहिँ अनाइला। वेगे दृष्टि मनाइला हे। ११।

सरलार्थ—जिस चन्द्रशाला पुर के मध्यभाग में वितान फैला हुआ है और वितान में मोती आदि विविध रत्न जड़े रहने से वह नक्षत्र-खचित आकाश की तरह उज्ज्वल तथा मनोहर दिखाई दे रहा है, और जिसकी ऊँचाई के कारण इस भय से कि कही मेरा रथ इससे टकरा न जाय, सूर्य अपने रथ को दूसरे मार्ग में घुमा लेते हैं, उसी अत्युच्च चन्द्रशाला पर खड़े होकर रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के सैन्यों की ओर दृष्टिपात किया और अपने मनको समझाया। (११)

बितान—चन्दवा; तार[1]—उज्ज्वल; तार[2]—तारे; (यमक); बिभावसु—सूर्य; प्रदक्षिण—घूमना। (११)

बिश्वसृक बिश्वय़ाक एक पट्ट करि कि कला चित्रित।
बदन कळा धळा रङ्गे रञ्जित बानरे य़णु पूरित से।
बिस्मये निःश्वास सान्द्र। बिचारे राक्षस-इन्द्र हे। १२।

सरलार्थ—यह देखकर कि पृथिवी काले, सफेद तथा लाल रंग से रंजितमुख बन्दरों से भर गयी है, रावण ने सोचा, "क्या विधाता ने जगत को एक चित्रपट करके उसको इन बन्दरों से चित्रित किया? फिर अनगिनत सैन्यों को देखकर विस्मय से उसकी साँसे गहरी हो गईं। क्या करना होगा, उसे कुछ भी नही सूझा। (१२)

विश्वसृक—विधाता, ब्रह्मा; विश्वयाक—सारे संसार को; पट्ट—चित्रपट; रञ्जित—चित्रित; सान्द्र—घना; राक्षस-इन्द्र—राक्षस-श्रेष्ठ रावण। (१२)

बोलि उत्तर द्वार मोर पश्चिमे रखिला इन्द्रजितकु।
बज्रदंष्ट्रकु निबेशिला पूर्बरे दक्षिणरे प्रशस्तकु से।
बाछि ये याहार प्रीति। बाण्टिनेले सैन्यपन्ति हे। १३।

सरलार्थ—अनन्तर रावण ने सैन्यों को बांटने जाकर कहा कि उत्तर द्वार मेरा ही है। उसने पश्चिम द्वार पर इन्द्रजित को रखा, पूर्व में वज्रदंष्ट्र और दक्षिण मे प्रशस्त को स्थापित किया। जिस (सेनापति) से जिन (सैन्यों) की प्रीति है, उन सैन्यो को उसी सेनापति के हवाले कर सैन्य-बिभाजन किया। (१३)

निबेशिला—स्थापना की; सैन्यपन्ति—सैन्य-समूह। (१३)

बाजी रथ गज साजि आरोहिले मनकु हृष्ट कुमारे।
बाण शरासन खड्ग चक्र गदा त्रिशूळ परिघ करे से।
बळिदिगकु उपर। बरिबा करि बिचार हे। १४।

सरलार्थ—इधर रावण के पुत्रों ने प्रसन्न मन से रथों, हाथियों तथा घोड़ों को सुसज्जित करके उनपर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार आरोहण किया; एवं धनुष, वाण, तलवारें, चक्र, गदा, त्रिशूल व परिघ आदि अस्त्र-शस्त्र हाथों में लिये यह विचार किया कि हम लोग पाताल को भी उलट-पलट कर देगे। (१४)

बाजी—घोड़े; गज—हाथी; शरासन—धनुष; बळि दिगकु—पातालपुर को। (१४)

बाहारि धून्य होइण ऋक्ष-सैन्य याइ पुण्यजन-पुर।
बेढि ए समये यथा हिमाळये अधोभागे जळधर से।
बिरब प्ळबग करे। बिदित घनोपळरे हे। १५।

सरलार्थ—इस समय में भालू सैन्यगण कम्पमान होकर निकल पड़े और विकट ध्वनि करके उन्होंने राक्षसों के लंकापुर को चारों ओर से घेर लिया, जैसे बादलो का समूह हिमालय के निम्न भाग को घेर लेता है। फिर मेघाच्छन्न काल में मेढक टर-टर करते हैं और ओले बरसते हैं। वैसे इसी समय भालू तथा वानर सैन्य ऊँचे स्वर से गर्जनपूर्वक हाथो मे बड़े बड़े पत्थर लेकर राक्षसों पर फेंकने लगे। (१५)

धून्य—कम्पमान; ऋक्षसैन्य—भालू-सैन्य; पुण्यजनपुर—राक्षसपुर लंका; जळधर—बादल, मेघ; बिरव—ऊँची आवाज; प्ळबग—वानर, मेंढक; घनोपळ—ओले। (१५)

बातज प्रखर अत्यन्त राजेन्द्र कोदण्ड उदित य़हिँ।
बिभीषण डाक चञ्चळा गतिरे सुमना प्रफुल्ल तहिँ से।
बिबेक कर बिदुष। बिजन्य रूपक श्ळेष हे। १६।

सरलार्थ—बरसात मे प्रचण्ड बतास या तूफ़ान उत्पन्न होता है, इन्द्रधनु प्रकाशित होता है, भयंकर मेघ-ध्वनि तथा बिजली की उत्पत्ति होती है और मालती फूल खिलते है। उसी तरह यहाँ पवनपुत्र हनुमान् ने प्रचण्ड मूर्ति धारण की है, श्रीरामचन्द्र जी का धनुप प्रकाशित हुआ है, विभीषण जी की ऊँची वीर-पुकार से सैन्यों की गति चंचल हुई है और देवलोग रावण की मृत्यु का विषय सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे है। हे पण्डित-कुल! यहाँ उत्पन्न रूपकों तथा श्लेषों के चमत्कार-पूर्ण अर्थों को समझिए। (१६)

बातज—बतास, हनुमान; राजेन्द्र कोदण्ड—इन्द्र-धनुष, श्रीरामचन्द्रजी का धनुष; उदित—प्रकाशित; चञ्चळा—बिजली; सुमना—देवता लोग, मालती फूल; बिबेक—ज्ञान, विचार; बिदुष—पण्डित; बिजन्य—जात। (१६)

बरगि सुग्रीब दक्षिणे, अङ्गद पूर्बे, मारुति पश्चिमे।
बिजे उत्तरे आपणे, य़ूथपति बाण्टि हेले एहि क्रमे से।
बिमान चढि राबणे। बिहायसरे भ्रमण हे। १७।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव को दक्षिण द्वार पर, अंगद को पूर्व द्वार पर और हनुमान् जी को पश्चिम द्वार पर भेज दिया एवं स्वयं अपने सैन्यों के सहित उत्तर द्वार पर अवस्थान किया। इसी तरह विभिन्न यूथपतियों में अपने-अपने सैन्यों को भी बाँट दिया। रावण ने इसी समय पुष्पक विमान पर चढ़कर आकाश मे भ्रमण किया। (१७)

बिहायसरे—आकाश में। (१७)

बिशेषरे मल्लि स्फुट होइगला महासन्ताप सञ्चरि।
बिल्लीन जीबन करिब परा ए तप-आचरण-धारी से।
बक्षरे य़े मणि स्थित। बिह्वळे ए पाञ्च कृत हे। १८।

सरलार्थ—रानण ने पुष्पक विमान में रहते हुए ऊपर से तपस्वी-वेशधारी श्रीरामचन्द्रजी को देखकर उनकी ग्रीष्मकाल से तुलना की। अर्थात् जैसे ग्रीष्म काल में मल्लीफूल खिलते है, बड़ी गरमी होती है और प्रचण्ड सूर्य की किरणों से जल के सूख जाने से प्राणी संतप्त होकर कष्ट पाते है, उसी तरह यह आशंका करता हुआ कि रामचन्द्र मेरे प्राणों का विनाश करेंगे रावण अत्यन्त ब्याकुल हुआ। अपने हृदय में स्थित अमोध-मणि को देखकर वह विमोहित हो उठा एवं मन में सोचा— (१८)

स्फुट—प्रस्फुटित, विकसित; सन्ताप—गरमी, व्याकुलता; बिलीन—विनष्ट, सूखा; जीवन—जल, प्राण; तप-आचरण-धारी—तपस्वी श्रीराम; ए पाञ्च कृत—मन में इच्छा की। (१८)

बिचारे अशेष सैन्य-सञ्चयकु एहिठारे बिहि बिहि।
बोलान्ति शाखामृग मूर्ख स्वभाबे देबप्राय होइ मोहि से।
बारि मरीचिका दृश्य। बिअर्थ मनुष्य बश हे। १९।

सरलार्थ—रावण ने अपने मन में विचार किया, "विधाता ने यहाँ अनगिनत सैन्यों को ला इकट्ठा किया है। ग्रीष्मकाल में मृग (हिरन) बड़ी प्यास से भ्रान्तिवशतः मरीचिका को जल समझ कर उसके पीछे दौड़ते है। उसी तरह ये मूर्ख वानर लोग भ्रान्तिवशतः मनुष्य रामचन्द्र जी को देवता समझकर उनके वश हुए है।" (१९)

बिहि—विधाता, विधान; शाखामृग—मृग, वानर; बारि—जल; मरीचिका—मृगतृष्णा; बिअर्थ—व्यर्थ। (१९)

बेभार बुड़ा अनुज मो मनुज शरण मारिबि आग।
बहन बहिबा गन्धबह गदा हस्तरु कला प्रयोग से।
बिपतित उल्कापरि। बायुपुत्र नेला धरि हे। २०।

सरलार्थ—फिर रावण ने सोचा, "मेरा कुलांगार छोटा भाई विभीषण एक नादान मनुष्य की शरण में गया, सुतरां सबसे पहले उसी का ही विनाश करूँगा।" यह सोचकर उसने विभीषण पर पवनदेवता से दी हुई गदा फेंक दी। हनुमान जी ने गदा को उल्का की तरह नीचे गिरते देख कूदकर शून्य से उसे पकड लिया। (२०)

अनुज—छोटा भाई; मनुज—मनुष्य; गन्धवह—पवन; वायुपुत्र—हनुमान्‌जी। (२०)

बोलन्ति जनाभिराम रामचन्द्र चन्द्रहासकु जन्माइ।
बळाहक बिना बिनाशनप्रभा भानु-भानु काहिँ पाइँ से।
बचस्मृत बिभीषण। बिळसे नभे राबण हे। २१।

सरलार्थ—जनों को सुख तथा शान्ति देनेवाले श्रीरामचन्द्र जी ने यह देखकर चन्द्रकिरण-तुल्य हास्य प्रकाशपूर्वक कहा, "विना मेघ के सूर्य की प्रभा कैसे विनष्ट हो गयी? अर्थात् विना मेघ के सूर्य कैसे ढक गये?" यह सुनकर विभीषण ने जरा से विस्मित होकर कहा, 'देखिए, रावण पुष्पक विमान पर चढ़कर आकाश मे विहार कर रहा है।' (२१)

जनाभिराम—जनसुन्दर, जन-सुखद; चन्द्रहास—चन्द्रकिरण-सी हँसी; बळाहक—मेघ; भानु-भानु—सूर्यकिरण। (२१)

बिमळ लक्ष श्वेतछत्र चामर एहि प्रमाणरे जाण।
बिरोधी होइछि आदित्य-प्रभारे लक्ष शङ्खशब्द शुण से।
बीरेन्द्र प्रहारि काण्ड। बिच्छेदिले छत्रदण्ड से। २२।

सरलार्थ—विभीपण ने कहा, "रावण के एक लाख निर्मल श्वेतछत्र और उसी परिमाण में चामर है। उन्हीं सब छत्रों तथा चामरों ने सूर्य की किरणों को छिपा दिया है। एक लाख शखों की ध्वनि भी सुनिए।" यह सुनकर वीरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने एक शर से छत्रों के डंडे काट डाले। (२२)

बिलळ—स्वच्छ; श्वेत छत्र—सफेद छाते; आदित्य—सूर्य; वीरेन्द्र—वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र ने। (२२)

बिहरि बिहरि चक्राङ्ग कि चक्रगति करि शून्युँ खसि।
बिद्ध हेबा शंका लंकापति लभि वाहुडि सभारे वसि से।
बेढि कउणपे तहिँ। बिबिध प्रतिज्ञा कहि हे। २३।

सरलार्थ—उन सब छिन्न छत्रों के गिरते समय ऐसा प्रतीत हुआ, मानो हंस चक्राकारगति तथा विहार करते हुए आकाश से खिसक रहे हों। वाण-प्रयोग मे श्रीरामचन्द्रजी की निपुणता देखकर रावण यह आशंका करता हुआ कि कही मै भी स्वयं इनके वाण से विद्ध होकर न मर जाऊँ, शीघ्र ही लौट गया और सभा मे जा वैठ गया। वहाँ राक्षस लोगों ने उसे घेरते हुए शपथपूर्वक नाना प्रकार की बाते वताई। (२३)

चक्रांग—हंस; कउणपे—राक्षस लोग। (२३)

बिबस्वान-बंशी आदेशे एकाळे आसि मुँ अङ्गद भणि।
बैदेही समर्प जीबे थिले आश मुठा-आज्ञा अछि आणि मुँ।
बोले लङ्केश ए पद। बिळम्बे हेबु अङ्गद रे। २४।

सरलार्थ—इस समय अंगद ने वहाँ पहुँचकर कहा, "सूर्यवंशी श्री रामजी के आदेशानुसार मैं यहाँ आया हूँ। अरे राक्षस! यदि तुझे अपने प्राणों की आशा है, तो सीता जी को लिये रामचन्द्र जी को सौप दे। मैं यह आज्ञा-पत्रिका लिये आया हूँ।" यह सुनकर लंकापति रावण ने कहा, "तू शीघ्र ही यहाँ से भाग जा, अन्यथा अंगद (अंगदायक अर्थात् प्राणदायक) होगा। (अर्थात् बिलम्ब करने से निश्चय ही तेरे प्राणों का विनाश करूँगा)।" (२४)

बिबस्वानवंशी—सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र; मुठा-आज्ञा—आज्ञा-पत्रिका; अंगद—अंग-दायक, विनष्ट। (२४)

ब्याख्यान कला युबराज न चिन्हु मोते बिशंचक्षु थाइ।
बणा मुँ ए घेनि तु केउँ राबण[1] राबण[2] करन्ति मुहिँ से।
बिधा प्रहारि एक्षणि। बिभु आज्ञा नाहिँ शुणि रे। २५।

सरलार्थ—यह सुनकर अंगद ने व्याख्यान (वर्णन) किया—"मैं किष्किन्ध्यापुर का युवराज हूँ। मुझे तू नहीं पहचान सकता? बीस आँखे होते हुए भी तू एक अन्धे के समान बातें कर रहा है। यह देखकर मैं वास्तव में भौंचक्का हो रहा हूँ। अगर मुझे इसका पता लग जाता कि तू कौन सा-रावण है, तो इसी क्षण तुझे घूँसा देकर राबण (रावयुक्त अर्थात् क्रन्दनयुक्त) कर देता। (अर्थात् घूँसे से तुझे रुला देता।) परन्तु इसके लिए मुझे प्रभु की आज्ञा न मिलने के कारण मैं इस काम में आगे नही बढ़ता हूँ।" (२५)

ब्याख्यान—समझाकर कहना; बणा—भौंचक्का; केउँ—कौन-सा; रावण[1]—राक्षसराज या किसी दूसरे व्यक्ति का नाम; रावण[2]—रवयुक्त, क्रन्दनयुक्त; (यमक); बिधा—घूँसा; बिभु—प्रभु (रामचन्द्र)। (२५)

बइश्रबण बोले केते राबण जाणु शुणिबा से कहि।
बाळि अर्ज्जुन भबगिरि पीडारे राबकु थिले ये बिहि से।
बामाचोरे अछि मृत्यु। बिबेक कर त के तु रे। २६।

सरलार्थ—अंगद के इन शब्दों से राक्षसराज रावण ने कहा, "जरा यह बता कि तू कितने रावणों को जानता है। मैं सुन लूँ।" अंगद ने उत्तर दिया—"मै उन रावणों को जानता हूँ जिन्होंने वानराधिपति बालि, सहस्रार्जुन एवं कैलास पर्वत के द्वारा पीड़ा-प्राप्त होकर ऊँचे स्वर से चीत्कार किया था। इनके अलावे एक नारी-चोर रावण भी है। उसकी मृत्युकी घड़ी आ पहुंची है। विचार कर तो इनमें से तू कौन-सा रावण है।" (२६)

बइश्रवण—विश्रवानन्दन रावण; अर्जुन—सहस्रार्जुन; भबगिरि—कैलास पर्वत; बामाचोर—स्त्री-चोर। (२६)

बेढाउँ से मल्लजाळकु चाळकु बधि जगतीचाळकु।
बहि गगने रामे य़ाइ कहिला से सन्देश सकळकु य़े।
बक्तमाळी ए समये। बञ्जुळबनकु याए से। २७।

सरलार्थ—अंगद से इन व्यंग्योक्तियों को सुनकर रावण ने अपने मल्लों को जालों की तरह अंगद के चारों ओर घेर दिया और उनका वध करने के लिए तैयार हुआ। परन्तु अंगद ने उक्त मल्लों को विनाशपूर्वक सभामण्डप की छत को हाथों में पकड़े आकाशमार्ग में गमन किया एवं श्रीरामचन्द्र जी के पास उपस्थित होकर उनको सारे

समाचार सुनाये। अंगद के ऐसे व्यवहारों से गुस्सा होकर रावण ने अपने अशोकवन में गमन किया। (२७)

वेढ़ाउं—घेराते; मल्लजाळकु—मल्ल-समूहों को; जगती-चाळकु—अटारी की छत को; बक्त्रमाळी—रावण; वञ्जुळवन—अशोक-वन। (२७)

बुहाइ मायाशिर बेनि असुर छेदन परा सेक्षणि।
बहइ रुधिर धार बसुधार सुताकु देखाइ भणि से।
बधिलि देबर बर[1]। बरारोहा मोते बर[2] हे। २८।

सरलार्थ—तदनन्तर रावण अभी-अभी कटे रक्तलिप्त दो कपट-मस्तक दो राक्षसों के हाथों मे पकड़ाकर पृथिवी-कन्या सीता के समीप उपस्थित हुआ और उन्हें दोनों सिर दिखाते हुए कहा, "यह देख, मैंने तेरे स्वामी तथा देबर दोनों का वध किया। अरी सुन्दरि! तू अब मुझे पति के रूप में वरण कर।" (२८)

माया-शिर—कपट-मस्तक; रुधिर—रक्त; वसुधार सुता—पृथिवी की कन्या सीता; बर[1] —पति; बरारोहा—वरांगना सीते!; मोते—मुझे; बर[2] —वरण कर; (यमक)। (२८)

बोलुँ देले चाहिँ फुल्ल पद्म दुइ जात सरस्वती नीर।
बिषे जर जर होइला पराये मुख गळ मनोहर से।
बिदेहजा शोभा-वन। बहिले सेहि विधान हे। २९।

सरलार्थ—रावण के ये वाक्य बोलते ही सीता ने उन दोनों सिरों की ओर ताका और देखा कि वे दोनो सरस्वती नदी के लाल रंग के जल में खिले दो कमलों के समान मनोहर दीख रहे है और उन सिरो के गले रक्त से लथपथ हो रहे हैं, मानो सरस्वती नदी में पद्मों की नालें रक्त-वर्ण जल से लथपथ हो रही हों। यह देखकर सीता का मुख वन-मरु-प्रान्तर की तरह हो गया। (अर्थात् उन दो सिरों को देखकर सीता का वदन सूख गया।) (२९)

फुल्ल—प्रस्फुटित; बिषे—पद्मनाल में; बिदेहजा—सीता। (२९)

बिराजित होइथिला कुन्ददन्ती वहिला हिमन्त आणि।
बुहाइला जळ मातुळुङ्ग स्थळ शोक परिबार आणि से।
बीर डाक कपि डाकि। बितर्कि जानकी ए कि हे। ३०।

सरलार्थ—हेमन्त ऋतु में कुन्दों व दन्ती वृक्षो और नाना जातीय पक्षियों से अरण्य विमण्डित होता है। वैसे श्रीरामचन्द्रजी की आगमन-वार्त्ता सुनकर कुन्ददन्ती सीता ने कान्तियुक्ता तथा विभूषिता होकर हेमन्त

ऋतु की मर्यादा प्राप्त की थी। परन्तु रावण की वाणी सुनकर उन्होंने शोक प्रकाश किया। इस शोक ने उनकी आँखों से उनके वक्षस्थल पर स्थित बिजौरों के सदृश स्तनमण्डल पर आँसू बहाये, मानो हेमन्त ऋतु में लोग बिजौरों के पौधों को जल से सींच रहे हों। (अर्थात् रोने से सीता का वक्ष अश्रुजल से भीग गया।)

इस समय वानरों ने वीरत्व-व्यञ्जक-ललकार दी। वह सुनकर सीता ने अपने मन में तर्क किया, "यह कौन सा शब्द है? अर्थात् अगर श्रीराम-लक्ष्मण जी के सिर कटते, तो क्या वानर लोग ऐसा शब्द कर सकते? अतएव यह झूठा है।)" (३०)

बिराजित—पक्षियों से मण्डित; कुन्ददन्ती—कुन्द और दन्ती वृक्ष, कुन्द पुष्पों के समान दाँतोंवाली सीता; (श्लेष); आणि—मर्यादा, गौरव, आन; मातुळुंग—बिजौरा। (३०)

बाहुजबर आदेशे हनुमान सुग्रीब अंगद भाषे।
बाट न पाइ कपाट आण्ट घेनि प्राकारे उठिले कोशे से।
बिशबाहु पाशे चार। बारता कहुँ सत्वर हे। ३१।

बर्त्मे पकाइ दिआइ मायामुण्ड लज्जिते गला बाहुड़ि।
बिभाबसुर प्रकाश केतेबेळे आच्छादि पारे कुहुड़ि से।
बसन्ते बदनपद्म। बिकाशे हरषसद्म हे। ३२।

सरलार्थ—क्षत्रियश्रेष्ठ रामचन्द्रजी के आदेशानुसार जब हनुमान् जी ने सुग्रीव तथा अंगद आदि सेनापतियो से रावण के कपट के बारे में बताया, तब उन लोगों ने बानर-सेना को साथ लिये गढ़ के दरवाजे तोड़कर अन्दर घुसने के लिए कोशिश की। परन्तु दरवाजों की मजबूती के कारण अन्दर घुसने के लिए मार्ग न पाकर परकोटे पर चढ़ने लगे। जब दूतों ने यह खबर रावण को सुनाई, तब उसने उक्त माया-मस्तक दोनों को पथ पर फेक दिया और मारे शरम के घर लौट आया। क्या कुहरा ज्यादा समय तक सूरज को ढक सकता है? (अर्थात् नहीं।) वह जैसे शीघ्र लीन हो जाता है, और सूरज की किरणें स्वतः प्रकाशित होती है, उसी तरह रावण की माया अचानक लीन हो गई और सीता का वदन-कमल खिलकर आनन्द-स्थल बन गया, मानो वसन्त में कमल का फूल खिल उठा हो। (३१, ३२)

बाहुजबर—क्षत्रियश्रेष्ठ (रामचन्द्र); प्राकारे—परकोटे पर; कोशे—वानर लोग; बर्त्मे—मार्ग में; बिभावसु—सूर्य; कुहुड़ि—कुहरा; बदन-पद्म—मुख-पद्म; हरष-सद्म—आनन्द का गृह। (३१, ३२)

बिनाश अश्रु तुषार बृष्टि हेला प्रकट कोकिळवाणी।
बोइले त्रिजटाकु एड़े कपट रात्रिमट हेले जाणि से।
बिश्वजय केते मात्र। बिह्वळाइ मोर चित्त हे। ३३।

सरलार्थ—शीतकाल के बाद वसन्त ऋतु के आगमन में जैसे शिशिर-पात बन्द हो जाता है और कोयल की बोली सुनाई पड़ती है, उसी तरह सीता का अश्रुपात बन्द हो गया और उनके मुख से कोयल की-सी वाणी निकली। उन्होंने त्रिजटा राक्षसी से कहा, "ये राक्षस लोग इतना कपट जानते है ? संसार को जीतना इनके लिए कौन बड़ी बात है ? (अर्थात् ये लोग मायाबल से आसानी से संसार को जीत सकते है। उनकी माया ने मेरे अटल चित्त को भी विचलित कर दिया। (३३)

रात्रिमट—निशाचर, राक्षस। (३३)

बीर महाबीर एहि समयरे सेना सेनापति संगे।
बिहरिले रणरङ्गरे राक्षस ऋक्ष कपि मिशि रङ्गे से।
ब्यबस्थिते दशशिर। बन जगाइ सीतार हे। ३४।

सरलार्थ—इसी समय वीरों तथा महावीरों ने सेनापतियों के साथ युद्धाडम्बर में विहार किया। सुतरां राक्षस और भल्लुक तथा वानर सैन्य युद्धभूमि में शान से मिल-जुल हो गये। उस समय रावण ने यह शंका करके कि वानर लोग अशोकवन जाकर कहीं सीता को न चुरा लें, बन में नियमित ढंग से राक्षसियों के द्वारा सीता की चौकसी करादी।(३४)

रणरंगरे—युद्धाडम्बर से; ऋक्ष—भालू; ब्यबस्थिते—नियमित रूप से; जगाइ—चौकसी कराके। (३४)

बिपतन गुळि मुद्‌गर पथर[1] पथर[2] सङ्गर बशे।
बिभीषण शर करका पतन नीरद पराये दिशे से।
बिश्वाए भय उभय। बळे[1] नाहिँ बळे[2] लय हे। ३५।

सरलार्थ—युद्ध के वश में गोलियों, मुद्‌गरों तथा पत्थरों ने विशेष रूप से पड़कर मार्गों को रुद्ध कर दिया। (अर्थात् इन सब अस्त्र-शस्त्रों से पथ बन्द हो गये।) विभीषण मेघ के सदृश काले रंग का था। इसलिए उसके चलाये शर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो मेघ से ओले बरस रहे हों। दोनों पक्षों के सैन्यसमूह हृदय में तिलभर भी भय न करके अपने-अपने पराक्रम पर निर्भरपूर्वक युद्ध करने लगे। (३५)

बिपतन—विशेष रूप से पड़कर; पथर[1] —पत्थर; पथर[2] —मार्ग का; (यमक) सङ्गर—युद्ध; करका—ओले; नीरद—मेघ; बिश्वाए—रंचमात्र; बळे[1] —सेना में; बळे[2] —पराक्रम पर; (यमक); लय—लगन। (३५)

बिछेदिले के करबाळ[1] ग्रोगरे केहि कले करबाळ[2]।
बिदारि यूथपतिङ्कि सेनापति दैत्ये भल्ले भुषि भल्ल से।
बिन्धाण मल्ल मल्लरे। बोलाबोलि से मल रे हे। ३६।

सरलार्थ—युद्ध में दोनों पक्षों के सैन्यों मे से किसी ने विरोधी पक्ष के किसी को तलवार से काट दिया तो किसी ने किसी के बाल खींचकर उसे घसीट डाला। सेनापतियों ने यूथपों को नाखूनों से विदीर्ण कर दिया। राक्षसो ने भालुओं को भालों से बेध डाला। मल्लों में मल्लयुद्ध हुआ। और भी दोनों पक्षों के सैन्य एक दूसरे से 'तू आज मरा, आज ही मरा' कहने लगे। (३६)

बिच्छेदिले—छेदन किया; करबाळ[1]—तलवार; करबाळ[2]—हाथों में बाल पकड़ कर; (यमक); यूथपतिङ्कि—सेनापतियों को; भल्ले—भालू। (३६)

बाजी[1] बाजि[2] तहिँ केतेक केतक छबि सम्भबि ये ढळि।
बधि बाजी[3]-राजि राजिला के बहि सत्वरे महिष झळि से।
बर्षार कीलाल[1] परि। बहे कीलाल[2] सँञ्चरि हे। ३७।

सरलार्थ—केतकी के फूल खिलने पर झुक पड़ते है। उसी तरह कई सैन्यों के शरीरों में शरों की नोकें बिध जाने से वे लोग मुँह नीचा करके झुक पड़े। कोई-कोई शीघ्र ही घोड़ों का वध करके भैंसों की शोभा धारणपूर्वक प्रकाशित हुए। सैनिकों के शरीरों से रक्त की धाराएँ छूट चली, मानो बरसात में जल की धाराएँ बह चल रही हों। (३७)

बाजी[1]—शर; बाजि[2]—बज कर, बेधकर; केतक—केवड़े के फूल; बाजी[3]-राजि—अश्वसमूह; (यमक); राजिला—प्रकाशित हुआ; कीलाल[1]—जल; कीलाल[2]—रक्त; (यमक); सञ्चरि—क्षरकर। (३७)

बिख्यातक मार समस्ते दर्पक अनङ्ग होइले केते।
बिघ्नित होइले मकरकेतन लक्षित सकळमते से।
ब्यक्त कामभबजये। बिरोध स्मरपर्यायि हे। ३८।

सरलार्थ—युद्ध में कई अभिमानी वीरों ने घमंड के साथ 'मार' 'मार' (कन्दर्प) अर्थात् 'मारो', 'मारो' ध्वनि व्यक्त की। कई अनंग (कन्दर्प)—अर्थात् अंगरहित (विकलांग) हुए और मकर व केतन (मकरकेतन-कन्दर्प) नामक दोनों असुर विघ्नित हुए। (अर्थात् विनाश को प्राप्त हुए।) युद्धभूमि में ऐसे शवों तथा विकलांगों को देखकर रथियों के मन में अपने-अपने कामभव (कन्दर्प)—मनोरथ, अर्थात् जय के बारे में आशा का संचार हुआ। कवि ने इसी प्रकार कन्दर्प के 'क', 'मार',

'दर्पक', अनंग', 'मकरकेतन', 'काम' एवं 'भवजय' आदि नामों का भिन्न-भिन्न अर्थों में क्रमशः प्रयोग किया। (३८)

विख्यातक मार—'मारो' 'मारो' शब्द सुनाई पड़े; दर्पक—अभिमानी वीर, (कन्दर्प); अनंग—अंगहीन (कन्दर्प); विघ्नित होइले—विनाश को प्राप्त हुए, विनष्ट हुए; मकरकेतन—राक्षस विशेष (कन्दर्प); कामभव जये—जयके विषय में उत्पन्न मनोरथ; काम—कन्दर्प; स्मर पर्य्यायें—क्रमानुसार 'कन्दर्प' नाम। (३८)

व्याघ्र परि रणे बज्रदंष्ट्र धनु-प्रशस्त[1] प्रशस्त[2] दिशि।
बृक परि बेढ़ि सेनापतिमाने बृकोदरपुरे पेषि से।
बिलोके कुरङ्ग हेले। बळी येते रक्ष थिले हे। ३९।

सरलार्थ—युद्ध में व्याघ्र के समान बलवान् वज्रदंष्ट्र एवं धनुर्विद्या में पारदर्शी प्रशस्त इन दोनों सेनापतियों को वानर-सेनापतियों ने घेर लिया, जैसे बाघ को भेड़िये घेर लेते हैं, और यमपुर को भेज दिया। (अर्थात् विनाश किया।) यह देखकर अन्यान्य असुरगण मृगों की तरह चंचल हुए। (अथवा कुत्सित स्वभाव वहन किया।)—अर्थात् हीन-पराक्रम होकर भाग गये। (३९)

बज्रदंष्ट्र—राक्षसविशेष; धनुप्रशस्त—धनुर्विद्या में निपुण; प्रशस्त—राक्षस विशेष; बृक—कुत्ते की जाति के जंगली जानवर, भेड़िये; बृकोदर—यम; पेषि—भेजकर; कुरंग—मृग, बुरी आदत; बळी—वलिष्ठ। (३९)

बीरचन्द्र इन्द्र-अरातिकि धनु भगने एक डिआइँ।
बिचित्र नोहे कि कुम्भस्थाने रखिथान्ते राहुभूति देइ से।
बिनाशन सैन्य येते। बुझिबे ता चित्रगुप्ते हे। ४०।

सरलार्थ—वीर-चूड़ामणि श्रीरामचन्द्र जी के इन्द्रजीत का धनुष तोड़ते, वह एक ही छलाँग में जाकर हस्ती के मस्तक पर बैठ गया। यह देखकर सभी ने विस्मित होकर कहा, "वह यदि इधर न बैठकर कुम्भ राक्षस के एक ही ओर बैठता, तो श्रीरामजी ने उसे राहु की सपत्ति दी होती। (अर्थात् राहु के सिर की तरह उसके सिर को छिन्न किया होता।) युद्ध मे उस दिन कितने सैन्य खेत रहे, उन्हें सिवाय चित्रगुप्त के कोई दूसरा गिन नही सकता। (अर्थात् उस दिन युद्ध में बहुसंख्यक सैन्यों का विनाश हुआ।) (४०)

वीरचन्द्र—रामचन्द्र; इन्द्र-अराति—इन्द्रजित; कुम्भस्थाने—हाथी के सिर पर, कुम्भ राक्षस के एक ओर; (श्लेष); राहु-भूति—राहु की सम्पत्ति, सिर काटना। (४०)

बातपोत तरु स्फुटप्राय सर्बे एकाळे रघुनन्दन।
बेळास्त अनाइँ द्विबिदकु पेषि बाहुड़ाइ नेले सैन्य से।
बाजुअछि रामताळि। बेगे सुबेळरे मिळि हे।४१।

सरलार्थ—उस दिन युद्ध में सैन्य लोग विकसित पलाश वृक्षो की तरह रक्तवर्ण दिखाई पड़े। (अर्थात् सैन्यों के शरीरों से रक्त बहने से वे लोग विकसित पलाश वृक्षो की तरह रक्तवर्ण दिखाई दे रहे थे।) तब सूर्यास्त देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने सैनिको को लौटा लाने के लिए द्विविद नामक कपि-सेनापति को भेजा। द्विविद ने जाकर वानरों को पुकारा तो वे लोग विजय के उपलक्ष में 'राम' नाम रूपी मनोहर करताली बजाते हुए शीघ्र ही सुवेल पर्वत पर लौट आये। (४१)

बातपोत तरु—पलाश वृक्ष; स्फुट प्राय—विकसित होने की तरह; बेळास्त—सन्ध्या; रामताळि—'राम' नाम पर करतालियाँ। (४१)

बढ़ाइले देबनदीरे समस्ते स्नान कले फळाशन।
बइश्रबण श्रबण करि सेनापतिङ्क नाश बिमन से।
बोले भञ्ज उपइन्द्र। बयाळिश पदे छान्द हे।४२।

सरलार्थ—अनन्तर सैन्यों ने देवनदी में स्नान-पूर्वक जंगली फलों का भोजन किया। उधर सेनापतियों का निधन-समाचार पाकर रावण बड़ा खिन्न हुआ। कवि उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द को बयालीस पदों में रचा। (४२)

देवनदी—लंका की एक नदी; फळाशन—फलों का भोजन; बिमन—खिन्न-मन। (४२)

॥ इति एकचत्वारिंश छान्द ॥

द्विचत्वारिंश छान्द

राग—कौशिक

बुझ बुध युद्ध न पाइला जन प्रतिज्ञारे उठे जळि ।
बर्त्तन्ते आज कि कपिगण रणमध्ये आम्भे थिले मिळि से ।
बोले । बीरमाने राजा नाश कले ।
बेढ़े गड़े याहाटि रखिले । १ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! इसे विचार करें । रावण के जो सैन्य युद्ध में नही गये थे, उन लोगो ने क्रोधपूर्ण प्रतिज्ञा मे जलते हुए कहा, "यदि हम लोग आज युद्ध में जाते, तो वानर लोग क्या आज बच सकते ?" (अर्थात् नही ।) यह सुनकर गये हुए वीरों ने कहा, "चूंकि राजा ने सैन्यमण्डल को गढ़ मे भर रखा, स्थानाभाव के कारण हम लोगों का सर्वनाश हुआ । इसी वजह से हम लोगो का बल-विक्रम प्रकाशित नही हो सका । सुतरा राजा ही हमारे पक्ष के सैन्यों के नाश के कारण बने ।" (१)

बुध—हे पण्डितो; वर्त्तन्ते—क्या बच सकते ? जीवित रह सकते क्या ?; (१)

बाजी झपटकु गज चहटकु स्थान नोहि यन्तायन्ति ।
बुलिला नाहिँ त अस्त्र-शस्त्रमान ए घेनि येतेक हति से ।
बोले । बिशलोचन रात्र पाहिले ।
बिजे करिबि बिस्तार स्थळे । २ ।

सरलार्थ—"घोड़ो को दौड़ाने तथा हाथियों को चलाने के लिए स्थान न होने से वे सब ठसाठस रह गये और स्थानाभाव के कारण वीर लोग अस्त्र-शस्त्र चला नहीं सके । इसलिए जो सब सैन्य विनष्ट हुए, उसके लिए हम क्या कर सकते ? (अर्थात् वह हमारा दोष नही है ।") यह सुनकर रावण ने कहा, "रात बीतने पर मैं तुम लोगों को अपने साथ लेकर एक विस्तृत रणांगन में विराजूंगा । तभी तुम लोगों की बहादुरी का पता लग जाएगा ।" (२)

झपटकु—दौड़ाने के लिए; चहटकु—चलाने के लिए; यन्तायन्ति—ठसाठस; विस्तारस्थळे—विस्तृत स्थान में । (२)

बिनिद्रे मोदे बिषादे निशि नेले उषारु समरे साजे ।
बदनचहळे मदनसुन्दर प्रसन्न श्वसनात्मजे से ।
बोले । बिक्रम तु लङ्का आउ बेळे ।
ब्रह्मशर निअ करतळे । ३ ।

सरलार्थ—रावण से यह सुनकर साहसी सैन्यों ने (युद्ध में न गये हुए) आनन्द से एवं कायरों ने (युद्ध में गये हुए) विषाद से रात बिताई । (अर्थात् साहसी सैन्य रात में सुख से सोये एवं कायर सैन्य अपनी पराजय की बात सोचते हुए जगे रहे ।) सुबह होते ही वीर सैन्यों ने युद्ध की तैयारियाँ की । सैनिकों की मुख-ध्वनि सुनकर मदनसुन्दर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान् से प्रसन्न होकर कहा, "तुम यह ब्रह्मशर हाथ में लेकर और एक बार लंका जाओ ।" (३)

बिनिद्रा रे—अनिद्रा से; मोदे—आनन्द से; बिषादे—दुःख से; बदन चहळे—सुख की ध्वनि से; मदनसुन्दर—श्रीरामचन्द्र; श्वसनात्मज—हनुमान; बिक्रम—जाओ । (३)

बिधान कराइ करुणानिधान सुषेणे चिटाउ देले ।
बसिछि जगती उपरे रावण हनुमान याइ मिळे से ।
बीर । बोले उठ उठ बिंशकर ।
प्रभु आज्ञा घेनि लगा शिर । ४ ।

सरसार्थ—करुणानिधान श्रीरामचन्द्र जी ने सुषेण के द्वारा यथाविधि चिट्ठी लिखाकर, हनुमान् जी को वह चिट्ठी दी । हनुमान् जी चिट्ठी तथा ब्रह्मशर दोनों को लेकर उस वक्त रावण के समीप जा पहुँचे, जब कि वह अट्टालिका पर बैठा हुआ था और उससे बोलने लगे, "अरे विंशकर ! उठ उठ; प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा-पत्रिका यह ले और इसे अपने माथे पर लगा । (अर्थात् ससम्मान प्रभु की आज्ञा-पत्रिका पढ़कर इसका पालन कर ।)" (४)

बिधान कराइ—लिखाकर; करुणानिधान—दयालु श्रीरामचन्द्र; जगती—अटारी । (४)

बैदेही न समर्पिले मृत्यु एथि चिह्नथा मार्गण[1] एहि ।
बोले रावण मार्गण[2] बोलि ताकु आगुँ चिह्ने चिह्न देइ रे ।
बाइ । बोलि हेजि पारिनाहुँ तुहि ।
बेळे बळे मागि पठिआइ । ५ ।

सरलार्थ—तदनन्तर, हनुमान् जी ने रावण को श्रीराम-प्रदत्त ब्रह्मशर दिखाकर उससे कहा, "अरे राक्षस ! तू यदि शीघ्र ही सीता को

रामचन्द्र जी के हाथ प्रत्यर्पण न कर दे, तो इसी से ही तेरी मृत्यु होगी। इसी ब्रह्मशर को भली भाँति पहचान रख।" यह सुनकर रावण ने उत्तर दिया, "मुझे पहले से ही इस बात का पता है कि तेरा प्रभु एक भीखमंगा है। तू बावला है, इसी वजह से कुछ जान नही पाता। वह जो बार-बार सीता को मगवा भेज रहा है, इससे परिचय मिलता है कि वह निश्चय ही एक भीखमगा है।" (५)

बैदेही—सीता; मार्गण[१]—शर; मार्गण[२]—भीखमंगा; (यमक); बाइ—बावला, पागल; बेळे बेळे—बार-बार। (५)

बार्त्ता य़ा लेखिछि आज्ञापत्र नोहे जणाण से देइथिब।
ब्रह्मनप्ता-सुत कुबेर मो भ्रात पुत्र जिणिछि बासब रे।
बाइ। बनबासी से ता दूत तुहि।
बोरे शुणिबा पढ़ शुभाइ। ६।

सरलार्थ—रावण ने आगे कहा, "उसने जो वार्त्ता लिखी है, वह उसका आज्ञा-पत्र नहीं है। उसने एक प्रार्थना-पत्र (अर्जी) दिया होगा। मेरे प्रति उसकी प्रार्थना स्वाभाविक ही है। क्योंकि मैं ब्रह्मा के नाती का पुत्र हूँ। सुतरां मैं जाति में श्रेष्ठ हूँ। धनपति कुबेर मेरा भाई है और मेरे ज्येष्ठपुत्र (इन्द्रजित) ने अपने पराक्रम से इन्द्र को जीता है। अतएव मैं सभी का पूज्य हूँ। वह एक जंगली मनुष्य है, तू फिर उसका दूत है। जो हो, तू जरा जोर से सुनाकर वह पत्र पढ़। मैं सुन लूँ, उसमे क्या लिखा हुआ है।" (६)

जणाण—अर्जी, प्रार्थना-पत्र; ब्रह्मानप्तासुत—ब्रह्मा के नाती का पुत्र; बासब—इन्द्र; शुभाइ—सुनाकर। (६)

बसे समाने लांगुळ चक्राकृते पठन श्ळेष बचन।
बपुबन्त नामे राम बोलाउछुँ राजराजप्रभा घेन से।
बळि। बिमर्द्दने आम्भे गुणशाळी।
बिधिपूर्बे दर नाशे भळि। ७।

सरलार्थ—यह सुनकर हनुमान् जी ने अपनी पूँछ को चक्राकार कर दिया और रावण के सिंहासन के समान उच्चासन पर बैठकर श्लेष में लिखित दो-अर्थवोधक उस पत्र का पाठ किया।

प्रथमार्थ—हमने मनोहर रूप धारण किया है। सुतरां हमारा नाम रामचन्द्र हुआ है। हममें चक्रवर्त्ती के सारे लक्षण तथा तेज विद्यमान हैं। फिर हमने अपने पराक्रम से बलवान वीरों को जीत लिया है। इसलिए हम शौर्यादि गुणों से सुशोभित है। विधिपूर्वक दुष्टों का विनाश करके

संसार का भय दूर करने के लिए हमारा प्रकाश हुआ है। तुम ये सारी बातें मन में विचार करो।

द्वितीयार्थ—हम स्वयं परंब्रह्म नारायण हैं। परन्तु सुन्दर नरशरीर धारणपूर्वक हमने परशुराम तथा राम—ये दो नाम वहन किये हैं। दोनों अवतारों में हमने क्षत्रिय का तेज धारण किया है। इनके अलावा वामनावतार में बलि नामक दैत्य को एवं मीनावतार में शखासुर का विनाश करने के लिए हम मर्त्यधाम में अवतरित हुए थे। (७)

वपुवन्त—मनोहर देहवाला, सुन्दर नरदेहवाला; राम—रामचन्द्र तथा परशुराम; राजराजप्रभा—चक्रवर्त्ती, क्षत्रिय-तेज; बळि—(बली)-बलवान, बलिराजा; दरनाशे—संसार का भय नाश करने के लिए, शंखासुर का विनाश करने के लिए; (श्लेषालंकार)। (७)

बदन्ति त्रिपुरबिजयी आम्भङ्कु नरसिंह तेबे एबे।
बसुन्धरा-शिरी सीता-रम्य-प्रेमरसरे बश स्वभाबे से।
बदे। बड लाज राबणारि पदे।
बेनि अर्थ य़ेणु न सम्पादे। ८।

सरलार्थ—प्रथमार्थ:—"त्रिपुर-विजयी (त्रिपुर राक्षस के विजेता) महादेवजी हमारी वन्दना करते है। तब (हिरण्यकशिपु-विदारण के काल में) नरसिंह (नृसिंह) के रूप में हम अवतीर्ण हुए थे। पूर्वकाल में वसुन्धरा (पृथिवी) के सिता (शर्करा) तुल्य प्रेमरस से स्वभावत: वश होकर हमने उसकी श्रीवृद्धि की थी। (अथवा वराहावतार में हमने पृथिवी को दन्ताग्र में धारणपूर्वक उसकी शोभा वृद्धि की थी।"

द्वितीयार्थ:—"आज चूँकि हम त्रिभुवन-विजेता और नरश्रेष्ठ हैं, इसलिए सभी हमको त्रिपुरविजयी और नरसिंह कहते है। वसुन्धरा की श्री (लक्ष्मी या हम शोभा-स्वरूपा सीता) के मनोहर प्रेम-रस से वश हुए हैं।"

मै बोल रहा हूँ—"तेरा वध करूँ तो केवल एकार्थवाचक रावणारि (रावण का शत्रु) कहलाऊँगा और केवल इसी पद से मुझे लज्जा होगी। क्योंकि पूर्वोक्त की तरह यह 'रावणारि' शब्द दो अर्थो का संपादन नहीं करता।" (८)

त्रिपुर-विजयी—त्रिपुर राक्षस के विजेता महादेवजी; त्रिभुवन—बिजेता; नरसिंह—नृसिंह अवतार, मनुष्य-श्रेष्ठ; बसुन्धरा-शिरी सीता—पृथिवी के शर्करातुल्य प्रेम रस से, पृथिवी की लक्ष्मी-स्वरूपा सीता के प्रेम-रस से; वदे—बोल रहा हूँ; (श्लेष)। (८)

बोइला रावण जाणिलि जटिळ होइछि प्रकाशे तहिँ।
बिजयी रणे मुँ बिजय करुछि आज थाउ सज होइ ता।
बोले। बेगे बिक्रम नभोमण्डळे।
बायुपुत्र रामपाशे मिळे। ९।

सरलार्थ:—यह सुनकर रावण ने कहा, "तेरा रामचन्द्र जटिल (जटाधारी) है। इसलिए उसने अपनी लिखावट मे भी जटिलता (कपटाचरण) दिखलाई है। मैं हमेशा युद्ध में विजयी होता हूँ। आज ही युद्ध क्षेत्र में विजय (अभियान) कर रहा हूँ। राम से बोलना—वह युद्ध के लिए सुसज्जित होकर रहे।" रावण की ये बाते सुनकर हनुमान्‌जी पवनवेग से आकाशमार्ग में गमनपूर्वक रामचन्द्र जी के समीप पहुँचे। (९)

जटिळ—जटाधारी, कपटाचरण; (श्लेष)। (९)

बिग्रह बचनमानङ्कु कहन्ते सुग्रीब सैन्य सजाइ।
बाजणिआ-बळ लङ्कारु बाहार एकाळे बाद्य बजाइ से।
ब्यापे। बळ साजि कि मेघ कळपे।
ब्यक्त थिले दुर्ग नगाधिपे। १०।

सरलार्थ—रावण की यह बात कि मै सीता को वापस नहीं दूँगा, बल्कि युद्ध करूंगा, हनुमान् ने जब प्रभु, सुग्रीव आदि के सामने प्रकाश की, तब सुग्रीव ने सैन्यो को सजाया। इस समय बाद्यकारी-सैन्य नगाड़े, दुंदुभियाँ आदि बजाते हुए लंका से रवाना हुए। जैसे मेरु पर्वत से मेघ-समूह निकलकर चारों ओर फैल जाते है, उसी तरह मेरुपर्वत सदृश लंकागढ़ से सैन्यलोग सुसज्जित होकर निकल पड़े और चारों ओर फैल गये। (१०)

बिग्रह—युद्ध; बाजणिआबळ—बाद्यकारी-सैन्य, कळपे—समूह; दुर्ग-नगाधिपे—लंकागढ़ सदृश मेरुपर्वत से। (१०)

बइजयन्ती पीत स्वत: बिद्युत परि प्रकट से संगे।
बरहिणगण नृत्य कला प्राय आसन्ति पदाति रंगे से।
बाजे। बिद्य घण्टि शामुक समाजे से।
बदाउ कि पक्षकम्प साजे। ११।

सरलार्थ—उन लोगो में फहरती हुई पीली पताकाएँ मेघमाला में स्वत: बिजलियों की तरह प्रतीत हुई। पैदल सिपाही लोग युद्धाडम्बर देखकर कौतुक से नृत्य करते हुए आये, मानो मयूर मेघाडम्बर देखकर कौतुक से नाच रहे हों। चलते समय उनकी कमरों में लटकी घंटियों की ध्वनि

सीपों की ध्वनि तथा बदाउ नामक अस्त्रों का कम्पन पक्षियों के पंखों के कंपन के समान प्रतीत हुई। (११)

वइजयन्ती—वैजयन्ती, पताका; पीत—पीला; बरहिणगण—मोरों का समूह; रङ्गे—कौतुक से; बद्य—प्रकाशित; बदाउ—अस्त्रविशेष। (११)

बार्द्धिए एमन्त बुद्धि प्रकटित स्यन्दन कुम्भी तुरङ्गे।
बहित्र कुम्भीर महामीनमान गति करन्ति कि रङ्गे से।
बीजी। बारसादी सदृश बिराजि।
बास उष्णीष हिण्डीर साजि। १२।

सरलार्थ—रावण की चतुरंग सेना को देखकर प्रतीत होता है कि मानो यह एक समुद्र हो। क्योंकि समुद्र में जैसे पोत, घड़ियाल और बड़ी-बड़ी मछलियाँ आदि जलचर जीव सुशोभित होते है, वैसे इस सेना में रथ, हाथी तथा घोड़े आदि क्रीड़ा करते हुए जा रहे है। इसमें घुड़सवार शोभा पा रहे है मानो समुद्र में पक्षी शोभित हो रहे हों और भी इसमें वस्त्र तथा पगड़ियाँ फेनों के सदृश शोभा पा रही है। (१२)

बार्द्धि—वारिधि, समुद्र; स्यन्दन—रथ; कुम्भी—हाथी; तुरङ्गे घोड़े; बहित्र—पोत; कुम्भीर—घड़ियाल; महामीनमाने—बड़ी-बड़ी मछलियाँ; वाजी-वार—पक्षी समूह; सादी—घुड़सवार; बास—वस्त्र, कपड़े; उष्णीष—पगड़ियाँ; हिण्डीर—फेन; (उपमालंकार)। (१२)

बारिब्याळजाळ कच्छप मञ्जुळ साबेळी आड़णी बहि।
ब्युतपत्ति हुए भ्रमे चक्राकृति पुच्छन्ति श्रीराम चाहिँ ए।
ब्यूह। बिधानरे श्रेष्ठ के के कह।
बिराजन्ति यथा महाग्रह। १३।

सरलार्थ—जल में ढोंढ और कछुए मण्डलाकार गति में घूमते समय जैसे सुहावने दीखते है, वैसे सैनिकों के हाथों में भाले तथा ढाल आदि सुन्दर दिखाई दिये। यह देखकर रामचन्द्र ने विभीषण से पूछा, "रावण के इन सैन्यों में जो सूर्यो के समान विराज रहे हैं, उनमें कौन-कौन श्रेष्ठ वीर हैं? मुझे पहचनवा दो तो।" (१३)

बारिब्याळ-जाळ—ढोंढों का समूह; कच्छप—कछुए; साबेळी—अस्त्र विशेष; आड़णी—ढाल; ब्युत्पत्ति—जात, उत्पन्न; ब्यूह-सैन्यों का समूह; महाग्रह—सूर्य। (१३)

बिभीषण भणि शुण रघुमणि काहाकु करिबि तुच्छ।
ब्रह्माण्ड एके एके जिणि पारन्ति अष्टादश गण्डा बत्स हे।
बीर। बज्रिजित प्रथम कुमर।
बारिदरु जन्मि रड़ि घोर। १४।

सरलार्थ—विभीषण ने यह सुनकर कहा, "हे वीर ! मैं यह नहीं समझ सकता कि उपस्थित सैन्यों में से कोई पराक्रम में हीन हो। क्योंकि रावण के अठारह गण्डा (१८×४=७२) पुत्रों में से हर एक ब्रह्माण्ड को भी जीत सकता है। हे वीर रामचन्द्र ! उनमें से तो बड़े पुत्र ने पैदा होते ही जैसा गर्जन किया, वह मेघ के गर्जन से भी भयकर है। इसलिए उसका नाम मेघनाद पड़ गया। और उसने इन्द्र को पराजित किया था। इसलिए वह जगत में इन्द्रजित नाम से परिचित हुआ। (१४)

भणि—कहा; अष्टादश गण्डा—अठारह गण्डा, १८×४=७२; वत्स—पुत्र; इन्द्रजित—इन्द्रविजयी; बारिदरु—मेघ से; रड़ि—गर्जन। (१४)

बोलाइ येहि अतिकाय से स्वरे समरे नागरेसु नाहिँ।
बिबुधे महापारुश्व पारुशरे न बसन्ति भय बहि से।
बीर। बड़ दरदाता महोदर।
बामे टेकि पारइ मन्दर। १५।

सरलार्थ—उन सैन्यो में से जिसका नाम अतिकाय है, उसके समान वीर स्वर्ग और पाताल मे विरले हैं। महापार्श्व नामक असुर के निकट यहाँ तक देवता लोग भी भय के हेतु बैठ नहीं सकते। मनुष्यों की बात ही क्या ? हे वीर ! भयंकररूपवाले महोदर के बलविक्रम की बात क्योंकर प्रकाश करूँ ? वह अकेला ही मन्दर पर्वत को बायें हाथ मे उठा सकता है। (१५)

सुरे—देवलोक में, स्वर्ग में; नागरे—नागलोक में, पाताल में; बिबुधे—देवता लोग; पारुशरे—समीप, पास; मन्दर—पर्वत विशेष। (१५)

बिषरु बिषम स्थूळजंघ शर घारिबे हर होइले।
बिश्वधूम्राक्ष धूममय केरिब शायक एक बिन्धिले हे।
बीर। बहे मित्रघ्न नाम ये सार।
बिघ्न करे मित्र तारतर। १६।

सरलार्थ—विष से उत्कटतर स्थूलजंघ नामक पुत्र के शर के प्रताप से विषभक्ष शिवजी भी घबरा जाएंगे। धूम्राक्ष नामक पुत्र यदि एक ही शर मार दे, तो उसी से वह सारे संसार को धुंधला कर देगा। हे वीर ! उनमें से एक ने जो मित्रघ्न नाम धारण किया है, उसका यही नाम सार्थक ही है। क्योंकि वह सूर्य की बड़ी दीप्ति का भी विनाश कर सकता है। (अर्थात् उसके तेज से सूर्य भी मलिन दिखाई देते है।) (१६)

बिषम—उत्कटतर, अधिक भयानक; घारिबे—बेहोश होंगे, घबरा जाएंगे; हर—शिवजी; सायक—शर; मित्र—सूर्य; तारतर—अतिशय दीप्तिमन्त। (१६)

बाजुँ काळघण्ट य़मघण्ट घण्टि य़म उपय़म भावि ।
बज्रदंष्ट्र दन्त-रगडकु एका लक्ष होइअछि पबि हे ।
बीर । ब्यक्त महीराबण नामर ।
बाञ्छे महिमा बिष्णु उपर । १७ ।

सरलार्थ—कालघण्ट एवं यमघण्ट नामक दोनों पुत्रों की कमरों की घण्टियाँ जब बज उठती है, तब उन ध्वनियों को सुनकर यम समझता है कि मेरे ऊपर और एक उपयम (विनाशकर्त्ता) है क्या ? वज्रदंष्ट्र नामक पुत्र के दाँतों की किटकिटाहट से कहीं वज्र की ध्वनि तुलनीय हो सकती है ? हे वीर ! महीरावण नामक पुत्र का बल अतुलनीय है । क्योंकि उसने पूर्वकाल में विष्णु भगवान् से युद्ध करने की इच्छा की थी ।" (१७)

पबि—वज्र; व्यक्त—प्रकाशित; महिमा—आधिपत्य । (१७)

बोलुँ दैत्यबळ अनिळ गतिरे नीळ ठणा बेढ़ देले ।
बणासने गुण धन्वी तिनि जण देइ रणकु धाइँले य़े ।
बृक्षे । बसिथिले तहिँ कपिमुख्ये ।
बेगे उपाड़ि धाइँ ता दक्षे । १८ ।

सरलार्थ—विभीषण के ऐसा बोलते, राक्षस-सैन्यों ने पवनगति से नील सेनापति के स्थान को घेर लिया । यह देखकर धनुर्द्धारी श्रीराम, लक्ष्मण और विभीषण, तीन धनु मे गुण (प्रत्यचा) चढाकर युद्ध के लिए आगे बढ़े । वहाँ योद्धा वानर-श्रेष्ठ वृक्षों पर बैठे हुए थे । जो जिन वृक्षों पर बैठे हुए थे, वे उनको अपने-अपने दायें हाथो में उखाड़ पकड़कर दौड़ने लगे । (१८)

दैत्यबळ—राक्षससैन्य; अनिळ—पवन; नीळ ठणा—नील सेनापति के रहने की जगह को; बेढ़ देले—घेर लिया; बाणासने—धनुष पर; धन्वी—धनुर्द्धारी; कपिमुख्ये—श्रेष्ठ वानर लोग; दक्षे—दायें हाथों में । (१८)

बेनि सैन्य भेटि अटबी समान कण्टकभाबे अगम्य ।
बिहरे केशरी सिंह बेनि बने बहन्ति ए तर्के सम के ।
बने । बिभ्राजित गबय गमने ।
बने शार्द्दूळ क्रीड़ाकु घेने । १९ ।

सरलार्थ—राम और रावण के सैन्य परस्पर के मुकाबला करते समय एक दूसरे से मिल गये । इसलिए रणभूमि ने अरण्य की शोभा धारण की । क्योंकि काँटों के कारण कोई अरण्य में घुस नहीं सकता ।

उसी तरह सैन्यों की आपसी शत्रुता के कारण रणभूमि में घुसना दु:साध्य हो गया है। दोनों सेनाओं रूपी वनों में क्रमश: केशरी (सिंह) नामक मर्कट और सिंह नामक राक्षस विहार कर रहे हैं, ये दोनों तर्क (उत्प्रेक्षा) में समान भाव का वहन करते है। और भी वन में गयल (जंगली भैंसे) व बाघ क्रीड़ा करते है। उसी तरह दोनों सेनाओं में क्रमश: गवय नामक मर्कट सेनापति व शार्दूल नामक राक्षस क्रीड़ा कर रहे हैं। (१९)

अटवी—वन, जंगल; कण्टक भावे—शत्रु-भाव, शत्रुता; केशरी—सिंह; विभ्राजित—प्रकाशित; शार्दूळ—व्याघ्र, राक्षस विशेष। (१९)

बन के डाळिम्ब जाम्वव पनस चन्दनहिँ मनोरम।
वनकरे मेघनाद शुक कङ्क मण्डळी ये हुए रम्य के।
बने। बिपतन शाखा अबिच्छिन्ने।
बने खड्ग आतयात घने। २०।

सरलार्थ—कोई वन दाड़िम, जामुन, पनस, चन्दन आदि वृक्षों से मनोहर दिखाई देता है। एक वन में मयूर, शुक, कंक आदि पक्षी सुशोभित होते हैं। किसी वन मे सदा वृक्ष-शाखाएँ टूट पड़ती हैं और कही गैंडे घने रूप से आते जाते रहते हैं। उसी तरह श्रीरामचन्द्र जी के सैन्यों मे भल्लुकराज जाम्ववान् तथा दाड़िम, पनस व चन्दन आदि मर्कटों के वृक्ष शाखाओं को पकड़कर उनसे प्रहार करने से वे सब सदा गिर रही है एवं रावण के सैन्यों में पुत्र इन्द्रजित, मन्त्री शुक व कंक दैत्य के हमेशा तलवारें घुमाने से रणभूमि मनोहर दिखाई दे रही है। (२०)

डाळिम्ब—दाड़िम, अनार, वानर सेनापति; जाम्बव—जामुन, भालू सेनापति जाम्बवान्; पनस—वृक्ष विशेष, वानर सेनापति; चन्दन—सुगन्ध वृक्ष विशेष, वानर-सेनापति; मेघनाद—मोर, इन्द्रजित राक्षस; शुक—तोते, रावण का मन्त्री शुक दैत्य; कंक—पक्षी विशेष, रावण का मन्त्री कंक दैत्य; खड्ग—गैंडा, तलवार; (श्लेष)। (२०)

बारिदे बारिद मेळ हेला प्राय ऋक्ष राक्षसङ्क द्वन्द्व।
बरषे के तहिँ उपळ के करे आयुध कुळिशे भेद से।
बेनि। बिकाशन्ति तहिँ घोरध्वनि।
बिग्रहरु जळधारा दानी। २१।

सरलार्थ—दोनो पक्षो की सेनाओं ने परस्पर से मिलकर युद्ध किया, मानो एक मेघमाला दूसरी से मिल रही हो। एक मेघ के दूसरे मेघ से मिलने से भयंकर गर्जन उत्पन्न होता है, ओलों के साथ पानी बरसता है एवं वज्र गिरता है। उसी तरह एक पक्ष के सैन्यों के विरोधी पक्ष के सैन्यों से भिड़ने पर उनसे गर्जन उत्पन्न हुआ, भल्लुक व वानर सैन्यों में से

किसी-किसी ने अपर्याप्त पत्थरों की वृष्टि की, राक्षस सैन्यों ने बार-बार वज्र-सदृश अस्त्रों का संचालन किया एवं इस युद्ध से उनके शरीरों से वृष्टि-जल की तरह पसीनों की धाराएँ छूटने लगीं। (२१)

वारिदे—मेघमाला; ऋक्ष—भालू; द्वन्द्व—कलह, लड़ाई; उपळ—पत्थर, ओले; कुळिशे—वज्र से; विग्रहरु—युद्ध से। (२१)

बिशेषे चञ्चळा गति के घेनन्ति अचळालिंगन केते।
बहिबारु तहिँ कीलाळ सरित प्रकट कबन्ध नृत्ये से।
बारे। बिलोकनकु आन न करे।
बिद्य तरणी-युक्त बासरे। २२।

सरलार्थ—बरसात में किसी मेघ में बिजली का संचार होता है, कहीं मेघ पर्वत को गले लगाते है, नदियों के जलपूर्ण होकर बांध को लाँघने के स्थलपर जल का नृत्य प्रकट होता है, उस जल को देखने के लिए लोग उस ओर मुँह करते है (अथवा चारों ओर जलपूर्ण होने से कोई दूसरे को एक ही बार नही देख सकता) एवं उस समय दिवस में नदी में नौका पड़ती है। उसी प्रकार युद्ध में कई सैन्य बिजली के समान चंचल गति कर रहे है, कई पर्वत धारण किये हुए है, बहुत लोगों के मर जाने से वहाँ रक्त की नदी बह रही है एवं उस पर सिरहीन धड़ों का नृत्य प्रकट हो रहा है। सूर्य के होते हुए भी दिवस में शर-समूहों से चारों दिशाओं के अन्धकाराच्छन्न हो जाने से कोई किसी को एकबारगी देख नही सकता। (२२)

चञ्चळा—बिजली, चंचल; अचळालिंगन—पर्वत को गले लगाना; कीलाळ—जल, रक्त; सरित—नदी; कवन्ध—धड़; आनन करे—मुँह करता है; आन न करे—दूसरे को (विलोकन) नहीं करता; तरणी—नौका, (णि) सूर्य; वासरे—दिन में; (श्लेष)। (२२)

बादी अष्टसेना यूथपति संगे राजपुत्र एक एक।
बाहिनीमाने जगज्जेठिमानंके ए बिधि रणरचक से।
बळी। ब्याघ्र ब्याघ्र कि करन्ति कळि।
बृष बृष कि बिरोधी मिळि। २३।

सरलार्थ—नल, नील आदि आठ सेनापतियों और पचीस यूथपतियों में से हरेक के सहित रावण के एक-एक पुत्र ने एवं बलिष्ठ सेनाओं ने सर्वश्रेष्ठ वीरो के साथ यथाविधि (नियमानुसार) युद्ध किया। यह देखकर प्रतीत हुआ, मानो व्याघ्र व्याघ्र के सहित एवं साँड़ साँड़ के सहित लड़ रहे हों। (२३)

बाहिनीमाने—सेनाओं ने; जगज्जेठी—सर्वप्रधान वीर; बृष—साँड़। (२३)

बिभीषण मित्रघन रविसुत महोदर कले द्वन्द्व ।
बाळितनय अतिकाय मारुति महापारुश्वर बाद से ।
बुझ । बह्निसुत स्थूळजंघ यूझ ।
बज्रदंष्ट्र नळ रणमाझ । २४ ।

सरलार्थ—युद्धक्षेत्र मे विभीषण के सहित मित्रघ्न, सुग्रीव के सहित महोदर, अंगद के सहित अतिकाय, हनुमान् के सहित महापार्श्व, नील के सहित स्थूलजंघ एवं नल के सहित वज्रदण्ट्र आदि प्रधान-प्रधान वीर द्वन्द्व-युद्ध में प्रवृत्त हुए । (२४)

रविसुत—सुग्रीव; द्वन्द्व—कलह; वालितनय—अंगद; मारुति—हनुमान्; वह्निसुत—नील । (२४)

बेढ़ि शक्रपरिपन्थी आदि अण्टरथी दिगदन्ती सम ।
बिराजे तथिमध्यरे दाशरथि शोभा रत्नसानु रम्य से ।
बेळे । विवस्वान प्रभा न छाडिले ।
बिबुधङ्क हित सबुकाळे । २५ ।

सरलार्थ—दिग्गजों के समान इन्द्रजित आदि आठ रथियों ने श्रीरामचन्द्र जी को घेर लिया, तो उन्होंने उनमे रहकर मेरुपर्वत की रमणीयता को धारणपूर्वक शोभा प्राप्त की । मेरुपर्वत देवताओ के वास-स्थान होने के कारण वहाँ पर सूर्य हमेशा प्रकाशित रहते है । उसी तरह सूर्य-सदृश श्रीरामचन्द्र देवताओं के हित (कल्याण या उपकार) के निमित्त यहाँ हमेशा विराजमान रहे है । (२५)

शक्रपरिपन्थी—इन्द्र का शत्रु, इन्द्रजित; दिगदन्ती—दिग्गज; दाशरथि—श्रीरामचन्द्र; रत्नसानु—सुमेरु पर्वत; विवस्वान—सूर्य; बिबुधङ्क—देवताओं के । (२५)

बिपत्ति इच्छित लक्ष्मण राबणे झाम्पि काळी-प्रभा लभि ।
बक्त्रमाळी भोगिबर-ज्येष्ठ पुण कञ्चुकरे श्रेणु शोभी से ।
बिन्धि । बेगे मन्त्र-कंकपत्र सन्धि ।
बिषप्रतिज्ञा झाड़िले शोधि । २६ ।

सरलार्थ—रावण बहुत मुखोंवाला है, श्रेष्ठ भोग करने वालों में सर्वप्रथम है, उसका शरीर कवच से सुशोभित है । इसलिए उसने कालीय सर्प की शोभा को धारण किया है । क्योंकि कालीय सर्प अनेक मुखों या फनोवाला है, वह साँपों में श्रेष्ठ एवं उसका शरीर केचुले से आच्छादित है । पक्षिराज गरुड़ के सदृश लक्ष्मण उसकी विपत्ति को चाहकर कूद पड़े और उन्होंने मन्त्रपूत शर को अपने धनुषपर सन्धानकर शीघ्रता से

रावण की ओर मारकर उसके प्रतिज्ञा-विष को शोध डाला, अर्थात् झाड़ दिया। (तात्पर्य यही है कि लक्ष्मण के शर से रावण की प्रतिज्ञा विनष्ट हुई।) (२६)

विपति—गरुड़, (त्ति) विपत्ति, विपद; काळी-प्रभा—कालीय सर्प की शोभा; वक्त्रमाळी—बहुत मुखों वाला; भोगिवर—भोगनेवालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ; ज्येष्ठ—प्रथम, श्रेष्ठ; कञ्चुकरे—कवच से, केचुल से; कङ्कपत्र—वाण, शर; शोधि—शोधन करके; (श्लेष)। (२६)

बारे बारे कला येतेक प्रयोग न बाजुँ छेदिले गात्रे।
बारणी जाणइ य़ंति बोलि गुणि होइला ताहार चित्ते से।
बीर। ब्याकुळरे छाड़ि रड़ि घोर।
ब्रण पूरिला य़हुँ शरीर। २७।

सरलार्थ—रामलक्ष्मण की ओर लक्ष्य करके रावण ने बारबार जितने शर मारे, उनके शरीरों पर उन शरों के न लगते लक्ष्मण ने उन्हें काट डाला। यह देखकर रावण ने समझा कि शायद ये दोनों तपस्वी शर-निवारण के उपाय जानते है। धीरे-धीरे उसका शरीर शरो से पूर्ण होकर घायल हो गया और इसलिए व्याकुल होकर उसने भयंकर गर्जन किया। (२७)

गात्रे—देहों में; बारणी—निवारण का उपाय; य़ति—तपस्वी; गुणि—सोचकर; ब्रण—घाव। (२७)

बप्तार पञ्चत्व एहिक्षणि हेब पञ्चमने एहा चिन्ति।
बामे थाइ बाम होइ इन्द्रजित प्रहारे अमोघ शक्ति से।
बेगे। बिशोइला य़े लक्ष्मण अंगे।
बिज्ञान से य़था छुऊँ नागे। २८।

सरलार्थ—पञ्चभूतात्मा में यह सोचकर कि पिता की इसी ही क्षण मृत्यु होगी, इन्द्रजित ने पार्श्वरक्षी के स्वरूप उसके बायी ओर रहकर विरोधियों के प्रति प्रतिकूल होकर शीघ्रता से अमोघशक्ति का प्रयोग किया। वह शक्ति लक्ष्मण के शरीर में चुभ गयी तो वीर लक्ष्मण बेहोश होकर गिर गये, मानो नाग ने काट लिया। (२८)

बप्ता—पिता; पञ्चत्व—मृत्यु; पञ्चमने—पाँच भूतात्माओं में; बिशोइला—प्रयोग किया; विज्ञान—बेहोश; नागे—नाग साँप से। (२८)

बिशाक्ष देखि सुखी रथु ओह्लाइ तोळुँ न चळि लिताए।
बासुकि बिना धरणी-धरणकु क्षम कि महीलताए से।
बिधा। बिहुँ मारुति होइ सक्रोधा।
बाहुड़िला छाड़ि दशमूर्द्धा। २९।

सरलार्थ—यह देखकर कि इन्द्रजित उसकी इस तरह सहायता कर रहा है, रावण को बड़ी खुशी हुई। रथ से उतरकर लक्ष्मण को ले जाने की इच्छा से उसने उन्हे भूमि से उठाने की कोशिश की तो लक्ष्मण अपने स्थान से तिल मात्र भी नही हिले। क्या वासुकि के बिना नादान केंचुए पृथिवी धारण करने के लिए समर्थ होंगे ? (अर्थात् नही) यह देखकर हनुमान् ने गुस्से से रावण पर एक घूँसा जमा दिया, तो वह रणक्षेत्र छोड़कर भाग गया। (२९)

बिशाक्ष—बीस आँखों वाला, रावण; तोळु—उठाते; लिताए—रंच मात्र भी; महीलताए—केंचुए; बिधा—घूँसा; दशमूर्द्धा—दससिरों वाला, रावण। (२९)

बिनयेर लय पबन-तनय टेकि घेनिगला बहि।
बात उड़ाइ कि त्रिकूटर एक कूटकु ए लक्ष्य बहि से।
बाञ्छि। बाम-देबाद्रिरु गरु अछि से।
बळ एड़े ता कपि नेउछि से। ३०।

सरलार्थ—हनुमान् स्तुति करते हुए लक्ष्मण को उठाकर ले गये। वह देखकर प्रतीत हुआ, क्या पवन त्रिकूट पर्वत की एक चोटी को उठाये ले जा रहा है ? रावण को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि कैलाश पर्वत से अधिक भारी लक्ष्मण को यह वानर लाद ले रहा है ! इतना बल है उसमें ! (३०)

लय—ध्यान; पवनतनय—हनुमान्; बात—पवन; त्रिकूट—पर्वत विशेष; कूट—चोटी; बामदेवाद्रिरु—कैलास पर्वत से; गरु—वजनदार, भारी। (३०)

बाळि-अनुज बिभीषण सुषेण जाम्बब लक्ष्मण तुले।
बाटे याउँ से सुबेळकु चेतना पाइ युद्ध काम कले से।
बीर। बोधि कपिराज कले धीर से।
ब्यापे कोप रघुनायकर से। ३१।

सरलार्थ—सुग्रीव, विभीषण, सुषेण व जाम्ब्रवान्—ये चारों लक्ष्मण के साथ गये। सुबेल पर्वत जाते समय मार्ग में वीर लक्ष्मण होश में आये और फिर युद्ध करने के लिए उद्यत हुए। सुग्रीव ने उन्हें बहुत

समझा-बुझाकर उससे रोका। परन्तु यह घटना कि इन्द्रजित ने लक्ष्मण को शक्ति मारी है, जानकर रामचन्द्र जी का क्रोध बढ़ गया। (३१)

वाळिअनुज—बालि के छोटे भाई सुग्रीव; रघुनायकर—रामचन्द्र जी का। (३१)

बरषिब नाहिँ तेते नीर घन शर प्रहारिले य़ेते।
बिदिश दिशकु कुज्झटी झटित घोड़ाइ नाहिँ तेमन्ते से।
•बैरी। बळय़ाक काण्डपूर्ण करि से।
बिराजिले से श्वाबित(स्वर्विभु)परि से। ३२।

सरलार्थ—रामचन्द्र और उनके सैन्यों ने शत्रुपक्ष पर इतने शरों का प्रयोग किया कि मेघ भी इतना पानी नहीं बरसाएगा। (अर्थात् उन्होंने वृष्टिधाराओं मे बढ़कर शरों की धाराएँ बरसायी। उन शरों से चारों ओर तत्क्षणात् ऐसा अंधेरा छा गया कि कुहरा भी दिशाविदिशाओं को वैसा नही ढक सकेगा। और राक्षसों के शरीरों में शर-समूह के बेध जाने से, वे साही पक्षियों के समान दिखाई दिये। (अथवा सहस्राक्ष—इन्द्र के सदृश दिखाई दिये।) (३२)

बिदिश दिश—दिशा व विदिशा; कुज्झटी—कुहरा; श्वावित् परि—साहियों की तरह; (पाठान्तर—स्वर्विभु—स्वर्ग के प्रभु सहस्राक्ष या इन्द्र की तरह)। (३२)

बिरक्ते रक्ते जरजर कबच भिन्न बचन स्फुरित।
बिद्राबण कउणपगण हेले चरमे जनित घात से।
बाम। बिच्छेदन कले ध्वजस्तोम से।
बेपथु त गात्ररे जनम से। ३३।

सरलार्थ—रामचन्द्र जी के शराघान से राक्षसों के कवच टूट गये, उनके शरीर रक्त से जर्जर हो गये और उनके मुखों से बात नही निकली। वे लोग विरक्त होकर भाग गये। इसलिए उनकी पीठों में वाणों की चोटों के चिह्न उत्पन्न हुए। फिर श्रीराम ने अपने वाणों से शत्रुपक्ष की पताकाओं के समूह को काट डाला। अत्यधिक भय के कारण उनके शरीरों पर कम्पन पैदा हुआ। (३३)

विद्रावण—भाग जाना; कउणप—राक्षस; चरमे—पृष्ठदेशों में; ध्वजस्तोम—पताकासमूह; वेपथु—कम्पन; गात्ररे—शरीरों पर। (३३)

बढ़िला नदी भेळकरे मेळक होइण निस्तेज य़था।
बृच्छिक कर्कट भासि य़ाउथान्ति रथे लंकपति तथा से।
बक। ब्यूह बसिथिला लक्ष तर्क से।
बासबारि आदि रथिय़ाक से। ३४।

सरलार्थ—बढ़ी हुई नदी के जल में बिच्छू व केकड़े आदि प्राणी निर्बल तथा निस्तेज होकर एक बेड़े मे इकट्ठे होते है और उसी बेड़े के सहारे उतराते जाते जैसे दिखाई पड़ते है, लकापति रावण रथ में बैठता उसी प्रकार दिखाई दे रहा है। इन्द्रजित आदि महावीर रथों में बैठकर बगलो की तरह एक ही लय मे युद्ध की ओर देख रहे है। (३४)

भेळकरे—एक बेड़े में; मेळक—इकट्ठे; ब्यूह—समूह; बासवारि—इन्द्रजित। (३४)

बानरे भयद भूतप्राय होइ शाखा प्रस्तर पतने।
बळाइ द्वार बाहुड़े रामचन्द्र बिजे सुबेळरे घने से।
बीर। बर लक्षमण नमे पयर से।
बड़ ·आशंका मानसुँ दूर से। ३५।

सरलार्थ—वानर सैन्यों ने भूतों के सदृश राक्षसों पर पेड़, डालें, पत्थर आदि फेकते हुए उन्हे डराया और उन्हें भगाते हुए लंकागढ़ के द्वार तक पहुँचा दिया। अनन्तर वे वानर सैन्य अतिशीघ्र श्रीरामचन्द्र जी के साथ सुबेल पर्वत पर लौट आये। उस समय वीरवर लक्ष्मण ने वहाँ पहुँचकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम किया। तब श्रीरामचन्द्र जी के मन में लक्ष्मण के बारे में उत्पन्न हुई आशंका दूर हुई। (३५)

शाखा—डालें; प्रस्तर—पत्थर; बळाइ—पहुँचाकर; घने—अति शीघ्र; मानसुं—मन से। (३५)

बोलन्ति श्रीराम अटन्ति उत्तम तुंग तुमुळे से दुइ।
बिभीषण तोते ये शक्ति माइला, लक्ष्मणे ये शक्ति बिहि हे।
बीर। बञ्चाइलु तु खगप्रकार हे।
बाजि अनुज मोह मोहर हे। ३६।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, "हे वीर विभीषण ! इस भीषण संग्राम में जिस प्रशस्त ने तुम्हें व जिस इन्द्रजित ने लक्ष्मण को शक्ति से प्रहार किया, केवल वे दोनों ही राक्षस प्रधान योद्धा है। तुम पक्षी के सदृश आकाश में रह गये। सुतरां उक्त शक्ति के आघात से बच गये। परन्तु मेरे छोटे भाई लक्ष्मण अनन्योपाय होकर उक्त शक्ति से बेहोश हो गये।" (३६)

तुङ्ग—ऊँचा; तुमुळ—भयंकर; खगप्रकार—पक्षी के सदृश; अनुज—छोटा भाई; मोह—बेहोश; मोहर—मेरा। (३६)

बोइले लक्ष्मण शुणि ता तत्क्षण पाशुँ प्रहारि अजागे।
बाणासन छुइँ नियम करुछि ताहा समर मो भागे से।
बीर। बोलुँ कोपे कम्पे कळेबर से।
बिजे ग्राइ शिखरि-शिखर से। ३७।

सरलार्थ—रामचन्द्र जी का वचन सुनकर लक्ष्मण ने तत्क्षणात् कहा, "जब मैं असावधान था, उस समय इन्द्रजित् ने मेरी बगल से शक्ति का प्रहार किया। सुतरां उस शक्ति ने मेरे शरीर में बेधकर मुझे बेहोश कर दिया। अब मैं यह धनुष छूकर शपथ कर रहा हूँ कि इन्द्रजित के सहित युद्ध करने का बीड़ा मेरे ही भाग मे रहा।" यह कहते हुए लक्ष्मण जी का शरीर क्रोध से काँप उठा। उसके बाद सभी ने जाकर पर्वत की चोटी पर स्थित छावनी में आश्रय ग्रहण किया। (३७)

पाशुँ—पार्श्व देश से, बगल से; अजागे—असावधानी से; बाणासन—धनुष; शिखरिशिखर—पर्वत की चोटी पर। (३७)

बिरसे रथु ओह्लाइ सभा करि बसि राबण भाषिला।
बहुत-काळ बृद्धे अछ अछ कि ए गोळयुद्ध देखिला ए।
बिधि। बेनि भ्रात सम धन्वी योधी ए।
बळबन्ते एके एके सिद्धि ए। ३८।

सरलार्थ—अनन्तर खिन्न मन से रथ से उतरकर रावण ने एक सभा का आयोजन किया एवं उसमें स्वयं उपस्थित रहकर कहा, "यहाँ पर तो बहुप्राचीन काल के वृद्धजन, सब उपस्थित हो। अच्छा, जरा बताओ, तो सही—ऐसा भयंकर युद्ध तुम लोगों ने कभी देखा है क्या? वास्तव में राम और लक्ष्मण दोनों भाई समान रूप से योद्धा तथा धनुर्द्धारी हैं। वलवत्ता में भी हर एक ने सिद्धि प्राप्त की है।" (३८)

भाषिला—कहा; गोळयुद्ध—भयंकर युद्ध; धन्वी—धनुर्द्धर; योधी—योद्धा। (३८)

बोले कि थिलि त्रिपुर हर रणे बोले के तारकाहबे।
बोले के थिलि चण्डीयुद्धे नोहिछि ए द्वन्द्व नोहिब केबे हे।
बीर। बृषध्वज बिष्णु दुर्गाङ्कर हे।
बिन्धिबाकु काहिँछि सत्वर हे। ३९।

सरलार्थ—रावण की बात सुनकर वीरों में से किसी ने कहा, "मैं त्रिपुरासुर तथा महादेव जी के युद्ध में उपस्थित था।" किसी ने कहा, "मैंने तारकासुर और कार्त्तिकेय का समर देखा है।" और किसी ने कहा, "मैं चण्डी व महिषासुर के युद्ध में था।" परन्तु अब जैसा समर चल

रहा है, वैसा अतीत में कभी नही हुआ है और न भविष्य मे होना सम्भव ही है। हे वीर ! और भी इस युद्ध मे वीरगण जैसी शीघ्रता से शर प्रयोग कर रहे है, वैसी शीघ्रता से शिव, विष्णु और दुर्गा शर प्रयोग कर सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है।" (३९)

त्रिपुर हर रणे—त्रिपुरासुर व शिव के युद्ध में; तारकाहवे—कार्त्तिकेय तथा तारकासुर के युद्ध में; चण्डी युद्धे—दुर्गा तथा महिषासुर के युद्ध में; वृषध्वज—महादेव। (३९)

बृषभ खगेन्द्र सिंह ऐरावते कपिक प्राकर्म नाहिँ।
बोलुँ इन्द्रजित बोइला दण्डेक न सहिल काहिँ पाइँ मुँ।
बधि। बीर सानुजकु शक्ति सन्धि मुँ।
बड़ यतिकि आणन्ति बान्धि मुँ। ४०।

सरलार्थ—फिर उन वीरों मे से किसी ने कहा, युद्ध में आये हुए वानरों का पराक्रम महादेव जी के वाहन वृषभ, नारायण जी के वाहन गरुड़ एवं इन्द्र जी के वाहन ऐरावत में भी नहीं है। (अर्थात् वानरो के पराक्रम के समक्ष वृषभ, गरुड़ तथा ऐरावत का पराक्रम तुलनीय नही है।) वीरो के मुखों से यह बात सुनकर इन्द्रजित ने कहा, "मैंने तो छोटे भाई को शक्ति का प्रयोग करके वध किया होता और बड़े तपस्वी राम को भी बाँध लाया होता। तुम लोग दण्डभर भी कष्ट स्वीकार न करके क्यों भागे आये ? (४०)

वृषभ—साँड़; खगेन्द्र—गरुड़; प्राकर्म—पराक्रम, बल; यति—तपस्वी। (४०)

बार्त्तांबहे आसि ए समये भाषि शक्ति चर्मे न फुटिला।
बाजिबा बेगरे तेजरे मात्रक क्षणे मोह होइथिला से।
बीर। बाटे चेतना होइला तार से।
बदि प्रतिज्ञा कला अपार से। ४१।

सरलार्थ—इसी समय दूतों ने रावण के निकट पहुँचकर उसे खबर दी कि इन्द्रजित ने लक्ष्मण पर जिस शक्ति का प्रहार किया था, वह शक्ति उनके चर्म को वेध नही पायी थी। वे उससे केवल आघात पाकर कुछ ही समय के लिए बेहोश हो गये थे, बाद मे होश में आकर उन्होंने बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ की है। (४१)

बार्त्तांबहे—दूत लोग; अपार—असीम। (४१)

बइश्रबण पुत्रमुख चाहान्ते बोइला कृपाण कषि ।
बर्त्तिबे नाहिँ एथर रणे एक सह शेष हेउ निशि हे ।
बिहे । बीरबर ए रससमूहे ।
बयाळिश पद चित्त मोहे हे । ४२ ।

सरलार्थ—दूत के मुख से यह बात सुनकर रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजित की ओर निहारा तो उसने क्रोध से तलवार झमकाते हुए कहा, "अबकी बार युद्ध में कोई बच नही सकता। (अर्थात् मैं सभी का विनाश करूँगा।) आज रात के बीतने तक ही प्रतीक्षा करो।"

वीरवर उपेन्द्र भञ्ज का रससमूह से भरा तथा बयालिस पदों में रचा यह छान्द पाठक का मन मुग्ध करता है। (४२)

बइश्रबण—रावण; कृपाण—तलवार; कषि—झमकाते हुए। (४२)

॥ इति द्विचत्वारिंश छान्द ॥

त्रिचत्वारिंश छान्द

राग—खण्ड कामोदी (यदुसिंह चउतिशा वाणी में)

बळाराति-अराति जागरे सारि राति बळाउँ होमे मति ग्रे ।
बिपत्ति उत्पत्ति से बिमान मानबशे देवदळन ख्याति से ।
बसि तहिँ । बाहि सूत चञ्चळे ये ।
बइजयन्ती रम्य दिगदहन नाम नभे लभे चञ्चळे से । १ ।

सरलार्थ—शत्रुओं के आक्रमण से चिन्तित इन्द्रजित ने जगते हुए रात बिता दी और सुबह होम करने को मन किया । प्रातःकाल में जगकर उसने निकुम्भिला नामक बरगद के नीचे होम किया । उसकी सम्मान-रक्षा के लिए उस होमकुण्ड से गरुड़ के सदृश एक शून्यगामी विमान निकला । वह विमान 'देवदलन' नाम से विख्यात था और उस पर 'दिग्दहन' नामक एक सुन्दर पताका आकाश में फहरती थी । उस विमान में बैठकर इन्द्रजित ने सारथि को विमान चलाने को आदेश दिया । सारथि ने आकाश-मार्ग में शीघ्रगति से रथ को चलाया । (१)

बळाराति-अराति—इन्द्र का शत्रु, इन्द्रजित; जागरे—जगते; सूत—सारथि; बइजयन्ती—पताका । (१)

बाहार पद्म पद्म पद्मी नोहे ए छद्म स्यन्दन कोटि कोटि ग्रे ।
बिभ्रमे खर्ब खर्ब अर्ब बइरि गर्ब खर्बरे परकटि से ।
बादित्रक । बळहिँ पन्ति पन्ति ग्रे ।
बसुधा मेरु सुद्धा कम्पमान बिशुद्धा लेख अलेख पत्ति ग्रे । २ ।

सरलार्थ—इस समय युद्ध के लिए अनगिनत हाथी तथा करोड़ों रथ निकल पड़े । वह सारा दृश्य कपट सा प्रतीत हुआ । परन्तु वह कपट नहीं था । वास्तव में अनगिनत गजारोही, अश्वारोही, रथी, पायक तथा बाद्यकार आदि सैन्य, झुंड के झुंड, शत्रुओं का गर्व चूर करने के लिए प्रकट हो घूमने लगे, जिससे मेरुपर्वत सहित पृथिवी काँप उठी । (२)

पद्मपद्म—बहुसंख्यक; पद्मी—हाथी; छद्म—कपट; स्यन्दन—रथ; बिभ्रमे—भ्रमण करना; अर्ब—घोड़े, घुड़सवार सैन्य; बादित्रक—वाद्यकार; बळ—सैन्य; बसुधा—पृथिवी; अलेख—असंख्य; पत्ति—पायक । (२)

बाहिनीए सुषम समस्ते नाहिँ सम समरे एकु एक से ।
बाछि बाछि नेइछि रणजयकु इच्छि किछिहिँ नाहिँ शंक ये ।
बेगे याइ । बह्निनन्दनठणा ये ।
बाजु बाजणा जणा सुग्रीबे रणांगणास्थित होइ अगणा से । ३ ।

सरलार्थ—इन्द्रजित ने जिन सैन्यों को लिया था, वे सब-के-सब उत्तम रूप से समान है । उनके सानी संसार में और नहीं है । युद्ध के विषय में वे परस्पर प्रधान या अद्वितीय है । इन्द्रजित ने युद्ध में विजय-लाभ के लिए उन्हें चुन-चुनकर लिया था । इसलिए उसके मन में कोई शका नहीं थी । इस तरह जल्दी से जाकर उन लोगों ने नील सेनापति के द्वारा सुरक्षित स्थान को घेर लिया । राक्षस-सैन्यों की चिल्लाहट तथा बाजों की आवाज सुनकर वानरराज सुग्रीव जान सके कि असंख्य राक्षस आकर रणांगन में पहुँच गये हैं । (३)

बाहिनीए—सैन्य लोग, सेना; सुषम—अच्छी तरह से समान; समरे—युद्ध में; शंक—भय; बह्निनन्दन—नील सेनापति; ठणा—ठौर; अगणा—अनगिनत । (३)

बिजे दूषणअरि भीषणगण मारि लक्ष्मण सहितरे ये ।
बाणासन टंकारे सेनानी रे रे कारे ध्रुबमण्डळ पूरे ये ।
बड़ कोपी । बृषारि भ्रात मेळे ये ।
बाण-तुषार बृष्टि कपिसारस तुटि सञ्चरण भूस्थळे ये । ४ ।

सरलार्थ—यह जानकर दूषण राक्षस के शत्रु श्रीरामचन्द्रजी राक्षसों का विनाश करने के लिए लक्ष्मण के साथ रणांगन में विराजे । उनके धनुष-टंकार तथा सैन्यों के 'रे' 'रे' शब्द से आकाशमण्डल भर गया । यह देखकर इन्द्रजित ने अतिशय क्रोध-पूर्वक अपने भाइयों के साथ बाणों रूपी तुषार की वृष्टि की, और उससे वानर सेना रूपी कमल-वन का नाश करके उन्हें युद्धभूमि पर लिटा दिया । (४)

दूषण अरि—दूषण राक्षस के शत्रु श्रीराम; भीषण गण—राक्षस सेना; बाणासन—धनुष; बृषारि—इन्द्र-शत्रु इन्द्रजित; बाण-तुषार—बाण रूपी हिम; कपि-सारस—वानर रूपी पद्मवन; (परंपरित रूपक) । (४)

बृष्टि गदामुद्गर भल्ल शूळ संगर नग नगरपात ये ।
ब्योमपथरे रथ अचळ मनोरथ थरे मित्र गात्र ये ।
बसन्ते कि । बिरचित चर्चरी ये ।
बररंग अबि (बी) रे पिचिका करि मारे बिळास लास्य धरि से । ५ ।

श्रीरामचन्द्र जी की ओर से) पर्वतों तथा वृक्षों का चालन हुआ। अटल मनोवाञ्छा को पूर्ण करनेवाले देवदलन रथ के आकाश मार्ग में रहने से सूर्य का शरीर काँपने लगा। यह रथ सूर्य से भी बढ़कर तेजस्कर है, सुतरां सूर्य शरमाये। वसन्तकाल मे होली की चांचर-फेरी के समय पिचकारियो से अच्छे रंग से अबिर (फाग) का खेल होता है। उसी तरह यहाँ युद्धक्षेत्र मे दोनों पक्षों ने प्रतिपक्षो को अ-वीर (पराक्रम-विहीन) करने के लिए उनके अंगप्रत्यंगों को काट डाला, जिससे रक्त निकलकर फाग के समान दिखाई पड़ा। अर्थात् सैन्यों के सिर कटकर उनसे रक्त वह चला और उसमें उनके कवन्ध सव नाचने लगे। (५)

सङ्गर—समर, युद्ध; नग—पर्वत; मित्रर—सूर्य का; चर्चरी—चांचर-फेरी; (वसन्तोत्सव); वररग—उत्कृष्ट रंग; अविरे—फाग से, (अवीरे) वीरहीन करने के लिए; (श्लेष); पिचिका— पिचकारियाँ। (५)

ब्यकत केते गात्र रकत अर्द्ध गात्र जर्जर अशकते ये।
बिळास कृकलास सदृश बहि लास्य कृत्तशिर एमन्ते ये।
बिच्छेदित। बपु मस्तक केते ये।
बिधुन्तुद केतु कि बिधुग्रासरे तर्कि भ्रमे प्रवर्ति नृत्ये ये। ६।

सरलार्थ—कई सैन्यों के शरीरो से रक्त फूट निकल रहा है। और कई सैन्यों के आधे शरीर रक्त से जर्जरित होने से वे लोग कमजोर हो पड़े है। छिन्न-मस्तक शरीर (अर्थात् कवन्ध) सब गिरगिटों की तरह क्रीड़ा कर रहे हैं। कई सैन्यों के सिर शरीरों से अलग होकर राहु तथा केतु के सदृश प्रतीत हो रहे है। चूँकि 'रामचन्द्र' के नाम में 'चन्द्र' है, इसलिए उन्हें वास्तव में चन्द्र समझकर मानो वे छिन्न मस्तकों रूपी राहु व केतु उन्हें निगलने के लिए नाच-कूद करते हुए घूम रहे हों। (६)

ब्यकत—प्रकाशित; गात्र—देह, शरीर; कृकलास—गिरगिट; लास्य—क्रीड़ा, नृत्य; कृत्तशिर—कटे सिर, कवन्ध; वपु—देह; विधुन्तुद—राहु; विधुग्रासरे—चन्द्र को निगलने के लिए; (उत्प्रेक्षा)।(६)

बिहि भुजंगरीति भुज पड़ुअछन्ति क्षतज सरितरे ये।
बिशाखा तसपरि शब शबद करि ढळन्ति निरन्तरे से।
ब्याकुळे के। बिखण्ड पद पड़ि ये।
बिलक्ष अजगरे पड़े भूमि भागरे जने गमन्ति माड़ि ये। ७।

सरलार्थ—कुछ सैन्यों के कटे हुए हाथ साँपों का ढंग, वहन कर रहे है। (अर्थात् जैसे साँप टेढ़ी चाल करते हुए जल में डूब जाते है, वैसे कटे हाथ सब रक्त-नदी में डूब रहे है।) कई सैन्यों के शव भयंकर चीत्कार

करते हुए लुढ़ककर पड़ रहे है मानो शाखाहीन ठूँठ पेड़ भूमि पर गिर रहे हों। फिर कुछ लोगों के पैर सब खंड-खंड होकर कट जाने से वे लोग भूमि पर पड़े अजगरों की तरह कराह रहे है और सैन्य लोग उनको कुचल कर चले जा रहे हैं। (७)

भुजंगरीति—साँप की प्रकृति; क्षतज—रक्त; सरितरे—नदी में; विशाखा—शाखाहीन; बिखण्डु—खण्ड-खण्ड होकर कट जाने से; विलक्ष्य—विशेष रूप से लक्ष्य। (७)

बेळुँ बेळुँ से रण अधिक प्रसरण प्रभाकिरण हत ये।
बीरचन्द्र से इन्द्रजित प्रभात सान्द्र लक्ष्मण शरमान से।
बिभावरी। बिभबज्योति बश ये।
बोलाइ सेहि निशाचर मायामनीषा घेनि महातामस ये। ८।

सरलार्थ—समय से समय, उक्त युद्ध अधिक से अधिकतर होकर बढ़ने लगा। वीरचन्द्र इन्द्रजित की किरण-प्रभा नष्ट होती गयी। प्रभात होने पर जैसे चन्द्र की प्रभा नष्ट होती है, वैसे लक्ष्मण के निविड़ शरसमूह ने प्रभातकाल के समान होकर चन्द्रकिरण के सदृश वीरचन्द्र इन्द्रजित की शौर्य-प्रभा को नष्ट किया। इन्द्रजित निशाचर था। इसलिए प्रभात उसके लिए अहितकर प्रतीत हुआ। सुतरां उसने अन्धकार की ज्योति के वश होकर माया-बुद्धि के द्वारा महान्धकार की सृष्टि की जिससे सारा रणांगन अन्धकाराच्छन्न हो गया। (८)

प्रसरण—प्रसार; मायामनीषा—मायाबुद्धि; तामस—अन्धकार। (८)

बनधब ग्रोखर खर शर नखर यूथपतिंकि दळि से।
बिस्वर कला आग बेगे प्ळबगबर्ग शरदछबि झळि ये।
बहि अक्ष। बिनोद तदुत्तारे ये।
बिपतित काठिकि धरि दृढ मुष्टिकि प्रहारि सार सारे से। ९।

सरलार्थ—अनन्तर सिंहसम इन्द्रजित ने अपने नुकीले शरोंरूपी नाखूनों से हस्तीस्वरूप कपि-यूथपतियो को अतिशीघ्र विदीर्ण किया। फिर शरत्-काल स्वरूप होकर उसने मेंढ़कों के सदृश भालुओं तथा बन्दरों को नीरव (मूक) बना दिया। (शरत्काल में मेंढ़क ध्वनि नही करते।) उसके बाद उसने पासे के खेल के आमोद को वहन किया। पासे के खेल में खेलनेवाले अपनी-अपनी दृढ़मुष्टि मे पासे की डडियो को पकड़कर उन्हें बिसात पर फेंकते है और गोटी से गोटी को पीटकर मारते है। उसी तरह इन्द्रजित ने शरों को दृढ़-मुष्टि में धारणपूर्वक उनसे प्रधान-प्रधान सैन्यों का वध किया। (९)

बनधव—सिंह; यूथपति—हाथी; योख—समान; बिस्वर—नीरव; प्ळवगवर्ग—मेंढ़कों का समूह, वन्दरों का समूह, अक्ष—पासे का खेल; सार—गोटी। (९)

बिधिबशे असुर सुरसभारे तार नागबरे त्वरित से।
बेढ़ाइ रणअब्धि मन्थनाचळे सिद्धि यश-पीयूष जात से।
बिषजन्म। बिधु कि न चिन्तिला से।
बेभारे शिरीद्रोही मधु मत्तरे स्नेही ढळिबार चाहिँला से। १०।

सरलार्थ—दैववशात् असुर लोग देव लोगो की तरह दिखाई दिये। इन्द्रजित ने अपने नाग-पाश-स्रष्टा शर रूपी वासुकि को राम-लक्ष्मणरूपी मन्दर पर्वत के चारों ओर लपेटकर अतिशीघ्र रणांगनरूपी समुद्र को मन्थन करके यशामृत उत्पन्न किया। पक्षान्तर में उस नागपाश-शर ने रामलक्ष्मण को पहचान न सककर जहर का उद्‌गीरण किया। फिर मधु नामक राक्षस ने मस्त होकर लक्ष्मी के प्रति द्रोहाचरण किया था। उसी प्रकार यहाँ मद्यपान से मतवाला होकर इन्द्रजित ने लक्ष्मी-स्वरूपा सीता को पहचान न सककर उनसे विद्रोह किया और नागफाँस से बधे राम-लक्ष्मण को विप से टले देखा। (तात्पर्य—इन्द्रजित के नागपाश-शर छोड़ने से राम-लक्ष्मण बन्धन में पड़कर टल पड़े। रणक्षेत्र शोक तथा आनन्द की ध्वनि से गूँज उठा। वानर लोग शोक से व्याकुल हुए और असुर लोग यश पाने से मस्त हो उठे।) (१०)

नागवरे—नागफाँस से, सर्पराज वासुकि से; रण-अब्धि—युद्धक्षेत्ररूपी समुद्र; मन्थनाचळे—मन्थनदण्ड के सदृश मन्दर पर्वत को; यश-पीयूष—यशरूपी अमृत; विधु—चन्द्र; शिरीद्रोही—लक्ष्मी (सीता) के प्रति विद्रोही; मधु—राक्षस विशेष, मद्य।(श्लेष) (१०)

बजाइ कम्बुबर बाहुड़े तरतर तरळ चित्तुँ नाशि से।
बिधान सभापर कहिबारे कुमर पामर शुणि हसि से।
बिंशपाणि। बचनकु रचिला से।
बरे अमरमरणरे केहि सत्वर पितृब्य तोर हेला ये। ११।

सरलार्थ—यह देखकर कि राम-लक्ष्मण समेत सारे सैन्य वेहोश होकर गिरे है, इन्द्रजित उत्कृष्ट शंख बजाता हुआ मन से आशंका दूर करके शीघ्र-गति से रावण की सभा मे आ पहुँचा और उससे कहा कि मै सबका विनाश करके आ रहा हूँ। यह सुनकर पामर रावण ने हँसते हुए कहा, "तेरे चाचा विभीषण ने तो ब्रह्मा से अमर वर लाभ किया था। उसका विनाश कैसे किया तूने ?" (११)

कम्बुवर—श्रेष्ठ शंख; पामर—पापी, मूढ़; पितृव्य—चाचा। (११)

बोध होए ए सिद्ध[1] धरि बधिले सिद्ध[2] बोध देइण गत से।
बोले डाकि त्रिजटा बिनाश हेला जटाधारी जटायुमत से।
बिमानरे। बैदेही नेइ देखा ये।
बिशाखापतिमुहिँ न भाळुँ कह मुहिँ शिखा[1] जळे मो शिखा[2] ये। १२।

सरलार्थ—रावण की यह बात सुनकर इन्द्रजित ने कहा, "यह पहले से सिद्ध हुआ है कि बलात् पकड़कर वध करने से सिद्ध पुरुष भी बिनष्ट होते हैं।" यह सान्त्वना देता हुआ इन्द्रजित वहाँ से चल दिया। रावण ने त्रिजटा को बुलाकर कहा, "जटाधारी राम और लक्ष्मण दोनों जटायु के समान विनष्ट हो गये है। तू सीता को विमान पर बैठाकर वहाँ ले चल और उसे यह दृश्य दिखाकर कहना—अरी चन्द्रमुखी! जिसके किरीट पर लौ जलती है, ऐसा रावण तेरा पति रहते, तुझे फिर कोई बात सोचने की जरूरत नहीं है।" (१२)

सिद्ध[1]—प्रमाणित; सिद्ध[2]—योगी; (यमक); विशाखापतिमुहिँ—अरी चन्द्रमुखि!; शिखा[1]—लौ; शिखा[2]—किरीट, मुकुट; (यमक)। (१२)

बारता-रता सुख निरता म्ळान मुख नीर ता नेत्रु बहे ये।
बिजे पुष्पकयान जानकी छन्नमन गमन नभे शोहे ये।
बिमानर। बिबेक त एमान ये।
बहुंथिलि दुष्कृति आजठारु निष्कृति सुकृति उतपन्न ये। १३।

सरलार्थ—सीतादेवी राम-लक्ष्मण के वार्त्ता-श्रवण से अनुरक्ता होकर कभी-कभी यत्किंचित सुख प्राप्त करती थीं। परन्तु वास्तव में विछोह के कारण अक्सर आँसू बहाती थी। अब त्रिजटा राक्षसी से उन दोनों का मृत्यु-संवाद पाकर शोकाकुल चित्त मे उन्हें देखने के लिए पुष्पक विमान पर बैठ गयीं, तो वह आकाश-मार्ग मे पवन के समान मनोहर गति करने लगा। फिर लक्ष्मीस्वरूपा सीता को वहन करने से उस विमान ने सोचा कि आज मेरे सौभाग्य का उदय हुआ। मैं आज तक पापी रावण को जो वहन करता था, आज उससे मुक्त हुआ। (अर्थात् उस पाप से मैने आज मुक्ति पायी।) (१३)

बारतारता सुख-निरता—वार्त्ता-श्रवण से अनुरक्ता; नीर—आँसू; बिबेक—विचार; दुष्कृति—पापी; निष्कृति—उद्धार, रक्षा, मुक्ति; सुकृत—पुण्य, सौभाग्य। (१३)

बिशेष कपि दृश्य शेषरे नोहे शेष न दिशे महीपर ये।
बैदेही चाहिँ भाळि काहिँ थिले सम्भाळि अम्भाळि प्रळयर से।
बुद्धिहीन। बिलोकने दिशन्ति से।
बिनाशिबे ए रक्षसृष्टिकि नाहिँ रक्ष उठुअछन्ति चेति ये। १४।

सरलार्थ—विमान से सीतादेवी ने देखा कि युद्धभूमि में अनगिनत वानर सैन्य है। यहाँ तक कि शेषदेव अनन्त भी अपने सहस्र मुखो से उनकी गिनती नही कर सकते। और प्रलयकालीन जल के समान वे पृथिवी पर फैले हुए है। उन वानरो को देखकर सीतादेवी ने अपने मन में सोचा, "रामचन्द्र जी ने इन्हे कहाँ संभाल रखा था? समझ में नहीं आता।" फिर उन वानरो में से जो खेत रहते, उन्हें फिर एक-एक जी उठते देखकर सीता जी ने सोचा, "इनसे राक्षस-संसार का नाश अवश्य होगा। उनका उद्धार करनेवाले कोई है ही नही।" (१४)

शेषरे—शेषदेव से, अनन्त वासुकि से; अम्भाळि—जलसमूह; रक्षसृष्टि—राक्षसवंश; चेति—जी उठते। (१४)

बर देबर पर परमसाधवीर लोचन पात होइ ये।
बिज्ञ बिज्ञानी हेले उच्चध्वनिकि कले अश्रुधार बुहाइ ये।
बिभु बिभु। बिभूति बिवर्द्धन हे।
बिळेशयशयन हे राजीबनयन दर्शनरे प्रसन्न हे। १५।

सरलार्थ—अनन्तर स्वामी तथा देवर दोनों पर परम साध्वी सीता की दृष्टि पड़ी तो विचार-प्रवीणा होते हुए भी मूढ़ा स्त्री की तरह आँसू बहाते हुए ऊँचे स्वर से उन्होने कहा, "हे प्रभो! आपकी संपत्ति अब बढ़ी हुई है क्या? अथवा हे पद्मनेत्र! क्षीर-समुद्र में आपका जैसा सर्पशयन हुआ था, वैसा आपने प्रसन्न होकर यहाँ प्रगट किया है क्या?" (१५)

बर—पति; बिज्ञा-पण्डिता, विचार-प्रवीणा; बिज्ञानी—मूढ़ा; बिळेशयन—सर्पशयन; राजीवनयन—पद्मनेत्र। (१५)

बिभूषण से सर्प येहु कन्दर्प दर्प दळन कि आश्चर्य्य हे।
बादी देबरिपुरे स्थिति निर्ज्जनपुरे प्राये त निद्रा भज हे।
बाणी शुणि। बिचारे रघुमणि से।
बीणा कि नारदर केळिप्रबीणास्वर शुभुछि पुणि पुणि ये। १६।

सरलार्थ—सीता ने फिर कहा, "हे प्रभो! आपने शोभा-सौकुमार्यादि गुणो में कन्दर्प का अभिमान चूर किया है और आपके साथ शेषदेव लक्ष्मण भी विराजे है। सुतरां आप शिवस्वरूप है। इसलिए मुझे यह अचरज नही लगता कि आप अभी सर्पो से विभूषित है, देवरिपु रावण से विवादी हुए है और लंका मे जनशून्य स्थान में (अर्थात् राक्षसों के सहित अथवा सबकी बेहोशी के कारण एकान्त मे) सो गये है।"

सीता की यह शोकध्वनि बारबार सुनकर रामचन्द्र ने सोचा कि "यह ध्वनि या तो नारद की वीणा-ध्वनि हुई हो या केलिप्रवीणा सीता की मनोहर कण्ठध्वनि; नही तो ऐसी मनोहर ध्वनि और किसकी होगी?" (१६)

बादी—विद्रोही; देवरिपु—देवताओं का शत्रु रावण। (१६)

बोधे रहस्यमय बचने ए समय समर्पा मइथिळी ये।
बिरह तोह बशे जन्मि बीर बिरसे सारसनाळे ढळि से।
बुद्धि एहि। ब्याधिकि ब्याळ परि ये।
बिचेतन पतन योद्धा चेतुँ पत्तन बाहुड़ाकु आदरि से। १७।

सरलार्थ—उस समय समपी नामकी एक राक्षसी ने सीता को ढाढ़स देते हुए कहा, "अयि सीते! तुम धीरज धरो। तुम्हारे विछोह के कारण विरहोत्कण्ठित होकर श्रीरामचन्द्रजी विरस मन से पद्मनाल में ढल पड़े है। मुझे यह प्रतीत हो रहा है—मानो वे अपनी विरह-शान्ति के लिए साँप को पद्मनाल समझकर उसमें बन्धे हुए हों।" अनन्तर बेहोश होकर पड़े योद्धाओं को जग उठे देखकर वे अपने ठहराव (अशोकवन) को लौट आयीं। (१७)

बोधे—सान्त्वना देते हुए; सारसनाळे—कमल की नाल में; ब्याळ—साँप; पत्तन—नगर, आश्रम, ठहराव। (१७)

बिश्वरञ्जन पाशे याउँ देखिले पाशे बन्धन होइछन्ति ये।
ब्यथित अकथित अब्धिरे यथा स्थित नीरज पन्ति पन्ति ये।
बिस्मयरे। बिभीषण बिचारे से।
बिनायकपूजन हेले ए बेनिजन स्मरु आसिब खरे ये। १८।

सरलार्थ—होश में आकर योद्धाओं ने विश्वजनाभिराम श्रीराम जी के पास जाकर देखा कि वे नागपाश में बन्धे हुए है। जब विभीषण ने आकर यह दृश्य देखा, उन्हें अकथ व्यथा हुई। और उन्होंने भी देखा कि असंख्य सैन्य रणक्षेत्र में पड़े हुए है, मानो समुद्र में कमलों की पंक्तियाँ हो। यह देखकर विभीषण ने अपने मन में विचार किया, "ये राम-लक्ष्मण दोनों यदि पक्षिराज गरुड़ के पूज्य विष्णु हों, तो उनके गरुड़ जी का स्मरण करते ही, वे शीघ्र ही आ जाएँगे। गरुड़ जी के आते ही साँप भाग जाएंगे।" (१८)

बिश्वरंजन—विश्वजनाभिराम—श्रीरामचन्द्रजी; अब्धिरे—समुद्र में; नीरज—पद्म; विनायक-पूजन—गरुड़पूजा; स्मरु—याद करते। (१८)

बिस्तार करि कहि तारक आन नाहिँ तारक्षर बिहीन ये।
बिनय लय तहिँ नयन बुजि देइ राम जाणि बिईन ये।
बाहारिला। बिभुदर्शन मोदे ये।
बिस्तारि पक्ष पक्षपाते धबळपक्ष पूर्णचन्द्र कि उदे ये। १९।

सरलार्थ—यह सोचकर विभीषण ने ऊँचे स्वर से कहा, "इस विपत्ति के समय गरुड़ के विना इनका उद्धारकर्त्ता और कोई नही है।" उनकी

बात जानकर रामचन्द्रजी ने आँखें मूँदकर उन गरुड़जी का विनय से ध्यान किया। यह जानकर कि राम रूपी विष्णु ने मेरा ध्यान किया, पक्षीश गरुड़ जी अपने प्रभु के दर्शनार्थ आनन्दित हो निकल पड़े। श्रीराम जी के पक्षपाती होकर अपने सफेद डैने फैलाते हुए जब वह निकल पड़े, तो प्रतीत हुआ, मानो शुक्लपक्ष में पूर्णचन्द्रमा का उदय हुआ हो। (१९)

तारक—उद्धारकर्त्ता; तारक्षर—तार्क्ष्यके, गरुड़ जी के; विहीन—बिना; विनय-लय—एकाग्र चित्त से; विईन—पक्षियों के ईश गरुड़ जी; पक्ष—पंख, डैने; धबळपक्ष—शुक्लपक्ष। (१९)

बाहारे गन्धबाहा बाहारे सर्बसहाधरमाने कम्पिले ये।
बज्र चञ्चुरे चूरे न पुण अग्रचूरे शंका जनमि गले ये।
ब्याळपाश। बेगे त्रासे पळाइ ये।
बिळे पशि पाताळे मिळे नागंक मेळे राजे तर्जना पाइ ये। २०।

सरलार्थ—गरुड़जी के आते समय उनकी बाहुओं से जो हवा निकल रही थी, उससे पर्वत सब काँप उठे। उनके मन में यह शका उपजी की कहीं यह गरुड़ अपनी वज्र के समान सख्त चोच से हम लोगों को चूर न कर दे। गरुड़ के दर्शन से नागपाश भय से शीघ्र ही भागने लगा और बिल में घुसकर पाताल मे और नागों से जा मिला। परन्तु श्रीरामचन्द्र जी को बाँधने के कारण उसने नागराजा वासुकि से बहुत-सी गालियाँ पाईं। (२०)

गन्धबाहा—पवन; सर्वसहाधर—पृथिवी का धारण करनेवाले, पर्वत; तर्जना—गाली। (२०)

बिषमबिषधर गुरुतर अन्तर गरुड़र प्रबेशे ये।
बिराधबिरोधीर धीर गिर बिधिर करकोरके भाषे ये।
बिभो मोर। बिघ्न सेबा दर्शन ये।
बिश्वम्भर ए अबतारे अबनी अबतीर्णे मो मन छन्न ये। २१।

सरलार्थ—गरुडजी के पहुँचते अत्यन्त दुष्ट नागपाश दूर हो गया, तो उन्होंने विराध-शत्रु रामचन्द्रजी के समीप जाकर विधिपूर्वक दोनों हस्त-कोरकों को जोड़ते हुए धीरता से कहा, "हे प्रभो! हे विश्वम्भर! जब से आप इस धरा पर अवतीर्ण हुए है, तबसे आपके दर्शन तथा सेवा में मेरी बहुत-सी त्रुटियाँ बन पड़ी है। इसलिए मेरा मन हमेशा खिन्न रहा हुआ है। (२१)

बिषम विषधर—दुष्ट साँप; बिराध विरोधी—विराध राक्षस के शत्रु रामचन्द्रजी; करकोरके—जोड़े हाथों से; (२१)

बड़ भृत्यबत्सळ अय़शे नाहिँ छळ अन्तर्गत जाणिल हे ।
बन्धा सरीसृपरे होइ ए स्वरूपरे आणि दर्शन देल हे ।
बासुदेब । बर्ष्मरे पुणि भेट ये़ ।
बधिब बहु अरि[1] अरि[2] रे बोलि करि गमिला पक्षिराट ये़ । २२ ।

सरलार्थ—गरुड़ ने फिर कहा, "हे प्रभो ! आप बड़े भक्तवत्सल है । मुझ जैसे शौर्यगौरवदिहीन निन्दित से आप इसके लिए नहीं रूठते कि मैं आपकी सेवा नही कर पाया हूँ । सुतरां आपने अपने अन्तर मे मेरे मन की बातें जानकर श्रीराम के रूप में नाग-फाँस मे बन्धे होकर मुझे दर्शन दिये । हे प्रभो ! द्वापर युग में श्रीकृष्णावतार में जव कालीय सर्प कालिन्दी दह में आपके पाद-पद्म को डसेगा, तभी फिर आपसे मेरी भेंट होगी । उस अवतार में भी आप अपने चक्र से बहुत शत्रुओं का विनाश करेंगे ।" यह कहते हुए पक्षिराज गरुड़ वहाँ से चले गये । (२२)

अन्तर्गत—मन की बाते; सरीसृपरे—नागफाँस में; बासुदेव—श्रीकृष्ण; बर्ष्मरे—देह में, अवतार में; अरि[1]—शत्रु; अरि[2] (रे)—सुदर्शन चक्र से, (यमक); पक्षिराट—पक्षियों में राजा, गरुड़ । (२२)

बुधे ए पद बेनि बिख्यात हेब तिनिठारे सुख दुःखद ये़ ।
बळ ये़ देखि शुणि रावणदूते जाणि सीता सखी सम्बाद ये़ ।
ब्यग्रबन्ते । बार सेनापतिए ये़ं ।
बाहार घेनि मान करि गुमानमान देखि देबंक भये ये़ । २३ ।

सरलार्थ—हे पण्डित जनो ! पूर्वोक्त दो पद तीनों स्थलों में सुख व दुःख-प्रदानपूर्वक प्रसिद्ध हुए । गरुड़ के आगमन तथा राम-लक्ष्मण को मुक्तिप्रदान से रामचन्द्रजी के सैन्य आनन्दित हुए । यह संवाद दूतों के मुख से सुनकर रावण को बड़ा खेद हुआ और सीता सखियों से बातचीत के मिस यह समाचार पाकर प्रसन्न हुई । यह खबर पाकर रावण के बारहों सेनापति अभिमानवश नाना प्रकार की प्रतिज्ञाएँ करते हुए निकल पड़े । उनकी गतिविधि देखकर देवताओं को भी भय हुआ । (२३)

बुधे—हे पण्डितो !; बिख्यात—प्रसिद्ध; गुमान—प्रतिज्ञाएँ । (२३)

बृषभे देबान्तक बाजिरे नरान्तक स्यन्दने भयंकर ये़ ।
बराहे लोहपृष्ठे शतांग साजि हृष्टे निकुम्भ महोदर ये़ ।
बुलाइण । बरछि असि शक्ति ये़ ।
बाणासने तत्पर पूरोइ थोइ शर मोच आउँशुछन्ति ये़ । २४ ।

सरलार्थ—देवान्तक व नरान्तक नामक दोनों राक्षस-सेनापति अपने-अपने रथ से साँड़ तथा घोड़े जोत निकल पड़े तो बड़े भयंकर दिखाई पड़े। निकुम्भ व महोदर, ये दोनों अपने-अपने रथ सजाकर उनसे सूअर तथा कंक जोतकर उन पर चढ़े। उन्होंने हाथों में बरछियों, तलवारो तथा शक्ति आदि अस्त्रों को घुमाते हुए धनुषो पर शर सन्धाने और भयंकर स्वरूपों के साथ अपनी-अपनी मूँछ मरोड़ते हुए पुर से निकल पड़े। (२४)

बृषभे—साँड़ों को; वाजिरे—घोड़ों को; बराहे—सूअरों को; लोह पृष्ठे—कंकों को; शतांग—रथ; मोच—मूँछ; आउँशुछन्ति—मरोड़ रहे हैं। (२४)

बिशिष्ट कि धूम्राक्ष नाहिँ लक्ष्य या लक्ष लुलाप रथे योचि ये।
ब्याघ्र ओघरे श्ळाघ्य क्रोधन रथ शीघ्र परिघ बहि रुचि ये।
बज्रदंष्ट्र। बिमाने क्रोष्टु कोटि ये।
बिमाने गृध्र योचि चक्रिणिरे राजन्ति अकम्पनहिँ घोटि ये। २५।

सरलार्थ—प्रधान सेनापतियों में अतुलनीय वीर धूम्राक्ष ने अपने रथ में एक लाख भैंसे जोते। क्रोधन राक्षस प्रशंसा के सहित व्याघ्रसमूह को अपने रथ में जोतकर परिघ अस्त्र धारणपूर्वक दीप्तिमन्त दिखाई दिया। बज्रदंष्ट्र ने अपने रथ में एक करोड गीदड़ जोते। अकंपन सेनापति ने भी घमंड से अपने चक्रयुक्त रथ में बहुत गीध जोतकर युद्धभूमि को ढक लिया। (२५)

लुलाप—भैंसे; ब्याघ्रओघरे—बाघसमूह से; श्ळाघ्य—प्रशंस्य; क्रोष्टु—गीदड़, स्यार; चक्रिणि—चक्र। (२५)

बन्धन स्यन्दनरे नागबर्ग रागरे प्रबीर-बाहु बसे से।
बुहाइ पिशाचकु पिशाच ता रथकु भयद नादे घोषे ये।
बज्र अंग। बिड़ाळे रथ साजि ये।
बान्धिअछि प्रमत्त पञ्चास्य रथे मत्त उन्मत्त उष्ट्रे राजि ये। २६।

सरलार्थ—प्रवीरवाहु नामक सेनापति क्रोधवश होकर हस्तिसमूह को बाँधकर रथ पर बैठा। पिशाच नामक सेनापति ने भयंकर चीत्कार करने वाले पिशाचों के द्वारा अपने रथ को चलाया। बज्रअंग ने विड़ालों को जोतकर अपने रथ को सजाया। प्रमत्त राक्षस ने मतवाले सिंह को रथ में बाँधा, और उन्मत्त दैत्य ने ऊँट जोतकर अपने रथ को सुशोभित किया। (२६)

नागवर्ग—हस्तिसमूह; पिशाचकु—राक्षसों के द्वारा; पञ्चास्य—सिंह; उष्ट्रे—ऊँटों को। (२६)

बायस शत शत बिरळाक्ष योचित उल्लुक रथे उलुक ये।
बहे असुरपन्ति त्रिशिररथे तथि कुम्भी योचि कुम्भक ये।
बेगे याइ। बेढ़ि कपाट फेइ ये।
बड़ अन्धार राति निशाचर अराति मायायुद्ध भिआइ ये। २७।

सरलार्थ—अनन्तर विरूपाक्ष नामक वीर सेनापति ने असंख्य कौवे तथा उल्लुक सेनापति ने अनगिनत उल्लू रथ में जोते। त्रिशिर सेनापति के रथ को असुरवृन्द ने चलाया। कुम्भक सेनापति ने अपने रथ में हाथियों को जोता। इस तरह की सजधज से सब राक्षस सेनापतियों ने अतिशीघ्र जाकर गढद्वार का दरवाजा खोल दिया और सब असुरों ने मिलकर अन्धेरी रात में शत्रुओं सहित मायायुद्ध छेड़ दिया। (२७)

बायस—कौवे; कुम्भी—हाथी; फेइ—खोलकर; अराति—शत्रु; । (२७)

बाहार चण्डी येते डाकिनी अप्रमिते पशुए नानारूपी ये।
बुलाइ जिह्वा उल्का देखाइ रड़ि शंका जन्माइ गले ब्यपि से।
बिभीषणे। बेढ़िले अष्टरथी ये।
बिच्छन्द मारणरे बणा हेले रणरे राम लक्ष्मण तथि ये। २८।

सरलार्थ—युद्धक्षेत्र में बहुत चण्डियाँ तथा अनगिनत डाइने निकल पड़ी। कुत्ते तथा स्यार आदि नाना प्रकार के पशु अपनी-अपनी आग-सी जीभ लपलपाते हुए तथा चिल्लाते हुए भय उपजाकर फैल गये। आठ रथियों ने इकट्ठे होकर विभीषण को अत्यन्त कपट से मारने के लिए घेर लिया। रामलक्ष्मण दोनों विभीषण को देखने में भटक गये। अर्थात् अत्यन्त मायायुद्धवश उन्हें पहचान नही सके। (२८)

जिह्वाउलका—आग-सी जीभ; बिच्छन्द—अत्यन्त कपट; बणा—भौचक्का, हक्का-बक्का, भटके। (२८)

बानरयूथपति भिन्न भिन्न हुअन्ति पाश जन न दिशि ये।
बृन्द बृन्द होइण राक्षसरे बेष्टन भल्लुक कपिराशि ये।
बातात्मज। बिश्रामि द्वारपाशे ये।
बिजे अंगदस्कन्धे लक्ष्मण चिह्नि बोधे सुग्रीव मार घोषे ये। २९।

सरलार्थ—राक्षसों के मायायुद्ध के कारण वानरयूथपति परस्पर से अलग हो गये। अन्धकार की वजह से आसपास के लोग एक दूसरे को देख नही पाये। भल्लुक तथा [illegible] न्य झुंड के झुंड, राक्षसों के घेरे में पड़ गये। केवल [illegible] पास सुस्ता रहे थे। सु

ने अंगद के कन्धों पर विराजे लक्ष्मण को पहचान सके और 'मारो', 'मारो' शब्द से कपियों को ढाढ़स देते रहे। (२९)

बेष्टन—घेरा; विश्राम—सुस्ता रहे थे। (२९)

बारणरे बारण स्यन्दनरे स्यन्दन हये हय कचाड़ि से।
बनौकापति गति तद्‌बत सेनापति पदग पदे ताड़ि ये।
बिन्धि दश। बाण श्रीराम नाशि ये।
बानकोटि कुन्जर त्रिकोटि रिथीसार तुरंग खर्ब अशी ये। ३०।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान् जी ने हाथी पर हाथी, रथ पर रथ और घोड़े पर घोड़े को पटककर उनके प्राण लिये। उसी तरह सुग्रीव तथा उनके अष्ट सेनापतियों ने पायक सैन्यों को लात मार कर विनाश किया। श्रीरामजी ने दस बाण मारकर बावन करोड़ हाथियों, तीन करोड़ श्रेष्ठ रथियों तथा अस्सी खर्व घोड़ों का विनाश किया। (३०)

बारण—हाथी; स्यन्दन—रथ; हय—घोड़े; कचाड़ि—पटककर; बनौकापति—वानरसेनापति सुग्रीव; पदग—पायक; कुंजर—हाथी; तुरंग घोड़े; खर्व—दस अरब की संख्या। (३०)

बिशपरार्द्ध तहिँ पदाति खण्डि होइ बहुबार प्रयोगे से।
बिनाश कले केते लक्ष्मण एहिमते प्रवर्त्ति रणरंगे ये।
बिभाबसु। बिदिते सर्बे दिशि ये।
बरण पाशे थिला छेदा शब चाहिंला ए दिशे प्रभु घोषि से। ३१।

सरलार्थ—उस युद्ध में रामचन्द्र जी ने बहुत बार शरों का प्रयोग करके बीस परार्द्ध पदातिक सैन्यों का प्राणनाश किया। लक्ष्मण जी ने भी उसी तरह कौतुक से बहुत सैन्यों के सिर काट डाले। इस समय हनुमान् परकोटे के समीप थे। सूर्योदय होने पर उन्होंने छिन्न-मस्तक शवों को देखा और यह समझकर कि इसी दिशा में मेरे प्रभु श्रीराम जी हैं, आगे बढ़ने लगे। (३१)

बिभावसु—सूर्य; विदित—प्रकाशित; बरण—प्राचीर, परकोटा। (३१)

बिबाद बिबर्द्धन श्रीरामे अकम्पन देखि पावनि धामे ये।
बाज झाम्पे कपोत माड़िबसिला मत बळी बाहुसंग्रामे ये।
बधि ताकु। बिहि ओळग बहि ये।
बिन्धु पिशाच नीळे सरथे चूरु शैळे धूम्राक्ष चाहिँ धाईं ये। ३२।

सरलार्थ—आगे बढ़ते हुए हनुमान् जी ने देखा कि अकंपन राक्षस श्रीरामजी से जूझ रहा है। यह देखकर वे दौड़ पड़े और अकंपन पर

टूट पड़े, मानो श्येन पक्षी कबूतर पर टूट पड़ा हो। बाहु-युद्ध से उन्होंने अकंपन का विनाश किया और श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम-पूर्वक उन्हें अपने कन्धों पर वहन करते हुए वे आगे बढ़ने लगे। जब पिशाच राक्षस ने नील सेनापति की ओर तीर छोड़ा, नील ने पत्थर फेंककर रथ के साथ उसे चूर कर डाला। यह देखकर धूम्राक्ष राक्षस दौड़ आया। (३२)

पावनि—पवन-पुत्र हनुमान् ने; ओळग—प्रणाम; सरथे—रथ के साथ। (३२)

ब्रह्माण्ड य़ा उदरे तांकु धरि स्कन्धरे पबनु जब करि य़े।
बाळ धरिण नेइ बसुधारे पकाइ पाद प्रहारे मारि से।
बिबुधादि। बोइले धन्य धन्य य़े।
बज्रदंष्ट्र ग्रीब छिण्डाइला सुग्रीब फिंगिला के समान य़े। ३३।

सरलार्थ—जिनके उदर में ब्रह्माण्ड है, उन श्रीरामचन्द्र जी को कन्धों पर वहन करते हुए हनुमान् जी ने पवन से अधिक शीघ्रगति से चलकर धूम्राक्ष के बाल पकड़े और उसे भूमिपर लिटाकर पैरों से लतिया कर मार डाला। वह देखकर देवता 'धन्य' 'धन्य' कहने लगे। सुग्रीव ने वज्रदंष्ट्र राक्षस के कण्ठ का छेदन करके उसे दूर फेंक दिया। युद्ध में कौन उसकी बराबरी करे ? (अर्थात् कोई नही।) (३३)

जब—शीघ्रता; बिबुधादि—देबतालोग; फिङ्गिला—फेंका। (३३)

बध चमूचतुर आउमाने आतुर संद्राब पृष्ठ देइ य़े।
बिळे गरुड़ डरे सर्प्प परकारे गड़े पशिले य़ाइ य़े।
बळय़ाक। बिखण्डित चरम य़े।
ब्याधसंग भूपति घउड़ि मृगपन्ति गिरि प्रबेशे रम्य य़े। ३४।

सरलार्थ—चतुरंगिणी सेना का विनाश होते दूसरे राक्षसलोगों ने रणक्षेत्र से पीछा दिखाया। वे सब जाकर गढ़ में घुस गये, मानो गरुड़ के भय से साँप सब जाकर बिल में रहे हों। भागते वक्त (पीछे से श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके वानर सैन्यों के आघात से) उनकी पीठें घायल हो गईं। श्रीरामचन्द्रजी ने उन राक्षस सेनापतियों सहित सैन्यों को लंका-गढ़ मे वैसे ही मनोहर ढंग से घुसा दिया, मानो कोई राजा शवरों के साथ हिरनों के झुंड को पर्वत में घुसा देता हो। (३४)

चमूचतुर—चतुरंग सेना; संद्राव—भाग जाना; ब्याध—शिकारी; भूपति—राजा। (३४)

बहि एहि उपम कपिसैन्य श्रीराम बाहन य़ा मारुति य़े।
बिक्रमि राजदाण्डे चाहिँ कामिनी रुण्डे चक्षु न पिछाड़न्ति से।

बोला-बोलि । बन्धु ए कि सुन्दर गो ।
बिदेह देहवन्त फगु खेळ रचित एथु आन न कर गो । ३५ ।

सरलार्थ—यह उपमा वहन करके (अर्थात् राजा के हिरन समूह की तरह राक्षस सैन्यों को लकागढ़ में छोड़ने की उपमा) श्रीरामन्द्रजी हनुमान्‌जी के कन्धो पर बैठकर कपिसैन्यों के सहित लंका के राजमार्ग में विक्रमप्रकाश-पूर्वक लौट रहे थे । उस समय लंका की नारियाँ इकट्ठी होकर अपलक नयनों से रक्तरंजित श्रीराम की ओर निहारने लगीं और आपस में बात-चीत करने लगी, "अरी सखि ! ये पुरुष कितने सुन्दर है ! प्रतीत होता है कि कन्दर्प ने पुनः देह धारणपूर्वक फाग का खेल खेला हो । यह बिल्कुल अन्यथा नही । (अर्थात् यह बिल्कुल ही सच है ।)" (३५)

उपम—उपमा; मारुति—हनुमान्; कामिनी रुण्डे—इकट्ठी हुई नारीमण्डली; बिदेह—कन्दर्प; फगुखेळ—फाग का खेल । (३५)

बोले के रति पाइँ कक्षाबन्तहिँ तहिँ सम्बरपुरी हेजि गो ।
बुलि आसिअछन्ति होइथाइटि रति जानकी शोभाराजि गो ।
बोले केहि । बिशाक्ष आणु धरि गो ।
बामारत्न देखिछि मोर मने रखिछि रति[1] रति[2]ए सरि गो । ३६ ।

सरलार्थ—फिर किसी स्त्री ने कहा, "बात बिल्कुल ही सच है । मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो अनग चन्द्रहारयुक्ता रति का ध्यान लगाये लंकापुरी को शम्बरसुर की पुरी एवं अनुपमा-सुन्दरी सीता को रति समझकर उसे ढूँढ़ने के लिए यहाँ आया हो ।" यह सुनकर और एक स्त्री ने कहा, "रावण जब उक्त नारीरत्न सीता को चुराये ले आ रहा था, उस समय मैंने देखा कि उस स्त्री-रत्न के सहित रति के सौन्दर्य की तुलना की जाय, तो रति रत्ती-मात्र (रंचमात्र) भी समान नही हो सकती ।" (३६)

कक्षावन्त—चन्द्रहार-युक्त; हेजि—विचार करके; बिशाक्ष—बीस आँखों वाला, रावण; रति[1]—कन्दर्प की पत्नी; रति[2]ए—रत्ती मात्र, रंचमात्र भी (व्यतिरेक) (३६)

बोले के अदर्शनु सुन्दरे फुलधनु लक्ष्यकु देउथाइ गो ।
बहइ सेहि नाम संसारे एहि राम चित्तकु हरि नेइ गो ।
बोले केहि । बिधु[1] लक्षिबा नोहि गो ।
बिशुद्ध नाम सेहि ए नाम पछे थाइ निश्चय बिधु[2] एहि गो । ३७ ।

सरलार्थ—फिर एक ने कहा, "किसी ने कन्दर्प को तो देखा नही है । इसलिए किसी सुन्दर पुरुष को देखकर सब उससे कन्दर्प की उपमा देते है । परन्तु वास्तव में इन्ही राम ने ही उसी मन्मथ के नाम को वहन किया है । क्योंकि ये सभी के मन को हर लेते हैं । सुतरां ये ही मन्मथ है ।"

किसी ने आगे कहा, "हम इनसे चन्द्र की भी तुलना न करें। क्योंकि 'राम' नाम विशुद्ध है और उसके पीछे 'चन्द्र' शब्द का प्रयोग होने से मालूम पड़ता है कि 'चन्द्र' शब्द अशुद्ध है। अतएव ये निश्चय ही विष्णुजी हैं।" (३७)

फुलधनु—कन्दर्प; राम—रमणीय, मनोहर; बिधु[1]—चन्द्र; विधु[2]—विष्णु; (यमक)। (३७)

बोले के कहिबार प्रमाण सखि तोर सुरंग पाद पाणि ए।
बिकाशे सुदर्शन प्रभा आन बिधान अछि हृदयमणि गो।
बोले केहि। बसन्तबासधर ये।
बिजे छद्म बिईश कीशपर बतिशमूर्त्तिरे ए मधुर ये। ३८।

सरलार्थ—किसी ने कहा, "अरी सखि! तेरा कहना सच होगा। देख तो, उनके हाथ तथा पैर कैसे अच्छे रंग के दीख रहे हैं। सुदर्शन-चक्र की दीप्ति दूसरे रूप में (अर्थात् धनुषबाण के रूप में) उनके हाथ में विराज रही है और कौस्तुभमणि सीता की माथामणि के रूप में उनके हृदय पर चमक रही है।" फिर किसी ने कहा, "अरी सखि! पीताम्बरधारी विष्णु हनुमान्‌जी पर विराजमान होने के मिस मानो गरुड़जी पर विराजे हैं। विष्णुजी के बत्तीस लीलावतारों में यह अवतार सबसे मनोरम है।" (३८)

बसन्तबासधर—पीताम्बरधारी विष्णु; विईश—पक्षिराज गरुड़; कीशपर—हनुमान् पर; बतिशमूर्त्तिरे—बत्तीस लीलावतारों (सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार, नारद, बराह, मत्स्य, यज्ञ, नर, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कर्म, धन्वन्तरी, धर्म, ध्रुव, हरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राम, व्यास, बलभद्र, कल्कि, कृष्ण, बुद्ध) में। (३८)

बिरचि हुळहुळि शंकाकु देइ जाळि लंकाकामिनी पुञ्जे ये।
बइरी शत शत उसत चाहिँ सत राम वाहुड़ा बिजे ये।
बिळसित। बेगरे सुबळये ये।
बारणअरिद्वार समीपे दशशिर देखे सेनानी भये ये। ३९।

सरलार्थ—यह शंका कि हम लोग यदि हुलहुली करें तो रावण हम लोगों पर क्रोध करेगा, छोड़कर लंका की नारियों ने हुलहुली की। श्रीरामचन्द्रजी की 'बाहुड़ाविजय' (विजय के साथ लौटना) देखकर सैकड़ों राक्षसशत्रु भी आनन्दित हो उठे। यह सच है। श्रीराम ने शीघ्र जाकर सुवेल पर्वत पर विहार किया। सिंहद्वार के समीप रावण ने देखा कि उसके सैन्य सभय भागे आ रहे हैं। (३९)

लंकाकामिनी पुञ्जे—लंका की रमणीगण; उसत—उल्लसित; बारण-अरिद्वार—सिंहद्वार। (३९)

बाते कदळीपत्र प्राये कदळि नेत्र मोचमर्द्द पाशोर ये।
बिषय ए किंभूत बिशकर पुच्छित स्वरभंगहिं गिर ये।
बोलन्ति से। बिराबभयबशे ये।
बढ़ाइछन्ति कोप सुग्री हनु अमाप लक्ष्य देइ कि त्रासे ये। ४०।

सरलार्थ—यह देखकर रावण का शरीर केले के पत्ते की तरह काँपने लगा। मृगनेत्रों की तरह उसके नेत्र चंचल होने लगे। मूँछ मरोड़ना (वीरत्व की सूचना) भूलकर उसने अपने दूतों से पूछा, "यह क्या बात है?" भय के कारण दूतों ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया (रामचन्द्रजी से भय के हेतु मुँह से बात नही निकलती, फिर न कहने से रावण गुस्सा होगा), "हे देव! सुग्रीव तथा हनुमान् ने ऊँची ध्वनि से हम लोगों पर जैसा कोप किया, उसकी और कोई उपमा नही है। भय पाकर हम लोग प्राणनाश के भय से यहाँ भाग आये।" (४०)

कदळी-पत्र—केले के पत्ते; कदळिनेत्र—मृग के से नेत्र; मोचमर्द्द—मूंछ मरोड़ना; पाशोर—भूलना; गिर—वचन; बिराब—ऊँची ध्वनि; अमाप—असीम; त्रासे—भय से। (४०)

बज्रदंष्ट्र धूम्राक्ष अकम्पन पिशाच सेनापतिए काहिँ ये।
बोलन्ते दशशिर चार ग्रोड़िण कर बोइला नाश सेहि ये।
बिस्मयरे। बेगे तेजि निश्वास से।
बृषा-द्वेषी प्रबेश संगे भ्रातबिशेष बोले तांकु ए भाष से। ४१।

सरलार्थ—तदनन्तर रावण ने पूछा, "वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, अकंपन तथा पिशाच आदि सेनापति कहाँ है?" यह प्रश्न सुनकर दूत ने हाथ जोड़कर कहा, "उन लोगों ने विनाश प्राप्त किया है।" यह सुनकर रावण ने शीघ्र ही लम्बी साँस छोड़ी। उस समय इन्द्रजित वहाँ पर पहुँच गया। उसके साथ दूसरे भाई भी उपस्थित हुए। उन्हें देखकर रावण ने यह बात कही— (४१)

बृषाद्वेषी—इन्द्रजित। (४१)

ब्याघ्र क्रोड़रे अज प्रवेश हेला आज न पारिल बिनाशि ये।
बीर बोलाअ सर्बे प्रतिज्ञा कह गर्बे ब्यर्थे असिकि कषि ये।
बसुधाकु। बदनमान कले से।
बयाळिश पदरे ए छान्द मनोहरे बीरबर रचिले ये। ४२।

सरलार्थ—"हे वीरो ! बाघ की गोद में आज बकरा घुस गया था, तुम लोग सब व्यर्थ ही वीर कहलाते, गर्व से प्रतिज्ञा करते और व्यर्थ ही तलवारें झमकाते रहे, परन्तु उसे मार नही सके।" रावण की यह बात सुनकर सभी ने पृथवी की ओर अपना-अपना मुंह किया। (अर्थात् सभी अपना-सा मुंह लेकर रह गये।) वीरवर उपेन्द्र-भञ्ज ने इस मनोहर छान्द की बयालीस पदों में रचना की। (४२)

अज—बकरा; असि—तलवार; कषि—झमकाकर; बसुधाकु—पृथिवी पर; बदन-मान—सकल मुंह। (४२)

॥ इति त्रिचत्वारिंश छान्द ॥

चतुश्चत्वारिंश छान्द

राग—कामोदी (हंसदूत लाणि में)

बिभाबरी बिनाश बिभाबसु प्रकाश बिभाष प्रकट अशेष।
बिषम बामे त्रास बिशनेत्र निःश्वास तेजि बोइला उच्च भाष से।
बंश ध्वंस। व्यर्थ आनरे करि आश। बोधि मो भ्रात घेनि आस।
बिनिद्ररे रभस बिनश्यति अवश्य करिब बइरी साहस से। १।

सरलार्थ—रात का अन्त हुआ। प्रभात होने पर अनगिनत पक्षियों की चहक सुनाई पड़ी। भयंकर शत्रु से डरकर रावण ने ठंडी साँस ली और ऊँचे स्वर में कहा, "मैंने दूसरे योद्धाओं पर व्यर्थ ही भरोसा करके अपने वंश का ध्वंस कराया। अब मेरे भाई कुम्भकर्ण को उठाओ और (विशेष प्रकार के भोजन-दान से) उसे सन्तुष्ट करके यहाँ ले आओ। नींद से जगकर वह अवश्य शत्रुओं का गर्व शीघ्र ही चूर करेगा।" (१)

विभावरी—रात; विभावसु—सूर्य; विभाष—पक्षियों की चहक; बिशनेत्र—बीस आँखों वाला, रावण; बोधि—सन्तुष्ट करके; रभस—शीघ्र ही। (१)

बारिधि कुम्भनीर ग्रासे कुम्भसुतर सम्भब नुहइ आनर।
बानर नरबळ बेनिजात रुधिर पान हेब कुम्भकर्णर से।
बारबार। बारि जीबङ्क परकार। बिराजिब मृत शरीर।
बञ्चक गृध्र चिरक्षुधा होइब दूर भजिब लङ्कापुर स्थिर से। २।

सरलार्थ—"केवल अगस्ति ऋषि में ही सारे समुद्र का जल पीने की शक्ति है। परन्तु एक घड़ा पानी पीने की सामर्थ्य किसी दूसरे के लिए सम्भव नहीं है। वैसे केवल कुम्भकर्ण ही दोनों नर तथा वानर सेनाओं का रक्त पीने के लिए समर्थ है। समुद्र का जल सूख जाने से जैसे असख्य जलचर प्राणी मृत होकर पड़े रहते है, वैसे कुम्भकर्ण से इनका रक्त पीने से असंख्य मृत शरीर रणभूमि पर प्रकट होंगे। उनसे गीदड़ों तथा गीधों की भूख और प्यास चिरकाल के लिए दूर हो जाएगी और लंकापुर में शान्ति विराजेगी।" (२)

बारिधि—समुद्र; कुम्भनीर—एक घड़े का जल; कुम्भसुतर—अगस्ति मुनि का; बेनिजात—दोनों से उत्पन्न; रुधिर—रक्त; बार बार—असंख्य; बञ्चक—स्यार, गीदड़; गृध्र—गीध। (२)

बोलन्ते महोदरे चाहिं जुलुपाक्षरे याइ से सत्वरे चत्वरे।
बेश्मबर भितरे पशिण तदुत्तारे देखिले पल्यंक उपरे से।
बिन्ध्यधरे। बपु तार उपमा धरे। बतास लक्ष्य निःश्वासरे।
बसे निज स्थानरे गति करि ऊर्ध्वरे मन्दिरचाळ निरन्तरे से। ३।

सरलार्थ—महोदर और जुलुपाक्ष की ओर निहारकर रावण उनसे यों बोलते, वे दोनो शीघ्र ही कुम्भकर्ण के शयन-कक्ष के आँगन मे जा पहुँचे। तदनन्तर दोनों ने उसके मनोहर घर मे घुसकर देखा, कि कुम्भकर्ण पलंग-पर सोया हुआ है। उसका शरीर बिन्ध्यपर्वत के सदृश दिखाई दे रहा है और निःश्वास-वायु बतास के सदृश बह रही है। उसकी निःश्वास वायु से उस घर की छत ऊपर उठती है और फिर नीचे आकर अपने स्थान पर टिकती है। (३)

सत्वरे—शीघ्रता से; चत्वरे—आँगन में; बेश्मवर—मनोहर गृह; बिन्ध्यधरे—विन्ध्य पर्वत से; बपु—शरीर; चाळ—छत। (३)

बोळि चन्दन पाइँ उच्चरे डाक देइ बहुत लोक रुण्ड होइ।
बिचेष्टा न भाजइ श्रुतिपार्श्वे तुहाइ बिबिध बाद्यकु बजाइ से।
बाजी नेइ। बिस्तार अङ्करे धुआइँ। बारणदन्तरे मराइ।
बसिला चेता पाइ बहु आहार खाइ दुध मद रकत पिइ से। ४।

सरलार्थ—कुम्भकर्ण को गहरी नींद में सोये देखकर उन लोगों ने उसके शरीर पर बहुत चन्दन पोता। फिर बहुत लोगों ने इकट्ठे होकर उसे ऊँची आवाज से पुकारा। फिर भी उसकी नींद नही टूटी। यह देखकर उन लोगों ने उसके कानों के पास नाना प्रकार की वाद्य-ध्वनियाँ की, घोड़े लेकर उसके विस्तृत वक्षपर दौड़ाये और हाथी के दान्तों से उस पर आघात किया। बहुत समय तक ऐसा करने पर वह चेतना पाकर उठ बैठा और बहुत खाद्य खाकर दूध, शराब, खून आदि पिया। (४)

बिचेष्टा—अज्ञान, नींद, बेहोशी; बाजी—घोड़े; अंकरे—गोद में; धुआंइ—दौड़ाये; बारणदन्तरे—हाथी के दाँतों से। (४)

बाहारि शत शत आहारी होइ दैत्य बाहारि करे शूळधृत।
बिबुधाचळे स्थित कळ्पपादपबत प्राकार जिणि दिशे सत से।
बळबन्त। बहे अभ्रमुपति भीत। बारबार आउँषे दन्त।
बिमळज्योति हत आदित्य सन्तपन्त तुरंगरंग बिळम्बित से। ५।

सरलार्थ—अनन्तर कुम्भकर्ण सैकड़ों भैंसों का भोजन करके हाथ में शूलधारणपूर्वक निकल पड़ा। निकलते समय उसका मस्तक लंका के

परकोटे पर फूट निकलकर ऐसा मालूम पड़ा मानो मेरुपर्वत पर कल्पवृक्ष निकला दिखाई पड़ता हो। पूर्वकाल में कुम्भकर्ण ने ऐरावत के एक दाँत को उखाड़ डाला था। इसलिए तब ऐरावत ने उसे इस वेश में देखा, तो वह बहुत डर गया एवं बार-बार अपने दाँतों को थपकाने लगा। इस भय से कि कहीं मेरे रथ में जोते घोड़ों को देखकर कुम्भकर्ण उन्हें खा न जाय और इससे मेरे रथ की गति में बिलब न हो जाय, सूर्यदेव हीनप्रभ हो गये। (५)

बाहारि—भैसे; दैत्य—राक्षस कुम्भकर्ण; विबुधाचळे—मेरु पर्वत पर; अभ्रमुपति—ऐरावत हस्ती; आउँषे—थपकने लगा; आदित्य—सूर्य; सन्तपन्त—परेशान, हीनप्रभ; तुरंगरंग—घोड़ों की गति। (५)

बासुकि अशकत आशु पृथ्वी लसित उमागुरु गुरु कम्पित।
बणारु दम्भब्रात ठणारु पळायत असर कपि इतस्तत ये।
बिलोकित। बोइले ए कि अदभुत। बिभीषणकु रघुसुत।
बिभाबरी के जात गइरिक पर्बत उन्नत छुउँछि अनन्त से। ६।

सरलार्थ—कुम्भकर्ण के पृथिवी पर चलते समय उसके शरीर के भार से वासुकि हीन-बल हो गये, पृथिवी धँस गई और पार्वतीपिता हिमालय पर्वत विशेष रूप से काँपने लगे। यह देखकर दांभिक (साहसी) सैन्य लोगों ने भौचक्के होकर अपना-अपना स्थान त्याग दिया। अनेक वानर सैन्य इधर-उधर भाग गये। परन्तु उसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण से पूछा, "यह कौन-सा आश्चर्य है? एक ही रात की अवधि में लका में मेरु का एक पर्वत पैदा हुआ है जो ऊँचाई मे आकाश को छू रहा है।" (६)

आशु—शीघ्र; उमागुरु—पार्वतीपिता हिमालय; गुरु—विशेष रूप से; दम्भब्रात—दम्भ सब; ठणारु—स्थान से; असर—बहुत; बिलोकित—देखकर; उन्नत—ऊँचा; अनन्त—आकाश। (६)

बिभीषण भाषण नुहइ गोत्र पुण उठिला से घटश्रबण।
बिभीतक नोहिण ब्रह्माण्डे एक जण नाहान्ति एहाकु प्रमाण से।
बीरपण। बहे दर्पक परि टाण। बेभारे य़ोगीन्द्र आपण।
बिह नाश तक्षण पड़िलाणि ईक्षण हुअ सुकृति बिचक्षण से। ७।

सरलार्थ—विभीषण ने उत्तर दिया, "हे देव! यह वास्तव में पर्वत नही, कुम्भकर्ण है जो अभी-अभी नीद से जगा आ रहा है। संसार में ऐसा कोई एक भी वीर नही जो कुम्भकर्ण से नही डरता। जैसे कन्दर्प किसी को विना माने अपनी इच्छानुसार काम करता जाता है, वैसे वीरता

में यह कुम्भकर्ण किसी को भी नहीं गिनता और अपनी इच्छानुसार काम करता है। सचमुच आप योगीन्द्र शिव स्वरूप है। जैसे शिवजी ने अपने दृक्पात मात्र से कन्दर्प को जला दिया था, वैसे आप अति शीघ्र ही उसका विनाश कीजिए और इससे जगत में कृतित्व-यश प्राप्त कीजिए।" (७)

गोत्र—पर्वत; घटश्रबण—कुम्भकर्ण; बिभीतक—निर्भय से; दर्पक परि—कन्दर्प की तरह; ईक्षण—चक्षु; सुकृति—कृतित्व। (७)

बहुपथे राक्षस नष्ट देखिला देश जुळुपाक्षे पाइ सन्देश।
बिनयभावे बश बसि लंकेश पाश पुच्छन्ते कला से प्रकाश से।
बीरईश। बिपदब्याधिरे मुँ कृश। बैद्य होइ आतुर नाश।
बिदित एथि दशरथज घेनि कीशक्रब्यादे रचे दशदश से। ८।

सरलार्थ—चलते समय मार्ग में बहुत पदार्थों तथा राक्षस-सैन्यों को नष्ट हुए देखकर कुम्भकर्ण ने जुलुपाक्ष से पूछकर असल कारण बूझ लिया। उसके बाद उसने रावण के समीप पहुँचकर विनय से उससे पूछा, "हे राजन्! मुझे आपने क्यों बुलवाया?" रावण ने उत्तर दिया, "हे वीरेन्द्र! मैं इस वक्त विपद-व्याधि से अत्यन्त क्षीण हो पड़ा हूँ। तुम वैद्यस्वरूप बनकर मेरी इस बीमारी को दूर करो। अधुना दशरथ के दोनों पुत्र राम तथा लक्ष्मण वानरों के सहित लंका में पहुँचकर राक्षसों को मरणदशा दे रहे है अर्थात् राक्षसों का निधन कर रहे हैं।" (८)

सन्देश—वार्त्ता; कीश—वानर; क्रब्यादे—राक्षसों को; दशादश—दशम दशा, मरण। (८)

बोलन्ते कुम्भश्रुति काहिँकि से अराति केमन्ते बानर संगति।
बोइला लङ्कपति ग्राइ मारीचकति कराइ ताकु मायामूर्त्ति से।
बेनि यति। बिन्धि ग्राउँ ताकु झटति। बळे आणिलि ता युबति।
बने सुग्रीबे प्रीति बालिकि करि हति शैळे सागरसेतु कृति से। ९।

सरलार्थ—रावण की उपर्युक्त बातें सुनकर कुम्भकर्ण ने फिर कहा, "श्रीरामचन्द्र तुम्हारे शत्रु क्यों बने और एक मनुष्य होकर उन्होंने वानरों का साथ कैसे लाभ किया? अर्थात् उनसे मित्रता कैसे स्थापित की?" यह सुनकर रावण ने उत्तर दिया, "मैने मारीच के निकट जाकर उसे कपट-मृग बनाया और उसके साथ उस वन में जा पहुँचा जहाँ राम-लक्ष्मण ठहरे हुए थे। जब वे दो तपस्वी उस मायामृग को देखकर उसे मारने के लिए कुटीर के बाहर एक के बाद एक चले गये, तो मै बलात् उन (राम) की पत्नी को वहाँ से चुरा लाया। उस नारी को पाने के लिए उन दोनों ने सुग्रीव से मित्रता की और बालि का प्राणनाश किया। फिर भालुओं

तथा वन्दरों को अपने साथ लिए समुद्र में पुल बाँधकर यहाँ आ पहुँचे हैं।" (९)

कुम्भश्रुति—कुम्भकर्ण; अराति—शत्रु; संगति—संग, साथ; मायामूर्त्ति—कपट (मृग) रूप; युवती—पत्नी; हृति—विनाश; शैले—पर्वतों से; सागर—समुद्र मे; सेतुकृति—बाँध वन्धाकर। (९)

बोले कलु कि बुद्धि नारी चउर सिद्धि मातर होइला प्रसिद्धि।
बाळिकि येहु बधि तारे पुणि बिरोधि न घेन बन्धे तरे बार्द्धि से।
बड योधी। बिश्वरे पारिब के साधि। बिशाक्ष कहे कहु बोधि।
बिभीषण समृद्धि आशे कला अबिधि पळा तु हेलुणि भीतधी से। १०।

सरलार्थ—यह सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा, "तुमने (पण्डित होकर) एक मूर्ख-सी यह किस बुद्धि का काम किया? इससे इस जगत मे तुम्हारी निन्दा मात्र रह जायगी कि तुम एक नारी-चोर हो। भला, जिसने वालि जैसे वीर का वध किया तथा समुद्र पर बाँध बाँधकर उसे पार किया, वह क्या कोई मामूली आदमी है? तुम समझ न सककर उससे शत्रुता कर रहे हो? वे राम एक वड़े योद्धा हैं। विश्व में ऐसा कोई भी वीर नही है जो उन्हें जीत सकता है।" कुम्भकर्ण की समझाई हुई ये वाते सुनकर रावण ने क्रोध से कहा, "इसी प्रकार विभीपण तो संपत्ति की आशा से राम की शरण में गया है। अव तूने भी अपने मन मे भय किया है। सुतरां तू भी यहाँ से भाग जा और उस विभीषण के सहित श्रीराम की शरण में आ।" (१०)

नारीचउर—स्त्री चोर; वार्द्धि—समुद्र; भीतधी—भयबुद्धि। (१०)

बाळक मेघनाद रचुँ प्रथमे बाद लक्ष्मणे कला शक्ति भेद।
बारेक पुणि द्वन्द्व बिहिला भ्रातृद्वन्द्व दन्दशूकपाशरे धन्द से।
बळे मन्द। बारे कि बडाइ सम्बाद। ब्याघ्र आगरे बळीवर्द्द।
बोलुँ करि निनाद बाहार हेला मद्यविह्वले बुद्धि करि मन्द से। ११।

सरलार्थ—रावण ने आगे कहा, "मेरे एक छोटे बच्चे मेघनाद ने लक्ष्मण से लड़कर उसमे शक्ति-भेद किया था। दूसरी बार युद्ध मे उसने दोनों भाइयो को नागफाँस से बाँधा। जो वल या पराक्रम मे इतने हीन हैं कि मेरे वच्चे-से बेटे को भी जीत नही सके, तू उन्ही की बड़ाई की बातें कर रहा है! क्या शेर के सामने एक वैल समकक्ष हो सकता है?" रावण के ऐसा बोलते, कुम्भकर्ण शराव की मस्ती से हीनबुद्धि होकर घोर गर्जनपूर्वक युद्ध के लिए निकल पड़ा। (११)

बाद—शत्रुता; द्वन्द्व—युद्ध; भ्रातृद्वन्द्व—दोनों भाई; दन्दशूकपाशरे—नागफाँस से; वळीवर्द्द—बैल; निनाद—शब्द, गर्जन। (११)

बिधान गरजन गर्भस्राब सर्जन बधिर प्राय हेले जन।
बज्रे बज्र ग्रेसन घरषण तेसन शुभे रटमट दशन से।
बिबर्द्धन। बेळुँ बेळु ता अपघन। बहइ नदीरु जबन।
बनचर सइन हीरापन्ति समान धरारे कला से मर्द्दन ये। १२।

सरलार्थ—युद्ध के लिए रवाना होते समय कुम्भकर्ण ने ऐसा गर्जन किया कि उसे सुनकर स्त्रियों का गर्भपात हो गया। (अर्थात् भय से उनके गर्भो से असमय पर शिशुओं का प्रसव हो गया।) वह गर्जन सुनकर लोग बहरे हो गये। वह दाँत रगड़ने लगा तो ऐसा सुनाई पड़ा मानो बज्र से बज्र घिस रहे हों। उसका शरीर उत्तरोत्तर बढ़ता गया और नदी से भी अधिक वेग से चलते हुए उसने भालू तथा वानर सैन्यों को चीटियों के समान पैरों से कुचलकर घिस डाला। (१२)

गर्भस्राव—भय के कारण असमय पर गर्भ से शिशु-प्रसव; बधिर—बहरे; अपघन—शरीर, जवन—शीघ्र; हीरापन्ति—चींटियों के समूह। (१२)

बिहु श्वास लसुन शुष्क चोपारु हीन उड़िले जगज्जेठिमान।
बर्त्मरे हनुमान अंगद अभिमान लभि बिरोधिले बदन से।
बळबान। बिघाति बेनि सानुमान। बाजि तनुरे भिन्न भिन्न।
बाम पाद चाळन शूळप्रहारे घन से बेनि हेले अचेतन से। १३।

सरलार्थ—कुम्भकर्ण ने साँस ली, तो उसकी निःश्वास-वायु से प्रधान-प्रधान योद्धा सब सूखे लहसुन के छिलकों से हीन होकर उड़ गये। यह देखकर मार्ग में हनुमान् तथा अंगद दोनों वीरों ने मन में अभिमान वहन करके कुम्भकर्ण का विरोध किया। अनन्तर उन्होंने हाथों में एक-एक पर्वत पकड़कर उन्हें कुम्भकर्ण पर पटक दिया, तो वे कुम्भकर्ण के शरीर से बजकर चकना-चूर हो गये। यह देखकर कुम्भकर्ण ने अपना बायाँ पैर सामने डालकर एक शूल से उन्हें प्रहार किया, तो वे दोनों बेहोश होकर भूमिपर गिर पड़े। (१३)

लसुन शुष्क चोपारु—सूखे लहसुन के छिलको से; जगज्जेठिमान—वीर लोग; बर्त्मरे—मार्ग पर; बिघाति—विनाश करके; सानुमान—पर्वत। (१३)

बिक्रमन्ते कपटी पञ्चेसना लम्पटी ताङ्कु बिध्वंसि एकत्रुटि।
बाटे सुग्रीव भेटि परिघ हृदे पिटि ग्रहुँ पड़िले मही लोटि से।
बाळ गोटि। बिधिरे धइला साऊँटि। बक्षरे लगाइ लेउटि।
बिद्य पवनसृष्टि से मेळरे प्रकटि गोळे सेनाङ्क मूर्च्छा तुटि से। १४।

सरलार्थ—हनुमान् तथा अंगद को बेहोश पड़े देखकर और पाँच रणनिपुण सैन्य कौशल से आगे बढ़ गये। परन्तु कुम्भकर्ण ने उनका एक

ही क्षण में विनाश किया। मार्ग पर सुग्रीव जी कुम्भकर्ण से मिले। उसने उनके वक्ष पर एक परिघ से प्रहार किया तो वे भूमि पर गिर पड़े। सुग्रीव को बेहोश देखकर कुम्भकर्ण ने उन्हें उठा लिया मानो एक शिशु को कोई उठा ले रहा हो और अपने वक्ष से लगाकर लंका ले लौटा। उसके चलते समय हवा इतने जोर से बहने लगी कि उस हवा के लगते ही बेहोश पड़े सैनिक लोगों की बेहोशी टूट गई। (१४)

कपटी—मायावी, (यहाँ) रणनिपुण; लम्पटी—कौशली; विद्य—प्रकाशित।(१४)

बाहारिले ता पछे तिमिकि क्षुद्र मत्स्ये बेष्टित हेला परा स्वच्छे।
बिधृत गछे गछे केहि तरिबा बाञ्छे बार्त्ता प्रकटे रघुबत्से से।
बीर इच्छे। बिज्ञान हते थाउँ बत्से। बळिष्ठे गणिबे निकुत्से।
बिकोति नासा तुच्छे श्रुति छिनाइ पछे अन्तरीक्षरे उतपिञ्छे से।१५।

सरलार्थ—भालू तथा वानर सैन्यों ने जब उठकर कुम्भकर्ण का पीछा किया, तो ऐसा दिखाई पड़ा मानो छोटे-छोटे मीनगण बृहदाकार तिमि-मत्स्य को घेर चल रहे हो। उपस्थित विपत्ति से रक्षा पाने के लिए वे सैन्य अपने-अपने हाथ में एक-एक वृक्ष धारण किये हुए हैं। क्रमशः यह सन्देश रामचन्द्रजी के समीप पहुँचा। इस समर्थ कुम्भकर्ण की गोद में वीर सुग्रीव ने चेतना प्राप्त की तो उन्होने सोचा कि अब बलवान वीर सब मेरी तुच्छ वीरों में गिनती करेगे। यह सोचकर उन्होने अपने दाँतों से कुम्भकर्ण की नाक को काटकर अलगकर दिया और दोनों हाथों से उसके दोनो कानों को फाड़ डाला और शीघ्र ही कूदकर ऊपर उड़ चले। (१५)

विधृत—धारण करके; रघुबत्से—श्रीरामचन्द्र जी को; निकुत्स—निकृष्ट; बिकोति—काटकर; उतपिच्छे—ऊपर कूदना।(१५)

बिहरे तिनिकरी चञ्चुपदरे धरि गण्डभेरण्ड से माधुरी।
बिचारुछन्ति हरि घातकी हेला परि होइ कि आसिले उतरि से।
बिद्युपरि। बहि पड़ुछि रक्त झरि। बर्षे कि घन रक्तबारि।
बिशोउ अनुसरि यहिँके दण्डधारी प्रशंसि कोळकु आदरि से।१६।

सरलार्थ—जब सुग्रीव जी कुम्भकर्ण की एक नाक को अपने मुँह तथा उसके दोनों कानों को अपने हाथो में पकड़कर शून्य में उड़ आये, तब उन्होंने ऐसी शोभा धारण की मानो एक गण्डभैरव पक्षी अपनी चोंच तथा पैरों में तीन हाथी लिए आकाश में विहार कर रहा हो। सुग्रीव को ऐसी हालत में उड आते देखकर बन्दरों ने सोचा, "क्या सुग्रीव जी कुम्भकर्ण के द्वारा घायल होकर उसके हाथों से उबर बिजली की तरह उड़ते आ रहे है! उधर राक्षस की नाक-कान से रक्त झर रहा था, मानो मेघ से रक्त-मिला

जल बरस रहा हो। जिस स्थान में श्रीरामजी विराजमान थे, उसी की ओर नजर रखकर सुग्रीव जी नीचे उतर पड़े और उनके समीप विश्राम किया। उनका ऐसा पराक्रम देखकर श्रीरामजी ने उनकी प्रशसा करते हुए उन्हें अपनी गोद में ले लिया। (१६)

तिनिकरी—तीन हाथी; गण्डभेरण्ड—गण्डभैरव पक्षी (ओड़िआ कहानी में वर्णित काल्पनिक पक्षी); हरि—वन्दर; रक्तवारि—रक्तरूपी जल; दण्डधारी—श्रीराम। (१६)

बाहुड़िला दनुज लभि प्रबळ लाज बहिपड़अछि क्षतज।
बढ़ाइ देइ भुज भुञ्जे कपिसमाज नासा कर्ण रन्ध्रे त्यज से।
बुधे हेज। बिजन्य इन्द्रगोपपुञ्ज। बसुधा तळुँ कि बिराज।
बिकुक्षिवंशीराज भेटुँ बिन्धि नाराज छेदिले बाहुपाद तेज से। १७।

सरलार्थ—नाक तथा कान कट जाने से कुम्भकर्ण हीनाग होकर मारे शरम के युद्धक्षेत्र से लौटा। उस समय उसकी नाक तथा कानों से रक्त की धाराएँ बहती जाती थी। लौटते समय वह अपने हाथ बढ़ाकर बन्दरो को पकड़ निगल लेता था तो वे रक्त से लथपथ शरीरों से उसकी नाक तथा कानों के रन्ध्रों से निकल पड़ते थे। हे पण्डितो! जरा विचार कीजिएगा। उस समय कुम्भकर्ण की नाक तथा कानो में से निकलते हुए बन्दरो को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो इन्द्रवधू कीड़े सब भूमि के अन्दर से निकल विराज रहे हों। अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने कुम्भकर्ण से मिलकर शरों के प्रयोग से उसके हाथ तथा पैर काट डाले। (१७)

क्षतज—रक्त; इन्द्रगोपपुञ्ज—इन्द्रवधू-(बीरबहूटी)-समूह; बिकुक्षिवंशीराज—श्रीराम; नाराज—नाराच, शर। (१७)

बिभूति भोग हेब धरे स्थाणुबिभब स्वरविभब भइरब।
बभ्रुषागति जब मातुळाहि प्रभाव गरासि देउअछि प्ळव से।
बन्हिइब। बहन म्ळान तेज भाब। बोलइ मुँ आन दानव।
बिन्ध बिन्ध राघब य़ेते तो बाण थिब सेमाने भजिबे लाघब से। १८।

सरलार्थ—हाथ तथा पैर कट जाने से कुम्भकर्ण ने ठूँठ की शोभा धारण की। और भी उसने स्थाणु-विभव (महादेवजी के ऐश्वर्य) को वहन किया। सुतरां उसका भस्म-विभूषित होना स्वाभाविक है। (ठूँठ को भी लोग जलाकर राख कर देते है।) अनन्तर उसने जो भयंकर गर्जन किया, वह शिवजी के भैरव के गर्जन की तरह प्रतीत हुआ। उसके हाथ-पैर छिन्न होने से वह मालुधान साँप की तरह शीघ्र तथा सुन्दर गति करता हुआ मेंढकों के सदृश वन्दरों को निगलने लगा। उसका अग्नि का-सा जो

तेज प्रकाशित हुआ था, वह शीघ्र ही मलिन हो गया। फिर भी उसने रामचन्द्रजी से कहा, "हे राघवेन्द्र! तुम क्या मुझे दूसरा कोई दानव समझते हो? तुम्हारे जितने भी बाण है, उन सबके प्रयोग से भी मेरा वाल वाँका नहीं होगा और वे सारे वाण लघुता को प्राप्त करेंगे। (अर्थात् मेरे शरीर पर उन बाणों की शक्ति प्रतिहत हो जायगी।)" (१८)

विभूति—राख, भस्म; स्थाणु—ठूंठ, महादेव; (श्लेष); स्थाणु बिभव—महादेव जी का ऐश्वर्य; स्वरविभव—दीर्घस्वर; भइरव—भयंकर, शिवजी का गण; (श्लेष); मातुळाहि—मालुधान, एक नाग; प्लव—बन्दर, मेढक; (श्लेष); राघव—श्रीरामचन्द्र; लाघव—लघुता। (१८)

बिराध बाळि थिले से वनपशु भले खर[1] खर[2] मोते चाहिँले।
वोलुँ वाछि सन्धिले राम शर बिन्धिले ग़ेते ता सिर न छेदिले से।
विभळिले। बिघात शिळे ग़था फुले। बिस्मय मानस होइले।
बिष्णु अरि प्रज्वळे अर्धचन्द्रर छळे गुप्त हेजि प्रयोग कले से। १९।

सरलार्थ—कुम्भकर्ण ने फिर कहा, "विराध राक्षस, बालि आदि वीर मेरी तुलना में जंगली जानवरों के सदृश है, एवं खर राक्षस खर (गदहे) के समान है। तुमने इन्हें जीत लिया है, इसलिए ऐसा अभिमान मन में मत करना कि मुझे भी जीत लोगे।" कुम्भकर्ण की वातें सुनकर रामचन्द्रजी ने अपने धनुष पर वहुत उत्कृष्ट वाण सन्धानकर उसके प्रति उनका प्रयोग किया। परन्तु उन वाणों में से किसी से भी उसका सिर नहीं कटा। पत्थर पर फूल पड़ने से जैसे उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती, उसी तरह कुम्भकर्ण के शरीर पर श्रीरामजी के वाण वजकर झड़ पड़े। तब श्रीरामजी अपने मन में विस्मित हुए। उन्होंने सुदर्शन चक्र के सदृश तेजोवन्त अर्द्धचन्द्र बाण का उसके मर्मस्थल को लक्ष्य करके प्रयोग किया। (१९)

खर[1]—राक्षस विशेष; खर[2]—गदहा; विभळिले—झड़ पड़े; शिळे—पत्थर पर; विष्णु अरि—सुदर्शन चक्र; गुप्त—मर्मस्थल; हेजि—लक्ष्य करके। (१९)

वसिला गळे चाण्ड गळिगला प्रचण्ड रबे बुलिला जाणि मुण्ड।
वाजि पुणि से काण्ड कला ताकु द्विखण्ड फाळके पड़ि भर्त्तखण्ड से।
वारिकुण्ड। विपतितरे आर खण्ड। बरण नामे मेघदण्ड।
विहिला तारे दण्ड कहिले चार-रुण्ड शुणि रोदन्ते दशमुण्ड से। २०।

सरलार्थ—उक्त अर्द्धचन्द्र वाण ने शीघ्र ही जाकर कुम्भकर्ण के गले को विद्ध किया तो वह सिर घोर गर्जन करता हुआ घूम गया। यह जानकर श्रीराम ने उक्त शर का फिर एक वार प्रयोग किया तो उसने

कुम्भकर्ण के सिर के दो भाग कर दिये। आधा भाग भारतखण्ड में पड़ने से वह बारिकुण्ड (नीलेन्दी सरोवर) हुआ और दूसरे आधे ने मेघदण्ड प्राचीर पर पड़कर उसे चकनाचूर कर दिया। दूतो ने इकट्ठे जाकर रावण को कुम्भकर्ण की मृत्यु आदि सारी बातें बताईं तो वह रोने लगा। (२०)

चाण्ड—शीघ्र; भर्त्तखण्ड—भारत खण्ड, भारतवर्ष; बारिकुण्ड—नीलेन्दी सरोवर; वरण प्राचीर; चार—दूत; दशमुण्ड—रावण। (२०)

बाचक उठि महापारुश देखि ताहा किपाइँ हारुछ उत्साहा।
बिखन हेले साहा लिखन थिब ग़ाहा पोछि मारिबि रघुनाहा से।
बिशबाहा। बोले बोलिबि मुहिँ काहा। बिपक्षे बेगे ‍कर ताहा।
बिमान बोलुँ बाहा पन्टा सोदर स्नेहा नोहे ताङ्क प्रतिज्ञाकुहा से।२१।

सरलार्थ—रावण के रोते समय, महापार्श्व नामक राक्षस ने उठकर कहा, "आप इस तरह क्यों उत्साह हार रहे है? विधाता ने भी उस राम की सहायता करके उसके भाग्य में जो भी लिखा होगा, उसे पोंछकर मैं उसका वध करूँगा।" यह सुनकर रावण ने कहा, "इस विषय में मैं क्या अधिक कहूँ? अब तुम अतिशीघ्र शत्रुका विनाश करो।" यह सुनकर अबिलम्ब महापार्श्व ने अपने सारथि को रथ चलाने के लिए आदेश दिया, तो उसके पाँच भाई युद्ध करने के लिए उसके साथ आगे बढ़े। उन लोगों की प्रतिज्ञाएँ कही नही जा सकती। (२१)

बाचक—वक्ता; बिखन—ब्रह्मा; रघुनाहा—श्रीराम; बिशबाहा—रावण; बिपक्षे—शत्रुओं को। (२१)

बिगति देबान्तक त्रिशिर नरान्तक महोदर अतिकायक।
बज्रकबच धुक भल्ल गदा शायक कार्मुक शकति शायक से।
बीरडाक। बळहिं चळे असंख्यक। बाह गज-रथ पदक।
बाजे बाद्य अनेक उच्छन्न नाग नाकलोकरे स्थित येते लोक से।२२।

सरलार्थ—महापार्श्व के साथ देवान्तक, त्रिशिर, नरान्तक, महोदर और अतिकाय—ये पाँच वीर अपने-अपने शरीर पर कवच पहनकर, हाथों में भाले, गदा, तलवारें, धनुष, शर आदि अस्त्र धारणपूर्वक ललकारते हुए निकल पड़े। उनके साथ बहुत सैन्य, घोड़े, हाथी, रथ तथा पायक आदि चले, एवं बहुत नगाड़े बज उठे। सुतरां स्वर्ग, मर्त्य और पाताल के सब निवासी भय से अधीर होने लगे। (२२)

धृक—धारण करके; शायक—शर; कार्मुक—धनुष; बाह—अश्व; पदक—पायक; नागनाकलोकरे—पाताल, मर्त्य एवं स्वर्गपुर में। (२२)

बर्त्मे ओगाळि नीळ करन्ते रणगोळ अङ्गद हनुमन्त मेळ।
बृक्षसार अचळ ऋषभ महाबळ घेनि हेला समरशीळ से।
बृष्टिशिळ। बाण परिघ भल्ल शूळ। बाळिसुत प्रहारु शाळ।
बाजिला हृदस्थळ नरान्तक आकुळ गजुँ पड़िला महीस्थल से। २३।

सरलार्थ—राक्षस सैन्य युद्ध के लिए निकल पड़े तो पथ पर नील सेनापति ने उनको रोकते हुए युद्धारम्भ किया। उस समय अंगद और हनुमान् दोनों वहाँ पहुँचकर उनसे मिल गये। अत्यन्त वलवान् ऋषभ वानर बड़े-बड़े वृक्ष तथा पर्वत लिये वहाँ युद्ध में लग गया। वानरो की ओर से राक्षसों पर पत्थरों की वृष्टि होने लगी और राक्षसों ने इन पर वाणों, परिघों तथा शूलों आदि की वौछार की। इस वक्त वालिसुत अंगद ने एक शालवृक्ष से प्रहार किया तो उस वृक्ष ने नरान्तक राक्षस का हृदय बेध डाला। वह व्याकुल हो घोर गर्जनपूर्वक हाथी की पीठ से भूमि पर गिर पड़ा। (२३)

बर्त्मे—पथ पर; ओगाळि—रोकते हुए; वृक्षसार—बड़े पेड़; समरशील—रणकुशली। (२३)

बामे सेहि बारण धरिण प्रहारण लभिले से बेनि मरण।
बिन्धिला मोहबाण देबान्तक देखिण बाळिनन्दन ज्ञानक्षीण से।
ब्रणगण। बिशिखे कले समीरण। बप्ता य़ा तार शरीरेण।
बड़ग्राबे मारिण गुण्डा हेला तक्षण अस्थिसह रक्षनिपुण से। २४।

सरलार्थ—नरान्तक के नीचे गिर जाने पर अंगद ने उसके हाथी को अपने बाये हाथ में पकड़कर उस पर पटक दिया तो वे दोनों स्वर्ग सिधारे। यह देखकर देवान्तक ने मोहवाण का प्रयोग करके अगद को बेहोश कर दिया; और पवनसुत हनुमान् जी पर वाण चलाकर उनका शरीर घायल कर दिया। इस पर हनुमान् जी ने क्रुद्ध होकर एक बहुत बड़ा पत्थर फेका तो उससे देवान्तक एकाएक हड्डियों के सहित चूर हो गया। (२४)

बारण—हाथी; बप्ता—पिता; बड़ग्राबे—एक बड़ा पत्थर। (२४)

बिकोषरे असिर हाणन्ते से त्रिशिर छड़ाइ ता करुँ तत्पर।
बासरे अन्तकर पेषिला घातकर हेला रुधिरे जरजर से।
बैश्वानर। बिजन्यबादी महोदर। बिशेषे एहार शरीर।
बिषे से युक्त घोरज्बाळाकृत शरीर धर योगरे प्राणहर से। २५।

सरलार्थ—नरान्तक और देवान्तक इन दोनों भाइयों का विनाश देखकर त्रिशिर राक्षस ने म्यान से तलवार निकाली। जब वह उस

तलवार से हनुमान् जी का सिर काटने को उद्यत हुआ, तो हनुमान् जी ने उससे उक्त तलवार छीनकर शीघ्र ही उसके द्वारा उसका सिर काट दिया और उसे यमालय भेज दिया और स्वयं शत्रु के रक्त से लथपथ हो गये। जब अग्निपुत्र नील सेनापति ने महोदर राक्षस से युद्ध किया, तो राक्षस के विषैले बाणों ने उसपर बजकर उसे बड़ी यन्त्रणा पहुँचाई। इसलिए नील सेनापति ने क्रुद्ध हो एक पर्वत पकड़कर महोदर पर पटका तो उसने प्राण-त्याग किया। (२५)

बिकोषरे—म्यान से निकालकर; असि—तलवार; वासरे—गृह में, भवन मे; अन्तकर—यम के; वैश्वानर-विजन्य—अग्निपुत्र नील। (२५)

बृषभ परि तहिँ ऋषभ रोष बहि महापारुशे युद्ध विहि।
बिषाण नखे देही चिरि लोटाइ मही गदादण्ड प्रहार सहि से।
बाणे दहि। बळिष्ठ अतिकाय चाहिँ। बातजादि न पारे रहि।
बानर सैन्य तहिँ सिन्धु मन्दर सेहि बिराजे धनुबर अहि से। २६।

सरलार्थ—अनन्तर वानर वीर ऋषभ ने साँड़ के समान होकर महापार्श्व के साथ युद्ध शुरू किया। गदा का प्रहार सहते हुए भी उसने सींगो के सदृश अपने नुकीले नाखूनो से राक्षस के शरीर को घायल करके उसे भूमि पर लिटा दिया। इस तरह भाइयो का निधन देखकर बलवान् अतिकाय राक्षस ने बाण मारकर भल्लुक तथा वानर सैन्यों को ढेर कर दिया। उन वाणो के सामने हनुमान् आदि वीर भी नही टिक सके। यह देख कर प्रतीत हुआ, मानो मन्दर पर्वत के सदृश अतिकाय राक्षस समुद्र के सदृश वानर-सैन्यों को मथ रहा हो। अतिकाय के हाथों मे उसका श्रेण्ठ धनुष ऐसा सोह रहा है मानो मन्थनरज्जु सर्पराज वासुकि हो। (२६)

बिषाण—सींग; बातजादि—हनुमान् प्रभृति; अहि—साँप। (२६)

बिषय ये बिषम बिष हेला जनम प्रज्वळितरे अनुपम।
बिलीनकृते क्षम राम अनुज भीम आसिण आगे ता विश्राम से।
बीरोत्तम। बातादि देब गिरे प्रेम। ब्रह्मास्त्र अञ्जलि सुषम।
बिशीर्ण कले काम सर्जन गङ्गा हिमकर कीर्त्ति भूषणे रम्य से। २७।

सरलार्थ—(समुद्र-मन्थन से विष-जन्म की तरह) अतिकाय के द्वारा कपि-सैन्यों के मन्थन के हेतु विष के सदृश विषम समर उत्पन्न हुआ और यह समरानल भयंकर रूप से जल उठा। शिवजी ने सिन्धु से उत्पन्न विष को अपनी करांजलि में ले निगल लिया था। यहाँ इस विषम समर-विष के सन्ताप को दूर करने के लिए रामानुज लक्ष्मण जी शिव के सदृश रणांगन में आ अवतीर्ण हुए। वीरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी ने पवनादि देवताओं के वाक्यों

से प्रीत हो अपने हाथ में ब्रह्मशर धारण किया एवं उससे अतिकाय का वध करके राक्षसों की कामना को क्षीणतर कर दिया, मानो महादेव जी ने काम (कन्दर्प) को भस्मीभूत कर दिया। विषपान तथा कन्दर्प-दहन आदि कामों के द्वारा महादेवजी ने जगत मे कीर्त्ति-विस्तार करके अपने मस्तक पर गगा तथा चन्द्र को धारण किया था। उसी तरह लक्ष्मण जी ने देवताओं के कथनानुसार ब्रह्मास्त्र-प्रयोगपूर्वक युद्ध-सन्ताप को दूर किया और राक्षसो की कामना दूर करके जगत मे गंगा की सी पवित्र तथा चन्द्रमा की सी निर्मल कीर्त्ति का विस्तार किया। (२७)

बिलीनकृते—विनाश करने के लिए; क्षम—समर्थ; राम-अनुज—राम के छोटे भाई लक्ष्मण; भीम—शिवजी; हिमकर—चन्द्र। (२७)

बाहुनि कान्दे गुण श्रवणरे रावण कुररी पराय प्रमाण।
बिषाद असहृण निशे हस्त भरिण शक्रारि झमकि कृपाण से।
बोले टाण। बिन्धु मुँ घोरतम बाण। बिधिरे से राम लक्ष्मण।
बिहे ग्रासन्ते त्राण एबे देब चर्बण म्ळान भजिबे ऋक्षगण से। २८।

सरलार्थ—दूतों के मुखो से अपने सेनापतियों की मृत्युवार्त्ता सुनकर रावण उनके गुण विलखता हुआ कुररी (टिटिहरी) के सदृश रोने लगा। इन्द्रजित पिता का दु ख सह नही सका और उसने अपनी मूँछ पर हाथ देकर तलवार चमकाते हुए घमंड से कहा, "यद्यपि मै राहु-सदृश भयंकर बाण मारता हूँ, फिर भी उससे राम-लक्ष्मण रूपी चन्द्र निगले जाकर पुनः उद्धार पा जाते है। परन्तु अबकी बार मेरा बाण उन्हें चबा लेगा और इससे ऋक्षो (नक्षत्रों) के सदृश ऋक्ष (भल्लुक) लोग मद पड़ जायँगे। (अर्थात् पहले मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रयोग से राम-लक्ष्मण को कुछ भी हानि नही पहुँचती थी। अब तीक्ष्णतर वाण के प्रयोग से उन दोनों का निधन कर दूँ तो भालू-सैन्यों का घमण्ड घट जायगा।) (२८)

बाहुनि—बिलखता हुआ; कुररी—मादा क्रौंच टिटिहरी; शक्रारि—इन्द्रजित। (२८)

बटतळरे होमे रथ जन्माइ रम्ये ख्यात देबदळन नामे।
बइजयन्ती ब्योमे दिगदहने भ्रमे देखि पड़िबे पर झामे से।
बीर गमे। बिजय तूण अभिरामे। बाण दक्षिणे धनु बामे।
बहुबळ सङ्गमे लक्षित लक्ष यमे प्रबेश होइला संग्रामे से। २९।

सरलार्थ—इसी प्रकार प्रतिज्ञा करके इन्द्रजित ने निकुम्भिला नामक बरगद के नीचे होम किया और उससे देवदलन नामक सुन्दर रथ उत्पन्न किया। उस रथ पर दिग्दहन नामक पताका को आकाश मे फहरते देखकर शत्रु लोग अवश्य मुरझा जायँगे। बाणों से भरपूर तथा देखने मे

मनोहर विजय नामक तूणीर को दायें कन्धे पर बाँधे और बाये हाथ में धनुष पकड़कर इन्द्रजित युद्ध के लिए निकल पड़ा, एवं अपने साथ बहुत सैन्य लिए लाखों यमों के समान रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ। (२९)

वइजयन्ती—पताका; पर—शत्रु; झामे—मुरझा जायेंगे; बहुबळ—असंख्य सैन्य; संग्रामे—युद्धक्षेत्र में। (२९)

बळ उभय बादे के प्राबृट सम्पदे के तहिँ लक्षित शरदे।
बिपुळ मेघनादे घनाघन आस्पदे बढ़े निशाचर सम्मदे से।
बिशारदे। बिशदे रामचन्द्र उदे। बिराजित हरि बिनोदे।
बिकशित कुमुदे नळिनी प्रभा मोदे दुहेँ रुचिर शरभेदे से। ३०।

सरलार्थ—दोनों पक्षों के सैन्यों के युद्ध करते समय, एक पक्ष वर्षाकाल तथा अपर पक्ष शरत्काल के समान दिखाई दिया। इन्द्रजित के राक्षस सैन्य लोग वर्षाकाल के समान दिखाई पड़े। क्योंकि जैसे वर्षाकाल में 'मेघनाद' (घोरगर्जनकारी) 'घनाघन' (वषुक मेघ) सुशोभित होते है, वैसे यहाँ 'मेघनाद' (इन्द्रजित) घनाघन (मस्त हाथी) के समान वर्षाकाल-तुल्य सैन्यो में विराजा; फिर वर्षाकाल जैसे 'निशाचर' (स्यारों, उल्लुओं तथा साँपों आदि) प्राणियो का गर्व बढ़ाता है, वैसे इस सेना ने निशाचरों (राक्षसों) का गर्व बढाया। पक्षान्तर मे वानर सैन्य लोग शरत्काल के सदृश हुए। क्योकि शरत्काल में जैसे शुभ्र रमणीय चन्द्र शान से उदित होते है, वैसे यहाँ शरत्काल-सदृश वानर-सेना में निर्मल-हृदय रामचन्द्र जी धैर्य के सहित उदित हुए है। फिर शरत्काल में शुकपक्षी सब जैसे सानन्द विहार करते है और निर्मल जल में पद्म तथा कुमुद खिलकर शोभा पाते है, वैसे कपि-सेना में कुमुद नामक कपि ने शुक्ल वर्ण से अपनी प्रभा बढाते हुए शोभा प्राप्त की। दोनों पक्षों के योद्धा लोग शर-युद्ध में परस्पर से समान है। अथवा वर्षाकाल तथा शरत्काल, दोनों जल भेद (वर्षाकाल में आविल तथा शरत् में निर्मल) में रुचिर है। उसी तरह पराजय के कारण राक्षस-सेना का मन आविल तथा जयलाभ के कारण शरत्काल के सदृश कपि-सेना का मन निर्मल है। (३०)

बळ—सैन्य; बादे—बिपक्षवाले; प्रावृट—वर्षाऋतु; मेघनाद—मेघ का गर्जन, इन्द्रजित; निशाचर—राक्षस, उल्लू आदि रात्रिचर प्राणी; राम—रघुनाथ, रमणीय चन्द्र; (श्लेष)। (३०)

बाछि नाशिला करी बोलाइ ये केशरी गवय हयङ्कु बिदारि।
बिधारे हनु चूरि हनुमान प्रसरि रथिमानङ्के क्रोध भरि से।

बाळ धरि। बेगे अङ्गद अङ्ग चिरि। विजान सादिगण करि।
बिलोकिले शउरि से जन न उतुरि सुग्रीव ग्रीव मोड़ि मारि से।३१।

सरलार्थ—केशरी नामक वानर ने सिंह के सदृश हो चुन-चुनकर हाथियों का विनाश किया। गवय नामक वानर ने गयल (नील गाय के) सदृश होकर चुन-चुनकर घोड़ों को विदीर्ण करते हुए मार डाला। हनुमान ने दौड़ जाकर रथियो पर कोपपूर्वक घूंसे के आघात से उनके गाल तोड़ डाले। अंगद ने राक्षसों के बाल पकड़ कर उनके अंग फाड़ डाले और पायक सिपाहियों के प्राण ले लिये। शौरि नामक वानर सेनापति ने शनि के सदृश जिस सैन्य को ताका, वह न बच सका (अर्थात् मर गया)। फिर कपिराज सुग्रीव ने राक्षसों की गर्दने मरोड़ते हुए उनका काम तमाम कर दिया। (३१)

वाछि—चुनकर, करी—हाथी; केशरी—वानर विशेष, सिंह; (श्लेष); गवय—वानर विशेष, गयल, रोझ, नीलगाय; बिधारे—घूंसे से; हनु—गाल; बिजान—विगत जर्थात् मृत्यु; सादिगण—सिपाहिसमूह; शउरि—योद्धा विशेष, शनि महाग्रह; ग्रीब—गर्दन,गला। (३१)

बधिले केते सैन्य जाम्बब ये कञ्चन डाळिम्व पनस चन्दन से।
बृक्ष करि पतन जाम्बब ये कञ्चन डाळिम्व पनस चन्दन से।
बिशोधन। बिबिध बिबिध बिधान। बाहार कले अन्तमान।
बळी महीन्द्र धन्य महीकर कर्दम द्विविद द्विविध रचन से। ३२।

सरलार्थ—ऋक्षराज जाम्वव और कपि सेनापति कंचन, डालिम्ब, पनस, चन्दन आदि वीरों ने क्रमशः जामुन, कांचनार, दाड़िम, कटहल व चन्दन आदि वृक्षो से राक्षसों पर प्रहार करते हुए उनकी अन्तड़ियाँ निकाल ली और उन्हें सवंश मार डाला। बलवान् कपिवीर महीन्द्र असुरों का वध करने में वीरों में धन्य (प्रशंस्य) है। द्विविद नामक कपिवीर ने राक्षसों के दो-दो टुकड़े करते हुए रणभूमि को रक्त से कर्द्दमाक्त कर दिया। (३२)

विशोधन—निर्मूल करना, विनाश करना; द्विविध—कपि सेनापति, द्विविध—दो खण्ड। (३२)

बळिमुख प्रखरे दधिमुख सङ्गरे काळीमुख घेनि रङ्गरे।
बिरबहिँ मुखरे मुष्टि ताडि मुखरे अरिबळ जीवन हरे ये।
बहि करे। बिपुळ शिळ निरन्तरे। बिहरि पनशिळ मारे।
बसन्त पवनेर परभृतहिँ स्वरे पञ्चम पञ्चत्व आदरे से। ३३।

सरलार्थ—अनन्तर लक्ष्मण ने अतिशीघ्र वलीमुख, दधिमुख व कालीमुख आदि वानर वीरों को अपने साथ लिये युद्धारम्भ किया और भयकर गर्जनपूर्वक शत्रुओं के मुखों पर घूंसे जमाकर उनके प्राण लिये। पनशिल नामक सेनापति ने घूमते हुए शत्रुपक्ष के राक्षस-सैन्यो पर वड़े-यड़े पत्थर फेककर क्रीड़ा के मिस उनका विनाश किया। वसन्त व पवन नामक दोनों कपि सेनापतियो के शत्रुओं को पकड़ते ही, वे करुण स्वर मे विलाप करते हुए पंचत्व को प्राप्त हुए (अर्थात् मर गये)। मानो वसन्त काल में मलय पवन के चलने से कोयल पंचम स्वर में ध्वनि कर रही हो।) (३३)

बलिमुख, दधिमुख, काळीमुख—तीन वानर सेनापति; विरव—भयंकर शब्द; मुष्टि—मुट्ठी, घूंसा; अरिबळ—शत्रु सैन्य; शिळ—पत्थर; पंचत्व—विनाश। (३३)

बहित्र नाम भले अपूर्व नळ नीळे भस्म करि उड़ाइ देले।
ब्याळरीति लभिले असुरे लुचिगले तारा़क्ष ताक्ष्र्य महोज्ज्वळे से।
बिळसिले। दैत्य सुषेण कुतूहळे। ब्याधि क्षितिरे दैत्यकुळें।
बिरचिले चपळे मारण रसबळे सुशोधनरे कि मञ्जुळे से। ३४।

सरलार्थ—अपूर्व (अद्भुत) वीर नल व नील नामक दोनो सेनापतियों ने अपने-अपने नाम से 'अं' कारयुक्त होकर (अर्थात् अनल—अग्नि व अनिल-पवन के रूप में) वहित्र नामक राक्षस को अच्छी तरह से भस्म के सदृश उड़ा दिया। ताक्ष्र्य (गरुड़) के सदृश तारा़क्ष नामक कपि के भयकर तेज से राक्षस लोगों ने साँपों के स्वभाव को प्राप्त किया। (अर्थात गरुड़ के भय से सॉप जैसे भय से बिल में छिप जाते है, वैसे तारा़क्ष कपि के भय से राक्षस लोग भय से छिप गये।) वैद्य लोग जैसे व्याधि को जड़-सहित नाश कर देते हैं, वैसे कपिवीर सुषेण ने वैद्य के सदृश पृथिवी के व्याधि स्वरूप राक्षसों का समूल खेल-खेल में विनाश किया। फिर वैद्य लोग जैसे रसों के योग से औषध का मारणपूर्वक शोधन करते हैं, उसी तरह यहाँ सुषेणादि वीरो ने सैन्यों मे मारण रस (वीर रस) को प्रकाशित करते हुए (अर्थात् वीरत्व के साथ लड़ते हुए) अत्यन्त मनोहर रूप से राक्षसों का विनाश किया। (३४)

व्याळरीति—साँप-स्वभाव; तारा़क्ष—राक्षस विशेष; ताक्ष्र्य—गरुड़; क्षितिरे—पृथिवी में; चपळे—चंचल, शीघ्र। (३४)

वपु गन्धमार्दन[1] परि गन्धमार्दन[2] माड़िपड़िला अविच्छिन्न।
ब्यबस्थिते दुर्बर्ण करि देला सुबर्ण पारास मिशि घनघन से।
बळवान। बृन्द बृन्द यूथपे पूर्ण। बिनाशु कोपे पुनः पुनः।
बान्धिले सरस्वान सेतु कि शबमान शरसेतु करि प्रधान से। ३५।

सरलार्थ—गन्धमार्दन पर्वततुल्य वपुवन्त (हट्टाकट्टा) वानरवीर गन्धमार्दन राक्षसों पर निरन्तर टूट पड़ा, तो वे निहत हुए। पारा जैसे सोने से बार-बार मिलकर उसे विवर्ण (तेजोहीन) कर देता है वैसे पारा नामक सेनापति ने बार-बार राक्षसों से मिलकर उन्हें तेजोहीन कर दिया (अर्थात् उनका वध कर दिया)। इसी तरह असख्य बलवान् यूथपतियों ने क्रुद्ध होकर राक्षस-सैन्यों का विनाश किया, तो रक्त-समुद्र में शवों के द्वारा एक प्रकाण्ड सेतु बन गया मानो समुद्र पर फिर एक सेतुवन्ध बन गया हो। (३५)

बपु—शरीर; गन्धमार्दन[१]—पर्वत विशेप; गन्धमार्दन[२]—वानर सेनापति; दुर्वर्ण—तेजोहीन; सुवर्ण—सोना; पारास—पारा; यूथपे—दलपति लोग; सरस्वान्—समुद्र; सेतु—पुल, बांध। (३५)

बिश्रबार तनय बरष(श)र आळय सभेदे अद्‌र्ध करि क्षय।
बळे ज्येष्ठ तनय आषाढ़ पाइ काय श्रम श्रावण परिचय से।
बिबिस्मय। बिश्वे भाद्रपद आश्रय। बिभाति आश्विन स्थापय।
बाहुळेय उदय प्रभारे महोदय कराइ मार्गशिरमय से। ३६।

सरलार्थ—विश्रवा-पुत्र विभीपण एक वर्ष की अवधि बने। एक वर्ष का समान रूप से विभाजन करके उसका आधा घटा दिया जाय, तो पूस से जेठ तक महीने चले गये और अषाढ़ से मार्गशिर तक महीने शेष बचे। जेठ के बीत जाने पर अषाढ़ ने शरीर धारण किया। उसके बाद श्रावण मास ने उपस्थित होकर वर्षाकाल का परिचय दिया। अनन्तर अत्यन्त विस्मयकर ताप से युक्त भाद्र मास ने ससार को आश्रित किया। अत्यन्त तेज के सहित आश्विन मास जगत में स्थापित हुआ। अतिशय प्रभावन्त कार्त्तिक मास का उदय हुआ। तदनन्तर संसार में मार्गशिर का मास आ पहुँचा।

युद्ध के पक्ष में—विभीषण 'ष' के भेद में 'बर षर' (वर्षर) की जगह पर वरशर (अर्थात् श्रेष्ठ शरो) के स्थान बने। उनके शरों से आहत सैन्यों के आधे-आधे अंग छिन्न हुए। फिर ज्येष्ठ भ्राता (रावण) के पुत्र इन्द्रजित ने विभीषण के शरीर के विनाश के लिए आशा की है। पुनश्च, उक्त युद्धक्षेत्र शरों की वृष्टि से श्रावण मास की वृष्टि धाराओं के सदृश प्रतीत हो रहा है। बड़ा आश्चर्य यह है कि विभीपण जो इस में मगलकारी अश्वारोही सैन्यो को खोजकर मार रहे है और इससे वे कार्त्तिकेय-सदृश प्रकाशित हो रहे है। इस प्रकार सैन्यों का वध करते हुए उन्होंने मार्ग को मस्तकमय कर दिया। (३६)

विश्वबार तनय—विश्रवापुत्र विभीषण; बिबिस्मय—विशेष रूप से विस्मय; बिभाति—प्रकाशित; बाहुळेय—कार्त्तिकेय; मार्गशिर—मास विशेष, अगहन। (३६)

बिज्ञे बोलन्ति नर नारायण ए गिर सिद्ध होइछि ग्रेउँठारे।
बीरपण ताङ्कर के हेब शेषकर अलेख ग्रे लेख लेखरे से।
बिन्धे शर। बिश्वभरण बोलिबार। बिअर्थ नोहे बिश्वम्भर।
बिष्णु सङ्गे सङ्गर अनन्त साहा यार जिष्णुजित नुहें इतर से। ३७।

सरलार्थ—पण्डितजन जो नर-नारायण के नाम बोलते है, वह वचन राम-लक्ष्मण में सिद्ध हुए है। इसलिए उनकी वीरता भाषा में बोलकर कौन समाप्त कर सकता है? (अर्थात् उनकी वीरता अकथ है।) फिर देवता लोग भी उस वीरता को लिख नहीं सकते। उन राम-लक्ष्मण ने शर मारकर सारे विश्व को भर दिया और अपने 'विश्वम्भर' (नाम) को सार्थक किया। यह विषय बिलकुल ठीक ही है कि विष्णु जी के अवतार श्रीराम जी के अनन्त (लक्ष्मण) जी जैसे सहायक हों। फिर भी इन्द्रजित उनसे समर कर रहा है। वह भी कोई मामूली व्यक्ति तो नहीं है। (३७)

बिज्ञे—पण्डित लोग; गिर—वचन; शेषकर—समाप्त करनेवाला; लेखरे—देवताओं से; बिश्वभरण—जगत को भरना, संसार को पूर्ण करना; बिअर्थ—व्यर्थ, वृथा; बिश्वम्भर—विष्णु भगवान् (राम) का एक नाम; अनन्त—शेषदेव, (यहाँ) लक्ष्मण; जिष्णुजित—इन्द्रजित; इतर—अन्य, मामूली। (३७)

बिभिन्नरे कवच शोणितरे प्रपञ्च अस्थिकि भेदिण नाराच।
बचने नाहिँ पाञ्च चतुर्थस्वरे बच प्रकाश कला ग्रथा नीच से।
बोले उच्च। बचन चपळे मारीच। बधक-भ्रात एबे रच।
बिहारकु सुसञ्च शमनपुरे मञ्च तेजिण पूर्व गर्व मुञ्च से। ३८।

सरलार्थ—राम-लक्ष्मण के शर इन्द्रजित के कवच में बेध उसकी हड्डियों में चुभ गये, तो उसके शरीर से भयंकर रूप से अजस्र रक्त की धारा बहने लगी। रक्तावृत शरीर से वह बड़ा कुत्सित दिखाई दिया। नीच ने उक्त आघात को सहने में असमर्थ होकर चतुर्थ स्वर वर्ण (अर्थात् क्लेश सूचक 'ई' कार) का उच्चारण किया। (अथवा चौथी अवस्था, बुढापे की आह भरी।) उसे सोचने या बोलने की शक्ति नहीं रही। यह देखकर मारीच-वधक (श्रीराम) के भ्राता लक्ष्मण जी शीघ्र ही दौड़ आये और बोले, "अरे पामर! अब तू पूर्वअभिमान (शत्रुता) को त्यागकर यमपुर-विहार की अच्छी व्यवस्था कर एव मर्त्यपुर की आशा (जीविताशा) छोड़। (३८)

बिभिन्नरे—बेधने में, शोणितरे—रक्त से; प्रपंच—कुत्सित; नाराच—शर; चतुर्थ स्वरे—क्लेश-सूचक 'ई' कार में (अथवा बुढ़ापे की आह भरी); सुसञ्च—अच्छी व्यवस्था; शमनपुरे—यमपुर में; मञ्च—मर्त्यपुर; मुञ्च—त्यागकर, छोड़। (३८)

बासबजित भला प्रळयकाळ हेला चतुरघन धनु कला।
बरषि शर-धारा गगन घोटाइला बानरसृष्टि नाश कला से।
बुड़ाइला। विकर्त्तनज ये उईंला। बट ब्रह्मास्त्रे शुआइला।
बाळमुकुन्द लीळा सीतावल्लभे देला लक्ष्मण शिवहिँ ढळिला से।३९।

सरलार्थ—प्रलयकाल में आवर्त्तकादि चार मेघ इकट्ठे होकर अजस्र जलवृष्टि के द्वारा आकाश में सूर्य को ढक लेते है। उसी तरह यहाँ ऐसा भीषण समर देखकर इन्द्रजित ने मेघ-सदृश धनुष मे अनगिनत बाण संधानकर, जगत को ढककर वानरों का विनाश किया। उसने बाणों से सूर्यजात सुग्रीव को वैसे ही डुबा दिया मानो प्रलयकालीन मेघ ने एक वर्ष से सूर्य की किरण को डुबा दिया हो। फिर प्रलयकाल मे विष्णु वटपुट पर शयन करते हैं। यहाँ इन्द्रजित ने रामचन्द्र रूपी विष्णु को ब्रह्मास्त्र रूपी वटपुट में बालमुकुन्द मूर्ति की तरह बेहोश करके सुला दिया, एवं यद्यपि लक्ष्मण-शेषदेव शिव जी की तरह वहाँ उपस्थित थे, वे भी उनके साथ अचेत होकर ढल पड़े। (३९)

बासबजित—इन्द्रजित; चतुर घन—चार मेघ (आवर्त्तक, संवर्त्तक, द्रोण व पुष्कर) बिकर्त्तनज—सूर्यपुत्र सुग्रीव; बाळमुकुन्दलीळा—बालमुकुन्द मूर्त्ति; सीतावल्लभ—श्रीरामचन्द्र। (३९)

बास्तोस्पति प्रभृति दिगपति सम्मति सुग्रीव आदि हेले हति।
बशिष्ठे येते स्थिति से हेले दिगदन्ती तमोमयरे लुचि ज्योति से।
ब्युतपत्ति। बहि मार्कण्डेय मूरति। बिभीषण केवळ बर्त्ति।
बिशवाहुसन्तति कइटभ आकृति स्वस्थाने प्रकाशे बिभूति से।४०।

सरलार्थ—प्रलयकाल में संसार में कोई नहीं रहता। (अर्थात् संसार जनशून्य होता है।) वैसे इन्द्रजित ने यहाँ इन्द्रादि दिक्पालों के तुल्य सुग्रीवादि प्रधान सेनापतियों का विनाश किया एवं दिग्गजो के सदृश प्रधान-प्रधान वीर सब इन्द्रजित-कृत समरान्धकार में तेजोहीन हो गये। सुतरां युद्धक्षेत्र प्रलय की तरह प्रतीयमान हुआ। प्रलय में केवल मार्कण्डेय ऋषि ही जीवित रहे थे। यहाँ विभीषण ही जीवित थे और वे मार्कण्डेय के समान आकर श्रीराम जी के पास उपस्थित हुए। प्रलय मे मधु-कैटभ नामक दोनों राक्षसों ने विजय प्राप्त की थी। यहाँ प्रलय के सदृश समर में रावणपुत्र इन्द्रजित ने विजय लाभ करके अपने स्थान (लंका) में ऐश्वर्य फैलाया। (४०)

बास्तोष्पति—इन्द्र; तमोमयरे—घोर अन्धकार में; ब्युतपत्ति—विनाश; बिशबाहु-सन्तति—रावणपुत्र इन्द्रजित; । (४०)

ब्रह्मा होइले जात सचेते जाम्बवन्त पुनः से सृष्टि बिरचित ।
बराहमूर्त्ति सत सञ्चरि हनुमन्त स्थापि धरणी हिमवन्त से ।
बिजनित । विविध रस औषधित । बिनोदे सुमने रसित ।
बेनिभ्राता अच्युत ईश्वर पृथ्वीहित दैत्यहतकु से बाञ्छित से । ४१।

सरलार्थ—प्रलय के उपरान्त ब्रह्मा सबसे पहले पैदा होकर सृष्टि रचते है। उसी तरह यहाँ जाम्बवान् ने पहले सचेत होकर युद्धारम्भ किया। हनुमान् जी शूकर के सदृश बने। उन्होंने पृथिवी-तुल्य हिमालय के एक अंश, गन्धमार्द्दन को उखाड़ ला वहाँ स्थापित किया। बेहोश सैन्यों ने उस पर्वत मे रही हुई दवाइयाँ सूँघकर चेतना पायी और फिर आनन्दित मन से उठकर युद्ध करने का विचार किया। परन्तु चूँकि राम-लक्ष्मण दोनों भाई अच्युत (अविनाशी) और सृष्टिकर्त्ता थे, इसलिए उन्होंने भूभार-हरण के अभिप्राय से दुराचारी राक्षसों का विनाश करने की इच्छा प्रकट की। क्योंकि प्रलय के उपरान्त नयी सृष्टि के पहले विष्णु जी ही ने मधु-कैटभ राक्षसों का विनाश किया था। (४१)

सञ्चरि—जाकर; बिजनित—रचा, पैदा किया; अच्युत—अविनाशी; । (४१)

बादसरित लंघनकु तरीत मघवारि अजकु यथा बाघ ।
बिचूर्णता काचौघ बाजि य़था परिघ पातकहते य़था माघ से ।
बोलु शळाघ। बाळीए मिळि देले अर्घ्य। बोले रावण गला अघ।
बिरचि पदओघ बयाळिश सलघ उपइन्द्र चित्त अनघ से । ४२ ।

सरलार्थ—शत्रु-रूपा नदी को पार करने के लिए नौका-सदृश एवं शत्रु-सैन्यो रूपी बकरों को खाने के लिए बाघ के समान इन्द्रजित युद्धक्षेत्र से लौट गया और रावण से बोला, "हे तात ! जैसे परिघ के आघात से काँच समूह एवं माघव्रत से पापसमूह नष्ट हो जाता है, उसी तरह मैंने शत्रु-सैन्यों का विनाश किया। जब इन्द्रजित ने यों डीग हाँकी, राजभवन से नारियों ने अर्घ्यप्रदान-पूर्वक उसकी आरती उतारी। पुत्र के मुख से यह सुनकर रावण ने कहा, "आज से मेरे पाप गुजर गये। अर्थात् आज से मैं निष्पाप हुआ।)"

कवि उपेन्द्र भञ्ज का चित्त भी इस छान्द को बयालीस पदों में रचकर निष्पाप और पवित्र हो गया। (४२)

बाद-सरित—शत्रु रूपा नदी; मघवारि—इन्द्रजित; अजकु—बकरों को; काचौघ—काँच समूह; माघ—माघ महीने का व्रत; श्लाघ—आत्म-प्रशंसक; बाळीए—स्त्री लोग; अघ—पाप; पदओघ—पद समूह; अनघ—निष्पाप, विशुद्ध, पवित्र। (४२)

॥ इति चतुश्चत्वारिंश छान्द ॥

पञ्चचत्वारिंश छान्द

राग—पञ्चमबराड़ि (विप्रसिंहा वाणी में)

बाहुड़िला सानुमानशृङ्ग थोइ हनुमान मान मानसे गुमान आणि । बिचार प्रचार रामे कला अभिरामे ग्रामे गले राक्षसे संग्रामे जिणि से । बिभु शुण । बहिथिबे सुखे निद्रा सेहि । बैरी सर्बनाश एहि गर्ब बहि से । १ ।

सरलार्थ—दवाई के लिए हनुमान् जी जो गन्दमार्द्दन पर्वतशृग लाये थे, उसे यथास्थान में रख लौट आये । अपने मन मे अभिमान (अहकार) करके उन्होंने रामचन्द्र जी से मनोहर ढंग से विचार करते हुए कहा, "हे प्रभो ! सुनिएगा, राक्षस लोग समर में जीतकर अपने-अपने घर लौटकर चले गये है । इस वक्त वे सुख से सो रहे होगे, क्योंकि उन्हें घमंड हो गया है कि हम लोग सारे शत्रुओं का विनाश कर चके है ।" (१)

सानुमानशृंग—पर्वत की चोटी; गुमान—अभिमान, घमंड; अभिरामे—मनोहर ढंग से; संग्रामे—युद्ध में; वैरी—शत्रु । (१)

बरण डेइँण रण आरम्भि पत्तिमारण बारण दारण हय करि । बैदेही-शोक बारण हेबार मूळ कारण एहि कथा आसुअछि स्मरि से । बचनकु । बाहारिले युद्ध रचनकु । बृक्ष शिळा धरि अरि शोचनकु से । २ ।

सरलार्थ—उन्होने फिर कहा, "आज रात मे हम लोग परकोटे को लाँघकर युद्ध मे पायको का विनाश करेगे और हाथियों तथा घोडो को फाड़ डालेगे । इसी तरह का रात्रि-युद्ध सीता जी के शोकनिवारण का मूल कारण होगा । (अर्थात् हम लोगो की पराजय की खबर सुनकर सीता जी शोकाकुल हुई होंगी और मुझे ऐसा लग रहा है कि हम लोगों के रात्रियुद्ध की (जय) खबर सुनकर उनके मन से उक्त शोक दूर हो जायगा ।)" हनुमान् जी की यह बात सुनकर सव सेनापति अपने-अपने हाथों में पेड़ तथा पत्थर लिए हुए युद्ध को निकल पड़े । (२)

बरण—प्राचीर, परकोटा; पत्ति—पायकों को; वारण—हाथियों को; दारण—फाड़कर; हय—घोड़ों को; अरि—शत्रु । (२)

बसुमतीर दुहिते येते त्रिजटा सहिते अश्रु नेत्रे सर्ब चाहिँ कहि । वरबरना देबर[१] मोर विनाशु देबर[२]-राजरिपुकु ए बर

बिहि से। बोले शुणि। बामाए बामाक्षि ए कि सत। बधिलाणि रणे ताकु इन्द्रजित से। ३।

सरलार्थ—पृथिवीकन्या सीता ने त्रिजटा समेत उपस्थित सारी राक्षसियों की ओर आँसू भरे नयनो से देखकर कहा, "अयि सुन्दरियो ! मैं अपने देवर लक्ष्मण जी को यह वरदान दे रही हूँ कि वे युद्ध में इन्द्रजित का वध करे।" यह सुनकर उनमें से किसी एक रमणी ने कहा, "अयि वामलोचने ! यह सच है या झूठा ? क्योंकि इन्द्रजित तो आज युद्ध में लक्ष्मण का वध कर चुका है।" (३)

वरबरणा—अयि सुन्दरियो! ; देबर[1]—देवर; देबर[2]-राजरिपुकु—देवताओं के राजा इन्द्र के शत्रु अर्थात् इन्द्रजित को; 'देवर' शब्द मे यमक है; ताकु—उन्हें (लक्ष्मण को)। (३)

बोइला श्रवणे सती बिनश्यति ये बिंशति-करज हेब लक्ष्मण करे। बर्तिब ब्रती निबर्त्ति निद्रा अशनहिँ रति एहि अर्थे बिपिन बासरे से। बळिलाणि। बार बेनि मास मोर तप। बिळम्बकु एबे नाहिँ त बिकळ्प ये। ४।

सरलार्थ—यह सुनकर सीता ने कहा, "इन्द्रजित निश्चय ही लक्ष्मण के हाथों से मारा जायगा। इस कार्य के लिए लक्ष्मण ने भोजन, निद्रा तथा स्त्री-सहवास त्यागकर वन मे तपस्वी का-सा जीवन बिताया है। और भी, मेरी तपस्या चौदह महीनों की अवधि से बढ़ गई है। अब विलम्ब करने को अवसर नही। सुतरां यह समझो कि यह बात बिल्कुल सच है।" (४)

बिंशतिकरज—बीसभुजा वाले (रावण) का पुत्र इन्द्रजित; ब्रती—व्रत करनेवाला, तपस्वी; अशनहिँ—भोजन भी; बारबेनि—बारह + दो = चौदह; बिकळ्प—सन्देह (४)

बिरब बीर बानरे बिरचि बीर सत्वरे बिहरे प्राकार जिणि पुरे। बन्दी[1] बुद्धि तेजि दूरे बन्दिले बन्दी[2] प्रकारे सीताकीर्त्ति असुरी निकरे से। वन्हिज्योति। बनौकाए स्थाने स्थाने कले। बिभीतरे दैत्यमाने बिचारिले से। ५।

सरलार्थ—इस समय वानर वीर सब ललकारते हुए लंकागढ़ के परकोटे को लाँघकर पुरके अन्दर विहार करने लगे। यह देखकर सीता की चौकसी करनेवाली राक्षसियों ने उनको वन्दिनी कर रखने का भाव अपने-अपने मन से दूर किया एवं वानरों के भय से उनकी कीर्त्तियों की भाटों के समान स्तुति करने लगीं। भालुओं और बन्दरों ने पुरके स्थल-स्थल में आग लगा दी तो राक्षसियों ने भय के कारण नीचे लिखे अनुसार विचार किया। (५)

बिरब—ऊँची आवाज; प्राकार—परकोटा; बन्दी[1]—भाट, चारण; बन्दी[2] प्रकारे कैदियों की तरह; (यमक); बनौकाए—वानर लोग। (५)

बैश्वानर किपाँ जात बानर नर त हत किन्नर सुर किङ्कर य़हिँ। बिस्तारिण बातायन दत्त नयन शयन तेजिण अयन पूर्ण सेहि से। बेनिकरे। बिटप दिहुड़ि कि बिदित। बिराजन्ति य़था भ्रमे य़मदूत से। ६।

सरलार्थ—जिस लंका के शत्रु नर व वानर लोग निहत हो चुके है और जहाँ देवता तथा गन्धर्व लोग नौकरी कर रहे है, उसी लंका में आग कैसे लगी ? यह सोचते हुए राक्षस लोग सेजों से जग उठे और खिड़कियाँ खोलकर उन्होंने देखा कि राजमार्ग बन्दरों से भर गया है और वे सारे बन्दर अपने-अपने हाथ मे दीवट के समान मशाल पकड़े घूम रहे है, मानो यम के दूत हों। (६)

वैश्वानर—अग्नि; किपाँ—क्यों, कैसे ?; बिस्तारिण—खोलकर; बातायन—खिड़कियाँ; अयन—मार्ग; बिटप बिहुड़ि—दीवट। (६)

बणिकभाव लम्पट प्रकट करि मर्कट कनककटक भग्नकाळे। बळबान ख्यात अर्थी बिबेक संजात तथि बीथि बिभ्राजित अति शिळे से। बर्द्धमान। बात नासानळी योगे तहिँ। बिरोचन ज्योति एणु बहि से। ७।

सरलार्थ—यहाँ वानर लोगों ने सोनारो की चतुराई प्रकट की। क्योंकि जैसे सोनार वनिये सोने के कंगन को तोड़ते जलाते है, वैसे वानर लोग सुवर्णपुरी लंका को जला रहे है। यह जानने के लिए कि यह सोना खरा है या खोटा, सोनार लोग अपने-अपने मन के मुताबिक कसौटी-पत्थर को हाथ में पकड़ते है। उसी प्रकार अपनी-अपनी वीरता का सूबूत देने के लिए, जो वानर जितने बड़े-बड़े पत्थर उठा सके, उन्होंने अपनी इच्छानुसार उतने ही बड़े-बड़े पत्थरों को उठाकर अपने-अपने हाथों में पकड़ा और लंका की गलियों में वे घूमने लगे। उन्हें देखकर लोगों ने विचार किया कि ये बड़े वीर है। सोनार लोग बाँकनल (धौकनी) से फूंककर अँगीठी में आग को भड़काते है। वैसे वानरों ने अपनी-अपनी नाक की निःश्वास-पवन से लका जलाते हुए अग्नि को प्रज्वलित किया। सुतरां अग्नि ने प्रचण्ड शिखा धारण की। (७)

बणिक भात्र—सोनारों की चतुराई; कनककटक—सोने के कंगन; नासानळी—नथुना, बाँसनल; बिरोचन—अगीठी। (७)

बिहन्ति ये हुळहुळि कि अबा से आळीआळि पत्नीसङ्गे पति
यहुँ जड़ि। बासरे¹ येतेक रहि बासरे² लागुँ बरहि बहि निस्ता
पळाइ ता झाड़ि से। बिदित के। बाळरे होए काहा पतन।
बहन्ति कि अग्नि कुमारी नर्त्तन से। ८।

सरलार्थ—वानर लोग मस्त होकर 'हुंकार' ध्वनि करने लगे। उसे सुनकर प्रतीत हुआ, मानो किसी गृह में (मृत) पति के साथ पत्नी जल मरी, तो उस स्त्री की सखियाँ मानो हुलहुली दे रही हों। दूसरे गृहों में और कुछ स्त्रियों के वस्त्रों में आग लगने से, वे उन वस्त्रों को झाड़ती हुई भागने लगीं, तो वासनाग्नि से स्वयं दग्ध हुईं, मानो श्मशानाग्नि से शव दग्ध हो रहे हों। और कुछ स्त्रियों के बाल में आग लग जल उठने से वे सब कूदती हुई जब भागने लगीं, तब वे सब ऐसी प्रतीत हुईं मानो अग्निकुमारियाँ नाच रही हों। (८)

आली-आळि—सखीसमूह; बासरे¹—गृह में; बासरे²—वस्त्र में; (गमक); बरहि—अग्नि। (८)

बनी बनितासंकुळे इकार द्विबेळे बेळे ताहिँ पछे गूर्भ्यण देइ।
बानरे भय इच्छइ बिलोकि आपणा छाइ बोलन्ति अति विनय
होइ से। बातुळ कि। बिद्रुम-माणिक्य माळा राजि।
बेगे तप्ताङ्गार मणि हृदुँ तेजि से। ९।

सरलार्थ—'बनी' इस शब्द के पहले 'ए' का योग करके प्रथम दो वर्णों से 'इ' कार जोड़ने से 'बिबिनी' शब्द बना जिसका अर्थ है 'काँच की दीवार'। लंका की रमणियाँ काँच की दीवारों में अपना-अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे वानर समझने लगीं और उससे बड़ी विनती करने लगीं। उन्होंने भय से पगलियों की तरह होकर अपने-अपने हृदय पर पड़ी प्रवाल व माणिक्य की मालाओं को जलते हुए अंगार समझकर शीघ्र ही उन्हें फेंक दिया। (९)

बिबिनी—काँच की दीवार; विद्रुम—प्रवाल, मूंगे; तप्ताङ्गार—जलते हुए अंगार (९)

चिनगारियाँ पड़ गईं, साड़ी के आँचल को झाड़ती हुई भागने लगी। फिर जब वे जल के पास गई, जल मे भी अग्नि की परछाईं देखी। तो यह समझकर कि जल मे भी आग है, भय के कारण उसमें नही घुसी। प्राणों के भय से व्यग्र होकर भागते जाते समय किसी की वित्त-गाँठ पथ पर खिसक पड़ी। परन्तु चोर-डाकुओं ने यद्यपि उन्हें देख लिया, फिर भी बिना बटोरे प्राणों के भय से वे व्याकुल होकर भाग गये। (१०)

वक्षोजे—स्तनों में; जातवेदकण—अग्निकण, चिनगारियाँ; कृपीटयोनि—अग्नि। (१०)

बाड़बर[१] ज्योति बहि बाड़बर[२] भाजे तहिँ शुभइ बज्र निर्घोष परा। बड़बार सङ्गे सङ्गे तुरङ्गे समत्तरङ्गे न रसि भ्रमन्ति होइ त्वरा से। बिक्रमिण। बसन्ति ताङ्क पृष्ठरे कपि। बृक्षशाखा धृत सादिरूपी से। ११।

सरलार्थ—प्रखर अग्नितेज से बड़े-बड़े परकोटों तथा दीवारों के टूट जाने से भयंकर ध्वनि सुनाई पड़ी, मानो वज्र हो। उस ध्वनि के कारण घोड़े अपनी-अपनी घोड़ी का संग तजकर प्राणभय से इधर-उधर दौड़ने लगे। बन्दर उन घोड़ियों पर कूद पड़े और पेड़ों की डाले पकडकर उन पर बैठ गये। इस प्रकार वे घुड़सवारों की तरह दिखाई पड़े। (११)

बाड़बर[१]—अग्नि का; बाड़बर[२]—बड़ी-बड़ी दीवारें; (यमक); बड़वार—घोड़ी का; तुरङ्गे—घोड़े; कपि—वानर; सादि—अश्वारोही, घुड़सवार। (११)

बाणी रमणीङ्क शुभे बड़ाइ आम्भ बल्लभे कहुथान्ति माइलु बानर। बिभावसुर बिभाति ख्यात तापइ जगती से येमन्ते स्वर्भानु आहार ये। बाधे छुउँ। बिभावसुकण समस्तङ्कु। बिहग चकोर भक्षइ ताहाकु ये। १२।

सरलार्थ—इस समय लंका की रमणियाँ आपस में बातें करती हुई सुनाई पड़ती है—"हम लोगों के पति यह कहकर कि हम वानरों को मार आये, अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बन रहे थे। परन्तु आज हम लोगों को यह अनुभव हो गया कि ये लोग कितने वीर है। अपनी प्रचण्ड किरणों से जगत को तपानेवाला सूरज राहु का भोजन बनता है। उसी तरह अपनी-अपनी वीरता से सारे जगत को जीतनेवाले ये राक्षस वानरों के खाद्य बनेंगे। फिर आग की एक चिनगारी के लगते ही सब लोगों को क्लेश पहुँचता है, परन्तु चकोर पक्षी उसे खा लेता है। उसी तरह ये राक्षस लोग भले ही जगत को जला देते हों, फिर भी उन्हें वानर लोग खा लेंगे।" (१२)

रमणीङ्क—स्त्रियों की; शुभे—सुनाई पड़ती है; वल्लभे—स्वामी लोग; बिभावसु—सूर्य; बिभाति—किरण; जगती—पृथवी; स्वर्भानु—राहु; बिभावसुकण—अग्निकणा; बिहग—पक्षी। (१२)

बज्रअङ्ग शरतुष्ट बन्धभग्न सरपृष्ठ सरथ सचक्र होइ धाइँ। बिहेर तहिँ सराळि बहि गिरिसम झळि बाळिज जीबन हरि नेइ ग्ले। बाद रचे। बेगे शोणिताख्य जुळुपाक्ष। बिरोधित तारे वेनि भ्रात दक्ष ग्ले। १३।

सरलार्थ—बाँध के टूट जाने से भँवरों तथा हंसचक्रवाकों से भरे तालाब का जल चारों ओर उमड़ पड़ता है। उसी तरह इस समय बज्रांग व शरतुष्ट नामक दोनों राक्षस रथों तथा सैन्यों के सहित नगर के चारों ओर अति शीघ्र घूमने लगे। और भी उन दोनो में शरसमूह क्रीड़ा कर रहे थे। अब अंगद ने ग्रीष्म ऋतु की शोभा को धारण करके जल रूपी उन दोनों राक्षसों का शोषण (वध) किया। यह देखकर शोणिताक्ष व जुलुपाक्ष नामक दोनों राक्षसों ने दौड़कर अंगद के साथ युद्ध किया तो राम तथा लक्ष्मण उनसे जूझने लगे। (१३)

सरपृष्ठ—तालाब का ऊपरी भाग; सरथ—रथों के सहित; सचक्र—भँवरों, चक्रवाकों या सैन्यों के सहित; सराळि—हस-समूह, शराळि—शरसमूह; गिरीषम—ग्रीष्म; वाळिज—अंगद, जीवन—जल, प्राण; (श्लेष)। (१३)

ब्राह्मण होइ द्विविद नखप्रेते पळश्राद्ध देइ कीलाले कला तर्पण। विशीर्ण कराइ द्योत जुळुपाक्षकु खद्योत परि दिवस छबि आपण से। बेनिसुत। बळि कुम्भकर्णर प्रकट। बानरेश हनुमन्त पाइ भेट से। १४।

सरलार्थ—ब्राह्मण लोग प्रेतों के उद्देश्य में श्राद्ध व तर्पण करते हैं। इस अवसर पर द्विविद नामक सेनापति ने एक ब्राह्मण के सदृश अपने नखों रूपी प्रेतों के उद्देश्य में शोणिताक्ष के रक्त से तर्पण तथा मांस से पिण्डदान दिया। अर्थात् उसे नखों से फाडकर मार दिया। द्विविद ने अपने तेज से जुलुपाक्ष के वीरताभिमान को नष्ट कर दिया, मानो दिवस ने जुगनू की प्रभा को नष्ट कर दिया हो। अनन्तर कुम्भकर्ण के कुम्भ तथा निकुम्भ नामक दोनों पुत्र युद्धक्षेत्र मे प्रकट हुए तो सुग्रीव तथा हनुमान उनसे भिड़ गये। (१४)

पळ—मांस; कीलाल—रक्त; द्योत—कान्ति, दीप्ति; खद्योत—जुगनू; बानरेश—सुग्रीव। (१४)

बिन्धाण समेर सान्द्र शाखा मृगेन्द्र मृगेन्द्र कुम्भ सिन्धुरे[1] सिन्धुरे[2] फिङ्गि। बुड़िला नाहिँ इक्ष्वाकु पात्र पराये इच्छाकु बायु बेगे

आसि हेला रङ्गी से। बिघातकु। विहुँ वाहु धरि मुण्डे मुण्डे। बहनरे रक्षमुण्ड शते खण्डे से। १५।

सरलार्थ—मल्लयुद्ध में निपुण होने से सुग्रीव ने स्वयं सिंह-सदृश होकर कुम्भ राक्षस रूपी हस्ती को धारण पूर्वक समुद्र के मध्य फेंक दिया। परन्तु वह राक्षस उसमें डूबे विना एक लौकी की तुंबा की तरह पवन वेग से उतराता हुआ आया और सुग्रीव से फिर लड़ा। यह देख सुग्रीव ने उसे अपने बाहुदण्ड में धारण पूर्वक उसके सिर पर अपना सिर पीट दिया तो राक्षस का सिर सौ टुकड़े होकर टूट गया। (१५)

शाखामृगेन्द्र—वानरराज सुग्रीव; मृगेन्द्र—सिंह; कुम्भ—राक्षस विशेष, हस्ती; सिन्धुरे[1]- हस्ती को; सिन्धुरे[2]—समुद्र में; यमक; इक्ष्वाकु पात्र—लौकी की तुम्बा। (१५)

बञ्चियान्तु रक्षलोके नाश य़ान्तु ऋक्षलोके भावि गदा निकुम्भ प्रहारि। बत्सळे बक्ष मारुति चन्द्रलोके नेइ पाति से भीतिकि सत्वरे निबारि से। बिधा एक। बिधानरे मूर्च्छित पावनि। बिमाने पकाइ बाहुड़िला घेनि से। १६।

सरलार्थ—यह विचार करके कि राक्षस लोग बच जावें और भल्लुक लोग शीघ्र ही मर जावें, निकुम्भ राक्षस ने गदा का प्रहार किया। हनुमान् जी ने अपने सैन्यों को गदाघात से बचाने के लिए आदर से अपने वक्षस्थल को चन्द्रलोक तक फैला दिया और सैन्यों के मन से गदाघात-जनित भय को दूर किया। परन्तु निकुम्भ ने एक घूंसा मारा तो उससे हनुमान् जी बेहोश होकर गिर पड़े। यह मौका पाकर निकुम्भ हनुमान् जी को रथ में बैठाकर लंका लौट चला। (१६)

रक्षलोके—राक्षस लोग; ऋक्ष लोके—भल्लुक लोग; निकुम्भ—राक्षस विशेष; बत्सळे—स्नेह से; बिधा—घूंसा; पावनि—पवनपुत्र हनुमान्। (१६)

बिभाकर सूनु स्वच्छे प्रभाकर होइ पछे गोड़ाउँ चेतिण हनुमन्त। बृत्रे हरि पबिपरि तळ हनुरे प्रहारि तळरे पड़ु चरण घात से। बिहुं तहिँ। बुकुरे बिळ सुग्रीब य़ोगे। बाले मकराक्ष मिळि राम आगे से। १७।

सरलार्थ—यह देखकर सूर्यपुत्र सुग्रीव अत्यन्त दीप्तिमन्त होकर निकुम्भ के पीछे दौड़ने लगे। इतने में हनुमान् ने जगकर राक्षस के गाल पर ऐसा एक तमाचा जमा दिया, मानो इन्द्र ने वृत्रासुर को वज्र से प्रहार किया। उक्त आघात से राक्षस रथ से खिसक भूमि पर गिर पड़ा। यह देख सुग्रीव दौड़ आये और उन्होंने निकुम्भ के वक्ष मे एक

लात जमाकर एक गड्ढा बना दिया तो राक्षस मर गया। तब मकराक्ष नामक राक्षस ने श्रीराम जी के सामने उपस्थित होकर कहा— (१७)

विभाकर सूनु—सूर्यपुत्र सुग्रीव; बृत्रे—बृत्रासुर को; पबिपरि—बज्र की तरह; हनुरे—गालपर। (१७)

बप्ता मोरे खर[1] खर[2] कर ज्योतिष्कर खर[3]तर शरे ता ऋण शुझिबि। बोइले रामरे खरतनय कि लय तोर करिअछु पारीन्द्रे युझिबि रे। ब्रत अन्ते। बिबिध सेबामानङ्कु बिहि। बैबस्वत पुरे देब पठिआइ से। १८।

सरलार्थ—"खर राक्षस मेरे पिता जी हैं। मैं सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त तेजस्वी तथा तीक्ष्ण शरों के प्रयोग से तुझे मारकर आज अपने पिता जी का ऋण चुकाऊँगा। (अर्थात् तुझ जैसे पितृ-शत्रु से बदला लूँगा।)" रामचन्द्र जी ने कहा, "अरे खर-तनय! यह तेरा कौन-सा विचार है? तूने गधे का बच्चा होकर जो सिंह के साथ लड़ने को ठाना है, यह विचार तुझे ठीक नही जँचता। देवताओं के उद्देश्य से विविध व्रत-तपस्यादि सेवाएँ करके तूने जो सब वर प्राप्त किये थे, आज उन सब व्रतों तथा वरों का प्रभाव समाप्त है। अतएव और विलम्ब किये बिना मैं तुझे आज ही यमपुर में भेज दूँगा।" (१८)

बप्ता—पिता; खर[1]—दैत्यविशेष; खरकर[2]—सूरज; ज्योतिष्कर—तेजस्वी किरण; खर[3]तर—अत्यन्त तीक्ष्ण; (यमक); ता—उसे; शुझिबि—चुकाऊँगा; खरतनय—खर राक्षस का पुत्र मकराक्ष, गधे का बच्चा; (श्लेष); लय—लगन, बिचार, अभिप्राय; पारीन्द्रे—सिंह से; बैबस्वतपुरे—यमपुर को। (१८)

बिन्धि सूरप्रभा शर से शूरवन्त असुर य़हुँ नचाइला कबन्धकु। बिशिखे चर-अचर प्रभु भूचर खेचर करि बिहि ता शिरश्छेदकु से। बाहुड़िले। वळजय-बाद्यमान देइ। बिशबाहु आगे दूत य़ाइ कहि से। १९।

सरलार्थ—महावीर राक्षस मकराक्ष ने सूर्य के सदृश तेजीयान् शरों के प्रयोग से असख्य वानर तथा ऋक्ष सैन्यों का विनाश करके युद्धक्षेत्र में उनके कबन्धों को नचाया। यह देखकर कोटि ब्रह्माण्डपति श्रीरामचन्द्र जी ने तीक्ष्ण शरों के प्रयोग से मकराक्ष का मस्तक काटकर आकाश मे उड़ा दिया और उसका धड़ ही भूमि पर पड़ा रहा। इस तरह मकराक्ष का वध करके श्रीराम जी ससैन्य वाद्य बजाते हुए अपने आश्रम मे लौटे। राक्षस दूत ने रावण के समीप पहुँचकर उससे मकराक्ष की विनाश-वार्ता कही। (१९)

सूरप्रभा—सूर्य के समान तेजीयान्; शूरवन्त—वीर्यवन्त; बलवान्; बिशिले—शरों से; बळ—सैन्य; बिशबाहु—बीस भुजाओ वाला, रावण। (१९)

बळद्वय सौरमते प्रकट बत्सरयुक्ते मेष ऋषभ मिथुन क्रमे। बहे कर्कप्रभा सिंहगति कन्या-गति रह तुळ अळि सरसरे भ्रमे से। बेळे धनु। बळे मकर अक्ष बिळसे। विद्यमान कुम्भ मत्स्यरे ए श्लेषे ग्ये। २०।

सरलार्थ—दूत ने आकर रावण के सामने श्लेष वचन मे निवेदन किया, "हे प्रभो! हमारे और उनके उभय पक्षों के वीर सैन्यों ने मिलकर सौर मानदण्ड (अर्थात् सक्रान्ति की गिनती) मे मेष, वृष, मिथुनादि क्रम मे युद्ध क्षेत्र मे पराक्रम व विक्रम प्रकाशपूर्वक युद्ध का संपादन किया। जैसे मेष (भेड़े) तथा वृष (साँड) ने मिथुन (जोड़े-जोड़े) होकर लड़ाई की। उनकी सेना ने कर्क (अग्नि) तुल्य तेज धारणपूर्वक सिंह की-सी गति से युद्धक्षेत्र में विहार किया। हमारे कुछ सैन्य भयभीत होकर कन्याओं (नारियो) के सदृश छिपे रहे तो उनकी सेना ने हमारी सेना को तूला (रुई) की तरह धुन लिया। उनके कुछ सैन्य हम लोगों को विच्छुओं की तरह काटते हुए घमड से घूमने लगे। हमारी सेनाओं मे से केवल मकराक्ष ने धनुष धारण करके युद्ध किया था, परन्तु वह भी मारा गया। कुम्भ राक्षस ने क्रोध से आगे वढकर युद्ध किया, तो वह भी मीन की तरह मारा गया। इसी तरह इस पद से वारह राशियों में से युद्धार्थ-सूचक श्लेषार्थ प्रकाशित हुआ।" (२०)

सौरमते—संक्रान्ति गणनानुसार, शौरमते—वीरो के रूप में। (श्लेष) (२०)

बिस्मय शुणि दशास्य बासवद्वेपी प्रबेश भाष प्रकाश तारे करइ। बुड़णा होइला स्थळे अनळ लागिला जळे अनिळ पाशे बन्धन होइ ये। ब्रह्मायुष। बिहरिला नर निःश्वासके। बोध देला मेघनाद मृदुबाक्ये से। २१।

सरलार्थ—यह सुनकर रावण बहुत विस्मित हुआ। अनन्तर इन्द्रजित वहाँ आकर उपस्थित हुआ, तो रावण ने उससे कहा, "अरे इन्द्र-विजयि! स्थल में डुबकी हुई, जल मे आग लगी, पवन फाँस में बँधा गया और ब्रह्मा की परमायु मनुष्य की एक ही साँस में समाप्त हो गई। (अर्थात् सारी असम्भव बाते सम्भव हो गई।) उसी प्रकार राक्षसों के भोजन वानर लोगों ने आज राक्षसों का वंश नाश कर डाला।" यह सुनकर मेघनाद ने कोमलवाणी में रावण को समझाकर कहा— (२१)

दशास्य—दसमुखो वाला, रावण; वासवद्वेषी—इन्द्रजित; बुड़णा—डूबना, डुबकी; ब्रह्मायुष—ब्रह्मा की परमायु। (२१)

बिदळे माड़िण लोक इन्द्रगोप किञ्चुळुक आषाढ़े घन-गर्ज्जने जीइ। बिचारे सेहि प्रकार हेले ए नर बानर हनुमन्त जीवनद होइ से। बिनाशिले। बातबळा जिणन्ताइँ युद्ध। बुद्धि एक करिबा कि एबे सिद्ध से। २२।

सरलार्थ—"हे तात् ! लोग इन्द्रवधू (बीरबहूटी) कीड़ों और केंचुओं को कुचलकर मिट्टी में मिला देते है। फिर भी अषाढ़ के महीने में मेघ की ध्वनि सुनकर वे फिर से जी उठते है। मेरे विचार में उसी तरह यद्यपि हम नरों तथा वानरों का विनाश कर आते है, हनुमान् उन्हें फिर से जिला देता है। सुतरां उसी हनुमान् का किसी भी प्रकार छल, बल या कल से हम लोग विनाश कर दें तो निश्चय ही युद्ध मे हम जय लाभ कर सकेगे। अब उसके लिए हम लोग एक उपाय निर्णय करें।" (२२)

बिदळे—कुचलने पर भी, इन्द्रगोप—इन्द्रवधू, बीरबहूटी; किञ्चूळुक—केंचुए; जीवनद—प्राणदानकारी; वातवळा—पवनपुत्र हनुमान् जी। (२२)

बिद्युज्जिह्व त्रिबेणीकि य़ाइ एक सुवेणीकि बुड़ाइ मायाजानकी करु। बोइला रावण शुणि ऊणा हेब सिना आणि बाहुड़ाइले कितब भीरु से। बिच्छेदिबा। बोइला शुणि ता इन्द्रजित। बिश्वबासुतर शुणि बोध चित्त से। २३।

सरलार्थ—इन्द्रजित ने कहा, "हे पिता ! अब विद्युज्जिह्व एक सुन्दरी रमणी को लेकर उसे त्रिवेणी घाट में नहला एक मायासीता बनावे। फिर हम लोग उस मायासीता को ले लें और श्रीरामचन्द्र को वापस दें। इस प्रकार वह मायासीता को पाकर लौट जाय तो हम लोग निष्कंटक राज्य भोग करेगे।" यह सुनकर रावण ने कहा, "वह माया-सीता चाहे क्यों न हो, सीता का प्रत्यर्पण करना मेरे लिए गौरवहानि है।" यह सुनकर इन्द्रजित ने कहा, "तो हम मायासीता को उसके सामने काट दें, तो अच्छा होगा।" तब रावण का मन मान गया। (२३)

त्रिवेणीकि—त्रिवेणी घाट को; सुवेणीकि—सुन्दरी नारी को, आणि—गौरव; कितबभीरु—मायासीता। (२३)

बाञ्छाबटतळे गत सुकान्तिकि घेनि भ्रात मनासि काम्यक तीर्थे दाहि। बसुमतीजासुमूर्ति बहिला यहुँ झटति झटझट बिद्यु प्राय देही से। बिलिप्ताके। बाहुड़िला बृषारि जाणिला। बञ्जुळबनरु नेला प्राये नेला से। २४।

सरलार्थ—अनन्तर भाई विद्युज्जिह्व अपनी छोटी बहन सुकान्ति को अपने साथ लिए बाञ्छावट के नीचे गया। सुकान्ति ने अपने भाई की

कथानुसार सीता का रूप मनाते हुए काम्यक तीर्थ में स्नान किया तो उसने अविकल सीता का मनोहर रूप धारण किया और उसकी देह-कान्ति बिजली की तरह चमकने लगी। अनन्तर विद्युज्जिह्व ने एक ही लिप्ता के समय में लौटकर उक्त मायासीता को इन्द्रजित के समीप उपस्थित किया। इन्द्रजित उस मायासीता-स्वरूपा सुकान्ति को लिये युद्धभूमि में जा पहुँचा, मानो वह सीता को अशोक वन से लिये आ रहा हो। (२४)

बसुमतीजासुमूर्ति—सीता का मनोहर रूप; बृषारि—इन्द्रजित; बञ्जुळवनरु—अशोकवन से। (२४)

बिमानरे मानवती प्रकारे छद्मयुवती बसु मुख पोति अश्रु गळि। बाते कि नळिन ढळि मरन्द उद्‌गारे अळि द्वयडोळा सेहि शोभाशाळी से। बिकम्पित। बेनि बेनि पक्ष्म पक्षरीति। बढ़िबा अळक बेढ़ि सेहि मति से। २५।

सरलार्थ—वह मायासीता मानवती नारी के सदृश विमान में बैठे मुंह नीचा किये आँसू बहाती थी। उसके उस समय की मुखश्री तथा गोलकों की शोभा देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो पवन से हिलते रहे कमल के फूल पर भौरे बैठे मकरन्द ढाल रहे हों। जब उस रमणी की पलकें गिरती, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो भौरे अपने पंख चला रहे हों। उसके अलक सब बढ़े हुए थे और उसी प्रकार वे भी भौरों के सदृश शोभा पाते थे। (२५)

छद्मयुवती—माया-कामिनी अर्थात् मायासीता; नळिन—पद्म; मरन्द—मकरन्द; उद्‌गारे—उगलता है; अळि—भौंरा; अळक—चूर्णकुन्तल। (२५)

बिन्यस्त उरजपरे देइछि कि शम्भुशिरे कण्ठशङ्खे बिराजित माळी। बिधिरे सलिळशायी सलीळे आरम्भ होइ प्रणाळी रञ्जन रोमाबळी से। बेणीपरे। बिश्रामिछि अनुसरि फणी। बिचारन्ति देखि लङ्कार रमणी से। २६।

सरलार्थ—उस रमणी ने स्वकण्ठ प्रदेश को अपने स्तनों पर स्थापित किया। लंका की रमणियों ने यह देखकर विचार किया, "क्या इनके कण्ठ पर लटकी सोने या मोती माला रूपी मालिन (पुजारिन) कण्ठरूपी शंख के द्वारा स्तनों रूपी शिवलिंगों पर जल ढाल रही हो। मृत्यु के भय से उसकी आँखों से आँसुओं की धारा कण्ठ पर होकर बह रही है। शिवजी स्वभावतः जलशायी है। सुतरां इन कुच-शम्भुओं की शय्या स्थानीय जलधारा कौतुक से इस रमणी के रोमावली के मिस बह रही

हो। सर्प शिव जी का अनुसरण करते हैं। रमणी की वेणी, मानो ऐसे शिव का अनुसरण करता हुआ साँप हो। (२६)

बिन्यस्त—स्थापित; उरजपरे—स्तनों पर, कुचों पर; शम्भुशिरे—शिवजी के मस्तक पर; माळी—हार, पुजारिन; (श्लेष); सलिळशायी—जलशायी; सलीळे—कौतुक से; फणी—सर्प। (२६)

बेशहीन क्षीण दिशे बिहीन हरषे बसे प्रसन्न दिशे एसन एबे। ब्रह्माण्डसार सुन्दरीजाळक तिळकपरि तिळकु शोभा या न पाइबे से। ब्रह्मा केते। बसि कळ्पिछन्ति केते कळ्पे। बल्लभी ए हेब पुणि केते तपे से। २७।

सरलार्थ—लंका की नारियो ने फिर विचार किया, "यद्यपि रमणी बहुत समय वेशहीना तथा क्षीणा हो खिन्न मन से वन्दिनी रही है, फिर भी इसका मुखमण्डल पूर्ववत् प्रसन्न दीख रहा है। इस ब्रह्माण्ड में जितनी सुन्दरियाँ है, उनमे जो सर्वश्रेष्ठ है, वह भी इस रमणी की शोभा से तिल भर (रंचमात्र) समान नही होगी।" फिर उन्होंने सोचा, "पता नही कितने ब्रह्माओं ने कितने कल्पों में इस रूप की कल्पना कर इसका निर्माण किया और फिर कितनी तपस्याओं के प्रभाव से उस यति (रामचन्द्र) ने इसे पत्नी के रूप में प्राप्त किया है।" (२७)

वेशहीन—भूषणहीना; ब्रह्माण्डसार सुन्दरी-जाळक तिळकपरि—ब्रह्माण्ड भर में श्रेष्ठ सुन्दरी-समूह की शिरोभूषण-स्वरूपा; बल्लभी—स्त्री; तिळक—तिलभर, रंचमात्र। (२७)

बिधाता जटाधारीकि देइ दिव्य सुन्दरीकि शिबे उमा रामे सीता देख। बिसर्जन्ता पछे जीव लेउटाइ ऐड़ द्रव्य आणि धिक पुंस दशमुख से। बोले केहि। बारे आउ न बोल ए भाष। बश त नोहिला रखि हेब किस से। २८।

सरलार्थ—उन लोगों में से फिर किसी ने कहा, "यह देखो, शायद विधाता जटाधारियों (अर्थात् तपस्वियों) के प्रति सदय होकर उन्हें ऐसी रमणियाँ दिया करते है। अन्यथा महादेव जी को उमा और राम को सीता मिलती कैसे? हमारे राजा रावण भले ही मर जाते। परन्तु ऐसे पदार्थ को लाकर उसे जो वापस दे रहे है, उनके पुरुषार्थ को धिक्कार है।" यह सुनकर किसी दूसरी स्त्री ने कहा, "अरी सखि, फिर एक बार यह बात मत कहना। जब कि वह अब तक हमारे वश नही आयी, तो फिर उसे रखने की क्या जरूरत है?" (२८)

उमा—पार्वती; बिसर्जन्ता—त्यागता, छोड़ता; जीव—प्राण; पुंस—पुरुषार्थ को; दशमुख—रावण; हेब किस—क्या होगा? क्या जरूरत है? (२८)

बाहि रथ पथे नेइ नीळठणा पाशे ग़ाइ सैन्यद्वन्द्व द्वन्द्व घोरतर। बाहिगला परबते हनुमन्त परवते मारिबाकु चक्रिणी उपर से। बळे नाहिँ। बाहा पार्थिबीस्वरूप चाहिँ। वासवारि ताकु उच्चे एहा कहि से। २९।

सरलार्थ—अपना रथ चलाता हुआ इन्द्रजित वहाँ जा पहुँचा, जहाँ नील सेनापति ठहरे थे। तव दोनों पक्षों में घोरतर युद्ध छिड़ गया। इस समय हनुमान् जी एक पर्वत धारण करके वह पर्वत रथ पर पटक देने को उद्यत हुए। परन्तु उस रथ में जब उन्होने सीता जी का स्वरूप देख दिया, तो उनके हाथ रथ पर चलाने को नही चले। हनुमान् जी को इस हालत में देखकर इन्द्रजित ऊंची आवाज से उनसे वोला— (२९)

नीळ ठणा—नील सेनापति का ठहराव; उनके ठहरने की जगह; सैन्यद्वन्द्व—उभय पक्षो के सैन्यों मे, द्वन्द्वयुद्ध; चक्रिणी—रथ; वळे नाहि वाहा—हाथ नहीं चलसे; पार्थिवी स्वरूप—सीता का स्वरूप; वासवारि—इन्द्रजित। (२९)

बिबाद आरम्भ तुम्भ आम्भर ए सात-कुम्भकुम्भस्तनी घेनि ग़ाउ सळि। बाळ धरि करवाळ घेनि मारन्ते प्रवाळअधरी गळारे गला गळि से। विच्छेदन। बिग्रह मस्तक मण्डु मही। बोले हनुमान कि कलुरे द्रोही से। ३०।

सरलार्थ—"अरे वानर! इस सुवर्णकुम्भस्तना सीता को लेकर तुम लोगों और हम लोगों मे छिड़े समर का आज ही निवटारा हो जाय।" यह कहते हुए उसने उस रमणी के वाल पकड़ कर उस पर तलवार की चोट मारी, तो वह प्रवालाधरी के गले में चुभ गई, जिससे उसका सिर और धड़ अलग होकर भूमि को मण्डित करने लगा। यह देखकर हनुमान् जी ने कहा, "अरे पापि! तूने यह क्या किया?" (३०)

विवाद—युद्ध; सातकुम्भकुम्भस्तनी—सुवर्णघटों के समान स्तनोंवाली; सळि—अरिष्ट, विपत्ति; करवाळ—खड्ग, तलवार; प्रवाळ-अधरी—नव पल्लवों या मूँगों के समान होंठोंवाली; विग्रह—शरीर; द्रोही—अरे पापि! (३०)

बसुधाभृत प्रहारि शताङ्गकु चूर्ण करि भये हये आरोहि कर्बुर। बेगे पशिला नगरे पावनि गत नगरे गरे घारिला प्राये शरीर से। बाटे ग़ाउँ। बृद्ध जाम्बबन्तकु देखिले। व्याकुळता होइ सकळ कहिले से। ३१।

सरलार्थ—अनन्तर हनुमान जी ने वड़े क्रोध से पर्वत का प्रहार करके इन्द्रजित के रथ को चूर कर दिया। इसलिए इन्द्रजित ने एक घोड़े पर

सवार होकर भय से शीघ्र ही लंकागढ़ में प्रवेश किया। अब हनुमानजी सुवेल पर्वत पर वापस आये, जैसे उनका शरीर विष-ज्वाला से जल रहा था। मार्ग पर चलते वक्त वृद्धमन्त्री जाम्बवान को देखकर उन्होंने उनसे व्याकुलता से सीता की मृत्यु आदि सारी बातें बताईं। (३१)

बसुतामृत—पर्वत; हये—घोड़ों पर; कर्बुर—राक्षस; गरे—विष से; घारिला—व्याप्त हो गया। (३१)

बदन म्ळान अनाइँ दुइजणङ्कर तहिँ पचारुँ कहिले श्रीरामरे। बिखण्डन कला शिर राबणि तीक्ष्ण असिर ग्रेंउँ सीता धराजाता तारे से। बिज्ञान से। बिञ्चि सिञ्चि नीर शान्ति कले। बास केश असम्भाळे बाहारिले से। ३२।

सरलार्थ—जाम्बवान और हनुमानजी के विरस वदनों को देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे विरसता का कारण पूछा, तो दोनों ने शुरू से अन्त तक सारी बातें उन्हें बताईं। उन्होंने निवेदन-पूर्वक कहा, "हे देव! पृथिवीकन्या सीतादेवी का सिर इन्द्रजित ने तीक्ष्ण असि से द्विखण्डित कर दिया।" यह सुनते ही रामचन्द्रजी बेहोश हो गये। उन लोगों ने उन पर पंखा झला और उनके मुख पर पानी सींचा, तो वे होश में आये। अब वे केशों तथा वसन को बिना संभाले सीता को देखने दौड़ चले। (३२)

म्ळान—मलिन; राबणि—इन्द्रजित; असि—तलवार; ग्रेंउं सीता—जो सीता; धराजाता—पृथिवी-कन्या; बिज्ञान—बेहोश; बिञ्चि—पंखा झलकर; सिञ्चि—सींचकर; बास—वस्त्र; केश—बाल। (३२)

बैदेही जानकी सीता मैथिळी महीदुहिता ग्रोजनगन्धा नामादि पूर्वे। बिन्यास करिण हाहा देखे ताकु रघुनाहा शोभित आतप नदीभावे से। बहिअछि। बिघातन स्थानरे कीलाल। बसे स्तम्भे चक्र उरज युगळ से। ३३।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी वैदेही, जानकी, सीता, मैथिली, महीदुहिता व योजनगन्धा आदि नामों के पूर्व 'हा' 'हा' योग करके (अर्थात् हा वैदेहि! हा जानकि! आदि बच्चारण करके) शोकजर्जरित हृदय से युद्ध-क्षेत्र में पहुँचे। उन्होंने वहाँ माया-सीता को देखकर, उसकी ग्रीष्मकालीन नदी से तुलना की। ग्रीष्मकाल मे जल की कमी के कारण जैसे स्रोत की क्षीण-धारा बहती है, वैसे मायासीता के गले से अर्थात् छेदनस्थल से क्षीणधाराओं में रक्त बह रहा है। फिर इस नारी के वक्षदेश में उसका कुचयुगल उसी प्रकार शोभित हो रहा है, जिस प्रकार निदाघकालीन नदी में चक्रवाक-चक्रवाकी स्तम्भीभूत हो बैठे हों। (३३)

बिन्यास करि—प्रयोग करके; रघुनाहा—रामचन्द्र; आतप—ग्रीष्म; कीलाल—रक्त; उरज—स्तन। (३३)

बस्त्र शुष्कफेनमते हंसाबळी वेनि प्रान्ते अस्त-व्यस्त सुभुज मृणाळ। विपुल उरु पुळिन मळिनकर नळिन रोमावळी शइबाळ जाळ से। बिलोकिते। बोइले मो घनरसदायि। बसि कोळे पकाइले ताकु नेइ सें। ३४।

सरलार्थ—उस मायासीता ने जो वस्त्र पहना था, वह ग्रीष्मकालीन नदी के सूखे फेन, वस्त्र के दोनों छोरों पर लिखी हंसावली हंस-समूह, अस्तव्यस्त दो भुजाएँ पद्मनालों, मनोहर दोनों जंघे नदी के दोनों किनारों और रोमावली नदी में उत्पन्न पानी-सेवारों के समान दिखाई पड़ती थी। यह देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने 'अहा! मेरी घनरसदायिनि!' उच्चारण करते हुए उस रमणी के शव को अपनी गोद में बैठा लिया। ('घन-रसदायिनी' नदी के पक्ष में 'जलदायिनी' और मायासीता के पक्ष में 'श्रृंगार-रसदायिनी' है।)। (३४)

हंसाबळी—हंससमूह; मृणाळ—पद्मनाल; उरु—जंघे; पुळिन—किनारे; नळिन—पद्म; शइबाळ जाळ—सेवार-समूह। (३४)

बिभाकरबंशे जात घेनि से हेले एमन्त ताङ्क संज्ञाभ्रम छायाठारे। बोलन्ति राघव मुहिँ बिहार करिबि काहिँ प्रेमसिन्धु जीवन हीनरे ये। बरारोहा। बोलाइ मुँ राम, रामा तुहि। बान्धबी गउरी घेनि शिब मुहिँ थ्ये। ३५।

सरलार्थ—कभी-कभी सूर्य को अपनी पत्नी संज्ञा की दासी छाया में संज्ञा का भ्रम होता है। उसी तरह सूर्यवंश में जात श्रीरामचन्द्र जी भी यह समझे कि यह (मायासीता) वास्तविक सीता है। ऐसा समझते हुए उन्होंने कहा, "अयि सीते! मैं राघव (श्रीराम, राघव-मत्स्य) हूँ और तुम मेरी प्रेमसिन्धु हो। तुम्हारा 'जीवन' जल है। अब तुम जीवन (जल) से शून्य हो गईं। (अर्थात् तुम मर गईं।) अब मैं कहाँ (किस पर) क्रीड़ा करूँ? अरी सुन्दरि! मैंने 'राम', यह 'मनोहर' नाम प्राप्त किया है। सुतरां तुम मेरी 'रामा' (मनोहारिणी) बनी हुई थी। पुनश्च चूँकि तुमने गौरी (अर्थात् पार्वती) के सदृश मनोहर या मंगलरूप धारण किया था, मै तुम्हारे लिए शिव (मंगल) स्वरूप बना हुआ था। (अर्थात् चूँकि तुम थी, मेरे हर एक विषय में मंगल हुआ करता था।)। (३५)

बिभाकरवंशे—सूर्यवंश में; संज्ञा—सूर्यपत्नी; छाया—संज्ञा की दासी; राघव—श्रीराम, राघव मत्स्य; जीवनहीन—प्राणहीन, जलहीन (श्लेष); बरारोहा—अरी सुन्दरि !; राम—मनोहर 'राम' नाम; रामा—मनोहारिणी प्रियतमा; बान्धवी—अयि प्रियतमे !; गउरी—गौरी, उमा; शिव—शंकरजी, मंगल, शुभ। (३५)

बोलाउ सीता संसारे ताप बारिणी य़ोगरे मग्न होइथिलि सुलग्नरे। बिधाता कराइ लीन हरिपदे ता भावन करि भागी हेबि सन्तापरे य़े। बरारोहा। बोलाइबा पद्मिनी सकाशे। बिनाशिवा हेलु किबा चन्द्राहासे से। ३६।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी ने फिर कहा, "गंगा त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तापों की विनाशकारिणी है। इसलिए लोग उत्तम लग्न तथा योग में (महावारुणी योग में) उनके स्रोतों में डुबकी लगाते है और अपने-अपने संतापों को दूर करते हैं। उसी तरह यह जानकर कि तुम संसार भर में 'सीता' (गंगा) के नाम से अभिहित हो और मेरे कन्दर्प-जनित दु:खों का हरण कर सकती हो, मैं शुभ लग्न में तुम से 'योग' (विवाह-मिलन) में निमज्जित हो गया था। किन्तु जिस तरह विधाता गंगा (विष्णुपदी) को विष्णु भगवान् के पैर में लीन कर रखते हैं, उसी तरह उन्होंने तुम्हें भी अब यम के गृह में छिपा रखा। अरी सुन्दरि! तुमने पद्मिनी नारी होने के कारण 'चन्द्रहास' (खड्ग) से वैसा विनाश को प्राप्त किया, जैसे पद्मिनी लता, चन्द्र की किरणों से विनाश को प्राप्त करती है। (३६)

सीता—वैदेही, गंगा (श्लेष); हरिपदे—विष्णुजी के पैर में, यम के भुवन में; चन्द्रहासरे—चन्द्र की किरणों से, तलवार से (श्लेष)। (३६)

बल्लभसङ्गे बल्लभी अग्नि प्रबेशकु लभि सेहि कथा बिपरीत हेब। बिपरीतरे होइछि पुरुष बाळमृगाक्षी एते कथा कि बिफळे य़िब से। बहनरे। बिह गर्त्त दहनरे आणि। बड़ करि भाषे एहा रघुमणि से। ३७।

सरलार्थ—अनन्तर श्रीराम ने अत्यन्त व्याकुल होकर कहा, "सती नारी अपने मृत पति के संग चितानल में प्रवेश करती है। किन्तु वह बात यहाँ विपरीत होगी। अर्थात् मैं अपनी प्राणप्रिया मृत सीता के सहित चिताग्नि में प्रवेश करूँगा। यह विपरीत घटना उचित ही होगी। क्योंकि उस बालकुरंगनयना ने रतिबन्ध के समय स्वयं पुरुषाधिकार को लेकर मुझे नारी का अधिकार दे दिया है। इसलिए अब जब मौका हाथ लगा है, इसे विफल करना या कार्यान्वित न करना अनुचित है। अर्थात् मैं

निश्चय ही इसके साथ जल जाऊँगा।" इसी तरह शोक करके उन्होंने अन्त में ऊँची आवाज से सैन्यों को आदेश दिया, "शीघ्र ही जाकर चिताग्नि जलाओ।" (३७)

बल्लभ—पति; बल्लभी—पत्नी; बाळमृगाक्षी—शिशु हिरन की आँखों सी आँखों वाली। (३७)

बारता अशोकवने हेला सीता सन्निधाने त्रिजटा समर्पा आदि हसि। बानर स्वरूपे आसि पेषिले एक राक्षसी बिभीषण कर्णे गला भाषि से। बचस्कृत। व्यर्थ ए शबकु त्यज त्यज। बर्णे न चिह्निले चिह्न एबे हेज से। ३८।

जब यह समाचार कि श्रीराम जी मृता (माया) सीता के सहित चिताग्नि में प्रवेश कर रहे हैं, अशोकवन में प्रचारित हुआ, त्रिजटा, समर्पा आदि सीता की सहेलियाँ उनके पास आकर हँसने लगीं। उन लोगों ने आकर एक राक्षसी को विभीषण के समीप भेजा। वह राक्षसी वानर के वेश में विभीषण के निकट आकर उनके कानों में सारी बाते बताकर लौट गई। अनन्तर विभीषण ने रामचन्द्रजी के पास उपस्थित होकर उनसे कहा, "प्रभो! यह शव त्याग कीजिएगा। वह आपकी प्राणप्रिया सीता नहीं है। आप यदि वर्ण से इसे नहीं पहचान सकते, तो कम-से-कम संकेत को देख पहचानिएगा।" (३८)

सन्निधाने—समीप में, निकट में; बचस्कृत—कहा; हेज—पहचानिएगा। (३८)

बायुजे पुच्छे आउ य़े आन नोहे सीता ए य़े सर्जि वाणी चाहिँले आनन। बिधुन्तुदे होइ घाती दिवसरे हीनज्योति निशापति पतन बिधान से। बेगे आणि। बनजकरे अधर चाहिँ। बळिपुष्टक्षत देखे तहिँ नाहिँ से। ३९।

सरलार्थ—विभीषण से यह बात सुनकर श्रीराम जी ने हनुमान से फिर पूछा, "जरा अच्छी तरह देख आओ तो, यह सीता है या दूसरी कोई स्त्री।" हनुमानजी ने उत्तर दिया, "ये आपही की सीता हैं, दूसरी कोई नहीं।" अनन्तर श्रीराम जी के समेत सभी ने उस मायासीता के वदन की ओर निहार देखा कि राहु से ग्रस्त होकर अथवा दिन में चन्द्रमा जैसे निस्तेज दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार इस नारी का वदन ज्योतिहीन दीखकर भूतल पर पड़ा हुआ था। अनन्तर श्रीराम ने अपने कमलकरों से इस रूप में पड़ी मायासीता के शव को उठाकर देखा कि उसके अधरों पर कौवे की चोंच से किये हुए क्षत-चिह्न नहीं। सुतरां यह जानकर कि यह कपट-सीता है, उन्होंने उसका परित्याग किया। (३९)

बायुज—हनुमानजी; विधुन्तुद—राहु; निशापति—चन्द्र; बनजकर—पद्महस्त; बळिपुष्टक्षत—कौवे से किया हुआ क्षत-चिह्न। (३९)

बन्दिले सेहि काकरे रखिले नाहिँ कोळरे शवकु सर्बे से कथा कहि। बिचित्र भणे मारुति बिहिला एड़े सुमूर्त्ति श्रुतिरे ए कथा शुणा नाहिँ ये। बिभीषण। विख्यात प्रयागतीर्थे झास। बोध हेला शुणि समस्त मानस ये। ४०।

सरलार्थ—यह कहते हुए कि कौवे ने मेरा एक बड़ा उपकार किया है, श्रीराम जी ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। अनन्तर उन्होंने अपनी गोद से उक्त शव को नीचे डाल दिया और सभी के सामने उक्त कौवे के चञ्चुघात की कथा आद्योपान्त बताई। उसके बाद हनुमानजी ने विस्मित होकर कहा, "इन्द्रजित ने ऐसी एक सुन्दरी मूर्ति का निर्माण कैसे किया ? ऐसा कपट न कर्णों में सुना गया है, या न वेदादि धर्मशास्त्रों में।" विभीषण ने कहा, "उस स्त्री ने प्रयाग तीर्थ के जल में अपने जीवन का बलिदान देकर ऐसी मूर्ति धारण की थी।" यह बात सुनकर सभी का मन मान गया। (४०)

बन्दिले—प्रशंसा की; मारुति—हनुमानजी; श्रुतिरे—कर्णों में, वेदों में; सुमूर्त्ति—उत्तम मूर्ति, स्मृति शास्त्र (श्लेष)। (४०)

बिषम समस्या पूर्ण पत्नीकि पति लोकन करि न चिह्निबा एहिठारे। बारांनिधिरे पकाइ से लावण्यनिधि नेइ स्नान सारि गले सुबेळरे से। बिभाबरी। बिकाशित होइला एमन्ते। बढ़ाइ अशन शयन समस्ते से। ४१।

सरलार्थ—कवि ने विचार किया—यहाँ एक विषम समस्या की पूर्ति हुई, जो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी पत्नी सीता को पहचानने में असमर्थ होकर (अर्थात् मायासीता को अपनी पत्नी समझकर, उसकी मृत्यु में) शोक किया। तदनन्तर श्रीराम जी समेत सारे सैनिक लोगों ने उक्त मायासीता के शव को समुद्र में फेंक दिया और स्नानपूर्वक सुवेल पर्वत पर लौट आये। इस समय रात्रि उपस्थित होने पर सब भोजन समाप्त करके सो गये। (४१)

वारांनिधि—समुद्र; लाबण्यनिधि—सुन्दरी; अशन—भोजन। (४१)

बिदग्ध[1] दूते रावण एमन्त करि श्रवण बिदग्ध[2] तापे बिचार कला। बळ बुद्धि ए सगरबंशिकीरतिरे स्थळ न पाइ निश्चय बुड़िगला से। बड़ रम्य। बयाळिश पदे एहु छान्द। बोले उपइन्द्र बन्दि रामचन्द्र से। ४२।

सरलार्थ—चतुर दूतों से सारी बातें सुनकर रावण ने अत्यन्त मनोदुःख से विचार किया, "अब मेरा बल व बुद्धि इन सगरवंशीय रामचन्द्रजी के कीर्त्ति-समुद्र में कूल-किनारा न पाकर निश्चय ही डूब गई। (अर्थात् मेरी मृत्यु अब सुनिश्चित है।) श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति करते हुए उपेन्द्रभंज ने बयालिस पदों से इस मनोहर छान्द की रचना की। (४२)

बिदग्ध[1]-चतुर; बिदग्ध[2]—सन्तप्त (यमक); सगरवंशि-कीरतिरे—सगरवंशीय रामचन्द्रजी के यश-समुद्र में; स्थळ न पाइ—कूल-किनारा न पाकर। (४२)

॥ इति पञ्चचत्वारिंश छान्द ॥

षट्चत्वारिंश छान्द

राग—कामोदी (रूक्मिणी चउतिशा वाणी में)

बुझ आहे सुमने[1] निद्राबशे सुमने[2] संबेश आबेश श्रीराम।
बसुधा सुधामयी बिशुद्धा सुधा पिइ सुधांशुनिभछत्रे रम्य से।
बसि शुभ्र। बज्रसिंहासनरे तहिँ। बसि शुभ्र। बसने बिराजित होइ।
बरवर्णना[1] सीता बरवर्णना[2]-युक्ता कोळरे अछन्ति बसाइ से। १।

सरलार्थ—हे पण्डितो! उत्तम मन से (अर्थात् स्थिरचित्त होकर) इसे समझिए। श्रीरामचन्द्र ने गहरी नीद से अभिभूत होकर यह स्वप्न देखा कि सारी भूमि चूने से पुतकर शुक्ल दिखाई दे रही है। वे स्वयं विशुद्ध अमृत पान कर रहे हैं और उनके सिर पर चन्द्रकिरण के सदृश शुक्ल छत्र सुशोभित हुआ है। पुनः वे हीरक-खचित सिंहासन पर बैठे हुए है एवं शुक्ल वस्त्र से विराजमान हुए हैं। उन्होंने हलदी से पुते शरीर से सुशोभिता वरांगना सीता को अपनी गोद पर बैठाया है। (१)

सुमने[1]—हे पण्डितो!; सुमने[2]—उत्तम मन से (यमक); संवेश—स्वप्न; बसुधा—पृथिवी; सुधामयी—चूने से पोती हुई; बिशुद्धा—पवित्र; सुधा—अमृत; सुधांशुनिभछत्रे—चन्द्रतुल्य श्वेत छत्र से; बज्रसिंहासन—हीराजड़ित सिंहासन; बरवर्णना[1]—वरांगना; वरवर्णना[2]-युक्ता—हलदी से पोते हुए (यमक)। (१)

बिहार बिहायसे अर्जुनपाराबंशे बंशे राजित से चिराळ।
बशिष्ठ कुम्भजहिँ बशिष्ठ कुम्भ ग्रहिँ सात कुम्भरे ढाळे जळ से।
बार बार। बारस्त्रीभाने गीत स्मरि। बार बार। बिहन्ति नृत्य अपसरी।
बरषन्ति शुकळ सुमना[1] ये सकळ सुमना[2] शून्यरे सञ्चरि से। २।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने स्वप्न में फिर देखा कि आकाश में शुक्लवर्ण के कबूतर उड़ रहे है और बाँसों पर शुक्ल पताकाएँ फहर रही हैं। वशिष्ठ तथा अगस्ति, दोनों ऋषि हाथियों द्वारा सुवर्ण-कलशों से उनके मस्तक पर जल ढलवा रहे हैं। (अर्थात् उनका तिलक कर रहे हैं।) उनके सम्मुख वेश्याएँ झुण्ड-झुण्ड होकर गीत गा रही है और अप्सराएँ पुनःपुनः नृत्य कर रही है। देवलोग आकाश में रहकर शुक्ल पुष्पों की वृष्टि कर रहे है। (२)

बिहायसे—आकाश में; अर्जुनपारावंशे—सफेद पारावत; बंशे—बाँसों पर; चिराळ—पताका; बशिष्ठ कुम्भजहिँ—वशिष्ठ और अगस्ति ऋषि; बशिष्ठ—बैठकर;

कुम्भ—हाथी; यहिँ—जहाँ; सातकुम्भ—स्वर्णकलश; बारस्त्रीमाने— वेश्याएँ; सुमना[1]—शुक्ल पुष्प; सुमना[2]—देवलोग (यमक)। (२)

बाजि शंखादि बाद्यराजि राजि द्विरद बाजी सुरूपा रूपागिरि।
बिजय पूर्बमुखे बिजयी बीर सुखे जय जय शबद स्फुरि से।
बिधुर ये। बिरस जन सबुङ्करि। बिधुरजे। बिधान होइछि चर्चरी।
बसन्ते ये बसन्त बसन चेतिकृत कथन सानुजे बिचारि से। ३।

सरलार्थ—फिर शंखादि वाद्यसमूह वज रहे है। शुक्लवर्ण के हाथियों तथा घोड़ों के समूह सुन्दर रूपवाले चाँदी के पर्वत (या कैलास पर्वत) के सदृश शोभा पा रहे है। स्वयं श्रीराम जी पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठे हुए है और विजयी वीरों के 'जय' शब्दोच्चारण द्वारा वह स्थान गूँज रहा है। सभी के मन से दुःख दूर हो गया है। कपूर की रज से होली की चाँचर का-सा खेल चल रहा है। नीद टूटने पर पीताम्बर श्रीरामचन्द्र जी जग उठे एवं उन्होंने लक्ष्मणजी से स्वप्न का प्रसंग कहा। (३)

द्विरद—हाथी; बाजि—घोड़े; बिधुर—त्याग; बिधुरज—कर्पूररेणु; चर्चरी—चाँचर; सानुजे—छोटे भाई लक्ष्मण से। (३)

बिचक्षण लक्ष्मण बोले से क्षण क्षणदारे आज स्वप्न बीक्षण।
ब्यस्तकेश लंकेशसुत चढ़ि महिष महिम इच्छिण दक्षिण से।
बळी स्नेह। बिलेपनरे जरजर। बळि स्नेह। बिष भक्षे लोहपात्रर।
बिभूषा रंगबाणे भुषायिब मो बाणे ए रणे शरण के तार से। ४।

सरलार्थ—श्रीरामचन्द्र जी से उक्त स्वप्न-प्रसंग सुनकर लक्ष्मणजी ने तत्काल ही कहा, "हे देव! मैंने भी पिछली रात एक अशुभसूचक स्वप्न देखा है। वह यों है। इन्द्रजित अपना पराक्रम दिखाने के लिए व्यस्त-केश होकर एक भैंसे पर आरोहणपूर्वक दक्षिण दिशा की ओर चल रहा है। फिर अपने शरीर में तेल पोतकर सर्वजया-फूलों से शरीरमण्डन-पूर्वक लोहे के पात्र में विष भक्षण कर रहा है। ऐसे स्वप्न से मैं अनुमान कर रहा हूँ कि इस युद्ध मे मेरे वाण से निश्चय ही इन्द्रजित का विनाश होगा।" (४)

बिचक्षण—बुद्धिमान्; क्षणदा—रात्रि; रंगबाण—सर्वजया, देवकली। (४)

बिभीषणकु चाहिँ दूषणजित कहि भीषण युद्ध शक्रारिर।
बळ प्रबल मोर धबळकर प्राये तम प्राय कबळकर से।

बिशेषर। बाहुड़िबि मुँ भय करि। बिषे शर। बिषाइ थाइ ये ताहारि।
बिस्तारे केड़े शक्ति गदा मुद्‌गर शक्तिशूळ चक्र-चक्र प्रहारि से।५।

सरलार्थ—विभीषण की ओर निहारकर दूषणविजयी श्रीराम जी ने कहा, "हे लंकपति ! इन्द्रजित का युद्ध बड़ा भीषण है। वह राहु के सदृश होकर चन्द्रतुल्य मेरे प्रबल सैन्यों को निगल सकता है। यहाँ तक मैं भी उसका समर देखकर भय के मारे पीछा दिखाता हूँ। फिर दूसरे व्यक्ति की बात क्या बताऊँ ? वह अपने शरों को विषैला किये रहता है। उसका पराक्रम अलौकिक ही है। क्योंकि वह एक ही साथ गदा, मुद्‌गर, शक्ति, चक्र, आदि अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग कर सकता है।" (५)

दूषणजित—दूषण राक्षस के विजेता श्रीराम; शक्रारि—इन्द्रजित; बळ—सैन्य; धवळकर—चन्द्र; बिषाइ—विषैला करके। (५)

बैश्रबण श्रबण कराइ य़ाहा आन आन न करे शतमन्यु।
बिनाश एहा करे कीनाश चिन्ता करे कि भाग्ये पासोरिछि मनुँ से।
बिरचित। बड़ प्रतिज्ञा ताहा हते। बीरचित्त। बिळसि हरषे महत्त्वे।
ब्रह्मार गर्बहर स्मर त स्मरहर ताकु जाळिले नेत्रपाते से।६।

सरलार्थ—यह सुनकर विभीषण ने कहा, "हे देव ! जिस इन्द्रजित की आन यहाँ तक इन्द्र भी नहीं तोड़ सकता और स्वयं यम जिससे शंका करता है कि इन्द्रजित के हाथों से मेरा विनाश कभी से हो जाता, परन्तु न जाने मेरे किस भाग्यबल से उसने मुझे अपने मन से भुला दिया है, उसी इन्द्रजित का वध करने के लिए लक्ष्मणजी ने प्रतिज्ञा की है।" यह सुनकर लक्ष्मणजी ने पुनःपुनः प्रतिज्ञाएँ की और अतिशय हर्ष से उनका मन खिल उठा। फिर उन्होंने दृष्टान्त दिखाते हुए कहा, "कन्दर्प ने भले ही ब्रह्माजी का गर्व हरण किया हो, फिर भी महादेवजी ने अपने कटाक्ष-पात मात्र से उसे जला दिया। उसी प्रकार भले ही इन्द्रजित ने समर में देवताओं को हरा दिया हो, फिर भी मैं उसका पलक-मात्र में वध करूँगा।" (६)

वैश्रवण—विश्रवापुत्र विभीषण; शतमन्यु—इन्द्र; कीनाश—यम; स्मर—कन्दर्प; स्मरहर—शिव। (६)

बटे लंकाभूस्थळे अबटे लंकातळे जात जातबेदरे होम।
बिहि अजरुधिरे धीरे मनोरथरे रथ देवदळन नाम से।
बाजीबार। बाणासन तूण बिदित। बाजिबार। बज्ररु बळि करे घात।
बज्रि अराति राति थाई य़ाउँ निपाति पारि सुपाति तेजुँ सत से।७।

सरलार्थ—लक्ष्मण की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर विभीषण ने उनसे कहा, "लंकापुर के मध्य एक बरगद के पेड़ के समीप एक होमकुण्ड है। उसमें अग्निस्थापनापूर्वक बकरे के रक्त से एकाग्रचित्त से कामना करते हुए होम किया जाय, तो उसमें से देवदलन नामक रथ उत्पन्न होता है। फिर उसमें से अश्वसमूह, धनुष, तूणीर, बज्र से भी बढ़कर घात करनेवाले शर-समूह उत्पन्न होते है। इन्ही के द्वारा इन्द्रजित अपराजेय है। इसलिए रात के होते जब इन्द्रजित सेज से जगता है, उसी वक्त अगर उसका निधन न किया जाय, तो वह निश्चय ही अबध्य रहेगा। ऐसा समझिए।" (७)

वटे—बरगद के पास; अवटे—एक होमकुण्ड; जातवेदरे—अग्नि से; अजरुधिरे—बकरे के रक्त से; वज्रि अराति—इन्द्रजित; सुपाति—शय्या, सेज। (७)

बेळद्वय से पाशे बन्धन नागपाशे ब्रह्मास्त्रे नाश करि गला।
बिपति ऋक्षपति पतित से बिपत्ति हरिले मारुतिहिँ थिला से।
बाहारे से। बिहि बिबिध आयुधकु। बाहारे से। बिचारि बइरी बधकु।
बचस्कर नोहिण तस्कर आचरण लभे बरण सन्निधिकु से। ८।

सरलार्थ—विभीषण ने आगे कहा, "हे वीर! इन्द्रजित दो बार हम लोगों का नागपाश से बन्धन और ब्रह्मास्त्र से विनाश कर रहा था। परन्तु हम लोग गरुड़जी की वजह से नागपाश के तथा जाम्बवान की दवा से ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से बच गये। और भी हनुमानजी ने गन्धमादन पर्वत से दवा ला दी। शत्रुनाश के लिए समरभूमि को रवाना होते समय इन्द्रजित नाना प्रकार के भीषण आयुध धारण किये आता है।" विभीषण, लक्ष्मणजी से ऐसे बोल रहे थे, तो सैन्यलोग चोरों जैसे चुप होकर लंकागढ़ के परकोटे के पास पहुँच गये। (८)

बेळद्वय—दो बार; बिपति—गरुड़; ऋक्षपति—जाम्बवान; मारुति—हनुमान; बचस्कर नोहिण—चुप होकर; बरण—प्राचीर, परकोटा। (८)

बाट पाइ कपाट फिटुँ भल्ल मर्कट प्रकट प्रभातुँ कटके।
बिरचुँ बिरसात कंकादि बीर सात रामङ्कु अटके छटके से।
बासबारि। बेष्टित लक्ष्मण सबळ। बास बारि। बेगे आसि आरम्भि रोळ।
बोले उच्चे ए पद मृत्युस्थानकु पद जाणे दुर्गम दुर्ग मेळ से। ९।

सरलार्थ—सुबह लंकागढ़ के दरवाजे खुले, तो श्रीरामचन्द्र जी ने भल्लुक तथा वानरसैन्यों सहित गढ़ के अन्दर प्रवेश किया। यह देखकर कंकादि विख्यात सप्तवीरों ने कौशल से आकर श्रीरामचन्द्र को रोका। इन्द्रजित का गृह पहचानकर लक्ष्मण ने सैन्यों के साथ उसे घेर लिया। यह जानकर इन्द्रजित स्वयं सुसज्जित होकर वहाँ पहुँचा और युद्धारम्भ किया। उसने

ऊँची आवाज से कहा, "तुम लोगों ने इस दुर्गम गढ़ के अन्दर प्रवेश नहीं किया है, बल्कि मृत्युस्थल या शमनपुर में प्रवेश किया है। (अर्थात् यहीं आकर तुम लोग अपनी-अपनी जान से हाथ धो बैठोगे।)" (९)

कटके—गढ़ में; अटके—रोका; छटके—कौशल से; बासबारि—इन्द्रजित; सबळ—सैन्यों सहित; रोळ—कोलाहल, शोरगुल। (९)

बञ्चिल थर दुइ घुञ्चिल थर बहि प्राण सञ्चिल कि उपाये।
बिच्छेद पिण्ड मुण्ड छेदन हेब चाण्ड विषाद सादर निश्चये से।
बइरीकि। बादे कपोत निकि सरि। बइरीकि। बिपाककर्म अछ करि।
बिधिरे शशपञ्चा पञ्चास्यकु अबञ्चा घटे घटकर्णर परि से। १०।

सरलार्थ—इन्द्रजित ने आगे कहा, "तुम लोगों ने दो बार डरकर युद्धक्षेत्र से पीछा दिखाया और किसी न किसी प्रकार अपनी-अपनी जान बचा ली। किन्तु अबकी बार इस युद्ध में तुम्हारे सिर शीघ्र ही धड़ों से छिन्न होंगे और सिर तथा धड़ राक्षसों के भोजन बनेंगे। निश्चय ही दुःख तुम लोगों पर आक्रमण करेगा। क्या कभी श्येन के सहित कबूतर विवाद करता है? यह तुम लोगों का दुर्भाग्य है कि तुम लोगों ने हमको शत्रु बनाया है। जिस तरह खरगोश ने कपट से सिंह का विनाश किया था, उसी तरह तुम लोगों ने कुम्भकर्ण का विनाश किया है। (परन्तु मेरा विनाश कभी नही कर सकोगे।)" (१०)

चाण्ड—शीघ्र; बइरी—श्येन पक्षी; बिपाककर्म—दुर्भाग्य; शशपञ्चा—खरगोश का कपट; पञ्चास्य—सिंह; अबञ्चा—विनाश; घटकर्ण—कुम्भकर्ण। (१०)

बोले रामसोदर बड़ाइ न आदर निदर नुह तु क्रब्याद।
बिश्वबिध्वंसी काळ पूरे तत्काळ काळ काळकण्ठरे रचि बाद से।
बिनाशन। व्रतफळ तो हेला शेष। बिनाशन। बिबादे आज मुँ अबश्य।
बिन्धाबिन्धि मार्गण गणना नाहिँ पुण बोले ए भाष प्रतिभाष से। ११।

सरलार्थ—यह सुनकर रामानुज लक्ष्मण ने कहा, "अरे राक्षस! तू निडर होकर बड़ाई मत करना। विश्वविध्वंसकारी यम भी महादेवजी से विवाद करके निहत हुआ। उसी तरह यद्यपि तूने देवताओं पर विजय प्राप्त की है, फिर भी मेरे शरों के आघात से तू प्राण त्याग करेगा। इसमें कोई भी सन्देह नही। तूने अनशनादि जो व्रत किये थे, उनका फल आज ही समाप्त हुआ। आज ही तेरी मृत्यु मेरे हाथों निश्चय ही होगी। मैं तेरा विनाशकारी शत्रु बनकर आया हूँ।" इस तरह परस्पर से बातचीत करते हुए लक्ष्मण और इन्द्रजित, दोनों ने एक दूसरे की ओर अनगिनत शर मारे। (११)

रामसोदर—लक्ष्मण; निदर—निडर; क्रव्याद—राक्षस; काळकण्ठरे—शिवजी के सहित; बिनाशन—अनाहार, भोजन के बिना; मार्गण—वाण, शर। (११)

बेनि बळ समरे बन्दी हेले समरे ऋक्ष रक्ष मात्रके भेद।
बिखोजन्ति ग्ने शिळे जन्ताजन्ति सकळे युद्धे शूरे शूरे सम्पाद से।
बिहरित। बिशेष हरि होइछन्ति। विहरित। विवादे प्राण से करन्ति।
वीरेन्द्र शर भळि बळी बळि प्रज्वळि अतिरणकीरतिरति से।१२।

सरलार्थ—इस युद्ध में दोनों पक्षो से समानसंख्यक सैन्य कैदी हुए। ये सैन्य भी 'ऋक्ष' (भल्लुक) और 'रक्ष' (राक्षस) नामों से समान थे। केवल 'ऋ' और 'र' अक्षरों में ही भेद था। उभय-सैन्य शिलों (पत्थरों) तथा शीलों (अस्त्रो) से प्रगाढ युद्ध करते थे। (अर्थात् वानर-सैन्य पत्थरो से एवं राक्षस-सैन्य अपने-अपने अस्त्रों से लड़ रहे थे।) दोनो पक्षों के वीर परस्पर से भिड़ जाते थे और अपने पक्ष के सैन्यों को खोजते हुए फिर परस्पर से सट जाते थे। वानरगण युद्धक्षेत्र मे इधर-उधर दौड़ते हुए प्रवल वेग से असुरों का विनाश कर रहे थे। यह देख वलवान् इन्द्रजित ने क्रोध से जलकर लक्ष्मणजी से वढ़कर अत्यधिक रणकौशल दिखाते हुए उनके वाणों से तीक्ष्णतर वाणों का प्रयोग किया। (१२)

शिळे—पत्थरों को; हरि—वानर; अतिरणकीरतिरति—अत्यन्त समर-निपुण, विशिष्ट योद्धा। (१२)

बिचित्र चित्रभानु भानुपत्री सन्धानु दनुज रामानुज धीर।
बिन्धि बाण पबने भुबनज जबने देले से पकाइ अब्धिरे से।
बितपन। बिधान हेला केते शर। बितपन। विभव देखि सौमित्रिर।
बड़ क्रोधरे धीरे धरशर प्रहारे हरे ता पबि आयुधर से।१३।

सरलार्थ—इन्द्रजित के सूर्यावर्त्तक आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते, रामानुज धीर, वीर लक्ष्मण ने उक्त शर का प्रतिशरस्वरूप सलिलास्त्र का प्रयोग करके राक्षस के आग्नेयास्त्र को शीघ्र ही समुद्र मे डाल दिया। उसके बाद उन्होने प्रचण्डतेजप्रकाशक कई शरों का उसके प्रति प्रयोग किया। इन्द्रजित ने लक्ष्मणजी की यह शरप्रयोगपटुता देखकर क्रोध-जर्जरित हृदय से उनके प्रति पर्वतास्त्र का प्रहार किया। लक्ष्मणजी ने वज्रास्त्र से उसका भी छेदन किया। (१३)

चित्रभानु भानुपत्री—सूर्यावर्त्तक आग्नेयास्त्र; दनुज—राक्षस; रामानुज—लक्ष्मण; भुबनज—सलिलास्त्र; जबने—वेग से; अब्धिर—समुद्र में; धरशर—पर्वतास्त्र; पबि—बज्र। (१३)

बिधृत लक्ष लक्ष ग्ने शिळीमुख मुख तीक्ष्ण लक्ष्य दुहिँकि दुहेँ।
बिरक्तहीन रक्त जर जर जरत बिम्ब आकृति बहे देहे से।

बिदारण। बेनि समान भाब तहिँ। बिदारण। बुद्धि केबळ अछि रहि।
बाण सेबने ईश ईषद्धास प्रकाश शल्य[1] कि शल्य[2] भाब बहि से। १४।

सरलार्थ—लक्ष्मण और इन्द्रजित, दोनों ने लाखों शर धारणपूर्वक परस्पर के प्रति प्रयोग किये। दोनों लक्ष्यभेद में बड़े निपुण तथा चतुर है। युद्ध में हताश न होकर शरों का प्रयोग करने पर भी, दोनों के शरीरों से रक्त बहने लगा और दोनों पके कुन्दरुओ की तरह दिखाई दिये। युद्धकौशल में दोनों समान रूप से आगे बढ़ रहे थे। कार्यतः दोनों समान थे। फिर भी दोनों में भेदबुद्धि रही थी। वह यह है कि, जिस प्रकार महादेवजी वाणासुर की सेवा से प्रसन्न होकर मुसकान प्रकट कर रहे थे, उसी प्रकार लक्ष्मणजी इन्द्रजित के वाणों से घायल होकर भी स्मित प्रकट कर रहे थे और इन्द्रजित भी लक्ष्मणजी के वाणों से विद्ध होकर साही पक्षी के समान शोभा तथा व्यवहार प्रकट कर रहा था। (१४)

शिळीमुख—शर; जरत बिम्ब—पके कुन्दरू; शल्य[1]—बाण, शर; शल्य[2]—साही पक्षी (यमक)। (१४)

बातसुत शइळे पकाइले तइळे सूत मक्षिका प्राये तहिँ।
बिभञ्जन से जनरंजन रथ पुन राजनसुत उभा मही से।
बिधा तारे। बाळिसुत प्रहारु पिठि। बिधाता रे। बिजयिगर्ब गला तुटि।
बिशिखे तूळा[1] तुळा[2] तनुभिणा बातुळा से कपटी बोध लम्पटी से। १५।

सरलार्थ—जब युद्ध इस प्रकार चल रहा था, हनुमानजी ने वहाँ पहुँचकर इन्द्रजित के रथ पर एक पर्वत फेंका। उसके आघात से सारथि ने तत्क्षणात् भूमि पर गिर प्राणत्याग किया, मानो एक मक्खी तेल में गिर मरी। उसके साथ इन्द्रजित का मनोहर रथ चूर हो जाने से राजपुत्र इन्द्रजित भूमि पर विवश खड़ा हुआ। इस समय अंगद ने आकर उसकी पीठ पर ऐसा एक घूँसा जमाया जिससे विजयी इन्द्रजित का गर्व खर्व हो गया। हाय विधाता! इन्द्रजित के समान वीर की ऐसी दुर्दशा! लक्ष्मणजी के शराघात से उसकी देह धुनी हुई रुई के बराबर हो गई। उसने पागल सा होकर अन्त में कपट-युद्ध के प्रति आदर प्रकाश किया। (अर्थात् कपट-युद्ध करने का निश्चय किया।)। (१५)

बातसुत—हनुमान; सूत—सारथि; जनरञ्जन—लोकाभिराम; राजनसुत—इन्द्रजित; उभा—खड़ा; बाळिसुत—अंगद; बिशिखे—शरोंद्वारा; तूळा[1]—रुई; तुळा[2]—समान (यमक); तनुभिणा—देह विदीर्ण। (१५)

बिरथी मुँ ग्ये बीर पदगे पदबीर रंगे बिरंगे ग्रश हानि।
बहुबळ संगरे रसिथाअ संगरे आसइ अस्त्रशस्त्र घेनि से।

बटे[1] थिब। ब्यर्थ हेब बिबादे मज्जि। बटे[2] थिब। बिमान आणिब से पूजि।
बिभीषण भणन्ते जाणन्ते परिणते धिक्कार करि केते गञ्जि से।१६।

सरलार्थ—अनन्तर इन्द्रजित ने लक्ष्मण से कहा, "हे वीर ! अब मैं विरथी होकर पैदल युद्ध करते-करते यदि हार जाऊँ, तो तुम्हारी ही निन्दा होगी। (क्योंकि कातर योद्धा के सहित युद्ध करना धर्मानुमोदित नहीं।) इसलिए अब तुम मेरे असख्य सैन्यों से लड़ते रहो। मैं अस्त्रशस्त्र लिये आऊँ, फिर हम दोनों युद्ध करें।" इन्द्रजित से यह बात सुनकर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा, "यह इन्द्रजित आप से ऐसा कहकर आपको ठग चला जाएगा। वह यहाँ से जाकर निकुम्भिला बरगद की पूजा करके अगर विमान ले आया, तो हमारा युद्ध विफल होगा।" जब इन्द्रजित यह जान सका कि विभीषण ने लक्ष्मण से ऐसी बात बताई है, तब उसने विभीषण को बहुत गालियाँ दीं। (१६)

बिरथी—रथहीन; पदगे—पदगामी; पदवी—उपाधि; रंगे—युद्धमें; बिरंगे—पराजय में; बटे[1]—ठगकर; बटे[2]—बरगद की जड़ मे (यमक); परिणते—अन्त में।(१६)

बसि हिरण्यमय हीरकरथे मयनप्ता हिरण्य प्राये दिशि।
बहे शायक शर प्रसरि बहनर नरसिंह उपरे मिशि से।
बिघ्नराज। बळिमुखङ्कु चेता करि। बिघ्नराज। बिभूति करकु बिस्तारि।
बसे चेतना पाइ थिले पतन होइ त्रिपत्री मन्त्र पुनः मारि से। १७।

सरलार्थ—अनन्तर मयनप्ता इन्द्रजित हीरक-खचित, स्वर्णनिर्मित रथ पर आरोहणपूर्वक हिरण्यकशिपु राक्षस की तरह दिखाई दिया। उसने धनुष, शर आदि शस्त्रों तथा बहुविध अस्त्रों को धारणपूर्वक शीघ्र ही नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी पर आक्रमण किया। जैसे हिरण्यकशिपु ने खड्गधारणपूर्वक नरसिंह पर चढ़ाई की थी, जैसे गणेश ने युद्धक्षेत्र में बलिमुख आदि अपने अनुचरवर्ग को प्रोत्साहित करते हुए शत्रुपक्ष पर शरों का निक्षेप किया था, उसी तरह बलशाली लक्ष्मणजी भी अपने वानर-सैन्यों को उत्साह देते हुए इन्द्रजित पर शर मारने लगे। उन शरों से वह राक्षस अपना क्षत्रिय-सुलभ बल पराक्रम आदि खोकर अपने हाथ फैलाकर भूतल पर बेहोश गिर पड़ा। फिर कुछ समय के बाद होश में आकर उसने अभिमन्त्रित तीन शर लक्ष्मण के प्रति प्रयोग किये। (१७)

हिरण्यमय—सोनहला; मयनप्ता—मयराक्षस का नाति इन्द्रजित; हिरण्य—हिरण्यकशिपु; नरसिंह—नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी, नरसिंह भगवान (श्लेष); बिघ्नराज—गणेश; बळिमुखङ्कु—वानरों को; त्रिपत्री—तीन शर। (१७)

बळे से ऐराबत बत मेरु पर्बत दन्तरे प्रहारि कि दन्त।
बिधातरे. पातरे रक्तधारा सत्वरे गेरुयुक्त जाह्नबी मत से।

बीर शरे[1]। ब्यथितप्रसू से लपन। बिरसरे[2]। बिहे फुक्त पुनः पुनः।
बोलन्ति ये जगते क्षत्रिय ए संगते गते न थिला होइ धन्य से। १८।

सरलार्थ—उन तीन शरों के लक्ष्मण के कपोल देश में बिद्ध होने से वहाँ से रक्तधाराएँ बहने लगीं। यह देखकर प्रतीत हुआ, मानो इन्द्रजित-रूपी ऐरावत ने अपना सारा बल लगाकर लक्ष्मणजी के कपोलरूपी मेरुपर्वत को शरोंरूपी दाँतों से चोट की, जिससे ये रक्तधाराएँ निकलकर गेरू-मिली हुई गंगानदी की धाराओं के सदृश दीख रही है। शराघात से यन्त्रणा द्वारा लक्ष्मण का वदन विरस और विकृत दिखाई दिया और मुख में घुसे रक्त को वे फूत्कार करते हुए निकालने लगे। उस समय उन्होने यह कहते हुए कि इन्द्रजित के समान वीर पहले भी नही थे, न भविष्य में भी होंगे, उसे धन्यवाद दिया। (१८)

बिघात—आघात; जाह्नबी—गंगा; बीर शरे[1]—वीर के शरों से; ब्यथितप्रसू—व्यथा उत्पन्न करनेवाला; लपन—मुख, वदन; बिरसरे[2]—विरसता से (यमक)। (१८)

बताइ बिभीषण चेताइ सेहिक्षण ताइला प्राये लोहानळे।
बहन ब्यथितकु प्रतिज्ञा कथितकु स्थित न करि चित्ते बेळे से।
बिभाबसु। बंशभूषणकु निपुण। बिभाबसु। बिभाति देबरिपु तृण।
बिध्वंस सत्यबादी बोइला सत्यबादी हेबार हार कि कारण से। १९।

सरलार्थ—जिस तरह लोग लोहे को आग में तपाकर उत्तप्त करते है, वैसे विभीषण ने लक्ष्मण को उसी क्षण पूर्व की बातें स्मरणपूर्वक उकसाते हुए कहा, "आप क्लेश पा रहे है, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को एकबार भी मन में नही ला रहे है। हे सूर्यवंशभूषण ! हे निपुण ! आप अग्नि के सदृश तेज–प्रकाशपूर्वक तृण के सदृश इन्द्रजित को जला दीजिए। सत्यवादी होते हुए भी आप सत्य को किसलिए झुठला रहे हैं ? मैं इसका कारण नहीं समझ पाता।" (१९)

बिभाबसुबंश—सूर्यवंश; बिभाबसु—अग्नि; देबरिपु—इन्द्रजित। (१९)

बाणी कुटिळ पाइ भ्रूकुटिकि कम्पाइ कूटी हेले मारणे तार।
बाबल बाणोत्तम प्रयोगे केतु तम तारतम कले तत्पर से।
बिग्रह ये। बिशुद्ध सेहि काळे हेला। बिग्रह ये। बसुधा उपरे पड़िला।
बिहरुत मरुतसुत नृत्य करु-त शबे नैर्ऋत छबि हेला से। २०।

सरलार्थ—विभीषण से यह छलोक्ति सुनकर लक्ष्मणजी इन्द्रजित का विनाश करने के लिए अपनी भौ चढ़ाते हुए कपट रचने लगे एवं तत्क्षणात् श्रेष्ठ बबूल शर का प्रयोग करके उन्होंने इन्द्रजित के राहु व केतु के सदृश दो टुकड़े

कर डाले। इन्द्रजित के दो टुकड़े होने पर युद्धभूमि विशुद्ध हो गई। यह देखकर कि इन्द्रजित का शव पृथिवी पर गिर पड़ा, पवनसुत हनुमानजी आनन्द से उस शव पर नाचने लगे। उस समय हनुमानजी शवारूढ़ नैर्ऋत देवता की तरह दिखाई दिये। (क्योंकि शव नैर्ऋत देवता का वाहन है।)। (२०)

कुटिळ—छलोचित; फूटी—कपटी, मायावी; वावल—बबूल; बिग्रह—युद्ध; मरुतसुत—हनुमान् जी। (२०)

बिघाती राम[1] राम[2] बिश्वाए अविश्राम कंक कुतुक पत्रीवशे।
बधक ये धंकरे कि शिब अन्धकरे सिंहकु शरभरे नाशे से।
बिधीरे ये। वर्णभेदरे से महीश। बिधिरे ये। बिळास तुरंगर शेष।
बेभारे ये अलोपी से बर्णगुप्तरूपी सलोपी सलोपि सदृश से। २१।

सरलार्थ—जैसे श्येनपक्षी कंकपक्षी को पकड़कर विनाश करता है, वैसे नयनाभिराम श्रीरामचन्द्र जी ने एक क्षण भी विश्राम किये विना शर-प्रयोग से कंक नामक राक्षस का विनाश किया। फिर श्रीराम जी ने शिवजी के सदृश अन्धक राक्षस के सदृश धंकासुर का वध किया। पुनश्च, जिस तरह शरभ सिंह का वध करता है, उसी तरह प्रभु ने असंख्य शरों से सिंह नाम के राक्षस का प्राण नाश किया। वास्तव मे श्रीराम जी महीश (पृथिवी के अधिपति) हैं। 'श' के स्थान मे 'ष' रखने से 'महिष' वनता है। श्रीराम जी ने महिष का-सा पराक्रम दिखाते हुए कौतुक से तुरंगम नामक रावण के पुत्र का वध किया। (भैसा घोड़े का विनाश करता है।) अनन्तर प्रभु ने अलोपी नामक राक्षस के नाम से 'अ' वर्ण का लोप कर दिया और सलोपा नामक राक्षस के नाम से 'स' वर्ण को गुप्त कर दिया। (अर्थात् दोनों राक्षसों का वध कर डाला)। (२१)

बिघाती—विनाश किया; राम[1]—मनोहर; राम[2]—रामचन्द्र (यमक); कंक—कंक पक्षी की तरह, कंक नामक रावण का पुत्र (श्लेष); पत्रीवशे—श्येन पक्षी की तरह, शर से; शरभ—मृग विशेष। (२१)

बिकर्त्तन कर्त्तन शरे नाकमार्गण नाकरे देबदत्त थोइ।
बिच्छन्नता हृदर दरशने सोदर युद्धरीतिर कथा होइ से।
बिहरिले। ब्रण शस्त्र र मन्त्रे शल्य। बिहरिले। बारिरे रक्तबान फळ।
बसिले स्वर्गे सभासम्भारे देबे रम्भा आरम्भ नृत्यबर्ग फळ से। २२।

सरलार्थ—अनन्तर रामचन्द्रजी ने स्वर्गप्रार्थी (इन्द्रपदाभिलाषी) देवदत्त को कर्त्तरी वाण से काटकर स्वर्ग में भेज दिया। (अर्थात् उसका विनाश कर दिया।) इस तरह रावण के सात पुत्रों का वध करके उन्होने

आवेगपूर्ण हृदय से लक्ष्मण को देखा और उनसे युद्ध के बारे में बातचीत की। उन्होने अपने-अपने शरीर में लगे शरों को निकालकर घावों को मन्त्रबल से आरोग्य किया और जल से शरीर में और शरों की नोकों में लगे रक्त को धो डाला। जब देवलोगो ने यह संवाद पाया कि इन्द्रजितादि का निधन हो गया है, तब उन लोगों ने स्वर्ग में सभा का आयोजन किया और रम्भादि अप्सराओं का नृत्य करा के आनन्द मनाया। (२२)

बिकर्त्तन—काटना; कर्त्तनशरे—कैंचीरूपी शर से; नाकमार्गण—स्वर्गप्रार्थी; नाकरे—स्वर्ग में। (२२)

बार्त्ताबहरे बार्त्ता पाइ राबण चिन्ता ब्यथित स्थित रणस्थाने।
बिळाप करि करि राबण चढ़ि करी बाहुड़ु कहे आन जने से।
बिरसात। बिभो देखि इन्द्रारि हति। बीर सात। बधि कंकादि बड़ यति।
बक्षस्थमणि आणि आणि किछि न मणि गला रामरमणी कति से।२३।

सरलार्थ—दूत के मुख से यह खबर पाकर कि लक्ष्मण ने इन्द्रजित का वध किया है, रावण चिन्ताकुल हृदय से युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुआ। वहाँ कुछ समय के लिए रोकर फिर वह हाथी पर बैठे लौट जा रहा था। इस समय किसी ने कहा, "हे वीरवर महाराजा ! इन्द्रजित का निधन होने से बड़े यति ने कंकादि सात वीरों को दुर्बल देखकर मार डाला।" यह सुनकर रावण ने अपने वक्षस्थल पर स्थित अमोहमणि को देख लिया, तो उसको कुछ भी चिन्ता नहीं रही और वह सीता के समीप गया। (२३)

बार्त्ताबहरे—दूत से; करी—हाथी; इन्द्रारि—इन्द्रजित; रामरमणी—सीता; कति—निकट। (२३)

बोले एहा देबर देबराजनपर परम क्षत्रिय निबारि।
बिकोषिला कृपाण सत कृपाबिहीन मारिबि जनककुमारी से।
बोधइ से। बाक्य त्रिजटा रोष तेज। बोध ईशे। बेभारे. चतुर्द्दशी आज।
बिना दोषी संहारि अयश हेबु घारि सर्प प्राय अस्त्रपराज से। २४।

सरलार्थ—सीता के समीप पहुँचकर रावण ने कहा, "अरी जनककुमारि ! तेरे देवर ने मेरे ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित का वध किया। उसका बदला लेने के लिए मैं तेरा वध करूँगा।" यह कहकर उसने निर्द्दयता से म्यान से तलवार निकाली। इस समय त्रिजटा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "हे राक्षसाधिपति ! हृदय से क्रोध दूर कीजिए। आज चतुर्द्दशी तिथि है, शिवजी को सन्तुष्ट कीजिए। इस निरपराधा रमणी का वध करने से आप सर्प की भाँति निन्दा से पछताएँगे। सुतरां इसका वध न करें।" (२४)

देवराजनपर—देवराज इन्द्रजी का शत्रु, इन्द्रजित; अस्रपराज—राक्षसराज रावण। (२४)

बिबेक ता प्रसरि तामसभाब सारि तामसी-प्रान्त ग्राए स्मरि।
बिधिरे मनासिबा रामचन्द्र नाशिबा शिबाळयरे पूजा सारि से।
बाहुकरे। बोलाइ रथ नेइ करि। बाहुकरे। बाना उड़िला शस्त्र धरि।
बहिण प्रसादकु छाड़िला प्रासादकु सादरे लक्ष शंख स्फुरि से।२५।

सरलार्थ—त्रिजटा की बात सुनकर रावण के हृदय मे विवेक का उदय हुआ। तत्क्षणात् क्रोध त्यागकर रात्रि के अन्त तक वह महादेवजी का स्मरण करने लगा। यह कामना करते हुए कि मैं श्रीराम का वध करूँगा, उसने शिवालय मे जाकर शिवजी की पूजा यथाविधि सम्पादित की। पूजा के उपरान्त उसने सारथि को रथ लाने के लिए आदेश दिया। फिर उसने अपनी भुजा में पताका बाँधकर हाथों में नाना अस्त्रशस्त्र धारण किये एवं सदाशिव जी का प्रसाद ग्रहणपूर्वक राजप्रासाद से निकलकर उस रथ मे बैठ युद्ध के लिए रवाना हुआ। यह युद्धाभियान करते समय उसके समक्ष एक लाख शंख वज रहे थे। (२५)

प्रसरि—उदित होकर; तामस—गर्व; तामसी-प्रान्त—रात्रि का अन्त; प्रसाद—नैवेद्य; प्रासाद—अट्टालिका। (२५)

बिमळ आतपत्रे चामर ध्वान्तजाते आच्छादित आदित्यकर।
बिदित करे धिकि धिकि से क्षीराब्धिकि लहरी बिहरिबा तार से।
बिमाने ये। बिलक्षित होइबे ताङ्कु। बिमाने ग्रे। बान्धिछि एमन्त हयङ्कु।
बळक्ष सर्बे सिना लक्ष लक्ष गणना अलक्ष कवि बर्णिबाकु से।२६।

सरलार्थ—युद्धयात्रा करते समय रावण के मस्तक पर शुक्ल छत्र और शुक्ल चामर शोभित हो रहे थे। उनकी ओट से सूर्य विलकुल दिखाई नही दिये। सुतरां जगत अन्धकाराच्छन्न हो गया। वे शुक्ल छत्र और चामर तेज में क्षीरसागर के जल तथा लहरों को धिक्कारते थे। रावण के रथ में जोते हुए अश्वों की गति से पक्षियों की गति भी समान नहीं हो सकती। और भी, वे सब अश्व शुक्लवर्ण के थे और संख्या में लाखों थे। उनकी वर्णना करने के लिए कवि को उपमा नहीं सूझती। (२६)

आतपत्रे—सफेद छाते; ध्वान्त—अन्धकार; क्षीराब्धि—क्षीरसागर; हयङ्कु—घोड़ों को; वळक्ष—शुक्ल, सफेद। (२६)

बाहुनि आगे गुणबन्त पञ्चद्विगुण गुणबन्त करि कमाण।
बिन्धे महीराबण आदि यथा श्राबण घन कि घनघन बाण से।

बळी क्षत । बिहन्ते कपि सैन्य नाशि । बळिक्षत । बशक जगज्जेठिराशि ।
बिजये दाशरथि बिजयी दशरथी छेदिले सुपक्षिण पेषि से । २७ ।

सरलार्थ—शौर्यगुणयुक्त दस सैन्य एवं महीरावण आदि योद्धा अपने-अपने धनुष में प्रत्यंचा चढ़ाकर वानर व भल्लुक सेनाओं पर शर छोड़ने लगे, मानो सावन के मेघ जल बरसा रहे हों। उन वीरों के शरों से घायल होकर वानर-सैन्य खेत रहे। प्रधान-प्रधान वानर सेनापति गुरुतर आघात पाकर क्लान्त-श्रान्त हो गये। यह देखकर विजयी श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तम शर-प्रयोगपूर्वक उन दस रथियों के सिर काट डाले। (२७)

गुणबन्त—शौर्यादि गुणयुक्त; पञ्चद्विगुण—दस संख्यक; जगज्जेठी—श्रेष्ठ योद्धा; सुपक्षिण—उत्तम शर। (२७)

बणा से सुमनसे[१] सुमरि सुमनसे[२] छिड़िला न छिड़िला मुण्ड ।
बाह सेहि प्रणति बाहके न जाणन्ति भूमण्डळे मस्तक रुण्ड से ।
बातकी से । बेपथु तनुकु बुहाइ । बात कि से । बिपतित ताळ कराइ ।
बोइले शूरे सूत्रे भाण्डकुराळसूत्रे दीर्घ सूत्रे हनन होइ से । २८ ।

सरलार्थ—उत्तम मन से विचार करने पर भी देवता लोग इस विषय में सन्देह में पड़े कि उन राक्षस योद्धाओं के मस्तक कटकर वास्तव में भूतल पर गिरे या नही। उसी तरह सारथि लोग भी यह नही जान पाये थे कि अश्वों के सिर कट गये या नहीं। परन्तु नीचे की ओर ताककर उन्होंने देखा कि योद्धाओं और अश्वों के सिर छिन्न होकर भूतल पर गिर इकट्ठे हुए है। रामचन्द्रजी के शरों ने राक्षसों को वातरोगियों की तरह कँपाया। और भी उन शरों ने पवनतुल्य होकर राक्षसों के मस्तकों को ताड़फलों के सदृश गिरा दिया। यह देखकर शूरों (वीरों) (या सुरों-देवताओं) ने कहा, "श्रीरामचन्द्र जी ने कौशल से जितनी शीघ्रता से राक्षसों के मस्तक काट डाले, उतनी शीघ्रता से कुम्हार लोग भी चक्रों पर से भाण्डों को सूतों से नहीं काट सकते। (२८)

सुमनसे[१]—देवता लोग; सुमनसे[२]—उत्तम मन से (यमक); बेपथु—कंपन; भाण्डकुराळसूत्रे—कुम्हार से व्यवहृत बरतन काटने के सूतों से। (२८)

बिशाक्ष साक्ष परा साक्षातरे देखिला शाखामृगपति संगते ।
बिरूपाक्ष बीर त बिरुत करि ऋत युद्धरे अस्त्रेक करन्ते से ।
बारणे से । बिसर्जि गर्जन आसिला । बारणे से । बिक्रमि कर आकर्षिला ।
बिधाने कळपाटि दशनकु उत्पाटि दैत्य परिपाटी नाशिला से । २९ ।

सरलार्थ—रावण ने युद्धक्षेत्र में साक्षी के रूप में प्रत्यक्ष देखा कि

विरूपाक्ष वीर ने एक ऊँची ललकार देते हुए सुग्रीव पर एक अस्त्र फेंका। इस समय विरूपाक्ष का हाथी सुग्रीव का विनाश करने के लिए घोर गर्जन करता हुआ उनकी ओर दौड़ आया। उसका दमन करने के लिए सुग्रीव ने उपायान्तर न देखकर उस हाथी की सूंड़ को खीच डाला एवं उसके दोनों दाँतों को उखाड़कर उसका काम तमाम कर दिया। इस तरह सुग्रीव ने दैत्य के रणकौशल को व्यर्थ कर दिया। (२९)

विशाक्ष—रावण; शाखामृगपति—वानरराज सुग्रीव; विरुत—विशेष ऊँचा; ऋत—शब्द, सत्य; वारणे—हाथों से; दशन—दांत; परिपाटी—शृंखला। (२९)

बृक्षराज बृक्षकु प्रहारि से ऋक्षकु नीरक्ष प्राय कला हत।
बढ़ाइण उन्नत चाहिँ धामे उन्मत्त भानु द्योतखद्योत मत से।
बामपदे। बिळ ता हृदये थोइला। वामपदे। वड़ ए तो भ्राता माइला।
बळा ममता मत्त बोलुँ रावण मत्तगज रथे ता ग्रोचिथिला से।३०।

सरलार्थ—अनन्तर सुग्रीव ने एक अश्वत्थवृक्ष से प्रहारपूर्वक विरूपाक्ष राक्षस का एक वे-सहारे व्यक्ति की तरह विनाश किया। यह देखकर उन्मत्त नामक राक्षस पागल की तरह दौड़ जा कर सुग्रीव के समक्ष खड़ा हो गया। परन्तु वह सुग्रीव के सामने ऐसा दीख पड़ा, मानो सूर्य-तेज मे जुगनू निष्प्रभ हो गया हो। सुग्रीव ने उसे भूमि में पछाड़ दिया और अपने बायें पाँव से उसकी छाती पर एक लात जमा दी, जिससे उसकी छाती में एक गड्ढा हो गया। यह देखकर रावण ने अपने मत्तहस्तीयुक्त रथ में रहकर अपने पुत्र मत्तवीर को आदेश दिया, "अरे पुत्र! सुग्रीव ने तुम्हारे बड़े भाई का वध किया। सुतरां तुम उसी को मारने के लिए यत्नवान् हो जाओ।" (३०)

बृक्षराज—अश्वत्थ वृक्ष; नीरक्ष—बेसहारा; द्योतखद्योत—जुगनू की ज्योति; बिळ—गर्त्त। (३०)

ब्यग्रबन्त रैबत पर्बत बत से त सुग्रीब धरुँ ओलटाइ।
बेताळ भइरब पराये भइरब विरब खड्ग फरी बहि से।
बादित्रक। बिचारि हाणिबार पाइँ। बादित्रक। बेनि पाशे बाद्य बजाइ।
बोलाबोलि सम्भाळ सम्भाळ रे न भाळ आउ आयुष तोर नाहिँ से।३१।

सरलार्थ—रावण का आदेश पाकर रैरवपर्वत के सदृश मत्तवीर अतिशीघ्र सुग्रीव के निकट दौड़ पड़ा, तो सुग्रीव ने उसे पकड़ लिया। साथ-ही-साथ राक्षस भी सुग्रीव को उलटाकर उस पर टूट पड़ा। उस समय दोनों ने वेताल-भैरव के समान भयंकर ललकार दी। मत्तवीर

अपने हाथ में तलवार पकड़कर अनजान में सुग्रीव को हनने के लिए गया। वाद्यकार इन दोनों के समीप वाद्य बजा रहे थे। वे दोनों आपस मे बोल रहे थे, "सम्हाल, सम्हाल, तेरी आयु समाप्त हुई।" (३१)

भइरब—भयंकर; बिरब—भीषण शब्द; बादित्रक—उच्चध्वनि। (३१)

बसुधारे चरण कपिराज मारिण घण्ट रणरणरे भले।
बळि आड़णी आड़ि आड़म्बरे निबाड़ि घात राक्षस गळे गळे से।
बिकर्त्तन। बिभब बाळिसम रुचि। बिकर्त्तन। बिपक्षरे रावण पाञ्चि।
बतिश पदे छान्द कोबिदङ्क सम्पद उपइन्द्र भञ्ज बिरचि ये। ३२।

सरलार्थ—सुग्रीव ने भूमि पर खड़े होकर वीरझपट से अपनी कमर में स्थित घण्टी हिला दी। उस घण्टी की ध्वनि सुनकर उक्त असुर के मन में शंका हुई। अनन्तर सुग्रीव ने मत्तवीर के प्रति उसके आडम्बर से बढ़कर उत्कृष्ट शर का प्रयोग किया, तो वह शर राक्षस के गले में चुभ गया। यह देखकर रावण ने अपने मन में विचार किया, "शत्रुओं को काटने में सुग्रीव भी बालि के समान पराक्रमी है।" यह सोचता हुआ रावण खुद सुग्रीव से लड़ने को उद्यत हुआ।

पण्डितों के संपद-सदृश उपेन्द्रभज ने बत्तीस पदों में इस छान्द की रचना की। (३२)

बसुधारे—पृथिवी पर; बिकर्त्तन—सूर्य; बिभब—जात, उत्पन्न; कोबिदङ्क—पण्डितों का। (३२)

॥ इति षट्चत्वारिंश छान्द ॥

सप्तचत्वारिंश छान्द

राग—पञ्चम वराड़ी (गोपीजीवन चउतिशा वाणी में)

बिळास अच्छरे सेहि चतुर पालिरे शोहि कटासार साररे मारण ।
बितिपात ग्रोग पुन दशप्रमुखरे दान काठि पतनहिँ अनुक्षण ये ।
बिशारद । बेढ़ि लोके मार मार स्वने ।
बळि नाहिँ बड़ रंगे खेळ सभंगे अभंगे दत्तच्युताक्षरे अति घने से ।१।

सरलार्थ—युद्धभूमि में अच्छ (भालू) क्रीडा कर रहे है। 'अच्छ' इस पद से 'च्छ' च्युत होकर, 'क्ष' अक्षर दत्त होने पर 'अक्ष' पद बना, जिसका अर्थ है 'पासो का खेल'। सुतरां राम और रावण का युद्ध पासों के खेल के समान हुआ। पासों के खेल के पक्ष में—पासों के खेल में चारों ओर पालि (बिसात) फैली रहती है। 'कट' शब्द से 'क' अक्षर च्युत होकर 'प' अक्षर दिया जाय, तो 'पट' (दावँ) शब्द बनता है। किसी खिलाड़ी का पासा पड़ने पर सार (गोटी) को सार से मारते है। 'बिति' नामक दावँ पड़ता है जो युगबन्धन कराता है, दस आदि संख्या-सूचक दावँ पड़ते है एवं खिलाड़ी लोग चारों ओर बैठकर 'मारो', 'मारो' शब्द उच्चारण करते है। इस खेल से बढ़कर और कोई भी रंग (कौतुक) नही।

युद्ध के पक्ष में—'चतुर' इस शब्द के सहित 'ङ्ग' अक्षर दत्त होने पर 'चतुरङ्ग' शब्द बना। अर्थात् युद्धभूमि चतुरंग सैन्यों से शोभित हो रही है। वे सैन्य मुख्यतः वानरभल्लुक और राक्षस—इस प्रकार दो पालियों (श्रेणियों) में विभक्त है। वानर-भल्लुक की चतुरंगिणी सेना राक्षसपक्ष के हाथियों के गण्डस्थलों को लक्ष्य करके शराघात कर रहे है। (अथवा बड़े-बड़े वीरों का निधन कर रहे हैं।) 'बितिपात' इस शब्द से 'ति' अक्षर च्युत होकर 'नि' अक्षर दत्त होने से 'बिनिपात' शब्द बना। अर्थात् रावण ने असंख्य भल्लुक तथा वानर-सैन्यों का विनाश किया। पासे की डंडियों के सदृश असंख्य शर गिरे। योद्धा लोग 'मारो', 'मारो' शब्द उच्चारण करते थे। इस प्रकार के युद्ध से बढ़कर और कोई रंग (कौतुक या तमाशा) नहीं है।

हे पण्डितो ! यह पद इस प्रकार दत्तच्युताक्षर, सभंग और अभंग श्लेषालंकारों से मनोहर हुआ है। इसका जरा कौतुकपूर्वक विवेचन कीजिए। (१)

दत्तच्युताक्षर—यह एक शब्दालंकार (या रचनाभंगिविशेष) है। इसमें एक चरण या पाद में आये हुए मौलिक शब्दों से एक प्रकार का अर्थ समझा जाता है, तो उन शब्दों में से कुछ के एक-एक अक्षर को हटाकर अन्यान्य एक-एक अक्षर लगा देने से दूसरा अर्थ समझा जाता है।

बिळास—क्रीडा, चतुर पालिरे—चारों ओर फैली बिसात, चतुरंगिणी सेना; कट—हाथी का गण्डस्थल; बितिपात—'बिति' नामक दाँव; बिनिपात—विनाश; दश प्रमुखरे दान—दस आदि बिंदियों का दाँव, दसमुखोवाले रावण के द्वारा छेदन या नाश। (१)

बिद्य सिन्धु परम्परा लबण ये इक्षु सुरा घृत दधि दुग्ध पय सात।
बळिष्ठ निधिरे उदे अधिक रक्त समुद्रे तहिँ एथि मध्ये द्वीप स्थित ये।
बिशारद। बिदित राम लक्ष्मण तथा।
बिलक्षित मार्ग तीरे निबिड़ होइ तिमिरे तरणि बुड़िबा नुहे बृथा से।२।

सरलार्थ—पूर्वकाल से परम्पराक्रम से लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जल—ये सात समुद्र थे। अब वीरश्रेष्ठ रावण के द्वारा और एक समुद्र—रक्तसमुद्र का उद्‌भव हुआ। उन समुद्रों में जम्बु, प्लक्ष आदि अनेक द्वीप थे। उसी तरह इस रक्तसमुद्र मे बहुसंख्यक द्विप (हाथी) हैं। हे पण्डितो! इसे सादर सुनिएगा। वे सब समुद्र राम-लक्ष्मण अर्थात् रमणीय चन्द्र के द्वारा सुशोभित है। उसी तरह यह रक्तसमुद्र भी राम-लक्ष्मण के द्वारा सुशोभित है। उन सब समुद्रों मे मार्ग नहीं दिखाई पड़ता। उसी प्रकार इस युद्धभूमि में शरों की निविड़ता के कारण मार्ग दिखाई नही पड़ता। समुद्र तिमियो (मत्स्यों) से पूर्ण रहते है। उसी तरह यह युद्धभूमि शरों की गति से निविड़ तिमिर (अन्धकार) से आच्छन्न हुई है। समुद्रों में तरणी (नौका) आदि जलयान डूब जाते है। यहाँ शरों की निविड़ता के कारण तरणी (सूर्य) का अस्त हो जाना वृथा नही। (अर्थात् शरों की निविड़ता के कारण सूर्य दिखाई नही पड़ते।)। (२)

सिन्धु—समुद्र; द्वीप—जलमध्यस्थ स्थलभाग, (द्विप) हाथी; बिशारद—चतुर, प्रवीण; तिमिरे—मत्स्यों से, अन्धकार से; तरणि—सूर्य; तरणी—नौका (श्लेष)। (२)

बेष्टने घोटिले यूथपति सेना दशरथसुत घनाघन शोभा धरे।
बरषि घन प्रस्तर धरणी कले प्रस्तार बज्र शरपात निरन्तरे ये।
बिशबाहा। बहि स्तम्भीभूतकु शरीरे।
बिहीन-पक्ष होइला अचळपदबी नेला शंका जात ता चूळ चूर्णरे से।३।

सरलार्थ—अपने सेनापतियों तथा सैन्यों सहित श्रीराम-लक्ष्मण ने वर्षुक मेघों की शोभा धारण की। वर्षुक मेघ चारों दिशाओं में उमड़कर जलधाराओं के साथ ओले बरसाते है। उसी तरह श्रीराम-लक्ष्मण और सैन्य रावण को चारों ओर से घेरकर अस्त्रो, शस्त्रों और पत्थरों की बौछार

करने लगे। वर्षुक मेघों से वज्रपात के सदृश राम-लक्ष्मण के धनुषों से वज्रसमान सखत बाण लगातार गिरने लगे। घोर वृष्टिपात से लोग स्तम्भीभूत हो जाते है। उसी तरह राम-लक्ष्मण और उनके सैन्यों की भयंकर बाणवृष्टि से रावण स्तम्भीभूत हो गया। डैनों के सदृश राक्षस-सैन्यों के निधन से रावण ने पक्षशून्य होकर अचल (पर्वत) की पदवी ली। अर्थात् रावण स्थिर (भौचक्का) हो गया। (पूर्वकाल मे पर्वतों के पंख थे। वे सब उड़ा करते थे और देशों पर गिर, उन्हें वहुत नुकसान पहुँचाते थे। इसलिए इन्द्र ने अपने वज्रास्त्र से उनके पख काट डाले और पर्वत अचल (स्थिर) हो गये। आज पंखों के सदृश सैन्यों के निधन से रावण भी अचल हो गया।)

उस समय रावण के मन मे यह शका उत्पन्न हुई कि जैसे वज्रपात से पर्वतों के चूल (चोटियाँ) चूर्ण हो गये थे, वैसे श्रीराम-लक्ष्मण के शराघात से मेरा मस्तक भी नष्ट हो जायगा। (३)

यूथपति—सेनापति; घनाघन शोभा—वर्षुक मेघों की शोभा; घन—मेघ; अचळ पदवी—पर्वत उपाधि। (३)

बिभीषण ग्रे प्रबेश कर्म करिबारे शेष इष्टिकामे से मान्त्रिक द्विज।
बनौकाबर लक्ष्मण शाखाकृत घोषे गुण श्रुतिरसे दीप्त अग्नितेज से।
बिराजित। बाण शरासन श्रुब श्रुच।
बिग्रहमंडळ कुण्ड स्यन्दन समिध रुण्ड दशानन पशुदशा पांच ग्रे। ४।

सरलार्थ—फिर यह युद्धकर्म यागकर्म के सदृश हुआ। श्रीराम जी के रावणवध-स्वरूप मनोरथ की सिद्धिकामना में कर्म-संपादन के लिए एक यांत्रिक ब्राह्मण के स्वरूप विभीषणजी युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए। यज्ञस्थल मे श्रेष्ठ मुनि विद्यमान रहते है और वे श्रुति (वेद) की शाखाओं को रटते हुए वेदमन्त्र उच्चारणपूर्वक अग्नितेज को दीप्त करते है। उसी तरह इस युद्धक्षेत्र में तपिवर लक्ष्मण ने विभीषण की शाखा या सहायक-स्वरूप होकर धनुष की प्रत्यंचा को श्रुति (कान) तक खींचकर युद्धानल को प्रदीप्त किया। यज्ञ में स्रुव और स्रुच् का व्यवहार किया जाता है। उसी तरह यहाँ धनुषों और शरो का व्यवहार किया जा रहा है। फिर युद्धभूमि होमकुण्ड और रथसमूह समिध तथा होमकाष्ठ के रूप में विद्यमान हैं। यज्ञ के अन्त में प्रोक्षणपूर्वक पशु का बलिदान किया जाता है। इस युद्ध-यज्ञ को देखकर रावण ने आशंका की कि मैं निश्चय ही इसमें यज्ञपशु के सदृश विनाश प्राप्त होऊँगा। (४)

इष्टिकामे—मनोरथ-सिद्धि के लिए कर्म-साधना में, यज्ञकार्य; द्विज—ब्राह्मण; बनौकाबर—तपस्विश्रेष्ठ; बिग्रहमण्डळ—रणक्षेत्र; स्यन्दन—रथ। (४)

बिभीषण दूरदर्शी अद्‌भुत खग गरासि सजीबे पळ खण्डन ग्रहुँ ।
बिभेदित कउशिक मन्त्रित पत्री अनेक महाआकुळित बिशबाहु से ।
बिचारिला । बंशखनित्र घन समूळे ।
बल्ली बेनि पुण ताड़ि एबे महातरु लोड़ि दाढ़ भांगिबि मुं शक्तिशिळे ग्रे।५।

सरलार्थ—फिर विभीषण गीध के सदृश एक अद्‌भुत पक्षी बने। अद्‌भुत कैसे ? गीध निर्जीव प्राणी का मांसखण्ड खाता है। परन्तु यहाँ विभीषण के शरसमूह ने अत्यन्त अद्‌भुत रीति से सजीव व्यक्तियों के मांसखंडों का ग्रास किया। लक्ष्मणजी ने विश्वामित्रप्रदत्त मन्त्र से अभिमन्त्रित अनगिनत शर रावण के शरीर में बिद्ध किये। शराघात से अत्यन्त व्याकुल होकर रावण ने अपने मन में विचार किया, "विभीषण मेरे वंश का जड़ से विनाश करने के लिए खंती के स्वरूप हुआ है। पहले उसने दो लताओं के सदृश सुकुमार भ्राता कुम्भकर्ण और पुत्र इन्द्रजित का विनाश कराके अब महातरु सदृश मेरा विनाश कराना चाहता है। खंता पत्थर से टक्कर खाये तो उसकी धार कुन्द (भोथरा) हो जाती है। वैसे ही विभीषणरूपी खंता पत्थर के सदृश मेरी शक्ति से टक्कर खाये, तो उसका घमंड टूट जाएगा।" (५)

दूरदर्शी—दूर तक देखनेवाला गीध; खग—पक्षी; पळ—मांस; कउशिक—विश्वामित्र; पत्री—शर; बंशखनित्र—वंश का खंता; बल्ली—लता; शक्तिशिळे—शक्तिरूपी पत्थरों से। (५)

बक्त्रदश कथा किस दिगपाले कि प्रकाश एकत्रे आश्रित सुनासीर ।
ब्रह्मास्त्र कृशानुभाब काळबिभूति प्रभब शबदे शर अत्यन्त घोर ग्रे ।
बारुणीरे । बश स्पर्शनत पुण्यजन ।
बीरईश पितामह पुरुष त नागव्यूह मध्यरे प्रधान होइ धन्य से । ६ ।

सरलार्थ—रावण की उस समय की वीरमूर्ति देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे है, मानो दस दिक्‌पाल इकट्ठे होकर रावण के रूप में प्रकाशित हुए हों। क्योंकि उत्तम सैनिकों से परिवेष्टित होने के कारण उसे देखकर सुनासीर (इन्द्र) की प्रतीति हो रही है। ब्रह्मास्त्र फेंकते वक्त वह अग्नि के रूप में प्रतीत हो रहा है और उसकी कृष्णवर्ण-कान्ति को देखकर वह यम के रूप में प्रतीत हो रहा है। पुनश्च, शर मारते वक्त अत्यन्त भयंकर नाद प्रकाश करते हुए सबको डराने से वह शवारोही नैर्ऋत देव के समान

आश्रित हैं। चूंकि वह वीरों का ईश (प्रभु) है, इसलिए ईशान (महादेव) ने उसमें आश्रय ग्रहण किया है। रावण ब्रह्माजी के वंश में पैदा हुआ है। 'नागव्यूह' (हस्तिसमूह) से युद्ध करके उसने उन्हें हरा दिया है और धन्यवाद प्राप्त किया है। सुतरां ब्रह्मा और नागव्यूह-प्रधान (सर्पराज अनन्त) उसके आश्रय मे है। इस तरह जो रावण दस दिक्पालों का आश्रयस्थल है, उसका वीरता अनुपम है। (६)

वक्त्रदश—दस मुखोंवाला, रावण; सुनासीर—सेना-परिवेष्टित, इन्द्र (श्लेष); कृशानु—अग्नि; काळविभूति—कृष्णवर्ण-कान्ति, यम; बारुणी—शराब, वरुण देवता (श्लेष); पितामह—ब्रह्मा। (६)

बुलाइ एहि समय एकघनि घेनि काय बढ़ाइ बिन्ध्यशिखरिशिखे।
बह्नि जळिला परिरे बोले बिभीषणे मारे शिशु लक्ष्मण न रह मुखे रे।
बत्सळ से। बेभारे दासर हेले आग।
बिळे कर्णनासिकार काकोदर परकार शरपूर्ण कले बेगबेग य़े। ७।

सरलार्थ—रावण ने इस समय अपने शरीर को बिन्ध्यपर्वत के शृंग सदृश बढ़ा दिया एवं अपने हाथ में प्रज्वलित अग्निशिखा के सदृश एकघ्नि नामक शक्ति धारणपूर्वक कहा, "अरे बालक लक्ष्मण! तू अब हट जा; मैं इसी अस्त्र से पहले विभीषण का विनाश करूँ।" दासवत्सल लक्ष्मणजी रावण के मुख से यह सुनकर विभीषण के समक्ष खड़े हो गये एवं सर्पसदृश बाणों का प्रयोग करके उनसे गड्ढों के सदृश रावण की नाक तथा कानों को शीघ्रता से भर दिया। (७)

एकघनि—एकघ्नि नामक अस्त्र; बिन्ध्यशिखरिशिखे—विन्ध्यपर्वत की चोटी पर; काकोदर—सर्प। (७)

बैराग्य होइला घाती आगपछे गतागति शक्ति ज्योतिष्मन्ते आसे घोटि।
बनपोड़ि हुताशने बिनाशने य़था जने बृक्ष तथा सुग्रीबादि पिटि य़े।
बारिबाह। बाणे राम जळ बरषन्ति।
बिन्धिले लक्ष्मण य़ेते भानु उदिते खद्योते झलकहीन से सेहिमति य़े।८।

सरलार्थ—लक्ष्मणजी के शराघात से रावण ने मर्मान्तिक क्लेश का अनुभव किया। विरक्त होकर आगे-पीछे कूदते हुए उसने एक शक्ति का प्रयोग किया। अग्नितुल्य तेज प्रकाश करती हुई उस शक्ति ने आ लक्ष्मण को घेर लिया। लोग दावाग्नि को डालियों से पीटकर और उस पर पानी सींचकर बुझाने की कोशिश करते है। उसी तरह उस शक्ति के प्रचण्ड तेज को सुग्रीवादि शूरवीर वृक्षो से पीटने लगे और श्रीराम जी मेघास्त्र-प्रयोगपूर्वक 'उस पर जल की सिंचाई करने लगे। फिर भी, उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ

हुए। फिर लक्ष्मण ने जितने अस्त्रों का प्रयोग किया, वे सब उस शक्ति के सामने निष्प्रभ हो गये, मानो सूरज के सामने जुगनू हों। (८)

बैराग्य—विरक्ति; ज्योतिष्मन्त—तेजोवन्त; हुताशने—अग्नि से; बारिबाह—मेघ; खद्योते—जुगनुओं का समूह; झलकहीन—निस्तेज (उत्प्रेक्षा)। (८)

बेळुँ बेळ प्रभाकर शक्ति कि पक्षिनिकर निद्रित प्राय मुद्रित आखि।
बळिमुखसारे तहिँ चरमे बदन थोइ दिबान्धखगरे हेले लक्षि से।
बिचेतन। बळी लक्ष्मण हेले पतन।
बज्रे गिरि भेदमते बासब पृथ्वीसहिते फुटि पाताळकु देला पुन से। ९।

सरलार्थ—वह शक्ति शनैः शनैः अपना तेज बढ़ाती हुई आई, तो राम के सैनिकों ने अपनी-अपनी आँखे मूंद लीं, मानो सोये हुए पक्षी हों। कपिराज सुग्रीव उस तेज की ओर ताक नही सके। इसलिए उन्होंने पीछे की ओर मुंह फिरा दिया तो उल्लू की तरह दिखाई दिये। बलवान् लक्ष्मणजी उस शक्ति के आघात से बेहोश होकर गिर पड़े। जैसे इन्द्र के वज्र ने पर्वतों को बेध डाला था, वैसे वह शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय में फूटकर पाताल में चुभ गई। (९)

बळिमुखसार—वानरश्रेष्ठ, सुग्रीवजी; दिबान्धखग—उल्लू; बासब—इन्द्र; (उपमा)। (९)

बेनि बळ लोकालोक तुळ पाशे निर्मळक पाशे होइ अन्धकार युक्त।
बिबेक दशकन्धर अनन्तकु अन्तकर कालि अच्युत करिबि च्युत ये।
बाहुड़ाइ। बिमानकु राघब सलीळे।
बिक्रमिले अबधिरे जीबग्रासे ततपरे रहे देखि गड़द्वारस्थळे ये। १०।

सरलार्थ—इस समय रामचन्द्र और रावण, इन दोनों के सैन्यबल लोकालोक पर्वत की तरह दिखाई दिये। लोकालोक पर्वत के एक पार्श्व में आलोक और दूसरे पार्श्व में अन्धकार छाया रहता है। उसी प्रकार लक्ष्मणजी के वक्ष में शक्तिभेद होने से रावण के सैन्यों में विजयालोक और श्रीराम जी के सैन्यों में शोकान्धकार छा गया। यह देखकर रावण ने सोचा, "आज लक्ष्मणरूपी शेषदेव का निधन किया और कल श्रीरामरूपी विष्णु का विनाश करूँगा।" इसके अनन्तर जब वह रथ वापस ले चला, श्रीराघव (श्रीराम जी) युद्धक्षेत्र में कौतुक से विहार करने लगे। राघव-मत्स्य समुद्रस्थ जीवों को ग्रसता है। उसी तरह राघवेन्द्र रावण के राक्षस सैन्यों का विनाश करने लगे। परन्तु रावण का वध नही कर सके। लंकागढ़ के द्वारदेश को देखकर प्रभु वहीं ठहरे। (अर्थात् युद्ध बन्द करके लौट आये।)। (१०)

करके हम लोग अकंटक बन जावें, वे लोग इकट्ठे होकर प्रतिज्ञाबद्ध हुए एवं अपने-अपने हाथों में बड़े-बड़े शाल व ताड़ के पेड़ पकड़कर क्रोध से राक्षसों पर बरसाने लगे। (१८)

बिशाळ—प्रकाण्ड; शाळ—वृक्षविशेष; ताळजाळ—ताड़-वृक्षों का समूह; टेक—उत्कृष्ट; कण्टक—शत्रु; जीवधव—यम; कक्षाबन्त—प्रतिज्ञाबद्ध। (१८)

वृक्षबन्ध—प्राचीन (रीति) काल में कवियों के द्वारा व्यवहृत चित्रकाव्य-रीति विशेष। इस पद्धति के अनुसार कवि-रचित पदों के अक्षरों का धारावाहिक रूप से वृक्षाकार में सन्निवेश किया जाता है।
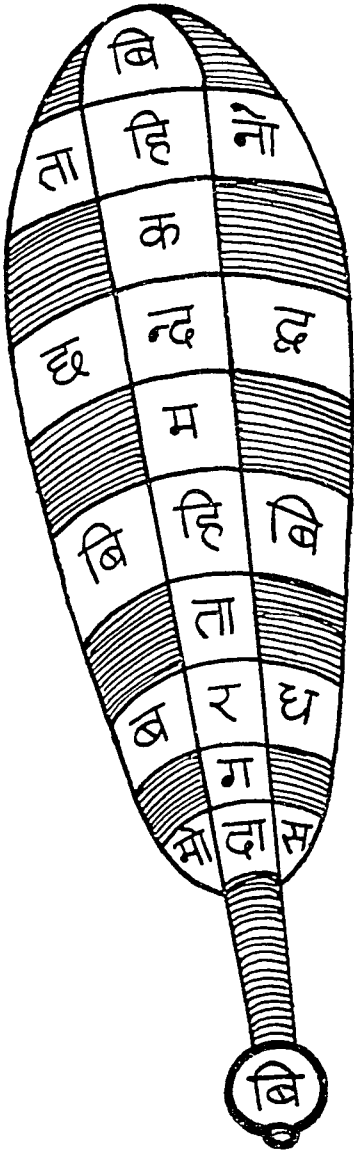
गदाबन्ध

गदाबन्ध—बिदा सदा मोदा गदा गरधर बर तार ताहि बिहि।
बिहि मही मन्द द्वन्द्वछन्द कन्द कहि नोहि ताहि बिहि।१९।

सरलार्थ—पृथिवी पर अमंगल व दुःखदानकारी राक्षसों ने श्रेष्ठ सर्पों के सदृश तेजोवन्त गदाओं को धारण करके उनसे वानर-सैन्यों पर सानन्द तथा सोत्साह प्रहार किया, तो वानर लोग 'त्राहि', 'त्राहि' (हे श्री रामजी, "हम लोगों की रक्षा कीजिए; हम लोगों की रक्षा कीजिए") पुकारते हुए इधर-उधर भागने लगे। (१९)

बिदा—विदाय, प्रहार; मोदा—आमोद; गरधर—विषधर, सर्प; बर—श्रेष्ठ; द्वन्द्वछन्द—कपट युद्ध; कन्द—दुःख। (१९)

गदाबन्ध—प्राचीन चित्रकाव्य-रीति विशेष। इस पद्धति के अनुसार कवि-रचित पदों के अक्षरों का धारावाहिक रूप से गदाकार में सन्निवेश किया जाता है।

शरबन्ध—बीर शरभर खरखण्डि खर खरकर तार¹ तार²।
बार बार बाजिबार तर तर हटि हटि हर¹ हर²। २०।

सरलार्थ—अनन्तर भल्लुक व वानर-सैन्यो ने आर्त्त स्वर से पुकारा, "हे खरराक्षस-विनाशकारी रामचन्द्र! अब राक्षसों के सूर्यकिरणों के सदृश दीप्तिमन्त और सुतीक्ष्ण वाणों के आघात से हम लोगों की रक्षा कीजिए। वही शरसमूह बार-बार शीघ्र-शीघ्र हम लोगों के शरीरो मे वज रहा है और संहारमूर्त्ति या कालरुद्र की तरह हम लोगों को पीछे हटाकर विनाश कर रहा है। हम लोगों के कष्ट को दूर कीजिए।" (२०)

शरभर—शरसमूह; खरखण्डि—खरहन्ता श्री रामजी; खर—तीक्ष्ण; खरकर—सूर्य; तार¹—तेजीयान्; तार²—रक्षा कीजिए; हर¹—रुद्र; हर²—हरण कीजिए, दूर कीजिए (यमक)। (२०)
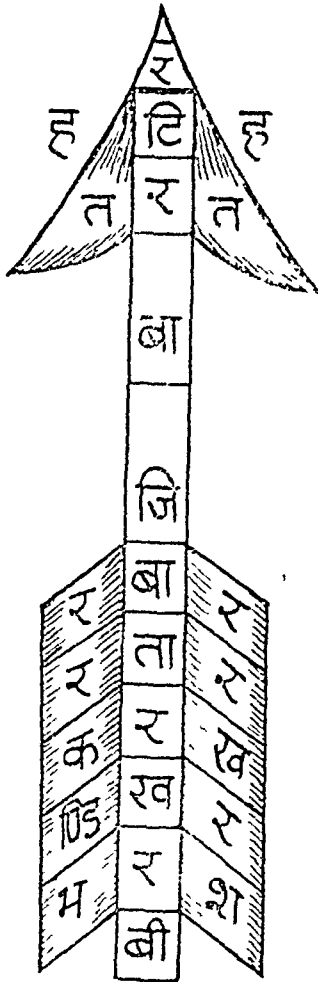
शरबन्ध—प्राचीन चित्रकाव्य की एक रीति। इस पद्धति के अनुसार कवि-रचित पदों के अक्षरों का धारावाहिक रूप से शराकार में सन्निवेश किया जाता है।

शरबन्ध
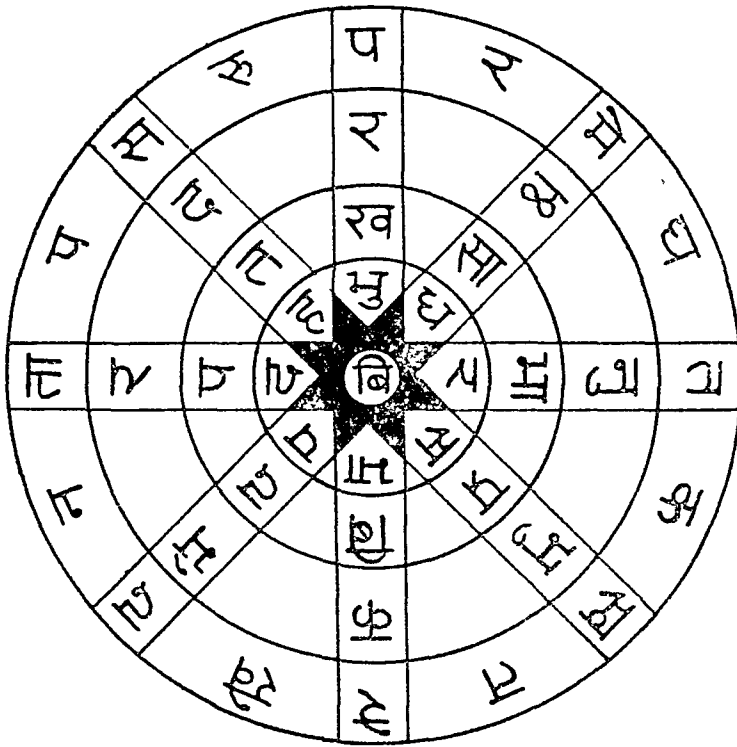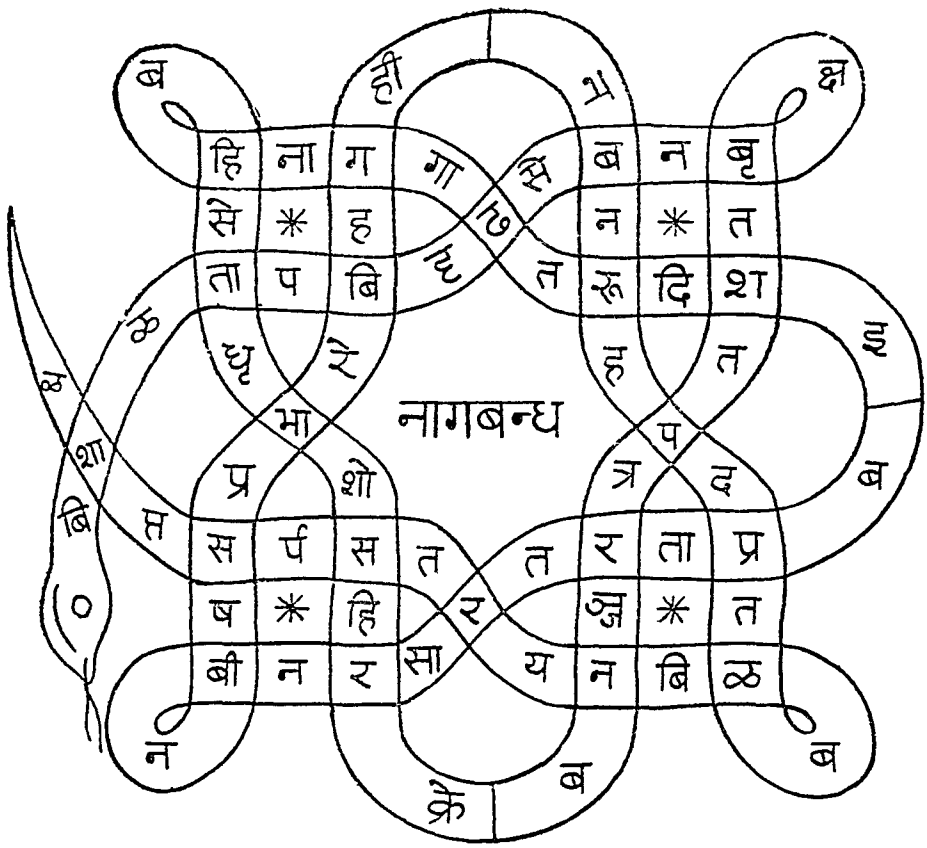
नागबन्ध

चक्रबन्ध

☞ प्रस्तुत चित्र 'नागबन्ध' और 'चक्रबन्ध' का विषय, अष्टाविंश छान्द पृष्ठ ४४५ पंक्ति ३०-३३, एवं पृष्ठ ४४६ पंक्ति ३७-४० पर क्रमशः देखिये ।

बिघाति दैत्यराशिरे हाइथिले शउरि प्रमुख ग्रहे ।
बड़ दानबळे प्रधानंक मेळे घुंचिबा गतिकि बिहे । २१ ।

सरलार्थ—असुर लोगों से शउरि आदि जिन वानर-सेनापतियों ने विशेष आघात पाया था, वे सब 'शउरि' (शनि महाग्रह) के सदृश हुए । महाग्रह बड़े-बड़े दानों के बल से हट जाने की गति का विधान करते है । उसी तरह यहाँ शउरि आदि प्रधान-प्रधान वानर-सेनापति राक्षसों के अतिशय दान (शरों से छेदन) के बल से रणभूमि से हट भागे । (२१)

शउरि—वानर वीर, शनि महाग्रह (श्लेष); दान—देना, छेदन (श्लेष) । (२१)

बिक्रमि नोहिला प्रमथमथने महापाख्श पारुशे ।
बसुधा सुद्धा पूरित होइगला यमघण्ट बीर घोषे । २२ ।

सरलार्थ—इस समय प्रमथ नामक राक्षस ने आकर महापार्श्व के सहित युद्ध किया । यह देखकर वानर लोग दौड़े । उसके कपट से कोई वहाँ प्रवेश नही कर पाये । इसके बाद यमघण्ट नामक राक्षस ने उपस्थित होते ही ऐसी एक वीरोचित ललकार दी कि उससे सारी पृथिवी काँप उठी । (२२)

बसुधा—पृथिवी; वीरघोषे—वीरोचित ललकार । (२२)

बिकुक्षिबंशी देखि भाषि अद्भुत सम्भूत हेला त एहि ।
बुड़णा कुशअग्र कुशबिन्दुरे सिन्धुरे ग्राहाकु नोहि । २३ ।

सरलार्थ—विकुक्षिवंशी श्री रामजी ने यह युद्ध देखकर कहा, "यह युद्ध अद्भुत ही है । क्योंकि जो सैन्य अथाह समुद्र के जल में नही डूबे थे, वे अब कुशाग्र-परिमित जलबिन्दु में डूब रहे है । (अर्थात् जिन भालुओं और वानरों को तीन भुवनों मे कोई भी नहीं जीत सकते, तुच्छ राक्षस लोग अब उनका विनाश-साधन कर रहे है । यह क्या आश्चर्य का विषय नही है ?)" (२३)

बिकुक्षिबंशी—श्री रामचन्द्रजी; बुड़णा—डूबना; सिन्धुरे—समुद्र में । (२३)

बिभीषण शुणि भाषण मर्कट-जाल[२]रे मर्कटजाळ[२] ।
बन्धन करि निधन बिचारिबा रहिब ए केतेकाळ ? । २४ ।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी को इस तरह खिन्न देखकर विभीषण ने कहा, "प्रभो ! हमारे वानर-सैन्यों को मायाजाल में आबद्ध कर विनाश करने का जो विचार रावण ने किया है, वह विचार कब तक टिक सकता है ? (अर्थात् रावण का वह विचार बहुक्षणस्थायी नही, फलतः राक्षस लोग स्वेच्छानुसार भल्लुक-वानरो से परास्त होकर भाग जाएँगे ।)" (२४)

मर्कटजाल[1]—मकड़े का जाल, मायाजाल; मर्कटजाळ[2]—वानरसमूह (यमक)। (२४)

बिपक्ष मारुँ मारुति घेनि कपि बामे से साहा मोहरि।
बिजयी लक्ष्मण अंगद स्कन्धेण आगे आगे बिजे करि। २५।

सरलार्थ—विभीषण की बात सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने कहा, "हे विभीषण! कपि-सैन्यों के सहित हनुमान् विपक्षी राक्षसों का विनाश करने में दक्ष है। विशेषत: शत्रु पर आक्रमण करते समय वे मेरे प्रधान सहायक है।" श्री रामचन्द्रजी की ऐसी उत्साह-वाणी सुनकर लक्ष्मणजी अंगद के कन्धों पर बैठकर सैन्यों के अगुए बनकर युद्ध को रवाना हुए। (२५)

मारुँ—मारने में, विनाश करने में; मारुति—हनुमानजी; बामे—शत्रु-आक्रमण में। (२५)

बिछन्द छन्दे एहि बचकबचे स्वनामे आपणा देही।
बज्रपंजर कबच स्वगात्रे प्रथमे ओँकार देइ। २६।

सरलार्थ—भयंकर युद्ध देखकर श्री रामजी ने अपने नाम-रूपी वज्र-पंजर कवच के आद्य में ओंकार का विन्यास किया और विषम ऋषिछन्द से इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए उससे अपने शरीर को दृढ़ किया। (२६)

बिच्छन्द—विषम, विभिन्न छन्दों से आबद्ध; कबचबचे—कवच (मन्त्र) पाठ करके। (२६)

बिश्वामित्र ऋषि अनुष्टुपछन्द श्रीरामचन्द्र देबता।
बीज राम शक्ति सीता तदन्तरे सत्वरे करि बिदिता। २७।

सरलार्थ—उस कवच के ऋषि है विश्वामित्रजी, छन्द अनुष्टुप्, देवता श्री रामचन्द्रजी, फिर बीज श्री रामजी और उसकी शक्ति है सीताजी। तदनन्तर शीघ्र ही उन्होंने यह मन्त्र पाठ किया। (२७)

उक्त बज्रपञ्जर कवच का ऋषिछन्द :—

ओं वज्रकवचमन्त्रस्य, विश्वामित्र ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीरामचन्द्रो देवता, श्रीरामचन्द्रो वीजं, सीता शक्तिः शत्रुपराजयार्थे विनियोगः।

ध्यायेन्नीलोत्पलं श्यामं रामं राजीवलोचनं।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डनम्॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकं।
स्वलीलया जगद्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥

रामरक्षां पठेत् प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदां ।
शिरो मे राघव पातु भालं दशरथात्मजः ।।
कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुति ।
घ्राणं पातु मखत्राणो मुखं सौमित्रिवत्सलः ।।
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ।।
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
स्तनद्वयं सर्वदा मे पातु गीर्वाणवन्दितः ।।
पार्श्वं रघुपतिः पातु कुक्षिमिक्ष्वाकुरक्षकः ।
पश्चात् पातु च काकुत्स्थोऽहल्यादुःखविनाशकृत् ।।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रय ।
सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।।
ऊरू रघूत्तमः पातु गुह्यं पातु गुहान्तकः ।
जानुनी सेतुकृत् पातु जंघे दशमुखान्तकः ।।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।
भूर्जपत्रे त्विमां विद्यां गन्धचन्दनचर्चितां ।।
कृत्वा वैधारयेद्यस्तु सोऽभीष्टफलमाप्नुयात् ।। इति ।।

बिहि ध्यान ध्याये नीळोत्पळश्याम राम राजीवलोचन ।
वैदेही - लक्ष्मण - संगरंगकारी जटामुकुटमंडन । २८ ।
बाणकमाणतूणअसि - पाणिक पापघ्नी सर्बकामदा ।
बिन्यस्त हस्त रख शिर राघब भाल दाशरथि सदा । २९ ।
बिमळनयन कौशल्येय बिश्वामित्रप्रिय रख श्रुति ।
बिपुळ–मखरक्षण घ्राण त्राण मुख सौमित्रिसुमति । ३० ।
बिद्यानिधि जिह्वा भरतबन्दित कण्ठ दिव्यायुध स्कन्ध ।
बाहु ईश्वधनुभज सीताईश कर रक्षा करु सिद्ध । ३१ ।
बक्ष कबन्धारि हृद जामदग्न्यजित गीर्वाणपूजित ।
बेनि स्तन रघुपति पार्श्व कुक्षि इक्ष्वाकुबंशरक्षित । ३२ ।
बादी खरध्वंसी मध्य जाम्बबादिश्रय ये नाभि उद्धरु ।
बिद्य मित्र-पुत्र-मित्र कटि हनुमन्त प्रभु सक्थि तारु । ३३ ।
बिशाळजानु सेतुकृत दशास्यजघान जंघा प्रतारु ।
बिभीषणश्रीद पद रखु राम सर्बबपु रक्षा करु । ३४ ।
बिग्रह एमन्त कबचिब येहि यन्त्रे भुर्झपत्रे लिहि ।
बिहिले शत्रु अस्त्रत्रास बिनाश यशः परकाश तहिँ । ३५ ।

सरलार्थ—उन्होंने कवच के आद्य में नीलोत्पल-श्यामशरीर,

कमललोचन, लक्ष्मण सीता-सहित क्रीड़ा करनेवाले और जटामुकुट-मण्डित श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान किया। अनन्तर यह कहते हुए कि— "हे धनुशर-तूणीरखड्गधारी, पापनाशक, सकलकाम-दायक रामचन्द्रजी ! मेरे सिर की रक्षा कीजिए", उन्होंने अपने हस्तों व पदो में न्यास किया। फिर श्री रामजी इस तरह उक्त मन्त्रकवच उच्चारण करते चले। "हे दाशरथि! आप सदा मेरे भालदेश की रक्षा करें। हे कौशल्या-नन्दन श्रीराम ! मेरे विमल नेत्रद्वय की रक्षा करे। हे विश्वामित्रजी के प्रिय शिष्य रामचन्द्र ! मेरे दोनों कर्णों की रक्षा करे। हे महायज्ञ-रक्षाकारी रामचन्द्र ! मेरी नासिका की रक्षा करे। हे लक्ष्मणानुरागी रामचन्द्र ! मेरे मुख की रक्षा करे। हे विद्यानिधि रामचन्द्र ! मेरी जिह्वा की रक्षा करे। हे भरतवन्दित रामचन्द्र ! मेरे कण्ठ की रक्षा करे। हे दिव्यायुधधारी रामचन्द्र ! मेरे स्कन्धद्वय की रक्षा करे। हे शिवधनु-भञ्जक रामचन्द्र ! मेरी दोनों बाहुओं की रक्षा करें। हे सीताकान्त रामचन्द्र ! मेरे हस्तद्वय की रक्षा करें। हे कबन्ध-विनाशक रामचन्द्र ! मेरे वक्ष की रक्षा करें। हे परशुराम-विजयी रामचन्द्र ! मेरे हृदय की रक्षा करे। हे देवपूजित रामचन्द्र ! मेरे स्तनयुगल की रक्षा करे। हे रघुपति रामचन्द्र ! मेरे दोनों पार्श्वों की रक्षा करे। हे इक्ष्वाकुवंशोद्भव रामचन्द्र ! मेरे उदर की रक्षा करे। हे खरध्वंसी रामचन्द्र ! मेरे मध्यभाग की रक्षा करे। हे जाम्बवादि वीरों के आश्रयस्थल रामचन्द्र मेरी नाभि की रक्षा करे। हे सुग्रीव के मित्र श्री रामचन्द्रजी मेरे कटिदेश की रक्षा करें। हे हनुमान् के प्रभु रामचन्द्र ! मेरे ऊरुओं की रक्षा करें। हे सागर-सेतुबन्धनकारी रामचन्द्र ! मेरे विशाल जानुयुगल की रक्षा करे। हे रावणहन्ता रामचन्द्र ! मेरे दो जंघों की रक्षा करे। हे विभीषण-संपददाता श्रीराम ! मेरे दोनों पादों की रक्षा करें। हे श्रीरामचन्द्र ! मेरे सब अंगों की रक्षा करे।"

जो व्यक्ति इस कवचमन्त्र का भूर्जपत्र पर उल्लेख करके शरीर में इसे धारण करेगा, उसे कभी भी शत्रु का अस्त्राघात नही होगा और शत्रुविनाश-पूर्वक वह यशस्वी होगा। (२८-३५)

असिपाणिक—खड्गधारी; पापघ्नी—पापनाशक; कौशल्येय—रामचन्द्रजी; मखरक्षण—यज्ञरक्षाकारी; विद्यानिधि—सारी विद्याओ के आधार; ईशधनुभंज—शिवधनुर्भंगकारी; जामदग्न्यजित—परशुरामविजयी; गीर्वाणपूजित—देवतापूजित; मित्रपुत्र-मित्र—सूर्यपुत्र सुग्रीव के मित्र श्री रामजी; सक्थि—ऊरुसन्धि; दशास्यजघान—रावणहन्ता; विभीषणश्रीद—विभीषण-संपददाता; भर्जपत्र—पत्रविशेष; लिहि—लिखकर; शत्रु-अस्त्रत्रास—शत्रु का अस्त्रघातभय। (२८-३५)

बजाइले जयकम्बु ए समये तेजोमय निज सैन्ये।
बळबानरे बानरे पालटिले शंख शंख शंखस्वने। ३६।

सरलार्थ—इस समय तेजोमय श्री रामजी ने अपनी सेना में प्रवेश कर विजयशंख बजाया। वह शंखध्वनि सुनकर अनगिनत वानर-सैन्य भय छोड़कर उत्साह से आगे बढ़े और अत्यन्त साहस व बल के साथ युद्ध किया। (३६)

जयकम्बु—विजयशंख; पालटिले—लौटे। (३६)

बासरान्त नभ दुर्लभ समान लभ्यक से रणस्थळ।
बिलक्ष लक्ष ऋक्षज्योति प्रचार निशाचर खगकुळ। ३७।

सरलार्थ—असंख्य सैन्यों के समावेश से रणक्षेत्र ने सन्ध्याकालीन आकाश की शोभा धारण की है। सन्ध्याकालीन आकाश मे जैसे असंख्य नक्षत्र अपनी-अपनी ज्योति प्रकाश करते है एवं उल्लू आदि पक्षी विचरण करते है, वैसे इस रणक्षेत्र में लाखों भल्लुकों ने अपनी-अपनी ज्योति प्रकाशित की एवं राक्षसों के शरसमूहों ने विचरण किया। (३७)

वासरान्त नभ—सन्ध्याकालीन आकाश; लभ्यक—प्राप्त; ऋक्षज्योति—भल्लुक-प्रभा, नक्षत्रज्योति (श्लेष); निशाचर—राक्षस, उल्लू आदि पक्षी; खगकुळ—शरसमूह, पक्षिसमूह (श्लेष)। (३७)

बळकर रामलक्ष्मणकरज प्रभा आसइ प्रकटि।
बिरूपाक्षस्थाने दरशबद ये द्विबिध अर्थरे घोटि। ३८।

सरलार्थ—सन्ध्या के समय राम-लक्षण अर्थात् रमणीयचिह्न-युक्त चन्द्र अपनी तेजोमय किरण प्रकाश करता है एवं विरूपाक्षस्थान (शिवालय) में दर (शंख)-ध्वनि सुनाई पड़ती है। उसी तरह इस युद्धक्षेत्र में असामान्य-पराक्रमशाली राम-लक्ष्मणजी, दोनो के शरादि आयुधों के तेज से तेजीयान् होकर विहार करने से विरूपाक्ष राक्षस का आसन दर (भय) से काँप उठा। (३८)

विरूपाक्षस्थाने—राक्षस विशेष, शिवालय मे; दरशबद—शखध्वनि, भयंकर ध्वनि (श्लेष)। (३८)

बिबेक शउरि अचळ[1] अचळ[2] प्रचळ करि बिहित।
बिमान दशकन्धरर मन्दर चाळने मन्दमरुत। ३९।

सरलार्थ—इस समय शउरि वीर ने विचार किया कि मैं शीघ्र ही एक पर्वत फेककर रावण को उसके मजबूत रथ के साथ चूर्ण कर दूंगा। परन्तु धीर पवन से मन्दर-पर्वत का उखड़ना जैसा असंभव है, शउरि के लिए यह काम वैसा ही असंभव हुआ। (३९)

अचळ[1]—पर्वत; अचळ[2]—अटल, मजबूत (यमक); प्रचळ—चञ्चल। (३९)

बिलोमलोमगतिरे मेषयुद्धबशे अंगद प्रभब ।
बर रथकर भाबे रचि चिर बेभारक थररब । ४० ।

सरलार्थ—अंगद ने मेषयुद्ध की-सी विपरीतगति-रीति में युद्ध में अपना पराक्रम दिखाते हुए रावण के श्रेष्ठ पुष्पक रथ को ठेल दिया, तो वह बहुत समय तक भयंकर ध्वनि करता हुआ कांप उठा । (४०)

मेषयुद्ध—भेड़ों की लड़ाई । (४०)

बोले बोलाइ ए पुष्पक पुष्पक तोळि फिंगिबि सागरे ।
बुझाइँ शिखरी-तिळक[1] तिळक[2] सम करि टेकिपारे । ४१ ।

सरलार्थ—अंगद ने फिर कहा, "रावण का पुष्पक विमान एक पुष्प की तरह है । इसे मैं आसानी से उठाकर समुद्र में फेंक डालूँगा । यहाँ तक भी महसूस करता हूँ कि पर्वतश्रेष्ठ कैलास को मैं एक तिल के समान आसानी से उठा सकता हूं । सुतरां रावण के इस रथ को उठा फेक देना मेरे बाये हाथ का खेल है ।" (४१)

पुष्पक—विमान, फूल; शिखरीतिळक[1]—पर्वतश्रेष्ठ, कैलास; तिळक[2]—एक तिल के समान (यमक) । (४१)

बोले दशशिर धरि ब्रह्मशर ब्रह्मस्वी प्राणधन दे ।
बिन्धि रभसरे शरे सदृशरे दृशरे लक्ष्मण छेदे । ४२ ।

सरलार्थ—अंगद के ऐसे अहकारपूर्ण वचन सुनकर रावण ने अपने हाथ में ब्रह्मशरधारण-पूर्वक कहा, "अरे पितृहन्तासहायक ! तू पितृऋण न चुकाकर पितृहन्ता का पक्षग्रहण-पूर्वक रणस्थली में आया है । ऋणी व्यक्ति धन देकर अपने ऋण से मुक्ति-लाभ करता है । वैसे तू अपने प्राणरूपी धन का मुझे दान देकर इह-ससार से मुक्ति-लाभ कर ।" यह कहते हुए उसने अति वेग से अगद पर शर का प्रयोग किया । परन्तु उसे देखते ही लक्ष्मण ने प्रतिशर द्वारा उसका छेदन किया । (४२)

रभसरे—अति शीघ्र; दृशरे—देखते ही । (४२)

बिहरे यूथपतिगणे तत्क्षणे रणांगणे सुरंगरे ।
बिप्रबिधिरे बिधिरे बेढ़िगले रथ - प्रासाद सादरे । ४३ ।

सरलार्थ—यह देखकर यूथपति (सेनापति) रणभूमि पर विहार करने लगे । वे यूथपति ब्राह्मणों के सदृश हुए । अर्थात् जैसे ब्राह्मण लोग देवालय को सादर घेरे रहते हैं, वैसे यूथपति रावण के मन्दिरोपम रथ के चारों ओर घेर गये

सुरंगरे—कौतुक से; । (४३)

बिभीषण संगे धामे राम[1] रंगे राम[2]संगे व्याधरीति।
बिस्मय मयतनय से समय गला धरा धरापति। ४४।

सरलार्थ—इस तरह रावण के सहित यूथपतियों का युद्ध देखकर श्री रामजी युद्धार्थ विभीषण के साथ कौतुक से अति वेग से रावण के निकट दौड़ गये, जैसे मृग के निकट व्याध दौड़ रहा हो। यह देखकर मय दैत्य के पुत्र (रावण के साले या मन्दोदरी के भाई) ने एकान्त मे विस्मित होकर विचार किया— पृथिवीपति रावण आज निश्चय ही रामचन्द्रजी के हाथों पड़कर बन्दी होगा। (४४)

धाये—दौड़ता है; राम[1]—श्री रामजी; राम[2]—मृग (यमक)। (४४)

बेनि बेनि होइ द्विदिग प्रधान बीर बिरचिले युद्ध।
बज्ररु बज्र बृक्षशिळा बर्षण मार्गणगण आयुध। ४५।

सरलार्थ—रामचन्द्रजी और रावण, दोनो पक्षो से प्रधान-प्रधान दो-दो वीर एक ही साथ युद्ध करने लगे। वानरो ने राक्षसों पर बज्र से अधिक कठिन पत्थरो और पेड़ों की बौछार की। राक्षसो ने वानरो पर विविध शरों, शूलों तथा शक्तियों का प्रहार किया। (४५)

द्विदिग—उभयपक्ष; मार्गणगण—शरसमूह। (४५)

व्यकत रकतनद कोकनद मण्डिहेला प्राय पृथ्वी।
बळ प्रबळ तळपंक कले से पन्ति पन्ति पिण्ड मन्थि। ४६।

सरलार्थ—रणक्षेत्र में अनगिनत सैन्यो के विनाश के हेतु रक्त-नदी बहने लगी, तो पृथिवी ऐसी प्रतीत हुई, जैसी लाल कुमुदो से विमण्डित हुई हों। श्रेष्ठ वीरो ने प्रबल सैन्यों के झुंड के झुड देखकर उन्हे पैरो से कुचल डाला और भूमि से मिला दिया। (४६)

व्यकत—प्रकाशित; कोकनद—लाल कुमुद; बळ—सैन्य। (४६)

ब्रह्माण्ड दरदरस्फुट नादर उदर फाटिब परा।
बासुकि शंकि टेकि धरि धरित्री नोहिब होइ कि भारा। ४७।

सरलार्थ—उन वीरों के अर्द्धोच्चारित नाद से या ललकार से पृथिवी को भय हुआ— कही मेरा पेट फट न जाय। पृथिवी क्रमश. भाराक्रान्त हो गई। उस भार को सहने में असमर्थ होकर वासुकि ने अपने मन मे यह शंका की कि शायद मैं फिर पृथिवी का भार वहन नही कर सकूँगा। (४७)

दर—भय; दरस्फुट—अर्द्धोच्चारित वचन। (४७)

बिचक्षण रणे लक्ष्मण तीक्षण बाण कठोर कुठार ।
बिच्छेद कला छेदि महापारुश महाद्रुम पिण्ड शिर । ४८ ।

सरलार्थ—रणपण्डित वीर लक्ष्मणजी ने तीक्ष्ण वाण के प्रयोग से महापार्श्व राक्षस के शरीर के दो खण्ड कर काट डाले, जैसे कोई कठोर कुठार से प्रकाण्ड वृक्ष के दो टुकड़े कर देता है। (४८)

बिचक्षण—बुद्धिमान्, पण्डित; कुठार—कुल्हाड़ा। (४८)

बिकट सुग्रीव[1] सुग्रीव[2] मोड़िला यागपशु परा धरि ।
बातसुत मुष्टि महाशनि[1] महाशनि[2] हनु सानु चूरि । ४९ ।

सरलार्थ—वीर सुग्रीवजी ने विकट नामक राक्षस के सुन्दर गले को उसी प्रकार मरोड़कर छिन्न कर दिया, जैसे यज्ञपशु के सिर को उसके शरीर से छिन्न कर दिया जाता है। और हनुमानजी ने अपने बज्र-सदृश घूँसे से महाशनि राक्षस के पर्वतशृंगों-सदृश गालों को चूर्ण कर दिया, जैसे बज्र पर्वत-शृंगों को चूर्ण कर देता है। (४९)

सुग्रीव[1]—वानरराज; सुग्रीव[2]—उत्तम गला, सिर (यमक); महाशनि[1]—दैत्य विशेष; महाशनि[2]—वज्र (यमक); सानु—पर्वतशृंग। (४९)

बळिष्ठ प्रशस्त[1] प्रशस्त[2] अंगद[1] अंगद[2] तळरे हेला ।
बिचित्रकर्मा अपूर्व नळ नळ जरासुर भस्म कला । ५० ।

सरलार्थ—महापराक्रमी प्रशस्त नामक राक्षस वीर ने अंगद के थप्पड़ लगाने से अपना अंगदान किया। (अर्थात् मर गया।) फिर विचित्र-कर्मा नल सेनापति ने, जिन्होंने सेतुबन्धनादि आश्चर्यजनक कामों का साधन किया था, 'अ' पूर्व नल अर्थात् अनल (अग्नि) के सदृश होकर जरासुर नामक राक्षस को भस्मीभूत कर दिया। (५०)

प्रशस्त[1]—महापराक्रमी; प्रशस्त[2]—राक्षस विशेष (यमक); अंगद[1]—बालिपुत्र; अंगद[2]—अंगदान, प्राणदान (यमक)। (५०)

बिरूपा बिरूपाक्षकु कला नीळ प्रकटि कटिकि भांगि ।
बैशाख ऋक्षपति दधि प्रमथ प्रमथन बशे रंगी । ५१ ।

सरलार्थ—तदनन्तर नील सेनापति ने प्रकटतः विरूपाक्ष नामक राक्षस की कमर तोड़कर उसे विकलांग कर दिया। पुनश्च ऋक्षपति जाम्बवान् ने प्रमथ नामक राक्षस को कुचलकर मथ डाला, जैसे कोई मथानी से दही को मथता है। (५१)

कटि—कमर; बैशाख—मथानी। (५१)

बिधा बिधाने सुषेण काळकाळ काळघण्ट ध्वनि लीन।
बिदारे करि करिकुम्भ कुम्भक केशरी[1] केशरी[2] घेन। ५२।

सरलार्थ—अनन्तर सुषेण सेनापति ने यम के सदृश होकर कालघट नामक राक्षस को एक घूँसे से प्रहार किया, तो उसने विनाशप्राप्त होकर युद्धक्षेत्र को नीरव कर दिया। फिर सिंह-सदृश केशरी वीर ने हस्ती-सदृश कुम्भक राक्षस का मस्तक विदारण-पूर्वक उसका विनाश किया। (५२)

काळ—यम; करिकुम्भ—हाथी की सूँड़; कुम्भक—राक्षस विशेष; केशरी[1]—राक्षस का नाम; केशरी[2]—सिंह (यमक)। (५२)

बाटिर समहिँ महीरे गड़ाइ महेन्द्र महीसुरकु।
बिशिष्ट गबय गबयपरिरे चिरि काळकेतु बुकु। ५३।

सरलार्थ—महेन्द्र सेनापति ने महीरावण राक्षस को भूमि में लिटा दिया और गोली के खेल के सदृश उसे लुढ़काते हुए मार डाला। योद्धाओ में विशिष्ट (अर्थात् प्रधान) गवय सेनापति ने गवय (रोझ या नीलगाय) के सदृश होकर कालकेतु राक्षस के वक्षस्थल को फाड़कर उसे मार डाला। (५३)

महीसुर—महीरावण; गवय—नीलगाय, रोझ। (५३)

बइरी[1] बइरि[2]भाबरे शउरि हेला बकासुर बके।
बर्द्धकी गबाक्ष गबाक्ष कले ये बृकासुरकु उत्सुके। ५४।

सरलार्थ—शउरि नामक सेनापति ने शत्रु के रूप में एक श्येन पक्षी के सदृश होकर बक के सदृश युद्ध करते हुए बकासुर का विनाश किया। फिर गवाक्ष वीर ने एक बढ़ई के समान सोत्साह वृकासुर राक्षस के शरीर में झरोखे बना दिये। (अर्थात् गवाक्ष वीर ने वृकासुर के शरीर में अनेक सूराख करके उसका काम तमाम कर दिया।)। (५४)

बइरी[1]—श्येनपक्षी; बइरी[2]—शत्रु (यमक); बर्द्धकी—बढ़ई; गवाक्ष—झरोखा। (५४)

बज्रकबच राक्षसकु ताराक्ष कर-करतरे चिरि।
बिद्ध पनस पनसकोळपरि व्याघ्राक्ष अन्त ओटारि। ५५।

सरलार्थ—ताराक्ष नामक सेनापति ने अपने आरे के तुल्य हस्त से वज्रकवच राक्षस को विदीर्ण करते हुए मार डाला। फिर पनस नामक सेनापति ने व्याघ्राक्ष नामक राक्षस की अँतड़ियाँ वैसे ही खींच निकाल दी, जैसे कोई पनस (कटहल) के गोझे को खींच निकाल देता है। इस तरह ताराक्ष सेनापति ने व्याघ्राक्ष का विनाश किया। (५५)

पनसकोळ परि—कटहल के गोझे की तरह। (५५)

बिरुळाक्ष बक्ष डाळिम्ब[1] डाळिम्ब[2]फळ परि फटाइला ।
बन्द्य चन्दन चन्दनतरु मारि यमघण्टे लोटाइला । ५६ ।

सरलार्थ—अनन्तर डाळिम्ब सेनापति ने दाड़िम फल के सदृश विरुलाक्ष का वक्ष विदीर्ण कर उसका विनाश किया । फिर वन्दनीय चन्दन वीर ने चन्दन वृक्ष के प्रहार से यमघण्ट राक्षस को भूमि पर लिटाकर उसके प्राणों का विनाश किया । (५६)

डाळिम्ब[1]—वानर सेनापति; डाळिम्ब[2]—दाड़िम, अनार (यमक) । (५६)

बसन्त[1] बसन्त[2]बत ब्रण जात कला पंचशिर देहें ।
बिकशि कंचन[1] कंचन[2] पाटळी[1] पाटळी[2] फुटाइ दिए । ५७ ।

सरलार्थ—वसन्त सेनापति ने वसन्त (चेचक) रोग की तरह पञ्चशिर राक्षस के शरीर को घावों से भर दिया और उसका प्राणनाश किया । पुनश्च कञ्चन वीर ने, क्रोध से अपने शरीर को प्रस्फुटित कञ्चन (कचनार) फूल के सदृश रक्तवर्ण करके पाटळी नामक राक्षस के शरीर को पाटळी (पाडर) फूल के सदृश फुटाकर उससे रक्त निकाला और इस तरह उसका विनाश किया । (५७)

बसन्त[1]—वानर सेनापति; वसन्त[2]—चेचक रोग (यमक); कञ्चन[1]—वानर सेनापति; कञ्चन[2]—कचनार (यमक); पाटळी[1]—राक्षस विशेष; पाटळी[2]—पाड़र (यमक) । (५७)

बिद्युज्जिह्व जिह्वा उपाड़ि कुमुद[1] कुमुद[2] देला बिस्तारि ।
बन्धाइ रक्तनदे शब प्रबाहु सरसेतु सेतु करि । ५८ ।

सरलार्थ—कुमुद नामक सेनापति ने विद्युज्जिह्व राक्षस की जीभ उखाड़कर उसका विनाशपूर्वक कु (पृथिवी) का मुद (आनन्द) बढा दिया । पुनश्च सरसेतु सेनापति ने प्रवाहु राक्षस का विनाश करके उसके शव से रक्तनदी को बँधा दिया । (५८)

कुमुद[1]—वानर सेनापति; कुमुद[2]—पृथिवी का आनन्द (यमक) । (५८)

बिभंजे इक्षुदण्ड परि प्रजंघ जंघकु गन्धमादन ।
बिबिध[1] बिबिध[2] माड़ मारि मारिपकाइ सुमित्रघन । ५९ ।

सरलार्थ—गन्धमादन सेनापति ने प्रजंघ राक्षस के जंघे को ईख की तरह तोड़ दिया एवं विविध सेनापति ने विविध (नाना प्रकार की) मारें देकर सुमित्रघ्न राक्षस का विनाश किया । (५९)

विविध[1]—वानर सेनापति; विविध[2]—नाना प्रकार (यमक) । (५९)

बंश प्राये कला द्विबिध द्विबिद सिंहनाद मृत्यु पांचि ।
बृष्टि करुँ पनशिळ शिळ लुचि उल्लुक न पारि बंचि । ६० ।

सरलार्थ—द्विविद सेनापति ने सिंहनाद राक्षस का विनाश करने के लिए उसे पकड़ लिया एव आसानी से बाँस के समान उसके दो खण्ड कर दिये । पनशिल वीर ने छिपकर पत्थरो की बौछार की, तो उल्लुक राक्षस नहीं बच सका । (अर्थात् पनशिल के प्रस्तराघात से उल्लुक राक्षस ने अपने प्राण त्यागे ।) । (६०)

बंश—बाँस; पाञ्चि—चाहकर । (६०)

बनधब शतबळ[1] शतबळ[2] हस्तिकर्णकु माइला ।
बमन दुर्मुख मुखरु रुधिर ऋषभ तळरे हेला । ६१ ।

सरलार्थ—शतसिंहपराक्रमी शतवल कपि सेनापति ने असंख्य सैन्यों की सहायता से हस्तिकर्ण राक्षस का विनाश किया । यह देखो, ऋषभ सेनापति के एक थप्पड़ से दुर्मुख राक्षस ने अपने मुख से रक्त का वमन करते हुए प्राणत्याग किया । (६१)

बनधव शतबळ[1]—शतसिंह-पराक्रमी; शतबळ[2]—वानर सेनापति (यमक) । (६१)

बिभीषण[1] बिभीषण[2] करबाळे[1] करबाळे[2] युक्त कर ।
बिभिन्न अमित्र मित्रघनशिर यज्ञोपबीत छन्दर । ६२ ।

सरलार्थ—विभीषण ने अपने हाथ में भयकर खड्गधारण-पूर्वक मित्रघ्न राक्षस को शत्रुतुल्य समझकर उसके केश हाथ में पकड़ लिये और उन्हें यज्ञोपवीत की गाँठ के सदृश उलझाते हुए उसका छेदन किया । (६२)

विभीषण[1]—राक्षस; विभीषण[2]—विशेष रूप से भयंकर (यमक); करवाळे[1]—खड्ग; करवाळे[2]—हाथ में बाल पकड़े (यमक) । (६२)

बर्णनीय नियमरे कि करिबा पुत्र नाति सर्ब हत ।
बिशबाहार बाहार चित्तुँ गर्ब लोकित ए अलोकित । ६३ ।

सरलार्थ—इस युद्ध में रावण के कितने पुत्र-नाति मरे, उसकी गिनती कोई नही कर सकता । यह अनदेखी घटना कि मनुष्यों, ऋक्षों और वानरों से अपने पुत्र-नातियो का विनाश हुआ, देखकर बिशवाहु रावण ने अपने मन से अभिमान निकाला । (अर्थात् उसके मन मे और गर्व नही रहा ।) । (६३)

गर्ब—अभिमान, घमंड; लोकित—देखकर; अलोकित—अनदेखी । (६३)

बिधाता छाड़िला एथर ए थर उपुजिगला ता अंगे।
बिचारे चउदपुर पुरस्कार उदये के थिला संगे। ६४।

सरलार्थ—इस तरह पुत्र-नातियों का विनाश देखकर रावण ने कहा, "विधाता अब मेरा वाम हुआ, अन्यथा मेरा यह सर्वनाश क्यों होता ?" यह विचार करते समय उसका शरीर भय से काँप उठा। फिर धैर्यधारण-पूर्वक उसने कहा, "जब मैने चौदह भुवनों को जीता था, उस समय किन पुत्र-नातियों ने मेरी सहायता की थी ? सुतरां अब चिन्ता करने की क्या जरूरत ?"। (६४)

चउदपुर—चौदह भुवन; के—किन्होंने ?। (६४)

बृत्र नमुचि समर तुच्छ करि त्रिपुरे काहिँ सहज।
बड़ अन्धकरे समस्त लोकरे बिन्धा य़ा कला नाराज। ६५।

सरलार्थ—यह विचार करके रावण ने भयकर युद्ध आरम्भ कर दिया। उसके इस युद्ध ने इन्द्रादि देवताओं के साथ वृत्रासुर व नमुचि राक्षस के युद्ध को भी तुच्छ कर दिया। ऐसा युद्ध त्रिपुर (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, तीन पुरों) में सहज नही देखा जाता है। (अथवा यह युद्ध त्रिपुर व अन्धक का शिवजी के सहित जो युद्ध हुआ था, उससे भी बढ़ गया।) फिर रावण ने इतने शरों का प्रयोग किया कि उससे सैनिक लोग प्राय: अन्धे हो गये। (अर्थात् शरजाल से चारों ओर अन्धकार फैल जाने से कोई मार्ग पहचान नहीं सके।)। (६५)

अन्धकरे—अन्धक राक्षस से, अन्धे करना (श्लेष); नाराज—शर। (६५)

बिअर्थ नुहे ए द्विअर्थ भाबना शक्रहर अनुसारे।
बिभीषण राम लक्ष्मण सुग्रीब सेनांकु य़ुझे एकारे। ६६।

सरलार्थ—यह जो दो अर्थो वाले भाव की यहाँ अभिव्यक्ति की गई (अर्थात् इन्द्र व शिवजी के राक्षसों के सहित युद्ध करने के विषय की यहाँ अवतारणा की गई,) वह व्यर्थ या निरर्थक नही। विभीषण, श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सुग्रीव, इनके सहित रावण ने अकेले ही युद्ध किया। (अर्थात् जैसे वृत्रासुर व नमुचि के सहित इन्द्र ने और त्रिपुर व अन्धक के सहित महादेवजी ने अकेले ही युद्ध किया था, वैसे रावण ने अकेले श्री रामजी के समेत उनके सेनापतियों से भी युद्ध किया।)। (६६)

बिअर्थ—व्यर्थ; शक्र—इन्द्र; हर—शिवजी। (६६)

बर्त्ति शारंग महोज्ज्वळ छबिरे स्थिर बिमान धररे।
बिटपी स्पर्शन शराबलम्बन सदा बिळसे नभरे। ६७।

सरलार्थ—मेघ महोज्ज्वल कान्ति को प्रकाश करता हुआ निश्चल होकर पर्वत पर रहता है। उसी तरह रावण अपना तेज प्रकाश करता हुआ स्थिर होकर विमान पर बैठा रहा। फिर जैसे मेघ जलग्रहण-पूर्वक पर्वत-उपरिस्थ वृक्षों को स्पर्श करता हुआ आकाश मे गति करता है, वैसे रावण यहाँ स्ववेंश्याओं को स्पर्श करता हुआ हस्त मे शरधारण-पूर्वक आकाश मे विहार कर रहा है। (६७)

शारंग—मेघ, चातकपक्षी; विटपी—वृक्ष, वेश्या; शरावलम्वन—जलाश्रय, वाण-धारणपूर्वक (श्लेष)। (६७)

बदन दश भिन्न भिन्न एकांग दशदिगपाळ कि से।
बज्र मुद्गर दण्ड खड्ग पाश ये गदा चक्र शूळ पेषे। ६८।

सरलार्थ—रावण के दस मुखों ने भिन्न-भिन्न आकार धारण किये थे। इसलिए वह एक ही शरीर में दशदिक्पालों के सदृश दिखाई दिया। पुनश्च उसके बीस हाथ होने से वह एक ही समय मे वज्र, मुद्गर, दण्ड, खड्ग, पाश, गदा, त्रिशूल एवं चक्र आदि शस्त्रों का प्रयोग कर सकता था। (६८)

दशदिगपाळ—दस दिशाओं के रक्षक देवता—यथा, इन्द्र (पूर्व), अग्नि (अग्निकोण), यम (दक्षिण), नैर्ऋत (नैर्ऋतकोण), वरुण (पश्चिम), मरुत् (वायुकोण), कुवेर (उत्तर), ईश (ईशानकोण), ब्रह्मा (ऊर्ध्वदिशा) और अनन्त (अधोदिशा)। (६८)

बर दानरे कुशळ फुफुकार स्वन करइ निरत।
बहुनेत्र तेज स्वयं काळमय पुण्यजनसार स्वत। ६९।

सरलार्थ—रावण छेदन करने में जैसा दक्ष था, ब्रह्मा की तरह वरदान करने में वैसा ही दक्ष था। फिर वाणाघात से वह फुफकार-स्वन करता था। इस प्रकार वह फुफकार-स्वन निरत अनन्त देव (वासुकि) के सदृश कल्पित हुआ। पुनश्च बहुनेत्र धारण करने से वह स्वतः इन्द्र, अतिशय दीप्तिमन्त होने से अग्नि, कृष्णकाय होने से यम और राक्षस-श्रेष्ठ होने से नैर्ऋत के सदृश दिखाई दिया। (६९)

बहुनेत्र—इन्द्र; काळमय—यम; पुण्यजनसार—राक्षसश्रेष्ठ, नैर्ऋत। (६९)

बार्द्धिमध्यस्थ सदागति पुष्पकआरोही भीमशकत।
बिभाति यार ब्रह्मलोके प्रज्वळ अधोभुबने उदित। ७०।

सरलार्थ—पुनश्च चूंकि वह समुद्र के मध्य वास करता था, इसलिए वह वरुण के सदृश था। दिग्विजयाशा में वह चारों ओर घूम रहा था; इसलिए वायु के समान था। फिर पुष्पक-विमानारोहण करने से वह

कुवेर, असामान्य पराक्रमशाली होने से भीमशक्त (ईशानतुल्य), उसका तेज ब्रह्मलोक में प्रकाशित होने से ब्रह्मा एवं पाताल में प्रवेश करने से अनन्त (शेष देव) के तुल्य कल्पित हुआ। इस प्रकार रूपकार्थ में दशदिक्पालों का सादृश्य निरूपित हुआ। (७०)

सदागति—वायु; पुष्पकारोही—कुबेर; बिभाति—तेज; अधोभुबन—पाताल। (७०)

बाळि - अनुज - तनुजरे दनुज बाळबुद्धि उपुजाइ।
बिचारे घोटक से बेनि मानस श भेदे महीश मुहिँ। ७१।

सरलार्थ—रावण ने सुग्रीव व अंगद, इन दोनो में बाल-बुद्धि उपजाकर (अर्थात् इन दोनो को बच्चे समझकर) अपने मन में विचार किया कि वे दोनो घोड़ों के सदृश हैं और मैं महीश (राजा) हूँ। महीश के 'श' स्थल में 'ष' लिखने से वह शब्द महीष या 'महिष' (भैंसा) हो गया। सुतरां मैं एक महिष या भैंसे के समान हुआ। और जैसे भैंसा घोड़ों का विनाश करता है, वैसे मैं इन दोनो (अंगद और सुग्रीव) का विनाश करूँगा। (७१)

बाळिअनुज—सुग्रीव; बाळितनुज—अंगद; दनुज—राक्षस (रावण)। (७१)

बिदित कराइ शरभर प्रभा केशरीतनय तहिँ।
बिराब करे आषाढ़मेघुँ टाणे घोटि निरन्तरे सेहि। ७२।

सरलार्थ—जैसे आठ पैरों वाला मृग सिंह के बच्चे को आघात करता है, वैसे हनुमान्‌जी ने रावण को भयंकर रूप से आघात किया। पुनश्च, जैसे आषाढ़ का मेघ भयंकर गर्जनपूर्वक आकाश को उमड़ा जाता है, वैसे हनुमान्‌जी भयंकर गर्जन करते हुए रावण को उमड़ा गये। (अर्थात् हनुमान्‌जी ने भयंकर गर्जनपूर्वक रावण के मन में भय उत्पन्न किया।)। (७२)

शरभर—शरों का बाहुल्य, आठ पैरों वाले मृग का; केशरीतनय—हनुमानजी, सिंह का बच्चा; बिराब—भयंकर ध्वनि। (७२)

बिशाक्ष करे सर्ब सेनापतिरे हीराबुद्धि घरषणे।
बज्रदुर्ग प्राय सेमाने बेष्टित होइछन्ति अनुक्षणे। ७३।

सरलार्थ—जैसे कोई चींटियों को अपने पैरों से कुचल देता है, वैसे रावण ने ऋक्ष और कपिसेनापतियों को अपने पैरों से कुचल दिया। वह रावण दुर्जय दुर्ग के सदृश था। इसलिए सैन्य लोग उसे हमेशा घेरे रहे थे। (७३)

हीराबुद्धि—चींटियों की तरह; वज्रदुर्ग—दुर्जयगढ़; अनुक्षणे—सर्बदा, हमेशा। (७३)

बारि नोहिला प्रचुर निशामय मनीषा से निशाचर।
बिशीर्ण सरधि[1] शरधि[2] अतुट काण्ड[1] काण्ड[2] उल्लोळर। ७४।

सरलार्थ—निशाचर रावण ने मन में निशा की इच्छा करके मायाजाल से चारो ओर अन्धकारमय कर दिया। सुतरां राम-लक्ष्मण आदि कोई किसी को पहचान नहीं सके। तरंगपूर्ण समुद्र से कितना ही जल क्यो वहन न किया जाय, वह जलशून्य नही होता है। उसी तरह रावण ने अपने तूणीर से कितने ही शरों का प्रयोग क्यों न किया, फिर भी वह शरशून्य नही हुआ। (७४)

बारि नोहिला—पहचान नहीं हुई; मनीषा—इच्छा, विचार; सरधि[1]—समुद्र; शरधि[2]—तूणीर (यमक); काण्ड[1]—जल; काण्ड[2]—शर (यमक)। (७४)

विशेष ज्या[1]घोषे ज्या[2] पूर्ण संकेत निकेतन करि रहि।
बिमानतळे विभीषण भीषण दस्युस्वभावकु वहि। ७५।
विचेत हेला लंकाराजे नाराजे वाहु छेदिवाकु तार।
बाहु वाहुड़ाइ वन्दन स्यन्दन कीरनामा मन्त्रिवर। ७६।
बसे ज्ञानवशे भाषे सचिवरे शचीवरे मुँ अजेय।
बेगे दाशरथि सन्निधिकि निधिपति विमानकु निअ। ७७।

सरलार्थ—अनन्तर रावण ने विशेष रूप से अपने धनुष को टंकारते हुए सारी पृथिवी को धनुष की टकार से भर दिया। (अर्थात् रावण के धनुष की टंकारध्वनि से सारी पृथिवी गूँज उठी।) विभीषणजी ने अन्धकार में उक्त टंकार को लक्ष्य करते हुए रावण के विमान को एक गृहतुल्य समझा एव चोर के समान वही छिप बैठे एक लौहमय शर से रावण को वेहोश कर दिया। उसकी वेहोशी देख विभीषणजी रथ के नीचे से निकलकर उसके वाहु-छेदन के लिए उद्यत हुए। इस समय शुक नामक श्रेष्ठ मन्त्री ने वन्दनीय रथ (पुष्पक यान) में रावण को बैठाकर रथ चलाना शुरू कर दिया, तो रावण चेतना पाकर उठ बैठा। चेतना पाकर रावण ने अपने मन्त्री से कहा, "जिस विमान मे बैठकर मैंने शचीपति इन्द्र को जीता था, तू फिर उसी विमान को रणभूमि से वापस ले आया! वर्तमान तू इसी कुबेरयान पुष्पक विमान को युद्धभूमि में राम के समीप फिर ले चल।"। (७५-७७)

ज्या[1]—धनुष की प्रत्यंचा; ज्या[2]—पृथिवी (यमक); बिचेत—वेहोश; निधिपति विमानकु—कुबेर के विमान को। (७५-७७)

बोले मूर्च्छित कुत्सितशरे क्षितिपति हे बिभीषणर।
बड़ तममय राति अरातिरे ए दर कराइ दर। ७८।

सरलार्थ—रावण के वचन सुनकर शुक मन्त्री ने कहा, "हे राजन् ! आप विभीषण के कुत्सित शराघात से मूर्च्छित हुए। उस भीषण अन्धकारमयी रात्रि में मैं विभीषण को आपके प्रधान शत्रु के रूप में देख डरकर रणक्षेत्र से रथ को हटा लाया।"। (७८)

क्षितिपति—राजा; अराति—शत्रु; दर—भय। (७८)

बिह युद्ध येते मनोरथ रथ टेकिला एमन्त कहि।
बिन्धे कोटि कोटि शायक[1] शायक[2] मस्तक परे बुलाइ। ७९।

सरलार्थ—रावण के सम्मुख शुक मन्त्री ने आगे कहा, "हे प्रभो ! अब आप अपनी इच्छानुसार युद्ध कीजिए।" ऐसा कहकर वह रामचन्द्रजी के समीप रावण का रथ ले गया। युद्धक्षेत्र में उपस्थित होकर रावण ने अपनी तलवार उठायी और उसे अपने सिर पर घुमाता हुआ करोड़ों शरों का प्रयोग करने लगा। (७९)

एमन्त—ऐसा; शायक[1]—तलवार; शायक[2]—शर, वाण (यमक)। (७९)

बिशिष्ट सैन्यगणर गणना कि एक मार्गणरे छेदि।
बिराब रावण करइ निष्कपि करिबि आप सम्पादि। ८०।

सरलार्थ—रावण ने एक-एक शर के प्रयोग से जितने सैन्यों का विनाश किया उनकी कौन गिनती कर सकता ? (अर्थात् एक-एक शर के प्रयोग से रावण ने असख्य सैन्यों का विनाश किया।) अनन्तर उसने अत्युच्च स्वर मे गर्जन करते हुए कहा, "आज युद्धक्षेत्र को वानरशून्य कर दूंगा।"। (८०)

मार्गण—शर; निष्कपि—मर्कटशून्य। (८०)

बोइले कोदण्डधर दण्डधरपुरकु यिबा निकट।
बानरे सादरे पादरे मर्द्दिबे तो शिर रत्नमुकुट। ८१।

सरलार्थ—रावण के वचन सुनकर कोदण्डधर रामचन्द्रजी ने कहा, "अरे राक्षस ! तेरे यमपुर जाने का समय आसन्न है। सुतरां अब वानर लोग तेरे शिरस्थ रत्नमुकुट को आदर से पैरों से कुचल डालेगे। (अर्थात् अतिशीघ्र तू हमारे वाण से विनाश को लाभ करेगा और तेरे मस्तक पर वानर लोग पाद-प्रहार करेगे।)"। (८१)

दण्डधरपुरकु—यमभुवन को। (८१)

बिधु बिबुधपति बुध बुद्धिरे बिधिरे[1] बिधीरे[2] कथा।
बिन्धि मत्स्य यूथ धीबर नाबरे रथे लंकपति तथा। ८२।

सरलार्थ—अनन्तर देवराज इन्द्र ने विधाता (ब्रह्मा) से अत्यन्त धीरता तथा पण्डित-बुद्धि से कहा, "जैसे केवट लोग नौका पर बैठे मछलियों पर बर्छियों का प्रयोग करते है, वैसे रावण रथ पर बैठे श्री रामचन्द्रजी के सैन्यों पर शरों का प्रयोग कर रहा है।"। (८२)

विधु—विष्णु, श्री रामजी; बिबुधपति—देवराज इन्द्र; बुध—पण्डित; बिधिरे[1]—विधाता से; बिधीरे[2]—विशेष धीरता से (यमक); धीवर—केवट। (८२)

बाटुळि प्रचारि व्योमचारी खगे पत्रि गतिकरि तथा।
बिहरे मारीचमारी चरणरे आम्भ पाइँ पाइ ब्यथा। ८३।

सरलार्थ—इन्द्र ने फिर कहा, "जैसे कोई भूमि पर खड़ा हो आकाश में विहार करते हुए पक्षियों को गोला मारे, तो उसका निशाना चूक जाता है, उसी तरह रामचन्द्रजी रावण को जितने शर मार रहे है, वे सब उसके शरीर में न बज, इधर का उधर हो रहे हैं। पुनश्च मारीचहन्ता श्री रामजी पैदल युद्ध करते हुए हम लोगों के लिए बहुत कष्ट स्वीकार कर रहे हैं।"। (८३)

खगे—पक्षी लोग; पत्रि—शर; मारीचमारी—मारीचहन्ता श्री रामजी। (८३)

बिनये अनाइँ से लये मणाइ कहि नन्दि सन्निधिकु।
बसाइ चक्ररे रसाइ बन्दिले से सर्ज्जन गर्ज्जनकु। ८४।

सरलार्थ—अनन्तर इन्द्रजी ने शिवजी के द्वारपाल नन्दि को अपने पास बुलाकर रथ के चक्र पर उन्हें बैठाया एवं भक्ति व ध्यान से उन्हें समझा-बुझाकर उनसे कहा, "नन्दि! तुम यही बैठ भयंकर गर्जन करते रहोगे।" (नन्दि के घोष अर्थात् गर्जन से रथ का नाम 'नन्दिघोष' पड़ा है।)। (८४)

लये—ध्यान से; मणाइ—समझा-बुझाकर। (८४)

बाह तूणादि-बास देइ बासब स्वसूते कहे भारती।
बसि बशीभूत अमर्त्त्यपाशरु कराइला मर्त्त्यगति। ८५।

सरलार्थ—अनन्तर इन्द्रजी ने उक्त रथ को शरादि से भराकर उसमें घोड़े जुतवाये एवं अपने सारथि मातलि को बुलाकर उसे आदेश दिया, "तुम यह रथ ले लो और इसे श्री रामजी के निकट शीघ्र ही पहुँचा दो।" उनके आदेशानुसार मातलि ने वह रथ देवताओं के समीप से मर्त्त्यभूमि पर चलाते हुए श्रीराम के पास प्रवेश किया। (८५)

बाह—घोड़े; तूणादि—शर प्रभृति; बासब—इन्द्र; भारती—कथा। (८५)

बिदृश पाशजन तम रंजन रजनीर जात ज्योति ।
बर्णन पंचभाषारे बुझ जने युक्त रथबन्ध रीति । ८६ ।

सरलार्थ—इस समय रात आ पहुँची । रात के अन्धकार में सुहावनी रजनी की ज्योति उत्पन्न हुई । मातलि का रथ श्री रामजी के समीपस्थ लोगों को नहीं दिखाई पड़ा । हे पण्डितजनो ! इस पद के बाद आप लोग पञ्च भाषाओं (संस्कृत, हिन्दी, तेलगू, हिन्दुस्तानी और बाँगला) में निबद्ध और रथबन्ध रीति में वर्णित ये चार पद समझिए । (८६)

बिदृश—अदृश्य; रञ्जन—विभूषण । (८६)
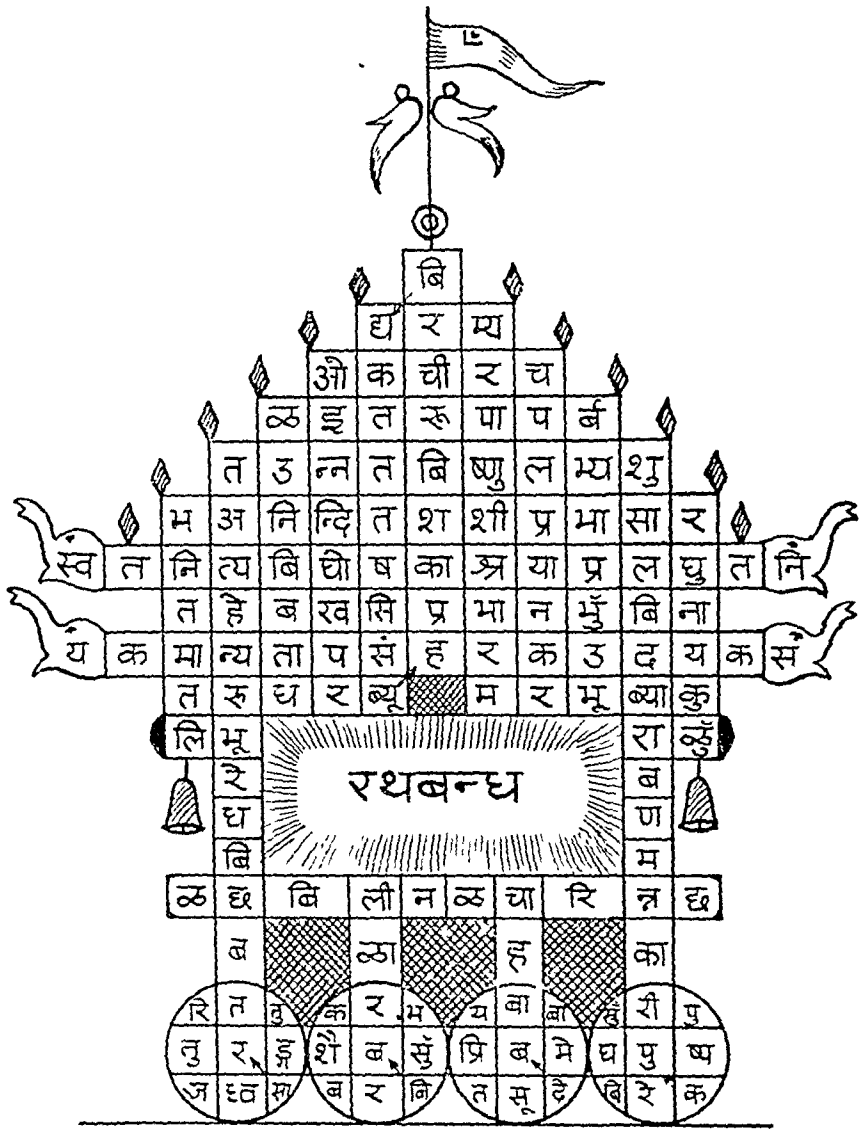
'रथबन्ध' के चार पद ८७-९० अगले पृष्ठ पर देखिये ।

रथबन्ध—बिद्यरम्य ओक चीर चळइत रूपापर्वत उन्नत ।
बिष्णु लभ्य शुभ अनिन्दित शशी प्रभा सारस्वत नित्य । ८७ ।

सरलार्थ—यह नन्दिघोष रथ सकल सौन्दर्यों का वासस्थान (आधार) है। उस पर पताका मनोहर ढंग से उड़ रही है। यह कैलास पर्वत के समान शुक्ल तथा उच्च है। इस यान ने श्री रामचन्द्रजी को अपने शरीर मे लाभ (प्राप्त) किया है। सुतरां इसने निष्कलंक चन्द्र की शोभा को धारण किया है। फिर वह रथ स्वतः श्रेष्ठ और नित्य है। इसी तरह का सुहावना रथ आज युद्धभूमि मे प्रकाशित हो रहा है। (८७)

बिद्य—प्रकाशित; रम्य—मनोहर; ओक—वासस्थान, आधार; चीर—वस्त्र, पताका; रूपा पर्वत—कैलास पर्वत; अनिन्दित—निष्कलंक; शशी—चन्द्र। (८७)

रथबन्ध—प्राचीन चित्रकाव्य-रीति विशेष। इस पद्धति के अनुसार कवि-रचित पदों के अक्षरों का धारावाहिक रूप से रथाकार मे सन्निवेश किया जाता है।

बिघोषकाश्रया प्रलघुस्तनित हेब खसि प्रभा नभुँ ।
बिनायकमान्य तापसंहारक उदयक समरभू । ८८ ।

सरलार्थ—घोरगर्जनकारी नन्दिघोष रथ अपने गर्जन से मेघध्वनि को जीतता हुआ तेज से आकाश से खिसक आया। उस रथ ने रणक्षेत्र में गरुड़पूज्य विष्णु (श्री रामजी) के निकट उपस्थित होकर उनका सन्ताप दूर किया। (८८)

बिघोषकाश्रया—घोरगर्जनकारी; प्रलघुस्तनित—मेघगर्जन को न्यून करता हुआ; बिनायकमान्य—गरुड़पूज्य श्री रामजी; समरभू—रणक्षेत्र। (८८)

व्याकुळँ रावण मन छन्नकारी पुष्पक पुरे बिघसुँ ।
बामे देबसूत प्रियबाह चारि चाळन लीळारभसु । ८९ ।

सरलार्थ—देवसारथि मातलि ने रावण के विपक्ष मे शैव, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक नामक चार प्रिय अश्वों से युक्त नन्दिघोष रथ को कौतुकवेग से रावण के पुष्पक विमान के सामने चला दिया तो वह देख रावण भय और व्याकुलता से काँप उठा। (८९)

मनछन्नकारी—मन में शंका और व्याकुलता पैदा करनेवाला; पुष्पकपुरे—पुष्पक के सामने; बिघसुँ—भ्रमण करते; बामे—विपक्ष में; देवसूत—देवसारथि, मातलि; लीळारभसुँ—कौतुकवेग से। (८९)

बिबरबशैक तुंगसार ध्वज तुरित बत्सळछबि ।
बिबिधरे भुलि तरुधर व्यूह प्रकाश बिरुचि रबि । ९० ।

सरलार्थ—पक्षियों के प्रभु गरुड़ द्वारा वश (चिह्नित) अत्युच्च

पताका (अर्थात् गरुड़ध्वज पताका) से सुशोभित नन्दिघोष रथ ने रणभूमि में स्थित होकर ऋक्ष-कपियों के आनन्द को बढाया। परन्तु मर्कटसमूह ने भ्रमवशात् नाना प्रकार के भावों के वशीभूत होकर विचार किया— सूर्य अत्युज्ज्वल मनोहर प्रभा प्रकाश करते हुए यहाँ उदित हुए क्या ! (अर्थात् वानर लोग नन्दिघोष रथ को देख, इसका निर्णय नहीं कर पाये कि यह क्या है और अन्त में उन्होंने यह विचार किया कि यह अतिमनोहर प्रभायुक्त सूर्य शायद उदित हुए !)। (९०)

बिबरवशंक—गरुड़वश (गरुड़-चिह्नित), गरुड़ध्वज; तुंगसार—अत्युच्च; तरुधर—वानर; बिरुचि—अति मनोहर। (९०)

बिक्रमि सारथिबाक्ये दाशरथि रथारोहुँ बिभीषण।
बिलोकिला नेत्रे निर्बाणे जड़िला जय भाषिले गीर्बाण। ९१।

सरलार्थ—मातलि ने नन्दिघोष रथ को रामचन्द्रजी के समीप उपस्थापित कर कहा, "देव ! इन्द्रादि देवगण ने इस रथ सहित मुझे यहाँ इस अभिप्राय से भेजा है कि आप इस रथ में बैठे युद्ध कीजिए और रावण का विनाश कीजिए।" यह सुन श्री रामजी ने शीघ्र ही उस रथ में आरोहण किया। विभीषणजी ने अपने नयनों से गरुड़ध्वज विमान में आरूढ़ श्री रामजी के दर्शन किये एवं यह निश्चय किया कि इन्हीं के द्वारा मुझे मुक्ति मिलेगी। इस समय देवताओं ने 'जय', 'जय' उच्चारण किया। (९१)

बिक्रमि—आरोहण किया; निर्बाण—मुक्ति; गीर्बाण—देवता। (९१)

बुझ चित्त देइ उचित ए गीत रचित सर्ब कोबिदे।
बोले उपइन्द्र भञ्ज शेष हेला छान्द बयाणोइ पदे। ९२।

सरलार्थ—उपेन्द्रभञ्जजी बोलते है कि हे सब पण्डितो ! मन और ध्यान देकर उचित रीति में रचित इस गीत को समझिए। ऐसे एक छान्द की बयानबे पदों में रचना संपादित हुई। (९२)

कोबिदे—हे पण्डितो; बयाणोइ—बयानबे। (९२)

॥ इति ऊनपञ्चाशत् छान्द ॥

पञ्चाशत् छान्द

(राग—भैरव)

बिश्रबानन्दन तप उदित पर्वत रूप प्रतापदाबाग्नि लोप स्यन्दन दृशे। बरषाकाळ ता कळ्पे बळाहक मेघपुष्पे शोभी घोषचक्रे ब्यापे प्ळबग तोषे। बिद्य घने। बिराज रामलक्ष्मण गर्भे। बिभ्राजइ बृषाचाप शरपूर्णरे लोलुप चपळागति संक्षेप नभे कि शोभे। १।

सरलार्थ—रावण की पूर्वकृत तपस्या रूपी पर्वत में उसके प्रताप रूपी जो दावाग्नि उत्पन्न हुई थी, नन्दिघोष रथ रूपी वर्षाकाल से वह लुप्त हो गयी। (अर्थात् श्री रामचन्द्रजी को नन्दिघोष रथ पर देखते ही रावण का गर्व खर्व हो गया।) पुनश्च वह नन्दिघोष वर्षाकाल के समान था। वर्षाकाल में जैसे सजल मेघ भयंकर गर्जनपूर्वक मेढ़कों का सन्तोष उपजाता है, सर्वदा मेघाच्छादन के कारण चन्द्र मेघ के गर्भ में ही शोभित होते है, आकाश में इन्द्रधनु प्रकाशित होता है और वह इन्द्रधनु अपने उदर में जल भरने मे लालची होता है, आकाश में क्षीण बिजली-रेखा की गति शोभा पाती है, वैसे यह नन्दिघोष रथ बलाहक व मेघपुष्प नामक घोड़ों से सुशोभित होकर भयकर चक्रगर्जन के द्वारा वानरो का सन्तोष बढा रहा है। श्री रामचन्द्रजी इन्द्रदत्त धनुष से सुशोभित होकर लक्ष्मण के साथ रथ के मध्य विराजमान हुए है। वह रथ नाना अस्त्र-शस्त्रों से पूर्ण होकर आकाश में चंचलगति करता हुआ शोभा पा रहा है। (१)

बळाहक—मेघ, अश्व विशेष; मेघपुष्प—जल, अश्व विशेष; प्ळबग—बन्दर, मेढक; रामलक्ष्मण—चन्द्र, लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र; बृषाचाप—इन्द्रधनु; शरपूर्ण—जलपूर्ण, वाणपूर्ण; चपळा—बिजली, चंचल (श्लेषोपमा)। (१)

बिहि शरदलक्षण बिदित रामलक्ष्मण बिराजित ऋक्षगण कुमुद तोषे। बळ हिमन्त पर्बत प्रबळ बातजनित हेबारु साञ्जु ओढ़ित राक्षसबंशे। बिशेषरे। बिशिष्टरे इसि इसि भाषि। बिचारिला। बिचारिला एहि सुरठारु त असुरपर नोहिले कि रथबर मिळन्ता आसि। २।

सरलार्थ—पुनश्च उक्त नन्दिघोष रथ ने शरत्काल का आकार धारण किया। इस ऋतु में निर्मल चन्द्र उदित होकर ऋक्षों (नक्षत्रों) तथा कुमुदों

(कुईंयों) का आनन्द बढ़ाता है। फिर शरत्‌ऋतु के साथ-साथ हिमऋतु के आने से हिमालय पर्वत से प्रबल शीतल पवन बहता है, पक्षी लोग शीत के भय से अपने-अपने पंख ओढ़े बैठते है और लोग भी शीत से काँपते हुए 'इसी', 'इसी' करते हैं। उसी तरह यह नन्दिघोष रथ लक्ष्मणजी के सहित श्री रामचन्द्रजी से विराजित होकर ऋक्षों (भालुओं) और कुमुद (सेनापति) को आनन्द दे रहा है। हिमालय तुल्य पराक्रमी महाबली हनुमान् के वहाँ उपस्थित होने से राक्षससमूह भय से काँपते हुए शरीरों पर कवच पहन युद्ध से निवृत्त हुए। श्री रामजी को रथ पर बैठे देख रावण ने अपने मन में विचार किया कि ये रामचन्द्र सुरों व असुरों से निश्चय ही श्रेष्ठ है, अन्यथा, इन्हें यह रथ-श्रेष्ठ कहाँ से आ मिलता ?। (२)

ऋक्षगण—नक्षत्रसमूह, भल्लुकसमूह; कुमुद—कुईं, वानर सेनापति; बातजनित—पवन का जात होना, हनुमान्‌जी; साञ्जु—पख, कवच (श्लेषोपमा)। (२)

बत्स स्वच्छमणि मणि बशुँ पुणि आणि[1] आणि शंका दूर सेहिक्षणि लंकाराजन। बिपुळे करि गर्जन से धनुर्गुण मार्जन रहरे देबे सर्जन करि तर्जन। बहुबाहु। बहि तहिँ शर शरासन। बढ़ाइला बेगे चण्डीपर्ब कीशपशु खण्डि रक्तपान पानबोळे ओष्ठरञ्जन। ३।

सरलार्थ—अनन्तर लंकापति रावण ने अपने वक्षस्थित स्वच्छ मणि-श्रेष्ठ उज्ज्वल मोहमणि की ओर निहारा, तो उसके मन में फिर गर्वोदय हुआ। उसके मन से यह शंका हट गई कि ये राम-लक्ष्मण मेरी क्या बिगाड सकते हैं। "मैं निश्चय ही उनका विनाश करूँगा" —ऐसा गर्जन करते हुए उसने अपने धनुष की प्रत्यंचा को माँजा और टंकारा। फिर धमकाते हुए कहा, "अरे देवताओ! अब तुम लोग अपने-अपने को सँभालो। मै पहले राम-लक्ष्मण का विनाश करूँगा। उसके बाद तुम लोगों की खबर लूंगा।" इस तरह का भय दिखाकर उसने अपने सब हाथों में धनुशरधारण-पूर्वक अतिशीघ्र दुर्गोत्सव की सर्जना की। अर्थात् दुर्गोत्सव के समय दुर्गा जैसे बलिपशुओं के रक्तपान से अपने होठों को रञ्जित करती हैं, वैसे रावण ने बहुत वानरों का छेदन कराके उनका रक्तपान-पूर्वक अपने होठों को पान की वोर से रंजित हुए के समान कर दिया। (३)

बत्स—वक्षदेश; आणि[1]—गर्व; आणि[2]—लाकर (यमक); बहुबाहु—रावण; चण्डीपर्व—दुर्गोत्सव; कीशपशु—वानररूप बलिपशु; पानबोळे—पान की बोर। (३)

बिजयी नन्दिघोषरे विजयि धनुघोषरे कइळास-बिळास छड़ाइ अणाइ। बाछि सार योद्धाब्रात मूर्द्धाफाळ

फाळकृत बक्ष चिरि बपापित्त मात्र भक्षाइँ। बाजिनामुँ।
बिष्किरे जाणि मित्रता करि। बिहरु शब बियते घेनि से
तोषे भक्षन्ते भरमु थिले रकते पशि न पारि। ४।

सरलार्थ—श्री रामजी अतिशय निर्घोषकारी नन्दिघोष रथ में बैठे धनुष्टंकार-पूर्वक कैलास के विलास (अर्थात् शिव-त्रिपुरासुर की युद्ध-चातुरी) को छीन लाये। अनन्तर उन्होने प्रधान प्रधान वीरों के मस्तकों के दो भाग और वक्षो का विदारण करते हुए उनका मांस मेद आदि निकाल डाला और रणचण्डी को खिलाया। श्री रामचन्द्रजी के शर बाजि (पक्षी) नाम वहन करते है। इसलिए उन शरो ने गीधों से मित्रता स्थापित की और उनकी सहायता से असुरों के शिर काटकर उनके शव धारणपूर्वक आकाश में विहार किया। क्योंकि युद्धक्षेत्र रक्त से पंकिल होने के कारण वे उसमे नहीं घुस पाये। (४)

योद्धावात—वीरसमूह; वपापित्त—मांस व मेद; बिष्किरे—गीध। (४)

बाणे बाण परिताळ ज्योति जात कि अनळ भानु चित्रभानु
मित्रभावे से मेळ। बिघात हेबा समये कि उत्पात उल्कामये
जगतयाकर होए सेहि मञ्जुळ। बिनाशन। बिशिष्ट ज्योति
लबकु लब। बर्षा निशारे खद्योत दिशि न दिशिलाबत मनकु
आसे तेमन्त लीन उद्भब। ५।

सरलार्थ—राम और रावण में युद्ध चलते समय दोनो के वाण परस्पर से बज ताल दे रहे थे और इससे आग निकल रही थी। उसे देख ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सूर्य व अग्नि मित्रो के स्वरूप मिल रहे हों। दोनो के वाणो से आग निकलकर लक्ष्यस्थल पर गिरते समय सारा रणक्षेत्र अत्यन्त मनोहर दिखाई दिया, मानो उल्कापात हो रहे हों। फिर उन वाणो से जो चिनगारियाँ झलकती हुई झड रही है, वे सब कुछ समय रहकर बुझ जा रही हैं। इस तरह वे चिनगारियाँ वर्षाकालीन जुगनुओं के सदृश दीख रही है। (बरसात मे जुगनू क्षण-क्षण अपना तेज दिखाकर फिर ओझल हो जाते है।)। (५)

परिताळ—ताल देना; भानु—सूर्य, चित्रभानु-अग्नि; लबकु लब—क्षण-क्षण; खद्योत—जुगनू (उपमा)। (५)

बिकार हुँकार करि राबण भल्लेक मारि भले राम बेनि
जंघ फुटाइ देला। बिभेदन रम्भा[1] पूर्बे भेदन रम्भा[2]कु एबे
अर्गळी उपमा थिला सुषमा हेला। बर्द्धमान। बिबेक बिचार

बिष्णु मुहिँ । बिराट मुकुट सेहि बिराटध्वजरे रहि बिराट-मूर्त्तिरे स्नेही होइले तहिँ । ६ ।

सरलार्थ—अनन्तर रावण ने उस रणक्षेत्र मे दाँत पीसते हुए और हुंकार करते हुए एक भाले का प्रयोग किया, तो वह भाला रामचन्द्रजी के दोनो जंघों मे बेधकर चिपक रहा । रावण ने पहले रम्भा आदि स्वर्वेश्याओं को अपने वश कर लिया था । अब उसने रम्भा-सदृश श्री रामजी के दोनो जंघों में उक्त भाला बिद्ध कर दिया । तो दोनो जंघों ने भाले के सहित अर्गली की उपमा धारण की । उस अस्त्राघात से श्री रामजी के विवेक का उदय हुआ । यह विचार करते हुए कि "मैं विष्णु हूँ", क्षत्रियवर श्री रामचन्द्रजी गरुड़ध्वज-पताकाशोभित नन्दिघोष रथ में बैठे विराटमूर्त्ति के प्रति स्नेही हुए । (अर्थात् श्री रामजी ने विराटमूर्त्ति धारण की ।) । (६)

भल्ल—भाला; भले—अच्छे ढंग में; रम्भा[1]—स्वर्वेश्या; रम्भा[2]—केले का पेड़ (यमक); अर्गळी—सिटकिनी, द्वार; बिराटध्वजरे—गरुड़ध्वज रथ में । (६)

ब्योम कुन्तळ कराइ शिरस से काळे याइँ रसा-तळतकस्थायी चरण दुइ । बक्षस्थ मणि[1]कि मणि[2] पदक द्युमणि मणि[3] बिलोकि राक्षसमणि[4] सेहि बढ़इ । बाञ्छे यथा । बामन मन लांगळी तुंगे । बिबुधाळयर परा हेबा इच्छा कले हीरा होए कि ए परम्परा होइ ता संगे । ७ ।

सरलार्थ—उन विराटमूर्त्ति के मस्तक ने क्रमशः बढ़कर आकाश को स्पर्श किया, तो आकाश उनके केशतुल्य मालूम हुआ एवं दोनों चरण पाताल में लग गये । फिर श्री रामजी ने सीताजी की जो मस्तकमणि रत्न-पदक के स्वरूप धारण की थी, वह मणि भी क्रमशः बढ़ती हुई बड़ी दिखाई दी । राक्षसमणि रावण ने उसे सूर्यतुल्य समझकर, यह विचार करते हुए कि मैं स्वयं उन विराटमूर्त्ति के समान होऊँ, अपने शरीर को बढ़ाया । यह देखकर कवि विचार कर रहे है कि जिस प्रकार बौना हाथ बढ़ाकर नारियल के पेड़ से नारियल तोड़ने का प्रयास करता है और चीटी बढ़कर मेरुपर्वत-तुल्य होने की अभिलाषा करती है, उसी तरह रावण विराटमूर्त्ति के समान होने की इच्छा कर रहा है । परन्तु यह परम्परा नहीं है । (अर्थात् रावण ने असम्भव विषय-प्राप्ति मे मन किया है ।) । (७)

ब्योम—आकाश; कुन्तळ—केश; शिरस—मस्तक; रसातळ—पाताल; मणिकि[1]—मस्तकमणि को; मणि[2]—रत्न; द्युमणि—सूर्य; मणि[3]—समझकर; मणि[4]—श्रेष्ठ (यमक); लांगळीतुंग—नारियल का पेड़; बिबुधाळय—मेरुपर्वत; हीरा—चींटी । (७)

बिशारद महाद्रुम अग्रते ग्रेमन्ते द्रुम तथा अपूर्ब संग्राम श्रीराम रचे। बाजी नियुते अयुते गज रथ लक्ष शते दशकोटि पत्तिहते कबन्ध नाचे। बिळसिले। ब्यबस्थितरे कबन्ध कोटि। बिहि रे रे कार गिरे खेचर कोटि संख्यारे एक घण्टि कोदण्डरे तथापि रटि। ८।

सरलार्थ—शाल आदि वृहत् वृक्षों के सामने क्षुद्र वृक्ष जैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसे इस रणक्षेत्र मे श्री रामचन्द्रजी की विराटमूर्त्ति के समक्ष रावण दिखाई पड़ा। अब श्री रामजी ने एक अपूर्व समर की रचना की। उक्त युद्ध में एक नियुत घोड़ों, एक अयुत हाथियों, एक करोड़ रथो एवं दस करोड़ पायकों के विनाश में एक कबन्ध नाचता। इसी प्रकार यदि एक करोड़ कवन्ध व्यवस्थित ढंग में नृत्य करें, तो एक खेचर 'रे' 'रे' कार शब्द करता हुआ नृत्य करता एव इसी तरह एक करोड़ सख्यक खेचर नृत्य करें, तो श्री रामजी के धनुष पर स्थित घण्टी एक ही बार आवाज करती। (८)

बिशारद—प्रकाण्ड, वृहत्; द्रुम—वृक्ष; वाजी—घोड़े; गज—हाथी; पत्तिहते—पायक के विनाश में। (८)

बाजिले सपत घण्टि त्रुटिए तहिँ न तुटि सपत दिन प्रकटि रणे एसन। बिखनलेखुँ गहन बिशाक्षकु कले धन्य रखिथिला एते सैन्य एबे हे घेन। बिध्वंसिला। बानर योद्धानुकूळ कृत। बिष्टि होइण आपण दिगशूळ शूळगण लक्षणारे तमगुणग्रस्त पौलस्त्य। ९।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी के धनुष मे स्थित सात घण्टियाँ सात दिनों और रातों तक एक भी मुहूर्त्त के लिए वन्द न होकर लगातार बजने लगी। सुतरां उस युद्ध में रावण के जितने सैन्य खेत रहे, उसे लिखना ब्रह्मा के लिए भी कठिन होगा। (अर्थात् स्वयं ब्रह्मा भी उन मृत सैन्यों की गिनती नही कर सकते।) प्रभु ने रावण को इसके लिए धन्यवाद दिया कि उसने इतने सैन्य रखे थे। उन्होने अपने सेनापतियो से कहा कि जिन राक्षस-सैन्यों का विनाश हो चुका है, उन्हें छोड़ो, अब के जीवितों की कलपना करके उनका विचार करो। विष्टि व दिक्शूल के योग मे (अर्थात् भद्रा लगने में) यात्रा करने पर जैसे अभिप्रेत-कार्य मे विघ्न सघटित होता है, वैसे यहाँ रावण ने विष्टिस्वरूप होकर क्रोध से दिक्शूल के सदृश शूलास्त्रों का प्रयोग करके पीछे की ओर से आक्रमण कर रही वानर-सेना का विनाश किया। (९)

त्रुटिएँ—एक भी मुहूर्त्त; बिखन—विधाता; बिशाक्ष—बीस आँखों वाला, रावण; तमगुणग्रस्त—क्रुद्ध; पौलस्त्य—रावण। (९)

बालमीकि उक्तिसार गगन गगनाकार सागरतुल्य सागर ये़उँ प्रकारे। बिश्रुत लोकन कर रामराबणसमर रामराबणसमर ख्यात संसारे। बिचारिले। बिलोकि रामरण जाम्बब। बयस गलानि सरि य़ुझि य़ुझिलार परि ए संगे बिरोध करिबार उत्सब। १०।

सरलार्थ—आदिकवि वाल्मीकि सारगर्भक वाक्यों में प्रकाश किया है कि जैसे आकाश ही आकाश से और समुद्र ही समुद्र से तुलनीय है, वैसे रामरावण-युद्ध ही रामरावण-युद्ध से तुलनीय है। (अर्थात् इन्हीं वस्तुओं से केवल ये ही वस्तुएँ तुलनीय हो सकतीं, दूसरी वस्तुएँ नही।) खास करके राम-रावण का यह समर पहले नही देखा गया है, न सुना गया है। यह युद्ध प्रसिद्ध ही है। श्री रामजी का युद्ध देखकर जाम्बवान् ने कहा, "मेरी अवस्था तो अब ढल चुकी है (मैं बूढ़ा हो गया हूँ)। मेरी यदि वयस होती, तो मैं श्री रामजी का विरोधी बन उनसे लड़ता; तभी वास्तविक युद्ध का अनुभव होता। सचमुच ऐसे वीरों से लड़ना एक महान उत्सव ही है। यह कहना ही होगा।"। (१०)

उक्तिसार—श्रेष्ठ वाक्य; गलानि सरि—ढल चुकी। (१०)

बेभारे चक्री त सेहि चक्रीबिधानकु बहि शर सर सूत्रे कञ्चा भाण्डर तुले। बिच्छेदि कोपे राघब दशग्रीब दशग्रीब बिच्छेद नोहिला लब लागे तत्काळे। बिघटित। बुद्धि होए एहि उपमारे। बारि नोहे भिन्न करि य़था बीचि तर बारि पुनः पुनः तरबारीमान प्रहारे। ११।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी स्वभावतः चक्री (चक्रधर विष्णुजी) है। इसलिए उन्होंने चक्री (कुम्हार) का आचरण किया। कुम्हार कच्चे बरतनो को सूत से काट देता है। उसी तरह श्री रामजी ने अपने शररूपी सूत से रावण के दसशिरों-रूपी बरतनों को काट दिया। किन्तु रावण के स्कन्धों से वे शिर अलग नहीं हुए। कुम्हार के कच्चे बरतन नीचे नहीं गिरते, वरन् चक्के में लगे रहते। उसी तरह रावण के सब सिर स्कन्ध-देश में लगे रहे। सुतरां कवि की बुद्धि से यह उपमा जंची— जैसे लहरों से पूर्ण जलराशि में बार-बार तलवारों से प्रहार किया जाय, फिर भी पानी को अलग नही किया जा सकता, उसी तरह बार-बार तलवार से प्रहार करने पर भी रावण के शिर उसके स्कन्ध-देश से अलग नही होते। (११)

चक्री—कुम्हार; चक्रीविधानकु—कुम्हार के नियम को; कञ्चा भाण्ड—कच्चे बरतन; बीचि—लहरें। (११)

बिरबर बशे तहिँ बीरबर बोले मुहिँ शिरश्छेदे न मरइ साहस तेज। बिजयी होइछि सुरगणरे आन असुर नोहे बुड़ाइबि शूरपण तो आज। बिष्णुचक्र। बाजि हृदे चर्मरे न गळि। बक्र दाढ़ मुन नाश चूर्ण भजे दुर्गाईश इन्द्र खड्ग शूळ बज्र न मारे तोळि। १२।

सरलार्थ—यह देख वीरवर रावण ने भयंकर गर्जन करते हुए श्री रामजी से कहा, "शिरों के छिन्न होने पर भी मै नही मरूँगा। सुतरां मुझे मारने के लिए तूने जो साहस किया है, उसे छोड़। मैंने इन्द्रादि देवताओं पर विजय प्राप्त की है। खरदूषणादि इतर राक्षसों के समान मुझे समझना मत। मैं आज तेरी शूरता को डुबा दूँगा। मेरी वीरता ऐसी ही है कि विष्णु का सुदर्शन चक्र मेरे हृदय में चर्म को भी नहीं बेध सका, मेरे शरीर में बज दुर्गा के खड्ग की धार टेढी हो गई है, शंकरजी के त्रिशूल की नोकें भी भोथरी हो गईं और इन्द्र का बज्र मुझसे बजकर चूर-चूर हो गया। सुतरां वे लोग इन्हीं अस्त्रों को फिर उठाकर नही मारते।"। (१२)

बिरव—उच्चध्वनि; सुरगणरे—देवताओं मे; आन असुर—इतर (हीन, तुच्छ) राक्षस; दाढ़—धार; मुन—नोक। (१२)

बोलुँ राम कोपे थरे अष्टोत्तरशत थरे छेदने पात पथरे ता मुण्ड नोहि। ब्यथित भजि कथित अग्रे ये मातळि स्थित ए दैत्य अद्‌भुत भूत भबिष्ये नाहिँ। बर्त्तमान। बिख्यात ए त मरिब केहि। ब्रह्माण्डसार क्षत्रिय ब्रह्मास्त्रे भेद हृदय देइछि कुम्भतनय मातळि कहि। १३।

सरलार्थ—रावण के वचन सुनकर श्री रामजी क्रोध से काँप उठे। उन्होने एक सौ आठ बार उसके सिर छिन्न किये। फिर भी उसके सिर भूतल पर कभी नही गिरे। इससे रामचन्द्रजी को बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने सम्मुखस्थ मातलि से पूछा, "हे मातलि! यह एक अद्‌भुत राक्षस है। ऐसे राक्षस पहले नही थे, न भविष्य में होंगे भी। वर्तमान यह प्रसिद्ध राक्षस कैसे मरे?" मातलि ने कहा, "हे ब्रह्माण्डश्रेष्ठ क्षत्रिय! कुम्भतनय अगस्त्य ऋषि ने आपको जो ब्रह्मास्त्र दिया था, उसीसे इस रावण के हृदय को बेधकर इसका वध कीजिए।"। (१३)

ब्रह्माण्डसार—ब्रह्माण्ड में श्रेष्ठ; कुम्भतनय—अगस्ति मुनि। (१३)

बिन्धिबाकु नागे नाके मध्ये के लागिब लाखे तेजे बसाउँ पिनाके जळु से थिला। बादी रिपुर त्रिपुरजितर हुअन्ते हर प्रयोगे तुम्भे पातर मोते दिशिला। बिराधारि। बाणी तार शुणि ततपर। बड़बानळ सागरु उद्धरि धरिबा चारु बाहार कले तूणीरु से ब्रह्मशर। १४।

सरलार्थ—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, इन तीन भुवनो में ऐसा कौन है, जो उस ब्रह्मास्त्र से निशाना बाँध सके ? (अर्थात् कोई नहीं।) क्योंकि शंकरजी ने ज्योंही अपने रिपु त्रिपुरविजयी त्रिपुरासुर से विवादी होकर उसे मारने के लिए अपने पिनाकधनु पर वह अस्त्र बैठाया, त्योंही उसके तेज से उनका पिनाकधनुष जल गया। मुझे लगता है, केवल आप ही इसका प्रयोग करने में समर्थ है। मातलि से यह बात सुनते ही विराध-राक्षस के शत्रु श्री रामजी ने अपने तूणीर से वह अस्त्र वैसे ही मनोहर ढंग से निकाला, जैसे समुद्र-मध्य से कोई बाड़वाग्नि को निकालता है। (१४)

नागे—पाताल में; नाके—स्वर्ग में; पिनाक—शिव-धनु; त्रिपुरजित—तीन भुवनो (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के विजयी त्रिपुरासुर; बादी रिपुर—शत्रु के प्रति विवादी; जितर—जेता, विजयी; हर—शंकरजी। (१४)

बार आदित्य उदित एकत्व होइ ब्यकत एकमण्डळे तद्बत कोदण्ड मध्ये। बसाइण आमञ्चने भावे पुष्पक[1]-बिमाने पुष्पक[2] हेबार मने आजर युद्धे। बितरण। बाण कला तुच्छा करि तूण। बाछि एथुँ भल जणे मारि पारिबि कि रणे चिरकीर्त्ति वीरपणे रहिब पुण। १५।

सरलार्थ—बारह सूर्य एक ही साथ उदित होकर एक सूर्यमण्डल में परिणत होवे, तो उससे जो तेज प्रकाशित होगा, वही तेज श्री रामजी के ब्रह्मास्त्र-निहित अपने धनुष के आकर्षण से प्रकाशित हुआ। यह देख अपने पुष्पकयान मे स्थित रावण ने सोचा, "आज मुझमे चक्षुरोग पैदा होगा। (अर्थात् आज युद्ध में अन्धे की तरह अपथ में गमन करता हुआ मैं मरूँगा।)" अनन्तर वाण मारते हुए उसने अपनी तरकश खाली कर दी। उसने समझा था कि इन प्रधान योद्धाओं में से यदि एक को मैं मार सकूँ, तो जगत में चिरकाल तक मेरी वीरता-कीर्त्ति स्थापित रहेगी। (१५)

आदित्य—सूर्य; पुष्पक[1]—विमान का नाम; पुष्पक[2]—चक्षुरोग (यमक)। (१५)

ब्रह्मास्त्र ब्रह्मास्त्र परे चक्र चक्र कोदण्डरे कतुरीकि त्वरितरे गुण खण्डने। बिभीषण हनुमन्ते कपिबर

बाळिसुते शक्तिपञ्चे शूळ केते सेना खण्डने। बिधानक। बळ य़ेते ताङ्कु काण्डे काण्डे। बिदिश दिश अदृश्य शल्लकी स्वशलबंश झाड़ि झाड़ि कि रभसगति प्रचण्डे। १६।

सरलार्थ—यह विचार करते हुए रावण ने अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र के बाद ब्रह्मास्त्र, चक्र के बाद चक्र, इसी क्रम से बैठाकर उनका प्रयोग किया। फिर श्री रामचन्द्रजी के धनुर्गुण का छेदन करने के लिए अतिशीघ्र कर्त्तरी वाण का प्रयोग किया। पुनश्च विभीषण, हनुमान्, सुग्रीव और अगद —इनका विनाश करने के अभिप्राय से पञ्चसंख्यक शक्तियो और शूलों का प्रयोग किया। इनके अलावा और जितने-जितने सैन्य थे, उनमें से प्रत्येक को भी एक-एक करके शर मारा। रावण के उन-उन वाणों की गति से दिशा-विदिशाएँ दिखाई नही पड़ी। (अर्थात् अन्धकार से दिशा-विदिशाएँ अदृश्य हो गईं। उस समय उसे देखकर प्रतीत हुआ, मानो साहीपक्षी क्रोध से अपने काँटों को फेकता हुआ अत्यन्त व्यग्रगति से भाग रहा हो। (१६)

शल्लकी—साही पक्षी; स्वशलवंश—अपने काँटों का समूह; रभसगति—शीघ्रगति; प्रचण्डे—क्रोध से। (१६)

व्याघ्र कि मक्षिका ग्रासे लक्ष्मण बाणसदृशे खरजित बामहस्त दक्षिणे बोले। बिदेहकन्या योगरे आग कर्बूर दानरे य़ोग हेउ पछे याउ समरकाळे। बामे सेहि। बाक्यरे दक्षिण पाणि छळे। बिदेहकन्या योगरे य़ोगे कर्बूर दानरे बदे कृपाळु सम्मते श्रुतिकि चळे। १७।

सरलार्थ—रावण को इस तरह असाधारण शरवृष्टि करते देख लक्ष्मण ने शरों का प्रयोग किया। उनके शरों ने रावण के शरों को वैसे ही निगल डाला, जैसे बाघ मक्खियों को निगल लेता है। इस समय खरजित् श्री रामचन्द्रजी के बायें हाथ ने दाये हाथ से कहा, "अरे दक्षिणहस्त! तू विदेह-कन्या सीता का ग्रहण और सुवर्ण का दान करने मे आगे होता था। परन्तु अब यह युद्ध करते समय क्यों पीछे हट रहा है?" यह सुनकर दाहिने हाथ ने छल (श्लेष वचन) में कहा, "अरे वामहस्त! मैं भय से पीछे नही हटता। मैं विदेहराज-कन्या सीता का उद्धार करने के लिए राक्षस रावण का प्राण दान (छेदन) करूँ या (रावण ऋषि विश्रवा का पुत्र है, उसकी हत्या करने से मुझे कही ब्रह्महत्या का पाप न लग जाय, इस भय से) न करूँ, इसके बारे में कृपालु श्री रामचन्द्रजी से कहने और उनकी सम्मति लाने के लिए उनके कर्णसमीप जा रहा हूँ।"। (१७)

खरजित—खरविजयी श्री रामजी; विदेहकन्या—विदेहराजकन्या सीता; कर्बूर—सुवर्ण, राक्षस (श्लेष); श्रुतिकि—कानों तक। (१७)

ब्रह्मापूजित सुन्दर परंब्रह्म ब्रह्मशर प्रयोगि ए समयर उर उपरे। बुड़ि हंस पारावारे ग्रेमन्त बाहारे तीरे फुटि तथा चरमरे स्थित तूणीरे। बिदूशता। बिमळाक्ष अनाउँ त बारे। बिध्वंसि देला तत्पर मातळि आदित्यगिर स्वनाम तारकसार उदित करे। १८।

सरलार्थ—ब्रह्मापूजित, सौन्दर्य मे कन्दर्पविजयी और स्वयं परंब्रह्म रामचन्द्रजी ने ज्योंही ब्रह्मशर का प्रयोग किया, वह शर रावण के वक्ष में वेधकर पीठ में वैसे ही फूट निकला, जैसे हंस समुद्र के मध्य में डूबकर किनारे पर निकल पड़ता है और फिर आकर अन्त में श्री रामजी की तरकश में रहा। रावण का विनाश करने के हेतु श्री रामचन्द्रजी ब्रह्महत्या के पाप से लिप्त हुए और देखने पर उनकी निर्मल आँखों को कुछ भी नही दिखाई दिया। उन्होंने मातलि से इसके उपचार के बारे में पूछा, तो मातलि ने कहा, "आप अपना नाम (राम) -तारक श्रेष्ठ मन्त्र स्मरण कीजिए, आपका ब्रह्महत्या-जनित पाप दूर हो जायगा और आपको सारी वस्तुएँ दिखाई देगी।" मातलि के वचन ने उसी क्षण सूर्य के समान उज्ज्वल किरणों से उदित हो श्री रामजी के पापान्धकार को दूर कर दिया। (अर्थात् प्रभु अपना 'राम' नाम स्मरण करने से रावणवध-पाप से मुक्त हो गये।)। (१८)

ब्रह्मापूजित—ब्रह्माजी के द्वारा बन्दित; पारावारे—समुद्र में; चरमरे—पृष्ठदेश में; आदित्य गिर—सूर्य के सदृश वचन। (१८)

बतासे उपुड़ि गिरिपरु महाद्रुम परि महीतपन सुरारि बिमानु भजे। बळ्कळ कबच फळ शाखा शिर भुजजाळ तेजि प्राण पक्षमेळ गति सहजे। बाजि हत। बाजी गज रथ ग्रे असुरे। बञ्चिलाइँ तोष रचि बानरे सधीरे नाचि रणस्थाने पुष्प सिञ्चि बिलोकि सुरे। १९।

सरलार्थ—तूफान से बड़ा वृक्ष पर्वत पर से उखड़ नीचे गिर पड़ता है। उसी तरह मृत सुरारि रावण रथ पर से भूतल पर गिर पड़ा। पर्वत पर से वृक्ष नीचे गिर पड़े, तो उसकी छालें, फल और डालें नीचे गिर जाती है और वृक्षस्थ पक्षी उड़ जाते है। उसी तरह रावण रूपी वृक्ष के गिर पड़ने से वल्कल के सदृश उसका कवच, फलों के सदृश उसके

शिरसमूह और डालों के सदृश उसकी भुजाएँ रणक्षेत्र में गिर पड़ीं एवं पक्षियों के समान उसके पञ्चप्राण सहसा उड़ गये। पर्वत पर से पड़े वृक्ष के आघात से निम्नस्थ वृक्षलताओं का समूह चूर-चूर हो जाता है। उसी तरह रावण के मृत शरीर के आघात से निम्नस्थ असंख्य अश्व, हस्ती, रथ व राक्षस चूर-चूर हो गये। रावण की मृत्यु देखकर वानर लोग यह कहते हुए कि 'हम लोग अब बच गये' आनन्द से धीरे-धीरे नाचने लगे और देवता लोग वह देख रणक्षेत्र पर फूलों की वर्षा करने लगे। (१९)

सुरारि—देवशत्रु, राक्षस; सुरे—देव लोग। (१९)

बाहुड़ि मातळि य़ाइ रथ घेनि आज्ञा पाइ बिभीषण शोक बहि लोक आचारे। बाते उड़ि पुष्पलता परा राबणबनिता आसि रणागणे स्थिता कहन्ते चारे। बिळासिनी। बृन्दबृन्द पद्मिनीए तहिँ। बहे मकरन्द जळ नयन फुल्लकमळ लागि रहिछि भ्रसळ डोळाहिँ य़हिँ। २०।

सरलार्थ—रावण-निधन के उपरान्त मातलि श्री रामजी के आदेशानुसार रथ लिये स्वर्गपुर लौट गया। विभीषणजी ने केवल लोकाचार (आत्मीयस्वजन की मृत्यु पर रोना होता है) दिखाने के लिए ज्येष्ठभ्राता के निधन पर शोक किया। जैसे पवन से पुष्पलताओं का समूह उड़ आता है, वैसे दूत के मुख से पति की निधनवार्त्ता सुन रावण की पत्नियाँ युद्धक्षेत्र में आ उपस्थित हुईं। जैसे पद्म से मकरन्द झरता है, वैसे उपस्थिता पद्मिनीजातीया नारियों के नयनों से अश्रुजल बहने लगा। पुनश्च चूँकि उन रमणियों के नयन विकसित कमलों के समान थे, नयनों के काले डेले (गोलक) ऐसे प्रतीत हुए जैसे कमलों पर भौंरे लगे रहे हों। (२०)

बाते—पवन से; परा—तरह; चारे—दूत लोग; भ्रसळ—भ्रमर, भौंरे; डोळा—डेला, गोलक। (२०)

बाळिका हस्तिनीगण आकुळ हरि बारणहार-मोति बितरण स्तनकुम्भरु। बिशेष थिले शंखिनी कण्ठमाळी शोभा घेनि प्रकाशित उच्चध्वनि से ता दम्भरु। बिनोदिनी। बर्ग बर्ग चित्रिणीए थिले। बसुधामण्डिनी चित्र रजनिकररे गात्र चारिजाति नारी सार्थ लक्षण हेले। २१।

सरलार्थ—जिस तरह सिंह हाथी के कुम्भ का विदारण कर तन्मध्यस्थ मोतियों को निकाल फेंक देता है, उसी तरह यहाँ श्री रामचन्द्रजी के रावण

को विदीर्ण करने से रावण की हस्तिनीजातीया रमणियों ने अपने-अपने स्तन-कुम्भों पर से मोतीहार सब नोच फेंक दिये। (अर्थात् रावण की मृत्यु से उसकी हस्तिनी पत्नियाँ अपने-अपने मोतीहारों को नोचकर विधवा हुईं।) फिर रावण की कण्ठमालाओं के सदृश जो शंखिनीजातीया रमणियाँ थीं, वे सब अपने पति की मृत्युजनित दुःख से अभिभूता होकर ऐसे रोने लगीं, मानो पुजारिने मन्दिर में शखध्वनि कर रही हों। रावण को विनोद देनेवाली चित्रिणी नारियाँ भी थी। वे सब भी शोकातुरा होकर भूमि पर लुढ़कने लगीं। इसी प्रकार उन्होंने लुढ़कते हुए पृथिवी को चित्रित कर दिया और अपने-अपने शरीर को धूल से धूसरित कर दिया।

इसी तरह रावण की चार जातियों की रमणियों के लक्षण प्रकाशित हुए। (२१)

हरि—सिंह, विष्णु (श्री रामजी) (श्लेष); बारणहार - मोति—गजमुक्ता; बसुधामण्डिनी—पृथिवी-विमण्डिता; रजनिकररे—धूलिसमूह से; गात्र—शरीर। (२१)

बिजुळिरुचि रुचिरा ए घेनि अति अधीरा हरिणी लक्ष्य चामर बाळ चळाइ। बाणिज्य हा हा पदक कृतरु सुनारी टेक बाळा क्षितिरे कन्दुक कुच खेळाइ। बोइला से। बेभारे महिषी स्वेदनीरे। बिग्रह मज्जाइ देइ घनरसरे आशायी महासन्तापित होइ से निरन्तरे। २२।

सरलार्थ—बिजली की तरह चचला और मनोहारिणी वे रमणियाँ शोक से अधीरा हुईं। स्त्रियों को साधारणतया हरिणी (स्वर्ण-प्रतिमा) कहा जाता है। उन हरिणियों (स्वर्ण-प्रतिमाओ) ने हरिणियो (चमरी-मृगियों) के सदृश होकर चँवर के सदृश अपना-अपना केशगुच्छ सचालित किया। (अर्थात् शोकातुरा उन स्त्रियों के केशगुच्छ मुकुलित हो गये।) फिर सुनारी (सोनार) जैसे पदक (गहने) बनाते हैं, वैसे वे सुनारियाँ (उत्तम नारियाँ) 'हा हा' पदक (हा नाथ! हा नाथ! यह एक पद मात्र) उच्चारण करने लगी। जैसे लड़कियाँ भूमि में गेद खेलती है, वैसे ये रमणियाँ भूमि पर लुढ़कने से ऐसी मालूम पड़ी मानो कुचरूपी गेद खेला रही हों। स्वभावतः मन्दोदरी महिषी (पटरानी) कहलाती है। मईषि (भैंस) सूर्यताप से सन्तप्त होकर हमेशा अपने शरीर को जल में डुबाती है और मेघजल की भी आशा करती है। उसी तरह महिषी (पटरानी) मन्दोदरी ने अपने शरीर को पसीने में डुबोकर घनशृंगाररस-दाता रावण के प्रेम की आशा प्रकट की। (अर्थात् मन्दोदरी ने कहा, "हे नाथ! आप मेरी गोद छोड़कर अब भूमि पर सो गये!)। (२२)

हरिणी—स्वर्णप्रतिमा, हिर[illegible] प); सुनारी—उत्तम नारी,

क्षितिरे—भूमि पर; कन्दुक—गेंद; महिषी—पटरानी (मइँषि), भैंस (श्लेष); स्वेदनीरे—पसीने से; घनरस—शृंगाररस। (२२)

बर रतन अयन पतन देखि नयन मन्दोदरी कि दरिद्र धइला तोळि। बोइला शोभांगी भांगि बाणी ए कि दशारगी दीन हेलुँ सूर्य्यबंशी उदिते झळि। बोध अर्थे। बिभीषण प्रसारे भारती। बोल ग्रा सत कामिनी तुटिला पापरजनी दिबस पदकु घेनि रच सुगति। २३।

सरलार्थ—दरिद्र मार्ग मे पड़े श्रेष्ठ रत्न को देखने पर उसे बटोर ले अपने पास रखता है। वैसे यहाँ मन्दोदरी ने अपने पति के मृत्पिण्ड को नीलकान्तमणि के समान समझ उसे भूमि से उठाया और कहा, "हे नाथ! युद्धक्षेत्र में आते समय हमारी बात आपने नही मानी और यहाँ अब प्राण त्यागकर भूमि पर सो गये। सूर्यवंशोद्भव श्री रामजी के सूर्यसमान दीप्तिमन्त होकर यहाँ उदित होने से हम लोगों की यह दुर्दशा हुई।" मन्दोदरी का क्रन्दन सुनकर विभीषणजी ने कहा, "हे शोभागि! तुमने जो कहा कि श्री रामजी सूर्यसमान तेजस्कर हो उदित हुए, वह बिल्कुल सही है। क्योंकि सूर्योदय होते ही अन्धकार जैसे दूर हो जाता है, वैसे यहाँ श्री रामजी-रवि के उपस्थित होते ही रावण-रूपी अन्धकार दूर हो गया। (अर्थात् पृथिवी ने पाप-पीड़ा से आरोग्य लाभ किया।) अब पाप की रजनी बीत गई और पुण्य का दिवस उदित हुआ है। हे कामिनि! अब रावण की बात भूल जाओ एवं श्री रामजी के पदों को ध्यानपूर्वक उत्तम गति लाभ करो।"। (२३)

बर—श्रेष्ठ; अयन—पथ, मार्ग; भारती—कथा, वाणी, वचन; सुगति—उत्तम मुक्ति। (२३)

बनितागणे पण्डिता देबर बाणी बिदिता श्रुति पचारे तोषिता गले भबने। बन्धुबर्ग रुण्ड बशे दशाननकु रभसे दहन-संयोग शेषे मज्जिले स्नाने। बइकुण्ठे। बिजय पाशे प्रबेश जय। बैदेही श्रीराम शोक तेजि नेले कि अशोक बने छन्ति परस्परे कथा उदय। २४।

सरलार्थ—वनितावृन्द में पण्डिता मन्दोदरी देवर विभीषण की बात को वेदवाक्य-समान मानकर प्रसन्न हुई एवं अन्तःपुर में गई। अनन्तर बन्धु लोगों ने इकट्ठे होकर रावण को शीघ्र ही अग्नि में दग्ध कर स्नान किया। वैकुण्ठस्थ विजय (कुम्भकर्ण) के समीप जय (रावण) ने प्रवेश

किया। तब विजय ने जय से पूछा, "क्या श्री रामजी ने शोक तज सीता को लिया ?" जय ने उत्तर दिया, "सीताजी अशोकवन मे है।" उन दोनो में इस प्रकार का कथोपकथन प्रकाशित हुआ। (२४)

श्रुति—वेद; रभसे—शीघ्रता से; वहनसंयोग—अग्निसंयोग। (२४)

बइरी भावे त्रिबिधि मोक्षदाता दयानिधि सुबल्लभीरे संपादि य़ेते कषण। बसि बेनि प्रशंसित सुज्ञजनमाने चित्त निश्चळ करिण चिन्त कि प्रभुपण। बरगिले। बिश्वबासुत करि क्षितीश। बीर श्रीराम अनुज सहिते बानरराज बाळिसुत बातात्मज लंका प्रबेश। २५।

सरलार्थ—जय-विजय ने फिर आपस में बातचीत की कि श्री रामचन्द्रजी दया के आधार होने से तीन प्रकारों (शत्रुभाव, मित्रभाव एवं सेवक-भाव) में मुक्तिदान करते है। हम उनकी पत्नी का हरण कर लाये और उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये। फिर भी उन्होने हमारा उक्त दोष ग्रहण नहीं किया एवं हमें मुक्तिदान दिया। इस तरह उन दोनो ने प्रभु की प्रशंसा की। हे पण्डितो ! अब आप लोग अपना-अपना मन स्थिर करके उन श्री रामजी की प्रभुता व महिमा का ध्यान कीजिए।

अनन्तर वीर श्री रामचन्द्रजी ने विश्रवासुत विभीषणजी को लंका के राजा बना भेजा एवं उनके सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, अगद और हनुमानजी को (उनका तिलक संपादन करने के लिए) लंका जाने को आदेश दिया। (२५)

बरगिले—भेजा; क्षितीश—राजा। (२५)

बारता मन्दोदरीरे सलक्ष्मण[1] अंगद[1]रे य़ुक्त होइण सुग्रीबे[1] गन्धबह[1]जे। बिभीषण पूर्बदेब इन्द्रपदरे बसिब बामा चारुधारा परा तुम्भे हेब य़े। बोलुछन्ति। बोलि अछन्ति अयोध्याराजे। बोल सपत्नी सहरे सलक्षणे[2] अंगद[2]रे य़ुक्त होइण सुग्रीबे[2] गन्ध बह ये। २६।

सरलार्थ—अंगद, सुग्रीव व हनुमानजी के सहित लक्ष्मणजी ने लंकागढ़ में प्रवेश किया। उन लोगों ने मन्दोदरी को एक अन्तःपुर की दासी के द्वारा वार्त्ता भिजवाई। दासी ने जा मन्दोदरी से कहा, "रावण के समान विभीषण अब राक्षसों के इन्द्रपद में बैठेंगे। (अर्थात् अब विभीषणजी राक्षसों के राजा बनेंगे।) तुम शची (इन्द्र-पत्नी) की तरह उनकी रानी बनोगी। अयोध्या के राजा श्री रामजी ने यों कह भेजा है—ऐसा लक्ष्मणादि बोल रहे है। फिर लक्ष्मणजी ने मेरे द्वारा तुमसे यह कहाया है

कि तुम अपनी सौतों सहित सधवा नारी के लक्षणों (कगनों, बाजूबन्दों आदि अंगभूषणों) से विभूषित हो अपने सुन्दर गले मे चन्दन पोतो।"। (२६)

सलक्षण[1]—लक्ष्मण के सहित; अंगद[1]—बालिपुत्र; सुग्रीबे[1]—कपिराज सह; गन्धबहजे[1]—पवनसुत हनुमानजी सह; पूर्बदेव—राक्षस; चारुधारा परा—शची की तरह; सलक्षण[2]—उत्तम लक्षणों सहित, मनोहर रूप में; अंगद[2]—अंगभूषण; सुग्रीबे[2]—सुन्दर गले में; गन्ध बह[2]य—चन्दन पोतो (यमक)। (२६)

बिळोहिले नाहिँ आने बिबेकी प्रभुसमाने नाहिँ बस सिंहासने अभिषेकरे। बढ़िब सतीसंपद अपूर्ब न घेन हृद रहिला कीर्त्ति अहल्या तारँ संसारे। बाळिजाया। बिळसिला सुग्रीबर जानु। बळाइ मन ए गिरे ननन्दा कथा बिचारे से स्थाने प्रबेश करि सुबेश तनु। २७।

सरलार्थ—यह सुनकर सौतों ने मन्दोदरी से कहा, "श्री रामजी के समान विवेकवन्त पुरुष और है ही नही, जो उन्होने तुम्हारा किसी दूसरे पुरुष से सम्भोग नही कराया और तुम्हें देवर विभीषण के अक मे बैठ अभिषिक्त होने के लिए आदेश दिया है। इससे तुम्हारी सतीत्व-मर्यादा बढ़ेगी। कदापि यह अपने मन में मत सोचना कि इससे मैं असती होऊँगी। प्रभु ने असती अहल्या का भी उद्धार करके जगत में कीर्त्ति का विस्तार किया है। फिर उनके आदेशानुसार बालि-पत्नी तारा सुग्रीव की गोद में बैठी है। सुतरां तुम राम की यह कथा मानो और विभीषण की पत्नी बनो। अन्यथा ननंद सूर्पणखा की दशा विचारो। (श्री रामजी की बात न मानने से उसके नाक-कान कट गये थे।) अब तुम अपने शरीर का उत्तम वेश कर उस अभिषेक-स्थल मे प्रवेश करो।"। (२७)

बिळोहिले नाहिँ—विलास नही कराया, संभोग नहीं कराया; सतीसंपद—सतीत्व-मर्यादा; अपूर्ब न घेन ('सती' के पूर्व 'अ' देने से 'असती' शब्द की उत्पत्ति)—असती होने की शंका मत करो; ननन्दा—ननन्द। (२७)

बन्दाइ सुमित्रासुत ताराभब राममित्र आञ्जनेय कपिगोत्र युत समेळे। बुहाइण रत्नकोष रथ आदि गज अश्व स्वदारासह सुबेळे[1] गले सुबेळे[2]। बिभु तहिँ। बिलोकि मयजा सुशोभित। बिचारि एड़े आरम्भा थाउँ रसिला ए रम्भा भोगकु राबण याहा मधुप सत। २८।

सरलार्थ—सौतों की कथानुसार मन्दोदरी सुवेश से विभूषित होकर विभीषण की गोद मे बैठी तो सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मणजी और अगद, सुग्रीव तथा हनुमान् आदि वानरों ने इकट्ठे होकर आनन्द से उन पर आरती

उतारी। अनन्तर विभीषणजी ने भण्डारस्थ सारे रत्नों का नौकरों से वहन कराया। अपने साथ रथों, हाथियों और घोड़ों आदि को लिये वे मन्दोदरी सहित शुभलग्न में श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करने के लिए सुबेल पर्वत पर आये। उस पर्वत पर रहे प्रभु मयकन्या मन्दोदरी की शोभा देखते हुए यह विचार कर रहे थे कि ऐसी सुन्दरी पत्नी होते हुए भी रावण ने रम्भा अप्सरा से संभोग करने का जो मन किया। सच है, वह एक भ्रमर या मद्यप (शराबी) है। (२८)

ताराभव—तारापुत्र अंगद; राममित्र—सुग्रीव; आञ्जनेय—अंजनापुत्र हनुमानजी; कपिगोत्र—वानरसमूह; सुबेळे[1]—सुबेल पर्वत पर; सुबेळे[2]—अच्छे (उत्तम) समय पर (यमक); मयजा—मन्दोदरी; मधुप—मद्यप, भ्रमर। (२८)

बिश्वे ए सुरभि अंग कान्ति अंगुळि सारंग गमन अळका-कण्ठ नेत्र भ्रूलता। विशेष हरि मनकु मुखसम से पूर्णकु नासा ओष्ठ मध्य बेणी तथा राजिता। बिड़म्बन। बिहिल मोते सुन्दरी कहि। बोधिले पुण्डरीकाक्ष तार कर धरि मुख्य साध्वीरे लेखा प्रत्यक्ष होइबु तुहि। २९।

सरलार्थ—अनन्तर श्री रामचन्द्रजी ने मन्दोदरी की ओर निहारते हुए कहा, "यह रमणी पृथिवीस्था सब सुन्दरियों में श्रेष्ठा है। क्योंकि उसकी देहकान्ति चम्पाफूल की-सी, उँगलियाँ चम्पाकलियों के समान, इसका गमन हस्ती का-सा, अलकाएं भौरों के समान, स्वर कोयल का-सा, नेत्र मृगी के-से, भ्रू-लताएँ कन्दर्प के धनुष-सी, और मुख पूर्णचन्द्र-सा मन का हरण करता है। उसी प्रकार नासा तोते की-सी, ओंठ अरुण-से, कटि सिंह की-सी और वेणी कालीय सर्प की तरह विराजित हो मन को मोह रही है।" यह सुन सुन्दरी मन्दोदरी ने कहा, "हे प्रभो! आपने जो मुझे सुन्दरी कहा, यह आपकी छलना-मात्र है।" कमलनयन प्रभु श्री रामजी ने उसका हाथ पकड़ उसे ढाढ़स देते हुए कहा, "अयि सुन्दरि! पतिव्रताओं में तुम्हारा नाम सबसे प्रथम लिखा रहेगा।"। (२९)

सुरभि—मनोहर, चम्पाफूल; सारंग—हस्ती, भ्रमर, कोकिल, कन्दर्प का धनुष; हरि—चन्द्र, अरुण, सिंह, शुकपक्षी, कालीय सर्प (श्लेषोपमा); पुण्डरीकाक्ष—कमल-नयन श्री रामजी। (२९)

बिभीषण संगे राज थिबायाक चन्द्रसूर्य्य तो बयस सउन्दर्य्य न तुटु लबे। बाहुड़ाइ निअ धन एथिरे कि प्रयोजन आण मोर प्राणधन जानकी एबे। बनबासी। बिधुरता करि राजभूति। बिचारि मुकुतिदायी मुँ कति छाड़िलि नाहिँ य़ाहारे बिहार सेहि करे मो मति। ३०।

सरलार्थ—पुनश्च श्री रामजी ने मन्दोदरी से कहा, जब तक आकाश में चन्द्र-सूर्य विराजित रहेगे, तब तक तुम विभीषण की गोद में शोभा पाती रहो। तुम्हारी वयस और सौन्दर्य में जरा भी त्रुटि न होवे। तुम दोनो अपना धन वापस ले लो। राजसपद त्याग मै वनवासी हुआ हूँ। इससे मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरे प्राण-धन जानकी को मेरे पास ले आओ। जो सीता मेरी मुक्तिदायिनी है, मेरे उसका साथ छोड़ने पर भी जो मेरे हृदय में हमेशा विहार कर रही है, वही मेरी गति है, वही मेरा धन है। (उन्ही सीता को मुझे ला देना।)। (३०)

बिधुरता—त्याग; राजभूति—राजसंपद। (३०)

बैदेही अमृतधारी चातक चकोर परि बिरहज्वररे घारि सेहि बिधान। बोलुँ से याइ ससैन्ये प्रबेश अशोक[1]बने होइले अशोक[2]मने याइँ बहन। बार्त्ता देले। बिरह नबमदशा भोग। बिख्याति मइथिळीरे लोटिला महीस्थळीरे करि दशा दशानन दशम भोग। ३१।

सरलार्थ—अनन्तर श्री रामजी ने विभीषणजी से कहा, "हे लंकेश ! सीता 'अमृताधारी' (जल का स्थान), अर्थात् मेघस्वरूपा हुई। फिर सीता 'अमृताधारी' (अमृत का स्थान), अर्थात् चन्द्रसदृशा है। मैं हूँ चातक और चकोर के सदृश। सुतरां मेघ के विरह से चातक और चन्द्र के विरह से चकोर जैसे दुःखित होता है, मैं भी सीता के विरह-ज्वर से पीड़ित हुआ हूँ।" यह सुनकर विभीषणजी अशोकमन (प्रसन्नमन) में शीघ्र ही अशोकवन मे उपस्थित हुए। द्वारदेश में रह उन्होने (समर्पा राक्षसी के जरिये) सीता के समीप यह वार्त्ता भिजवाई— "हे देवि ! रावण ने मैथिली के अर्थात् तुम्हारे विरह से जात 'नवमदशा' अर्थात् मोहदशा प्राप्त की। सुतरां श्री रामजी ने उसे दशमदशा (मरणदशा) देकर उसे भूमि पर लुढ़का दिया।"। (३१)

अमृताधारी—मेघस्वरूप, चन्द्रस्वरूपा (श्लेष); अशोक[1]वने—वन का नाम; अशोक[2]मने—शोकरहित (प्रसन्न) मन में (यमक)। (३१)

बिजे कर कान्त पाशे हेमरत्न कान्तिबशे मण्डन्तु राणीए तोषे मो नामे कह। बोइला समर्पा याइ बिभीषण ग्राहा कहि बिस्तार करिबा पाइँ हरषव्यूह। बेढ़िगले। बेगे ओळगि महादेबीए। बत्तिश पदे ए छान्द बुझिब सर्ब कोबिद चित्ते भञ्ज उपइन्द्र श्रीराम ध्याये। ३२।

सरलार्थ—फिर विभीषणजी ने कहा, "सीता से कहना कि वे सुवर्ण तथा मणिमुक्तादि से विभूषिता हो उनके प्राणपति श्री रामजी के समीप गमन करें। और मन्दोदरी प्रमुखा रानियाँ भी उनका सुवेश करने के लिए सहर्ष आवे। सीताजी से कहना कि विभीषणजी ने यह अनुरोध किया है।" यह सुनकर समर्पा राक्षसी सीता की आनन्दवृद्धि करने के लिए मन्दोदरी आदि रानियों के साथ सीता के पास जा पहुँची और उसने विभीषण की कही सारी बातें सीता से कहीं। मन्दोदरी आदि महारानियों ने सीता को प्रणाम किया। वे लोग दासियों के सदृश सीता को घेर गईं और उनकी वेशभूषा करने लगीं।

कवि-श्रेष्ठ उपेन्द्रभञ्ज ने कहा, "हे पण्डितो ! मैंने श्री रामजी का ध्यान करते हुए बत्तीस पदों में इस छान्द की रचना की है। आप लोग सब इस छान्द को मन और ध्यान देकर समझेंगे।"। (३२)

हरषव्यूह—आनन्दरचना; ओळगि—प्रणाम करना; कोबिद—हे पण्डितो !। (३२)

॥ इति पञ्चाशत् छान्द ॥

एकपञ्चाशत् छान्द

राग—कनडा

बल्लभ दुर्ल्लभ सन्देश लभन्ते सीता ईषित-हास-बश। बेश हेबारे नोहिला आबेश। बिच्छेद-बिपत्ति दरशने पति मतिकि करि प्रबेश से। बराङ्गी। बसि सुखासने कलुँ गमन। बेढ़ि राबण महादेईमान। बरहि-बरह चामर आलट खदि करन्ति चाळन से। बनिता। १।

सरलार्थ—पति श्री रामचन्द्रजी का दुर्लभ आदेश पाकर सीता ने मन्दहास प्रकाश किया। उन्होंने किसी प्रकार की वेशभूषा में मन न देकर पति को देखने के उद्देश्य से हिंडोले मे बैठ गमन किया। उनके चलते समय मन्दोदरी आदि रावण की रानियाँ उनके चारों ओर घेर मयूरपूंछ, चामर, आलावर्त्त व खादी आदि चलाती थीं। ऐसे समारोह मे सीता ने श्री रामचन्द्रजी के समीप गमन किया। (१)

बल्लभ—पति; सुखासने—हिंडोले में; बरहिबरह—मयूर-पूंछ। (१)

बाहारि बारिधिलहरी ग्रेमन्त तहिँ बिहरि शिरी आसे। बनजिनीलता कि पाशे भाषे। बिचित्र तरणी मञ्जुळधारिणी हान्दोळा दोळायित से ये। ब्रिदुषे। बेत्रकर गति मत्स्य चहट। बोलिबार मणिमा भेकरट। बोइले राम चलाइ आण देखि पासोरन्तु सर्बे कष्ट ये। बेगरे। २।

सरलार्थ—सैन्यो से घिरकर सीता अशोकवन से आते समय ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानो तरंगों से वेष्टिता लक्ष्मीदेवी समुद्र-मध्य से निकल आ रही हों। समुद्र के मध्य से निकल आते समय लक्ष्मी के सहित पद्मलताओ का समूह उतराता आता और समुद्रतरंगों में नौकाएँ हिलती-डोलती है। उसी तरह यहाँ सीता के सहित मन्दोदरी आदि पद्मिनीजातीया नारियाँ आ रही है और सीता का विचित्र हिंडोला मनोहर नौका के सदृश झूल रहा है। पुनश्च, समुद्र मे मत्स्य भी गति करते है। यहाँ वेत्र-हस्त प्रतिहारी आगे-पीछे गमनागमन कर रहा है। समुद्र मे मेढक टर्र-टर्र करते हैं। यहाँ सीता के आगमनमार्ग में लोग 'श्रीमती जी', श्रीमती जी रट रहे है। यह देख दयालु श्री रामजी ने पार्श्वचरों से कहा, "सीता को

पैदल चला ले आओ। जिन सैन्यों ने उन्हीं के लिए नाना कष्ट सहे हैं, वे उन्हें देखकर अपनी थकावट भूल जावे।"। (२)

बारिधिलहरी—समुद्र की तरंगों से; शिरी—श्री, लक्ष्मी; बनजिनीलता—पद्मिनी लताओं का समूह; तरणी—नौका; भेकरट—मेढकों की टर्र-टर्र। (२)

बाटे द्विबिद कहिला ए उदन्त सुदन्तशोभी शुणि भाळे। बिभु बिरागी मोहठारे हेले। बनजिनीदळे गर्भाळसी हसी चालिबा चालिकि दळे से। बराङ्गी। बासे लोभी होइ भृङ्गमण्डळी। बुले चक्रछबिरे घोषशाळी। बिशेष शोभारे कीरति कि रतिकि रतिरे छेदे भाळि से। बिदुषे। ३।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी का यह आदेश कि सीता यान से उतर पैदल आवे, सुनकर द्विविद नामक वीर ने सीताजी को वह संवाद मार्ग में दे दिया। यह संवाद पाकर सुदन्ती सीता ने सोचा, "क्या प्रभु मुझसे नाराज हो गये?" अनन्तर यान से उतरकर वे धीर गति से पैदल चलने लगीं। उनकी गति धीरता में पद्मपत्र पर चलती हुई गर्भालसी हंसी की गति को भी कुचल रही थी। (अर्थात् गर्भालसी हंसी की गति से सीता की गति अधिक धीर थी।) वे वरांगी सीता योजनगन्धा अथवा पद्मिनीनायिका थी। उनकी अंगवास के लोभ से भौरे मण्डलाकार में उनके चारों ओर मँड़रा रहे थे और गुंजार कर रहे थे। हे पण्डितो! सीता की शोभा का मैं क्या वर्णन करूँ? रति ने अपनी शोभा में जो प्रसिद्ध कीर्ति कमायी थी, सीता ने अपने सौन्दर्याधिक्य से उसे काटकर रतिमात्र (रत्ती भर, रंच मात्र) कर दिया। (३)

उदन्त—संवाद; सुदन्तशोभी—अच्छे दाँतों से सुशोभिता, सीता (व्यतिरेक)।(३)

बिचारिले सर्बे नेत्रपात मात्रे बिधान कला के एहाकु। बिलोकन न कलाइँ ताहाकु। बोलन्ति याहाकु भूषण-भूषणा आन उपमा एहाकु हे। बिधाता। बुद्धि केते तो निर्माण एहार। बणा धैर्य्य उर्बशीरे याहार। बास्तोस्पति ग्रेवे दरशने कलु न कलु सेहि प्रकार हे। बिधाता।४।

सरलार्थ—सीता पर दृष्टि पड़ते ही सैन्यों ने विचार किया, "जिसने इन्हीं सीता का निर्माण किया है, हम लोग उसे नहीं देख सके। जो रमणी अलंकारों की अलंकारस्वरूपा कहलाती है, वह भी सीता का उपमान नहीं हो सकती। (अर्थात् सीता उससे भी अधिक सुन्दरी है।)

हे विधाता ! तुम्हारी बुद्धि कितनी है जो कि तुमने इनका निर्माण किया ? देवसभा के मध्य उर्वशी को देख जिनकी बुद्धि भटक गई थी और धैर्य लोप हो गया था, तुम तो वही ब्रह्मा हो ! तुम कैसे धैर्य से इनका निर्माण कर सकते ? (अर्थात् तुम्हारे द्वारा सीता का निर्माण असंभव है।) परन्तु सीता के रूपदर्शन में तुमने हम लोगों को इन्द्रसुख दिया है। तो फिर इन्द्र के समान हमें सहस्राक्ष क्यों नही बनाया ? (हम सहस्र आँखों से भलीभाँति सीता के रूप के दर्शन कर पाते !)" ।(४)

बास्तोस्पति—इन्द्र । (४)

बामदेब किम्पाँ गउरीकि काळी बोलन्ति थिला ए संशय। बळे सुबर्ण्ण शतेगुण काय। बाळीरतन छाइकि अनुयायी य़ेणु हेबे उपमेय हे। बिधाता। बिश्वे एमन्त परिरे ताहाकु। बामा नाहिँ त उपमा देबाकु। बिसर्जिला प्राण न मुञ्चि राबण त्रिपुरे भ्रमि थिबाकु हे। बिधाता। ५।

सरलार्थ—"हम लोगों को इसके बारे में बड़ा सन्देह था कि महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती को क्यों काली बोलते हैं। अब सीताजी को देख हम लोगों का वह सन्देह दूर हुआ। सीता अपनी सुवर्णतेजमय देहकान्ति में सौगुनी बढ़ गई है। गौरी उपमा में ऐसी नारी-रत्न सीता की छाया के बराबर होंगी। छाया वर्ण में काली है। इसलिए सीता की छायासदृशा गौरीजी भी काली नाम से प्रसिद्ध है। समग्र विश्व में सीता की उपमा के लिए दूसरी कोई भी नारी नही है। रावण ने तीन भुवनों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) में घूमकर देखा था कि वहाँ-वहाँ की नारियाँ सीता से तुलनीया नही। उसने श्री रामजी के हाथों भले ही अपने प्राण दे दिये, परन्तु ऐसी अतुलनीया नारी को वापस नही दिया।" (५)

बामदेब—महादेवजी; गउरी—गौरी, पार्वती। (५)

बदन शोभाकु चाहिँ महीजार कळाकर नाम बिहिला। बिधिर त बिबेक न रहिला। बेदजड़ सिना अनन्ते पुच्छिब अनन्त ताकु होइला हे। बिधाता। बोलिबाकु स्त्री - पदरे सम्भबे। बिनायकमतरु सीताठाबे। बरबर्णिनी बरारोहा उत्तमा रामा होइछि ता भाबे हे। बिधाता। ६।

सरलार्थ—फिर ब्रह्माजी ने पृथिवीकन्या सीता का वदन दर्शन करते हुए चन्द्र को 'कलाकार' का नाम प्रदान किया। क्योंकि यदि

सीता की वदनशोभा से चन्द्र की तुलना की जाय, तो चन्द्र एक ही कला मात्र का है। (अर्थात् सोलह कलाओं से पूर्ण होते हुए भी सीता की शोभा की तुलना में एक कला अर्थात् एक षोडशांश मात्र है।) पुनश्च, वेदाध्ययन करते हुए ब्रह्माजी जड़ (बुद्धिहीन) हो गये थे। यह समझकर कि सीताजी की वदनशोभा असीम है, उन्होंने अपने मन में विचार किया—'मैं जाकर शेषदेव अनन्तजी से पूछूंगा, कहीं वे सीताजी की आननश्री न वर्णन कर सके।' हे विधाता ! विनायकजी के मतानुसार उत्तमनारियों में 'वरवर्णिनी', 'वरारोहा', 'उत्तमा' व 'रामा' आदि के जो सब लक्षण हैं, वे सब पूरी मात्रा में एक हो सीता के शरीर में मौजूद हैं। सुतरां यह कहते ही बनता कि सीता के सदृश सुलक्षणा नारी इस विश्व-संसार में नहीं है। (६)

महीजा—पृथिवीकन्या सीता; कळाकर—चन्द्र। (६)

बाछि बाछि लङ्कपति आणिथिला संसार-सार सुन्दरीङ्कि।
बिदेहजा तहिँ राजाभिषेकी। बिचारुँ एरान ता चाप
दर्शन लभे राम-सन्निधिकि से। बराङ्गी। बोले
सत्यबादी तहिँ ए गिर। बीरधूकु बिनाशि कलि पर।
बिभाबसु पति पद्मिनी मधुपे रसिता ए श्लेषकर गो। बराङ्गि।७।

सरलार्थ—"लका का राजा रावण संसार भर की रमणियों से चुन-चुनकर जिनको ले आया था, उनमें विदेहराजकन्या सीता रूप-लावण्य में श्रेष्ठा है।" सैन्य लोग उनके मनोहर रूप-दर्शन में आपस में ऐसा विचार करते हुए आ रहे थे। इसी समय श्रेष्ठांगों वाली सीताजी की दृष्टि राम पर पड़ी। (अर्थात् श्री रामजी के समीप सीता आ पहुँचीं।) सत्यवादी श्री रामजी ने सीता की ओर निहारकर कहा, "हे वरांगि ! अब शत्रु रावण का विनाश कर मैंने अपने वीरत्व की रक्षा की। परन्तु पद्मिनी के सूर्य के सदृश पति होते हुए भी, वह भ्रमर से रसती है। श्लेष में इसका ऐसा अर्थ ग्रहण करो। मैं विभावसु (सूर्य)-वंशी राजा तुम्हारा पति होते हुए भी, तुम मद्यप रावण के गृह में थी। इसलिए तुम्हारे मन में उसके प्रति अनुरक्ति पैदा हुई होगी। सुतरां अब तुम उसके समान कोई दूसरा पति वरण कर सकती हो।"। (७)

होइ मुहिँ कहिछि आन प्रकारे हे। बिचार। बीतिहोत्रे परीक्षा जणा तार। बोलुँ साधवी कले सीउकार। बणिकभावे इन्धनकूटे अग्नियोगे झासिले सत्वर से। बराङ्गी। ८।

सरलार्थ—यह सुनकर अपने पातिव्रत्य गुण में गर्विता सीताजी ने कहा, "हे नाथ! जिसे लोग 'सुवर्ण' (सोना) कहते है, क्या वह कभी खोटा हो सकता है? वह चाण्डाल के घर में भी शुद्ध है। उसी तरह राक्षस के घर में रहने पर भी मैं शुद्धा हूँ।" यह सुनकर प्रभु श्री रामजी ने कहा, "सुवर्ण (उत्तम अक्षरो) मे भी भूल-चूक है। उसी तरह उत्तम-वर्णा तुम मे भी दोष रह सकता है।" सीताजी ने कहा, "यदि सुवर्ण (उत्तम अक्षरों) मे दोष है, वह तो लेखक का है (लेखक-सदृश आप ही का यह दोष है), मेरा नही। परन्तु 'सुवर्ण' कहने से मेरा मतलव 'सोना' है, 'उत्तम वर्ण' नही।" श्री रामजी ने कहा, "ठीक है, सोने की शुद्धता परखने के लिए उसे आग में जलाया जाता है।" सती सीता ने इसे स्वीकार कर लिया। तब श्री रामजी ने एक सोनार की भाँति लकड़ी मे आग लगा दी। ज्योंही आग जल उठी, सती सीता ने उस अग्नि में प्रवेश किया। (८)

सुवर्ण—सोना, अच्छे अक्षरसमूह (श्लेष); बीतिहोत्रे—अग्नि में; इन्धनकूटे—जलाने की लकड़ियो में। (८)

बिकळे सकळे भाळे कि करुणा न जाणे ए बड़ दारुण। वेधाबिधान हुअइ प्रमाण। बन्धु बन्धु बोलि निराश जळाइ सेकाळे कले करुण से। बीरेन्द्र। बिभाकर-मणि से होइथिले। बिधुमणि भाब पुणि बहिले। बिज्ञे बिचार प्रीतिरे दुइ कथा जळिले पुणि द्रबिले से। बिकळे। ९।

सरलार्थ—सीता को अग्नि में प्रवेश करते देखकर उपस्थित सैन्यों ने कहा, "लोग यह जो बात बोलते है कि श्री रामजी दयासागर हैं, वह बिल्कुल गलत है। वास्तव में वे बड़े निर्दय है।" कुछ लोगों ने ऐसा भी कहा, "इसमें उनका क्या दोष है? विधाता का विधान अवश्य पूर्ण होता है, वह कभी अन्यथा नहीं होता। सीताजी के भाग्य में यह बदा है।" इस समय श्री रामजी ने सीता के प्रति जो नैराश्य व निर्दयता-भाव वहन किया था, उसे आग में जला दिया (अर्थात् उसे अपने मन से त्याग दिया) एवं 'हा प्राणबन्धु सीते! हा प्राणबन्धु सीते!' कहते हुए शोक-प्रकाश किया। पहले जो वीर-श्रेष्ठ श्री रामजी सीता के प्रति सूर्यकान्तमणि

के सदृश प्रज्वलित (कठोर) हुए थे, अब सीता के अग्निप्रवेश से वे चन्द्रकान्तमणि के सदृश प्रीतिभाव-रूपी चन्द्र की शीतलता से द्रवीभूत हो गये अर्थात् पिघल गये। हे पण्डितो ! आप लोग प्रेमपूर्वक इसे विचार कीजिएगा। श्री रामचन्द्रजी में दोनो बाते सम्भव हुईं। (९)

वेधा—विधाता; करुण—शोक; बिभाकरमणि—सूर्यकान्तमणि; विधुमणि—चन्द्रकान्तमणि। (९)

बाळिश बचने जीबन तेजिबा उचित होइला तोहर। बुड़िगला सृष्टि एबे मोहर। बोलाइ कि नाहिँ चन्द्रमा होइले आनअर्थे दोषाकर रे। बराङ्गि। बिंशाक्ष कि तोते छुइँ भाजन। बिबेचना करिण मने घेन। बिळम्ब अबलम्बकु त्यज त्यज न कर कृशानुस्नान रे। बराङ्गि। १०।

सरलार्थ—श्री रामजी ने शोक प्रकाश करते हुए कहा, "अयि सीते ! मुझ जैसे बावले की बात से सहसा तुम्हें अग्नि में अपना जीवन त्यागना क्या चाहिए था ? [भिन्नार्थ में:— अयि बालि ! (सुन्दरि !) मैं तुम्हारा ईश (पति) हूँ। इसलिए तुमने मेरी बात मानकर जो अग्नि में प्रवेश किया, अपना पातिव्रत्य दिखाने की दृष्टि से वह तुम्हारे लिए ठीक ही है।] परन्तु आज मेरा कुल डूब गया। चन्द्र कपूर के समान निर्मल और शीतल है। फिर भी वह दोषाकर (कलंक का स्थान) कहलाता है। उसी तरह पतिव्रता होने पर भी जब तुम रावण के गृह में रही थी, लोग तुम्हें निश्चय असती कहते। इसलिए लोकनिन्दा से डरकर अग्नि में प्रवेश करने के लिए मैंने तुमसे कहा था. परन्तु अयि वरांगि ! क्या बीस आँखों वाला रावण तुम्हें छू सकता ? (अर्थात् नही।) सुतरां अब तुम अग्नि में अपने को मत जलाओ और अग्नि से निकल आओ।"। (१०)

बाळिशबचने—बावले के वचनो से; बाळीशवचने—अयि बालि ! पति के वचनों से (श्लेष); दोषाकर—दोष या कलंक का स्थान, चन्द्र; कृशानुस्नान—अग्नि में प्रवेश, अग्नि में बलि चढ़ाना। (१०)

सरलार्थ—श्री रामजी ने आगे कहा, "अयि सीते ! जैसे बिजली मेघ की देह में कुछ समय के लिए लीन (ओझल) होकर फिर प्रकाशित होती है, वैसे कुछ समय के लिए मेरे निकट से दूर हो जाने पर भी अब मेरे भाग्य से तुम फिर आकर मेरे अक में क्रीड़ा करोगी।" ज्योंही रामचन्द्रजी यह बोले, सीताजी निर्मल होकर अग्नि के भीतर से ऐसे निकलीं, जैसे कोई जलमग्न व्यक्ति जल के मध्य से निकलता है। यह देखकर समवेत जन-मण्डली ने 'जय', 'जय' ध्वनि उच्चारण करते हुए कहा, "क्या राहु के मुख से चन्द्र मुक्त हुआ!" इस समय में देवता लोग आकाश से ऐसे खिसक आये जैसे पक्षी लोग खिसक आते है। (११)

बारिद अंगरे—मेघ के अंक में; चञ्चळा—बिजली; बिधु—चन्द्र; बिहायसरु—आकाश से; बिबुधे—देवता लोग। (११)

बिदित शिरी पञ्चास्य आदि करि परेतराट बरुणहिँ। बासबर त परिमळ शोहि। बिळसन्ता हेले मयूरे गन्धर्बे मरुते अपूर्ब नोहि से। बिदुषे। बिचित्र ए अजजाते रुचिर। बोले श्री त्यक्त करिबा बेभार। बिष्णु तुम्भे राजकुमार स्वभावे युबा-बयसरे सार हे। बिचार। १२।

सरलार्थ—यह जानकर कि सीताजी अग्नि से निकली हैं, महादेवजी से आरम्भ कर यम, वरुण, इन्द्रादि अनुराग प्रकाश करने के निमित्त निर्मल हृदय से उस स्थान पर आ पहुँचे। उसी तरह किन्नर, गन्धर्व और उनचास पवन भी वहाँ आ पहुँचे। ये सब देवता अपना-अपना सहज स्वरूप धारणपूर्वक आये थे। हे पण्डितो! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं था। किन्तु अजपुत्र दशरथ जो वहाँ आ पहुँचे, यही एक मात्र आश्चर्य था। उन्हीं दशरथजी ने अपने मनोरम कण्ठ में राम से मनोरम कथा कही, "हे श्रीराम! तुम विष्णु, स्वभावत: राजकुमार, फिर युवक-श्रेष्ठ हो। ऐसे समय में श्री (अर्थात् लक्ष्मी अथवा गृहलक्ष्मी सीता) को त्यागना तुम्हारे लिए उचित नहीं—यह विचार करो।"। (१२)

शिरी—श्री, लक्ष्मी, सीता; पञ्चास्य—महादेव; परेतराट—यम; अजजात—दशरथ। (१२)

बृषाञ्जन कहि बासुकि श्री येहि तुम्भे मोहपरि भोगरे। बसुन्धरा फुटि जात योगरे। बह्नि ग्राहाकु जीर्ण करि न पारे आन के धर्षिब तारे हे। बिचार। बोले राघब जन-अपबाद। बिध्वंसिलाइँ भल ए कि मन्द। बिश्वम्भर येबे मुहिँ मोते तेबे सेबिबे भूदेबबृन्द हे। बिनये। १३।

सरलार्थ—अनन्तर महादेवजी ने कहा, "हे रामचन्द्रजी ! भोग के विषय में आप मेरे ही समान हैं। क्योंकि मैं वासुकि (नागराज शेषदेव) की श्री (शोभा) का हार के रूप मे उपभोग करता हूँ। आप भी उसी तरह वासुकि (शेषदेव को शय्या या लक्ष्मणजी को भ्राता के रूप में) का व श्री (लक्ष्मी अथवा सीता को पत्नी के रूप मे) का उपभोग करते हैं। जो सीता अयोनिजा है, जो उत्तम योग में भूमि को भेदकर उत्पन्न हुई हैं, जिन्हें अग्नि भी हजम नहीं कर पायी, उन्हें दूसरा ऐसा कौन पुरुष है, जो धर्षण करे ? आप यही विचार करे।" महादेवजी से यह सुनकर श्री रामजी ने कहा, "रावण ने सीता को चुरा लिया था। इसलिए वे कहीं व्यभिचारिणी न हो गई हों—इसी लोकनिन्दा का विध्वस करने के उद्देश्य से मैंने सीता की अग्नि-परीक्षा की। अब आप लोग विचार करें कि मैंने अच्छा किया या बुरा। और भी, यदि मै विष्णु हूँ, तो ब्राह्मण लोग विनय से मेरी सेवा करें।"। (१३)

बृषाञ्जन—महादेवजी; श्री—शोभा, लक्ष्मी; भूदेववृन्द—ब्राह्मणों का समूह। (१३)

ब्रह्मा बोइले मो पुत्र शिब बोले मो मित्र जाणि अनुसरे। बिहरिबे ताङ्क पुत्र सेबारे। बर्त्तिबे सैन्य रक्ष-दुष्टबिहीन तेबे आज्ञा-पाळनरे हे। बिबुधे। बृष्टि सुधा ये बसन्त मरुत। बशे समस्त कला पल्लबित। बश दुष्टर मृत्युभाबे रहिले थिला जने आचम्बित हे। बिदुषे। १४।

सरलार्थ—यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा, "हे देव ! मेरे पुत्र वशिष्ठ ने यह जानकर कि आप विष्णुजी हैं, हमेशा आपका अनुसरण किया है।" शिवजी ने कहा, "मेरे मित्र वामदेव ऋषि ने भी आपको विष्णु समझकर सर्वदा आपका ध्यान किया है। उनके पुत्र अब आपकी सेवा में कालाति-पात करेंगे।" यह सुनकर प्रभु श्री रामजी ने कहा, "हे देवो ! दुष्ट राक्षसों को छोड़कर हमारे जितने वानर और भल्लुक-सैन्य युद्ध में मारे गये है, हमारे आदेशपालन के लिए अब वे लोग फिर जी उठे।" तब देव लोगों ने अमृत की वृष्टि की। तो मृत वानर और भल्लुक-सैन्य वैसे ही जी उठे, जैसे वसन्तकाल में मलयपवन से सूखे पेड़ पनप उठते हैं। परन्तु जैसे वसन्त में बाँस वृक्ष नहीं पनपते, वैसे मृत राक्षस नहीं जिये। हे पण्डितो ! यह देखकर उपस्थित दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। (१४)

सुधा—अमृत; बसन्त मरुत—वसन्तकालीन मलयपवन; बिदुषे—हे पण्डितो ! (१४)

ब्यापारे बळि बिनिद्र - जन यथा युद्धार्थे तथा सर्बे धाइँ। बेनि दिग मन्त्रीए निबर्त्ताइ। बाहुड़िले शूरे सर्बे अयोध्याकु जबे यिबा केहि कहि हे। बीरेन्द्र। बिभीषण पुष्पक समर्पइ। बइदेहीङ्कि मन्दोदरी तहिँ। बिळोहि रहिले श्रीराम सबळे बसन्ते गगने याइ से। बिमान। १५।

सरलार्थ—अत्यधिक श्रम से थके हुए लोग सो जाते है, फिर चेतना पाकर वे जग उठते हैं और अपने-अपने काम मे लग जाते है। वैसे यहाँ वानर व भल्लुक-सैन्य अमृतवृष्टि से जगकर 'धरो, धरो', 'पकड़ो,पकड़ो', 'मारो, मारो' चित्कार करते हुए युद्ध के लिए तैयार हुए। परन्तु दोनो पक्षों (श्री रामजी और विभीषण) के मन्त्रियों ने आकर उन्हें समझा-बुझाकर युद्ध से निवृत्त किया। अनन्तर वीर सैन्य वहाँ से जाकर श्री रामजी के पास उपस्थित हुए एव उनसे बोले, "हे वीरेन्द्र चलें, शीघ्र अयोध्या चले।" इसी समय विभीषणजी ने श्री रामचन्द्रजी को पुष्पकविमान समर्पण किया। सीता ने उस विमान में आरोहण किया, तो मन्दोदरी उनकी सेवा में नियुक्त रही। अनन्तर प्रभु श्री रामजी अपने सैन्यों सहित जा उस यान में बैठे, तो वह रथ आकाशमार्ग में चलने लगा। (१५)

बिनिद्र—निद्रा से जगकर; बिळोइ—सेवा करके। (१५)

बर्ण्ण बर्ण्णने अमरबरमणि मरकत करि याहारे। बाचक से प्रियारे स्नेहभरे। बसिबा दम्पति सम्पत्तिरे रथे प्रते न थिला मनरे रे। बान्धबि। बाळामणि शुणि कले उत्तर। बिपत्तिकि साक्षी पुणि ए मोर। बिरस हरष स्परशकु दरशन कला दइबर हे। बान्धब। १६।

सरलार्थ—इन्द्रनीलमणि व मरकतमणि के सदृश कान्ति वाले श्री रामजी ने स्नेहातिरेक से अपनी प्राणप्रिया सीता से कहा, "अयि वान्धवि! मेरे मन में यह विश्वास कदापि नही था कि हम दोनो पति-पत्नी-सम्बन्धरूपी सम्पत्ति लिये इस रथ में इकट्ठे बैठे।" यह सुनकर नारी-शिरोमणि सीता ने कहा, "यह पुष्पकयान मेरी विपत्ति व सम्पत्ति —दोनों अवस्थाओं का साक्षी है। इसीने मेरी दोनो स्थितियों के दर्शन किये है। (क्योंकि रावण इसी रथ मे मुझ दु.खिनी को चुरा ले गया था और आज इसीमे मैं आपके सहित आनन्द से गमन कर रही हूँ। हे प्राणनाथ! आप इसे विचार करे।)"। (१६)

अमरबरमणि—इन्द्रनीलमणि; दम्पति—पति-पत्नी। (१६)

बिदर्पकर दर्पकर रुचि ग्रे भारती रचि से बिचित्रे।
बहे तृणाङ्कुर मेरु तो गात्रे। बन्ध बन्धन नळहेतु
जळरे तथा रहिछन्ति गोत्रे रे। बन्धबि। बरुणर
प्रसन्न मने ध्याइ। बिहि ए स्थाने कुशशय्या मुहिँ।
बामाक्षी भाषे अशोक - बन दिशे एथेँ मुँ
महीरे शोइ हे। बान्धब।१७।

सरलार्थ—यह सुनकर कन्दर्परूप-विजयी श्री रामचन्द्रजी ने आश्चर्य से कहा, "हे सखि! जैसे तृणांकुर मेरु का वहन करता है, वैसे तुम्हारी सूक्ष्म कटि ने तुम्हारे स्तनद्वय को धारण किया है। उसी तरह यहाँ नल के द्वारा सेतुबन्ध बाँधे जाने से जल पर पर्वतसमूह टिके हुए है। हे बान्धवि! वरुणदेवता को प्रसन्न करने के लिए उनका मन मे ध्यान करते हुए मैंने यही-कुशशय्या की थी।" यह सुन वामाक्षी सीता ने कहा, "हे देव! यह जो अशोकवन दिखाई पड़ रहा है, वही आपके विरह में मैं सारे सुखोंको छोड़कर भूमि पर सो रही थी। हे प्राणनाथ! आप इसका विवेचन कीजिए।"। (१७)

बिदर्पकर—गर्व चूर करनेवाले; दर्पकर—कन्दर्प का; भारती—वचन; गोत्रे—पर्वत। (१७)

ब्यबस्थिते देख माल्यबन्तकेशि[१] माल्यबन्त[२] राम
कथित। बञ्चिबारे बरषा कि ब्यथित। बरगिलुँ
दूत तो पाशे उदन्त घेनि से बाहुड़ि स्थित रे।
बान्धबि। बृक्ष शिंशपा ए से सीता बोलि। ब्यथाबशे
मुँ य्रथा आश्रा कलि। बारता पाइँ ता तळे
आशा[१] बृद्धि आशामान[२] चाहुँथिलि हे। बैल्लभ।१८।

सरलार्थ—श्री रामजी ने कहा, "अयि मालाविमण्डितकुन्तले! देखो, यह जो माल्यवन्त पर्वत दीख रहा है, उस पर मैंने तुम्हारे विरह से वर्षाकाल बड़ी व्यथा से बिताया। और भी वही रहकर मैंने तुम्हारे निकट दूत भेजा था। वही दूत तुमसे वार्त्ता लेकर वापस आया और यहीं पहुँचा।" यह सुनकर सीता ने कहा, "हे नाथ! उधर देखिए। लंकागढ़ के मध्य में अशोक नामक वह जो ऊंचा वृक्ष दिखाई दे रहा है, व्यथा के वश होकर मैंने उसीका आसरा किया था। उसी अशोक वृक्ष के तले आपका संवाद पाकर मेरे मन में आपसे मिलने की आशा बढ़ने लगी एवं मैं विभिन्न दिशाओं को देख रही थी कि किस दिशा से मेरे प्राणपति आकर मेरा उद्धार करें।"। (१८)

माल्यवन्त[1] केशि—अयि मालाविमण्डित-कुन्तले सीते ! ; माल्यवन्त[2]—माल्यवन्त पर्वत (यमक); बरगिलुं—भेजा; उदन्त—संवाद; शिशपा—अशोक; आशा[1]—उम्मीद; आशा[2] मान—दिशाओ को (यमक)। (१८)

बिकुक्षिबंशी बोलन्ति क्षीणकुक्षि अना ए ऋष्यमूक दिशि। व्यापिथिला सन्ताप तमनिशि। बायुज अरुण सह मित्र सम्पादरे हृदपद्म तोषि रे। बान्धवि। बिद्ध कउशिक-भब गुप्तरे। बइदेही प्रमाण ताहा करे। बिहीन मुँ चन्द्र तार भूषणरे दीन होइ एहिठारे। हे बान्धब। १९।

सरलार्थ—विकुक्षिवशी श्री रामचन्द्रजी ने कहा, "अयि कृशकटि सीते ! अब देखो, उधर जो पर्वत दिखाई पड़ रहा है, उसका नाम है ऋष्यमूक। तुम्हारे विछोह के समय मैं उसी पर्वत पर अवस्थान कर रहा था। तब चिन्ता अन्धकारमयी रजनी के समान मेरे हृदय मे उमड़ी-घुमड़ी थी। ऐसे समय में पवनपुत्र हनुमान् जी मित्र सुग्रीव के सहित आविर्भूत हुए और उन्होंने मेरा सुग्रीवजी से कथोपकथन कराके मेरे हृदय से चिन्तान्धकार को दूर किया, जैसे अरुण (सूर्य-सारथि) मित्र (सूर्य) के सहित उदित होकर अन्धकार को दूर करते हैं। ऐसे कथोपकथनरूपी प्रकाश ने मेरे हृदय-पद्म को विकसित किया था। अरी सखि ! यहीं मैंने इन्द्रपुत्र बालि का विनाश किया था।" यह सुनकर सीता ने विश्वास करते हुए कहा कि यह सब सत्य ही है। फिर उन्होंने कहा, "हे नाथ ! इसी ऋष्यमूक पर्वत पर मैंने अपने सोने के गहने आँचल में बाँधे इसी आशा से कि आप इन्हे पा ले, नीचे फेंक दिये थे।"। (१९)

अना—निहारो, देखो; बायुज—पवनपुत्र हनुमान् जो; मित्र—बन्धु, सूर्य (श्लेष); कउशिकभब—इन्द्रपुत्र बालि; चन्द्र—सोना। (१९)

बिच्छेद थिला दम्भ-तरु तरुणि बिच्छेद-परशु तोहर। बाहुबन्धे पड़िलुँ कबन्धर। बिनादर कला सोदर ए स्थाने गिर आदरि रामर ये। बराङ्गी। बोले तुम्भे बळबन्त केशरी। बिचार मुँ अबळा सुकुमारी। बिलो कन करिबा पञ्चबटीकि एहि सिना कष्टकारी हे। बान्धब। २०।

सरलार्थ—अनन्तर श्री रामजी ने कहा, "अरी तरुणि ! जब तुम्हारे विरह-परशु ने मेरे दम्भ-तरु का छेदन किया था, उस समय हम लोग कबन्ध राक्षस के बाहुबन्धन में पड़े थे। तब छोटे भाई लक्ष्मण ने उसका वध

करके हम लोगों को निर्भीक कर दिया था।" सीता ने श्री रामचन्द्रजी के वचनों को सादर स्वीकार करते हुए कहा, "हे नाथ! आप बलिष्ठ सिंह के सदृश हैं और मैं अबला सुकुमारी हूँ। इसी पंचवटी वन की ओर देखिए। हे बान्धव! यही वन हम लोगो के लिए कितना कष्टदायक था! यहीं से रावण ने मुझे फिर चुरा लिया! इससे हम दोनो में क्या ही व्यथा नहीं उपजी!"। (२०)

परशु—कुल्हाड़ा; केशरी—सिंह। (२०)

बाहुजबर बोइले बन दोष बान्धबि मनरे न घेन। बणिजर भाब करि बर्द्धन। बसाइ बिच्छेद-तुळपात्रे तुळि देला सिना प्रेमधन रे। बान्धबि। बारे निरेख चित्रकूट गिरि। बिनोदकु थिलु एथें आदरि। बोलुँ भरद्वाज बने मिळे रथ रह बोलि ग्रेणु स्मरि से। बीरेन्द्र। २१।

सरलार्थ—क्षत्रियश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी ने कहा, "हे बान्धवि! अपने मन मे वन का दोष ग्रहण न करना। क्योंकि ऐसा प्रमाण है— कोई भूमि की निन्दा नही करता। उस पंचवटी वन ने बनिये के सदृश होकर वाणिज्यभाव बढ़ाया है। उसने बिछोहरूपी तराजू पर तुम्हारे और मेरे प्रेमधन को रखकर तौल दिया। (अर्थात् इसकी तुलना कर दी कि किसमें प्रेमधन किस मात्रा में है।) इसमें वन का ज़रा भी दोष नही। हे बान्धवि! एक बार चित्रकूट पर्वत की ओर निरीक्षण करो। एकदा हम दोनों ने यहाँ भी आदर से विहार किया था।" ऐसे कहते-कहते रथ भरद्वाज ऋषि के आश्रम के निकट आ पहुँचा। वीरेन्द्र श्री रामचन्द्रजी ने रथ के लिए 'रह' (ठहर) का स्मरण किया, तो रथ वही रुक गया। (२१)

बाहुजबर—क्षत्रियश्रेष्ठ; बणिजर—बनिये का। (२१)

ब्योमरे अमरे गमन्ति कि ऋषिकुमरे मने करिथिले। बळ त्रिबिधिरे ग्रहुँ देखिले। बळितिरस्कार त्रिबिक्रम तहिँ देखि गुरुङ्कु कहिले से। बिदुषे। ब्यग्र होइ पूजन कले आसि। बेळुँ बेळ होइले अति तोषी। बिभिन्नकर हिरण्यप्रभ रङ्गे से नरकेशरी भाषि से। बिदुषे। २२।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी को ससैन्य पुष्पकविमान में जाते हुए देखकर ऋषि-बालकों ने समझा, क्या देव लोग इस पुष्पकविमान मे बैठकर

आकाशमार्ग में जा रहे है। परन्तु ज्योंही उन्होने उक्त रथ में भल्लुक, वानर व राक्षस —इन तीन प्रकार के सैन्यों और बलिलांछनकारी श्री रामचन्द्रजी को देखा, साथ-ही-साथ उन्होने जाकर ऋषि भरद्वाज से कहा, "हे मुने ! इस रथ में श्री रामचन्द्रजी दिखाई दे रहे है।" शिष्यों से यह सुसंवाद सुनकर भरद्वाज मुनि ने बड़ी व्यग्रता से श्री रामजी के पास गमन किया एव उनकी पूजा की। अत्यन्त आनन्द से भरद्वाजजी ने श्री रामजी से कहा, "हे रामचन्द्रजी ! आपने हिरण्यकशिपु-समान पराक्रमी रावण को युद्ध में नरसिंह के समान अपने कर-शरों से विदीर्ण करके विनाश किया और मनुष्यों में श्रेष्ठ (नरसिंह नाम से) परिचित हुए।"। (२२)

बळ त्रिविधि—भल्लुक, वानर व राक्षस तीन प्रकार के सैन्य; हिरण्यप्रभ—हिरण्यकशिपु के समान राक्षस को; नरकेशरी—नरसिंह। (२२)

बसाइ आश्रमे आसने शुणिले कान्ताबिच्छेद कष्ट खेद। बध करिबा कबन्ध क्रब्याद। बिद्ध सप्तशाळ सुग्रीब सपक्ष कपीन्द्र करिबा भिद हे। बिदुषे। बारि परे महीधर भासिबा। बंश सहिते राबण नाशिबा। बहिला गर्ब सर्ब मोरे होइछि शुणि मुनि प्रशंसिबा ये। बातज। २३।

सरलार्थ—भरद्वाज ऋषि ने श्री रामजी को आश्रम में ले लिया एवं उन्हें आसन पर बैठाया। अनन्तर उन्होने उनसे सीताहरण-जनित-विच्छेद, कबन्ध राक्षसविनाश, सप्तशालभेदन व वानरश्रेष्ठ वालिविनाश, सुग्रीव-मित्रता-स्थापन, जल पर पर्वतो का उतराना, सेतुबन्ध निर्माण, लंकागमन और रावण का सवश विनाश आदि प्रसग अच्छी तरह सुने और उनकी बड़ी प्रशंसा की। मुनि के मुख से श्री रामजी की प्रशंसा सुनकर हनुमान् जी ने अपने मन में गर्व-वहनपूर्वक कहा, "ये सब मेरे ही द्वारा सम्भव हुए है।"। (२३)

कान्ताबिच्छेद—पत्नी (सीता) का बिछोह; क्रब्याद—राक्षस; कपीन्द्र—वानर-श्रेष्ठ बालि; भिद—वध; महीधर—पर्वत; भासिबा—उतराना; बातज—पवनपुत्र हनुमान् जी। (२३)

बन्द्य बन्दनीय जाणि तार मन बारुणी बने पठिआइँ। बिच्छन्दरे महाभुज देखाइ। बिन्धाण मल्लस्तम्भरे कला प्राय युद्धारम्भे फुटि रहि से। बातज। बिभाबरी सम्मुखरे येमन्त। बनरुहरे बन्दी मधुव्रत।

बिमुक्त कला तहिँरु राम नाम-स्मरण होइ प्रभात से।
बिदुषे। २४।

सरलार्थ—परमपूज्य श्री रामजी ने हनुमानजी का अभिमान समझकर उन्हें वारुणी नामक वन में भेज दिया। जब हनुमानजी वहाँ पहुँचे, अन्तर्यामी श्रीराम की माया से प्रेरित महाभुज नामक राक्षस उनके मुकाबले में आया। जैसे पहलवान मल्लस्तम्भ से खेलते हैं; वैसे हनुमानजी ने उससे युद्धारम्भ किया। परन्तु अन्त में हनुमानजी हार गये। इस समय शाम आ पहुँची। जैसे भ्रमर पद्मपुष्प में बंदी होता है, वैसे हनुमान् जी राक्षस के हाथो बन्दी हुए। हनुमान् जी ने विवश होकर राम-नाम का स्मरण किया। उक्त नाम ने प्रभात-सदृश हनुमान् जी को बन्धनमुक्त कर दिया। (२४)

बिच्छन्दरे—माया से; बनरुह—कमल; मधुब्रत—भ्रमर। (२४)

बोध कले प्रभु भेटुँ आसि तेजहीने देइ एहि लक्ष्य त।
ब्याघ्र नासाछिद्र-घाते ब्यथित। बिमर्द्दने क्षम कदा नोहे होए कि ता प्राकर्म निन्दित हे। बातज। बिघ्नहीने या रभस त्रासित। बिजयी तु हुअ आझुँ जगत। बोलिण कैकेय पाशकु प्रेषित जाणिबा पाइँ उदन्त से। बीरेन्द्र। २५।

सरलार्थ—पराजित हनुमान् जी निस्तेज होकर श्री रामजी के समीप आ पहुँचे। प्रभु ने उनका मनोभाव जानकर कहा, "हे मारुति ! बाघ को पिंजड़े में पकड़ कोई उसकी नाक में छेद बना दे, तो उस पीड़ा से वह कष्ट पाता है और दूसरों को नही कुचल दे पाता। तो भी उसके पराक्रम की निन्दा नही की जा सकती। हे पवनसुत ! आसानी से जो डरकर हार जाते है, वे ही निन्दा के योग्य है। (तुम तो रावण-युद्ध से थके हुए थे। इसलिए यहीं हार गये। इसमें तुम्हारी निन्दा नहीं।) अब हम तुमको यही वरदान दे रहे है कि "तुम जगत भर में विजयी बनो।" यह कहकर प्रभु श्री रामजी ने हनुमानजी को अयोध्या में भेजा ताकि वे भरत को अपने आगमन की वार्ता पहले से दे। (२५)

प्राकर्म—पराक्रम; रभसे—शीघ्र ही; कैकेय—भरत; उदन्त—वार्त्ता, संवाद। (२५)

बदाइथिले शृंगबेरपाळक मेळ होइ राग जाणिला।
बराटक बिना गिरे किणिला। ब्योम नासिका परा होइ आकाशे बिळास प्रकाश कला से। बातज। बल्मीकरु

येमन्त इन्द्रचाप। ब्यापि नभरे धरे प्रभारूप। बिचित्रता देखि अयोध्यागमने उत्सुक शबराधिप हे। बिदुषे। २६।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी ने हनुमान् जी से कहा था, "चलते समय मार्ग में हमारे मित्र शृंगवेर पुर के राजा गुहक शवर से हमलोगों का आगमन-समाचार देकर जाना। हनुमानजी ने गुहक से मिलकर उन्हे उक्त समाचार दिया। उससे गुहक ने समझ लिया कि प्रभु का मुझसे पूर्व अनुराग अब भी है। इसलिए प्रभु के सेवक हनुमानजी को उन्होने कौडियों के बदले वचनों ही के द्वारा खरीद लिया। (अर्थात् गुहकजी ने वचनों से हनुमानजी को प्रीत किया।) वहाँ से हनुमानजी ने एक भरत-पक्षी के सदृश आकाश मार्ग में गमन करते हुए ऐसे प्रभामय रूप धारण किया, जैसे बिमोट से निकला हुआ इन्द्रधनुष आकाश मे फैल जाता है। यह विचित्र दृश्य देखकर गुहक को आश्चर्य हुआ। अनन्तर शवराराज गुहक अयोध्या जाने के लिए उत्कण्ठित हुए। (२६)

बदाइथिले—कहा था, बोले थे; शृंगवेरपाळक—गुहकशवर; राग—अनुराग, स्नेह; बराटक—कौड़ियाँ; ब्योमनासिका—भरतपक्षी; बल्मीकरु—बाँबी से; इन्द्रचाप—इन्द्रधनुष। (२६)

बिभर्त्ति करिछि भरत भरतखण्ड लक्ष नृप ससैन्ये। बहे नन्दीग्राम लक्ष्य एसने। बहुत तारका नभप्रतिबिम्बे जळपात्रके येसने हे। बिदुषे। बितर्कइ ता देखि हनुमन्त। बैमातृकरे लक्ष्मण भरत। बासित पुष्प से ए कण्टकपत्र एका केतकीरु जात हे। बिधाता। २७।

सरलार्थ—हनुमानजी ने जाकर देखा कि नन्दीग्राम में भरतजी ने भरतखण्ड से एक लाख सख्यक राजाओं को ससैन्य भर रखा है। क्योंकि गन्धमादन पर्वत लेते समय हनुमानजी ने भरतजी को यह खबर दी थी कि लंका में राम और रावण के बीच भयंकर सग्राम चल रहा है; तब से भरतजी ने बहुत-से राजाओं को ससैन्य निमन्त्रित कर अपने यहाँ रखा था, ताकि भरतजी उन्ही की सहायता से लंका में रावण से युद्ध करके रावण का विनाश और सीता का उद्धार करे। असंख्य सैन्यों से पूर्ण नन्दी-ग्राम हनुमानजी को ऐसा प्रतीत हुआ जैसा जलपात्र में प्रतिबिम्बित नक्षत्र-विमण्डित आकाश। परन्तु हे पण्डितो! ससैन्य राजाओं को देख हनुमानजी को यह शंका हुई थी कि भरतजी ने श्री रामजी के प्रति शत्रुता ठानी है। इसलिए उन्होने अपने मन मे यह विचार किया कि श्री रामचन्द्रजी के सौतेले भाई भरत और लक्ष्मण ने क्रमश केवड़े के पत्र व पुष्प के गुण का

वहन किया है। केवड़े का बड़ा पुत्र पत्र कण्टकयुक्त और छोटा पुत्र पुष्प सुगन्धित होता है। वैसे यहाँ बड़े भरत ने श्रीराम से कण्टक (शत्रु) भाव और कनिष्ठ लक्ष्मण ने उनसे पुष्प (स्नेह) भाव वहन किया है। हे विधाता ! तुमही सारी घटनाएँ संघटित कर सकते हो। (२७)

येसने—जैसे; बैमातृक—सौतेले भाई; केतकी—केवड़ा। (२७)

बोलाबोलि हेउँ लंका कटकाइ लग्न केउँदिन श्रबणे। बिबेकता लांगळी सुलक्षणे। बाह्य कर्कश देखाइ रसगर्भ होइगला ततक्षणे से। बातज। ब्योमुँ खसि भरते प्रणिपत्य। बिग्रहरे देखि सेहु जड़ित। बार्त्ता कि बार्त्ता कि पुच्छु जय करि प्रभु बिजय भाषित से। बातज। २८।

सरलार्थ—हनुमानजी आकाश मे रहते हुए ऐसा विचार कर रहे थे। ऐसे समय मे उन्हें सुनाई पड़ा कि राजा लोग भरतजी से पूछ रहे हैं, "लंकागढ़ को रवाना होने के लिए लग्न कब है ?" यह सुनकर हनुमानजी ने विचार किया कि भरतजी नारियल फल के लक्षणो से सुशोभित हैं। इनका बाहर भले ही कठोर मालूम पड़ रहा हो, परन्तु हृदय श्री रामजी के प्रति अनुराग से परिपूर्ण है। यह विचार करते हुए हनुमानजी साथ-ही-साथ आकाश से उतर आये और भरतजी को प्रणाम किया। भरतजी ने हनुमान को गले लगाते हुए पूछा, "क्या खबर है ? बताइए।" हनुमानजी ने कहा, "रावण को जीतकर विजयी प्रभु अब अयोध्या वापस आ रहे है।" । (२८)

लांगळी—नारियल; प्रणिपत्य—प्रणाम किया; बिग्रहरे जड़ित—शरीर को आलिंगन करना, गले लगाना। (२८)

बारबामा मुखुँ धात्री शुणि भणु जनयित्रीगण आसिले। बाणी सलक्षणटिकि भाषिले। बोइले रामचन्द्र उदे पूर्णरे क्षीणे सिना मुञ्चिथिले से। बातज। बधाइकि बहुत रूपे देइ। बिचारन्ते पाछोटि यिबा तहिँ। बिमाने गगने आसन्ति सिना से स्वनाम लक्ष्यरे बहि से। बातज। २९।

सरलार्थ—धात्रियों ने वारांगनाओं के मुखों से यह खबर कि हनुमानजी श्री रामजी की आगमनवार्ता दे गये है, सुनकर उक्त वार्ता माताओं को दे दी। माताओं ने हनुमानजी से पूछा, "क्या रामचन्द्र सर्व-शुभ से लक्ष्मण के सहित आ रहे है ?" हनुमानजी ने उत्तर दिया, "रामचन्द्र रूपी रमणीय चन्द्र सदा पूर्ण लक्षणों के साथ उदित होते हैं।

कुछ ही दिनों के लिए अपनी सीता को खोकर वे लक्षणहीन चन्द्र के समान क्षीण हो गये थे। अब तो वे सीता और लक्ष्मण के सहित पूर्ण लक्षणयुक्त चन्द्रमा के समान सहर्ष आ रहे है।" हनुमानजी से यह वार्ता पाकर जननियों के समेत भरत ने उन्हे बहुत बधाइयाँ दीं। अनन्तर भरत प्रमुख सब लोग श्री रामजी की अगवानी करने को निकले, तो हनुमानजी ने कहा, "श्री रामजी रमणीय चन्द्र के सदृश आकाशमार्ग में (पुष्पक विमान पर) आ रहे है।"। (२९)

वारबामामुखु—वेश्याओं के मुखों से; धात्री—धाय; जनयित्रीगण—माताएँ। (२९)

वनौका आश्रमे पुष्पकाळ शेष करि अशेष तोषभर। बइदेही भोगरे ततपर। विगत अनंग-ज्वर-सन्निपात-भय स्यन्दन बिहार से। वीरेन्द्र। वाद्य शुभन्ते धरणी उछुळि। बाहु ऊर्ध्वे नृपतिबृन्द तोळि। बहुत काकतचकी रज्जु धृत कुतुकी कि दृष्टिशाळी से। विदुषे। ३०।

सरलार्थ—श्री रामजी ने वनवासी भरद्वाज ऋषि के आश्रम मे वह रात विताई। उन्होंने वैदेही का सम्भोग करके सन्तोष लाभ किया और कामज्वर सन्निपात रोग से आरोग्य लाभ किया। प्रभात में वीरेन्द्र श्री रामजी ने फिर रथ में विहार किया। इसी समय ज्यों-ज्यों श्री रामजी अयोध्या के समीप बढ़ते आये, उनके सहित आये सैन्यो की वाद्यध्वनि से पृथिवी गूँज उठी। वहाँ के राजासमूह अपनी-अपनी बाहुएँ उठाते हुए आनन्द से श्री रामजी के रथ की ओर निहारने लगे, जैसे विनोदी लोग कागज पतंग के धागे को पकड़कर निरीक्षण करते है। (३०)

वनौका—ऋषि (भरद्वाज); पुष्पकाळ—रात्रि; अनंगज्वर—कामपीड़ा; स्यन्दन—रथ; काकतचकी—कागज से बनी पतंग। (३०)

बाल्य अबस्था सुमरणा निर्जरे सारणी फिंगिला परिरे। बिमान ये खसि आसि सत्वरे। बिळसि पारावत वृक्षे बसिबा पराये स्थित महीरे से। बिमान। व्योमकेश बोलान्ति त्रिलोचन। बुझिबारे उपमा बिद्यमान। बिभूषिथिले पारिजातमाळकु खसि से हेला पतन कि। बिदुषे। ३१।

सरलार्थ—युवकलोग अपने-अपने बचपन को याद करते हुए जैसे लट्टू फेकते है, वैसे पुष्पकरथ शीघ्रता से आकाश से खिसकता हुआ भरत आदि के समीप भूमि पर उपस्थित हो गया, जैसे कोई कबूतर आकाशमार्ग

में उड़ता हुआ एकाएक आकर वृक्ष पर बैठ जाता है। फिर महादेव (शंकर) जी व्योमकेश कहलाते है, क्योंकि व्योम (आकाश) उनके केशों (बालों) के सदृश है। तो वह रथ भूमि पर उतरते समय ऐसे प्रतीत हुआ, जैसे महादेवजी के केशो (आकाश) से पारिजातमाला खिसक पडी। हे पण्डितो ! यह उपमा इसीलिए दी गयी कि पारिजात पुष्प और पुष्पक-विमान दोनो ही सफेद है। (३१)

निर्जरे—युवक लोग; सारणी—लट्टू; पारावत—कबूतर। (३१)

बन्धाइ कि चूड़ा रसा रसाळसा आकाश बेशकारी बशे। बिराजइ ऋक्षप्रभाजाळे से। बिन्यस्त कर्बूर काठिकि सुकरे रामगर्भ दिब्यबासे से। बिदुषे। बाहारन्ते से रथुँ रघुमणि। बिकाशे कि पूर्वाद्रिरु तरणि। बिप्र नृपति कळाप कराञ्जळि निउँछाळि स्तुति भणि हे। बिदुषे। ३२।

सरलार्थ—जब पुष्पकरथ भूमि पर उपस्थित हुआ, फिर एक उपमा परिलक्षित हुई। मानो आकाशरूपी वेशकारी ने पृथिवीरूपिणी नारी का वेशविधान किया, तो उक्त पुष्पकविमान पृथिवी-रमणी की जूड़ा के सदृश प्रतीत हुआ। जूड़ा नक्षत्रप्रभा (चन्द्रगुच्छा नामक गहनों की प्रभा) से विभूषित रहती है। वैसे यहाँ पुष्पकविमान ऋक्षों (भल्लुको) के तेज-समूह से सुशोभित हो रहा है। पुनश्च उत्तम हाथों से जूड़ा मे सुवर्ण का झब्बा जड़ा होता है एव जूड़ा के केशों मे फूल सुशोभित होते है। वैसे उक्त रथ में श्री रामजी और राक्षस लोगों के बैठने से वह मनोहर दिखाई दे रहा है। वह रथ उत्तम गृह के सदृश हुआ है। हे पण्डितो ! श्री रामजी उक्त रथ से जब बाहर आये, तो ऐसे प्रतीत हुए मानो पूर्व दिशा के उदय-पर्वत से सूर्य निकल रहे हो। उस समय ब्राह्मणों तथा नरपतियों ने वहाँ उपस्थित होकर आरती उतारते हुए स्तुति वाक्यों का पाठ किया। (३२)

रसा—पृथिवी; रसाळसा—नारी; ऋक्षप्रभा जाळे—नक्षत्रप्रभा (चन्द्रगुच्छा अलंकारों की प्रभा) से, भल्लुकों के तेजसमूह से (श्लेष); कर्बूर—सुवर्ण, राक्षस (श्लेष); निउँछाळि—आरती उतारते हुए। (३२)

बड़ देउळ अग्रतरे गुण्डिचा रथ ये देखिछ तरक। बिलोकने बिळासी सर्बलोक। बिदित नरेशे उत्सब सेठारे ए नब दिन संख्यक हे। बिदुषे। बेनि सोदर नमस्कार अन्ते। बधू नेइ आनन्दे मातृब्राते।

बिशेषत शुभरत[1] सुभरत[2] श्रीराम कटाक्ष - पाते हे।
बिदुषे । ३३ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! आप लोगो मे से जिन्होंने पुरुषोत्तम क्षेत्र मे श्री जगन्नाथजी के मन्दिर के सामने उनके 'गुण्डिचा' और 'वाहुड़ा' रथ देखे है, वे ही इसका अनुमान करे। श्री रामचन्द्रजी का प्रत्यागमन ठीक 'वाहुड़ा' यात्रा के समान हुआ है। बाहुड़ा रथस्थ श्री जगन्नाथजी को देखने के लिए लोग आग्रही होते है। वैसे पुष्पकविमानस्थ श्री रामचन्द्रजी को देखने के लिए सब लोग अभिलाष कर रहे है। उक्त उत्सव अयोध्यास्थ नन्दीग्राम में सपन्न हो रहा है। पुरी मे ओड़िशा के गजपति राजा के द्वारा गुण्डिचा से बाहुड़ा तक नव (नौ) दिनो का उत्सव सम्पादित होता है। यहाँ नन्दीग्राम में इकट्ठे हुए राजाओं के द्वारा सब दिनो की गिनती मे यही दिन नव (नये) दिवस के रूप मे विदित हुआ है। क्योंकि चौदह वर्षो के वनवास के बाद इसी दिन श्री रामचन्द्रजी अपने गृह में लौट आये। सुतरां इस दिवस के समान और शुभ दिन नही हुआ है, न होगा ही। हे पण्डितो! अनन्तर भरत और शत्रुघ्नजी दोनो भाई वहाँ उपस्थित हुए। भरतजी ने श्री रामजी को, शत्रुघ्नजी ने राम-लक्ष्मण को एवं लक्ष्मणजी ने भी ज्येष्ठ भरत को यथामान्य नमस्कार किया। अनन्तर कौशल्या-प्रमुखा माताएँ वधू सीता को सानन्द व सादर अन्दर ले गईं।

अनन्तर श्री रामचन्द्रजी ने नयनों के इशारे से शुभकामी और प्रशसित भरतजी से कहा, "हमारे साथ आये वीर सेनापतियो और नृपतियों का उपयुक्त स्वागत-सत्कार करो।"। (३३)

तरक—अनुमान करें; शुभरत[1]—मंगलरत; सुभरत[2]—उत्तम (प्रशंसित) भरत (यमक)। (३३)

बानरपतिरे केशरी सरिरे नरपति बिधि आदरे।
बिप्रबिधि सुषेण जाम्बबरे। बिभीषणे राम आचार-
प्रचार प्रशंसित समस्तरे से। बिदुषे। बाचक से
कृतार्थ हेलुँ सर्ब। बिजे सभारे सम्भारे राघब। बिरचि
स्थान चरचि से अन्तरे सुमन्त्र[1] सुमन्त्र[2] भाब हे। ३४।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी का अभिप्राय समझकर भरतजी ने सिंह-सदृश वानरपति सुग्रीव का राजविधियों से सत्कार किया और सुषेण व जाम्बवान् इन दोनों का (सुषेण अश्विनीकुमार के पुत्र और जाम्बवान् ब्राह्मणपुत्र होने से) ब्राह्मण-विधियो में सत्कार किया। अनन्तर भरतजी ने श्री रामजी के प्रति जैसा व्यवहार किया था, वैसा विभीषण के प्रति भी

किया। (अर्थात् श्री रामजी के योग्य सम्मान विभीषण को भी दिया।) भरतजी का ऐसा सुव्यवहार देखकर सभी ने उनकी प्रशंसा की। हे पण्डितो! उपस्थित दर्शकों ने यह देख कहा, "हम लोग कृतार्थ हो गये।" इस समय श्री रामचन्द्रजी यहाँ समारोह में सभा मे विराजमान हुए। अनन्तर विचार-दक्ष मन्त्री सुमन्त्रजी नियमित ढंग से स्थानो का निरूपण करते हुए सैन्यों की यथाविधि चर्चा करने लगे। (३४)

बिप्रबिधि—ब्राह्मणों के नियमानुसार; सुमन्त्र[1]—उत्तम विचारदक्ष; सुमन्त्र[2]—मन्त्री सुमन्त्रजी (यमक)। (३४)

बर्द्धकी बर्द्धन शोभा अयोध्यारे से दिनु अति यत्ने करु। बिश्वकर्मा बांछित कृते गुरु। बिज्वळित से त अनन्त[1] मणिरे अनन्त[2] मणिरे चारु ए। बिदुषे। बिचारणा ए अळकाशोभिता। बइधब्य अबस्था आलिगिता। बिशेष अळंकार मुञ्चिगला कि केबळ करिण चिन्ता ए। बिदुषे। ३५।

सरलार्थ—जबसे राम अयोध्या में लौटे, कारीगर लोग आकर अयोध्या की शोभा बढ़ाने लगे। (अर्थात् उन लोगों ने विभिन्न शिल्प-कौशलों से अयोध्या की शोभा बढ़ाते हुए श्री रामजी के सम्मुख अपनी-अपनी कला-कुशलता दिखलाई।) यह देखकर देवशिल्पी विश्वकर्मा ने उन्हें गुरू बनाकर उनसे शिल्पकौशल सीखना चाहा। पहले जो अयोध्यानगरी अनन्त (शेषदेवजी लक्ष्मण) के द्वारा विशेषरूप से उज्ज्वल हुई थी, वह अब अनन्त (असंख्य) मणिमाणिक्यों से विमण्डित हो मनोहर बन पड़ी है। हे पण्डितो! विचार कीजिए— यह अयोध्या अलकापुरी से भी अधिक सुशोभिता है। श्री रामचन्द्रजी के आगमन से इस अयोध्या-रमणी ने जो शोभा धारण की, उसके समक्ष अलकापुरी (कुबेरपुरी) रूपिणी नारी ने जैसे विधवा की शोभा धारण की। अलकापुरी-रमणी ने अपने मन में यह चिन्ता की कि मैं अयोध्या-रमणी के सामने असुन्दर हूँ। इसलिए उसने अपने अंगों से सारे गहने निकालकर फेंक दिये और विधवा की तरह कुलक्षणी दीखने लगी। (३५)

बर्द्धकी—बढ़ई, कारीगर; अनन्त[1]—शेषदेवजी लक्ष्मण; अनन्त[2]—असंख्य (यमक); मुञ्चिगला—छोड़ गई। (३५)

बोलइ ये लंका[1] तहिँ करु शंका ता पुष्प लंका[2] केशु खसि। बिमळिन पतन होइ दिशि। बयस्था यहिँ अमराबती कहि बार्द्धकी स्वभाव दिशि हे। बिदुषे। बसे भोगबती पदतळरे।

बिश्वासिता दासीभाब बळरे। बइकुण्ठ ग्रेहि नाम मर्त्ये नाहिँ ता तुले तुले तुळरे हे। बिदुपे। ३६।

सरलार्थ—पुनश्च अत्यन्त मनोहरा लंकानगरी उस अयोध्यापुरी के निकट एक विटपी नारी के सदृश शंकायुक्त होने से उसके शिर से फूल सब खिसक पड़े एवं वह विशेष रूप से मलिन होकर पतित हो गई। (अर्थात् अयोध्यापुर के निकट लंकापुरी असमान होने से लज्जित दिखाई पड़ी।) फिर युवती नारी के सदृश रूपवती अमरावती नगरी अयोध्या की शोभा देखकर बुढ़ापा-प्राप्त दिखाई दी। पातालपुरी एक विश्वस्ता दासी के सदृश अयोध्या के पादतल में उसकी सेवा कर रही है। (अर्थात् पाताल-पुरी भी अयोध्या के सामने असुन्दर है।) हे पण्डितो! केवल वैकुण्ठपुर का नाम इस मर्त्य मे नही। सुतरां केवल उसी से इस अयोध्यानगरी की तुलना की जा सकती है। (३६)

लंका[१]—राक्षसपुरी; लंका[२]—विटपी स्त्री (यमक); बार्द्धकी—बुढ़ापा; भोगवती—पातालपुर। (३६)

बिनयी कैकेय पादुकाकु थोइ रघुबंशईश छामुरे। बह नृपपदकु ततपरे। बासुकि बिना धरा-भारा-धारण आन सोदरे कि चिरे हे। बीरेन्द्र। बोलुँ शत्रुघ्न ग्रथार्थ उच्चारि। बोले सुमन्त्र हेउ ए सेपरि। बिष्णुङ्कु अनुसरि ब्रह्मा ग्रेमन्त सृष्टि पाळनाकु करि हे। बीरेश। ३७।

सरलार्थ—अनन्तर भरतजी ने रघुवंशश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी के समीप उनकी पादुकाओं की स्थापना की एवं अत्यन्त विनीत हो उनसे कहा, "हे प्रभो! अब आप शीघ्र ही राजपद वहन कीजिए। (अर्थात् राज्यभार ग्रहण करे।) वासुकि के बिना दूसरा कोई भी पृथिवी का भार चिरकाल वहन नहीं कर सकता। उसी तरह आपका भाई होने पर भी मैं यह राज्यभार चिरकाल वहन करने के लिए समर्थ नही। हे वीरेन्द्र! आप इसे विचार कीजिए। भरतजी से यह सुनकर शत्रुघ्नजी ने भी कहा, "यह यथार्थ ही है। आपके बिना हम लोगों में से कोई भी राज्यशासन करने के लिए समर्थ नही है।" यह सुनकर मन्त्री सुमन्त्र ने कहा, "जैसे ब्रह्मा, विष्णु का अनुसरण करते हुए (उनके आदेशानुसार) सृष्टि का पालन करते है, वैसे आपका अनुसरण करते हुए भरतजी राज्यशासन करने को समर्थ हुए है। (३७)

रघुबंशईश—रघुवंश के स्वामी श्री रामजी; छामुरे—सम्मुख, समीप; बीरेन्द्र—वीरश्रेष्ठ; बीरेश—वीरो के ईश्वर, वीरश्रेष्ठ। (३७)

बिशिष्ट बशिष्ठ गुरु पुष्यायोगे अभिषेक हेब भाषित। बामदेब कहि हेले एमन्त। बने दूषण[1] नाशिअछ अनुजप्रसू दूषण[2] हर त हे। बीरेन्द्र। बिभु अंगीकृते एहा शुणिले। बायुपुत्रकु जाम्बब भणिले। बाळखिल्य-सह सनकादि मुनि गंगादि जळ आणिले हे। बिदुषे। ३८।

सरलार्थ—इस समय मुनिवर वशिष्ठजी ने कहा, "हे रामचन्द्रजी ! अब गुरुपुष्पा अमृतयोग लग रहा है। इसी योग में आपका तिलक किया जाय।" यह सुनकर वामदेव ऋषि ने कहा, "हे रामचन्द्रजी ! आपने वन में दूषण नामक राक्षस का विनाश किया है। अब आप अपने अनुज भरतजी की माता कैकेयी के दूषण (आपके अभिषेक के समय आपको वन भेजकर उन्होंने जो दोष किया है) को क्षमा कीजिए, हे वीरेन्द्र ! हम लोगों का यह अनुरोध आप अवश्य स्वीकार करेंगे।" यह सुनकर श्री रामजी ने अभिषेक के लिए स्वीकार किया। अनन्तर मन्त्री जाम्बवान् के आदेशानुसार हनुमानजी सनक, बालखिल्यादि मुनियों को निमन्त्रित कर लाये और गंगाजल भी ले आये। (३८)

दूषण[1]—राक्षस विशेष; अनुजप्रसू—छोटे भाई भरत की माता कैकेयी; दूषण[2]—दोष (यमक)। (३८)

बिभिन्न कले सटा यहुँ हरिर अरण्य - बिहार अन्तर। बसिबाकु सम्राट पदबीर। बिभूषि कुन्तळ देश पुष्पपुर अंगदेश मनोहर हे। बिदुषे। बहि अनन्त शोभा महीधार्य्ये। बिधु नक्षत्रमाळारे बिराजे। बोइले कन्दर्प कोटिए गोटिए दर्शने जनसमाजे हे। बिदुषे। ३९।

सरलार्थ—जब सिंह वन के मध्य से निकल आता है, उसका केशर विभिन्न हो जाता है। यहाँ नरसिंह श्रीराम जी ने वनवास के उपरान्त अपने मस्तक पर से जटाएँ हटा दीं और राजसिंहासन पर बैठना चाहा। अनन्तर उन्होंने अपने मस्तक को फूलों से एवं शरीर को मनोहर वेशभूषणों से विभूषित किया। हे पण्डितो ! राज्यभार ग्रहण करके श्री रामजी ने अनन्त (असीम) शोभा धारण की, जैसे अनन्त (शेषदेव) पृथिवी धारण करने से सुशोभित होते है। फिर अनन्त (आकाश) विधु (चन्द्र) तथा नक्षत्र-मालाओं से सुशोभित होना है। वैसे अनन्तरूपी श्री रामचन्द्रजी स्वयं विधु (विष्णु) नाम से सुशोभित है एवं नक्षत्रमाला (सत्ताईस रत्नमालाओं) से विराजमान हुए हैं। हे पण्डितो ! इस समय उपस्थित जनमण्डली ने

द्विपञ्चाशत् छान्द

राग—मंगळ

बर्णने कबि अशेष ग्रेउँ महोत्सब ।
बशचित्त चरितरे बिज्ञे अर्थी हेब हे । १ ।

सरलार्थ—जिन रामचन्द्रजी के अभिषेकोत्सव का वर्णन कवि की रचनाचातुरी से समाप्त नही होता (अर्थात् जो प्रसग कवियों के वर्णनातीत है), हे पण्डितो ! उन्ही रामचन्द्रजी के उक्त चरित में अपने-अपने मन को अभिनिविष्ट करे । वांछित फलों को अवश्य प्राप्त करेगे । (१)

बिज्ञे—हे पण्डितो ! ; अर्थी—धनी, मालिक । (१)

ब्रह्मपुत्र कहिबार गुरुपुष्या ग्रोगे ।
बरुणाळय कृपारे ग्रे से सीतासङ्गे ग्रे । २ ।

सरलार्थ—जब ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठजी ने कहा कि गुरुवार के दिन पुष्यानक्षत्र योग मे (अर्थात् अमृत योग में) श्री रामजी का तिलक सम्पादित किया जाय, तो कृपासागर प्रभु उसी शुभलग्न मे सीता को अपनी गोद में धारण करते हुए अभिषेक के सिंहासन पर बैठे । क्योकि सागर भी सिता (गंगा) के सहित सगी होता है । (२)

ब्रह्मपुत्र—ब्रह्मापुत्र वशिष्ठजी; बरुणाळय कृपारे—कृपासागर श्री रामचन्द्रजी से । (२)

बिशारद गभीर गुणरे अतिअन्त ।
बिळसित रङ्गे बहुभुबने राजित हे । ३ ।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी समुद्र के समान गम्भीरता के गुण में विशारद हैं (अर्थात् अत्यन्त गम्भीर है) । समुद्र में नाना प्रकार की तरंगें विलास करती है । श्री रामजी में भी नानाप्रकार की चातुरियाँ विलास करती है । समुद्र बहुभुवन (बहुत जल) से विराजित होता है । श्री रामचन्द्रजी की चतुराई भी बहुभुवन (चौदह भुवनो) में प्रसिद्ध है । (३)

बिशारद—दक्ष, निपुण; अतिअन्त—अत्यन्त; बहुभुबने—बहुत जल से, बहुत (चौदह) भुवनो में (श्लेष) । (३)

बकश्यामळ बाजी कुम्भीरे स्थान पूर्ण ।
बिदित शंख माधुरी आनक निस्वन ये । ४ ।

सरलार्थ—समुद्र वकपक्षियो, श्येन पक्षियों, घोटकों और कुम्भीरों से पूर्ण रहता है । और वह शखों के मधुर शब्द तथा अन्यान्य जीवजन्तुओं के शब्द से गूँज उठता है । उसी तरह यहाँ अभिषेक-स्थल में वीर लोग बगुलों और बाजों से चिह्नित अस्त्र धारण किये खड़े हुए है । वह घोड़ों और हाथियों से परिपूर्ण है । फिर वह स्थान शखों, मधुरिकाओं तथा नगाड़ों आदि के शब्द से गूँज रहा है । (४)

बक—बगला; श्यामळ—भ्रमर, श्येन पक्षी; बाजी—सिन्धुघोटक, घोड़े; कुम्भीरे—घड़ियालों से, हाथियों से; मधुरी—माधुरी, मधुरिका (बाजा विशेष); आनक—अन्य जलजन्तु, नगाड़े (रूपकश्लेष) । (४)

बितान अनन्त यहिँ आन लक्ष्य नाहिँ ।
बिस्तृत तारतर नेत्ररे चारु मोहि हे । ५ ।

सरलार्थ—अभिषेकस्थली पर जो चँदोवा ताना गया है, उसके सहित केवल आकाश ही उपमान के योग्य है, दूसरा कोई उपमान उसके लिए है ही नहीं । आकाश सुविस्तृत है, उज्ज्वल नक्षत्रों से विमण्डित है और सौन्दर्य में वह नयनों तथा मन का हरण कर लेता है । उसी तरह यहाँ ताना हुआ चँदोवा सुविस्तृत है और मणि-माणिक्य आदि रत्नों से विमण्डित होने से दर्शकों के मन को बहला लेता है । (५)

बितान—चँदोवा; अनन्त—आकाश । (५)

बिस्तारक सुमनसपद्धति आहुरि ।
बिधृत चन्द्रझलकाबळी कि माधुरी ये । ६ ।

सरलार्थ—पुनश्च, आकाश मे नक्षत्रो के समूह और चन्द्रकिरणो के समूह प्रकाशित होते है । परन्तु यहाँ चँदोवे में पुष्पमालाएँ और सुवर्ण-झालरें जड़ी गयी है । इसलिए यह चँदोवा मनोहर दीख रहा है । (६)

सुमनसपद्धति—नक्षत्रसमूह, पुष्पमालाएँ; चन्द्रझलकाबळी—चन्द्र की किरणों का समूह, सोने की झालरें (रूपकश्लेष) । (६)

बिळासबशरे घनसार प्रचरित ।
बिज्वळ छायामण्डप कन्यास्तम्भकृत ये । ७ ।

सरलार्थ—वह अभिषेकस्थली विलास के वश में होकर कर्पूर रज से ढक गई । छायामण्डप अत्यन्त दीप्तिमन्त दीख रहा है । उस मण्डप के स्तम्भों में कृत्रिम कन्याओं की मूर्तियाँ निर्मित की गई है । (७)

घनसार—कर्पूर; बिज्वळ—अत्यन्त दीप्तिमन्त । (७)

बाड़मोहिनी स्वभावे बिबुधरञ्जित ।
बिभातिरे तमचक्र होइछि खण्डित ये । ८ ।

सरलार्थ—दीवालो पर निर्मित मोहिनी नारियों की मूर्त्तियाँ स्वभावतः देवताओं के चित्त बहला रही है। और उनकी कान्ति या तेज से उक्त स्थान का अन्धकार दूर हो रहा है। (८)

बाड़मोहिनी—दीवारों पर निर्मित सुन्दरी नारी-मूर्त्तियाँ; बिबुधरञ्जित—देवताओं के चित्त बहलानेवाली; बिभातिरे—तेज में; तमचक्र—अन्धकारसमूह। (८)

बिम्ब निर्मळ देखाइ से बेदिकासार ।
बहनरे भ्रम एत अब्जजातपुर ये । ९ ।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी के तिलक के लिए जो उत्कृष्ट वेदिका निर्मित की गई थी, वह इतनी निर्मल तथा मणिमाणिक्यादि की ज्योति से इतनी चमकदार थी कि उस पर सभी की परछाइयाँ पड़ती थी। उसे देखने पर मन में शीघ्र ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है कि शायद यह ब्रह्माजी का भुवन या स्थान है। (९)

अब्जजातपुर—ब्रह्माजी का स्थान। (९)

बरषार परा भूभृत - शिर मण्डन ।
बिजे चञ्चळा घनरञ्जन भद्रासन ये । १० ।

सरलार्थ—पुनश्च, यह अभिषेककाल वर्षाकाल के सदृश लक्षित हुआ। वर्षाकाल में मेघ सब पर्वत पर शोभा पाते है, बिजली मेघ की देह मे रंजित होती है और भरद्वाज पक्षियों को प्रचुर भोजन मिलता है। उसी भाँति यहाँ सब राजाओ रूपी पर्वत पर उनके शिरोविमण्डन श्री रामजी मेघ के सदृश शोभायमान हो रहे हैं, जो सिंहासन पर अपनी गोद मे विद्युत्-स्वरूपा सीताजी को धारणपूर्वक विराजमान हुए हैं। (१०)

भूभृत—पर्वत, राजा; चञ्चळा—बिजली, सीता; भद्रासन—भद्र अर्थात् भरद्वाज पक्षी के लिए अशन अर्थात् भोजन; भद्रासन—सिंहासन (रूपकश्लेष)। (१०)

बिराजित शारङ्गपत्रिरे होइछन्ति ।
बेगे अम्बर प्रकाश भरत करन्ति ये । ११ ।

सरलार्थ—पुनश्च, श्री रामचन्द्रजी धनुष व शर से विराजित हुए हैं एवं वीर भरत वस्त्र धारणपूर्वक प्रकाश (संचालन) कर रहे हैं। (११)

शारंगपत्रिरे—धनुशर के द्वारा; अम्बर—वस्त्र। (११)

बिशद लक्ष्मणे छत्र होइला उदय ।
बातजात पयरे दीपित से समय ये । १२ ।

सरलार्थ—लक्ष्मणजी श्री रामचन्द्रजी के मस्तक पर शुक्लछत्र धारण-पूर्वक प्रकाशित हुए । उस समय पवनपुत्र हनुमानजी श्री रामचन्द्रजी की पदसेवा में नियुक्त हुए । (१२)

बिशद छत्र—शुक्ल छत्र; बातजात—पवनपुत्र हनुमान् जी । (१२)

बर्हिप्रभा शत्रुघ्न चामर चळाउछि ।
बिभीषण युक्त चन्द्रहासे होइअछि ये । १३ ।

सरलार्थ—वीर शत्रुघ्नजी मयूरपुच्छनिर्मित चामर डुला रहे है और विभीषणजी राजखड्ग धारणपूर्वक उस स्थान मे खड़े हुए है । (१३)

बर्हिप्रभा चामर—मोर की पूंछ का चँवर; चन्द्रहास—खड्ग, तलवार । (१३)

बिद्य प्ळबग बरहिपुच्छ प्रचाळन ।
बिधिपूर्बे सार दिशे सकळ भुबन ये । १४ ।

सरलार्थ—वह अभिषेक काल शरत्काल के सदृश हुआ है । शरत्-काल में मेंढक प्रकाशित होते है और मयूर अपना पुच्छ चलाता हुआ जन-मन बहलाता है । उसी तरह यहाँ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी मयूरपुच्छ के चामर को डुलाते हुए जन-मन बहला रहे है । (१४)

प्ळबग—मेंढ़क, वानर; प्ळबगवर—वानरराज सुग्रीव । (१४)

बिभ्राजित बारिझरी ताराभब यहिँ ।
बिशेषित ज्योतिर्बिद ऋक्षपति तहिँ ये । १५ ।

सरलार्थ—फिर शरत्काल में जलझरियाँ प्रकाशित होती है, तारे स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते है और ऋक्षपति (नक्षत्रपति) चन्द्र ज्योतिर्विद (निर्मल ज्योति) प्रकाश करते है । वैसे यहाँ तारापुत्र अंगद बारिझरी लिये प्रकाशित हुए है एव ऋक्षपति जाम्बवान् ज्योतिर्विद (ज्योतिषी) होकर खड़े हुए है । (१५)

ताराभब—तारापुत्र अंगद; ऋक्षपति—जाम्बवान् । (१५)

बिकशित कुमुदादि सुमन रभसे ।
बिमळ अगस्ति भरद्वाज बाक्य घोषे ये । १६ ।

सरलार्थ—शरत्काल में कुमुद आदि पुष्प शीघ्र विगसित होते है, अगस्ति आदि नक्षत्र निर्मल होते हैं एवं भरद्वाज पक्षी सुमधुर स्वर में

बोलते है। वैसे यहाँ कुमुदादि वीर उत्तम मन से हर्षित हुए और अगस्ति, भरद्वाज आदि मुनि शुद्धरूप में वेदवाक्य उच्चारण करने लगे। (१६)

सुमन—पुष्प; रमसे—शीघ्र; भरद्वाज—भरत पक्षी, मुनि (श्लेष)। (१६)

बिहित ए सरूपक श्ळेषरीति पुण।
बेढ़ि सप्तऋषि मिळि कर्मर कारण ये। १७।

सरलार्थ—यह गीत रूपकश्लेष मे रचित हुआ। अनन्तर सप्तऋषियों ने मिलकर अभिषेककर्म का श्रीगणेश किया। (१७)

कर्म—अभिषेककर्म। (१७)

बर - बिभूति तपस्विगणे कले दान।
बिटपी रम्भा सुषमा घट बारिपूर्ण्ण ये। १८।

सरलार्थ—अभिषेक के बाद श्री रामजी ने तपस्वियों को बहुत श्रेष्ठ सम्पत्ति दान के स्वरूप दी। केले के वृक्ष तथा जलपूर्ण घट अपनी-अपनी शोभापूर्ण रीति में सस्थापित किये गये है। (१८)

वरबिभूति—श्रेष्ठ संपत्ति; बिटपीरम्भा—केले के वृक्ष। (१८)

बन्दनीय द्वीपनाथे पाशे अनुसरि।
बिशुद्ध लक्षण दान होइछि माधुरी ये। १९।

सरलार्थ—पूजनीय राजा लोग उस समय श्री रामजी के अनुसरण में पास खड़े थे। अनन्तर वे मदजलवाही मतवाले हाथियो पर बैठे श्री रामचन्द्रजी के पीछे-पीछे नगरभ्रमण करने गये। (१९)

द्वीपनाथे—राजा लोग। (१९)

बाद्यनाद बळि शुभे रसनार स्वन।
बारनारीसार नृत्यगीतर बिधान ये। २०।

सरलार्थ—उस समय रमणियो की हुलिहुली की ध्वनि नानाविध वाद्यों के नाद से बढ़कर सुनाई पड़ी और उत्कृष्ट वेश्याओ ने नृत्यगीत का विधान किया। (२०)

रसनार स्वन—जीभ की ध्वनि, हुलिहुली ध्वनि। (२०)

ब्योम आच्छादित शूरप्रभा साधु चाहिँ।
बृद्धि सकळ लोक प्रमोद यहिँ होइ ये। २१।

सरलार्थ—उस स्थान मे रहे वीरों की प्रभा से आकाश आच्छादित

हो गया। (अर्थात् वीरों की वीरताज्योति से आकाश उद्भासित हो गया।) उसे उत्तम रूप से देखकर दर्शक लोग आनन्दित हुए। (२१)

व्योम—आकाश; शूरप्रभा—वीरों की प्रभा। (२१)

ब्यक्त गन्धर्ब गायक रसाळे माधुर्य्य।
बसन्त मङ्गळ रागे एकभाबे भज य़े। २२।

सरलार्थ—अनन्तर गन्धर्व गायक लोग रसीले मनोहर ढंग से वसन्त-मंगल राग में संगीत गाने लगे। और सारे गायक एक ही स्वर में उनके गान को दुहराने लगे। (२२)

बसन्त मंगळ—राग विशेष; भज—भजना, दुहराना। (२२)

ब्रह्मा हर स्तुति श्रुतिरञ्जन स्वभाबे।
बन्दिबचन होइछि सेकाळ उत्सबे ये। २३।

सरलार्थ—अभिषेक के समय ब्रह्माजी और शंकरजी स्वभावतः वेदविहित मार्ग में (अथवा कर्ण को आनन्ददायक ढग में) स्तुतिपाठ करने लगे। उत्सव के समय उनका स्तुतिपाठ भाटों के स्तुतिपाठ के सदृश प्रतीत हुआ। (२३)

श्रुतिरञ्जन—वेदविहित मार्ग में (कर्ण को आनन्ददायक); बन्दिवचन—भाटों का स्तुतिपाठ। (२३)

बहुत नेत्र आनन्द बिस्तारि दर्शन।
बहुत मुखरे कीर्त्ति शेष अभाजन य़े। २४।

सरलार्थ—उक्त अभिषेकोत्सव के दर्शन से बहुत व्यक्तियों के नेत्रों का आनन्द बढ़ गया। और भी बहुत लोग मुखों से उस समय की कीर्त्ति को वर्णन के द्वारा समाप्त करने मे असमर्थ रहे। (२४)

अन्यार्थ—उक्त अभिषेकोत्सव के दर्शन से बहुनेत्रवाले महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुमुखोंवाले ब्रह्माजी अपने मुखों से उसका वर्णन करने में असमर्थ रहे।

अभाजन—असमर्थ। (२४)

बाड़बजात प्रभाबिहीनरे भाबित।
बिश्वे सार राम काम दानबारि स्थित य़े। २५।

सरलार्थ—बाडवजात अश्विनीकुमार श्री रामचन्द्रजी की शोभा देख निष्प्रभ हो गये। उन्होने अपने मन में विचार किया, "इस विश्व में

राक्षसशत्रु रामचन्द्रजी ने सार (उत्कृष्ट) कन्दर्पावतार ग्रहण किया है। (सुतरां इनके समान दूसरा कोई नहीं हो सकता।)"। (२५)

बाड़बजात—अश्विनीकुमार; दानबारि—राक्षसशत्रु। (२५)

बिस्तारि ए भाबे स्तुति बिधाताकुमर।
ब्रह्माण्ड-भाण्डरे चक्रबर्त्ती चापधर ये। २६।

सरलार्थ—अनन्तर विधातापुत्र वशिष्ठजी ने इस भाव से स्तुति करते हुए कहा कि इस ब्रह्माण्ड-भाण्ड में धनुर्द्धारी श्री रामचन्द्रजी ही चक्रवर्ती हैं। (२६)

बिधाताकुमर—वशिष्ठजी; चापधर—कोदण्डधर श्री रामजी। (२६)

बिचारन्ति पुण्यजन बरश्री - आश्रित।
बिक्षेपक मेघपुष्प सधीर मरुत ये। २७।

सरलार्थ—सुकृती लोगो ने विचार किया, "यह स्थान आज श्रेष्ठ शोभा से विराजित हुआ है। पवन धीर गति से बहता हुआ जल छिड़क रहा है। (अर्थात् मंगलसूचक कुशाग्र-जलविन्दु धीर पवन से वृष्टिजल की तरह बिखर रहे है।)"। (२७)

पुण्यजन—सुकृती लोग; बरश्री—श्रेष्ठ शोभा; मेघपुष्प—जल। (२७)

बिबेक जनित ये योगीरे धर्मराजे।
बसुधारे सत्य अबतार ए उपुजे ये। २८।

सरलार्थ—योगिजनों में ऐसा विवेक उत्पन्न हुआ कि स्वयं धर्मराज श्री रामचन्द्रजी के रूप में धरा पर अवतरित हुए है। पुनश्च, सत्य नर के रूप में अवतार ग्रहणपूर्वक पृथिवी पर पैदा हुए है। (२८)

बसुधारे—पृथिवी में। (२८)

बैकुण्ठ श्री कि ए निश्चे मार्कण्डेय भाळे।
बिह्वळ मुँ पूर्बे अबिधिरे देखि डोळे ये। २९।

सरलार्थ—वह देख मार्कण्डेय मुनि ने सोचा, "ये दोनो निश्चय ही विष्णुजी और लक्ष्मीजी है। कुछ दिनों पूर्व जब मैं माल्यवन्त पर्वत पर घूमता था, तब मैं अपनी आँखो से इन्हें देखकर विह्वल हो पड़ा था। (उन्हें देखकर भी मैं उन्हें न पहचान सका था।)"। (२९)

बैकुण्ठ श्री—विष्णुजी और लक्ष्मीजी; डोळे—गोलको से, डेलों से, आँखों से। (२९)

बर्त्तमान धन्य देखि अपूर्ब उत्सब।
बढ़ाइ ए तोषसिद्धि भबिष्ये नोहिब ये। ३०।

सरलार्थ—उन्होंने आगे कहा, "मैं अभी-अभी इस अपूर्व महोत्सव के दर्शन से धन्य हुआ। इसने मेरी तोषसिद्धि को बढ़ाया है। भविष्य में ऐसे दर्शन फिर नहीं हो पाएँगे"। (३०)

नोहिब—नही हो पाएँगे। (३०)

बन्दापना बिधि शेष अगोचर द्रब्ये।
बासबर पुरस्कार लभि तहिँ सर्बे ये। ३१।

सरलार्थ—अदृष्टपूर्व और बहुमूल्य द्रव्यों से आरतीविधियाँ समाप्त हुईं। अनन्तर सभी ने श्रेष्ठ वस्त्र पुरस्कार के स्वरूप लाभ किये। (३१)

बन्दापना—आरती; बासबर—बरबास, श्रेष्ठ वस्त्र। (३१)

बसति ये सुमना नागर - गति हेला।
बिचित्र प्रतिमा होइ ईक्षणे रहिला ये। ३२।

सरलार्थ—अयोध्यापुर वहाँ की रमणियों को वशीभूत करने के लिए एक सुरसिक पुरुष के सदृश हुआ। परन्तु फिर विचित्र प्रतिमा (मनोहर रूप) को धारण कर उनकी आँखों मे लिपट गया। (३२)

बसति—अयोध्यापुर; नागर—सुरसिक पुरुष; ईक्षणे—आँखों में। (३२)

बल्मीकरु ज्योति जात सत ए पुराणे।
बिकाशक हृदय-पुष्करे क्षणे क्षणे ये। ३३।

सरलार्थ—पुराणों मे सच ही बताया गया है कि वल्मीक से इन्द्र-धनुष की ज्योति उत्पन्न होकर आकाश में फैल जाती है। वैसे श्री रामचन्द्रजी के शरीर से शोभा-ज्योति उत्पन्न होकर उन नारियों के हृदयाकाश में प्रतिक्षण प्रकाशित होती गई। (३३)

बल्मीक—बिमोट; हृदय पुष्करे—हृदयरूपी आकाश में। (३३)

बाञ्छा पूर्ण्ण चतुरबर्गरे प्रभु कले।
बिधान कमळा सारपाके भोज्य देले ये। ३४।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी ने सभी की चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मनस्कामना की पूर्ति की। लक्ष्मीस्वरूपिणी सीता ने उत्तम पकवान बनाकर सभी को भोजन दिया। (३४)

चतुरबर्ग—चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; कमळा—लक्ष्मी-स्वरूपा सीता। (३४)

बिधु सिन्धु स्वर्गप्राय से अमृताकर ।
बामा गजराज कि संयोग कटकर ये । ३५ ।

सरलार्थ—चन्द्र, समुद्र व स्वर्ग अमृत के आकर (खानें) हैं। सीताजी के द्वारा बनाये खाद्यपदार्थ अमृत के आकर होने से चन्द्र, समुद्र व स्वर्ग के सदृश हुए थे। पुनश्च, वे सब खाद्यपदार्थ कटक (लवण) से युक्त होने से ऐसे प्रतीत हुए मानो नारियाँ या हस्तीश्रेष्ठ कटक (सोने के कड़े) से युक्त हुए हों। (३५)

अमृताकर—अमृत की खान; बामा—नारियाँ; गजराज—हस्तीश्रेष्ठ; कटक—लवण, सोने के कड़े (श्लेष, उत्प्रेक्षा)। (३५)

बाळसूर्य्य युबागायक कि रागयुक्त ।
बैशाख पुष्प कन्दर्प कि मधुरे युक्त ये । ३६ ।

सरलार्थ—पुनश्च, वे खाद्यपदार्थ राग (कटुरस) के गुण से युक्त होने से बालरवि, युवकों तथा गायकों के सदृश बन पड़े है। अर्थात् वे द्रव्य राग (ललाई, अनुराग तथाताललय) से युक्त होने से ऐसे प्रतीत हो रहे है, मानो (क्रमशः) बालरवि, युवक तथा गायक हों। फिर वे द्रव्य मधुर गुण से युक्त होने से वे वैशाख, पुष्प व कन्दर्प के सदृश बन पड़े हैं। अर्थात् वे द्रव्य मधु (चैत्र, मकरन्द तथा वसन्त) से युक्त होने से ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो (क्रमशः) वैशाख, पुष्प व कन्दर्प हों। (३६)

इसी तरह प्रधानरसोंवाले भोजनद्रव्यों की वर्णना की गई।

राग—कटुरस, ललाई, अनुराग और ताललय; मधु—मधुररस, चैत्र, मकरन्द और वसन्त (श्लेष, उत्प्रेक्षा)। (३६)

बाचक होइला सुधा अशन भाबित ।
बिश्व घन - कमळ सारङ्ग प्राय चित्त ये । ३७ ।

सरलार्थ—सब मनुष्य अमृततुल्य भोजन पाकर फूले फूले फिरने लगे। मेघ का जल पाकर चातक का मन जैसे आनन्दित होता है, वैसे वे लोग आनन्दित हो उठे। (३७)

सुधा अशन—अमृततुल्य भोजन; घनकमळ—मेघजल; सारंग—चातक। (३७)

बहुरूपा नळिनी तार - धारीरे सीता ।
बिकाशित रुचिरे से समस्त तोषिता ये । ३८ ।

सरलार्थ—विविध-अलंकार-विभूषिता पद्मिनीजातीया ज्योतिर्मयी नारी सीता के रुचिकर पकवान से सभी ने सन्तोष लाभ किया। (३८)

नलिनी—पद्मिनी; तारधारी—ज्योतिर्मयी। (३८)

बिरस राम आज्ञारे से भाब सम्मते।
बाहुड़ि य़ोगी होइले स्वपुरे समस्ते य़े। ३९।

सरलार्थ—श्री रामचन्द्रजी का अत्यन्त रसयुक्त आदेश पाकर सभी मनुष्य तथा मुनि सम्मति से अपने-अपने गृह को लौटे। (३९)

बिरस—विशेष रसयुक्त; स्वपुरे—अपने-अपने गृह में। (३९)

बासर निशारे मधुसूदन सहजे।
बिश्वधात्रीजात पद्मबासीरसे मज्जे य़े। ४०।

सरलार्थ—मधुसूदन श्री रामजी दिन-रात पृथिवीकन्या लक्ष्मीस्वरूपा सीता के सहित परमानन्द में निमज्जित हुए। (४०)

बासर—दिन; निशारे—रात में; बिश्वधात्रीजात—पृथिवीकन्या सीता; पद्मवासी—पद्मवासिनी, लक्ष्मी। (४०)

बैदेहीश बिळास ए गीत मनोरम।
बानछान्दे शेष आद्य बकार नियम य़े। ४१।
बाल्मीकि सदने य़ाइँ जानकी रहिबा।
बध लबणर कुश लब जन्म हेबा य़े। ४२।
बिरचिबा य़ाग रामसुत गीत - गान।
बैदेही आणिबा पुणि पाताळे गमन य़े। ४३।
बिधुर हेबा लक्ष्मण राम मातब्रात।
बह्निरे पशिबा घेनि स्वामीर सङ्केत य़े। ४४।
बसुधाभृत करिण लब कुश बेनि।
बैकुण्ठ गमिबा राम स्वजनङ्कु घेनि य़े। ४५।
बिभङ्ग रस बोलिण न बर्ण्णिलि एते।
बुधे बोलिछन्ति एहा दोष छान्द गीते य़े। ४६।

सरलार्थ—यह 'बैदेहीश-बिळास' अत्यन्त मनोरम काव्य है। आद्य में 'ब' अक्षर रखते हुए एवं बावन छान्दों में इसकी रचना समाप्त की गई है। इसमें श्री रामचन्द्रजी के अयोध्याप्रत्यागमन और अभिषेकोत्सव तक की वर्णना की गई है। परन्तु रामायण का अवशेष, अर्थात् सीताजी का

वाल्मीकि मुनि के आश्रम में अवस्थान, लवण दैत्यवध, लवकुश-जन्म, श्री रामजी का अश्वमेध-यज्ञ-संपादन और वहां लवकुश का रामायणगान, वैदेही को फिर लाना, उनका पातालप्रवेश, श्री रामजी से लक्ष्मणजी का बिछोह, स्वामी के इशारे से कौशल्यादि माताओं का अग्निप्रवेश और लवकुश दोनों का अभिषेककरण व स्वजनादि सहित श्री रामजी का वैकुण्ठगमन आदि विषय 'विभंग' रसाश्रित हैं। इसलिए इनकी वर्णना नहीं की गई है। क्योंकि पण्डितों ने यह निर्देशित किया है कि छान्दगीत में इनका वर्णन दोष है। (४१-४६)

वैदेहीश-बिळास—वैदेही (सीता) के ईश (पति) श्री रामजी की लीला; बान छान्दे—बावन छान्दों मे; सवने—आश्रम में; याग—यज्ञ; बिधुर—बिछोही, बिछुड़ा हुआ; वसुधामृत—पृथिवीपति, राजा; विभंगरस—रसभंग; बुधे—पण्डितों ने। (४१-४६)

बरहिवंशे उद्‌भव नृप धनञ्जय।
विशिष्टे घुमुसर - अधिप गुणाळय ये। ४७।
वेनि अर्थे से कवि - गणेश बोलि जाण।
वन्दन तद्‌वत ताङ्क नन्दन प्रमाण ये। ४८।
बसुधापति से नीळकण्ठ नामे ख्यात।
विधानरे मुहिँ ताहाङ्कर ज्येष्ठसुत ये। ४९।
बीरवर पद उपइन्द्र मोर नाम।
वारे बारे सेबारे मनाइँ सीताराम ये। ५०।
बिचित्र कवित्वमार्गे प्रसरिला बुद्धि।
बिरचिलि रामायण ए मो वड़ सिद्धि ये। ५१।
बानपदरे आदरे कलि छान्द प्राप्त।
बुधे सरस कर्कशे रसाळ ए सत ये। ५२।

सरलार्थ—(कवि का संक्षिप्त परिचय) मयूरवंशोद्‌भव (भञ्ज-वंशजात) विशिष्ट गुणों के आधार राजा धनञ्जय भञ्ज घुमुसर राज्य के अधीश हुए थे। दोनों अर्थों में वे राजा कवि-गणेश थे (अर्थात् धनञ्जय भञ्ज।) (१) कविगण में ईश—श्रेष्ठ और (२) गणेश के सदृश कवि थे।) उनके पुत्र भी उन्हीं की तरह वन्दनीय हुए थे। (अर्थात् उन्होंने अपनी विद्वत्ता से पिताजी के समकक्ष होकर उन्हीं की गौरवरक्षा की थी।) वे पृथिवीपति (राजा) नीलकण्ठ के नाम से ख्यात (प्रसिद्ध) है। मैं उन्हीं का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरा नाम उपेन्द्र है।

मेरी उपाधि 'वीरवर' है। बार-बार अपनी सेवा से सीतारामजी को मनाने से मुझे उनका अनुग्रह प्राप्त हुआ एवं विचित्र कवित्वमार्ग में मेरी बुद्धि का प्रसार हुआ। मैंने इस रामायण की रचना की और यही मेरी सबसे बड़ी सिद्धि है। मैंने सादर बावन पदों में इस छान्द की रचना की। हे पण्डितो! आप लोग इसे रसाल (आम-फल) की तरह सरस व कर्कश समझिए। सचमुच ही भाषा तथा भाव की दृष्टि से यह छान्द स्थल-विशेषों में आम के ऊपरी भाग की तरह रसपूर्ण है तो दूसरे स्थलों में उसी के अन्तर की तरह कठिन हुआ है। (४७-५२)

बरहिबंशे—मयूरबंश में; घुमुसरअधिप—घुमुसर के राजा; गुणाळय—गुणों के आधार; बेनि अर्थे—दोनो अर्थों में; तद्‌वत—उन्हीं की तरह; बसुधापति—पृथिवीपति, राजा; मुहिँ—मैं; ताहाङ्कर—उन्हीं का; बारे बारे—बार-बार; मनाइँ—मनाकर; प्रसरिला—बुद्धि का प्रसार हुआ; मो—मेरी; बान पदरे—बावन पदों में; प्रान्त—समाप्त; बुद्धे—हे पण्डितो!, हे ज्ञानियो; सरस—रसयुक्त; कर्कश—कठिन; रसाळ—आम का फल; सत—सचमुच। (४७-५२)

॥ इति द्विपञ्चाशत् छान्द ॥

॥ बैदेहीश-बिळास सम्पूर्ण ॥

भञ्जीय काव्य-वैभव और वैदेहीश-बिळास

ओड़िआ साहित्य में उपेन्द्र भञ्ज जी के पूर्ववर्त्ती 'सारलायुग' (ई० १४वीं सदी और १५वीं सदी), और 'पञ्चसखायुग' (ई० १६वीं सदी)

भारत की विभिन्न प्राकृत भाषाओ तथा साहित्यों में ओड़िआ भाषा और उसका साहित्य एक पुरातन भाषा तथा साहित्य के रूप मे परिगणित है। ई० लगभग ११वीं सदी में आरब्ध 'मादळापाञ्जि' * हमारी भाषा तथा गद्यसाहित्य का प्राचीनतम सरल, शुद्ध संस्करण है। यह एक इतिहास है। इसके पहले रचित 'चर्यागीति', 'शिशुवेद', जनश्रुतियो पर आधारित विलाप (रुलाई), लोकगीत, पहेलियाँ, कहावतें आदि हमारी भाषा और साहित्य के प्राथमिक निदर्शनो के रूप मे अवश्य पायी जाती हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध में गवेषणाएँ आज तक भी पूरी नही हो पायी है। जो हो, साहित्य की अपेक्षा भाषा के इतिहास के निर्देश मे वे सब अधिक सहायक है।

कुछ समालोचक ओड़िआ साहित्य के क्रमविकास और इतिहास की धारा का निर्देश करने के लिए उत्कल मे प्रतिष्ठित राजत्वो तथा धर्ममतों की ओर दृष्टि देते हैं। बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव और अन्त मे स्मार्त्तवाद के प्रचार तथा तीर्थ-दर्शन के उद्देश्य से भारत के विभिन्न धर्माचार्यो ने विभिन्न युगो मे पुरीधाम में आकर धर्म के द्वार खोले थे। उत्कल के राजवंशो ने भी इन्ही धार्मिक मतवादो का पृष्ठपोषण किया था। इस प्रदेश में धर्मसंस्थापनार्थ युद्ध या रक्तस्रोत की बाढ न छूटी हो, फिर भी प्रभावोत्पादक मानसिक युद्ध ने साहित्य के जरिए अपनी असामान्य शक्ति का परिप्रकाश किया था। सुतरां धर्ममतों के वैभिन्न्य और परिवर्तन को लेकर हमारे साहित्य के इतिहास मे कई युगो और साहित्यिक परम्पराओ का पता चलता है। इस दृष्टि से 'रुद्रसुधानिधि' (गद्य-रचना), 'कळसाचउतिशा' (कविता), 'सोमनाथव्रतकथा' (गद्य) आदि रचनाएँ शैव मतवाद को लेकर लिखी गयी थीं।

'चर्यागीति' में बौद्धधर्म के शून्यवाद तथा अध्यात्मवाद की भावनाधाराएँ सुस्पष्ट हैं। यह प्रधानतः अर्द्धमागधी का अपभ्रंश साहित्य है और ओडिआ, मैथिली, असमी, बाँगला आदि सभी भाषाओ के विद्वान् दावा करते है कि यह ग्रन्थ उनकी अपनी-अपनी भाषा में रचित है। कुछ आलोचक प्राक्सारला युग में लिखित नाथपन्थी साहित्य 'शिशुवेद' को भी ओड़िआ साहित्य का अन्यतम प्राचीनतम रूप मानते हैं।

---

* 'मादळापाञ्जि' उत्कल का प्राचीनतम गद्य इतिहास है। असम के 'बुरुंजी' और श्रीलंका के 'धातुवंश' (दातवंश) की तरह 'मादळापाञ्जि' एक उपादेय ग्रन्थ है। पुरी के श्री जगन्नाथजी के मन्दिर में मादळा (श्री जगन्नाथजी) की पञ्जिका (Chronicles of Jagannath's Temple) लिखना एक बड़ी सेवा है। उत्कल के प्रत्येक नरपति के राजत्वकाल की विशेष-विशेष घटनाएं इसमें लिखी जाती हैं। ओड़िशा के इतिहास, राजनीति, समाजनीति और संस्कृति-सम्बन्धी बहुत उपादान इसमें मिलते हैं। कहते हैं कि इस पंजिका का ११वीं सदी में उत्कल के राजा चोरगंगदेव के राजत्वकाल में श्रीगणेश किया गया था। अब तक भी इसकी लिखाई ठीक क्रम से चलती रही है। कई समालोचकों की राय में यह पञ्जिका १६वीं सदी में शुरू की गयी थी।

उसके वाद उत्कल में शाक्तधर्म का अभ्युदय हुआ। उत्कल के कई स्थलों की शाक्तपीठो के रूप मे प्रसिद्धि है। इस प्रदेश मे स्थित विमला, विरजा, सारला आदि शक्तिदेवियों के क्षेत्रो की शक्तिपीठो के रूप मे कल्पना की गयी है। महाकवि सारलादास एक शाक्त कवि थे। उत्कल के साहित्य-इतिहास में आप 'आदिकवि' कहलाते हैं। आपके द्वारा रचित 'चण्डीपुराण', 'विलंकारामायण' और खासकर ओडिआ 'महाभारत' आदि ग्रन्थ उत्कलीय सस्कृति को श्रेष्ठ देन है। उनके द्वारा रचित 'महाभारत' ओड़िआ के सरल तथा मधुर जीवन की वर्णनाओ से भरपूर है। ओड़िआ की सामाजिकता 'महाभारत' मे पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हुई है। इसमे उन्होने विषयवस्तुओ के सन्निवेश मे व्यासजीकृत संस्कृत 'महाभारत' का आशिक अनुसरण किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत 'महाभारत' का अनुवाद नही कहा जा सकता, यह उनकी मौलिक कृति है। और भगवती सारला का प्रसाद पाकर महाकवि सारलादासजी ने इसमे उत्कल भूमि के जातीय, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक चित्रो का सन्निवेश कर इसे यथार्थ मे एक महाकाव्य वना दिया है। १४वी सदी मे समूचे भारत मे विभिन्न भाषाओं मे लिखित महाभारतो मे 'सारला महाभारत' एक पूर्णांग मौलिक महाभारत है। सुतरां यह एक निर्विवाद उक्ति है कि ओडिआ साहित्य का सर्वप्रथम युग 'सारलायुग' ही है।

सारलादास-विरचित 'महाभारत' मे मानविक चरित्र-गठन के लिए उपयुक्त उदाहरणो व उपाख्यानो के माध्यम से आदर्श जीवन, आदर्श चारित्रिकता, आदर्श समाज तथा आदर्श कर्म-पद्धति के जो चित्र अंकित किये गये है, वे वास्तव मे असामान्य हैं। सारला साहित्य की योजना, चरित्र-विन्यास, काव्यिक कल्पना-विलास और कल्पना-वैभव, प्राकृतिक वर्णनाक्रम, मनुष्य की अन्तर्निहित प्रकृति के समीक्षण आदि का परवर्ती मध्ययुग (काव्ययुग या रीतियुग) के अग्रणी कविवर उपेन्द्र भञ्ज पर प्रभाव पडा था।

सारलायुग के वाद वलरामदास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्ददास, यशोवन्तदास और अनन्तदास —इन पाँच सिद्ध साधको और दिग्दर्शकों को लेकर उत्कलसाहित्य के इतिहास मे 'पञ्चसखा' युग का अभ्युदय हुआ। इस युग की अखण्ड मर्यादा और अतुलनीय प्रभाव का महत्त्व युगो-युगो तक उत्कल के जातीय, सामाजिक, नैतिक और धर्मगत जीवन के चरमोत्कर्ष के प्रतिपादन के लिए जातीय मानदण्ड के स्वरूप विराजमान रहेगा। सारलादास के विराट अप्रतिद्वन्द्वी अवदान 'महाभारत' ग्रन्थ के वाद वलरामदासकृत 'जगमोहन रामायण', जगन्नाथदासकृत 'श्रीमद्‌भागवत' और अच्युतानन्ददासकृत 'हरिवंश' आदि सुनीतियो से भरपूर पुराण और रचनाएँ उत्कल के जातीय जीवन और जातीय साहित्य के निर्माण-मार्ग मे दृढ पदक्षेप है। इन ग्रन्थो के अलावा इन मनीषियो ने असख्य जणाण (स्तव), भजन, चउतिशाएँ (क से क्ष तक क्रमानुसार आद्याक्षरयुक्त होकर रचित चौतीस-पदो वाली कविताएं; हिन्दी 'अखरावट'; असमी 'चतिहा'), कोइलि गीत (कोयल साहित्य) आदि लिखे हैं। खासकर जगन्नाथदासविरचित ओड़िआ 'श्रीमद्‌भागवत' ग्रन्थ आज भी उत्कल के गृह-गृह मे पूजित, पठित और आलोचित हो रहा है। वलरामदासविरचित 'जगमोहन रामायण' ग्रन्थ युगो-युगो से ओड़िआ जातीय जीवन को प्रभावित तथा प्रेरित करता रहा है और भविष्य मे भी करता रहेगा। कविवर उपेन्द्र भञ्ज ने स्वरचित 'वैदेहीश-विळास' की विषयवस्तु के सग्रह के लिए कृपासिद्धा वलराम-दास के प्रति (उनसे रचित 'जगमोहन रामायण' के लिए) अपने महाकाव्य के प्रारम्भ मे आभार प्रकट किया है। (कृपासिद्धा ए गीत प्रकाशे छाड़िलि चिन्ता ये। —"कृपासिद्धा वलरामदास ने रामचरित पर जो 'जगमोहन रामायण' लिखी है, मैं उसी का भी अनुसरण करूँगा। यह सोचकर मैंने अपनी चिन्ता त्यागी।")

ओड़िआ साहित्य के इतिहास में

उपेन्द्रयुग (रीतियुग या काव्ययुग)

(ई० १७वीं सदी से १९वी सदी के मध्य तक)

उत्कल साहित्य के इतिहास मे सूर्यवंश के महाराजा गजपति प्रतापरुद्र का राजत्व-काल (लगभग ई० १४९७ से लगभग ई० १५३४ तक) बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसी काल में बलरामदास, जगन्नाथदास आदि उपर्युक्त पाँच महात्माओ ने उत्कल मे ज्ञानमिश्रिता भक्ति तथा आध्यात्मिक जीवन का प्रचार किया था। इस समय (ई० १५१०) में चैतन्यदेव ने उत्कल मे आकर प्रेमभक्ति का प्रचार किया। इसी प्रेमभक्ति तत्त्व पर आधारित गोपीप्रेमतत्त्व तथा राधाकृष्णलीलातत्त्व का ओडिशा मे काफ़ी प्रचार होने लगा। बहुत-से ओड़िआ कवि वैष्णवधर्म-भाव से प्रणोदित हो गोपीप्रेम तथा राधा-कृष्णप्रेम को अवलम्बन कर ओड़िआ मे काव्य-कविताओ की रचना करने लगे। इस प्रकार 'पञ्चसखा' युग में और उसके बाद वैष्णवधर्म-सम्बन्धित बहुत ग्रन्थ रचित हुए। धीरे-धीरे आध्यात्मिक प्रेम ने लौकिक प्रेम का रंग पकड़ा और लोग धर्मतत्त्वों की व्याख्या सुनने के साथ-साथ काल्पनिक काव्य-कविताओ के पठन में भी रुचि लेने लगे।

युग की परिस्थितियों, राजनैतिक स्थितियो, सारलायुग और पंचसखायुग —दोनों के मिलित प्रभाव, चैतन्य-प्रचारित प्रेमभक्ति-मार्ग, सस्कृत साहित्य की चर्चा, बहुपूर्ववर्ती संस्कृतयुग के काव्यो, नाटको, अलकारों, संहिताओ आदि के सम्मिलित प्रभाव ने हमारे साहित्य के इतिहास मे रीतियुग का श्रीगणेश किया। इन्ही युगो, राजनीतिक स्थितियो और सस्कृत पण्डितो से स्पर्द्धा की मनोवृत्ति ने रीतियुग के वरेण्य धनञ्जय भञ्ज, दीनकृष्णदास, भूपति पण्डित, उपेन्द्र भञ्ज, ब्रजनाथ बड़जेना, अभिमन्यु सामन्त-सिंहार, भक्तचरणदास, कविसूर्य बलदेव रथ और यदुमणि महापात्र प्रमुख कवियों को प्रभावित किया। दीनकृष्ण, भूपति पण्डित, उपेन्द्र, अभिमन्यु, भक्तचरण प्रमुख कवियों ने कृष्ण और राम को आलम्बन मानकर आध्यात्मिक प्रेम-सम्बलित कविताएँ रची थी। सुतरा वे महाकवि भी वैष्णव धर्मावलम्बियो के आराध्य है। साथ ही, उन कवियों ने लौकिक प्रेम-सम्बलित काव्यो की सृष्टि भी की थी। परन्तु दोनो प्रकार के काव्यों की साधना में चमत्कार, काव्यिक कल्पना-विलास मे अनोखापन और वर्णना-वैभव में वैचित्र्य आदि की दृष्टियों से वे पूर्ववर्त्ती सारलादास, बलरामदास और जगन्नाथदास से बिल्कुल स्वतन्त्र थे। सारलादास, बलरामदास और जगन्नाथदास की रचनाओ में लौकिक उदाहरणो के प्रकाशन मे भाषा की सरलता तथा मौलिकता एव भावो की मधुरता का सुमनोहर समन्वय संघटित हुआ है। परन्तु रीतियुग मे सस्कृत काव्य साहित्य सहित प्रतिस्पर्द्धा करनेवाले कवियो का अपने कल्पना-विलास तथा वर्णना-वैभव मे वैचित्र्यपूर्ण चमत्कार-प्रदर्शन मुख्य लक्ष्य रहा था। इसलिए स्व-स्व-रचित काव्य-कविताओ मे संस्कृत काव्य-काविताओ के सदृश शब्दाडम्बरो तथा अलकारों के प्रदर्शन की ओर उनकी प्रमुख प्रवृत्ति रही।

काव्यसाहित्य के स्रष्टा के रूप में उपेन्द्र भञ्ज जी का स्थान उत्कल साहित्य-गगन मे एक उज्ज्वल ज्योतिष्क का-सा है। काव्य-साहित्य की जिस दिशा मे साधना करके वे सफल हुए थे, बहुत पहले से ही उसकी नीव पड़ गयी थी। उनके पीछे एक विराट साहित्य-साधना की परम्परा थी। ओड़िआ साहित्य के इतिहास का आलोचन करने से यह अधिक स्पष्ट हो जाता है।

ओड़िआ साहित्य मे रीतियुग (काव्ययुग या उपेन्द्र युग) रामचन्द्र पट्टनायक से शुरू होकर कविसूर्य वलदेव रथ जी की कृतियो मे समाप्त हुआ था। दीर्घ दो-सौ (ई० १७वी सदी से ई० १९वी सदी के मध्य तक) वर्षो के दरमियान इस युग ने उपेन्द्र की कृतियो मे पराकाष्ठा प्राप्त की थी। सुतरा इस युग को 'उपेन्द्र युग' कहा जाता है। रामचन्द्र पट्टनायक-रचित 'हारावळी', अर्जुनदास-विरचित 'रामविभा' और 'कळपलता', वनमाळीदासकृत 'चाट इच्छावती', प्रतापरायकृत 'शशिशेणा, शिशुशंकर दासकृत 'उषाभिळाष', नरसिंह सेणकृत 'परिमळा', त्रिविक्रमकृत 'कनकलता', कार्तिकदासकृत 'रुक्मिणीविभा', देवदुर्ल्लभदासकृत रहस्यमञ्जरी, विष्णुदासकृत 'लीळावती' और सर्वोपरि सुकवि धनञ्जय भञ्जकृत 'मदनमञ्जरी, 'अनगरेखा', 'रघुनाथविळास' आदि ऊँची कोटि के पौराणिक तथा काल्पनिक काव्य उपेन्द्र की कविजीवनी के पूर्व रचित होकर लोगो मे आदर पा चुके थे। इन कवियो ने अपनी-अपनी रचनाओ मे जो शैली-वैशिष्ट्य और वर्णना-वैभव मे जो वैचित्र्य दिखाया था, उससे इसकी सूचना मिल रही थी कि उत्कल मे तव तक एक रीतियुग अथवा काव्ययुग की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। कवि लोगो ने अपने-अपने वर्णना-वैभव मे, याने नायक-नायिकाओ, नगरो, राजपथो, उद्यानो, ऋतुचित्रो, प्रेम, विरह आदि की वर्णना में संस्कृत की क्रमपद्धति अपनायी थी एवं इसके प्रकाशन मे अलंकार-शास्त्रानुमोदित अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अर्थान्तिरन्यास आदि अलंकारो तथा विभिन्न वन्धो का प्रयोग किया था। पौराणिक तथा काल्पनिक काव्यो में इन कवियों ने जो रसिकता और आलंकारिकता दिखलायी थी, उपेन्द्र की कृतियो में उसने पराकाष्ठा प्राप्त की। पौराणिक काव्यो मे कथावस्तु की योजना तथा काल्पनिक काव्यो मे नायक-नायिकाओ के जन्म, शास्त्राध्ययन, यौवनप्राप्ति, विवाह, मिलन-विरह आदि के वर्णना-वैभव मे चमत्कार लाने मे उपेन्द्र रीतिकाल के पूर्वोक्त कवियो मे सर्वश्रेष्ठ थे। उत्कल मे प्रचलित समसामयिक पूजापर्वो, त्योहारो, विद्याध्ययन, स्त्री-शिक्षा, विवाह-विधानो, यौतुक-प्रथाओ, नारियो की वेशभूषाओ, शुद्ध दाम्पत्य प्रेम, नृत्य-संगीत-शिक्षा, वाणिज्य-व्यापारो आदि के जो सामाजिक तथा सास्कृतिक चित्र उपेन्द्र ने दिये हैं, वे सब नि.सन्देह रीतियुग के पूर्वोक्त कवियो के द्वारा प्रदत्त चित्रो से न्यारे रहे। खासकर भाषा-शैली मे उनका वैशिष्ट्य और अलकार-प्रयोग मे उनका वैचित्य उनकी अलौकिक प्रतिभा-प्रभा का परिचय देता है। उनका यही वैशिष्ट्य तथा वैचित्र्य रीति युग के, परवर्त्ती ब्रजनाथ वडजेना, सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा, अभिमन्यु सामन्त-सिहार, भक्तचरणदास, कविसूर्य वलदेव रथ, यदुमणि महापात्र आदि कवियो का आदर्श रहा। गौडीय वैष्णवधारा के प्रसिद्ध उत्कलीय कवि अभिमन्यु सामन्त सिंहार तो भञ्जीय कविता-माधुरी से इतने मुग्ध हो पड़ते थे कि स्वकृत अमर काव्य 'विदग्ध चिन्तामणि' काव्य में उपेन्द्रजी के प्रति भक्ति-गद्‌गद कण्ठ से वोल उठे थे—

"उपइन्द्र पद अभिमन्यु मनु, पासोर न यिव दिनु दिनु।"

(अभिमन्यु के मन से उपेन्द्र जी के पाद किसी भी दिन नही विसरेंगे।)

हिन्दी साहित्य-इतिहास के आधुनिक युग के प्रवर्त्तक भारतेन्दुजी हरिश्चन्द्र के सदृश ओड़िया साहित्य मे आधुनिक युग के कर्णधार कविवर राधानाथजी राय हैं। भञ्जीय कविता-माधुरी से वे फूले नही समाते थे। स्वरचित 'चिलिका' (उत्कल की सवसे बड़ी झील) काव्य मे वे भञ्जजी की प्रशंसा करते हुए बोलते है—

"भाग्यवान बेनि बाणीङ्क कुमर,
कवि बळदेव भञ्ज बीरबर।
× × ×
काहिँ सेहि काहिँ मुहिँ अकिञ्चन।"

(सरस्वती के दोनो पुत्र, वीरवर उपेन्द्र भञ्ज तथा कविसूर्य बलदेव रथ भाग्यवान् है। × × वे दोनो कहाँ और मैं अकिञ्चन कहाँ ?)

कविवर राधानाथजी की उपेन्द्र भञ्ज जी के प्रति कैसी असाधारण श्रद्धा तथा भक्ति थी, वह उनकी निम्नलिखित बाँगला कविता से स्पष्ट हो जाती है :—

"नीलकण्ठात्मज कमनीय शक्तिधर,
बहु कष्ट सह्य करि रण घोरतर,
हे नीलकण्ठनन्दन नृपकुलधन!
हये अग्रगण्य कवि निज बाहुबले,
धन्य राजकवि! तुमि जनम सुक्षणे,
सुयशस्वी सुसमये सरस लेखनी,
साजायेछ बैदेहीशे हे कविरतन,
त्रिदशबलेर शूरसेनानी हइये।
पाइल अक्षय यशः तारके बधिये॥
तुमि ओ तेमनि शूर सुकविमण्डले।
नाशिलन उत्कल निन्दा उत्कलभूषण॥
ग्रहनिल ए प्रदेशे हे कवीन्द्रमणि!
धरिल उपेन्द्र! मरि ये चारुभूषणे॥
तोमा विना साध्य कार साजाय एमन॥"

(राधानाथ राय)

उत्कलमणि पण्डित गोपबन्धुदास जी भञ्ज जी-विरचित काव्य-कविताएँ पढकर हर्षोत्फुल्ल हो उठते थे। उन्होने भञ्ज जी की प्रशस्ति गाते हुए लिखा था—

"गाए तव गीत सभारे पण्डित पथे पान्थ हृष्टमना।
बिले गाये चषा अन्तःपुरे योषा नृत्यरंगे बारांगना॥"

(भञ्जकवि! तुम्हारे द्वारा रचित गीत-सभा में पण्डित गाता है और पथ पर पथिक हृष्टचित्त होकर गाता है। पुनः खेत मे किसान, अन्तःपुर में महिला एव नृत्य-रंगशाला (या अखाड़े) मे वारागना (नर्त्तकी) भी तुम्हारे गीतो को गाती है।)

अपने असामान्य कवित्व के बल से उपेन्द्र भञ्ज जी ने ओड़िआ साहित्य के रीतियुग के पूर्ववर्त्ती कवियो और अपने समसामयिक कवियो के समाज मे सर्वोच्च आसन लाभ किया था। इसलिए वे ओड़िआ साहित्य-साम्राज्य मे 'कविसम्राट्' कहे जाते है।

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज जी की जीवनी

वंश-परिचय

परमपुनीत उत्कल प्रदेश के साहित्याकाश मे कविसम्राट् उपेन्द्रजी भञ्ज एक उज्ज्वल ज्योतिष्क के सदृश हैं। ऐसे एक प्रतिभावान् महाकवि का जीवन-वृत्तान्त भारतीय विद्वद्वर्ग को अवगत कराना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। यह बात सच है कि भारत के कालिदास, भास, तुलसीदास आदि जगद्विख्यात कवियो ने अपने-अपने ग्रन्थों मे अपने-अपने जीवन-वृत्तान्त का वर्णन नही किया है। अंग्रेजी साहित्य के विख्यात कवि शेक्सपियर ने भी स्वकृत किसी ग्रन्थ मे अपनी जीवनी नही बतायी है। परन्तु हमारे कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज जी ने अपने कुछ ग्रन्थो मे अपने वश की कुछ जानकारियाँ दी हैं। स्वरचित 'रसपञ्चक' पुस्तक मे आपने अपने वश का परिचय इस प्रकार दिया है :—

प्राचीन ओड़िआ ताड़पत्रों की पोथी मे प्रदत्त भञ्जवंशावली की तालिका और सस्कृत ताडपत्रो की पोथियो मे वर्णित भञ्जवंशावली की तालिका की अपेक्षा स्वरचित 'रसपञ्चक' पुस्तक मे कवि के द्वारा प्रदत्त अपने पूर्वजो की तालिका अधिक विश्वसनीय है। [प्राचीन ताड़पत्रो की पोथी मे प्रदत्त भञ्जवशावली की तालिका के अनुसार रघुनाथजी भञ्ज (ई० सन् ८३२ से ई० ८५२ तक) घूमुसर भञ्जवश के सर्वप्रथम राजा थे। —परिशिष्ट, कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज, श्री अनन्त पद्मनाभ पट्टनायक-रचित।]

उपेन्द्र भञ्ज ने अपने पितामह (प्रताप) धनञ्जय भञ्ज जी का परिचय स्वरचित 'लावण्यवती', 'वैदेहीश-विळास' और 'रसपञ्चक' पुस्तको मे दिया है। धनञ्जयजी "लोके विख्यात कविगुणे (लोगो मे कविगुण में विख्यात)" थे और "वेनि अर्थे (दोनो अर्थो मे) से (वे) कवि-गणेश— (१) कविगण मे ईश (कवियो मे श्रेष्ठ), (२) गणेश के सदृश कवि हैं" —यह जाण (जानो, समझो)। आपने 'रघुनाथ-विळास', त्रिपुर-सुन्दरी', 'मदनमञ्जरी', 'रामचरित', 'अनगरेखा', 'इच्छावती', आदि काव्यो की रचना की थी। आपने कुछ चौपाइयाँ भी लिखी थी, जिनमे 'चोपदी-भूषण' मुख्य है। उन्होने चम्पूरीति मे भी कुछ कविताएँ लिखी थी। वाणी की सेवा मे उन्होने अपने को न्योछावर कर दिया था। राजकार्य सँभालने के लिए उन्हे प्रायः समय नही मिलता था। इसलिए अपने अनुज गोविन्दजी भञ्ज पर उन्होने राज्य-भार समर्पित कर दिया था।

(प्रताप) धनञ्जय भञ्ज के एकाधिक रानियाँ थी। विभिन्न रानियो के गर्भो से उनके बारह पुत्र पैदा हुए थे। उनकी द्वितीय पत्नी मण्डादेवी नवदुर्ग के राजा की कन्या थी और मण्डादेवी के इकलौते पुत्र नीलकण्ठजी भञ्ज कविसम्राट् उपेन्द्र के जनक थे। धनञ्जय के पुत्रो मे गगाधरजी भञ्ज ज्येष्ठ और उपेन्द्र के पिता नीलकण्ठजी चतुर्थ सन्तान थे। धनञ्जय भञ्ज ने घुमुसर मे दीर्घ ६२ वर्षो तक राज्य किया था। उनके राज्यकाल मे घुमुसर राज्य समृद्धिशाली था और राज्य का सैन्य विभाग दृढ़ीभूत हुआ था। उन्होने वाग्देवी का मन्दिर, पञ्चशिला मन्दिर, लेपाशिला मन्दिर आदि मन्दिरो का निर्माण कराया था। उनसे प्रतिष्ठित ब्राह्मण-ग्रामो मे प्रताप धनञ्जयपुर शासन अब भी उनके अकातर दान के मूकसाक्षी के स्वरूप विद्यमान है।

(प्रताप) धनञ्जय भञ्ज की रानियो मे से मण्डादेवी परमासुन्दरी थीं। राजा उन्ही के इशारे से चलते थे। रानी ने इसका फायदा उठाना चाहा और ज्येष्ठ गगाधरजी के होते हुए भी अपने गर्भसम्भूत पुत्र नीलकण्ठजी का उत्तराधिकारी युवराज पद पर तिलक करने के लिए राजा से बार-बार अनुरोध किया। आखिर मण्डादवी की इच्छानुसार धनञ्जयजी ने नीलकण्ठजी भञ्ज का युवराज पद पर तिलक किया।

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज जी ने अपने पितामह धनञ्जयजी का परिचय देकर फिर अपने पिता नीलकण्ठजी का परिचय भी दिया है।

'लावण्यवती' ग्रन्थ मे उन्होने लिखा है—

"तद्‌वत ताहांक तनुज, नरेश नीलकण्ठ भञ्ज।"

(उन्ही धनञ्जयजी के समान; उनके पुत्र नरेश नीलकण्ठजी भञ्ज थे।) 'वैदेहीश-विळास' मे—

"बंन्दन तद्वत तांक नन्दन प्रमाण ये।"

× × ×

"बसुधापति से नीलकण्ठ नामे ख्यात, विधानरे मुहिँ ताहांकर ज्येष्ठसुत ये।"

(उन्ही कवि-गणेश धनञ्जयजी के पुत्र (नीलकण्ठजी) धनञ्जयजी के समान वन्दनीय हैं। × × वे पृथिवीपति नीलकण्ठजी के नाम से प्रसिद्ध है। विधान मे मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ।)

कवि के पिता नीलकण्ठ भञ्ज भी कवि थे। उन्होने कुछ काव्य-कविताएँ लिखी थी। नीलकण्ठजी धनञ्जयजी के उपरान्त घुमुसर मे दो वर्षो (ई० १७०१ से ई० १७०३) तक राज्य किया था। उपेन्द्र भञ्ज ने स्वकृत 'वैदेहीश-विळास' में अपना परिचय नीचे लिखे अनुसार दिया है :—

"वीरबर पद उपइन्द्र मोर नाम, वारे वारे सेवारे मनाइँ सीताराम ये।
विचित्र कवित्वमार्गे प्रसरिला बुद्धि, बिरचिलि रामायण ए मो बड़ सिद्धि ये॥"
(छान्द ५२, वै० वि०)

(मेरी पदवी वीरवर है और मेरा नाम उपेन्द्र है। वार-वार अपनी सेवा से सीतारामजी को मनाकर विचित्र कवित्व-मार्ग मे मेरी वुद्धि का प्रसार हुआ और मैंने रामायण की रचना की। यही मेरी सबसे बड़ी सिद्धि है।)

उपर्युक्त विवरणो से पता चलता है कि उपेन्द्र के पितामह धनञ्जयजी और उनके पिता नीलकण्ठजी साहित्यप्रेमी, पण्डित और कवि थे। उपेन्द्र ने उनके योग्य दायाद (पुत्र) के रूप मे अपनी वंशपरम्परा अक्षुण्ण रखी थी।

उपेन्द्र भञ्ज जी का जन्म-काल और जन्म-स्थान

यह वड़े खेद की वात है कि उपेन्द्र भञ्ज ने किस वर्ष और किस तिथि मे जन्म ग्रहण किया था, इसका अभी तक निस्सन्देह रूप से निर्णय नही हो पाया है। स्वर्गत तारिणीचरणजी रथ और स्वर्गत विच्छन्दचरणजी पट्टनायक के मतानुसार उपेन्द्र ने करीव-करीव सन् ई० १६८५ मे जन्म-ग्रहण किया था और ई० १७२५ के करीव-करीव प्राण-त्याग किया था। उनका यह मत उपेन्द्ररचित 'रसलेखा' पुस्तक मे प्रदत्त

"दिव्यसिंह गजपति अंक सप्तविंशति शेष दिने शेष एहु गीत।"

[उत्कल के गजपति गोड़ेश्वर नवकोटि कर्णाटोत्कळ वर्गेश्वर महाराज दिव्यसिंहदेव के राजत्व (ई० १६९३—ई० १७२१) के २७वें अक (ई० १७२१) के अन्तिम दिन यह काव्य समाप्त हुआ।] उक्ति के आधार पर अनुमित है।

श्रीयुक्त अनन्त पद्मनाभजी पट्टनायक कहते हैं—' उपेन्द्र के पितामह धनञ्जय भञ्ज ई० १७०१ तक जीवित थे और उपेन्द्र ने अपनी २८वें वर्ष की अवस्था में 'वैदेहीश-विळास' महाकाव्य की रचना समाप्त कर वह पितामह को दिखाया था। उनके मतानुसार उपेन्द्र ने ई० १६९८ के लगभग 'वैदेहीश-विळास' काव्य की रचना समाप्त कर दी थी और यदि उस समय उनकी आयु २८ वर्ष की हुई होगी, उनका जन्मकाल ई० १६७० के लगभग है और मृत्युकाल ई० १७२० के करीव-करीव है।"

अध्यापक श्रीयुक्त गौरीकुमार ब्रह्मा के मतानुसार उपेन्द्र ने सन् ई० १६७५-७६ के आसपास जन्मग्रहण किया था। उनकी जन्मतिथि के बारे में वे कहते हैं —"गत प्राय: ३६ वर्षो से उत्कल के पुर-पल्लियों मे भञ्जजयन्ती उत्सव भिन्न-भिन्न तिथियो मे मनाया जाता रहा है। भञ्जनगर की 'भञ्जसाहित्यपरिषद्' प्रतिवर्ष श्रीपचमी के दिन यह उत्सव मनाती है, जब कि कटक की 'कलिंग भारती' सस्था हर साल मई १६ तारीख से ता० २२ तक यह उत्सव मनाती है। उनके जन्मवर्ष तथा जन्मतिथि के बारे मे अब भी गवेषणा की गुजाइश है और जब तक कोई अकाट्य तथा निर्भरयोग्य प्रमाण न मिले, तब तक इनके सम्बन्ध मे निर्भूल से कुछ नही कहा जा सकता।" फिर भी, बहुमतो से स्वीकृत ई० सन् १६७० को उपेन्द्रजी के जन्मवर्ष के रूप मे मान लेना चाहिए।

उपेन्द्र भञ्ज जी के जन्मस्थान के बारे मे वैसा कोई मतभेद नही दिखाई पडता। आपने गजाम जिले के प्राचीन घुमुसर (वर्तमान के भञ्जनगर सबडिविजन) के राजवंश मे जन्मग्रहण किया था। घुमुसर के राजाओ की राजधानी कुलाड़गढ वर्तमान उक्त अंचल मे सबसे बड़े शहर तथा सद्र-मुक़ाम भञ्जनगर से मात्र आठ किलोमीटर की दूरी पर है। आधुनिक भञ्जनगर शहर का प्राचीन नाम रसलकोण्डा था। उत्कल के इन्ही सारस्वत वरपुत्र को आनुष्ठानिक तथा आचलिक सम्मान दिखाने के अभिप्राय से इस शहर का नाम "भञ्जनगर रखा गया है।

कुलाड़गढ के प्राचीन रूपविभव अब नही है। इसके एक ओर ऊंचे-ऊँचे पर्वत खड़े है और दूसरी ओर 'बड' नदी बह रही है। पहाडो के पाददेश मे घुमुसर राजवंश की प्रसिद्ध अधिष्ठात्री देवी वाग्देवी का मन्दिर स्थित है। मन्दिर के पश्चिम मे जो पर्वत खड़ा है, उसके कटि-देश मे प्राचीन भञ्जवंश का राजप्रासाद 'कुलाडगढ़' विद्यमान था। यही उपेन्द्रजी ने जन्मग्रहण किया था। अब प्रासाद के खडहर मात्र मिलते है।

उपेन्द्र ने पहले नयागड़ के राजा विनायकजी सिंह की कन्या से विवाह किया था। नयागड के राजा ने उन्हे नयागड के अन्तर्गत मालिसाही ग्राम यौतुकस्वरूप दिया था। पहली पत्नी के देहान्त के बाद उपेन्द्र ने पिता और पितामह के परामर्शानुसार बाणपुर की राजकन्या से पुन: विवाह किया था।

मालिसाही मे रहते समय, उपेन्द्र हर रोज घोड़े पर ओडिशा के प्रसिद्ध तीर्थस्थल ओडगाँव-स्थित रघुनाथ-मन्दिर को, रघुनाथजी के दर्शनार्थ जाया करते थे। यह मन्दिर मालिसाही से ७-८ मीली की दूरी पर दक्षिण की दिशा मे है। कुछ गवेषको का यह मत है कि श्री रघुनाथजी के मन्दिर मे उपेन्द्र ने 'रामतारक मन्त्र' (रं रामाय नम:) जपकर सिद्धि प्राप्त की थी। बाद मे इसी मन्त्र के प्रभाव से वे 'वैदेहीश-विळास' जैसे अलंकारपूर्ण महाकाव्य की रचना थोडे ही समय में कर पाये थे। उन्होंने सबसे पहले यह ग्रन्थ श्री रघुनाथजी के चरण-कमलो पर समर्पित किया था। कुछ आलोचक यह भी कहते हैं कि मालिसाही के निकटवर्ती एक छोटे से पहाडमध्यस्थ गुफा मे उपेन्द्र अपने वंश की इष्टदेवी वाग्देवी का ध्यान करते हुए 'रामतारक मन्त्र' जपते और कविताएँ लिखते थे। इस गुफा का नाम 'सिद्धगुफा' है। फिर कुछ आलोचक कहते है कि कुलाडगढ के समीपवर्ती वाघदलि नामक एक पर्वतावृत रमणीय निर्जन स्थानमध्यस्थ एक गुफा मे बैठे उपेन्द्र ने 'रामतारक' मन्त्र मे सिद्धि प्राप्त की थी।

अन्य एक किंवदन्ती यह है— एक दिन उपेन्द्र श्री रघुनाथजी के दर्शनान्तर ओडगाँव से लौट रहे थे। मार्ग मे एक तान्त्रिक श्मशान मे शव पर बैठे जप करते थे। देवी प्रसन्न होकर भैरवी का रूप धारण कर सहसा आविर्भूत हुई और तान्त्रिक से कहा, "वर माँगो"। तान्त्रिक देवी के भयंकर रूपदर्शन से मूर्च्छित हो गिर पड़े। इसी समय

उपेन्द्र ने वहाँ उपस्थित होकर देवी से प्रार्थना की— "मुझमें दुर्लभ कवित्व-शक्ति का स्फुरण हो।" देवी ने कहा, "तथास्तु" और गायब हो गयी। इसी वरदान के प्रसाद से उपेन्द्र ने अद्भुत कवित्वशक्ति प्राप्त की।

उपेन्द्र भञ्ज जी श्री रघुनाथजी के अनन्य भक्त थे। कभी-कभी वे घोड़े पर कुलाड़गढ़ से भी ओड़गाँव जाकर रघुनाथजी के दर्शन करते। एक दिन वे अपनी शारीरिक असुस्थता के कारण श्री रघुनाथजी के दर्शनार्थ ओड़गाँव नही जा सके। इसलिए वे बड़े दुःखी हुए। रघुनाथजी ने भक्त की मनोव्यथा समझकर उन्हे स्वप्न में यह आदेश दिया, "तुम अब अपने राज्य मे ही मेरे दर्शन करोगे। ओड़गाँव जाने का कष्ट तुम्हे फिर नही उठाना पड़ेगा।" प्रभु के इस आदेशानुसार उपेन्द्र जी ने अपने वासस्थान कुलाड के समीपवर्ती नेटेगा में रघुनाथजी का एक मन्दिर बनवाया। वही वे रोज प्रभु के दर्शन करते रहे। नेटेगास्थित रघुनाथजी के मन्दिर के गर्भगृह के पूर्वी द्वार में मण्डप की कड़ियों और अन्यान्य लकड़ी के खम्भो मे रामायणचरित-सम्बन्धी जो सब मूर्त्तियाँ खोदी गयी हैं, उन्होने केवल ओड़िशा मे ही नही, सारे भारत में भी प्रशंसा पायी है। ऐसा लगता है जैसे 'वैदेहीश-विळास' के चित्र उन पर खोदे गये हो।

उपेन्द्र की शिक्षा तथा बहुशास्त्रदर्शिता

पहले बताया गया है कि उपेन्द्र के पितामह धनञ्जयजी और पिता नीलकण्ठजी साहित्यप्रेमी, पण्डित और कवि थे। सुतरां यह स्वाभाविक है कि उन दोनो की देखरेख मे उपेन्द्र की बचपन की शिक्षा सम्पन्न हुई होगी। घुमुसर की प्राचीन राजधानी कुलाड़गढ़ का राजप्रासाद और राज्य का वातावरण उस समय उच्च शिक्षा तथा उच्च सस्कृति का केन्द्र रहा था। ऐसे साहित्यिक वातावरण मे उपेन्द्र भञ्ज जी पाले-पोसे गये थे।

पितामह तथा पिता—दोनो के प्रभाव से उपेन्द्र ने संस्कृत साहित्य के प्रत्येक अंग के बहुत ग्रन्थो का अध्ययन किया था। पुराण, काव्य, नाटक, अलंकार, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, कामशास्त्र, अभिधान, तन्त्र और दर्शन आदि विषयो मे बहुत ग्रन्थ उन्होने पढे थे। उनके ज्ञान की व्यापकता उनसे रचित ग्रन्थो की विषयवस्तुओं से सिद्ध होती है।

अमरकोष, त्रिकाण्डकोष, मेदिनीकोष, वादवकोश, शाश्वतकोश, विश्वप्रकाश आदि अभिधानो को उन्होने अपना आयत्त कर डाला था। उनका इस क्षेत्र मे अधिकार उनसे व्यवहृत शब्द-समुद्र की गम्भीरता और विस्तीर्णता से स्पष्ट होता है। इसी वजह से कविसम्राट् ने अपने विषय में कहा है— "मुं लभिछि शबद-सागर पार (मैंने शब्द-सागर को पार किया है)।"

अलकार-शास्त्रो मे 'एकावली', 'साहित्य-दर्पण', 'साहित्य-रत्नाकर', 'कवि-कल्पलता' आदि मुख्य है। प्रतीत होता है कि कवि ने इन ग्रन्थो को आदर्शस्वरूप रखकर अपनी कविताएँ रची थी। वात्स्यायन के कामशास्त्र को भी उन्होने आयत्त किया था। उनसे रचित प्रेम-काव्यो मे अंकित नायक-नायिकाओं के हाव-भावों और दाम्पत्य-क्रीड़ाओं के चित्रों से यह कथन प्रमाणित होता है। इनके अलावा अपने ग्रन्थो में उन्होने देवी-आराधना, मन्त्र-उच्चारण, मोहन, उच्चाटन मन्त्रादि के रूपो का भी उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि उन्होने संस्कृत व ओड़िआ तन्त्र-शास्त्रो का गहरा अध्ययन किया था। ओड़िआ साहित्य मे पहले से व्यवहृत सारी राग-रागिनियों का व्यवहार कर उन्होंने रमणीय कविताओं की रचना की है। इसलिए उनका छान्द-विभाग ओड़िआ

अध्यापक श्रीयुक्त गौरीकुमार ब्रह्मा के मतानुसार उपेन्द्र ने सन् ई० १६७५-७६ के आसपास जन्मग्रहण किया था। उनकी जन्मतिथि के बारे मे वे कहते हैं —"गत प्रायः ३६ वर्षों से उत्कल के पुर-पल्लियों मे भञ्जजयन्ती उत्सव भिन्न-भिन्न तिथियों मे मनाया जाता रहा है। भञ्जनगर की 'भञ्जसाहित्यपरिषद्' प्रतिवर्ष श्रीपंचमी के दिन यह उत्सव मनाती है, जब कि कटक की 'कलिंग भारती' सस्था हर साल मई १६ तारीख से ता० २२ तक यह उत्सव मनाती है। उनके जन्मवर्ष तथा जन्मतिथि के बारे मे अब भी गवेषणा की गुंजाइश है और जब तक कोई अकाट्य तथा निर्भरयोग्य प्रमाण न मिले, तब तक इनके सम्बन्ध मे निर्भूल से कुछ नही कहा जा सकता।" फिर भी, बहुमतो से स्वीकृत ई० सन् १६७० को उपेन्द्रजी के जन्मवर्ष के रूप मे मान लेना चाहिए।

उपेन्द्र भञ्ज जी के जन्मस्थान के बारे मे वैसा कोई मतभेद नही दिखाई पड़ता। आपने गजाम जिले के प्राचीन घुमुसर (वर्तमान के भञ्जनगर सबडिविजन) के राजवंश में जन्मग्रहण किया था। घुमुसर के राजाओ की राजधानी कुलाड़गढ वर्तमान उक्त अंचल मे सबसे बड़े शहर तथा सद्र-मुक़ाम भञ्जनगर से मात्र आठ किलोमीटर की दूरी पर है। आधुनिक भञ्जनगर शहर का प्राचीन नाम रसलकोण्डा था। उत्कल के इन्ही सारस्वत वरपुत्र को आनुष्ठानिक तथा आचलिक सम्मान दिखाने के अभिप्राय से इस शहर का नाम "भञ्जनगर रखा गया है।

कुलाडगढ़ के प्राचीन रूपविभव अब नही है। इसके एक ओर ऊंचे-ऊंचे पर्वत खडे है और दूसरी ओर 'बड़' नदी बह रही है। पहाडो के पाददेश मे घुमुसर राजवंश की प्रसिद्ध अधिष्ठात्री देवी वाग्देवी का मन्दिर स्थित है। मन्दिर के पश्चिम मे जो पर्वत खडा है, उसके कटि-देश में प्राचीन भञ्जवंश का राजप्रासाद 'कुलाड़गढ़' विद्यमान था। यही उपेन्द्रजी ने जन्मग्रहण किया था। अब प्रासाद के खडहर मात्र मिलते हैं।

उपेन्द्र ने पहले नयागड़ के राजा विनायकजी सिंह की कन्या से विवाह किया था। नयागड के राजा ने उन्हें नयागड के अन्तर्गत मालिसाही ग्राम यौतुकस्वरूप दिया था। पहली पत्नी के देहान्त के बाद उपेन्द्र ने पिता और पितामह के परामर्शानुसार बाणपुर की राजकन्या से पुनः विवाह किया था।

मालिसाही मे रहते समय, उपेन्द्र हर रोज घोड़े पर ओडिशा के प्रसिद्ध तीर्थस्थल ओडगांव-स्थित रघुनाथ-मन्दिर को, रघुनाथजी के दर्शनार्थ जाया करते थे। यह मन्दिर मालिसाही से ७-८ मीली की दूरी पर दक्षिण की दिशा मे है। कुछ गवेषको का यह मत है कि श्री रघुनाथजी के मन्दिर मे उपेन्द्र ने 'रामतारक मन्त्र' (रं रामाय नमः) जपकर सिद्धि प्राप्त की थी। बाद मे इसी मन्त्र के प्रभाव से वे 'वैदेहीश-विळास' जैसे अलंकारपूर्ण महाकाव्य की रचना थोडे ही समय में कर पाये थे। उन्होने सबसे पहले यह ग्रन्थ श्री रघुनाथजी के चरण-कमलो पर समर्पित किया था। कुछ आलोचक यह भी कहते हैं कि मालिसाही के निकटवर्ती एक छोटे से पहाड़मध्यस्थ गुफा मे उपेन्द्र अपने वंश की इष्टदेवी वाग्देवी का ध्यान करते हुए 'रामतारक मन्त्र' जपते और कविताएँ लिखते थे। इस गुफा का नाम 'सिद्धगुफा' है। फिर कुछ आलोचक कहते हैं कि कुलाडगढ के समीपवर्ती बाघदलि नामक एक पर्वतावृत रमणीय निर्जन स्थानमध्यस्थ एक गुफा मे बैठे उपेन्द्र ने 'रामतारक' मन्त्र मे सिद्धि प्राप्त की थी।

अन्य एक किंवदन्ती यह है— एक दिन उपेन्द्र श्री रघुनाथजी के दर्शनान्तर ओड़गांव से लौट रहे थे। मार्ग में एक तान्त्रिक श्मशान मे शव पर बैठे जप करते थे। देवी प्रसन्न होकर भैरवी का रूप धारण कर सहसा आविर्भूत हुई और तान्त्रिक से कहा, "वर मांगो"। तान्त्रिक देवी के भयंकर रूपदर्शन से मूर्च्छित हो गिर पड़े। इसी समय

उपेन्द्र ने वहाँ उपस्थित होकर देवी से प्रार्थना की— "मुझमें दुर्लभ कवित्व-शक्ति का स्फुरण हो।" देवी ने कहा, "तथास्तु" और गायब हो गयी। इसी वरदान के प्रसाद से उपेन्द्र ने अद्भुत कवित्वशक्ति प्राप्त की।

उपेन्द्र भञ्ज जी श्री रघुनाथजी के अनन्य भक्त थे। कभी-कभी वे घोड़े पर कुलाड़गढ से भी ओड़गाँव जाकर रघुनाथजी के दर्शन करते। एक दिन वे अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण श्री रघुनाथजी के दर्शनार्थ ओड़गाँव नही जा सके। इसलिए वे बड़े दुःखी हुए। रघुनाथजी ने भक्त की मनोव्यथा समझकर उन्हे स्वप्न में यह आदेश दिया, "तुम अब अपने राज्य मे ही मेरे दर्शन करोगे। ओड़गाँव जाने का कष्ट तुम्हें फिर नहीं उठाना पड़ेगा।" प्रभु के इस आदेशानुसार उपेन्द्र जी ने अपने वासस्थान कुलाड़ के समीपवर्ती नेटेंगा मे रघुनाथजी का एक मन्दिर बनवाया। वही वे रोज प्रभु के दर्शन करते रहे। नेटेंगास्थित रघुनाथजी के मन्दिर के गर्भगृह के पूर्वी द्वार में मण्डप की कड़ियों और अन्यान्य लकड़ी के खम्भो मे रामायणचरित-सम्बन्धी जो सब मूर्त्तियाँ खोदी गयी हैं, उन्होने केवल ओड़िशा मे ही नही, सारे भारत मे भी प्रशंसा पायी है। ऐसा लगता है जैसे 'वैदेहीश-विळास' के चित्र उन पर खोदे गये हों।

उपेन्द्र की शिक्षा तथा बहुशास्त्रदर्शिता

पहले बताया गया है कि उपेन्द्र के पितामह धनञ्जयजी और पिता नीलकण्ठजी साहित्यप्रेमी, पण्डित और कवि थे। सुतरां यह स्वाभाविक है कि उन दोनो की देखरेख मे उपेन्द्र की बचपन की शिक्षा सम्पन्न हुई होगी। घुमुसर की प्राचीन राजधानी कुलाड़गढ़ का राजप्रासाद और राज्य का वातावरण उस समय उच्च शिक्षा तथा उच्च संस्कृति का केन्द्र रहा था। ऐसे साहित्यिक वातावरण मे उपेन्द्र भञ्ज जी पाले-पोसे गये थे।

पितामह तथा पिता —दोनों के प्रभाव से उपेन्द्र ने संस्कृत साहित्य के प्रत्येक अंग के बहुत ग्रन्थो का अध्ययन किया था। पुराण, काव्य, नाटक, अलंकार, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, कामशास्त्र, अभिधान, तन्त्र और दर्शन आदि विषयों मे बहुत ग्रन्थ उन्होने पढे थे। उनके ज्ञान की व्यापकता उनसे रचित ग्रन्थो की विषयवस्तुओं से सिद्ध होती है।

अमरकोष, त्रिकाण्डकोष, मेदिनीकोष, वादवकोश, शाश्वतकोश, विश्वप्रकाश आदि अभिधानो को उन्होने अपना आयत्त कर डाला था। उनका इस क्षेत्र मे अधिकार उनसे व्यवहृत शब्द-समुद्र की गम्भीरता और विस्तीर्णता से स्पष्ट होता है। इसी वजह से कविसम्राट् ने अपने विषय में कहा है— "मुं लभिछि शबद-सागर पार (मैंने शब्द-सागर को पार किया है)।"

अलंकार-शास्त्रो मे 'एकावली', 'साहित्य-दर्पण', 'साहित्य-रत्नाकर', 'कवि-कल्पलता' आदि मुख्य है। प्रतीत होता है कि कवि ने इन ग्रन्थो को आदर्शस्वरूप रखकर अपनी कविताएँ रची थी। वात्स्यायन के कामशास्त्र को भी उन्होने आयत्त किया था। उनसे रचित प्रेम-काव्यो मे अंकित नायक-नायिकाओ के हाव-भावो और दाम्पत्य-क्रीड़ाओं के चित्रो से यह कथन प्रमाणित होता है। इनके अलावा अपने ग्रन्थो में उन्होने देवी-आराधना, मन्त्र-उच्चारण, मोहन, उच्चाटन मन्त्रादि के रूपो का भी उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि उन्होंने संस्कृत व ओड़िआ तन्त्र-शास्त्रो का गहरा अध्ययन किया था। ओड़िआ साहित्य मे पहले से व्यवहृत सारी राग-रागिनियों का व्यवहार कर उन्होने रमणीय कविताओं की रचना की है। इसलिए उनका छान्द-विभाग ओड़िआ

साहित्य में समृद्ध, उज्ज्वल और गौरवान्वित बन पड़ा है। सगीत-शास्त्र मे भी उनका नैपुण्य अनुपम था।

सक्षेपतः कवि का शास्त्र-ज्ञान, सामाजिक रीति-नीतियो का पर्यवेक्षण और मानविक सुख-दु.खो का अनुभव तथा समीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर था।

कवि का मृत्युकाल आज तक भी ठीक रूप से निर्णीत नही हो पाया है। इसके सम्बन्ध मे जनश्रुति भी उचित उपादान जुटा नही पायी है। कोई बोलता है कि चालीस वर्ष की अवस्था मे उनका देहान्त हुआ था, तो कोई कहता है कि पचास वर्ष की अवस्था मे। फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि कवि सासारिक समस्त दुःख-सुखो का सम्यक् भोग कर चुके थे। अपने परिणत वयस की अनुभूतियाँ और आकाक्षाएँ कवि ने स्वरचित 'नीळाद्रीश-चउतिशा' (अप्रकाशित) जैसी रचनाओ मे स्थल-स्थल पर अभिव्यक्त की हैं।

उपेन्द्रभञ्ज-रचित काव्यों का परिचय

थोड़े ही समय मे उपेन्द्र भञ्ज ने बहुत काव्य-कविताओ की रचना की थी। स्वरचित 'चित्रकाव्यबन्धोदय' पुस्तक मे कविसम्राट् ने स्वकृत ग्रन्थो की सूची नीचे लिखे अनुसार दी है:—

"अशेष चउतिशा चउपदी। ताहा केते मुँ कहिबि सम्पादि॥
गाहा दोहा षोड़शेन्दु छ पोइ। इत्यादि कबिता गणना नाहिँ॥
रसकृष्ण विषय ये ते ग्रन्थ। चित्तोइ तहुँ किछि लेखें एथ॥
पुराण छाइ कळ्पना माधुरी। चारु चित्रलेखा हेममञ्जरी॥
रसलेखा कामकळा रचित। मनोरमा प्रेमलता सुगीत॥
भावबती मुक्तावती प्रमाण। बरजलीळा ये छान्दभूषण॥
षड़ऋतु कळाकउतुकर। 'क' नियम साद्य सुभद्रासार॥
बैदेहीश-बिळास सेहि काब्य। प्रसिद्ध अवना द्वादश छान्द॥
रामलीळामृत शेष चरित। प्रेमसुधानिधि यमके स्थित॥
रसिकहारावळी नामे गीत। कुञ्जविहारादि श्यामचरित॥
अळंकार रीति रसपञ्चक। लाबण्यबती रसिकतोषक॥
पुरुषोत्तममाहात्म्य रचन। नाना कोष शब्दे गीताभिधान॥
छान्द कोटि तारा चन्द्रमा परि। या नाम कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी॥
त्रैलोक्यमोहिनी आदि ये गीत। निर्मित छान्द पोथि पाञ्चसात॥

यद्यपि कवि ने उपर्युक्त के अनुसार स्वरचित ग्रन्थो के नाम दिये है, फिर भी ई० १९५२ तक इस बात का पता चला है कि कवि ने ७३ ग्रन्थो की रचना की थी। उनकी कृतियो को पाँच भागो मे विभाजित किया जा सकता है.—

(१) गीतिका:—छ पोइ, गाहा, दोहा, नीळाद्रीश चउतिशा, चउपदी-भूषण, चउपदीचन्द्र, संगीत।

(२) पौराणिक काव्य:—सुभद्रापरिणय, अबनारसतरंग, ब्रजलीळा, रामलीळामृत, कुञ्जविहार, रासलीळा, कळाकउतुक, बैदेहीश-बिळास।

(३) काल्पनिक काव्य—हेममञ्जरी, चित्रलेखा, लावण्यबती, रसलेखा, सुबर्ण-रेखा, कामकळा, मनोरमा, प्रेमलता, भावबती, मुक्ताबती, प्रेमसुधानिधि, रसिक-

हारावळी, कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी, त्रैलोक्यमोहिनी, चन्द्रकळा, चन्द्ररेखा, इच्छावती, कळावती, शशिरेखा, शोभावती, रसमञ्जरी।

(४) आलंकारिक काव्यः—छान्दभूषण, चित्रकाव्यबन्धोदय, रसपञ्चक।

(५) विविध रचनाएँः—षड्ऋतु, गीताभिधान, पुरुषोत्तम-माहात्म्य।

कवि के तीन सरसतम और श्रेष्ठ काव्यो, 'वैदेहीश-बिळास', 'लावण्यवती' और 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' मे कविप्रतिभा का अद्वितीय वैशिष्ट्य प्रतिपादित हुआ है। इन्ही तीन काव्यो की विषयवस्तुएँ संक्षेप मे नीचे दी जा रही है।

वैदेहीश-बिळास

भञ्जीय कविप्रतिभा की सबसे बड़ी देन 'वैदेहीश-बिळास' पौराणिक महाकाव्य है। इसमे श्री रामचन्द्रजी के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की रामायण की समस्त चित्ताकर्षक घटनाओ का चमत्कार के साथ चित्रण किया गया है। कवि ने अन्यान्य सारे प्रसगो— वाल्मीकि के आश्रम मे सीता के विसर्जन और लव-कुश के जन्म, वैदेही के पाताल-गमन और श्री रामचन्द्रजी के वैकुण्ठगमन आदि —का, यह कहकर कि "बिभंग रस बोलिण न बर्णिलि" (इनके वर्णन से रसभग होगा, इसलिए मैंने इनका वर्णन नही किया), वर्णन न कर काव्य का उपसहार किया है।

(अधिक विषयवस्तु के लिए 'वैदेहीश-बिळास के ५२ छान्दो की संक्षिप्त विषयवस्तु' शीर्षक-निबन्ध देखिए।)

कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी

यह एक काल्पनिक काव्य है। इसमें भञ्जीय आलंकारिकता की पराकाष्ठा दिखायी गयी है।

विश्वानन्दजी चम्पानगरी के राजा थे। विचित्रकला उनकी पटरानी थी। उन्हें किसी प्रकार की सांसारिक सम्पत्ति की कमी नहीं थी। परन्तु एक कन्या-प्राप्ति की कामना ने उनके चित्त को वशीभूत कर लिया था। एक दिन सचिव बुद्धिसागर के प्रस्ताव से तीर्थाटन के उद्देश्य से राजा विश्वानन्दजी सदलबल बदरिकाश्रम के लिए रवाना हुए। मार्ग मे वे लोग गंगानदी में स्नान कर रहे थे। इस समय सयोग से राजा को ब्रह्माजी के वाहन हंस की प्राणरक्षा करने का मौका मिला। एक राक्षस उस हंस को निगलने के लिए जा रहा था। इस अवसर पर राजा ने अपनी तलवार से उस राक्षस का काम तमाम कर दिया। हस कृतज्ञता के निदर्शनस्वरूप राजा को ब्रह्माजी के समीप ले गया और उन्हे यह बात जतायी। ब्रह्माजी ने राजा का मनोभाव समझ लिया और दिव्यकन्या रतिमर्द्दा को अर्पणपूर्वक राजा की मनस्कामना की पूर्त्ति की।

केदारेश्वर के निकटवर्ती सुवर्ण सरोवर के तीरस्थ चन्दन वन मे राजा विश्वानन्द ने उस रतिमर्द्दा के सहित विहार किया। यथा समय पर उन्हें एक कन्या पैदा हुई। कन्याजन्म के बाद रतिमर्द्दा वहाँ से गायब हो गई। राजा कन्या तथा दलबल सहित चम्पानगरी लौट आये।

वह कन्या बडी सुन्दरी थी। उसका नाम रखा गया कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी। धीरे-धीरे उस कन्या की वयःवृद्धि और यौवन-प्राप्ति हुई। अनन्तर कवि ने पुष्पपुर

के राजकुमार पुष्पकेतु के पौरुष तथा सौन्दर्य आदि की वर्णना की है। विश्वानन्दजी ने चामरीमृगों का छेदन करने को प्रण किया एव वहुत से राजकुमार चम्पानगरी मे आये। पिता का आदेश लेकर पुष्पकेतु भी चम्पानगरी मे आया एवं कौशिकतट उपवन मे रहने लगा। उसी अवसर मे मालिन और विद्यानिधि के जरिए कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी और पुष्पकेतु मे पत्रो का विनिमय हुआ। अनन्तर पुष्पकेतु ने चामरीमृगो का छेदन किया और कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी से विवाह किया।

विषयवस्तु की सयोजना की दृष्टि से इस काव्य मे वैसी कोई नवीनता नही। चामरी मृगो के छेदन का प्रण ही इस काव्य की विशेषता है। परन्तु नायिका कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी के जन्म से लेकर नायक पुष्पकेतु से उसके विवाह तक ऐशी शक्ति का विनियोग इस काव्य का वैशिष्ट्य है। फिर भी, वर्णना व आलंकारिकता की दृष्टि से यह उपेन्द्ररचित काल्पनिक काव्यो मे सर्वश्रेष्ठ है।

लावण्यवती

एक दिन कैलास पर्वत पर पार्वती अकेली थी। उनके मन मे पासा खेलने की इच्छा जात हुई। इसलिए उन्होने अपने मन से एक मानसी रूपवती कन्या उत्पन्न की, जो कि खेल मे उनकी प्रतिद्वन्दिनी वन सके। अपनी वाञ्छा से पैदा करने से कन्या का नाम पार्वती ने वाञ्छावती रखा। दोनो मे खेल चल रहा था, इस समय दूरी पर शंकरजी के डमरू की ध्वनि सुनाई पडी। इस आशका से कि शकरजी यदि इस कन्या को देख लें, तो मेरा सर्वनाश होगा, पार्वती ने वाञ्छावती को दूर घने जगल मे नवनिर्मित एक रत्नपुर में भेज दिया एव उसे यह आदेश दिया, "तुम पर-जन्म मे पुरुष का संग लाभ करोगी।" इस समय प्रभाकर नामक एक पुरुष दिव्यनारी-प्राप्ति के अभिप्राय से केदारेश्वर के दर्शनार्थ जा रहा था। मार्ग पर इस सुसज्जित प्रासाद मे इस सौन्दर्यमयी नारी को देख उसका धैर्य-लोप हुआ। दोनो परस्पर के प्रति आकृष्ट हुए। परन्तु ज्योंही प्रभाकर ने नारी का अग-स्पर्श किया, त्योही उस नारी का प्राण-पक्षी उड गया। प्रभाकर वडी मनोव्यथा से गगासागर-सगम मे नारी के शव के साथ अपनी वलि चढाने को उद्यत हुआ। इस समय उसने एक शून्य वाणी सुनी और सगम मे कूद पड़ा। अनन्तर प्रभाकर ने कर्णाट राजकुमार चन्द्रभानु के रूप में और वाञ्छावती ने सिहल की राजकन्या लावण्यवती के रूप मे जन्म-ग्रहण किया।

अनन्तर लावण्यवती की यौवन-प्राप्ति और वेश-विन्यास, सिहल से आये हुए बाजीगर के कर्णाट मे जादूविद्या के प्रदर्शन और लावण्यवती का चित्रपट लिये सन्यासी के भ्रमण आदि की वर्णना की गयी है। इस समय लावण्यवती ने स्वप्न मे चन्द्रभानु के दर्शन किये और स्वप्न-भग के बाद विलाप करने लगी। मालिन की शिवोपासना के बाद साधु, शुक और मेघमाला आदि के जरिए दोनो के पत्रालाप तथा स्वीकृति की वर्णना की गयी है। अनन्तर यात्रा-दर्शन के मिस चन्द्रभानु ने रामेश्वर गमन किया और लावण्यवती के पास दूत प्रेरण किया। रानियो के अनुरोध से लावण्यवती रामेश्वर आई। वही मन्दिर मे कन्या व वर परस्पर से मिले। चन्द्रभानु का नारीवेश-धारण भी प्रणिधानयोग्य है। अनन्तर घटनाओं की क्रमगति, विवाह-प्रस्ताव, दोनो पक्षो की सम्मति के बाद विवाह और मिलन हुआ। कुछ समय के बाद दैवीशाप से नायक-नायिका का विरह संघटित हुआ। इस काल मे कवि ने षड्ऋतुओ की वर्णना करते हुए नायक-नायिका —दोनों की मनोवृत्तियो का चित्रण किया है। उसके बाद मिलन तथा अभिषेक। तदनन्तर काव्य की समाप्ति की गयी है।

उपेन्द्र भञ्ज जी का शब्द-पाण्डित्य और आलंकारिकता

कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्ज-रचित पुस्तकों का अध्ययन करने से पता चलता है कि शब्द-शास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र मे कवि का पाण्डित्य असामान्य था। एक श्रेष्ठ शाब्दिक और आलकारिक कवि के रूप में ओड़िआ कवियों मे उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय कविमण्डली में भी उनका आसन अत्यन्त ऊँचा है। उन्होने प्रसिद्ध संस्कृत कवियो का अनुसरण करते हुए उनसे व्यवहृत विभिन्न अलंकारो का ओड़िआ काव्य-साहित्य मे खूबी से प्रयोग किया है, जिनके द्वारा उत्कल-भारती के अंग नित्य नव-नव ज्योति से जगमग हो उठते हैं।

उपेन्द्र भञ्ज जी १७वी सदी के अन्तिम भाग व १८वी सदी के प्रथम भाग में जीवित थे। उस अवधि के लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से संस्कृत साहित्य में शब्दाडंबर और आलकारिकता आत्मप्रकाश करने लगी थी। संस्कृत साहित्य में कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष काव्यलेखको के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। इन चार कवियो की रचनाओं को पढ़ने से हमें पता चलता है कि कालिदास युग (प्राय. ५वी सदी) के बाद भारवि से लेकर श्रीहर्ष के समय (१२वी सदी) तक संस्कृत साहित्य में इसी शाब्दिकता तथा आलंकारिकता का बोलबाला होता गया है। ७वी सदी के महाकवि भारवि ने स्वकृत 'किरातार्जुनीय' ग्रन्थ में अनेकल अनुप्रास, यमक, श्लेषादि अलंकारो का बहुल प्रयोग करते हुए पंचदश सर्ग में सर्व यमक, गोमूत्रिकाबन्ध, लोम-विलोम, सर्वतोभद्र, अर्द्धभ्रमक आदि चित्रबन्धो के उदाहरण दिये हैं। माघकवि ने स्वरचित 'शिशुपाल-वध' काव्य मे भारवि के द्वारा व्यवहृत पूर्वोक्त समस्त अलकारो का प्रयोग कर उन्नीसवे सर्ग में मुरज-बन्ध, चक्रबन्ध, लोम-विलोम, एकाक्षर, द्व्यक्षर, असंयोग और अर्थत्रयवाची आदि शब्द-कौशल दिखाये हैं। श्रीहर्ष ने स्वकृत 'नैषध' काव्य में अनुप्रास, यमक और श्लेष आदि का प्रयोग कर जो शब्द-कुशलता दिखायी है, वह सभी जानते हैं। इस प्रसंग में 'नैषध' काव्य में प्रकाशित 'अर्थचतुष्टयवाची' कविता उल्लेखनीय है। कविराजकृत 'राघव-पाण्डवीय' काव्य (ई० १२००) में श्लेष में रामायण और महाभारत की कथाएँ युगपत वर्णित की गयी हैं।

भञ्ज के पूर्ववर्ती संस्कृत पण्डितों ने स्व-स्व-रचित ग्रन्थों में अनुप्रास-यमक-श्लेषादि शब्दालकारों से सम्बलित तथा गोमूत्रिका, लोम-विलोमादि बन्धों से विभूषित चित्रकाव्यों की रचना करके उनमे जो शब्द-पाण्डित्य दिखलाया है, वह विस्मयकर है। भञ्जजी ने ओड़िआ साहित्य में अनुरूप चित्रकाव्यों की रचना करके ओड़िआ काव्यसाहित्य को संस्कृत के समकक्ष बना दिया है।

उत्कल ने भारत को दो विशिष्ट अलंकार-शास्त्र ग्रन्थ दिये है— विद्याधरजीकृत 'एकावली' और विश्वनाथ कविराजकृत 'साहित्यदर्पण'। भञ्जजी ने इन दो ग्रन्थो का अध्ययन किया था और वे उनसे भी बहुत प्रभावित हुए थे।

गुण-निरूपण

शब्दार्थ—शरीरवाले काव्य मे रस ही आत्मा है और उसके उत्कर्ष-विधायक धर्म को गुण कहते है।

तीन प्रकार के गुण मुख्य तथा विज्ञानसम्मत माने जाते हैं; यथा, माधुर्य, ओज और प्रसाद। सामाजिक व्यक्ति के चित्त में नवरसो से तीन अवस्थाओं की सृष्टि होती है— द्रुति, विस्तार और विकास। शृंगार, करुण और शांत रस से द्रुति; वीर, रौद्र

और वीभत्स रस से विस्तार एव हास्य, अद्भुत और भयानक रस से विकास अवस्था की सृष्टि होती है। चित्त की इन्ही तीन अवस्थाओं के आधार पर तीन ही गुण स्वीकार्य हैं।

चित्त के द्रवीभावस्वरूप आह्लाद को माधुर्य कहते हैं। यह गुण सम्भोग शृंगार रस की अपेक्षा करुण रस में अधिक, करुण से अधिक विप्रलम्भ शृंगार में और विप्रलम्भ शृंगार से अधिक शान्त रस में प्रतीत होता है। इसमें (कर्णकटु) ट, ठ, ड, ढ वर्णों को छोड क से म तक वर्ण अपने-अपने वर्ण के अन्त्यवर्ण अर्थात् ङ आदि सहित युक्त होकर व्यवहृत होते हैं। इसमें बडे-बड़े समास नही रहेंगे। छोटे-छोटे समास-व्यवहृत मधुर रचना अर्थात् सुश्राव्य पद-योजना इस गुण के व्यञ्जक हैं।

'वैदेहीश-विळास' के प्रथम छान्द के सप्तम पद ("बाङ्के अनाइ अङ्के पकाइ से पङ्केरुह शरकु नेइ शङ्के मदन आतङ्के तहिं मुनि उत्तम ये।") और विंश छान्द के द्वितीय पद ("बसाइ कोळे श्रीराम कहे भोळे रसाइ लावण्यनिधि।") आदि मे परिवेषित सम्भोग शृंगार रस और २४वें छान्द के ४१वें पद ("वसुधा कम्पिता चकित देवता कि हेला कि हेला।") तथा २६वें प्रथम-द्वितीयादि अधिकांश पदो मे परिवेषित करुण रस में माधुर्यगुण निहित है।

'वैदेहीश-विळास' के निम्नोद्धृत दो पदो मे परिवेषित क्रमशः विप्रलम्भ शृंगार और शान्त रस में माधुर्यगुण का उत्तरोत्तर उत्कर्ष कैसे प्रतीत होता है, देखिएगा।

विप्रलम्भ शृंगार:— "बोइले (बोले) राम काम भस्म हेला (हुआ)।
वल्लभीकि (पत्नी को) तार (उसकी) शम्बर (ने) नेला (लिया)।
बञ्चिछि जीवे (जीवित हूँ) आन (दूसरे—रावण ने) नेला भीरु (भयालु पत्नी के)।
बळि क्षत बड़ अछि एथिरु (इससे बढ़कर व्यथा कुछ और है क्या?)। (पद १५, छान्द ३१)

शान्त रस:— प्रथम छान्द के प्रथम पद "वन्दइ दी(दि)न बान्धव हरि······ ···गिरि उदित ये।" मे कृत वन्दना और तृतीय छान्द के अन्तिम पद "बास करन्तु (वास करें) सेहि (वही) सीता-लीळा सदा मो हृद।" में कृत प्रार्थना में माधुर्य गुण निहित है।

सहृदय व्यक्ति के चित्तविस्तृतिरूप दीप्तिभाव को 'ओजोगुण' कहते है। दीर्घ समास, उद्धत रचना, ट, ठ, ड, ढ, श, ष —इन वर्णो का विशेष प्रयोग, रकार-संयुक्त वर्ण आदि ओजोगुण के व्यञ्जक हैं।

'वैदेहीश-विळास' के ४२वें छान्द मे रावण के सामने हनुमान् जी द्वारा श्रीराम-प्रेषित पत्र के पठन-प्रसंग मे परिवेषित वीर रस में ओजोगुण का उदाहरण देखिएगा।

"बसे समाने लांगुळ चक्राकृते पठन श्लेषवचन। बपुवन्त नामे राम बोलाउछु राजराजप्रभा घेन से। बळि बिमर्द्दने आम्भे गुणशाळी। विधिपूर्बे दरनाशे क्षळि।७।"

(यह सुनकर हनुमान् जी ने अपनी पूंछ को चक्राकार कर दिया और रावण के सिंहासन के समान उच्चासन पर बैठ श्लेष मे श्रीराम जी का पत्र पाठ किया।

हम स्वयं परंब्रह्म नारायण हैं। परन्तु सुन्दर शरीर धारणपूर्वक हमने परशुराम तथा राम—ये दो नाम धारण किये हैं। दोनो अवतारो मे हमने क्षत्रिय सम्राट् का तेज धारण किया है। बलवान् (अथवा बलि दैत्यराज) राक्षसो तथा शखासुर का दमन कर हमने ससार का भय-नाश किया।)

जैसे सूखी लकड़ी मे आग आसानी से फैल जाती है, वैसे सहृदय व्यक्ति के हृदय में जिसका अर्थ अतिशीघ्र फैल जाता है, उसे 'प्रसाद' गुण कहते हैं।

'बैदेहीश-विळास' मे इसका उदाहरण देखिएगा।

बिहरु बिहरु दण्डकारण्ये। बृन्द बृन्द ऋषि देखि सुपुण्ये।
बिदेह कोटि एक देह वहि। बोलन्ताइ ए लक्ष्य किछि नोहि।
बनद,—श्याम काहिँ ए थिला। बरिला ए रामा कि तप कला। २८।

बिधाता आम्भङ्कु करन्ता नारी। बर हुअन्ते ए को दण्डधारी।
ब्रह्म पदवी फळ हेब किस। बहिबा कि करि कामिनी बेश।
बिचारु, पुलकित शरीरे। बेपथु जन्मि आउजि बृक्षरे। २९।

(श्रीरामलक्ष्मणसीता के दण्डकारण्य मे विहार के समय मुनिसमूहो ने अपने-अपने उत्तम पुण्य के प्रभाव से खासकर श्रीरामजी के दर्शन से मन मे विचार किया, "इस रूप के सामने करोड़ो कन्दर्पो का सम्मिलित रूप न्योछावर है। घनश्याम इस रूप को इस रमणी (सीता) ने कौन-सी तपस्या करके वरण किया? काश, विधाता हम लोगों को नारियाँ बना देते! ये कोदण्डधारी हम लोगो के पति बनते! ऐसे पतिलाभ के सामने हम लोगो की वाञ्छित ब्रह्मपदवी कितनी तुच्छ है। हम लोग किस तरह कामिनियो के वेश धरे?" ऐसा विचार करते-करते उनके शरीर प्रेमवशात् पुलकित हो गये और शरीरो मे कम्पनादि सात्त्विक विकार पैदा हुए। वे लोग स्वत: वृक्षो के सहारे खड़े हुए।) 'बैदेहीश-बिळास' मे प्रसाद गुण का यह सुन्दरतम उदाहरण है।

संस्कृत चित्रकाव्यकार भारवि और ओड़िआ चित्रकाव्यकार भञ्ज

संस्कृत सर्वयमक :— घनं विदार्यार्जुनवाणपूगं, ससारवाणोऽयुगलोचनस्य।
घनं विदार्याजुंनवाण पूगं, ससारवाणोऽयुगलोचनस्य॥
(श्लोक ५०, सर्ग १५, भारविकृत किरातार्जुनीयम्)

भञ्जीय सर्वयमक:— बनप्रिय-तोषदानी रमणी ए लोके।
बनप्रिय-तोषदानी रमणीए लोके॥ ३४॥
विराजि वर-कनक कदम्ब रुचिरे।
बि-रजाजिबर कनक कदम्ब रुचिरे॥ ३५॥
वासरे आच्छन्न शोभा तुंग पयोधरे।
वासरे आचछन्न शोभा तुग पयोधरे॥ ३६॥
वेणी केशरे रञ्जन सिन्दूर चितारे।
बेणीकेशरे रञ्जन सिन्दूर चितारे॥ ३७॥
बळा मल्लिकढ़ि फुल मण्डन अतुल।
बळा मल्लिकढ़ि फुल मण्डन अतुल॥ ३८॥
(बैदेहीश-बिळास, सप्तम छान्द)

संस्कृत गोमूत्रिका :—

भारविकृत:— नासुरोऽयं नवा नागो धरसंस्थो न राक्षसः।
ना सुखोऽयं नवाभोगो धरणिस्थो हि राजसः॥ १२॥
(सर्ग १५, भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्')

भञ्जीय :— बोलन्ति गोमूत्रछन्दे इसहस होइ।
बीणाप्रतिमारे अना ढोळाकु खेळाइ ये॥
वारवार तारतर मणिगण ज्योति।
बिरतर सुरतर एणीएण प्रीति ये॥ १८॥
बस रत्ननिधि गुञ्ज संग आसनरे।
वस यत्न विधि कुञ्ज भृंग प्रसन्नरे ये॥
बावीयात बेणु याइ याइ प्रेमशीळा।
बेबीयत मणुयाइ पाइ राम शिळा ये॥ १९॥
(वैदेहीश-विळास, छान्द १९)

संस्कृत लोम-विलोम :—

ननु हो मन्थना राघो घोरा नाथमहो ऽनु न।
तयदातवदा भीमा मामीदा वत दायत॥ २०॥
(सर्ग १५, भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्')

भञ्जीय :— बीर ये ते सेनावार रसा साररवा नाशे तेजे रवि।
विहे तेजि पुरितर तम मत रत रिपु जिते हेबि॥
(वै० वि०, छान्द ४९, पद १७)

प्राचीन (रीति) साहित्य के चित्रकाव्यों में शाब्दिक चातुर्य की एक अनोखी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, जिसका नाम है 'लोमविलोम'। एक शब्द 'कटक' लीजिए। इस शब्द को बायीं ओर से दाहिनी ओर पढ़ने पर जो (कटक) है, वही शब्द (कटक) दाहिनी ओर से बायीं ओर पढ़ने पर भी है। उसी तरह 'नर्त्तन', 'नवजीवन' आदि। इस पद्धति के अनुसार लिखित कविताएँ पाद के आरम्भ में पढ़ने पर जो पाठ आता है, वही पाद के अन्त से उलटकर पढ़ने से आता है। कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने स्वरचित 'प्रेमसुधानिधि' काव्यस्थ पंचदश छान्द में लोम-विलोम का विस्मयजनक उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस छान्द में बीस पद हैं और प्रत्येक पद में २८ अक्षर (प्रत्येक पाद में १' अक्षर) हैं। समस्त छान्द में इस तरह ५६० अक्षर हैं। छान्द के प्रथम पद के प्रथम अक्षर से लेकर ५६०वें अन्तिम अक्षर तक पढ़ने से जो पाठ आता है, अन्तिम पद के अन्तिम ५६०वें अक्षर से लेकर प्रथमाक्षर तक पढ़ने पर वही पाठ भी आता है। पाठकों का औत्सुक्य शान्त करने के लिए 'प्रेमसुधानिधि' काव्य-पुस्तक का उक्त छान्द यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

प्रेमसुधानिधि

पञ्चदश छान्द—लोम-विलोम

राग—माळव

रखर विहे कण्ट सुकीर तो सरोष। रसदा दरव तुहि नाश प्राणे रस। १। रसाळसी तरळाइ नतनु तुरित। रम्य रहत बेशर कहु मो सपत। २। रख सुकरजा देउ खेदे चीर महो। रसिक कुञ्जर दास त तु साहा नाहिं। ३। रदन हीर करक तुळ कस सार। रदवासे रमसे रख रमा तु तार। ४। हसा तु से खररे धनी समा सतोर। हरषर हुअ सकृपाद सुनिजर। ५। रचि रसा रख न रख तो इच्छा एका। रसारे निशि नाश त्राहि तु रिपुराका। ६। तरसदा तहिं तु लब प्रसार भये। तरक तु सेबक

मुँ नाश बसादये । ७ । सुनाङ्गी भरु बृनीर बध स्वइच्छा तु । शुभाननी यशलाभ तोष तो सङ्ग तु । ८ । न धरु सदोषरु नत समत यँ मुँ । न घेनु त सुख देशाबरकर दमु । ९ । बिहि कति पबीतर कलाक मर्द्दक । बिदेशे मुँ बञ्चु शिब नाम सुमरक । १० । करम सुमना बसि चुम्ब मुँ यँ देबि । कर्द्दम कला करत बिपत्ति कहिबि । ११ । मुँ दरकर दशा देखि सुतनु घेन । मुँ यँ मन्त सत न रुष दोषरु धन । १२ । तुङ्ग सतोष तो भला सजनी न भाषु । तु छाड़ शुद्धबरनी भुरुभङ्गी नाशु । १३ । ए दश बासना मुकबशे तु करत । ए भरसा प्रबळ तुहि त दासरत । १४ । कारापुरी तुहि त्रासनशिनिरे सार । काये छाड़ तो खरनखर शर चीर । १५ । रजनीस्वरूपा कृश अहो रसरह । रतिसमा सन्निधरे रखरे तु साह । १६ । रता तु मार खर समरसे बादर । रसा सकळ तु कर कर हीनदर । १७ । हीनाहास्ना तु त सदा रञ्जक काशिर । हिमरुचि देख उदे जारक सुखर । १८ । तपस मोहकर सबेश हरम्यर । तरी तु नूतन इळा रतशीळ-सार । १९ । शरणे प्रास नाहिँ तु बरद दासर । सरोष तोर कि सुष्ट कहे बीरबर । २० ।

उपेन्द्र भञ्ज ने सस्कृत कवियो का अनुसरण करते हुए अपने काव्यो मे बहुविध चित्रबन्धो का विन्यास किया है । संस्कृत काव्यो मे प्रदत्त शूल, चक्र, पद्म, महापद्म, गदा, रथ, खड्ग आदि बन्धो का प्रभाव भञ्जीय काव्यो मे प्रदत्त बन्धों पर अवश्य पड़ा है । फिर भी, भञ्जजी ने विभिन्न प्रकार के रथों, प्रासादो, अन्तर्लिपियो, बहिर्लिपियों आदि की तथा अन्यान्य बन्धयोजनाओ मे अपनी स्वतन्त्रता दिखलायी है । ऐसे बन्धो का सर्वश्रेष्ठ परिचय देती है उनकी 'चित्रकाव्यबन्धोदय' पुस्तक । आलोच्य 'वैदेहीश-विळास' ग्रन्थ मे प्रदत्त अन्तर्लिपियाँ व बहिर्लिपियाँ (छान्द १९, पद २० से २८ तक), नागबन्ध (छान्द २८, पद ३० से ३६ तक), चक्रबन्ध (छान्द २८, पद ३७ से ४० तक), वृक्षबन्ध (छान्द ४९, पद १८), गदाबन्ध (छान्द ४९, पद १९), शरबन्ध (छान्द ४९, पद २०) और रथबन्ध (छान्द ४९, पद ८७-८८) आदि चित्रबन्ध तो अपना सानी रखते ही नही ।

इसमें कोई सन्देह नही कि मध्ययुग, रीतियुग या काव्ययुग के साहित्य मे सरल शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा शब्दकाठिन्य का आधिक्य है । फिर भी, इसके प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि मध्ययुग के काफी पूर्व से संस्कृतज्ञ विशिष्ट पण्डित लोगों ने प्राकृत (देश मे साधारण तौर पर व्यवहृत) भाषा के प्रति अनादर प्रकाश करते हुए यह धारणा कर ली थी कि ओड़िआ मे सस्कृत के सदृश सर्वविभागोपयोगी और सर्वविध प्राणस्पर्शी योजना संभव नही है । उनकी यह धारणा थी कि "उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्, नैषधे पदलालित्य माघे सन्ति त्रयोगुणा:" —ऐसी उक्ति ओडिआ साहित्य के प्रति लागू करने मे साहित्यधर्म मे सत्य का अपलाप होगा । उनकी यह धारणा दूर करने के लिए दीनकृष्णदास, उपेन्द्रभञ्ज, सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा, अभिमन्यु सामन्तसिंहार, कविसूर्य बलदेव रथ, यदुमणि महापात्र आदि मध्ययुगीय कविवरो ने अपने युग की रुचि तथा जीवनदर्शन के अनुकूल साहित्य की सृष्टि के लिए कमर कस ली । इन कवियो ने जी-तोड़ मेहनत से ओडिआ काव्यों में सस्कृत साहित्य के क्रमों, भावो, रसो, गुणों, रीतियो, अलकारों, वर्णनावैचित्र्यो और सारे प्रयोग-चमत्कारो आदि का प्रयोग करते हुए यह साबित कर दिया कि उपर्युक्त-सी उक्ति नीचे लिखे अनुसार ओड़िआ साहित्य के प्रति भी लागू की जा सकती है ।

"उपमा भञ्जवीरस्य तस्यैव चार्थगौरवम्,
कल्लोळे पदलालित्यं सन्ति चिन्तामणौ त्रय: ।"

भञ्ज वीर की उपमा आदि अलंकार तथा उनके द्वारा रचित काव्यों का अर्थगौरव एव दीनकृष्णदास-विरचित रसकल्लोळ का पदलालित्य अनोखा है। अभिमन्यु सामन्तसिंहाररचित 'विदग्धचिन्तामणि' काव्य मे ये तीन गुण तो वर्तमान है।

ओडिआ साहित्य मे रीतियुग या काव्ययुग के प्रवर्त्तक कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने अपने आप्राण प्रतिभापूर्ण प्रयत्न से ओड़िआ काव्यक्षेत्र मे खासकर शब्दपाण्डित्य और आलंकारिकता का जो चरमोत्कर्ष दिखाया है, उससे ओडिआ साहित्य संस्कृत साहित्य का केवल समान्तराल ही नही, यथार्थ प्रतिद्वन्द्वी बन खड़ा हुआ है। स्वरचित श्रेष्ठ आलकारिक काव्य 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' के १४वें छान्द मे आपने कहा है—

"तरणिकुळर सार। आश्रयरु निरन्तर।
कहे उपइन्द्र भञ्ज मुँ लंघिछि शवद-समुद्र पार।"

(उपेन्द्र भञ्जजी कहते हैं— "सूर्यवंश के श्रेष्ठ देव प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की शरण के फलस्वरूप, मैंने शब्द-समुद्र को पार किया है।)

उपेन्द्र के काव्य अलंकारबहुल हैं। भामह, उद्भट, रुद्रट आदि पूर्वाचार्य अलकार को काव्य का 'जीवातु' (जीवन) समझते थे। उन आचार्यो ने काव्य के सर्वविध शोभाविधायक धर्मों को अलकार माना है। किन्तु कालक्रम मे भूयोभूय अनुशीलन के फलस्वरूप अब यह समझा जाता है कि 'अलंकार' काव्यशरीरीभूत शब्दों और अर्थो का धर्मविशेष है। उपेन्द्रजी ने 'अलंकार' शब्द का प्रयोग काव्य के 'जीवन' और 'सर्वविध शोभाविधायक धर्मविशेष' —दोनों अर्थो मे किया है। 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के तीसरे छान्द मे उपेन्द्र ने जो बताया है कि

"नाना शब्द अर्थे ये विचक्षण,
येहु जाणे अळंकार लक्षण,
सेहु करु ए छान्द विवेचन।"

(अर्थात् नाना शब्दार्थों में जो विचक्षण है, जो अलंकारों के लक्षण जानता है, केवल वही इस छान्द का विवेचन करे।)

उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'अलंकार' शब्द का अर्थ केवल शब्दार्थगत धर्म ही नही, अपितु यह सर्वविध काव्यशोभाविधायक धर्मो का बोधकारक है।

महाकवि राजशेखर की 'काव्यमीमासा' पुस्तक मे यह बताया गया है कि जो कवि शब्द, अर्थ, उक्ति, अलंकार आदि दस प्रकार के मार्गो में निपुण है, वही महाकवि कहलाने के सुयोग्य है। भञ्जजी इन्ही दस मार्गो में अपना कौशल प्रतिपादित करने के लिए प्रयत्नशील हुए हैं और अधिकांश मे उन्होने अपनी लोकातिशायिनो प्रतिभा का परिचय भी प्रदान किया है। इसलिए उन्होने कहा है—

"कहे उपेन्द्रभञ्ज उत्तम कविपुञ्ज दुर्लभ मार्गे मो संचार।"

(कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी—छान्द १३, पद २८)

(उपेन्द्र भञ्ज जी कहते हैं— उत्तम कविपुज के दुर्लभ मार्ग मे मेरा गमन है।)

श्लेष-वक्रोक्ति तथा श्लेष के विचित्र चित्रकार उपेन्द्र भञ्ज जी

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के आचार्य कुन्तकजी कहते हैं—"वक्रोक्ति काव्यजीवितं"। (अर्थात् 'वक्रोक्ति' काव्य का जीवन है। 'वक्रोक्ति' (वक्र+उक्ति) अर्थ है 'टेढ़ा कथन', अर्थात् कथा को घुमाकर कहने की रीति। भामह ने कहा है—

"वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते।"

(अर्थात् जिस शब्द से टेढ़े अर्थ का बोध होता है, उसके प्रयोग से संघटित वाक्य का नाम वक्रोक्ति है। काव्यगत भाषा में साधारणतः आलापनीय भाषा की अपेक्षा अधिक वैचित्र्य या वैशिष्ट्य रहता है। आलंकारिको ने इसी वैचित्र्य या वैशिष्ट्य को 'वक्रोक्ति' नाम दिया है। भामह ने ऐसी वक्रोक्ति को चुनकर बताया है कि यही सब प्रकार के काव्यशोभाविधायक धर्मो का प्रथम तथा प्रधान उपाय है।

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरलंकाराय कल्पते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना॥"

(अर्थात् ऐसी वक्रोक्ति की सहायता से सर्वत्र अर्थ की चिन्ता की जाती है। क्योंकि इसके अभाव मे किसी अलंकार का आत्मप्रकाश सम्भव नही। सुतरां कवि को इसके बारे में प्रयत्नशील होना चाहिए।)

राजशेखर ने 'कर्पूरमञ्जरी' में कहा है :—

"उत्तिविसेसो हि कव्वं भाषा या होइ सा होउ।"

(अर्थात् भाषा चाहे जो कुछ भी हो, जिस काव्य मे वचनभंगिमा है, वही वास्तव में काव्य है। अभिनव गुप्त जी के मतानुसार "शब्दार्थ की असाधारणता ही वक्रता है। (लोकोत्तरेण रूपेणावस्थानम्।)" दण्डी के मतानुसार साधारणतया व्यवहृत सारी कथाएँ स्वभावोक्तियाँ एवं असाधारण अर्थ की वाचक या द्योतक कथाएँ वक्रोक्तियाँ कहलाती हैं। ऐसी उक्तियो की वक्रता श्लेष के द्वारा सम्पादित होती है। दण्डीजी ने कहा है—

"श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।"

(अर्थात् श्लेषमूलक या श्लेषालंकारमण्डित होने से वक्रोक्तियाँ अधिक शोभापोषक होती हैं।)

हम देखते हैं कि उपेन्द्र भञ्ज जी अधिक श्लेष-वक्रोक्तिप्रिय तथा श्लेषप्रिय हैं। उन्होने अपने काव्यो मे अभंग, सभंग, भंगाभंग श्लेष तथा उनकी सहायता से उत्थापित उपमा, रूपक आदि अलकारो का पुष्कल प्रयोग किया है। आलोच्च 'बैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ में प्रदत्त श्लेष-वक्रोक्ति के उदाहरण देखिए।

"बक्रोक्ति प्रकाश करि चतुरीरतन, बिचारिछि नृत्यशेष केकि कह मान ये।
बल्लभ तहिँ मधुरध्वनिकि रचना, बेणी नाचिले नाचन्ता उत्फुल्ल सुमना ये॥" ३४

(छान्द—१९, बै० बि०)

[अर्थः—पद ३३ में श्री रामजी से सीता के प्रति व्यवहृत "बध मान" (रूठन का नाश करो) उक्ति से 'मान' शब्द का श्लेष मे अर्थ 'नृत्यशेष' समझकर सीता ने कहा, "यहाँ 'के कि' (कौन क्या) नृत्य कर रहा है, जिसे आप 'मान' कह रहे हैं?" श्री रामजी ने मधुर ध्वनि में उत्तर दिया, "तुमने जो 'के की' (मयूर) कहा, वह मालती फूल के खिलने के समय नाचता है। अतः अयि सुमने! (उदारमने सीते!) तुम यदि खिलती (प्रफुल्ल होती), तो तुम्हारा वेणी-मयूर नृत्य करता।"]

"बाबु नाकशिरीदान योग्य योषाकु, बिहर कानन कर आलिंगनकु। ५८।"

(छान्द—२३, बै० बि०)

श्री रामचन्द्रजी ने सूर्पणखा को दण्ड देने के उद्देश्य से लक्ष्मणजी को श्लेष-वक्रोक्ति मे एक पत्र लिखा, जिसका अर्थ (अभंग श्लेप मे) सूर्पणखा यो समझी और प्रसन्न हुई।

"तात लक्ष्मण ! स्वर्गसंपददान के लिए योग्या इस रमणी को आलिगन करके वन में विहार करो।" परन्तु लक्ष्मण ने इस वक्रोक्ति में निहित गूढार्थ को दोनो अभंग और सभंग श्लेषों में नीचे लिखे अनुसार समझकर शूर्पणखा के नाक-कान काट दिये।

"तात लक्ष्मण ! इस रमणी को नासिका-सौन्दर्य-छेदन का दण्ड मिलना चाहिए। (अभंग)। इसको आलिगन किये विना इसके कानों का विशेष रूप से हरण (छेदन) कर दो।" (सभंग)।

'वैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के प्रथम और द्वितीय पदो में उपेन्द्र ने श्लेष में भगवान् विष्णुजी और सूर्य का जो नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है, उसका पाण्डित्य वास्तव मे विस्मयकर है।

बन्दइ दो (दि) न-बान्धव हरि ये तमचक्रखण्डनकारी
सदा कमळानन्दविस्तारी स्वभावे ईन ये।
विभु अनन्त-अंकबिहारी कर प्रताप यार संचरि
निशाचरङ्कु उल्लास हरि पूजे सुमन ये।
बइनतेय याहा अग्रते स्थित ये।
बइकुण्ठ—पक्षक—लोक तोषित ये।
बिकाश अखण्डित-मण्डळे सिंहभावरे क्रीड़ित काळे
भबे तरणि होइ मंजुळे गिरि उदित ये।१।

[अर्थ:—विष्णुजी के पक्ष मे— गरीबो के बन्धु जिन भगवान् विष्णुजी ने चक्र से राहु का शिर छेदन किया था (जो शोकसमूह का अथवा अज्ञता का नाश करते हैं), जो सदा लक्ष्मी के आनन्दवर्द्धनकारी है, जो स्वभावत: लक्ष्मीपति यानी शोभा के आधार तथा अखिल विश्व के प्रभु है, जो अनन्त नाग पर विहार करते हैं, अपने भुजबल से जिन्होने असुरो के आनन्द का हरण किया था, जिनकी पूजा देवता किया करते हैं, जिनके सम्मुख गरुड़ प्रस्तुत रहते हैं, जो विष्णुभक्त लोगो को तृप्ति देते है, जो समग्र ब्रह्माण्ड में विराजित है, नृसिंहावतार मे जिन्होंने क्रीड़ा की थी, ससाररूपी सागर मे जो नौका के समान है, जो नीलगिरि (श्रीक्षेत्र) में प्रकाशित हुए हैं, उन्ही विष्णु भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ।

सूर्य के पक्ष मे— दिवस के बन्धु सूर्य, जो अन्धकार-समूह का नाश करते हैं, जो सदा कमल का आनन्द बढाते है, जो ईन (सूर्य) अपनी किरणो से चारो दिशाओ को उज्ज्वल करते हैं, जिनकी तेजप्रभा से उल्लुओ का आनन्द दूर होता है, जिनकी पूजा पण्डित किया करते हैं, जिनके सम्मुख अरुण सदा विद्यमान हैं, इन्द्रजी जिनके सहायक है, जिनके दर्शन से लोग सन्तोष लाभ करते हैं, जो पूर्ण गोलाकार रूप मे विद्यमान है, जो सिंह-राशि मे एकदा क्रीडा करते हैं, जो प्रत्यह उदयाचल पर प्रकाशित होते हैं, उन्ही दिन-मणि सूर्य की मैं वन्दना करता हूँ।]

बहित येहु रोहितमूर्त्ति श्रु (सृ) ति-रञ्जनकारक अति
हंस होइण याहा प्रशस्ति अछि प्रबर्त्ति ये।
विराजरूप याहार पुणि द्विजचक्र या दर्शन गुणि
आत्मभूपर संसारे भणि कि शुभ्रकीर्त्ति ये।

बुधजनक – शिरभूषण सेहि ये।
विनयरु ये आन बाणी न कहि ये।
बळि याहाकु सर्वदा नाहिँ द्वि (द्वी) प-प्रसन्न करता सेहि
पुनत धर्मस्वरूप ग्राही कि स्तुति तहिँ ये।२।

[अर्थ:—विष्णु के पक्ष में— जिन विष्णु ने रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था, वेदों मे परमात्मा के नाम से जिन्होने ख्याति प्राप्त की थी, जो विराट रूपवान है, जिनके दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण लोग चिन्तन करते है, जो ब्रह्मा से श्रेष्ठ (अथवा कन्दर्प से अधिक रूपवान) हैं, जिनकी कीर्तियाँ शुभ्र है, महादेव शंकरजी जिनसे विना विनय के शब्द नही बोलते, ब्रह्माण्ड में जिनसे बढ़कर दूसरा कोई बलवान् नही है, जिन्होने (ग्राह के मुख से रक्षा करके) गज को आनन्द दिया था, जो धर्म पर स्थित जन के रक्षक हैं —ऐसे भगवान् की स्तुति किन शब्दो में करूँ ?]

सूर्य के पक्ष मे— जो सूर्य रक्तवर्ण मूर्त्ति धारण करते हैं, जो मार्ग की शोभा बढ़ाते हैं, जिनका नाम हंस है, जिनके विराजमान (प्रकाशमान) रूप के दर्शन के लिए चक्रवाक सर्वदा उत्कण्ठित रहते हैं, जो श्रेष्ठ ब्रह्म के नाम से ख्यात है, जिनकी किरणे बड़ी शुभ्र हैं, पण्डित लोग जिनसे सदा विनय करते हैं, जिनसे बढकर तेजस्वी और कोई नही है, जो सप्तद्वीपो के प्रकाशक (उज्ज्वलकर्ता) है, फिर जो धर्म नाम से अभिहित हैं, ऐसे सूर्यदेव की स्तुति किस प्रकार करूँ ?

कविसम्राट् विरचित श्रेष्ठ आलंकारिक काव्य 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' के प्रायः प्रत्येक छान्द मे यही श्लेषजनित वैचित्र्य वर्तमान है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

"चम्पा से रखा योषा शिरे वहि, शिव तहिँरे गुरुतर स्नेही।
जन मनोहर सुवास अछि, भ्रमर अवलम्ब नाहिँ किछि॥"
(कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी— द्वितीय छान्द, पद २)

[अर्थ.—इस नगरी का नाम चम्पा है, जो चम्पा पुष्प है और जिसे पृथिवीरूपिणी नारी ने अपने मस्तक पर धर रखा है। शिव (शंकरजी) चम्पा फूल को बहुत स्नेह करते हैं। शिव (मंगल) चम्पा नगरी में सर्वत्र वर्तमान है। चम्पा पुष्प मे जनो का मनोहरण करनेवाली सुगन्धि है। चम्पा नगरी मे मनोमुग्धकर उत्तम गृह सब हैं। चम्पा पुष्प पर भ्रमर नही बैठता। चम्पा नगरी मे किसी के मन में कोई भ्रम नही।]

यहाँ श्लेषोत्थापित रूपक के द्वारा चम्पा नगरी पर चम्पा पुष्प का अभेदारोप ध्वनित हुआ है। यह अभेदारोप वाच्य नही, व्यंग्य है, जो श्लिष्ट पद द्वारा उत्थापित किया गया है।

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के बीसवें छान्द मे कलहंस केदार और भूपाल —इन दो रागों का वैचित्र्यपूर्ण समन्वय परिलक्षित होता है। यहाँ कही तो शब्द और अर्थ श्लेष के द्वारा और कही तो ध्वनि के बल से एक ही वाक्य से नायक और नायिका, दोनो का गुणवर्णनबोधक अर्थ प्रतीत होता है।

"नागरमणि सार शूर-भी-धाम। नाहिँ श्रुतिरे ताहा कीरित सम ?
सुनासादृशकान्ति कि मनोरम ! कामिनीचय धृति हतकु क्षम।"

(१) नागर-मणि सार-शूर-भी-धाम :—(नायक के पक्ष मे) नायक पुष्पकेतु नागरमणि (रसिकश्रेष्ठ) है और श्रेष्ठ वीरो को भी भय देनेवाला धाम है।

नागरमणी सार सुरभि-धाम :— (नायिका के पक्ष में) नायिका कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी नागकन्याओ से उत्कृष्टतर और सुगन्धवती है।

(२) नाहिँ श्रुतिरे ताहा कीरति सम। (नायक के पक्ष में)— उसकी कीर्ति के समान कीर्ति वेदो में भी नही।

नाहिँ श्रुतिरे ताहा कि रति सम ? (नायिका के पक्ष में)— कानो से ऐसा कभी नही सुना गया है कि ऐसी नारी पैदा हो सकती है। क्या रति (कन्दर्प की पत्नी) उसके वरावर हो सकती है ? (अर्थात् नही।)

(३) सुनासा-दृश-कान्ति कि मनोरम ! (नायक के पक्ष में)— पुष्पकेतु की उत्तम नाक और आँखो की कान्ति क्या ही मनोरम है !

सुना सादृश कान्ति कि मनोरम ! (नायिका के पक्ष में)— सोने के सदृश कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी की कान्ति क्या ही मनोरम है !

(४) कामिनी-चय-धृति हतकु क्षम। (नायक के पक्ष में)— वह पुष्पकेतु कामिनी (युवतियों) के चय (समूह) के धैर्य का नाश करने के लिए समर्थ है।

कामिनिचयधृति हतकु क्षम। (नायिका के पक्ष में) —वह नायिका कामी (कामुक)-निचय (समूह) के धैर्य का नाश करने के लिए समर्थ है।

यहाँ अभग और सभग श्लेषो के द्वारा दो अर्थ प्रतीत होते हैं और यही हैं वाक्यो तथा शब्दो की वक्रताजनित वक्रोक्तियाँ। उपेन्द्रभञ्ज ने 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के समूचे वीसवें छान्द मे ऐसी ही रीति से वीस पद लिखे हैं। सुधिवर्ग विचार करें कि ऐसी रचनाएँ कितनी साधनासापेक्ष है।

इस छान्द के अन्त में उपेन्द्र ने कहा है—

"कहे उपेन्द्र वर्णभंगिरु वारि। छान्द गंगायमुना संगम परि ये। २०।"

"हे विज्ञजनो ! यह छान्द गगायमुना के सगमस्थल (प्रयाग) की तरह है। यहाँ प्रत्येक पद में वर्णो (रंगो और अक्षरो) तथा भगिमा का मनोहर समन्वय हुआ है। दोनों को चुनकर अर्थ करें।

रचना-वैचित्र्य की पराकाष्ठा

भञ्जजी के रचना-वैचित्र्य की पराकाष्ठा का निदर्शन मिलता है 'कोटिब्रह्माण्ड-सुन्दरी' के पचीसवें छान्द मे।

संस्कृत मे—

गवीशपत्रो नगजार्त्तिहारीः, कुमारतातः शशिखण्डमौलिः।
लंकेशसंपूजितपादपद्मः, पायादनादि परमेश्वरो वः॥

श्लोक का मूल अर्थ शिवजी का बोधकारक है। परन्तु श्लोक के प्रत्येक पाद के प्रथमाक्षर का लोप करने पर यह श्लोक विष्णुजी का अर्थ बोध करता है। भञ्जजी ने कुछ आगे बढ़कर अधिक कौशल के प्रयोग से एक सपूर्ण छान्द की रचना कर डाली है, जिससे काव्य की रसालता प्रतिहत होने के बजाय बहुगुनी हो उठी है। 'कोटिब्रह्माण्ड-सुन्दरी' के पचीसवे छान्द के प्रत्येक पद मे मूलत. 'चिन्तादेशाक्ष' राग में वर्षाऋतु की वर्णना की गयी है। परन्तु प्रत्येक पाद के प्रथमाक्षर के लोप से यह पद 'काफिकामोदी'

राग में शीतऋतु की वर्णना मे एवं प्रथम और द्वितीय, दोनो अक्षरों के लोप से यह 'माळब बराड़ि' राग में ग्रीष्मऋतु की वर्णना मे पर्यवसित होता है। जैसे—

(१) "आसार सघन काळ होइ उदय। असित परबळरु दरशमय ॥१॥"

[अर्थ:—आसार (वृष्टि-धारापात का) सघन (घनो से युक्त) काल (वर्षाकाल) का उदय हुआ। असित (कृष्णवर्ण) के प्रबल होने से सब दिशाएँ दर्शमय (अमावस्या की तरह अन्धकारमय) दिखाई पड़ी।]

(२) सारसघन काळ होइ उदय। शीत परबळरु दरसमय ॥

सारसघन (सारसघ्न—पद्मनाशक) काल (शीतकाल) का उदय हुआ। शीत के प्राबल्य से (कुहरे से) दर (शंख) सदृश शुक्ल समय आ पहुँचा।

(३) रसघन काळ होइ उदय। तपर बळरु दरसमय ॥

रसघ्न (जलनाशक) काल (ग्रीष्मकाल) का उदय हुआ। तप (ग्रीष्म) के बल से दर (भय का) समय हुआ।

विज्ञ पाठकवर्ग देखे कि मूल 'चिन्तादेशाक्ष' राग में वर्षाऋतु की स्निग्ध नीली प्रकृति की कैसी स्वाभाविक वर्णना की गयी है। एक अक्षर को हटाने पर यही नीली प्रकृति कैसे शीतकाल की नीरसता व रुक्षता का वरण करती है। फिर दो अक्षर हटाने से शीत की रुक्ष प्रकृति सूक्ष्मबुद्धि पाठक के सम्मुख आतपसन्तप्ता ग्रीष्म प्रकृति की शुष्कता को उपस्थित करती है। इस प्रकार सभंग श्लेषो के प्रयोग से विरोधी अर्थो वाले शब्दो और वाक्यो की योजना में कविसम्राट् ने जो श्रम स्वीकार किया है, वह सोचकर पाठकों को विस्मयाभिभूत होना पड़ता है।

कविसम्राट् की निम्नलिखित उक्ति से यह मालूम पड़ता है कि उन्होने श्रीहर्षरचित संस्कृत नैषधीय चरित को अपने सम्मुख आदर्श रखकर 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' जैसे अलंकारबहुल काव्य की रचना की है।

"ए त पराकृत काव्य छान्दप्रान्त सत।
दृष्टि दृष्टान्तर एथि अछि विशेषत।
घेन नैषध पराए।
उपइन्द्र कहे बुध प्रमोद कराए॥"

(कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी—पद ३१, छान्द ११)

[अर्थ:—यह तो प्राकृत काव्य है। छान्द भी समाप्त हुआ। इसमें दृष्टान्तों का दर्शन विशेष रूप से है। इसे 'नैषध' काव्य के सदृश ग्रहण करो। उपेन्द्रजी कहते हैं कि यह 'नैषध' की तरह बुधो (पण्डितो) का मन प्रसन्न करता है।]

श्रीहर्षकृत 'नैषध' काव्य में यमकों, अनुप्रासो और श्लेषो की भरमार है। इसमें प्रदत्त एक-एक श्लोक का श्लेष मे क्रमशः इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम और नल के पक्ष मे अर्थ किया जाता है। यह 'पञ्चनली' के नाम से प्रसिद्ध है। उपेन्द्र ने भी श्लेष को अपने काव्य के प्रधान अलंकार के रूप मे ग्रहण करते हुए बहुअर्थबोधक पदों की रचना की है। उनकी यह वासना थी कि अपना ओड़िआ (प्राकृत) काव्य आम जनता के समक्ष वैसा ही गौरव प्राप्त करे, जो गौरव संस्कृतज्ञ व्यक्तियो के समक्ष 'नैषध' ने प्राप्त किया है। कहना बाहुल्य होगा कि कविसम्राट् की वही वासना चरितार्थ हुई है।

उपेन्द्र भञ्ज की रचनाएँ अलंकारों, खासकर शब्दालंकारो की खाने है। उनमें

से ऊपर कुछ अनुपम श्लेषों के उदाहरण दिये गये हैं। नीचे कुछ अनुप्रासों और यमकों की चमत्कारिता देखिए।

अनुप्रास :— "बाङ्के अनाइ अङ्के पकाइ से पङ्केरुह शरकु नेत्र
शङ्के मदन आतङ्के तहिँ मुनि उत्तम ये।"
(पद ७, प्रथम छान्द, वैदेहीश-विळास)

(अर्थः— निकषा ने टेढ़ी नजर से ऋषि की ओर देखा और कन्दर्प के शरतुल्य अपने पद्मनेत्रों से उनकी ओर कटाक्षपात किया। मुनिश्रेष्ठ विश्रवा कन्दर्प के भय से भीत हो उठे।)

यहाँ 'ङ्के' सयुक्त व्यजन वर्ण की आवृत्ति में अनुप्रास की चमत्कारिता देखिए।

"देखि नवकाळिका बकाळिका माळिका आळी काळिका कान्त स्मरि,
रक्षा केमन्त करि करिबा मत्तकरिगतिकि एमन्त बिचारि
रे सहचरि।"
(पद १, छान्द २२, लावण्यवती)

[अर्थ :—बगलो की पक्तियो से युक्त नये मेघों को देखकर सखियाँ पार्वतीपति शिवजी का स्मरण करती हुई उनसे विनती करती हैं कि हम लोग उन्मत्तगजगामिनी (लावण्यवती) की (पति-विरह से) कैसे रक्षा करें?]

प्रथम पाद मे 'ळिका' दोनो अक्षर पर्यायक्रम में मनोहर ढंग से व्यवहृत हुए हैं। यहाँ छेकानुप्रास अलकार है। द्वितीय पाद मे 'करि' में भी वैसा अलंकार है।

यमक :— भञ्ज साहित्य मे दस प्रकार के यमकों का प्रयोग मिलता है। यथा; आद्य यमक, प्रान्त यमक, आद्य-प्रान्त यमक, आद्य-मध्य यमक, मध्य यमक, माळ यमक, शृखला यमक, सर्व यमक, महा यमक और योड़ि यमक।

आद्य यमक :—

"बिभा बरि[1] सारि बिळम्ब शुणि। बिभावरी[2] हेउँ रमणीमणि।
बिभावरी[3]-चरी घोटिला ग्रासे। बिभाव री[4]तिरु निद्रा न आसे।
बिरहे[5] भासे से।
बीर हे[6]! भावे से ताड़को त्रासे।१।"
(छान्द १२, वै० वि०)

(अर्थ :— बिभा बरि[1]—विवाह में वरण करके; बिभावरी[2]—रात्रि; बिभावरी[3]-चरी—निशाचरी, राक्षसी; बिभाव री[4]तिरु—विशेष भावनावश; बिरहे[5]—बिछोह में, वियोग मे; बीर हे[6]—हे वीर!

(सम्पूर्ण अर्थ के लिए प्रदत्त पाठ देखिएगा।)

'वैदेहीश-बिळास' के द्वादश छान्द में आद्य यमक के सुन्दर उदाहरणों की भरमार है।

प्रान्त यमक :— "बिशिष्टरे अनुकूळ पुंस दीनबन्धु[1],
बिनोदरे संगे घेनि हरे दिन बन्धु[2]।"
(पद ४०, छान्द १९, वै० वि०)

[अर्थ :— विशेष रूप से अनुकूल नायक दीन-दुःखियों के बन्धु श्रीरामचन्द्रजी बन्धु (प्रियतमा) सीता को अपने साथ लिये नानाविधि क्रीड़ा-कौतुकों मे अपने दिन बिताते हैं।]

यहाँ प्रथम पाद और द्वितीय पाद के प्रान्त में 'दी(दि)नबन्धु'[1] (दीनों के बन्धु श्रीरामजी, दिन बन्धु[2]—दिवस; बन्धु—प्रियतमा सीता को, साथ लिये) मे प्रान्त यमक है।

आद्य-प्रान्त यमक :— "सुमन सरे[1] महोज्ज्वळ ये अशोकविटपी[1]।
सुमन शरे[2] शोकवती देखि हेबे विटपी[2]।"

(पद ३५, छान्द ५, सुभद्रापरिणय)

(अर्थ:— अशोक वृक्ष मे फूलों के खिलने से, वे सब महोज्ज्वल दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें देख विटपी नारियाँ कन्दर्प के पुष्पशरों से पीड़ा पाकर शोकाकुला होंगी।)

आद्य-मध्य यमक:—

बिधुसमरे[1] ज्योति ज्वळित बिधुसमरे[2] हेले आगत
से आरोहित अहि-अहित गदाब्ज धरि ये।

(अर्थ:— बिधुसमरे—चन्द्र के समान; बिधुसमरे—देवयुद्ध में।)

मध्य यमक :— "देखरे नळिनि[1] नळिनी[2] नळिनीरे[3] पूरित,
भ्रमन्ति भ्रमरे[1] भ्रमरे[2] भ्रमरे[3] ए शोभित।" (लावण्यवती)

रे नळिनि !—अरी पद्मिनीजातीया नारि! ; नळिनी—पुष्करिणी; नळिनीरे—पद्मों से; भ्रमरे—भौरे; भ्रमरे—भ्रान्तिवश; भ्रमरे—भँवरो मे।

माळ यमक:— इस अलंकार में एक शब्द की पर्यायक्रम से कई बार आवृत्ति होती है।

"बिचारइ माळयमकरे कवि मने।
बुले राम[1] राम[2] राम[3]नेत्री घेनि बने ये।
बृहद्भानु[1] भानु[2] भानु[3] प्रभा ताप नाहिँ।
बृत तमाळ[1] माळ[2] माळती[3] लता यहिँ ये। १।"

(छान्द १९, बै० बि०)

(अर्थ:— राम—अभिराम, सुन्दर; राम—रामचन्द्र; रामनेत्री—मृगनेत्री, सीता।
बृहद्भानु—अग्नि; भानु—सूर्य; भानु—उत्ताप, किरण।
तमाळ—वृक्ष विशेष; माळ—समूह; माळती—पुष्पलता विशेष।

शृंखला यमक :—

"बोधे शृंखळारे रघुनाथ सीतामति,
बिचित्र चित्रकूट ये कुटजे ब्रतति ये।
ब्रतती तति जयन्ती अतिभा. बासन्ती।
बासन्ती सतिरे फुल्ल फुलरे प्रबर्त्ति ये। ४।

(छान्द १९, बै० बि०)

(अर्थ:— कुटजे—गिरि-मल्लिकाओ से; ब्रतति—विस्तृत; ब्रततीतति—लतासमूह; जयन्ती—वृक्षविशेष; अतिभा—अतिशय दीपना या चमकना; बासन्ती—माधवी लता; बासन्ती—जूही लता; सतिरे—अयि साध्वि! ; फुल्ल—प्रफुल्ल, प्रसन्न; प्रबर्त्ति—फैली हुई।)

शृंखला यमक:—इस यमक में शब्दों की स्थिति विशृंखलित न होकर शृखलाबद्ध रीति में हुआ करती है। एक शब्द की स्थिति के बाद अन्य शब्द की स्थिति होती है

और अन्य शब्द के अक्षर पूर्व शब्द के शेष दो या तीन अक्षरों के समान होते हैं। जैसे, "विचित्र चित्रकूट ये कुटजे व्रतति" आदि।

सर्व यमक :—

इस यमक मे प्रथम पाद और द्वितीय पाद का शब्दविन्यास एक-सा है; परन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

"बइदेहि, सुमना सुमना ए सुरिभ।
बइदेही सुमना सुमना ए सुरभि ये। १५।

(छान्द १९, वै० वि०)

[अर्थ:—बइदेहि !—अयि वैदेहि ! (सीते); सुमना—अयि उदारमने !; सुमना—मालती फूल, सुरिभ—चम्पक वृक्ष; बइदेही—पिप्पली के पेड़; सुमना—देव-कुसुम; सुमना—लौंग; सुरभि—जायफल।]

महा यमक:— "बसन्त[1]-वसन वश महायमकरे।
बसन्त[2] बसन्त[3] पक्षी बसन्त[4]द्रुमरे ये।
बीथी बीथी शोभा दिशे कुमुद[1] कुमुद[2]।
विलोक हास प्रकाशि कुमुद[3]कु मुद[4] ये। १३।"

(छान्द १९, वै० वि०)

(अर्थ :—बसन्तबसन—पीताम्बर श्रीरामजी; बसन्त—बैठे है, आसीन; बसन्त पक्षी—हलदी, बसन्त पक्षी या कोयलें; बसन्त द्रुमरे—आम के पड़ों पर; बीथी-बीथी—श्रेणियाँ; कुमुद—रक्त कमल; कुमुद—कुईं का फूल; कुमुद कु—वृथा आनन्द को; मुद—मूँदो, बन्द करो।)

योड़ि (युग्म) यमक :—

"दिने घनसारसार करि पान
तार तारवरमुखी देउँ वारबार। डाकन्ते मयूर उर
उल्लसि दर्दुर दूर चेता कला होइ थरथर हे। जळधर।

(प्रेमसुधानिधि, छान्द १३, पद ५)

(अर्थ :— एक दिन निर्मल-चन्द्रवदना सुन्दरी ने उत्कृष्ट कर्पूर से सजाकर पान की एक खिल्ली मुझे दी। उस समय मोर और मेढक बार-बार बोलने लगे, तो उसकी सुध-बुध खो गयी।)

सिंहावलोकन :—चलते समय सिंह जैसे अपना मुँह मोडकर पीछे की ओर देखता है, उसी प्रकार एक पंक्ति के प्रान्त में या मध्य भाग में उक्त लिखित शब्द या अक्षर परवर्त्ती पंक्ति के पहले या बीच मे लिखा जाता है।

"बोधन्ति राम सिंहावलोकने अबळा।
बळाकापन्ति करिछि ध्रुबकु धबळा ये।
बळाइ मानस मान अना प्राणबन्धु।
बन्धुक रञ्जन अति रंग निरबन्धु ये। ७।"

(छान्द १९, वै० वि०)

(अर्थ के लिए पृष्ठ ३०० पर प्रदत्त सटीक पाठ देखिए।

अर्थालंकार

उपमा (१) :— "बृक्षतति तपिपन्ति तहिँ एकाकृति ।
बळ्कळ पिधान करि जटा धरिछन्ति । २ ।
(छान्द ७, बै० बि०)

(अर्थ :—विश्वामित्रजी और राम-लक्ष्मण ने देखा कि सिद्धवन में वृक्ष तथा मुनि-गण एक ही आकारवाले दीख रहे हैं। जिस प्रकार वृक्षो ने वल्कलावृत होकर वरोह धारण किये है, उसी प्रकार ऋषियों ने भी वल्कल-वस्त्र पहनकर जटाएँ धारण की है।)

उपमा (२) :— "बोइले सीता शीतांशुमुखी एक दिने अति दीन होइ,
बिहि बिहिला बनबास बासरे नृपति हेबार याइ ।
बिळसाइ यथा अळका तेजाइ ईश्वरङ्कु शमशाने,
बिष्णुङ्कु रतन पलंक छड़ाइ जड़ाइ सर्पशयने । १ ।"
(छान्द २०, बै० बि०)

("अर्थ :—चन्द्रवदना सीता ने एक दिन अत्यन्त दीनता से श्रीरामजी से कहा, विधाता की गति कैसी विचित्र है ! वे शिवजी को जैसे अलकाभुवन तजवाकर श्मशान मे विलसाते हैं और विष्णुजी को रत्न-पलग से अलग करके क्षीरसमुद्र मे सर्प पर सुलाते हैं, वैसे ही अभिषेक के आनन्दमय दिन उन्होने हम लोगों को राज्यसंपदहीन करके हमारा वनवास-विधान कर दिया ।")

इस पद में अनुप्रास, यमक (शब्दालकारो) और उपमा (अर्थालंकार) का मनोहर समन्वय हुआ है।

अद्भुत उपमा (३) :—

सर्पपुरे याइ पर्बत कहिले महीजात हेममञ्जरी,
सुगन्धबती स्वइच्छारे चळित पत्रावळिरे कि माधुरी ।
सम्फुल, तहिँ पुणि फुल एतेक ।
सरोरुह चम्पा, कुमुद, पाटळी, निआळी, शिरीष, अशोक । ७ ।
सफळ आम्ब, डाळिम्ब, बिम्ब, द्राक्षा, तुम्बी, नारंग, मातुळंग,
सारग, खञ्जन, चकोर, मयूर, शुक, कपोत, हंस संग ।
स्वरूपे, महा अद्भुत कथा एहि ।
सपत जाति फळ, फुल, बिहंग लताके थिबा शुणा नाहिँ । ८ ।
(चतुर्थ छान्द, सुभद्रापरिणय)

[अर्थ:— पर्वतो ने पातालपुर में जाकर कहा, "पृथिवी पर एक सुवर्णलता पैदा हुई है। उस लता का शरीर सुगन्धि से पूर्ण है और वह अपनी इच्छा से चलती-फिरती है। वह पत्तो से भरपूर होने के कारण कितनी ही सुन्दर दिखाई देती है ! वह हमेशा फूलों से भी परिपूर्ण है। खासकर उस लता मे पद्म, चम्पा, कुमुद, पाटली, नवमल्लिका और अशोक —इसी तरह सात जातियो के फूल खिले है।

पुनः उस लता पर आम, अनार, कुन्दरू, द्राक्षा, लौकी, नारंगी और बिजौरा —ये सात फल फले है। फिर उस लता पर सारग (कोयल), खञ्जन, चकोर, मयूर, तोता, कबूतर और हंस —ये सात पक्षी भी वास करते है।

इस प्रकार कवि अद्भुत उपमा के द्वारा सुभद्राजी की अंग-लता पर सात प्रकार के

फूलों के खिलने, सात प्रकार के फलो के फलने और सात प्रकार के पक्षियों के बसने की वर्णना करते हुए आत्मविभोर हो उठे है ।]

रूपक :— "कर-कृषक रामा-गात्र-क्षेत्र । नख-लंगळे चषिला त्वरित ।
प्रेम-बीजकु रोपिला तहिँर । पाळनाकु वरषे स्वेद-नीर । ४ ।"
(छान्द ६, प्रेमसुधानिधि)

(अर्थ:— राजकन्या की देह खेत है । राजकुमार के हाथ के नख ने लागल होकर उस खेत को जोता । फिर उस पर प्रेम रूपी बीज बोये और देह से बहे पसीने रूपी जल बरसाकर उसे पाला ।)

अतिशयोक्ति :— सर्बमतरे सनमत एमन्त पर्वत परे जात लता ।
लतारु एबे पर्वत जात हेला चाहिँ कम्पिबे ऊर्ध्वरेता ।
ताहा शोभिता । देखि के नोहिब लोभिता ।
करी परे हरि हरि परे करी चढ़ाइला एबे बनिता । २ ।
(छान्द ४, प्रे०सु०)

[अर्थ:— सब जानते है कि पर्वत पर लता पैदा होती है । परन्तु अब प्रेमसुधानिधि की (देह रूपी) लता से (स्तनो रूपी) पर्वत उत्पन्न हुए हैं । ऊर्ध्वरेता महादेव उन स्तनो से समान न होकर काँप उठेंगे । पुन: नायिका के गजगमन पर विधाता ने सिंहकटि और सिंहकटि पर हस्तीकुम्भ स्तनो की स्थापना की ।]

वास्तव मे "उपमा भञ्जवीरस्य" उक्ति की सार्थकता भञ्जजी-प्रदत्त उपर्युक्त विचित्र उपमा और उपमागर्भक रूपक और अतिशयोक्ति अलंकारो से प्रतिपन्न होती है ।

असम अलंकार :— "बिजयो बीर बिजय कर यिवा मथुरापुर,
बाहार होइ बिहार तहिँ करन्ति मुनिबर ।
बइदेही ये सुन्दरीब्रजे अमूल्य चूड़ामणि,
बर्त्तमान से भूत भबिष्ये नाहिँ नोहिब पुणि । १ ।"
(अष्टम छान्द, बै० बि०)

(विश्वामित्र ने श्रीराम जी से कहा कि वर्तमान सुन्दरीशिरोमणि सीतादेवी भूत तथा भविष्यत् काल मे सौन्दर्यादि गुणो मे ससार मे अनुपमा है ।)

यहाँ यह प्रकाशित होता है कि वैदेही के समान और कोई नारी नही । इसलिए यहाँ असम अलकार है ।

व्यतिरेक अलकार :— "बिहुँ समुद्र-मन्थनु चन्द्र जनम येउँ काळे ।
बिहीन क्षीण कळंके जाण निर्मळ होइथिले ।
बदने जानकीर समान मन जाणिटि बिहि ।
बिम्ब-वेष्टन नोहिला वर्ण भावेटि काटि देइ । ६ ।"
(छान्द ८, बै० बि०)

[भावार्थ:— समुद्र-मन्थन से उत्पन्न पूर्ण निष्कलंक चन्द्र का यह मनोभाव कि मैं सीताजी के मुख के समान हूं, समझकर विधाता ने उसे मण्डलस्थ (वृत्ताकित) बना दिया, मानो उसकी यह धारणा गलत है । अर्थात् सीता का मुख निष्कलंक पूर्णचन्द्र से भी बढ़कर सुन्दर है । सकलंक और दिनो-दिन क्षीण होनेवाले चन्द्रमा की उनके वदन से क्या समानता ?]

यहाँ उपमान चन्द्रमा से उपमेय सीता के वदन का सौन्दर्याधिक्य दिखाया गया है। इसलिए यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

'बैदेहीश-बिळास' के अष्टम छान्द मे विश्वामित्रजी के मुख से भञ्जजी ने सीताजी के रूप की जो वर्णना करायी है, उसमें व्यतिरेक अलंकारो की भरमार है।

उत्प्रेक्षा :— **"वदन ओष्ठ सुषमा करि पुष्ट पूर्णमी प्राची कि।**
बिधु-बाळार्क ब्याजे रौप्य माणिक्य स्थाळीकि रचि कि ?
बन्दाण मास के रचे के उत्सुके के निति बन्दाइ।
बिहंग-आळी द्विकाळे हुळहुळि तहिंकि कि देइ। ६।"

(छान्द २४, बै० बि०)

[अर्थ:—शूर्पणखा सीता के वदन तथा ओष्ठो की वर्णना करती हुई रावण से कहती है— "उस रमणी के वदन तथा ओष्ठो की परम सुषमा देखने से प्रतीत होती है, मानो पूर्णिमारूपिणी नारी पूर्णचन्द्र रूपी चाँदी की थाली से मास मे एक बार एवं प्राची दिशा-रूपिणी अगना हर रोज प्रातः बालसूर्य रूपी माणिक्य की थाली से :उत्सुकता से क्रमशः उसके मुख तथा ओष्ठो की आरती करती है। (अर्थात् उस रमणी का वदन पूर्णचन्द्र से बढ़कर भी सुन्दर है एवं श्रेष्ठ बालरवि से भी अधिक रक्तिम है।) उस आरती के समय पक्षीरूपिणी सखियाँ मानो सुबह-शाम अपने-अपने कलरव के मिस हुलहुली करती है।]

यहाँ सीता के वदन के पूर्णचन्द्र से सौन्दर्याधिक्य एवं उनके ओष्ठो की बालरवि से अधिक रक्तिमता के वर्णन मे व्यतिरेक अलकार है। 'विधु' (उपमेय) पर 'रौप्य स्थाळी' (उपमान) और 'बाळार्क' (उपमेय) पर 'माणिक्य स्थाळी' (उपमान) एवं 'पक्षियो' (उपमेय) पर 'सखियो' (उपमान) की संभावना तथा 'कि' उत्प्रेक्षावाचक अव्यय से उत्प्रेक्षालकार है।

विरोधाभास :— **"बिपर्यय पलाशीरे पलाशीरे घन,**
बिनातप प्रभा तप-प्रभारे प्रधान। ये। १८।
बिभूति-वाञ्छक नोहि, बिभूति-बाञ्छक,
बर्जित काम उदय, काम उदयक। ये। १९।"

(छान्द ४, बै० बि०)

(अर्थ:— वह वन पलाशियो से शून्य है, फिर पलाशियों से घना है। वह बिना तप का है, फिर तपप्रभाव की प्रभा से प्रधान है। वहाँ के मुनिलोग विभूति-बाञ्छक नही हैं, फिर विभूतिबाञ्छक हैं। वे सब वर्जित-काम होकर प्रकाशित हुए है, फिर वे लोग काम के प्रकाशक हुए हैं।

विरोध के परिहार से प्रकृतार्थ:— वह वन मांसभोजी प्राणियों से शून्य है, फिर वृक्षो से घना है। इसलिए वहाँ सूर्य का उत्ताप नही पडता। परन्तु मुनियों के तप के प्रभाव से वह वन पवित्र है। वहाँ के निवासी मुनिलोग ऐश्वर्य के प्रति अनिच्छुक तथा भस्माभिलाषी है। वे लोग इन्द्रियजन्य सुखों का परित्याग कर मुक्ति की कामना कर रहे हैं।)

'बैदेहीश-बिळास' के २९वें छान्द में ऐसे चमत्कारपूर्ण सात पदों की रचना मिलती है, जो पाठक के मन मे विस्मय तथा कौतूहल पैदा करती है।

प्रतीप अलंकार:— उपमान जब उपमेय के रूप मे व्यवहृत होता है, तब प्रतीपालंकार होता है। उपर्युक्त व्यतिरेक अलकार के उदाहरण:—

"बिहुँ समुद्रमन्थनु चन्द्र जनम येउँ काळे
......बदने जानकीर समान मन जाणिटि सेहि।"

(पद ८, छान्द ८, वै० बि०) मे साधारणतया उपमान के रूप मे 'चन्द्र' उपमेय के रूप मे व्यवहृत हुआ है। सुतरा यहाँ प्रतीपालंकार भी है।

काव्यलिंग अलंकार:— इसे काव्य हेतु भी कहा जाता है।

"बान्धवी परा मो नाहिँ सुन्दरी।
बासे देह सज सरोज परि।
वामदेबारि हृदे योखि शर।
बिन्धुं मोहि होइ थरिब कर।
बाजिब कि लाख।
बिशीर्ण हेब गुण शिळीमुख। २१।"

(छान्द ३१, वै० बि०)

[अर्थ:— सीता-विरहव्यथित श्रीरामजी वन मे घूमते है। वे बोलते हैं, "मेरी प्रिया सीता के समान सुन्दरी नारी इस जगत मे और नही है। उनकी देह अभी-अभी खिले कमल की तरह महकती है। कन्दर्प जब अपने धनुप पर बाण चढ़ाकर सीता के हृदय की ओर निशाना लगावे, तो उनकी सुन्दरता से मुग्ध होकर निश्चय ही उसके हाथ काँप उठेंगे। सुतरा लक्ष्यभ्रष्ट होने से उसका शर क्या सीता के हृदय को वेध सकेगा? (अर्थात् नही।) इस प्रकार धनुष की प्रत्यचा व बाण मोह के हेतु तितर-बितर हो जाएगा।"]

उपर्युक्त शब्दालंकारो तथा अर्थालकारो के अलावे कवि ने विभिन्न स्थलों में बहिर्लिपि, अन्तर्लिपि, दत्तचूताक्षर, मेषयुद्ध, व्याघ्रगति तथा विभिन्न बन्ध-सम्वलित चित्र-काव्यो का एवं अर्थान्तरन्यास, परिकर, पर्यायोक्ति, उल्लेख, दृष्टान्त आदि विविध अर्थालकारो का दक्षता से प्रयोग किया है। उदाहरणो के बाहुल्य के भय से हम और उदाहरण देना उचित नही समझते।

अलंकार भाषा का भूषण, भाव का द्योतक और काव्य की रीति, गुण, ध्वनि, रस आदि का परिपूरक धर्म है। अलकारो के सयोग से कविता की रीति, गुण, ध्वनि, रस आदि अधिक दीप्त हो उठते है, जैसे भूषणो की दीप्ति से नारी का सौन्दर्य बहुगुना बढ जाता है। उपेन्द्र की प्राय. सभी रचनाओ मे उनका अलकारप्रयोग-कौशल कविता के भावगाम्भीर्य के प्रति मन को आकर्षित कर सकता है एवं काव्य-नायिका की शोभा को बहुगुनी बढा देता है। 'लावण्यवती' काव्य के प्रारम्भ मे कवि ने अलकार-प्रयोग के लक्ष्य के सम्बन्ध मे जो सूचना दी है, उसका उन्होने अपने काव्यों मे पूर्णरूपेण निर्वाह किया है।

"मूर्त्तिमन्त करि मृदु गीत विचारइ,
एणु करि थिब अळंकारयुक्त होइ। ७।
पद सरळ ध्वनिरे श्रवण मोहिब,
अर्थी जन प्रकरकु आनन्द करिब। ८।

(छान्द १, लावण्यवती)

उनसे रचित 'लावण्यवती', 'वैदेहीश-बिळास', 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' आदि गीत (काव्य) अलकारयुक्त होकर वास्तव मे परम शोभा के आकर बने हैं। उनसे व्यवहृत

सरल शब्दों से युक्त पदावली ने इन काव्यों के गौरव की यथोचित वृद्धि की है। इसमें सन्देह का अवकाश नही।

रस-विचार

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज जी एक श्रेष्ठ आलकारिक होते हुए भी, रसगीतो के श्रेष्ठ पुरोधा हैं। यह जगन्नाथ महाप्रभु की इच्छा है कि वेदानुमोदित मार्ग मे रमणी-सम्भोग द्वारा जगत रसमय हो। इसी आर्य आदर्श का अनुभव करते हुए उपेन्द्र ने अपनी काव्य-कविताओ मे अपूर्व रस की सृष्टि की है। कही कोई स्थूलबुद्धि व्यक्ति अपनी खलसुलभ प्रवृत्तियो के वश मे आकर उनकी रस-सृष्टि का कदर्थ न कर बैठे, इसलिए अपने 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य मे उन्होने वज्रगम्भीर स्वर मे घोषणा की है—

> "कहे उपइन्द्र मो प्रभु श्रीराम वैकुण्ठनाथ साक्षात,
> जात कले क्षीरार्णबु सुधा, मोर गिरार्णबु रसगीत
> से सत।
> से बिबुध ए बुध रञ्जित से।
> दैत्य खळरे अधरषित से।
> ये ग्रासिब हेब राहु मत से।"

(पद ३०, छान्द १६)

[उपेन्द्र भञ्ज जी कहते है— मेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी साक्षात वैकुण्ठनाथ हैं। उन्होने सच ही क्षीरसमुद्र से अमृत उत्पन्न किया था और मेरे शब्द-समुद्र से इस रसगीत की सृष्टि की है। उस अमृत ने विबुधो (देवताओ) का मनोरञ्जन किया था और यह काव्यरसामृत बुधो (पण्डितो) का मनोरञ्जन करता है। खल दैत्यो से वह अमृत धर्षित (अपव्यवहृत) नही हो सका था। वैसे यह गीत भी खल लोगों से धर्षित (अपमानित) नही किया जा सकता। जो खल (अयोग्य) व्यक्ति इस गीत को ग्रास (कदर्थ) करेगा, वही राहु की दशा भोगेगा। जैसे सुधा-पान करने के कारण राहु का शिरश्छेदन हुआ था, वैसे ही उसका भी शिरश्छेदन (तर्क का खण्डन) हो जायगा।]

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य उपेन्द्रजी-रचित श्रेष्ठ आलंकारिक काव्य है। इसमे विशेषकर शान्त रस और शृंगार रस का मनोहर रीति से परिपाक हुआ है। इस काव्य के प्रथम छान्द मे भारतवर्ष मे पुण्यधाम पुरुषोत्तम क्षेत्र के माहात्म्य तथा नीलाद्रिविहारी जगन्नाथजी की नीतिगति व स्नानविधि आदि की वर्णना की गयी है। उसमें शान्त रस की प्रधानता है। १८वें छान्द मे सुन्दरी के विरह-वर्णन मे विप्रलम्भ-शृंगार का वर्णन है। २८वें छान्द में वीर रस का परिपाक स्पष्ट है। ३४वे और ३५वें छान्द मे नायक पुष्पकेतु और नायिका कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी के मिलन के आयोजन तथा मिलन के वर्णन में संयोग शृंगार रस का परिवेषण किया गया है।

'लावण्यवती' काव्य मे मालिन की शिवोपासना की वर्णना में शान्त रस-परिवेषण का आभास मिलता है। लावण्यवती के स्वप्नभंग के बाद उसके विलाप-प्रसंग में करुण रस का वर्णन है। वीर रस का भी यथास्थान परिवेषण किया गया है। अन्त मे नायक चन्द्रभानु और नायिका लावण्यवती के मिलन-प्रसंग मे सयोग शृगार, विरह-प्रसंग में विप्रलम्भ शृंगार और पुनः मिलन के प्रसग मे संयोग शृंगार का वर्णन है।

'वैदेहीश-विळास' में रस-परिपाक

आलोच्य 'वैदेहीश-विलाम' महाकाव्य मे कवि ने शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, करुण, वीभत्स, अद्भुत और शान्त —समस्त नौ रसो का यथास्थलो पर परिवेषण किया है। फिर भी, उनमे करुण रस की प्रधानता है, जो भवभूति के मतानुसार प्रधान रस है। सीता-विसर्जन, लव-कुश-जन्मादि प्रसंगो को —जहाँ उन्होने रसभग की आशंका की है, संक्षिप्त सूचना मात्र देकर उनका परिहार वस्तुतः किया है और इस प्रकार उन्होने महाकाव्य की मर्यादा अक्षुण्ण रखी है।

श्रृंगार रस:—रसशास्त्र मे शृंगार रस श्रेष्ठ विवेचित है। कविसम्राट् ने स्वकृत दुर्लभ ग्रन्थों मे अपनी अलौकिक शक्तिसामर्थ्य और बुद्धि के सहारे इसी रस की युगोचित रूप से अभिव्यक्ति की है। और इसके लिए उनमे उपयुक्त चरित्रों का भी चित्रण किया है।

उपेन्द्र भञ्ज जी सस्कृत के श्रेष्ठ कवियो को अपने समक्ष आदर्श रख अपनी लेखनी चला रहे थे। "शृंगार एव मधुर: परप्रह्लादनो रस: तन्मयं काव्यमाश्रित्य माधुर्यं हि प्रणीयते (यमर्थमवलम्ब्येन माधुर्यं प्रतितिष्ठते)।" (ध्वन्यालोक:)। "श्रृंगारी चेत् कवि: सर्वं जातं रसमय जगत् स एव वीतरागश्चेन्नीरस सर्वमेव तत।" (भोजराज:)। माघ, श्रीहर्ष, कालिदास, भवभूति, जयदेव, भोजराज आदि संस्कृत-कवियो ने शृंगार रस को आदि रस तथा श्रेष्ठ रस के रूप मे स्वीकार किया है। भञ्जजी ने "महाजनो येन गत: स पन्था:" नीति का अनुसरण करते हुए इस रस के परिवेषण मे संस्कृत के उन प्रसिद्ध मनीषियो का मार्ग अपनाया है। उन्होने कामशास्त्रज्ञ वात्स्यायन मुनि को भी अपने समक्ष रखकर शृंगार रस का चित्रण किया है, जिसकी सूचना उन्होंने स्वरचित 'रसिकहारावली', 'लावण्यवती' आदि पुस्तकों मे दी है—

> "वात्स्यायन ऋषिङ्कि (ऋषि को) ये ए छान्द गोचर,
> गीते कहे उपइन्द्र भञ्ज वीरवर।"
> "नव रसरे (नौ रसों मे) सार, आद्ये (सर्वप्रथम) लेखि
> (लिखता हूँ) श्रृंगार।" (लावण्यवती)

शृंगार रस क्या प्राच्य, क्या पाश्चात्य, प्रत्येक विख्यात कवि की रचना मे न्यूनाधिक मात्रा में मिलता है। उपेन्द्ररचित ग्रन्थो मे युगरीति के अनुसार छ: ऋतुओ समस्त प्रकार के प्राकृतिक दृश्यो, मिलन, विरह, मृगया, देवदर्शन, तीर्थयात्रा आदि के वर्णन-प्रसगों मे यह रस ऐसा मिला मिलता है, मानो क्षीर से नीर मिला हुआ हो। स्वकीया नायिका को छोड़ उन्होने परकीया में हाथ तक नही दिया। ऐसे कृतित्व तथा कौशल से वे इस रस की चर्चा कर गये हैं कि शास्त्र, परम्परा, नीति तथा सामाजिक रीति की दृष्टियों से ये चित्र बिलकुल निर्दोष तथा निष्कलंक विवेचित होते हैं।

उदाहरण.— इस प्रसग मे श्रीरामजी ने सीता के वनवासजनित दु:खों के निराकरण में जो बातें कही थी, वही यहाँ उद्धृत की जा सकती है—

> "बसाइ (बैठाकर) कोळे (गोद में) श्रीराम भाषे (कहते हैं) भोळे
> (प्रेमविभोर होकर) रसाइ (रसाकर) लावण्यनिधि।
> बिरञ्चि एकान्त केळिकि विरचि गउरी कमळा संगे।
> बिजन स्थान बोलिटि (बोलकर) तोते (तुझे) मोते (मुझे) बने
> विहराइ (विहार कराके) रंगे। २।"
> (छान्द २०, वै० वि०)

इस उद्धरण से सह स्पष्ट हो जाता है कि एकान्त व अबाध मिलन ही उनके सारे दु:खों के अपसारण का एकमात्र साधन था।

कई स्थलों पर उपेन्द्ररचित कविताएँ अश्लील विवेचित होती हैं। परन्तु यदि जयदेवजीकृत 'गीतगोविन्द' की निम्नलिखित पंक्तियाँ—

"धीर-समीरे यमुना-तीरे वसति वने वनमाली,
पीन-पयोधर-परिसर-मर्द्दन-चंचल-कर-युगशाली।
उरसि मुरारे रुपहित हारे घन इव तरल-वलाके,
तड़िदिव पीते रति-विपरीते राजसि सुकृत-विपाके।
विगलित वसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम्,
किशलय शयने पंकज नयने निधिमिव हर्षनिधानम्।"

अश्लीलतादोषयुक्त नही हैं, अथवा कालिदासकृत 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' की निम्नलिखित पंक्तियाँ—

"किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तम्।
अंके निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ॥"

अथवा 'मेघदूत' की "ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः" आदि पंक्तियाँ अश्लील-दोषयुक्त नही, तो उपेन्द्रकृत काव्यो मे ईदृश शृंगार रस की वर्णना अश्लील क्यों होगी ?

वीर रस:—रामावतार का उद्देश्य था दुष्टो का दलन और सन्तो का पालन, दानवों का दमन और सन्तो की रक्षा। सुतरां 'बैदेहीश-विळास' मे वीर रस के अनेक चित्र अंकित हैं। श्रीराम की वीरता के बारे मे रावण के प्रति मारीच की निम्नलिखित उक्ति में वीर रस है—

उदाहरण—बिना उपाय राघब शरचय यमर से यम।
बिष्णु हेले हेव आउ त न थिब ताहाकु के सम। १६
(छान्द २४, बै० वि०)

(अर्थ:—श्रीरामजी के शरो से बचने के लिए उपाय नही है। वे यम के भी यम है। केवल एक विष्णुजी ही उनके समान वीर हो सकते है। दूसरा कोई भी नही।)

करुण रस:—विरह, विछोह और मृत्यु के समय साधारणतया करुण रस के चित्र देखे जाते हैं। रावण के द्वारा सीतापहरण के समय का चित्र करुण रस से भरा है—

"बसुधा कम्पिता, चकित देवता, कि हेला (क्या हुआ ?) कि हेला।
बचने शोचने अश्रुविमोचने आकाश पूरिला (भर गया)।
बरषिला (बरसा) नीर टोपाटोपा (बूँद-बूँद) किपाँ (क्यों)
न थाइ (न होने पर भी) मुदिर (मेघ)।
बिहंगे उत्सुके भाबन्ति (सोचा) चातके बारिले (जाना)
पानर (पीकर)। ४१।

× × ×

बनबळजा (वन भूमि) 'हा राम!' स्वने पूर्ण जटायु तरके
(बिचार किया)।

वनप्रिय कु (कोयल को) शिखाइ गीत शोकबराळी रागे के (कोई)।
बजाइ वीणारे नारद रामरे संखोळि (अगवानी करने) याइ कि (जा रहे हैं क्या ?)।
विशखाहु सीता एक रथे स्थिता चाहान्ते (ताकते) बिलोकि (देखा)। ४३ ।

(छान्द २४, वै० वि०)

शान्त रस:—वन्दना, विनती आदि को वर्णना मे शान्त रस का चित्र रहता है।

'वैदेहीश-विळास' के प्रथम छान्द के प्रथम पद ("वन्दइ दीनबान्धव हरि ये तम-चक्रखण्डनकारी") और द्वितीय पद ("वहित ये हु रोहितमूर्त्ति श्रुतिरञ्जनकारक मति") में श्लेषार्थ में विष्णु तथा सूर्य की वन्दना में शान्त रस का चित्र है।

पुन: प्रथम छान्द के अन्तिम पाद ("विरचि वीरवर उपेन्द्र भञ्ज स्वच्छन्दे विचित्र छान्द चित्त निश्चिन्त नीळाद्रिचन्द्र ध्यान सफळे ये") में कविवर्णित नीलाद्रिविहारी जगन्नाथजी के ध्यान-प्रसग में शान्त रस का चित्र है।

वात्सल्य रस:—वनगमन के समय सीता के प्रति कौशल्या के उपदेश-प्रसंग में वात्सल्य रस का चित्र है—

विपिनरे (वन में) पोनउरजा (पृथिवीसम्भूता सीते !) अपूर्व द्रव्य देखि न मागिबु (न माँगना)।
वेनि (दोनो) सहोदर मध्यरे आदर विपथरे (दुर्गम मार्ग में) करिथिबु (करती रहना)।
बाष्पे (आँसुओं से) तिन्तिला (भीगा) उर।
वाणी न स्फुरे कण्ठु ताङ्कर (उनके कण्ठ से)। २९ ।

(छान्द १७, वै० वि०)

अद्भुत, हास्य, भयानक और रौद्र रस के उदाहरणो के लिए क्रमश: पत्थर-मूर्त्ति अहल्या प्रसग (पद ३२, ३३, छान्द ७), ऋष्यशृंग-जरता प्रसंग (पद ३५, छान्द ४) तथा दण्डकारण्य के मुनियो का नारीवेशधारण प्रसंग (पद ३०, छान्द २१), राक्षसियों के सीता को डाँटने का प्रसंग (पद १५, छान्द ३५) और रावण के कुम्भकर्ण को जगाने के लिए आह्वान का प्रसंग (पद १, छान्द ४४) देखिए। छान्द ४५ और ४६ में वीभत्स रस के चित्र मिलते हैं।

गुण-निरूपण *

वैदेहीश-विळास-नामकरण

ओडिआ काव्यसाहित्य के क्षेत्र मे 'वैदेहीश-विळास' का स्थान सर्वोच्च है। शिल्पकला के क्षेत्र मे जो गौरव उत्कल के कोणार्क मन्दिर को प्राप्त है, वही गौरव काव्यकला के क्षेत्र में 'वैदेहीश-विळास' को भी प्राप्त है। अलंकारशास्त्रानुमोदित सकल गुणावलियों से भरपूर एक श्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में ओड़िआ काव्यों मे इसकी गिनती की जाती है। यह ओडिआ काव्यसाहित्य-संसार को कविवर भञ्जजी की

* गुण-निरूपण का विषय पृष्ठ संख्या ९०७ से ९०९ के अर्द्धांश तक में द्रष्टव्य है।

सर्वश्रेष्ठ और सरसतम देन है। उपेन्द्रजी अपनी अन्यान्य काव्यरचनाओं की अपेक्षा इसी काव्य की रचना में अधिक प्रतिभावान, प्रज्ञावान तथा प्रवीण प्रतीत होते हैं।

'वैदेहीश-विळास' के नामकरण ही से ग्रन्थ की विषयवस्तु की सूचना मिल जाती है। यह नामकरण बड़ा ही तात्पर्यपूर्ण तथा वैशिष्ट्यपूर्ण है।

(१) इस ग्रन्थ मे वैदेही (सीता) के ईश (प्राणवल्लभ) श्री रामचन्द्रजी के विलास (लीला) का सांगोपांग वर्णन किया गया है। सुतरा इसका नाम यथार्थतः 'वैदेहीश-विळास' ही रखा गया है।

(२) सीतापति श्री रामचन्द्रजी स्वय परब्रह्म के अवतार हैं। जगन्माता लक्ष्मीजी सीता के रूप मे संसार मे अवतीर्ण हुई थी। नारायणजी के अवतार श्री रामचन्द्रजी को प्राणपति के रूप मे पाकर उनकी मर्त्यलीला के सम्पादन मे हाथ बटाना उनके जन्म का आशय था। अलौकिक लीलामय श्री रामचन्द्रजी पिताजी की वचनरक्षा के निमित्त अयोध्या का राजसिंहासन भरत के लिए छोड़ वन मे गये थे और इस प्रकार उन्होने समग्र संसार के समक्ष अपने त्यागमय जीवन का महत्त्वपूर्ण आलोक प्रकाशित किया था। (त्यक्त्वा सुदुस्त्यज-सुरेप्सित-राज्यलक्ष्मी, धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।) नारायणजी की पत्नी रमा (लक्ष्मीस्वरूपिणी सीता) भी अपने पति के इस महिमान्वित त्यागपूत जीवनयापन की सर्वश्रेष्ठ आधारशिला बनी है और उन्होने महान मानवता पर आधारित सामाजिक जीवन का महोज्ज्वल आदर्श प्रतिपादनपूर्वक स्त्रीसमाज के समक्ष आदर्श पत्नी के प्रणयानुरागपूर्ण जीवन का चरमोत्कर्ष उपस्थित किया है। सुतरां यह रामायण केवल राम का अयन (कर्तव्यमार्ग-प्रदर्शन) न होकर, उनकी रामा (पत्नी सीता) का भी अयन है। यह काव्य आदर्श पुरुष और आदर्श नारी, दोनो के चित्रधारणपूर्वक नर-नारियो को अपना-अपना कर्तव्य-पथ दिखा रहा है। फिर वैदेही लक्ष्मीस्वरूपिणी होने से एव श्रीरामजी नारायण होने से वैदेही और उनके ईश, दोनों का विलास आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समीचीन ही है और उन दोनो के आध्यात्मिक विलासो के वर्णन से यह ग्रन्थ ओतप्रोत है। इसलिए इस ग्रन्थ ने वास्तव में सात्त्विक आध्यात्मिकता का परिचय दिया है। सुतरां इस ग्रन्थ का नामकरण 'वैदेहीश-बिळास' यथार्थ ही है।

'वैदेहीश-विळास' मे

'ब' अक्षर का प्राधान्य:—ओड़िआ वर्णमाला मे 'ब' और 'व' दोनों है। परन्तु भाषा में केवल 'ब' ही का व्यवहार होता है। उपेन्द्र भञ्ज ने 'वैदेहीश-विळास' के प्रत्येक पाद के आद्याक्षर को 'ब' से आरम्भ किया है। इतना ही नही, प्रत्येक छान्द के पदों की संख्या 'ब' आद्यक है; जैसे बाईस, बत्तीस, बयालीस, बावन, बासठ, बहत्तर आदि कुल छान्दो की संख्या 'बावन' (५२) भी 'ब' आद्यक है। कवि दीनकृष्ण ने उनके पूर्व 'रसकल्लोळ' नामक काव्य की रचना की थी, जिसके प्रत्येक पाद का आरम्भ 'क' वर्ण से किया गया है। काव्य का नाम 'कल्लोळरस' होना चाहिए था। किन्तु उपेन्द्र ने इस काव्य के प्रत्येक पाद को 'ब' अक्षर से आरम्भ कर काव्य का नाम उसी रीति से 'वैदेहीश-विळास' ही रखा है। ऐसी पद्धति भारतीय साहित्य-संसार मे विरल है।

'बैदेहीश-विलास' मे महाकाव्य के सारे लक्षण सुस्पष्ट हैं। रामायण की महत्त्वपूर्ण प्रसंगावली की दृष्टि से इसमे ऊँची कोटि के चरित्रो का कृतित्वसहित चित्रण किया गया है। 'वाल्मीकि रामायण', तुलसीदासजीकृत 'रामचरितमानस' और व्यासजीकृत

'अध्यात्म रामायण' में जिस रीति में चरित्र-चित्रण किया गया है, उपेन्द्रजी ने उसकी अवधारणा की है और इस महाकाव्य की रचना में अग्रसर हुए हैं।

'वैदेहीश-बिळास' में ५२ छान्दों (सर्गों) का निबन्धन हुआ है। इसके नायक श्री रामचन्द्रजी केवल देवता ही नही, प्रत्युत देवदेवाधिराज परमेश्वर के मनुष्यावतार हैं और धीरोदात्त गुणो से समन्वित हैं। शृंगार, वीर, शान्त, करुण, हास्य, भयानक, अद्‌भुत, रौद्र, वीभत्स —नौ रसों का इसमें प्रसंगावली के अनुसार सुचिन्तित तथा सुकौशल रीति से परिवेषण किया गया है। इन रसों में करुण रस की प्रधानता है, जिसमें विप्रलम्भ शृंगार समाया हुआ है। इस रस के परिवेषण के समय उपेन्द्र की बलवती प्रतिभा अनुरूप चित्रों में चमत्कारिता सृष्टि कर मूर्त्तिमती हो उठी है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे विष्णु तथा सूर्य का नमस्कारात्मक मगलाचरण किया गया है और रामायण की कथावस्तु का निर्देश हुआ है। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, प्रदोष, ध्वान्त, वासर, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, नगर, स्वर्ग, यज्ञ आदि का सांगोपांग वर्णन है। रामायण चरित के नायक वैदेहीश (श्री रामजी) के विलासों की इसमें वर्णना है। सुतरां इसका नाम यथार्थ मे हुआ है 'वैदेहीश-बिळास'।

उत्तम व अधम, देवता व दानव, धर्म व अधर्म, सत्यादर्श और मायामरीचिका का इसमें यथाक्रम उत्कर्षापकर्ष प्रतिपादनपूर्वक महाकाव्य के उन्नत लक्ष्य के प्रति विशेष ध्यान रखा गया है। कथावस्तु पौराणिक तथा ऐतिहासिक है; फिर भी, इससे प्रदर्शित रचनाचातुर्य, भावगाम्भीर्य, ध्वनिमाधुर्य और रसालकार-विन्यास व छन्दोयोजना में वैचित्र्य कवि की स्वतन्त्रता का परिचय देता है।

उपेन्द्र भञ्ज की भक्ति-प्रवणता

अलोकसामान्य स्वप्रतिभासहित सतत श्रम, साधना और शास्त्रानुशीलन के सहारे उपेन्द्रजी ने अनगिनत दुर्लभ ग्रन्थों की रचना की थी। सर्वोपरि उनका ईश्वर-विश्वास उनके कवित्व के उदय में सहायक हुआ था।

'लावण्यबती' मे वे कहते हैं—

"तारकमन्त्र परसादे, मोहर कविपण उदे।" —'रामतारक मन्त्र (रं रामाय नमः)' के प्रसाद से मुझमें कवित्व का उदय होता है।

"वैदेहीश-बिळास" जैसे महान आलंकारिक काव्य लिखने के लिए कविवर उपेन्द्रजी के मन में अभिलाषा तथा प्रेरणा कैसे जगी, उसके बारे में निम्नलिखित कहानी सुनाई पड़ती है:—

पितामह धनञ्जय भञ्ज ने एक दिन पौत्र उपेन्द्र को स्वरचित 'रघुनाथ-बिळास' ग्रन्थ दिखाया और इस पर उनकी सम्मति चाही। उपेन्द्र ने इस काव्य का आद्योपान्त अध्ययन किया और पितामह से सविनय कहा, "श्रीमन् ! आपका प्रणीत 'रघुनाथ-बिळास' निस्सन्देह, एक अमूल्य ग्रन्थ है। परन्तु इसमें आशानुरूप अलंकारों का विन्यास नही हो पाया है।"

धनञ्जयजी ने मुसकराते हुए कहा, "तात ! क्या तुम इससे अधिक अलंकार-मधुर काव्य लिख सकोगे ?"

"श्रीमन् का आशीर्वाद पाऊँ, 'तो अवश्य लिख सकूंगा।' —कहते हुए उपेन्द्र पितामह का आशीर्वाद लेकर वहाँ से चल दिये।"

कहते हैं, एक साल तक जी-जान लड़ाकर उपेन्द्र ने जो महाकाव्य रचा, वही है 'बैदेहीश-बिळास'। कवि ने यह महाकाव्य पहले ओडगाँव रघुनाथजी के मन्दिर में विराजमान श्री रघुनाथजी के चरण-कमलों पर समर्पित किया, फिर यथासमय धनञ्जयजी के करकमलो मे। यह ग्रन्थ देख पितामह फूले न समाये और उन्होने पौत्र उपेन्द्र को आशीर्वाद दिया।

'बैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के तृतीय पद में भी कवि ने 'रामतारक मन्त्र' के सम्बन्ध में लिखा है—

"बळाइ चित्त अनबरत भाग्ये ग्रहण तारक मन्त्र
सीता श्रीराम-चरित-गीत कृते लाळस ये।"

(हमेशा कविता लिखने की ओर मैंने अपनी रुचि बढाई थी। सौभाग्य से 'रामतारक मन्त्र' ग्रहण किया। उसी मन्त्र के प्रसाद से मुझमे कवित्व का स्फुरण हुआ। इसलिए सीता-श्रीराम-चरित-सम्बन्धी गीत लिखने की मुझमे अभिलाषा हुई।)

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य मे उपेन्द्रजी कहते है—

"मो (मेरे) प्रभु श्री रामजी बैकुण्ठनाथ साक्षात।"

उपर्युक्त उदाहरणो तथा उद्धरणो से सिद्ध होता है कि भञ्जजी रघुवशावतस श्री रामचन्द्रजी के श्रेष्ठ उपासक और सद्भक्त थे। 'बैदेहीश-बिळास' आदि स्वरचित अधिकांश काव्यों मे श्री रामचन्द्रजी के उद्देश्य मे रचित मंगलाचरण, 'बैदेहीश-बिळास' महाकाव्य के प्रायः प्रत्येक छान्द के अन्त मे श्री रामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए छान्द की समाप्ति और खासकर 'बैदेहीश-बिळास', 'रामलीळामृत' और 'अबनारसतरंग' जैसे काव्यों की रचना से कवि की अनन्यसाधारण रामभक्ति का परिचय मिलता है।

कवि ने 'बैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के प्रथम और द्वितीय पद मे श्लेष में विष्णु (जो कि रामावतार मे स्वयं अवतीर्ण होकर 'बैदेहीश-बिळास' महाकाव्य के महानायक तथा कवि के नित्य उपास्य हैं) और सूर्य (जो कि दशरथनन्दन राम के सूर्यवशसम्भूत होने से वंश के उपास्य है) —को मगलाचरण मे आत्मनैवेद्य प्रदान करते हुए, दोनों की वन्दना की है। सुतरां 'बैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ का ऐसा आरम्भ बहुत ही युक्ति-युक्त तथा चातुर्यपूर्ण हुआ है। उद्धरणो के लिए ये दो पद देखिए—

'वन्दइ दीनबान्धव हरि··········गिरि उदित ये। १।
बहित येहु रोहितमूर्त्ति··········कि स्तुति तहिँ ये। २।

(सम्पूर्ण उद्धरणो तथा उनके अर्थ के लिए 'उपेन्द्र भञ्ज का शब्द-पाण्डित्य और आलकारिकता' निबन्ध मे आलोचित 'श्लेष प्रसग' अथवा बै० बि० के प्रथम छान्द में प्रदत्त सटीक पाठ द्रष्टव्य है।)

"भबे तरणी होइ मञ्जुळे गिरि उदित ये"

(जो अब नीलगिरि —श्रीक्षेत्र —में जगन्नाथ के नाम से विराजमान है और संसार-सागर को पार करने के लिए मनोहर नौकास्वरूप हैं, उन्ही विष्णु भगवान की वन्दना मैं करता हूँ।) —उक्ति से उपेन्द्र की जगन्नाथ-भक्ति का भी प्रमाण मिल जाता है।

'लाबण्यवती' काव्य के मंगलाचरण मे प्रदत्त—

"जय जय राम जनकसुखद।
भीम हरषदानरे सदा बिशारद हे। १।

चन्द्रहास शोभाकर समस्त काळर।
लक्षणवन्त अलक्ष्य मुख मनोहर ये। २।

प्रत्येक पद में भक्त उपेन्द्र ने राम, परशुराम और बलराम के प्रति त्रिविध अर्थ-सम्बलित स्तुति की है। जैसे :—

श्रीराम के पक्ष मे :—हे राम ! आपकी 'जय' 'जय' 'जय' हो। आप अपुत्रक जनक (पिता) दशरथजी के यहाँ जन्मकर उन्हे सुखदाता हुए है अथवा पितृ-सत्यपालनपूर्वक, स्वयं वनवास-कष्ट सहकर और भरत को राज्य व राजसिहासन सौपकर आप जनक (पिता दशरथ) के सुखदाता हुए है (अथवा शिवधनुष भंग कर जानकी का पाणिग्रहण करके आप जनक महर्षि के सुखदाता हुए हैं।)। (शिवजी के 'रामतारक' मन्त्र से) आप भीम (महादेवजी) को आनन्द देने मे दक्ष है। आपका हस्त हमेशा चन्द्रहास नामक तलवार से सुशोभित है। लक्षणवन्त लक्ष्मण आपके अनुगत है।

परशुराम के पक्ष मे:— हे परशुरामजी ! आपकी 'जय' 'जय' 'जय' हो। आप अपने पिता जमदग्नि के अनुरोध की रक्षा करके उनके सुखदाता हुए हैं। आप भीम (दुष्ट) क्षत्रियो का आनन्द नाश करने मे दक्ष है। आप नीले मेघ के समान मनोहर हैं और शख, चक्र, गदा, अर्द्धचन्द्र आदि बत्तीस लक्षणो से युक्त है।

बलराम के पक्ष मे:— हे बलरामजी ! आपकी 'जय' 'जय' 'जय' हो। आप जनक (जनो के) सुखदायक है। आप दुर्योधन के द्वारा भीमसेन का आनन्द-छेदन करने मे दक्ष है। आप चन्द्र की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर है। आप लक्षणवन्त है और आपका मनोहर मुख अनुपम है।

उपेन्द्र की रचनावली के प्रत्येक पृष्ठ मे गम्भीर अध्यात्मवाद परिलक्षित होता है। केवल परिकल्पना के काव्यिक स्तर मे या चिन्ताधारा की चमत्कारिता का प्रकटन करने मे ही नही, इसी अध्यात्मवाद की अमृतमय धारा की प्रबल बाढ ने उनके हृदय को अपूर्व भक्ति, श्रद्धा व भगवद्विश्वास रस से प्लावित कर दिया था। भक्तिमत्ता ही उनके निर्मल और निरहंकार जीवन की सर्वश्रेष्ठ अर्चना-सामग्री और आत्मसमर्पण का सौन्दर्यमय तथा माधुर्यमय प्रतीक थी। केवल मंगलाचरणो मे ही नही, ग्रन्थो के अधिकाश पर्यायो में उनकी यही गम्भीर स्वतःस्फूर्त्त भक्तिमत्ता उनके हृदयानुराग के दिव्य रग से रजित होकर रूपायित हो उठी है।

रामतारकमन्त्र-सिद्ध उपेन्द्र श्रीराम के विग्रह मे अनन्त विश्व-सृष्टि व स्रष्टा पर-ब्रह्म का अनन्त माधुर्यमय लावण्य देखते-देखते अपने को बहुधा खो बैठे है। 'वैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द जैसे विचित्र छान्द की रचना उन्होने की है, नीलाद्रिचन्द्र जगन्नाथजी का सफल ध्यान करते हुए :—

"विरचि बीरबर उपेन्द्र भञ्ज स्वच्छन्दे विचित्र छान्द,
चित्त निश्चिन्त नीळाद्रिचन्द्र ध्यान सफळे ये।"

श्रीरामचन्द्रजी और जगन्नाथ उनकी दृष्टि मे अभिन्न है और वे उन्ही दोनो के आध्यात्मिक प्रसाद से बलवान हो इस छान्द की रचना कर पाये है।

फिर 'वैदेहीश-विळास' के द्वितीय छान्द के प्रथम पद मे भञ्जजी पण्डित पाठकों से अनुरोध करते है—

"बिदुष ! दूषण-बिवर्जित गीते रस ये।
बिष्णुचरित त्वरित करिब हरष ये।"

(हे पण्डितो ! आप लोग दोषशून्य इस गीत से अनुरक्त होइए, क्योंकि यह विष्णु-चरित आप लोगो को शीघ्र ही हर्षदान करेगा।)

अपने छान्द की निर्दोषता के बारे मे कवि का आत्मविश्वास तथा विष्णु-चरित (राम-चरित) की अमोघ शक्ति के बारे में कवि का दृढ विश्वास देखिए।

इसी छान्द में वर्णित शिवजी, इन्द्रजी, बृहस्पति आदि देवगणसमेत ब्रह्माजी की स्तुति पढकर कौन उपेन्द्र की प्रगाढ़ भक्ति-प्रवणता पर सन्देह करेगा ?

भगवान् श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए वीरवर उपेन्द्र ने 'बैदेहीश-बिळास' के प्रत्येक छान्द की रचना समाप्त की है।

"बयाळिश पदे छान्द। बिरचन बीरबर चिन्ति रामचन्द्र।" (४२)
(छान्द २५, बैं० बि०)

सुग्रीव ने चक्रवन्ध में राम की जो स्तुति की है, वह उपेन्द्र की सरस आध्यात्मिकता का प्रमाण है—

"बिभु खर पर मेळ साधबि ! बिद्धशाळ मेघतनु भा-रबि। ३७।
बीरभा-नुत क स्व भूप्रसबि। बीशप्रभु स्वतरे क बिभाबि। ३८।
बिभाबिकरे खेद भेद पवि। बिपद भेदन तार पदबी। ३९।
बिद-पर तापसदत्त हबि। बिहत दशरूप रख सूबि। ४०।
(छान्द २८, बैं० बि०)

(अर्थ:— सटीक पाठ द्रष्टव्य है।)

चमत्कार चक्रवन्ध मे क्या ही चमत्कार शब्दयोजना ! उसमे फिर श्रीरामचन्द्रजी के प्रति सुग्रीव की स्तुति ! वास्तव मे यह पदसमूह एक नारियल है, जिसमे भक्ति का सरस सार भरपूर है।

'बैदेहीश-बिळास' के नवम छान्द मे 'केवट का पद-प्रक्षालन' प्रसग मे कविसम्राट् ने (केवट की) दास्यभक्ति का समुज्ज्वल दृष्टान्त दिखाया है। नौका-चालन मे दक्ष होने के कारण वह केवट दूसरे केवटो का सरदार है और इसलिए वह दासो से सेवित है। दाससेवित होने पर भी स्वयं दासोचित भक्तिभाव से गद्‌गद होकर उस धीवर (केवट) ने श्रीरामजी के चरण-कमलो को धोने के लिए बहाना बनाकर वास्तव में धी+वर (श्रेष्ठ बुद्धि वाले) का काम किया है। वह बोलता है— "हे वीर ! मैंने पथ मे सुना कि आपकी चरण-रज के स्पर्श से एक पत्थर नारी बन गया है। मेरी नौका आपकी चरण-रज के स्पर्श से अगर एक नायिका (नारी) बन गयी, तो मेरा बेड़ा डूब जायगा। मेरी परवरिश का यही एक मात्र साधन है। इसलिए मैं आपके पैरो को धोये बिना अपनी नौका पर नही बैठने दूंगा।" (बैदेहीश-बिळास, नवम छान्द, पद ३)

व्यास-विरचित 'अध्यात्म रामायण' का इस पर अवश्य प्रभाव पड़ा है। परन्तु भञ्जीय योजना और पदविन्यास-चमत्कारिता निश्चय ही उनके स्वातन्त्र्य की सूचना देती है। अनन्तर भक्तवत्सल भावग्राही श्री रामचन्द्रजी ने उसका मनोभाव समझकर धोने के लिए उसकी ओर अपने पैर बढ़ा दिये।

चरणामृत-पान की इच्छा करनेवाले ब्रह्माजी जिन पैरो को नही धो पाये है, शिवजी जिन पैरों को न धो सकने के हेतु विषादग्रस्त (दु:खित) हैं, उन्हे साक्षात (प्रत्यक्ष) में पाकर और धोकर इसी केवट ने विज्ञानी (विगतज्ञान अर्थात् अज्ञानी) होकर भी, विज्ञानी (विशिष्ट ज्ञानी) का परिचय दिया एव अज्ञानी केवट का उद्धार करने के हेतु प्रभु का

'पतितपावन' नाम सार्थक हुआ। इसी-पर्याय मे भञ्जीय रचना की नवीनता तथा स्वतन्त्रता निम्नलिखित पद से स्पष्ट हुई है—

> बढ़ाइ देले पयर भावग्राही रघुवीर
> पयरे क्षाळित करि बसने पोछि,
> ब्रह्मारे धौत ये पद नोहिछि, शिबे विषाद,
> न पाइ चरणामृत पानकु इच्छि,
> बिज्ञानी कैबर्त्त धोइला,
> बिश्वे पतित-पावन नाम रहिला।
>
> (बैं० वि०, नवम छान्द, पद ४)

रामतारकमन्त्रसिद्ध उपेन्द्र श्रद्धाभावभक्ति-विह्वल होकर ये सारे प्रसंग लिखते वक्त अनजान मे उसी दिव्यत्व के प्रवाह से बह गये है। उनकी रचना ने भी स्वतः स्फूर्त्त ढग से तदनुरूप योजना, शब्दचातुर्य और भावगाम्भीर्य का यथार्थ परिचय दिया है और उनके जीवनदर्शन-सम्बन्धी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर यह प्रतिपन्न किया है कि वे श्रीरामजी के एकनिष्ठ भावभक्त थे।

पुराणो के प्रसंगो के अनुशीलन, आध्यात्मिक ग्रन्थो के अध्ययन और भारत के चतुर्द्धाम-पर्यटन से उपेन्द्र की दिव्यानुभूति व आध्यात्मिक चिन्ताधारा पनपी थी। 'बैदेहीश-बिळास' का प्रत्येक पन्ना उनके आध्यात्मिक जीवनदर्शन का वैशिष्ट्य प्रतिपन्न करने में गूँज उठा है। राममय ससार मे निमग्न होकर राममय जीवन की आध्यात्मिक सरसता मे उन्होने अपने को खो दिया है एव ऐसे जीवन के चित्रण मे उन्होंने जीवन की परम सार्थकता प्राप्त की है।

'चित्रकाव्यबन्धोदय' मे रामचन्द्रजी के प्रति उपेन्द्र की विनती देखिए। प्रत्येक पाद मे आद्यप्रान्त यमक की मनोहर शब्दयोजना देखकर किसका हृदय अभिभूत नही हो उठेगा ?

> "चन्द्रबत कीरति रामचन्द्र, इन्द्रबिपदहारी राजइन्द्र।
> शीतांशु सिताम्बुजमुखी सीता, नितान्त याहार (जिनकी) प्रिय बनिता।
> रथीमानङ्कु (रथियो के) श्रेष्ठ दाशरथि, पथिक बने दैत्य परिपन्थी।
> वर नाशन ह्रास जित-दर, धरणी करता कोदण्डधर।
> हरिजित ठाणि (भंगिमा) साक्षात हरि, करी गतिकि त समा न करि।
> कज नयन चरण-पंकज, भञ्ज उपइन्द्रर दुःख भञ्ज।"

'रसिक हारावली' काव्य मे कविसम्राट् ने रामजी से निवेदन किया है, "हे राम ! आप करुणा करें ताकि मेरी यह पुस्तक विज्ञजनो के हस्तगत होवे, परन्तु अज्ञानी लोगों के कर्णकुहरो मे यह कभी प्रवेश न करे।"

> "हे राम श्याम काम सम सुषम वाम यम भीम बन्दन।
> दानब-दानबारि-दानवत्सळ जानकी-हृदय-चन्दन।
> कर ए करुणा बिज्ञहस्तगत ए पुस्तक मोर होइब।
> अज्ञ-समूहर कर्णकुहरकु केबेहें प्रबेश नोहिब।
> आखु अनळ। हीरारे न लभि बिनाश।
> उत्तम जनरे दूषित नोहिण प्रकाश हेब सर्बदेश।"

तुलनीय— "इतर – तापशतानि यथेच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥"
(कालिदास)

कवि का निर्भीक मत अपने प्रगाढ आत्मविश्वास पर आधारित होने पर भी, वे पुस्तक के विज्ञजनों में प्रचार और अज्ञजनो से इसके बचाव के लिए भगवान् श्रीरामजी से सविनय अनुरोध करते हैं। इस पद मे वास्तव मे कवि के प्रतिभापूर्ण पाण्डित्य, दृढ आत्मविश्वास और रामभक्ति का त्रिवेणी सगम हुआ है।

'अबनारसतरग' (बिना मात्राओ के रसपूर्ण पदो की योजना-सम्बलित काव्य-पुस्तक) मे कवि की राम-स्तुति देखिए—

"बरधन अनन्त यश ए जगतर। बरधन अनन्त सहज भकतर।
सत्यसन्ध मण्डन जनक बचस्कर। जट बळकळ पट बह बनचर।"

(तात्पर्य:—हे श्रीरामजी ! आपने इस जगत मे असीम यश की वृद्धि की है। आप भक्तजनो के श्रेष्ठसपद हैं। हे सत्यसन्ध ! आपने पिताजी का वचन मानकर सत्यसंकल्पो के विभूषण हुए हैं। आपने जटा-वल्कल धारण कर वनवास किया।)

'रसिकहारावली' काव्य मे स्वर्गादपि गरीयसी उत्कल भूमि के अन्तर्गत श्रीनीलाचल-धाम (पुरुषोत्तम क्षेत्र) और वहाँ के जगन्नाथ मन्दिर के बारे मे कवि कहते हैं—

"ये उँ क्षेत्रराज बिराजमान मकरध्वजे,
श्रवणे चरित तुरित जन दुरित गंजे।
ये बण कटके छटके बराटके मुकति,
महाप्रसादरे सादरे लोकमाने लभन्ति।

× × × ×

पताका अंचळा चंचळ डाके पापीङ्कि अबा,
ए नीळ-नग-नगरकु आस भल करिबा।
ये ते दूर घण्ट निनाद शुभे नदरे नेइ,
पकाए अनृत दुष्कृत गळे गळया देइ।"

[अर्थ:—समुद्र के किनारे पर क्षेत्रराज श्रीक्षेत्र विराजमान है। इसका चरित सुनने से लोगो का पाप-खण्डन हो जाता है। इस नगरी मे कौडियों के बदले लोग महाप्रसाद (अन्न महाप्रसाद या अभड़ा) सादर पाकर मुक्ति पा लेते है।

श्री जगन्नाथ मन्दिर की पताका का आँचल पापियों को पुकारकर जैसे बोल रहा है— "तुम लोग इस नीलगिरिस्थित नगरी को आओ, हम तुम लोगो के पापो का आरोग्य कर देगे।" मन्दिर के घडियालो की ध्वनि जितनी दूरी तक सुनाई पड़ती है, वह वहाँ तक समुद्र मे सारी मिथ्याओ और बुराइयो को अर्द्धचन्द्र देकर फेंक डालती है।]

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के प्रथम छान्द मे मगलाचरण में कविवर पुरुषोत्तम क्षेत्र की महिमा यो गाते है—

"शुण कोबिदे भरत खण्डे पुण्यधाम।
य़ेणु नारायण देही तेणु सेहि नाम हे॥
गीर्वाण मते निर्वाण सारूप्यकु देइ।
साक्षी पक्षी करट प्रतिमा रूपे थाइ य़े॥
य़े ब्रह्महत्यापातक-निपातक मही।
कपाळमोचन त्रिलोचन साक्षी य़हिँ य़े॥
से कम्बु कटक राजा नाम जगन्नाथ।
चारि वर्णे चउवर्ग देवाकु समर्थ हे॥
शक्तिदेवा गुप्त होइअछि युक्ताक्षरे।
वैष्णवविहीने के बा जाणिव संसारे हे॥
पादे बन्दे सार्बभौम बोलिवा कि य़श।
वृषासनङ्कर शिर लागिवाकु आश हे॥

अर्थ:—भारतवर्ष मे पुण्यधाम है पुरुषोत्तम। स्वय नारायण पुरुषोत्तम के नाम से वहाँ अवतीर्ण हुए है। इसलिए स्थान का नाम पुरुषोत्तम पड़ा है। देवताओ के मत मे चार प्रकारो की मुक्तियाँ— सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारोप्य —वहाँ मिलती हैं। भुशुण्डि काक रोहिणीकुण्ड मे चतुर्भुज हो बैठकर उसका साक्ष्य देते हैं। वहाँ ब्रह्महत्या का पाप-खण्डन होता है। स्वय शिवजी वहाँ विराजमान होकर उसका साक्ष्य देते हैं। (महादेव शंकरजी ने एक ब्राह्मण को एक तमाचा लगा दिया था। ब्रह्महत्या के दोष से उसका कपाल उनके हाथ मे लग गया, नही छूटा। श्रीक्षेत्र के दर्शन से उसका कपाल उनके हाथ से छूट गया और वे ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो गये।)

उस कम्बुकटक (शखतीर्थ) के राजा का नाम जगन्नाथ है। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र —इन्हीं चार वर्णों को चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) फल देते हैं। वैष्णवो के मतानुसार 'जगत्' शब्द का अर्थ है 'राधा', 'नाथ' शब्द का अर्थ है 'कृष्ण'। सुतरां 'जगन्नाथ' का अर्थ हुआ 'राधाकृष्ण'। यहाँ 'जगन्नाथ' मूर्ति मे राधाकृष्ण का सम्मिलित रूप है। यह अर्थ केवल वैष्णवो के लिए ही सम्भव है। जिन सम्राट् की ऐसी महिमा है और जिनके पादो का स्पर्श करने की आशा स्वय शंकरजी ने भी की है, उन पादो की वन्दना मैं कर रहा हूँ। इसमे भला क्या आश्चर्य है?

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' व 'रसिकहारावळी' मे पुरुषोत्तम (स्वय नारायणजी) की स्नानयात्रादि उत्सवो की वर्णना तथा श्रीक्षेत्र की अनिर्वचनीय महिमा के कीर्तन मे कविवर आत्मविभोर हो उठे हैं। पुन: 'नीळाद्रीश-चउतिशा' काव्य में कविवर ने जगन्नाथ-विग्रह मे 'दारुब्रह्मस्वरूपाय चतुर्द्धा मूर्त्तये नम:' की महत्ता की उपलब्धि की है एक परमभक्त और गम्भीर आध्यात्मिकता के उपासक के रूप मे।

कविकृत मंगलाचरणो में और भक्तिरसात्मक पद्यांशो में अपूर्व वैशिष्ट्य देखा जाता है। यद्यपि श्रीरामजी को उन्होने अपने इष्टदेवता के स्वरूप मान लिया है, फिर भी अपने ग्रन्थो में उन्होने जगन्नाथ, श्रीकृष्ण, श्रीराम, परशुराम, बलराम, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, चन्द्र आदि की भक्ति-प्रवण हृदय से स्तुति की है। परमेश्वर एक और

निराकार हैं। परन्तु समूचे विश्वब्रह्माण्ड के दुष्टों का नाश और साधुओं का परित्राण-पूर्वक, सुश्रृंखल शासन के लिए वे अनेक रूपो, आकारो और अवतारो में धरापृष्ठ पर अवतीर्ण होते हैं और भक्तों के हृदयमन्दिरों मे स्थान पाते हैं। यही कवि को विश्वास था। इसलिए समस्त देव-देवियों मे उन्होने साकार ईश्वरसत्ता का अनुभव किया है और ससार के लोगो के समक्ष अवतारों का निष्कलंक, आदर्श लक्ष्य और कर्तव्यसाधन उपस्थित किया है। श्रीमद्भगवद्गीता मे उक्त भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥"

अथवा 'मानस' मे उक्त गोस्वामी तुलसीदासजी की वाणी—

"जब-जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा ॥"

के समान भञ्जजी ने भी अपने काव्यो में आवाज उठायी है।

'बैदेहीश-बिळास' के ५२ छान्दों की संक्षिप्त विषयवस्तु

प्रथम छान्द:— इस छान्द के प्रथम और द्वितीय पद मे कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने मगलाचरण करते हुए श्लेष मे भगवान विष्णु और सूर्य की वन्दना की है। अनन्तर कवि ने लिखा है कि 'रामतारकमन्त्र' के ग्रहण से उनमे कवित्व का उदय हुआ और सीतारामचरित की गीतो में रचना करने की उन्हें अभिलाषा हुई। उन्होंने महर्षि वाल्मीकि (वाल्मीकि-रामायण), व्यास (अध्यात्म-रामायण), हनुमान (महानाटक), कालिदास (रघुवश), भोजराज (चम्पू-रामायण) और बलरामदास (जगमोहन-रामायण) जैसे पूर्ववर्ती प्रसिद्ध रामायणकारों के प्रति विनय प्रकट करते हुए रावणादि के जन्म-वृत्तान्त की वर्णना की है।

विद्युत्केश नामक राक्षस के वंश मे सुमाली, माली और माल्यवन्त नामक तीन पुत्र पैदा हुए थे। उन लोगो ने स्वर्ग में लूट-पाट की। तब इन्द्रजी ने विष्णुजी का ध्यान किया। विष्णुजी ने आविर्भूत होकर चक्राघात से माली और माल्यवन्त का निधन किया। यह देख सुमाली लंका छोड पाताल मे जा छिपा। और राक्षस लोग लका छोड़ भाग गये एव पुण्यवन्त लोग वही आकर रहने लगे। (कुबेर यक्षो के सहित वहाँ आकर रहने लगे, तो लंकागढ़ ने विशेष शोभा धारण की।) लकागढ की थोडी दूरी पर सुवलय पर्वत के नीचे ब्रह्मापुत्र पुलस्त्य के पुत्र ऋषि विश्रवाजी ने अपना आश्रम बनाया। कुछ दिनों के बाद सुमाली ने दूत के मुख से यह खबर पा ली। वह अपनी कन्या रसनिधि निकषा (कैकसी—वाल्मीकिरामायण) को साथ लिये विश्रवा ऋषि के पास पहुँचा। ऋषि ने उस कन्या के सहित शाम के समय संभोग किया। वह कन्या तो राक्षसी ही थी। इसलिए उसके गर्भ से राक्षसी शरीर मे तीन पुत्र (रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण) पैदा हुए। रावण दस मुखो और बीस भुजाओ वाला होकर बडा भयंकर दीखता था और उसके भय से चराचर पृथिवी काँपने लगी। कुम्भकर्ण रक्तवर्ण कान्ति

वाला था और उसके कान कुम्भों के समान थे। तीसरा भाई विभीषण शान्तरूप था। निकषा के गर्भ से एक कन्या भी उत्पन्न हुई। उसके नख सूपों के समान थे। इसलिए उसका नाम शूर्पणखा पड़ा। रावण ने तपस्या से ब्रह्माजी को प्रसन्न करके उनसे दीर्घायु तथा जगद्विजयी होने का वर लाभ किया। "परन्तु सीता के हरण से तुम्हारी मृत्यु सुनिश्चित है।" यह कह ब्रह्मा ने उसे सावधान कर दिया।

तदनन्तर बलवान् रावण स्वर्ग, मर्त्य और पाताल मे ऊधम मचाने लगा।

द्वितीय छान्द:— रावण के अत्याचार से प्रपीडित देवलोग क्षीरसागरशायी नारायण से रक्षार्थं विनती करते हैं। नारायणजी यह कहकर कि मैं शीघ्र ही मानवावतार ग्रहण करूँगा, देवताओ को प्रसन्न करते हैं। सुमन्त्र और सनत्कुमार के कथोपकथन के मिस श्रीरामजी के रूप में नारायण के अवतार-प्रसग की अवतारणा की जाती है। सनत्कुमारजी से यह सुनकर कि नारायणजी दाशरथि (दशरथ के पुत्र) के रूप मे जन्मग्रहण करेंगे, सुमन्त्रजी को जैसे इन्द्र-सम्पत्ति मिल जाती है। वे दशरथजी को इस सवाद से अवगत कराते है।

तृतीय छान्द:— इसमे मिथिलाधिपति जनकजी की कन्याप्राप्ति का विषय वर्णित है। जनकजी यज्ञमण्डपनिर्माणार्थ भूमिकर्षण करते है। वे आकाशमार्गगामिनी मेनका को देखते और उसके समान एक कन्या पाने की अभिलाषा करते हैं। मेनका उनका मनोभाव समझ लेती और राजर्षि को यह बताकर कि आप इसी मुहूर्त एक कन्यालाभ करेंगे, चली जाती है। जनकजी भूगर्भ से एक पिटारी पाते है। पिटारी खोल वे उसमे एक परमासुन्दरी कन्या को शायित देखते हैं। यही सीता हैं, जो भविष्य मे श्रीरामजी की धर्मपत्नी और रामायण की विश्ववन्द्या काव्यनायिका बनती है। छान्द के १५वे पद से सीता की बाल्यलीला का विस्तृत ढंग से वर्णन है। छान्द के अन्तिम भाग मे सीता के यौवन-वर्णन सहित उनके विवाह के लिए स्वयंवर-सभा के आयोजन की सूचना है।

चतुर्थ छान्द:— इसमे विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यश्रृंग का चरित वर्णित है। चम्पावतीपुर मे अनावृष्टि के हेतु राजा लोमपाद के निर्देश से ऋष्यश्रृंग को लाने की घटना इसमे असामान्य दक्षता के साथ वर्णित की गयी है। जरतादि वेश्याएँ ऋष्यश्रृंग का मन बहलाकर उन्हे चम्पावतीपुर ले आती है। ऋषि-पुत्र के आने पर राज्य मे वृष्टि सम्भव होती है। ऋष्यश्रृंग को अयोध्या मे निमन्त्रित कर लाने के लिए दशरथजी चम्पावतीपुर मे प्रवेश करते हैं। विभाण्डक-ऋष्यश्रृग का आलाप (४२वें पद से ४८वें पद तक) विदग्धतापूर्ण है। प्रेमिक मानस के चित्राकन मे कवि की दक्षता ४८वें से ५१वे पद तक में सुस्पष्ट है। इसमे कवि पर नैषधीय प्रभाव पड़ा है।

पञ्चम छान्द:— ऋष्यश्रृग को अपने दामाद के रूप में वरण कर राजा दशरथ अपनी पालित कन्या शान्ता के सहित उनका विवाह संपादन करते है। दशरथजी तब तक अपुत्रिक हैं। वे ऋष्यश्रृग के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का संपादन कराते है। यज्ञ के अन्त मे रानियो को सेवनार्थ चरु दिया जाता है। अनन्तर कौशल्याजी के गर्भ से श्रीरामचन्द्र (अथवा श्रीरामभद्र), कैकेयीजी के गर्भ से भरत और सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न जन्मग्रहण करते हैं।

शान्ता के सौन्दर्य की वर्णना मे कवि ने अनुपम पदो की योजना की है।

षष्ठ छान्द:— कुछ दिनो के बाद वन मे राक्षसों से प्रपीड़ित मुनिवर विश्वामित्रजी

दशरथजी के समीप प्रवेश करते हैं। अपनी विनती से दशरथजी को प्रभावित करके मुनिवर श्रीराम-लक्ष्मण को अपने साथ वन ले जाने के लिए राजा की स्वीकृति प्राप्त करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण वन मे जाकर ताड़का का निधन करते है।

इस छान्द मे नारी व नगरी की वर्णना, सन्ध्या की वर्णना, भीषण वन की वर्णना और ताड़का की वर्णना कवित्वपूर्ण है। बड़े सयमपूर्ण शब्दो के विन्यास मे विष्णुजी के दशावतार वर्णित है।

सप्तम छान्द:— सिद्धवन की वर्णना से इस छान्द का आरम्भ होता है। द्वितीय पद से चतुर्दश पद तक मे सिद्धवन के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। श्रीरामचन्द्र के दर्शनार्थ मुनि-ऋषियो का आगमन, मारीच राक्षस का विक्षेपण, काम्यक वन के अभिमुख मे विश्वामित्रजी के सहित राम-लक्ष्मणजी की यात्रा, श्रीरामजी से अहल्याशाप-मोचन, विश्वामित्रजी के द्वारा अहल्याशाप-चरित वर्णन एवं विदेहराजकन्या सीता के स्वयंवर की वार्ता का प्रदान आदि प्रसंग मनोहर ढग से वर्णित है।

सिद्धवन का सौन्दर्य-वर्णन-प्रसंगाश कवि के आलंकारिक पाण्डित्य तथा कल्पना का विशिष्ट उदाहरण है। ३३वे पद से ३८वे पद तक मे कवि की उत्कलीयता और कल्पना-वैभव के साथ-साथ शब्दपाण्डित्य एकबारगी उपभोग्य है।

अष्टम छान्द:— विश्वामित्र मुनि के सहित राम-लक्ष्मणजी मिथिला के अभिमुख में यात्रा करते हैं। मार्ग मे चलते वक्त श्रीरामजी के मन मे सीता के प्रति प्रीति पैदा करने के लिए विश्वामित्रजी सीताजी की सौन्दर्य-वर्णना विशेष रूप से करते हैं।

समग्र भञ्जसाहित्य मे यह एक सुपरिचित जनप्रिय छान्द है। छान्दार्थी कहते है कि ऐसे छान्द की परिकल्पना शायद प्राच्य साहित्य मे दुर्लभ है। अधिकांश पदो पर नैषधीय छटा का प्रभाव सुस्पष्ट है।

नवम छान्द:— यह छान्द साधारणतया 'बितळकु आलिंगन' छान्द के नाम से सुपरिचित है। उत्कल के गावो तथा शहरो मे, सर्वत्र करोड़ो कण्ठो से गत बहुत वर्षों से इस छान्द की आवृत्ति होती आयी है।

इसमे श्रीराम-लक्ष्मण और विश्वामित्रजी के गंगा नदी पार होने का प्रसंग वर्णित है। केवट के द्वारा श्रीरामजी के पदो का प्रक्षालन प्रसग प्रभावोत्पादक है। मिथिला मे प्रवेशानन्तर वहाँ की रमणियाँ श्रीराम-लक्ष्मणादि के दर्शनार्थ व्यग्र तथा उत्कण्ठित होती हैं। यह प्रसग भी मनोहर ढग से वर्णित है। विश्वामित्रजी जनकजी से श्रीरामजी के द्वारा साधित राक्षस-दमन आदि वृत्तान्त कहते है। सीता की स्वयवर-सभा मे विभिन्न राजाओ के साथ श्रीराम आदि आसन ग्रहण करते हैं। कोई भी राजा शिवधनु-भंग नही कर सके। श्रीरामजी धनुषभंग करते है।

इस छान्द मे केवट की भक्ति का वर्णन बहुत उपादेय है। भारतीय मुक्ति-शास्त्र मे प्रतिपादित कर्मयोग तथा ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्तियोग अधिक महत्त्वपूर्ण है —यह उपेन्द्रजी ने केवट के द्वारा श्रीरामजी के पद-प्रक्षालन के प्रसंग मे बड़ी खूबी से चित्रित किया है। सातवे पद से तेरहवें पद तक में, नारियों के चित्तविभ्रम की वर्णना अत्यन्त उपभोग्य है। रामचन्द्रजी की शक्ति व सामर्थ्य के बारे में विश्वामित्र और जनकजी का कथोपकथन हास्यरसपूर्ण हे।

दशम छान्द:— यह छान्द "विभूषण पुष्पे या कान्ति जाण" छान्द के नाम से विख्यात है। "श्रीरामजी का वरण करने को सीता को लाओ" —विश्वामित्रजी का यह आदेश

सुनकर सखियाँ सीता का वेश-विन्यास करती है। किस अंग को किन भूषणों से सुसज्जित किया जाता, उसका वैचित्र्यपूर्ण विस्तृत वर्णन इसमे दिया गया है।

एकादश छान्द.— सखियाँ सीता को स्वयंवरमण्डप मे पहुँचाती हैं। राजा लोग विचलित हो उठते हैं। जनकजी फूले नही समाते। लक्ष्मणजी विवाहोत्सव पालन पर आपत्ति करते है। वे कहते है कि पिता दशरथजी को बिना जताये विवाहोत्सव नही मनाया जा सकता। शतानन्दजी वार्तावह के स्वरूप अयोध्या मे दशरथजी के समीप भेजे जाते है।

द्वादश छान्द:— हरधनुभग के दिन रात मे प्रेमाकृष्ट श्रीरामजी और सीता के मन मे कैसी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुईं, उन्ही का इस छान्द मे विश्लेषण किया गया है। अलंकारप्रयोग के लिए भी यह छान्द प्रसिद्ध है।

त्रयोदश छान्द·— शतानन्दजी का दशरथजी की राजसभा मे प्रवेश एवं श्रीरामजी के द्वारा धनुषभग आदि का संवाद-प्रदान वर्णित है। लक्ष्मणादि अन्यान्य तीन पुत्रो की सीता की अन्यान्य तीन बहिनो से विवाह-वार्ता सुनकर दशरथजी प्रसन्न होते हैं। सीता की बहिनो के नामो की वर्णना पर नैषधीय शैलियो का प्रभाव स्पष्ट है। ३०वें से ३९वें पद तक मे विचित्र कवि-कल्पना प्रकटित है। ६३—६७ पदों मे कवि के रत्नज्ञान का मनोज्ञ परिप्रकाश हुआ है।

चतुर्दश छान्द.— इसमे राम-सीता तथा अन्यान्यो का विवाह-उत्सव वर्णित है। उत्कल के राज-परिवारो मे अनुष्ठित विवाह-उत्सवो का एक आलोक-चित्र इसमे प्रदत्त है। छान्द के प्रारम्भ मे विवाह-वेदी के सौन्दर्य की वर्णना मनोरम है। ओड़िशा के सामाजिक विधि-विधानो का मनोहर चित्र भी इसमे अंकित है।

पञ्चदश छान्द.— इस छान्द मे श्रीराम-सीता की सुहाग-सेज का वर्णन प्रदत्त है। समग्र छान्द कवि-कल्पना एव पाण्डित्य का अपूर्व समन्वय है।

षोडश छान्द:— विवाह-उत्सव के उपरान्त दशरथजी का अयोध्या प्रत्यावर्तन और मार्ग मे क्षत्रियकुलान्तक परशुरामजी का गर्वभञ्जन वर्णित है। परशुरामजी से दशरथजी के विनयपूर्ण निवेदन, परशुरामजी के कठोर उत्तर एवं वीरपुगव लक्ष्मणजी के उनके प्रति अवज्ञापूर्ण परिहास आदि का वर्णन अत्यन्त उपभोग्य है। अयोध्या लौटने के बाद श्रीरामजी के अन्यान्य कुछ कार्यकलाप इस छान्द मे वर्णित हैं।

सप्तदश छान्द:— समग्र ओडिआ साहित्य मे यह एक जनप्रिय छान्द है। इसमे राम-सीता-लक्ष्मण का वनगमन-दृश्य वर्णित है। आदर्श राजा के बारे में उपेन्द्रजी का मत और अत्याचारी राजा के विरुद्ध महामन्त्री का कथन आदि इस छान्द की विशेषताएँ हैं। २९वाँ पद कवि के पाण्डित्य की परीक्षा का एक मानदण्ड है। भुवनेश्वर की प्रसिद्ध वासन्ती गुण्डिचा यात्रा अथवा अशोकाष्टमी रथयात्रा इसमे वर्णित है। राम-सीता को हर-पार्वती के रूप मे कल्पना करके जगन्नाथधर्मसुलभ वैष्णव व शैवमत के अभेदत्व का प्रतिपादन इस वर्णना का वैशिष्ट्य है। मन्थरा तथा कैकेयी के चरित्र-चित्रण में और कपटी व्यक्तियो के मनस्तत्त्व के विश्लेषण में कवि की सिद्धहस्तता सुस्पष्ट है।

अष्टादश छान्द— श्रीरामजी के वनवास के बाद दशरथजी का परलोकगमन और भरतजी का ननिहाल से अयोध्या में लौटकर पिताजी की अन्त्येष्टिक्रिया का सम्पादन इसमें वर्णित है। फिर भरतादि श्रीरामजी को वन से वापस लाने को वन जाते हैं। इसके लिए भरत की सारी चेष्टाएँ विफल होती है। श्रीरामजी पितृसत्य के पालन

में अटल रहते हैं। भरतजी श्रीरामजी की पादुकाएँ लाकर अयोध्या के राजसिंहासन पर उनकी स्थापना तथा पूजा करते हैं और स्वयं नन्दीग्राम में निवास करते हैं। श्रीरामजी और भरतजी का कथोपकथन बडा हृदयस्पर्शी है। (३५वें से ४०वें पद तक)।

ऊनविंश छान्द.— यह छान्द "बिचारइ माळ यमकरे कवि मने" छान्द के नाम से प्रसिद्ध है। नाना प्रकार के शब्दो से यह छान्द भरपूर है। सीता-रामजी के प्रेमालाप के मिस चित्रकूट वन के प्राकृतिक दृश्य इसमे वर्णित हैं। कौवे का सीता के अधर को बिम्बफल समझकर अपनी चोच से उसे आघात करना, क्रोध से श्रीरामजी का सब कौवो की आँखे उखाड़ना एवं उनकी विनती से श्रीरामजी को उन्हे वक्रनेत्र बनाकर छोड़ देना आदि विषय इसमे वर्णित है।

विंश छान्द:— इस छान्द की विषयवस्तु अत्यल्प है। वनवास के हेतु कही सीता की मनोव्यथा की अभिव्यक्ति, तो कही श्रीरामजी के द्वारा उन्हे सान्त्वनाप्रदान इस छान्द मे वर्णित है। अत्यन्त चातुरीपूर्ण शैली से सीता-रामजी का कथोपकथन वर्णित हुआ है।

एकविंश छान्द:— राम-लक्ष्मण और सीता का चित्रकूट से गमन और दण्डकारण्य में प्रवेश, विराध-वध, सीता का फल्गुनदी मे बालुकापिण्डदान और दशरथजी का उक्त पिण्ड-ग्रहण, सीता-राम-लक्ष्मण का अत्रिमुनि के आश्रम मे प्रवेश, अनसूयाजी का सीता को अम्लान वस्त्रदान, दण्डकारण्य के तपस्वियो के मन मे श्रीरामजी के दर्शन से काम-विकार, मुनियों का प्रेमिकावेश-धारण एवं श्रीरामजी का उन्हें द्वापरयुग में गोपियो के रूप में जन्म-ग्रहणपूर्वक उनकी प्राप्ति आदि का वरदान इसमे सुन्दर ढग से वर्णित है।

द्वाविंश छान्द:— इस छान्द मे दण्डकारण्य-स्थित अगस्त्य मुनि के आश्रम की चमत्कार-वर्णना मिलती है। यहाँ अहिंसा विराजती है। अगस्त्य मुनि श्रीरामजी को रावणवध-निमित्त ब्रह्मास्त्र, धनुष और अक्षय तूणीर देते है। अनन्तर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता शोभाधार पञ्चवटी वन मे कुटीर निर्माणपूर्वक रहते है। वहाँ जटायु पक्षी ने श्रीरामजी से मित्रता स्थापित की और सीता की रखवाली करने के लिए सम्मति दी।

त्रयोविंश छान्द:— पञ्चवटी वन मे लका के राजा रावण की बहिन शूर्पणखा आ भ्रमण करती है। पहले वह रामजी का मन मुग्ध करने के लिए कपटवेश धारण करती है। श्रीरामजी लक्ष्मण को श्लेप मे एक पत्र लिख शूर्पणखा के हाथ भेज देते हैं। लक्ष्मणजी उस पत्र का मर्म समझकर शूर्पणखा के कान और नाक काट देते हैं। लज्जा पाकर शूर्पणखा लका भाग जाती है। अनन्तर खर, दूषण और त्रिशिरा राक्षस का वध होता है। छान्द के ५८ व ५९ पदो मे श्रीरामजी का लक्ष्मण के प्रति श्लेषार्थसम्वलित पत्र तात्पर्यपूर्ण है।

चतुर्विंश छान्द:— अपमानिता शूर्पणखा का रावण के समीप गमन और उसके समक्ष अपनी दुर्दशा का निवेदन इसमे वर्णित है। रावण क्रुद्ध होता है और मारीच को मायामृग बनने के लिए आदेश देता है। मायामृग के शिकार के लिए श्रीरामजी धनुर्बाण लिये घने जगल मे प्रवेश करते हैं। पीछे लक्ष्मण भी उनकी रक्षा के लिए चले जाते हैं। सन्यासी के वेश मे रावण कुटीर के सम्मुख पहुँचता है और बलात् जानकी का हरण करता है। सीता की रुलाई के सहित सारी प्रकृति रो उठती है। जटायु पथरोध करता है और रावण की तलवार से आहत होता है। रावण सीता को लिये अशोक वन मे रखता है। राज्यशासन की कूटनीति के कुछ तथ्य इसमें दिये गये हैं।

पञ्चविंश छान्दः—निहत मायामृग को लिये श्रीराम-लक्ष्मण पत्रकुटीर लौट आते है। सीता को न देखकर शोक करते हैं। बाद मे रथचक्र के चिह्न देखकर दक्षिण दिशा की ओर यात्रा करते हैं। मार्ग मे जटायु से संवाद प्राप्त करते हैं।

एक विरही प्रेमिक के मनस्तत्त्वों की दृष्टि से श्रीरामजी की करुणरसाप्लुत और प्रभावोत्पादक खेदोक्ति का वर्णन इसमें अपना विशेष स्थान रखता है।

षड्विंश छान्दः—अश्रुपूर्ण नयनो से श्रीरामजी इधर-उधर घूमते हैं। कवन्ध राक्षस का वध करते हैं। मृत्यु के पूर्व कवन्ध रावण के द्वारा सीताहरण का संवाद दे जाता है। वन मे गोपाल लोग राम के क्षुधानिवारणार्थ दूध नही देते हैं। श्रीरामजी उन्हे शाप देते है। गोपाल लोगों के क्षमा-प्रार्थना करने पर श्रीरामजी उन्हें शापमुक्त कर देते हैं।

अनन्तर दोनो भाई शरभग मुनि के आश्रम मे पहुँचते हैं। शवरी उन्हे चखे हुए आम खिलाती है।

प्रसंगानुक्रम मे इसमे पम्पासरोवर की वर्णना की गयी है। श्रीरामजी चक्रवाकयुगल से सीता का सवाद पूछते है। उनके अभिमान-भरे मन्तव्य से लक्ष्मणजी क्रुद्ध होते हैं एवं उन्हे अभिशाप देते हैं। दम्पती की विनती से श्रीरामजी अभिशाप को सन्तुलित कर देते हैं— चक्रवाकदम्पती का रात मे विछोह और दिन मे मिलन होगा।

इस छान्द मे दुःख के अनुरूप छन्दविन्यास किया गया है, जिससे आवृत्ति के काल मे अन्तर मे करुण रस का सचार होता है।

सप्तविंश छान्दः—सीताविरही श्रीरामजी लक्ष्मणजी के सहित घूमते हैं। ऋष्यमूक पर्वत के पास ब्राह्मणवेशधारी हनुमान से उनको भेंट होती है। श्रीरामजी उनसे अपने बचपन से लेकर सीताहरण तक की सारी घटनाएँ कहते है। हनुमानजी अपना रूप धारण करते हैं। सुग्रीव से श्रीरामजी की भेट होती है। श्रीरामजी सुग्रीव से अपनी बीती कहते हैं और उनसे वालि-सुग्रीव का जन्मवृत्तान्त सुनते हैं। सुग्रीव श्रीरामजी से बालि का बल तथा दुन्दुभिराक्षस-वध प्रसग कहते हैं। श्रीरामजी वालि-सुग्रीव की शत्रुता से अवगत होते है। अनन्तर सुग्रीवजी श्रीरामजी को सीता के आभूषण देते हैं। आभूषण पाकर श्रीराम की व्याकुलता बढ जाती है।

अष्टाविंश छान्दः—सुग्रीव से यह कहकर कि हम दोनों की समान दशा है, श्रीरामजी उनसे मित्रता-स्थापन करते हैं। श्रीरामजी के द्वारा दुन्दुभि की हड्डियो के फेके जाने और सप्तशालो के बेधे जाने से सुग्रीवजी उनकी वीरता के बारे मे निःसशय होते हैं। बालि के सहित सुग्रीव के प्रथम युद्ध मे सुग्रीव पराजित और भीत होते हैं। परन्तु राम की सान्त्वना तथा उत्साह से सुग्रीव बालि से फिर लड़ते हैं। श्रीरामजी के शर से बालि-वध होता है। बालि की खेदोक्ति से प्रभु लज्जित होते हैं। "मैं रावण का विनाश कर सीता का उद्धार आसानी से कर सकता।" —बालि की यह उक्ति सुनकर श्रीरामजी विशल्यकरिणी नामक दवा के प्रयोग से बालि को जीवन-दान का प्रस्ताव देते हैं। परन्तु बालि वह प्रस्ताव प्रत्याख्यान करता है। बालि इन्द्रदत्त रत्नमाला सुग्रीव के गले मे पहनाकर उन्हे राज्यदान और अंगद का समर्पण कर देता है। तारा दुःख प्रकाश करती हुई श्रीराम को शाप देती है। श्रीरामजी सुग्रीव को तारा का अर्पण करते हैं। बरसात के बाद रावण से युद्ध करने को प्रभु तय करते हैं और माल्यवन्त पर्वत पर वास कर बरसात बिताना चाहते हैं। सुग्रीवजी किष्किन्धा पर राज्य करते है।

ऊनत्रिंश छान्द:—यह छान्द विरोधाभास मे रचित है। वर्षाऋतु मे जल, स्थल तथा आकाश का सौन्दर्य एवं श्रीरामजी का विरह इसमें वर्णित है।

त्रिंश छान्द:—शरतऋतु मे प्राकृतिक सौन्दर्य तथा श्रीरामजी का विरह इसमें वर्णित है।

प्रत्येक पाद के आद्य तथा प्रान्त में 'बर' अनुप्रास रखकर कविसम्राट् ने इस विशिष्ट अलंकारपूर्ण छान्द की रचना की है।

एकत्रिंश छान्द:—बगले से सीता का पता समझकर श्रीरामचन्द्रजी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है और उसे यह वरदान देते हैं कि उसे वर्षा मे अपने घोसले में आहार मिले। अनन्तर मुर्गे से सीतासंवाद पाकर प्रभु उसे सुवर्णमुकुट दान करते है। अनन्तर अगस्त्य तथा मार्कण्डेय मुनिद्वय प्रभु से मिलते है और उन्हें सान्त्वना देते है। अगस्त्य कहते हैं कि जय-विजय शाप पाकर रावण और कुम्भकर्ण के रूपो मे पैदा हुए हैं। श्रीरामजी के हाथों उनका मरण अवश्यम्भावी है। सुतरां जान-बूझकर रावण ने सीताहरण किया है। श्रीरामजी की विरह-व्याकुलता देखकर मार्कण्डेय को उनके विष्णुत्व मे सशय होता है। वे उन्हे मदन समझते हैं। अनन्तर हेमन्त ऋतु मे श्रीरामजी की विरह-वेदना वर्णित है। रावण-वध के लिए श्रीरामजी प्रतिज्ञा करते है।

द्वात्रिंश छान्द:—श्रीरामजी के आदेश से लक्ष्मणजी किष्किन्धा चलते हैं और सुग्रीव को अपने आने की खबर भेजते है। सुग्रीवजी नही पहचान पाते। लक्ष्मणजी शर मारकर सुग्रीव-तारा के प्रमोद-हिंडोले के खम्भे को बेधना चाहते हैं, परन्तु तारा के अनुरोध से शान्त होते हैं। वानर-सैन्य लंका के लिए प्रस्थान करते है। अंगद ससैन्य रामजी के समीप जाते हैं। श्रीरामजी सेनापतियो को देख उन्हे बेल के वन मे रहने के लिए स्थान देते है।

त्रयस्त्रिंश छान्द—चारों दिशाओ मे दूतों के प्रेरण के बाद श्रीरामजी विलाप करते हैं। सीता की पहचान के लिए दूतो को सकेत देते है और हनुमानजी को अपनी अँगूठी देते हैं। हनुमानजी के जरिए सीता को "रावण-वध अवश्य करूँगा", यह आशा तथा आश्वासना का सन्देश भेजते है। शीतऋतु धरती मे प्रवेश करती है। स्वयप्रभानाम्नी तपस्विनी से दूतो की भेट होती है। संपाति वानरो को खाने की इच्छा करता है। अंगद जटायु का समाचार कहता है। सपाति का पुत्र वानरो को लका जाने का मार्ग दिखा देता है।

चतुस्त्रिंश छान्द:—शिशिर ऋतु के बाद वसन्त ऋतु आती है। हनुमानजी लंका जाते हैं। मार्ग पर राहु-माता सिंहिका हनुमानजी को निगल लेती है और हनुमानजी उसका पेट फाडकर निकल जाते है। फिर नागमाता कद्रु उनका मार्ग रोकती है परन्तु देवताओ की विनती से उन्हे छोड़ देती है। हनुमानजी लकदेवी से मिलते हैं, और उसे एक थप्पड़ लगा देते है। लंका के ऐश्वर्य और वहाँ की नारियो के सौन्दर्य की वर्णना की गई है। हनुमानजी देखते है कि रावण के भवन की हर एक दीवाल पर यह लिखा हुआ है कि सीताहरण से रावण का मरण अवश्यम्भावी है। भ्रमवश हनुमानजी रावण की एक पत्नी को सीता समझते है। अनन्तर सीता से हनुमानजी की भेंट होती है।

पञ्चत्रिंश छान्द:—हनुमानजी भ्रमर का रूप धारण करते हैं। सीता के प्रति रावण चाटूक्ति प्रकाश करता है। परन्तु सीताजी उसका प्रत्याख्यान करती है। शाप के भय से अधिक आगे न बढ़कर रावण वहाँ से भागता है। राक्षसियाँ सीता को भय दिखाती है। परन्तु सीताजी अपनी सतीत्व-निष्ठा दिखाती हुई रावण का अनादर करती हैं। 'राम' नाम जपते हुए हनुमानजी सुवर्ण-हरिण का विषय कहते हैं और स्वरूपधारणपूर्वक उन्हे श्रीराम की अँगूठी देते हैं। कौवे का तथा अन्यान्य गुप्तप्रसंग कहने से सीता को हनुमानजी पर विश्वास होता है। हनुमानजी स्वयं सीता को ले चलने को प्रस्ताव करते है, परन्तु सीताजी वह इन्कार करती है। सीताजी की माथामणि लेकर हनुमानजी विदाय लेते है।

षट्त्रिंश छान्द:—हनुमानजी लका मे ऊधम मचाते है। रावण के पास यह खबर पहुँचती है। ब्रह्माजी से रावण को खबर मिलती है कि वालि का वध हो चुका है। हनुमानजी बहुत राक्षसो का वध करते हैं। युद्ध में अक्षयकुमार मारा जाता है। इन्द्रजित हनुमान की पूँछ में अग्निसयोग करता है। हनुमानजी लंकादहन करते है। ब्रह्माजी के आदेश से हनुमानजी अपने कपाल से जात ब्रह्माग्नि को बुझा देते है। विश्वकर्माजी नवीन लंकानगरी का निर्माण करते है। हनुमानजी सुवेल पर्वत पर चलते है।

सप्तत्रिंश छान्द:—सुबह हनुमानजी सुवेल पर्वत पर से चल देते है और शाम को विन्ध्य पर्वत पर पहुँचते है। हनुमान प्रमुख दूत किष्किन्ध्यास्थित मधुवन का लुण्ठन करते है। यह खबर दधिमुख से सुग्रीव को मिलती है। सुग्रीवजी उनसे मिलने को मधुवन चल पडते है।

अष्टत्रिंश छान्द:—हनुमान प्रमुख दक्षिण दिशा वाले दूतो से सीताजी का पता पाकर सुग्रीवजी वह खबर श्रीराम को देते है। अनन्तर हनुमानजी विस्तृत ढंग से श्रीरामजी को सीताजी का प्रसग सुनाते हैं। सीता का स्मरण करते हुए श्रीरामजी तन्मय हो पड़ते हैं। वे इसकी सूचना देते है कि मै रावण का वध कर सीता का उद्धार अवश्य करूंगा।

ऊनचत्वारिंश छान्द.—श्रीरामजी लका अभियान के लिए आयोजन करते हैं। वानर तथा भल्लुक सेनाओ के जुलूस सब समुद्र के किनारे पहुँचते हैं। दूतो के मुखो से रावण यह सवाद पाता है और अभिमान से फूल उठता है। विभीषणजी के सुपरामर्श से रावण क्रोध करता है और महीरावण के द्वारा उन्हे लंका से भगा देता है। विभीषणजी आकाशमार्ग मे चलते हुए सुग्रीवजी के समीप जा पहुँचते हैं और श्रीरामजी को प्रणाम करते है। श्रीरामजी विभीषण के मस्तक पर साडी बांधकर उन्हे लका के राजा बना देते है और उन्हे अमर होने का वर प्रदान करते है।

चत्वारिंश छान्द.—श्री रामचन्द्रजी लंकाभियान के लिए समुद्र पर सेतुबन्ध-निर्माण आरम्भ कराते हैं। रावण की ओर से शुक व सारण, दो दूत आकर अगद को पितृहन्ता राम का पक्ष त्याग करने के लिए कुमन्त्रणा देते हैं और विभीषणजी को पितृप्रतिम ज्येष्ठ भ्राता के पक्ष में आ जाने के लिए शिक्षा देते है। प्राणभय से लौटकर शुक-सारण रावण से विभीषणजी का यह उत्तर कि ज्येष्ठभ्राता रावण पहले सीता का प्रत्यर्पण कर दें, कहते हैं। अनन्तर पर्वतो-पहाडों के समुद्र पर उतराने के लिए श्रीरामजी वरुणजी से विनती करते है। परन्तु वरुणजी के न सुनने पर क्रोध से धनुष उठाते है। वरुण भय से श्रीराम की स्तुति करते हैं और यह सलाह देते है कि नलजी के छूने से सारे

पर्वत समुद्र पर उतराएँगे। एक गिलहरी सेतु बाँधने में हाथ बँटाती है। सेतु पर समुद्र पार कर श्रीरामजी वानरभल्लुक-सैन्यों के सहित सुवेल पर्वत पर पहुँचते हैं और वहाँ से लंका देखते हैं। त्रिजटा राक्षसी सीताजी को श्रीरामजी के लंका-आगमन की वार्ता देती है।

एकचत्वारिंश छान्द:—रावण युद्ध की तैयारियाँ करता है। शुक-सारण बन्दरो के वेश में श्रीरामजी की वानर-सेना में गुप्तचरो के रूप में प्रवेश करते हैं और विभीषण-कर्तृक बन्दी किये जाते हैं। रामजी उन दोनो को भविष्य मे मन्त्री बना देने के लिए वचन देते हैं और उन्हे छोड़ देते हैं। रावण अपनी चन्द्रशाला से श्रीरामजी के सैन्यो को देखता है और अपने सैन्यों का विभाजन करता है। उत्तर द्वार पर वह खुद रहता है। श्रीरामजी उत्तर द्वार पर रहकर अपने सैन्यो का विभाजन करते हैं। फिर रावण अपने पुष्पक विमान में चढ़कर आकाश से श्रीरामजी की सारी सेना देखता है। विभीषणजी श्रीरामजी को वह दिखाते हैं। श्रीरामजी के शरप्रयोग से रावण के श्वेत छत्र और चामर कट नीचे गिर पड़ते हैं। रावण की सभा में अंगद दौत्य करता है। रावण सीता को श्रीराम-लक्ष्मण के कटे मायामस्तक दिखाता है। प्रचण्ड युद्ध चलता है।

द्विचत्वारिंश छान्द:—रामचन्द्रजी हनुमानजी के हाथ रावण को ब्रह्मशर और आज्ञापत्र समझौते के लिए भेजते हैं। परन्तु रावण युद्ध के लिए चुनौती देता है। दोनो पक्षो के सैन्यो में युद्ध होता है। इन्द्रजित लक्ष्मण के प्रति शक्ति प्रयोग करता है। बेहोश लक्ष्मणजी को हनुमानजी सुबेल पर्वत पर ले चलते हैं। मार्ग में लक्ष्मणजी होश मे आते हैं। यह घटना जानकर श्रीरामजी का क्रोध बढ जाता है। इन्द्रजित भी भयंकर प्रतिज्ञा करता है।

त्रिचत्वारिंश छान्द:—इन्द्रजित निकुम्भिला वटवृक्ष के नीचे होम करता है। होमकुण्ड से 'देवदलन' नामक शून्यगामी रथ प्राप्त करता है। उसमें रहकर वह शून्य से भयंकर युद्ध करता है। उसके नागपाश-शर के प्रयोग से श्रीराम-लक्ष्मणजी बँधकर कष्ट पाते हैं। रावण के आदेश से त्रिजटा पुष्पक विमान में सीता को बैठाये वह दृश्य दिखाती है। सीताजी विलाप करती है। विभीषणजी के परामर्शानुसार श्रीरामजी गरुड़ का ध्यान करते हैं। गरुडजी के आते ही नागफाँस खुल जाता है और नाग पाताल चला जाता है। गरुड़जी प्रभु की द्वापरयुग मे कृष्णावतार में कालिय सर्पदंशन से पुन: उद्धार-सेवा करने की सूचना देकर चले जाते हैं। हनुमानजी मल्लयुद्ध में रावण के सेनापति अकंपन का वध कर श्रीरामजी को कन्धो पर बैठाये ले चलते हैं। फिर धूम्राक्ष का वध करते हैं। सुग्रीव वज्रदंष्ट्र का वध करते हैं। लंका की रमणियाँ श्रीरामजी को कन्दर्प समझती है और आनन्द से आरती उतारती हैं। रावण के सेनापति रणांगन से भाग जाते हैं। रावण उन्हें गाली देता है।

चतुश्चत्वारिंश छान्द:—कुम्भकर्ण नीद से जगकर पहले रावण की निन्दा करता है। फिर शराब आदि पीकर युद्धभूमि में चलता है। वह हनुमान व अंगद को बेहोश कर देता है और सुग्रीव को लिये भागता है। रामचन्द्रजी कुम्भकर्ण का शिरश्छेदन करते हैं। रावण रो उठता है। अनन्तर राक्षस-सेनापति महापार्श्व प्रतिज्ञा करता हुआ युद्धभूमि मे चलता है। नरान्तक, देवान्तक व त्रिशिरा एव महोदर आदि राक्षस-सेनापतियों का क्रमश: अंगद, हनुमान और नीलजीकर्तृक वध किया जाता है। रावण फिर रोता है। इन्द्रजित फिर निकुम्भिला वटवृक्ष के नीचे होम करता है और 'देवदलन' रथ पाकर युद्धभूमि में चलता है। युद्ध में लक्ष्मणजी बलिमुख, दधिमुख व कालीमुख आदि वानर वीरो

को साथ लिये युद्ध करते हैं और राक्षस वीरों के प्राणों का विनाश करते हैं। इन्द्रजित के ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से राम-लक्ष्मणजी बेहोश होकर टल पडते हैं। हनुमानजी गन्धमार्दन पर्वत वहाँ लाते हैं और दवाइयाँ सूंघकर सब चेतना पाते हैं। इन्द्रजित से विजयवार्ता सुन रावण आश्वस्त होता है।

पञ्चचत्वारिंश छान्दः— हनुमानजी गन्धमार्दन पर्वत यथास्थान रख आते हैं। इन्द्रजित का वध करने के लिए सीता लक्ष्मण को वरदान देती हैं। फिर युद्ध होता है। वानर व भल्लुक लोग लंका में अग्निसंयोग करते हैं। लंका की नारियाँ भयभीत होती हैं। सुग्रीवजी कुम्भ व निकुम्भ राक्षस का वध करते हैं। श्रीरामजी खरपुत्र मकराक्ष का वध करते है। विद्युज्जिह्व अपनी वहिन सुकान्ति को मायासीता बनाकर विमान से युद्धभूमि में लाता है। इन्द्रजित अपनी तलवार से मायासीता के दो खण्ड कर देता है। हनुमानजी और श्रीरामजी यह देख शोक करते हैं। अन्त में श्रीरामजी सारा रहस्य समझ लेते हैं और सैनिक लोग मायासीता का शव समुद्र में फेंक देते हैं। रावण हताश होता है।

षट्चत्वारिंश छान्दः— श्रीरामजी सीतासहित अपने तिलक का स्वप्न देखते हैं। लक्ष्मणजी भी इन्द्रजित का विनाश-सूचक स्वप्न देखते हैं। वे जगकर इन्द्रजित-वध के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। विभीषणजी के परामर्शानुसार वे इन्द्रजित सहित पुनः उसके होम करने के पहले ही युद्ध करते हैं। इन्द्रजित युद्ध में मारा जाता है। रावण व्यथित तथा क्रुद्ध होकर सीता के समीप जाता है और उनका वध करने के लिए उद्यत होता है। त्रिजटा रावण को वारण करती है। रावण रात में शिवपूजा करके सुबह युद्ध के लिए निकलता है। श्रीरामजी रावण के अनेक वीर सेनापतियो का वध करते हैं। सुग्रीवजी राक्षस सेनापति विरूपाक्ष का वध करते हैं। रावण यह देख सुग्रीव को बालि के तुल्य वीर समझता है और उसके सहित युद्ध करता है।

सप्तचत्वारिंश छान्दः— श्रीरामजी और रावण के बीच भयकर युद्ध होता है। रावणकर्तृक लक्ष्मण में शक्तिभेद होता है और इससे श्रीरामजी विलाप करते हैं। अनन्तर सुषेण वैद्य के परामर्शानुसार हनुमानजी गन्धमार्दन पर्वतस्थित विशल्यकरणी दवा लाने चलते हैं। रावण की सलाह से कालनेमि राक्षस तपस्वी के वेश में जा हनुमानजी के मार्ग पर रोडे अटकाता है। हनुमानजी कुम्भीररूपिणी अप्सरा और कालनेमि का वध कर गन्धमार्दन पर्वत पर पहुँचते हैं। अपने मस्तक पर पर्वतशृंग ले चलते वक्त भरतजी के गोले से हनुमानजी आहत हो भूतल पर गिर पड़ते हैं। होश में आकर वे भरतजी से सारी घटनाएं कहते हैं। भरतजी समवेदना प्रकाश करते हैं। हनुमानजी से लायी हुई दवा से लक्ष्मणजी आरोग्य लाभ करते हैं। हनुमानजी जा पर्वतशृंग यथास्थान रख आते हैं और मार्ग में रावणप्रेरित सैनिको का वध कर डालते हैं। सुबह फिर युद्ध होता है। श्रीरामजी रावण की इन्दुमतीनाम्नी पत्नी के पुत्र स्थूलजघ का वध करते हैं। रावण शोक करता है।

अष्टचत्वारिंश छान्दः— अन्तःपुर में मन्दोदरी, इन्दुमती आदि रानियाँ सीता-प्रत्यर्पण के निमित्त रावण को परामर्श देती हैं। रावण वह परामर्श तो नही मानता। परन्तु उसका ज्ञानोदय होने से वह अपने पूर्वजन्म-वृत्तान्त पत्नियो से कह सुनाता है। जय-विजय नामक विष्णुजी के दो द्वारपालो के रूप मे वैकुण्ठ में सनकादिमुनिकर्तृक और फिर लक्ष्मीकर्तृक मर्त्य मे राक्षसो के रूप धारणकर जन्म लेने के लिए उनकी शाप-प्राप्ति, इस जन्म मे रावण-कुम्भकर्ण के रूप में दोनों का जन्म, पूर्वकाल में वेदमती पर

रावण की धर्षण-चेष्टा से वेदमती का उसे शाप-प्रदान आदि प्रसंग रावण रानियों से कहता है। सीता ही की वजह से राम रूपी विष्णु के हाथों उसकी मृत्यु और वैकुण्ठ-प्रत्यागमन सुनिश्चित है —वह यही जानता है और इसकी कामना भी करता है। सीता को वापस दे देने से उसकी कामना की पूर्ति नहीं होगी। सुतरां श्रीराम से लड़कर मरने को वह प्रस्तुत होता है।

ऊनपञ्चाशत् छान्दः— सुबह बहुत सैन्यों को लिये रावण रणभूमि में जा पहुँचता है। श्रीरामजी भी युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। रावण मायायुद्ध करता है। श्रीरामजी वज्रपञ्जर कवच धारण करते हैं। लक्ष्मणजी महापार्श्व नामक राक्षस का और महेन्द्र महीरावण नामक राक्षस का वध करता है। हनुमानजी रावण पर आघात करते हैं। रावण भयंकर युद्ध करता है। इन्द्रजी श्रीराम के लिए सारथि मातलि सहित नन्दिघोष रथ भेजते हैं। श्रीरामजी गरुड़ध्वज पताका से सुशोभित नन्दिघोष रथ में बैठते हैं।

पञ्चाशत् छान्दः— श्रीरामजी को रथ में देख रावण के मन में भय तथा गर्व होता है। श्रीरामजी रथ में विराट् रूप धारण करते हैं। रावण के सिर कटकर भी लग जाते हैं। मातलि के परामर्श से श्रीरामजी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हैं और रावण का वध करते हैं। मातलि के परामर्शानुसार श्रीरामजी अपना (राम) नाम जपकर ब्रह्महत्या पाप से मुक्ति लाभ करते हैं। मातलि रथ लिये स्वर्गपुर लौट जाते हैं। रावण की रानियाँ शोकाकुल होती हैं। विभीषणजी के सान्त्वनादान से रानियाँ प्रासाद में जाती हैं। रावण का शवसंस्कारपूर्वक विभीषणजी प्रेतकर्म करते हैं। विजय (कुम्भकर्ण) के सहित जय (रावण) जा वैकुण्ठ में मिलता है और दोनों विष्णु के प्रति भक्तिभाव प्रकट करते हैं। श्रीरामजी विभीषण का तिलक करते हैं। मन्दोदरी विभीषण की गोद में बैठती है। श्रीरामजी सीता को लाने के लिए कहते हैं। मन्दोदरी आदि रानियाँ सीता का सुवेश-विधान करती हैं।

एकपञ्चाशत् छान्दः— श्रीरामजी के आदेश से सीताजी कष्टसहिष्णु सैन्यों के दर्शनार्थ पैदल आती हैं। फिर श्रीरामजी के परामर्शानुसार अग्नि-परीक्षा देकर निर्मल तथा पवित्र निकलती हैं। शिव, वरुण, इन्द्र, यम आदि आकर श्रीरामजी की स्तुति करते हैं। दशरथजी स्वर्ग से आकर सीता को स्वीकार करने के लिए श्रीरामजी को आदेश देते हैं। देवताओं की अमृतवृष्टि से श्रीरामजी के मृत सैन्य जीवनलाभ करते हैं। विभीषणजी श्रीरामजी को पुष्पक विमान देते हैं। श्रीरामजी सीता, लक्ष्मण, हनुमानादि सहित अयोध्या लौटते हैं। मार्ग में भरद्वाजजी के आश्रम में विश्राम करते हैं। मायाकृत महाभुजनामक राक्षसकर्तृक हनुमानजी बन्दी होते हैं और 'राम' नाम-जप से मुक्त होते हैं। हनुमानजी श्रीराम की आगमन-वार्ता अयोध्या में पहले दे आते हैं। श्रीरामजी का प्रत्यागमन श्री जगन्नाथजी की गुण्डिचा व वाहुडा यात्रा के समान है। श्रीरामजी सदलबल अयोध्या में पहुँचते हैं और सबका सम्मान करते हैं। पुष्या-नक्षत्रयोग में श्रीरामजी का तिलक करने के लिए वशिष्ठजी प्रस्ताव देते हैं।

द्विपञ्चाशत् छान्दः— गुरुपुष्या योग में सीतासहित श्री रामचन्द्रजी का तिलक होता है। अभिषेकोत्सव वर्णित है। श्री रामचन्द्रजी दान देते हैं और चतुर्वर्ग पूर्ण करते हैं। सीताजी अपने हाथों से खाद्य पकाकर सबको खिलाती हैं। श्रीरामजी के तिलक-वर्णन से यह मनोरम काव्य समाप्त होता है। सीता के विसर्जन और वाल्मीकि-आश्रम में लव-कुश के जन्म आदि का वर्णन करुणरसात्मक है। इनके वर्णन में रसभंग की आशंका करते हुए भञ्जजी ऐसे वर्णन से निवृत्त होते हैं।

अनन्तर कविसम्राट्जी अपने वंश का संक्षिप्त परिचय देकर काव्य का उपसंहार करते हैं।

'बैदेहीश-बिळास' की कथावस्तु के संग्रह मे भञ्जजी पर पूर्वाचार्यो का प्रभाव

भञ्जजीकृत तीन रामकाव्यो ('बैदेहीश-बिळास', 'अवनारसतरंग' और 'रामलीळामृत') में बैदेहीश-बिळास' महाकाव्य कवि की मौलिक प्रतिभा तथा सरस प्रकाशनभंगिमा का प्रकृष्ट प्रमाण देता है। कवि ने इसमें अपने आराध्य देवता सत्यसन्ध दशरथतनय श्री रामचन्द्रजी के जन्मवृत्तान्त से लेकर रावण-वध के उपरान्त अयोध्या-प्रत्यावर्तनपूर्वक अभिषेकोत्सव तक रामायण के वृत्तान्तो की वर्णना की है। सीता-विसर्जन, वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश के जन्म आदि शेष प्रसगो की वर्णना, इस भय से कि कही रसभग न हो जाय, कवि ने नही की है। ५२वें अर्थात् अन्तिम छान्द मे कवि ने उनकी सूचना मात्र दी है। कथावस्तु में कवि के वैशिष्ट्य की आलोचना करने से पहले हम यह जान लें कि किन-किन पूर्वाचार्यो के द्वारा प्रभावित होकर कवि ने इतने बड़े काव्य-कोणार्क का निर्माण किया था। उन्होने 'बैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के चतुर्थ पद में स्वीकारोक्ति के मिस यह अभिव्यक्त किया है कि मैंने वाल्मीकिकृत 'रामायण', व्यासकृत 'अध्यात्म रामायण', हनुमत्कृत 'महानाटक', कालिदासकृत 'रघुवशम्', भोजराजकृत 'चम्पू रामायण', ओड़िआ कवि कृपासिद्धा बलरामदासकृत 'जगमोहन रामायण' आदि का अध्ययन किया है और इसलिए 'बैदेहीश-बिळास' की रचना के निमित्त चिन्ता त्यागी।

"वाल्मीकि व्यास कवि यहिँरे महाकाव्य के पुराण करे, महानाटक बातसुतरे हेले रचिता ये; बिहिले काव्य ये काळिदासे चम्पू रचना भोजनरेशे कृपासिद्धा ए गीत प्रकाशे छाड़िलि चिन्ता। ये।" —इत्यादि।

वाल्मीकि-रामायण, कृपासिद्धा बलरामदासकृत जगमोहन-रामायण और बैदेहीश-बिळास

ग्रन्थारम्भ:—मूल वाल्मीकि-रामायण में श्रीरामजी के माहात्म्य की सूचना दी गयी है। वाल्मीकिजी नारदजी से विनयपूर्वक पूछते हैं—

"कोऽन्वस्मिन् साम्प्रत लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत:॥"

"हे देवर्षे! सम्प्रति इस संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है, जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और दृढव्रत है?"

देवर्षि नारदजी उत्तर देते है—

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनै: श्रुत:।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥"

"हे मुने! आपने जिन गुणो का नाम लिया है, वे इस ससार मे दुर्लभ तो है; पर मैं याद कर एक आदर्श पुरुष का परिचय दे रहा हूँ— इक्ष्वाकुवश मे सभूत राम नामक एक विख्यात आदर्श पुरुष है, जो महावीर्य, कीर्तिमान, धैर्यवान् तथा जितेन्द्रिय है।"

श्रीरामजी के परिचय-प्रदान में नारदजी ने उन्हें एक आदर्श मानव तथा राजा के रूप मे चित्रित किया है। उन्हे पराक्रम मे 'विष्णु' तो कहा ही है, किन्तु दृढ़ता से यह अभिव्यक्त नही किया है कि श्रीरामजी स्वयं विष्णुजी ही है। परन्तु बलराम तथा उपेन्द्र ने दृढ़ता से यह बताया है कि वे विष्णुजी ही हैं। 'वाल्मीकि रामायण' की रचना की भूमिका में वाल्मीकि ने अपने नारद-वर्णित विषयवस्तु के ग्रहण, मनोहर श्लोकरीति में ग्रन्थरचना करने के लिए ब्रह्माजी के द्वारा मुनि को दिव्यदृष्टिज्ञान एवं मुनि की रामायण ग्रन्थरचना आदि विषयो की अवतारणा की है। तदनन्तर वाल्मीकि ने श्रीरामजी के वंश, देश, पिता-माता आदि का परिचय अपने ग्रन्थ के प्रारम्भिक अश मे दिया है। यह प्रसंग कि रावण के अत्याचार से बचने के लिए ब्रह्मासमेत देवताओ की विष्णुजी से विनती तथा उन लोगो की जगतहित-कामनामूलक प्रार्थना से प्रीत होकर विष्णु भगवान ने रामावतार ग्रहण करने के लिए उन्हे वचन दिया था, वाल्मीकि ने अपनी रामायण के बालकाण्ड के १५वें सर्ग मे वर्णित किया है।

बलरामदासजी ने स्वकृत 'जगमोहन रामायण' में भी ब्रह्मासमेत देवताओ की विनती, दशरथजी के पुत्र के रूप मे जन्मकर नानाकष्टसहन-पूर्वक रावण-वध करने के लिए उनके विष्णुजी को परामर्श एव विष्णुजी के उन्हे इसके लिए सम्मतिप्रदान आदि विषयो का उल्लेख किया है। (आद्यकाण्ड)।

अपनी रामायण के उत्तरकाण्ड मे वाल्मीकि ने रावणादि राक्षसो के जन्मादि प्रसंगो का इस प्रकार उल्लेख किया है। श्रीरामजी के प्रश्न पर अगस्त्य मुनि उन्हे उत्तर देते हैं—

"पहले पद्मयोनि ब्रह्मा ने जलसृष्टि और उसके बाद जलजन्तुओ की सृष्टि की। अनन्तर उन्होने राक्षसो तथा यक्षो की सृष्टि की। राक्षसो मे हेति व प्रहेति, दो भाई उत्पन्न हुए। प्रहेति धर्मपरायण था और इसलिए तपस्या करने के लिए वह वन चला गया। परन्तु हेति काल की महाभयंकरी बहिन भया से विवाह कर गृहस्थी करने लगा। उस दंपती से विद्युत्केश नामक राक्षस का जन्म हुआ। विद्युत्केश और उसकी पत्नी सालकटंकटा से सुकेश नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुकेश और उसकी पत्नी देववती से माल्यवान, सुमाली व माली नामक तीन पुत्र पैदा हुए। इन तीनो ने घोर तपस्या से ब्रह्माजी को प्रसन्न कर अजेय तथा अमर होने का वर लाभ किया। तीनो त्रिकूट पर्वत पर विश्वकर्मा के द्वारा निर्दिष्ट तथा निर्मित सुवर्णपुरी लका में वास करने लगे। माल्यवान और उसकी पत्नी सुन्दरी से वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त नामक सात पुत्र; सुमाली और उसकी पत्नी केतुमती से प्रहस्त, अकम्पन, विकट, धूम्राक्ष, महाबल आदि नामो के पुत्र एव कुम्भीनसी, कैकसी, राका व पुष्पोत्कटा नाम्नी कन्याएं और माली व उसकी पत्नी वसुधा से अनल, अनिल, हर, संपाति (विभीषण के मन्त्री) आदि पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनो देवलोक, यक्षलोक एवं नागलोक और मुनियो के यज्ञो मे ऊधम मचाने लगे। देव व ऋषि लोगो ने शिवजी से विनती की। शिवजी के परामर्शानुसार उन लोगो ने विष्णुजी की स्तुति की। विष्णुजी ने माली का वध किया और माल्यवान को लका से भगा दिया। सुमाली भय से भागकर पाताल मे जा छिपा। अब लंकानगरी राक्षसशून्य हो गयी।

सत्ययुग मे ब्रह्माजी के पुलस्त्य नामक एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र पैदा हुए थे। वे तृणविन्दु ऋषि के आश्रम में तपस्या कर रहे थे। पुलस्त्य ऋषि के द्वारा उच्चारित वेद-ध्वनि से आकृष्ट होकर तृणविन्दु की कन्या वहाँ आयी और उनके दर्शन करते ही महामुनि

के क्रोध से गर्भवती हो गयी। यह जानकर तृणविन्दु ने पुलस्त्य से अपनी सेविका के रूप में उस कन्या को ग्रहण करने के लिए विनती की। पुलस्त्य ने इसके लिए अपनी सम्मति प्रकट की और उस कन्या को अपने समान एक पुत्र-दान दिया, जिसका नाम पौलस्त्य (विश्रवा) पड़ा। विश्रवाजी पुलस्त्य के समान सत्यवादी, चरित्रवान्, संयत और वेदाध्ययनरत तपस्वी थे। मुनि भरद्वाजजी ने उनके चरित्र से प्रीत होकर उन्हें अपनी देववर्णिनीनाम्नी कन्या को पत्नी के रूप में अर्पण किया। देववर्णिनी के गर्भ से वैश्रवण' (कुबेर) की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के वरदान से उन्हें पुष्पक विमान मिला एवं 'चतुर्थ लोकपाल' तथा 'धनाध्यक्ष' आदि पदवियाँ भी मिलीं। वैश्रवणजी ने अपने पिता विश्रवाजी से वासस्थान माँगा, तो पिताजी ने उनसे कहा, 'दक्षिण समुद्र के किनारे पर त्रिकूट पर्वत पर विश्वकर्मा द्वारा राक्षसों के लिए निर्मित सुवर्ण लंकानगरी है। उसके फाटक भी सुवर्णनिर्मित और वैदूर्यमणियों के वन्दनवारों से सुशोभित हैं। पहले वहाँ राक्षस लोग वास करते थे। विष्णुजी के भय से सब वहाँ से भाग गये हैं। तुम जाकर वहीं सुख से वास करो।'

पिताजी के आदेशानुसार कुबेरजी अमरावती-सदृश सुवर्णनिर्मित लंकानगरी में जा रहने लगे। विश्रवाजी भी नगरी के निकटवर्त्ती महारण्य में आश्रम बनाकर वहीं निवास तथा तप करने लगे। पाताल में छिपे सुमाली ने वंशवृद्धि की चिन्ता की। वह अपनी सुन्दरी कन्या कैकसी को ले विश्रवा ऋषि के यहाँ पहुँचा और उन्हें अपनी कन्या को पत्नी के रूप में समर्पित किया। मुनि ने उसे ग्रहण कर कुसमय पर उससे प्रेम किया। फलस्वरूप राक्षसी के गर्भ से दस मुखों और बीस भुजाओं वाले महाबली रावण, कुम्भसमान कानों वाले कुम्भकर्ण, शान्त स्वभाव वाले धर्मात्मा विभीषण नामक तीन पुत्रों और विकृतवदना तथा सूपों के समान नखों वाली एक कन्या शूर्पणखा ने जन्मलाभ किया। माता कैकसी की कुमन्त्रणा से रावण कुबेर के ऐश्वर्य से ईर्ष्यान्वित हुआ। उसने कुबेर के समान या उससे अधिक पराक्रमी एवं ऐश्वर्यशाली बनने तथा अमर रहने के लिए ब्रह्मा को कठोर तपस्या से प्रसन्न किया। ब्रह्माजी से वर पाकर वह जगज्जय करने निकला।"

उपेन्द्र भञ्ज ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ अर्थात् प्रथम छान्द में विष्णुजी तथा सूर्यदेव का श्लेष मे पाण्डित्यपूर्ण मंगलाचरण कर रावणादि का जन्मप्रसंग बहुत ही संक्षिप्त रूप से बताया है। पूर्वज राक्षस विद्युत्केश के वंश में, सुमाली, माली और माल्यवन्त नामक राक्षसों की उत्पत्ति हुई थी। यहीं से कवि ने अपनी कथा को आरम्भ कर सुमाली के द्वारा विश्रवा को अपनी कन्या के दान, रावण, कुम्भकर्ण तथा शूर्पणखा क जन्म, रावण की तपस्या और ब्रह्माजी से दीर्घायु तथा जगज्जयी बनने के लिए वर-प्राप्ति, रावण के अत्याचार आदि प्रसंगों का बहुत ही संक्षिप्त, परन्तु कवित्वपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। प्रतिनायक रावण के जन्म, तपस्या, दिग्विजयादि के बारे में प्रथम छान्द में और द्वितीय छान्द में ब्रह्मासमेत देवताओं की क्षीरसागर मे विष्णुजी से प्रार्थना, विष्णुजी की प्रसन्नता और मनुष्यावतारग्रहण-पूर्वक रावण-वध के लिए उनका वचनदान और नायक श्रीरामजी आदि का जन्म-ग्रहण प्रसंग बताकर उपेन्द्रजी ने आरम्भ ही से पाठक के मन में आग्रह व कौतूहल की सृष्टि की है।

'वाल्मीकि रामायण' में सुमाली की कन्या का नाम 'कैकसी' प्रदत्त है। सुमाली ने इसी को विश्रवाजी को समर्पित किया था। परन्तु भञ्ज कवि ने प्रथम छान्द के षष्ठ पद में बताया है कि सुमाली ने अपनी रसनिधि कन्या को विश्रवाजी के यहाँ दिया। उन्होने कन्या

का कोई नाम नहीं लिखा है। परन्तु १३वे पद में असुरो के समूह के लिए 'निकषात्मजपुंज' समस्त पद की अभिव्यक्ति की है। सुतरां 'निकषात्मज' का अर्थ हुआ 'निकषा के पुत्र राक्षस लोग (रावण समेत)'। रावण समेत राक्षस लोगो की माता के दोनो नाम 'कैकेसी' और 'निकषा' अभिधानो मे भी मिलते हैं। परन्तु उपेन्द्र ने विश्रवा ऋषि की कन्या का नाम वाल्मीकि रामायण मे प्रदत्त 'कैकसी' के बदले 'निकषा' ही की ओर इंगित किया है।

रावण की तपस्या के सम्बन्ध में उपेन्द्र ने यह बताया है कि रावण ने विरोजा देवी के पीठस्थल में तपस्या की थी। कृपासिद्धा बलरामदासजी ने स्वरचित 'जगमोहन रामायण' में वही विषय भी लिखा है। उपेन्द्र ने भी बलराम की तरह श्रीरामजी के वनभ्रमण के समय उनके उत्कलागमन का चित्र अंकित किया है। ऐसे चित्रणो से इस बात का पता चलता है कि उपेन्द्रजी ने अपनी देशप्रीतिवश बलरामजी-वर्णित विषयवस्तु का ग्रहण किया है।

ऋष्यश्रृंग का मन बहलाकर उन्हे लोमपाद की राजधानी मे लाने के लिए जो सब आयोजन किये गये थे, उन सबका मनोरम चित्र बलराम ने अपनी रामायण मे अंकित किया है। मन्त्री के सहित परिचय, ढिढोरा पीटने, जरता की प्रतिज्ञा, नौकागमन और मोहन-उच्चाटन आदि प्रसंगों की उसमे अत्यन्त मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। मूल रामायण मे इतने विषय नही हैं; केवल राजा-मन्त्री की निष्पत्ति, वेश्याओ का नौका पर गमन और वेश्याओं को देख ऋष्यश्रृंग का विभ्रम आदि विषय अति संक्षेप मे अभिव्यक्त किये गये हैं। यद्यपि उपेन्द्रजी ने वेश्याओ की वेशभूषा, नौकामण्डन, वन-सौन्दर्य, ऋष्यश्रृंग तथा वेश्याओं के आलापादि की वर्णना मे बलरामजी का अनुसरण किया है, फिर भी वे विषयवस्तु को अपनी कविता में अपूर्व कवित्व-विद्वत्तापूर्ण रूप देने मे रामायण का अतिक्रमण कर गये हैं।

'वैदेहीश-बिळास' के नवम छान्द में भञ्जजी ने 'केवट का श्रीरामपद-प्रक्षालन' प्रसंग बड़े ही मनोरम ढंग से वर्णित किया है। 'वाल्मीकि रामायण' और बलरामकृत 'जगमोहन रामायण' में यह प्रसग नही है। व्यासजीकृत 'अध्यात्म रामायण' से भञ्जजी ने इसे ग्रहण किया है।

'वाल्मीकि रामायण' के उत्तर काण्ड मे माल्यवान, सुमाली और माली के वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, प्रहस्त, अकंपन, विकट, धूम्राक्ष आदि जिन पुत्रों के नाम दिये गये हैं, उनमे से अधिकांश को बलरामजी ने स्वरचित 'जगमोहन रामायण' के युद्धकाण्ड में रावण के वीर सैनिकों के रूप मे चित्रित किया है और भञ्जजी ने भी स्वकृत 'वैदेहीश-बिळास' के ४३वेंसे ४९वें छान्द तक में बलरामजी का अनुसरण करते हुए उन्ही वीरो के नाम दिये हैं।

'वाल्मीकि रामायण' और बलरामजीकृत 'जगमोहन रामायण' के उत्तर काण्ड में सीतावनवास, लव-कुश-जन्म, वैदेही का पाताल-प्रवेश, स्वजनो के सहित श्रीरामजी का वैकुण्ठगमन आदि प्रसंग वर्णित है। उपेन्द्रविरचित वैदेहीश-बिळास' एक महाकाव्य है। यह मानकर कि सर्ग-बद्ध (छान्दों से बद्ध) महाकाव्य मे ऐसा वर्णन दोषावह है, भञ्जजी ने इनका वर्णन स्वचरित 'वैदेहीश-बिळास' में नही किया है।

संक्षेपत: विषयवस्तु की योजना तथा वर्णना मे कृपासिद्धा बलरामदासजी ने 'जगमोहन रामायण' मे 'वाल्मीकि रामायण' की रूपरेखा स्थूल रूप से अवश्य अपनायी है। फिर भी, अपनी रामायण में उन्होने नयी विषयवस्तुओं का सन्निवेश कर चरित तथा चरित्र-चित्रण मे [illegible] मौलिकता तथा स्वतन्त्रता दिखायी है। उपेन्द्र

भञ्ज ने स्वरचित 'वैदेहीश-बिळास' मे 'वाल्मीकि रामायण' की मूल कथावस्तु ग्रहण करते हुए, अधिकतर बलरामजी की मौलिक तथा स्वतन्त्र सयोजना का अनुसरण किया है। ऋष्यशृंग, जरता व काममोहिनी प्रसग, दशरथजी से सम्पादित पुत्रजन्मोत्सव, विश्वामित्र-आगमन व दशरथजी से कुशल-प्रश्न-जिज्ञासा, विवाह के बाद राम-सीता का कौडी खेल, कौवे को श्रीरामजी का अभिशाप, अशोक वन मे सीता को नारदजी का अमृतदान, चकवी का श्रीरामजी के प्रति आक्षेप, ग्वालो को श्रीरामजी का शाप तथा वरदान, बगले तथा मुर्गे से सीता-सन्देश पाकर उन्हे श्रीरामजी का वरदान, सिंहिका राक्षसी का हनुमानजी को निगलना, लकादहन, गुहक-शवर प्रसग आदि विषय उपेन्द्रजी ने बलरामजीकृत रामायण से अविकल ग्रहण किये है। फिर इन विषयो को अपने विचित्र-विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्व के विनियोग से उन्होने विशेष आकर्षणीय बना दिया है।

'अध्यात्म रामायण' और 'वैदेहीश-बिळास'

अध्यात्म रामायण के लेखक है कृष्णद्वैपायन वेदव्यास। इसमे वक्ता है सदाशिवजी और श्रोता है जगन्माता पार्वतीजी। व्यासजी ने 'वाल्मीकि रामायण' से मूल चरित ग्रहण किया है। इसकी विशेषता यही है कि इसमे श्रीरामजी स्वयं नारायणजी तथा सर्वज्ञाता और सीताजी आदिशक्ति के रूप मे चित्रित की गयी है।

'वाल्मीकि रामायण' के समान 'अध्यात्म रामायण' भी सात काण्डो मे विभक्त है।

गगा पार होते समय केवट की शका तथा श्रीरामजी का पद-प्रक्षालन, रावण के मारीच-वध के लिए उद्यत होने से, मारीच का श्रीरामजी के हाथो से वध को श्रेयस्कर समझना, मारीच का माया रूप जानकर श्रीरामजी का सीता से अपना वास्तव रूप अग्नि मे छिपाने के लिए कहना, शवरी का श्रीरामजी को स्वादिष्ठ फल खिलाकर उनसे भक्तितत्त्व सुनना एव उन्हे अपना सुना रावणकर्तृक सीताहरण-समाचार जताना तथा सुग्रीव सहित मित्रता-स्थापन के लिए सूचना देना, रावण के आदेश से शुक का आना, परन्तु उसका सुग्रीवजी को शुभेच्छा जताना, फिर रावण को सीता वापस करने के लिए समझाना, युद्धक्षेत्र मे विभीषणजी का कुम्भकर्ण को रावण का अधर्म कार्य समझाना, रावण के यज्ञ मे वानरो का वाधा संघटित करना आदि अनेक विषय 'अध्यात्म रामायण' के वैशिष्ट्य हैं।

केवट का श्रीराम-पद-प्रक्षालन प्रसग—

"क्षालयामि तव पादपकज नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ।। ३ ।।
पादाम्बुजं ते विमल हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ।। ४ ।।"

[नाविक ने कहा, "हे प्रभो ! यह बात चारो ओर फैल गयी है कि आपके चरणो में नारी बना देनेवाली धूल है। आपने तो पत्थर को नारी बना दिया ! लकडी व पत्थर मे क्या भेद है ? सुतरा मैं आपके पाद-पद्मो को पहले ही धो दूंगा, तदनन्तर गंगा पार करूँगा। अन्यथा आपके पादो की धूल लग यदि मेरी नौका एक सुन्दरी युवती बन गयी, तो मेरे कुटुम्ब के बचने का साधन नही रह पायेगा।"]

(षष्ठ सर्ग, बालकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

भञ्जजी ने स्वरचित 'वैदेहीश-विळास' में उपर्युक्त श्लोको का सही अनुकरण किया है—

"बधिर नुहइ बीर बोइला तहिँ धीवर,
शुणिलिणि पथरे पथर अबळा।
बालि पड़ि तो चरणु आशंका उपुजे एणु,
नउका नायिका हेले बुड़िब भेळा।
बृत्ति ए सो पोषे कुटुम्ब।
वसाइ न देवि पाद न धोइ नाव। ३।"

[श्रीरामजी की बात सुनकर केवट ने कहा, "हे वीर ! मैं बहरा नही हूँ। मैंने सुना कि आपके चरणो की धूलि पड़ने से मार्ग पर पत्थर एक अबला (नारी) बन गया। इस हेतु मुझे आशंका हो रही है कि कही आपकी चरण-रज के स्पर्श से मेरी यह नौका नारी न बन जाय। इसके नारी बन जाने से मेरा बेड़ा डूब जायगा। यही मेरे निर्वाह का एक मात्र साधन है। इसी से मैं अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहा हूँ। सुतरा आपके पैरो को बिना धोये मैं आपको नौका पर नही बैठने दूँगा।"]

(नवम छान्द, वैदेहीश-विळास)

मारीच प्रसंग—

"हनिष्याम्यसिनानेन त्वामत्रैव न संशयः,
मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत्। ३५।
यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात्,
मां हन्यात् यदि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम्। ३६।"

[रावण ने मारीच की उपदेशवाणियाँ सुनकर उससे कहा, 'हे मारीच ! यदि राम से डरकर और कुछ कहोगे, तो तुम्हे अपनी इस तलवार से काट दूँगा। यह निश्चित समझो।" रावण की यह वाणी सुनकर मारीच ने अपने मन में सोचा, "यदि श्रीरामजी मेरा वध कर दें, तो मैं संसार सागर पार हो जाऊँगा (अर्थात् मोक्ष पाऊँगा)। परन्तु इस दुष्ट के हाथों से मरूँ, तो नरक मे अवश्य पड़ूँगा।"]

(षष्ठ सर्ग, अरण्य काण्ड, अध्यात्म रामायण)

भञ्जजी का अनुकरण—

"विश्वबासुत क्रोधरे प्रज्वळित शुणि ता बचन।
बिकोष करिण करबाळ कर बाळरे ता मन।
बोइला अवज्ञा करु मोर आज्ञा मानव-भयाळु।
बाळक मुँ सते तु बुझाउ मोते के तोते सम्भाळु। २४।
विचारिला ताड़केय ए माइले होइबि अमोक्ष।
बैकुण्ठ गमन्ति राम करु हत देखिछि प्रत्यक्ष।
बळिआइ कहि आग मुहिँ तुहि मरिबु पछरे।
बारि ताति झष शुखि ग्राहबश ये मन्त कासारे। २५।"

[मारीच की बात सुनकर रावण मारे क्रोध के जल उठा और म्यान से तलवार निकालकर बाये हाथ से उसके बाल पकडना चाहा। फिर कहा, "अरे मानवभयालु ! सामान्य मानव से डरकर तू मेरी आज्ञा की अवहेलना कर रहा है ! मैं क्या एक बालक हूँ, जिसे तू समझाकर उपदेश दे रहा है ? अच्छा देखूँ, अब तेरी रक्षा कौन करे।"

रावण का क्रोध देख मारीच ने विचार किया, "अगर यह रावण मुझे मारे, तो मेरा अमोक्ष (मोक्ष का अभाव) होगा। मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि श्रीरामजी के हाथो से मरने पर प्राणी वैकुण्ठ गमन करते हैं। अतएव राम के हाथो से मरना कही कल्याण-कर होगा।" मारीच ने आगे बढकर रावण से कहा, "सूर्यकिरणो से तालाब का पानी उत्तप्त हो जाने मे पहले मीनसमूह मर जाते हैं और पानी बिल्कुल सूख जाने पर घड़ियाल आदि सवश मर जाते हैं। उसी तरह राम के बाण से पहले मैं मरूँगा और बाद में तुम सवंश निहत होगे।"]

(छान्द २४, वै० बि०)

धीवर प्रसंग, मारीच प्रसग आदि 'अध्यात्म रामायण' में अत्यन्त चमत्कारपूर्ण रीति से वर्णित किये गये हैं। भञ्जजी ने वैदेहीश-बिळास' मे अनुरूप चित्र दिये हैं। परन्तु केवट के मुख में 'बुड़िब भेळा' (बेडा डूब जाएगा) जैसी मुहावरेदार भाषा की अभिव्यक्ति देकर कविसम्राट् ने यथार्थ मे भाषा के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य का निर्वाह किया है। इससे भञ्जजी का धीवर-प्रसग अधिक चित्ताकर्षक हुआ है। मारीच प्रसंग मे कविसम्राट् ने 'अध्यात्म रामायण' से अनुरूप चमत्कारपूर्ण चित्र तो अवश्य ग्रहण किया है। फिर मारीच के मुख मे अपने तथा रावण के सवश निधन की भविष्यवाणी देकर उन्होने जो मौलिकता दिखायी है, वह वास्तव मे प्रशंसनीय है।

'रघुवंशम्' और 'वैदेहीश-बिळास'

महाकवि कालिदास ने स्वरचित 'रघुवशम्' महाकाव्य मे समूचे रघुवश के इतिहास की वर्णना की है। सुतरा उसमे श्रीरामजी के जीवन के एक प्रधान अंश का विस्तृत विवरण नही मिलता, जैसा कि 'वैदेहीश-बिळास' मे मिलता है। 'रघुवंशम्' के दशम सर्ग मे श्रीरामजी के जन्म प्रसंग से रामचरित शुरू करके कालिदासजी ने पञ्चदश सर्ग मे श्रीरामजी के स्वमूर्तिप्रवेश तक उसका निर्वाह किया है।

उपेन्द्र भञ्ज जी 'रघुवंशम्' से प्रभावित है

'रघुवशम्' महाकाव्य के प्रारम्भ में महाकवि कालिदास ने सूर्यवंश-सम एक महान राजवंश के बारे मे वर्णन करने के लिए दैन्योक्ति प्रकाश की है—

"क्व सूर्यप्रभवो वशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम्॥
× × ×
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥"

(सूर्यवंश अतिशय महान है, परन्तु मेरी ज्ञान-सम्पत्ति बहुत ही थोड़ी है। मैं अज्ञानवशतः थोड़े ही साधनो से एक बहुत बडा काम करने जा रहा हूं, मानो एक मामूली, बेड़े से दुस्तर सागर पार होने की इच्छा कर रहा हूँ। लोग मेरी हँसी उड़ाएंगे।

× × ×

फिर भी, पूर्वाचार्यो मे विरचित प्रबन्धकाव्यो रूपी द्वार देकर मैं रघुवश का चरित वर्णन करने जा रहा हूं, जैसे कोई सूत को वज्र द्वारा रत्न मे किये गये छेद मे आसानी से घुसा देता है।)

निरहंकारता व विनय का कितना ही मनोहर समन्वय !

उपेन्द्रजी ने भी स्वकृत 'वैदेहीश-बिळास' महाकाव्य के प्रारम्भ मे वाल्मीकिजी, व्यासजी, हनुमान कवि, कालिदासजी, भोजराजजी, ओड़िआ कवि कृपासिद्धा वलराम दासजी आदि पूर्व मनीषियो के प्रति विनय तथा आदर प्रकट करते हुए यह अभिव्यक्त किया है कि वे उन्ही पूर्वाचार्यो का मार्ग अपनाएँगे। ("बालमीकि व्यास कवि यहिँरे··· ······छाडिलि चिन्ता ये।"।४।, प्रथम छान्द, वै० वि०)। इसमे कवि उपेन्द्र की निरहंकारता तथा विनय के अपूर्व समावेश का चित्र भी है।

'रघुवंशम्' के १४वे सर्ग मे सीताविलाप यों वर्णित है—

"तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाच रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥
नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावं अत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥"

(यह अगीकार करते हुए कि ये बाते मै श्रीरामजी से निवेदन करूँगा, लक्ष्मणजी सीता की दृष्टि से ओझल हो गये। उस समय सीताजी ने बड़े दुःख से सन्तप्त कुररी के सदृश विलाप किया। तब मयूरो ने नृत्य त्यागा, वृक्षो ने कुसुम त्यागे और हरिणीगण ने कुशग्रास त्यागा। प्रतीत हुआ, सीता के दुःख से सारी प्रकृति मानो रो रही है।)

भञ्जजीविरचित 'बैदेहीश-बिळास' मे रावणकर्तृक सीताहरण के समय अनुरूप चित्र देखिए—

"बसुधा कम्पिता चकित देबता··· ·····चाहान्ते बिलोकि।"
(४१, ४३ पद, छान्द २५, बैदेहीश-बिळास)

(सटीक पाठ अथवा 'बै० वि० में रस-परिपाक' निबन्ध मे प्रदत्त करुण रस का उद्धरण द्रष्टव्य है।)

'रघुवंशम्' मे वर्णित अजविलाप—

"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥"

("अयि प्रेयसि! तुम मेरी गृहिणी, मन्त्री, रहस्यमयी एवं मनोहर नृत्यगीतादि कलालाप मे प्रियशिष्या थी। जरा बताओ तो सही। निर्दय यम ने तुम्हे हरण कर मेरा क्या नही अपहरण किया है? अर्थात् मेरा सर्वस्व अपहरण किया है।)

सीता के बिछोह में श्री रामचन्द्रजी के विलाप वर्णन में भञ्जजीप्रदत्त अनुरूप चित्र देखिए—

"बन्धु तुहि धन तुहि प्राण तुहि (तू ही) सते (सच ही)।
बन्धु धन दूर करि आणिछि (लाया हूँ) सगते (साथ)।
बिगत तु हेले (होने से) रक्षा। ब्रह्माण्डरे (ब्रह्माण्ड में) कि रूपरे (किस रूप में)
अछि (है) सुकटाक्षा (सुदृशा)।१८।"
(छान्द २५, बै० वि०)

'रघुवंशम्' के त्रयोदश सर्ग मे पुष्पकविमान पर अयोध्याप्रत्यावर्तन के समय समुद्र, समुद्रवेलाभूमि, रामजी के सीतान्वेषण के समय के मनोभाव, पम्पातट पर अशोकतरु को सीता समझकर श्रीरामजी के आलिंगन, शातकर्णि, शरभंग आदि मुनियों के आश्रमों, पंचवटी, चित्रकूट आदि पर्वतों, गंगा नदी आदि के चित्र श्रीरामजी के मानसपट पर जैसे पुनरंकित हो उठे हैं, और चतुर्दश सर्ग मे श्रीरामजी के अयोध्याप्रवेश, राज्याभिषेक, बन्धुओ और

मुनियों को विदाय और सीता-विसर्जन आदि घटनाएँ जैसे संघटित हुई हैं, उनका हृदय-स्पर्शी चित्रण किया है कालिदासजी ने । कालिदास का कवि-मानस भौतिकता मे आवद्ध न रहकर मानव-हृदय के चिरन्तन भावो— त्याग, वलिदान, करुणादि आदर्श गुणो का चित्रण करने मे अधिक सचेष्ट था । उक्त चित्रावली भारतीय साहित्य-भण्डार मे अमूल्य निधियाँ है ।

पक्षान्तर मे 'वैदेहीश-विळास' मे भञ्जजी ने, धीवर प्रसंग, सीता-वेश-विन्यास, श्रीराम-सुग्रीव-मित्रता, वकवार्ता, सीता की सतीत्व-निष्ठा, रावण-वध तथा विभीषणजी-राज्याभिषेक के उपरान्त श्रीरामजी के सीता के प्रति पैदल आने के लिए आदेशादि के जो चमत्कारपूर्ण चित्र दिये है, वे वास्तव मे अतुलनीय है ।

कालिदासजी और उपेन्द्रजी, दोनो का स्थान अपने-अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण है ।

'हनुमन्नाटक' और 'वैदेहीश-बिळास'

हनुमत् कवि ने स्वकृत 'महानाटक' मे श्रीरामावतार के कारण और जन्म से लेकर उनके स्वधामगमन तक की सारी घटनाएँ नाटकीय रीति से वर्णित की हैं । राक्षसकुल के विनाशकारी तथा द्विजकुल के सुखदानकारी रघुवशावतस रामनामधारी सुरवर विष्णुजी ने, जिनका चरित वेदगण गान करते है, पृथ्वी पर जन्मग्रहण किया । लकापुर के अधिकारी, देवताओ के शत्रु रावण तथा उसके पुत्र-पौत्र समेत निशाचरवंश का विनाश तथा देवता-द्विज-भक्त-सन्तो की रक्षा करना उनके अवतार-ग्रहण का मुख्य लक्ष्य था—

"हन्तुं निशाचरकुलं द्विजमुख्यवर्गान्,
सरक्षितुं वृषमथो त्रिदिवौकसां यः ।
जात: क्षितौ रघुकुले निगमैकवेद्यो,
रामाभिधो नवतमालवपुः सुरेशः ।।"

उपेन्द्रजी ने 'वैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ के आरम्भ में 'महानाटक' के अनुक्रम मे श्रीरामजी के अवतार का उद्देश्य और उनका जन्म-प्रसग बताया है । परन्तु श्रीरामजी के राज्याभिषेक के बाद सीता-विसर्जन, लव-कुश-जन्म, राम का वैकुण्ठगमन आदि प्रसग रसभंग की आशका से नही वर्णित किये है। 'महानाटक' मे ये सारे प्रसंग सक्षेप मे वर्णित हैं ।

भञ्जजी 'महानाटक' से प्रभावित है

'हनुमन्नाटक' का मारीच सोचता है—

"रामादपि च मर्त्तव्यं मर्त्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्त्तव्यं वरं रामान्न रावणात् ।।"

(राम के हाथों से हो, या रावण के हाथो से, मरना सुनिश्चित ही है । दोनो मे से किसी एक के हाथो से मरना हो, तो राम के हाथो से मरना श्रेयस्कर है, न कि रावण के हाथो से ।)

'वैदेहीश-बिळास' मे मारीच प्रसंग अधिक मनोरम ढंग से चित्रित-किया गया है—

"विश्रवासुत क्रोधरे············ग्राहबश यॆमन्त कासारे ।"

(पद २४, २५, छान्द २४, वै० वि०)

('अध्यात्म रामायण' और 'वैदेहीश-विळास' शीर्षक लेख अथवा वै० वि० के सटीक पाठ मे यह उद्धरण द्रष्टव्य है ।)

हनुमानकविकृत 'महानाटक' में द्वारपाल ने रावण के ब्रह्मादि देवता-सेवकों को अपनी-अपनी सेवा न करने के लिए सतर्क कर दिया है। क्योंकि राजा रावण के काम-व्याधिग्रस्त होने के कारण यह समय वेदपाठ, वीणावादन आदि के लिए अनुकूल नही है—

"ब्रह्मन्नध्ययनाय नैष समयस्तूष्णी बहिः स्थीयताम्,
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः।
वीणां संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो,
सीताररल्लकभल्लभिन्नहृदयः स्वस्थो न लकेश्वरः॥"

'वैदेहीश-विळास' (छान्द ३५) मे यह प्रसग इस प्रकार वर्णित है—

× × ×

"विरञ्चि नारद तुम्बुरु लंकारे सेवा बिरचिबाकु आसिले से।
बेगरे। २२।
बेद बीणा स्तुति आरम्भणे। बोले द्वास्थ केउँ बड़पणे।
बिषय न जाणि हुअ कळकळ रह मउने सकळे क्षणे हे।
बिबुधे। २३।
बिषे कि बोलुँ बोले त्वरित। ब्याधि राजा अन्तर्गते जात।
बैदेही पाचन रस रत्नाकर बिरचनकु अच्चित चित्त हे।
बिबुधे। २४।
ब्रह्मा बोले तेबे सन्निपात। बिनाशने तेज हुए सत।
बिहिल भंगी त न बुझि इगित जाण परा संगीत साहित्य हे।
बिघात। २५।"

[ब्रह्मादि देवताओ के वेदपाठ, वीणावादन आदि सेवाकार्य का आरम्भ करते, द्वारपाल ने उन लोगों से कहा, "देवगण! बिना कोई बात समझे तुम लोग किस बड़प्पन से चिल्लाहट कर रहे हो? जरा चुप रहो तो सही।" ब्रह्मा के इसका कारण पूछने पर द्वारपाल ने कहा, 'राजा रावण के अन्तर मे विरह-व्याधि उत्पन्न हुई है। 'वैदेही-पाचन' (पिप्पल के क्वाथ) से 'रस-रत्नाकर' नामक वटिका मिलाकर सेवन करने की उन्हे इच्छा हो रही है (अर्थात् सीता से अत्यधिक रतिसुखलाभ की इच्छा उन्हे हो रही है)। दूसरे विषयो मे उनकी इच्छा नही।" ब्रह्माजी ने कहा, "तब उन्हे सन्निपात (अर्थात् वशनाश) रोग हो गया है।" द्वारपाल ने 'रावण का बशनाश' इंगितार्थ समझकर ब्रह्मा को इस भविष्यवाणी के लिए आक्षेप किया।]

'महानाटक' की विषयवस्तु-योजना से भञ्जजी अवश्य प्रभावित हुए हैं। फिर भी, अपनी वस्तुयोजना मे भञ्जजी स्वतन्त्र हैं। 'सन्निपात' श्लेषार्थसूचक शब्द के प्रयोग में उनका चातुर्य तो निखर ही उठा है।

'महानाटक' में रावण के प्रति अगद की उक्ति इस प्रकार वर्णित है—

अंगद — "रे रे रावण रावणानपि बहूनेतान् वयं शुश्रम-
स्तेष्वेकः किल कार्त्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतः।
एको नर्त्तनलम्भितान्नकवलो दैत्येन्द्रदासीशतै-
रन्यो मत्पितृबाहुमूलगलितस्त्व तेषु कोऽन्योऽथवा॥"

["मैंने अनेक रावणो के नाम सुने है। उनमे से तू कौन है? कार्त्तवीर्य नृपति (सहस्रार्जुन) की बाहुओ में एक रावण पिंडली मास के समान हो गया, जिसे फिर दासियो ने कौतुक से नचाया। और एक रावण मेरे पिता की बाहुओं में जकड़ गया

था और उनसे बहुत अनुरोध के बाद मरण के द्वार से उबर आया था। तब तू इनमे से कौन रावण है ?"]

'बैदेहीश-बिळास' मे रावण के प्रति अंगद की उक्ति—

"व्याख्यान कला (किया) युवराज (अंगद ने) न चिह्नु (नहीं पहचानता) मोते (मुझे) विशचक्षु थाइ (रहते हुए भी)।
बणा (भटका हुआ) मं (मैं) ए घेनि (इस विषय मे) तु केउँ (कौन) राबण रावण (क्रन्दनयुक्त) करन्ति (करता) मुहिं (मैं)।
विधा (घूंसा) प्रहारि एक्षणि (इसी क्षण)। विभु आज्ञा नाहिं शुणि रे।"
(पद २५, छान्द ४१, बै० वि०)

ऐसे कथोपकथन उपेन्द्र की रचना मे संक्षिप्त है। फिर भी, तुलनात्मक दृष्ट से इनकी सरसता एकान्त उपभोग्य तथा अनुध्येय हैं।

रावण के सहित राम-लक्ष्मण के युद्ध के समय 'महानाटक' मे प्रदत्त चित्र—

"रे रे दक्षिणहस्त साधु समये भोक्तुं भवानग्रणी-
र्युद्धे मां पुरतो निधाय भवता किं पृष्ठतो गम्यते ?
नैवं वाम दयानिधे रघुपतेरागत्य कर्णान्तिकं,
पृच्छाम्येकमसशयं दशशिरः किं वध्य एवेत्यसौ ॥"

(श्री रामचन्द्रजी का बायाँ हाथ दायें हाथ से कह रहा है— "अरे दक्षिण हस्त ! खाने के लिए तू तो अगुआ होता है, परन्तु कर्मक्षेत्र मे प्रबलतम शत्रु के मुकाबले में मुझे चतुराई से आगे ठेलकर तू खुद पीछे क्यो हट रहा है ?" दायाँ हाथ उत्तर देता है— "ऐसा मत समझो, वाम हस्त ! मैं दयानिधि रामजी के कर्णो के समीप यह पूछने जा रहा हूँ कि अभी रावण का नि संशय रूप से वध किया जाय अथवा नही।")

'बैदेहीश-बिळास' मे प्रदत्त अनुरूप चित्र—

"व्याघ्र कि मक्षिका ग्रासे लक्ष्मण बाण सदृशे खरजित बामहस्त दक्षिणे बोले। विदेहकन्या योगरे आग कर्बुरदानरे योग हेउ पछे याउ समरकाळे। बामे सेहि। बाक्यरे दक्षिण पाणि छळे। बिदेहकन्या योगरे योगे कर्बुरदानरे बदे कृपाळु सम्मते श्रुतिकि चळे।"

(पद १७, छान्द ५०, बै० वि०)

वाम हस्त— अरे दक्षिण हस्त ! तू विदेहकन्या सीता का ग्रहण और सुवर्णदान करने मे आगे होता था ? अब युद्ध करते समय क्यो पीछे हट रहा है ?

दक्षिण हस्त— अरे वाम हस्त ! मैं भय से पीछे नही हटता। मैं श्रीरामजी से यह कहने तथा उनकी सम्मति लाने उनके कर्णसमीप चल रहा हूँ कि अब विश्रवा ऋषि के पुत्र रावण का वध करूँ या न करूँ।

भञ्जजीरचित इस पद पर महानाटकीय प्रभाव अवश्य पडा है। फिर भी, भञ्जजी के विषयवस्तु-विन्यास तथा कल्पनाविन्यास मे स्वतन्त्रता तथा विशेषता परिलक्षित होती है। 'कर्बुरदान' स्थ श्लेषार्थ तथा 'योगे' शब्दस्थ अर्थतात्पर्य निश्चय ही वैशिष्ट्यपूर्ण है।

'चम्पू रामायण' और 'बैदेहीश-बिळास'

'चम्पू रामायण' महाराज भोज की उत्कृष्ट और सर्वजनादृत कृति है। इसमे

वर्णित बालकाण्ड से सुन्दरकाण्ड तक भोज की रचना है। लक्ष्मण सूरि नामक कवि ने युद्धकाण्ड की रचना कर इस चम्पूकाव्य की समाप्ति की है।

भोज ने 'वाल्मीकि-रामायण' की कथावस्तु पर प्रस्तुत चम्पूकाव्य को आधारित किया है। इसके लिए उन्होंने आदिकवि के प्रति विनम्रतापूर्ण कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा है— "वाल्मीकि-गीतरघुपुंगवकीर्त्तिलेशै-

स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।

गंगाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः

किं तर्पणं न विदधाति नरः पितॄणाम्॥"

(बालकाण्डम्, श्लोक ४)

[मैं वाल्मीकि द्वारा वर्णित रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी की संक्षिप्त कीर्त्ति से किसी प्रकार (चम्पूकाव्य की रचना से) इस समय विद्वानो की तृप्ति कर रहा हूँ। क्या भगीरथजी के प्रयत्नो से भूलोक मे उपलब्ध गंगा-जल से मनुष्य अपने पितृपुरुषों का तर्पण नही करता है? अर्थात् करता ही है।]

उपेन्द्र भञ्ज जी ने स्वरचित 'वैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के चतुर्थ पद मे पूर्व मनीषियों के प्रति कृतज्ञताभिव्यक्ति यही क्रम जारी रखा है। उन्होने केवल वाल्मीकिजी ही के प्रति कृतज्ञता नही प्रकट की है, अधिकन्तु व्यासजी, हनुमत् कवि, कालिदासजी, भोजजी और ओड़िआ कवि बलरामदासजी के प्रति उनसे रचित रामायणो के लिए आभार प्रकट किया है।

'चम्पू रामायण' में प्रदत्त मिथिला नगरी के वैभव, रमणीविलास तथा नगर की सहज-स्वाभाविक भव्यता आदि के वर्णन, राम की राज्याभिषेक-वार्ता सुनकर माताओं, सीताजी व पुरवासियो के आनन्द के वर्णन, दशरथ की मृत्यु पर कवि की अन्तर्वेदना-जनित करुण रस के वर्णन, अरण्यकाण्ड के हेमन्त-वर्णन, किष्किन्धाकाण्ड के वर्षाऋतु-वर्णन, तारा की श्रीरामजी के प्रति दर्द-भरी ललकार के वर्णन और युद्धकाण्ड में राम के सेतुबन्ध-निर्माण, उनके वरुण पर कोप, अगद-रावण संवाद आदि के वर्णनो के द्वारा भञ्जजी बहुधा प्रभावित हुए हैं।

भोजकृत 'चम्पू रामायण' में आद्योपान्त अनुप्रासो और यमको की दमक चमक उठती है— या तु नः पदवी सैषा यातुनश्चास्य लक्ष्मण।

यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम्॥ ३॥ ४॥

विशिखे विशिखे तस्मिन् विधातृवरवर्मणि।

सीतां विक्षिप्य चिक्षेप शूलं रक्षो रघूद्वहे॥ ३॥ २॥

भञ्जजी-रचित अनुप्रासो और यमको से भरपूर बहुत ओड़िआ पदों के उदाहरण 'उपेन्द्र का शब्दपाण्डित्य और आलंकारिकता' लेख मे दिये गये हैं।

भोज ने अपने पूर्ववर्ती बाणभट्ट, माघ, कालिदास आदि सभी कवियों के काव्य-सौन्दर्य को स्वरचित 'चम्पू रामायण' में भरने का प्रयास किया है।

श्लेषबन्ध द्वारा उपमासृष्टि करने की पद्धति बाणभट्ट की निजी विशेषता है। उस पद्धति को भी भोज ने अपनाया है।

"पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदं प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासं बुधमिव सोमसुतं कुशिकसुतमद्राक्षीत्।"

[(राजा दशरथ ने) पद्यप्रबन्ध की तरह सर्गभेद (१.अनुभाग भेद, २.सृष्ट्यन्तर)

करनेवाले, बुध की तरह सोमसुत (१. चन्द्रपुत्र, २. सोमयज्ञ करनेवाले) भगवान् विश्वामित्र का दर्शन पाया।]

भञ्जजी की रचनाओं मे श्लेषोपमा के चित्रो की भरमार है। उदाहरणो के बाहुल्य के भय से हम यहाँ एक ही उदाहरण देते है—

"बासरान्त नभ दुर्लभ समान लभ्यक से रणस्थळ।
बिलक्ष्य लक्ष ऋक्षज्योति प्रचार निशाचर खगकुळ॥"

[असख्य सैन्यो के समावेश से रणक्षेत्र ने सन्ध्याकालीन आकाश की शोभा धारण की है। सन्ध्याकालीन आकाश की तरह रणक्षेत्र ऋक्ष-ज्योति (१. नक्षत्र-ज्योति, २. भल्लुक-प्रकाश) और निशाचर (१. निशा मे विचरण करनेवाले, २. राक्षस) खगकुळ (१. पक्षिसमूह, २. शरसमूह) से भर गया।]

(पद ३७, छान्द ४९, वै० वि०)

भोजयुग के समान उपेन्द्रयुग मे अलकारो का प्रचुर प्रयोग युग का वैशिष्ट्य रहा। भञ्जजी ने इस दिशा मे भोजजी और उनसे अनुसृत बाणभट्ट, माघ, कालिदास आदि सस्कृत कवियो का सफल अनुसरण कर ओड़िआ रीतिकाव्य को सस्कृत के समकक्ष बना दिया है।

'वैदेहीश-बिळास' के कुछ अन्य वैशिष्ट्य

समूचे महाभारतीय साहित्याकाश मे 'वैदेहीश-बिळास' एक प्रकाशमान भास्कर के समान है। अवश्य किसी एक युग मे किसी प्रसिद्ध कवि और उसकी अप्रतिद्वन्द्वी रचना को उच्चतम आसन दिया जाता है। एक युग मे 'वाल्मीकि-रामायण' और दूसरे युग मे व्यासकृत 'महाभारत', 'भागवत' व 'अध्यात्म-रामायण' आदि रचनाओ ने समुचित उच्चतम आसन प्राप्त किया, तो परवर्ती युग मे कालिदासविरचित 'रघुवंशम्' ने। फिर परवर्ती-युगों में यथाक्रम बाणभट्टकृत 'कादम्बरी', भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्', माघकृत 'शिशुपाल-वधम्' और सस्कृत रीतियुग के अन्तिम भाग मे श्रीहर्षकृत 'नैषधचरितम्' ने स्व-स्व समुचित आसन प्राप्त किया है। इसलिए पूर्ववर्ती कालिदास और विश्वविख्यात बाणभट्टजी को छोडकर परवर्ती संस्कृतसाहित्य के रीतियुग को लक्ष्य कर पण्डित लोग कहते हैं—

"तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥"

(अर्थात् कवि भारवि का भा रूपी रवि तब तक प्रकाशित होता है, जब तक माघ का उदय न हो। 'नैषध' काव्य के उदित होने पर माघ और भारवि का स्थान कहाँ?)

उस परिप्रेक्ष्य मे 'वैदेहीश-बिळास' जैसे महाकाव्य के महाकवि उपेन्द्र भञ्ज जी की आलोचना की जाय, तो वे पूर्वोक्त कवियो से कदापि न्यून तो नही, बल्कि स्थलविशेषो पर अपनी असामान्य प्रतिभा, बहुशास्त्रदर्शिता तथा असाधारण विद्वत्ता के सहारे उन्होने कल्पनातीत कल्पनाविलास के तुग शृग पर आरोहण किया है। 'वैदेहीश-बिळास' जैसे वैशिष्ट्यपूर्ण महाकाव्य मे प्रदर्शित कवि की मौलिक प्रतिभा, बहुशास्त्रदर्शिता, विद्वत्ता आदि की समीक्षा करना कोई सहज काम नही। इसके लिए समीक्षक, चाहे महाकवि के समान वह शक्तिशाली न हो, परन्तु उसे रसग्राही तथा गुणदर्शी होना अवश्य चाहिए। रघुवंशानुध्यायी, सरस्वती के वरपुत्र कालिदासजी ने रघुवंशानुचरित के चित्रण मे दृढ़ संकल्प रखकर भी संकोच प्रकाश किया है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम् ॥......इत्यादि

भञ्जजी का चारित्रिक वैशिष्ट्य

रामतारकमन्त्रसिद्ध उपेन्द्र भञ्ज जी ने वाल्मीकि, व्यासादि विभिन्न कवियो से रचित रघुवंशानुचरित पाठ कर इस महाकाव्य के रचना-कार्य को ग्रन्थारम्भ मे सहज माना है; फिर भी, उन्होने कालिदास के सदृश ऐसे ग्रन्थ की रचना में संकोच प्रकाश किया है। परन्तु बाद मे यह सोचकर कि रात मे तारों का प्रकाश होते हुए भी, जुगनू अपना-अपना प्रकाश दिखाते हैं, उनमे विवेक का उदय होता है और पूर्वाचार्यो का पदानुसरण स्वीकार करके भी, एक क्षुद्र जुगनू के समान अपनी नैसर्गिक विशेष प्रतिभा-प्रभा का परिचय देने के लिए वे नही झिझकते—

"बिवेक हिँ उदय एमन्त ध्यायि ये,
व्योमे तारका ये वे झलकुथाइ ग्रे ।
बिभावरीरे ज्योतिरिंगण-गणज्योतिकि देखान्ति पुण,
सुजने, सावधानरे शुण छान्द रचइ ये ॥"

ऐसी उक्ति से विनम्रता तथा निरहंकारता के सहित उनके दृढ आत्मविश्वास का परिचय मिल जाता है। यह उनका चारित्रिक वैशिष्ट्य है।

भञ्जजी का भक्तिगत वैशिष्ट्य

प्रथम छान्द के आरम्भ मे विष्णु तथा सूर्य —दोनों की श्लेष मे मगलाचरण-उपासना करते हुए उपेन्द्रजी अपनी महाकाव्य-योजना मे आगे बढ़े है। इस छान्द के अन्त मे नीलाद्रिनाथ जगन्नाथजी के प्रति अपनी भक्ति की पराकाष्ठा दिखाते हुए उन्होने जगन्नाथजी के विग्रह मे शिव, शिवा (दोनो मंगल के आधार हैं), गणेश, राम, ब्रह्मा एव सर्वव्यापी, सर्वाराध्य, सर्वशक्तिमान् परात्पर परमेश्वर की लीला के दर्शन किये हैं और उस दर्शन मे अपने जीवन के दिव्यदर्शन की अवधारणा कर ली है—

"विरचि बीरवर उपेन्द्र भञ्ज स्वच्छन्दे विचित्र छान्द,
चित्त निश्चिन्त नीळाद्रि-चन्द्र ध्यान सफळे । ये ।"

उनकी भक्ति-प्रवणता और जीवनदर्शन के वैशिष्ट्य के ऐसे बहुत चित्र 'वैदेहीश-बिळास' मे मिलते है। ('उपेन्द्र भञ्ज की भक्ति-प्रवणता' निबन्ध द्रष्टव्य है।)

सुशीलता तथा विनती की वर्णना में वैशिष्ट्य

'वैदेहीश-बिळास' के द्वितीय छान्द में क्षीरसिन्धुशायी नारायणजी से देवगण की स्तुति और दाशरथि (दशरथजी के पुत्र श्रीराम) के रूप में नारायणजी-सूचित अपने परवर्ती जन्म के आभास, बिना चक्र (सुदर्शन) के केवल धनुष-बाण द्वारा और बानर-भल्लुको के सहारे रावण के विरुद्ध उनके भविष्यत युद्ध की सूचना, सनत्कुमार-सुमन्त्र-संवाद आदि का भव्य वर्णन मिलता है। इसमे शब्दयोजना, पदावली के अर्थ-वैभव तथा अलंकार-विन्याम की चमत्कारिता अतीव उपभोग्य है—

"बामदेब देबराज गुरु संगतिरे,
बिमने सुमने गले क्षीरसिन्धु तीरे ये । २ ।

ब्रह्माण्ड क्षोभिते भीते ब्रह्मा प्रमुखरे,
विश्वम्भर भरसारे स्तुति कले खरे ये । ३ ।

× × ×

विश्वक्सेन सेनेह करि ए उत्तरे,
विधुकाशजित हास प्रकाशि सत्वरे । २२ ।
बहिवि नाहिं मुं अरि अरि-मारणरे,
विराजमान विराज न चढ़ि रणरे ये । २३ ।
बनौका प्रबळ बळ संग हेबे हेळे,
बोलिण अन्तर ये अन्तरय़ामी हेले । २४ ।"

सीता की रूपवर्णना में वैशिष्ट्य

तृतीय छान्द मे आद्योपान्त आद्ययमको के सुमनोहर विन्यास से पद सब एकान्त श्रुतिमधुर होकर कवि के काव्यिक और आलकारिक मनोभाव का परिचय जैसे देते है, उन सब पदो का रसगर्भक रीति मे रसाल समन्वय उनके रसाल हृदय का भी वैसा चित्र उपस्थित करता है । सीता के जन्म से विधाता की सृष्टि ने सार्थकता प्राप्त की है । इस प्रसग को यथोचित भाषा, छन्दोविन्याम और भाव-रसादि से मनोज्ञ करके कवि ने लिखा है—

विश्वसृक एक करिछि धरि शोभाचयकु ।
बिश्वकेतु केतु बान्धिला जाणि जगज्जयकु । १५ ।

[संसार की सारी शोभाओ को इकट्ठी करके ब्रह्मा ने इस कन्या का निर्माण किया है । यह अभिलाषा करते हुए कि इसके द्वारा जगत को जीतूंगा, कन्दर्प (कामदेव) ने पताका फहरायी ।] पुनः —

"बिवेहजाया (रति) कोटि एक हेले (होने से) सम कि आउ (और),
बिदेह (मिथिला) देशरे उद्भवि (पैदा हुई है) बइदेही बोलाउ (कहलावे) ।१८।"

इस पद मे सीता के 'वैदेही' नाम की सार्थकता;

"बिदुष (पण्डित) जनक-पाळने बोलाइब (कहलाएगी) जानकी,
बिदूषण (निर्दोष) शोभा जेमार (राजकुमारी की) आउ सम आन कि ? ।१९।"

इस पद मे सीता के 'जानकी' नाम की सार्थकता; और

"बासरे (सौरभ में) उत्पळ कि लक्ष्य, पारिजात कि तुच्छ ?
बासरे चहटे (महकती है) योजनगन्धा नाम हिं स्वच्छा ।२०।"

इस पद मे सीता के 'योजनगन्धा' नाम की सार्थकता निहित है ।

सीताजी की वेणी मे त्रिवेणी की कल्पना कितनी चमत्कारी है—

वेणी चारु शिरे शुकळ रग फुले (फूलों से) यतन (सुन्दर),
वेणी त्रिपूर्व (त्रिवेणी) कि नभरु (नभ से) हेउछन्ति (हो रही हैं) पतन । २८ ।

सीताजी की सर्वांगीण कमनीयता अनेक स्थलो में वर्णित की गयी है । फिर भी, विवाह के पूर्व मिथिला जाने के मार्ग पर विश्वामित्रजी श्रीरामजी के सामने उनके शारीरिक सौन्दर्य की जो वर्णना करते हैं, वह विशेष रूप से प्रणिधान के योग्य है ।

सीता की कान्ति के निकट विशुद्ध स्वर्ण की कान्ति ने हार मानी । इसलिए उसने

अपने तेज को क्रमशः बढ़ाने के अभिप्राय से अपने को आग में बार-बार जलाया एवं कसौटी पत्थर पर बार-बार परखाया। फिर भी, सोनारों ने सोने की सीता की शरीर-कान्ति से तुलना करके यह निर्णय किया कि यह सोना सीता की कान्ति के सामने एक रत्ती (रंच) मात्र है—

"बिजयी-बीर ! बिजय कर, यिबा (चलें) मिथिळापुर,
बाहर होइ बिहार नहिँ (वहाँ) करन्ति (करते हैं) मुनिबर।
बइदेही ये (जो) सुन्दरी-ब्रजे अमूल्य चूड़ामणि,
बर्त्तमान से (वही) भूत भबिष्ये नाहिँ (नही) नोहिब (नहीं होगी) पुणि। १।

बिग्रहकान्ति कि झटकन्ति (क्या ही चमकीली है!) कनक अनाइला (देखा),
बान बढ़ाइ अग्निरे (आग में) दहि शिळे (कसौटी पत्थर पर) कषाइहेला (कसाया)।
बणिकश्रेणी असम जाणि (जानकर) हेले (हुए) प्रहारदानी,
बसाइ तुळे (तराजू पर रखकर) रतिए बोले तेतिकि (उतना ही) लक्ष्य घेनि। ३।"

(छान्द ८, बै० बि०)

सीता का वदन समुद्रोत्पन्न निष्कलंक पूर्णचन्द्र से भी बढकर सुन्दर है। और सकलंक और दिनोदिन क्षीणतर होनेवाले चन्द्र की सीता के मुखमण्डल से क्या बराबरी ?

"बिहुँ समुद्रमन्थनु चन्द्र जनम येउं (जिस) काळे,
बिहीन हीन कळंके जाण निर्मळ होइथिले।
बदने जानकीर समान मन जाणिटि (जानकर) बिहि,
बिम्बबेष्टन नोहिला बर्ण (गलत अक्षर) भावेटि काटि देइ। ६।"

(छान्द ८, बै० बि०)

नेत्रवर्णना में कवि की चमत्कारिता विचित्र है। सीता के विष्फारित नयनों तथा पुतलियो की गति सीखने के लिए निर्लज्ज भ्रमर पद्म पर बैठे ललचाता है। नीलोत्पल पवन से हिलकर उसी छवि से समान होने के लिए प्रयत्न कर रहा है। लट्टू बालको के हाथों में क्रीड़ा के मिस वह चंचलता सीख रहा है। परन्तु उनमे से कोई भी सीता के नेत्रो की गति से समान नही हो पाता—

"बिष्फारित ता लोचन गतागत करइ डोळा,
बिलज्ज भृंग सरोजे संग होइ शिखे से लीळा।
बाते चळइ नीळोत्पळ हिं से छबि लक्ष्य हेजि,
बाळक करे सारेणी करे खेळा तरुणतेजि। ९।"

(छान्द ८, बै० बि०)

सीता के नयनो की चचलता से मृग (हिरन) की गति भी पराजित हो गयी। इसलिए लज्जा के मारे वह जाकर जगल में छिपा। उसके वंश मे जात कोई मृग सीता के नेत्रो की चचलता का ध्यान कर मर गया और उसने जाकर चन्द्रमा मे अवस्थान किया। तथापि वह स्वय तो समान नही हो सका, उलटे निष्कलक चन्द्रमा को भी कलंकित कर दिया। भाग्यहीन प्राणी की यही दशा होती है—

"विपिन घने पशि बहने चंचळे हारि मृग,
बंशरे केहि से सम ध्यायि मरि चन्द्ररे योग।
वाञ्छित कर्महीनरश्रम कले प्रापत काहिँ ?
विमळ पदार्थकु सर्वदा समळ कला सेहि।"

भञ्जजी का कल्पना-विलास कितना चमत्कारी, कितना विचित्र है ! सीताजी के वदन तथा नयनो से तुलना करते समय कविकल्पित साधारण उपमानो ने हार खायी है। उनमे से कोई जाकर जंगल मे घुसा है तो कोई छिपा है या तो दूसरा कोई अन्यत्र उपहासास्पद हुआ है।

संस्कृतसाहित्य के अनेक पर्यायो मे अनुरूप प्रसग का उपमा-उत्प्रेक्षादि अलंकारो के माध्यम से चित्रण करने मे यही रसालता तथा चमत्कारिता परिलक्षित होती है।

मुखशोभा से पराभव के लिए पद्म की दशा का चित्रण 'नैषध' मे श्रीहर्षजी ने किया है—

"अधारि पद्मेषु तदंघ्रिणा घृणा,
क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे।
तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां,
न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥ २० ॥" (प्रथमः सर्गः)

क्षतविक्षत शूर्पणखा ने भ्राता रावण को सीता के सौन्दर्य के बारे मे जो खबर दी है, उसकी वर्णना मे भञ्जजी ने तो कमाल कर दिया है। गम्भीर भावव्यजना के सहित आलकारिकता एवं रसविन्याससहित शब्दयोजना के समन्वय ने उनकी कविता मे चार चाँद लगा दिये हैं। शूर्पणखा के मत मे सारे संसार मे सीता-सम और सुन्दरी नही है। उसने भाई के प्रासाद मे रम्भा-उर्वशी आदि स्वर्गवेश्याओ को नृत्य करते देखा है। परन्तु वे सब रमणीमणि सीता की दासियाँ भी होने के योग्य नही। पूर्णिमा-नारी तथा प्राची-अंगना सीता के वदन-सौन्दर्य से न्यून चन्द्र रूपी चाँदी की थाली तथा ओष्ठो की रक्तिमा से न्यून बालरवि रूपी माणिक्य की थाली को लेकर क्रमश. महीने मे एक बार तथा हर रोज पक्षी-सखियो की चहचहाहट रूपी हुलहुली ध्वनि से उनके वदन तथा ओष्ठों की आरती उतारती है—

"ब्रह्माण्डलक्षरे खोजिले लक्ष्यरे न थिबे सुन्दरी।
बिहे नृत्य आसि रम्भा ऊरुवशी तो पुरे देखिछि,
बनितामणि दासीपणे न गणि मो मने रखिछि। ५।
वदन ओष्ठ सुषमा करि पुष्ट पूर्णमी प्राची कि !
विधुबाळार्क व्याजे रौप्य माणिक्य स्थाळीकि रचि कि!
बन्दाण मासे के रचे के उत्सुके के निति बन्दाइ,
विहंग-आळी द्विकाळे हुळहुळि तहिँकि कि देइ। ६।"

(छान्द २४, वै० वि०)

नि.सन्देह इन सब पदो में उपेन्द्र का वर्णनावैशिष्ट्य मूर्तिमन्त हो उठा है। सिद्धहस्त विचक्षण कवि की रचना-चातुरी ने प्रसग के माधुर्य को मौलिक ढग से कैसा मनोज्ञ तथा चित्ताकर्षक बना दिया है, वही वास्तव मे अनुध्येय है। इस छान्द मे एक ऐसा भी पद नही है, जिसने कवि के असामान्य कल्पनाविलास की चमकप्रद चमत्कारिता न दिखायी हो और इस दिशा मे कवि की मौलिकता तथा स्वतन्त्रता की ओर पाठक का मन आकर्षित न किया हो। सचमुच सीतारूपवर्णना का प्रत्येक पद अमृतरस का एक स्रोत है, जिसे पीकर पाठक का मन नही अघाता है।

तुलनीय— घृतलाञ्छन गोमयाञ्चनं विधुमालेपनपाण्डुरं विधिः ।
भ्रमयत्युचित विदर्भजाननीराजनवर्द्धमानकम् । २६ ।
(द्वितीयः सर्गः, नैषधमहाकाव्यम्)

सीता की वेशवर्णना में वैशिष्ट्य— तत्कालीन राजकन्याओ के वेशविन्यास की समस्त विशिष्ट सामग्रियो के विवरण तथा उनके विनियोग की वर्णना 'वैदेहीश-बिळास' के दशम छान्द में बड़ी विचक्षणता से की गयी है । जनक-कन्या सीता सहज ही बचपन से अपनी दिव्यातिदिव्य गुणावली रूपी अलंकारो से विमण्डित हैं । नवोढा रामवधू सीता आज अपने सहजात गुणालकारों के सहित पार्थिव अलंकारो से विभूषित की जा रही हैं । इस वर्णना में उपेन्द्र के अलकारो के विनियोगज्ञान तथा उस ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिए बलिष्ठ शैली का प्रयोग वास्तव मे प्रशंस्य है ।

यह छान्द इतना लोकप्रिय है कि क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित, क्या युवक, क्या वृद्ध —सभी 'विभूषणपुष्पे या कान्ति जाण' नाम से अभिहित इस छान्द को मुखस्थ करके संगीत-समारोह में अक्सर गाते है ।

राजपरिवारों में उन दिनो (न्यूनाधिक मात्रा मे आजकल भी) माथामणि, किआपत्री तथा मोतिजाली नामक शिरोभूषण, झराकाठि नाम की जूड़ा की भूषणकाष्ठिकाएँ, वक्रचउँरा, चन्द्रझुम्पा आदि जूड़ा के आभूषण, वेण्टला (कर्णावतंस) आदि मुखमण्डल की शोभा को बढ़ानेवाले नाना प्रकार के अलंकारो का व्यवहार किया जाता था । भञ्जीय रचना में उन सब आलंकारों का विनियोग यथोचित आलंकारिक रीति मे वर्णित किया गया है ।

उद्धरणबाहुल्य के भय से हम यहाँ इस छान्द के दो ही मात्र पद दे रहे है, जो उपेन्द्र की वेशवर्णना-चातुरी का प्रदर्शन करने के लिए पर्याप्त हैं—

"बितुळ मथामणि माणिक्यर । बिभाग सीमन्त सिन्दूरगार ।
बन्दबस्ते भिड़ि पाट सूत्ररे । बिधुन्तुद गळ मित्र हस्तरे से ।
बिधिवशे किबा पड़ि ये ।
बकुळगर्भक सुधा उद्‌गारुछि भयरु न देइ छाड़ि ये । ५ ।
बिभूषि किआपत्री मोतिजाली । बिपिन तमाळर किबा झळि ।
बन्धनकृत पाश जाल दुइ । बिशिख झराकाठिकि देखाइ से ।
वक्रचउँरा हिँ धनु ये ।
बधिब धैर्य्यमृगकु बिन्धिबाकु एठारे करे अतनु ये । ६ ।"
(दशम छान्द, वै० बि०)

चरित्र-चित्रण मे वैशिष्ट्य

रामचन्द्र— 'वैदेहीश-बिळास' में कवि ने अभिव्यक्त किया है कि श्री रामचन्द्रजी अनुकूल नायक और उनकी पत्नी सीताजी सती नायिका हैं—

विशिष्टरे अनुकूळ पुंस दीनबन्धु (श्रीराम),
बिनोदर संगे घेनि (लेकर) हरे दिन बन्धु (सीता) ।
बश ध्यान मानसे बीर से (उन्हीं वीर मे) सती पदे,
बोले उपइन्द्र भञ्ज बेनि बिश (चालीस) पदे । ४० ।
(छान्द १९, वै० बि०)

क्षीरसागरशायी विष्णुजी ने देवताओं की विनती से प्रसन्न होकर उन लोगों की रक्षार्थ उन्हे जो वचन दिया था कि मै रामावतार में अरि (चक्र) धारण नही करूंगा और बिराज (गरुड़) पर नही चढूंगा, केवल वानरसेना-सह धनुष-शर लिये रावणसहित युद्ध करूँगा। अपनी इस प्रतिश्रुति से वे नही डिगे है। अपनी प्रतिश्रुति की रक्षा कर वे ससार के समक्ष ऊंचा आदर्श स्थापन कर गये है।

वीर श्री रामचन्द्रजी ने दण्डकारण्य मे जा राक्षसो का वध कर मुनियो की यज्ञरक्षा की थी। फिर अन्त मे महापराक्रमी राक्षसराज रावण का वध कर त्रिलोकवासियों की रक्षा की। इससे श्रीरामजी के लोकरक्षक गुणो का परिचय मिलता है।

श्रीरामजी जैसे वीर, वैसे ही प्रेमिक हैं। स्वयं एकपत्नीव्रत का पालन कर उन्होंने जगत को भी यह भारतीय आदर्श दिखाया है। राम-सीता का जीवन अत्यन्त निर्मल व पवित्र है। पति-पत्नी का आदर्श चरित्र, व्यवहार, रीति-नीति आदि पूर्ण मात्रा मे राम-सीता में प्रकटित हुई है।

रामसीता, दोनो परस्पर के प्रति आजीवन अनुगत रहेगे। न राम किसी दूसरी पत्नी के प्रति आसक्त होगे, न सीता दूसरे पुरुष के प्रति। इसके लिए दोनो दीपाग्नि के सामने सुहाग-सेज पर शपथ करते हैं—

> **बिदगध श्रीरामचन्द्र कहे, बन्धु जीवन थिबार ए देहे,**
> **बिळासिनी न करिबि आनकु, बोलि छुइं दीप-हुताशनकु। १२।**
> **बइदेही केशुं काढ़ि केतकी, बर्ण लिखित पोछि कस्तूरीकि,**
> **बळि नाहिं आने आजियाए त, बळाइबि जन्मे-जन्मे मो चित्त। १३।**
> (छान्द १५, बै० बि०)

कामविह्वला शूर्पणखा श्रीरामजी की इच्छानुसार किसी भी सुन्दरी नारी का रूप धारण कर सकेगी। उससे यह सुनकर श्री रामचन्द्रजी उससे भी अपने एक-पत्नीव्रत-आचरण के बारे मे समझाते हुए कहते हैं कि गगाजल चाहे कितना भी निर्मल क्यो न हो, परन्तु चातक पक्षी मेघ के मैले जल की आशा करता है। वैसे शूर्पणखा चाहे कितनी भी सुन्दरी क्यो न हो, रामजी हमेशा सीता ही को चाहते है—

> **"बोइले रघुनन्दन, रे रामाबर!**
> **ब्रत आचरण एकपत्नी मोहर।**
> **बिष्णुपदी जळ केड़े निर्मळ योषा,**
> **बारिद आबिळजळे चातक आशा॥"**

श्रीरामजी ने वनवासयोग्य वेश धारण कर अपनी सत्यरक्षा तथा त्याग का प्रारम्भिक परिचय दिया था। विष्णुजी का एक अवतार कपिलमुनि का अवतार है। उन्ही के वेश के प्रति श्रद्धा जताकर श्रीरामजी उन्ही के समान जटाविमण्डित हुए थे।

चित्रकूट मे भरतजी का आगमन देखकर लक्ष्मणजी ने अपने मन मे शंका की कि भरतजी 'मातृगुण' धारण कर रामजी से विवाद करने आ रहे है। श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी की अपेक्षा भरतजी को अधिक पहचाना था। सुतरां उन्होंने यह जता दिया कि लक्ष्मणजी की शका अमूलक है। इससे श्री रामचन्द्रजी के हृदय की महानुभवता तथा विचक्षण बुद्धि का परिचय मिलता है।

सीता-राम लक्ष्मी-नारायण हैं। अपनी ही माया से स्वय श्रीरामजी मानवजीवन मे अवश्यम्भावी सारे दु.खो का भोग कर रहे थे। अपनी ही माया से उन्होने रावण से सीता का हरण कराया। फिर भी, सीता-विरह से वे बिल्कुल अस्थिर हो उठे—

"बिधाता बिधान कला, के आन करिब।
बोलुं पिता 'हा राम!' 'हा राम!' गला जीब।
बेळ पड़िला लक्ष्मण। बोलु 'हा रामा!' 'हा रामा!' यिब मो पराण।२२।"
(छान्द २५, बै० बि०)

[हे लक्ष्मण! पिता दशरथ ने 'हा राम!', 'हा राम!' कहते हुए अपने प्राण त्यागे। अब वही समय आ पहुँचा, जब कि 'हा रामा!', 'हा रामा!' (हा पत्नी! हा पत्नी!) कहते-कहते मेरे प्राण भी छूट जाएँगे।]

अपनी ही माया के कारण श्रीरामजी अपनी विभूति को भूल जाते थे। वे मायाधीश हैं, मायाधीन नही। फिर जब मायाधीन होकर अपनी विभूति को इस तरह भूल जाते थे, तब साधारण मानव की तरह मानविक सुख-दुःख मे लिप्त हुए से प्रतीत हो रहे थे। परन्तु उनकी मायाधीनता एक निर्लिप्तता है, लोगो को अपनी लीलाओं का एक प्रदर्शन मात्र है। अर्थात् वे निर्लिप्त ढंग से मायाधीन होकर अपनी लीलाएँ दिखा रहे थे।

अहल्याशापमोचन, परशुराम का दर्पभग, शिवधनुभग, कबन्धमोक्षादि प्रसगो मे श्रीरामजी के विष्णुत्व ने आत्मप्रकाश लाभ किया है। शवरी के आश्रम मे उससे जूठे बेर खाकर उन्होने अपनी भक्तप्रीति का परिचय दिया है।

श्रीरामजी सच्चे मित्र हैं। सुग्रीवजी से मित्रतास्थापन कर उनके प्रति एक सन्मित्रजनोचित व्यवहार करने मे उन्होने कोई भी कसर नही रखी।

रावण-वध के उपरान्त विभीषणजी को लंकाराज्य का अर्पण करके उन्होंने भक्त तथा बन्धु के प्रति त्याग, सम्मान तथा कृतज्ञता का प्रदर्शन किया है।

सीताजी के उद्धार के बाद श्रीरामजी ने उनके अशोक वन से सैन्यो से घिरे हिंडोले में आने का अनुमोदन नही किया था और जिन सैन्य-सामन्तो ने उनके उद्धार के लिए अकथ कष्ट तथा त्याग स्वीकार किया था, उन्ही के दर्शनार्थ उन्हे पैदल आने के लिए आदेश दिया था। इससे श्रीरामजी का सेवक-स्नेह सिद्ध होता है। परन्तु सीता को अग्नि मे प्रवेश करने का जो आदेश उन्होंने दिया, वह आदेश अवश्य बहुत कठोर था और एक साधारण मानव के लिए असम्भव तथा अननुकरणीय है। फिर भी, श्रीरामजी ने लोकनिन्दा से बचने के लिए और सारे संसार के समक्ष अपना समुन्नत आदर्श उपस्थित करने के लिए ऐसा ही किया था।

संक्षेप मे भञ्जजी ने श्रीरामजी को 'बैदेहीश-बिळास' मे एक धीर, वीर, त्यागी, सहिष्णु, प्रेमिक, सत्यव्रत, दृढप्रतिज्ञ, जनकल्याणकारी, लोकरक्षक और लोकरंजक आदर्श मानव के रूप मे चित्रित किया है, जिन मानव के आदर्श गुणो के कारण उनकी ओर ईश्वरत्व बराबर खिच आता है। और फिर भगवान नारायणजी के मानवावतार होने के कारण उनमे इन गुणो का होना भी कवि ने चित्रित किया है।

सीता—सीता का आविर्भाव जैसा आश्चर्यजनक है, उनके जीवन की गति वैसी ही अद्भुत है। अयोनिसम्भूता सीता ने मनुष्य के सारे दुःखकष्ट बड़ी मात्रा मे सहे हैं। एक राजकन्या के रूप में पलकर जगत की समस्त सुखसुविधाएँ उन्हे उपलब्ध थीं। पृथिवीविख्यात युवराज श्री रामचन्द्रजी को पति के रूप में उन्होने प्राप्त किया था। परन्तु राज्याभिषेक के दिन उन्हे पतिदेव के सहित वन जाना पड़ा था। फिर भी, स्वामी के सहित प्रसन्न तथा सहास्य वदन से दुःखमय जीवन व्यतीत करने के लिए उन्होंने ठान लिया था।

सीता का चरित अतीव करुणरसात्मक है। स्वजनो, गुरुजनो आदि के प्रति वे

उचित श्रद्धा व सम्मान दिखाती और उनके उपदेश शिरोधार्य करती थी। विधि-विधानानुसार उन्होने यद्यपि मानव-शरीर के सारे दुःखकष्ट सहे हैं, फिर भी कोई दुर्गुण उन्होने कभी नही अपनाया। कोशल्या ने वनवास के पूर्व सीता को यह उपदेश दिया था—

"विपिनरे पीन-उरजा अपूर्व द्रब्य देखि न मागिबु।
बेनि सहोदर मध्यरे आदर विपथरे करिथिबु।"

[अयि पृथिवी-कन्या सीते ! वन मे अपूर्व द्रव्य देख, न माँगना। दुर्गम मार्ग में दोनो भाइयो के बीच मे रहना।]

(पद २९, छान्द १७, वैं० वि०)

परन्तु नारायण की मायाजनित लीला ही के कारण सीता का बुद्धिविभ्रम हुआ और वे मायामृग के प्रति आकृष्ट हुईं। फलतः सीताहरण-दुःख संघटित हुआ।

वनवास स्वेच्छाकृत होने पर भी, आनन्ददायक नही। अपना यह दुःखानुभव सीता ने श्रीरामजी के सामने प्रकाश किया था एव श्रीरामजी ने उन्हे सान्त्वना दी थी।

(छान्द २०, वैं० वि)

शूर्पणखा के अशोभनीय कार्यप्रसग मे कवि ने सीता को जगन्माता बताया है। वे अमित शक्ति के आधार हैं। परन्तु आज भगवान् के मानवावतारग्रहण के उद्देश्य-साधन के लिए उन्हे ये सब दु'खकष्ट भोगने पड रहे है। तिस पर शूर्पणखा ने शत्रुता का सूत्रपात कर दिया है ! सुतरा उसका अशुभ व विनाश अवश्यम्भावी ही है।

नारीसुलभ अलकारवेशभूषा-श्रद्धावश सीता ने अपनी जूडा के लिए मृग की चामर-प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की है और 'सीताहरण' जैसा दुर्विपाक संघटित हुआ है। 'सीताहरण के कारण रावणमरण' सुनिश्चित है। यह विधि का विधान है और प्रसग पुराणसम्मत भी है। फिर भी, सीता का ऐसा व्यवहार हम पसन्द नही कर सकते। खासकर लक्ष्मणजी के प्रति उनका आक्षेप अत्यन्त असुन्दर हुआ है। कपटी मायामृग से 'त्राहि लक्ष्मण' आवाज़ सुनकर मीता जब लक्ष्मण को राम के साहाय्यार्थ भेजती हैं, लक्ष्मण जाने को हिचकिचाते हैं। तब सीता उन्हे खरी-खोटी सुनाती हुई कहती हैं, "हे लक्ष्मण ! तुम कपट से वन में मेरे साथ आये हो। राम की मृत्यु होने से तुम मुझे लेकर भरत को दोगे।" यह आक्षेप सीता के योग्य नही—

"बोलन्ति लक्ष्मण, मैथिली भाषण छद्मे कि गमन,
बल्लभी करि मोते देव विचारि भरत सदन। ३२।"

(छान्द २४, वैं० वि०)

कवि ने अभिव्यक्त किया है कि सीता मे सुशीलताजनित धैर्य है। वे दुष्टमति रावण के अशोक वन मे फाँस से बँधी हिरनी की तरह भय से रही हैं। परन्तु अपनी सुशीलता के बल से धैर्यच्युता न होकर एक पत्थर की प्रतिमा जैसी रही हैं। ऐसे महासकट के समय ब्रह्माजी के आदेश से नारदजी उन्हे अमृत ला देते है। नारदजी से अमृत खाकर तथा सान्त्वनावाणी सुनकर सीता आश्वस्त होती हैं। अपने विरहकष्ट से वे जितनी दुःखिता न थी, उमसे कही अधिक व्यथिता इसके लिए होती हैं कि अपने से बिछोह के कारण श्रीरामजी कितने व्यथित होते होगे।

सीता की सतीत्वनिष्ठा विश्वनारीसमाज-स्तुत्य है। सीता सती ओड़िआ नारियो का प्रतिनिधित्व करती हैं। ओडिशा की काव्य-कविताएँ, पुराण, शास्त्र और आचार-विचार मे चरित्र व सतीत्व का भूयोभूय. निदर्शन देखकर हाउल साहब कहते हैं—

"ओडिआओं का चरित्र व सतीत्वनिष्ठा इस जगत में अतुलनीय है। (Oriyas have a standard of morality as high as Europe has ever done.)

कविसम्राट् ने 'बैदेहीश-बिळास' में सीता की सतीत्वनिष्ठा का जो निदर्शन वर्णित किया है, युगो-युगों तक वह जाज्वल्यमान रहकर कवि को अमर बनाएगा। रावण ने सीता को प्रवर्तना देने के लिए राक्षसियो को सलाह दी। राक्षसियो ने लंकेश्वर के प्रति आकृष्ट होने के लिए सीता को डाँटा। परन्तु सीता ने कितनी निर्भीकता से उन्हें उत्तर दिया कि सूर्य भले ही पश्चिम मे उदित होसकते हैं, पर्वत पर बिना जल के कमल खिल सकता है, मकड़ी के जाल से हाथी बांधा जा सकता है, मूर्ख के मुख से प्रबन्धकाव्य भले ही सुना जा सकता है; परन्तु श्रीराम के बिना करोड़ो कामदेवो के प्रति भी जानकी का मन आर्कषित नही होगा। और यह रावण तो नीच है ? इसकी बात कौन पूछे ?

" × × × **बोले सीता सितांशुसुमुखी।**
बरुण दिगे कि तरुण अरुण उदे हेबार के अछ देखि। गो बामाए।
बिकशिछि कि शिखरी शिखे। बिना जळरे पद्म ता सुखे।
बन्धन आशाबन्धरे कि कुंजर शुणा प्रबन्ध कि मूर्ख मुखे। गो बामाए।
बळि पड़िबा एमान हेब। बइदेही चित्त न टळिब।
बिना श्रीरामरे कोटिए कामरे ए त पामरे कि सम्भबिब। गो बामाए।"

(छान्द ३५, बै० बि०)

लंका मे श्रीरामजी ने रावण का वध किया। सीता को निष्कलका जानते हुए भी लोकनिन्दा से बचने के लिए श्रीरामजी ने अग्नि मे प्रवेश करने के लिए उन्हें आदेश दिया। बिना द्विधा के स्वामी का आदेश पालन करते हुए सीता ने अग्नि मे प्रवेश किया और अधिक तेजोमयी हो निकली। वे सदा पति की आज्ञानुवर्तिनी रही।

अयोध्या मे वापस आकर अपने हाथो से खाना पकाकर अनुचरवर्ग को खिलाना सीता की स्वावलम्बनशीलता तथा सेवक-स्नेह का निदर्शन है।

लक्ष्मण—लक्ष्मणजी का चरित्र पुराण-इतिहासो मे विरल है। उन्होंने अपने जीवन में भोग की अकांक्षा नही की है। केवल भ्रातृसेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता का अनुभव किया है और इसी को ही अपने जीवन के मूल मन्त्र के रूप में अपनाया है।

वे पुराणशास्त्र, राजनीति, धनुर्विद्या आदि में पारदर्शी थे। रामचन्द्रजी के सुयोग्य सहायक थे और परामर्शदाता भी। कठोर से कठोर परिस्थितियो में उनका राम के प्रति परामर्श बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

वनवास के समय श्रीराम-सीता से लक्ष्मण का कष्ट कही अधिक था। फिर भी, अपनी दृढ़ चरित्रवत्ता तथा अटल प्रतिज्ञा के बल से इन्हें बिना द्विधा के अपनाकर वे जगत के समक्ष ऊँचा आदर्श स्थापित कर गये हैं।

धनुर्भंग के समय श्रीरामजी के धनुष पर गुण चढाते समय लक्ष्मणजी ने अपने मर्यादाज्ञान तथा सूक्ष्म व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया है। उत्साहाधिक्य के कारण श्रीरामजी कही सिर झुकाकर धनुष पर प्रत्यंचा न चढा दे, यह आशंका करते हुए लक्ष्मणजी ने राम को समयोचित उपदेश दिया, "यहाँ हमारे सुमित्र कोई नही, सभी हमारे शत्रुओ के रूप मे स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। सुतरा यदि आप झुककर धनुष को धारण करेंगे, तो शत्रु लोग कहेंगे कि यह धनुष को प्रणाम कर रहा है।" सुतरा बिना झुके धनुष धारण करने के लिए उन्होने श्रीरामजी को उपदेश दिया है—

× × × "बताइ सुमित्रावत्स नाहिं सुमित्रारि स्वच्छ,
नम्रे घइले बाछिबे चापे ओळगे।"
(पद ३३, छान्द ९, वै० बि०)

लक्ष्मणजी का मर्यादाज्ञान विवाहदिवस के निर्णय के प्रसंग मे और भी स्पष्ट हो जाता है। विश्वामित्रजी और जनकजी धनुषभंग के परदिन विवाहोत्सव के सपादन के लिए प्रस्ताव देते है, तो लक्ष्मणजी पिता दशरथ की अनुपस्थिति मे विवाहोत्सव का सपादन अनुचित तथा असगत ठहराते हैं। इसलिए सबसे पहले पिताजी को खबर भेजनी चाहिए—

"बिभा मंगळ कालि परि करिबा बिश्वामित्रे कहे जनक,
विरोधिले शुणि से वाणी लक्ष्मण कि बिभा न जाणि जनक।"
(पद २०, छान्द ११, बै० बि०)

वनवास के लिए जाते समय, सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो सब उपदेश दिए हैं, लक्ष्मणजी ने उन सबका अक्षरश: पालन किया है—

"बोइले सुमित्रे पुत्रे सेबिथिबु (सेवा करते रहना) श्रीराममानस जाणि,
बिनिद्रें (अनिद्र होकर) सर्व शर्वरीकि हरिबु (सब रातें बिताना) होइ धनुशरपाणि।
बधू याउछि (जा रही है) सगे। बड़ मायाबी राक्षसपुंगे।"
(पद ३०, छान्द १७, बै० बि०)

मायामृग के प्रसग मे सीता के लक्ष्मण पर आक्षेप से उन्होने भाभी को समुचित उत्तर दिया है— "हम चार भाई एक आत्मा हैं। आप हमे पृथक् कर रही हैं; इसलिए आप दूषित होगी।"

× × × "बाह्य कर, एक आत्मा, दूषि हेब लक्ष्मण भाषित।"
(पद ३३, छान्द २४, बै० बि०)

लक्ष्मणजी का यह सक्षिप्त उत्तर उनकी मर्यादावृद्धि करता है और उनके भ्रातृ-प्रेम का यथेष्ट परिचय देता है।

सीताजी के वचनो से क्षुब्ध होकर भी, लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी की सहायता के लिए चले जाते है। वे रामजी से 'सीता' शब्द का अर्थ (पिप्पली, लांगल) विश्लेषण करते हुए उनका अपने प्रति कटु व्यवहार प्रकाश करते हैं। मृगशिकार के लिए राम ने पत्नी का वचन सुना था और माना था, इसके लिए वे सच्चे भ्रातृभक्त होते हुए भी उन्हे दोषी ठहराते हैं। देवताओ के नीतिवचन वे उन्हे सुनाते हैं, परन्तु अपना निर्मम मत व्यक्त नही करते। इससे उनकी विनम्रतापूर्ण स्पष्टवादिता प्रमाणित होती है—

"वैदेही प्रमाण फळे कटु करि जात।
विदारित हृदक्षेत्र सीता नाम सत।
बिना भक्षुं जनें बामा। बाणी सुधा बोले, सुरमते नुहें समा। ६।"
(छान्द २५, बै०बि०)

[लोगो ने सचमुच अमृत नही चखा है। इसलिए वे स्त्रीवचन को अमृत-सम मानते हैं। परन्तु देवगण ने, जिन्होने अमृत वास्तव मे खाया है, स्त्रियों के वचन को ऐसा नही ठहराते।]

इस उक्ति मे कितनी वास्तवता है, आज लक्ष्मणजी संसार मे अपने सर्वस्व, भ्राता श्रीराम को कितने स्पष्ट, परन्तु विनम्र ढंग से सुना देते है!

सुग्रीव के आने की अवधि बीत जाती है। लक्ष्मणजी क्रोध से उनके प्रासाद में जा पहुँचते हैं। प्रहरी द्विविद वानर से अपना परवर्ती जो बलरामजन्मप्रसग बताते हैं, उससे उनकी दूरदृष्टि की सूचना मिल जाती है।

लंकापुर मे लक्ष्मणजी ने अपने अनुपम रणकौशल का परिचय दिया है।

संक्षेपत: भञ्जकवि ने लक्ष्मणजी को एक जितेन्द्रिय, रामभक्त, भ्रातृप्रेमी, मर्यादावन्त, विचक्षण, वीर, सत्यनिष्ठ और संयमी पुरुष के रूप मे चित्रित किया है।

हनुमान्— रामभक्त हनुमान्‌जी का चरित्र रामायण में कम महत्त्वपूर्ण नही। भञ्जजी ने स्वरचित 'वैदेहीश-विळास' महाकाव्य मे उनको श्रीरामजी के एक विचक्षण, बुद्धिमान् तथा विश्वस्त बन्धु के रूप में चित्रित किया है। उनकी कर्तव्यनिष्ठा पर श्रीरामजी का अटूट विश्वास था। सीता की खोज में हनुमान्‌जी और अंगदजी, दोनों वानरमुख्य गये थे। परन्तु श्रीरामजी ने अपने हाथ की अंगूठी सीता को देने के लिए हनुमान्‌जी ही के हाथ दी थी और उन्ही को अपने दाम्पत्य जीवन में बीती स्मरणीय घटनाओं की सूचना दी थी। इससे उनके प्रति श्रीरामजी की श्रद्धा तथा अटल विश्वास प्रमाणित होता है।

हनुमान्‌जी के असामान्य पराक्रम का प्रमाण उनके समुद्रलंघन से मिलता है। रावण ने तब तक अपने लंकादुर्ग को अजेय समझा था। हनुमान्‌जी ने उनकी मदान्धता चूर कर दी थी।

लका मे सीता की खोज मे हनुमान्‌जी ने अपनी बुद्धि, कौशल तथा विक्रम का प्रयोग किया है। अशोक वन मे वृक्ष पर सीता के सहित उनके कथोपकथन से प्रतीत होता है कि वे सीता के भी विश्वासभाजन बन सके थे। उनकी भक्ति तथा वीरता अतुलनीय थी। सुतरां दूत के कर्तव्य संपादन मे वे सफल हो सके थे। सीता का सान्निध्य लाभ कर वे आनन्दविभोर हो उठे थे। उनके हृदय की स्वच्छता, प्रगाढ़ भक्ति, श्रद्धा तथा विश्वास देख सीता ने भी उनके हाथ श्रीरामजी को अपने गुप्त संकेत तथा माथामणि भेजने में द्विधा नही की थी। लकादहन उनकी असीम साहसिकता का परिचय देता है।

लक्ष्मण-इन्द्रजित युद्ध में उन्होने अनुपम रणकौशल दिखाते हुए इन्द्रजित का रथ तोड़ दिया था। रावण के शक्ति-प्रयोग से विद्ध लक्ष्मणजी को बचाने के लिए वे गन्धमादन पर्वत उखाड़ लाये थे एवं तत्रस्थ विशल्यकरणी दवा से लक्ष्मण को व्याधिमुक्त किया था। इस कार्य से उनके साहस तथा कौशल का परिचय मिलता है। कालनेमि राक्षस के वध से भी उनकी वीरता प्रमाणित होती है।

सीता के उद्धार के कार्य मे हनुमान्‌जी की भूमिका अतीव महत्त्वपूर्ण है।

भञ्जकवि ने हनुमान्‌जी को एक आदर्श रामभक्त, वीर, प्रत्युत्पन्नमति, सत्यवादी, न्यायवन्त, श्रद्धावान् तथा विश्वासी पुरुष के रूप मे चित्रित किया है। उनका महोज्ज्वल चरित्र युगों-युगो तक मानवसमाज को प्रेरित करता रहेगा।

रावण— 'वैदेहीश-विळास' में श्रीरामजी नायक और रावण प्रतिनायक है। भञ्जजी ने रावण को एकाधार में प्रचण्ड पराक्रमी वीर, रसिक-चूड़ामणि पुरुष, तर्कपण्डित तथा राजनीति-पारगत राजा और अन्त मे ज्ञानगम्भीर तत्त्वद्रष्टा के रूप मे चित्रित किया है। 'वैदेहीश-विळास' के प्रथम छान्द के २१वें पद में कवि ने रावण के प्रख्यात यशसंपद के प्रतीक 'मेघदण्ड' नामक प्राचीर तथा उसके दुर्गम दुर्ग की परिखा 'सागर' का नाम उल्लेख किया है। १७वें पद में उसे 'महादुर्जय' बताया गया है।

रावण जसा पराक्रमी, वैसा ही सुचतुर भोगी है। क्रोधोन्मत्त होने पर भी सीता के समीप वह बैठ उनसे पूछता है, अरी वरांगि! तुम्हारे चित्त मे मेरे प्रति जरा भी कृपा क्यो नही हो रही है?

"वसइ भाषइ दैत्य, न बसइ किपाँ कृपा मोहठारे चित्ते रे।
वरांगि। ५।"

(छान्द ३५, बै० बि०)

रावण बहुत पत्नियो का नायक है। वही विषय लक्ष्य करके वह सीता से बोल रहा है— "तुम यदि यह शका करती हो कि यह रावण तो बहुत पत्नियो का पति है, इसे मैं कहाँ तक विश्वास करूँ? परन्तु इसके बारे में तुम्हे सन्देह न करना चाहिए। मेरी और सारी नायिकाएँ विप्रलब्धा होगी, और तुम्ही स्वाधीनभर्तृका होगी।"

"बहु नायिका वल्लभ शंका।
बहु विमुख पाञ्चि रसिका।
विप्रलब्धा सम सुषम समस्ते हेबे हेबु स्वाधीनभर्त्तृका रे।
बरांगि। ९।"

(छान्द ३५, बै० बि०)

उदाहरण के तौर पर रावण कहता है कि सत्ताइस नक्षत्रो के पति है चन्द्रमा; फिर भी रोहिणी है उनकी प्रियतमा। उसी तरह बहुत पत्नियो के होते हुए भी सीता का उसकी प्रियतमा होना सुनिश्चित है। परन्तु जब सीता की भंगी से उसे मालूम होता है कि उसकी प्ररोचना वाणी उन्हे सता रही है, वह क्रोध से वापस हो जाता है। लौटते वक्त वह राक्षसियो से बोलता है—

"वश त (तो) नोहिला (नही हुई) स्नेहरे (स्नेह से) कहन्ते (कहते)
एबे (अब) रह•रे भय देखाइ···।"

सीता को वश करने के लिए जहाँ रावण के उद्यम मे तत्परता, शान्तभाव तथा गाम्भीर्य परिस्फुट हुआ है, वही उनके प्रति उसके आन्तरिक भय की भी सूचना मिलती है। वेदमती की तरह सीता कही उसे शाप न दे दे, इस भय से वह उठ पड़ा है। वेदमती, नन्दी तथा अनरण्य राजा के अभिशाप से परोक्ष मे, और ब्रह्मा के उपदेश से प्रत्यक्ष से 'सीताहरण, रावणमरण' रूपी भविष्य सूचना या चेतावनी सामने नाच उठती है। रावण की इस सजग आत्मचेतना को ऐसी चतुराई के साथ प्रच्छन्न रूप से भञ्जजी ने विकसित किया है।

कविवर उपेन्द्र भञ्ज ने 'बैदेहीश-बिळास' के ४८वें छान्द मे रावण के चरित्र का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया है, जिससे उसकी मर्यादा प्रकटित हुई है। रावण की वल्लभीश्रेष्ठा मन्दोदरी वंशनाश के कारण उत्पन्न रावण के मनस्ताप का मौका उठाकर उससे कहती है, "आप तो बालक नही है, निर्मल साफ जल छोड़ कीचड़ मे क्यो डूब रहे हैं?" —और सीता का प्रत्यर्पण करने के लिए उसे उपदेश देती है। रावण बोलता है — "रमणीमणि सीता एक बहुमूल्य मणि है। उसे मैं चुरा लाया हूँ। लौटा देने पर क्षत्रिय लोग मेरी हँसी उडाएँगे और उस प्रत्यर्पण से मेरी वीरता घट जाएगी।" रावण की अन्य एक प्रियतमा नारकासुर की कन्या उसे उपदेश देती है, "प्रियतम! विद्युज्जिह्व से एक मायासीता का निर्माण कराके आप असली सीता का अभाव मिटावें एव असली सीता को राम के सुपुर्द कर दें।" परन्तु रावण का सीता-लोभ उसके हृदय की इतनी गहराई मे धँस गया है कि वह तर्क-सगत ढंग से सुवर्णकान्ति वाली सीता की

काली छाया-सदशा और जल का भ्रम पैदा करनेवाली मृगतृष्णा-सदृशा मायासीता के द्वारा अपनी काम-तृषा मिटाना इन्कार कर देता है। धीरे-धीरे काया और छाया, जल व मृगतृष्णा, सीता व मायासीता एवं सत्य व असत्य आदि के विवेक-विचारो से उसके मन मे सुज्ञान का उदय होता है।

पद ४५ में वेदमती की स्मृति का रावण के मन मे उद्रेक हुआ है। उस स्मृति के सहित यह धारणा कि श्रीरामजी परंब्रह्म हैं, सीता लक्ष्मी-स्वरूपिणी है और रावण उनका युगे-युगे दास है, अंगागी रूप से जड़ित है। इस धारणा के वश होकर रावण निगूढ़ तत्त्वज्ञान प्रकाश करता है—

"बोइला। बिष्णु मो मारणे अभिराम राममूर्त्ति,
वैकुण्ठ सम्पत्तिकि ए सम्पत्ति-बिपत्ति ये।"

इहजगत के भोग का प्रतीक रावण का सम्पद पारत्रिक आनन्द के प्रतीक वैकुण्ठ-सम्पद के लिए सम्पूर्ण प्रतिकूल है। उपर्युक्त पद मे रावण ने यह प्रकाश किया है। इस सम्पद से वह छुटकारा पाकर विष्णुजी से शीघ्र मिलना अवश्य चाहता है; परन्तु विभीषण के सदृश श्रीरामजी का शरणापन्न होकर नही; प्रत्युत वैरभाव से, सीता को वापस न देकर। 'अध्यात्म रामायण' मे ठीक वही बात व्यासदेव ने बतायी है—

"इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो,
रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि,
द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत्॥"

(अर्थात् यह चिन्ता करते हुए रावण ने जाना कि श्रीरामजी स्वयं परमेश्वर हरि हैं। उसने सिद्धान्त किया कि मैं उनसे विरोध करके उन्हे शीघ्र ही प्राप्त करूँगा, क्योकि भक्ति से वे शीघ्र प्रसन्न नही होते।)

इसलिए रावण ने अपनी पत्नियों को उपपति चुनने के लिए परामर्श दिया है। क्योकि वे अगर उसके शव के सहित अग्नि मे प्रवेश करें, तो भी परजन्म में वे रावण का संगलाभ नहीं कर सकती। रामजी के बाण से मरकर वह विष्णुलोक प्राप्त होगा और उसका पुनर्जन्म नही होगा। रावण फिर बोलता है—

"बोइला। वारिद बारिदानरे प्रमत्त चातकी।
विहरइ सुरनदी सुरसे आउ कि ये॥"

(अर्थात् ससार से विरक्त ब्रह्मलोकपथिक जीव मायाजनित सुख से आबद्ध होकर नही रह सकता। जागतिक सम्पद के प्रति उसके मन में वितृष्णा आती है।)

रावण के मन में आज वही योगिजनाकांक्षित वैराग्य का उदय हुआ है।

'महानाटक' मे इन्द्रजित-वध के हेतु शोकातुरा मन्दोदरी रावण से बोल रही है—

"सोऽयं नष्टे कुलेऽस्मिन् कथमिह कथने जायते ते विवेकः।"

(वंशनाश हुआ, फिर भी आपके विवेक का उदय नही हुआ?)

उत्तर मे रावण बोल रहा है—

"नीतिज्ञे कथयस्व देवि कतरः पक्षो गृहीतस्त्वया,
श्रेयो ब्रूहि मम प्रियोऽपि भविता को वाऽधुना तद्वद।"

(पद ७५, नवम अक, महानाटक)

(अर्थात् अयि नीतिज्ञे देवि ! राम-बाण से मरकर वैकुण्ठपुर जाना और सीता-समर्पणपूर्वक वसुन्धरा भोग करना —इन दोनों में से तुम किसे श्रेयस्कर समझ रही हो ?)

रावण आगे कहता है—

"जानामि सीतां जनकप्रसूतां, जानामि रामं मधुसूदनं च।
जानाम्यहं चापि नरस्य वध्यस्तथापि सीतां न समर्पयामि ॥"

(जनककन्या सीता को जानता हूँ, राम तथा मधुसूदन को जानता हूँ; यह भी जानता हूँ कि नर के द्वारा मेरा वध होगा ही; फिर भी, मैं सीता को समर्पित नहीं करूँगा।)

(पद ७६, नवमांक, महानाटक)

भञ्जजी ने स्वरचित 'वैदेहीश-विळास' मे 'महानाटक' के अनुरूप पद लिखे हैं, जिसका तात्पर्य यों है— "यह ससार ब्रह्माजी की कल्पना से उद्भूत है। यह न वास्तव है, न तो सत्य भी। ब्रह्मप्रलय मे यही कल्पना-उद्भूत संसार ध्वंस-प्राप्त होता है। ब्रह्माजी के वरदान से रावण की आयु छप्पन गण्डा (५६×४) युग मात्र है। वह दर्शाते हुए रावण ने कहा है कि जब ससार अनित्य और ध्वंसशील है, मैं सीता को लौटाकर अब का राम-बाण से मर वैकुण्ठ प्राप्त करने का शुभावसर क्यों खोऊं ? (बाहुडाइ हुडिवि कि एडे शुभ योग ? —पद ६७, छान्द ४८, वै० वि०)।"

और रावण ने रोती हुई रमणियो का अश्रुपात देखकर चन्द्रतुल्य हास्य प्रकाश किया है और फिर तलवार झमकाते हुए अपना व्यावहारिक वीररस उत्पन्न किया है— "आज रण में अवश्य शत्रुवध करूँगा। उसे शरण देनेवाला कोई नही।"

बोइला। बिहि चन्द्रहास चन्द्रहास झमकाइ,
बिच्छेदिबि शत्रु रणे शरण के नाहिँ ये। ६९।

कविसम्राट् की कुशल तूलिका के स्पर्श से 'वैदेहीश-विळास' मे रावणचरित्र का जैसा विकाश दिखाया गया है, वास्तव मे वह अनुपम है। बहुशास्त्र-पारंगत, अगाध विवेकविचारसमुन्नत, अनुपातज्ञानान्वित और महाप्रतिभा-प्रभा से समुज्ज्वल कविवर उपेन्द्र भञ्ज जी ने रावण को एक महायोगी, नित्यानित्यविवेक-विचारवन्त, ज्ञानी, एकनिष्ठ भक्त और सुचतुरकर्मी के रूप मे चित्रित किया है। कविसम्राट्कृत काव्य के अन्यान्य चरित्र जैसे जीवन्त तथा आदर्श हैं, उनसे रावण का चरित्र किसी भी गुण में न्यून नही।

'वैदेहीश-विळास' में प्रकृति-चित्रण

कविसम्राट् उपेन्द्र ने अपने काव्यो मे प्रकृति की अवहेलना नही की है। उनसे रचित प्रत्येक काव्य या कविता मे प्रकृति का चित्रण मिलता है। कवि ने उत्कल के जिस अश में जन्मग्रहण किया था तथा जीवन व्यतीत किया था, वह उत्कल-प्रकृति का चिररहस्यस्थल है। गजाम के पर्वतमालावेष्टित अरण्य से नयागढ तक की वनभूमि की प्राकृतिक सुषमा ने उनकी सौन्दर्यग्राहकता की वृद्धि की थी। ऋतुचित्रण के मिस उन्होने प्रकृति का चित्रण भी किया है। संस्कृतसाहित्य के परिशीलन से कालिदास, भवभूति आदि कवियो की प्रकृतिवर्णना ने कवि को प्रभावित किया था। स्थल-विशेषो पर कवि की प्रकृतिवर्णना अत्यन्त ऊँची कोटि की हुई है। 'सुभद्रापरिणय' काव्य मे कविकृत रैवत पर्वत की वर्णना, 'प्रेमसुधानिधि' काव्य मे इलावृत्तखण्ड की वर्णना, 'वैदेहीश-विळास' मे चित्रकूट की वर्णना, 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' मे हिमालय के

पाददेश की वर्णना कवि की प्रकृति-पर्यवेक्षिका शक्ति का परिचय देती है। 'सुभद्रा-परिणय' में प्रदत्त रैवत पर्वत की वर्णना 'कुमारसम्भव' में प्रदत्त हिमालय-वर्णना से मिलती-जुलती-सी प्रतीत होती है।

कवि की वर्णनाशक्ति अत्यन्त बहुमुखी और मनोज्ञ थी। प्रभात, सन्ध्या और षड्ऋतु की वर्णना मे कवि कुशल थे। 'वैदेहीश-बिळास' मे प्रभात-वर्णना की मनोहरता देखिए—

"बिध्वंसन तामस क्रमशे। बिकर्त्तन उदे होइ आसे।
बिश्वचतुरी उकुटाइ कस्तूरी घेने कुकुम चातुरीबशे से।
बिग्रहे। २६।
बृषा बाहार चढ़ि कुञ्जर। व्यकत कि ता शिर-सिन्दूर।
बहे रक्ताम्बरे छत्र आड़म्बरे अम्बरे कि दिग परिचार से।
बिराजे। २७।
बाहारिले ऐन्द्रिए आनन्द। बाजे देबाळये शंखबृन्द।
बञ्चिले कोड़े लुचिले रात्रिचरे न मुञ्चिले कवा भय हृद से।
बासरे। २८।"

[सूर्योदय होने पर अन्धकार धीरे-धीरे गायब होने लगा। रक्तवर्णरञ्जित पूर्वदिशा को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो पृथिवीरूपिणी चतुर स्त्री ने अपने शरीर में (सूर्योदय के पहले) पोती हुई कस्तूरी को हटाकर अपने रंग को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए उसमें चतुराईवश रोली पोत ली हो।

धीरे-धीरे सूर्य पूर्णरूपेण उदित हुए। सूर्यमण्डल को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो इन्द्रजी सिन्दूररंजितमस्तक ऐरावत पर बैठे निकल पड़े हो और दिशाओ रूपी परिजनों ने लाल रंग के वस्त्रो से बने राजछत्र को आकाश मे ठाट से धारण किया हो!

सूर्य को उदित होते देखकर कौवे आनन्द से निकले। देवमन्दिरों मे शंखसमूह बजने लगे। पेड़ों के खोंड़र में उल्लू छिपकर बच गये। —इत्यादि।]

(छान्द ३५, बै० बि०)

इसके बाद ३० और ३१ पदो मे सुविस्तृत गण्डकी नदी में स्नान करने के लिए जाते समय सीता की जो रूपवर्णना की गयी है, उससे कवि ने कौशल से सीता के मनस्तत्त्व के चित्रण का चमत्कारी समन्वय कर दिया है।

सन्ध्या-वर्णना— "व्यासक्त अनुरागरे सविता ए काळे।
बळिपुष्ट बोलि निज निवासकु चळे ये। २१।
बुड़ाइ कि सिन्धुजळे ताम्रपात्र रबि,
बिभा सीतारामर निकट धाता भाबि ये। २२।
बारिधिज उदे अंक-दूर्बाबळ भरि,
बन्दाइब रूपास्थाळी प्राचीनारी धरि ये। २३।"

[इस समय सूर्यास्त को देख प्रतीत हुआ, मानो विधाता ने यह जानकर कि सीता-राम का विवाह निकट हो गया है, सूर्य रूपी ताँबे पात्र को समुद्रजल रूपी घृतपात्र में डुबो दिया।

अब चन्द्रोदय होने से प्रतीत हुआ, मानो प्राची-रमणी चन्द्र रूपी चाँदी की थाली में अंक (चन्द्र-कलंक) रूपी दूब लेकर राम-सीता की आरती उतारेगी।]

(छान्द १४, बै० बि०)

राजप्रासादवास और वनवास की तुलना—'वैदेहीश-विळास' के २०वें छान्द में यमकालकार से विमण्डित पदो की छटा वास्तव में उपभोग्य है। इसमें कवि ने श्रीरामजी के मुख मे राजप्रासादवास तथा वनवास की तुलना करायी है। अलकारों के माध्यम से वन की प्रकृति को वर्णना बेजोड हुई है। इसमे कवि ने 'विजनस्थान', 'मलयपर्वत', 'गन्धमार्द्दन', 'चन्द्रातप' (चन्द्रकिरण). 'सहचरी-कुळ' (झिंटीवृक्षसमूह) आदि प्राकृतिक वस्तुओ की शृगाररस के उद्दीपन-विभावो के रूप मे कल्पना की है।

ऊनविंश छान्द मे माळयमक के माध्यम से चित्रकूट वन की वर्णना की मनोहरता देखिए—

विचारइ (विचार करता है) माळयमकरे कवि मने।
बुले (घूमते हैं) राम राम रामनेत्री घेनि (लेकर) वने ये।

बृहद्‌भानु भानु भानु प्रभाताप नाहिँ।
बृत तमाळ माळ माळती लता यहिँ ये। १।
वहइ निर्झर झर झर अविरत।
बिशेष तरग रंग रंगणी शोभित ये।
बहि चन्द्र चन्द्र चन्द्र शीतळकु वात।
बहे मन्द मन्द मन्दसुत करे श्रुत ये। २।
बिञ्चे घन घन घन कुशकण यथा।
बृष्टि मधुर मधुर मधुरजे तथा ये।
बिभ्राजित भृंग भृंग भृंग करे केळि।
बनी वनी वनिता कि पुष्प हासे झळि ये। ३।

(विशदार्थ के लिए 'वैदेहीश-विळास' का पाठ तथा टीका देखिए।)

उपेन्द्रकृत वैदेहीश-विळास' मे प्रभात-सन्ध्या आदि कालो चित्रकूट, पंचवटी, दण्डकारण्य आदि वनों एवं गोदावरी, गंगा आदि नदियो की वर्णना मे वैचित्र्य तथा वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है। नवम सर्ग के प्रारम्भ मे कवि ने गगा नदी का अत्यन्त सक्षिप्त, परन्तु रसपूर्ण और अलकार-सुशोभित वर्णन दिया है—

"बितळकु आलिंगन फरि जाह्नवी शोभन
हरे सुरवरताप चारुधारा से,
बहे मकरकेतन उच्छन्न रतिसमान
पूरित होइछि पुणि अशेष रसे,
बिध हैमवती पदरे, विषकण्ठ तोषदानी बेनि मतरे। १।"

यहाँ कवि ने गंगा के नाम, उत्पत्तिस्थल, जल की गम्भीरता व शीतलता, जल में जलजीवो के विहार आदि विषयो का भव्य वर्णन किया है। यह प्रसंग कवित्वपूर्ण व भावगर्भक होकर सुधिवर्ग का मन हरण करता है।

मनुष्य के सुख-दुःख के प्रति प्रकृति संवेदनशील है। पशु-पक्षी, कीड़े, तरुलताएँ, क्या जड, क्या चेतन, सभी श्रीरामजी की उपस्थित विपदा मे सहायता करने के लिए जैसे उत्कण्ठित हो निकल पड़े हैं। यहाँ तक कि कवि ने रामचन्द्रजी सहित बगले, जटायु, मुर्गे आदि का कथोपकथन कराया है।

'वैदेहीश-विळास' (छान्द ३१) मे वर्णित 'बक की वार्ता' प्रसग केवल ओड़िआ साहित्य मे ही नही, समूचे भारतीय साहित्य मे, हमारी धारणा मे समग्र विश्वसाहित्य-भण्डार मे भी एक अनमोल रत्न है—

"बके बसिथिला ध्रुब उपरे। बिष्णुपदकु भजिला उत्तारे।
बळक्ष पक्षकु अंगरे बहि। बहन से तम नाशन बिहि।
बकता ए गिर। बिश्राम बार्त्ता कहिबा सुन्दर।१।
बधुँ काम धर्म अछि जीवने। बधू काम बशे भ्रम ए बने।
बाउनुअछ येउँ रमणीये। बिशेष शोभा तहुँ रमणी ए।
बिशबाहु रथे। बिलोकिछि गला दक्षिण पथे।२।
बिष प्रसून इन्दु निति देखे। बिलक्ष्य प्रसन्न न थिला मुखे।
बाष्प हेउछि नयनु जनिता। बोलन्ति मीन उद्‌गारे मुकुता।
बड़ ऊणा सेहि। बारिरे लुचे धरि भक्षे मुहिं।३।
बास चहटि अंगु याउथिला। बेढ़िथिले रथे भ्रमर-माळा।
बर्ण झटक बिजुळिरे नाहिँ। बारिद निकटे देखिछि मुहिँ।
बीणा कि मधुर। बाहारुथिला येउँ रामस्वर।४।
बोलिब तु बीणा शुणिलु काहुँ। बाजइ सपतस्वररे सेहु।
बर्षाभू धैवत मयूर षड्ज। बनप्रियरे पञ्चम सहज।
बाजुछि मो कर्णे। बिधिरे एहिपरि आउमाने।५।
बार्त्ता शुणि बर याचुँ कृपाळु। बसारे बर्षारे आहार मिळु।
बळाका भाषुँ आज्ञा देले हेउ। बकी चतुरमास आणि देउ।
बल्लभी उच्छिष्ट। बोलु बोइले पान करि ओष्ठ।८।"

[श्रीरामजी सीता का सौन्दर्य बिलखते हुए एवं पशु-पक्षियो से उनका समाचार पूछते हुए वन में घूमते थे। एक बगले ने उनसे कहा, "हे सुन्दर! मैं आपकी प्रिया का सन्देश आपको दूंगा, बैठे सुनिए। मैंने रावण को एक रमणीया रमणी को रथ में बैठाये ले जाते हुए देखा है। उस रमणी के अप्रसन्न वदन से भी पद्म या चन्द्र तुलनीय नहीं। मीन का मुक्ता उगलना उनके विगलित अश्रुविन्दु से समान नही और वह मीन उनके नयनों से भी समान नही। इसलिए मीन जल मे लज्जा से छिपता है और मैं उसे पकड़ खाता हूँ। उनके शरीर की कान्ति बिजली की चमक में भी नही और उनके कण्ठ से निकल रहे 'राम', 'राम' स्वर से वीणा की मधुरता कुछ भी नही। आप पूछ सकते हैं— 'तू तो एक मामूली पक्षी है, तूने वीणा का स्वर कैसे सुना?' परन्तु मैं जानता हूँ कि वीणा सात स्वरो में बजती है। मैंने मेढक का धैवत स्वर, मयूर का षड्ज स्वर, कोयल का पञ्चम स्वर, गाय का ऋषभ स्वर, बकरे का गान्धार स्वर, क्रौञ्च का मध्यम स्वर और हाथी का निषाद स्वर सुना है। परन्तु उस रमणी के स्वर की मधुरता की तुलना मे ये सब तुच्छ हैं।"]

सीता का समाचार सुनकर श्रीरामजी ने उससे वरदान मांगने को कहा, तो उसने कहा, "बरसात में मुझे अपने घोसले में रहते हुए भी खाना मिल जाय।" कृपालु ने इसे मंजूर कर लिया— "हाँ, बगली बरसात के चार महीनो तक तुझे खाना ला देगी।"

इसमे भाषा का सौन्दर्य, भाव का माधुर्य और वर्णना का चातुर्य उपभोग्य है। कवि ने इसमे अपने प्राणीविज्ञान मे पाण्डित्य का परिचय भी दिया है। कृतज्ञता के निदर्शनस्वरूप प्रभु श्रीरामजी ने बगले की खाद्यसमस्या का समाधान करते हुए जगत को ये शिक्षाएँ दी हैं— १. कल्याणकर कार्यों के लिए मनुष्य को कृतज्ञ रहना चाहिए, २. विपत्तिकालीन बन्धु ही वास्तव में बन्धु है।

'बैदेहीश-बिळास' में षड्ऋतु की वर्णना का अभाव नही। २९वे छान्द में विरोधाभास अलंकार मे वर्णित वर्षाऋतु प्रसग और ३०वे छान्द मे वर्णित शरत्काल

प्रसंग वैचित्र्यपूर्ण है। ३४वें छान्द में वसन्त ऋतु की जो वर्णना की गयी है, वह अतुलनीय है। पद ४ मे कवि ने सीता की वसन्तकालीन प्रभात के रूप में वर्णना की है। अन्यान्य स्थलो मे ग्रीष्म, हेमन्त और शीत की वर्णनाएं भी उपलब्ध हैं।

प्रकृति की इन साधारण वर्णनाओ के अतिरिक्त कवि ने नारी के अंगों की और नारी की प्रकृति के एक-एक अंश के रूप मे कल्पना की है। जैसे, उन्होने नारी की पुष्करिणी या सागर, उसके स्तन की पर्वत, वेणी की यमुना की लहर और उदर की पद्म-पत्र के रूप मे कल्पना की है। यह अलकारशास्त्रसम्मत तो है ही। इसके अलावे इसमे एक विशेषता यह है कि वे नारी के अगों को प्रकृति के आदर्श विकाश अथवा अभिन्न अंगो के रूप में देखते थे। 'सुभद्रापरिणय' के चतुर्थ छान्द में कवि ने अद्भुत उपमा के सहारे सुभद्रा की सात प्रकार के फूलों, फलो और पक्षियो के समन्वय के रूप मे कल्पना की है।

संक्षेपत: प्रकृति की वर्णना मे कवि की सिद्धहस्तता स्पष्ट है। सभी क्षेत्रो में प्राकृतिक चित्र सब जीवन्त हो उठे है और पाठक के मन मे विभिन्न भावराजिका उदय करते हैं। अंग्रेजी साहित्य के कवियों ने प्रकृति को जिस दृष्टि से देखा है, कविसम्राट् उपेन्द्र ने भी प्रकृति के प्रति वही दृष्टिकोण अपनाया है। प्राकृतिक दृश्यों के बाह्य रूप और प्रकृति तथा मानव के चिरन्तन सम्पर्क, दोनो को रूप देने में कविसम्राट् की बलिष्ठ लेखनी सक्रिय हो उठी है। भञ्जीय प्रकृति-वर्णना में एक साथ मनस्तात्त्विक चित्रण, प्राय. प्रत्येक पद मे गम्भीर भावराजि सहित शब्दयोजना की पटुता, सरस पद-विन्यास में मनोहरता, ध्वनितत्त्व की उपभोग्य उपादेयता, श्रुतिरसायन छन्दोमाधुर्य की चमत्कारिता एवं सर्वोपरि करुण रस की जो सर्वाकर्षक प्रभावशालिता परिलक्षित होती है, उसकी समकक्षता केवल उसी मे ही मिलती है।

'वैदेहीश-विळास' में समाज-चित्रण

ओड़िआ काव्ययुग या रीतियुग के प्रवर्त्तक कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज जी घुमुसर के राजपरिवार मे पैदा हुए थे। सुतरां अपने साहित्य मे मध्ययुगीय राजपरिवार का चित्र अंकित करना उनके लिए स्वाभाविक ही था। फिर भी, स्वकृत 'वैदेहीश-बिळास' ग्रन्थ में ओड़िशा के साधारण परिवार मे उस समय प्रचलित रीति-नीतियो, विधि-विधानों, आचार-व्यवहारो आदि के चित्र सुस्पष्ट है। ये सब रीति-नीतियाँ आज भी ओड़िआ समाज मे प्रचलित हैं।

सामाजिक सुशीलता— दुष्ट रावण के अत्याचार से रक्षा पाने के लिए देवताओ की विष्णु भगवानजी से विनती सामाजिक सुशीलता तथा सौजन्य से भरी है। रामजी के अवतार के बारे मे सुमन्त्रजी का सनत्कुमारजी से प्रश्न जैसा विनयगर्भक है, ऋषि का उनके प्रति उत्तर वैसा ही गाम्भीर्य-भरा एव प्रश्नकर्ता की पदमर्यादा के अनुरूप सामाजिक शिष्टता से परिपूर्ण है। पुत्रकामी दशरथजी विष्णु भगवान को पुत्र के रूप मे प्राप्त करेंगे —इस आशा से आशायी होकर भगवान के प्रति संयमपूर्ण रीति से विनयी हुए, देवता तथा ब्राह्मणो की सेवापूजा करने लगे एव दरिद्रों मे धन वितरण करने लगे। संयत तथा विनम्र होकर मंगल कार्यो मे व्रती होना ऊँची सामाजिक शीलता का निदर्शन है।

जन्म-प्रसंग— रामादि पुत्रो के जन्म का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। शिशुओं का नामकरण तथा लालन-पालन विधि-विधानपूर्वक किया जाता है। कवि ने रामजी और उनके तीन भ्राताओं का जन्म-प्रसग बडी निपुणता से वर्णित किया है—

"अन्तःपुर की दासियों ने राजा दशरथ से पुत्रो की जन्मवार्ता कहकर उनसे पुरस्कार प्राप्त किये। द्वारपालो ने मन्त्रियों तथा सामन्तों को यह सुसंवाद जताकर कंगन और कुण्डल आदि आभूषण प्राप्त करके पहने। हाट-बाट सब इस उत्सव मे लूट गये। अनगिनत तुरहियाँ बज उठी।" आदि (पद ५५, ५६ व ५७, छान्द ५, बैं० वि०)।

पुत्रो के जन्म के पाँचवें दिन लोगो ने उड़द आदि पाँच धान्यमिश्रित चावल खाकर प्राण, अपानादि पाँच वायुओं को सन्तुष्ट किया। छठे दिन पद्मिनीजातीया स्त्रियों ने षष्ठीगृह को कौड़ियों से सुसज्जित किया तो वह गृह बड़ा ही सुन्दर दिखाई दिया। भगवान विष्णुजी जब योगनिद्रा से अभिभूत थे, उस समय मधु दैत्य से विवाद करने की इच्छा करके एकाएक जग उठे थे। उसी तरह इसी उद्देश्य से कि ये पुत्र जगकर सौन्दर्य में कामदेव और वसन्त ऋतु से होड़ लगावे, स्त्रियो ने जन्म के सप्तम दिवस पर उनका 'उठिआरी' कार्य संपादन किया। इक्कीसवें दिन पुत्र झूले पर शयन कर ऐसे दिखाई दिये, मानो बालमुकुन्द ने वटपत्र पर शयन किया हो। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने ज्येष्ठपुत्र का नाम 'श्रीराम' अथवा 'राम' रख कहा कि इन नामो के पीछे 'चन्द्र' या 'भद्र' युक्त हो और ये नाम 'श्रीरामचन्द्र', 'श्रीरामभद्र', 'रामचन्द्र' अथवा 'रामभद्र' हो रमणीय हों। इस प्रकार अन्य तीन भ्राताओ का नामकरण (भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न) किया जाता है। (पद ६३ से ६८ तक, छान्द ५, बैं० वि०)।

जन्म के पाँचवे दिन (पञ्चुआती) लोगों के उड़द आदि तण्डुलो के सेवन, छठे दिन (षष्ठी) स्त्रियों के कौड़ियो से षष्ठीगृह के मण्डन, सातवे दिन सप्तमी उत्सव (उठिआरी) और इक्कीसवे दिन नामप्रदान की प्रथा साधारणतया प्रत्येक ओड़िआ के गृह में जिस प्रकार मनायी जाती है, उसका अविकल चित्र भञ्जजी ने यहाँ दिया है।

विवाहोत्सव—रामचन्द्रजी के धनुषभंग के अनन्तर सीताजी के द्वारा वरणमालाप्रदान की यथाविधि वर्णना भञ्जजी ने की है। पुत्रों के विवाहोत्सव के सम्बन्ध मे दशरथजी के मिथिला-आगमन, कन्यादर्शन, विवाहतिथिलग्न-निर्णय एवं विवाह-निर्वाह मे पालित सामाजिक रीति-रिवाजों का यथोचित वर्णन भी उन्होने किया है।

विवाहोत्सव में सात ब्राह्मणियो के उत्तम रेशमी वस्त्र तथा आभूषण पहने जल-आहरण, नाइन के सूप, नारियल और काण्डधारण (पद ९, १० व ११; छान्द १४), लाजाहोम, हस्तग्रन्थि और उसके बाद जुए या कौड़ियों के खेल (पद ५३, ५४, ५५, ५६ और ५७; छान्द १४) आदि के वास्तव चित्र भञ्जजी ने इस काव्य में अंकित किये है। ये चित्र बिलकुल सजीव, वास्तविक तथा स्वाभाविक हैं। पढते वक्त पाठक को ऐसा अनुभव होता है, मानो वह किसी ओड़िआ परिवार में संघटित विवाहोत्सव देख रहा हो।

वेश-विन्यास—'वैदेहीश-विळास' के दशम छान्द ('विभूषण-पुष्पे या कान्ति जाण') में राजकन्या सीता के वेश-विन्यास का जो चित्र मिलता है, वह अत्यन्त वास्तव ही है। सखियो ने किआपत्री, मुक्ताजाली आदि शिरोभूषणो, चन्द्रझम्पि नामक कर्णभूषण, झिलिमिली नामक सीमन्ताभूषण, पुष्पमाला, कस्तूरी, चन्दन आदि के तिलक से सीता को विभूषित किया है। इस वर्णना को पढते समय साधारण ओड़िआ परिवार मे विवाह के समय व्यवहृत आभूषणों से विभूषित बाला पाठक के समक्ष आ खड़ी हो जाती है।

त्योहार— "बड़ देउळ अप्रतरे गुण्डिचा रथ यें देखिछि तरक।" (छान्द ५१ पद ३३, बैं० वि०) वाले पद में भञ्जजी ने श्री रामचन्द्रजी के अयोध्याप्रत्यावर्तन की जगन्नाथजी की 'गुण्डिचा-बाहुडा' यात्रा से तुलना की है। इसमें पुरी जगन्नाथजी की गुण्डिचा-बाहुड़ा यात्रा का जो चित्र उन्होने दिया है, वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है।

वाणिज्य—पहले नौवाणिज्य ही उत्कलीयों का धन कमाने का एक मात्र साधन था। उत्कल के सौदागर बोइतो (वहित्रों, पोतों) पर सुदूरवर्ती जावा, सुमात्रा, बोर्णिओ, सिंहल आदि द्वीपपुंजो में जाकर वाणिज्य करते थे। पद ३२ और ३३, छान्द २५ में भञ्जजी-प्रयुक्त 'वहित्र' तथा 'वाणिज्य' शब्द से इसकी सूचना मिलती है।

उपेन्द्रजी धनाढ्य राजपरिवार मे पले हुए थे। उन्होंने साधारण सामाजिक तथा दूसरी समस्याओ का सामना नही किया था। फिर भी, अपने काव्यों मे उन्होने साधारण वैवाहिक व सुस्थ जीवनयापन से जिन रीति-नीतियो तथा परंपराओं का गहरा सम्बन्ध रहा है, उनका वास्तव चित्रण किया है। ये चित्र उत्कल के जातीय चित्र हैं—यह अनस्वीकार्य है।

वयन-शिल्प—उत्कल के वयन-शिल्प ने भी भञ्जजी के समय तक ख्याति प्राप्त कर ली थी। 'वैदेहीश-विळास' के दशम छान्द मे सीता की वेशवर्णना के प्रसग में कवि कहते है कि सखियो ने सीता को बांस की नली मे रहने लायक अत्यन्त सूक्ष्म तथा श्रीरामजी के शरीर की कान्ति के समान दूर्वादिल रंग की नीली साड़ी पहनायी—

"वंशनळीरे थिबार ये।
वाछि पिन्धि दूर्वादळ-नीळ चेळ कोळ इच्छि श्रीरामर ये। १७।"

'वैदेहीश-विळास' में स्वदेश-प्रेम

देश में कवि एक श्रेष्ठ नागरिक है और श्रेष्ठ नागरिक का सर्वश्रेष्ठ लक्षण देशप्रेम है। कविवर उपेन्द्र भञ्ज जी उत्कल के एक श्रेष्ठ नागरिक तथा देशप्रेमी जातीय कवि हैं। उनकी दृष्टि मे हमारे प्रदेश उत्कल का माहात्म्य कुछ कम नही। देवदेवाधिदेव अवतारी वैकुण्ठविहारी विष्णुजी जगन्नाथजी के रूप मे ओड़िशा के पुरुषोत्तम क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए हैं। कवि ने स्वरचित काव्यो के प्रारम्भ मे जगन्नाथजी की विनती की है और जगन्नाथजी के सम्बन्ध में काव्य-कविताओं की रचना की है। 'वैदेहीश-बिळास' के प्रारम्भ मे कवि ने जगन्नाथजी की वन्दना की है—

× × × बइकुण्ठ-पक्षक-लोक तोषित ये,
बिकाश अखण्डित मण्डळे सिहमाबरे क्रीड़ित काळे
नबे तरणी(णि) होइ मञ्जुळे गिरि उदित ये। १।

स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल पर विजय के वाद रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण ने सारे जगत पर विजय प्राप्त करने की कामना से ओडिशास्थ विरोजामण्डल यानी याजपुर की विरजादेवी के सम्मुख तपस्या की थी। इस विरजापीठ मे वे विना भोजन के दिन-रात तप करने लगे थे—

× × ×
बिरजामण्डळरे तपस्या जगज्जयरे करि मनीषा
अशनहीने दिवस-निशा काळ वञ्चित ये। १०।

सीता-राम के विवाह के उपलक्ष्य मे कवि ने बारात के मिथिला-आगमन के दृश्य की ऋषिकुल्या-सागर-संगम से तुलना की है। ऋषिकुल्या नदी ओडिशा के गजाम जिले मे बहती है—

"वैखानसगण (ऋषिलोग) घेनि (लिये) बाटे मेळा।
बारानिधि (सागर) संगम कि ऋषिकुल्या। १८।

बिश्रामकु सुखासन दूरे किछि ।
ब्रह्मपुत्रेक (वशिष्ठजी) पुरुषोत्तम (नारायण, रामजी) अछि (हैं) ।१९।"

राजोपवन में विराजमान श्री रामचन्द्रजी की वर्णना से कवि ने सागर के किनारे पर अवस्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र में सागर पर थोड़ी दूरी मे अनन्तशायी नारायण की ओर इशारा किया है ।

'वैदेहीश-बिळास' के पद ३३, छान्द ५१ मे कवि ने श्री रामचन्द्रजी के अयोध्या-प्रत्यावर्तन की जगन्नाथजी की गुण्डिचा-वाहुड़ा-यात्रा से तुलना की है । इसमे कवि का देशप्रेम सुमनोहर रूप से चित्रित किया गया है ।

"बड़ देउळ अग्रतरे गुण्डिचा रथ ये देखिछि तरक ।"

इसके पूर्व 'समाज-चित्रण' निबन्ध मे उत्कल मे प्रचलित पर्व-त्योहारो, विवाह-जन्मादि उत्सवों, यात्राओं और उत्कलीय वयन-शिल्प-वाणिज्यादि के जो चित्र दिये गये हैं, उनसे कवि के देशप्रेम के निदर्शन मिलते हैं ।

'वैदेहीश-बिळास' में आलंकारिक वैशिष्ट्य

'वैदेहीश-बिळास' मे नागबन्ध, चक्रबन्ध, वृक्षबन्ध, गदाबन्ध, शरबन्ध, रथबन्ध आदि बन्धों, गोमूत्र, लोमविलोम, सिंहावलोकन आदि छन्दो, भंगाभंग, दत्ताक्षर, च्युतदत्ताक्षर, अनुप्रास, यमक, श्लेष, अन्तर्लिपि, बहिर्लिपि आदि शब्दालंकारों और उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, काव्यलिंग आदि अर्थालंकारों की भरमार है । 'उपेन्द्र भञ्ज का शब्दपाण्डित्य तथा आलकारिकता' निबन्ध मे इन अलंकारों की विशद आलोचना की गयी है ।

'वैदेहीश-बिळास' मे व्यवहृत राग या छन्द

'वैदेहीश-बिळास' मे भञ्जजी ने पाहाड़िआ केदार, मंगळगुज्जरी, रामकेरी, माळबगउड़ा, चोखि, रसकुल्या, आषाढ़शुक्ल, भूपाळ, बिभासगुज्जरी, पञ्चम बराड़ी, बंगळा श्री, भागवत वृत्त, चक्रकेळि, कळहंस केदार, भैरव, चिन्ता भैरब, कल्याण आहारी, शंकराभरण, कुम्भकामोदी, खण्डकामोदी, कामोदी, घण्टारब, आशाबरी, कनडा आदि लगभग चालीस छन्दों (रागों) का व्यवहार किया है । ये सब राग अपनी-अपनी सगीतात्मकता के हेतु ओडिशा के जनसमाज मे समादृत हैं । खासकर, 'बितळकु आलिंगन' (राग—चोखि, नवम छान्द), 'बिभूषण पुष्पे या कान्ति जाण' (राग—रसकुल्या, दशम छान्द), 'बन्दइ दीनबान्धब हरि' (राग—पाहाड़िआ केदार, प्रथम छान्द), 'बिनाशुं नासाश्रवण सूर्पणखा' (राग—कुम्भकामोदी, चतुर्विश छान्द), 'बिभाबरी विनाश, बिभाबसु प्रकाश' (राग—कामोदी, चतुश्चत्वारिंश छान्द), 'बातापि-सूदन आश्रम' (भागवत वृत्त, द्वाविंश छान्द), 'वदन पूरिअछि हास हरषे' (राग—कळहंस केदार, अष्टत्रिंश छान्द) आदि गीत ओड़िशा के गाँवो तथा शहरो मे पण्डितों, पथिकों, किसानों, मजदूरों और संगीतप्रवीणा नर्तकियो के मुखो से सुललित स्वरों से सुनाई पड़ते हैं । उपेन्द्र भञ्ज जी स्वय संगीतरसिक और सगीतकलावित् थे । सुतरां उन्होने अपनी काव्यकविताओ को सगीत शास्त्र के लगभग सब लक्षणो से अलकृत कर दिया है ।

ओड़िआ काव्य-कविताओ मे वार्णिक छन्दो का प्रयोग किया जाता है । हिन्दी

मे अधिकतर मात्रिक छन्दों का प्रयोग होता है। सुतरां ओड़िआ के किसी राग की हिन्दी के किसी छन्द से समता दिखाना असम्भव-सा है। फिर भी, निम्नलिखित हिन्दी और ओड़िआ कविताओ के उद्धरणो मे वार्णिक सामजस्य मिलता है:—

१ "जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि।
× × ×
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधानु बिहाल।"
(छन्द—लंकाकाण्ड, श्रीरामचरितमानस)

"वातापिसूदन आश्रम। विपिने प्रवेश श्रीराम।
वइरी हिंसा तहिँ हत। वइरी सन्निधि कपोत।"
(भागवत वृत्त; द्वाविंश छान्द, वैदेहीश-बिळास)

२ "बंदउं नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
× × ×
नर नारायन सरिस सुभ्राता।
जग पालक बिसेषि जनत्राता॥"
(चौपाई की अर्द्धालियां, बालकाण्ड, श्रीरामचरितमानस)

"वदन पूरिअछि हास हरषे।
बिकर्त्तनज याइ श्रीराम पाशे।
विकर्त्तन सन्ताप हेला प्रभुर।
बाहुड़े कार्य्य करि दक्षिण चार॥"
(राग—कळहंस केदार, अष्टत्रिंश छान्द, वै० बि०)

'बैदेहीश-बिळास' की भाषा

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज एक ही साथ भक्त तथा शृंगारी कवि थे। भक्त-कवि के रूप में उनकी भाषा निस्सन्देह उनके हृदय के अनुभूतिमय उद्गारो से ओतप्रोत है। इस विषय का आभास हम 'उपेन्द्र भञ्ज की भक्तिप्रवणता' शीर्षक निवन्ध में दे चुके हैं। फिर भी, ओडिआ रीतियुग के प्रभाव के कारण और शृंगारी कवि होने के नाते उनकी भाषा का सौन्दर्य भावो की तन्मयता का अनुयायी होने की अपेक्षा अधिकतर अलंकारों की तड़क-भड़क का अनुसारी वन पडा है। इस विषय की विशद चर्चा भी हमने 'उपेन्द्र भञ्ज का शब्दपाण्डित्य और आलंकारिकता' निवन्ध मे खासकर 'वैदेहीश-विळास' को दृष्टि मे रख, कर ली है। स्वरचित काव्य-कविताओ को सस्कृत कवियो के द्वारा रचित काव्य-कविताओ के समकक्ष बनाने के उद्देश्य से उन्होने अपनी भाषा को अलंकार-विमण्डित करने के अलावे उसमे ओडिआ भाषा मे प्रचलित तथा अप्रचलित बहुत तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है।

'बैदेहीश-विळास' ओडिआ भाषा में प्रचलित तत्सम शब्दो की तो भरमार ही है। ओड़िआ मे साधारणतया अप्रचलित, जो तत्सम शब्द केवल आभिधानिक (Lexicographical) हैं और इस ग्रन्थ में व्यवहृत किये गये हैं, उनकी एक सूची यहाँ सबसे पहले दी जाती है।

छान्द १—ईन (ईश्वर, सूर्य); सन्ध्यामटी (निशाचरी, राक्षसी); कृशानु (अग्नि); वप्ता (बाप, पिता); विधुन्तुद (राहु); पिशित (मांस); पक्कण (शवर-पल्ली)।

„ २—कीनाश (यम); अरि (चक्र); वनौका (वानर); बर्ष्म (शरीर); सारंग (चातक); विकुष (चन्द्र)।

„ ३—वृषभास्या (इन्द्रपुरी); बिश्वसृक (संसार-स्रष्टा)।

„ ५—वीतिहोत्र (अग्नि); बिश्राण (धारण)।

„ ११—बहतु (दूत)।

„ १४—विषमेषु (कन्दर्प); लवण चामरी (लावा-परछन); वर्षाभू (मेंढ़क); शिळीन्ध्र (कुकुरमुत्ता); वेश्मस्था (घर में स्थिता)।

„ १५—बिकर्त्तन (सूर्य); बळिभुक् (कौवा)

„ १७—रभसे (शीघ्रता से); रोलम्ब (भौंरे); क्षोद (धूल); ओक (गृह)।

„ २४—वनौका (संन्यासी); बक्त्रमाळी (मुखों की माला है जिसकी, रावण); बैश्वानर (अग्नि)।

„ २६—अबरज (अनुज); विलज्ज (निर्लज्ज)।

„ २७—बन्दारु (स्तुति-पाठक)।

„ २८—बिबस्वान (सूर्य)।

„ ३३—बळाहक (मेघ)।

„ ३४—बर्‌र्या (वरणीया, स्वयंवरा)।

„ ३५—ऐन्द्रिए (कौवे)।

„ ४४—अभ्रमुपति (ऐरावत); भीतधी (भीतबुद्धि)।

„ ५२—तद्‌बत (उनके सदृश)।

स्थलविशेषों मे भञ्जजी की रचनाशैली मे संस्कृत धातुरूप तथा शब्दरूप स्वयमेव आ जाते हैं। भञ्जीय साहित्य में यह संस्कृत प्रयोग (Sanskritism in Bhanja's Literature) है। उदाहरणस्वरूप—

छान्द २४— "बदति लक्ष्मण ए कपटी एण (हिरन) मारीच निश्चय।" (पद २९)

„ ४४— "बिनिद्रे रभस बिनश्यति अवश्य करिब बइरी-साहस से।" (पद १)

"बिभाति आश्विन स्थापय।" (पद ३६)

"बप्ता या तार (उसके) शरीरेण।" (पद २४)

छान्द ४८— "बसिब (बैठगी) शिबशिरसि रसि निशाकरे ये।" (पद १६)

संस्कृत सन्धि—छान्द ६— "किमर्थे (किसलिए) आगत ?" (पद १४)।

'बैदेहीश-बिळास' में व्यवहृत कुछ तद्‌भव शब्दों के उदाहरण

छान्द १—ओळगि—संस्कृत 'अवलग्न', असमी 'ओलग', (प्रणाम, नमस्कार); बाउँ—सं० 'वादि' धातु से उत्पन्न (बजाते); गाउँ—सं० 'गा' धातु से उत्पन्न (गाते)।

छान्द ४—मेलाणि—सं० 'मिलन' (विदाय); फिर मिलने की शुभेच्छासे; सनमत—सं० सम्मत।

छान्द ५—बधा[illegible] सं० वर्द्धापिका (उपहार, पुरस्कार); तुलनीय हिन्दी 'बधाई'।

पञ्चुआति—सं० 'पञ्चजाति' से व्युत्पन्न [जन्म के पञ्चम दिवस का उत्सव जिसमें लोगों को पांचजातियों (चावल, उड़द, अरहर, मूंग और चना) के अन्न खिलाये जाते हैं।]
उठिआरी—सं० 'उत्थित'; (शिशु के जन्म के सातवें दिन का उत्सव जिसमें सूतिकाग्नि उठायी जाती है।)

छान्द १४—गन्धषण—सं० गन्ध+सन, (गन्धाधिवास, विवाह के पूर्व दिन वर-कन्याओं पर गन्धादि लेपन करने की विधि)।
मुदुसुली—सं० 'मृदुशीला' (अथवा 'मृदुहासिनी') शब्दज; (दासी)।
निउंछाइबा—सं० 'निर्मञ्छन' शब्दज; (वन्दना करना, आरती उतारना)।

" २४—बहिणी—सं० भगिनी, (बहिन); तुलनीय हिन्दी 'बहिन'; बिसोरिबा—सं० विस्मरण, (भूलना); तुलनीय हिन्दी 'बिसराना'।

" २६—छार—सं० 'असार' (तुच्छ, मामूली); अजाण—सं० अज्ञान (मूर्ख); सुजाण—सं० सुजान (पण्डित)।

" ३५—दिहुड़ि—सं० दीपावली, (मशाल); तुलनीय हिन्दी 'दीवाली'।

" ३६—प्राभव—सं० पराभव।

" ४२—प्राकर्म—सं० पराक्रम।

" ४४—ठणा—सं० स्थान, प्राकृत 'ठाण'; प्रचछन्ते—सं० 'पृछ्' धातु से उत्पन्न (पूछते); तुलनीय हिन्दी 'पूछना'; बड़ाइ—प्राकृत वड्ड; सं० वड्ड, (Nepali Dictionary, page 417) (महिमा)। बिकोति—सं० वि—'कृत्' धातु से उत्पन्न; विकृन्तन, विकर्तन; (काटकर, छेदन कर, छिन्न कर)।
छिनाइबा—सं० 'छिद्' धातु से उत्पन्न (छिन्न करना); तुलनीय हिन्दी 'छीनना'।

देशज शब्दों के उदाहरण

छान्द १—गण्डा (चार इकाइयां)।
" २—अनाइबा (देखना, ताकना)।
" ३—जेमा (राजकन्या); गुमान (गौरव)।
" ४—पाछोटिबा (विदाय देने के लिए साथ जाना)।
" ७—वरगिबा (भेजना)।
" ८—रुण्ड (इकट्ठा)।
" २४—संखोळिबा (विवाहादि उत्सवों में दामाद, मामा अथवा भानजे के यहाँ शंख बजानेवाले के सहित न्योता भेजना, अगवानी या स्वागत करना)। (देशज ?)।

तत्सम समास

छान्द ३—घनघरकेशी (मेघ के वर्ण के समान नीले रंग के बालों वाली)।
वारिजगन्धा (पद्मगन्धा सीता)।
छान्द ७—बिगतभय (निर्भय, निर्भीक)।

तत्सम-तद्भव समास

छान्द ३—धैर्यउजुड़ा—सं० धैर्य+उत्+जाटयति (हिन्दी—उखाड़ना, उजाड़ना), (धैर्यलोपकारी)।

वक्रभाषणात्मक शब्द

छान्द १—उत्तरकुरु प्रदेश (स्वर्ग)।
„ २—या-बाळी अरुन्धती (जिनकी पत्नी अरुन्धती हैं, वशिष्ठजी)।
„ ३—बेणी-त्रि-पूर्व (त्रिवेणी)।
„ ६—बारणरिपुद्वार (सिंहद्वार)।
„ ७—विश्वम्भराधरराजे (पर्वतराज हिमालय में)।

संज्ञाओं का विशेषणों में व्यवहार

छान्द २६— "बिनय (विनयी) ब्रज सरव।"
„ ४४—सुग्रीव आदि हेले (हुए) हति (हत)।

विशेषणों का संज्ञाओं में व्यवहार

छान्द २— "बृहद्भानु भानुरु (भानु से) मुं (मैं) शीतळ (शीतलता) पाइबि (पाऊंगा)।
छान्द २६— "व्याकुळरे (व्याकुलता से) होइ क्षीणी। बल्लभे भाषे (बोलती है) पक्षिणी।

विशेषणों के साथ 'बन्त' का प्रयोग

व्यग्रबन्त (छान्द ४); विफळबन्त (छान्द २६)।

असमापिका क्रियाओं का समापिका क्रियाओं के रूप में प्रयोग

छान्द २४— "बिशपाणि आगे पड़ु (पड़ते) पुच्छि (पूछा) वेगे ए दण्ड के (किसने) इच्छि? (किसने इच्छा की या चाहा?)।

गढ़े हुए शब्द

छान्द १—बरणि (वरणीय, पूजनीय)।
„ ३—बिभर्त्ति (विशेष रूप से भरती करके)।
„ ७—विसम्मति (असम्मति)।
„ १६—बिष्णुआणी (लक्ष्मी); तुलनीय हिन्दी स्त्रीलिंग में 'आइन' प्रत्यय।

हिन्दी साहित्य और 'बैदेहीश-बिळास'

हिन्दी भक्तियुग के विख्यात रामकवि गोस्वामी तुलसीदास और ओड़िआ रीतियुग के विख्यात रामकवि उपेन्द्र भञ्ज—

गोस्वामी तुलसीदासजी (ई० सन् १४९७-१६२३ तक) और उपेन्द्र भञ्ज जी का

काल (ई० सन् १६७० से १७२० के लगभग तक) भिन्न-भिन्न है। परन्तु धर्मप्रचार तथा तीर्थयात्रा के उद्देश्य से कवीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, श्री चैतन्य आदि महात्मा उत्कल के पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र, जगन्नाथ धाम मे आया करते थे। अपनी तीर्थयात्रा के सिलसिले मे महात्मा तुलसीदासजी पुरी आये थे (कटक-पुरी राजपथ पर पाहाळ ग्राम के समीप तुलसीदासजी के पुरी-आगमन के स्मारक-स्वरूप 'तुलसीदास सरोवर' अव भी वर्तमान है)। उन्होने पुरी मे लोगो को स्वकृत 'श्रीरामचरितमानस' पढकर सुनाया होगा। 'श्रीरामचरितमानस' की कथावस्तु लोगों के मुखो मे रह गयी होगी और कालक्रम में उपेन्द्र भञ्ज जी इस कथावस्तु से भी प्रभावित हुए होगे। इस दिशा मे गवेपणाएँ चल रही है और जव तक कोई विश्वासयोग्य प्रमाण न मिला हो, तव तक यह कहना कठिन है कि उपेन्द्रजी तुलसीदासजी से प्रभावित हुए है अथवा नही। फिर भी, मूल सस्कृत काव्यो के आधार पर 'श्रीरामचरितमानस' तथा 'वैदेहीश-विळास' मे निम्नलिखित समान्तराल चित्र सुस्पष्ट है :—

(क) सीतास्वयवर के समय गोस्वामीजी ने सीता की जो रूपवर्णना की है—

"जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि.....................इत्यादि।"

(वालकाण्ड, श्रीरामचरितमानस)

अन्यत्र सीता की रूपवर्णना—

"जनम सिंधु पुनि वंधु विपु, दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि चंदु वापुरो रंक॥"

(वालकाण्ड, मानस)

उसी के अनुरूप भञ्जजी ने स्वरचित 'वैदेहीश-विळास' मे हनुमानजी के मुख से सीता के रूप की वर्णना करायी है—

"विचार शोभासागर। विधाता मन्थु वाहार।
वारिधिरु (समुद्र से) येते (जितने) द्रव्य। विजन्य (जात) से (वे)
एक ठाव (एक ही स्थल मे इकट्ठे हैं)।

× × × ×

वोलिव एमन्त (ऐसा) विधु (चन्द्र)। विभावरीरे (रात मे) से (वह चन्द्र) साधु (सुन्दर)।
विभावरु (किरणाभाव से) निशाकर। वोलिअछि (वोले हैं) वेदवर (ब्रह्मा)।
वासर (दिन) निशारे (रात मे) सरि (समान)। वाळा (सीता की) आनन-माधुरी।
विमळ प्रस्न (प्रसन्नता) किरण। विधान से (वह) अनुक्षण (हमेशा)।"

(ख) 'श्रीरामचरितमानस' में चित्रित 'केवटभक्ति-प्रसंग'— गोस्वामीजी ने श्रीराम-लक्ष्मण-सीताजी के वनगमन के समय यह प्रसंग चित्रित किया है—

"माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सवु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। वाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सवु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कवारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥"

(अयोध्याकाण्ड, श्रीरामचरितमानस)

'बैदेहीश-बिळास' में अनुरूप चित्र— उपेन्द्रजी ने श्रीराम-लक्ष्मण-विश्वामित्रजी के जनकपुर चलते समय 'केवट का पदप्रक्षालन-प्रसग' चित्रित किया है—

सटीक पाठ अथवा 'अध्यात्म-रामायण और बैदेहीश-बिळास' निबन्ध मे प्रदत्त उद्धरण द्रष्टव्य है ।

"**बधिर नुहइ बीर**..........**न धोइ नाव ।**"

(पद ३, नवम छान्द, बै० बि०)

मूलाधार— क्षालयामि तव पादपंकजं..........**विद्धि कुटुम्बहानिः ।**

(षष्ठ सर्ग, बालकाण्ड, अध्यात्म रामायणम्)

(ग) वन के मार्ग मे चलते समय गाँव की स्त्रियाँ सीताजी से पूछती है कि वे दो सुन्दर पुरुष (राम-लक्ष्मण) तुम्हारे कौन है—

"कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ।।"

तो सीता मधुर वचन से उन्हे उत्तर देती है—

"सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ।।
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं । रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ।।"

(अयोध्याकाण्ड, मानस)

नेत्रो के इशारे से (न कि वचन से) यह बता देना कि ये मेरे पतिदेव है, भारतीय नारी-संस्कृति की एक बड़ी विशेषता है, जिसकी सूचना गोस्वामीजी ने यहाँ दी है ।

भञ्जजी ने 'बैदेहीश-बिळास' के सप्तदश छान्द मे तीनो के वनगमन के समय अनुरूप चित्र तो दिया है, परन्तु कुछ दूसरे ढंग मे गाँव की नारियाँ सीताजी से पूछती है—

"बरारोहा, ए पुरुषसार दुहें (दोनों) सोदर किंवा तुम्भर (तुम्हारे) ?
बुलन्ति (घूमते है) जगते घेनि (लिये) संगतरे सुसमे न मिळे बर ।"
बोलु (बोलते) शिर कम्पाइ, "बर देबर के (कौन) याअ (जाओ) कहि ।।"
"बिळम्ब करन्ते (करते) पुळम्बकुन्तळा डाके (पुकारा) लक्ष्मणकुमार ।
बामाङ्कु (नारियों को) बोधिले (समझा दिया) ए देबर बोलि मन्थर गति सत्वर ।"

—इत्यादि ।

नारियाँ— अयि नितम्बिनि ! ये दोनो पुरुषश्रेष्ठ क्या तुम्हारे सगे भाई है, जो तुम्हे साथ लिये तुम्हारे लायक दूल्हा खोज रहे है ?

सीता— (सिर हिलाते हुए 'नही' की सूचना दी ।)

नारियाँ— (समझकर) तो बताओ न कौन पति है, और कौन देवर ? दीर्घकेशी सीताजी के विलम्ब करते, लक्ष्मणजी ने उन्हे पुकारा । सीता ने बता दिया— ये मेरे देवर है । (तो शेष व्यक्ति को पति समझना नारियों के लिए सहज स्वाभाविक था ही ।)

भञ्जजी ने यहाँ तो नाटकीय रस की अवतारणा की है । दोनो कवियों ने

सीताजी का वचन में उत्तर कि ये (राम) मेरे पतिदेव है, बिल्कुल चित्रित नही किया है। ऐसा एक उत्तर-चित्रण भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है।

हिन्दी रीतियुग के प्रवर्त्तक आचार्य केशवदास-विरचित 'रामचन्द्रिका' और ओडिआ रीतियुग के प्रवर्त्तक उपेन्द्र भञ्ज-विरचित 'बैदेहीश-विळास'—

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाव्य की परम्परा की नीवँ बडी सुदृढ है। आचार्य केशवदास (ई० सन् १५६०-१६१७ तक) इस काव्य की परम्परा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। उनका प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' (रचनाकाल ई० सन् १६०१) है। ये प्रसिद्ध अलंकारवादी भी थे। स्वरचित अलकारपुस्तक 'कविप्रिया' में कविता में अलंकारों की महत्ता स्वीकार करते हुए उन्होने कहा है—

"जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरन, सुरस, सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजही, कविता, वनिता, मित्त॥"

उपेन्द्रजी की अनुरूप उक्ति—

मूर्त्तिमन्त करि मृदुगीत विचारइ,
एणु करि (इसलिए) थिब (होगा) अलंकारयुक्त होइ।
पद सरळ ध्वनिरे (ध्वनि से) मानस मोहिव (मुग्ध करेगा)।
अर्थी जन प्रकरकु (समूह को) आनन्द करिव॥

(प्रथम छान्द, लावण्यवती)

सस्कृत काव्यशास्त्रज्ञो ने कहा है—

"तया कवितया किंवा तया वनितयाथवा।
पादप्रक्षेपमात्रेण यया नापहृतं मनः॥"

केशवकृत 'रामचन्द्रिका' पर 'वाल्मीकि रामायण' का सर्वाधिक प्रभाव है। फिर भी, यत्र-तत्र 'हनुमन्नाटक' का उस पर प्रभाव पड़ा है।

केशव का मारीच सोचता है—

"जान चल्यो मारीच मन, मरन दुहुँ विधि आसु।
रावन के कर नरक है, हरिकर हरिपुर वासु॥"

उपेन्द्रचित्रित 'रावण-मारीच प्रसंग'—

"विश्रबासुत क्रोधरे प्रज्वळित..........के तोते सम्भाळु। २४।"
"बिचारिला ताड़केय ए मारिले..........यमन्त कासारे। २५।"

(छान्द २४, बै० वि०)

(सटीक पाठ अथवा 'अध्यात्म रामायण और बैदेहीश-विळास' निबन्ध मे प्रदत्त उद्धरण द्रष्टव्य है।)

मूलाधार— "हनिष्याम्यसिनानेन..........मे निरयो ध्रुवम्।"

(षष्ठ सर्ग, अरण्यकाण्ड, अध्यात्म रामायणम्)

"रामादपि च मर्त्तव्यं मर्त्तव्यं रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्त्तव्यं वरं रामान्न रावणात्॥"

(हनुमन्नाटकम्)

केशवदास-वर्णित प्रतिहारी-ब्रह्मादि सवाद—

"पढ़्यो विरंचि मौन वेद जीव सोर छाँड़ि रे।
कुबेर बेर कै कही न मच्छ भीर मंडिरे॥
दिनेस जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चंद मंदबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥"

उपेन्द्रभञ्ज-वर्णित प्रतिहारी-ब्रह्मादि संवाद—

"बिरञ्चि नारद तुम्बुरु लंकारे..........जाण परा संगीत साहित्य हे। विधात।"

(पद २२, २३, २४, २५, छान्द ३५, बै० वि०)

(सटीक पाठ अथवा 'हनुमन्नाटक और वैदेहीश-विळास' निवन्ध में प्रदत्त उद्धरण द्रष्टव्य है।)

मूलाधार— "ब्रह्मन्नध्ययनाय..........स्वस्थो न लंकेश्वरः।"

(हनुमन्नाटकम्)

हिन्दी रीतियुग के श्लेष-चित्रकार सेनापतिजी और ओड़िआ रीतियुग के श्लेष-चित्रकार उपेन्द्रजी—

सेनापतिजी और उपेन्द्रजी दोनों प्रधानतया राम के भक्त थे। सेनापतिकृत काव्यग्रन्थ 'कवित्त-रत्नाकर' (रचनाकाल ई० सन् १६४९) मे प्रदर्शित श्लेष-चित्र की चमत्कारिता देखिए—

"तारन की जोति जाहि मिले पै विमल होति
जाके पाइ संग मै न दीप सरसत है।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध
सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है॥
कामना लहत द्विज कौसिक सरब बिधि
सज्जन भजत महातम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कबिताई की जु
हरि रवि अरुन तमी कौं बरनत है॥"

अन्तिम चरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि सेनापतिजी ने विष्णु, लाल (उदयकालीन) सूर्य तथा रात्रि का जो वर्णन किया है, उसमे उनकी वाणी की मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा निहित है।

उपेन्द्रजी ने 'वैदेहीश-विळास' के प्रथम छान्द के प्रारम्भिक दो पदों ("वन्दइ दीनवान्धव हरि गिरि उदित ये। १।" और "वहित येहु रोहितमूर्त्ति कि स्तुति तहिँ ये। २।") मे श्लेष मे विष्णुजी तथा सूर्य की वन्दना की है और तृतीय पद मे यह बताया है कि मैंने भजनेवाले व्यक्ति के परमपद (मोक्ष)-दाता विष्णुजी तथा सूर्यवंश के उद्भव-स्थल सूर्यदेव की इन दो पदो मे श्लेष मे स्तुति की है।

श्लेष-वर्णन मे दोनों की समान चमत्कारिता उपभोग्य है।

हिन्दी रीतियुग के आलकारिक कवि देवजी और उनके समकालीन ओड़िआ रीतियुग के आलकारिक कवि उपेन्द्रजी—

हिन्दी रीतिकालीन प्रतिनिधि कवियो मे से सबसे अधिक रचनाएँ देव (जन्म ई० सन् १६७३) की है। उनकी आलंकारिक कविता का उदाहरण देखिए—

"सूनो कै परम पद, ऊनो कै अनन्त मद,
नन कै नदीस नद, इंदिरा झुरै परी।

महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन को,
　　ईसन की सिद्धि व्रज वीथी विथुरे परी।
भादो की अँधेरी आधिराति मथुरा के पथ,
　　पायके संयोग 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन अपार परब्रह्म रासि,
　　जसुदा के कोरै एक बार ही कुरै परी॥"

उपेन्द्रकृत अनुरूप आलंकारिक कविता का उदाहरण—

विश्रवाऋषिर सन्निधिकि नेला दुहिता रसनिधिकि
शोभारे करे से धिकिधिकि नारी मातरे ये।
　　×　　×　　×　　×
बाङ्के अनाइ अङ्के पकाइ से पङ्करुह शरकु नेइ
शङ्के मदन-आतङ्के तहिँ मुनि उत्तम ये। इत्यादि

अनुप्रासालंकार मे दोनों का चमत्कारपूर्ण वैचित्र्य वास्तव मे चित्ताकर्षक है।

भञ्ज-साहित्य के शाश्वत सन्देश

'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति यो है—

"हितेन सह वर्तमानौ (शब्दार्थौ) तयोः भावः साहित्यम्।" अर्थात् जो विषय मानव-समाज के लिए हित (कल्याण) के विचारो का प्रचार करता है। भञ्ज-साहित्य कहाँ तक मानविक हित के विचारो से समृद्ध है, इसकी आलोचना करना इस निबन्ध का उद्देश्य है।

रीतियुग की मुख्य प्रवृत्ति के प्रभाव से उपेन्द्रभञ्जजी ने अपने साहित्य को अवश्य ही अलकार-बहुल बना दिया है। फिर भी, उनके साहित्य मे यथास्थान रसों का उपयुक्त परिपाक किया गया है। अधिकन्तु, कविवर ने अपने साहित्य को मानव-जाति के कल्याण के लिए अमूल्य सन्देशो से भर दिया है।

दार्शनिकता— मानव-जाति की भलाई के लिए सबसे पहले दृढ़ ईश्वर-विश्वास चाहिए। भञ्जजी-रचित विभिन्न पुस्तको व ग्रन्थो के मंगलाचरणों तथा भगवत्स्तोत्रों में मानव-जाति की यह सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक चिन्ता प्रतिफलित हुई है। 'वैदेहीश-बिळास' के प्रथम छान्द के प्रारम्भ (पद ३) मे जगत्कारण विष्णुजी को भजनेवाले मनुष्य की परमपद (मोक्ष)-प्राप्ति, नवम छान्द मे वर्णित 'केवट की भक्ति' में भगवान के 'पतित-पावन' (अस्पृश्योद्धारक) नाम की सार्थकता और ४८वें छान्द मे रावण की दार्शनिक तथ्य-सम्वलित तर्कणा ("वैकुण्ठसम्पत्ति के लिए यह मेरी सम्पत्ति विपत्ति है।" पद ४७), 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के प्रथम छान्द में जगन्नाथ-धाम के भक्तों को सारूप्य-मोक्ष-प्रदान और 'लावण्यबती' काव्य के ४२वे छान्द मे परम निर्वाण सुख की प्राप्ति (पद ३१) आदि की अभिव्यक्ति कवि की गम्भीर दार्शनिक चिन्ताओ का द्योतक है।

नाम-जप— अपने काव्यो मे उपेन्द्रजी ने हरि, हर, राम, परशुराम, लक्ष्मी, राधा —इन सबकी भक्तिपूर्ण स्तुति की है। परन्तु उनके प्रधान आराध्यदेवदेवी हैं राम-सीताजी। गोस्वामी तुलसीदासजी के सदृश उन्होने 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' काव्य के द्वितीय छान्द मे 'राम' नाम-जप की महिमा बतलायी है—

"राम नामकु जप करुथाइ । मोक्षरे आउ से संशय नाहिँ ।"

(जो 'राम' नाम का जप करता रहता है, उसके मोक्ष के बारे में कोई भी संशय नहीं है।)

त्याग तथा दान की महत्ता— भ्राता भरत के लिए श्री रामचन्द्रजी का राज्यत्याग और विभीषण को लंकादान सर्वजनविदित है। 'वैदेहीश-विळास' ऐसे चित्रों से भरपूर है। 'लावण्यवती' काव्य मे काव्यनायक राजा चन्द्रभानु के त्याग तथा दान के समुज्ज्वल चित्र भी मिलते हैं—

"होइला से राजा एमन्त त्यागी ।
जाणिले नाहिँ याचके मागि ।।
के यिब कळ्पतरु सन्निधान ।
कामना हेला उत्तारु पूर्ण ?
निति देवार्चन सरिबा याएँ ।
करइ मेरु दानकु भये ।।"

(वे राजा चन्द्रभानु ऐसे त्यागी थे कि भिखारियो ने माँगना नहीं जाना। कामनाओं की पूर्ति हो जाने पर कौन कल्पतरु के निकट जाएगा ? अर्थात् कोई नहीं।)

(रोज़ देवार्चन की समाप्ति तक राजा जो सुवर्णदान करते थे, उससे सुवर्णपर्वत मेरु भी डरता था।) (लावण्यवती, छान्द ४८)

सत्य की महत्ता— सत्य ही चिरकाल सत्य है। प्रकाश ही शाश्वत प्रकाश है। उपनिषद् में उक्त है— "सत्यमेव जयते।" (सत्य ही विजयलाभ करता है।)

महात्मा गान्धीजी सत्य ही को परमेश्वर मानते थे। उनकी दैनिक प्रार्थना थी—

"असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मामृतं गमय।"

स्वरचित अमर महाकाव्य 'वैदेहीश-विळास' में भञ्जजी ने श्री रामचन्द्रजी की सत्यरक्षा का जाज्वल्यमान चित्र अंकित किया है और मानव-समाज को सत्यरक्षा के लिए प्राणों तक भी दे देने की प्रेरणा दी है। पुनश्च, 'लावण्यवती' काव्य के १७वे छान्द मे कवि ने लावण्यवती की सखी के मुख से सत्य की महत्ता यों बतलायी है—

"सत्ये विषभक्षी हर,
सत्ये लघु नाहिँटि कूळकु अकूपार।"

(सत्य के लिए शंकरजी ने विष का भक्षण किया था। सत्यरक्षा के लिए समुद्र कूल का लंघन नहीं करता है।)

धैर्य व सहिष्णुता— मनुष्य को अपने जीवन-काल मे बहुत से दुःख-कष्टो और बाधा-विघ्नो का सामना करना पड़ता है। धैर्य के साथ उन सबको सहकर जो मनुष्य अपने कर्तव्य-पथ पर अटल रहता है, वही अन्त मे विजयी हो निकलता है। धरापृष्ठ पर सीता-रामजी के रूप मे मानवावतार मे अवतीर्ण लक्ष्मी-नारायणजी को भी अनगिनत विपत्तियाँ झेलनी पड़ी थी। तो साधारण मानव की बात कौन पूछे ? विपत्तियों के समय धैर्य व सहिष्णुता का अवलम्बन करने के लिए सीता-रामजी के चरित्रो के माध्यम से भञ्जजी ने 'वैदेहीश-विळास' मे बहु स्थलो पर मानव-समाज को उपदेश दिये हैं। पुनः स्वरचित 'सुभद्रा-परिणय' काव्य मे उन्होने बलरामजी को पत्नी रेवती के मुख से

सहिष्णु बनने के लिए जो उपदेश-वाणियाँ सुनवाई हैं, वे वास्तव में विख्यात अंग्रेजी कवि तथा नाट्यकार शेक्सपियर-रचित 'Merchant of Venice' नाटक में वकील पोर्सिया-प्रदत्त दया (Mercy)-सम्बन्धी अभिभाषण के सदृश उपादेय ही हैं।

बलरामजी के प्रति रेवती—

"सहिष्णु हुअ हे देव, कहिले रेवती,
समदरशी जनङ्कु नुहइ ए रीति।
सबु काळे वड़ होइ के नाहिँ मनकु,
स्वर्ग तेजि गङ्गा लभे लवण सिन्धुकु यँ ॥"

("हे देव ! सहिष्णु बनो। ऐसा आचरण समदर्शी जनो के योग्य नही है। सब समय यो जी मे आ जाने पर ही कोई बड़ा नही बन जाता। यह देखो, स्वर्ग तज कर गगानदी लवण समुद्र का लाभ करती है।)

महात्मा गान्धीजी ने सत्य, धैर्य और सहिष्णुता आदि गुणो के सहारे ता० १५-८-१९४७ को भारत की चिरवाछित स्वाधीनता का ब्रिटिश सरकार से उद्धार किया था। मालूम पडता है, हम लोगो की स्वाधीनता-प्राप्ति के तीन सौ वर्षों के पहले जैसे उपेन्द्रजी ने अपनी कविताओ मे उन्ही गुणो का नारा लगा दिया था। सच है, धैर्य ही सहिष्णुता का श्रेष्ठाश है। (Patience is the finest and worthiest part of fortitude—Ruskin.) पुनश्च, जगत की सारी प्रतिभाओं की अपेक्षा सहिष्णुता की शक्ति अधिक उत्तम है। (The strength of endurance is better than all the talents of the World —Byron.)

धैर्य के साथ कार्य-सिद्धि तक उद्यम की आवश्यकता

"आरत हेले कार्य नुहइ वेग।
काळकु चाहिँ मोग हुअइ योग ॥" (लावण्यवती)

[अधीर हो जाने से ही कार्य शीघ्र नही बन जाता। समय पर ही फल (सिद्धि) का लाभ होता है।]

"उद्यम कर माधव पर नोहि माधव समाने।" (कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी)

['मालतीमाधव' के नायक माधव के समान न होकर माधव (कृष्णजी) के समान उद्यम करो।]

नारी-चित्र— मनु कहते हैं— "**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।**" (जहाँ नारियो की पूजा होती है, वहाँ देवता लोग विहार करते हैं।)

नारी व पुरुष, दोनो ही समाज के दो अत्यावश्यक अग है। समाज की उन्नति दोनो की उन्नति पर निर्भर करती है। नारी पुरुष का अवलम्बन है और पुरुष नारी का। आज स्वाधीन भारत में हम नारीजाति की महत्ता का भलीभाँति अनुभव करते हैं। उपेन्द्रजी ने १७वी सदी मे भी इसका अनुभव किया था। अपने द्वारा रचित सारे काव्यो मे उन्होने नारी को जननी, भगिनी, जाया, कन्या, सहचरी, अनुचरी, मालिनी, मायाविनी, संन्यासिनी आदि के रूपो मे और दया, क्षमा, सरलता, कोमलता, लज्जाशीलता, सहनशीलता, स्नेह, श्रद्धा, प्रेम व प्रीति की प्रतिमूर्ति के स्वरूप चित्रित किया है।

'वैदेहीश-विळास' में श्री रामचन्द्रजी सीताजी से कहते हैं—

"बीणा-कळकण्ठ-जिणा-कण्ठी गण्ठीरत्न मन-कृपणर ।
बिदेह-नरराण-जेमा तु मोर पराण पे पराणर ॥"

(पद १०, छान्द २०, वै०वि०)

(अयि वीणाकोकिल-विजितकण्ठि ! तुम मेरे मन-कृपण के गुदड़ी के लाल के समान प्रधान रत्न हो । अयि विदेहराजकन्या ! तुम मेरे जीवन के भी जीवन हो ।)

यहाँ तक श्रीरामजी ने सीता को 'विभु' (प्रभु) और अपने को 'दास' भी माना है ।

'वैदेहीश-विळास' के ३५वें छान्द में राक्षसियों की डाँट से न डरकर सतीशिरोमणि सीताजी ने अपनी सतीत्वनिष्ठा-सम्बन्धी जो भाषण दिया है, वह बड़ा चमकदार और समयोचित है । भञ्जजी ने इस भाषण के वर्णन से सीताजी की निर्भीकता तथा सतीत्वनिष्ठा के साथ-साथ अपना पाण्डित्य दिखाते हुए सीताजी का पदांक अनुसरण करने के लिए नारीसमाज को इशारा दिया है ।

'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी', 'लावण्यवती' आदि काव्यों मे सामाजिक नीति-नियमो, सम्मान और शिष्टाचार के दायरों मे रहकर चलने के लिए कविवर ने नायक-नायिकाओं के प्रति निर्देश दिया है ।

सुशासन के चित्र— 'लावण्यवती' काव्य में नरेश्वर चन्द्रभानुजी के राज्यपालन से कर्णाटक देश में प्रतिष्ठित सुशासन का चित्र आलंकारिक रीति मे प्रदत्त है—

"से नरेश्वर पाळिबारे देश,
नोहिला आउ मिथ्याप्रकाश ।
दिवस नामरे दीन (दिन) रहिला,
दिनकु दण्ड आश्रय कला ॥"

[राजा चन्द्रभानुजी के राज्यपालन से कर्णाटक में कोई झूठ नही बोला । 'दीन' कहने से लोग दिन 'दिवस' ही को समझते थे, 'दीन' (दरिद्र) को नही, क्योंकि उस राज्य में तब कोई भी दरिद्र नही था । कोई मनुष्य अपराध नहीं करता था; सुतरां दण्ड (सजा) की आवश्यकता नही रही । 'दण्ड' (२४ मिनट काल) ने दिन (समय) का सहारा लिया ।]

साम्यवाद—'लावण्यवती' में कवि ने लिखा है—

"दुर्बळ मारिबाकु समस्ते आग ।"

(दुर्बल को मारने के लिए सभी अगुए होते हैं ।)

एक ही छोटी सी पंक्ति में भञ्जजी ने दुर्बल पर प्रबल के अत्याचार तथा शोषण पर जो प्रकाश डाला है, 'समाजवाद' या 'साम्यवाद' इससे अधिक क्या कहता है ?

संक्षेपतः साहित्य-रचना का चिरन्तन उद्देश्य है—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत् ॥"

भञ्ज-साहित्य में उसका भलीभाँति निर्वाह किया गया है ।

उपसंहार— भञ्जसाहित्य एक रत्नाकर सागर के सदृश है। उनके द्वारा विरचित प्रत्येक काव्य एक-एक रत्न है। उन काव्य-रत्नों मे 'बैदेहीश-बिळास' एक अनमोल रत्न हे, जो उत्कल-भारती के कण्ठहार मे चिरकाल तक जाज्वल्यमान तथा शोभमान रहेगा। किसी भी भारतीय भाषा में रचित रामायण ग्रन्थ की तुलना मे इस ग्रन्थ का महत्त्व कम नही। विभिन्न रामायणो का अध्ययन कर उपेन्द्रजी ने उनसे समस्त शिक्षणीय तथा चित्ताकर्षक चित्रो का संग्रह किया है, अपनी प्रतिभा, पाण्डित्य व दैवी प्रभाव के बल से उन चित्रो को चारुतर बनाकर उनका स्वरचित 'बैदेहीश-बिळास' मे सुसयत तथा सुसगत रीति से सन्निवेश किया हे और इसी तरह इस ग्रन्थ को सर्वांग-सुन्दर बना दिया है। इस महाकाव्य मे सन्निवेशित विषयवस्तु तथा अलंकार-विन्यास विज्ञ पाठको की दृष्टि का आकर्षण करता हे।

कालिदास, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ आदि मनीषियों के द्वारा रचित 'अभिज्ञान-शकुन्तलम्', 'श्रीरामचरितमानस', 'गीताञ्जलि' आदि ग्रन्थो का विभिन्न भारतीय भाषाओ तथा अधिकांश विश्वभाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। परन्तु उपेन्द्र भञ्ज जी अब तक भारतीय कविदरबार मे भी अपरिचित रहे है। ऐसे एक कविवर को भारत तथा विश्व के समक्ष परिचित करने के लिए विद्वान् अनुवादकों को प्रयत्नशील होना चाहिए और उनके ग्रन्थो का विभिन्न भारतीय तथा विश्वजागतिक भाषाओं मे अनुवाद करने मे जी-जान से लग जाना चाहिए।

॥ जय सीताराम ॥

सहायक ग्रन्थावली

१ ओडिआ साहित्यर इतिहास (द्वितीय भाग), लेखक पण्डित श्री सूर्यनारायणदास, एम् ए.; प्रकाशन का वर्ष—१९७८

२ भञ्ज-प्रभा, मुख्य सम्पादक स्वर्गत विच्छन्दचरण पट्टनायक, प्रतिष्ठाता-सभापति, 'कलिंग भारती', कटक—२, प्रकाशन का वर्ष—१९५३

३. उपेन्द्र साहित्य समालोचना, लेखक श्री विष्णुमोहन महान्ति, एम्. ए., एल्-एल् बी; प्रकाशन का वर्ष—१९५८

४ कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्ज, लेखक श्री अनन्त पद्मनाभ पट्टनायक; प्रथम संस्करण—१९५९

५ बैदेहीश-बिळास, सम्पादक अध्यापक श्री गौरीकुमार ब्रह्मा, एम्. ए., डिप्-इन्-एड्; प्रकाशन का वर्ष—१९७४

६ कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्ज —एक समीक्षा, लेखक अध्यापक श्री जयकृष्ण मिश्र, एम् ए, डिप्-इन्-एड्, प्रकाशन का वर्ष—१९७७

भञ्जीय काव्य-वैभव और 'बैदेहीश-बिळास' की भूमिका की विषय-सूची

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

विज्ञप्ति

विश्व-वाङ्मय से निस्रित अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी-पट सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥

प्रकाशित हो चुके हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण ग्रन्थ:—

१ गुजराती—गिरधर रामायण (रचनाकाल-१८३५ ई०) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृष्ठ संख्या १४६४ मूल्य ६०.००
२ मलयाळम—अध्यात्म रामायण (एऴुत्तच्छन् कृत १५वी शती) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृ० सं० ७५२ मू० ४०.००
३ ,, —महाभारत-एऴुत्तच्छन् (१५वीं शती) पृ० १२१६ मू० ६०.००
४ बंगला— कृत्तिवास रामायण (आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्ध्या और सुन्दर)—१५वीं शती। हिन्दी पद्यानुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण पृ० ६२४ मू० २५.००
५ ,, कृत्तिवास लंकाकाण्ड— ,, गद्यानुवाद पृ० ४८८ मू० १५.००
६ कश्मीरी—रामावतारचरित-प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत पृ० ४८९ मू० २०.००
७ ,, ललद्यद—(नागरी) हिन्दी गद्य संस्कृत पद्यानु० पृ० १२० ,, १०.००
८ राजस्थानी—रुक्मिणी मंगल-पदम भगत कृत। पृ० ३०० मू० १५.००
९ तमिऴ— तिरुक्कुरळ्-तिरुवल्लुवर कृत। २००० वर्ष से अधिक प्राचीन; नागरी लिप्यन्तरण, गद्य-पद्य हिन्दी अनुवाद, पृ० ३५२ मू० २०.००
१० ,, कम्ब रामायण बालकाण्ड (९वीं शती) पृ० ६५२ मूल्य ४०.००
११ कन्नड— रामचन्द्रचरित पुराणं-अभिनव पम्प विरचित जैन-सम्प्रदाय रामचरित्र (११वीं शती) पृ० ६९० मू० ४०.००
१२ तेलुगु— मोल्ल रामायण (१४वीं शती) पृ० ४०० मू० २०.००
१३ ,, रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) अनु. पृ. १३३५ मू० ६०.००
१४ मराठी—श्रीरामविजय-श्रीधरकृत (१७वीं शती) पृ० १२२८ मू० ६०.००
१५ अरबी— ज़ादे सफ़र (रियाज़ुस्सालिहीन) प्रामाणिक हदीस प्र० खण्ड पृ० ३३६ मू० १२.००
१६ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषदों की व्याख्या) हिन्दी में पृ० २८० मू० २०.००
१७ उर्दू— शरीफ़ज़ादः (मिर्ज़ा रुस्वा कृत) पृ० १३६ मू० ५.००
१८ गुरमुखी—श्री गुरूग्रन्थ साहिब पहली सैंची पृ० ९६८ मू० ४०.००
१९ ,, ,, ,, दूसरी सैंची पृ० ९९२ मूल्य ५०.००
२० ,, श्रीजपुजी सुखमनी साहब गुरमुखी पाठ तथा ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनों नागरी लिपि में; पृ० १६४ मू० ८.००
२१ ,, सुखमनी साहिब मूल गुटका नागरी लिपि। मूल्य ४·००
२२ सिन्धी— सामी, शाह, सचल की त्रिवेणी पृष्ठ ४१५ मू० २०.००

२३ नेपाली—भानुभक्त रामायण पृ० ३४४ मूल्य २०·००
२४ असमिया—माधवकंदली रामायण (१४वी शती) पृ० ९४३ „ ६०·००
२५ ओड़िआ—बैदेहीश-विळास उपेन्द्रभञ्ज (१८वी शती) पृ० १०००„ ६०·००
२६ „ तुलसी-रामचरितमानस—ओड़िआ लिपि में मूलपाठ तथा ओड़िआ गद्य-पद्य अनुवाद । पृ०सं० १४६४ मू० ५०.००
२७ बाइबिल-सार (सालोमन के नीति-वचन) „ २·००
२८ बहुभाषाई— 'वाणी सरोवर' त्रैमासिक पत्र वार्षिक मूल्य १०·००

प्रचारित प्रकाशन (ल.कि.घ.)

२९ कुर्आन शरीफ़ मूलपाठ अरबी तथा नागरी लिपि में पृ० ५२० मू० २०.००
३० „ „ तथा हिन्दी अनुवाद सहित पृ० १०२४ मू० ४०.००
३१ „ केवल हिन्दी अनुवाद पृ० ५३० मू० २०.००
३२ „ क़ौरानिक कोश (पठनक्रम) पृ० १९२ मू० १०.००

यन्त्रस्थ तथा कार्याधीन चल रहे अन्य ग्रन्थ :— अनुमानित पृष्ठ

१ तमिळ— कम्बरामायण अयोध्या से लंकाकाण्ड	४०००
२ गुरमुखी—श्री गुरूग्रन्थ साहिब ३,४ सैंची	२०००
३ गुजराती—प्रेमानन्द रसामृत	६००
४ उर्दू— गुज़श्त: लखनऊ (शरर)	३५०
५ तेलुगु— पोतन्नकृत भागवतमु (१३वीं शती)	२०००
६ ओड़िआ—जगमोहन रामायण बलरामदास कृत	१०००
७ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर खण्ड २-३	६००
८ „ मुल्ला मसीही रामायण (जहाँगीर काल)	५००
९ अरबी—बुख़ारी शरीफ़ (ल.कि.घ.)	३०००
१० " क़ौरानिक कोश वर्णानुक्रम (ल.कि.घ.)	३००
११ „ कुर्आन शरीफ़ तफसीर माजिदी (ल०कि०घ०)	६०००
१२ मराठी—श्रीहरि-विजय (श्रीधर कृत)	१२००
१३ „ श्री संत एकनाथ भावार्थ रामायण	३०००
१४ कोंकणी—ख्रीस्त पुराण	५००
१५ कन्नड—तोरवे रामायण (१६वीं शती)	९००
१६ बंगला—कृत्तिवास रामायण उत्तरकाण्ड	५००
१७ हिब्रू— बाइबिल ओल्ड टेस्टामेण्ट	२०००
१८ ग्रीक— " निउ टेस्टामेण्ट	१०००
१९ संस्कृत—(तुलसी) रामचरितमानस का मूलपाठ सहित संस्कृत पंक्ति-अनुपंक्ति पद्यानुवाद	१०००
२० परिवर्द्धित नागरी उर्दू-हिन्दी कोश	१२००

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥'

प्रतिष्ठाता— पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी